गोविन्ददास सेन कृत

भैषज्यरत्नावली

(हिन्दी टीका सहित)

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई-४

गोविन्ददास सेन कृत

भैषज्यरत्नावली

हिन्दीटीकासहित

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई

संस्करण : जुलाई २०१२, सम्वत् २०६९.

मूल्य : ६०० रुपये मात्र

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

भूमिका।

भैषज्यरत्नावली आयुर्वेदीय चिकित्सा ग्रन्थोंमें एक उत्कृष्ट और प्रामाणिक चिकित्सा ग्रन्थ समझा जाता है। वैद्य समाजमें आजकल इसका बड़ा आदर है। कारण इसके रचयिता श्रीगोविन्ददाससेनने इसमें अनेक अनुभूत योगोंका संग्रह बड़ी सुन्दर और सरल रीतिसे किया है। इसमें क्वाथ, चूर्ण, अवलेह, आसव, अरिष्ट आदि वनस्पति प्रयोग और रसधातु आदिके द्वारा सिद्ध किये रसायन प्रयोग, इस प्रकार दोनों प्रकारके योगोंका समावेश होनेके कारण इसके द्वारा सभी श्रेणीके वैद्य उत्तमरीतिसे लाभ उठा सकते हैं। इसका प्रत्येक प्रयोग अत्यन्त गुणकारक और आशुफलप्रद होनेसे यह ग्रन्थ वैद्योंको अल्प समयमें ही अत्यन्त आदरणीय हो गया है। अबतक इसके कलकत्ता, लखनऊ, लाहौर आदिमें कई संस्करण हो चुके हैं। पर हमने इसको और भी अधिक उपयोगी बनानेके लिये इसमें दूसरे कई प्राचीन और नवीन ग्रन्थोंके अनेक उत्तम योगोंका संग्रह कर इसको अधिक परिवर्द्धित कर दिया है। किन्तु इसमें अन्य ग्रन्थोंके प्रयोगोंके संकलनसे पूज्यपाद वैद्य श्रीगोविन्ददाससेनजीकी धवलकीर्तिमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं होगी। बल्कि इससे उनकी उज्ज्वल कीर्ति और भी प्रसारित होगी। ऐसी आशा है। महामान्य कविराज श्रीगोविन्ददाससेनने इस ग्रन्थकी अबसे कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले रचना की थी। सेन उपाधिसे जान पड़ता है कि वे वंगदेश निवासी थे। पर किस स्थानमें उनका जन्म हुआ था, इसका कुछ ठीक पता नहीं लग सका। पहले इस ग्रन्थका बंगालमें अधिक प्रचार हुआ। फिर धीरे २ सारे भारतवर्षमें इसका समादर होने लगा। केवल हिन्दी भाषा जाननेवाले वैद्योंके लिये हमने इसके प्रत्येक श्लोकका सरल हिन्दी अनुवाद किया है। हमें

भूमिका ।

इस ग्रन्थके अनुवाद तथा सम्पादन और परिवर्द्धन करनेमें चरक, अष्टांग-हृदय, भावप्रकाश,वङ्गसेन, शार्ङ्गधर, चक्रदत्त,योगरत्नाकर आदि कितने ही ग्रन्थोंके सिवाय कविराज श्रीहरलाल गुप्त कविभूषणकी भैषज्यरत्नावलीसे अधिक सहायता मिली है इस लिये हम उनके प्रति अत्यन्त कृतज्ञता प्रगट करते हैं । तथा कविराज विनोदलालसेनके ग्रन्थद्वारा भी हमें उस कार्यमें यत्किञ्चित् सहायता लेनी पड़ी है, इस लिये हम उनके भी कृतज्ञ हैं, हमने यथाशक्ति इस ग्रन्थको भली प्रकार देख भाल कर पाठकोंके सम्मुख उपस्थित किया है, यदि कोई त्रुटि दृष्टि दोषआदिसे रह गई हो तो कृपया उसको पाठकगण सुधार तथा सूचित कर अनुगृहीत करें । आगामी संस्करणमें वे सब ठीक करदी जायँगी ।

३०-८-३०

भवदीय-कृपाकांक्षी-
वैद्य-शंकरलाल हरिशंकर-
आयुर्वेदोद्धारक-कार्यालय,
मुरादाबाद ।





श्री शङ्करलालजी वैद्य (टीकाकार).

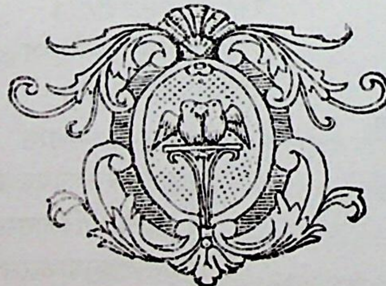


श्री हरिशङ्करजी वैद्य.

॥ श्रीः ॥

भैषज्यरत्नावली-विषयानुक्रमणिका।

इति विषयानुक्रमणिका।



ॐ

भैषज्यरत्नावली।

भाषाटीकासहिता।

मंगलाचरणम्।

भक्त्या नतत्रिदशराजकिरीकोटि-
रत्नावलीकिरणराजिविराजमानम्।
श्रीमत्करीन्द्रवदनस्य पदारविन्द-
द्वन्द्वं सदा जयति सिद्धिकरं क्रियाणाम् ॥ १ ॥

भक्तिके साथ नम्रहुए देवराज इन्द्रके किरीटमें सुशोभित रत्नावलीकी किरणोंसे शोभायमान, सम्पूर्ण कार्य्योंके सिद्धिदाता ऐसे श्रीगणेशजीके चरण-कमल निर्विघ्नतापूर्वक इस ग्रन्थकी समाप्ति करें ॥ १ ॥

वन्देऽम्बिकाचन्द्रचूडौ जननीजनकावुभौ।
निपत्य धरणौ भक्त्या प्रत्यूहव्यूहशान्तये ॥ २ ॥

सकल विघ्नोंकी शान्तिके लिये भक्तिसहित जगतके माता और पिता जो पार्वती शिव उनको मैं (ग्रन्थकार) साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूं ॥ २ ॥

श्रीगोविन्दपदारविन्दयुगलं वन्दारुवृन्दारक-
श्रेणीनम्रशिरः किरीटवलिभिर्नीलोत्पलेन्दिन्दिरम्।
नत्वा सद्भिषजां मुदे वितनुते गोविन्ददासोऽधुना
नानाग्रन्थमहाब्धिलब्धसगुणां भैषज्यरत्नावलीम् ॥ ३ ॥

स्तुति करतेहुए देवताओंके नम्रहुए शिरोंके किरीटसे शोभायमान और नीलकमलकी कान्तिको लज्जित करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलको प्रणाम-कर मैं गोविन्ददास(ग्रन्थकार)सद्वैद्योंकी प्रसन्नताके लिये अनेक ग्रन्थरूपी समु-

द्रोंको मथकर निकालेहुए नानाप्रकारके गुणोंसे युक्त इस "भैषज्यरत्नावली" नामक ग्रन्थको प्रकाशित करता हूँ ॥ ३ ॥

यदि प्रियतमा न स्याद् वृद्धानां भिषजामियम् ।
तथापि नव्या नव्यानामानुकूल्यं विधास्यति ॥ ४ ॥

यद्यपि मेरा संग्रह कियाहुआ यह नवीन ग्रन्थ वृद्धवैद्योंको अतिप्रिय न होगा तथापि यह नवीन वैद्योंका विशेष उपकार करेगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४ ॥

टीकाकारोक्त-मंगलाचरण ।

"नमः श्रीपूर्ववैद्याय भवरोग-निवृत्तये ।
भैषज्यरत्नावल्याश्च भाषाटीका विरच्यते ॥ १ ॥"

आयुर्वेदके लक्षण ।

आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा ।
विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते ॥ ५ ॥

जिस शास्त्रके द्वारा आयुका हित व अहित एवं रोगोंका निदान और रोग नाश करनेके उपाय मालूम हों, उसको आयुर्वेद कहते हैं ॥ ५ ॥

आयुर्वेदकी निरुक्ति ।

अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति वेत्ति च ।
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेद इति स्मृतः ॥ ६ ॥

इस शास्त्रके द्वारा दीर्घायु प्राप्त होती है और आयुर्विषयक ज्ञान उत्पन्न होताहै, इसलिये महर्षियोंने इसको आयुर्वेद कहा है ॥ ६ ॥

आयुर्वेदकी उत्पत्ति ।

ब्रह्मा स्मृत्वायुषो वेदं प्रजापतिमजिग्रहत् ।
सोऽश्विनौ तौ सहस्राक्षं सोऽत्रिपुत्रादिकान्मुनीन् ॥
तेऽग्निवेशादिकाँस्ते तु पृथक् तन्त्राणि तेनिरे ॥ ७ ॥

सबसे प्रथम ब्रह्माने दक्ष प्रजापतिको आयुर्वेदकी शिक्षा दी; फिर दक्षने दोनों अश्विनीकुमारोंको, अश्विनी कुमारोंने इन्द्रको, इन्द्रने आत्रेय आदि मुनियोंको और उन्होंने अग्निवेशादि मुनियोंको आयुर्वेदकी शिक्षा दी ।

फिर उन अग्निवेशादि मुनियोंने संसारके हितके लिये अपने अपने नामोंसे पृथक् पृथक् तन्त्रोंकी रचना की ॥ ७ ॥

चिकित्सा-प्रकरण।

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्यापहर्त्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥ ८ ॥

आरोग्यता ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्ग प्राप्तिका प्रधान कारण हैं और रोग उस आरोग्यता, सुख और जीवनको नष्ट करनेवाले हैं ८

व्याधयो द्विविधाः प्रोक्ताः शारीरा मानसास्तथा।
शारीरा ज्वरकुष्ठाद्या उन्मादाद्या मनोभवाः ॥ ९ ॥

व्याधियाँ दो प्रकारकी होती हैं-एक शारीरिक और दूसरी मानसिक; ज्वर, कुष्ठ आदिको शारीरिक और उन्माद आदिको मानसिक रोग कहते हैं ॥९॥

दोषाणां साम्यमारोग्यं वैषम्यं व्याधिरुच्यते।
सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च ॥ १० ॥

वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंकी साम्य अवस्था (अर्थात् तीनों दोषोंका समानरूपसे रहना) को आरोग्य कहते हैं। और विषम अवस्था (तीनों दोषोंमेंसे किसीएक दोषका कुपित होकर न्यूनाधिक होना) को रोग कहते हैं। अतः, आरोग्यका नाम सुख और रोगका नाम दुःख है ॥ १० ॥

साध्योऽसाध्य इति व्याधिर्द्विधातोऽपि पुनर्द्विधा।
सुखसाध्यः कृच्छ्रसाध्यो याप्यो यश्चाप्रतिक्रियः ॥११॥
याप्यत्वं याति साध्यस्तु याप्यो गच्छत्यसाध्यताम्।
जीवितं हन्त्यसाध्यस्तु नरस्याप्रतिकारिणः ॥ १२ ॥
याप्याः केचित् प्रकृत्यैव केचिद्याप्या उपेक्षया।
प्रकृत्या व्याधयोऽसाध्याः केचित्केचिदुपेक्षया ॥ १३ ॥

रोग दो प्रकारके होते है. जैसे-साध्य और असाध्य। साध्यरोग भी दो प्रकारके होते हैं-सुखसाध्य और कष्टसाध्य; असाध्य रोग भी दो ही प्रकारके होते हैं. जैसे-याप्य और अचिकित्स्य (अर्थात् त्याज्य-औषधादिके द्वारा जिनका प्रतीकार न होसके)। जो रोग सहजमें आरोग्य होजातेहैं, उनको सुखसाध्य कहतेहैं। एवं जो रोग कठिनतासे आराम होतेहैं, उनको कष्टसाध्य कहते हैं। ये दो प्रकारके रोग साध्यहैं। जो रोग औषधादिके द्वारा कुछ

शान्त होजाते हैं, उनको याप्य कहते हैं और जो रोग औषधके द्वारा शान्त नहीं होते, उनको असाध्य कहते हैं। याप्य और असाध्य ये दोनों प्रकारके रोग असाध्य हैं । उपयुक्तसमयमें चिकित्सा न करनेसे साध्यरोगभी याप्य होजाते हैं और याप्यरोग असाध्य होजाते हैं और असाध्यरोग जीवनको शीघ्र नष्ट करदेते हैं । याप्यरोग दो प्रकारसे उत्पन्न होते हैं । कितनेएकरोग स्वभावसे ही याप्य और कितनेएक चिकित्साके अभावसे याप्य हो जाते हैं। किन्तु स्वभावसे जो रोग याप्य होते हैं वे असाध्य और चिकित्साके अभावसे जो रोग याप्य होते हैं, उनमेंसे कोई कोई चिकित्सा द्वारा साध्य होजाते हैं ॥११-१३॥

तत्रैकः पापजो व्याधिरपरः कर्म्मजो मतः ।
पापजः प्रशमं याति भैषज्यसेवनादिना ॥ १४ ॥
यथाशास्त्रविनिर्णीतो यथा व्याधिश्चिकित्सितः ।
न शमं याति यो व्याधिः सज्ञेयः कर्म्मजो बुधैः १५॥
न जन्तुः कश्चिदमरः पृथिव्यामेव जायते ।
अतो मृत्युरवार्यः स्यात्किन्तु रोगो निवार्यते॥१६॥
एकोत्तरं मृत्युशतमस्मिन्देहे प्रतिष्ठितम् ।
तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषास्त्वागन्तवः स्मृताः ॥१७॥
ये त्विहागन्तवः प्रोक्तास्ते प्रशाम्यन्ति भेषजैः ।
जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्न शाम्यति ॥ १८ ॥
पीडितं रोगसर्पाद्यैरपि धन्वन्तरिः स्वयम् ।
सुस्थीकर्तुं न शक्नोति कालप्राप्तं हि देहिनाम् ॥१९॥

पापज और कर्मज-इन भेदोंसे रोग दो प्रकारके होतेहैं । पापजरोग औषधादिके सेवनसें शान्त होजातेहैं । एवं शास्त्रोक्त औषधादिके सेवनसे भी जो रोग दूर नहीं होते, उनको कर्मजव्याधि कहतेहैं । इस पृथ्वीपर कोई भी जीव अमर होकर नहीं जन्मा, एक न एक दिन निश्चयही मृत्यु होगी । इसलिये मृत्युको कोई भी नहीं रोकसकता, किन्तु औषधादिके द्वारा रोग दूरकियाजासकताहै। मनुष्यकी एकसौ एक प्रकारसे मृत्यु होसकती हैं। उनमें एक कालमृत्यु और सौ आगन्तुक मृत्युयें हैं। आगन्तुकमृत्यु-औषध और जप, होमादिके द्वारा शमन होतीहै; किन्तु कालमृत्यु किसी प्रकार भी दूर नहीं होसकती ।

कालमृत्युके मुखमें पतितहुए व्यक्तिको किसीभी रोगसे ग्रसित होनेपर या सर्पादिके द्वारा काटनेपर स्वयं धन्वन्तरि भी आरोग्य नहीं करसकते ॥१४-१९॥

आयुषे कर्मणि क्षीणे लोकोऽयं दूयते मया ।
नौषधानि न मंत्राश्च न होमा न पुनर्जपाः ॥ २० ॥
त्रायन्ते मृत्युनोपेतं जरया चापि मानवम् ।
वर्त्याधारस्नेहयोगात् यथा दीपस्य संस्थितिः ॥
विक्रियापि च दृष्टैवमकाले प्राणसंक्षयः ॥ २१ ॥

आयुकर्मके क्षय होनेपर मृत्यु मनुष्योंको पीडित करतीहै । उस समय औषध, मंत्र, होम और जप ये मनुष्यको जरा और मृत्युसे नहीं बचासकते । जिस प्रकार तेल और बत्तीके होनेपर भी दीपक बुझ जाताहै, उसीप्रकार आयुके होनेपर भी किसी विशेष कारणसे कभी कभी मनुष्यका प्राण नाश हो जाता है ॥ २० ॥ २१ ॥

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः ।
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ २२ ॥

रोगके तत्त्वको समझना और पीडाको दूरकरना-यह ही वैद्यकी वैद्यता है । किन्तु, वैद्य आयुका स्वामी नहीं है ॥ २२ ॥

याहच्छिको मुमुर्षुश्च विहीनः करणैश्च यः ।
वैरी च वैद्यविद्वेषी श्रद्धाहीनः सशंकितः ॥ २३ ॥
भिषजामनियम्यश्च नोपक्रम्यो भिषग्विदा ।
एतानुपाचरन् वैद्यो बहून् दोषानवाप्नुयात् ॥ २४ ॥

स्वेच्छाचारी, मरनेकी इच्छा करनेवाला, इन्द्रियशक्तिहीन (काना, लूला, लंगडा इत्यादि), बैरी, वैद्यसे द्वेष रखनेवाला, श्रद्धाहीन, संदिग्धचित्त और चिकित्सासम्बन्धी नियमोंको न पालनेवाला ऐसे मनुष्योंकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये । यदि वैद्यलोभवश ऐसे रोगियोंकी चिकित्सा करताहै तो वह अपयशको प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥ २४ ॥

यावत्कण्ठगताः प्राणा यावन्नास्ति निरिन्द्रियः ।
तावच्चिकित्सा कर्त्तव्या कालस्य कुटिला गतिः २५॥
जातमात्रश्चिकित्स्यस्तु नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः ।
वह्निशास्त्रविषैस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥२६॥

यथा स्वल्पेन यत्नेन छिद्यते तरुणस्तरुः।
स एवातिप्रवृद्धस्तु छिद्यतेऽतिप्रयत्नतः॥ २७॥

जबतक प्राण कण्ठमें रहें और इन्द्रियोंकी शक्तिका लोप न हो तबतक चिकित्सा करनी चाहिये। कारण–कालकी गति कुटिल है। रोगके उत्पन्न होते ही चिकित्सा आरम्भ करदेनी चाहिये। रोगको सामान्य समझकर उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। कारण–सामान्यरोग अल्प होनेपर भी अग्नि, शस्त्र और विषकी तरह अत्यन्त प्रबल होजाते हैं जिस प्रकार तरुणवृक्ष सहजमें ही काटा जासकताहै और बडा होजानेपर उसका काटना कठिन होजाता है॥ २५–२७॥

ग्रहेषु प्रतिकूलेषु नानुकूलं हि भेषजम्।
ते भेषजानां वीर्याणि हरन्ति बलवन्त्यपि॥
प्रतिकृत्य ग्रहानादौ पश्चात्कुर्य्याच्चिकित्सितम्॥२८॥

सूर्य्यादि ग्रहोंके प्रतिकूल होनेपर किसी भी ओषधिका ठीक २ फल नही मालूम होता। कारण ग्रह अतिवीर्य्यवान् ओषधिके भी प्रभावको नष्ट करदेते हैं इसलिये प्रथम ग्रहशान्ति करके फिर चिकित्सा करनी चाहिये॥२८॥

याभिर्क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म्म तद्भिषजां मतम्॥२९॥

जिस क्रियाके द्वारा शरीरकी धातुयें समान अवस्थामें रहतीहैं, उसको चिकित्सा कहते हैं और वह ही वैद्योंका कर्म्म है॥ २९॥

आसुरी मानुषी दैवी चिकित्सा त्रिविधा मता।
शस्त्रैः कषायैर्होमाद्यैः क्रमेणान्त्या सुपूजिता॥ ३०॥

चिकित्सा तीन प्रकारकी है. जैसे–आसुरी, मानुषी और दैवी। अस्त्रादि द्वारा जो चिकित्सा की जाती है, वह आसुरी चिकित्सा है; ओषधियोंके काथादिके द्वारा जो चिकित्साकी जाती है, वह मानुषी और जप, होमादिके द्वारा जो चिकित्सा की जाती है वह दैवी चिकित्सा कहलाती है॥ ३०॥

कचिद्धर्म्मः कचिन्मैत्री कचिदर्थः कचिद्यशः।
कर्म्माभ्यासः कचिच्चापि चिकित्सा नास्ति निष्फला॥३१॥

चिकित्सा द्वारा कहीं धर्म्म, कहीं मित्रता, कहीं धन, कहीं यशोलाभ और

कहीं चिकित्सा कर्म्ममें अभ्यास ही होता है इसलिये चिकित्सा कहीं भी निष्फल नहीं होती ॥ ३१ ॥

भिषक् द्रव्यमुपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम् ।
गुणवत्कारणं ज्ञेयं विकारस्योपशान्तये ॥ ३२ ॥

वैद्य, औषध, परिचारक (अर्थात् जो आदमी रोगीकी सेवा सुश्रूषा करता है) और रोगी ये चिकित्साके चारों पाद गुणवान् होनेपर रोग आरोग्य होनेके लिये प्रधान कारण हैं ॥ ३२ ॥

श्रुतेः पर्य्यवदातत्वं बहुशो दृष्टकर्म्मता ।
दाक्ष्यं शौचमिति ज्ञेयं वैद्ये गुणचतुष्टयम् ॥ ३३ ॥

आयुर्वेदशास्त्रमें कहा है कि-पारदर्शिता, बहुदर्शिता, निपुणता और पवित्रता ये चार गुण वैद्यमें होने आवश्यक हैं ॥ ३३ ॥

प्रशस्तदेशसम्भूतं प्रशस्तेऽहनि चोतद्धृतम् ।
अल्पमात्रं महावीर्य्यं गन्धवर्णरसान्वितम् ॥
उद्भिजमपरिक्षुण्णं शुद्धं धात्वादिकं तथा ।
समीक्ष्य काले दत्तं च भेषजं परमं मतम् ॥ ३४ ॥

प्रशस्त देश (अच्छे स्थान) में उत्पन्न हुई, शुभ दिनमें उखाडी हुई, थोडी मात्रावाली, अत्यन्त वीर्य सम्पन्न एवं गन्ध, वर्ण और रस विशिष्ट तथा कीडे आदिके द्वारा खराब न कीहुई, वृक्ष–लतादिसे उत्पन्न हुई, शोधित धातु आदि जो यथासमयमें प्रयोगकी गयी हों, उनको उत्कृष्ट ओषधि कहते हैं ॥ ३४ ॥

उपचारज्ञता दाक्ष्यमनुरागं च भर्त्तरि ।
शौचं चेति चतुर्थोऽयं गुणः परिचरे जने ॥ ३५ ॥

जो मनुष्य रोगीकी सेवा–शुश्रूषा अच्छे प्रकार करनी जानता हो सब कामोंमें निपुण स्वामीभक्त और शुद्धाचारी हो, ऐसा मनुष्य परिचारक होना चाहिए ॥ ३५ ॥

स्मृतिनिर्देशकारित्वमभीरुत्वमथापि च ।
ज्ञापकत्त्वञ्च रोगाणामातुरस्य गुणा मताः ॥

जो रोगी वैद्यके सामने रोगका पूर्ववृत्तान्त स्मरण करके अच्छे प्रकार कह-सकता है और डरता नहीं है तथा रोगकी वर्त्तमान अवस्थाको भी विशेष रूपसे कहसकता है ऐसा रोगीही चिकित्साका उपयुक्त पात्र है। ये रोगीके लक्षण हैं ॥ ३६ ॥

मृद्दण्डचक्रसूत्राद्याः कुम्भकाराहते यथा ।
नावहन्ति गुणं वैद्याहते पादत्रयन्तथा ॥ ३७ ॥

जिस प्रकार कुम्हारके विना मृत्तिका, दण्ड, चक्र और सूत्रादि उपकरणोंके होनेपरभी घट आदि कोई पात्र नहीं बनसकता, उसीप्रकार औषध, परिचारक और रोगी इन तीनों पादोंके होनेपर भी एक सुचिकित्सकके विना रोग शमन नहीं होसकता । अत एव उक्त चारों पादोंमें वैद्यही मुख्य है ॥ ३७ ॥

यस्तु रोगमविज्ञाय कर्मण्यारभते भिषक् ।
अप्यौषधविधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया ॥ ३८ ॥
यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः ।
साध्यासाध्यविधानज्ञस्तस्यासिद्धिः करे स्थिता ३९॥
दृष्टकर्म्मा च शास्त्रज्ञो वैद्यः स्यात्सिद्धिभागसौ ।
एकाङ्गहीनो न श्लाघ्य एक पक्ष इव द्विजः ॥ ४० ॥
शास्त्रं गुरुमुखोद्गीर्णमादायोपास्य चासकृत् ।
यः कर्म्म कुरुते वैद्यः स वैद्योऽन्ये तु तस्कराः ॥ ४१ ॥
नाभिज्ञाय तु शास्त्राणि भेषजं कुरुते भिषक् ।
यम एव स विज्ञेयो मर्त्त्यानां मर्त्यरूपधृक् ॥ ४२ ॥
कुचैलः कर्कशः स्तब्धः कुग्रामी स्वयमागतः ।
पञ्च वैद्या न पूज्यन्ते धन्वन्तरिसमा यदि ॥ ४३ ॥
नाडी जिह्वास्यमूत्राणां कोष्ठादीनां च सर्वथा ।
परीक्षां यो न जानाति स वैद्यो यम एव हि ॥४४॥

जो वैद्य, रोगको अच्छे प्रकार न जानकर चिकित्सा आरंभ करदेता है वह औषधि विधानको अच्छे प्रकारसे जानताभी है तोभी उसको चिकित्सा कार्यमें सिद्धि प्राप्त होना अनिश्चित या दैवाधीन है । और जो वैद्य सर्वप्रकारके रोगोंके तत्त्वको जानता है, सब प्रकारकी ओषधियोंको जानता है, एवं ओषधि-प्रयोगमें चतुर और रोगके साध्यासाध्य लक्षणोंको जानता है, उसको आगे सिद्धि सदैव हाथ जोडे खडी रहती है । दृष्टकर्म्मा और आयुर्वेद शास्त्रका ज्ञाता वैद्यही चिकित्साकार्यमें सिद्धि प्राप्त करनेका भागी हो सकता है । जिसमें उपर्युक्त गुण होते हैं वह ही वैद्यश्रेष्ठ होता है । इन गुणोंमेंसे

एक गुणके न होनेपरभी वैद्यको एक पंखवाले पक्षीकी समान अकर्म्मण्य कहा है । जो वैद्य गुरुके पास आयुर्वेद शास्त्रको पढकर और उसको बारम्बार विचारकर चिकित्साकार्यमें प्रवृत्त होताहै, वह ही प्रकृष्ट वैद्य है । और दूसरे तो केवल धनको हरण करनेवाले तस्कर हैं और जो वैद्य आयुर्वेद शास्त्रको विना अध्ययन किये चिकित्सा करना आरम्भ करताहै, वह मनुष्योंके लिये मानवरूपधारी यमकी समान है मलिन वस्त्रधारी, कठोर बोलनेवाला, जड (रोगके सम्बन्धमें किसीप्रकारका विवेचन न करसकनेवाला), बुरे ग्राममें रहनेवाला और विना बुलाये अपने आप आनेवाला ऐसे पाँच प्रकारके वैद्य धन्वन्तारिकी समान भी हों तो सम्मानको प्राप्त नहीं होसकते । जिस वैद्यको नाडी, जिह्वा, मुख, मूत्र और कोष्ठादिकी परीक्षा मालूम नहीं है, वह वैद्य भी यमकी समान है ॥ ३८-४४ ॥

अप्येकं नीरुजं कृत्वा जन्तुं यादृशतादृशम् ।
आयुर्वेदप्रसादेन किं न दत्तं भवेद्भुवि ॥ ४५ ॥
कपिलाकोटिदानाद्धि यत्फलं परिकीर्त्तितम् ।
फलं तत्कोटिगुणितमेकातुरचिकित्सया ॥ ४६ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं कारणं यतः ।
तस्मादारोग्यदानेन नरो भवति सर्वदः ॥ ४७ ॥
अप्येकं नीरुजीकृत्य व्याधितं भेषजैर्नरः ।
प्रयाति ब्रह्मसदनं कुलसप्तकसंयुतः ॥ ४८ ॥

आयुर्वेदके प्रसादसे यदि किसी मनुष्यको आरोग्य कियाजाय तो पृथ्वीमें उस (जीवनदाता) ने कौनसा दान नहीं किया । करोडों गौओंको दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उससे करोड गुना अधिक फल रोगीको रोगसे मुक्त करनेमें होताहै । इसकारण आरोग्यताही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्ग प्राप्तिका एकमात्र कारण है । इस लिये आरोग्य दानकरनेपर सभी दान होजाते हैं । एक रोगीको आरोग्य करनेसे, उस पुण्यके प्रभावसे वैद्य अपने सात कुलोंके साथ ब्रह्मलोकको प्राप्त होताहै ॥ ४५-४८ ॥

चिकित्सितशरीरं यो न निष्क्रीणाति दुर्मतिः ।
स यत्करोति सुकृतं तत्सर्वं भिषगश्नुते ॥ ४९ ॥

जो दुर्बुद्धि मनुष्य आरोग्य होकर वैद्यस उऋण नहीं होता, वह मनुष्य जो कुछ सत्कर्म करता है वे सब वैद्यको प्राप्त होजाते हैं ॥ ४९ ॥

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैर्व्याधेर्ज्ञानं त्रिधा मतम् ।
दर्शनान्मूत्रजिह्वाद्यैः स्पर्शनान्नाडिकादिभिः ॥
प्रश्नैर्दूतादिवचनादिति त्रेधा समुच्यते ॥ ५० ॥

दर्शन, स्पर्शन और प्रश्न इन तीन प्रकारसे रोगकी परीक्षा करनी चाहिये । अर्थात् नेत्र और जिह्वादिका दर्शन, नाडी आदिका स्पर्शन एवं रोगी और दूत आदिसे रोगसम्बन्धी विषयको पूछना-इस प्रकार रोगपरीक्षाके ये तीन प्रकार कहेगये हैं ॥ ५० ॥

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् ।
ततः कर्म भिषक् पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ ५१ ॥

सबसे प्रथम वैद्य रोगकी परीक्षा (अर्थात् कौनसा रोग है ?) उसका निदान पूर्वरूप और रूपादिके द्वारा निर्द्धारित करना: और वह निर्दिष्ट रोग साध्य है वा असाध्य इत्यादिका निर्धारित करना और फिर इसके पश्चात् औषधि-परीक्षा करे, फिर विधिपूर्वक चिकित्सामें प्रवृत्त होवे ॥ ५१ ॥

यथा विषं यथा शस्त्रं यथाग्निरशनिर्यथा ।
तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतं यथा ॥ ५२ ॥

विना जानी हुई औषधि प्रयोग करनेपर-विष, अस्त्र, अग्नि और वज्रकी समान अनिष्टकारी होती है, किन्तु ओषधिके गुणोंको जानलेनेपर उसका प्रयोग करनेसे वह अमृतकी समान हितकारी होती है ॥५२॥

मानकी परिभाषा ।

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित् ।
अतः प्रयोगकार्य्यार्थं मानमात्रोच्यतेऽधुना ॥ ५३ ॥
षट् सर्षपैर्यवस्त्वेको गुञ्जैका तु यवैस्त्रिभिः ।
माषस्तु पञ्चभिः षडभिस्तथा सप्तभिरष्टभिः ॥ ५४ ॥
दशभिर्द्वादशभिश्च रक्तिभिः षड्विधो मतः ।
चरकस्य तु माषस्तु दशगुञ्जाभिरेव च ॥५५॥
चरकस्य तु चार्द्धेन सुश्रुतस्य तु माषकः ।
माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते ॥ ५६ ॥

टंकः स एव कथितस्तद् द्वयं कोल उच्यते।
क्षुद्रको वटकश्चैव द्रङ्क्षणः स निगद्यते॥ ५७॥
कोलद्वयं तु कर्षः स्यात्स प्रोक्तः पाणिमानिका।
अक्षः पिचुः पाणितलं किञ्चित्पाणिश्च तिन्दुकम् ५८
विडालपदकं चैव तथा षोडषिका मता।
करमध्यो हंसपदं सुवर्णं कवलग्रहः॥ ५९॥
उदुम्बरश्चैव पर्य्यायैः कर्षमेव निगद्यते।
स्यात्कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा॥ ६०॥
शुक्तिभ्याञ्च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका।
प्रकुञ्चः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते॥ ६१॥
पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतञ्च निगद्यते।
प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात्कुडवोऽर्द्धशरावकः॥ ६२॥
अष्टमानञ्च स ज्ञेयः कुडवाभ्याञ्च मानिका।
शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः॥ ६३॥
शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुः प्रस्थैस्तथाढकः।
भाजनं कांस्यपात्रं च चतुष्षष्टिपलश्च सः॥ ६४॥
चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोऽर्मणः।
उन्मानञ्च घटो राशिर्द्रोणपर्य्यायसंज्ञितः॥ ६५॥
द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिशरावकः।
शूर्पाभ्याञ्च भवेद्द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता॥६६
द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः।
चतुःसहस्रपालिका षण्णवत्यधिका च सा॥ ६७॥
पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्त्तितः।
तुला पलशतं ज्ञेयं सर्वत्रैवैष निश्चयः॥ ६८॥
गुञ्जादिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुडवस्थितिः।
द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम्॥ ६९॥

प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः ।
मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित्स्मृतम् ॥७०॥
मृद्वृक्षवेणुलोहादेर्भाण्डं यच्चतुरङ्गुलम् ।
विस्तीर्णञ्च तथोच्चञ्च तन्मानं कुडवं वदेत् ७१ (मा०मा०)

मान (तोल) के विना द्रव्यों (ओषधियों) की युक्ति ठीक नहीं होती; इस कारण प्रयोगोंके कार्यके लिये यहाँ मानपारिभाषा कही जाती है । छः सरसोंका एक जौ होता है। तीन जौकी एक गुंजा होती है । पांच रत्तीका, छः-रत्तीका, सात रत्तीका, आठ रत्तीका, दश रत्तीका अथवा बारह रत्तीका एक मासा होता है । इस प्रकार देशभेदोंसे मासा छः प्रकारका होता है। चरकके मतसे मासा दश रत्तीका होता है और सुश्रुतके मतसे पांच रत्तीका मासा होता हैं । चार मासेका एक शाण होता है । उस शाणको धरण तथा टंक भी कहते हैं । दो शाणका एक कोल होता है । क्षुद्रक, वटक और द्रंक्षण ये कोलके ही नाम हैं । दो कोलका एक कर्ष होता है । पाणिमानिका, अक्ष, पिचु, पाणितल, किञ्चित्पाणि, तिन्दुक, विडालपदक, षोडशिका, करमध्य, हंसपद, सुवर्ण, कवलग्रह और उदुम्बर ये सब कर्षके नाम हैं, दो कर्षका अर्द्धपल होता है । शुक्ति और अष्टमिका ये अर्द्धपलके पर्याय हैं । दो शुक्तियोंका एक पल होता है। मुष्टि, आम्र, चतुर्थिका, प्रकुञ्च, षोडशी और बिल्व ये पलके नाम हैं। दो पलकी एक प्रसृति होती है, प्रसृतिको प्रसृतभी कहते हैं । दो प्रसृतिकी एक अञ्जलि होती है। कुडव, अर्द्धशराव और अष्टमान ये अञ्जलिके नाम हैं । दो अंजलिकी एक मानिका होती है । शराव और अष्टपल ये मानिकाके नाम हैं। दो शरावका एक प्रस्थ होता है चार प्रस्थका एक आढक होता है। भाजन, कांस्यपात्र और चतुःषष्टिपल ये आढकके नाम हैं । चार आढकका एक द्रोण होता है । कलश, नल्वण, अर्मण, उन्मान, घट और राशि ये द्रोणके नाम हैं। दो द्रोणका एक शूर्प होता है । कुम्भ और चतुःषष्टि शरावक ये शूर्पके नाम हैं । दो शूर्पकी एक द्रोणी होती है। वाह और गोणी ये द्रोणीके नाम हैं। चार द्रोणीकी खारी होती है । यह खारी ४०९६ पलकी होती है । २००० पलका एक भार होताहै । और १०० पलकी एक तुला होतीहै-ऐसा सब ग्रन्थोंका निश्चय है ॥

६ सरसोंका	१ जौ
२ जौ या ४ धानकी	१ गुंजा, रत्ती
१० रत्तीका	१ मासा
४ माशेका	१ शाण
२ शाणका	१ कोल
२ कोलका	१ कर्ष
२ कर्षकी	१ शुक्ति
२ शुक्तिका	१ पल
२ पलकी	१ प्रसृति
२ प्रसृतिकां	१ कुडव
२ कुडवका	१ शराव
२ शरावका	१ प्रस्थ
४ प्रस्थका	१ आढक
४ आढकका	१ द्रोण
२ द्रोणका	१ कुंभ
२ कुंभकी	१ गोणी
४ गोणीका	१ खारी
१०० पलकी	१ तुला
२०० पलका	१ भार

गुंजासे लेकर कुडवतक पतले पदार्थोंको, गीले पदार्थोंको और सूखे पदार्थोंको समान भाग लेवे। किन्तु, द्रव (पतले) पदार्थ और गीले पदार्थोंको प्रस्थसे लेकर दूने लेने चाहिये। किंतु तुलाका मान दूना न करे ॥५३-७१॥

ज्वरकी चिकित्सा।

पूर्वरूपे प्रयुञ्जीत ज्वरस्य लघुभोजनम्।
लंघनञ्च यथादोषं विरेकं वातिके पुनः॥ ७२॥
पाययेत् सर्पिरेवाच्छं पैत्तिके तु विरेचनम्।
मृदुप्रच्छर्दनं तद्वत् कफजे तु विधीयते॥
द्वन्द्वजेषु द्वयं कुर्यात् बुद्ध्वा सर्वन्तु सर्वजे॥ ७३॥

ज्वरके पूर्वरूपमें यथा दोषानुसार (अर्थात्-दोषोंकी अल्पता व प्रबलताके अनुसार) लघु आहार, लंघन (उपवास) और विरेचन करावे । वातज्वरके पूर्वरूपमें स्वच्छ घृत पान करावे । पित्तज्वरके पूर्वरूपमें केवल विरेचन (दस्त) ही कराना चाहिये और कफज्वरके पूर्वरूपमें मृदु वमनकारक औषध सेवन करानी चाहिये एवं द्वन्द्वज (अर्थात् वात-पित्तजज्वर, पित्त-कफजज्वर और वात-कफज) ज्वरोंके पूर्वरूपमें दोनों दोषोंकी मिश्रित और सन्निपातज्वरमें त्रि-दोषनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

नवज्वरे दिवास्वप्नस्नानाभ्यङ्गान्नमैथुनम् ।
क्रोधप्रवातव्यायामकषायाँश्च विवर्जयेत् ॥ ७४ ॥

नवीन ज्वरमें दिनमें सोना, स्नान, तैल आदिका मलना, अन्नका आहार, स्त्रीप्रसंग, क्रोध, प्रबल व पूर्वकी तीव्र वायुका सेवन, परिश्रम और क्वाथ इन-को त्यागदेना चाहिये ॥ ७४ ॥

कषायं यः प्रयुञ्जीत नराणां तरुणज्वरे ।
स सुप्तं कृष्णसर्पन्तु कराग्रेण परामृशेत् ॥ ७५ ॥
न कषायं प्रयुञ्जीत नराणां तरुणज्वरे ।
कषायेणाकुलीभूता दोषा जेतुं सुदुष्कराः ॥ ७६ ॥
चतुर्भागावशिष्टस्तु यः षोडशगुणाम्भसा ।
स कषायः कषायः स्यात्स वर्ज्यस्तरुणज्वरे ॥ ७७ ॥

जो वैद्य नवीन ज्वरमें क्वाथ (काढे)को प्रयोग करता है, वह सोतेहुए काले साँपको हाथसे छूकर जगाता है।इसलिये नवीन ज्वरमें कषाय (क्वाथ) कभी नहीं प्रयोग करना चाहिये । कारण, क्वाथके प्रयोगसे दोष आकुलित होकर इतने प्रबल होजाते हैं कि, उनको जीतना अत्यन्त कठिन होजाता है । क्वाथकी एक छटाँक औषधियोंको एक सेर जलमें पकाकर चौथाई भाग जल शेष रहनेपर नीचे उतारकर छानलेवे । इसको कषाय (क्वाथ-पाचन) कहते हैं । यह नवीन ज्वरमें वर्जित है ॥ ७५-७७ ॥

न द्विरद्यान्न पूर्वाह्णे नाभिष्यन्दि कदाचन ।
न नक्तं न गुरु प्रायं भुञ्जीत तरुणज्वरी ॥ ७८ ॥
परिषेकान् प्रदेहाँश्च स्नानं संशोधनानि च ।
दिवास्वप्नं व्यवायंच व्यायामं शिशिरं जलम् ॥७९॥

क्रोधप्रवातभोज्यानि वर्जयेत्तरुणज्वरी।
शोषच्छर्द्दिमदं मूर्च्छा-भ्रमतृष्णावरोचकान् ॥
प्राप्नोत्युपद्रवानेतान् परिषेकादिसेवनात्॥ ८० ॥

नवीन ज्वरवाला रोगी दो वार भोजन न करे। अर्थात् प्रातःकाल और रात्रिको भोजन न करे। एवं कफकारक और गुरुपाकी पदार्थोंका भोजन भी नहीं करे। शरीरपर जलका सेचन, चन्दनादिका प्रलेप, तैलादिकी मालिश, स्नान, संशोधन (वमन, विरेचनादि), दिनमें सोना, स्त्रीसंसर्ग, परिश्रम, शीतल जलपान, क्रोध, वायुका सेवन और अन्नादिका भोजन नवीन ज्वरमें त्यागदेवे। इनका परित्याग न करनेसे मुखशोष, वमन, मद, मूर्च्छा, भ्रम, तृष्णा और अरुचि आदि अनेक उपद्रव उत्पन्न होजाते हैं ॥ ७८-८० ॥

ज्वरे लंघनमेवादावुपादिष्टमृते ज्वरात्।
क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥ ८१ ॥

धातुक्षय, यक्ष्मारोग, निरामवायु, भय, क्रोध, काम, शोक और परिश्रम-इन कारणोंको छोडकर और किसी भी कारणसे ज्वर होनेपर पहले उपवास करना चाहिये ॥ ८१ ॥

आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान् पिधापयेत्।
विदधाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लंघनमाचरेत् ॥ ८२ ॥
अनवस्थितदोषाग्नेर्लंघनं दोषपाचनम्।
ज्वरघ्नं दीपनं कांक्षारुचिलाघवकारकम् ॥ ८३ ॥
प्राणाविरोधिना चैनं लंघने नोपपादयेत्।
बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः ॥ ८४ ॥
तत्तु मारुतक्षुत्तृष्णा मुखशोषभ्रमान्विते।
कार्य्यं न बाले नो वृद्धे न गर्भिण्यां न दुर्बले ॥८५॥
वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गे गात्रलाघवे।
हृदयोद्गारकण्ठास्यशुद्धौ तन्द्राक्लमे गते ॥ ८६ ॥
स्वेदे जाते रुचौ चापि क्षुत्पिपासा सहोदये।
कृतं लंघनमादेश्यं निर्व्यथे चान्तरात्मनि ॥ ८७ ॥

पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्च कासः शोषो मुखस्य च।
क्षुत्प्रणाशोऽरुचिस्तृष्णा दौर्बल्यं श्रोत्रनेत्रयोः॥ ८८॥
मनसः सम्भ्रमोऽभीक्ष्णमूर्द्धवातस्तमो हृदि।
देहाग्निबलहानिश्च लंघनेऽतिकृते भवेत॥ ८९॥

सामदोष (अपक रसयुक्त वात, पित्त, कफ) आमाशयमें स्थित होकर पहले अग्निको मन्द करते हैं। फिर पसीनेको बहानेवाले और रस बहानेवाले और स्रोतोंको बन्द करके ज्वर उत्पन्न करते हैं। इस लिये ज्वरकी प्रथम अवस्थामें लंघन कराने चाहिये। सामदोषोंसे अग्नि मन्द होकर ज्वर होनेपर लंघन करानेसे सामदोषोंका परिपाक, ज्वरका नाश, अग्निकी वृद्धि, भोजनकी इच्छा, भोजनमें रुचि और शरीरमें हल्कापन मालूम होता है। लंघन अत्यन्त हितकर होनेपर भी इस प्रकार कराने चाहिये, जिससे रोगीका शरीर अधिक दुर्बल न होजाय। कारण—आरोग्यताकेलिये ही यह सारा क्रिया क्रम है और बल ही उस आरोग्यताका एकमात्र प्रधान कारण है। अर्थात् बलके विना आरोग्य होना असम्भव है। इसलिये—वातप्रकृतिवाले, क्षुधा तृषासे पीडित, मुखशोष और श्रमयुक्त मनुष्योंको एवं बालक, वृद्ध, गर्भिणी स्त्री और दुर्बल मनुष्यको लंघन नहीं कराने चाहिये। उत्तम प्रकार(जबतक लंघन करानेकी आवश्यकता हो) से लंघन करानेसे मल—मूत्र और अपान वायुका निकलना, शरीरमें लघुता, और हृदयका भारीपन दूर होता है। एवं उद्गार (डकार) शुद्ध आती है, कण्ठ और मुख शुद्ध होता है। विशेषकर तन्द्रा और ग्लानि दूर होती है। पसीना आता है, भोजनमें रुचि उत्पन्न होती है। क्षुधा और तृषा उत्पन्न होती हैं, एवं चित्त प्रसन्न होता है। इन सब लक्षणोंके प्रगट होनेपर फिर ज्वरमें लंघन नहीं कराने चाहिये। कारण—अधिक लंघन करानेसे पर्वभेद, सन्धियोंमें तोडने सरीखी पीडा, अङ्गोंमें पीडा, खाँसी, मुखशोष, भूँखका न लगना, अरुचि, तृषा, नेत्र और कर्णशक्तिका ह्रास, चित्तमें भ्रम, ऊर्ध्ववात, हृदयमें अन्धकार, शरीर, अग्नि और बलकी हानि होती है॥ ८२-८९॥

सद्यो भुक्तस्य वा जाते ज्वरे सन्तर्पणोत्थिते।
वमनं वमनार्हस्य शस्तमित्याह वाग्भटः॥ ९०॥

कफप्रधानानुत्क्लिष्टान् दोषानामाशये स्थितान् ।
बुद्ध्वा ज्वरकरान् काले वम्यानां वमनैर्हरेत् ॥ ९१ ॥
अनुपस्थितदोषाणां वमनं तरुणज्वरे ।
हृद्रोगं श्वासमानाहं मोहश्च कुरुते भृशम् ॥ ९२ ॥
तृष्यते सलिलं चोष्णं दद्याद्वातकफज्वरे ।
मद्योत्थे पैत्तिके वाथ शीतलं तिक्तकैः शृतम् ॥ ९३ ॥
दीपनं पाचनञ्चैव ज्वरघ्नमुभयश्च तत् ।
स्रोतसां शोधनं बल्यं रुचिस्वेदप्रदं शिवम् ॥ ९४ ॥

वाग्भटमें लिखा है कि-यदि भोजनके पश्चात् तत्कालज्वर होजाय वा सन्तर्पण (रसादिधातुओंकी वृद्धि करनेवाले पदार्थोंके) द्वारा ज्वर होजाय तब वमनके योग्य व्यक्तिको वमन करानी चाहिये । किन्तु, रोगी वमनके योग्य है वा नहीं यह बात पहले ही देखलेनी चाहिये । यदि आमाशयमें स्थित दोषोंमें कफकी अधिकता हो और वमनकी इच्छा होनेसे यह दोष मानो अपने आप ही निकल जायँगे-ऐसा मालूम हो तो क्या नवीन ज्वरवाले, क्या जीर्ण ज्वरवाले वमनयोग्य मनुष्यको वमन करानी चाहिये. किन्तु, नवीन ज्वरमें इन सब लक्षणोंके प्रकट न होनेपर वमन करानेसे हृदयरोग, श्वास, आनाह (मल-मूत्रका अवरोध) और अत्यन्त मोह उत्पन्न होता है । वातज्वर, कफज्वर और वातकफज्वरमें-गरम जल पान कराना चाहिये । मद्यपानजन्य ज्वरमें और पित्तज्वरमें-तिक्त ओषधियोंके द्वारा सिद्धकियेहुए जलको शीतल करके पानकरावे । इस प्रकारका जलपान करनेसे अग्निकी वृद्धि, अपक्वरसका परिपाक, ज्वरका नाश, मल-मूत्र और पसीने आदिके द्वारा स्रोतोंकी शुद्धि, बलकी वृद्धि और भोजनमें रुचि होती है एवं पसीना आनेलगता है ९०-९४॥

षडङ्गपानीय ।

मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः ।
शृतशीतं जलं देयं पिपासाज्वरशान्तये ॥ ९५ ॥

तृषा और ज्वरको शान्त करनेकेलिये-नागरमोथा, पित्तपापडा, खस, लालचन्दन, सुगन्धवाला और सोंठ, सब औषधियोंको समानभाग मिलीहुई दो तोले लेकर एकत्र कूटकर ४ सेर जलमें पकावे । जब पककर २ सेर जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर शीतल होजानेपर यह जल रोगीको थोडा २ पानकरावे ॥ ९५ ॥

मुख्यभेषजसम्बन्धो निषिद्धस्तरुणज्वरे ।
तोयपेयादिसंस्कारैर्निर्दोषं तेन भेषजम् ॥ ९६ ॥

तरुण ज्वरमें—एक सप्ताह तक प्रधान औषधि नहीं देनी चाहिये । किन्तु पूर्वोक्त नागरमोथादि छः द्रव्योंके द्वारा सिद्ध कियेहुए अप्रधानौषधरूप षडंग-जलको सेवन करानेमें कोई हानि नहीं है। जल और मण्डादिके संस्कारके लिये जो ओषधियाँ व्यवहारकी जाती हैं, उनको अप्रधान ओषधि कहते हैं। यह अप्रधान ओषधिही प्रथमसप्ताहमें सेवन करायी जासकती हैं । किंतु ज्वर-नाशक मुख्य ओषधियाँ सप्ताहके भीतर नहीं सेवन करानी चाहियें ॥ ९६ ॥

षडङ्गादि साधन ।

यदप्सु श्रृतशीतासु षडङ्गादि प्रयुज्यते ।
कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत्प्रास्थिकेऽम्भसि ॥ ९७ ॥
अर्द्धं श्रृतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयादिसंविधौ ।
लाजपेयां सुखजरां पिप्पलीनागरैः श्रृताम् ॥ ९८ ॥
पिबेज्ज्वरी ज्वरहरां क्षुद्वानल्पाग्निरादितः ।
पेयां वा रक्तशालीनां पार्श्वबस्तिशिरोरुजि ॥ ९९ ॥
श्वदंष्ट्राकण्ठकारीभ्यां सिद्धां ज्वरहरीं पिबेत् ।
षडङ्गपरिभाषैव प्रायः पेयादिसम्मता ॥ १०० ॥

षडंग जल बनाना हो या यूष, यवागू, मंड, पेया आदि बनाना हो तो षडंगादि ओषधियोंको एक कर्ष (दो तोले) लेकर एक प्रस्थ जलमें पकावे । जब पककर आधा जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर शीतल होनेपर पान और पेयादिमें प्रयोगकरे । पीपल और सोंठके क्काथके द्वारा सिद्ध की हुई खीलोंकी पेया ज्वर नाशक है और सहजमें परिपक होनेके कारण मन्दाग्निवाला पुरुष अल्प क्षुधामें भी सेवन कर सकताहै । ज्वररोगीके पसली मूत्राशय और शिरमें पीडा होनेपर गोखरू और कटेरीके द्वारा बनाई हुई लाल शालिधानोंकी पेया सेवन करानी चाहिये । यह पेया ज्वरको दूर करती है। षडंगजलकी परिभाषाके अनुसारही प्राय: पेयादि सिद्धकी जाती है९७-१००

यवागूमुचिताद्भक्ताच्चतुर्भागकृतां वदेत् ॥ १०१ ॥

यवागूकी मात्रा स्वभावसे जितने परिमाणमें चावल खानेका अभ्यास हो, उसके चौथाई भाग कुटे हुए चावलोंके द्वारा मांड, पेया और विलेपी प्रस्तुत करनी चाहिये ॥ १०१ ॥

माँडआदिके लक्षण।

सिक्थकै रहितो मण्डः पेया सिक्थसमन्विता।
यवागूर्बहुसिक्था स्याद्विलेपी विरलद्रवा ॥ २ ॥

जिसमें एक भी सीत न रहे (अर्थात् सब कणगल जायँ) उसे मण्ड कहते हैं। जिसमें कुछ सीत रहजायँ उसको पेया कहते हैं। और जिसमें बहुतसे सीत हों उसको यवागू और जिसमें पतलापन हो, उसको विलेपी कहते हैं॥२॥

अन्नादिसाधन।

अन्नं पञ्चगुणे साध्यं विलेपी च चतुर्गुणे।
मण्डश्चतुर्दशगुणे यवागूः षड्गुणेऽम्भसि ॥
अष्टादशगुणे तोये यूषः शार्ङ्गधरेरितः ॥ ३ ॥

भात सिद्ध करना हो तो चावलोंको पचगुने जलमें पकावे। विलेपीको चौगुने जलमें, मांडको चौदह गुने जलमें, यवागूको ६ गुने जलमें और यूषको १८ गुने जलमें पकावे. ऐसा शार्ङ्गधरने कहा है ॥ ३ ॥

ज्वरमें पथ्य।

श्रमोपवासानिलजे हितो नित्यं रसौदनः।
मुद्गयूषौदनश्चापि देयः कफसमन्विते ॥ ४ ॥
स एव सितया युक्तः शीतपित्तज्वरे हितः।
रक्तशाल्यादयः शस्ताः पुराणाः षष्ठिकैः सह ॥ ५ ॥
यवाग्वोदनलाजार्थं ज्वरितानां ज्वरापहाः।
मुद्गान्मसूराँश्चणकान् कुलित्थान् समकुष्टकान् ॥ ६ ॥
आहारकाले यूषार्थं ज्वरिताय प्रदापयेत।
पटोलपत्रं वार्त्ताकुं कुलकं कारवेल्लकम् ॥ ७ ॥
कर्कोटकं पर्पटकं गोजिह्वां बालमूलकम्।
पत्रं गुडूच्याः शाकार्थे ज्वरिताय प्रदापयेत् ॥ ८ ॥

परिश्रम, लंघन और वायुके प्रकोपसे उत्पन्नहुए ज्वरमें मांसरसके साथ भात खाना हितकारी है। कफज्वरमें-मूँगके यूषके साथ और पित्तज्वरमें-भातमें मिश्रीमिलकर ठंडे मूँगके यूषके साथ सेवन करे. ज्वररोगीको पुराने लाल शालिधान और साँठीआदि धानोंके द्वारा प्रस्तुत की हुई यवागू, भात और

खीलें हितकर और ज्वरनाशकहैं । मूँग, मसूर, चना, कुलथी और मोठ-आदिकायूष और परवल, बैंगन, मरसा, करेला, ककोडा, पित्तपापडा, गोजिया कवीमूली और गिलोयके पत्ते आदिका शाक ज्वररोगीको देवे ॥ ४-८ ॥

ज्वरितो हितमश्नीयाद् यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत् ।
अन्नकाले ह्यभुञ्जानः क्षीयते म्रियतेऽपिवा ॥ ९ ॥

सातत्याद् स्वाद्वभावाद्वा पथ्यं द्वेष्यत्वमागतम् ।
कल्पनाविधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत्पुनः ॥ ११० ॥

ज्वररोगीको, भोजनमें अरुचि होनेपर भी हितकर पदार्थोंका भोजन करावे कारण-जो रोगी नियमित समयमें हितकर भोजन नहीं करता, उसका शरीर क्रमशः क्षीण होजाता है अथवा मृत्यु होजाती है । यदि निरन्तर एक ही प्रकारके पदार्थोंके आहारसे वा पदार्थोंके स्वादु न होनेसे रोगीको भोजनमें अरुचि हो तो उसकी रुचिके अनुसार नानाप्रकारके पथ्योंकी कल्पना करके दे ॥ ९ ॥ ११० ॥

ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा दिनान्ते भोजयेल्लघु ।
श्लेष्मक्षये विवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा ॥ ११ ॥

ज्वरहोनेपर अथवा ज्वरके उतरजानेपर सायंकालमें रोगीको हलका भोजन देनाचाहिये क्योंकि उस समय कफके क्षीण होनेसे अग्नि-दीपन और बलवती होती है ॥ ११ ॥

गुर्वभिष्यन्द्यकाले च ज्वरी नाद्यात्कथंचन ।
नहि तस्याहितं भुक्तमायुषे वा सुखाय वा ॥ १२ ॥

ज्वररोगी-भारी और अभिष्यान्दि (शरीरके स्रोतोंको बन्द करनेवाले) पदार्थोंका अथवा असमयमें कदापि भोजन न करे । क्योंकि अहितकर पदार्थोंका भोजन करनेसे आयु और सुखका नाश होताहै ॥ १२ ॥

लंघनं स्वेदनं कालो यवागूस्तिक्तको रसः ।
पाचनान्यविपक्वानां दोषाणां तरुणज्वरे ॥ १३ ॥

नवीन ज्वरमें-लंघन, स्वेदन (शरीरको बफारा देकर पसीना निकालना), काल (आठ दिन), यवागू (मांड, पेया और विलेपी) और तिक्त पदार्थोंका रस ये सब अपक्वादि दोषोंको पचानेवाले हैं ॥ १३ ॥

ज्वरकी तीन अवस्था ।

आसप्तरात्रं तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः ।
मध्यं द्वादशरात्रन्तु पुराणमत उत्तरम् ॥ १४ ॥

ज्वर तीन प्रकारका होता है । जैसे–तरुणज्वर, मध्यमज्वर और पुरातनज्वर, ज्वरोत्पत्तिसे लेकर सात दिनतक तरुणज्वर, आठवें दिनसे लेकर बारह दिनतक मध्यम ज्वर और १२ वें दिनसे लेकर आगेको जो ज्वर स्थायीरूपसे रहताहै, उसको पुरातन ज्वर कहते हैं ॥ १४ ॥

जीर्णज्वरके लक्षण ।

त्रिसप्ताहव्यतीतस्तु ज्वरो यस्तनुतां गतः ।
प्लीहाग्निसादं कुरुते स जीर्णज्वर उच्यते ॥ १५ ॥

तीन सप्ताह (२१ दिन) बीतनेपर जब ज्वरका वेग कम होकर प्लीहा (तिल्ली) की वृद्धि और मन्दाग्नि होजाता है तब उसे जीर्णज्वर कहते हैं १५

ज्वररोगीको कषाय पिलानेका नियम ।

ज्वरितं षडहेऽतीते लघ्वन्नप्रतिभोजितम् ।
पाचनं शमनीयं वा कषायं पाययेत्तु तम् ॥ १६ ॥
सप्ताहात्परतोऽस्तब्धे सामे स्यात्पाचनं ज्वरे ।
निरामे शमनं स्तब्धे सामे नौषधमाचरेत् ॥ १७ ॥

ज्वरके ६ दिन बीत जानेपर सातवें दिन रोगीको हलका भोजन (यवागू आदि) कराकर आठवें दिन पाचन व शमनरूप कषाय पान करावे । किन्तु सात दिनके पश्चात् यदि 'लाला प्रसेकादि' आमज्वरके लक्षण हों और मलमूत्रादिका विबन्ध न हो तो शरीर शुद्धिके लिये पाचन ओषधि सेवन करावे । और निराम अवस्थामें शमनकारक ओषधि प्रयोग करे । यदि रस आमावस्थामें हो और मलमूत्रका विबन्ध हो सप्ताहके पश्चात् तो पाचन या शमन ओषधियोंका प्रयोग न करे ॥ १६ ॥ १७ ॥

आमज्वरके लक्षण ।

लालाप्रसेको हृल्लासहृदयाशुद्ध्यरोचकाः ।
तन्द्रालस्यविपाकास्यवैरूप्यं गुरुगात्रता ॥ १८ ॥
क्षुन्नाशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवान् ज्वरः ।
आमज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ १९ ॥

भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो ज्वलयति ज्वरम्।
मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु च ॥
पक्वं दोषं विजानीयाज्ज्वरे देयं तदौषधम् ॥ १२० ॥

मुखसे लारका गिरना, उबकाई आना, हृदयपर बोझसा मालूम होना, अरुचि, तन्द्रा, आलस्य, भोजनका न पचना, मुखमें विरसता, शरीरमें भारीपन मालूम होना, भूँख न लगना, मूत्रकी अधिकता, शरीरमें जडता और ज्वरकी प्रबलता ये सब आमज्वरके लक्षण हैं। इन लक्षणोंसे युक्त आमज्वरमें औषधिका प्रयोग नहीं करना चाहिये। कारण, आमज्वरमें आमरसका परिपाक न होनेपर औषधि प्रयोग करनेसे ज्वरका वेग और भी बढजाता है और आमदोषके पचजानेपर ज्वरकी कभी शरीरमें लघुता, वात-पित्त और कफकी समता और मलमूत्रादिकी प्रवृत्ति इन सब लक्षणोंके प्रकट होनेपर औषध देनी चाहिये ॥ १८-१२० ॥

कषायादि औषधियोंके सेवनका निषेध।

पीताम्बुर्लङ्घितः क्षीणोऽजीर्णी भुक्तः पिपासितः।
न पिबेदौषधं जन्तुः संशोधनमथेतरत् ॥ २१ ॥

अभुक्तअवस्थामें औषधसेवनके गुण।

वीर्य्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं
हन्यात्तदामयमसंशयमाशु चैव।
तद्बालवृद्धयुवतीमृदुभिश्च पीतं
ग्लानिं परां नयति चाशु बलक्षयं च ॥ २२ ॥
शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हिंस्या-
दन्नावृत्तं न च मुहुर्वदनान्निरेति।
प्राग्भुक्तसेवितमथौषधमेतदेव
दद्याच्च वृद्धशिशुभीरुवराङ्गनाभ्यः ॥ २३ ॥
औषधशेषे भुक्तं तदौषधं सशेषेऽन्ने।
न करोति गदोपशमं प्रकोपयत्यन्यरोगाँश्च॥२४॥

जलपान करनेके पश्चात्, उपवासके अन्तमें, क्षीणावस्थामें, अजीर्ण रोगमें भोजन करनेके पश्चात् और प्यासके समय मनुष्यको संशोधन (वमन, विरे-

चन आदि) अथवा किसी प्रकारकी ओषधि सेवन नहीं करनी चाहिये । अन्न-हीन (अर्थात् खालीपेट सेवनकीहुई) औषध अधिक वीर्यवाली होतीहै वह रोगको शीघ्रही नष्ट करती है । किन्तु बालक, वृद्ध स्त्री और कोमल प्रकृतिवाले मनुष्योंको विना भोजन (अर्थात् खाली पेट) सेवन करनेसे उनके शरीरमें ग्लानि होती है और बलका क्षय होताहै । इसलिये इन सबको भोजनसे कुछ समय पहले औषध सेवन करानी चाहिये । कारण, वह औषध आहारसे ढकजानेसे कारण मुखसे बारबार नहीं निकलती, बलकी हानि भी नहीं करती और शीघ्र पचजाती है । औषधके न पचने पर आहार करनेसे अथवा भोजनके विना पचे औषध सेवन करनेमे औषध रोगको नष्ट नहीं करती, किन्तु अन्यान्य रोगोंको उत्पन्न करदेती है ॥ २१-२४ ॥

जीर्णाजीर्ण-औषधिके लक्षण ।

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णासुमनस्कता ।
लघुत्वमिन्द्रियोद्गारशुद्धिजीर्णौषधाकृतिः ॥ २५ ॥
क्लमो दाहोऽङ्गसदनं भ्रमोमूर्च्छाशिरोरुजा ।
अरतिर्बलहानिश्च सावशेषौषधाकृतिः ॥ २६ ॥

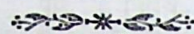
औषधके उत्तमप्रकारसे परिपक्व होजानेपर ये लक्षण होते हैं । वायुकी अनु-लोमता (अर्थात् वायुका अपने मार्गमें स्वाभाविक रूपसे गमन करना) शरीरका स्वस्थ होना, क्षुधा और तृषाका लगना, मनमें प्रसन्नता इन्द्रियोंमें हल्कापन और डकारका शुद्ध आना । और औषधिके न पचनेपर शरीरमें ग्लानि, दाह, शिथिलता, भ्रम, मूर्च्छा, शिरमें पीडा, मनमें खेद, अस्वस्थता और बलका क्षय होताहै ॥ २५ ॥ २६ ॥

मात्राका निरूपण ।

मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमग्निं बलं वयः ।
व्याधिं द्रव्यञ्च कोष्ठञ्च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥ २७ ॥

ओषधिकी मात्राका कोई नियम स्थिर नहीं है । अतएव दोष (वात-पित्त-कफ) जठराग्नि, बल, अवस्था, रोग, औषध (उष्णवीर्य, मध्यवीर्य और मृदुवीर्य आदि), और कोष्ठ इन सब बातोंको उत्तमप्रकारसे विचारकर औष-धिकी मात्रा निर्द्धारित करनी चाहिये । मात्राकी न्यूनाधिकता होनेसे रोगके दूर होनेमें व्याघात होताहै ॥ २७ ॥

सामान्य ज्वरकी चिकित्सा ।



धान्य-पटोलक्काथ ।

दीपनं कफविच्छेदि वातपित्तानुलोमनम् ।
ज्वरघ्नं पाचनं भेदि शृतं धान्यपटोलयोः ॥ २८ ॥

धनियाँ और पर वलका काथ-ज्वरनाशक, आमादि दोषोंको पचानेवाला, भेदक (दस्तावर) अग्निप्रदीपक, कफनाशक और वात-पित्तका अनुलोमन करनेवाला है । इस लिये यह काथ सम्पूर्ण सामान्य ज्वरोंमें दिया जासकता है ॥ २८ ॥

वृश्चीरादि-क्षीरपान ।

वृश्चीरबिल्ववर्षाभूपयः सोदकमेव च ।
पचेत् क्षीरावशेषन्तु पेयं सर्वज्वरापहम् ॥ २९ ॥

सफेद पुनर्नवा, वेलकी छाल और लाल पुनर्नवा-सबको समान भाग और सब मिलाकर २ तोले लेकर आधपाव दूध और आधसेर जलमें मिलाकर पकावे । जब पककर दूधमात्र शेष रहजाय तब उसे उतारकर रोगीको पान करावे । इससे सर्व प्रकारका ज्वर दूर होता है ॥ २९ ॥

गुडूच्यादि ।

गुडूचीधान्यकारिष्टः पद्मकं रक्तचन्दनम् ।
एष सर्वान् ज्वरान् हन्ति गुडूच्यादिस्तु दीपनः ।
हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनः ॥ १३० ॥

गिलोय, धनियाँ, नीमकी छाल, पद्माख और लालचन्दन इन सब औषधियोंको समान भाग लकर यथाविधिसे बनाया हुआ काथ- सर्व प्रकारके ज्वर, उबकाई, अरुचि, वमन, प्यास और दाहको नष्ट करता है । गुडूच्यादि काथ अग्नि प्रदीपक है ॥ १३० ॥

आरग्वधादि ।

आरग्वधग्रन्थिकमुस्ततिक्ताहरीतकीभिः क्वथितः कषायः ।
सामे सशूले कफवातपित्ते ज्वरे हितो दीपनपाचनश्च ॥ ३१ ॥

अमलतास, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी और हरड इनका यथाविधि बनाया हुआ काथ-आमदोष शल और सर्वाङ्ग-पीडासे युक्त त्रिदोषज ज्वरमें पान करना चाहिये । यह अग्नि प्रदीपक और पाकच है ॥ ३१ ॥

पथ्यादि।

पथ्यारग्वधतिक्तात्रिवृदामलकैः श्रृतं तोयम्।
पाचनं सारकमुक्तं मुनिभिर्जीर्णज्वरे सामे ॥ ३२ ॥

हरड, अमलतास, कुटकी, निसोत और आमले इनका बनाया हुआ काथ आमयुक्त जीर्णज्वरमें पाचक और सारक कहागया है ॥ ३२ ॥

मुस्तपर्पटकादि।

पक्त्वा ज्वरे कषायं वा मुस्तपर्पटकं पिबेत्।
सनागरं पर्पटकं पिबेद्वा सदुरालभम् ॥ ३३ ॥

नागरमोथा, पित्तपापडा अथवा सोंठ, पित्तपापडा और धमासा अथवा पित्तपापडा इन तीनोंमेंसे किसी एक काथको बनाकर पीनेसे ज्वर नष्ट होता है ॥ ३३ ॥

नागरादि।

नागरं देवकाष्ठञ्च धन्याकं बृहतीद्वयम्।
देयं पाचनकं पूर्वं ज्वरिताय ज्वरापहम् ॥ ३४ ॥

सोंठ, देवदारु, धानियाँ, बडी कटेरी और कटेरी इनका काथ—सर्वप्रकारके नवीन ज्वरवाले रोगीको पानकरानेसे ज्वर दूर होता है ॥ ३४ ॥

मुस्तादि।

मुस्तपर्पटकोदीच्यच्छत्राख्योशीरचन्दनैः।
श्रृतं शीतं जलं दद्यात्तृड्दाहज्वरशान्तये ॥ ३५ ॥

तृषा, दाह और ज्वरको शान्त करनेके लिये नागरमोथा, पित्तपापडा, सुगन्धवाला, धनियाँ, खस और लालचन्दन इनका काथ बनाकर शीतल करके रोगीको पान करावे ॥ ३५ ॥

नागरादि।

नागरं देवकाष्ठञ्च ध्यामकं बृहतीद्वयम्।
दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरितेभ्यो ज्वरापहम् ॥ ३६ ॥

ज्वररोगीको सोंठ, देवदारु, लामज्जक तृण (अभावमें खस) बडी कटेरी और कटेरी इनका काथ सेवन करानेसे ज्वर नष्ट होता है ॥ ३६ ॥

किरात तिक्तकादि ।

किराततिक्तकं मुस्तं गुडूची विश्वभेषजम् ।
पाठामुशीरं सोदीच्यं पिबेद्वा ज्वरशान्तये ॥ ३७ ॥

चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, पाढ, खस और सुगन्धवाला इनका क्वाथ पान करनेसे सम्पूर्ण ज्वर शान्त होते हैं ॥ ३७ ॥

वातज्वरकी चिकित्सा ।

बिल्वादि ।

बिल्वादिपञ्चमूलस्य क्वाथः स्याद्वातिके ज्वरे ।
पाचनं पिप्पलीमूलं गुडूची विश्वजोऽथवा ॥ ३८ ॥

वातज्वरमें-बेल, शोनापाठा, अरलू कुम्भेर, पाढल और अरणी इनकी छालका क्वाथ अथवा पीपलामूल, गिलोय और सोंठ इनका यथाविधि क्वाथ बनाकर देना चाहिये ॥ ३८ ॥

भूनिम्बादि क्वाथ ।

भूनिम्बमुस्ताजलकण्टकारीद्वयामृतागोक्षुरनागराणाम् ।
सशालपर्णीद्वयपौष्कराणां क्वाथं पिबेद्वातभयज्वरार्त्तः ॥३९

वातज्वरसे पीडित रोगी चिरायता, नागरमोथा, सुगन्धवाला, कटेरी, बडी कटेरी, गिलोय,गोखरू, सोंठ, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी और पोहकर मूल इन औषधियोंका क्वाथ बनाकर पान करे तो वातसम्बन्धी ज्वर शमन होते हैं ३९

विश्वादि ।

विश्वामृताग्रंथिकसिद्धतोयं मरुज्ज्वरः स्यात्पिबतः कुतोयम्
क्वाथोऽथकुस्तुम्बुरुदेवदारुः क्षुद्रौषधैः पाचनमत्रचारु ॥४०॥

सोंठ, गिलोय और पीपलामूल इनका क्वाथ पान करनेसे अथवा धनियाँ, देवदारु, कटेरी और सोंठ इनका क्वाथ पान करनेसे वातज्वर नष्ट होताहै ॥४०

पञ्चमूल्यादि ।

पञ्चमूलीबलारास्नाकुलत्थैः सहपौष्करैः ।
क्वाथो हन्याच्छिरःकम्पं पर्वभेदं मरुज्ज्वरम् ॥ ४१ ॥

बृहत् पञ्चमूल (बेल, अरलू, कुम्भेर, पाढल और अरणी), खिरैंटी, रायसन, कुलथी और पौहकरमूल-इन औषधियोंका यथाविधि सिद्ध किया हुआ क्वाथ पान करनेसे शिरःकम्प, सन्धिस्थानोंकी पीडा और वातज्वर नाश होता है ॥ ४१ ॥

कणादि।

कणारसोनामृतवल्लिविश्वानिदिग्धिकासिन्दुकभूमिनिंबैः।
समुस्तकैराचरितः कषायो हिताशिनां हन्ति गदानिमांस्तु॥
ज्वरं मरुद्दुष्टि-समुद्भवश्च बलासजश्चानलमन्दताश्च।
कण्ठावरोधं हृदयावरोधं स्वेदश्च हिक्काश्च हिमत्वमोहान्॥४३॥

पीपल, लहसन, गिलोय, सोंठ, कटेरी, सिम्हालू, चिरायता और नागरमोथा—इनका विधिपूर्वक सिद्ध कियाहुआ काथ—पथ्य पदार्थोंका भोजनकरनेवाले मनुष्योंके वातज्वर, कफज्वर, अग्निकी मन्दता, कण्ठ और हृदयका अवरोध, अधिक पसीना आना, हिचकी, शरीरकी शीतलता और मूर्च्छा आदि रोगोंको दूर करताहै॥ ४२॥ ४३॥

शालपर्णी-आदि।

शालपर्णी बला द्राक्षा गुडूची सारिवा तथा।
आसां क्वाथं पिबेत्कोष्णं तीव्रवातज्वरच्छिदम्॥ ४४॥

शालपर्णी, खिरैंटी, दाख, गिलोय और सारिवा (अनन्तमूल) इनके मन्दोष्ण काथको पान करनेसे तीव्रवातज्वर नष्ट होता है॥ ४४॥

शतपुष्पादि।

शतपुष्पा वचा कुष्ठं देवदारु हरेणुका।
कुस्तुम्बुरूणि नलदं मुस्तश्चैवाशु साधयेत्॥
क्षौद्रेण सितया चापि युक्तः क्वाथोऽनिलात्मके॥ ४५॥

सौंफ, वच, कूठ, देवदारु, रेणुका, धनियाँ, खस और नागरमोथा इनके काथको शहद और मिश्रीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे वातज्वरमें शीघ्रलाभ होता है॥ ४५॥

किराताादि।

किराताब्दामृतोदीच्यबृहतीद्वयगोक्षुरैः।
सस्थिराकलसीविश्वैः क्वाथो वातज्वरापहः॥ ४६॥

चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सुगन्धवाला, कटेरी, बडी कटेरी, गोखुरू, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी और सोंठ इनका काथ वातज्वर नाशक है॥ ४६॥

पिप्पल्यादि-काथ।

पिप्पलीसारिवाद्राक्षाशतपुष्पाहरेणुभिः।
कृतः कषायः सगुडो हन्यात् श्वसनजं ज्वरम्॥४७॥

पीपल, अनन्तमूल, दाख, सौंफ और रेणुका इनके काथमें पुरानागुड डालकर पान करनेसे वातज्वर दूर होता है ॥ ४७ ॥

बृहद्गुडूच्यादि ।

गुडूची चन्दनं पद्मनागरेन्द्रयवासकम् ।
अभयारग्वधोदीच्यपाठाधान्याब्दरोहिणी ॥ ४८ ॥
कषायं पाययेदेतत् पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ।
कासश्वासज्वरान् हन्ति पिपासादाहनाशनम् ।
विण्मूत्रानिलविष्टम्भे त्रिदोषप्रभवेऽपि च ॥ ४९ ॥

गिलोय, लालचन्दन, पद्माख, सोंठ, इन्द्रजौ, जवासा, हरड, अमलतास, सुगन्धवाला, पाठ, धनियाँ, नागरमोथा और कुटकी इनका काथ उत्तम प्रकारसे बनाकर उसमें जरासा पीपलका चूर्ण डालकर पान करनेसे खाँसी, श्वास, ज्वर, प्यास, दाह और मल-मूत्र तथा वायुका अवरोध आदि विकार नष्ट होते हैं। यह काथ सन्निपात ज्वरमें भी प्रयोग कियाजाता है ॥४८॥४९॥

गुडूच्यादि ।

गुडूची सारिवा द्राक्षा शतपुष्पा पुनर्नवा ।
सगुडोऽयं कषायः स्याद्वातज्वरविनाशनः ॥ १५० ॥

गिलोय, अनन्तमूल, दाख, सौंफ और पुनर्नवा इनके काथमें पुराना गुड डालकर पान करनेसे वातज्वर दूर होता है ॥ १५० ॥

द्राक्षादि ।

द्राक्षा-गुडूचीकाश्मर्य्य-त्रायमाणाःसशारिवाः ।
निष्क्वाथ्य सगुडं क्वाथं पिबेद्वातज्वरापहम् ॥ ५१ ॥

दाख, गिलोय, कुम्भेर त्रायमाण और सारिवा इनका काथ बनाकर उसमें गुड डालकर सेवन करनेसे वातज्वर नष्ट होता है ॥ ५१ ॥

रास्नादि ।

रास्ना वृक्षादनी दारु सरलं सैलबालुकम् ।
कोष्णं सगुडसर्पिष्कं पिबेद्वातज्वरापहम् ॥ ५२ ॥

रायसन, बँदा, देवदारु, धूपसरल, और एलवालुक इनके मन्दोष्ण काथमें गुड और घृत मिलाकर पान करनेसे वातज्वर दूर होता है ॥ ५२ ॥

गुडूच्यादि ।

गुडूची शतपुष्पा च प्लक्षो रास्ना पुनर्नवा ।
त्रायमाणा-कषायश्च गुडैर्वातज्वरापहः ॥ ५३ ॥

गिलोय, सोंफ, पाखर, रास्ना, पुनर्नवा और त्रायमाण इनके काथमें गुड डालकर पान करनेसे वातज्वर नष्ट होता है ॥ ५३ ॥

दशमूलादि ।

श्रीफलः सर्वतोभद्रः कामदूती च श्योनकः ।
तर्कारी गोक्षुरः क्षुद्रा बृहती कलसी स्थिरा ॥ ५४ ॥
रास्ना कणा कणामूलं कुष्ठं शुण्ठी किरातकः ।
मुस्ता बलामृता बाला द्राक्षायासः शताह्विका ५५॥
एषां क्वाथो निहन्त्येव प्रभञ्जनकृतं ज्वरम् ।
सोपद्रवश्च योगोऽयं सर्वयोगवरः स्मृतः ॥ ५६ ॥

बेलकी छाल, कुम्भेर, पाढल, अरलू, अरणी, गोखुरू, कटेरी, बडी कटेरी, पृष्ठपर्णी, शालपर्णी, रास्ना, पीपल, पीपलामूल, कूठ, सोंठ, चिरायता, नागरमोथा, खिरैंटी, गिलोय, सुगन्धबाला, दाख, जवासा और सोया, इन औषधियोंका काथ बनाकर पान करनेसे सम्पूर्ण उपद्रवोंसहित वातज्वर नाश होता है । यह योगसमस्त योगोंमें श्रेष्ठ है ॥ ५४-५६ ॥

पित्तज्वरकी चिकित्सा ।

तिक्तादि ।

तिक्तामुस्तायवैः पाठाकट्फलाभ्यां सहोदकम् ।
पक्वं सशर्करं पीतं पाचनं पैत्तिके ज्वरे ॥ ५७ ॥

पित्तज्वरमें-कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, पाढ, कायफल, और सुगन्धबाला इनके काथमें मिश्री मिलाकर पानकरे यह काथ दोष पचानेवाला है ५७

कट्फलादि ।

कट्फलेन्द्रयवाम्बष्ठातिक्तामुस्तैः शृतं जलम् ।
पाचनं दशमेऽह्नि स्यात्तीव्रपित्तज्वरे नृणाम् ॥ ५८ ॥

तीव्र पित्तज्वरमें-दोषोंके परिपाकके लिये दशवें दिन कायफल, इन्द्रजौ, पाढ, कुटकी और नागरमोथा इनके द्वारा बनायाहुआ काथ रोगीको पान करानेसे विशेष लाभ होता है ॥ ५८ ॥

पर्प्पटादि ।

एकः पर्प्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः ।
किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोदीच्यनागरैः ॥ ५९ ॥

केवल इकले पित्तपापडेका काथ ही पित्तज्वरको नष्ट करनेके लिये उत्कृष्ट औषध है । यदि इसके साथ लालचन्दन, सुगन्धबाला और सोंठ-इनका काथ बनाकर पान करायाजाय तो क्या ही कहना है ॥ ५९ ॥

द्राक्षादि ।

द्राक्षा हरीतकी मुस्ता कटुकाकृतमालकः ।
पर्पटश्च कृतः क्वाथः एषां पित्तज्वरापहः ॥ १६० ॥
मुखशोषप्रलापान्तर्दाहमूर्च्छाभ्रमप्रणुत् ।
पिपासारक्तपित्तानां शमनो भेदनो मतः ॥ ६१ ॥

दाख, हरड, नागरमोथा, कुटकी, अमलतास और पित्तपापडा-इनका बनायाहुआ काथ-पित्तज्वर, मुखशोष, प्रलाप, दाह, मूर्च्छा, भ्रम और तृषाको दूर करता है। यह रक्तपित्तको शान्त करनेवाला और भेदक है ॥ १६० ॥६१॥

पटोलादि ।

पटोलयवधन्याकमधुकं मधुसंयुतम् ।
हन्ति पित्तज्वरं दाहं तृष्णाञ्चातिप्रमाथिनीम् ॥ ६२ ॥

परबल, इन्द्रजौ, धनियाँ और मुलैठी इनके काथमें शहद डालकर पान करनेसे पित्तज्वर, दाह और अतिप्रबल तृषा नष्ट होती है ॥ ६२ ॥

ह्रीबेरादि ।

ह्रीबेरचन्दनोशीरघनपर्पटसाधितम् ।
दद्यात्तु शीतलं वारि तृड्वृद्धिज्वरदाहनुत् ॥ ६३ ॥

सुगन्धवाला, लालचन्दन, खस, नागरमोथा और पित्तपापडा इनका काथ बनाकर शीतल करके पीनेसे पित्तज्वर, दाह और अधिक तृषा शान्त होती है६३

कलिंगादि ।

कलिङ्गं कट्फलं मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी ।
पक्वं सशर्करं पीतं पाचनं पैत्तिके ज्वरे ॥ ६४ ॥

पैत्तिकज्वरमें-इन्द्रजौ, कायफल, नागरमोथा, पाढ, और कुटकी इनके काथमें मिश्री मिलाकर पान करनेसे दोषोंका परिपाक होता है ॥ ६४ ॥

विश्वादि।

विश्वाम्बुपर्पटोशीरघनचन्दनसाधितम्।
दद्यात्सुशीतलं वारि तृड्च्छर्दिज्वरदाहनुत् ॥ ६५ ॥

सोंठ, सुगन्धवाला, पित्तपापडा, खस, नागरमोथा और लालचन्दन-इनका शीतल क्वाथ पान करनेसे तृषा, वमन, पित्तज्वर और दाह दूर होती है ॥६५॥

गुडूच्यादि।

गुडूची भूमिनिम्बश्च बालं वीरणमूलकम।
लघुमुस्तं त्रिवृद्धात्री द्राक्षा वासा च पर्पटः ॥ ६६ ॥
एषां क्वाथो हरत्येव ज्वरं पित्तकृतं द्रुतम्।
सोपद्रवमपि प्रातर्निपीतो मधुना सह ॥ ६७ ॥

गिलोय, चिरायता, सुगन्धवाला, खस, अगर, नागरमोथा, निसोत, आमले, दाख, अडूसा और पित्तपापडा, इनके काथमें शहदके मिलाकर प्रातःकाल पान करनेसे सम्पूर्ण उपद्रवोंसहित पित्तज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥६६॥ ६७॥

किराताादि।

किरातामृतधन्याकचन्दनोशीरपर्पटैः।
सपद्मकैः कृतः क्वाथो हन्ति पित्तभवं ज्वरम् ॥ ६८ ॥

चिरायता, गिलोय, धनियाँ, लालचन्दन, खस, पित्तपापडा और पद्माख इनके द्वारा बनायाहुआ क्वाथ पान करनेसे पित्तजज्वर नाश होता है ॥ ६८॥

महाद्राक्षादि।

द्राक्षाचन्दनपद्मानि मुस्ता तिक्तामृतापि च।
धात्री बालमुशीरञ्च लोध्रेन्द्रयवपर्पटाः ॥ ६९ ॥
परूषकं प्रियंगुश्च यवासो वासकस्तथा।
मधुकं कुलकञ्चापि किरातो धान्यकं तथा ॥ १७० ॥
एषां क्वाथो निहन्त्येव ज्वरं पित्तसमुत्थितम्।
तृष्णां दाहं प्रलापञ्च रक्तपित्तं भ्रमं क्लमम् ॥ ७१ ॥
मूर्च्छां छर्दिं तथा शूलं मुखशोषमरोचकम्।
कासं श्वासञ्च हल्लासं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ७२ ॥

दाख, लालचन्दन, पद्माख, नागरमोथा, कुटकी, गिलोय, आमले, सुगन्धवाला, खस, लोध, इन्द्रजौ, पित्तपापडा, फालसे, फूलप्रियंगु, जवासा, अडूसा,

मुलैठी, पटोलपत्र, चिरायता और धनियाँ इनका विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर पान करनेसे पित्तज्वर, तृषा, दाह, प्रलाप, रक्तपित्त, भ्रम, क्लम, मूर्च्छा, वमन, शूल, मुखशोष, अरुचि, खाँसी, श्वास, उवकाई इत्यादि उपद्रव निश्चय दूर होते हैं ॥ ६९-७२ ॥

यवपटोल।

पटोलयवनिष्क्वाथो मधुना मधुरीकृतः।
तीव्रपित्तज्वरामर्दी पानात्तृड्दाहनाशनः ॥ ७३ ॥

परवल और जौ दोनोंको २ तोले लेकर आधसेर जलमें पकावे। जब पकते२ आधपाव जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें ६ मासे सहद डालकर पान करनेसे दारुण पित्तज्वर, तृषा और दाह नाश होती है ॥ ७३॥

नागरादि।

नागरोशीरमुस्ता च चन्दनं कटुरोहिणी।
धान्यकानां क्वाथ एव पित्तज्वरविनाशनः ॥ ७४ ॥

सोंठ, खस, नागरमोथा, लालचन्दन, कुटकी और धनियाँ इनका क्वाथ सेवन करनेसे पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ ७४ ॥

अमृतादि।

अमृतापर्पटाधात्रीक्वाथः पित्तज्वरं हरेत्।
सितारग्वधयोर्वापि काश्मर्य्यस्याथवा पुनः ॥ ७५ ॥
द्राक्षा पर्पटकं तिक्ता पथ्यारग्वधमुस्तकैः।
क्वाथस्तृष्णाभ्रमो दाहयुक्तपित्तज्वरापहः ॥ ७६ ॥

(१) गिलोय, पित्तपापडा और आमले, (२) अमलतास, कुम्भेर, मिश्री (३) अथवा दाख, पित्तपापडा, कुटकी, हरड, अमलतास और नागरमोथा। इन तीनों प्रयोगोंमेंसे किसी एकका क्वाथ बनाकर सेवन करनेसे तृषा, भ्रम, दाह आदि उपद्रवोंसहित पित्तज्वर दूर होता है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

विदारिकादि।

विदारिकालोध्रकपित्थकानां
स्यान्मातुलुंगस्य च दाडिमानाम्।
यथानुभावेन च मूलपत्रं
निहन्ति तृड्दाहसमूर्च्छनञ्च ॥ ७७ ॥

विदारीकन्द, लोध, कैथ, बिजौरानींबू और अनार इनकी जड और पत्तोंका यथाविधि काथ बनाकर सेवन करनेसे पित्तज्वर, तृषा, दाह और मूर्च्छा नष्ट होती है ॥ ७७ ॥

धान्यशर्करा ।

व्युषितं धन्याकजलं प्रातः पीतं सशर्करम् ।
पुंसामन्तर्दाहं शमयत्यचिराद्द् दूरमरूढमपि ॥ ७८ ॥

एक तोले धनियेको कूटकर रात्रिमें ५ तोले जलमें भिजोदेवे फिर प्रातः-काल छानकर उसमें दो तोले मिश्री डालकर पान करनेसे मनुष्योंका पित्तज्वर और अत्यन्त प्रबल आभ्यन्तरिक दाह तत्काल शमन होती है ॥ ७८ ॥

श्रीपर्ण्यादि ।

श्रीपर्णी चन्दनोशीरपरूषकमधूकजः ।
शर्करा मधुरो हन्ति कषायः पैत्तिकं ज्वरम् ॥ ७९ ॥

कुम्भेर, लालचन्दन, खस, फालसे और महुआ इनके काथमें मिश्री डाल-कर पान करनेसे पैत्तिक ज्वर दूर होता है ॥ ७९ ॥

पर्पटादि ।

पर्पटो वासकस्तिक्ता कैरातो धन्वयासकः ।
प्रियङ्गुश्च कृतः काथ एषां शर्करया युतः ॥
पिपासादाहपित्तास्रयुतं पित्तज्वरं हरेत ॥ १८० ॥

पित्तपापडा, अडूसा, कुटकी, चिरायता, जवासा और फूलप्रियंगु इनके काथमें मिश्री मिलाकर पान करनेसे पिपासा, दाह और रक्तपित्त युक्त पित्त-ज्वर दूर होता है ॥ १८० ॥

गुडूच्यादि ।

गुडूच्यामलकैर्युक्तः केवलो वापि पर्पटः ।
पित्तज्वरं हरेत्तूर्ण दाहशोथभ्रमान्वितम् ॥ ८१ ॥

गिलोय, आमले और पित्तपापडा इनका काथ अथवा केवल पित्तपापडेका काथ दाह, शोथ और भ्रमयुक्त पित्तज्वरको शीघ्र हरता है ॥ ८१ ॥

भूनिम्बादि ।

भूनिम्बातिविषालोध्रमुस्तकेन्द्रयवामृता ।
बालकं धान्यकं बिल्वं कषायो माक्षिकान्वितः ॥

विड्भेदश्वासकासांश्च रक्तपित्तज्वरं हरेत् ॥ ८२ ॥

चिरायता, अतीस, लोध, नागरमोथा, इन्द्रजौ, गिलोय, सुगन्धवाला, धनियाँ और बेलकी छाल इनके काथमें शहद मिलाकर सेवन करनेसे मल-भेद, श्वास, खाँसी, रक्तपित्त और ज्वर दूर होता है ॥ ८२ ॥

धन्याकक्काथ ।

ससितो निशि पर्य्युषितः प्रातर्धन्याकक्काथः ।
पीतः शमयत्यचिरादन्तर्दाहं ज्वरं पैत्तम् ॥ ८३ ॥

धानियेके बासी काथको मिश्री मिलाकर प्रातःकाल पीनेसे अन्तर्दाह और पित्तज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ ८३ ॥

मृद्वीकादि ।

मृद्वीका मधुकं निम्बं कटुका रोहिणी समा ।
अवश्यायस्थितं पाकमेतात्पित्तज्वरापहम् ॥ ८४ ॥

दाख, मुलैठी, नीमकी छाल और कुटकी सब ओषधियोंको समान भाग लेकर सन्ध्याके समय विधिपूर्वक काथ बनावे उसको रात्रिमें ओसमें रखकर अगले दिन प्रातःकाल पान करनेसे पित्तज्वर दूर होता है ॥ ८४ ॥

दुरालभादि ।

दुरालभावासकपर्पटानां प्रियङ्गुनिम्बकटुरोहिणीनाम् ।
किराततिक्तं क्वथितं कषायं सशर्कराढ्यं क्वथितञ्च पाचनम्॥
सदाहपित्तज्वरमाशु हन्ति तृष्णाभ्रमं शोथविकारयुक्तम् ८५

धमासा, अडूसा, पित्तपापडा, फूलप्रियंगु, नीमकी छाल, कुटकी और चि-रायता इनके काथमें मिश्री मिलाकर पान करनेसे दाह, तृषा, भ्रम और शोथ युक्त पित्तज्वर शीघ्र नष्ट होता है. यह काथ पाचक है ॥ ८५ ॥

त्रायमाणादि ।

त्रायमाणा च मधुकं पिप्पलीमूलमेव च ।
किराततिक्तकं मुस्तं मधूकं सविभीतकम् ॥
सशर्करं पीतमेतत्पित्तज्वरविनाशनम् ॥ ८६ ॥

त्रायमाण, मुलैठी, पीपलामूल, चिरायता, नागरमोथा, महुवेके फूल और बहेडा इनके काथको मिश्री डालकर पान करनेसे पित्तज्वर नाश होता है८६॥

कफज्वरकी चिकित्सा।

मधुपिप्पली।

क्षौद्रोपकुल्यासंयोगः श्वासकासज्वरापहः।
प्लीहानं हन्ति हिक्काश्च बालानाञ्चापि शस्यते ॥८७॥

कफज्वरमें पीपलका चूर्ण और शहद मिलाकर चाटनेसे श्वास, खाँसी, कफज्वर प्लीहा, हिचकी आदि उपद्रव नष्ट होते हैं। यह योग बालकोंके लिये भी हितकारी है ॥ ८७ ॥

चतुर्भद्रावलेह।

कट्फलं पौष्करं शृङ्गी कृष्णा च मधुना सह।
श्वासकासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफान्तकृत् ॥ ८८ ॥
ऊर्द्ध्वंजत्रुगरोगघ्नी सायं स्यादवलेहिका।
अधोरोगहरी या तु सा पूर्वं भोजनान्मता ॥ ८९ ॥

कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी और पीपल इनके समानभाग चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे श्वास, खाँसी और कफज्वर दूर होता है। ऊर्ध्वजत्रुरोगवाला मनुष्य इस अवलेहको सायङ्कालमें और अधोजत्रुगत रोगी प्रातःकाल भोजनसे पहले सेवनकरे तो उक्तरोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥८८॥८९॥

सिन्धुवार क्काथ।

सिन्धुवारदलक्काथं सोषणं कफजे ज्वरे।
जङ्घयोश्च बले क्षीणे कर्णे वा पिहिते पिबेत् ॥१९०॥

कफजन्यज्वरमें—जंघाओंमें दुर्बलता और श्रवणशक्तिके ह्रास होनेपर सिंहालूके पत्तोंके क्काथमें काली मिरचोंका चूर्ण डालकर पान करनेसे लाभ होता है॥

सप्तच्छदादि।

सप्तच्छदं गुडूचीञ्च निम्बस्फूर्जकमेव च ॥ ९१ ॥
क्काथयित्वा पिबेत्क्काथं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ॥ ९२ ॥

सतौकी छाल गिलोय, नीमकी छाल और तेंदूकी छाल इनका विधिपुर्वक क्काथ बनाकर उसमें शहद डालकर पान करनेसे कफज्वर दूर होता है९१-९२॥

वासादि।

वासाक्षुद्रामृताक्काथः क्षौद्रेण ज्वरकासहृत ॥ ९३ ॥

अडूसा कटेरी और गिलोय इनके काथमें शहद मिलाकर पान करनेसे ज्वर और खाँसी दूर होती है ॥ ९३ ॥

निम्बादि ।

निम्बविश्वामृतादारुशठीभूनिम्बपौष्करम् ।
पिप्पल्यो बृहती चेति काथो हन्ति कफज्वरम् ॥९४॥

नीमकी छाल, सोंठ, गिलोय, देवदारु, कचूर, चिरायता, पोहकरमूल, पीपल, बडी पीपल और बडी कटेरी इनका काथ कफज्वरको नष्ट करता है ॥ ९४ ॥

मरिचादि ।

मरिचं पिप्पलीमूलं नागरं कारवी कणा ।
चित्रकं कट्फलं कुष्ठं वसुगन्धि वचा शिवा ॥ ९५ ॥
कण्टकारी जटा शृङ्गी यमानी पिचुमर्दकः ।
एषां काथो हरत्येष ज्वरं सोपद्रवं कफम् ॥ ९६ ॥

कालीमिरच, पीपलामूल, सोंठ, कालाजीरा, पीपल, चीता, कायफल, कूठ, नागरमोथा, वच, हरड, कटेरी, बालछड, काकडासिंगी, अजवायन और नीमकी छाल इनका काथ पान करनेसे सम्पूर्ण उपद्रवोंसहित कफज्वर नष्ट होता है ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

त्रिफलादि ।

त्रिफलापटोलवासाच्छिन्नसहातिक्तरोहिणीषड्ग्रन्थाः ।
मधुना श्लेष्मसमुत्थे दशमूलीवासकस्य वा काथः ॥९७॥

हरड, बहेडा, आमला, परवल, अडूसा, गिलोय, कुटकी और वच इनके काथको अथवा दशमूल और अडूसेके काथको शहदके साथ पान करनेसे कफ-ज्वर दूर होता है ॥ ९७ ॥

मुस्तादि ।

मुस्तं वत्सकबीजानि त्रिफला कटुरोहिणी ।
परूषकाणि च काथः कफज्वरविनाशनः ॥ ९८ ॥

नागरमोथा, इन्द्रजौ, हरड, बहेडा, आमला, कुटकी और फालसे इनका काथ कफज्वर नाशक है ॥ ९८ ॥

कटुत्रिकादि ।

कटुत्रिकं नागपुष्पं हरिद्रा कटुरोहिणी ।
कौटजश्च फलं हन्यात्सेव्यमानं कफज्वरम् ॥ ९९ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, नागकेशर, हल्दी, कुटकी और इन्द्रजौ इनका काथ सेवन करनेसे कफज्वर नष्ट होता है ॥ ९९ ॥

पिप्पल्यादिगण।

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं गजपिप्पली।
नागरं चित्रकं चव्यं रेणुकैलाजमोदिका ॥ २०० ॥
सर्षपो हिङ्गु भार्गी च पाठेन्द्रयवजीरिकाः।
महानिम्बं वचा मूर्वा विषा तिक्ता विडङ्गकम् ॥ १ ॥
पिप्पल्यादिगणो ह्येष कफमारुतनाशनः।
गुल्मशूलज्वरहरो दीपनस्त्वामपाचनः ॥ २ ॥

पीपल, पीपलामूल, मिरच, गजपीपल, सोंठ, चीता, चव्य, रेणुका, इलायची, अजमोद, सरसों, हींग, भारङ्गी, पाढ, इन्द्रजौ, जीरा, बकायन, वच, मूर्वा, अतीस, कुटकी और वायविडङ्ग यह पिप्पल्यादि गण है। यह कफ, वात, गुल्म, शूल और ज्वरको नष्टकरता है। अग्निको दीपन और आमको पचाता है। इसका कफज्वरमें यथाविधि काथ बनाकर विशेष रूपसे सेवन करना चाहिये ॥ २ ॥

सारिवादि।

सारिवातिविषा कुष्ठः पुराख्यैः सदुरालभैः।
मुस्तेन च कृतः क्वाथः पीतो हन्यात्कफज्वरम् ॥ ३ ॥

सारिवा, अतीस, कूठ, गूगल, धमासा और नागरमोथा इन औषधियोंका काथ बनाकर पान करनेसे कफज्वर दूर होता है ॥ ३ ॥

आमलक्यादि।

आमलक्याभया कृष्णा चित्रकश्चेत्ययं गणः।
सर्वज्वरकफातङ्को भेदी दीपनपाचनः ॥ ४ ॥

आमले, हरड, पीपल और लालचीतेकी जड इनका काथ पान करनेसे सर्व प्रकारके ज्वर और विशेषकर कफज्वर दूर होता है। यह काथ मलभेदक, अग्निप्रदीपक और पाचक है ॥ ४ ॥

हरिद्रादि।

हरिद्रा चित्रकं निम्बमुशीरातिविषे वचा।
कुष्ठमिन्द्रयवान् मूर्वा पटोलश्चापि साधितम् ॥

पिबेन्मरीचमिलितं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ॥ ५ ॥

हल्दी, लालचीतेकी जड, नीमकी छाल, खस, अतीस, बच, कठ, इन्द्र जौ, मूर्वा और परबल इनके काथमें काली मिरचोंका चूर्ण और शहद डाल कर पान करनेसे कफज्वर नष्ट होता है ॥ ५ ॥

अभयादि ।

अभयामलकीकृष्णा षड्ग्रन्था चित्रकस्तथा ।
मलभेदी कफातङ्कज्वरनाशनदीपनम् ॥ ६ ॥

हरड, आमले, पीपल, वच और चीतेकी जड इनका काथ कफज्वर नाशक, भेदक और अग्निप्रदीपक है ॥ ६ ॥

व्याघ्रादि ।

व्याघ्री सिंही दुरालम्भा लोध्रं कुष्ठपटोलकम् ।
ज्वरे कफात्मके चैतत्पाचनं स्यात्तदुत्तमम् ॥ ७ ॥

कटेरी, बडी कटेरी, धमासा, लोध, कूठ और परबल इनका काथ कफज्वरमें उत्तम पाचन है ॥ ७ ॥

पटोलादि ।

पटोलत्रिफलातिक्ताशठीवासामृताभवः ।
काथो मधुयुतः पीतो हन्यात्कफकृतं ज्वरम् ॥ ८ ॥

परबल, हरड, बहेडा, आमला, कुटकी, कचूर, अडूसेकी छाल और गिलोय इनका काथ शहदके साथ पान करनेसे कफज्वर दूर होता है ॥ ८ ॥

भूनिम्बादि ।

भूनिम्बनिम्बपिप्पली शठी शुण्ठी शतावरी ।
गुडूची बृहती चेति काथो हन्यात्कफज्वरम् ॥ ९ ॥

चिरायता, नीमकी छाल, पीपल, कचूर, सोंठ, शतावर, गिलोय, बडी कटेरी इनका काथ कफज्वरको नष्ट करता है ॥ ९ ॥

वात-पित्तज्वरकी चिकित्सा ।

नवाङ्ग काथ ।

विश्वामृताब्दभूनिम्बैः पञ्चमूलीसमन्वितैः ।
कृतः कषायो हन्त्याशु वातपित्तोद्भवं ज्वरम् ॥२१०॥

सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, चिरायता, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, कटेरी, बडी कटेरी और गोखरू इनका काथ वातपित्तजन्यज्वरको तत्काल नष्ट करता है २१०

निदिग्धिकादि।

निदिग्धिका-बला-रास्ना त्रायमाणामृतायुतैः।
मसूरविदलैः काथो वातपित्तज्वरं जयेत् ॥ ११ ॥

कटेरी, खिरैंटी, रायसन, त्रायमाण, गिलोय और अनन्तमूल इनका काथ वातपित्तज्वरको दूर करता है ॥ ११ ॥

गुडूच्यादि।

गुडूची निम्बधन्याकं पद्मकं रक्तचन्दनम्।
एषां सर्वान् ज्वरान् हन्ति गुडूच्यादिस्तु दीपनः॥
हल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनः॥ १२ ॥

गिलोय, नीमकी छाल, धनियाँ, पद्माख और लालचन्दन इनका काथ सर्व प्रकारके ज्वरोंको नष्ट करता है। यह गुडूच्यादि काथ अत्यन्त अग्नि प्रदीपक एवं उबकाई, अरुचि, वमन, तृषा और दाहको नाश करनेवाला है ॥ १२ ॥

बृहद्गुडूच्यादि।

गुडूची चन्दनं पद्मनागरेन्द्रयवासकम्।
अभयारग्वधोदीच्यपाठाधन्याब्दरोहिणी ॥ १३ ॥
कषायं पाययेदेतं पिप्पलीचूर्णसंयुतम्।
कासश्वासज्वरान् हन्ति पिपासादाहनाशनः॥
विण्मूत्रानिलविष्टम्भे त्रिदोषप्रभवेऽपि च ॥ १४ ॥

गिलोय, लालचन्दन, पद्माख, सोंठ, इन्द्रजौ, जवासा, हरड, अमलतास, सुगन्धवाला, पाढ, धनियाँ, नागरमोथा और कुटकी इनके काथमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे खाँसी, श्वास, ज्वर,प्यास और दाह नष्ट होती है। मल-मूत्र और वायुका अवरोध होनेपर और सन्निपातज्वरमें भी इस काथको पान करानेसे लाभ होता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

घनचन्दनादि।

घनचन्दनपर्पटकं कटुकं त्वमृणालपटोलदलं सजलम्।
शृतशीतसितायुतपित्तहरं ज्वरछर्दितृषारुचिदाहहरम् ॥१५

नागरमोथा, लालचन्दन, पित्तपापडा, कुटकी, खस, पटोलपत्र (परबल) और सुगन्धवाला इनका काथ बनाकर शीतल करके उसमें मिश्री डालकर पान करनेसे पित्तज्वर, वमन, तृषा, अरुचि और दाह ये सब विकार दूर होते हैं ॥ १५ ॥

त्रिफलादि ।

त्रिफला-शाल्मलीरास्नाराजवृक्षाटरूषकैः ।
शृतमम्बु हरत्याशु वातपित्तोद्भवं ज्वरम् ॥ १६ ॥

हरड, बहेडा, आमला, सेमलकी जड, रायसन, अमलतास और अडूसा इनका क्राथ पान करनेसे वातपित्तजन्यज्वर तत्काल दूर होता है ॥ १६ ॥

पञ्चभद्र ।

गुडूची पर्पटं मुस्तं किरातं विश्वभेषजम् ।
वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं शुभम् ॥ १७ ॥

वातपित्तज्वरमें—गिलोय, पित्तपापडा, नागरमोथा, चिरायता और सोंठ इनका काथ बनाकर देना चाहिये। यह योग उक्तज्वरमें विशेष उपयोगी है॥१७

मधुकादि ।

मधुकं शारिवे द्राक्षा मधूकं चन्दनोत्पलम् ।
काश्मरीं पद्मकं लोध्रं त्रिफलां पद्मकेशरम् ॥ १८ ॥
परूषकं मृणालञ्च क्षिपेदुत्तमवारिणि ।
मधुलाजसितायुक्तं तत्पीतमुषितं निशि ॥
वातपित्तज्वरं दाहतृष्णामूर्च्छावमिभ्रमान् ॥ १९ ॥

मुलैठी, सारिवा, अनन्तमूल, दाख, महुआ, लालचन्दन, कमल, कुम्भेर, पद्माख, लोध, त्रिफला, कमलकेशर, फालसे और कमलकी नाल इनको समानभाग लेकर रात्रिके समय चावलोंके जलमें भिजोदेवे । फिर अगले दिन प्रातःकाल छानकर उसमें शहद, मिश्री और खीलोंका चूर्ण डालकर पान करनेसे वातपित्तज्वर, दाह, तृषा, मूर्च्छा, वमन और भ्रमरोग दूर होता है१८॥१९

मुस्तादि ।

मुस्तपर्पटकोत्पलकिरातोशीरचन्दनात्कर्षः ।
शर्करया च दीयते वातपित्तज्वरे बहुधा दृष्टफलः२०

नागरमोथा, पित्तपापडा, कमल, चिरायता, खस और लालचन्दन इन

सबको एककर्ष परिमाण लेकर विधिपूर्वक काथ बनावे । फिर उसमें मिश्री मिलाकर पानकरनेसे वातपित्तज्वरमें प्रायः तत्काल लाभ होता है ॥ २२० ॥

किरातादि ।

किराततिक्तामलकीशठीनां द्राक्षोषणानागरकामृतानाम् ।
क्वाथः सुशीतो गुडसंयुतः स्यात्सपित्तवातज्वरनाशहेतुः२१

चिरायता, आमले, कचूर, दाख, कालीमिरच, सोंठ और गिलोय इनको शीतल कियेहुए काथमें गुड डालकर पान करनेसे वातपित्तज्वर नष्ट होताहै२१

पित्तकफज्वरकी चिकित्सा ।

कण्टकार्यादि ।

कण्टकार्यमृताभार्गीनागरेन्द्रयवासकम् ।
भूनिम्बं चन्दनं मुस्तं पटोलं कटुरोहिणी ॥ २२ ॥
कषायं पाययेदेतं पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ।
दाहतृष्णारुचिच्छर्दिकासहृत्पार्श्वशूलनुत ॥ २३ ॥

कटेरी, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्रजौ, जवासा, चिरायता , लालचन्दन, नागरमोथा, परवल और कुटकी इनका काथ पान करनेसे पित्त-कफज्वर, दाह, तृषा, अरुचि, वमन, खाँसी, हृदयरोग और पार्श्वशूल ये सब व्याधियाँ नष्ट होती हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

भार्ग्यादि ।

भार्गीगुडूचीघनदारुसिंहीशुण्ठीकणापुष्करजः कषायः ।
ज्वरं निहन्ति श्वसनं क्षिणोति क्षुधां करोति प्ररुचिं तनोति

भारंगी, गिलोय, नागरमोथा, देवदारु, कटेरी, सोंठ, पीपल और पोहकरमूल इनका काथ श्वासयुक्त ज्वरको नष्ट करता है । क्षुधा और रुचिको बढाता है ॥ २४ ॥

अमृतादि ।

अमृतामुस्तकवासापर्पटविश्वाजलेन क्वाथः ।
पानं पित्तमरुत्सु ज्वरं निहन्याच्च भद्रमुञ्जः ॥ २५ ॥

गिलोय, नागरमोथा, अडूसा, पित्तपापडा, सोंठ, सुगन्धवाला और रामशर (सरपता—मूँज) इनका काथ पान करनेसे वातपित्तजन्यज्वर दूर होता है २५

पटोलादि ।

पटोलं चन्दनं मूर्वा तिक्ता पाठामृतागणः ।
पित्तश्लेष्मारुचिच्छर्दिज्वरकण्डूविषापहः ॥ २६ ॥

परवल, लालचन्दन, मूर्वा, कुटकी, पाढ और गिलोय इन ओषधियोंका क्वाथ पित्त-कफज्वरनाशक एवं अरुचि, वमन, ज्वर, खुजली और विषदोषको दूर करनेवाला है ॥ २६ ॥

अमृताष्टक ।

अमृतेन्द्रयवारिष्टपटोलं कटुरोहिणी ।
नागरं चन्दनं मुस्तं पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ॥ २७ ॥
अमृताष्टक इत्येष पित्तश्लेष्मज्वरापहः ।
हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनः ॥ २८ ॥

गिलोय, इन्द्रजौ, नीमकी छाल, परवल, कुटकी, सोंठ, लालचन्दन और नागरमोथा इन ओषधियोंके समूहको अमृताष्टक कहते हैं। इस अमृताष्टकके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करनेसे पित्तकफज्वर, उबकाई, अरुचि, वमन, प्यास और दाह नाश होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

चातुर्भद्रक ।

किरातं नागरं मुस्तं गुडूचीं च कफाधिके ।
पाठोदीच्यमृणालैस्तु सह पित्ताधिके पिबेत् ॥ २९ ॥

पित्तश्लेष्मजज्वरमें-यदि कफकी अधिकता हो तो चिरायता, सोंठ, नागरमोथा और गिलोय इनका क्वाथ पान करे और पित्तकी अधिकता हो तो उक्त चारों ओषधियोंके साथ पाढ, सुगन्धवाला और खस इन तीनों ओषधियोंका क्वाथ बनाकर पान करनेसे विशेष लाभ होता है ॥ २९ ॥

वासास्वरस ।

सपत्रपुष्पवासाया रसः क्षौद्रसितायुतः ।
कफपित्तज्वरं हन्ति सास्रपित्तं सकामलम् ॥ २३० ॥

पत्ते तथा फूलोंके सहित अडूसेका रस निकालकर उसमें शहद और मिश्री मिलाकर पान करनेसे रक्तपित्त और कामला (कमलवाय) सहित कफपित्त-ज्वर नष्ट होता है ॥ २३० ॥

नागरादि ।

नागरोशीरबिल्वाब्दधान्यमोचरसाम्बुभिः ।
कृतः क्वाथो भवेद्ग्राही पित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ ३१ ॥

सोंठ, खस, बेलगिरी नागरमोथा, धनियाँ, मोचरस और सुगन्धबाला इनका काथ ग्राही (मलरोधक) और पित्तकफज्वर नाशक है ॥ ३१ ॥

गुडूच्यादि ।

गुडूची निम्बधन्याकं चन्दनं कटुरोहिणी ।
गुडूच्यादिरयं काथः पाचनो दीपनः स्मृतः ॥
तृष्णादाहारुचिच्छर्दिपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ ३२ ॥

गिलोय, नीमकी छाल, धनियाँ, लालचन्दन और कुटकी इनका काथ पाचक, अग्निप्रदीपक एवं तृषा, दाह, अरुचि, वमन और पित्तकफज्वरको दूर करनेवाला है ॥ ३२ ॥

भार्ग्यादि ।

भार्गीवचापर्पटकधान्यहिंग्वभयाघनैः ।
काश्मर्यनागरैः क्वाथः सक्षौद्रः श्लेष्मपित्तजे ॥ ३३ ॥

भारङ्गी, वच, पित्तपापडा, धनियाँ, हींग, हरड, नागरमोथा, कुम्भेर और सोंठ, इनके काथको शहदके साथ पित्तकफज्वरमें पान करनेसे लाभ होता है३३।

पटोलादि ।

पटोलं पिचुमर्दश्च त्रिफला मधुकं बला ।
साधितोऽयं कषायः स्यात्पित्तश्लेष्मोद्भवज्वरे ॥ ३४ ॥

परबल, नीमकी छाल, हरड, बहेडा, आमला, मुलैठी और खिरैंटी इनके द्वारा सिद्ध कियेहुए काथको पित्तकफज्वरमें पान करनेसे विशेष लाभ होता है ॥ ३४ ॥

भद्रमुस्तादि ।

भद्रमुस्ता नागरम्वा गुडूच्यामलकाह्वयम् ।
पाठामृणालोच्याथ क्वाथः पित्तज्वरे कफे ॥ ३५ ॥

पित्तकफजन्यज्वरमें-नागरसोथा, और सोंठ, या गिलाये और आमले अथवा पाढ, खस और सुगन्धबाला इनमेंसे किसी एक योग बनाकर काथ पान करना चाहिये ॥ ३५ ॥

द्राक्षादि ।

द्राक्षामृतावासकारिष्टकानां भूनिम्बतिक्तेन्द्रयवाः पटोलम् ।
मुस्ता-सभार्गी-कथितःकषायःसश्लेष्मपित्तज्वरनाशनाय ॥

दाख, गिलोय, अडूसा, नीमकी छाल, चिरायता, कुटकी, इन्द्रजौ, परबल, नागरमोथा और भारंगी इनका बनायाहुआ काथ पित्त-कफज्वरको नष्ट करनेके लिये उत्तम औषध है ॥ ३६ ॥

बृहद्गुडूच्यादि।

गुडूचिका निम्बकवासकश्च शठी किरातं मगधाबृहत्यौ।
दार्वी-पटोलक्कथितः कषायः पिबेन्नरः पित्तकफज्वरे च॥३७॥

गिलोय, नीमकी छाल, अडूसा, कचूर, चिरायता, पीपल, कटेरी, बडी-कटेरी, दारुहलदी और परवल इनका काथ पित्तकफज्वरमें पान करना चाहिये ३७

पञ्चतिक्तकषाय।

क्षुद्रामृताभ्यां सह नागरेण सपौष्करश्चैव किराततिक्तम्।
पिबेत्कषायन्त्विह पंचतिक्तं ज्वरं निहन्त्यष्टाविधं समुग्रम् ३८

कटेरी, गिलोय, सोंठ, पोहकरमूल और चिरायता इन पाँचों ओषधियोंके एकत्र बनाकर काथ पान करनेसे अत्यन्तउग्र आठों प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ३८ ॥

पटोलादि।

पटोलयवधन्याकं मुद्गामलकचन्दनम्।
पैत्तिके श्लेष्मपित्तोत्थे ज्वरे तृड्छर्दिदाहनुत् ॥ ३९ ॥

परवल, जौ, धनियाँ, मूँग, आमले और लालचन्दन इनके काथको पित्तज्वर और पित्तकफजन्य-ज्वरमें पान करनेसे ज्वर, तृषा, वमन, दाह आदि विकार दूर होते हैं ॥ ३९ ॥

वातश्लेष्मज्वरकी चिकित्सा।

रूक्षस्वेदाद्युपचार।

कफवातज्वरे स्वेदान् कारयेद्रूक्षनिर्मितान्।
स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा पावकमाशयम् ॥
हत्वा वातकफस्तम्भं स्वेदो ज्वरमपोहति ॥२४०॥
खर्परभृष्टस्थितकाञ्जिकासितो हि बालुकास्वेदः।
शमयाति वातकफामयमस्तकशूलाङ्गभङ्गादीन् ॥४१॥
वीक्ष्य स्वेदविधिं कुर्यात्स्वेदनं वालुकादिभिः।
सर्वाङ्गे यदि वा यत्र वेदना संप्रजायते ॥ ४२ ॥

शीतशूलव्युपरमे स्तम्भगौरवनिग्रहे ।
सञ्जातमार्दवे स्वेदे स्वेदनाद्विरतिर्मता ॥ ४३ ॥

वातश्लेष्म ज्वरमें-रोगीको रूक्ष पदार्थोंका स्वेद देना चाहिये स्वेद देनेसे समस्त स्रोतोंसे मृदुता होती है, जठराग्नि प्रज्वलित होती है एवं कफ और वातका साम्य(जडता) नष्ट होकर ज्वर दूर होता है । एक मिट्टीके खींपरेमें वालुको गरम करके फिर कपडेकी पोटलीमें बाँधकर उसके ऊपर काँजी छिडक छिडककर स्वेद देवे।यह बालुकास्वेद वातश्लेष्म जनित पीडा,शिरकी पीडा, अङ्गोंका टूटना आदि विकारोंको शमन करता है।यदि सम्पूर्ण शरीरमें या किसी अङ्गविशेषमें पीडा हो तो उस स्थानमें बालुका स्वेद देना चाहिये । शीत, शूल, स्तब्धता और शरीरकी पीडाके निवारण होजानेपर एवं स्रोतोंमें लघुता आजानेपर स्वेद बन्द करदेना चाहिये ॥ २४०-४३ ॥

आमज्वरे वातबलासजे वा कफोत्थिते मारुतसम्भवे वा ।
त्रिदोषजे स्वेदमुदाहरन्ति स्तम्भप्रमोहाङ्गरुजाप्रशान्तेः ४४

आमज्वर, वातकफज्वर, कफजज्वर, वातज और सन्निपातजज्वरमें स्वेद देनेसे स्तब्धता, मूर्च्छा और शरीरकी पीडा शान्त होती है ॥ ४४ ॥

पिप्पलीभिः शृतं तोयमनभिष्यन्दि दीपनम् ।
वातश्लेष्मविकारघ्नं प्लीहज्वरविनाशनम् ॥ ४५ ॥

पीपलका काथ पान करनेसे शरीरके स्रोतशुद्ध होते हैं, अग्नि दीपन होती है, वात और कफके रोग और प्लीहायुक्तज्वर नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

मुस्तनागरभूनिम्बत्रयमेतत त्रिकार्षिकम् ।
कफवातामशमनं पाचनं ज्वरनाशनम् ॥ ४६ ॥

नागरमोथा, सोंठ और चिरायता इन तीनोंको ३ कर्ष परिमाण लेकर काथ बनाकर सेवन करनेसे कफ, वात और आमदोष शमन होता है। एवं दोषोंका परिपाक होता है और ज्वरका नाश होता है ॥ ४६ ॥

पञ्चकोल ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।
दीपनीयः शृतो वर्गः कफानिलगदापहः ॥ ४७ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड और सोंठ इनके द्वारा बनाया-

हुआ काथ-कफ और वातसे उत्पन्नहुए रोगोंको दूर करता है एवं अग्निको दीपन करता है ॥ ४७ ॥

निम्बादि ।

निम्बामृताविश्वदारुकट्फलं कटुका वचा ।
कषायं पाययेदाशु वातश्लेष्मज्वरापहम् ॥
पर्वभेदशिरःशूलकासारोचकपीडितम् ॥ ४८ ॥

नीमकी छाल, गिलोय, सोंठ, देवदारु, कायफल, कुटकी और वच इनका काथ पान करनेसे वातश्लेष्मज्वर शीघ्र नष्ट होता है । एवं सन्धियोंकी पीडा, शिरका शूल, खाँसी, अरुचि आदि उपद्रव तत्काल दूर होते हैं ॥ ४८ ॥

क्षुद्रादि ।

क्षुद्रामृतानागरपुष्कराह्वैः कृतः कषायः कफमारुतोत्तरे ।
सश्वासकासारुचिपार्श्वरुग्ज्वरे ज्वरे त्रिदोषप्रभवेऽपि शस्यते

कटेरी, गिलोय, सोंठ और पोहकरमूल इनका काथ वातश्लेष्मज्वर, सन्निपातज्वर, श्वास, खाँसी, अरुचि और पार्श्वशूलयुक्त ज्वरमें सेवन करना उपयोगी है ॥ ४९ ॥

दशमूली कषाय ।

दशमूलीरसः पयः कणायुक्तः कफानिले ।
अविपाकेऽतिनिद्रायां पार्श्वरुक् श्वासकासके ॥२५०॥

वात-कफज्वरमें यदि वातादिदोषोंका उत्तम प्रकारसे परिपाक न हुआ हो एवं निद्राकी अधिकता हो तथा पार्श्वशूल, श्वास और खाँसी हो तो दशमूलके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करना चाहिये ॥ २५० ॥

दार्व्वादि ।

दारुपर्प्पटभार्ग्यब्दवचाधान्यककट्फलैः ।
साभयाविश्वपूतीकैः क्वाथो हिंगुमधूत्कटैः ॥ ५१ ॥
कफवातज्वरे पीतो हिक्काशोषगलग्रहान् ।
श्वासकासप्रसेकांश्च हन्यात्तरुमिवाशनिः ॥ ५२॥

देवदारु, पित्तपापडा, भारंगी, नागरमोथा, वच, धनियाँ, कायफल, हरड, सोंठ और दुर्गन्धकरंज इनके काथमें हींग और शहद मिलाकर पान करनेसे कफवातजज्वर, हिचकी, शोष, गलेकी पीडा, श्वास, खाँसी और मुँहसे पानीका

गिरना ये सब रोग इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे-वज्रपातसे वृक्ष तत्काल नष्ट होजाते हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

आरग्वधादि ।

आरग्वधग्रन्थिकमुस्ततिक्तहरीतकीभिः कथितः कषायः ।
सामे सशूले कफवातयुक्ते ज्वरे हितो दीपनपाचनश्च॥५३॥

अमलतास, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी और हरड इनका काथ आम और शूल युक्त वातकफज्वरमें हितकारी है।एवं अग्निप्रदीपक और पाचक है५३

त्रिफलादिकषाय ।

त्रिफला त्रायमाणा च मृद्वीका कटुरोहिणी ।
वातश्लेष्महरस्त्वेषः कषायो ह्यानुलोमिकः ॥ ५४ ॥

हरड, बहेडा, आमला, त्रायमाण, दाख और कुटकी इनका काथ वातश्लेष्म ज्वरको हरता है और वायुका अनुलोमन करता है ॥ ५४ ॥

मुस्तकादि ।

मुस्ता गुडूची सहनागरेण वासाजलं पर्पटकश्च पथ्या ।
क्षुद्रा च दुःस्पर्शयुतः कषायः पानो हितो वातकफज्वरस्य॥

नागरमोथा, गिलोय, सोंठ,अडूसा, सुगन्धवाला, पित्तपापडा, हरड, कटेरी और धमासा इनका काथ पान करनेसे वातश्लेष्मज्वर नाश होता है ॥ ५५ ॥

बृहत्पिप्पल्यादि काथ ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् ।
वचा सातिविषाजाजी पाठा वत्सकरेणुका ॥ ५६ ॥
किराततिक्तको मूर्वा सर्षपो मरिचानि च ।
कट्फलं पुष्करं भार्गी विडङ्गं कर्कटाह्वयम् ॥ ५७ ॥
अर्कमूलं बृहत्सिंही श्रेयसी सदुरालभा ।
दीप्यकश्चाजमोदा च शुकनासः सहिंगुका ॥ ५८ ॥
एतानि समभागानि गण एकोऽष्टविंशतिः ।
एषां काथो निपीतः स्याद्वातश्लेष्मज्वरापहः ॥ ५९ ॥
हन्ति वातं तथा शीतं प्रस्वेदमतिवेपथुम् ।
प्रलापश्चातिनिद्राश्च रोमहर्षारुचिस्तथा ॥ २६० ॥

महावातेऽपतन्त्रे च शूलं च सर्वगात्रजे ।
पिप्पल्यादिमहाक्वाथो ज्वरे सर्वत्र पूजितः ॥ ६१ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, बच, अतीस, कालाजीरा, पाढ, इन्द्रजौ, रेणुका, चिरायता, मूर्वा (चुरनहार), सरसों, काली मिरच, कायफल, पोहकरमूल, भारंगी, वायविडंग, काकडासिंगी, आककी जड, बडी कटेरी, रायसन, धमासा, अजवायन, अजमोद, अरलू और हींग इन समान भाग मिली हुई २८ ओषधियोंको बृहत् पिप्पल्यादिगण कहते हैं । इसका क्वाथ पान करनेसे वातश्लैष्मिक ज्वर, तथा वात, शीत, पसीनेका अधिक आना, शरीरमें कम्प होना, प्रलाप, निद्राकी अधिकता, रोमाञ्च होना और अरुचि आदि समस्त उपद्रव नष्ट होते हैं । इस बृहत्पिप्पल्यादि क्वाथको महावात, अपतन्त्रक, समस्त शरीरगत शूल और सर्वप्रकारके ज्वरोंमें प्रयोग करना श्रेष्ठ है ॥ ५६–६१ ॥

किराताद्क्वाथ ।

किरातविश्वामृतवल्लिसिंही-
कणाकणामूलरसोनसिन्दुकैः ।
कृतः कषायो विनिहन्ति शीघ्रं
ज्वरं सवातं सकफात्समुत्थितम् ॥ ६२ ॥

चिरायता, सोंठ, गिलोय, बडी कटेरी, पीपल, पीपलामूल, लहसुन और सिम्हालू, इनका क्वाथ बनाकर सेवन करनेसे दोषोंका परिपाक होता है और वातकफज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६२ ॥

सन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

लंघनाद्युपचार ।

लंघनं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनन्तथा ।
अवलेहोऽञ्जनं चैव प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥ ६३ ॥
सन्निपातज्वरे पूर्वं कुर्यादामकफापहम् ।
पश्चाच्छ्लेष्मणि संक्षीणे शमयेत्पित्तमारुतौ ॥ ६४ ॥

सन्निपातज्वरमें पहले लंघन, बालुकास्वेद, नस्य, निष्ठीवन (कुल्ले कराना) अवलेह और अञ्जन आदि प्रयोग करने चाहिये । एवं सान्निपातज्वरमें प्रथम आम और कफनाशक चिकित्सा करे पश्चात् कफके क्षीण होजानेपर वातपित्तको शमन करनेवाली चिकित्सा करे ॥ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

लंघन ।

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि वा ।
लंघनं सन्निपातेषु कुर्य्यादारोग्यदर्शनात् ॥ ६५ ॥
दोषाणामिव सा शक्तिर्लंघने या सहिष्णुता ।
नहि दोषक्षये कश्चित्सहते लंघनादिकम् ॥ ६६ ॥

सन्निपातज्वरमें-तीन दिन, पांच दिन, दस दिन अथवा जबतक आरोग्य-लाभ न हो तबतक लंघन कराने चाहिये । जबतक दोष बलवान् रहते हैं तभीतक रोगी लंघनोंको सहन करसकता है और दोषोंका क्षय होनेपर कोई भी रोगी लंघनादिकको नहीं सहन करसकता ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

स्वेद ।

न स्वेदव्यतिरेकेण सन्निपातः प्रशाम्यति ।
तस्मान्मुहुर्मुहुः कार्यं स्वेदनं सन्निपातिनाम् ॥ ६७ ॥
सन्निपाते जलमयो नराणां विग्रहो भवेत् ।
विना वह्न्युपचारेण कस्तं शोषयितुं क्षमः ॥ ६८ ॥
प्रयोगा बहवः सन्ति सविषा निर्विषा अपि ।
वह्न्यूष्माणं विना प्रायो न वीर्य्यं दर्शयन्ति ते॥६९॥
प्रतिक्रियाविधावेवं यस्य संज्ञा न जायते ।
पादतले ललाटे वा दहेल्लौहशलाकया ॥ २७० ॥

सन्निपातज्वरमें कफकी प्रधानता होनेके कारण विना स्वेदक्रियाके वह शान्त नहीं होता, इसलिये सन्निपातवाले रोगीको बारम्बार स्वेद देना चाहिये-सन्निपातज्वरमें-रोगीका शरीर जलमें डूबा हुआसा प्रतीत होता है, इस कारण स्वेदक्रियाके विना उस जलको और कोई शोषण नहीं करसकता । यद्यपि सन्निपातज्वरमें सविष और निर्विष बहुतसी औषधियोंके प्रयोग देखे जाते हैं, किन्तु वे सब विना स्वेदक्रियाके प्रायः अपने प्रभावको नहीं प्रकट करसकते । तथा स्वेद देनेपर भी जिस सन्निपातरोगीको चैतन्य (होश) न हो तो उसके पाँवके तलुवे अथवा ललाटमें लोहेकी शलाकासे दाग देना चाहिये ॥ ६७-२७० ॥

नस्य ।

सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपं कुष्ठमेव च ।
बस्तमूत्रेण संपिष्य नस्यं तन्द्राविनाशनम् ॥ ७१ ॥

सैंधानमक, सहिंजनके बीज, सरसों और कूठ इनको समानभाग लेकर बकरीके मूत्रसें पीसकर नस्य देनेसे तन्द्रा दूर होती है ॥ ७१ ॥

मधूकसारासिन्धूत्थवचोषणकणाः समाः।
श्लक्ष्णं पिष्ट्वाम्भसा नस्यं कुर्य्यात्संज्ञाप्रबोधनम्॥७२॥

महुवेका सार, सैंधानमक, वच, काली मिर्च और पीपल इनको सम भाग लेकर गरम जलके साथ बारीक पीसकर उसकी नस्य देनेसे रोगी तत्काल होशमें होजाता है ॥ ७२ ॥

षड्ग्रन्थिसैन्धवकणाः समधूकसाराः
पिष्ट्वा समेन मरिचेन जलैः कदुष्णैः।
नस्यं निवारयति शीघ्रमचेतनत्वं
तन्द्राप्रलापसहितं शिरसो गुरुत्वम् ॥ ७३ ॥

पीपलामूल, सैंधानमक, पीपल और महुवेका सार इनको समानभाग लेकर पीसकर बारीक चूर्ण बनालेवे, फिर समस्त चूर्णकी बराबर कालीमिरचोंका चूर्ण मिलाकर कुछ गरम जलके साथ पीस करके उसका नस्य देनेसे बेहोशी, तन्द्रा, प्रलाप और शिरका भारीपन ये सब उपद्रव शीघ्र दूर होते हैं ॥ ७३॥

लशुनं मरिचं पिष्टं नस्यं स्यात् श्लेष्मनाशनम्।
शितिकुक्कुटिकाण्डजजलपानान्नस्यादप्यञ्जनाच्च।
दुस्साधनसन्निपातः प्रबलोऽप्याश्वेव शममेति॥ ७४ ॥

लहसुन और कालीमिरचोंको समानभाग लेकर बारीक पीसकरके नस्य देनेसे कफका नाश होता है। काली मुर्गीके अण्डेके भीतरकी जरदी (द्रव पदार्थ) को पान करनेसे अथवा उसका नस्य लेनेसे या उसको आँखोंमें आँजनेसे प्रबल और दुःसाध्य सन्निपात भी शीघ्र शमन होता है ॥ ७४ ॥

निष्ठीवन ।

आर्द्रकस्वरसोपेतं सैन्धवं कटुकत्रयम्।
आकण्ठं धारयेदास्ये निष्ठीवेच्च पुनः पुनः ॥ ७५ ॥
तेनास्य हृदयाच्छ्लेष्मा मन्यापार्श्वशिरोगलात्।
लीनोऽप्याकृष्यते शुष्को लाघवं चास्य जायते॥७६॥
पर्वभेदो ज्वरो मूर्च्छा निद्राकासगलामयाः।
मुखाक्षिगौरवं जाड्यमुत्क्लेदश्चोपशाम्यति ॥ ७७ ॥

सकृद् द्वित्रिचतुः कुर्य्याद् दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ।
एतद्धि परमं प्राहुर्भेषजं सन्निपातिनाम् ॥ ७८ ॥

सैंधानमक, सोंठ, मिरच और पीपल इनके चूर्णको अदरखके रसमें मिलाकर कण्ठतक मुखमें भरकर वारम्वार कुल्ले करे। इससे रोगीके हृदयमेंसे तथा मन्यानाडी, पार्श्व, शिर और गलेमेंसे जमाहुआ व सूखाकफ निकल जाता है। शरीरमें हलकापन होताजाता है। एवं कफके कारण उत्पन्नहुई सन्धियोंकी पीडा, ज्वर, मूर्च्छा, निद्रा, खाँसी, गलेके रोग, मुख और नेत्रोंका भारीपन, शरीरकी जडता और ग्लानि ये सब विकार शान्त होते हैं। दोषोंका बलाबल देखकर एक, दो, तीन या चारवार निष्ठीवन (कुल्ले) कराने चाहिये। सन्निपातरोगियोंके लिये यह उत्कृष्ट औषध है ॥ ७५-७८ ॥

अष्टाङ्गावलेह ।

कट्फलं पौष्करं शृङ्गी व्योषं यासश्च कारवी ।
श्लक्ष्णचूर्णीकृतश्चैतन्मधुना सह लेहयत् ॥ ७९ ॥
एषावलेहिका हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् ।
हिक्कां श्वासं च कासं च कण्ठरोगं नियच्छति ॥ ८० ॥
ऊर्ध्वगश्लेष्महरणे उष्णे स्वेदादिकर्म्मणि ।
विरोध्युष्णे मधु त्यक्त्वा कार्य्यैषार्द्रकजै रसैः ॥ ८१ ॥

कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी, सोंठ, मिरच, पीपल, जवासा और कालाजीरा इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करके शहदमें मिलाकर चटावे। यह अवलेह दारुण सन्निपात, हिचकी, श्वास, खाँसी और कण्ठके रोगोंको नष्ट करता है। ऊर्ध्वगत श्लेष्माको नष्ट करनेके लिये स्वेदादि उष्णक्रिया करनी होती है, उस समय उष्णताके विरोधी होनेके कारण शहदके बदले उक्त ओषधियोंके चूर्णको अदरखके रसमें मिलाकर प्रयोग करना चाहिये। क्योंकि शहद और उष्णता दोनोंही परस्पर विशेष विरोधी हैं ॥ ७९-८१ ॥

अञ्जन ।

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः ।
अञ्जनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥ ८२ ॥

शिरसके बीज, पीपल, काली मिरच, सैंधानमक, लहसुन, मैनसिल और बच इनको गोमूत्रमें पीसकर नेत्रोंमें आँजनेसे रोगी तत्काल होशमें होजाता है ८२

अश्वुराह्वपतङ्गस्य विट्चूर्णं मधुसंयुतम् ।
अञ्जनाद्बोधयेन्मुग्धं तन्द्रितं सन्निपातिनम् ॥ ८३ ॥

असुराह्वपतंग (तेलियाकीडों) की बीटको पीसकर शहदमें मिलाकर नेत्रोंमें आँजनेसे मूर्च्छा और तन्द्रायुक्त सन्निपात रोगीको जल्दी चैतन्य हो जाता है ॥ ८३ ॥

दशमूल ।

बिल्वश्योनाकगाम्भारी पाटला गणकारिका ।
दीपनं कफवातघ्नं पञ्चमूलमिदं महत् ॥ ८४ ॥
शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरम् ।
वातपित्तापहं वृष्यं कनीयः पञ्चमूलकम् ॥ ८५ ॥
उभयं दशमूलं हि सन्निपातज्वरापहम् ।
कासे श्वासे च तन्द्रायां पार्श्वशूले च शस्यते ॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं कण्ठहृद्ग्रहनाशनम् ॥ ८६ ॥

बेल, शोनापाठा, (अरलू) कुम्भेर, पाढल और अरणी इन पाँचोंको बृहत्पञ्चमूल कहते हैं । यह अग्निप्रदीपक और वात-कफ नाशक है । शालपर्णी पृष्ठपर्णी, बडी कटेरी, कटेरी और गोखुरू इनको लघु पञ्चमूल कहते हैं । यह वातपित्त नाशक और वृष्य (वीर्य्यवर्द्धक) है । इन दोनों पञ्चमूलोंको दशमूल कहते हैं. इस दशमूलके क्राथमें पीपलका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे सन्निपातज्वर, खाँसी, श्वास, तन्द्रा, पार्श्वशूल, कण्ठ और हृदयकी पीडा ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ८४-८६ ॥

द्वादशाङ्ग ।

दशमूलीकषायस्तु सपौष्करकणान्वितः ।
सन्निपाते ज्वरे देयः श्वासकाससमन्विते ॥ ८७ ॥

श्वास और खाँसी युक्त सन्निपातज्वरमें दशमूल, पोहकरमूल और पीपलका क्राथ अथवा दशमूलके क्राथमें पोहकरमूल और पीपलका चूर्ण डालकर प्रयोग करना चाहिये ॥ ८७ ॥

चतुर्दशाङ्ग ।

चिरज्वरे वातकफोल्बणे वा त्रिदोषजे वा दशमूलमिश्रः ।
किराततिक्तादिगणः प्रयोज्यः शुद्ध्यार्थिने वा त्रिवृताविमिश्रः

पुराने ज्वरमें अथवा वात-कफाधिक्य ज्वरमें, या सन्निपातज्वरमें दशमूल और किराततिक्तादिगण (चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ) की औषधियोंका क्वाथ प्रयोग करना चाहिये. विरेचनकी आवश्यकता होनेपर रोगीको उक्त क्वाथमें निसोतका चूर्ण डालकर पान कराना चाहिये ॥ ८८ ॥

अष्टादशाङ्ग।

दशमूली शठी शृङ्गी पौष्करं सदुरालभम्।
भार्गी कुटजबीजं च पटोलं कटुरोहिणी ॥ ८९ ॥
अष्टादशाङ्ग इत्येष सन्निपातज्वरापहः।
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्त्तिश्वासहिक्कावमीहरः ॥ २९० ॥

दशमूल, कचूर, काकडासिंगी, पोहकरमूल, धमासा, भारंगी, इन्द्रजौ, परवल और कुटकी इनको अष्टादशाङ्ग कहते हैं। इसका क्वाथ पान करनेसे सन्निपातज्वर, खाँसी, हृदय और पसलीकी पीडा, श्वास, हिचकी और वमन ये सब रोग दूर होते हैं ॥ ८९ ॥ २९० ॥

भूनिम्बादिअष्टादशाङ्ग।

भूनिम्बदारुदशमूलमहौषधाब्द-
तिक्तेन्द्रबीजधनिकेभकणाकषायः।
तन्द्राप्रलापकसनारुचिदाहमोह-
श्वासादियुक्तमखिलं ज्वरमाशु हन्ति ॥ ९१ ॥

चिरायता, देवदारु, दशमूल, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, धनियाँ और गजपीपल इनका बनाया हुआ क्वाथ तन्द्रा, प्रलाप, खाँसी, अरुचि, दाह, मोह और श्वासादि समस्त उपद्रवोंसहित ज्वरको तत्काल नष्ट करता है ॥ ९१ ॥

मुस्तादिगण।

मुस्तपर्पटकोशीरदेवदारुमहौषधम्।
त्रिफलाधन्वयासश्च नीली कम्पिल्लकस्त्रिवृत ॥ ९२ ॥
किराततिक्तकं पाठा बला कटुकरोहिणी।
मधुकं पिप्पलीमूलं मुस्ताद्यो गण उच्यते ॥ ९३ ॥
अष्टादशाङ्गमुदितमेतद्वा सन्निपातनुत।
पित्तोत्तरे सन्निपाते हितं चोक्तं मनीषिभिः ॥
मन्यास्तम्भे उरोघाते उरःपार्श्वशिरोग्रहे ॥ ९४ ॥

नागरमोथा, पित्तपापडा, खस, देवदारु, सोंठ, त्रिफला, धमासा, नील, कबीला, निसोत, चिरायता, पाढ, खिरैंटी, कुटकी, मुलैठी और पीपलामूल इनको मुस्तादिगण कहते हैं और अष्टादशाङ्ग भी कहते हैं। इसका काथ सेवन करनेसे सन्निपातज्वर नष्ट होता है। एवं पित्ताधिक्य सन्निपातज्वर, मन्यानाडीका जकडजाना, उरोघात, हृदय और पसलीकी पीडा और शिरकी पीडामें यह काथ विशेष उपयोगी है ॥ ९२-९४ ॥

द्वात्रिंशाङ्ग।

भार्गीभूनिम्बनिम्बाघनकटुकवचाव्योषवासाविशाला
रास्नानन्तापटोलीसुरतरुरजनीपाटलातिन्दुकैश्च।
ब्राह्मीदार्वीगुडूचीत्रिवृतमतिविषापुष्करत्रायमाणै-
र्व्याघ्रीसिंहीकलिङ्गैस्त्रिफलशठियुतैः कल्पितस्तुल्यभागैः॥
काथो द्वात्रिंशनामा त्रिभिरधिकदशान् सन्निपातान्निहन्ति
शूलं कासादिहिक्काश्वसनगदरुजाध्मानविध्वंसकारी ९५॥

भारंगी, चिरायता, नीमकी छाल, नागरमोथा, कुटकी, वच, सोंठ, मिरच, पीपल, अडूसा, इन्द्रायनकी जड, रायसन, अनन्तमूल, परबल, देवदारु, हल्दी, पाढ़ल, तेन्दु, ब्राह्मी, दारुहल्दी, गिलोय, निसोत, अतीस, पोहकरमूल, त्राय-माण, कटेरी, बडीकटेरी, इन्द्रजौ, हरड, बहेडा, आमला और कचूर इसको द्वात्रिंशाङ्गकाथ कहते हैं। सब ओषधियोंको समानभाग लेकर यथाविधि काथ बनाकर प्रयोग करे। यह काथ तेरहप्रकारके सन्निपातज्वर, शूल, खाँसी, हिचकी, श्वास और आध्मान आदि सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करता है ॥ ९५ ॥

वृहत्यादिगण।

बृहत्यौ पुष्करं भार्गी शठी शृङ्गी दुरालभा।
वत्सकस्य च बीजानि पटोलं कटुरोहिणी ॥ ९६ ॥
बृहत्यादिगणः प्रोक्तः सन्निपातज्वरापहः।
कासादिषु च सर्वेषु देयः सोपद्रवेषु च ॥ ९७ ॥

बडीकटेरी, कटेरी, पोहकरमूल, भारंगी, कचूर, काकडासिंगी, धमासा, इन्द्रजौ, परबल और कुटकी यह बृहत्यादि गण है। इसका काथ सन्निपात ज्वरनाशक और खाँसी आदि सम्पूर्ण उपद्रवोंको दूरकरता है ॥९६॥ ९७॥

शठ्यादिगण ।

शठी पुष्करमूलं च व्याघ्री शृङ्गी दुरालभा ।
गुडूची नागरं पाठा किरातं कटुरोहिणी ॥ ९८ ॥
एष शठ्यादिको वर्गः सान्निपातज्वरापहः ।
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्त्तितन्द्राश्वासे च शस्यते ॥ ९९ ॥

कचूर, पोहकरमूल, कटेरी, काकडासिंगी, धमासा, गिलोय, सोंठ, पाढ़, चिरायता और कुटकी यह शठयादि गण है। इसका क्वाथ सन्निपातज्वरनाशक, एवं खाँसी, हृदयरोग, पसलीकी पीडा, तन्द्रा और श्वासरोगमें सेवन करना अत्यन्त हितकर है॥ ९८ ॥ ९९ ॥

बृहत्कट्फलादि ।

कट्फलाब्दवचापाठापुष्कराजाजिपर्पटैः ।
शृङ्गीकालिङ्गधन्याकं शठीभृंगकणाह्वयम् ॥ २०० ॥
तिक्ताभयाम्बुकैरातं भार्गीरामठकं बला ।
दशमूलीकणामूलं निष्क्वाथ्य क्वाथमुत्तमम् ॥ १ ॥
हिंग्वार्द्रकरसोपेतं सन्निपातविनाशनम् ।
गलगण्डं गण्डमालां स्वरभेदं गलामयान् ॥ २ ॥
कर्णमूलोद्भवं शोथं हन्याद्धनुमुखामयान् ।
कफवातज्वरं कासं तथा हन्ति शिरोगदान् ॥
शिरोगुरुत्वं बाधिर्य्यं निहन्ति कफवातिकम् ॥ ३ ॥

कायफल, नागरमोथा, वच, पाढ, पोहकरमूल, कालाजीरा, पित्तपापडा, काकड़ासिंगी, इन्द्रजौ, धनियाँ, कचूर, भाँगरा, पीपल, कुटकी, हरड, सुगन्धवाला, चिरायता, भारङ्गी, हींग, खिरैंटी, दशमूल और पीपलामूल इनका उत्तम प्रकारसे क्वाथ बनाकर उसमें हींग और अदरखका रस डालकर पान करनेसे सन्निपातज्वर, गलगण्ड, गण्डमाला, स्वरभङ्ग, गलेके रोग, कानकी जडमें उत्पन्नहुई सूजन, ठोडी व मुखके रोग, कफवातज्वर, खाँसी, शिरोरोग, शिरका भारीपन, कफ और बातसे उत्पन्नहुई बधिरता ये सब रोग नष्ट होते हैं॥ २००-२०३ ॥

वाताधिक्यसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

बृहत्पञ्चमूलकाथ ।

पञ्चमूलीकषायं च दद्याद्वातोत्तरे ज्वरे ।
भृशोष्णं वा सुखोष्णं वा दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ॥ ४ ॥

वाताधिक्यसन्निपातज्वरमें दोषोंके बलाबलको विचारकर अत्यन्त उष्ण वा मन्दोष्ण (सुहाता २) बृहत्पञ्चमूलका काथ पान कराना चाहिये ॥ ४ ॥

कट्फलादि ।

कट्फलाब्दवचापाठापुष्कराजाजिपर्पटैः ।
देवदार्वभयाशृङ्गीकणाभूनिम्बनागरैः ॥ ५ ॥
भार्गीकलिङ्गकटुकाशठीकट्तृणधान्यकैः ।
समांशैः साधितः क्काथो हिंग्वार्द्रकरसैर्युतः ॥ ६ ॥
कर्णमूलोद्भवं शोथं हन्ति मन्यागलाश्रयम् ।
कफवातज्वरं श्वासं कासं हिक्कां हनुग्रहम् ॥ ७ ॥
गलगण्डं गण्डमालां स्वरभेदं कफात्मकम् ।
शिरोगुरुत्वं बाधिर्य्यं वृद्धिं च कफमेदसोः ॥ ८ ॥

कायफल, नागरमोथा, वच, पाढ, पोहकरमूल, कालाजीरा, पित्तपापडा, देवदारु, हरड,काकडासिंगी, पीपल, चिरायता, सोंठ, भारंगी, इन्द्रजौ, कुटकी, कचूर, गन्धेजघास और धनियाँ इन समानभागमिश्रित औषधियोंका क्काथ बनाकर उसमें हींग और अदरखका रस मिलाकर सेवन करनेसे कानकी जडकी सूजन, मन्यास्तम्भ, गलेके रोग, कफवातज्वर, श्वास, खाँसी, हिचकी, हनुग्रह, गलगण्ड, गण्डमाला, कफजन्य स्वरभेद, शिरका भारीपन, बधिरता, कफ और मेदकी वृद्धि दूर होती है ॥ ५-८ ॥

पित्ताधिक्यसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

परूषकादि ।

परूषकाणि त्रिफला देवदारु सकट्फलम् ।
चन्दनं पद्मकञ्चैव तथा कटुकरोहिणी ॥ ९ ॥
पृश्निपर्णी शृतस्त्वेभिरुषितं शीतलं जलम् ।
पित्तोत्तरे नृणामेतत् सन्निपाते चिकित्सितम् ॥ १० ॥

फालसे, हरड, बहेडा, आमल, देवदारु, कायफल, लालचन्दन, पद्माख, कुटकी और पृश्निपर्णी इनको समानभाग लेकर रात्रिमें शीतल जलमें भिजो-देवे, फिर प्रातःकाल काथ बनाकर शीतल करके सेवन करावे, पित्ताधिक्य सन्निपातज्वरमें यह अत्युत्तम औषध है ॥ ९ ॥ ३१० ॥

चन्दनादिकाथ।

चन्दनं पद्मकञ्चैव तथा कटुकरोहिणी।
पृथक्पर्णीसमं सिद्धमुषितं शीतलं जलम्॥
पित्तोत्तरे नृणामेतत् सन्निपाते चिकित्सितम्॥ ११॥

लालचन्दन, पद्माख, कुटकी और पिठवन इन सबको समानभाग लेकर सायंकालके समय जलमें भिजोकर रख देवे. फिर प्रातःकाल काथ बनाकर शीतल करके सेवनकरे. यह भी पित्ताधिक्य सन्निपातज्वरमें उपयोगी है॥११॥

किरातादि सप्तक।

किराततिक्तकं मुस्तं गुडूची विश्वभेषजम्।
पाठोदीच्यं मृणालञ्च शृतं पित्ताधिके पिबेत्॥ १२॥

पित्तप्रधान सन्निपातज्वरमें चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, पाढ, सुगन्धवाला और खस इनका काथ बनाकर पान करना चाहिये ॥ १२ ॥

श्लेष्मोल्बणसन्निपातज्वरकी चिकित्सा।

बृहत्यादिकाथ।

बृहत्यौ पौष्करं भार्गी शठी शृङ्गी दुरालभा।
वत्सकस्य च बीजानि पटोलं कटुरोहिणी॥ १३॥
बृहत्यादिगणः शस्तः सन्निपाते कफोत्तरे।
श्वासादिषु च सर्वेषु हितः सोपद्रवेऽपि च॥ १४॥

बडीकटेरी, कटेरी, पोहकरमूल, भारंगी, कचूर, काकडासिंगी, धमासा, इन्द्रजौ, परबल और कुटकी इनको बृहत्यादिगण कहते हैं। इसका काथ श्वास कासादि सम्पूर्ण उपद्रवोंसहित कफाधिक्य सन्निपातज्वरमें विशेष उपकारी है॥ १३॥ १४॥

वातपित्ताधिक्यसन्निपातज्वरकी चिकित्सा।

पञ्चमूलीकाथ।

वातपित्तहरं वृष्यं कनीयः पञ्चमूलकम्।
तत्काथो मधुना हन्ति वातपित्तोल्बणं ज्वरम्॥१५॥

लघुपञ्चमूलका क्वाथ-वातपित्तनाशक और वृष्य है। उसमें शहद मिलाकर पान करनेसे वातपित्ताधिक्य सन्निपातज्वर नष्ट होता है ॥ १५ ॥

वातकफाधिक्यसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

चातुर्भद्रकक्वाथ ।

किराततिक्तकं मुस्तं गुडूची विश्वभेषजम् ।
चातुर्भद्रकमित्याहुर्वातश्लेष्मोल्बणे ज्वरे ॥ १६ ॥

वातकफाधिक्य सन्निपातज्वरमें-चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ इनका क्वाथ उपयोगी है। इसको चातुर्भद्रक क्वाथ कहते हैं ॥ १६ ॥

पित्तकफोल्बणसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

पर्पटादिक्वाथ ।

पर्पटं कट्फलं कुष्ठमुशीरं चन्दनं जलम् ।
नागरं मुस्तकं शृङ्गी पिप्पल्येषां शृतं हितम् ॥
तृष्णादाहाग्निमान्द्येषु पित्तश्लेष्मोल्बणे ज्वरे ॥ १७ ॥

पित्तपापडा, कायफल, कूठ, खस, लालचन्दन, सुगन्धवाला, सोंठ, नागरमोथा, काकडासिंगी और पीपल इनका क्वाथ तृष्णा दाह और मन्दाग्नियुक्त पित्त-कफाधिक्य सन्निपातज्वरमें हितकर होता है ॥ १७ ॥

त्रिदोषोल्बणसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

योगराजक्वाथ ।

नागरं धान्यकं भार्गी पद्मकं रक्तचन्दनम् ।
पटोलं पिचुमर्दश्च त्रिफला मधुकं बला ॥ १८ ॥
शर्करा कटुका मुस्ता गजाह्वाव्याधिघातकः ।
किराततिक्तममृता दशमूली निदिग्धिका ॥ १९ ॥
योगराजो निहन्त्येष सन्निपातज्वरापहः ।
सन्निपातसमुत्थानं मृत्युमप्यागतं जयेत् ॥ ३२० ॥

सोंठ, धनियाँ, भारंगी, पद्माख, लालचन्दन, परवल, नीमकी छाल, हरड, आमला, बहेडा, मुलैठी, खिरैंटी, कुटकी, नागरमोथा, गजपीपल, अमलतास, चिरायता, गिलोय, दशमूल और कटेरी इनके क्वाथमें मिश्री डालकर पीनेसे सन्निपातज्वर नष्ट होवा है। यह योगराजनामक क्वाथ-सन्निपातसे उत्पन्नहुई मृत्युको भी दूर करता है ॥ १८-३२० ॥

शीताङ्गसन्निपातज्वरकी चिकित्सा।

भास्वन्मूलादि।

भास्वन्मूलं जीरकव्योषभार्गी
व्याघ्री शुण्ठी पुष्करं गोजलेन।
सिद्धं सद्यः शीतगात्रार्त्तिमोह-
श्वासश्लेष्मोद्रेककासान्निहन्ति॥ २१॥

आककी जड, जीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, भारंगी, कटेरी, सोंठ और पोहकरमूल इनका गोमूत्रमें काथ बनाकर सेवन करनेसे शरीरकी शीतलता व पीडा, मोह, श्वास, कफका उद्रेक, खाँसी आदि विकार शीघ्र नाश होते हैं २१

प्रलापकसन्निपातज्वरकी चिकित्सा।

तगरादि।

सतगरवरातिक्तो रेवताम्भोदतिक्ता
नलदतुरगगन्धा भारती हारहूरा।
मलयजदशमूली शङ्खपुष्पी सुपक्वा
प्रलपनमपहन्युः पानतो नातिदूरात्॥ २२॥

तगर, पित्तपापडा, अमलतास, नागरमोथा, कुटकी, खस, असगन्ध, ब्राह्मी, दाख, लालचन्दन, दशमूल और शङ्खपुष्पी इनका काथ बनाकर पान करनेसे प्रलापक सन्निपातज्वर तत्काल नष्ट होता है॥ २२॥

रक्तष्ठीवनसन्निपातज्वरकी चिकित्सा।

रोहिषादि।

रोहिषधन्वयासवासापर्पटगन्धलताकटुकाभिः।
शर्करया सममेव कषायः क्षतजष्ठीवन उद्यदुपायः २३

रोहिषतृण, धमासा, अडूसा, पित्तपापडा, फूलप्रियंगु और कुटकी इनके काथमें मिश्री मिलाकर पीनेसे क्षतोत्पन्न रुधिरकी वमन सहित सन्निपातज्वर नष्ट होता है। यह प्रयोग अत्यन्त उपयोगी है॥ २३॥

पद्मकादि।

पद्मचन्दनपर्पटमुस्तं जाती जीरकचन्दनवारि।
क्लीतकनिम्बयुतः परिपक्वं वारि भवेदिह शोणितहारि २४

पद्माख, लालचन्दन, पित्तपापडा, नागरमोथा, चमेलीके फूल, जीरा,

लालचन्दन, सुगन्धवाला, मुलैठी और नीमकी छाल इनका बनायाहुआ काथ सन्निपातज्वरमें होनेवाली रक्तकी वमनको दूर करता है ॥ २४ ॥

जिह्वकसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

गुण्ठयादि ।

विश्वावर्मविभावरीयुगवरा वत्सादनी वारिद-
व्याघ्रीनिम्बपटोलपुष्करजटामांसीभिः सुरदारुणा २५

सोंठ, पित्तपापडा, हल्दी, दारुहल्दी, हरड, बहेडा, आमला, गिलोय, नागरमोथा, कटेरी, नीमकी छाल, परवल, पोहकरमूल, बालछड और देवदारु इनका काथ पानकरनेसे जिह्वकसन्निपातज्वर दूर होता है ॥ २५ ॥

रुग्दाहसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

उशीरादि ।

उशीरचन्दनोदीच्यद्राक्षामलकपर्पटैः ।
शृतं शीतं जलं दद्याद्दाहतृड्ज्वरशान्तये ॥ २६ ॥

खस, लालचन्दन, सुगन्धवाला, दाख, आमले और पित्तपापडा इन ओषधियोंका काथ बनाकर शीतल करके दाह और तृषायुक्त ज्वरको शमन करनेके लिये प्रयोग करे ॥ २६ ॥

चित्तविभ्रमसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

मृद्वीकादि ।

मृद्वीकामरदारुमत्स्यशकलामुस्तामलक्यामृताः
पथ्यारेवतरामसेनकरजोराजीफलैः संयुताः ।
हन्युश्चित्तरुजोऽथ दर्दुरपला पाठा पटोलीपयः-
पथ्यापर्पटराजवृक्षकटुका शम्बूकपुष्पशृताः ॥ २७ ॥

दाख, देवदारु, कुटकी, नागरमोथा, आमले, गिलोय, हरड, अमलतास, चिरायता, पित्तपापडा और परवल इन सबका बनाया हुआ काथ अथवा ब्राह्मी, पाढ, पटोलपात, सुगंधवाला, हरड, पित्तपापडा, अमलतास, कुटकी और शंखपुष्पी इन सब ओषधियोंका बनायाहुआ काथ पान करनेसे चित्तभ्रमयुक्त सान्निपातज्वर दूर होता है ॥ २७ ॥

---

१ अत्र छन्दोभङ्गः प्रतिभाति ।

कर्णकसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

भार्ग्यादि ।

भार्गी जया पौष्करकण्टकारी-
कटुत्रिकोग्राघनकुण्डलीभिः ।
कुलीरशृंगीकटुकारसाभिः
कृतः कषायः किल कर्णकघ्नः ॥ २८ ॥

भारंगी, अरणी, पोहकरमूल, कटेरी, सोंठ, मिरच, पीपल, वच, नागरमोथा, गिलोय, काकडासिंगी, कुटकी और रास्ना इन औषधियोंका बनाया हुआ काथ कर्णकसंनिपातज्वरको अवश्य नष्ट करता है ॥ २८ ॥

कण्ठकुब्जसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

त्र्यूषणादि काथ ।

त्र्यूषणफलत्रिकमुस्तकट्वी
कलिङ्गसिंहाननशर्वरीभिः ।
क्राथः कृतः कृन्तति कण्ठकुब्जं
कण्ठीरवः कुब्जकमाशु तद्वत् ॥ २९ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, अडूसा और हल्दी इन औषधियोंका काढा बनाकर सेवन करनेसे कण्ठकुब्ज सन्निपातज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ २९ ॥

किरातादिक्काथ ।

किरातकटुकाकणा कुब्जकण्टकारी शठी
कलिङ्गकिलिमाभयाकटुककट्फलाम्भोधरैः ।
विषामलकपुष्करानलकुलीरशृङ्गीवृषैः
महौषधसखैरयं जयति कण्ठकुब्जं गणः ॥ ३३० ॥

चिरायता, कुटकी, पीपल, कुडेकी छाल, कटेरी, कचूर, बहेडा, देवदारु, हरड, काली मिरच, कायफल, नागरमोथा, अतीस, आमले, पोहकरमूल, चीता, काकडासिंगी, अडूसा और सोंठ इन सबको समानभाग लेकर काढा बनाकरके सेवन करनेसे कण्ठकुब्ज सन्निपातज्वर दूर होता है ॥ ३३० ॥

तन्द्रिकसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

क्षुद्रादि ।

क्षुद्रामृतापौष्करनागराणि
शृतानि पीतानि शिवायुतानि ।
शुण्ठीकणागस्तिरसोषणानि
नस्येन तन्द्राविलयोल्बणानि ॥ ३१ ॥

कटेरी, गिलोय, पोहकरमूल और सोंठ इनका काथ बनाकर उसमें हर-डका चूर्ण डालकर पीनेसे अथवा सोंठ, पीपल और मिरच इनके चूर्णको अग-स्तियाके पत्तोंके रसमें या काथमें पीसकर नस्य लेनेसे तन्द्रिकसन्निपातज्वर दूर होता है ॥ ३१ ॥

भुग्ननेत्रसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

तुरंगगन्धालवणोग्रगन्धा मधूकसारोषणमागधीभिः ।
बस्ताम्बुशुंठीलशुनान्विताभिर्नस्यं कृशां भुग्नदृशं करोति॥

असगन्ध, सैंधानमक, वच, महुवेकासार, मिरच, पीपल, सोंठ और लह-सुन इन ओषधियोंके चूर्णको बकरीके मूत्रमें मिलाकर नस्य देनेसे भुग्ननेत्र सन्निपातज्वर नष्ट होता है ॥ ३२ ॥

सन्धिकसन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

वचादि ।

वचा कवचकच्छुरासहचरामृताभङ्गुरा
सुराह्वघननागराऽतरुणदारुरास्नापुराः ।
वृषातरुणभीरुभिः सह भवन्ति सन्धिग्रहो-
रुजोरुपरिसंक्रमभ्रमणपक्षघाता रुजाः ॥ ३३ ॥

वच, पित्तपापडा, धमासा, पियाबाँसा, गिलोय, अतीस, देवदारु, नागर-मोथा, सोंठ, विधारा, दारुहल्दी, रास्ना, गूगल, अडूसा, अण्डकी जड और शतावर इन सब ओषधियोंको समानभाग लेकर काथ बनाकर पान करनेसे सन्धिस्थानोंकी पीडा, जंघाओंका स्तम्भित होना क्लान्ति, (शिथिलिता) भ्रम पक्षाघात ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ३३ ॥

मुस्तादि ।

मुस्तैरण्डः प्राणदा बाणदारुच्छिन्ना रास्ना भीरुकर्चूरतिक्ता ।
वासाविश्वापञ्चमूलाश्वगन्धा हन्यान्मन्यास्तम्भसंधिग्रहार्त्तीः

नागरमोथा, अण्डकी जड, हरड, नीली कटसरैया, देवदारु, गिलोय, रास्ना, शतावर, कचूर, कुटकी, अडूसा, सोंठ, लघुपञ्चमूल और असगन्ध इन ओषधियोंका क्वाथ, मन्यास्तम्भ (नाडीका जकड जाना) और सन्धियोंकी पीडा सहित सन्निपात ज्वरको दूर करता है ॥ ३४ ॥

अभिन्यासज्वरकी चिकित्सा।

निद्रोपेतमभिन्यासक्षीणं विद्याद्धतौजसम्।
सन्निपाते प्रकम्पन्तं प्रलपन्तं न बृंहयेत् ॥ ३५ ॥
तृष्णादाहाभिभूतेषु न दद्याच्छीतलं जलम्।
वातपित्तोल्बणे चैव घृतं योज्यं पुरातनम् ॥ ३६ ॥
अभ्यंगात् शमयत्याशु सन्निपातं सुदारुणम्।
स्वेदोद्गमे ज्वरे देयश्चूर्णो भ्रष्टकुलत्थजः ॥ ३७ ॥

सन्निपातज्वरमें अधिक निद्राका आना, बलका क्षीण होना, ओजका नाश होना, रोगीके शरीरमें कम्प और प्रलाप करना आदि लक्षणोंके होनेपर अभिन्यासज्वर जानना चाहिये। इस ज्वरमें बृंहणक्रिया नहीं करनी चाहिये। और रोगीके अत्यन्त तृषा वा दाहके होनेपर शीतल जल नहीं देना चाहिये। अभिन्यासज्वरमें वात-पित्तकी अधिकता होनेपर पुराने घृतकी शरीरपर मालिश करनी चाहिये, यदि इस ज्वरमें पसीना अधिक आता हो तो भुनी हुई कुलथीका चूर्ण मलना चाहिये ॥ ३५-३७ ॥

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः।
शोथः संजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥ ३८ ॥
ज्वरादितो वा ज्वरमध्यतो वा
ज्वरान्ततो वा श्रुतिमूलशोथः।
क्रमेण साध्यः खलु कृच्छ्रसाध्यः
ततस्त्वसाध्यः कथितो भिषग्भिः ॥ ३९ ॥
रक्तावसेचनैः पूर्वं सर्पिःपानैश्च तं जयेत्।
प्रदेहैः कफपित्तघ्नैर्वमनैः कवलग्रहैः ॥ ३४० ॥
कुलत्थकट्फलैः शुण्ठी कारवी च समांशकैः।
सुखोष्णैर्लेपनं दद्यात कर्णमूले मुहुर्मुहुः ॥ ४१ ॥

गैरिकं पांशुजः शुण्ठी वचा कट्फलकांजिकैः ।
कर्णशोथहरो लेपः सन्निपाते ज्वरे नृणाम् ॥ ४२ ॥
सुखोष्णदशमूलेन प्रलेपोऽतिमहाफलः ।
वीजपूरकमूलानि अग्निमन्थं तथैव च ॥ ४३ ॥
सनागरं देवदारुचव्यचित्रकपेषितम् ।
प्रलेपनमिदं श्रेष्ठं गलश्वयथुनाशनम् ॥ ४४ ॥

सन्निपातज्वरके अन्तमें कानकी मूलमें भयंकर सूजन उत्पन्न होनेपर हो (कनवर निकलनेपर) तो उससे कदाचित् कोई रोगी आरोग्य होता है। ज्वरके आदिमें, ज्वरके मध्यमें और ज्वरके अन्तमें इस तरह तीन प्रकारका कर्णशोथ होता है । इसको क्रमसे साध्य, कष्टसाध्य और असाध्य जानना चाहिये, ऐसा आयुर्वेदज्ञ महर्षियोंने कहा है। कर्णमूलशोथमें प्रथम जोंक आदिके द्वारा रुधिरस्राव कराना चाहिये । फिर रोगीको पंचतिक्त आदि घृत-पान कराना चाहिये । अथवा कफ–पित्तनाशक औषधियोंके द्वारा वमन और कवल धारण कराके इन्हीं औषधियोंके कल्कका शोथपर लेपकरना चाहिये । या कुलथी, कायफल, सोंठ और कालाजीरा इनको समानभाग लेकर जलके साथ पीसलेवे, फिर गरम करके कनपटीपर वारम्वार सुहाता २ लेप करे । तथा गेरू, पांशुलवण (रेह), सोंठ, वच और कायफल इन औषधियोंको समान भाग लेकर उसका चूर्ण बनाकर कॉंजीमें पीसकर गरम करके लेप करे । यह लेप सन्निपातज्वरमें मनुष्योंके कानकी मूलमें उत्पन्नहुई सूजनको दूर करता है । दशमूलकी औषधियोंके कल्कका सुहाता २ लेप करनेसे भी उत्तम फल होता है । विजौरे नींबूकी जड, अरणी, सोंठ, देवदारु, चव्य और चीतेकी जड इन सबको समभाग लेकर जलमें पीसकर गरम करके लेप करे । यह प्रलेप गलेकी सूजनको दूर करनेके लिये उपयोगी है ॥३८–४४॥

कारव्यादि ।

कारवीपुष्करैरण्डत्रायन्तीनागरामृताः ।
दशमूली शठी शृङ्गी वासा भार्गी पुनर्नवाः ॥ ४५ ॥
तुल्या मूत्रेण निष्क्राथ्य पीताः स्रोतोविशोधनाः ।
अभिन्यासं ज्वरं घोरमाशु घ्नन्ति समुद्धतम् ॥ ४६ ॥

काला जीरा, पोहकरमूल, अण्डकी जड, त्रायमाण, सोंठ, गिलोय, दशमूल, कचूर, काकडासिंगी, धमासा, भारंगी और पुनर्नवा इन सब औषधियोंको

समान भाग लेकर गोमूत्रमें पकाकर काथ बनावे । यह काथ स्रोतोंको शुद्ध करनेवाला है और घोर अभिन्यासज्वरको शीघ्र नष्ट करता है ॥४५॥४६॥

मातुलुंगादि ।

मातुलुङ्गाश्मभिद्बिल्वव्याघ्रीपाठोरुबूकजः ।
काथो लवणमूत्राढ्योऽभिन्यासानाहशूलनुत् ॥ ४७ ॥

बिजौरे नींबूकी जड, पाषाणभेद, बेलगिरी, कटेरी, पाढ और अण्डकी जड इन ओषधियोंका गोमूत्रमें काथ बनाकर उसमें सैंधानमक डालकर पान करनेसे अभिन्यासज्वर, आनाह और शूलरोग नष्ट होता है ॥ ४७ ॥

आगन्तुकज्वरकी चिकित्सा ।

अभिघातज्वरे युंज्यात् क्रियामुष्णविवर्जिताम् ।
कषायं मधुरं स्निग्धं यथादोषमथापि वा ॥ ४८ ॥

अभिघात (चोट आदिके लगनेसे उत्पन्न हुए) ज्वरमें उष्णक्रियाको छोड कर शीतलक्रिया करनी चाहिये । एवं वातादि दोषोंके अनुसार कषैले, मधुर और स्निग्ध पदार्थ भोजनमें देने चाहिये ॥ ४८ ॥

अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिना जयेत् ।
दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहपीडजौ ॥ ४९ ॥

अभिचार (मारण, मोहन, उच्चाटन आदि क्रियाओं) से और अभिशाप (देव, ब्राह्मण, सिद्ध, गुरुजन आदिके शाप) से उत्पन्नहुए ज्वर हवन, यज्ञ आदि क्रियाओंके करनेसे तथा अनेक प्रकारके भयंकर उत्पात ग्रहबाधासे उत्पन्न हुए ज्वर, दान, शान्तिपाठ, स्वस्तिवाचन और अतिथिपूजन आदि सत्कर्मोंके द्वारा दूर होते हैं ॥ ४९ ॥

ओषधीगन्धविषजौ विषपित्तप्रबाधनैः ।
जयेत्कषायैर्मतिमान् सर्वगन्धकृतैर्भिषक् ॥ ३५० ॥
चातुर्जातककर्पूरं कक्कोलागुरुकुङ्कुमम् ।
लवंगसहितश्चैव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् ॥ ५१ ॥

वैद्य,ओषधिकी गन्धसे और विषसे आगन्तुक उत्पन्नहुए ज्वरोंको विष और पित्तको शमन करनेवाली ओषधियोंके काथ एवं सर्वगन्ध ओषधियोंके काथके द्वारा शमन करे । चातुर्जात (दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर) कपूर, कंकोल, अगर, केशर और लौंग इन सबको सर्वगन्ध कहते हैं ५०॥५१

क्रोधजे पित्तजित् काम्या अर्थाः सद्वाक्यमेव च ।
आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च ॥ ५२ ॥
हर्षणैश्च शमं यान्ति कामशोकभयज्वराः ।
कामात्क्रोधज्वरो नाशं क्रोधात्कामसमुद्भवः ॥ ५३ ॥
याति ताभ्यामुभाभ्याञ्च भयशोकसमुद्भवः ॥ ५४ ॥

क्रोधजनित ज्वरमें पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये । तथा काम्य (इच्छित पदार्थ) और अर्थ प्रदान एवं सद्वचनोंके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये । काम, शोक और भयजनित ज्वर आश्वासन देने, इष्ट वस्तुके प्राप्त होने, वातनाशक उपचारोंके करने और हर्षजनक क्रियाओंके करनेसे शमन होते हैं । कामसे क्रोधज्वर, क्रोधसे कामज्वर और काम तथा क्रोध इन दोनोंके द्वारा भय व शोक जनितज्वर दूर होते हैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशनताडनैः ।
जयेद्भूताभिषङ्गोत्थं मनःशान्तैश्च मानसम् ॥ ५५ ॥

भूताभिषंग अर्थात् भूत, प्रेत, यक्ष आदिकी बाधासे उत्पन्नहुए ज्वरको भूत विद्यामें कहीहुई बन्धन, आवेशन, ताडन आदि क्रियाओंके द्वारा दूर करे और मानसिक (मनसे उत्पन्नहुए) ज्वरको मनको शान्त करनेवाले उपायोंके द्वारा शमन करे ॥ ५५ ॥

विषमज्वरकी चिकित्सा ।

विषमाश्च ज्वराः सर्वे सन्निपातसमुद्भवाः ।
अथोल्बणस्य दोषस्य तेषु कार्यं चिकित्सितम् ॥५६॥

सब प्रकारके विषमज्वर सन्निपातसे उत्पन्न होते हैं, इसलिये जिस २ विषम ज्वरमें जिस जिस दोषकी प्रबलता हो, उसी दोषको शमन करनेका उपाय करना चाहिये ॥ ५६ ॥

वातप्रधानं सर्पिर्भिर्वस्तिभिः सानुवासनैः ।
विरेचनं च पयसा सर्पिषा संस्कृतेन च ॥ ५७ ॥
विषमं तिक्तशीतैश्च ज्वरं पित्तोत्तरं जयेत ।
वमनं पाचनं रूक्षमन्नपानं च लंघनम् ॥
कषायोष्णं च विषमे ज्वरे शस्तं कफोत्तरे ॥ ५८ ॥

घृतपान और अनुवासनवस्तिके द्वारा वातप्रधान विषमज्वरको शमन करे पित्तप्रधान विषमज्वरमें प्रथम विरेचक (दुस्तावर) ओषधियोंके द्वारा सिद्ध कियेहुए दुग्ध अथवा घृतका पान कराकर विरेचन करावे, फिर तिक्त और शीतल ओषधियोंके उपचार द्वारा पित्तजनित, विषमज्वरकी चिकित्सा करे। कफाधिक्य विषमज्वरमें वमनकारक, पाचक और स्वच्छ अन्नपान एवं उष्ण ओषधियोंका काथ देना और लंघन कराना उपयोगी है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

महौषधादि।

महौषधिग्रन्थिकतालपर्णीमार्कण्डिकारग्वधवालपथ्याः।
सक्षारमेषां विषमज्वरे च हितं शृतं पाचनरेचनं च ॥ ५९ ॥

सोंठ, पीपलामूल, मुसली, भुई खखसा, अमलतास, सुगन्धवाला और हरड इन ओषधियोंका काथ बनाकर उसमें जवाखार डालकर पान करावे। यह काथ पाचक, रेचक और विषमज्वरमें हितकारी है ॥ ५९ ॥

पटोलादि।

पटोलयष्टीमधुतिक्तरोहिणी घनाभयाभिर्विषमज्वरघ्नः।
कृतःकषायस्त्रिफलामृतावृषैःपृथक्पृथग्वा विषमज्वरापहाः

परवल, मुलैठी, कुटकी, नागरमोथा और हरड इन ओषधियोंका काथ अथवा हरड, बहेडा, आमला, गिलोय और अडूसा इन सबका काथ बनाकर अथवा उक्त सम्पूर्ण औषधियोंको मिलाकर बनाया हुआ काथ त्रिषमज्वरको दूर करता है ॥ ३६० ॥

मधुकादि।

मधुकं चन्दनं मुस्तं धात्रीधान्यमुशीरकम्।
छिन्नोद्भवं पटोलं च क्काथः समधुशर्करः ॥ ६१ ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति सन्तताद्यं सुदारुणम्।
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ ६२ ॥

मुलैठी, लालचन्दन, नागरमोथा, आमले, धनियाँ, खस, गिलोय और परबल इनका काथ,शहद और खाँड मिलाकर पीनेसे सन्ततआदि आठ प्रकारके दारुण विषम ज्वरोंको तथा वात, पित्त, कफ इन भिन्नभिन्न तीनों दोषोंसे अथवा सन्निपातसे उत्पन्न होनेवाले ज्वरोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥६१॥६२॥

मुस्तादि ।

मुस्तामलकगुडूचीविश्वौषधकण्टकारिकाथः ।
पीतः सकणाचूर्णः समधु विषमज्वरं हन्ति ॥ ६३ ॥

नागरमोथा, आमले, गिलोय, सोंठ और कटेरी इनके काथमें पीपलका चूर्ण और शहद डालकर पान करनेसे विषमज्वर नष्ट होता है ॥ ६३ ॥

महाबलादि ।

महाबलामूलमहौषधाभ्यां काथो निहन्याद्विषमज्वरञ्च ।
शीतं सकम्पं परिदाहयुक्तं विनाशयेद्द्वित्रिदिनप्रयुक्तः॥६४॥

सहदेईकी जड और सोंठ दोनोंको समानभाग लेकर काथ बनाकर पान करनेसे दो तीन दिनमें शीत, कम्प और दाहसहित विषमज्वर नष्ट होता है॥

स्वल्पभार्ग्यादि ।

भार्ग्यब्दपर्पटकधान्ययवासविश्व-
भूनिम्बकुष्ठकणसिंह्यमृताकषायः ।
जीर्णज्वरं सततसन्ततकं निहन्या-
दन्येभवं संत्रितयञ्च चतुर्थकञ्च ॥ ६५ ॥

भारंगी, नागरमोथा, पित्तपापडा, धनियाँ, धमासा, सोंठ, चिरायता, कूठ, पीपल, बडीकटेरी और गिलोय इन ओषधियोंका काथ बनाकर पान करनेसे जीर्णज्वर, सतत ज्वर, सन्ततज्वर, अन्येद्युष्कज्वर, तृतीयक (तिजारी) और चतुर्थक (चौथिया) ज्वर दूर होता है ॥ ६५ ॥

मध्यभार्ग्यादि ।

भार्ग्यब्दपर्पटकपुष्करशृंगबेर-
पथ्याकणाह्वदशमूलकृतः कषायः ।
सद्यो निहन्ति विषमज्वरसन्निपात-
जीर्णज्वरश्वयथुशीतकवह्निसादान् ॥ ६६ ॥

भारंगी, नागरमोथा, पित्तपापडा, पोहकरमूल, सोंठ, हरड, पीपल और दशमूल इन ओषधियोंका बनायाहुआ काथ पान करनेसे विषमज्वर, सन्निपातज्वर, जीर्णज्वर, सूजन, शीत और मन्दाग्नि इन सब रोगोंको शीघ्र दूर करता है ॥ ६६ ॥

---

१ 'सन्नितयं चतुथकर्म्' इति पाठः साधुः

बृहद्भार्ग्यादि ।

भार्गी पथ्या कटू कुष्ठं पर्पटं मुस्तकं कणा ।
अमृता दशमूलञ्च नागरं काथयेद्भिषक् ॥ ६७ ॥
हन्ति धातुगतं सर्वं बहिःस्थं शीतसंयुतम् ।
प्लीहानं यकृतं गुल्मं श्वयथुञ्च विनाशयेत् ॥
एष भार्ग्यादिको नाम सर्वज्वरहरः परः ॥ ६८ ॥

भारंगी, हरड, कुटकी, कूठ, पित्तपापडा, नागरमोथा, पीपल, गिलोय, दशमूल और सोंठ इन सबको समानभाग लेकर काथ बनाकर पान करनेसे सब प्रकारके धातुगतज्वर, बाहरीत्वचामें रहनेवाले और शीतयुक्त विषमज्वर, प्लीहा, यकृत्, गुल्म और सूजनयुक्त ज्वर तथा सन्निपातादिज्वर नष्ट होते हैं । यह भार्ग्यादिकाथ सर्वप्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

दास्यादि ।

दासीदारुकलिङ्गलोहितलताश्यामाकपाठाशठी-
शुण्ठ्योशीरकिरातकुञ्जरकणात्रायन्तिकापद्मकैः ।
वह्नीधान्यकनागराब्दसरलैः शिग्र्वम्बुसिंही शिवा
व्याघ्रीपर्पटदर्भमूलकटुकानन्तामृतापुष्करैः ॥ ६९ ॥
धातुस्थं विषमं त्रिदोषजनितं चैकाहिकं द्व्याहिकं
कामैः शोकसमुद्भवं च विविधं यच्छर्दियुक्तं नृणाम् ।
पीतो हन्ति क्षयोद्भवं सततकं चातुर्थकं भूतजं
योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितो जीर्णज्वरे दुस्तरे ॥ ७० ॥

नीला पियाबाँसा, देवदारु, इन्द्रजौ, मजीठ, श्यामाकघास, पाढ, कचूर, सोंठ, खस, चिरायता, गजपीपल, त्रायमाणा, पद्माख, थूहरकीजड, धनियाँ, सोंठ, नागरमोथा, धूपसरल, सैंजनेकी छाल, सुगन्धवाला, बडी कटेरी, हरड, कटेरी, पित्तपापडा, कुशाकी जड़, अनन्तमूल, गिलोय और पोहकरमूल इन समस्त ओषधियोंका काढा बनाकर सेवन करनेसे मनुष्योंके धातुगतज्वर, विषमज्वर, त्रिदोषजनितज्वर तथा ऐकाहिक, द्व्याहिक अथवा काम, क्रोध, शोक आदिसे उत्पन्न होनेवाले विविधप्रकारके ज्वर, वमनयुक्तज्वर, क्षयजनित ज्वर, सतत-ज्वर, चातुर्थिकज्वर और भूतबाधाजन्यज्वर ये सब प्रकारके ज्वर नाशको

प्राप्त होते हैं। इस प्रयोगको पूर्वकालमें मुनियोंने वर्णन किया है। यह दारुण जीर्णज्वरमें भी विशेष उपकार करता है ॥ ६९ ॥ ३७० ॥

दार्व्यादि ।

दार्वीकलिङ्गमञ्जिष्ठाव्याघ्रीदारुगुडूचिकाः ।
भूधात्री पर्पटं श्यामा तगरं करिपिप्पली ॥ ७१ ॥
क्षुद्रा निम्बं घनं व्याधि नागरं पद्मकं शठी ।
रामाटरुषः सरलं त्रायमाणास्थिसन्धिकम् ॥ ७२ ॥
भूनिम्बारुष्करं पाठा कुशाकटुकरोहिणी ।
मागधी धान्यकश्चेति क्वाथं मधुयुतं पिबेत् ॥ ७३ ॥
वातिकं पैत्तिकञ्चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
द्वन्द्वजं विषमं घोरं सतताद्यं सुदारुणम् ॥ ७४ ॥
अन्तःस्थञ्च बहिःस्थञ्च धातुस्थञ्च विशेषतः ।
सर्वज्वरं निहन्त्याशु तथा वै दैर्घ्यरात्रिकम् ॥ ७५ ॥
ग्रहणीमतिसारं च कासं श्वासं सकामलम् ।
शोषं हन्यात्तथा शोथं मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ ७६ ॥
शूलमष्टाविधं हन्ति प्रमेहानपि विंशतिम् ।
प्लीहानमग्रमांसं च यकृतञ्च हलीमकम् ॥ ७७ ॥
पृथक्दोषांश्च विविधान समस्तान् विषमज्वरान् ।
तान् सर्वान् नाशयत्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥७८॥

दारुहल्दी, इन्द्रजौ, मजीठ, बडी कटेरी, देवदारु, गिलोय, भुईआमला, पित्तपापडा, अनन्तमूल, तगर, गजपीपल, कटेरी, नीमकी छाल, नागरमोथा, कूठ, सोंठ, पद्माख, कचूर, रामवाँसा, धूपसरल, त्रायमाणा, हडसंहारी, चिरायता, भिलावे, पाढ, कुशाकी जड, कुटकी, पीपल और धनियाँ इन सब ओषधियोंका यथाविधि काथ बनाकर शहद डालकर पान करे। यह काथ–वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, द्विदोषज, सतत, अत्यन्त विषम, आभ्यन्तर, बाह्य और धातुगतज्वर, विशेषकर दैर्घ्यरात्रिक (बहुतदिनोंतक रहनेवाला) ज्वर इन सब प्रकारके ज्वरोंको शीघ्र नष्ट करता है। तथा संग्रहणी, अतिसार, खाँसी, श्वास, कामला, शोष, शोथ, मन्दाग्नि, अरुचि, आठप्रकारका शूल, बीसप्रकारका प्रमेह, प्लीहा, अग्रमांस, यकृद्रोग, हलीमक,

वातादि भिन्नभिन्न दोषोंसे होनेवाले विविधप्रकारके ज्वर और सब प्रकारके विषमज्वरोंको यह क्वाथ इस प्रकार शीघ्र नष्ट करता है जैसे वज्र वृक्षोंको तत्काल नष्ट करदेता है ॥ ७१-७८ ॥

ऐकाहिकज्वरमें पटोलादिक्वाथ ।

पटोलारिष्टमृद्वीका श्यामाकं त्रिफला वृषम् ।
क्वाथ ऐकाहिकं हन्ति शर्करामधुयोजितम् ॥ ७९ ॥

परवल, नीमकी छाल, दाख, अनन्तमूल, त्रिफला और अडूसा इनका क्वाथ खाड और शहद मिलाकर पान करनेसे ऐकाहिकज्वर दूर होताहै ॥७९॥

गुडूच्यादि ।

गुडूचीमुस्तधात्रीणां कषायं वा समाक्षिकम् ।
प्रातःकालनिषेवेण विषमज्वरनाशनम् ॥ ३८० ॥

गिलोय, नागरमोथा और आमले इनका एकत्र क्वाथ बनाकर उसमें शहद डालकर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करनेसे विषमज्वर दूर होता है ॥ ३८० ॥

सन्ततज्वरमें कलिंगादि क्वाथ ।

कलिंगकं पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी ।
पिबेत् सन्ततज्वरे नित्यं किञ्चित्क्षौद्रेण संयुतम् ८१॥

सन्ततज्वरमें इन्द्रजौ, पटोलपात और कुटकी इनके क्वाथको थोडासा शहद मिलाकर पान करनेसे विशेष लाभ होता है ॥ ८१ ॥

सततज्वरमें पटोलादिक्वाथ ।

पटोलं सारिवा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी ।
क्वाथं कृत्वा पिबेत्प्रातः ज्वरी सततपीडितः ॥ ८२ ॥

सततज्वरसे पीडित रोगीको प्रतिदिन प्रातःकाल परवल, अनन्तमूल, नागरमोथा, पाढ और कुटकी इनका क्वाथ बनाकर पीना चाहिये ॥ ८२ ॥

अन्येद्युष्कज्वरमें निम्बादिक्वाथ ।

निम्बं पटोलं त्रिफला मृद्वीका मुस्तवत्सकौ ।
एषां क्वाथोऽन्येद्युष्कं ज्वरंहारी विनिश्चयः ॥ ८३ ॥

नीमके पत्ते, परबल, हरड, बहेडा, आमला, दाख, नागरमोथा और इन्द्रजौ इन ओषधियोंका क्वाथ अन्येद्युष्क (दूसरे दिन आनेवाले) ज्वरको निस्सन्देह दूर करता है ॥ ८३ ॥

तृतीयकज्वरमें किरातादिकाथ।

किराततिक्तममृता चन्दनं विश्वभेषजम्।
क्वाथ एषां पिबेत्प्रातर्नश्येत्तृतीयकं ज्वरम्॥ ८४॥

चिरायता, गिलोय, लालचन्दन और सोंठ इनका काढा बनाकर प्रतिदिन प्रातःकाल पानकरनेसे घोर तृतीयक (तिजारी) ज्वर नष्ट होता है॥ ८४॥

महौषधादिकाथ।

महौषधामृतामुस्तचन्दनोशीरधान्यकैः।
क्वाथस्तृतीयकं हन्ति शर्करामधुयोजितः॥ ८५॥

सोंठ, गिलोय,नागरमोथा, लालचन्दन, खस और धनियाँ इन ओषधियोंके द्वारा बनायाहुआ क्वाथ खाँड और शहद डालकर पीनेसे तृतीयक ज्वरको दूर करता है॥ ८५॥

उशीरादिकाथ।

उशीरं चन्दनं मुस्तं गुडूचीधान्यनागरम्।
अम्भसा क्वथितं पेयं शर्करामधुयोजितम्॥
ज्वरे तृतीयके देयं तृष्णादाहसमन्विते॥ ८६॥

तृतीयकज्वरमें तृषा और दाहके होनेपर खस, लालचन्दन, नागरमोथा, गिलोय, धनियाँ और सोंठ इन औषधियोंका काथ बनाकर खाँड और शहद मिलाकर पान करना चाहिये॥ ८६॥

चातुर्थिकज्वरमें वासादिकाथ।

वासाधात्रीस्थिरादारुपथ्यानागरसाधितः।
सितामधुयुतः क्वाथश्चातुर्थिकविनाशनः॥ ८७॥

अडूसेकी छाल, आमले, शालपर्णी, देवदारु, हरड और सोंठ इनके द्वारा सिद्ध कियाहुआ काथ मिश्री और शहद मिलाकर सेवन करनेसे चातुर्थिक (चौथिया) ज्वर नष्ट होता है॥ ८७॥

मुस्तादिकाथ।

मुस्तापाठाशिवाक्वाथश्चातुर्थिकज्वरापहः।
दुग्धेन त्रिफला पीता हन्ति चातुर्थिकं ज्वरम्॥ ८८॥

नागरमोथा, पाढ और हरड इन तीनोंका काथ चातुर्थिकज्वरको दूर करता है। अथवा दूधके साथ त्रिफलेका काथ पान करनेसे चातुर्थिक ज्वर दूर होता है॥ ८८॥

पथ्यादिक्काथ।

पथ्यास्थिरानागरदेवदारुधात्रीवृषैरुत्क्वथितः कषायः।
सितोपलामाक्षिकसंप्रयुक्तश्चातुर्थिकं हन्त्यचिरेण पीतः८९

हरड, शालपर्णी, सोंठ, देवदारु, आमले और अडूसा इन सबका क्काथ बनाकर मिश्री और शहद डालकर पानकरनेसे चातुर्थिक ज्वर शीघ्र दूर होताहै॥

अम्भोधरादिक्काथ।

अम्भोधरं छिन्नरुहा क्काथश्चामलकी तथा।
चातुर्थिकं ज्वरं घोरं नाशयेदेष निश्चयः॥ ३९० ॥

नागरमोथा, गिलोय और आमले इनका क्काथ भयंकर चातुर्थिक ज्वरको निश्चय दूर करता है॥ ३९०॥

अजाजी गुडसंयुक्ता विषमज्वरनाशिनी।
अग्निसादं जयेत्सम्यग् वातरोगांश्च नाशयेत्॥ ९१ ॥

जीरेका चूर्ण छः माशे, पुराना गुड छः माशे दोनोंको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे विषमज्वर मन्दाग्नि और समस्त वातरोग नष्ट होते हैं॥ ९१॥

रसोनकल्कं तिलतैलमिश्रं योऽश्नाति नित्यं विषमज्वरार्त्तः।
विमुच्यते सोऽप्यचिरज्वरेण वातामयश्चापि सुघोररूपैः९२॥

यदि विषमज्वरका रोगी प्रतिदिन लहसुनके कल्कको तिलके तेलमें भूनकर सेवन करे तो वह अल्पकालमें ही विषमज्वर और घोरवातरोगसे मुक्त होजाता है॥ ९२॥

गुडप्रगाढां त्रिफलां पिबेद्वा विषमार्दितः॥ ९३॥

अथवा विषमज्वरवाला मनुष्य हरड, बहेडा, आमला इनके समानभाग चूर्णको पुराने गुडमें मिलाकर सेवनकरे तो विषमज्वर दूर होता है॥ ९३॥

मूलिकाधारणादिकप्रयोग।

काकजङ्घा बला श्यामा ब्रह्मदण्डी कृताञ्जलिः।
पृश्निपर्णी त्वपामार्गस्तथा भृङ्गरजोऽष्टमः॥ ९४॥
एषामन्यतमं मूलं पुष्येणोद्धृत्य यत्नतः।
रक्तसूत्रेण संवेष्ट्य बद्धमैकाहिकं जयेत्॥ ९५॥

काकजंघा (मसी), खिरैंटी, अनन्तमूल, ब्रह्मदण्डी, लज्जावन्ती, पिठवन, चिराचिटा और भाँगरा इन आठोंमेंसे किसी एककी जडको पुष्यनक्षत्रमें उखा-

डकर लालडोरेमें बाँधकर हाथमें या गलेमें बाँधनेसे ऐकाहिक (रोजआनेवाले) ज्वर दूर होता है ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

अपामार्गजटा कट्यां लोहितैः सप्ततन्तुभिः ।
बद्धा वारे रवेस्तूर्णं ज्वरं हन्ति तृतीयकम् ॥ ९६ ॥

रविवारके दिन चिरचिटेकी जडको उखाडकर लालरंगके सात डोरोंसे बाँधकर कमरमें बाँधनेसे तृतीयकज्वर शीघ्र दूर होता है ॥ ९६ ॥

उलूकदक्षिणं पक्षं सितसूत्रेण वेष्टयेत् ।
बध्नीयात् वामकर्णे तु हरत्यैकाहिकं ज्वरम् ॥ ९७ ॥

उल्लूके दहने पंखको सफेद डोरेसे बाँधकर बायें कानमें बाँधनेसे ऐकाहिक ज्वर नष्ट होता है ॥ ९७ ॥

कर्कटस्य बिलोद्भूतमृदा तत्तिलकं कृतम् ।
ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ ९८ ॥

कैंकडेके बिलकी मिट्टीको लेकर उसको तिलक लगानेसे ऐकाहिकज्वर निस्सन्देह दूर होता है ॥ ९८ ॥

कर्णस्य मलजालेन वर्ति कृत्वा प्रयत्नतः ।
ज्वालयेत्तिलतैलेन कज्जलं ग्राहयेच्छनैः ॥
अञ्जयेन्नेत्रयुगलं त्र्याहिकज्वरशान्तये ॥ ९९ ॥

कानके मैलकी बत्ती बनाकर उसे तिलके तेलमें भिजोकर जलावे । फिर उसका कज्जल बनाकर नेत्रोंमें आँजे,इससे तृतीयकज्वर शान्त होता है॥९९॥

मूलं जयन्त्याः शिरसा धृतं सर्वज्वरापहम् ॥४००॥

सफेद अरणीकी जडको सिरमें बाँधनेसे सब प्रकारके पुराने ज्वर दूर होते हैं ॥ ४०० ॥

शिरीषपुष्पस्वरसो रजनीद्वयसंयुतः ।
नस्यं सर्पिःसमायोगात् ज्वरं चातुर्थिकं जयेत् ॥
चातुर्थिकहरं नस्यं मुनिद्रुमदलाम्बुना ॥ ४०१ ॥

सिरसके फूलोंके स्वरसमें हल्दी और दारुहल्दीका चूर्ण मिलाकर और उसमें थोडा घी डालकर नस्य देनेसे चातुर्थिकज्वर दूर होता है। अथवा अगस्तियाके पत्तोंको स्वरसका नस्य देनेसे चातुर्थिकज्वर नष्ट होता है ॥ ४०१ ॥

शैलूषमण्डनरजः पुरुषानुरूपं
शुक्लाङ्गवत्ससुरभीपयसा निपीतम् ।
आदित्यवारभवपालिदिने नराणां
चातुर्थिकं हरति कष्टमपि क्षणेन ॥ २ ॥

रविवारके दिन ज्वरकी वारी होनेपर रोगीकी अवस्थानुसार शुद्ध हरतालके चूर्णको सफेद वछडेवाली गायके दूधके साथ सेवन करावे । इससे दुस्साध्य भी चातुर्थिकज्वर क्षणभरमें शान्त होजाता है ॥ २ ॥

श्वेतार्ककरवीजस्य चाश्विन्यां मूलमुद्धरेत् ।
पीतं तण्डुलतोयेन पृथक् चातुर्थनाशनम् ॥ ३ ॥

अश्विनीनक्षत्रमें सफेद आक अथवा सफेद कनेरकी जडको उखाडकर चावलोंके जलमें पीसकर पान करनेसे चातुर्थिक (चौथिया) दूर होता है ये दोनों औषधि विषैली हैं. इसलिये एक रत्ती या आधी रत्तीसे अधिक एकमात्रामें नहीं देनी चाहिये. विशेषकर सफेदकनेरका व्यवहार तो बडी सावधानीसे करना चाहिये ॥ ३ ॥

अम्लोटजसहस्रेण दलेन सुकृतां पिबेत् ।
पेयां घृतप्लुतां व्याधिचातुर्थिकहरीं त्र्यहम् ॥ ४ ॥

अम्लोट (अमरूत) के.एक हजार पत्तोंके साथ दुगुने चावलोंकी पेया बनाकर उसमें घृत डालकर तीन दिन तक पान करनेसे चातुर्थिकज्वर शमन होता है ॥ ४ ॥

काकमाचीभवं मूलं कर्णे बद्धं निशाज्वरम् ।
निहन्ति नात्र सन्देहो यथा सूर्योदयस्तमः ॥ ५ ॥

मकोयकी जडको कानमें बाँधनेसे रात्रिमें आनेवाला ज्वर इस प्रकार निस्सन्देह दूर होजाता है, जैसे सूर्यका उदय होनेसे अन्धकार ॥ ५ ॥

मूलकं केशराजस्य कृत्वा तत्सप्तखण्डकम् ।
आर्द्रकैः सह भुञ्जीत सर्वज्वरविनाशनम् ॥ ६ ॥

भाँगरेकी जडके सात टुकडे करके उनमेंसे एक एक टुकडा अदरखके साथ खानेसे सर्वप्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

कृष्णाम्बरदृढावद्धगुग्गुलूलूकपुच्छजः ।
धूपश्चातुर्थकं हन्यात् तमः सूर्य इवोदितः ॥ ७ ॥

भाँगरेके रसमें कपडेको काला रंगकर उसमें गूगल और उल्लूकी पूँछको दृढतासे बाँधकर उसकी धूप देनेसे चातुर्थिक ज्वर सूर्योदयसे अन्धकारके समान शीघ्र दूर होजाता है ॥ ७ ॥

" गङ्गाया उत्तरे तीरे अपुत्रस्तापसो मृतः ।
तस्मै तिलोदकं दद्यात् मुञ्चत्वैकाहिको ज्वरः ॥"
एतन्मत्रेण चाश्वत्थपत्रहस्तेन तर्पयेत् ॥ ८ ॥

गंगाके उत्तर तटपर जो पुत्रहीन तपस्वी मरगया है, उसके लिये तिलाञ्जलि देवे अथवा ' गंगाया उत्तरे तीरे ' इत्यादि मंत्रसे पीपलका पत्ता हाथमें लेकर तर्पण करे इससे ऐकाहिक ज्वर दूर होता है ॥ ८ ॥

" ॐ बाणयुद्धे महाघोरे द्वादशार्कसमप्रभे ।
जातोऽसौ सुमहावीर्यो मुञ्चत्वैकाहिको ज्वरः ॥"
लिखित्वाश्वत्थपत्रे तु बाहौ मंत्रं प्रधापयेत् ॥ ९ ॥

" ॐ बाणयुद्धे " इत्यादि मंत्रको पीपलके पत्तेपर लिखकर पाठ करनेके पश्चात् बाहुमें बाँधनेसे ऐकाहिकज्वर दूर होता है ॥ ९ ॥

" समुद्रस्योत्तरे तीरे द्विविदो नाम वानरः ।"
ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति लिखितं यस्तु पश्यति ॥४१०॥

" ॐ समुद्रस्येत्यादि " मन्त्रको पीपलके पत्तेपर लिखकर जो मनुष्य देखता है तो उसका ऐकाहिक ज्वर नष्ट होजाता है ॥ ४१० ॥

कर्म साधारणं जह्यात् तृतीयकचतुर्थकौ ।
आगन्तुरनुबन्धो हि प्रायशो विषमज्वरे ॥ ११ ॥

साधारण कर्म करने अर्थात् जप, होम, स्तुति पाठ आदि मांगलिक कार्य करनेसे और क्काथ आदि औषधियोंके सेवनसे तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर दूर होता है । क्योंकि, विषमज्वर प्रायः आगन्तुक (भूतादिकी बाधा) से हुआ करता है इसलिये दैविक क्रियाद्वारा विषमज्वरकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥११॥

" ॐ नमो भगवते छिन्धि छिन्धि अमुकस्य ज्वरस्य शिरःप्रज्वलितपरशुपाणये पुरुषाय फट् ॥ " एतन्मन्त्रस्य धारणात् ज्वरः सर्वो विनश्यति ॥ १२ ॥

इस मन्त्रको भोजपत्रपर लिखकर हाथमें बाँधनेसे सब प्रकारका ज्वर दूर होता है ॥ १२ ॥

"ॐ विद्युद्दानन ह्रीं फट् स्वाहा" ॥ १३ ॥

एतन्मन्त्रं चूर्णलिप्ते ताम्बूलीपत्रे लिखित्वा तत्पत्रं संचर्व्य भक्षयतो दिनत्रयाभ्यन्तरे ज्वरशान्तिर्भवति ॥ १४ ॥

उक्त मन्त्रको चूनेसे लिप्त ताम्बूल पत्रपर लिखकर उस पानको खूब चबाकर खानेसे तीनदिनमें ज्वर शान्त होजाता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

सोमं सानुचरं देवं समातृगणमीश्वरम्।
पूजयन्प्रयतः शीघ्रं मुच्यते विषमज्वरात् ॥ १५ ॥
विष्णुं सहस्रमूर्द्धानं चराचरपतिं विभुम्।
स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरः सर्वो व्यपोहति ॥ १६ ॥
ब्रह्माणमश्विनाविन्द्रं हुतभक्ष्यं हिमाचलम्।
गङ्गां मरुद्गणांश्चेष्टान् पूजयेज्जयति ज्वरम् ॥ १७ ॥
भक्त्या मातुः पितुश्चैव गुरूणां पूजनेन च।
ब्रह्मचर्येण तपसा पुराणश्रवणेन च ॥ १८ ॥
जपहोमप्रदानेन सत्येन नियमेन च।
ज्वराद्विमुच्यते शीघ्रं साधूनां दर्शनेन च ॥ १९ ॥

नन्दी, भृङ्गी आदि अनुचरवर्ग, चन्द्रमा और षोडशमातृकाओं सहित शिव और पार्वतीका भक्तिपूर्वक पूजन करनेसे मनुष्य विषमज्वरसे शीघ्र मुक्त होजाता है। तथा चराचरके स्वामी सहस्रशीर्ष विष्णुभगवान्‌का षोडशोपचार पूजन करने और विष्णुसहस्रनामका पाठ करनेसे सर्वप्रकारके ज्वर दूर होजाते हैं। एवं ब्रह्मा, अश्विनीकुमार, इन्द्र, अग्नि, हिमालय, गङ्गा, मरुद्गण और अपने इष्टदेवका अर्चन करनेसे और माता, पिता, गुरु आदि पूज्य पुरुषोंका भक्तिपूर्वक सत्कार तथा सेवा शुश्रूषादि पूजन करनेसे ज्वर दूर होता है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्यधारण करने, तप करने, पुराणादि धर्मशास्त्रोंका श्रवण करने, जप, होम, दान, सदनुष्ठान और साधु महात्माओंका दर्शन करनेसे भी ज्वर शीघ्र नष्ट होजाता है ॥ १५-१९ ॥

अष्टाङ्गधूप।

पलङ्कषा बिम्बपत्रं वचा कुष्ठं हरीतकी।
सर्षपाः सयवाः सर्पिर्धूपनं ज्वरनाशनम् ॥ ४२० ॥

गूगल, नीमके पत्ते, वच, कूठ, हरड, सफेद सरसों, जौ और घी इन सबकी धूप बनाकर देनेसे विषमज्वर नष्ट होता है ॥ ४२० ॥

अपराजिताधूप।

पुरध्यामवचासर्जनिम्बार्कागुरुदारुभिः।
सर्वज्वरहरो धूपः कार्योऽयमपराजितः ॥ २१ ॥

गूगल, गन्धेजघास, वच, राल, नीमके पत्ते, आक, अगर, देवदारु इन सबको एकत्र करके धूपदेवे तो सम्पूर्ण ज्वर दूर होजाते हैं। यही अपराजिता धूप है२१

माहेश्वरधूप।

हिङ्गुलं देवकाष्ठं च श्रीवेष्टं घृतमेव च।
गव्यास्थीनि तथाध्यामं निर्माल्यं कटुरोहिणी॥२२॥
सर्षपं निम्बपत्राणि पिच्छाहिकंचुकं तथा।
मार्जारविष्ठा गोशृङ्गं मदनस्य फलानि च ॥ २३ ॥
द्वे बृहत्यौ वचा चैव कार्पासास्थितुषास्तथा।
छागगोमायुविट् चैव हस्तिदन्तस्तथैव च ॥ २४ ॥
एतत्सर्वं समाहृत्य छागमूत्रेण भावयेत्।
उलूखले तु संकुट्य स्थापयेन्मृण्मये शुभे ॥ २५ ॥
घ्राणमात्रेण धूपोऽयं दीयते यत्र वेश्मनि।
न तत्र सर्पास्तिष्ठन्ति न पिशाचा न राक्षसाः॥२६॥
एष माहेश्वरो धूपः सर्वज्वरविनाशनः।
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च त्र्याहिकं च चतुर्थकम् ॥
एवमादीन् ज्वरान्सर्वान् नाशयेन्नात्र संशयः ॥ २७ ॥

"ॐ नमो भगवते रुद्राय उमापतये सम्पन्नाय नन्दिकेश्वराय" इति मन्त्रेणाभिमन्त्रयेत् ॥

सिंगरफ, देवदारु, धूप, सरल, (लोवान) गायका घी, गौकी अस्थि, सुगन्धतृण, शिवका निर्माल्य, कुटकी, सफेद सरसों, नीमके पत्ते मोरका पंख, साँपकी कैंचली, बिलावकी विष्ठा, गौका सींग, मैनफल, कटेरी, वडी कटेरी, वच, कपासके वीज (विनौले) धानोंकी भूसी, बकरेकी और गीदडकी विष्ठा और हाथीदाँत इन सबको एकत्र करके बकरेके मूत्रमें भावना देवे। फिर ओखलीमें कूटकर मिट्टीके उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे। पश्चात् "ॐनमो भगवते रुद्राय" इत्यादि मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके इसकी धूपदेने-

मात्रसेही उस घरमेंके समस्त साँप, पिशाच, राक्षस, भूतप्रेत आदि भाग जाते हैं। यह माहेश्वर धूप ऐकाहिक, द्व्याहिक, तिजारी, चौथिया आदि सब प्रकारके ज्वरोंको निस्सन्देह दूर करती है॥ ४२२-४२७॥

इति सामान्यज्वरचिकित्सा।

जीर्णज्वरकी चिकित्सा।

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः क्वाथश्छिन्नरुहोद्भवः।
जीर्णज्वरकफध्वंसी पंचमूलीकृतोऽथवा॥ १॥

गिलोयके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर अथवा बृहत्पंचमूल (बेलकी छाल, सोनापाठेकी छाल, कुम्भेरकी छाल, पाढलकी छाल और अरणीकी छाल) के काढेमें पीपलका चूर्ण डालकर पानकरनेसे पुराना ज्वर और कफ दूर होताहै१

पिप्पलीमधुसम्मिश्रं गुडूचीस्वरसं पिबेत्।
जीर्णज्वरकफप्लीहकासारोचकनाशनम्॥ २॥

गिलोयके स्वरसमें पीपलका चूर्ण और शहद मिलाकर पानकरनेसे जीर्ण ज्वर, कफ, प्लीहा (तिल्ली,) खाँसी, अरुचि आदि सब रोग दूर होते हैं॥२॥

अस्थिकर्कटपञ्चाङ्गं शुण्ठ्या चिरज्वरप्रणुत्॥ ३॥
"अस्थिकर्कटस्य मूलवल्कलपत्रपुष्पफलं संक्षुद्य पोटलीं बद्ध्वा दग्ध्वा रसं गृहीत्वा शुण्ठ्या पेयः।"

अस्थिकर्कट वृक्षके पंचांग (जड, छाल, पत्ते, फल, पत्र) इस पंचाङ्गको एकत्र कूटकर उसको कपडेकी पोटलीमें बाँधकर पुटपाककी विधिसे अग्निमें पकावे। उसमेंसे जो रस निकले उसको लेकर उसमें सोंठका चूर्ण डाल कर पानकरनेसे बहुत कालका पुराना जीर्णज्वर दूर होता है॥ ३॥

गुडूचीपर्पटो भेकपर्णी च हिलमोचिका।
पटोलं पुटपाकेन रस एषां मधुप्लुतः॥ ४॥
वातपित्तज्वरं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम्।
मधुना सर्वज्वरनुच्छेफालीदलजो रसः॥ ५॥

गिलोय, पित्तपापडा, मण्डूकपर्णी, हुलहुल और परवल इन सबको एकत्र पुटपाककी विधिसे पकाकर और उसका रस निकालकर शहद डालकर पान करे। यह प्रयोग बहुत पुराने और दारुण वातपित्तजन्य ज्वरको नष्ट करता

है । इसी प्रकार हारसिंगारके पत्तोंका रसमें शहद डालकर पान करनेसे सब प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

निदिग्धिकादि क्वाथ ।

निदिग्धिकानागरकामृतानां
क्वाथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम् ।
जीर्णज्वरारोचककासशूल-
श्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसेषु ॥ ६ ॥
हन्त्यूर्द्धगामयं प्रायः सायं तेनोपयुज्यते ।
एतद्रात्रिज्वरे सायमन्यथा प्रातरिष्यते ॥
पित्तानुबन्धे सन्त्यज्य पिप्पलीं प्रक्षिपेन्मधु ॥ ७ ॥

कटेरी, सोंठ, और गिलोय इन तीनों ओषधियोंका एकत्र क्वाथ बनाकर उसमें पीपलका चूण डालकर पान करनेसे जीर्णज्वर, अरुचि, खाँसी, शूल, श्वास, मन्दाग्नि, अर्दित और पीनस रोगमें विशेष उपकार होता है। इस क्वाथको प्रायः ऊर्ध्वगत रोगोंमें सायंकाल सेवन करना चाहिये। और उसी प्रकार रात्रिज्वरमें इस क्वाथको सायङ्कालमें सेवन करना चाहिये। तथा अन्यान्य रोगोंमें प्रातःसमय सेवन करना चाहिये। और पित्तप्रधान रोगोंमें इसमें पीपलके चूर्णको न डालकर केवल शहद डालकर पीना चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

रात्रिज्वरमें गुडूच्यादिक्वाथ ।

गुडूची मुस्तभूनिम्बं धात्री क्षुद्रा च नागरम् ।
बिल्वादिपञ्चमूलञ्च कटुकेन्द्रयवासकम् ॥ ८ ॥
निशाभवं ज्वरं वातकफपित्तसमुद्भवम् ।
चिरोत्थं द्वन्द्वजं हन्ति सकणं मधुसंयुतम् ॥ ९ ॥

गिलोय, नागरमोथा, चिरायता, आमले, कटेरी, सोंठ, बेलकी छाल, शोनापाठेकी छाल, कुम्भेरकी छाल, पाढलकी छाल, अरणीकी छाल, कुटकी, इन्द्रजौ और जवासा इन ओषधियोंके क्वाथमें पीपलका चूर्ण और शहद मिलाकर पान करनेसे वातज, पित्तज, कफज, द्विदोषज और चिरकालसे उत्पन्न हुआ रात्रिज्वर निवृत्त होता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

द्राक्षादि ।

द्राक्षामृता शठी शृङ्गी मुस्तकं रक्तचन्दनम् ।
नागरं कटुका पाठा भूनिम्बः सदुरालभः ॥ १० ॥

उशीरं धान्यकं पद्मं बालकं कण्टकारिका।
पुष्करं पिचुमर्दश्च दशाष्टाङ्गमिदं स्मृतम्॥
जीर्णज्वरारुचिश्वासकासश्वयथुनाशनम्॥ ११॥

दाख, गिलोय, कचूर, काकडासिंगी, नागरमोथा, लालचन्दन, सोंठ, कुटकी, पाढ, चिरायता, धमासा, खस, धनियाँ, पद्माख, सुगन्धवाला, कटेरी, पोहकरमूल और नीमकी छाल, इन ओषधियोंको अष्टादशाङ्ग कहते हैं। इनका बनायाहुआ क्राथ जीर्णज्वर, अरुचि, श्वास, खाँसी, सूजन आदि रोगोंको दूर करता है॥ १०॥ ११॥

प्लीहज्वरमें निदिग्धिकादि।

निदिग्धिकागणः पथ्या तथा रोहितको मतः।
क्राथं कृत्वा क्षिपेत्तत्र यवक्षारं कणायुतम्॥
एतस्य पानमात्रेण प्लीहज्वरविनाशनम्।॥ १२॥
(निदिग्धिकागणः-स्वल्पपञ्चमूलम्)

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, बडी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखुरू, हरड और रोहिडा वृक्षकी छाल इन औषधियोंका क्राथ बनाकर उसमें जवाखार और पीपलका चूर्ण डालकर पानकरनेसे प्लीहज्वर (तिल्ली) दूर होताहै। (लघु पंचमूलको निदिग्धिकादि गण कहते हैं)॥ १२॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां चिकित्साप्रकरणम्॥

अथ चूर्णप्रकरणम्।

सुदर्शनचूर्ण।

कालीयकन्तु रजनी देवदारु वचा घनम्।
अभया धन्वयासश्च शृङ्गीक्षुद्रामहौषधम्॥ १॥
त्रायन्ती पर्पटं निम्बं ग्रन्थिकं बालकं शठी।
पौष्करं मागधी मूर्वा कुटजं मधुयष्टिका॥ २॥
शिग्रूत्पलं सेन्द्रयवं वरी दार्वी कुचन्दनम्।
पद्मकं सरलोशीरं त्वचं सौराष्ट्रिका स्थिरा॥ ३॥

यमान्यतिविषा बिल्वं मरिचं गन्धपत्रकम् ।
धात्री गुडूची कटुकं सचित्रकपटोलकम् ॥ ४ ॥
कलसी चैव सर्वाणि समभागानि कारयेत् ।
सर्वद्रव्यस्य चार्धं तु कैरातं संप्रकल्पयेत् ॥ ५ ॥
एतत्सुदर्शनं नाम ज्वरान् हन्ति न संशयः ।
पृथक् दोषांश्च विविधान् समस्तान् विषमज्वरान् ॥ ६ ॥
प्राकृतं वैकृतं चैव सौम्यं तीक्ष्णमथापि वा ।
अन्तर्गतं बहिःस्थं च निरामं साममेव च ॥ ७ ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ।
नानादेशोद्भवं चैव वारिदोषभवं तथा ॥ ८ ॥
विरुद्धभेषजैर्भूतं ज्वरमाशु व्यपोहति ।
प्लीहानं यकृतं गुल्मं हन्त्यवश्यं न संशयः ॥ ९ ॥
यथा सुदर्शनं चक्रं दानवानां निषूदनम् ।
तथा ज्वराणां सर्वेषामिदमेव निगद्यते ॥ १० ॥

काली अगर, हल्दी, देवदारु, वच, नागरमोथा, हरड, धमासा, काकडासिंगी, कटेरी, सोंठ, त्रायमाण, पित्तपापडा, नीमकी छाल, पीपलामूल, सुगन्धवाला, कचूर, पोहकरमूल, पीपल, मूर्वा, कुडेकी छाल, मुलैठी, सैंजनेके बीज, कुमुद, इन्द्रजौ, शतावर, दारुहल्दी, लालचन्दन, पद्माख, धूपसरल, खस, दालचीनी, गोपीचंदन, शालपर्णी, अजवायन, अतीस, बेलकी छाल, मिरच, गन्धेजघास, आमले, गिलोय, कुटकी, चीता, पटोलपात और पृश्निपर्णी इन सब ओषधियोंको समान भाग लेवे और सबसे आधाभाग चिरायता लेकर सबका एकत्र वारीक चूर्ण करके कपडेमें छानलेवे । इसको सुदर्शन चूर्ण कहते हैं । इस चूर्णको नित्य ३–४ माशे परिमाण सेवन करनेसे ये सब प्रकारके ज्वरोंको निस्सन्देह दूर करता है । वात, कफ आदि पृथक् पृथक् दोषोंसे अथवा सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्नहुए सर्व प्रकारके विषमज्वर तथा प्राकृत, विकृत, सौम्य अथवा तीक्ष्णज्वर, आभ्यन्तरज्वर, बाह्यज्वर, निराम और आमयुक्तज्वर इन आठों प्रकारके ज्वरोंको यह चूर्ण नष्ट करदेता है, चाहे यह ज्वर साध्य हों अथवा असाध्य हों तथा देशदेशान्तरोंके दोषसे होनेवाले अथवा जलके दोषसे होनेवाले और प्रकृति व देश, काल विरुद्ध औषधियोंके सेवनसे होने-

वाले ज्वरोंको शीघ्र शमन करता है। प्लीहा, यकृत, गुल्मादि रोगोंको भी निस्सन्देह दूर करदेता है। जैसे-सुदर्शनचक्र दैत्य-दानवोंका संहार करनेके लिये प्रसिद्ध है, उसी प्रकार यह सुदर्शनचूर्ण भी सम्पूर्ण ज्वरोंका विघातक कहाजाता है ॥ १-१० ॥

ज्वरभैरवचूर्ण ।

नागरं त्रायमाणा च पिचुमर्दो दुरालभा ।
पथ्या मुस्तं वचा दारु व्याघ्री शृङ्गी शतावरी ॥ ११ ॥
पर्पटी पिप्पलीमूलं विशाला पुष्करं शठी ।
मूर्वा कृष्णा हरिद्रे द्वे लोध्रचन्दनमुष्ककम् ॥ १२ ॥
कुटजस्य फलं वल्कं यष्टी मधुकचित्रकम् ।
शोभाञ्जनं बला चातिविषा च कटुरोहिणी ॥ १३ ॥
मुशली पद्मकाष्ठं च यमानी शालपर्णिका ।
मरिचं चामृता बिल्वं बालं पङ्कस्य पर्पटी ॥ १४ ॥
तेजपत्रं त्वचं धात्री पृश्निपर्णी पटोलकम् ।
गन्धकं पारदं लौहमभ्रकं च मनःशिला ॥ १५ ॥
एतेषां समभागेन चूर्णमेव विनिर्दिशेत् ।
तदर्द्धं प्रक्षिपेत्तत्र चूर्णं भूनिम्बसम्भवम् ॥ १६ ॥
मात्रामस्य प्रयुञ्जीत दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ।
चूर्णं भैरवसंज्ञं तु ज्वरान् हन्ति न संशयः ॥ १७ ॥
पृथक्दोषांश्च विविधान् समस्तान्विषमज्वरान् ।
द्वन्द्वजान् सन्निपातोत्थान् मानसानपि नाशयेत् ॥ १८ ॥
प्राकृतं वैकृतञ्चैव सौम्यं तीक्ष्णमथापि वा ।
अन्तर्गतं बहिःस्थञ्च निरामं साममेव च ॥ १९ ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः ।
नानादेशोद्भवञ्चैव वारिदोषभवं तथा ॥ २० ॥
विरुद्धभेषजैर्जातं ज्वरमाशु व्यपोहति ।
अग्निमान्द्यं यकृत्प्लीहपाण्डुरोगमरोचकम् ॥ २१ ॥
उदराण्यन्त्रवृद्धिश्च रक्तपित्तं त्वगामयम् ।

श्वयथुञ्च शिरःशूलं वातामयरुजापहम् ॥
ज्वरभैरवसंज्ञन्तु भैरवेण कृतं शुभम् ॥ २२ ॥

सोंठ, त्रायमाणा, नीमकी छाल, धमासा, हरड, नागरमोथा, वच, देवदारु, कटेरी, काकडासिंगी, शतावर, पित्तपापडा, पीपलामूल, इन्द्रायनकी जड, पोहकरमूल, कचूर, मूर्वा, पीपल, हल्दी, दारुहल्दी, लोध, रक्तचन्दन, मोखावृक्ष, इन्द्रजौ, कुडेकी छाल, मुलैठी, चीता, सैंजनेके बीज, खिरैंटी, अतीस, कुटकी, मुसली, पद्माख, अजवायन, शालपर्णी, कालीमिर्च, गिलोय, बेलकी छाल, सुगन्धवाला, पड्कपर्पटी, तेजपात, दारचीनी, आमले, पृश्निपर्णी, पटोलपात, गन्धक और पारेकी कज्जली, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और मैनसिलकी भस्म इन सब ओषाधियोंको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण कर लेवे और उसमें समस्त चूर्णसे आधाभाग चिरायतेका चूर्ण मिलाकर सबको बारीक पीसकर कपडछान करके रखलेवे । इस चूर्णको दोषोंका बलाबल देखकर उचित मात्रासे प्रयोग करना चाहिये । यह भैरवनामक चूर्ण सर्व प्रकारके ज्वरों अर्थात् वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, त्रिदोषज, विषमज्वर, जीर्णज्वर और मानसिक ज्वरको नष्ट करता है । तथा प्राकृत, वैकृत, सौम्य, तीक्ष्ण, अन्तर्गत, बहिर्गत, निराम, साम इन आठोंप्रकारके ज्वरोंको तथा साध्यासाध्य ज्वरोंको भी यह अवश्य दूर करता है तथा अनेक देशोंके जलवायुके दोषसे उत्पन्न हुए और विरुद्ध औषधियोंको सेवन करनेसे उत्पन्नहुए ज्वरोंको शीघ्र नष्ट करता है । एवं मन्दाग्नि, यकृत्‌विकार, प्लीहावृद्धि, पाण्डुरोग, अरुचि, उदरसम्बन्धीरोग, अन्त्रवृद्धि, रक्तपित्त, त्वचाके रोग, सूजन, शिरकी पीडा और सर्व प्रकारके वातरोगोंको भी नष्ट करता है । इस उत्तम चूर्णको श्रीभैरावचार्यने निर्माण किया है ॥ ११–२२ ॥

ज्वरनागमयूरचूर्ण ।

लौहाभ्रटङ्कणं ताम्रं तालकं वज्रमेव च ।
शुद्धसूतं गन्धकञ्च शिग्रूबीजं फलत्रिकम् ॥ २३ ॥
चन्दनातिविषा पाठा वचा च रजनीद्वयम् ।
उशीरं चित्रकं देवकाष्ठञ्च सपटोलकम् ॥ २४ ॥
जीवकर्षभकाजाज्यस्तालीशं वंशलोचना ।
कण्टकार्याः फलं मूलं शठी पत्रं कटुत्रयम् ॥ २५ ॥

गुडूचीसत्त्वधन्याकं कटुकाक्षेत्रपर्पटी।
मुस्तकं बालकं बिल्वं यष्टीमधुसमं समम् ॥ २६ ॥
भागाच्चतुर्गुणं देयं कृष्णजीरस्य चूर्णकम्।
तत्समं तालपुष्पञ्च चूर्णं दण्डोत्पलाभवम् ॥ २७ ॥
कैरातं तत्समं देयं तत्समं चपलाभवम्।
एतच्चूर्णं समाख्यातं ज्वरनागमयूरकम् ॥ २८ ॥
प्रतिमाषमितं खाद्यं युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम्।
सन्ततादिज्वरं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः॥२९॥
क्षयोद्भवञ्च धातुस्थं कामशोकोद्भवं ज्वरम्।
भूतावेशज्वरं चैवमभिचारसमुद्भवम् ॥ ३० ॥
दाहशीतज्वरं घोरं चातुर्थ्यादिविपर्ययम्।
जीर्णं च विषमं सर्वं प्लीहानमुदरं तथा ॥ ३१ ॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं हन्ति न संशयः।
भ्रमं तृष्णां च कासं च शूलानाहौ क्षयन्तथा ॥ ३२ ॥
यकृतं गुल्मशूलं च आमवातं निहन्ति च।
त्रिकपृष्ठकटीजानुपार्श्वानां शूलनाशनम् ॥
अनुपानं शीतजलं न देयमुष्णवारिणा ॥ ३३ ॥

लोहभस्म, अभ्रकभस्म, सुहागा, ताम्रभस्म, हरतालभस्म, वंगभस्म, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धककी कज्जली, सैंजनेके बीज, त्रिफला, लालचन्दन, अतीस, पाढ, वच, हल्दी, दारुहल्दी, खस, चीतेकी जड, देवदारु, पटोलपात, जीवक, ऋषकम, कालाजीरा, तालीसपत्र, वंशलोचन, कटेरीके फल, कटेरीकी जड, कचूर, तेजपात, त्रिकुटा, गिलोयका सत्त्व, धनियाँ, कुटकी, पित्तपापडा, नागरमोथा, सुगन्धवाला, बेलकी छाल और मुलैठी इन सब ओषधियोंको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करके कपडेमें छानलेवे। फिर इस चूर्णमें कालेजीरेका चूर्ण, ताडकी जटाओंका क्षार, श्वेतदण्डोत्पल, चिरायता और भाँग इन प्रत्येकका चूर्ण उपर्युक्तचूर्णसे चौगुना २ मिलाकर शीशीमें भरकर रखदेवे। इसको ज्वरनागमयूरचूर्ण कहते हैं। इस चूर्णको प्रतिदिन एक एक माशा परिमाण अथवा दोषोंके बलाबलके अनुसार मात्रामें युक्तिपूर्वक

न्यूनाधिकता करके सेवनकरे। इसपर शीतलजलका अनुपान करे, उष्ण जलका इसपर कदापि अनुपान न करे। यह चूर्ण साध्य अथवा असाध्य सन्तत आदि ज्वर, क्षयोत्पन्नज्वर, धातुगत अथवा काम शोकादिसे उत्पन्नहुए ज्वर, भूतबाधा या अभिचारआदिजन्यज्वर, घोर दाह और शीतयुक्तज्वर, चातुर्थिकज्वर, जीर्णज्वर, सब प्रकारके विषमज्वर, तथा प्लीहारोग, उदररोग, कामला, पाण्डुरोग, शोथ, भ्रम, तृषा, खाँसी, शूल, आनाह, क्षय, यकृत्‌रोग, गुल्मशूल, आमवात एवं त्रिकस्थान, पृष्ठवंश, कमर, जानु और पार्श्वभाग (पसली) इन स्थानोंकी पीडा इत्यादि समस्त रोगोंको शीघ्र नष्टकरताहै २३-३२

इति भैषज्यरत्नावल्यां चूर्णप्रकरणम्।

अथ रसप्रकरणम्।

नवज्वरआदिमें रसोंका प्रयोग।

न दोषाणां न रोगाणां न पुंसाञ्च परीक्षणम्।
न देशस्य न कालस्य कार्यं रसचिकित्सिते ॥ १ ॥

रसद्वारा चिकित्सा करनेपर वातादिदोष, रोग, रोगी मनुष्य, देश और काल इनका कुछ भी विचार नहीं करना चाहिये ॥ १ ॥

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो न जानाति रसं यथा।
सर्वं तस्योपहासाय धर्महीनो यथा बुधः ॥ २ ॥

जो मनुष्य सम्पूर्ण शास्त्रोंके मर्मको भलीभाँति जानताहै, किन्तु रसचिकित्सासे अनभिज्ञ है, वह धर्महीन पण्डितके समान हास्यास्पद होताहै ॥ २ ॥

अनुपानै रसा योज्या देशकालानुसारिभिः।
दोषघ्नैर्मधुना वापि केवलेन जलेन वा ॥ ३ ॥

रसादिओषधियोंको देश, काल, पात्र और दोषोंके बलाबलके अनुसार दोषनाशकद्रव्योंके अनुपानके साथ अथवा शहद या केवल शीतल जलके अनुपानसे सेवन करना चाहिये ॥ ३ ॥

ये रसाः पित्तसंयुक्ताः प्रोक्ताः सर्वत्र शम्भुना।
जलसेकावगाहाद्यैर्बलिनस्ते तु नान्यथा ॥ ४ ॥

रसजनितविदाहे शीततोयाभिषेको
मलयजघनसारालेपनं मन्दवातः ।
तरुणदधिसिताढ्यं नारिकेलीफलाम्भो
मधुरशिशिरपानं शीतमन्यच्च शस्तम् ॥ ५ ॥

जो रस मत्स्य आदिके पित्तकी भावना देकर सिद्ध किये हैं, उनके सेवन करनेके पश्चात् जल सेचन (जलका सींचना) और अवगाहन (नदी आदिमें स्नान करना) आदि क्रियाओंके करनेसे उनके गुण बढजाते हैं और इन क्रियाओंके न करनेसे वे रस प्रायः गुणहीन होजाते हैं।रसोंके सेवन करनेसे दाह उत्पन्न होनेपर शरीरपर शीतलजलका अभिषेक, श्रीखण्ड, चन्दन, कपूर आदिका प्रलेप, शीतल मन्द वायुका सेवन, मिश्री मिलाकर ताजे दधिका सेवन, नारियलके कच्चेफलका जलपान,मधुर और शीतल ऐसे पदार्थोंका सेवन और इसी प्रकार अन्यान्य शीतोपचार करने उपयोगी हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

हिंगुलेश्वर ।

तुल्यांशं मर्दयेत्खल्वे पिप्पलीं हिङ्गुलं विषम् ।
द्विगुञ्जा मधुना देया वातज्वरनिवृत्तये ॥ ६ ॥

पीपल, सिंगरफ और शुद्ध मीठा तेलिया इन तीनोंको समान भाग लेकर खरलमें डालकर जलके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे. इनमेंसे एक एक गोली शहदके साथ देनेसे वातज्वर निवृत्त होता है ॥६॥

बृहद्धिंगुलेश्वर ।

हिङ्गुलं च विषं व्योषं टङ्कणं नागराह्वयम् ।
जयपालसमायुक्तं सद्योज्वरविनाशनम् ॥ ७ ॥

शुद्ध सिंगरफ, शुद्ध मीठातेलिया, सोंठ, मिरच, पीपल, सुहागा, सोंठ और जमालगोटा सबको समानभाग लेकर जलके योगसे खरलकरके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंको शीतलजलके अनुपानसे सेवन करनेपर नवीनज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ ७ ॥

शीतभंजीरस ।

रसहिङ्गुलगन्धश्च जैपालं सम्मितं त्रिभिः ।
दन्तीक्काथेन सम्मर्द्य रसो ज्वरहरः परः ॥ ८ ॥

आर्द्रकस्वरसेनाथ दापयेद्रक्तिकाद्वयम् ।
नवज्वरं महाघोरं नाशयेद्यामसात्रतः ॥ ९ ॥
शर्करादधिभक्तञ्च पथ्यं देयं प्रयत्नतः ।
शीततोयं पिबेच्चानु इक्षुर्मुद्गरसो हितः ॥
शीतभञ्जीरसो नाम्ना सर्वज्वरकुलान्तकृत ॥ १० ॥

पारा,गन्धक और सिंगरफ ये प्रत्येक एक एक तोला और शुद्ध जमालगोटा तीन तोले लेकर सबको दन्तीके काथके साथ खूब खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस रसकी एक एक गोली अदरखके स्वरसके या मधुके साथ देनेसे सब प्रकारका नवीन ज्वर दूर होताहै । यह रस अत्यन्त भयंकर नवीनज्वरको एक प्रहरमें ही दूर करदेताहै । इस रसको सेवन करनेके पश्चात् दही और मिश्री मिलाकर भातका पथ्य देना चाहिये तथा इसपर शीतलजल ईखका रस तथा मूँगकायूष पानकरना अत्यन्त हितकर है । यह शीतभंजी नामकरस सर्वप्रकारके ज्वरोंको समूल नष्ट करनेवालाहै ॥ ८-१०॥

तरुणज्वरारि ।

जैपालगन्धं विषपारदं च तुल्यं कुमारीस्वरसेन मर्द्यम् ।
अस्य द्विगुञ्जा हि सितोदकेन ख्यातो रसोऽयं तरुणज्वरारिः
दातव्य एषोऽहनि पञ्चमे वा षष्ठेऽथवा सप्तम एव वापि ।
जाते विरेके विगतज्वरः स्यात् पटोलमुद्गाम्बुनिषेवणेन १२

जमालगोटा, गन्धक, शुद्ध मीठातेलिया और पारा सबको समानभाग लेकर घीग्वारके रसमें खरलकरके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे एक एक गोली मिश्रीके शर्बतके साथ सेवन करनी चाहिये । इस रसको ज्वर आनेके पाँचवें, छठे अथवा सातवें दिन देना चाहिये । इसको सेवन करनेसे दस्त होकर ज्वर दूर होजाताहै । इसपर परबल और मूँगके यूषका पथ्य देना चाहिये ११॥१२

स्वच्छन्दभैरव ।

ताम्रभस्म विषं हेम्नः शतधा भावितं रसैः ।
गुञ्जार्द्धं सन्निपातादिनवज्वरहरं परम् ॥ १३ ॥
आर्द्राम्बुशर्करासिन्धुयुतः स्वच्छन्दभैरवः ।
इक्षुद्राक्षासितोर्वारु दधि पथ्यं रुजौ ददेत् ॥ १४ ॥

ताम्रभस्म और शुद्ध वत्सनाभ दोनोंको समान भाग लेकर धतूरेके रसमें सौवार भावना देकर आधी २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस स्वच्छन्दभैरव रसको अदरखके रस चीनी और सैंधेनमकके साथ सेवन करनेसे नवीनज्वर और सन्निपातादिजन्यज्वर दूर होते हैं। इसपर रोगीको ईखका रस, दाख, मिश्री, ककडी और दहीआदिका पथ्य देवे ॥ १३ ॥ १४ ॥

द्वितीयस्वच्छन्दभैरवरस।

पिप्पलीं जातिकोषश्च पारदं गन्धकं विषम्।
वारिणा मर्दयेत्खल्ले रक्तिकार्द्धं प्रयोजयेत् ॥ १५ ॥
स्वच्छन्दभैरवो नाम भैरवेण विनिर्मितः।
नवज्वरं महाघोरं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ १६ ॥

पीपल, जायफल, पारा, गन्धक और शुद्ध वत्सनाभ विष इन ओषधियोंको जलके साथ खूब खरल करके आधी आधी रत्तीकी गोलियाँ बनाकर प्रयोग करे। इस स्वच्छन्दभैरवरसको भैरवाचार्यनें निर्माण कियाहै। यह रस अत्यन्त भयंकर नवीनज्वरको निस्सन्देह नष्टकरता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

नवज्वरेभांकुश।

सगन्धटङ्कं रसतालकञ्च विमर्द्य संभावय मीनपित्तैः।
दिनद्वयं वल्लमितं प्रदद्याद्वृन्ताकतक्रौदनमेव पथ्यम् ॥
नवज्वरेभाङ्कुशनामधेयः क्षणेन घर्मोद्गममातनोति॥१७॥

सुहागा, गन्धक, पारा और हरताल इन चारोंको समानभाग लेकर एकत्र खरल करके रोहूमछलीके पित्तमें दो दिनतक भावना देवे. इस रसको एक एक अथवा दो दो रत्ती परिमाणमें दे और इसपर बैंगन, मठ्ठा और भातका पथ्य देवे। इसके सेवनकरनेपर क्षणभरमें ही पसीना आकर ज्वर दूर होजाता है। यह रस नवज्वररूपी हाथीकेलिये अंकुशके समान है,इसलिये इसको नवज्वरेभांकुश कहते हैं ॥ १७ ॥

नवज्वरेभसिंह।

शुद्धसूतं तथा गन्धं लौहं ताम्रञ्च सीसकम्।
मरिचं पिप्पली विश्वं समभागानि कारयेत् ॥ १८ ॥
अर्द्धभागं विषं दत्त्वा मर्दयेद्वासरद्वयम्।
शृङ्गबेराम्बुपानेन दद्याद्गुञ्जाद्वयं भिषक् ॥ १९ ॥

नवज्वरे महाघोरे धातुस्थे ग्रहणीगदे ।
नवज्वरेभसिंहोऽयं सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ २० ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, सीसेकी भस्म, मिरच, पीपल, और सोंठ ये प्रत्येक एक एक भाग और शुद्ध विष $\frac{1}{2}$ भाग लेकर सबको जलके योगसे दो दिनतक खरल करे। इस रसको घोर नवीनज्वर, धातुगतज्वर और संग्रहणी आदि रोगोंमें दो दो रत्तीकी मात्रासे अदरखके रस और मधुके साथ सेवनकरना चाहिये। यह रस सर्वप्रकारके ज्वरोंको नाश करनेवाला है१८-२०

नवज्वरहरवटी।

रसगन्धौ विषं शुण्ठी पिप्पलीमरिचानि च ।
पथ्या विभीतकं धात्री दन्तीबीजञ्च शोधितम्॥२१॥
चूर्णमेषां समांशानां द्रोणपुष्पीरसैः पुटेत् ।
वटीं माषनिभां कुर्याद् भक्षयेत्तरुणज्वरे ॥ २२ ॥

पारा, गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ विष, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, बहेडा, आमला और शुद्ध दन्तीके बीज (जमालगोटा) इन सब ओषधियोंके समान भाग लेकर चूर्ण करके द्रोणपुष्पी (गूमा)के रसमें खरल करके पुट देवे। फिर उडदकी बराबर गोलियाँ बनाकर नवीन ज्वरमें सेवन करे। यह रस नवज्वरकी परमोत्तम औषध है॥ २१ ॥ २२ ॥

नवज्वरारि रस ।

एकभागो रसो भागद्वयञ्च शुद्धगन्धकम् ।
गरलस्य त्रयो भागाश्चतुर्भागा हिमावती ॥ २३ ॥
जैपालकः पञ्चभागो निम्बूद्रवविमर्दितः ।
कृमिघ्नप्रमिता वट्यः कार्याः सर्वज्वरच्छिदः॥२४॥
शृङ्गबेरेण दातव्या वटिकैका दिने दिने ।
जीर्णज्वरे तथाजीर्णे समे वा विषमेऽपि वा ॥
निहन्त्यसौ ज्वरं घोरं दावो वनमिवानलः ॥ २५ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, वत्सनाभ ३ भाग, सत्यानाशी कटेरी ४ भाग और जमालगोटे ५ भाग ले सबको एकत्र पीसकर नीम्बूके रसमें खरल करके वायविडंगकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन एक एक गोली अदरखके रसके साथ देनेसे सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं। इन गोलि-

योंको सम अथवा विषमज्वर, जीर्णज्वर और अजीर्ण रोगमें भी प्रयोग करना चाहिये । यह रस सब प्रकारके भयंकर ज्वरोंको इस प्रकार नष्ट करदेता है, जैसे दावाग्नि वनको तत्काल भस्म करदेती है ॥ २३-२५ ॥

सर्वाङ्गसुन्दररस ।

शुद्धसूतञ्चागन्धञ्च विषञ्च जयपालकम् ।
कटुत्रयञ्च त्रिफला टङ्कणञ्च समांशकम् ॥ २६ ॥
अस्य मात्रा प्रयोक्तव्या गुञ्जात्रयसमा ततः ।
सर्वेषु ज्वररोगेषु सामवाते विशेषतः ॥ २७ ॥
नाशयेच्छ्वासकासञ्च ह्यग्निसादं विशेषतः ।
ब्रह्मणा निर्मितः पूर्वं रसः सर्वाङ्गसुन्दरः ॥ २८ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठातेलिया, शुद्ध जमालगोटे, त्रिकुटा, त्रिफला और सुहागा सबको समान भाग लेकर एकत्र बारीक पीसकर और जलके साथ खरल करके तीन२रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे. सब प्रकारके ज्वर, विशेषकर आमयुक्त ज्वरमें इसकी एक एक गोली प्रतिदिन सेवन करनेसे विशेष लाभ होता है । यह रस श्वास, खाँसी और मन्दाग्निको भी नष्ट करताहै। इस सर्वाङ्गसुन्दर रसको पूर्वकालमें ब्रह्माजीने निर्माण किया था ॥ २६-२८ ॥

त्रिपुरभैरवरस ।

विषटंकबलिम्लेच्छदन्तीबीजं क्रमाद्बहु ।
दन्त्यम्बुमर्दितं यामं रसस्त्रिपुरभैरवः ॥ २९ ॥
वल्लं व्योषेण चार्द्रस्य रसेन सितयाऽथवा ।
दत्तो नवज्वरं हन्ति मान्द्यमानिलशोथहा ॥ ३० ॥
हन्ति शूलं सविष्टब्धमर्शांसि कृमिजान् गदान् ।
पथ्या तक्रेण भोक्तव्यं रसेऽस्मिन् रोगहारिणि ॥३१॥

शुद्ध वतसनाभ १ तोला, सुहागा २ तोले, गन्धक ३ तोले, ताम्रभस्म ४ तोले और जमालगोटे ५ तोले ले सबको एकत्र दन्तीके काथमें एक प्रहरतक खरलकरके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इसकी एक एक गोली त्रिकुटेके चूर्ण, अदरखके रस अथवा मिश्रीमें मिलाकर देनेसे नवीनज्वर शीघ्र नष्ट होता है, तथा अग्निकी मन्दता, आमवात और शोथ दूर होताहै यह रस आठ

प्रकारके शूल, विष्टम्भ, अर्श और कृमिरोगको नष्ट करता है । इस रसके सेवन करनेपर तक्रके साथ भातका भोजन करना चाहिये ॥ २९-३१ ॥

ज्वरधूमकेतु ।

भवेत्समं सूतसमुद्रफेनहिंगूलगन्धौ परिमर्द्य यत्नात् ।
नवज्वरे वल्लमितं त्रिघस्रमार्द्राम्बुनायं ज्वरधूमकेतुः॥३२॥

पारे और गन्धककी कज्जली २ तोले, समुद्रफेन और सिंगरफ ये प्रत्येक एक एक तोला लेकर सबको एकत्र अदरखके रसके साथ तीन दिन तक यत्नपूर्वक खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । फिर एक एक गोली अदरखके स्वरसके साथ सेवन करे । यह ज्वरधूमकेतुरस नवीनज्वरमें विशेष उपकार करता है ॥ ३२ ॥

मृत्युञ्जयरस ।

विषस्यैकस्तथा भागो मरिचं पिप्पलीकणः ।
गन्धकस्य तथा भागो भागः स्यात टङ्कणस्य वै॥३३॥
सर्वत्र समभागः स्यात् द्विभागं हिङ्गुलं भवेत् ।
जम्बीरस्य रसेनात्र हिङ्गुलं भावयेद्भिषक् ॥ ३४ ॥
रसश्चेत्समभागः स्यात् हिङ्गुलं नेष्यते तदा ।
गोमूत्रशोधितश्चात्र विषं सौरविशोषितम् ॥ ३५ ॥
चूर्णयेत् खल्वमध्ये तु मुद्गमात्रां वटीं चरेत् ।
मधुना लेहनं प्रोक्तं सर्वज्वरनिवृत्तये ॥ ३६ ॥
दध्युदकानुपानेन वातज्वरनिबर्हणः ।
आर्द्रकस्य रसैः पानं दारुणे सान्निपातिके ॥ ३७ ॥
जम्बीररसयोगेन ह्यजीर्णज्वरनाशनः ।
अजाजीगुडसंयुक्तो विषमज्वरनाशनः ॥ ३८ ॥
जीर्णज्वरे महाघोरे पुरुषे यौवनान्विते ।
पूर्णमात्रा प्रदातव्या पूर्णं वटिचतुष्टयम् ॥ ३९ ॥
अतिक्षीणेऽतिवृद्धे च शिशौ चाल्पवयस्यपि ।
तुर्यमात्रा प्रदातव्या व्यवस्था सारनिश्चिता ॥ ४० ॥
नवज्वरे प्रदानेन यामैकान्नाशयेज्ज्वरम् ।
अक्षीणे च कफाभावे दाहे च वातपैत्तिके ॥ ४१ ॥

सितां दद्यात्प्रयत्नेन नारिकेलाम्बु निर्भयम् ।
अयं मृत्युञ्जयो नाम रसः सर्वज्वरापहः ॥
अनुपानप्रभेदेन निहन्ति सकलान् गदान् ॥ ४२ ॥

शुद्ध वत्सनाभविष, मिरच, पीपलके चावल, शुद्धगन्धक और भुनाहुआ सुहागा ये प्रत्येक एक एक भाग और सिंगरफ २ भाग लेवे प्रथम सिंगरफको जम्बीरी नींबूके रसमें भावना देकर शुद्ध करलेवे । यदि इस रसमें पारे और गन्धककी दो भाग कज्जली डालीजाय तो सिंगरफको नहीं डालना चाहिये। और विषको गोमूत्रमें शुद्ध करके धूपमें सुखाकर लेना चाहिये । फिर सब औषधियोंको एकत्र खरलमें जलके साथ उत्तम प्रकारसे खूब खरलकरके मूँगके बराबर गोलियाँ बनालेवे । इसकी एक एक गोली शहदके साथ खानेसे सब प्रकारके ज्वर निवृत्त होते हैं. इसको दहीके पानीके साथ सेवन करनेसे वातज्वर और अदरखके रसके साथ सेवनकरनेसे दारुण सन्निपातज्वर दूर होता है। जम्बीरी नींबूके रसके साथ सेवन करनेसे अजीर्णजनित ज्वर और कालाजीरा तथा गुडमें मिलाकर खानेसे विषमज्वर दूर होता है । अत्यन्त भयंकर जीर्णज्वरमें पूर्णवयस्क पुरुषको इस रसकी पूर्णमात्रा देनी चाहिये । इसकी पूर्णमात्रा ४ गोलियोंकी है । किन्तु अत्यन्त क्षीणशरीरवाले, अत्यन्त वृद्ध अवस्थावाले व्यक्तिओं और बहुत छोटे बालकोंको इसकी चौथाई मात्रा एक गोली देनी चाहिये । या उससे भी कम मात्रा इस रसको नवीन ज्वरमें सेवन करानेसे एक प्रहरमें ही ज्वर नष्ट होजाता है। यदि रोगी क्षीण न हो और उसके कफकी अधिकता न हो तथा दाहयुक्त वातपैत्तिक ज्वर हो तो नारियलके जलमें मिश्री मिलाकर पिलाना। यह मृत्युञ्जयनामक रस सब प्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला है और अनुपानभेदसे सम्पूर्ण रोगोंको नाश करता है ॥३३-४२॥

श्रीरामरस ।

गन्धकं पारदं तुल्यं मरिचञ्च त्रिभिः समम् ।
बीजं नैकुम्भकं मर्द्यं दन्तीकाथेन यामकम् ॥
द्विगुञ्जः शूलविष्टम्भानिलमामज्वरं जयेत् ॥ ४३ ॥

शुद्ध गन्धक, शुद्धपारा और मिरच ये प्रत्येक एक एक भाग और जमालगोटे ३ भाग लेकर सबको एकत्र करके दन्तीकी जडके काढेके साथ एक प्रहरतक खरल करे, फिर दो २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह रस सेवन करते ही शूलरोग, विष्टम्भवात और आमयुक्त ज्वरको दूर करता है ॥ ४३ ॥

नवज्वरांकुश ।

क्रमेण वृद्धान् रसगन्धहिङ्गुलान्
नैकुम्भबीजान्यथ दन्तिवारिणा ।
पिष्ट्वास्य गुञ्जाभिनवज्वरापहा
जलेन सार्द्धं सितया प्रयोजिता ॥ ४४ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, सिंगरफ ३ भाग और जमालगोटे ४ भाग लेकर इन सबको दन्तीकी जडके काढेके साथ घोटकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनाकर रखलेवे । प्रतिदिन एक गोली मिश्रीमें मिलाकर खाय और ऊपरसे जलका अनुपान करे तो नवीनज्वर नष्ट होता है ॥ ४४ ॥

प्रचण्डेश्वर ।

अमृतं पारदं गन्धं मर्दयेत्प्रहरद्वयम् ।
सिन्दुवाररसैः पश्चात् भावयेदेकविंशतिम् ॥ ४५ ॥
तिलप्रमाणं दातव्यं नवज्वरविनाशनम् ।
उद्वेगे मस्तके तैलं तक्रश्चापि प्रदापयेत ॥
अनुपानश्चार्द्ररसः प्रचण्डेश्वरसंज्ञकः ॥ ४६ ॥

शुद्ध विष एक भाग, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धककी कज्जली दो भाग लेकर सबको दो प्रहरतक खरल करे, फिर निर्गुण्डीके पत्तोंके रसमें २१ बार भावना देकर तिलकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इस रसको सेवन करनेसे नवीनज्वर दूर होताहै।इसके सेवन करनेपर यदि शरीरमें गरमी मालूम हो तो सिरपर सुगन्धिव तेलकी मालिश करनी चाहिये और तक्रपान कराना चाहिये। इसपर अदरखके रसका अनुपान करे।इसको प्रचण्डेश्वर रस कहते हैं॥४५॥४६

वैद्यनाथवटी ।

शाणं गन्धमथो रसस्य च तथा कृत्वा द्वयोः कज्जलीं
तिक्ताचूर्णमथाक्षमेव सकलं रौद्रे त्रिधा भावयेत् ।
पश्चात्तत् सुषवीरसेन न तु वा क्वाथेऽमले त्रैफले
संशोष्या गुटिका कलायसदृशी कार्या बुधैर्यत्नतः॥४७॥
ज्ञात्वा दोषबलं रसेन सुषवीपत्रस्य पर्णस्य वा
एकद्वित्रिचतुः क्रमेण वटिकां दद्यात्कदुष्णाम्बुना ॥४८॥

हन्ति शूलनिचयं नवज्वरं पाण्डुतामरुचिशोथसंचयम् ।
रेचने च दधिभक्तभोजनं वैद्यनाथमृदुकुमाररेचनम् ॥ ४९ ॥

शुद्धगन्धक ४ माशे और शुद्ध पारा ४ माशे लेकर दोनोंकी कजली बना लेवे । उसमें दो तोले कुटकीका और बहेडेका चूर्ण मिलाकर करेलेके पत्तोंके रसमें अथवा त्रिफलेके काढेमें धूपमें रखके तीनबार भावना देवे । फिर सुखा कर मटरके बराबर गोलियाँ बनालेवे । रोगीके दोषोंका बलाबल विचारकर इनमेंसे एकसे चारतक गोली करेलेके पत्तोंके रसके साथ अथवा पानके रसके साथ देवे और उष्णजलका अनुपान करावे । यह वटी सब प्रकारके शूल-रोग, नवीनज्वर, पाण्डुरोग, अरुचि और शोथको नष्ट करती है । इन गोलि-योंके खानेपर जब विरेचन होजाय तब दही और भातका भोजन करना चाहिये यह श्रीवैद्यनाथजीका कहाहुआ मृदुविरेचन है ॥ ४७-४९ ॥

अग्निकुमाररस ।

मरिचोग्राकुष्ठमुस्तैः सर्वैरेव समं विषम् ।
पिष्ट्वा चार्द्ररसेनैव वटिका रक्तिकामिता ॥ ५० ॥
आमज्वरे प्रथमतः शुण्ठ्या च मधुपिष्टया ।
आर्द्रकस्य रसेनापि निर्गुण्ड्याश्च कफज्वरे ॥ ५१ ॥
पीनसे च प्रतिश्याये आर्द्रकस्य च वारिणा ।
अग्निमान्द्ये लवङ्गेन शोथे सदशमूलकः ॥ ५२ ॥
ग्रहण्यां सह शुण्ठ्या च मुस्तकेनातिसारके ।
सामे च धान्यशुण्ठीभ्यां पक्के च कुटजं मधु ॥ ५३ ॥
सन्निपातज्वरारम्भे पिप्पल्यार्द्रकवारिणा ।
कण्टकार्या रसैः कासे श्वासे तैलं गुडान्वितम् ॥५४॥
पीत्वा वटीद्वयं रोगी स्वास्थ्यं समुपगच्छति ॥५५॥
सर्वेषामेव रोगाणामामदोषप्रशान्तये ।
अग्निवृद्धिकरो नाम्ना विख्यातोऽग्निकुमारकः ॥५६॥

मिरच,वच,कूठ और नागरमोथा ये प्रत्येक एक एक माशे और शुद्ध वत्स-नाभ ४ माशे लेकर सबको अदरखके रसके साथ खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस रसको आमयुक्त ज्वरकी प्रथमावस्थामें सोंठके चूर्ण

और शहदके साथ, कफज्वरमें अदरखके रस या निर्गुण्डीके पत्तोंके रसके साथ, पीनस और प्रतिश्यायरोगमें केवल अदरखके रसके साथ, मन्दाग्निमें लौंगके चूर्णके साथ, शोथमें दशमूलके काढेके साथ, संग्रहणीमें सोंठके चूर्णके साथ, अतिसारमें नागरमोथेके चूर्णके साथ, तथा आमातिसारमें धानियाँ और सोंठके क्वाथके साथ और पक्वातिसारमें कुडेकी छालके क्वाथ और शहदके साथ, सन्निपातज्वरकी प्रथमावस्थामें मधु, पीपलके चूर्ण और अदरखके रसके साथ, खाँसीमें कटेरीके रस और श्वासमें सरसोंके तेल और पुराने गुडमें मिलाकर सेवन करे तो रोगी उक्त सम्पूर्ण रोगोंसे मुक्त होकर पूर्ण स्वस्थ होजाताहै । इसकी मात्रा २ वटीकी है । आमयुक्तदोष और सब प्रकारके रोगोंको शमन करने तथा जठराग्निको प्रदीप्त करनेके लिये यह अग्निकुमार रस प्रसिद्ध है ॥ ५०–५६ ॥

जयावटी ।

विषं त्रिकटुकं मुस्तं हरिद्रा निम्बपत्रकम् ।
विडङ्गमष्टमं चूर्णं छागमूत्रैः समं समम् ॥
चणकाभा वटी कार्या स्याज्जया योगवाहिका ॥५७॥

शुद्ध मीठा तेलिया, सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, हल्दी, नीमके पत्ते और वायविडंग इन आठों औषधियोंके समानभाग चूर्णको और सब चूर्णके बराबर अरणीकी जडके चूर्णको लेकर बकरेके मूत्रमें खरलकरके चनेके बराबर गोलियाँ बनालेवे । ये गोलियाँ अत्यन्त योगवाही हैं । अनुपानभेदसे ज्वरादि विविध प्रकारके रोगोंको दूर करती हैं ॥ ५७ ॥

जयन्तीवटी ।

विषं पाठाश्वगन्धा च वचा तालीशपत्रकम् ।
मरिचं पिप्पली निम्बमजामूत्रेण तुल्यकम् ।
वटिका पूर्ववत्कार्या जयन्ती योगवाहिका ॥ ५८ ॥

शुद्ध वत्सनाभ, पाढ, असगन्ध, वच, तालीशपत्र, मिरच, पीपल और नीमके पत्ते ये प्रत्येक ओषधि समानभाग और अरणीकी जड सबके बराबर भाग लेकर समस्त औषधियोंको एकत्र पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर उस चूर्णको बकरीके मूत्रमें खरलकरके चनेके बराबर गोलियाँ बनालेवे।यह जयन्ती वटीभी योगवाही है । यह भी अनुपानभेदसे सर्वरोगोंको नष्ट करती है ॥५८॥

योगवाहिका जया जयन्ती वटी ।

जयन्ती वा जया वाथ क्षीरैः पित्तज्वरापहा ।
मुद्गामलकयूषेण पथ्यं देयं घृतं विना ॥ ५९ ॥
जयन्ती वा जया वाथ सक्षौद्रा मरिचान्विता ।
सन्निपातज्वरं हन्ति रसश्चानन्दभैरवः ॥ ६० ॥
जयन्ती वा जया वाथ विषमज्वरनुद्घृतैः ।
सर्वज्वरं मधुव्योषैर्गवां मूत्रेण शीतकम् ॥ ६१ ॥
चन्दनस्य कषायेण रक्तपित्तज्वरापहा ।
जयन्ती वा जया वाथ माक्षिकेण च कासजित् ॥६२॥
जयन्ती वा जया वाथ क्षीरैः पाण्डुविनाशिनी ।
जयन्ती वा जया वाथ तण्डुलोदकपानतः ॥ ६३ ॥
अश्मरीं हन्ति नो चित्रं मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम् ।
जयन्ती वा जया वाथ गोमूत्रेण युतां पिबेत् ॥ ६४॥
हन्त्याशु काकणं कुष्ठं तल्लेपेन च तद्ध्रुवम् ।
द्विनिष्कं केतकीमूलं पिष्ट्वा तोयेन पाययेत् ॥ ६५ ॥
जयन्ती वा जया वाथ मेहं हन्ति सुराह्वयम् ।
जयन्ती वा जया वाथ मधुना सर्वमेहजित् ॥ ६६ ॥
लोध्रं मुस्ताभया तुल्यं कट्फलश्च जलैः सह ।
क्वाथयित्वा पिबेच्चानु मधुना सर्वमेहनुत् ॥ ६७ ॥
जयन्ती वा जया वाथ गुडैः कोष्णजलैः सह ।
त्रिदोषोत्थं हरेद्गुल्मं रसो वानन्दभैरवः ॥ ६८ ॥
जयन्ती वा जया वाथ हन्ति शुण्ठ्या भगन्दरम् ।
जयन्ती वा जया वाथ तक्रेण ग्रहणीप्रणुत् ॥ ६९ ॥
जयन्ती वा जया वाथ रसश्चानन्दभैरवः ।
रक्तपित्ते त्रिदोषोत्थे शीततोयेन पाययेत् ॥ ७० ॥
जयन्ती वा जया वाथ भृङ्गद्रावैर्निशान्ध्यनुत् ।
जयन्ती वा जया वाथ घृष्ट्वा स्तन्येन चाञ्जनम् ।
स्रावणं सर्वदोषोत्थं मांसवृद्धिश्च नाशयेत् ॥ ७१ ॥

जयन्ती वटी अथवा जया वटीको गोदुग्धके साथ सेवन करनेसे पित्तज्वर शीघ्र दूर होता है। इसपर मूंगके यूषका अथवा आमलोंके यूषका पथ्य देवे, किन्तु घृत डालकर न दे। जयावटी अथवा जयन्तीवटी या आनन्दभैरवरसको कालीमिरचोंके चूर्ण और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे सन्निपातज्वर नष्ट होता है। जयन्ती अथवा जयावटी घृतके साथ सेवन करनेसे विषमज्वर, मधु और त्रिकुटेके चूर्णके साथ खानेसे सब प्रकारके ज्वर, गोमूत्रके अनुपानसे शीतज्वर और चन्दनके काढेके साथ सेवन करनेसे रक्तपित्त ज्वर दूर होते हैं। मधुके साथ सेवन करनेसे खाँसी, दूधके साथ पाण्डुरोग, चावलोंके जलके साथ पथरीरोग और दारुण मूत्रकृच्छ्ररोग निस्सन्देह नष्ट होता है। जया अथवा जयन्तीवटीको गोमूत्रके साथ सेवन करने अथवा गोमूत्रके साथ पीसकर उसका लेप करनेसे काकणनामक कुष्ठ शीघ्र दूर होता है। ८ माशे केतकी (केवडे):की जडको पानीमें पीसकर उस पानीके साथ जया अथवा जयन्ती वटीको सेवन करनेसे सुरामेह शमन होता है। मधुके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके प्रमेह नष्ट होते हैं। अथवा उक्त औषधि सेवन करनेके पश्चात् लोध, नागरमोथा, हरड और कायफल इनका क्वाथ बनाकर उसमें शहद डालकर पान करनेसे भी सम्पूर्ण प्रमेह नष्ट होते हैं। जया अथवा जयन्तीवटी या आनन्दभैरव रसको गुडमें मिलाकर उष्णजलके साथ सेवन करनेसे त्रिदोष-जनित गुल्मरोग दूर होताहै। जया अथवा जयन्तीवटी सोंठके चूर्णके साथ भगन्दररोगको, तक्रके साथ ग्रहणीको और यह वटी अथवा आनन्दभैरवरस शीतल जलके साथ सेवन करनेसे त्रिदोष रक्तपित्तको दूर करताहै। इसी प्रकार जया अथवा जयन्तीवटीके रसके साथ सेवन करनेसे रात्र्यन्धता (रतौंधा) और स्त्रीके दूधमें घिसकर नेत्रोंमें आँजनेसे सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न हुआ नेत्र-स्रावरोग और मांसवृद्धिरोग नष्ट होताहै ॥ ५९-७१ ॥

अमृतमञ्जरी।

हिङ्गुलं मरिचं टङ्कं पिप्पलीविषमेव च।
जातीकोषं समं सर्वं जम्बीराद्भिर्विमर्दितम् ॥ ७२ ॥
गुञ्जाद्वयं त्रयं वापि प्रदेयं सान्निपातिके।
कासश्वासौ जयत्याशु सर्वज्वरविनाशनः ॥ ७३ ॥

सिंगरफ, मिरच, भुना हुआ सुहागा, पीपल, शुद्ध वत्सनाभ और जायफल इन सब ओषधियोंको समानभाग लेकर जम्बीरीनींबूके रसमें खरल करके दो दो या तीन२रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे. इन गोलियोंको सेवन करनेसे सन्निपात ज्वर, खाँसी, श्वास और अन्यान्य सब प्रकारके ज्वर शीघ्र नष्ट होतेहैं७२॥७३

ज्वरनृसिंहरसः।

पारदं गन्धकं तालं भल्लातकस्तथैव च ।
वज्रीक्षीरसमायुक्तमेकत्र च विमर्दयेत् ॥ ७४ ॥
मृत्तिकाभाजने स्थाप्यं मुद्रितव्यं विचक्षणैः ।
अग्निं प्रज्वालयेत्तत्र प्रहरद्वयसंख्यया ॥ ७५ ॥
शीतलं खल्लयेत्तत्र भावना च प्रदीयते ।
भृङ्गराजरसैरत्र गण्डदूर्वाभवै रसैः ॥ ७६ ॥
चित्रकस्य रसेनापि भावना दीयते पुनः ।
पश्चात्तच्चूर्णयेद्यत्नात् कूपिकायाश्च धारयेत् ॥ ७७ ॥
ज्वरानुत्पद्यते यस्य चतुर्थे चापरे पुनः ।
माषैकश्च रसो देयस्तत्क्षणान्नाशयेज्ज्वरम् ॥
ज्वरे शान्ते परं पथ्यं देयं मुद्गौदनं पयः ॥ ७८ ॥

पारा, गन्धक, हरताल और भिलावोंकी गिरी चारोंको समभाग लेकर थूहरके दूधमें एकत्र खरल करके एक मिट्टीके पात्रमें भरकर उसके ऊपर मुद्रा करके दो प्रहरतक मन्द २ अग्नि देवे । स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकाल कर भाँगरा, गाँडर दूब और चीतेके रसमें क्रमसे एक एक दिन खरल करके भावना देवे, फिर उसको बारीक पीसकर शीशीमें भरकर रखदेवे । चातुर्थिक ज्वरमें और दूसरे दिन आनेवाले ज्वरमें इस रसको एक एक माशा परिमाण प्रयोग करे, यह ज्वरको तत्काल नष्ट करताहै । ज्वरके शान्त होनेपर मूँगका यूष, भात और दूधका पथ्य देना चाहिये ॥ ७४-७८ ॥

त्रैलोक्यडुम्बुररस ।

सूतार्कगन्धचपला जयपालतिक्ता
पथ्या त्रिवृच्च विषतिन्दुकजं समांशम् ।
सम्मर्द्य वज्रिपयसा मधुना द्विगुञ्ज-
स्त्रैलोक्यडुम्बुररसोऽभिनवज्वरघ्नः ॥ ७९ ॥

पारा, ताँबा, गन्धक, पीपल, जमालगोटे, कुटकी, हरड, निसोत और कुचला सबको समान भाग लेकर थूहरके दूधमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको मधुके साथ सेवन करनेसे नवीन ज्वर नष्ट होताहै ७९

गदमुरारि ।

रसबलिशिललौहव्योषताम्राणि तुल्या-
न्यथ सदरदनागं भागमेतत्प्रदिष्टम् ।
भवति गदमुरारिश्चास्य गुञ्जाद्वयं वै
क्षपयति दिवसेन प्रौढमामज्वराख्यम् ॥ ८० ॥

पारे और गन्धककी कज्जली २ तोले, मैनसिल, लोहभस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, ताँबा, सिंगरफ और सीसेकी भस्म ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर सबको एकत्र जलके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस रसको सेवन करनेसे शीघ्रही पुराना आमज्वर दूर होताहै ॥ ८० ॥

ज्वरहरीवटी ।

सीसकं रससिन्दूरं हरितालं विषं समम् ।
एकत्र मर्दयेत्सर्वं सर्षपाभां वटीं चरेत् ॥ ८१ ॥
ज्वरविच्छेदकाले च सितया सह योजयेत् ।
द्वित्रिवटीप्रयोगेण ज्वरशान्तिर्न संशयः ॥ ८२ ॥

सीसेकी भस्म, रससिन्दूर, हरताल और शुद्ध वत्सनाभ इन सबको समान भाग लेकर जलके साथ एकत्र खरल करके सरसोंके बराबर गोलियाँ बनालेवे. ज्वरके उतरजानेपर एक दिनमें दो तीन गोलियाँ मिश्रीके साथ देनेसे ज्वर शमन होता है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

रत्नगिरिरस ।

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतताम्राभ्रहाटकम् ।
प्रत्येकं सूततुल्यं स्यात्सूतार्द्धं मृतलौहकम् ॥ ८३ ॥
लौहार्द्धं मृतवैक्रान्तं मर्दयेद्भृङ्गजद्रवैः ।
पर्पटीरसवत् पाच्यं चूर्णितं भावयेत्पृथक् ॥ ८४ ॥
शिग्रूवासकनिर्गुण्डी वचाग्निभृङ्गमुण्डिकैः ।
क्षुद्रामृताजयन्तीभिर्मुनिब्राह्मीसुतिक्तकैः ॥ ८५ ॥
कन्यायाश्च द्रवैर्भाव्यं प्रतिवारं त्रिधा त्रिधा ।
रुद्ध्वा लघुपुटे पाच्यं वालुकायन्त्रमध्यगम् ॥ ८६ ॥
यन्त्रं निरुध्य यत्नेन स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
चूर्णं नवज्वरे देयं माषमात्रं रसस्य वै ॥ ८७ ॥

कृष्णाधान्यसमायुक्तं मुहूर्त्तान्नाशयेज्ज्वरम् ।
अयं रत्नगिरिर्नाम रसो योगस्य वाहकः ॥ ८८ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धककी कजली दो २ तोले, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म और स्वर्णभस्म ये प्रत्येक एक एक तोला, लोहभस्म ६ माशे और वैक्रान्त मणिकी भस्म ३ माशे लेवे । सबको एकत्र भाँगरेके रसमें खरलकरके पर्पटीके समान पाक करे । फिर उसका चूर्ण करके उसको सैंजना, अडूसा, निर्गुण्डी, वच, चीता, भाँगरा, गोरखमुण्डी, कटेरी, गिलोय. अरणी, अगस्तियाके फूल, ब्राह्मी, चिरायता और घीग्वार इन प्रत्येकके रसमें क्रमसे पृथक् २ तीन २ वार भावना देवे, पश्चात् एक उत्तम मूषामें बन्द करके वालुकायन्त्रमें रखकर लघुपुटमें पकावे, स्वांगशीतल होनेपर मूषामेंसे औषधिको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे, इस रसको नवीनज्वरमें एकमाशा परिमाण दिनमें तीनबार पीपल तथा धनियेके काथके अनुपानके साथ सेवन करावे । यह रस ज्वरको क्षणभरमें नष्ट करदेता है और योगवाही होनेसे भिन्नभिन्न अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे सम्पूर्ण रोगोंमें हितकारी है ॥ ८३-८८ ॥

प्रतापमार्त्तण्डरस ।

विषहिङ्गुलजैपालटङ्कणं क्रमवर्द्धितम् ।
रसः प्रतापमार्त्तण्डः सद्यो ज्वरविनाशनः ॥ ८९ ॥

शुद्ध वत्सनाभ १ भाग, सिंगरफ २ भाग, जमालगोटा ३ भाग और सुहागा ४ भाग इन चारोंको जलके साथ एकत्र मर्दन करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इसको सेवन करनेसे ज्वर शीघ्र दूर होता है ॥ ८९ ॥

चण्डेश्वररस ।

रसं गन्धं विषं ताम्रं मर्दयेदेकयामकम् ।
आर्द्रकस्वरसेनैव मर्दयेत्सप्तवारकम् ॥ ९० ॥
निर्गुण्ड्याः स्वरसे पश्चान्मर्दयेत्सप्तवारकम् ।
गुञ्जैकार्द्ररसेनैव दत्तो हन्ति ज्वरं क्षणात् ॥ ९१ ॥
वातजं पित्तजं श्लेष्म द्विदोषजमपि क्षणात् ।
सुशीतलजले स्नानं तृषार्त्ते क्षीरभोजनम् ॥ ९२ ॥
आम्रञ्च पनसञ्चैव चन्दनागुरुलेपनम् ।

एतत्समो रसो नास्ति वैद्यानां हृदयङ्गमः ॥
एष चण्डेश्वरो नाम सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ ९३ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया और ताम्रभस्म सबको समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करलेवे, फिर उसमें अन्य औषधियोंको मिलाकर एक प्रहरतक खरल करे। पश्चात् अदरखके स्वरसमें सातबार और फिर निर्गुण्डीके रसमें सातवार भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस रसकी एक एक गोली अदरखके रस और मधुके साथ देनेसे वातज, तित्तज, श्लैष्मिक और द्विदोषजनितज्वर तत्काल नष्ट होताहै। इसके सेवन करनेपर यदि गरमी अधिक मालूम हो तो शीतल जलसे स्नान करना चाहिये और रोगीके क्षुधा और तृषासे व्याकुल होनेपर दूध, भात, शीतलजल, आम, कटहल आदि पदार्थ सेवन कराने चाहिये तथा चन्दन, अगर आदिका शरीरपर लेप करना चाहिये। वैद्योंको इस रसके समान अन्य कोई रस प्रिय नहीं है। यह चण्डेश्वरनामक रस सब प्रकारके ज्वरोंको समूल नष्ट करता है ॥ ९०-९३ ॥

उदकमञ्जरीरस।

सूतो गन्धष्टङ्कणः सोषणाः स्या-
देतैस्तुल्या शर्करामत्स्यपित्तैः।
भूयोभूयो भावयेच्च त्रिरात्रं
वल्लो देयः शृङ्गबेरस्य वारि ॥ ९४ ॥
सम्यक्कृतापे वारिभक्तं सतक्रं
वृन्ताकाढ्यं पथ्यमत्र प्रदिष्टम्।
अह्ना चोग्रं हन्ति सामं प्रभावात्
पित्ताधिक्ये मूर्ध्नि वारिप्रयोगः ॥ ९५ ॥

पारा और गन्धककी कज्जली, सुहागा और मिरच ये सब समान भाग और सबके बराबर शुद्ध मीठा तेलिया लेकर समस्त ओषधियोंको एकत्र पीसकर रोहूमछलीके पित्तमें तीन दिनतक बारवार भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इसकी एक एक गोली अदरखके रस और मधुके अनुपानसे सेवन करानी चाहिये। यदि औषधि सेवन करनेपर रोगीको अधिक गरमी मालूम

१ शर्करा—अत्र विषम्।

हो तो तक्रके साथ भातका माँड और बैंगनोंके शाकका पथ्य देवे । पित्तकी अधिकता होनेपर सिरपर शीतलजलकी धारा छोडे । इस प्रकार इस रसको सेवन करनेसे आमयुक्त उग्रज्वर एक दिनमें ही नष्ट होजाताहै ॥ ९४ ॥९५॥

अचिन्त्यशक्तिरस ।

रसगन्धकयोर्ग्राह्यं प्रत्येकं माषकद्वयम् ।
भृङ्गकेशाख्यनिर्गुण्डी मण्डूकीपत्रसुन्दरः ॥
श्वेतापराजितामूलं शालिं च कणमारिषम् ॥ ९६ ॥
सूर्यावर्त्तः सितश्चैषां चातुर्माषकसम्मितैः ।
प्रत्येकं स्वरसैः खल्ले शिलायामवधानतः ॥
स्वर्णमाक्षिकमाषञ्च दत्त्वा मरिचमाषकम् ॥ ९७ ॥
नैपालताम्रदण्डेन घृष्ट्वा तत्कज्जलद्युति ।
वटी मुद्गोपमा कार्या छायाशुष्का तु रक्षिता ॥
प्रथमे वटिकास्तिस्रः कृत्वा नवशरावके ॥ ९८ ॥
ततः खसर्पणं सूर्य्यं पूजयित्वा प्रणम्य च ।
वारिणा गोलयित्वा तु पातुं देयं च रोगिणे ॥
स्वेदोपवासचरिते क्लान्ते चाल्पबले तथा ॥ ९९ ॥
द्वितीयेऽह्नि वटीयुग्मं वटीमेकां तृतीयके ।
यावन्त्यो वटिका देयास्तावज्जलशरावकम् ॥ १०० ॥
तृषायां च रसं दद्याज्जाङ्गलानां जलं तृषि ।
तुलायदधिसंयुक्तं भक्तं योज्यं यथेप्सितम् ॥ १ ॥
लावपक्षिरसो देयः संस्कृतः सैन्धवादिभिः ।
पथ्यमग्निबलं वीक्ष्य वारिभक्तरसं तथा ॥
शिरश्चलनशूलादौ तैलं नारायणादि च ॥ २ ॥

पारा और गन्धक प्रत्येक दो दो माशे लेकर कज्जली करलेवे । उस कज्जलीको भाँगरा, कुकुरभाँगरा, सिह्मालु, ब्राह्मी, ग्रीष्मसुन्दर, हुरहुर, श्वेत अपराजिताकी जड, शान्तिशाक, चौलाईका शाक और श्वेत हुलहुल इन प्रत्येकके चार २ माशे स्वरसके साथ पत्थरके खरलमें उत्तम प्रकारसे घोटे फिर उसमें सोनामाखी १ माशा और काली मिरचोंका चूर्ण १ माशा मिलाकर ताँबेके

पात्रमें डालकर ताँबेकी मूसलीसे खूब अच्छे प्रकारसे खरल करे, जब ओषधि घुटकर कज्जलके समान कान्तियुक्त होजाय तब मूँगके बराबर गोलियाँ बनाकर और छायामें सुखाकर शीशीमें भरकर रखदेवे। इनमेंसे पहले दिन तीन गोलियोंको एक नये सकोरेमें रखकर आकाशमें भ्रमण करनेवाले सूर्यदेवका पूजन और प्रणाम करके गोलियोंको शीतल जलमें घोलकर रोगीको पान करनेके लिये देवे। अत्यन्त स्वेद निकलने और उपवास करनेसे क्लान्त और बलहीन होनेपर रोगीको दूसरे दिन दो गोली और तीसरे दिन एक गोली उक्त विधिसे सेवन करावे, रोगीको जितनी गोलियाँ सेवन करावे उतने ही सकोरे शीतलजल पिलावे और तृषा लगनेपर जाङ्गलजीवोंका मांसरस और शीतलजल पान करावे। इसपर भैंसके ताजे दहीके साथ भातका आहार यथेच्छरूपसे देवे, और सेंधानमक आदि मसालोंके द्वारा संस्कार कियाहुआ लावापक्षीका मांसरस तथा भातका माँड जठराग्निके बलाबलको विचारकर पथ्यरूपसे देवे। शिरःकम्प और शिरःशूल आदि उपद्रवोंके होनेपर शिरपर नारायणतेल आदिकी मालिश करावे ॥ ९६–१०२ ॥

सन्निपातादिज्वरोंमें–

मोहान्धसूर्यरस।

गन्धेशौ लशुनाम्भोभिर्मर्दयेद्याममात्रकम्।
तस्योदकेन संयुक्तं नस्यं तत्प्रतिबोधयेत् ॥
मरिचेन समायुक्तं हन्ति तन्द्राप्रलापकम् ॥ १०३ ॥

गन्धक और पारा दोनोंको समान भाग लेकर लहसुनके रसमें एक प्रहरतक घोटे उसको लहसुनके रसमें मिलाकर नस्य (देवे) तो सन्निपातज्वरमें चैतन्यलाभ होताहै और इसको मिरचोंके चूर्णके साथ मिलाकर नस्य देनेसे तन्द्रा तथा प्रलाप दूर होवा है ॥ १०३ ॥

कुलवधूवटी।

शुद्धसूतं मृतं नागं मृतं ताम्रंमनःशिला।
तुत्थकं तुल्यतुल्यांशं दिनमेकं विमर्दयेत् ॥ ४ ॥
रसैश्चोत्तरवारुण्याश्चणमात्रा वटी कृता।
सन्निपातं निहन्त्याशु नस्यमात्रेण दारुणम् ॥
एषा कुलवधूर्नाम जले घृष्ट्वा प्रदापयेत् ॥ ५ ॥

शुद्ध पारा, सीसेकी भस्म, ताम्रभस्म, मैनसिल और तूतिया सबको समान भाग लेकर इन्द्रायनके रसमें एक दिनतक खरल करके चनेके बराबर गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंको जलमें घिसकर नस्य देनेसे दारुण सन्निपातज्वर शीघ्र दूर होताहै। इसको कुलवधूवटी कहतेहैं ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

नस्यभैरव।

मृतसूतार्कतीक्ष्णाग्निं टङ्कणं खर्परं समम्।
सव्योषमर्कदुग्धेन दिनं सम्मर्दयेद्दृढम् ॥
अर्कक्षीरयुतं नस्यं सन्निपातहरं परम् ॥ १०६ ॥

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, लोहभस्म, चीता, सुहागा, खपरिया, सोंठ, मिरच और पीपल इन सबको समान भाग लेकर एक दिनतक आकके दूधमें उत्तम प्रकारसे खरल करके और आकके दूधमें मिलाकर इसकी नस्य देवे तो सन्नि-पातज्वर दूर होताहै ॥ १०६ ॥

उन्मत्तरस।

रसं गन्धश्च तुल्यांशं धुस्तूरफलजैर्द्रवैः।
मर्दयेद्दिनमेकन्तु तुल्यं त्रिकटुकं क्षिपेत् ॥
उन्मत्ताख्यो रसो नाम नस्ये स्यात्सन्निपातजित्॥१०७॥

पारे और गन्धकको समान भाग लेकर कज्जली करके धतूरेके फलोंके रसमें एक दिनतक घोटे। फिर उसमें समान भाग त्रिकुटेका चूर्ण मिलालेवे। यह उन्मत्तरस नस्यके द्वारा प्रयोग करनेपर सन्निपातज्वरको दूर करताहै ॥१०७॥

अञ्जनभैरव।

सूततीक्ष्णकणागन्धमेकांशं जयपालकम्।
सर्वैस्त्रिगुणितं जम्भवारिणा च सुपेषितम् ॥
नेत्राञ्जनेन हन्त्याशु सर्वोपद्रवमुद्धतम् ॥ १०८ ॥

पारा,लोहा, पीपल और गन्धक ये प्रत्येक एक एक भाग और जमालगोटा ३ भाग लेकर सबको जम्बीरीनीबूके रसमें अच्छे प्रकारसे खरल करके नेत्रोंमें आँजनेसे सर्वप्रकारके उपद्रवोंसहित सन्निपातज्वर शीघ्र निवृत्त होताहै॥ १०८

सौभाग्यवटी।

सौभाग्यामृतजीरपञ्चलवणव्योषाभयाक्षामला
निश्चन्द्राभ्रकशुद्धगन्धकरसानेकीकृतान् भावयेत्।

निर्गुण्डीयुगभृंगराजकवृषापामार्गपत्रोल्लसत्
प्रत्येकस्वरसेन सिद्धवटिका हन्ति त्रिदोषोदयम्॥९॥
येषां शीतमतीव देहमखिलं स्वेदद्रवार्द्रीकृतं
निद्रा घोरतरा समस्तकरणव्यामोहमूढं मनः।
शूलश्वासबलासकाससहितं मूर्च्छारुचिस्तृड्ज्वरं
तेषां वै परिहृत्य जीवितमसौ गृह्णाति मृत्योर्मुखात्॥

सुहागा, शुद्ध वत्सनाभ, जीरा, सैंधानमक, कालानमक, समुद्रनमक, साँभरनमक, विड्नमक, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला और चन्द्रिकारहित अभ्रककी भस्म ये प्रत्येक औषधि एक एक भाग और पारे, गन्धककी कज्जली दो भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके निर्गुण्डी, भाँगरा- कुकुरभाँगरा, अडूसा और चिरचिटा इन प्रत्येकके पत्तोंके स्वरसमें क्रमसे भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। जिन मनुष्योंका समस्त शरीर अत्यन्त शीतल हो और जिसका अधिक पसीना आनेसे देह अत्यन्त आर्द्र होजाताहो घोर निद्रा हो और सम्पूर्ण इन्द्रियों सहित मन विमुग्ध होगया हो; ऐसे मनुष्योंको इस औषधि एक एक गोली उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करावे। यह सौभाग्यवटी शूल, श्वास, कफ, खाँसी, मूर्च्छा, अरुचि, तृषा आदि उपद्रवोंसहित सन्निपात ज्वरको दूर करके रोगीको मृत्युके मुखसे बचाकर नवजीवन प्रदान करती है॥ १०९॥ ११०॥

श्रीवेतालरस।

रसं गन्धं विषं चैव मरिचालं समांशकम्।
मर्दयेच्छिलया तावद्यावज्जायेत कज्जलम्॥ ११॥
गुञ्जामात्रप्रमाणेन हरेद्द्वादशसंज्ञकम्।
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु सन्निपातं सुदारुणम्॥१२
म्लानेषु लिप्तदेहेषु मोहग्रस्तेषु देहिषु।
दातुमर्हति वेतालो यमदूतनिवारकः॥ १३॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, मिरच और हरताल ये सब ओषधियाँ समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करले, फिर सबको एकत्र मिलाकर पत्थरके खरलमें जलके साथ इतना घोटे कि, घुटते २ ओषधि काजलके समान काली और चिकनी होजाय। फिर उसकी एकएक

रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंके सेवन करनेसे साध्य व असाध्य बारह प्रकारका दारुण सन्निपात शीघ्र नष्ट होता है। रोगीके शरीरमें अधिक ग्लानि होनेपर तथा पसीनेके आनेसे आर्द्रता होनेपर और अत्यन्त मोह बेहोशीके होनेपर भी यह रस देना चाहिये। यह वेतालरस यमदूतको भी निवारण करनेवाला है॥ ११-१३॥

चक्री।

रसं गन्धं विषं चैव धत्तूरं मरिचं तथा।
शोधितं च तथा तालं माक्षिकश्च समांशकम्॥१४॥
दन्तीक्काथेन सम्भाव्य गुञ्जामात्रा तु चक्रिका।
साध्यासाध्यान्निहन्त्याशु सन्निपातांस्त्रयोदश॥१५॥

पारे और गन्धककी कज्जली, शुद्ध वत्सनाभ, धतूरेके बीज, मिरच, शुद्ध हरताल और सोनामाखी सबको समान भाग ले दन्तीके काढेमें खरल करके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। ये गोलियाँ साध्य और असाध्य तेरहों प्रकारके सन्निपातज्वरोंको शीघ्र नष्ट करती हैं॥ १४॥ १५॥

द्वितीयचक्री।

शम्भोः कण्ठविभूषणं समरिचं तालं तथा पारदं
देवीबीजयुतं सुशोधितमितं जैपालबीजोत्तमम्।
दन्तीमूलयुतं समागधिफलं सर्वं समांशं नयेत्
तत्सर्वं परिमर्द्य चार्द्रकरसैर्गुञ्जाप्रमाणं रसम्॥ १६॥
दद्यात् घोरतरे त्रयोदशविधे दोषे च चक्राह्वयं
तन्द्रादाहसमन्विते च तृषया सम्पीडिते मानवे॥१७॥

शुद्ध वत्सनाभ विष, मिरच, हरताल, पारा और गन्धककी कज्जली, शुद्ध जमालगोटे, दन्तीकी जड और पीपल इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर अदरखके रसमें खरलकरके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। अत्यन्त उग्र तेरहोंप्रकारके सन्निपातज्वर, दोषोंकी उल्वणता, तन्द्रा दाह और तृषायुक्त ज्वरमें भी यह रस रोगीको सेवन कराना चाहिये। इसके सेवनसे उक्त सब विकार शान्त होतेहैं॥ १६॥ १७॥

ब्रह्मरन्ध्ररस।

रसाभ्रगन्धकं तालं हिङ्गुलं मरिचं तथा।
टङ्कणं सैन्धवोपेतं सर्वांशममृतं तथा॥ १८॥

सर्वपादसमोपेतं महिषीपित्तमर्दितम् ।
ब्रह्मरन्ध्रे प्रयोक्तव्यं संन्यासज्ञानसंगमे ॥ १९ ॥
सहस्रकलशैः स्नानं लेपनं चन्दनादिभिः ।
इक्षुमुद्गरसं भोज्यं तक्रभक्तं यथेप्सितम् ॥ १२० ॥

पारा और गन्धककी कज्जली दो भाग, अभ्रक, हरताल, सिंगरफ, मिरच, सुहागा और सैंधानमक ये प्रत्येक ओषधि एक एक भाग और शुद्ध वत्सनाभ सबके बराबर भाग लेवे । इन समस्त ओषधियोंसे चौथाई भाग भैंसका पित्त लेकर उसमें इन सबको खूब अच्छेप्रकारसे खरल करके सन्निपातज्वरकी अज्ञानावस्थामें रोगीके ठीक ब्रह्मरन्ध्रकी जगह मस्तकमें अस्त्रद्वारा बडी सावधानीसे किंचित् क्षत करके उसमें इस रसको भरदेवे । इसके पश्चात् रोगीको शीतलजलसे हजार कलशोंसे स्नान करावे और उसके शरीरपर चन्दन आदिका लेप करे । और इसपर ईखका रस, मूँगका यूष, तक्र और भातका यथेच्छरूपसे पथ्य देवे ॥ १८-१२० ॥

आनन्दभैरवीवटी ।

विषं त्रिकटुकं गन्धं टङ्कणं मृतशुल्बकम् ।
धत्तूरस्य च बीजानि हिङ्गुलं नवमं स्मृतम् ॥ २१ ॥
एतानि समभागानि दिनैकं विजयारसैः ।
मर्दयेच्चणकाभा तु वटिकानन्दभैरवी ॥ २२ ॥
भक्षयित्वा पिबेच्चातु रविमूलकषायकम् ।
सव्योषं हन्ति नो चित्रं सन्निपातं सुदारुणम् ॥ २३ ॥

शुद्ध वत्सनाभ, सोंठ, मिरच, पीपल, गन्धक, सुहागा, तांबेकी भस्म, धतूरेके बीज और सिंगरफ इन सबको समान भाग लेकर एक दिनतक भांगके रसमें घोटकर चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इनको आनन्दभैरवीवटी कहतेहैं । इनमेंसे एक गोली खाकर ऊपरसे त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर आककी जडका काढा पीवे तो दारुण सन्निपातज्वर दूर होताहै ॥ २१-२३ ॥

त्रैलोक्यसुन्दररस ।

रसगन्धकयोर्माषौ प्रत्येकं कज्जलीकृतौ ।
शक्रश्च मुसली चैव धत्तूरः केशराजकम् ॥ २४ ॥
देवदाली जयन्ती च तथा मण्डूकपर्णिका ।
एषां पत्ररसैः शाणैः शिलायां खल्लयेत्पुनः ॥ २५ ॥

शोषयित्वा वटी कार्या त्वनेका राजिकोपमा ।
त्रिदोषजं ज्वरं हन्ति तथा प्रबलकोष्ठकम् ॥ २६ ॥
तप्ते तु नारिकेलस्य जलं देयं प्रयत्नतः ।
त्रैलोक्यसुन्दरो नाम सन्निपातहरो रसः ॥ २७ ॥

पारा और गन्धक प्रत्येक दो दो माशे लेकर कज्जली करलेवे । फिर उसको कुडेकी छाल, मुसली, धत्तूरा, कुकुरभांगरा, बंदाल, अरणी और मण्डूकपर्णी इन ओषधियोंके पत्तोंके चार २ माशे रसके साथ पत्थरके खरलमें खूब खरल करके सरसोंके बराबर गोलियाँ बनाकर सुखालेवे. यह त्रैलोक्यसुन्दररस सेवन करनेसे कोष्ठगत त्रिदोषज्वर और सब प्रकारके सन्निपातज्वर दूर होते हैं । इसके सेवन करनेसे यदि रोगीको गरमी मालूम होवे तो नारियलका जल पीनेको देना चाहिये ॥ २४-२७ ॥

मृतोत्थापनरस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं शिला च विषहिङ्गुलम् ।
मृतकान्ताभ्रताम्रायस्तालकं माक्षिकं समम् ॥ २८ ॥
अम्लवेतसजम्बीरचाङ्गेरीणां रसेन च ।
निर्गुण्डीहस्तिशुण्डयोश्च द्रवैर्मर्द्यं दिनत्रयम् ॥ २९ ॥
रुध्वा तु भूधरे पाच्यं दिनान्ते तत्समुद्धरेत् ।
चित्रकस्य कषायेण मर्दयेत्प्रहरद्वयम् ॥ १३० ॥
माषमात्रं प्रदातव्यं हिङ्गुव्योषार्द्रकद्रवैः ।
सकर्पूरानुपानं स्यान्मृतस्योत्थापने रसे ॥ ३१ ॥
पीडितं सन्निपातेन गतं वापि यमालयम् ।
तत्क्षणाज्जीवयत्येष पथ्यं क्षीरैः प्रयोजयेत ॥ ३२ ॥

शुद्ध पारा एकभाग,शुद्ध गन्धक दो भाग एवं मैनसिल, शोधित वत्सनाभ, सिंगरफ, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म, हरताल और स्वर्णमाक्षिककी भस्म इन सब ओषधियोंको एकएक भाग लेकर सबको एकत्र मिश्रित करके अम्लबेंत, जम्बीरीनींबू, चूका, निर्गुण्डी और हाथीशुण्डी इन प्रत्येकके रसमें क्रमसे तीन ९ दिनतक खरल करके घडियामें रखकर फिर एकदिन तक भूधरयन्त्रमें पकावे,उत्तम प्रकारके पकजानेपर औषधिको निकालकर चीतेकी जडके काढेमें

दो प्रहरतक खरल करे इसकी मात्रा एकएक उडदके बराबर देनी चाहिये और इस तरह ऊपरसे हींग, सोंठ, मिरच, पीपल अदरखका रस, और कपूरका जल इनका अनुपान करना चाहिये । यह रस सन्निपातज्वरसे पीडित और मृतप्राय व्यक्तिको भी तत्काल जीवित करता है। इसपर दूधका पथ्य देवे२८॥३२

मृतसंजीवनरस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं खल्ले तत्कज्जलीकृतम् ।
अभ्रलौहकयोर्भस्म ताम्रभस्म समं समम् ॥ ३३ ॥
विषतालवराटी च शिलाहिङ्गुलचित्रकम् ।
हस्तिशुण्डी चातिविषा त्र्यूषणं हेममाक्षिकम् ॥ ३४ ॥
चूर्णं विमर्दयेद्द्रावैरार्द्रकस्य दिनत्रयम् ।
निर्गुण्डीविजयाद्रावैस्त्रिदिनं मर्दयेत्पुनः ॥ ३५ ॥
काचकुप्यां निवेश्याथ वालुकायन्त्रके पचेत् ।
द्वियामान्ते समुद्धृत्य मर्दयेदार्द्रकद्रवैः ॥ ३६ ॥
मृतसंजीवनो नाम रसोऽयं शंकरोदितः ।
मृतोऽपि सन्निपातार्त्तो जीवत्येव न संशयः ॥ ३७ ॥
नातः परतरः कश्चित् सन्निपातहरो रसः ।
अघोरमन्त्रमुच्चार्य्य पूजां रक्षाञ्च कारयेत् ॥ ३८ ॥

पारा एकभाग और गन्धक दोभाग दोनोंको एकत्र खरल करके कज्जली करलेवे । एवं अभ्रकभस्म, लोहभस्म, ताम्रभस्म, वत्सनाभ, हरताल, कौडीकी भस्म, मैनसिल, सिंगरफ, सोनामाखी, चीतेकी जड, हाथीशुण्डीकी जड, अतीस, सोंठ, मिरच और पीपल ये प्रत्येक ओषधि एक एक भाग लेकर सबको एकत्र बारीक खरलकर अदरखके रसमें तीन दिनतक और निर्गुण्डी और भाँगके रसमें क्रमसे तीन २ दिन तक खरल करके काँचकी आतसी शीशीमें भरकर बालुकायन्त्रमें पकावे। दो प्रहरके पश्चात् स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकरके अदरखके रसमें खरलकरके सुखालेवे। यह श्रीशंकरमहाराजका कहा हुआ मृतसंजीवननामक रस है । इसके सेवन करनेसे मृतप्राय सन्निपातरोगी भी जीवित होजाताहै । सन्निपातको नष्ट करनेवाला इससे उत्तम और कोई

"ॐ अघोरेभ्यश्च घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यश्च सर्वतः । सर्वेभ्यो नमोस्तु रुद्ररूपेभ्यः ।" इति मन्त्रेण रक्षणं पूजनञ्च । अघोरमन्त्रेण अन्यत्रापि रसकार्यमन्यथा दोषोऽस्ति ॥

रस नहीं है । इस रसको सेवन करानेसे प्रथम अघोर मंत्रके द्वारा शिवजीका पूजन और रसको अभिमंत्रित करके सुरक्षित करलेना चाहिये ॥ ३३-३८ ॥

सन्निपातभैरव रस ।

हिङ्गुलस्य विशुद्धस्य सार्द्धतोलचतुष्टयम् ।
गन्धकस्य विषस्यापि प्रत्येकं तोलकद्वयम् ॥ ३९ ॥
समाषकद्वयञ्चैव कनकात्तोलकत्रयम् ।
माषैकाधिकतोलैकं टङ्कणस्य तथैव च ॥ १४० ॥
सम्मर्द्य जम्बीररसैर्वटीञ्छायाविशोषिताम् ।
गुञ्जैकां परिमाणान्तु कारयेत्कुशलो भिषक् ॥ ४१ ॥
एकान्तु भक्षयेत्तासां गोलयित्वार्द्रकद्रवैः ।
घोरे त्रिदोषे दातव्यं सन्निपातकभैरवः ॥ ४२ ॥

शुद्ध सिंगरफ ४॥ तोले, शुद्ध गन्धक दो तोले २ मासे, शुद्ध बत्सनाभ २ तोले २ मासे, धतूरेके बीज ३ तोले और सुहागा एक तोला एक माशा इन सबको जम्बीरीनींबूके रसमें खरलकरके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे। इनमेंसे घोर सन्निपातज्वरमें एक एक गोली अदरखके रसमें मिलाकर रोगीको सेवन कराना चाहिये । यह रस सन्निपातज्वरको नष्ट करनेके लिये विशेष उपयोगीहै ॥ ३९-१४२ ॥

सूचिकाभरणरस ।

रसगन्धकनागश्च विषं स्थावरजङ्गमम् ।
मत्स्यवाराहमायूरच्छागपित्तैश्च भावयेत् ॥ ४३ ॥
सूचिकाभरणो नाम भैरवेण प्रकीर्त्तितः ।
सूचिकाग्रेण दातव्यः सन्निपातकुलान्तकः ॥
"सर्षपमात्रया आर्द्रकस्वरसेन खादेत्" ॥ ४४ ॥

पारे, गन्धककी कज्जली २ भाग, एवं सीसेकी भस्म, शुद्ध मीठा तेलिया और काले साँपका विष ये प्रत्येक एकएक भाग लेकर सबको रोहू मछली, सूअर, मोर और बकरे इनके पित्तमें क्रमसे एकएक दिनतक खरल करे तो सूचिकाभरणरस तैयार होता है । इसको सुईके अग्रभागसे लेकर १ सरसों

तककी मात्राकी अदरखके रस और मधुके अनुपानसे सेवन करावे । यह रस सब प्रकारके सन्निपातज्वरोंको नष्ट करदेता है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

पुनः सूचिकाभरणरस ।

अमृतं गरलं दारु सर्वतुल्यं च हिङ्गुलम् ।
पञ्चपित्तेन संमर्द्य सर्षपाभां वटीं चरेत् ॥ ४५ ॥
वटिका सूचिकाग्रेण सन्निपातकुलान्तकृत् ।
शैत्यर्थं तिलतैलञ्च भोजनं दधिभक्तकम् ॥ ४६ ॥

शुद्ध मीठा तेलिया, काले साँपका विष और सोमल विष ये प्रत्येक एक एक भाग आर सिंगरफ तीन भाग लेकर सबको एकत्र पञ्चपित्तों (रोहूमछली, सूअर, भैंसा, बकरा और मोर इन पाँचोंके पित्तों) में क्रमसे एकएक दिनतक खरल करके सरसोंकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । उनमेंसे एकएक गोली सुईके अग्रभागसे उठाकर नारियलके जलके साथ सेवन करावे । सेवनके पश्चात् रोगीके शरीरपर तिलके तेलकी मालिश करावे और दही, भातका पथ्य देवे । यह रस भी सम्पूर्ण सन्निपात ज्वरोंको नष्ट करता है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

बृहत्सूचिकाभरणरस ।

रसगन्धकनागाभ्रं विषं स्थावरजङ्गमम् ।
मात्स्यमाहिषमायूरच्छागपित्तैर्विभावयेत् ॥ ४७ ॥
सूचिकाभरणो नाम भैरवेण प्रकीर्त्तितः ।
दातव्यः सूचिकाग्रेण पयःपेटीरसेन च ॥ ४८ ॥
त्रयोदश सन्निपाते विषूच्यामतिसारके ।
त्रिदोषजे तथा कासे दापयेत्कुशलो भिषक् ॥ ४९ ॥
पयःपेटीशतं दद्यात भोजनं दधिभक्तकम् ।
तथा सुभर्जितं मांसं लेपनं तिलचन्दनैः ॥
रोगिणो यत्प्रियं द्रव्यं तस्मै तच्च प्रदापयेत ॥ १५० ॥

पारा और गन्धककी कज्जली, सीसा, अभ्रक, स्थावरविष और जंगम (कृष्ण सर्पका) विष प्रत्येक समान भाग लेकर रोहूमछली, भैंसा, मोर और बकरेके पित्तमें क्रमसे एक एक दिनतक भावना देके सरसोंकी समान गोलियां बना कर सुईकी नोकसे उठाकर इसको नारियलके जलके साथ सेवन करावे । इस रसको तेरह प्रकारके सन्निपातज्वर, विषूचिका, अतिसार

और त्रिदोषजनित काल रोग आदिमें सेवन कराना चाहिये. इसपर १०० नारियलोंका जल, दही भात और घृतमें भुना हुआ मांस तथा जो वस्तु रोगीको प्रिय लगे, वह उसको सेवन करनेके लिये दे और रोगीके शरीरपर तिलके तेल और चन्दनादिका प्रलेप करना चाहिये ॥ १४७-१५० ॥

पानीयवटिका ।

रसमाषकचत्वारि इष्टकागुण्डके ग्रहः ।
शोषयित्वा ततः शोध्य तीक्ष्णपर्णे तथार्द्रके ॥ ५१ ॥
स्वर्णधुस्तूरसत्वे च वृद्धदारद्रवे तथा ।
कन्यकानिजसत्त्वे च रसशोधनमुत्तमम् ॥ ५२ ॥
गन्धकं रसतुल्यन्तु प्रक्षाल्य तण्डुलाम्बुना ।
कृत्वा तैलसमं दार्व्यां निर्वाप्य चित्रकद्रवे ॥ ५३ ॥
द्वाभ्यां कज्जलिकां कृत्वा लौहचूर्णस्य माषकम् ।
सुवर्णमाक्षिकञ्चापि तत्र लौहसमं ददेत् ॥ ५४ ॥
कृत्वा कण्टकवेध्यन्तु ताम्रं कज्जललेपितम् ।
मुहूर्त्तमध्यतस्ताम्रं द्रुतं चूर्णत्वमाप्नुयात् ॥ ५५ ॥
एकीकृत्य तु तत्सर्वं ततः प्रस्तरभाजने ।
मर्दयेत्ताम्रदण्डेन दत्त्वा चैषां निजद्रवम् ॥ ५६ ॥
प्रथमे केशराजश्च द्वितीये ग्रीष्मसुन्दरः ।
तृतीये भृंगराजश्च चतुर्थे भेकपर्णिका ॥ ५७ ॥
पञ्चमे च निसुन्दारः षष्ठे च रसपूर्त्तिका ।
सप्तमे पारिभद्रश्च अष्टमे रक्तचित्रकः ॥ ५८ ॥
शक्रासनञ्च नवमे दशमे काकमाचिका ।
एकादशे तथा नीला द्वादशे हस्तिशुण्डिका ॥ ५९ ॥
अमीषामौषधीनान्तु प्रत्येकन्तु पलद्रवम् ।
मर्दयेत्तु प्रयत्नेन द्वादशाहेन साधकः ॥ १६० ॥
ततः पारदमानन्तु दत्त्वा त्रिकटुगुण्डकम् ।
वटिकां राजिकातुल्यां छायाशुष्कां समाचरेत् ॥६१॥

ततः शम्बुकजे पात्रे कर्त्तव्या वटिका त्वियम्।
शरावे शङ्खपात्रे वा कृत्वा सलिलगोलितम् ॥ ६२ ॥
अत्यन्तदोषदुष्टाय ज्ञानशून्याय रोगिणे।
ऊर्ध्वयोनिं समभ्यर्च्य प्रदद्याद्वटिकाद्वयम् ॥ ६३ ॥
ढक्कयेत्तं ततः पश्चान्नरं स्थूलपटादिभिः।
मलमूत्रागमात्सद्यः स साध्यो भवति द्रुतम् ॥ ६४ ॥
दध्यन्नन्तु ततो दद्यात्पिबेद्वारि यथेच्छया।
दद्याद्वातहरं तैलमभ्यङ्गाय सदैव हि ॥
चिरज्वरे पिबेद्वारि पञ्चमूलीप्रसाधितम् ॥ ६५ ॥
ग्रहण्यां रक्तपाते च पिबेदातिविषां गदी।
पिबेद् पर्पटजं वारि घोरे कम्पज्वरे तथा ॥
तथा ज्वरातिसारे च जीरकस्य जलं पिबेत् ॥ ६६ ॥
मन्दाग्नौ कामलायाञ्च संग्रहग्रहणीगदे।
कासे श्वासे सदा कार्या पानीयवटिका त्वियम्॥६७॥

पारा ४ माशे लेकर ईटके चूर्णके साथ मिलाकर खूब घोटे, फिर उस समस्त चूर्णको निकालकर और उसमेंसे पारेको अलगकरके कसरख, अदरख, काले धतूरेके पत्ते, विधारेकी जड और घीग्वार इन प्रत्येकके स्वरसमें क्रमसे मर्दन करके सुखाताजाय; पारेको शुद्ध करनेकी यह क्रिया सर्वोत्तम है। इसके पश्चात् ४ माशे गन्धक लेकर प्रथम चावलोंके जलमें धोवे, फिर उसको लोहेकी करछीमें रखकर अग्निपर तपावे, जब वह पिघलकर तेलकी समान पतली होजाय तब उसे चीतेके काढेमें छोडदेवे। इस प्रकार शुद्ध कियेहुए पारे और गन्धकको लेकर दोनोंकी एकत्र कजली करलेवे। फिर शुद्ध ताँबेके कण्टकवेधी सूक्ष्म-पत्रोंपर उस कजलीका लेप करके उन पत्रोंको हाँडीमें बन्दकर चूल्हेपर रखकर अग्नि देवे। इस प्रकारसे मुहूर्त्तभरमें ही ताँबेकी उत्तम भस्म होजाती है। उक्त विधिसे तैयार कीहुई ताम्रभस्म १ माशा, लोहभस्म १ माशा और स्वर्णमाक्षिकभस्म १ माशा लेकर तीनोंको पत्थरके खरलमें डालकर निम्नलिखित ओषधियोंके रसके साथ ताँबेकी मुसलीसे खरलकरे। पहले दिन कुकुरभाँगरेके रसमें, दूसरे दिन ग्रीष्मसुन्दर (शालिशाक) तीसरे दिन भाँगरा, चौथे दिन मण्डूकपर्णी, पाँचवें दिन सिंहाल्ल, छठे दिन मालकाँ-

गनी, सातवें दिन फरहद, आठवें दिन लालचीता, नववें दिन भाँग, दसवें दिन मकोय, ग्यारहवें दिन नीलीवृक्ष और बारहवें दिन हाथीशुण्डी इन ओषधियोंको चार२ तोले रस डालकर इसप्रकार बारह दिनतक उत्तम प्रकारसे खरल करे। फिर उसमें चार माशे त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर राईकी बराबर गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे। इन गोलियोंमेंसे दो दो गोली लेकर घोंघा, शंख, सीप या शराव (सकोरा) में रखकर, जलमें घोलकर और ब्रह्माका यथाविधि पूजन करके रोगीको सेवन करावे। जिस सन्निपातज्वरमें रोगीके वातादिदोष अत्यन्त दुष्ट होगये हों और जो बिलकुल ज्ञानशून्य हो ऐसे रोगीको यह औषध सेवन कराकर तत्काल मोटा और गरम कपडा उढाकर ढकदेवे। इसके पश्चात् यदि रोगी शीघ्रही मलमूत्रका त्याग करे तो उसको साध्य समझना चाहिये। तदनन्तर रोगीको दही, भातका भोजन और यथेच्छ जलपान करावे। तथा वातनाशक महानारायणादि तेलोंकी शरीरपर मालिश करावे। इसपर पुराने ज्वरमें पंचमूलके काढेका संग्रहणी और रक्तातिसाररोगमें अतीसके काथ, घोर कम्पज्वरमें पित्तपापडेके काथ और ज्वरातिसार, मन्दाग्नि, कामला, संग्रहणी, खाँसी, श्वास आदि रोगोंमें जीरेके काथका अनुपान करना चाहिये। इस रसको पानीयवटिका कहते हैं॥ १५१-१६७॥

सिद्धफलापानीयवटिका।

अनाथनाथो जगदेकनाथस्त्रिलोकनाथः प्रथमः प्रसन्नः।
जगाद पानीयवटीं सुपक्वीं तामेव वक्ष्यामि गुरुप्रसादात् ६८

जयार्कस्वरसं चैव निर्गुण्डीवासकं तथा।
वाटचालकं करञ्जश्च सूर्यावर्त्तकचित्रकौ॥ ६९॥
ब्राह्मी वनं सर्षपश्च भृङ्गराजं विनिःक्षिपेत्।
दन्ती च त्रिवृता चैव तथारग्वधपत्रकम्॥ १७०॥
सहदेवामरं भण्डी तथा त्रिपुरभण्डिका।
मण्डूकपर्णी पिप्पल्यौ द्रोणपुष्पकवायसी॥ ७१॥
गुञ्जाकिनी केशराजस्तथा योजनमल्लिका।
आसारणेति विख्यातो धुस्तूरः कनकस्तथा॥ ७२॥
त्रैलोक्यविजया चैव तथा श्वेतापराजिता।
प्रत्येकं कार्षिकञ्चैव रसमाकृष्य भाजने॥ ७३॥

एकैकञ्च रसं दत्त्वा मर्दयेल्लौहदण्डतः ।
चण्डातपे च संशोष्य क्षीरं तत्र पुनः क्षिपेत् ॥ ७४ ॥
स्नुहीक्षीरं चार्कदुग्धं वटदुग्धं तथैव च ।
प्रत्येकं कार्षिकं दत्त्वा मर्दयेच्च पुनः पुनः ॥ ७५ ॥
सुमर्दितञ्च तं ज्ञात्वा यदा पिण्डत्वमागतम् ।
द्रव्याण्येतानि संचूर्ण्य वस्त्रपूतानि कारयेत् ॥ ७६ ॥
दग्धहीरं चातिविषां कोचिलामभ्रकं तथा ।
पारदं शोधितञ्चैव गन्धकं विषमाधुरम् ॥ ७७ ॥
हरितालं विषञ्चैव माक्षिकञ्च मनःशिला ।
प्रत्येकञ्च चतुर्माषं सर्वं चूर्णीकृतञ्च तत् ॥ ७८ ॥
प्रक्षिप्य मर्दयेत्सर्वं शोषयित्वा पुनः पुनः ।
सुमर्दितञ्च तद्घृष्ट्वा चाङ्गेरीस्वरसेन च ॥ ७९ ॥
उत्थाप्य भेषजं दृष्ट्वा यदा पिण्डत्वमागतम् ।
तिलप्रमाणा गुटिकाः कारयेन्मतिमान् भिषक् ॥१८०॥
त्रिदोषजनितो वैद्यमुक्तोऽपि बहुसम्मतः ।
लंघनैर्वालुकास्वेदैः प्रक्रान्तो दीनदर्शनः ॥ ८१ ॥
सम्पूज्य करुणाधारं प्रणम्य च खसर्पणम् ।
शरावे वारिणा घृष्ट्वा विंशतिं वटिकां पिबेत् ॥ ८२ ॥
पीतं तद्भेषजं पश्चाद्वस्त्रैराच्छादयेन्नरम् ।
रसलग्नं वपुर्ज्ञात्वा दद्याद्वारि सुशीतलम् ॥ ८३ ॥
शरावप्रमितं वारि पातव्यञ्च पुनः पुनः ।
सन्निपातज्वरञ्चैव दाहञ्चैव सुदारुणम् ॥ ८४ ॥
कासं श्वासञ्च हिक्कां च विड्ग्रहं चाश्मरीं जयेत् ।
मूत्ररोगविबन्धे तु दातव्यं क्षीरसंयुतम् ॥ ८५ ॥
पञ्चतृणकृतं क्वाथं दातव्यञ्च पुनः पुनः ।
पानीयवटिका ह्येषा लोकनाथेन निर्मिता ॥
लोकानामुपकाराय सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥ ८६ ॥

अनाथोंकेनाथ, जगत्पति, त्रिलोकीनाथ भगवान्ने प्रसन्न होकर पूर्वकालमें जिस सर्वरोगापहारिणी और सर्वसिद्धिप्रदायिनी पानीयवटीको वर्णन किया है, उसीको मैं श्रीगुरुमहाराजके चरणोंकी कृपासे वर्णन करताहूँ-अरणी,आक, सिह्मालू, अडूसा, खिरैंटी, छोटीकरंज,हुलहुल, चीता,ब्राह्मी,वनसरसों, भँगरा, दन्ती, निसोत, अमलतासके पत्ते, सहदेई, अमरकन्द, मञ्जीठ,त्रिपुरभण्डिका (वङ्गदेशप्रसिद्ध बडभाँट),मण्डूकपर्णी, पीपल,गजपीपल, गूमा, मकोय, घुँघुची, कुकुरभाँगरा, मदनमाली (एक प्रकारका सुगन्धितपुष्प), आसारण, स्वर्णधतूरा, भाँग और श्वेत अपराजिता इन समस्त ओषधियोंके रसको एक एक कर्ष परिमाण लेकर प्रत्येकके रसको क्रमसे पत्थरके खरलमें डालकर लोहेकी मूसलीसे खरल करे। फिर सबको प्रचण्ड धूपमें सुखाकर उसमें थूहरका दूध, आकका दूध और बडका दूध प्रत्येक एक एक कर्ष डालकर अच्छेप्रकारसे मर्दन करके गोलासा बनालेवे। इसके पश्चात् उसमें निम्नलिखित ओषधियोंको खूब बारीक पीस कर कपडछान करके डाले। हीरेकी भस्म, अतीस, कुचला, अभ्रकभस्म, शुद्ध पारे और शुद्ध गन्धककी कज्जली, शुद्ध मीठातेलिया, हरताल, सर्पविष सोना-माखी और मैनासिल इन सबको चार चार मारो परिमाण मिलाकर बारम्बार खरलकरे और धूपमें सुखावे। जब ओषधि उत्तमप्रकारसे घुटकर तैयार होजाय तब उसको चूका शाकके रसमें घोटे। घुटते २ जब उसका गोलासा बनजाय तब उसकी तिलकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। जो रोगी घोर सन्निपातज्वरमें बेहोश पडाहो, जिसको वैद्योंने असाध्य जानकर त्याग दिया हो, जिसको लंघन, बालुकास्वेद आदि उपचारोंके द्वारा भी कुछ लाभ न हुआहो और जो अत्यन्त दीन दशामें हो ऐसे रोगीको प्रथम करुणानिधान शंकर भगवान्का पूजन और सूर्यदेवको प्रणाम करके फिर इस रसकी दो या तीन गोलियाँ सकोरेमें पानीके साथ घिसकर सेवन करावे। यदि रोगकी अधिक प्रबलता प्रतीत हो तो २० गोलीतक इसी विधिसे सेवन करानी चाहिये-और रोगीको औषध सेवन कराकर तत्काल गरम व मोटे वस्त्रसे ढकदेना चाहिये। जब औषधि रोगीके शरीरमें व्याप्त होजाय तब उसको थोडी २ देर पीछे एक एक सकोरा शीतलजल पान करावे। यह रस इस प्रकार सेवन करनेपर घोर सन्निपातज्वर, अत्यन्त प्रबलदाह, खाँसी, श्वास, हिचकी, मलका अवरोध और अश्मरी (पथरी) इन सब रोगोंको नष्ट करताहै। मूत्रकृच्छ्ररोगमें इस रसको दूधके साथ सेवन कराकर पञ्चतृणमूल (कुशा, काँस, रामसर, कालीईख और शालिधान इन ओषधियों) का क्राथ बारम्बार पान कराना चाहिये। सम्पूर्ण

सिद्धियोंको प्रदान करानेवाली इस पानीयवटीको जगत्‌का उपकार करनेके निमित्त श्रीशंकरभगवान्‌ने निर्माण कियाहै ॥ १६८–१८६ ॥

चिन्तामणिरस ।

सूतं गन्धकमभ्रकं सुविमलं सूतार्द्धभागं विषं
तत्त्र्यंशं जयपालमम्लमृदितं तद्गोलकं वेष्टितम् ।
पत्रैर्मञ्जुभुजङ्गवल्लिजनितैर्निःक्षिप्य खाते पुटं
दत्त्वा कुक्कुटसंज्ञकं सहदलैः संचूर्ण्य तत्र क्षिपेत् ॥८७॥
भागार्धं जयपालबीजममृतं तत्तुल्यमेकीकृतं
गुञ्जाऽऽत्र्यूषणसिन्धुचित्रकयुता सर्वाञ्ज्वरान्नाशयेत् ।
शूलं संग्रहणीगदं सजठरं दध्यन्नसंसेविनां
तापे सेचनकारिणां गदवतां सूतस्य चिन्तामणेः ॥
"अयमेव रसो देयो मृतकल्पे गदातुरे ॥" ॥ ८८ ॥

पारा, गन्धक दोनोंकी कज्जली और अभ्रकभस्म, प्रत्येक एक एक तोला, शुद्धमीठा तेलिया ६ माशे और जमालगोटा १॥ तोला सबको जम्बीरीनींबूके रसमें उत्तम प्रकारसे खरल करके गोलासा बनालेवे । उस गोलेको नागरबेलके तीन पानोंमें लपेटकर और मिट्टीकी मूषामें रखकर कपरौटीकर देवे । पश्चात भूमिमें गड्ढा खोदकर उसमें संपुटको रखकर कुक्कुटपुटदेवे । स्वाँगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर पानों सहित चूर्ण करलेवे । फिर उसमें जमालगोटे ६ माशे और शुद्ध वत्सनाभ ६ माशे डालकर अदरखके रसके साथ खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस रसकी एक एक गोली सोंठ, मिरच, पीपल, सैंधानमक और चीतेके समानभाग चूर्णके साथ अदरखके रसमें मिलाकर सेवन करे । यह रस सर्वप्रकारके ज्वर, शूल, संग्रहणी और समस्त उदररोगोंको नष्ट करताहै। इस रसपर दही और भातका पथ्य सेवन करे और शरीरमें अधिक ताप होनेपर जलसेचन आदि शीतल उपचार करे । यह रस मृतप्राय रोगीको भी दियाजासकताहै ॥ ८७–८८ ॥

द्वितीय चिन्तामणिरस ।

रसविषगन्धकटङ्कणताम्रयवक्षारं त्र्योषम् ।
जयपालस्य बीजञ्च क्षौद्रं दत्त्वा शतं वारान् ॥८९॥

सम्मर्द्य रक्तिकमिता वटिकाः कुर्याद्भिषग्प्राज्ञः।
शुण्ठीपिष्टेन सममेका द्वे वाथवा तिस्रः ॥ ९० ॥
संप्राश्य नारिकेलीजलमनुपेयं प्रयुञ्जीत।
भेदानन्तरमेव प्रक्षालितभक्तं तक्रमुपयोज्यम्॥ ९१ ॥
शेषात्सैन्धवजीरं तक्रं भक्तं प्रयोक्तव्यम्।
प्रशमयति सन्निपातज्वरं तथा जीर्णं विषमञ्च ॥ ९२॥
प्लीहानं चाध्मानं कासं श्वासञ्च वह्निमान्द्यम्।
चिन्तामणी रसोऽयं किल नियतं भैरवेण निर्दिष्टः ९३

शुद्ध वत्सनाभ, सुहागा, ताम्रभस्म, जवाखार, पारे और गन्धककी कज्जली २ भाग, सोंठ, मिर्च, पीपल और जमालगोटा प्रत्येक ओषधि एक एक भाग, इन सबको एकत्र मधुके साथ सौवार खरल करके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे एक या दो अथवा तीन गोली सोंठके चूर्ण और मधुके साथ रोगीको सेवन कराकर नारियलके जलका अनुपान करावे। औषध सेवनके पश्चात् विरेचन होजानेपर रोगीको तक्रके साथ भातका माँड सेवन करावे। फिर सैंधानमक और जीरेका चूर्ण डालकर तक्रके साथ भातका भोजन करावे। इस प्रकार इस रसको सेवन करनेसे सन्निपातज्वर, अजीर्ण, विषमज्वर, प्लीहा, अफारा, खाँसी, श्वास, मन्दाग्नि आदि समस्तव्याधियाँ शीघ्र शमन होती हैं। इस चिन्तामणिरसका श्रीभैरवजीने निर्दिष्ट किया है ॥८९-९३॥

रसराजेन्द्र।

पलं शुद्धस्य सूतस्य पलं ताम्रमयोरजः।
अभ्रं नागं पलं वङ्गं पलं गन्धकतालकम् ॥ ९४ ॥
पलं शुद्धविषं चूर्णं सर्वमेकत्र कारयेत्।
मर्दयेत् काकमाच्याश्च तत्र साररसेन च ॥ ९५ ॥
मात्स्यवाराहमायूरच्छागमाहिषपित्तकैः।
मर्दयेद्भिन्नभिन्नैश्च त्रिकटोरम्बुभिस्तथा ॥ ९६ ॥
आर्द्रकस्वरसैः पश्चात शतवारान्मुहुर्मुहुः।
सिद्धोऽयं रसराजेन्द्रो धन्वन्तरिप्रकाशितः ॥ ९७ ॥

गुञ्जामात्रं रसं दद्यात् सुरसारससंयुतम् ।
मेघधाराप्रवाहेण धारितं वारि मस्तके ॥ ९८ ॥
अनिवार्यो यदा दाहस्तदा देया च शर्करा ।
भोजनं दधिसंयुक्तं वारमेकन्तु दापयेत् ॥ ९९ ॥
ईश्वरेण हतः कामः केशवेन च दानवाः ।
पावकेन हतं शीतं सन्निपातं रसस्तथा ॥ २०० ॥

शुद्ध पारा एक पल, ताम्रभस्म, लोहभस्म, अभ्रक, सीसा, वङ्ग, हरताल, शुद्धगन्धक और शुद्ध वत्सनाभ ये प्रत्येक ओषधि एकएक पल लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करले, फिर सबको कज्जली सहित एकत्र खरल करके मकोयके स्वरसमें घोटे, पश्चात् रोहूमछली, सूकर, मोर, बकरा और भैंसा इन पाँचोंके पित्तमें पृथक् पृथक् क्रमसे मर्दन करके त्रिकुटेके काथमें खरल करे । फिर अदरखके स्वरसमें सौबार घोटे तो यह रस सिद्ध होता है । इसको श्रीधन्वन्तरिभगवान्ने प्रकाशित किया है। यह रस एक एक रत्ती परिमाण तुलसीके रसके साथ सेवन करावे । इसके सेवन करनेके पश्चात् सिरपर मूसलधार वर्षाके समान शीतल जलकी धारा छोडे। जब इस प्रकारसे भी शरीरकी ज्वाला शान्त न हो तब कभी कभी खाँडका शर्बत देवे और एकवार दही भातका भोजन करावे । जैसे शिवजीने कामदेवको और विष्णुने दानव समूहको नष्ट करदिया था और जैसे अग्निके द्वारा शीत तत्काल नष्ट होजाता है उसी प्रकार यह रस सन्निपातज्वरको नष्ट करदेता है ।। ९४-२०० ।।

पंचपित्तयुक्त रसका बलवत्त्व ।

ये रसाः पित्तसंयुक्ताः प्रोक्ताः सर्वत्र शम्भुना ।
जलसेकावगाहाद्यैर्बलिनस्ते तु नान्यथा ॥ २०१ ॥
रसजनितविदाहे शीततोयाभिषेको
मलयजघनसारालेपनं मन्दवातः ।
तरुणदधिसिताढ्यं नारिकेलीफलाम्भो
मधुरशिशिरपानं शीतमन्यच्च शस्तम् ॥ २०२ ॥

जो रसादि ओषधियाँ शिवजीने पित्तयुक्त कही हैं अर्थात् जिनमें पित्तकी भावना दी जाती है उन ओषधियोंको सेवन करानेके पश्चात् रोगीके शरीरपर तैलका मर्दन, जलसेचन आदि शीतोपचार करनेसे वे अधिक बलवती

होकर विशेष गुण करती हैं। अन्यथा कुछ फलप्रद नहीं होती। रसादि ओषधियोंके सेवनसे शरीरमें दाह होनेपर देहपर शीतल जलका सेचन, चन्दन, कपूर आदिका लेपन, शीतल मन्द सुगन्ध वायुका सेवन, दही और मिश्री मिलाकर भातका भोजन, नारियलका जलपान करना मधुर और शीतल द्रव्योंका भक्षण और इसी प्रकार औरभी तरह तरहके शीतल उपचार करनी चाहिये ॥ २०१ ॥ २०२ ॥

पञ्चवक्ररस।

गन्धेशटङ्कमरिचं विषं धुस्तूरजैर्द्रवैः।
दिनं विमर्दितं शुष्कं पञ्चवक्रो भवेद्रसः॥
द्विगुञ्जमार्द्रनीरेण त्रिदोषज्वरहृत्परः॥ २०३ ॥

पारे, गन्धककी कज्जली २ भाग, सुहागा, मिरच और शुद्ध वत्सनाभ ये प्रत्येक एक एक भाग लेकर सबको धतूरेके पत्तोंके रसमें एक दिनतक खरल करके सुखालेवे। इसको पञ्चवक्र रस कहते हैं। इसकी मात्रा दो रत्ती परिमाण, अनुपान अदरखका रस। यह रस सन्निपातज्वरको हरनेकेलिये अत्युत्तम है॥ २०३ ॥

त्रिदोषनीहारसूर्यरस।

रसेन गन्धं द्विगुणं कृशानु-
रसैर्विमर्द्याष्टदिनानि घर्मे।
रसाष्टभागं त्वमृतञ्च दद्यात्
विमर्दयेद्वह्निरसेन किंचित्॥
पित्तैस्तु सम्भावित एष देय-
स्त्रिदोषनीहारविनाशसूर्यः ॥ २०४ ॥

शुद्धपारा १ भाग और शुद्धगन्धक २ भाग लेकर दोनोंकी एकत्र कज्जली करके चीतेके रसमें ९ दिनतक घोटे, फिर धूपमें सुखावे। इसके पश्चात् उसमें पारेसे अष्टमांश शुद्ध मीठा तेलिया मिलाकर चीतेके थोडे रसमें खरलकरके उक्त पाँचों पित्तोंकी भावना देवे तो यह रस सिद्ध होताहै। यह रस सन्निपातरूप कुहरेको विनाश करनेकेलिये सूर्यके समान है॥ २०४ ॥

सन्निपातसूर्यरस।

हिङ्गुलं गन्धकं ताम्रं मरिचं पिप्पली विषम्।
शुण्ठीकनकबीजञ्च श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥ २०५ ॥

विजयापत्रतोयेन त्रिदिनं भावयेत्सुधीः ।
द्विगुञ्जं पर्णखण्डेन चार्कक्काथं पिबेदनु ॥ २०६ ॥
निहन्ति सन्निपातोत्थान् गदान्घोरान्सुदारुणान् ।
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकञ्च विशेषतः ॥ २०७ ॥

सिंगरफ, गन्धक, ताँबा, मिरच, पीपल, वत्सनाभ, सोंठ और धतूरेके बीज इन ओषधियोंको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर उस चूर्णको भाँगके पत्तोंके रसमें तीन दिनतक भावना देवे । इस रसको दो दो रत्ती परिमाण पानमें रखकर भक्षणकरे और ऊपरसे आकके काथका अनुपान करे । यह रस अत्यन्त दारुण और घोर सान्निपातज्वर, विशेषकर वातज, पित्तज और श्लैष्मिक ज्वरोंको शीघ्र नष्ट करताहै ॥ २०५–२०७ ॥

अघोरनृसिंहरस ।

भागैकं मृतताम्रस्य द्विभागं मृतलोहकम् ।
त्रिभागं मृतवङ्गञ्च चतुर्भागं मृताभ्रकम् ॥ २०८ ॥
माक्षिकं रसगन्धौ च तथा शुद्धा मनःशिला ।
चत्वार्येतानि ताम्रस्य प्रत्येकं तुल्यमेव च ॥ २०९ ॥
गरलं चाभ्रतुल्यं स्यात् त्रिकटुश्चाभ्रतुल्यकः ।
एतत्सर्वं समं देयं विषमाख्यं तथैव च ॥ २१० ॥
एतत्सर्वस्य द्रव्यस्य द्विगुणं कालकूटकम् ।
मात्स्यमाहिषमायूरघृष्टिपित्तैर्विभावयेत् ॥ ११ ॥
चित्रकस्य द्रवेणैवं प्रत्येकं याममात्रकम् ।
सर्षपाभा वटी कार्या शोषयेदातपे ततः ॥ १२ ॥
दापयेद्वटिकामेकां पयःपेटीरसेन च ।
त्रयोदशे सन्निपाते विषूच्यामतिसारके ॥ १३ ॥
त्रिदोषजे तथा कासे दापयेत्कुशलो भिषक् ।
पयःपेटीशतं दद्याद्भोजनं दधिभक्तकम् ॥ १४ ॥
तथा भर्जितमत्स्यञ्च लेपनं तिलचन्दनैः ।
रोगी वाञ्छति यद्द्रव्यं तत्सर्वं परिदापयेत ॥
अघोरनृसिंहोनामा रसानामुत्तमो रसः ॥ १५ ॥

ताँबेकी भस्म १ तोला, लोहभस्म २ तोले, वङ्गभस्म ३ तोले, अभ्रकभस्म ४ तोले, तथा स्वर्णमाक्षिकभस्म १ तोला; एकतोला पारद और एक तोला गन्धककी कज्जली, शुद्ध मैनसिल एक तोला, काले साँपका विष ४ तोले, त्रिकुटा ४ तोले इन सबकी बराबर अर्थात् २२ तोले कुचला और इन समस्त ओषधियोंसे दुगुना अर्थात् ८८ तोले शुद्ध मीठा तेलिया लेवे । सम्पूर्ण ओषधियोंको एकत्र पीसकर रोहूमछली, भैंसा, मोर और सूकर इन चारोंके पित्तमें पश्चात् चीतेके रसमें क्रम २ से एक एक प्रहरतक भावना देवे, फिर सरसोंके बराबर गोलियाँ बनाकर धूपमें सुखालेवे । इनमेंसे वैद्यको एक एक गोली नारियलके जलके साथ सेवन करानी चाहिये । ये गोलियाँ तेरह प्रकारके सन्निपातज्वर, विषूचिका, अतिसार और त्रिदोषजनित खाँसी आदि रोगोंमें विशेष उपकार करती हैं।इस रसको सेवन कराकर रोगीको सौ नारियलोंका जल बारम्बार पान करावे। दही और भात एवं भुनी मछलीका भोजन करावे और उसके शरीरपर तिल और चन्दनादिका लेपकरावे । रोगीकी जिस २ वस्तुको खानेकी इच्छाहो, वही वस्तु उसको देवे । यह अघोरनृसिंहनामक रस सम्पूर्ण रसोंमें उत्तम है ॥ २०८–२१५ ॥

प्रतापतपनरस ।

गन्धकं हिङ्गुलं तालं सूतकं लौहटङ्कणम् ।
खर्परं सर्जिकाक्षारं माञ्जिष्ठं हिंगुलं समम् ॥ १६ ॥
रसेन मर्दितं पिण्डं निर्गुण्डीहस्तिशुण्डयोः ।
अष्टयामं पचेत्कुप्यां निरुध्य सिकताह्वये ॥ १७ ॥
ततः सिद्धं समादाय रक्तिकामार्द्रकेण च ।
सन्निपातविनाशाय प्रतापतपनो रसः ॥
दधिभक्तं तथा दुग्धं छागमांसञ्च भोजयेत ॥ १८ ॥

समानभाग पारे और गन्धककी कज्जली २ भाग, सिंगरफ, हरताल, लोह, सुहागा, खपरिया, सज्जीखार और मंजीठका चूर्ण ये प्रत्येक एक एक भाग लेकर सबको निर्गुण्डी और हाथीशुण्डीके रसमें क्रमसे मर्दन करके गोलासा बनालेवे । उस गोलेको आतसीशीशीमें भरकर कपरौटीकरके आठ प्रहरतक बालुकायन्त्रमें पकावे।जब वह उत्तमप्रकारसे पककर तैयार होजाय तब उसको निकालकर बारीक चूर्ण करले । इस रसको एक एक रत्ती परिमाण अदरखके

रसके साथ सेवन करावे और दही, भात, दूध तथा बकरीके मांसका पथ्य देवे । यह प्रतापतपनरस सन्निपातज्वरको विनाश करनेके लिये परमोपयोगी है १६-१८

प्राणेश्वररस ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं मृताभ्रं विषसंयुतम् ।
समं सम्मर्दितं तालमूलीनीरैस्त्र्यहं बुधः ॥ १९ ॥
पूरयेत्कूपिकान्ते च मुद्रयित्वा च शोषयेत् ।
सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैर्वेष्टयित्वा च शोषयेत् ॥ २२० ॥
पुटेत्कुण्डप्रमाणेन स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
गृहीत्वा कूपिकामध्यान्मर्दयेच्च दिनं ततः ॥ २१ ॥
अजाजीजीरकं हिङ्गुसर्जिकाटङ्कणं जगत् ।
गुग्गुलुः पञ्चलवणं यवक्षारो यमानिका ॥ २२ ॥
मरिचं पिप्पली चैव प्रत्येकं रसमानतः ।
एषां कषायेण पुनर्भावयेत्सप्तधाऽऽतपे ॥ २३ ॥
नागवल्लीदलयुतं पंचगुञ्जं रसेश्वरम् ।
दद्यान्नवज्वरे तीव्रे सोष्णं वारि पिबेदनु ॥ २४ ॥
प्राणेश्वरो रसो नाम सन्निपातप्रकोपनुत् ।
शीतज्वरे दाहपूर्वे गुल्मशूले त्रिदोषजे ॥ २५ ॥
वाञ्छितं भोजनं दद्यात्कुर्याच्चन्दनलेपनम् ।
तापोद्रेकस्य शमनं बलाधिष्ठानकारकम् ॥
भवेन्नैवात्र सन्देहः स्वास्थ्यञ्च लभते नरः ॥ २६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्धगन्धक, अभ्रकभस्म और शुद्ध मीठातेलिया चारों ओषधियोंको समानभाग लेकर मुसलीके रसमें तीन दिनतक खरल करे । फिर उसको आतसी शीशीमें भरकर उसके ऊपर मुद्रा करके धूपमें सुखावे । तदनन्तर सातबार कपरमिट्टी करे और प्रत्येक बार धूपमें सुखावे । फिर पुटपाक करे और स्वांगशीतल होनेपर ओषधिको शीशीमेंसे निकालकर एक दिनतक खरल करे । इसके पश्चात् कालाजीरा, जीरा, हींग, सज्जी, सुहागा, गोपीचन्दन (सौराष्ट्रदेशकी मिट्टी), गूगल, पाँचोंनमक, जवाखार, अजवायन, मिरच और पीपल ये प्रत्येक ओषधि पारेकी बराबर लेकर इनके काथमें पृथक

पृथक् सात २ बार भावना देदेकर धूपमें सुखावे। इस रसको अत्यन्त उग्र नवीनज्वरमें पाँच रत्ती परिमाण पानमें रखकर सेवन करावे और ऊपरसे मन्दोष्ण जल पान करावे। यह प्राणेश्वर नामक रस सन्निपातके प्रकोपको शीघ्र नष्ट करता है। जिस ज्वरमें पहले दाह होकर फिर शीतका प्रकोप हो उस ज्वरमें तथा गुल्म, शूल और अन्यान्य त्रिदोषजनित रोगोंमें यह प्राणेश्वर रसही सेवन कराना चाहिये।इसको सेवन करानेके पश्चात् रोगीको यथेच्छ भोजन देवे और उसके शरीरपर चन्दनादिका प्रलेप करावे। इससे तापका उद्रेक शान्त होता है और बलकी वृद्धि होती है। इसके द्वारा मनुष्य निस्सन्देह आरोग्यलाभ करता है॥ २१९-२२६॥

सन्निपातभैरव।

पारदं गन्धकं तालं वत्सनाभं त्रिभिः समम्।
दारुमूषश्च गरलं सर्वस्य समहिङ्गुलम्॥ २७॥
मुद्गप्रमाणां वटिकां कारयेत्कुशलो भिषक्।
सन्निपाते वटीमेकामार्द्रद्रावैः प्रदापयेत्॥
रसो महाप्रभावोऽयं सन्निपातस्य भैरवः॥ २८॥

पारा, गन्धक और हरताल प्रत्येक एक एक तोला, वत्सनाभ विष ३ तोले, काष्ठाविष १ तोला, सर्पविष १ तोला और सबकी बराबर अर्थात् ८तोले सिंगरफ लेकर सबको जलके साथ एकत्र खरल करके मूँगकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। उनमेंसे एक गोली अदरखके रसके साथ सन्निपातज्वरमें देवे। यह रस सन्निपातज्वरको विनाश करनेके लिये अत्यन्त प्रभावशाली है॥ २७॥ २८॥

द्वितीय सन्निपातभैरवरस।

रसं विषं गन्धकञ्च हरतालं पलत्रयम्।
जयपालं त्रिवृत्स्वर्णं ताम्रसीसाभ्रलौहकम्॥ २९॥
अर्कक्षीरं लाङ्गली च स्वर्णमाक्षिकमेव च।
समं कृत्वा रसेनैषां त्रिंशद्वारञ्च मर्दयेत्॥ २३०॥
अर्कश्वेतोऽलम्बुषा च सूर्यावर्त्तश्च कारवी।
काकजंघा श्योणकश्च कुष्ठं व्योषविकंकतम्॥ ३१॥
रवेर्मणिश्चन्द्रकान्तो निर्गुण्डी च महाजटा।
धुस्तूरदन्तीपिप्पल्यो दशाष्टाङ्गमिदं शुभम्॥ ३२॥

रसतुल्यं प्रदातव्यं दत्त्वा तोयं चतुर्गुणम्।
शिष्टैकगुणतोयेन भावनाविधिरिष्यते ॥ ३३ ॥
भावनायां भावनायां शोषणं मुहुरिष्यते।
ततश्च वटिकां कृत्वा भैरवाय बलिं ददेत ॥ ३४ ॥
रसोऽयं श्रीसन्निपातभैरवो ज्वरनाशनः।
सर्वोपद्रवसंयुक्तं ज्वरं हन्ति न संशयः ॥ ३५ ॥
सन्निपातज्वरं हन्ति जीर्णञ्च विषमं तथा।
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च चातुर्थकमपि ध्रुवम् ॥ ३६ ॥
ज्वरञ्च जलदोषोत्थं सर्वदोषसमाकुलम्।
भैरवस्य प्रसादेन जगदानन्दकन्दकः ॥ ३७ ॥

"सर्वचूर्णसमं कृत्वा अर्कमूलादिपिप्पलीमूलान्तानामष्टादशानां मिलित्वा रसादिसामग्रीतुल्यानां चतुर्गुणजलैकगुणावशिष्टक्काथेन त्रिंशद्वारमातपे भावनीयम्, प्रतिवारं यत्नेन शोषयित्वा कलायप्रमाणां वटिकां कृत्वा व्याध्यनुरूपमार्द्रकस्वरसेन ज्वरिणे दद्यात। विरेकानन्तरं शुण्ठीजीरकतोयप्रक्षालितान्नं दद्यात। अजाते विरेके पुनरपि रसं दद्यात। व्याधिनिवृत्तौ कदाचित वातपीडायां वातचिकित्सा कार्य्या ॥ ३८ ॥"

शोधितपारा, वत्सनाभ, गन्धक, हरताल, त्रिफला, जमालगोटे, निसोत, धतूरेके बीज, ताँबा, सीसा, अभ्रक, लोह, आकका दूध, कलिहारीकी जड और सोनामाखी इन सब ओषधियोंको समानभाग लेकर एकत्र खरल करलेवे। फिर सफेद आक, लज्जावन्ती, हुलहुल, कालाजीरा, काकजंघा, सोनापाठा, कूठ, सोंठ, मिरच, पीपल, कंटाई, सूर्य्यमणि और चन्द्रकान्तमणिके पुष्प, सिम्हालु, रुद्रजटा, धतूरा, दन्तीकी जड और पीपल इन अठारहों ओषधियोंको अष्टादशाङ्ग कहते हैं। इनको पारद आदि रसोंके बराबर भाग लेकर चौगुने जलमें डालकर पकावे, चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे। इस काथमें उक्त औषधिको ३० बार भावना देवे और प्रत्येक भावनाके पश्चात् सुखाता जाय। फिर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे।

प्रथम श्रीभैरवजीको बलि प्रदान करके फिर इस रसकी एक एक गोली रोगके बलाबलके अनुसार रोगीको अदरखके रसके साथ सेवन करावे । यह सन्नि-पातभैरवरस सम्पूर्ण उपद्रवों सहित सन्निपातज्वरको तथा जीर्णज्वर, विषम-ज्वर, ऐकाहिकज्वर, द्व्याहिकज्वर, चौथियाज्वर, जलदोषसे उत्पन्नहुआ ज्वर और समस्त दोषोंसे युक्त ज्वरको निस्सन्देह नष्ट करताहै । इस रसको सेवन करनेके पश्चात् विरेचन होनेपर रोगीको सोंठ और जीरेके जलसे सिद्धकिये हुए भातका भोजन देवे । यदि विरेचन न हो तो फिर यह रस सेवन करावे। इसके सेवनसे रोगके दूर हो जानेपर यदि वातकी पीडा होजाय तो वात-व्याधिकी समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २९--३८ ॥

मृत्युञ्जयरस ।

सूतं गन्धकटङ्कणं शुभविषं धुस्तूरबीजं कटू
नीत्वा भागमथोत्तरद्विगुणितश्चोन्मत्तमूलाम्बुना ।
कुर्यान्माषवटीं सुखातिसुखदां सर्वाञ्ज्वरान्नाशये--
देष श्रीशिवशासनात्मजनितः सूतश्च मृत्युञ्जयः ॥३९॥
नारिकेलसितायुक्तं वातपित्तज्वरं जयेत् ।
मधुना श्लेष्मपित्तोऽत्थं ज्वरं संनाशयेद्‌ध्रुवम् ॥
संनिपातज्वरं घोरं नाशयेदार्द्रनीरतः ॥ २४० ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, सुहागा ४ भाग, शुद्ध वत्सनाभ ८ भाग, धतूरेके बीज १६ भाग और त्रिकुटा ३२ भाग लेकर सबको एकत्र चूर्ण करके धतूरेकी जडके क्वाथमें घोटकर उडदकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। ये गोलियाँ सब प्रकारके ज्वरोंको नष्ट करती हैं । यह मृत्युञ्जयरस श्रीशिवजी महाराजने वर्णन किया है । इस रसको नारियलके जल और मिश्रीके साथ मिलाकर से-वन करनेसे वात-पित्तज्वर, मधुके साथ खानेसे कफ-पित्तज्वर और अदरखके रसके साथ सेवन करनेसे घोर सन्निपातज्वर अवश्य नष्ट होता है ॥३९-२४५

श्रीसन्निपातमृत्युञ्जय रस ।

विष सुतकगन्धौ च पित्तं मत्स्यवराहयोः ।
आजमायूरपित्ते च माहिषश्चापि योजयेत् ॥ ४१ ॥
हरतालञ्च सव्योषं वानरीबीजसंयुतम् ।
अपामार्गं चित्रमूलं जयपालं च कल्कयेत् ॥ ४२ ॥

एतत्सर्वं समांशेन अजामूत्रेण मर्दयेत् ।
माषेन सदृशी कार्या वटिका सद्भिषग्वरैः ॥ ४३ ॥
महाज्वरे महाशीते महाशीतज्वरेऽपि च ।
मज्जागते सन्निपाते विषूच्यां विषमज्वरे ॥ ४४ ॥
असाध्ये मानवे युञ्ज्यादेकाहज्वरनाशिनी ।
जलोदरे शैथिलाङ्गे नासास्रावे च पीनसे ॥ ४५ ॥
अजीर्णे मूर्च्छनाभावे श्लेष्मभावेऽतिदुर्जये ।
शोथकामलपाण्ड्वादिसर्वरोगापहारकः ॥ ४६ ॥
सन्निपातमृत्युञ्जयो ज्ञानज्योतिःप्रकाशितः ।
भृङ्गराजरसेनायं रसराजः प्रदीयते ॥ ४७ ॥
निर्वाते निर्जनस्थाने बहुवस्त्रसमावृते ।
प्रस्वेदः क्षणमात्रेण जायते चिह्नमीदृशम् ॥ ४८ ॥
मूर्च्छितः पतितो भूमौ दह्यमानः पुनः पुनः ।
एवं चिह्नं समालोक्य वदेन्नैरुज्यमातुरे ॥ ४९ ॥
पथ्यं यद् याचते रोगी तत्तद्देयं प्रयत्नतः ।
दध्योदनं शीतजलं दातव्यं तद्विचक्षणैः ॥ २५० ॥
एवं महारसः श्रेष्ठः शम्भुना प्रेरितो भुवि ।
कृपया सर्वभूतानां ज्ञानज्योतिःप्रकाशितः ॥ ५१ ॥

शुद्ध मीठा तेलिया, पारा, गन्धक, मछली, सूकर, बकरा, मोर और भैंसा इन पाँचोंका पृथक् २ पित्त, हरताल, सोंठ, मिरच, पीपल, कौंचके बीज, चिरचिटा, चीतेकी जड और जमालगोटे सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर बकरीके मूत्रमें खरल करके उडदकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इस रसकी एक एक गोली भाँगरेके रसके साथ सेवन करावे । रोगीको वातरहित, एकान्तस्थानमें बहुत गरम और मोटे कपडे उढाकर रक्खे । इससे तत्काल रोगीके पसीना आताहै। जब रोगी मूर्च्छित होकर भूमिपर गिरपडे और बार बार शरीरमें दाह हो तो रोगीको आरोग्य हुआ समझना चाहिये। ऐसी अवस्थामें रोगीकी जिस वस्तुकी अभिलाषा हो वही वस्तु पथ्यरूपसे सेवन करानी चाहिये । विशेषकर दही, भात और शीतल जल सेवन कराना सर्वोत्तम है।

ज्ञानज्योतिके समान प्रकाशित इस परमोत्कृष्ट रसको श्रीशंकर भगवान्ने सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करके पृथ्वीपर विस्तृत किया है। यह रस-अत्यन्त भयंकर ज्वर, अत्यन्त शीत व शीतज्वर, मज्जागतज्वर, सन्निपातज्वर, विषूचिका, असाध्य विषमज्वर, ऐकाहिकज्वर, जलोदर, अङ्गोंकी शिथिलता, नासास्राव, पीनस, अजीर्ण, मूर्च्छा, कफकी अधिकता, शोथ, कामला, पाण्डु आदि रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये। यह श्रीसन्निपातमृत्युञ्जयरस सम्पूर्ण व्याधिओंका नाश करनेवाला है और ज्ञानकी ज्योतिके समान प्रकाश करनेवाला है॥४१-२५॥

प्रभाकर।

रसेन गन्धं द्विगुणं कृशानुरसैर्विमर्द्याष्टदिनं सुधर्मे।
रसाष्टभागं अमृतञ्च दद्याद्विपाचयेद्वह्निरसेन किंचित्॥५२॥
पित्तैश्च सम्भावित एष देयस्त्रिदोषनीहारविनाशसूर्यः।
"अत्र भैरवं रुधिरवर्णं ध्यायेत्॥ ५३॥

पारा १ भाग और गन्धक २ भाग लेकर दोनोंकी कज्जली करके उसको आठ दिनतक चीतेके रसमें खरल करकरके धूपमें सुखावे। फिर उसमें पारेसे अठगुना शुद्ध वत्सनाभ डालकर थोडेसे चीतेके रसमें कुछ देरतक पकावे, पश्चात् रोहूमछलीके पित्तमें एकबार भावना देकर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह रस पित्तप्रधान सन्निपातज्वरमें प्रयोग करना चाहिये। यह सन्निपातरूपी कोहरेको विनाश करनेके लिये सूर्यके समान है। इसको सेवन करनेसे पहले रक्तवर्ण भैरवजीका ध्यान करना चाहिये॥ ५२॥ ५३॥

कालाग्निभैरवरस।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मर्दयेद्गोक्षुरद्रवैः।
भावितञ्च विशोष्याथ चूर्णयेदतिचिक्कणम्॥ ५४॥
चूर्णतुल्यं मृतं ताम्रं ताम्रादष्टांशिकं विषम्।
हिंगुलं रसभागञ्च द्वौ भागौ कनकस्य च॥ ५५॥
बाणभागोऽत्र गोदन्तो बाणभागा मनःशिला।
टङ्कणं नेत्रभागञ्च ऋतुभागञ्च खर्परम्॥ ५६॥
ब्रह्मभागं च जैपालं नेत्रभागं हलाहलम्।
माक्षिकञ्चाग्निभागञ्च लौहं वङ्गञ्च भागकम्॥ ५७॥
सर्वान् खल्लोदरे क्षिप्त्वा क्षीरेणार्कस्य मर्दयेत्।
दशमूलकषायेण मर्दयेद्द्यामभात्रकम्॥ ५८॥

पञ्चमूलकषायेण तथैव च विमर्दयेत् ।
चणमात्रां वटीं कृत्वा बलं ज्ञात्वा प्रयोजयेत् ॥ ५९ ॥
ज्वरं त्रिदोषजं हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् ।
पूर्ववत् दापयेत्पथ्यं जलयोगश्च कारयेत् ॥ २६० ॥
पथ्यं शाल्योदनं ज्ञेयं दधिभक्तसमन्वितम् ।
कालाग्निभैरवो नाम रसोऽयं भुवि पूजितः ॥ ६१ ॥

शुद्ध पारा १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग लेकर दोनोंकी एकत्र कज्जली करके गोखरूके क्वाथमें भावना दे और धूपमें सुखाकर खूब बारीक और चिकना चूर्ण करलेवे । उस चूर्णकी बराबर ताम्रभस्म, ताम्रभस्मसे अठगुना शुद्ध वत्सनाभ तथा सिंगरफ १ भाग, धतूरेके बीज २ भाग, गोदन्ती हरताल ५ भाग, मैनसिल ५ भाग, सुहागा ३ भाग, खपरिया ६ भाग, जमालगोटा १ भाग, काले साँपका विष ३ भाग, सोनामाखी३भाग,लोहभस्म १ भाग और वङ्ग १ भाग लेवे,कज्जली सहित इन सबको खरलमें डालकर आकके दूधके साथ घोटे फिर दशमूलके काढेमें और पञ्चमूलके काढेमें क्रमसे एक एक प्रहरतक खरल करके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको रोगीकी अवस्था और बलाबलका विचार करके उपयुक्त मात्रासे सेवन कराना चाहिये। यह रस अत्यन्त दारुण सन्निपातज्वरको भी नष्ट करदेताहै। इसपर शालिधानोंके चावलोंका भात और दहीका पथ्य देना चाहिये और पूर्ववत् शीतलोपचार करना चाहिये । यह रस पृथ्वीपर अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ २५४--२६१ ॥

त्रैलोक्यचिन्तामणिरस ।

रसभस्म त्रयो भागा द्विभागश्च भुजङ्गमम् ।
कालकूटश्च षड्भागं भागैकं तालकं तथा ॥ ६२ ॥
गोदन्तं गगनं तुत्थं शिलागन्धकटङ्कणम् ।
जयपालोन्मत्तदन्ती करबीजश्च लाङ्गली ॥ ६३ ॥
पलाशमूलजैर्नीरैः सप्तधा भावितं दृढम् ।
चित्रमूलकषायेण चार्द्रकस्य च वारिणा ॥ ६४ ॥
मात्स्यमाहिषमायूरच्छागवाराहडौण्डुभम् ।
प्रत्येकं दशधा मर्द्यं शिलाखण्डे च संक्षयात् ॥ ६५ ॥
धान्यद्वयां वटीं कृत्वा शुद्धवस्त्रेण धारयेत् ।
दातव्यं चानुपानेन नारिकेलोदकेन च ॥ ६६ ॥

ताम्बूलञ्च ततो दद्यात् भक्ष्यं शीतोपचारकम्।
तिलतैले सदा स्नानं घृतमत्स्यादिभोजनम्॥
शीताम्लदधिसंयुक्तं पुराणान्नञ्च भक्षयेत्॥ ६७॥

रससिन्दूर ३ तोले, काले साँपका विष २ तोले, वत्सनाभ विष ६ तोले, हरताल १ तोला, गोदन्ती हरताल, अभ्रकभस्म, तूतिया, मैनसिल, गन्धक, सुहागा, जमालगोटा, धतूरेके बीज, दन्तीकी जड, कनेरकी जड और कलिहारीकी जड ये प्रत्येक ओषधि एक एक तोला लेवे। सबको एकत्र कूटपीस कर ढाककी जडके क्वाथमें सातबार भावना दे और खरलकरे। फिर चीतेकी जडके काढेमें और अदरखके रसमें तथा रोहूमछली, भैंसा, मोर, बकरा, सूअर और जलसर्प इन प्रत्येकके पित्तमें क्रमसे दस २ बार भावना देवे। पश्चात् पत्थरके खरलमें उत्तमप्रकारसे खरल करके दो दो धानकी बराबर गोलियाँ बनाकर और सुखाकर स्वच्छवस्त्रमें बाँधकर रखदेवे। इनमेंसे एक गोली नारियलके जलके साथ रोगीको सेवन कराकर ऊपरसे ताम्बूल भक्षण करावे। औषध सेवन करानेके पश्चात् रोगीके शरीरपर तिलके तेलकी मालिश कराकर शीतलजलसे स्नान करावे। इसके अतिरिक्त अन्यान्यशीतल उपचार करे। एवं घृत, मत्स्य, अम्ल, शीतल और दही सहित पुराने चावलोंका भात इत्यादि पदार्थोंका भोजन करावे। इस प्रकार इस रसके सेवनसे सन्निपातज्वर दूर होता है॥ ६२-६७॥

रसेश्वर[1]।

रसेन गन्धं द्विगुणं गृहीत्वा तत्पादतुल्यं रविहेमतालम्।
भस्मीकृतं योजय मर्दयेत्तु दिनत्रयं वह्निरसेन घर्मे॥ ६८॥
विषञ्च दत्त्वात्र कलाप्रमाणमजादिपित्तैः परिभावयेच्च।
रक्तिद्वयञ्चास्य ददीत वह्निकटुत्रयेणार्द्ररसप्रयुक्तम्॥ ६९॥
तैलेन चाभ्यक्तवपुश्च कुर्यात्स्नानं जलेनैव सुशीतलेन।
यावद्भवेद्दुःसहमस्य शीतं मूत्रं पुरीषञ्च शरीरकम्पः॥ २७०॥

---

१ रसेश्वरादि कालमेघान्ता रसा वातोल्वणे संनिपाते प्रयोज्या इति रत्नकौमुद्यां माधवः॥

रसेश्वररससे लेकर त्रिदोषदावानल कालमेघ रसतक जितने रस वर्णन कियेगये हैं वे वैद्योंको वातोल्बणसंनिपातज्वरमें प्रयोग करने चाहिये। ऐसा श्रीमाधवाचार्यने अपनी "रत्नकौमुदीमें" कहा है॥

पथ्यं यदीच्छा परि जायतेऽस्य मरीचखण्डं दधिभक्तकश्च ।
अल्पं ददीतार्द्रकमत्र शाकं दिनाष्टकं स्नानमिदंच पथ्यम् ७१

पारा ४ तोले, गन्धक ८ तोले, ताम्रभस्म १ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला और हरतालभस्म १ तोला इन सबको चीतेके रसमें तीन दिनतक खरलकरके धूपमें सुखालेवे। फिर उसमें समस्त औषधिसे १६ वाँ भाग शुद्ध वतसनाभ मिलाकर बकरा, मछली, भैंसा, मोर और सूअर इन पाँचोंके पित्तमें क्रमसे भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस रसकी एकएक गोली चीतेकी जडके क्काथ, त्रिकुटेके क्काथ और अदरखके रसमें मिलाकर रोगीको सेवन करावे। औषधसेवनके पश्चात् रोगीके शरीरपर तेलकी मालिश कराकर इस प्रकार शीतलजलसे स्नान करावे, जिससे रोगीको असह्य शीत शरीरमें कम्प और मूत्र व पुरीषके त्यागनेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हो। फिर रोगीकी इच्छानुसार पथ्यदेवे; किन्तु दही और कालीमिरचोंका चूर्ण मिलाकर भातका भोजन कराना चाहिये। इसपर थोडासा अदरखका शाक सेवन कराना चाहिये। उक्त स्नान, पथ्य आदिकी क्रियाओंको आठ दिन पर्यन्त करना चाहिये ॥ ६८ ॥

वडवानल ।

कान्तश्च सूतं हरितालगन्धं समुद्रफेनं लवणानि पञ्च ।
नीलाञ्जनं तुत्थकमेव रूप्यं भस्म प्रवालानि वराटिकाश्च७२
वैक्रान्तशम्बूकसमुद्रशुक्तिः सर्वाणि चैतानि समानि कुर्यात्।
सूतं भवेद्द्वादशभागकश्च स्नुह्यर्कदुग्धेन विमर्दयेच्च ॥ ७३ ॥
दिनत्रयं वह्निरसैस्ततश्च निवेशयेत्ताम्रजसम्पुटे तत्।
मृदा च संलिप्य रसं पुटेत्तद्रसस्ततः स्याद्वडवानलाख्यः॥
तत्पादभागेन विषं नियोज्य कृशानुतोयेन पचेत् पुनस्तत
वातप्रधाने च कफप्रधाने नियोजयेत् त्र्यूषणचित्रयुक्तम् ॥
दोषत्रयोत्थेऽपि च सन्निपाते वाताधिकत्वादिह सूतकोक्तः॥

कान्तलोह, पारा, हरताल, गन्धक, समुद्रफेन, पाँचोंनमक, कालासुरमा, नीलाथोथा, रौप्यभस्म, प्रवालभस्म, कौडीकी भस्म, वैक्रान्तमणिकी भस्म, शंख और सीपीकी भस्म इन सबको एक एक भाग लेकर एकत्र मर्दन करके उसमें १२ भाग पारा मिलावे और थूहरके दूध तथा आकके दूधमें क्रमसे तीन २ दिनतक खरलकरे। फिर चीतेके रसमें तीन दिनतक खरल करके गोलासा बना-

कर उसको ताँबेकी मूषामें बन्द करके ऊपरसे उसके अच्छेप्रकार कपरौटीकरके पुट देवे । स्वांगशीतल होनेपर उसमेंसे औषधिको निकालले इसको वडवानल रस कहतेहैं फिर इसमें समस्त ओषधियोंका चतुर्थांश शुद्ध वत्सनाभ मिलाकर चीतेके रसके द्वारा फिर थोडी देर पकावे। बारीकचूर्ण करके इस रसको वाताधिक्य, कफाधिक्यज्वरमें अथवा त्रिदोषजनित सन्निपातज्वरमें दो दो रत्तीकी मात्रासे सोंठ, मिरच, पीपलके चूर्ण और चीतेके काथके साथ सेवन कराना चाहिये । यह वडवानलरस वाताधिक्य सन्निपातज्वरके लिये विशेषोपयोगी कहागया है ॥ ७२-७४ ॥

वृहद्वडवानलरस ।

सुतकं गन्धकश्चैव हरितालं मनःशिला ।
अभ्रकं वत्सनाभं च दारुजङ्गमजं विषम् ॥ ७५ ॥
जैपालात्सार्द्धशतकं सर्वं संचूर्ण्य मर्दयेत ।
मत्स्यमाहिषमायूरच्छागपित्तैर्विभावयेत ॥ ७६ ॥
वटिकां शीततोयेन कुर्याद् गुञ्जाप्रमाणतः ।
वडवानलनामायं नारिकेलजलेन वै ॥
भक्षयेत्सन्निपातार्त्तो मृत्युस्तस्याशुखी भवेत ॥ ७७ ॥

पारा, गन्धक, हरताल, मैनसिल, अभ्रक, वत्सनाभ, सोमल विष, कृष्णसर्पका विष ये प्रत्येक एक एक तोला और जमालगोटे १५० तोले लेकर सबका एकत्र चूर्ण करलेवे । फिर रोहूमछली, भैंसा, मोर और बकरा इनके पित्तमें क्रमसे भावना देकर शीतल जलके साथ खरलकरके एकएक रत्तीकी गोलियां बनालेवे । इसकी एक एक गोली नारियलके जलके साथ सन्निपातरोगीको सेवन करानेसे उसकी मृत्युतक दूर होजातीहै ॥ ७४-७७ ॥

सान्निपातवडवानलरस ।

रसाष्टावमृतं सप्त स्यातषष्ठो गन्धतालयोः ।
दन्तीबीजानि षड्भागाः पञ्चभागं तु टङ्कणम् ॥७८॥
चत्वारि धूर्त्तबीजस्य व्योषस्य त्रितयो भवेत् ।
एतानि वह्निमूलस्य क्वाथेन परिमर्दयेत् ॥ ७९ ॥
आर्द्रकस्य रसेनाथ देयं गुञ्जाद्वयं हितम् ।
वडवानलसंज्ञोऽयं सन्निपातहरः परः ॥ २८० ॥

पारा ८ भाग, वत्सनाभ विष ७ भाग, गन्धक ६ भाग, हरताल ६ भाग, जमालगोटे ६ भाग, सुहागा ५ भाग, धतूरेके बीज ४ भाग और त्रिकुटा ३ भाग इन सबको चीतेकी जडके काढेमें अच्छे प्रकारसे खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियां बनालेवे। इनमेंसे एक एक गोली अदरखके रसके साथ सेवन करावे यह वडवानलरस सन्निपातज्वरको हरनेके लिये परमोपयोगी है७८-८०

स्वच्छन्दनायकरस।

सूतगन्धकलौहानि रौप्यं सम्मर्दयेत् त्र्यहम्।
सूर्यावर्त्तश्च निर्गुण्डी तुलसी गिरिकर्णिका॥ ८१॥
अग्निवल्ल्यर्द्रकं वह्निविजया जयया सह।
काकमाचीरसैरेषां पञ्चपित्तैश्च भावयेत्॥ ८२॥
अन्धमूषागतं पश्चाद्वालुकायन्त्रगं दिनम्।
विपचेच्चूर्णितं खादेन्माषैकं चार्द्रकद्रवैः॥ ८३॥
निर्गुण्डीदलमूलानां कषायं सोषणं पिबेत्।
अभिन्यासं निहन्त्याशु रसः स्वच्छन्दनायकः॥
छागीदुग्धेन मुद्गं च पथ्यमत्र प्रयोजयेत्॥ ८४॥

पारा, गन्धक, लोहा और चाँदीकी भस्म इनको समानभाग लेकर तीन दिनतक खरल करे. फिर हुलहुल, सिम्हालू, तुलसी, अपराजिता, (विष्णुक्रान्ता) श्वेतचीतेकी जड, अदरख, लालचीतेकी जड, भांग, अरणी, मकोय इन औषधियोंके रसोंके और पाँचों पित्तोंकी क्रमसे एक एक दिन तक भावना देवे। पश्चात् उसको अन्धमूषामें बन्दकरके एक दिनतक वालुकायन्त्रमें पकावे। स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको एकएक माशे परिमाण अदरखके रसके साथ सेवन कर ऊपरसे सिम्हालूके पत्तों और जडके क्वाथमें कालीमिरचोंका चूर्ण डालकर पान करे। यह रस अभिन्यासज्वरको शीघ्र नष्ट करता है। इसपर बकरीका दूध और मूँगकी दालके यूषका पथ्य देना चाहिये॥ ८१-८४॥

सिंहनाद रस।

लौहपात्रगते गन्धे द्राविते तत्र निक्षिपेत्।
शुद्धसूतं समं चाभ्रं भागींद्रावं तयोः समम्॥ ८५॥
निर्गुण्डयाः पल्लवोत्थश्च तुल्यं तुल्यं प्रदापयेत्।
पचेन्मृद्वग्निना तावद्यावच्छुष्कं द्रवं द्रवम्॥ ८६॥

विषपादयुतः सोऽयं सिंहनादरसोत्तमः।
गुञ्जामात्रः प्रदातव्यः सन्निपातज्वरान्तकः॥
अनुपानं पिबेद्व्याघ्रीक्काथं पुष्करचूर्णितम्॥ ८७॥

दो तोले गन्धकको लोहेके पात्रमें अग्निपर पिघलाकर उसमें शुद्ध पारा २ तोले, अभ्रक २ तोले, भारंगीका रस ४ तोले और निर्गुण्डीके पत्तोंका रस ४ तोले डालकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। पकते २ जब सब रस शुष्क होजाय तब नीचे उतारकर उसमें ३ माशे शुद्ध मीठा तेलिया मिलाकर खूब बारीक चूर्ण करलेवे। इस रसको एकएक रत्ती परिमाण देना चाहिये और इसपर पोहकरमूलका चूर्ण डालकर कटेरीका काथ पान कराना चाहिये। यह सिंहनाद रस सन्निपातज्वरको नष्ट करनेके लिये अत्युत्तम है॥ ८५-८७॥

स्वल्पकस्तूरीभैरव रस।

हिङ्गुलं च विषं टङ्कं जातीकोषफलं तथा।
मरिचं पिप्पली चैव कस्तूरी च समांशिका॥
रक्तिद्वयं ततः खादेत सन्निपाते सुदारुणे॥ ८८॥

सिंगरफ, वत्सनाभ विष, सुहागा, जावित्री, जायफल, मिरच, पीपल और कस्तूरी इन सबको समान भाग लेकर जलके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। दारुण सन्निपातज्वरमें इसकी एकएक गोली सेवन करनेसे शीघ्र लाभ होता है॥ ८८॥

मध्यम कस्तूरीभैरव रस।

मृगमदशशिसूर्या धातकी शूकशिम्बी
कनकरजतमुक्ता विद्रुमं लौहपाठाः।
कृमिरिपुघनविश्वावारितालाभ्रधात्री
रविदलरसपिष्टः कस्तूरिकाभैरवोऽयम्॥ ८९॥
कस्तूरीभैरवः ख्यातः सर्वज्वरविनाशनः।
आर्द्रकस्य रसैः पेयो विषमज्वरनाशनः॥ ९०॥
द्वन्द्वजान्भौतिकान्वापि ज्वरान्कामादिसम्भवान्।
अभिचारकृतांश्चैव तथा शत्रुकृताञ्ज्वरान्॥
निहन्याद्भक्षणादेव डाकिन्यादियुताँस्तथा॥ ९१॥

कस्तूरी, कपूर, ताँबा, धायके फूल, कौंचके बीज, सोना, चाँदी, मोती, मूँगा, लोहा, पाढ, वायविडंग, नागरमोथा, सोंठ, सुगन्धवाला, हरताल, अभ्रक और आमले इन सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके आकके पत्तोंके रसमें खरल करलेवे। इस प्रकार यह कस्तूरीभैरवरस सिद्ध होताहै। यह सर्व-प्रकारके ज्वरोंको नष्ट करनेवाला है। इसको एक एक रत्ती परिमाण अदरखके रस और मधुमें मिलाकर सेवन करनेसे विषमज्वर दूर होताहै। एवं द्वन्द्वज, त्रिदोषज, कामक्रोधादिजनित, अभिचारकृत शत्रुकृत और डाकिनी शाकिनी आदिकी बाधासे उत्पन्नहुए ज्वरोंको यह रस भक्षण करतेहीं नष्ट करदेता है ॥ ८९–९१ ॥

बृहत्कस्तूरीभैरवरस ।

मृतं वङ्गं खर्परञ्च स्वर्णं कस्तूरितारकम् ।
एतेषां समभागेन कर्षमेकं पृथक् पृथक् ॥ ९२ ॥
मृतं कान्तं पलं देयं हेमसारं द्विकार्षिकम् ।
रसभस्म लवङ्गञ्च जातिकाफलमेव च ॥ ९३ ॥
वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं प्रत्येकं दिनसप्तकम् ।
द्रोणपुष्परसैर्वापि नागवल्ल्या रसेन च ॥ ९४ ॥
द्विचन्द्रस्त्रिकटुर्देयो यत्नतो वटिकां चरेत् ।
वातात्मके सन्निपाते महाश्लेष्मगदेषु च ॥ ९५ ॥
त्रिदोषजनिते घोरे सन्निपाते सुदारुणे ।
नष्टगर्भे नष्टशुक्रे प्रमेहे विषमज्वरे ॥ ९६ ॥
कासे श्वासे क्षये गुल्मे महाशोथे महागदे ।
युवतीनां शतं गच्छेन्न च शुक्रक्षयो भवेत् ॥
रोगान्सर्वान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ९७ ॥

बंगभस्म, खपरिया भस्म, स्वर्णभस्म, कस्तूरी और रौप्यभस्म ये प्रत्येक एक एक तोला, कान्तलोहभस्म ४ तोले एवं सोनामाखीकी भस्म, रससिन्दूर, लौंग और जायफल ये प्रत्येक दो दो तोले लेवे। सबको एकत्र खरल करके द्रोण-पुष्पी (गूमा) के पत्तोंके रसमें और पानोंके रसमें क्रमसे सात सात दिन तक भावना देवे। फिर उसमें कपूर और त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) ये प्रत्येक ओषधि चार २ तोले मिलाकर और उत्तमप्रकारसे खरल करके दो २ रत्तीकी

गोलियाँ बनालेवे। इस रसको वातोल्वण सन्निपात, अत्यन्तप्रबलकफके विकार, त्रिदोषजनित भयंकर सन्निपात, नष्टगर्भ, शुक्रक्षय, प्रमेह, विषमज्वर, खाँसी, श्वास, क्षय, गुल्मरोग, अत्यन्त शोष और अन्यान्य भयंकर रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये। इसके सेवन करनेपर सैकडों स्त्रियोंके साथ रमण करनेपरभी वीर्य क्षीण नहीं होता। यह रस जैसे सूर्योदयके होनेपर अन्धकार नष्ट होजाताहै, उसी प्रकार उक्त समस्त रोगोंको शीघ्र नष्ट करदेताहै ॥ ९२-९७ ॥

कस्तूरीभूषणरस।

रसाभ्रं टङ्कणं शुण्ठी कस्तूरी पिप्पली तथा।
दन्तीमूलं जयाबीजं कर्पूरं मरिचं समम् ॥ ९८ ॥
आर्द्रकस्वरसेनैव मर्दयेत्सप्तवारकम्।
आर्द्रकस्वरसैर्युक्तं योजयेद्रक्तिकाद्वयम् ॥ ९९ ॥
वातश्लेष्मणि मन्देऽग्नौ पित्तश्लेष्माधिकेऽपि च।
त्रिदोषजनिते घोरे कासे श्वासे क्षये तथा ॥ ३०० ॥

रससिन्दूर, अभ्रक, सुहागा, सोंठ, कस्तूरी, पीपल, दन्तीकी जड, भाँगके बीज, कपूर और मिरच इन सबको समान भाग लेकर अदरखके रसमें सात बार मर्दन करके दोदो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे एक एक गोली अदरखके स्वरसके साथ सेवन करनेसे वात और कफके विकार, मन्दाग्नि, पित्त और कफकी अधिकता और त्रिदोषजनित भयंकर ज्वर, तथा खाँसी, श्वास और क्षयादिरोग दूरहोते हैं ॥ २९८-३०० ॥

अर्कमूर्त्ति, त्रिदोषदावानलरस।

लौहाष्टकं मारितमर्कभागं सूतं द्विभागं द्विगुणं च गन्धम्।
विमर्दयेद्वह्निरसेन तापे दिनत्रयं चात्र विषं कलांशम् ॥ ३०१ ॥
निःक्षिप्य पित्तैः परिभावितोऽयं रसोऽर्कमूर्त्तिर्भवति त्रिदोषे।
ताम्रस्य पात्रे तु दिनैकमात्रं निम्बूरसेनापि च पित्तवर्गैः ॥ २ ॥
क्षुद्रार्द्रकोत्थेन रसेन सूतस्त्रिदोषदावानल एष सिद्धः।
गुञ्जाद्वयं त्र्यूषणयुक्तमस्य ददीत चित्रार्द्ररसेन वापि ॥
नासापुटे चापि नियोजनीया गुञ्जास्य शुण्ठी मरिचेन युक्ता

लोहभस्म १ तोला, लोहेका आठवां भाग तथा ताम्रभस्म और पारा दो तोले तथा गन्धक ४ तोले लेकर सबको एकत्र चीतेके रसमें तीनदिन तक

खरल करे और प्रतिदिन धूपमें सुखाताजाय फिर उसमें समस्त औषधिसे १६ वाँ भाग शुद्ध मीठातेलिया मिलाकर पाँचों पित्तोंकी पृथक् पृथक् भावना देवे। इसको अर्कमूर्त्तिरस कहते हैं। इसी औषधको यदि ताँबेके पात्रमें डाल कर नींबूके रसमें, पाँचों पित्तोंमें कटेरीके क्वाथ और अदरखके रसमें क्रमसे एक एक दिनतक भावना दीजाय तो यही त्रिदोषदावानलरस सिद्ध होजाता है। इस रसको दो दो रत्ती परिमाण लेकर त्रिकुटेके चूर्ण और अदरखके तथा चीतेके रसमें मिलाकर सेवन करावे। अथवा इस रसको एक रत्ती परिमाण लेकर सोंठ और मिरचोंके चूर्णमें मिलाकर नस्य देवे तो सन्निपातज्वर नष्ट होता है। उक्त दोनों रसोंकी मात्रा और सेवनविधि एकही प्रकारकी है २०१-२०३

त्रिदोषदावानल कालमेघ।

तालेन वङ्गं शिलया च नागं रसैः सुवर्णं रवितारपत्रम्।
गन्धेन लौहं दरदेन सर्वं पुटे मृतं योजय तुल्यभागम्॥२०४
तत्तुल्यसूतं द्विगुणञ्च गन्धं तुत्थञ्च गन्धेन समानभागम्।
निम्बूत्थतोयेन विमर्द्य सर्वं गोलं प्रकृत्याथ मृदा विलिप्य॥
पुटं च दत्त्वाथ विमर्द्य एनं गन्धेन तुल्येन कृशानुनीरैः।
विषं च दत्त्वाथ कलाप्रमाणमीषत्कृशानूत्थरसैः पचेत्तत् २०६
पित्तैस्तथा भावित एष सूतस्त्रिदोषदावानलकालमेघः।
वल्लं ददीतास्य च पूर्वयुक्त्या दाहोत्तरे तं मधुपिप्पलीभिः॥
मुद्गश्च शाल्यन्नमिह प्रशस्तं पथ्यं भवेत्कोष्णमिदं दिनान्ते॥

हरतालके द्वारा कीहुई वंगभस्म, मैनसिलके द्वारा कीहुई सीसेकी भस्म, पारेके द्वारा कीहुई स्वर्णभस्म, ताँबेकी भस्म और चाँदीकी भस्म, गन्धकके द्वारा कीहुई लोहभस्म इन सबको समानभाग लेकर एकत्र मिश्रित करके पश्चात् उसको सिंगरफके द्वारा पुटपाक विधिसे पकावे फिर उसमें पारा एकभाग, गन्धक २ भाग और तूतिया २ भाग मिलाकर बिजौरेनींबूके रसमें खरल करके गोला बनालेवे फिर उस गोलेको सम्पुटमें बन्द करके ऊपरसे कपरौटी कर पुटपाक करे। स्वांगशीतल होनेपर गोलेको निकालकर खरल करलेवे। फिर उसमें समानभाग गन्धक मिलाकर चीतेके रसमें घोटे, पश्चात् गन्धकका १६वाँ भाग शुद्ध वत्सनाम मिलाकर और थोडासा चीतेका रस डालकर कुछ देरतक पाककरे। पश्चात् उपर्युक्त पाँचों पित्तोंमें पृथक् पृथक् भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस प्रकार यह त्रिदोषदावानल कालमेघरस

सिद्ध होताहै । इसकी एक एक गोली पूर्वोक्त विधिके अनुसार मधु और पीपलके चूर्णके साथ दाहयुक्तज्वरमें सेवन करावे । और अपराह्णकालमें रोगीको मूँगके यूष और शालिचावलोंके भातका मन्दोष्ण पथ्य देवे ॥ ३०४-३०७ ॥

श्रीप्रतापलंकेश्वररस ।

अपामार्गस्य मूलानां चूर्णं चित्रकमूलजैः ।
वल्कलैर्मर्दयित्वाथ रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ ३०८ ॥
तेन सूतसमं गन्धमभ्रकं पारदं विषम् ।
टङ्कणं तालकञ्चैव मर्दयेद्दिनसप्तकम् ॥ ३०९ ॥
त्रिदिनं मुसलीकन्दैर्भावयेद्धर्मरक्षितम् ।
मूषां च गोस्तनाकारामापूर्योपरि ढक्कयेत् ॥ ३१० ॥
सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैर्वेष्टयित्वा पुटेल्लघु ।
रसतुल्यं लौहभस्म मृतवङ्गमहिस्तथा ॥ ११ ॥
मधूकसारजलदं रेणुकं गुग्गुलुं शिलाम् ।
चाम्पेयश्च समांशं स्याद्भागार्द्धं शोधितं विषम् ॥१२॥
तत्सर्वं मर्दयेत्खल्ले भावयेद्विषनीरतः ।
आतपे सप्तधा तीव्रे मर्दयेद्वटिकाद्वयम् ॥ १३ ॥
कटुत्रयकषायेण कनकस्य रसेन च ।
फलत्रयकषायेण मुनिपुष्परसेन च ॥ १४ ॥
समुद्रफेननीरेण विजयापत्रवारिणा ।
चित्रकस्य कषायेण ज्वालामुख्या रसेन च ॥ १५ ॥
प्रत्येकं सप्तधा भाव्यं तद्वातपित्तैश्च पंचभिः ।
सर्वस्य समभागेन विषेण परिधूपयेत् ॥ १६ ॥
विमर्द्य भक्षयित्वा च रक्षयेत्कूपिकोदरे ।
गुञ्जैकं वह्निनीरेण शृङ्गवेररसेन वा ॥ १७ ॥
दद्याच्च रोगिणे तीव्रमौढयविस्मृतिशान्तये ।
क्षुरेण तालुमाहत्य घर्षयेदार्द्रनीरतः ॥ १८ ॥
नोद्घटन्ते यदा दन्तास्तदा कुर्यादमुं विधिम् ।
सेचयेन्मन्त्रविद्वैद्यो वारां कुम्भशतैर्नरम् ॥ १९ ॥

भोजनेच्छा यदा तस्य जायते रोगिणः परम् ।
दध्योदनं सितायुक्तं दद्यात्तक्रं सजीरकम् ॥ २२० ॥
पाने पानं सिताजातं यदीच्छेत ददीत तत् ।
एवं कृतेन शान्तिः स्यात् तापस्य च रुजस्य च २१
सचन्द्रं चन्दनरसालेपनं कुरु शीतलम् ।
यूथिकामल्लिकाजातीपुन्नागवकुलावृताम् ॥ २२ ॥
विधाय शय्यां तत्रस्थं लेपनैश्चन्दनैर्मुहुः ।
हावभावविलासोक्तैः कटाक्षैश्चञ्चलेक्षणैः ॥ २३ ॥
पीनोत्तुङ्गकुचापीडैः कामिनीपरिरम्भणैः ।
रम्यवीणानिनादोक्तैर्गायनैः श्रवणामृतैः ॥ २४ ॥
पुण्यश्लोककथाद्यैश्च सन्तापहरणं कुरु ।
दद्याद्वातेषु सर्वेषु सिन्धुजैः सह वह्निभिः ॥ २५ ॥
दद्यात्कणामाक्षिकाभ्यां कामलाह्वयपाण्डुषु ।
तत्तद्रोगानुपानेन सर्वरोगेषु योजयेत् ॥
अयं प्रतापलङ्केशः सन्निपातहरः परः ॥ २६ ॥

चिरचिटेकी जड और चीतेकी जडकी छालको समानभाग लेकर बारीक चूर्णकरके जलके साथ पीस लेवे, फिर कपडेमें बाँधकर उसका रस निचोड लेवे। पश्चात् पारा, गन्धक, अभ्रक, वतसनाभ, सुहागा और हरताल इन सबको उक्त रसके बराबर लेकर उसी रसमें सात दिनतक खरल करे। फिर तीन दिनतक मुसलीके क्वाथमें भावना देकर धूपमें सुखालेवे । इसके पश्चात् इसको गोस्तनाकारवाली मूषामें रखकर मूषाका अच्छे प्रकार मुख बन्द करके उसपर सातबार कपरौटी करे और सुखाकर लघुपुटमें पकावे । स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर चूर्णकरलेवे पश्चात् लोहभस्म, वङ्गभस्म,अफीम, महुएका सार, नागरमोथा, रेणुका, गूगल, मैनसिल और नागकेसर ये प्रत्येक ओषधि पारेके बराबर भाग तथा शुद्धवत्सनाभ पारेसे आधा भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर उत्तम प्रकारसे खरल करे। फिर सिंगिया विषके क्वाथमें सातबार भावना देकर दो घडीतक धूपमें रखकर घोटे। पश्चात् त्रिकुटा,धतूरा, त्रिफला, अगस्तियाके फूल, समुद्रफेन, भाँग, चीता और कलिहारी इन समस्त ओषधियोंके रस वा क्वाथोंमें और पाँचों पित्तोंमें क्रमसे सात २ दिनतक

पृथक् पृथक् भावना देवे। फिर उसमें सम्पूर्ण ओषधिके समानभाग शुद्ध मीठा-तेलिया मिलाकर खूब बारीक खरल करके पश्चात् इस ओषधिको पूर्वोक्त पारदादिरसमें मिलाकर अच्छे प्रकारसे मर्दन करके कपडेमें छानकर शीशीमें भरकर रखदेवे। जो रोगी अत्यन्त मोह और विस्मृतिको प्राप्त होगयाहो ऐसे रोगीको यह रस एक एक रत्ती परिमाण चीतेके रस अथवा अदरखके रसमें मिलाकर सेवन करावे। यदि रोगीके दाँत न खुलते हों तो वैद्य यह क्रिया करे रोगीके तालूकी जगह छुरेसे किंचित् छिद्र करके उसपर इस रसको अदरखके रसमें मिलाकर धीरे धीरे घिसे पश्चात् मन्त्रशास्त्रको जाननेवाला वैद्य रोगीको सौ घडोंसे स्नान करावे और जब रोगीको खूब भूँख लगे तब मिश्री मिलाकर दही भातका भोजन करावे और जीरा डालकर तक्र पान करावे। यदि रोगीको तृषा अधिक हो तो बारबार मिश्रीका शर्बत पान करावे। इस प्रकार करनेसे शान्ति उत्पन्न होतीहै सन्निपातादि अन्यान्य भयंकर रोग शीघ्र दूर होते हैं. यह रस सेवन कराकर रोगीके शरीरपर कपूर, चन्दन आदि शीतलपदार्थोंका बारम्बार लेप करे और जुही, मोतिया, चमेली, पुन्नाग और मौलसिरीके फूलोंकी शय्या बनाकर उसपर रोगीको शयन करावे तथा रोगी, हावभाव विलास चञ्चलकटाक्ष आदिसे युक्त और स्थूल तथा उन्नत कुचोंवाली सुन्दर युवतीके साथ रमण करे। एवं मनोहर वीणाकी झंकारके साथ २ कर्णामृतरूप गायनोंको और पवित्र कथाओंको श्रवण करे. इससे समस्त सन्ताप दूर होजाता है। इस रसको सब प्रकारके वातरोगोंमें सैंधेनमकके चूर्ण और चीतेके काथके साथ देवे। तथा कामला, पाण्डु आदि रोगोंमें पीपलके चूर्ण और शहदमें मिलाकर देवे। इसके अतिरिक्त अन्य सब प्रकारके रोगोंमें इस रसको यथारोगानुसार अनुपानोंके साथ प्रयोग करे। यह श्रीप्रतापलंकेश्वररस सन्निपातको नष्ट करनेकी उत्कृष्ट औषध है २०८-२६

कफकेतु।

टङ्कणं मागधी शंखं वत्सनाभं समं समम्।
आर्द्रकस्वरसेनाथ दापयेद्भावनात्रयम्॥ २७॥
गुञ्जामात्रं प्रदातव्यमार्द्रकस्वरसैर्युतम्।
पीनसे श्वासकासे च शिरोरोगे गलग्रहे॥
कफरोगान्निहन्त्याशु कफकेतुरयं रसः॥ २८॥

सुहागा, पीपल, शंखभस्म और शुद्ध वत्सनाभविष इन सबको समानभाग लेकर अदरखके रसमें तीनबार भावना देवे, फिर एकएक रत्तीकी गोलियाँ

बनालेवे। उनमेंसे एकएक गोली अदरखके स्वरसके साथ सेवन करावे। यह रस पीनसरोग, श्वास, खाँसी, शिरके समस्तरोग, गलेके रोग और कफजनित सम्पूर्ण व्याधियोंको शीघ्र दूर करताहै ॥ २७ ॥ २८ ॥

अन्य कफकेतु।

दग्धशंखं त्रिकटुकं टङ्कणं समभागिकम्।
विषञ्च पञ्चभिस्तुल्यमार्द्रतोयेन मर्दयेत् ॥ २९ ॥
वारत्रयं रक्तिकां च वटीं कुर्याद्विचक्षणः।
प्रातः सायञ्च वटिकाद्वयमार्द्रकवारिणा ॥ ३३० ॥
कफकेतुः कण्ठरोगं शिरोरोगं च नाशयेत्।
पीनसं कफसंघातं सन्निपातं सुदारुणम् ॥ ३३१ ॥

शंखकी भस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, सुहागा ये सब समान भाग और इन पाँचोंके बराबर शुद्ध वत्सनाभ विष लेकर सबको अदरखके रसमें तीनबार भावना देकर खरल करे, फिर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे एकएक गोली प्रातः सायंकाल अदरखके रसके साथ सेवन करावे। यह रस कण्ठसम्बन्धी रोग, शिरके रोग, पीनस, कफके समूह और दारुणसन्निपातको नष्ट करता है ॥ २९-३३१ ॥

श्लेष्मकालानलरस।

हिंगुलसम्भवं सूतं गन्धकं मृतताम्रकम्।
तुत्थं मनोह्वा तालञ्च कट्फलं धूर्त्तबीजकम् ॥ ३२ ॥
हिंगु समाक्षिकं कुष्ठं त्रिवृद्दन्ती कटुत्रिकम्।
व्याधिघातफलं वङ्गं टंगणं समभागिकम् ॥ ३३ ॥
स्नुहिक्षीरेण वटिकां कारयेत्कुशलो भिषक्।
विज्ञाय कोष्ठं कालं च योजयेद्रक्तिकां क्रमात् ॥ ३४॥
वातश्लेष्मणि मन्देऽग्नौ पित्तश्लेष्माधिकेऽपि च।
जीर्णज्वरे च श्वयथौ सन्निपाते कफोल्बणे ॥ ३५ ॥
बलासप्रबलं त्यक्त्वा धातुं वातात्मकं नयेत्।
सेवनात्सर्वरोगघ्नः श्लेष्मकालानलो रसः ॥ ३६ ॥

सिंगरफसे निकालाहुआ पारा, गंधक, ताम्रभस्म, तूतिया, मैनसिल, हरताल, कायफल, धतूरेके बीज, हींग, सोनाभाखी, कूठ, निसोत, दन्तीके बीज, सोंठ,

मिरच, पीपल, अमलतास, वङ्ग और सुहागा इन सब ओषधियोंको समान भाग लेकर थूहरके दूधमें खरल करके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। सुयोग्यवैद्य रोगीके अग्न्याशयके बलाबल, देश, काल, पात्र आदिका भलीभाँति विचारकरके उसको क्रमसे एकएक गोली सेवन करावे। इस रसको अनुपानविशेषके साथ सेवन करनेसे वातश्लेष्म और पित्तश्लेष्मज्वर, मन्दाग्नि, जीर्णज्वर, सूजन और कफोल्वण सन्निपात ज्वरमें जब कि कफक्षीण होकर वायु प्रबल होजाताहै तब विशेष उपकार होताहै यह योग सम्पूर्ण रोगोंका नाश करनेवाला है ॥ ३२-३६ ॥

मध्यजीर्ण विषमज्वरादिमें-

ज्वरमातंगकेसरीरस ।

पारदं गन्धकञ्चैव हरितालं समाक्षिकम् ।
कटुत्रयं तथा पथ्या क्षारौ द्वौ सैन्धवं तथा ॥ ३७ ॥
निम्बस्य विषमुष्टेश्च बीजं चित्रकमेव च ।
एषां माषमितो भागो ग्राह्यः प्रतिसुसंस्कृतः ॥ ३८ ॥
द्विमाषं कानकफलं विषं चापि द्विमाषिकम् ।
निर्गुण्डीस्वरसेनैव शोषयेत्तत् प्रयत्नतः ॥ ३९ ॥
सार्द्धरक्तिप्रमाणेन वटी कार्या सुशोभना ।
सर्वज्वरहरी चैषा भेदिनी दोषनाशिनी ॥ ४० ॥
आमाजीर्णप्रशमनी कामलापाण्डुरोगहा ।
वह्निदीप्तिकरी चैषा जठरामयनाशिनी ॥ ४१ ॥
उष्णोदकानुपानेन दातव्या हितकारिणी ।
भाषितो लोकनाथेन ज्वरमातङ्गकेसरी ॥ ४२ ॥

पारा, गन्धक, हरताल, सोनामाखी, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, जवाखार, सज्जी, सेंधानमक, नीमके बीज, कुचलेके बीज, चीतेकी जड ये प्रत्येक शोधित औषधि एकएक माशा परिमाण और धतूरेके बीज (किसी २ के मतसे जमालगोटेका भी ग्रहण है) २ माशे और शुद्ध वत्सनाभ विष २ माशे लेवे। सबको एकत्र निर्गुण्डीके स्वरसमें भावना देकर और सुखाकर डेढ २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। ये गोलियाँ सर्व प्रकारके ज्वरोंको हरनेवाली, दस्तावर, समस्त दोषनाशक तथा आमदोष, अजीर्ण, कामला, पाण्डुरोग और अग्निकी

मन्दताको दूर करती हैं और जठराग्निको अत्यन्त दीपन करती हैं । ये गोलियाँ उष्णजलके अनुपानके साथ सेवन करनेसे विशेष हितकरती हैं । इस ज्वरमातङ्ग केसरी रसको श्रीलोकनाथजीने वर्णन किया है ॥ ३७-३४२ ॥

ज्वरमुरारि रस ।

शुद्धसूतं शुद्धगन्धं विषञ्च दरदं पृथक् ।
कर्षप्रमाणं कर्षार्द्धं लवङ्गं मरिचं पलम् ॥ ४३ ॥
शुद्धं कनकबीजं च पलद्वयमितं तथा ।
त्रिवृता कर्षमेकं च भावयेद्दन्तिकाद्रवैः ॥ ४४ ॥
सप्तधा च ततः कार्या वटी गुञ्जामिता शुभा ।
ज्वरमुरारिनामायं रसो ज्वरकुलान्तकः ॥ ४५ ॥
अत्यन्ताजीर्णपूर्णे च ज्वरे विष्टम्भसंयुते ।
संग्रहग्रहणीगुल्मे चामवातेऽम्लपित्तके ॥ ४६ ॥
कासे श्वासे यक्ष्मरोगेऽप्युदरे सर्वसम्भवे ।
गृध्रस्यां सन्धिमज्जस्थे वाते शोथे च दुस्तरे ॥ ४७ ॥
यकृति प्लीहरोगे च वातरोगे चिरोत्थिते ।
अष्टादशकुष्ठरोगे सिद्धो गहननिर्मितः ॥ ४८ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया और शुद्ध सिंगरफ ये प्रत्येक सोलह २ माशे, लौंग ८ माशे, मिरच ४ तोले, शुद्ध धतूरेके बीज ८ तोले और निसोत १६ माशे लेवे । सबको एकत्र चूर्ण करके दन्तीकी जडके काथमें सातबार भावना देकर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह रस सब प्रकारके ज्वरोंको समूल नष्ट करनेवाला है । अत्यन्त अजीर्ण, विष्टम्भयुक्तज्वर, संग्रहणी, गुल्म, आमवात, अम्लपित्त, खाँसी, श्वास, यक्ष्मा, समस्त उदररोग, गृध्रसी, सन्धिवात, मज्जागतवात, घोर सूजन, यकृत, प्लीहा, चिरकाल जनित वातरोग और अठारह प्रकारके कुष्ठरोग इत्यादि विविध प्रकारके रोगोंमें यह रस भिन्न २ अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे विशेष उपकार करता है। इस रसको श्रीगहनाचार्यने निर्माण किया है ॥ ४३-४८ ॥

श्रीज्वरमुरारि ।

हिंगुलं च विषं व्योषं टङ्कणं नागराभया ।
जयपालसमायुक्तं सद्योज्वरनिवारणम् ॥
सर्वचूर्णसमं चात्र जयपालञ्च दापयेत ॥ ४९ ॥

सिंगरफ, वत्सनाभ, सोंठ, मिरच, पीपल, सुहागा, सोंठ और हरड इन ओषधियोंका चूर्ण एक एक तोला और जमालगोटेके बीजोंका चूर्ण ८ तोले लेकर सबको एकत्र कूट पीसकर जलके साथ खरल करके मटरकी समान गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियाँको अदरखके रसके साथ सेवन करनेसे ज्वर दूर होता है ॥ ४९ ॥

ज्वरकेसरी ।

शुद्धसूतं विषं व्योषं गन्धं त्रिफलमेव च ।
जयपालसमं कृत्वा भृङ्गतोयेन मर्दयेत् ॥ ३५० ॥
गुञ्जामात्रा वटी कार्या बालानां सर्षपाकृतिः ।
सितया च समं पीता पित्तज्वरविनाशिनी ॥ ५१ ॥
मरिचेन प्रयुक्ता सा सन्निपातज्वरापहा ।
पिप्पलीजीरकाभ्यां च दाहज्वरविनाशिनी ॥
ज्वरकेसरिनामाऽयं रसो ज्वरविनाशनः ॥ ५२ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध वत्सनाभ, सोंठ, मिरच, पीपल, गन्धक, हरड, बहेडा और आमला ये प्रत्येक ओषधि समानभाग और सबके बराबर जमालगोटे लेकर समस्त ओषधियोंका बारीक चूर्ण करलेवे, फिर भाँगरेके रसमें खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । किन्तु बालकोंके लिये सरसोंकी बराबर गोलियाँ बनावे । इन गोलियोंको मिश्रीके साथ सेवन करनेसे पित्तज्वर, मिरचोंके चूर्णके साथ देनेसे सन्निपातज्वर और पीपल तथा जीरेके चूर्णके साथ सेवन करनेसे दाहयुक्तज्वरको नष्ट करती हैं । विशेषकर यह ज्वरकेसरीरस सबप्रकारके ज्वरोंको नष्ट करताहै ॥ ३५०–५२ ॥

ज्वरभैरवरस ।

त्रिकटु त्रिफला टङ्कं विषगन्धकपारदम् ।
जैपालञ्च समं मर्द्यं द्रोणपुष्पीरसैर्दिनम् ॥ ५३ ॥
ताम्बूलेन समं खादेत् प्रातर्गुञ्जामितां वटीम् ।
मुद्गयूषं शिखरिणी पथ्यं देयं प्रयत्नतः ॥ ५४ ॥
नवज्वरं त्रिदोषोत्थं जीर्णञ्च विषमज्वरम् ।
दिनैकेन निहन्त्याशु रसोऽयं ज्वरभैरवः ॥ ५५ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, सुहागा, शोधितवत्सनाभ, पारा, गन्धक और जमालगोटा सबको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण करले, फिर द्रोणपुष्पीके रसमें एक दिनतक खरल करके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बना-लेवे। उनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक गोली पानमें रखकर भक्षण करे। इसपर मूँगका यूष, शिखरिन आदि पदार्थोंका पथ्य देवे। यह रस नवीन ज्वर, त्रिदोषजनित ज्वर, जीर्णज्वर, विषमज्वर आदि समस्त ज्वरोंको एक दिनमें ही नष्ट करदेता है॥ ५३–५५॥

विद्याधररस।

रसो गन्धस्ताम्रं त्रिकटु कटुका टङ्कणवरा
त्रिवृद्दन्ती हेमद्युतिमणिविषैस्तत्सममिदम्।
समस्तैस्तुल्यं स्याद्विमलजयपालोद्भवरज-
स्ततः स्नुक्क्षीरेण प्रगुणमृदितं दन्तिसलिलैः॥५६॥
द्विगुञ्जास्य प्रौढं जयति वटिका सामसकलं
ज्वरं पाण्डुं गुल्मं ग्रहणिगुदकीलोद्भवरुजः।
मरुच्छूलाजीर्णं प्रबलमपि साम्यं कृमिगदं
विबन्धं प्लीहानं यकृतमपि विद्याधररसः॥ ५७॥

पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, कुटकी, सुहागा, हरड, बहेडा, आमला, निसोत, दन्तीकी जड, धतूरेके बीज, आककी जड और शुद्ध वत्सनाभ ये सब ओषधियाँ समान भाग और सबकी बराबर शुद्ध जमाल-गोटोंका चूर्ण लेकर एकत्र पीसले फिर थूहरके दूधमें और दन्तीकी जडके काढेमें क्रमस खरल करके दोदो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंको सेवन करनेसे आमयुक्तज्वर, पाण्डु और गुलमरोग, संग्रहणी, अर्शकी पीडा, वातशूल, अजीर्ण, कृमिरोग, मलबद्धता, प्लीहा और यकृत्‌विकार ये सब रोग दूर होते हैं॥ ५६॥ ५७॥

पञ्चाननरस।

शम्भोः कण्ठविभूषणं समरिचं दैत्येन्द्ररक्तं रविः
पक्षौ सागरलोचनं शशियुगं भागोऽर्कसंख्यान्वितः।
खल्ले तत्परिमर्दितं रविजलैर्गुञ्जैकमात्रं ददेत्
सिद्धोऽयं ज्वरदन्तिदर्पदलनः पञ्चाननाख्यो रसः ५८

पथ्यं च देयं दधिभक्तकं च सिन्धूत्थपथ्या मधुना समेतम् ।
गन्धानुलेपो हिमतोयपानं दुग्धश्च देयं शुभदाडिमश्च ॥५९॥

शुद्ध विष २ तोले, मिरच ४ तोले, गन्धक ३ तोले, सिंगरफ १ तोला और ताम्रभस्म २ तोले इन सब ओषधियोंको इस प्रकार लेकर आककी जडके रसमें उत्तमप्रकारसे खरल करके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस प्रकार यह पंचानन नामक रससिद्ध होताहै । यह ज्वररूप हाथीके दर्पको दमन करनेवाला है । इस रसकी एकएक गोली सैन्धानमक, हरडके चूर्ण और शहदमें मिलाकर सेवन करानी चाहिये और रोगीको दहीभातका पथ्य देना चाहिये । एवं शीतलजल, दूध, अनार आदि सेवन करावे और शरीरमें दाह होनेपर चन्दनादिका लेप तथा अन्यान्य शीतोपचार करे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

चन्द्रशेखररस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मरिचं टङ्कणं तथा ।
सर्वतुल्या शिला योज्या मत्स्यपित्तेन भावयेत् ३६०॥
त्रिदिनं मर्दयेत्तेन रसोऽयं चन्द्रशेखरः ।
द्विगुञ्जमार्द्रकद्रावैर्देयं शीतोदकं ह्यनु ॥ ६१ ॥
तक्रभक्तश्च वृन्ताकं पथ्यं तत्र प्रदापयेत् ।
त्रिदिनात् श्लेष्मपित्तोत्थमत्युग्रं नाशयेज्ज्वरम् ॥ ६२ ॥

शुद्धपारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, मिरच २ भाग, सुहागा २ भाग और सबकी बराबर मैनसिल लेकर सबको रोहूमछलीके पित्तमें तीन दिन भावना देवे । फिर उसीमें मर्दन करके दोदो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे एक एक गोली अदरखके रसके साथ सेवन कराकर शीतल जलका अनुपान करावे । इसपर मट्ठेके साथ भात और बैंगनके शाकका पथ्य देना चाहिये । यह चन्द्रशेखर रस तीन दिन सेवन करनेसे ही अत्यन्त उग्र पित्तश्लेष्म ज्वरको नष्ट करताहै ॥ ३६०–६२ ॥

अर्द्धनारीश्वररस ।

रसगन्धामृतञ्चैव समं शुद्धञ्च टङ्कणम् ।
मर्दयेत्खलवमध्ये तु यावत्स्यात्कज्जलप्रभम् ॥ ६३ ॥
नकुलारिमुखे क्षिप्त्वा मृदा संवेष्टयेद्बहिः ।
स्थापयेन्मृण्मये पात्रे ऊर्ध्वाधो लवणं क्षिपेत ॥ ६४ ॥

भाण्डवक्त्रं निरुध्याथ चतुर्यामं दृढाग्निना ।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य खल्ले कृत्वा तु कज्जलीम् ॥ ६५ ॥
गुञ्जामात्रं प्रदातव्यं नस्यकर्मणि योजयेत् ।
वामभागे ज्वरं हन्ति तत्क्षणाल्लोककौतुकम् ॥ ६६ ॥
कुर्याद्दक्षिणभागेन चारोग्यं निश्चितं भवेत ।
गोप्याद्गोप्यतमं प्रोक्तं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥
अर्धनारीश्वरो नाम रसोऽयं कथितो भुवि ॥ ६७ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, विष और सुहागा इन चारोंको समानभाग लेकर एकत्र खरल करे, जब घुटते घुटते औषधि कज्जलके समान काली होजाय तब उस कज्जलीको मरेहुए काले साँपके मुँहमें भरकर मिट्टीसे मुँहको बन्द करके उसपर कपरौटी करदेवे । फिर उसको मिट्टीकी हाँडीमें रखकर उसके नीचे ऊपर खूब नमक भरदेवे और हाँडीका मुँह बन्दकरके इसके सन्धिस्थानोंको अच्छे प्रकार बन्दकर चार प्रहरतक तीक्ष्ण अग्नि देवे । स्वांगशीतल होनेपर उसको निकालकर खरलमें डालकरके खूब बारीक कज्जली करलेवे. इस कज्जलीको एक रत्तीपरिमाण लेकर रोगीको नस्य देनेसे उसके वामअङ्गका ज्वर तत्काल दूर होजाता है, फिर धीरे धीरे दहिने अङ्गका भी ज्वर दूर होकर रोगी पूर्ण आरोग्य होजाता है। यह रस अत्यन्त गोपनीय है, इसलिये इसको बडे यत्नसे छिपाकर रखना चाहिये । इसको अर्धनारीश्वररस कहते हैं॥ ६३–६७ ॥

मृतसंजीवनरस ।

हिंगुलभागाश्चत्वारो जैपालस्य त्रयो मताः ।
द्वौ भागौ टङ्कणस्यापि भागैकममृतस्य च ॥ ६८ ॥
तत्सर्वं मर्दयेच्छ्लक्ष्णं शुष्कं यामं भिषग्वरः ।
शृङ्गवेराम्बुना मर्द्यं व्योषचित्रकसैन्धवैः ॥ ६९ ॥
यामद्वयमितस्तापं हरत्येव न संशयः ।
घनसारससारेण चन्दनेन विलेपनम् ॥ ३७० ॥
विदध्यात्कांस्यपात्रे च भोजनं रोगिणां भिषक् ।
शाल्यन्नं तक्रसहितं भोजयेदिन्दुसंयुतम् ॥ ७१ ॥
सन्निपाते महाघोरे त्रिदोषे विषमज्वरे ।
आमवाते वातगुल्मे शूले प्लीह्नि जलोदरे ॥ ७२ ॥

शीतपूर्वे दाहपूर्वे विषमे सन्ततज्वरे ।
अग्निमान्द्ये च वाते च प्रयोज्योऽयं रसोत्तमः ।
मृतसंजीवनो नाम विख्यातो रससागरे ॥ ७३ ॥

सिंगरफ ४ भाग, जमालगोटा ३ भाग, सुहागा २ भाग और शुद्ध मीठा तेलिया १ भाग, सबको एकत्र बारीक खरल करके अदरखके रसमें एक प्रहर तक खूब घोटे । फिर सुखाकर उसमेंसे एक एक रत्ती परिमाण लेकर सोंठ, मिरच, पीपल, सेंधानमक इनके चूर्ण और चीतेके काथमें मिलाकर रोगीको सेवन करावे । यह रस दो प्रहरमें ही ज्वरको निस्सन्देह नष्ट करदेता है । इस औषधिको सेवन करनेपर शरीरपर कपूर चन्दनादिका लेप आदि शीतोपचार करने चाहिये. ज्वरके कम होजानेपर वैद्य, रोगीको तक्र और कर्पूरमिश्रित शालिधानोंके चावलोंका भात काँसीके पात्रमें रखकर भोजन करावे । इस रसको अत्यन्त घोर सन्निपात त्रिदोषज विषमज्वर, आमवात, वातगुल्म, शूल, प्लीहा, जलोदर, शीतयुक्त या दाहयुक्त विषमज्वर, सन्ततज्वर, मन्दाग्नि और वातव्याधि इन सम्पूर्ण रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये । यह मृतसंजीवनरस रससमुद्रमें अत्यन्त प्रसिद्धहै ॥ ६८-७३ ॥

श्रीरसराज ।

भागैकं रसराजस्य भागश्च हेममाक्षिकात् ।
भागद्वयं शिलायाश्च गन्धकस्य त्रयो मताः॥ ७४ ॥
तालकाष्टादशा भागाः शुल्बं स्याद्भागपंचकम् ।
भल्लातकात्त्रयो भागाः सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ७५ ॥
वज्रीक्षीरप्लुतं कृत्वा दृढे मृण्मयभाजने ।
विधाय सुदृढां मुद्रां पचेद्यामचतुष्टयम् ॥ ७६ ॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य खल्लयेत्सुदृढं पुनः ।
गुञ्जाचतुष्टयं चास्य पर्णखण्डेन दापयेत् ॥
रसराजः प्रसिद्धोऽयं ज्वरमष्टविधं जयेत् ॥ ७७ ॥

पारा १ तोला, स्वर्णमाक्षिक १ तोला, मैनसिल २ तोले, गन्धक ३ तोले, हरताल १८ तोले, ताँबा ५ तोले और भिलावे (अभावमें लाल चन्दन) ३ तोले लेकर सबको एकत्र पीसलेवे।फिर थूहरके दूधमें खरल करके गोलासा बनाकर मिट्टीकी हाँडीमें रखदेवे और उसपर उत्तम प्रकारसे मुद्राकरके ४ प्रह-

रतक अग्निमें पकावे, स्वाङ्गशीतल होजानेपर औषधिको निकालकर खूब बारीक खरल करलेवे । इसको चार रत्ती परिमाण लेकर पानमें रखकर सेवन करानेसे आठप्रकारका ज्वर दूर होताहै यह रसराज ज्वरकी प्रसिद्ध औषध है॥७४-७७

मुद्राघोटकरस ।

पारदो गन्धकश्चैव त्रिक्षारं लवणत्रयम् ।
गुग्गुलुर्वत्सनाभश्च प्रत्येकन्तु द्विमाषिकम् ॥ ७८ ॥
कृष्णोन्मत्तजटानीरैर्भावयेत्सप्तवारकम् ।
गोक्षुरेन्द्रकमारीषकरञ्जचित्रतेजिका ॥ ७९ ॥
भूकुरुवकलताभिश्च त्रिफलाबृहतीरसैः ।
मर्दिता वटिका कार्य्या कृष्णलाफलसन्निभा ॥३८०॥
ततो वटीद्वयं दत्त्वा यत्नैः पाट्यादिभिर्वृतः ।
रसः सर्वज्वरं हन्ति क्षणमात्रान्न संशयः ॥ ८१ ॥

पारा, गन्धक, जवाखार, सुहागा, सज्जी, सेंधानमक, विरियासंचरनमक, कालानमक, गूगल और वत्सनाभ विष, ये प्रत्येक दोदो माशे लेकर एकत्र खरल करलेवे । फिर काले धतूरेकी जडके रसमें सातवार भावना देकर गोखुरू, इन्द्रजौ, मरसाशाक, करञ्जुआ, चीतेकी जड, मालकाँगनी, छोटी कटसरैयाकी जड, त्रिफला और बडीकटेरी इन ओषधियोंके रस अथवा क्काथमें क्रमक्रमसे खरल करके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । उनमेंसे दोगोली अदरखके रसके साथ सेवन कराकर रोगीको गरम वस्त्रोंसे अच्छीतरह ढकदेवे । यह रस क्षणभरमें ही सब प्रकारके ज्वरोंको नष्ट करदेताहै ॥ ७८-८१ ॥

शीतारिरस ।

पारदं गन्धकं टङ्कं शुल्बं चूर्णं समं समम् ।
पारदाद्द्विगुणं देयं जैपालं तुषवर्जितम् ॥ ८२ ॥
सैन्धवं मरिचं चिञ्चात्वग्भस्म शर्करापि च ।
प्रत्येकं सूततुल्यं स्याज्जम्बीरैर्मर्दयेद्दिनम् ॥ ८३ ॥
द्विगुञ्जं तप्ततोयेन वातश्लेष्मज्वरापहः ।
रसः शीतारिनामायं शीतज्वरहरः परः ॥ ८४ ॥

---

१ शर्करा-विषम् ।

पारा, गन्धक, सुहागा, ताम्रभस्म, सैंधानमक, मिरच, इमलीकी छालकी भस्म और वत्सनाभविष ये प्रत्येक एकएक भाग और जमालगोटोंके बीजोंकी गिरी २ भाग लेकर सबको जम्बीरीनींबूके रसमें एक दिनतक खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इसकी एक एक गोली गरम जलके साथ सेवन करे। यह रस वातकफज्वर और शीतज्वरको शमन करनेके लिये परमोपयोगीहै॥

पर्णखण्डेश्वररस ।

समांशं मर्दयेत्खल्ले रसं गन्धं शिलां विषम् ।
निर्गुण्डीस्वरसैर्भाव्यं त्रिवारं चार्द्रकद्रवैः ॥
गुञ्जैकं भक्षयेत्पर्णैर्ज्वरं हन्ति महद्दतम् ॥ ८५ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, मैनसिल और शुद्ध वत्सनाभ इन चारोंको समान भाग लेकर बारीक पीसलेवे, फिर निर्गुण्डीके स्वरस और अदरखके स्वरसमें क्रमसे तीन तीन बार भावना देकर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे इस रसकी एक गोली पानमें रखकर खानेसे प्रबलज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ ८५ ॥

शीतभञ्जी रस ।

पारदं रसकं तालं तुत्थं टङ्कणगन्धकम् ।
सर्वमेतत्समं शुद्धं कारवेल्लरसैर्दिनम् ॥ ८६ ॥
मर्दयेत्तेन कल्केन ताम्रपात्रोदरं लिपेत् ।
अङ्गुल्यर्द्धार्द्धमानेन तत्पचेत्सिकताह्वये ॥ ८७ ॥
यन्त्रे यावत्स्फुटन्त्येव व्रीहयस्तस्य पृष्ठतः ।
ताम्रपात्रं समुद्धृत्य चूर्णयेन्मरिचैः समम् ॥ ८८ ॥
शीतभञ्जीरसो नाम द्विगुञ्जो वातिकज्वरे ॥
दातव्यः पर्णखण्डेन मुहूर्तान्नाशयेज्ज्वरम् ॥ ८९ ॥

" शुद्धताम्रं षट्तोलकं तेन निर्मितं ताम्रखल्लं प्रत्येकं तोलकमितेन पारदादिषड्द्रव्येण लिप्तमधोमुखं कृत्वा स्थाल्यां संस्थाप्य पात्रान्तरेणाच्छाद्य उपरि वालुकाभिः स्थालीं परिपूर्य, तदुपरि व्रीहीन् दत्त्वा चुल्ल्यां निवेश्य तावदग्निज्वाला दातव्या यावद्व्रीहयो न स्फुटन्ति, स्फुटितेषु तेषु

१ रसकम्-खर्परम् ।

व्रीहिषु रसः सिद्धो भवति । पश्चात् मरिचचूर्णं षट्तोलकं सर्वमेकीकृत्य चूर्णयित्वा अस्य द्विगुञ्जं पर्णखण्डेन सह भक्षयेदित्युपदेशः ॥ "

प्रथम ६ तोले शुद्ध ताम्रलेकर उसका एक खरल बनावे, फिर पारा, खपरिया, हरताल, तूतिया, सुहागा और गन्धक इन सबको एकएक तोला परिमाण लेकर करेलेके पत्तोंके रसमें एकदिन खरल करके कल्क बनालेवे । उस कल्कका उक्त ताँबेके खरलके आध २ अँगुल ऊँचा भीतर लेप करके उसे सुखालेवे । फिर उस खरलका नीचेको मुँह करके एक हाँडीमें रखकर उसके ऊपर दूसरी हाँडी ढकदेवे और सन्धिस्थानोंको बन्द करदेवे । पश्चात् उसको बालुकायन्त्रके द्वारा चूल्हेपर रखकर पकावे और उस यन्त्रके ऊपर कुछ धानके दाने रखदेवे और यन्त्रको तबतक अग्निदेवे, जबतक धानकी खीलें न होजायँ । जब सब धान अच्छी तरहसे खिलजायँ तब रसको सिद्ध हुआ जानकर स्वाङ्ग शीतल होनेपर ताम्रपात्रको निकालले और उसमेंसे ओषधिको छुडाकर उसको ६ तोले मिरचोंके साथ खूब बारीक खरलकरके एक शीशीमें भरकर रखदेवे । इस रसको दो रत्ती परिमाण पानमें रखकर सेवन करनेसे क्षणभरमें वातज्वर नष्ट होता है । इसको शीतभञ्जीरस कहते हैं ॥ ८६-८९ ॥

स्वल्पज्वरांकुशरस ।

रसस्य द्विगुणं गन्धं गन्धतुल्यं च टङ्कणम् ।
रसतुल्यं विषं योज्यं मरिचं पंचधा विषात् ॥ ३९० ॥
कट्फलं दन्तिबीजं च प्रत्येकं मरिचोन्मितम् ।
ज्वराङ्कुशो रसो नाम मर्दयेद्याममात्रकम् ॥
माषैकेण निहन्त्याशु ज्वरं जीर्णं त्रिदोषजम् ॥ ३९१ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, सुहागा २ भाग, शुद्ध विष १ भाग, मिरच ५ भाग, कायफल ५ भाग और दन्तीके बीज ५ भाग लेकर सबको जलके साथ एक प्रहर तक खरल करके एकएक माशेकी गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको सेवन करनेसे जाणज्वर और सन्निपातज्वर शीघ्र दूर होता है । यह विरेचक औषध है ॥ ३९० ॥ ९१ ॥

द्वितीयज्वरांकुश ।

ताम्रतो द्विगुणं तालं मर्दयेत्तुषवीद्रवैः ।
प्रपुटेत् भूधरे शीते चक्रीक्षीरैर्विमर्दयेत ॥ ९२ ॥

प्रपुटेत भूधरे पश्चात पंचगुञ्जामितं शुभम् ।
आर्द्रकस्य रसेनैव सर्वज्वरनिकृन्तनः ॥ ९३ ॥
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च त्र्याहिकं च चतुर्थकम् ।
विषमं चापि शीताढ्यं ज्वरं हन्ति ज्वराङ्कुशः ॥९४॥

ताँबा १ भाग और हरताल २ भाग लेकर दोनोंको करेलेके पत्तोंके रसमें खरल करकें भूधर यन्त्रमें पुटपाक करे । शीतल होनेपर उनको निकालकर थूहरके दूधमें घोटकर फिर भूधर यन्त्रमें रखकर पुटदेवे । पश्चात् इसको ५ रत्ती परिमाण अदरखके रसमें मिलाकर देनेसे ही सब प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं । यह रस ऐकाहिक, द्व्याहिक, तिजारी, चौथिया, विषमज्वर और शीतज्वरको दूर करता है ॥ ९२-९४ ॥

तृतीयज्वरांकुशरस ।

शुद्धसूतं विषं गन्धं धूर्त्तबीजं त्रिभिः समम् ।
चतुर्णां द्विगुणं त्र्योषं चूर्णं गुञ्जाद्वयं हितम् ।
जम्बीरस्य च मज्जाभिरार्द्रकस्य रसेषु तम् ॥ ९५ ॥
ज्वरांकुशो रसो नामा ज्वरान्सर्वान्विनाशयेत् ।
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च त्र्याहिकं चातुराहिकम् ।
विषमञ्च त्रिदोषोत्थं हन्ति सद्यो न संशयः ॥ ९६ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक और शुद्ध मीठातेलिया ये प्रत्येक एक एक तोला, धतूरेके बीज ३ तोले और त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) चारों ओषधियोंसे दुगुना अर्थात् १२ तोले लेकर सबको एकत्र जलके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । फिर जम्बरी नींबूके बीजोंकी मींग और अदरखके रसके साथ इस रसकी एक गोली पीसकर रोगीको सेवन करावे । यह ज्वरांकुशरस सर्व प्रकारके ज्वरोंको नाश करताहै । इसके सेवनसे ऐकाहिक, द्वायहिक, तिजारी, चौथियाज्वर, विषमज्वर और त्रिदोषजनितज्वर निरसन्देह शीघ्र दूर होताहै ॥ ९५-९६ ॥

मध्यमज्वरांकुशरस ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं कर्षमाणं नयेद् बुधः ।
महौषधं टङ्कणञ्च हरतालं तथा विषम् ॥ ९७ ॥

---

१ त्र्योषं-मिलितचतुर्णां द्विगुणम् । २ महौषधादीनां चतुर्णां प्रत्येकं रसार्द्धम् ।

रसार्द्धं मर्दयेत्खल्ले भृङ्गराजरसेन तु ।
त्रिदिनं भावनां दत्त्वा चतुर्थे वटिकां ततः ॥ ९८ ॥
कुर्य्याच्चणकमात्राश्च पिप्पलीमधुसंयुतः ।
मध्यज्वराङ्कुशो नाम विषमज्वरनाशनः ॥ ९९ ॥

शुद्धपारा और शुद्धगन्धककी कज्जली ४ तोले तथा सोंठ, सुहागा, हरताल और वत्सनाभ विष ये प्रत्येक पारेसे अर्द्धभाग; अर्थात् एक एक तोला लेवे । सबको एकत्र खरलकरके भाँगरेके रसके साथ तीन दिनतक खूब अच्छे प्रकारसे घोटे, चौथे दिन चनेकी बराबर गोलियाँ बनाकर सुखालेवे । इसकी एक २ गोली पीपलके चूर्ण और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे विषमज्वर नष्ट होताहै ॥ ९७–९९ ॥

सर्वज्वरांकुश ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं मरिचं नागरं कणा ।
त्वचं जैपालकं कुष्ठं भूनिम्बं मुस्तकं पृथक् ॥ ४०० ॥
चूर्णयित्वा समांशन्तु कज्जल्या सह मेलयेत् ।
निर्गुण्ड्याः स्वरसे चापि आर्द्रकस्य रसे तथा ॥ ४०१ ॥
भावनां कारयित्वा तु वटिकां कारयेद्भिषक् ।
वटिकां भक्षयित्वा तु वस्त्रवेष्टञ्च कारयेत् ॥ ४०२ ॥
सर्वज्वराङ्कुशवटी सर्वज्वरविनाशिनी ।
पृथक्दोषांश्च विविधान् समस्तान्विषमज्वरान् ॥ ४०३ ॥
प्राकृतं वैकृतञ्चापि वातश्लेष्मकृतं च यत् ।
अन्तर्गतं बहिःस्थञ्च निरामं साममेव वा ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ४०४ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धकको समान भाग लेकर कज्जली करलेवे । फिर मिरच, सोंठ, पीपल, दारचीनी, जमालगोटा, कूठ, चिरायता और नागरमोथा इन सबको समान भाग और कज्जलीसे आधा परिमाण लेकर बारीक चूर्ण करके कज्जलीमें मिलालेवे । पश्चात् निर्गुण्डीके पत्तोंके स्वरसमें और अदरखके रसमें अलग २ भावना देकर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । उनमेंसे एक गोली सेवन कराकर रोगीको गरम वस्त्रोंसे अच्छीतरह ढकदेवे । यह सर्वज्वरांकुशवटी सर्वप्रकारके ज्वरोंको नष्ट करनेवालीहै । तथा भिन्नभिन्न दोषोंसे

उत्पन्न होनेवाले ज्वर, सब प्रकारके विषमज्वर, स्वाभाविकज्वर, विकृतज्वर, वातकफजनितज्वर, आन्तरिकज्वर, बाह्यज्वर, आमरहित अथवा आमयुक्त ज्वर, इनके अतिरिक्त अन्य आठोंप्रकारके ज्वरोंको यह वटी इस प्रकार शीघ्र नष्ट करदेती है जैसे वज्र (बिजली) वृक्षोंको नष्ट करदेता है ॥ ४००-४०४ ॥

बृहज्ज्वरांकुश रस।

पारदं गन्धकं ताम्रं हिङ्गुलं तालमेव च।
लौहं वङ्गं माक्षिकञ्च खर्परं च मनःशिला ॥ ४०५ ॥
स्वर्णमभ्रं गैरिकं च टङ्कणं रूप्यमेव च।
सर्वाण्येतानि तुल्यानि चूर्णयित्वा विभावयेत्॥४०६॥
जम्बीरतुलसीचित्रविजयातिन्तिडीरसैः।
एभिर्दिनत्रयं रौद्रे निर्जने खल्लगह्वरे ॥ ४०७ ॥
चणमात्रां वटीं कृत्वा छायाशुष्कान्तु कारयेत्।
महाग्निजननी चैषा सर्वज्वरविनाशिनी ॥ ४०८ ॥
एकजं द्वन्द्वजं चैव चिरकालसमुद्भवम्।
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च त्रिदोषप्रभवं ज्वरम् ॥ ४०९॥
चातुर्थकं तथात्युग्रं जलदोषसमुद्भवम्।
सर्वान् ज्वरान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ४१०॥
नातः परतरं किंचिज्ज्वरनाशाय भेषजम्।
बृहज्ज्वराङ्कुशो नाम रसोऽयं मुनिभाषितः॥ ४११ ॥

पारा, गन्धक, ताँबा, सिंगरफ, हरताल, लोहा, वङ्ग, स्वर्णमाक्षिक, खपरिया, मैनासिल, सुवर्ण, अभ्रक, गेरू, सुहागा और रूपाभस्म इन सबको समानभाग लेकर एकत्र खरल करलेवे। फिर उस चूर्णको खरलमें डालकर जम्बीरीनींबू, तुलसीके पत्ते, चीतेकी जड, भाँग और इसलीके पत्ते इन प्रत्येकके रसमें क्रम २ से तीन तीन दिनतक धूपमें, एकान्तस्थानमें रखकर भावना देवे। फिर चनेके बराबर गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे। ये गोलियाँ जठराग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाली और सम्पूर्ण ज्वरोंको विनाश करनेवालीहैं। एवं एकदोषज, द्विदोषज और चिरकालजनितज्वर, ऐकाहिक, द्व्याहिक, त्रिदोषज, अत्यन्त प्रबल चातुर्थिके ज्वर और जलदोषसे उत्पन्न हुआ ज्वर इत्यादि समस्त ज्वरोंको तत्कालनाश करदेताहै; जैसे-सूर्य अन्धकारको क्षणभरमें विनाश

करदेताहै। ज्वरको नष्ट करनेके लिये इससे बढकर अन्य कोई औषध नहीं है, ऐसा मुनियोंने कहाहै। इसको बृहज्ज्वरांकुश रस कहते हैं॥ ४०५-४११

महाज्वरांकुश रस।

पारद हिङ्गुलं ताम्रं माक्षिकं तुत्थमेव च।
वङ्गं मृतं च गन्धं च खर्परं च मनःशिला॥ १२॥
तालकं घनपाषाणं गैरिकं टंगणं तथा।
दन्तीबीजानि सर्वाणि चूर्णयित्वा विभावयेत्॥
भावना पूर्ववद्देया वटीं कुर्याच्च पूर्ववत्॥ १३॥

पारा, सिंगरफ, ताँबा, सोनामाखी, तूतिया, वङ्ग, गन्धक, खपरिया, मैनसिल, हरताल, चुम्बकपत्थर, गेरू, सुहागा और दन्तीकेबीज इन सबको समानभाग लेकर एकत्र खरल करलेवे। फिर पूर्वोक्त बृहत्ज्वरांकुशके समान जम्बीरादिके रसोंमें यथाविधि भावना देकर उसीके अनुसार गोलियाँ बनालेवे। यह रस भी विषमज्वरादि रोगोंको शमन करनेके लिये पूर्वोक्तरसके समानहीं गुणकारीहै॥ १२॥ १३॥

चूडामणिरस।

मृतं सूतं प्रवालं च स्वर्णं तारं च वङ्गकम्।
शुल्वं मुक्ता तीक्ष्णमभ्रं सर्वमेकत्र योजयेत्॥ १४॥
जलेन पिष्ट्वा वटिका कार्या वल्लप्रमाणतः।
धातुस्थं सन्निपातोत्थं ज्वरं विषमसम्भवम्॥ १५॥
कामशोकसमुद्भूतं त्रिदोषजनितं तथा।
कासं श्वासं च विविधं शूलं सर्वाङ्गसम्भवम्॥ १६॥
शिरोरोगं कर्णशूलं दन्तशूलं गलग्रहम्।
वातपित्तसमुद्भूतं ग्रहणीं सर्वसम्भवाम्॥ १७॥
आमवातं कटीशूलमग्निमान्द्यं विषूचिकाम्।
अर्शांसि कामलां मेहं मूत्रकृच्छ्रादिकं च यत्॥१८॥
तत्सर्वं नाशयत्याशु विष्णुचक्रमिवासुरान्।
चूडामणिरसो ह्येष शिवेन परिकीर्त्तितः॥ १९॥

रससिन्दूर, प्रवालभस्म, स्वर्णभस्म, रौप्यभस्म, वङ्गभस्म, ताम्रभस्म, मोतीकी भस्म, लोहभस्म और अभ्रक भस्म इन सबको समानभाग लेकर एकत्र सिला-

लेवे, फिर जलके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह चूडामणिरस, उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे धातुगतज्वर, सन्निपातज्वर, विषमज्वर, काम और शोकसे उत्पन्न हुआ ज्वर, तथा खाँसी, श्वास, अनेक प्रकारका शूल, सर्वाङ्गशूल, शिरोरोग, कर्णशूल, दन्तपीडा, गलेके रोग, वात पित्तजन्यरोग,सब प्रकारकी संग्रहणी, आमवात, कमरकी पीडा, मन्दाग्नि, विषूचिका, अर्श, कामला, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र आदि सम्पूर्ण व्याधियोंको इस प्रकार शीघ्र नष्ट करदेता है जैसे सुदर्शनचक्र असुरोंको तत्काल नाश करदेता है । इसको श्रीशिवजीमहाराजने वर्णन कियाहै ॥ १४-१९ ॥

बृहच्चूडामणिरस ।

कस्तूरिकाविद्रुमरौप्यलौहं तालं हिरण्यं रससिन्दुरं च ।
सुवर्णसिन्दूरलवङ्गमौक्तिकं चोचं घनं माक्षिकराजपट्टम् ४२०
गोक्षूरजातीफलजातिकोषं मरीचकर्पूरशिखिग्रवं च ।
प्रगृह्य सर्वं हि समं प्रयत्नादथाश्वगन्धा द्विगुणं हि वैद्यः२१॥
वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं प्रत्येकं मुनिसंख्यया ।
निर्गुण्डी फञ्जिका वासा रविमूलत्रिकण्टकैः ॥ २२ ॥
तद्वीर्यं कथयिष्यामि वातिकं पैत्तिकं ज्वरम् ।
कफोद्भवं द्विदोषोत्थं त्रिदोषजनितं तथा ॥ २३ ॥
सन्ततं सततं हन्ति तृतीयकचतुर्थकौ ।
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च विषमं भूतसम्भवम् ॥ २४ ॥
नाशयेदचिरादेव वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।
चूडामणिरसोऽप्येष शिवेन परिभाषितः ॥ २५ ॥

कस्तूरी, मूँगा, चाँदी, लोहा, हरताल, सुवर्ण इनकी भस्म, रससिन्दूर, स्वर्णसिंदूर, लौंग, मोतीकी भस्म, दारचीनी, नागरमोथा, स्वर्णमाक्षिक,कान्तलोहकी भस्म, गोखुरू, जायफल,जावित्री, मिरच, कपूर और तूतिया इन सब औषधियोंको समान भाग अर्थात् एकएक भाग और असगन्धको दो भाग लेकर वैद्य प्रथम सबको एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करले, फिर उसको सिम्हालू, भारंगी, अडूसा, आककी जड और गोखुरू इन ओषधियोंके रसमें क्रमसे सात सात बार भावना देकर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे ये गोलियाँ सेवन करनेसे वात, पित्त और कफ इन भिन्न भिन्न दोषोंसे होनेवाले ज्वर,

द्विदोषज और सन्निपातजज्वर एवं सन्तत, सतत, तिजारी, चौथिया, एकतरा और दो दिन आनेवाला विषमज्वर और भूतज्वर इत्यादि सम्पूर्ण ज्वरोंको अल्पकालमें ही इस प्रकार नष्ट करदेती हैं, जैसे वज्र वृक्षोंको। इस चूडामणि रसको शिवजीने निर्दिष्ट किया है ॥ ४२०-२५ ॥

बृहज्ज्वरचूडामणि रस।

सुवर्णसिन्दुरं स्वर्ण लोहं तारं मृगाण्डजम्।
जातीफलं जातिकोषं लवङ्गं च त्रिकण्टकम् ॥ २६ ॥
कर्पूरं गगनं चैव चोचं मुसलतालकम्।
प्रत्येकं कर्षमानन्तु तुरङ्गं च द्विकार्षिकम् ॥ २७ ॥
विद्रुमं भस्मसूतं च मौक्तिकं माक्षिकं तथा।
राजपट्टं शिखिग्रीवं सर्वं संचूर्ण्य यत्नतः ॥ २८ ॥
खल्ले तु चूर्णमादाय भावयेत्परिकीर्त्तितैः।
निर्गुण्डी फञ्जिका वासा रविमूलत्रिकण्टकैः।
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥ २९ ॥

स्वर्णसिन्दूर, सुवर्ण, लोह और रौप्यभस्म, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, लौंग, गोखुरू, कपूर, अभ्रक, दारचीनी और मुसली ये प्रत्येक एक एक कर्ष, (एक एक तोला) असगन्ध, मूँगा, रससिन्दूर, मौक्तिकभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, कान्तलोहभस्म और तूतिया ये सब को दो कर्ष परिमाण लेवे। इन सबको एकत्र खरल करके निर्गुण्डी, भारंगी, अडूसा, आककी जड और गोखरू इन ओषधियोंके रस या काथमें सात २ बार भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह रस साध्य अथवा असाध्य आठों प्रकारके ज्वरोंको दूर करता है ॥ २६-२९ ॥

भानुचूडामणिरस।

सुवर्णं रससिन्दूरं प्रवालं वङ्गमेव च।
लोहं ताम्रं तेजपत्रं यमानी विश्वभेषजम् ॥ ४३० ॥

---

१ अत्र--केचित्तु मुसलतालकशब्देन तालमूल्येव गृह्णन्ति, नतु मुसलीतालकौ। तन्त्रान्तरेषु हरितालस्यानुक्तत्वात।

इस रसमें-'मुसलतालकम्' इस शब्दसे कोई २ मुसली ही ग्रहणकरते हैं। मुसली और हरताल ये दोनों वस्तुयें नहीं ग्रहण करते, कारण तंत्रशास्त्रोंमें हरतालका विधान नहिं किया ॥

सैन्धवं मरिचं कुष्ठं खदिरं द्विहरिद्रकम्।
रसाञ्जनं माक्षिकञ्च समभागं च कारयेत् ॥ ३१ ॥
वारिणा वटिका कार्या रक्तिद्वयप्रमाणतः।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ ३२ ॥

स्वर्णभस्म, रससिन्दूर, प्रवालभस्म, वङ्ग, लोह, ताम्रभस्म, तेजपात, अजवायन, सोंठ, सैंधानमक, मिरच, कूठ, खैर, हलदी, दारुहलदी, रसौत और सोनामाखीकी भस्म इन सबको समानभाग लेकर एकत्र कूट पीसकर पानीके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली भक्षण करे। यह रस सम्पूर्णज्वरोंको नष्ट करता है ॥४३०-३२॥

चिन्तामणिरस।

रसं गन्धं मृतं ताम्रं मृतमभ्रं फलत्रिकम्।
भूषणं दन्तिबीजं च समं खल्ले विमर्दयेत् ॥ ३३ ॥
द्रोणपुष्पीरसैर्भाव्यं शुष्कं तद्गुपपालितम्।
चिन्तामणिरसो ह्येष त्वजीर्णे शस्यते सदा ॥ ३४ ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति सर्वशूलनिषूदनः।
गुञ्जैकं वापि गुञ्जं वा देयमार्द्रकवारिणा ॥ ३५ ॥

पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल और जमालगोटा, सबको समान भाग लेकर खरल करके द्रोणपुष्पी (गूमा) के रसमें भावना देकर छायामें सुखाकर एक या दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह चिन्तामणि रस, अजीर्णरोगमें विशेष उपयोगी है। इसके सेवनसे आठ प्रकारका ज्वर और सब प्रकारका शूल नष्ट होता है। अनुपान अदरखका रस ॥ ३३-३५ ॥

द्वितीयचिन्तामणिरस।

रसं गन्धं विषं लौहं धूर्त्तबीजञ्च तत्समम्।
द्वौ भागौ ताम्रवङ्गेश्च व्योषचूर्णञ्च तत्समम् ॥ ३६ ॥
जम्बीरस्य च मज्जाभिरार्द्रकस्य रसैर्युतम्।
द्विगुञ्जां वटिकां खादेज्ज्वरमाशु व्यपोहति ॥ ३७ ॥
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्।
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च चातुर्थकविपर्ययम् ॥ ३८ ॥

असाध्यश्चापि साध्यश्च ज्वरश्चैवातिदुस्तरम् ।
अग्निमान्द्येऽप्यजीर्णे च आध्मानेऽनिलसम्भवे ॥३९॥
अतिसारेऽर्दिते चैव अरोचकनिपीडिते ।
ज्वरान्सर्वान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥
चिन्तामणिरसो नाम सर्वज्वरविनाशकः ॥ ४४० ॥

पारा, गन्धक, वत्सनाभ, लोहभस्म, धतूरेके बीज ये प्रत्येक एकएक भाग, ताम्रभस्म, चीतेकी जड और त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) ये प्रत्येक दो दो भाग लेवे । सबको एकत्र कूटपीसकर जम्बीरी नींबूके बीजोंकी गिरी और अदरखके रसके साथ खरलकरके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । उनमेंसे प्रतिदिन दो दो गोली खानेसे ज्वर शीघ्र दूर होता है । यह चिन्तामणिरस वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातजन्यज्वर, एकतरा, द्व्याहिक, चौथिया, तिजारी आदि साध्य अथवा असाध्य भयंकर ज्वरोंको बहुत शीघ्र नष्ट करता है । एवं अग्निकी मन्दता, अजीर्ण, आध्मान (अफारा) वातविकार, अतिसार, आर्दित और अरुचि आदि रोगोंमें विशेष उपकार करता है । यह रस सब प्रकारके ज्वरोंको इस प्रकार तत्काल नष्ट कर देता है जैसा सूर्य अन्धकारको नष्ट करता है ॥ ३६-४४० ॥

बृहज्ज्वरचिन्तामणिरस ।

रसगन्धकलौहानि ताम्रं तारं हिरण्यकम् ।
हरतालं खर्परश्च कांस्यं वङ्गश्च विद्रुमम् ॥ ४१ ॥
मुक्तामाक्षिककासीसं शिला च टङ्कणं समम् ।
कर्पूरश्च समं दत्त्वा भावना सप्तसप्तकम् ॥ ४२ ॥
भार्गी वासा च निर्गुण्डी नागवल्ली जयन्तिका ।
कारवेल्लं पटोलश्च शक्राशनपुनर्नवा ॥ ४३ ॥
आर्द्रकञ्च ततो दद्यात्प्रत्येकं वारसप्तकम् ।
चिन्तामणिरसो नाम सर्वज्वरविनाशकः ॥ ४४ ॥
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
द्वन्द्वजं विषमाख्यञ्च धातुस्थञ्च ज्वरं जयेत ॥ ४५ ॥
कासं श्वासं तथा शोथं पाण्डुरोगं हलीमकम् ।
प्लीहानमग्रमांसञ्च यकृतञ्च विनाशयेत् ॥ ४६ ॥

पारा, गन्धक, लोहा, ताम्रभस्म, रौप्यभस्म, सुवर्णभस्म, हरताल, खपरिया काँसा, वङ्ग, मूंगा, मोती और स्वर्णमाक्षिककी भस्म, हीराकसीस, मैनसिल, सुहागा और कपूर इन सबको समानभाग लेकर एकत्र खरलकरके उसको भारंगी, अडूसा, निर्गुण्डी, पान, अरणी, करेला, पटोलपात, भाँग, पुनर्नवा और अदरख इन ओषधियोंके रसमें क्रमसे सात सात बार भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। ये गोलियाँ यथोचित अनुपानके साथ सेवन करनेसे वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, द्वन्द्वज, विषमज्वर, धातुगतज्वर आदि सर्वप्रकारके ज्वर तथा खाँसी, श्वास, शोथ, पाण्डुरोग, हलीमक, प्लीहा, अग्रमांस और यकृत् विकार आदि सम्पूर्ण व्याधियोंको विनाश करती हैं ४१-४६

बृहच्चिन्तामणिरस।

रसं गन्धं विषञ्चैव त्रिकटु त्रैफलं तथा।
शिलाह्वा रौप्यकं स्वर्ण मौक्तिकं तालकं समम् ॥४७॥
मृगकस्तूरिकायाश्च ग्राह्यं षाण्मासिकं भिषक्।
भृङ्गराजरसेनैव तुलस्याः स्वरसेन वा ॥ ४८ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव वटीं कुर्य्याद्द्विगुञ्जिकाम्।
चिन्तामणिरसो ह्येष सर्वरोगकुलान्तकृत् ॥ ४९ ॥
सन्निपातज्वरहरः कफरोगविनाशकः।
एकजं द्वन्द्वजञ्चैव विविधं विषमज्वरम् ॥ ४५० ॥
अग्निमान्द्यं शिरःशूलं विद्रधिं सभगन्दरम्।
एतान्येव निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ५१ ॥

पारा, गन्धक, मीठातेलिया, सोंठ, मिरच, पीपल. हरड, बहेडा, आमला, मैनसिल, रौप्यभस्म, स्वर्णभस्म, मोतीभस्म और हरतालभस्म ये प्रत्येक ओषधि एक एक तोला और कस्तूरी ६ माशे लेकर सबको एकत्र खरल करके भाँगरा, तुलसी और अदरखके स्वरसमें क्रमसे एक एक दिनतक भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। (इनमेंसे एक एक गोली अदरखके रसके साथ सेवन करनी चाहिये। ऐसा प्राचीन वैद्योंका उपदेश है।) यह रस सब प्रकारके रोगोंको समूल नष्ट करनेवाला है। तथा सन्निपातज्वर और कफरोगोंको हर-

---

१ रसादि तालकान्तानां द्रव्याणा भागेष्वनुक्तेष्वपि प्रत्येकं तोलकप्रमाणं ग्राह्यम्। आर्द्रक-रसेन सेव्या चेयं वटीति वृद्धवैद्योपदेशः।

नेवाला, एकदोषज, द्विदोषज आदि विविधप्रकारके विषमज्वर, मन्दाग्नि, शिरका शूल, विद्रधि, भगन्दर इत्यादि सम्पूर्ण रोगोंको इस प्रकार शीघ्र नष्ट करदेताहै, जैसे सूर्य अन्धकारको ॥ ४७-४५१ ॥

त्र्याहिकारिरस।

रसेन गन्धं शङ्खञ्च शिखिग्रीवञ्च पादिकम्।
गोजिह्वया जयन्त्या च तण्डुलीयैश्च भावयेत् ॥ ५२॥
प्रत्येकं सप्त सप्ताथ शुष्कं गुञ्जाचतुष्टयम्।
ज्वरघ्नेन घृतेनाद्यात् त्र्याहिकज्वरशान्तये ॥ ५३ ॥

पारा, गन्धक और शङ्खभस्म ये प्रत्येक एक एक तोला और तूतिया सबका चौथाई भाग लेकर सब ओषधियोंको गोजिया (गोभी) अरणी और चौलाईका शाक इन प्रत्येकके रसमें क्रमसे सात सात बार भावना देकर चार २ रत्तीकी गोलियाँ बनाकर सुखालेवे। इस रसकी एक एक गोली किसी ज्वरघ्न धृतके साथ सेवन करनी चाहिये। यह रस तृतीयक (तिजारी) ज्वरको शमनकरनेके लिये अत्यन्त उपयोगी है ॥ ५५ ॥ ५३ ॥

चातुर्थकारिरस।

हरितालं शिला तुत्थं शङ्खचूर्णञ्च गन्धकम्।
समांशं मर्दयेत्खल्ले कुमारीरससंयुतम् ॥ ५४ ॥
शरावसम्पुटे कृत्वा दत्त्वा गजपुटं पचेत्।
कुमारिकारसेनैव वल्लमात्रा वटीकृता ॥ ५५ ॥
दत्ता शीतज्वरं हन्ति चातुर्थकं विशेषतः।
मरिचैर्घृतयोगेन तक्रं पीत्वा चरेद्वटीम् ॥
एतया वमनं भूत्वा ज्वरस्तस्माद्विनश्यति ॥ ५६ ॥

हरताल, मैनसिल, तूतिया, शंखभस्म और गन्धक इन सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके घीग्वारके रसमें घोटकर गोलासा बनालेवे। उसको शरावसम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें पकावे। स्वाङ्गशीतल होनेपर गोलेको निकालकर फिर घीग्वारके रसमें खरल करके दोदो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। प्रथम रोगीको तक्र पानकराकर फिर इस रसकी गोलीको मिरचोंके चूर्ण और घृतके साथ सेवन करावे। इससे रोगीको वमन होकर शीतज्वर और विशेषकर चातुर्थिकज्वर (चौथियाज्वर) शीघ्र नष्ट होता है ॥ ५४-५६ ॥

विश्वेश्वर रस ।

दरदं पारदं गन्धं तुल्यांशं मर्दयेद्रसे ।
अश्वत्थजे त्र्यहं पश्चाद्रसे कोलकमूलजे ॥ ५७ ॥
निदिग्धिकारसे काकमाचिकाया रसे तथा ।
द्विगुञ्जं वा त्रिगुञ्जं वा गोक्षीरेण प्रदापयेत् ॥
रात्रिज्वरं निहन्त्याशु नाम्ना विश्वेश्वरो रसः ॥ ५८ ॥

सिंगरफ, पारा, गन्धक तीनोंको समानभाग लेकर पीपलवृक्षकी जड, बेरीकी जड, कटेरी और मकोयके काथमें तीन तीन दिनतक भावना देकर दो या तीन रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । उनमेंसे एकएक गोली रोगीको गायके दूधके साथ सेवन करावे । यह विश्वेश्वर रस रात्रिमें आनेवाले ज्वरको शीघ्र नष्ट करताहै ।।

विक्रमकेसरीरस ।

शुल्वमेकं द्विधा तारं मर्दयेद्द्वाधिवाद्विषक् ।
पश्चाद्विषं रसं गन्धं मेलयित्वा तु भावयेत् ॥ ५९ ॥
एकविंशतिवारांश्च लिम्पाकवल्कलद्रवैः ।
रसः सिद्धः प्रदातव्यो गुंजामात्रो ज्वरान्तकृत् ॥
सर्वज्वरहरः ख्यातो रसो विक्रमकेसरी ॥ ४६० ॥

ताम्रभस्म १ तोला और रौप्यभस्म २ तोले लेकर दोनोंको एकत्र खूब बारीक खरल करे । फिर उसमें शुद्ध वत्सनाभ, पारा और गन्धक ये प्रत्येक एकएक तोला मिलाकर कन्नानींबूके वृक्षकी छालके काढेमें २१ बार भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह रस सर्वप्रकारके ज्वरोंको नष्ट करनेके लिये प्रसिद्ध है ॥ ५९ ॥ ४६० ॥

ज्वरकालकेतुरस ।

रसं विषं गन्धकताम्रकञ्च मनःशिलारुष्करतालकञ्च ।
विमर्द्य वज्रीपयसा समांशं गजाह्वयं तत्र पुटं विदध्यात् ६१
द्विगुञ्जमस्यैव मधुप्रयुक्तं ज्वरं निहन्त्यष्टविधं महोग्रम् ।
पुरा भवान्यै कथितो भवेन नृणां हिताय ज्वरकालकेतुः ६२

पारा, विष, गन्धक, ताम्रभस्म, मैनसिल, भिलावे और हरताल इनको समान भाग लेकर थूहरके दूधमें खरलकरके गजपुटमें पकावे । इस रसको दो

दो रत्तीपरिमाण शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे अत्यन्त उग्र आठोंप्रकारके ज्वर नष्ट होतेहैं। इस रसको पूर्वकालमें मनुष्योंके हितके लिये शिवजी महाराजने पार्वतीजीसे कहा था ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

त्रिपुराररिस।

हुताशमुखसंशुद्धं रसं ताम्रञ्च गन्धकम्।
लौहमभ्रं विषञ्चैव सर्वं कुर्यात्समांशकम् ॥ ६३ ॥
रसार्द्धं मृतरूप्यञ्च शृङ्गबेराम्बुमर्दितम्।
द्विगुञ्जं मधुना देयं सितयार्द्ररसेन वा ॥ ६४ ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति वारिदोषभवं तथा।
प्लीहानमुदरं शोथमतीसारं विनाशयेत् ॥
रोगानेतान्निहन्त्याशु शङ्करस्त्रिपुरं यथा ॥ ६५ ॥

सिंगरफसे निकालाहुआ शुद्धपारा, ताम्रभस्म, गन्धक, लोहा, अभ्रक और शुद्ध मीठा तेलिंया ये सब एक एक तोला और चाँदीकी भस्म ६ माशे लेकर सबको अदरखके रसमें घोटकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंको शहद और अदरखके रसके साथ अथवा मिश्रीमें मिलाकर सेवन करना चाहिये। इसके सेवनसे आठों प्रकारका ज्वर, जलदोषसे उत्पन्नहुआ ज्वर, प्लीहा, उदररोग, शोथ, अतिसार आदि सब रोग दूर होते हैं ॥ ६३–६५ ॥

मेघनादरस।

तारं कांस्यं मृतं ताम्रं त्रिभिस्तुल्यञ्च गन्धकम्।
क्वाथेन मेघनादस्य पिष्ट्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥ ६६ ॥
षड्भिः पुटैर्भवेत्सिद्धो मेघनादो ज्वरापहः।
भक्षयेत्पर्णखण्डेन विषमज्वरनाशनः ॥ ६७ ॥
अस्य मात्रा द्विगुंजा स्यात्पथ्यं दुग्धौदनं हितम्।
नागरातिविषामुस्ताभूनिम्बामृतवत्सकैः ॥ ६८ ॥
सर्वज्वरातिसारघ्नं क्वाथमस्यानुपाययेत्।
तरुणं वा ज्वरं जीर्णं तृष्णां दाहञ्च नाशयेत् ॥ ६९ ॥

चाँदी, काँसा, ताँबा इन तीनोंकी भस्म एक एक तोला और गन्धक ३ तोले लेकर सबको एकत्र खरल करके, चौलाईके शाकके रसमें बारम्बार खरल

करके ६ बार गजपुटमें पकावे। इस प्रकारसे जब यह रस उत्तम प्रकारसे सिद्ध होजाय तब बारीक खरल करलेवे। इसको दो दो रत्तीकी मात्रासे पानके रस और मधुमें मिलाकर सेवन करे। यह विषमज्वरको नष्ट करताहै। इस पर दूध, भातका पथ्य हितकारी है। यह नवीनज्वर, जीर्णज्वर, तृष्णा और दाहको शान्त करताहै। इस रसको सोंठ, अतीस, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय और कुडेकी छाल इन ओषधियोंका क्काथ अनुपानके साथ सेवन करानेसे सब प्रकारका ज्वरातिसाररोग दूर होताहै॥ ६६-६९॥

शीतारिरस।

तालकं दरदोद्भूतं पारदं गन्धकं शिला।
क्रमाद्भागार्द्धरहितं कारवेल्लाम्बुमर्दितम्॥ ४७०॥
इदमस्य प्रमाणेन ताम्रपात्रं विलेपयेत्।
अधोमुखं दृढे भाण्डे तं निरुध्याथ पूरयेत्॥ ७१॥
चुल्ल्यां वालुकया घस्रमेकं प्रज्वालयेद्दृढम्।
शीते संचूर्ण्य गुंजास्य नागवल्लीदले स्थिता॥ ७२॥
भक्षिता मरिचैः सार्द्धं समस्तान् विषमज्वरान्।
दाहशीतादिकं हन्यात्पथ्यं शाल्योदनं पयः॥ ७३॥

हरताल ४ तोले, सिंगरेफसे निकालाहुआ पारा दो तोले, गन्धक १ तोला और मैनसिल ६ माशे लेकर सबको करेलेके पत्तोंके रसमें खरल करे, फिर ७॥ तोले परिमाण तांबेके बनवाये हुए खरलके भीतर उक्त ओषधिका लेप करके उसको नीचा मुँहकरके एक हाँडीमें रक्खे। हाँडीके मुँहपर सकोरा ढककर सन्धिस्थानोंको कपरौटी द्वारा बन्द करदेवे। पश्चात् उस हाँडीको एक बालूसे भरीहुई हाँडीमें गाडकर उसपर मुद्रा करदेवे और उसको चूल्हेपर चढाकर एक दिन पर्यन्त तीक्ष्ण अग्नि देवे। दूसरे दिन स्वांगशीतल होजानेपर अन्य सब वस्तुओंको त्यागकर केवल ताम्रपात्रको निकालकर खरल करलेवे। इस रसको एक एक रत्तीकी मात्रासे पानमें रखकर या पानके रस और मिरचोंके चूर्णमें मिलाकर सेवन करावे और शालिचावलोंके भात तथा दूधका पथ्य देवे। यह रस सब प्रकारके विषमज्वर, दाह और शीत आदिको नष्ट करता है॥ ४७०-७३

स्वच्छन्दभैरव रस।

समभागांश्च संगृह्य पारदामृतगन्धकान्।
जातीफलस्य भागार्द्धं दत्त्वा कुर्याच्च कज्जलीम्॥ ७४॥

सर्वार्द्धं पिप्पलीचूर्णं खल्लयित्वा निधापयेत् ।
गुञ्जैकं वा द्विगुञ्जं वा नागवल्लीदलैः सह ॥ ७५ ॥
आर्द्रकस्य रसेनापि द्रोणपुष्पीरसेन च ।
शीतज्वरे सन्निपाते विषूच्यां विषमज्वरे ॥ ७६ ॥
पीनसे च प्रतिश्याये ज्वरेऽजीर्णे तथैव च ।
मन्देऽग्नौ वमने चैव शिरोरोगे च दारुणे ॥ ७७ ॥
प्रयोज्यो भिषजा सम्यक् रसः स्वच्छन्दभैरवः ।
पथ्यं दध्योदनं दद्याद्वीक्ष्य दोषबलाबलम् ॥ ७८ ॥

पारा, वत्सनाभ और गन्धक ये प्रत्येक एक एक तोला और जायफल ६ माशे लेकर प्रथम पारे, गन्धककी कज्जली करलेवे, फिर सब औषधियोंसे आधाभाग पीपलका चूर्ण मिलाकर सबको पानीके साथ एकत्र खरल करके एक या दो रत्तीकी गोलियाँ बनालवे । वैद्योंको यह रस शीतज्वर, सन्निपातज्वर, विषूचिका, विषमज्वर, पीनस, प्रतिश्याय, जीर्णज्वर, मन्दाग्नि, वमन और दारुण शिरोरोग आदिमें पानके रस, या अदरखके रस अथवा द्रोणपुष्पीके पत्तोंके रसके साथ सेवन करना चाहिये । इसपर दोषोंके बलाबलको विचारकर दही, भात आदिका पथ्य देना चाहिये ॥ ७४-७८ ॥

ज्वरारिरस ।

दरदबलिरसानां शुल्बनागाभ्रकाणां
सुभगविटशिलानां सर्वमेकत्र योज्यम् ।
विपिननृपदलोत्थैर्भावयेच्छोषयेत्तं
दिवसदशसमाप्तौ रक्तिकैकां च कुर्यात् ॥ ७९ ॥
एकैकां भक्षयेदस्य चार्द्रकस्य रसैर्युताम् ।
दत्तमात्रो ज्वरं हन्ति ज्वरारिः स निगद्यते ॥
सर्वशूलविनाशी च कफपित्तविनाशनः ॥ ४८० ॥

सिंगरफ, गन्धक, पारा, ताम्रभस्म, सीसेकी भस्म, अभ्रकभस्म, सुहागा, विरियासंचर नमक और मैनसिल इन सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके अमलतासके पत्तोंके रसमें दस दिनतक भावना देकर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे और धूपमें सुखालेवे । इस रसकी एकएक गोली अदरखके

रसमें मिलाकर सेवन करावे । यह रस देतेही ज्वरको नष्ट करताहै, इसलिये इसको ज्वरारि कहते हैं। यह सब प्रकारके शूल और कफ-पित्तके रोगोंको शमन करताहै ॥ ७९ ॥ ८० ॥

ज्वराशनिरस ।

रसं गन्धं सैन्धवं च विषं ताम्रं समं भवेत् ।
सर्वचूर्णसमं लौहं तत्समं चूर्णमभ्रकम् ॥ ८१ ॥
लौहे च लौहदण्डेन निर्गुण्डयाः स्वरसेन च ।
मर्दयेद्यत्नतः पश्चान्मरिचं सूततुल्यकम् ॥
पर्णेन सह दातव्यो रसो रक्तिकसम्मितः ॥ ८२ ॥
कासं श्वासं महाघोरं विषमाख्यं ज्वरं वमिम् ।
धातुस्थं प्रबलं दाहं ज्वरदोषं चिरोद्भवम् ॥
यकृद्गुल्मोदरप्लीहश्वयथुं च विनाशयेत् ॥ ८३ ॥

पारा, गन्धक, सैंधानमक, मीठातेलिया और ताम्रभस्म ये सब समभाग और सबके बराबर लोहभस्म और लोहेके बराबर अभ्रकभस्म लेवे । पश्चात् समस्त ओषधियोंको लोहेके खरलमें डालकर लोहेकी मुसलीसे निर्गुण्डीके रसके साथ अच्छेप्रकारसे खरल करे । फिर उसमें पारेके बराबर मिरचोंका चूर्ण मिलाकर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । उनमेंसे एकएक गोली पानमें रखकर देनी चाहिये । यह रस-खाँसी,श्वास, घोर विषमज्वर, वमन, धातुगत-ज्वर; प्रबलदाह और ज्वरदोषके कारण चिरकालसे उत्पन्नहुए यकृतविकार, गुल्मरोग, उदररोग, प्लीहा, शोथ आदिरोगोंको नष्ट करताहै ॥ ८१-८३ ॥

ज्वरान्तकरस ।

भास्करो गन्धकः सर्वो देवी विहगतीक्ष्णकम् ।
शोणितं गगनश्चैव पुष्पकश्च महेश्वरम् ॥ ८४ ॥
भूनिम्बादिगणैर्भाव्यं मधुना गुटिका दृढा ।
चातुर्थकं तृतीयं च ज्वरं सन्ततकं तथा ।
आमज्वरं भूतकृतं सर्वज्वरमपोहति ॥ ८५ ॥

---

१ भूनिम्बाद्यष्टादशद्रव्याणि सर्वद्रव्यतुल्यानि, अष्टांशावशिष्टं क्वाथं कृत्वा तेन दिनत्रयं विभाव्य विशोष्य मधुना विमर्द्य अनुरूपं लिहेत ॥

ताम्रभस्म, गन्धक, पारा, गोपीचन्दन, सोनामाखी, लोहा, सिंगरफ, अभ्रक, रसौत और सुवर्ण इन सबको समानभाग लेकर एकत्र खरल करके भूनिम्बादिगणकी १८ औषधियोंको समानभाग लेकर उनके अष्टावशेष काथमें उक्त औषधिको तीनदिन तक खरल करके और दोदो रत्तीकी गोलियाँ बनाकर एक एक गोली मधुके साथ सेवन करे। यह रस चौथिया, तिजारीज्वर, सन्ततज्वर, आमयुक्तज्वर और भूतबाधाजनितज्वर आदि सम्पूर्ण ज्वरोंको शीघ्र दूर करता है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

वातपित्तान्तकरस ।

मृतसूताभ्रमुस्तार्कतीक्ष्णमाक्षिकतालकम् ।
गन्धकं मर्दयेत्तुल्यं यष्टिद्राक्षामृतारसैः ॥ ८६ ॥
धात्रीशतावरीद्रावैः द्रवैः क्षीरविदारिजैः ।
दिनंदिनं विभाव्याथ सिताक्षौद्रयुता वटी ॥ ८७ ॥
माषमात्रा निहन्त्याशु वातपित्तज्वरं क्षयम् ।
दाहं तृष्णां भ्रमं शोषं वातपित्तान्तको रसः ।
सिताक्षीरं पिबेच्चानु यष्टिकाथसितायुतम् ॥ ८८ ॥

पारेकी भस्म, अभ्रकभस्म, नागरमोथा, ताँबा, लोहा, सोनामाखी, हरताल इनकी भस्म और गन्धक सबको समानभाग लेकर मुलैठी, दाख, गिलोय, आमले, शतावर और विदारीकन्द इन औषधियोंके रस या काथमें एकएक दिन तक क्रमसे भावना देकर एकएक माशेकी गोलियाँ बनालेवे । इसकी एक एक गोली मिश्री और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे वातपित्तजनितज्वर, क्षय, दाह, तृषा, भ्रम और शोषआदि विकार शमन होते हैं । इसके सेवनकरनेपर मिश्री मिलाहुआ दूध अथवा मुलैठीका काथ मिश्रीमिलाकर पान करना चाहिये॥

श्रीजयमङ्गलरस ।

हिंगुलसम्भवं सूतं गन्धकं टङ्कणं तथा ।
ताम्रं वङ्गं माक्षिकं च सैन्धवं मरिचं तथा ॥ ८९ ॥
समं सर्वं समाहृत्य द्विगुणं स्वर्णभस्मकम् ।
तदर्द्धं कान्तलौहं च रौप्यभस्मापि तत्समम् ॥ ९० ॥
एतत्सर्वं विचूर्ण्याथ भावयेत्कनकद्रवैः ।
शेफालीदलजैश्चापि दशमूलरसेन च ॥ ९१ ॥

किराततिक्तकक्वाथैस्त्रिवारं भावयेत्सुधीः।
भावयित्वा ततः कार्या गुंजाद्वयमिता वटी॥ ९२॥
अनुपानं प्रयोक्तव्यं जीरकं मधुसंयुतम्।
जीर्णज्वरं महाघोरं चिरकालसमुद्भवम्॥ ९३॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा।
पृथग्दोषांश्च विविधान् समस्तान् विषमज्वरान्॥९४॥
मेदोगतं मांसगतमस्थिमज्जागतं तथा।
अन्तर्गतं महाघोरं बहिस्थं च विशेषतः॥ ९५॥
नानादोषोद्भवं चैव ज्वरं शुक्रगतं तथा।
निखिलं ज्वरनामानं हन्ति श्रीशिवशासनात्॥९६॥
जयमङ्गलनामायं रसः श्रीशिवनिर्मितः।
बलपुष्टिकरश्चैव सर्वरोगनिबर्हणः॥ ९७॥

सिंगरफसे निकालाहुआ पारा, गन्धक, सुहागा, ताम्रभस्म, वङ्गभस्म, सोनामाखीकी भस्म, सैंधानमक और मिरच ये प्रत्येक एक एक तोला, स्वर्णभस्म दो तोले, कान्तलोहभस्म १ तोला और रौप्यभस्म भी एक तोला लेवे। सबको एकत्र खरल करके धतूरेके पत्तोंके रसमें हारसिंगारके पत्तोंके रस, दशमूलके काथ और चिरायतेके काथमें क्रमसे तीन २ भावना देवे। फिर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। ये गोलियाँ जीरेके चूर्ण और मधुके अनुपानके साथ प्रयोग करनी चाहिये। यह रस चिरकालजनित और अत्यन्त घोर जीर्णज्वर, तथा साध्य व असाध्य आठों प्रकारके ज्वर अथवा भिन्नभिन्न दोषोंसे होनेवाले सब प्रकारके विषमज्वर, एवं मेदोगत, मांसगत, अस्थिगत, मज्जागतज्वर, अत्यन्तउग्र आन्तारिकज्वर विशेषकर बाह्यज्वर, तथा विविधप्रकारके दोषोंसे होनेवाले शुक्रगत ज्वर आदि सब प्रकारके ज्वरोंको श्रीशंकर भगवान्की कृपासे शीघ्र नष्ट करता है। यह जयमङ्गल नामक रस अत्यन्त बल और पुष्टिकारक तथा संपूर्ण रोगोंको नष्ट करनेवाला है; इसको श्रीशिवजीमहाराजने निर्माण किया है॥

ज्वरकुञ्जरपारीन्द्ररस।

मूर्च्छितं रसकर्षैकं तदर्द्धं जारिताभ्रकम्।
तारं ताप्यञ्च रसजं रसकं ताम्रकं तथा॥ ९८॥

मौक्तिकं विद्रुमं लौहं गिरिजं गैरिकं शिला।
गन्धकं हेमसारं च पलार्द्धं च पृथक् पृथक् ॥ ९९ ॥
क्षीरावी सुरवल्ली च शोथघ्नी गणकारिका।
झाटचामला ज्योतिष्निका च सातिक्ता तु सुदर्शना ॥
अग्निजिह्वा पूतितैला शूर्पपर्णी प्रसारिणी।
प्रत्येकं स्वरसं दत्त्वा मर्दयेत्त्रिदिनावधि ॥ ५०१ ॥
भक्षयेत्पर्णखण्डेन चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः।
महाग्निकारको रोगसंकरघ्नः प्रयोगराट् ॥ ५०२ ॥
सन्ततं सततान्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकान्।
ज्वरान्सर्वान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥५०३॥
श्वासं कासं प्रमेहञ्च सशोथं पाण्डुकामलाम्।
ग्रहणीं क्षयरोगं च सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥
ज्वरकुञ्जरपारीन्द्रः प्रथितः पृथिवीतले ॥ ५०४ ॥

मूर्च्छित पारा १ तोला, अभ्रकभस्म आधा तोला तथा चाँदी, सोनामाखी, रसौत, खपरिया, ताँबा, मोती, मूँगा, लोहा, शिलाजीत, गेरू, मैनसिल, गन्धक और सुवर्णपत्र ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर सबको एकत्र खरल करके दुद्धीघास, तुलसी, पुनर्नवा, अरणी, भुईआमला, तोरई, चिरायता, कन्द-गिलोय, कलिहारी, मालकाँगनी, मुगवन और गन्धप्रसारणी इन प्रत्येकके स्वरस अथवा काथमें क्रमसे तीन तीन दिनतक घोट कर चार २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। एकएक गोली पानके साथ सेवन करे। यह प्रयोगराज अग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाला और रोगसमूहको नष्ट करनेवाला है। इसके सेवनसे सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक चातुर्थिक (चौथिया) आदि सब प्रकारके ज्वर तथा श्वास, खाँसी, प्रमेह, शोथ, पाण्डु, कामला, संग्रहणी और समस्त उपद्रवों सहित क्षय आदि सम्पूर्ण रोगोंके समूह इस प्रकार शीघ्र नष्ट होजाते हैं, जैसे सूर्यसे अन्धकार। यह रस पृथ्वीपर अत्यन्त प्रसिद्ध है ॥९८-५०४॥

विद्यावल्लभरस।

रसम्लेच्छशिलातालाश्चन्द्रद्व्यग्न्यर्कभागिकाः।
पिष्ट्वा तान् सुषवीतोयैस्ताम्रपात्रोदरे क्षिपेत् ॥ ५०५ ॥

न्यस्त शरावे संरुद्ध्य वालुकायन्त्रगं पचेत् ।
स्फुटन्ति व्रीहयो यावत्तच्छिरःस्थाः शनैः शनैः ॥५०६॥
संचूर्ण्य शर्करायुक्तं द्विवल्लं भक्षयेत्ततः ।
विषमाख्यान् ज्वरान् हन्ति तैलाम्लादि विवर्जयेत्५०७

पारा १ भाग, ताम्रभस्म २ भाग, मैनसिल ३ भाग और हरताल१२ भाग लेकर सबको करेलेके पत्तोंके रसमें खरल करे, फिर उसको ताँबेके पात्रके भीतर लेप करके और उसको शरावसम्पुटमें बन्दकरके वालुकायन्त्रमें रखकर पकावे और उसके ऊपर धानोंके कुछ दाने रखदेवे। जब उसपर रखेहुए धान धीरे धीरे फूटनेलगे तब उसको सिद्धहुआ जानकर अग्निपरसे उतारलेवे। स्वांगशीतल होनेपर ओषधिको निकालकर बारीक चूर्ण कर लेवे। यह रस दोदो रत्ती परिमाण लेकर मिश्री या खाँडमें मिलाकर सेवन करे। और इस-पर तेल,खटाई आदि पदार्थोंको त्याग करादे। यह रस विषमज्वर आदि सब प्रकारके ज्वरोंको दूर करताहै ॥ ५०५-५०७ ॥

शीतारिरस।

कूष्माण्डक्षारचूर्णोदकतिलजपृथक् पाचितं शुद्धतालं
तुल्यं सूतेन पिष्ट्वा त्रिदिवसमसकृत् कारवेल्लद्रवेण ।
क्षिप्त्वा तत्खर्परान्तर्दिनपतिपिहितं रन्ध्रमप्यन्धयेत्तं
नीरन्ध्रं चूर्णपथ्यागुडलवणखटीमृद्भिरप्यन्तरालम् ॥५०८॥
तद्वालुकापूर्णघटे विदध्याच्छनैः पचेत्तावदुपर्य्यमुष्य ।
व्रीहिर्विवर्णत्वमुपैति यावत् ततस्तु शीतं विदधीत चूर्णम्॥९
सिद्धं तच्च समाददीत तुलसीतोयेन वल्लोन्मितं
पश्चात् क्षौद्रकणासिताज्यपयसा कृत्वानुपानं गदी ।
भुञ्जीताथ पयोऽन्नमुद्गसहितं साज्यं च हन्यान्नृणां
तापं कालवशेन संचितगदं शीतारिनामा रसः ॥ ५१० ॥

पेठेका खार, चूनेका पानी और तिलोंका खार इन तीनों चीजोंके साथ पृथक् पृथक् हरतालको पकाकर शुद्ध करे। फिर हरतालके बराबर भाग पारेको उसमें मिलाकर करेलेके रसमें तीन दिनतक खरल करके एक सकोरेमें रक्खे। उस सकोरेके ऊपर ताँबेका कटोरा ढककर उसके सन्धिस्थानोंको हरडके चूर्ण, गुड, नमक, खडियामिट्टी और चिकनी मिट्टी इन सब चीजोंके कल्क

द्वारा बन्दकर देवे और उसके ऊपर कुछ धानोंके दाने रखदेवे । फिर उस सम्पुटको बालुकायन्त्रमें रखकर शनैः शनैः अग्नि देवे । जब धान खिलने लगे तब उत्तम प्रकारसे पाक हुआ जानकर स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस रसको दो दो रत्तीकी मात्रासे तुलसीपत्रके रस, मधु, पीपलका चूर्ण, मिश्री, घृत और दूध इन अनुपानोंके साथ सेवन करावे । इसपर दूध, भात, मूँगकायूष और घृत आदि पदार्थोंका भोजन हितकरहै। यह शीतारिरस चिरकालसे संचितज्वरको अत्यन्त शीघ्र नष्ट करताहै ॥

ज्वरशूलहररस ।

रसगन्धकयोः कृत्वा कज्जलीं भाण्डमध्यगाम् ।
तत्राधोवदनां ताम्रपात्रीं संरुध्य शोषयेत् ॥ ११ ॥
पादाङ्गुष्ठप्रमाणेन चुल्ल्यां ज्वालेन तां दहेत् ।
यामद्वयं ततस्तत्स्थं रसपात्रं समाहरेत् ॥ १२ ॥
चूर्णयेद्रक्तियुगलं तृतीयं वा विचक्षणः ।
ताम्बूलीदलयोगेन दद्यात्सर्वज्वरेष्वमूम् ॥ १३ ॥
जीरसैन्धवसँल्लिप्तवक्त्राय ज्वरिणे हितम् ।
स्वेदोद्गमो भवत्येव देवि सर्वेषु पाप्मसु ॥ १४ ॥
चातुर्थकादीन्विषमान् नवमागामिनं ज्वरम् ।
साधारणं सान्निपातं जयत्येव न संशयः ॥ १५ ॥

पारे और गन्धकको समानभाग लेकर उनकी कज्जली करके उसको एक मिट्टीके वरतनमें रखे और उसके ऊपर एक ताँबेका कटोरा ढककर कपरौटी करके सुखालेवे । फिर उसको चूल्हेपर चढाकर पैरके अँगुठेके समान पतली २ लकडियोंकी अग्निसे दोप्रहर तक पकावे । पश्चात् स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर बारीक चूर्ण करके रखलेवे । प्रथम रोगीको जीरा और सेन्धानमक चवाकर फिर इस रसको दो या तीन रत्ती परिमाण पानमें रखकर सेवन करावे इससे पसीना आकर ज्वर शीघ्र दूर होजाता है । यह चातुर्थक आदि समस्त विषमज्वर, नवीनज्वर और साधारण सन्निपात ज्वरको निस्सन्देह नष्टकरता है ॥ ११-१५ ॥

षडाननरस ।

आरं कांस्यं मृतं ताम्रं दरदं पिप्पलीविषम् ।
तुल्यांशं मर्दयेत्खल्ले यामं च गुडुचीरसैः ॥ १६ ॥

गुंजामात्रं रसं देयं गुंजामात्रां लिहेत्सदा ।
ज्वरे मन्दानले चैव वातपित्तज्वरेषु च ॥ १७ ॥
ज्वरे वैषम्यतरुणे ज्वरे जीर्णे विशेषतः ।
मुद्गान्नं मुद्गयूषं वा तक्रभक्तं च केवलम् ॥ १८ ॥
नारिकेलोदकं देयं मुद्गपथ्यं विशेषतः ।
षडाननो रसो नाम सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ १९ ॥

पीपल, काँसा, ताँबा इनकी भस्म शुद्ध सिंगरफ, पीपल और शुद्ध मीठा तेलिया इन सबको समानभाग लेकर गिलोयके स्वरसमें एकप्रहर तक खरल करे । फिर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । उनमेंसे एकएक गोली गिलोयके रस और मधुमें मिलाकर सेवन करे । यह रस-ज्वर, मन्दाग्नि, वातपित्त ज्वर, विषमज्वर, तरुणज्वर और जीर्णज्वरमें विशेष हितकारी है । इसपर मूँग, भात अथवा मूँगका यूष या केवल छाछ (मट्ठा) और भातका भोजन करे । विशेषकर इसपर मूँगका यूष और नारियलके जलका पथ्य देना अधिक हितकारी है । यह षडानन रस सब प्रकारके ज्वरोंको समस्त उपद्रवोंसहित दूर करता है ॥ १६-१९ ॥

कल्पतरुरस ।

रसं गन्धं विषं ताम्रं समभागं विचूर्णयेत ।
भावयेत्पंचभिः पित्तैः क्रमशः पंचवासरम् ॥२०॥
निर्गुण्डीस्वरसेनैव मर्दयेत्सप्तवासरम् ।
आर्द्रकस्य रसेनैव भावयेच्च त्रिधा पुनः ॥ २१ ॥
सर्षपाभा वटी कार्या च्छायया परिशोषिता ।
ततः सप्तवटी योज्या यावन्न त्रिगुणा भवेत् ॥ २२ ॥
वयोऽग्निदोषकं बुद्ध्वा प्रयोज्या भिषजां वरैः ।
अनुपानं चोष्णजलं कज्जलीपिप्पलीयुतम् ॥ २३ ॥
पानावशेषे प्रस्वाप्य वस्त्रैराच्छादयेन्नरम् ।
घर्माभ्यागमनं यावत्ततो रोगात्प्रमुच्यते ॥ २४ ॥
रोगिणं स्नापयित्वा तु भोजयेत्ससितं दधि ।
एष कल्पतरुर्नाम रसः परमदुर्लभः ॥ २५ ॥

असाध्यं चिरकालोत्थं जीर्णं च विषमज्वरम् ।
हन्ति ज्वरातिसारौ च ग्रहणीं पाण्डुकामलाम् ॥२६॥
न देयः श्वासकासे च शूलयुक्तनरे तथा ।
गोपनीयः प्रयत्नेन न देयो यस्य कस्यचित् ॥ २७ ॥

पारा, गन्धक, वत्सनाभ और ताम्रभस्म इनको समानभाग लेकर एकत्र खरल करके पूर्वोक्त पाँचों पित्तोंमें क्रमसे एकएक दिनतक भावना देवे । फिर निर्गुण्डीके पत्तोंके रसमें सात दिन और अदरखके रसमें ३ दिन खरल करके सरसोंकी बराबर गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे वैद्यको रोगीकी अवस्था, जठराग्नि और दोषोंके बलाबलको विचारकर प्रतिदिन एकएक गोली क्रमसे बढाकर २१ दिनतक २१ गोलियाँ सेवन करानी चाहिये। इसपर कज्जली पीपलका चूर्ण और मन्दोष्ण जलका अनुपान करना चाहिये। इस औषधिको सेवन कराकर रोगीको आरामसे सुलाकर उसके देहको गरम कपडेसे अच्छीतरह ढक देवे । इससे पसीना आतेही रोगी रोगमुक्त होजाता है । जागनेके पश्चात् रोगीको स्नान कराकर मिश्री मिलाहुआ दही भोजन करावे। यह कल्पतरु रस अत्यन्त दुर्लभ है । इसके सेवनसे असाध्य और चिरकालसे उत्पन्नहुआ जीर्णज्वर, विषमज्वर, ज्वरातिसार, संग्रहणी, पाण्डु और कामलारोग नष्ट होते हैं। इस रसको श्वास, कास और शूलरोगमें कदापि नहीं देना चाहिये । यह अत्यन्त गोपनीय है, इसलिये जिस तिसको नहीं देना चाहिये ॥ ५२०–२७ ॥

तालाङ्कुरस ।

तालकस्य च भागौ द्वौ भागं तुत्थस्य शुक्तिका ।
चूर्णकानां चतुर्भागं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ २८ ॥
यामैकेन ततः पश्चाद्रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ।
अस्य गुञ्जाद्वयं हन्ति वातिकं पैत्तिकं तथा ॥
शीतज्वरं विशेषेण तृतीयकचतुर्थकौ ॥ २९ ॥

हरताल २ भाग, तूतिया १ भाग और सीपीकी भस्म ४ भाग लेकर सबको घीग्वारके रसमें एक प्रहरतक खरल करके गोलासा बनाकर उसको शरावसम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें पकावे। इस रसको दो दो रत्ती परिमाण सेवन करनेसे वातज, पित्तजज्वर, शीतज्वर और विशेषकर तृतीयक (तिजारी) चातुर्थिक (चौथिया) ज्वर दूर होता है ॥ २८ ॥ २९ ॥

पर्पटीरस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मर्द्यं भृङ्गरसेन च ।
मृतं ताम्रं लौहभस्म पादांशेन तयोः क्षिपेत् ॥ ५३० ॥
लौहपात्रे च विपचेच्चालयेल्लौहचाटुना ।
तत्क्षिपेत्कदलीपत्रे गोमयोपरि संस्थिते ॥ ३१ ॥
पश्चाच्च चूर्णयेत्खल्ले निर्गुण्ड्या भावयेद्दिनम् ।
जयन्तीत्रिफलाकन्यावासाभार्गीकटुत्रिकैः ॥ ३२ ॥
भृङ्गाग्निमूलमुण्डीभिर्भावयेद्दिनसप्तकम् ।
अङ्गारैः स्वेदयेत्किंचित् पर्पटाख्यो महारसः ॥ ३३ ॥
चतुर्गुञ्जामितो भक्ष्यः सम्यक् श्लेष्मज्वरं जयेत् ।
पथ्याशुण्ठ्यामृताक्काथमनुपानं प्रयोजयेत् ॥ ३४ ॥

शोधित पारा १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग लेकर दोनोंकी एकत्र कज्जली करके भाँगरेके रसमें खरल करे । फिर उसमें ताम्रभस्म और लोहभस्म कज्जलीसे चौथाई भाग मिलाकर लोहेके पात्रमें पकावे और लोहेकी करछीसे चलाताजावे । जब वह पिघलकर पतली होजाय तब गोबरके ऊपर एक केलेका पत्ता रखकर उसके ऊपर कज्जलीको ढाल देवे । जब वह पपडीकी समान जमजाय तब उसको खरलमें डालकर निर्गुण्डीके रसमें एकदिन तक भावना देवे । पश्चात् अरणी, त्रिफला, घीग्वार, अडूसा, भारंगी, त्रिकुटा, भाँगरा, चीतेकी जड और मुण्डी इन प्रत्येकके रस अथवा क्काथमें सातदिन तक भावना देवे । फिर अँगारोंकी अग्निसे कुछ सेककर शीशीमें भरकर रखलेवे । इसको चार २ रत्ती परिमाण सेवन करना चाहिये और ऊपरसे हरड, सोंठ, गिलोय इनके काथका अनुपान करना चाहिये । यह पर्पटीरस श्लैष्मिकज्वरको नष्ट करनेके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ ५३०-३४ ॥

त्रैलोक्यचिन्तामणिरस ।

भागत्रयं स्वर्णभस्म द्विभागं तारमभ्रकम् ।
लौहात्पंच प्रवालञ्च मौक्तिकं त्रयसम्मितम् ॥ ३५ ॥
भस्मसूतं सप्तकञ्च सर्वं मर्द्यं तु कन्यया ।
छायाशुष्का वटी कार्या च्छागीदुग्धानुपानतः॥३६॥

क्षयं हन्ति तथा कासं गुल्मञ्चापि प्रमेहनुत्।
जीर्णज्वरहरश्चायमुन्मादस्य निकृन्तनः॥
सर्वरोगहरश्चापि वारिदोषनिवारणः॥ ३७॥

सुवर्णभस्म २ तोले, चाँदीकी भस्म २ तोले, अभ्रकभस्म २ तोले, लोहभस्म ५ तोले, प्रवालभस्म ३ तोले, मोतीकी भस्म ३ तोले और रससिन्दूर ७ तोले लेकर सबको एकत्र खरल करले फिर घीग्वारके रसमें एकदिन तक घोटकर छायामें सुखा करके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। फिर एकएक वटी नित्य बकरीके दूधके साथ सेवन करे। यह रस क्षयरोग, खाँसी, वातगुल्म, प्रमेह, जीर्णज्वर, उन्मादरोग और जलदोषजनितरोग आदि सम्पूर्ण व्याधियोंको दूर करताहै॥ ३५--३७॥

महाराजवटी।

रसगन्धकमभ्रं च प्रत्येकं कर्षसम्मितम्।
वृद्धदारकवङ्गं च लौहं कर्षार्द्धकं क्षिपेत्॥३८॥
स्वर्णं ताम्रं च कर्पूरं प्रत्येकं कर्षपादिकम्।
शक्राशनं वरी चैव श्वेतसर्ज्जलवङ्गकम्॥ ३९॥
कोकिलाक्षं विदारी च मुसली शूकशिम्बिकम्।
जातीफलं तथा कोषं बला नागबला तथा॥ ५४०॥
माषद्वयमितं भागं तालमूल्या रसेन च।
पिष्ट्वा च वटिका कार्य्या चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः॥ ४१॥
मधुना भक्षयेत्प्रातर्विषमज्वरशान्तये।
धातुस्थां च ज्वरान्सर्वान् हन्यादेव न संशयः॥४२॥
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्।
ज्वरं नानाविधं हन्ति कासं श्वासं क्षयं तथा॥ ४३॥
बलपुष्टिकरं नित्यं कामिनीं रमयेत्सदा।
न च शुक्रक्षयं याति न बलं ह्रासतां व्रजेत्॥ ४४॥
ऊर्ध्वगं श्लेष्मजं हन्ति सन्निपातं सुदारुणम्।
कामलां पाण्डुरोगञ्च प्रमेहं रक्तपित्तकम्॥
महाराजवटी ख्याता राजयोग्या च सर्वदा॥ ४५॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और अभ्रक ये प्रत्येक एकएक कर्ष, एवं शोधित विधारेके बीज, वङ्ग और लोहभस्म ये प्रत्येक आधा २ कर्ष, सोना, ताँबा और कपूर चौथाई२ कर्ष, भाँग, शतावर, सफेदराल, लौंग, तालमखाना, विदारीकन्द, मुसली, कौंचके बीज, जायफल, जावित्री, खिरैटी और गंगेरन इन औषधियोंको दो दो माशे परिमाण लेवे। सबको एकत्र मुसलीके काथके साथ खरल करके चार २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक गोली शहदके साथ सेवन करनेसे विषमज्वर शान्त होता है। ये गोलियाँ धातुगतज्वर सब प्रकारके वातज, पित्तज, श्लैष्मिक व सान्निपातिक ज्वर एवं अन्यान्य अनेक प्रकारके ज्वर, खाँसी, श्वास और क्षय प्रभृतिरोगोंको शीघ्र नष्ट करती है बल तथा पुष्टि उत्पन्न करती हैं। इनको सेवन करनेवाला मनुष्य यदि प्रतिदिन सुन्दरांगियोंके साथ रमण करे तो भी वीर्य क्षय नहीं होता और न बल नष्ट होता है। इससे ऊर्ध्वगत कफके विकार, दारुण सन्निपात, कामला, पाण्डु, प्रमेह, रक्तपित्तादि दुस्तर व्याधियाँ दूर होती हैं। इसको महाराजवटी कहते हैं ये गोलियाँ राजाओंके सदैव सेवन करने योग्यहैं॥३८-४५

सर्वतोभद्ररस।

विशुद्धं गगनं ग्राह्यं द्विकर्षं शुद्धगन्धकम्।
तोलकं तोलकार्द्धं च हिङ्गुलोत्थरसं तथा ॥ ४६ ॥
कर्पूरं केशरं मांसी तेजपत्रं लवङ्गकम्।
जातीकोषफलं चैव सूक्ष्मैला करिपिप्पली ॥ ४७ ॥
कुष्ठं तालीशपत्रं च धातकी चोचमुस्तकम्।
हरीतकी च मरिचं शृङ्गवेरविभीतकम् ॥ ४८ ॥
पिप्पल्यामलकं चैव शाणभागं विचूर्णितम्।
सर्वमेकीकृतं पिष्ट्वा वटीं कुर्याद्द्विगुञ्जिकाम् ॥४९॥
भक्षयेत्पर्णखण्डेन मधुना सितयापि वा।
रोगं ज्ञात्वानुपानञ्च प्रातः कुर्याद्विचक्षणः ॥ ५५० ॥
हन्ति मन्दानलान्सर्वानामदोषं विषूचिकाम्।
पित्तश्लेष्मभवं रोगं वातश्लेष्मभवं तथा ॥ ५१ ॥
आनाहं मूत्रकृच्छ्रञ्च संग्रहग्रहणीं वमिम्।
अम्लपित्तं शीतपित्तं रक्तपित्तं विशेषतः ॥ ५२ ॥

चिरज्वरं पित्तभवं धातुस्थं विषमज्वरम्।
कासं पञ्चविधं हन्ति कामलां पाण्डुमेव च ॥ ५३ ॥
सर्वलोकहितार्थाय शिवेन भाषितः पुरा।
सर्वतोभद्रनामायंऽरसः साक्षान्महेश्वरः ॥ ५४ ॥

शुद्ध अभ्रक २ कर्ष, शुद्ध गन्धक १ तोला, सिंगरफसे निकालाहुआ पारा ६ माशे, एवं कपूर, केशर, जटामांसी, तेजपात, लौंग, जावित्री, जायफल, छोटी इलायची, गजपीपल, कूठ, तालीशपत्र, धायके फूल, दारचीनी, नागरमोथा, हरड, मिरच, सोंठ, बहेडा, पीपल और आमले ये प्रत्येक चार २ माशे लेवे। सबको जलके साथ एकत्र खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। वैद्य इसकी एकएक गोली प्रतिदिन प्रातःकाल पानके रस, शहद अथवा मिश्रीके साथ सेवन करावे और रोगके अनुसार अनुपान देवे। यह रस मन्दाग्नि, सर्वप्रकारके आमदोष, विषूचिका, पित्तकफजन्य तथा वात-कफजनित रोग, अफारा, मूत्रकृच्छ्र, संग्रहणी, वमन, अम्लपित्त, शीतपित्त, विशेषकर रक्तपित्त, जीर्णज्वर, पित्तज्वर, धातुस्थ विषमज्वर, पाँचोंप्रकारकी खाँसी, कामला और पाण्डुरोग इन समस्त व्याधियोंको नष्ट करता है। पूर्वकालमें संसारके कल्याणके लिये इस सर्वतोभद्रनामक रसको शिवजीने कहा है। यह साक्षात् महेश्वर है ॥ ४६–५४ ॥

ज्वरारि-अभ्र।

अभ्रं ताम्रं रसं गन्धं विषञ्चेति समं समम्।
द्विगुणं धूर्त्तबीजञ्च व्योषं पञ्चगुणं मतम् ॥ ५५ ॥
जलेन वटिका कुर्याद्यथादोषानुपानतः।
अभ्रं ज्वरारिनामेदं सर्वज्वरविनाशनम् ॥ ५६ ॥
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्।
विषमाख्यान्द्वन्द्वजांश्च धातुस्थान्विषमज्वरान् ॥५७॥
प्लीहानं यकृतं गुल्ममग्रमांसं सशोथकम्।
हिक्कां श्वासं च कासञ्च मन्दानलमरोचकम् ॥
नाशयेन्नात्र सन्देहो वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ५८ ॥

अभ्रक, ताँबा, पारा, गन्धक और शुद्धवत्सनाभ ये प्रत्येक एकएक भाग धतूरेके बीज २ भाग और त्रिकुटा ५ भाग इन सब औषधियोंको एकत्र जलके

साथ उत्तमप्रकारसे खरलकरके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। नित्यप्रति एकएक गोली यथादोषानुसार अनुपानके साथ सेवन करे। यह ज्वरारि अभ्रक सम्पूर्ण ज्वरोंको दूर करता है। जैसे-वातज, पित्तज, श्लेष्मज, सान्निपातिक, विषम, द्वन्द्वज और धातुगत विषमज्वर एवं तिल्ली और जिगरके विकार, गुल्म, अग्रमांस, शोथ, हिचकी, श्वास, खाँसी, मन्दाग्नि, अरुचि आदि रोगोंको इस प्रकार शीघ्र नष्टकरताहै जैसे-वज्र वृक्षोंको ॥ ५५-५८ ॥

जीवनानन्दाभ्र।

वज्राभ्रं मारितं कृत्वा कर्षयुग्मं विचूर्णितम्।
जीरं कनकबीजञ्च कर्षं वासारसेन च ॥ ५९ ॥
कण्टकारीरसेनैव धात्रीमुस्तरसेन च।
गुडूच्याः स्वरसेनैव पलांशेन पृथक् पृथक् ॥ ६० ॥
मर्दयित्वा वटी कार्या गुञ्जामात्रा प्रयोजिता।
विषमाख्यान्ज्वरान्सर्वान्प्लीहानं यकृतं वमिम् ॥ ६१ ॥
रक्तपित्तं वातरक्तं ग्रहणीं श्वासकासकौ।
अरुचिं शूलहृल्लासावर्शांसि च विनाशयेत् ॥ ६२ ॥
जीवनानन्दनामेदमभ्रं वृष्यं बलप्रदम्।
रसायनमिदं श्रेष्ठमग्निसन्दीपनं परम् ॥ ६३ ॥

अभ्रककी भस्म २ कर्ष, जीरा और धतूरेके बीज एक एक कर्ष लेकर सबको एकत्र चूर्ण करके अडूसा, कटेरी, आमले, नागरमोथा और गिलोय; इन प्रत्येकके चार चार तोले स्वरसमें क्रमसे अलग २ खरल करे। फिर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनाकर एकएक गोली यथादोषानुसार उचित अनुपानके साथ प्रयोग करे। यह रस सम्पूर्ण विषमज्वर, प्लीहा, यकृत्, वमन, रक्तपित्त, वातरक्त, संग्रहणी, श्वास, खाँसी, अरुचि, शूल, हृल्लास (उबकाई) और अर्शरोगको नष्ट करताहै। यह जीवनानन्द नामक अभ्रक-अत्यन्त वृष्य, बलदायक, उत्तम रसायन और अग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाला है ॥ ५९-५६३ ॥

चन्दनादिलोह।

रक्तचन्दनह्रीबेरपाठोशीरकणा शिवा।
नागरोत्पलधात्रीभिस्त्रिमदेन समन्वितम् ॥

---

१ त्रिमदश्चात्र-मुस्तकचित्रकविडङ्गम्। द्वादशद्रव्यसमं लौहं रक्तिद्वयं मधुना लिहेत् ॥

लौहं निहन्ति विविधान् समस्तान्विषमज्वरान् ६४॥

लालचन्दन, सुगन्धवाला, पाढ, खस, पीपल, हरड, सौंठ, कमोदिनीकी जड, बबूल, आमले, नागरमोथा, चीता और वायविडङ्ग ये सब औषधियाँ समानभाग और लोहभस्म सबके बराबर भाग लेकर एकत्र करके जलके द्वारा उत्तमप्रकारसे खरलकरके दोदो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे।इस लोहको शहदके साथ खानेसे सब प्रकारके विषमज्वर और अन्य नानाप्रकारके ज्वर दूर होतेहैं॥

विषमज्वरान्तकलोह ।

पारदं गन्धकं तुल्यं सूतार्द्धं जीर्णताम्रकम् ।
ताम्रतुल्यं माक्षिकञ्च लौहं सर्वसमं नयेत् ॥ ६५ ॥
जयन्त्याः स्वरसेनैव कोकिलाक्षरसेन च ।
वासकार्द्रपर्णरसैः पंचधा च विमर्दयेत् ॥ ६६ ॥
पृथक् कलायमानां तु वटिकां कारयेद्भिषक् ।
विषमज्वरान्तनामायं विषमज्वरनाशनः ॥ ६७ ॥
वह्निदीप्तिकरो हृद्यः प्लीहगुल्मविनाशनः ।
चाक्षुष्यो बृंहणो वृष्यः श्रेष्ठः सर्वरुजापहः ॥ ६८ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक दोनोंको समानभाग लेकर एकत्र खरल करके कज्जली बनाले । फिर उसमें ताम्रभस्म १ तोला, सोनामाखीकी भस्म १ तोला और लोहभस्म सबके बराबर भाग लेवे । इन सबको एकत्र खरल करके अरणी, तालमखाना, अडूसा, अदरख और पान इन पाँचोंके रसमें पृथक् पृथक् पाँच बार खरल करके मटरकी समान गोलियाँ बनालेवे । यह विषमज्वरान्तकलोह सर्वप्रकारके विषमज्वर, प्लीहा, गुल्म आदिरोगोंको नष्ट करता है। एवं अग्निको दीपन करनेवाला, हृदयके और नेत्रोंके लिये हितकारी कामोत्तेजक एवं वीर्यवर्द्धक है और समस्त व्याधियोंकी उत्तम औषध है॥६५-६८॥

बृहद्विषमज्वरान्तकलोह ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं कारयेत्कज्जली शुभाम् ।
मृतसूतं हेमतारं लौहमभ्रञ्च ताम्रकम् ॥ ६९ ॥
तालसत्वं वङ्गभस्म मौक्तिकं सप्रवालकम् ।
सुवर्णमाक्षिकञ्चापि चूर्णयित्वा विभावयेत् ॥ ७० ॥

निर्गुण्डी नागवल्ली च काकमाची सपर्पटी ।
त्रिफला कारवेल्लश्च दशमूली पुनर्नवा ॥ ७१ ॥
गुडूची वृषकश्चापि सभृङ्गं केशराजकः ।
एतेषाञ्च रसेनैव भावयेत्त्रिदिनं पृथक् ॥ ७२ ॥
गुञ्जामानां वटीं कुर्य्याच्छास्त्रवित्कुशलो भिषक् ।
पिप्पलीगुडकेनैव लिहेच्च वटिकां शुभाम् ॥ ७३ ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति निरामं साममेव च ।
सप्तधातुगतश्चापि नानादोषोद्भवं तथा ॥ ७४ ॥
सततादिज्वरं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ।
अभिघाताभिचारोत्थं जीर्णज्वरविशेषतः ॥ ७५ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक दोनोंकी बनायीहुई उत्तम कज्जली, रससिन्दूर, सोना, चाँदी, लोहा, अभ्रक, ताँबा, हरतालभस्म, वङ्गभस्म, मोती, मूँगा और सोना-माखी इन सबको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे । फिर उसको निर्गुण्डी, पान, मकोय, पित्तपापडा, त्रिफला, करेला, दशमूल,पुनर्नवा, गिलोय, अडूसा, भाँगरा और कुकुरभाँगरा इन प्रत्येक ओषधियोंके रसमें अलग २ तीन तीन दिनतक भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ तैयार करलेवे । इनमेंसे एक एक गोली पीपलके चूर्ण और पुराने गुडके साथ सेवन करे । इससे आठों प्रकारके ज्वर आमरहित और आमसहित ज्वर, सातोंधातुओंमें स्थित तथा अनेक दोषोंसे उत्पन्नहुएज्वर,सततादिज्वर,साध्य अथवा असाध्य अभिघातज्वर अभिचारजन्यज्वर और विशेषकर जीर्णज्वर तत्काल नष्ट होते हैं ॥६९-७५॥

पुटपक-विषमज्वरान्तकलोह ।

हिंगूलसम्भवं सूतं गन्धकेन सुकज्जलम् ।
पर्प्पटीरसवत्पाच्यं सूताङ्घ्रिहेमभस्मकम् ॥ ७६ ॥
लौहं ताम्रमभ्रकञ्च रसस्य द्विगुणं तथा ।
वङ्गकं गैरिकञ्चैव प्रवालञ्च रसार्द्धकम् ॥ ७७ ॥
मुक्ताशंखं शुक्तिभस्म प्रदेयं रसपादिकम् ।
मुक्तागृहे च संस्थाप्य पुटपाकेन साधयेत् ॥ ७८ ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय द्विगुञ्जाफलमानतः ।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं कणा हिङ्गुससैन्धवम् ॥ ७९ ॥

ज्वरमष्टविधं हन्ति वातपित्तकफोद्भवम्।
प्लीहानं यकृतं गुल्मं साध्यासाध्यमथापि वा ॥५८०॥
सन्ततं सतताख्यं च विषमज्वरनाशनः।
कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं मेहमरोचकम् ॥ ८१ ॥
ग्रहणीमामदोषञ्च कासं श्वासं तथैव च।
मूत्रकृच्छ्रातिसारञ्च नाशयेदविकल्पतः ॥ ८२ ॥
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं बलवर्णप्रसादनः।
विषमज्वरान्तको नाम्ना धन्वन्तरिप्रकाशितः ॥८३॥

सिंगरफसे निकालाहुआ पारा और शुद्धगन्धक दोनोंको समान भाग लेकर कज्जली करलेवे फिर पर्पटी रसकी समान उसका पाककरके चूर्ण करलेवे। चूर्णमें स्वर्णभस्म पारेसे चौथाई भाग एवं लोहा, अभ्रक और ताँबा ये प्रत्येक पारेसे दुगुने, वङ्गभस्म, गेरू, मूँगा ये प्रत्येक पारेसे आधे२भाग तथा मोतीकी भस्म, शंखभस्म और सीपीकीभस्म ये प्रत्येक पारेसे चौथाई २ भाग लेवे। सबको एकत्र जलके साथ खरल करके सीपीमें भरकर पुटपाकविधिके द्वारा सिद्धकरे। इस रसको प्रातिदिन प्रातःकाल दो दो रत्ती प्रमाण लेकर पीपल, हींग और सैंधानमक इनके चूर्णके साथ मिलाकर सेवनकरे। यह रस वातज, पित्तज, कफज आदि आठों प्रकारके ज्वर, तिल्ली, यकृत, वायगोला, साध्य या असाध्य सन्तत, सतत और विषमज्वर इन सबको नष्ट करताहै। इसके सेवनसे कामला, पाण्डुरोग, सूजन, प्रमेह, अरुचि, संग्रहणी, आमदोष, खाँसी, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, अतिसार आदि रोग अवश्य नष्ट होते हैं। यह लोह अग्निको दीपन करता तथा बल और वर्णको प्रसन्न करता है। इस प्रयोगको धन्वन्तरिजीने विषमज्वरान्तकनामसे प्रकाशित कियाहै ॥ ७६-५८३ ॥

सर्वज्वरहरलोह।

चित्रकं त्रिफला व्योषं विडङ्गं मुस्तकं तथा।
श्रेयसी पिप्पलीमूलमुशीरं देवदारु च ॥ ८४ ॥
किराततिक्तकं बालं कटुकी कण्टकारिका।
शोभाञ्जनस्य बीजञ्च मधुकं वत्सकं समम् ॥ ८५ ॥
लौहतुल्यं गृहीत्वा तु वटिकां कारयेद्भिषक्।
सर्वज्वरहरं लोहं सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ ८६ ॥

वातिकं पैत्तिकं श्लैष्मं द्वन्द्वजं सान्निपातिकम् ।
जीर्णज्वरं च विषमं रोगसङ्करमेव च ॥
प्लीहानमग्रमांसं च यकृतं च विनाशयेत् ॥ ८७ ॥

चीतेकी जड, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडङ्ग, नागरमोथा, गजपीपल, पीपलामूल, खस, देवदारु, चिरायता, नेत्रवाला, कुटकी, कटेरी, सँहजनेके बीज, मुलैठी और इन्द्रजौ ये सब ओषधियाँ समान भाग और सबकी बराबर लोहभस्म लेवे । सबको एकत्र जलके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह सर्वज्वरहरलोह उपद्रवोंसहित समस्त ज्वरोंको नष्ट करता है । इससे वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, सान्निपातज, जीर्णज्वर, विषमज्वर तथा अन्य भयंकररोग एवं तिल्ली, अग्रमांस, यकृत्विकार आदि समस्त रोग दूर होते हैं ॥ ८४-८७ ॥

बृहत्सर्वज्वरहरलोह ।

द्विपलं जारितं लौहं रसं गन्धं द्वितोलकम् ।
तोलकं त्रिफला व्योषं विडङ्गं मुस्तकन्तथा ॥ ८८ ॥
श्रेयसी पिप्पलीमूलं हरिद्रे द्वे च चित्रकम् ।
आर्द्रकस्य रसेनैव वटिका कारयेद्भिषक् ॥ ८९ ॥
गुञ्जाद्वयां वटीं कृत्वा भक्षयेदार्द्रकद्रवैः ।
सर्वज्वरहरं लौहं सर्वज्वरविनाशनम् ॥ ९० ॥
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
विषमज्वरभूतोत्थज्वरं प्लीहानमेव च ॥ ९१ ॥
मासजं पक्षजं चैव तथा संवत्सरोत्थितम् ।
सर्वाञ्ज्वरान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ९२ ॥

लोहेकी भस्म ८ तोले, शुद्ध पारा २ तोले और शुद्ध गन्धक २ तोले, दोनोंकी कज्जली, एवं, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडङ्ग, नागरमोथा, गजपीपल, पीपलामूल, हल्दी, दारुहल्दी और चीता ये प्रत्येक एकएक तोला सबको एकत्र कूटपीसकर अदरखके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ तैयार करलेवे । फिर एकएक गोली अदरखके रसके साथ सेवन करे । यह लोह-वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, विषमज्वर और भूतबाधादि जनित सम्पूर्ण

ज्वर, तिल्ली, महीनेमें आनेवाला, पक्षमें होनेवाला अथवा वर्षदिनमें आनेवाला ज्वर इत्यादि सर्वप्रकारके ज्वरोंको इस भाँति शीघ्र नष्ट करता है, जैसे-सूर्यका प्रकाश अन्धकारको तत्काल नष्ट करदेता है ॥ ८८-५९२ ॥

द्वितीय बृहत्सर्वज्वरहरलोह ।

पारदं गन्धकं शुद्धं ताम्रमभ्रञ्च माक्षिकम् ।
हिरण्यं तारतालं च कर्षमेकं पृथक् पृथक् ॥ ९३ ॥
मृतकान्तं पलं देयं सर्वमेकीकृतं शुभम् ।
वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं प्रत्येकं दिनसप्तकम् ॥ ९४ ॥
कारवेल्लरसेनापि दशमूलरसेन च ।
पर्पटस्य कषायेण क्काथेन त्रैफलेन च ॥ ९५ ॥
गुडूच्याः स्वरसेनापि नागवल्लीरसेन च ।
काकमाचीरसेनैव निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च ॥ ९६ ॥
पुनर्नवार्द्रकाम्भोभिर्भावनां परिकल्प्य च ।
द्विरक्तिकाक्रमेणैव वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ९७ ॥
पिप्पलीगुडसंयुक्ता वटिका वीर्य्यवर्द्धिनी ।
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥ ८९ ॥
विविधं वारिदोषोत्थं चिरकालसमुद्भवम् ।
सततादिज्वरं हन्ति नानादोषोद्भवन्तथा ॥ ९९ ॥
क्षयोद्भवं च धातुस्थं कामशोकभवन्तथा ।
भूतावेशज्वरं चैव ऋक्षदोषभवन्तथा ॥ ६०० ॥
अभिघातज्वरं चैवमभिचारसमुद्भवम् ।
अभिन्यासं महाघोरं विषमं च त्रिदोषजम् ॥ १ ॥
शीतपूर्वं दाहपूर्वं त्रिदोषं विषमं ज्वरम् ।
प्रलेपकज्वरं घोरमर्द्धनारीश्वरन्तथा ॥ २ ॥
प्लीहज्वरं तथा कासं चातुर्थकविपर्य्ययम् ।
पाण्डुरोगगणान्सर्वानग्निमान्द्यं महागदम् ॥ ३ ॥
एतान्सर्वान्निहन्त्याशु पक्षार्द्धेन न संशयः ।
शाल्यन्नं तक्रसहितं भोजयेद्द्विजसंयुतम् ॥ ४ ॥

ककारपूर्वकं सर्वं वर्जनीयं विशेषतः।
मैथुनं वर्जयेत्तावद्यावन्न बलवान्भवेत्॥
सर्वज्वरहरं श्रेष्ठमनुपानं प्रकल्पयेत्॥ ६०५॥

शुद्धपारा, शुद्ध गन्धक, ताँबा, अभ्रक, सोनामाखी, सोना, चाँदी और हर-ताल ये प्रत्येक एकएक तोला और कान्तलोहभस्म ४ तोले लेवे। सबको एकत्र खरलकरके आगे कहीहुई प्रत्येक ओषधिके रस या काथमें क्रमसे सात २ दिन तक भावना देवे। करेलेके पत्तोंका रस, दशमूलका काथ, पित्तपापडेका और त्रिफलेका काथ, गिलोयका स्वरस, पानोंका रस, मकोयका रस, निर्गुण्डीके पत्तोंका रस, पुनर्नवाका रस और अदरखका रस इनमें क्रमसे अलग अलग सात २ दिनतक भावना देकर दोदो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। फिर एकएक गोली पीपलके चूर्ण और पुरानेगुडके साथ रोगीको सेवन करावे। ये गोलियाँ अत्यन्त वीर्यकी वृद्धि करतीहैं। एवं साध्य वा असाध्य आठोंप्रकारके ज्वर, विविध प्रकारके जलदोषजनित विकार, चिरकालसे उत्पन्नहुए सततादिज्वर, अनेकप्रकारके दोषोंसे उत्पन्नहुआ क्षयरोग, धातुगतज्वर, काम और शोकसे उत्पन्नहुए ज्वर, तथा भूत, पिशाच, ग्रह आदिकी बाधासे उत्पन्नहुए ज्वर, अभिघातज्वर, अभिचारज्वर, महाभयंकर अभिन्यासज्वर, त्रिदोषजनित विष-मज्वर, शीताधिक्य अथवा दाहाधिक्य त्रिदोषजाविषमज्वर तथा प्रलेपक और अर्द्धनारीश्वर ज्वर, प्लीहायुक्तज्वर, खाँसी, चातुर्थिक विपरीतज्वर, पाण्डुरोग और मन्दाग्नि आदि सम्पूर्ण भयंकर रोगोंको एक सप्ताहमें ही निस्सन्देह दूर करतीहैं। इसपर रोगीको तक्रसहित शालिचावलोंका भात भोजनकरावे और करेला ककडी आदि समस्त ककारवाचक पदार्थ विशेषरूपसे और जबतक रोगी अच्छप्रकारसे बलवान् न होजाय तबतक मैथुन नहीं करना चाहिये। यह रस सर्वप्रकारके ज्वरोंको हरनेके लिये परमश्रेष्ठ औषधहै। इसपर यथादोषानुसार अनुपानकी कल्पना करनी चाहिये॥ ९३-६०५॥

बृहज्ज्वरान्तकलोह।

रसं गन्धं तोलैकञ्च जातीकोषफले तथा।
हेमभस्म तु पादैकं तोलार्द्धं रूप्यलौहकम्॥ ६॥

---

१ बृहज्ज्वरान्तके लोहे तोलकमिति रसादिफलान्तं प्रत्येकं तोलकभागम् हेमभस्म तु पादैकमिति एकभागापेक्षया पादैकम्।

अभ्रं शिलाजतु चैव भृङ्गराजश्च मुस्तकम्।
केशराजमपामार्गं लवङ्गञ्च फलत्रिकम्॥ ७॥
वरांङ्गवल्कलञ्चैव पिप्पालीमूलमेव च।
सैन्धवञ्च विडञ्चैव गुडूचीचूर्णमेव च॥ ८॥
कण्टकारी रसोनञ्च धान्यकं जीरकद्वयम्।
चन्दनं देवकाष्ठं च दार्वीन्द्रयवमेव च॥ ९॥
किराततिक्तकं बालं तोलकं च समाहरेत्।
द्वितोलं मरिचं देयं भावयेदार्द्रकद्रवैः॥ १०॥
माषार्द्धं भक्षयेत्प्रातर्मधुना मधुरीकृतम्।
ज्वरं नानाविधं हन्ति शुक्रस्थं चिरकालजम्॥ ११॥
साध्यासाध्यविचारोऽत्र नैव कार्य्यो भिषग्वरैः।
अन्तर्धातुगतं चापि नाशयेन्नात्र संशयः॥ १२॥
भूतोत्थं श्रमजं चापि सन्निपातज्वरं तथा।
असाध्यं च ज्वरं हन्ति यथा सूर्य्योदयस्तमः॥ १३॥
गरुडं च समालोक्य यथा सर्पः पलायते।
तथैवास्य प्रसादेन ज्वरं शीघ्रं पलायते॥ १४॥
बलदं पुष्टिदं चैव मन्दाग्निनाशनं परम्।
वीर्य्यस्तम्भकरं चैव कामलापाण्डुरोगनुत्॥ १५॥
सदा तु रमते नारीं न वीर्य्यं क्षयतां व्रजेत्।
प्रमेहं विविधं चैव विविधां ग्रहणीं तथा॥
अनुपानविशेषेण सर्वव्याधिं विनाशयेत्॥ १६॥

शुद्धपारे और शुद्ध गन्धककी कज्जली २ तोले, जावित्री १ तोला, जायफल १ तोला, सुवर्णभस्म ३ माशे, चाँदीकी भस्म ६ माशे, लोहभस्म ६ माशे एवं अभ्रक, शिलाजीत, भाँगरा, नागरमोथा, कुकुरभाँगरा, चिरचिटा, लौंग, त्रिफला, दारचीनी, पीपलामूल, सैंधानमक, विड्नमक, गिलोयका सत्त,

---

१ वराङ्गवल्कलं गुडत्वक्। २ गुडूचीचूर्णमित्यत्र गुडूचीसत्त्वमिति व्यवहरन्ति वृद्धाः। ३ रसोनं रसोनकम् तच्च दुग्धेन परिशोधितं ग्राह्यम्। ४ भावयेदार्द्रकद्रवैरिति–आर्द्रकस्य रसैः सप्तवारं भावयेत्॥"

कटेरी, दूधसे शुद्ध कियाहुआ लहसुनका कन्द, धनियाँ, जीरा, कालाजीरा, चन्दन, देवदारु, दारुहल्दी, इन्द्रजौ, चिरायता और सुगन्धवाला ये प्रत्येक एकएक तोला और कालीमिरच दो तोले लेवे। सबको एकत्र कूटपीसकर अदरखके रसमे सातबार भावनादेवे। इसको प्रतिदिन प्रातःकाल चार २ रत्तीकी मात्रासे मधुके साथ मिलाकर सेवन करे। इसके सेवनसे अनेक प्रकारके ज्वर, शुक्रगतज्वर और बहुत पुराना ज्वर शीघ्र नष्ट होता है। इसको व्यवहार करनेपर वैद्यको रोगके साध्यासाध्यका विचार नही करना चाहिये। यह लोह धातुगत ज्वर, भूतबाधाजनित व अधिक परिश्रमसे उत्पन्नहुए ज्वर और सन्निपातजनित असाध्यज्वरको इस प्रकार शीघ्र नष्ट करता है, जैसे सूर्यका उदय अन्धकारको तत्काल दूर करदेता है। जैसे गरुडको देखकर सर्प तत्क्षण भाग जाता है, उसी प्रकार इस लोहके प्रभावसे ज्वर शीघ्र भाग जाते हैं। यह अत्यंत बलदायक, पुष्टिकारक, प्रबल मन्दाग्नि, कामला और पाण्डुरोगको दूरकरता है एवं वीर्यको स्तम्भन करता है। इसको सेवन करनेवाला पुरुष यदि सर्वदा स्त्रियोंके साथ रमण करे तोभी उसका वीर्य-क्षय नहीं होता। इसको अनुपान विशेषके साथ सेवन करनेसे विविधप्रकारके प्रमेह तथा अनेक प्रकारकी संग्रहणी और अन्यान्य सर्व प्रकारकी व्याधियां नष्ट होती हैं॥ ६०६-१६॥

लोहासव।

लोहचूर्णं त्रिकटुकं त्रिफलञ्च यमानिका।
विडङ्गं मुस्तकं चित्रं चतुःसंख्यपलं क्षिपेत्॥ १७॥
चूर्णीकृत्य ततः क्षौद्रं चतुःषष्टिपलं पृथक्।
दद्याद्गुडतुलां तत्र जलद्रोणद्वयं तथा॥ १८॥
घृतभाण्डे विनिःक्षिप्य निदध्यान्मासमात्रकम्।
लोहासवममुं मर्त्यः पिबेद्वह्निकरं परम्॥ १९॥
पाण्डुश्वयथुगुल्मानि जठराण्यर्शसां रुजम्।
ज्वरं जीर्णञ्च प्लीहानं कासं श्वासं भगन्दरम्॥
अरोचकं च ग्रहणीं हृद्रोगं च विनाशयेत्॥ ६२०॥

लोहेकी भस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, अजवायन, वायविडङ्ग, नागरमोथा और चीता ये प्रत्येक औषधि सोलह २ तोले लेकर सबका एकत्र चूर्ण करलेवे फिर शहद ६४ पल, गुड १०० पल और जल २ द्रोण

परिमाण लेवे । सबको मिलाकर घीके चिकने बासनमें भरकर उसके मुँहको अच्छे प्रकारसे बन्दकरके एक महीनेतक रक्खा रहने देवे । एक महीनेके बाद निकालकर इस आसवको छानकर उचितमात्रासे सेवन करे । यह लोहासव अग्निको अत्यन्त दीपन करता है । एव पाण्डु, सूजन, गुल्म, उदर विकार, अर्श, जीर्णज्वर, तिल्ली, खाँसी, श्वास, भगन्दर, अरुचि, संग्रहणी, हृदयरोग इत्यादि सम्पूर्ण उपद्रवोंको नष्ट करता है ॥१७-६२०॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां रसप्रकरणम् ।

अथ घृतप्रकरणम् ।

ज्वराः कषायैर्वमनैर्लङ्घनैर्लघुभोजनैः ।
रूक्षस्य ये न शाम्यन्ति सर्पिस्तेषां भिषग्जितम् ॥१॥

कषाय (क्वाथ आदि), वमन, लंघन और लघुभोजन आदिके द्वारा जिन रोगियोंका शरीर रूक्ष होगया है और ज्वर शान्त नहीं हुआ है उनके लिये घृतको सेवन कराना अत्यन्त लाभकर है ॥ १ ॥

निर्दशाहमपि ज्ञात्वा कफोत्तरमलङ्घितम् ।
न सर्पिः पाययेत् प्राज्ञः शमनैस्तमुपाचरेत् ॥ २ ॥
यावल्लघुत्वमशनं दद्यान्मांसरसेन तु ।
बलं ह्यलं निग्रहाय दोषाणां बलकृच्च तत् ॥ ३ ॥

यदि कफकी प्रधानता हो और दोषोंकी अधिकताके कारण लंघनका फल अच्छे प्रकारसे प्रकट न हुआ हो तो ज्वरके दशदिन बीत जानेपर भी बुद्धिमान् वैद्य रोगीको घृत पान नहीं करावे । किन्तु रोगको शमन करनेवाली औषधियोंके द्वारा चिकित्सा करे और जबतक दोषोंमें लघुता न हो तबतक रोगीको मांसरसके साथ भोजन करावे । कारण मांसरस अत्यंत बलकारक और दोषोंका निग्रह करनेवालाहै ॥ २ ॥ ३ ॥

मांसार्थमेणलावादीन् युक्त्या दद्यात् विचक्षणः ।
कुक्कुटांश्च मयूरांश्च तित्तिरिक्रौञ्चवर्त्तकान् ॥ ४ ॥
गुरूष्णत्वान्न शंसन्ति ज्वरे केचिच्चिकित्सकाः ।
लंघनेनानिलबलं ज्वरे यद्यधिकं भवेत् ॥
भिषङ् मात्राविकल्पज्ञो दद्यात्तानपि कालवित् ॥५॥

ज्वरसे पीडित रोगीका मांसरस देनेकेलिये कालेहिरन, लवापक्षीके मांसका यूष या मांसरस विधिपूर्वक बनाकर सेवन कराना चाहिये। कोई २ वैद्य मुर्गा, मोर, तीतर क्रौंच (कुरर) और बत्तक इनका मांस गुरुपाकी और उष्णवीर्य्य होनेसे ज्वरमें पथ्यरूपसे देनेकी व्यवस्था नहीं करते हैं। ज्वरमें लंघनोंके द्वारा यदि वायुकी प्रसन्नता अधिक होगयी हो तो अनेक प्रकारकी कल्पनाओंके द्वारा मांसरसके अनेक संस्कार (जैसे मांसका अर्क, मांस यूष और मांसरासादि) बनाकरके रोगीको सेवन करावे॥ ४॥ ५॥

पिप्पल्यादिघृत।

पिप्पल्याश्चन्दनं मुस्तमुशीरं कटुरोहिणी।
कलिंगकास्तामलकी सारिवातिविषा स्थिरा॥ ६॥
द्राक्षामलकबिल्वानि त्रायमाणा निदिग्धिका।
सिद्धमेतद्घृतं सद्योज्वरं जीर्णमपोहति॥ ७॥
क्षयं श्वासं च हिक्कां च शिरःशूलमरोचकम्।
अङ्गाभितापमग्निं च विषमं सन्नियच्छति॥ ८॥
पिप्पल्याद्यमिदं क्वापि तन्त्रे क्षीरेण पच्यते।
यत्राधिकरणेनोक्तिर्गणे स्यात् स्नेहसंविधौ॥ ९॥
तत्रैव कल्कनिर्यूहाविष्येते स्नेहवेदिना।
एतद्वाक्यबलेनैव कल्कसाध्यपरं घृतम्॥ १०॥
जलस्नेहौषधानां च प्रमाणं यत्र नेरितम्।
तत्र स्यादौषधात् स्नेहः स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम्॥
द्रवकार्येऽप्यनुक्ते च सर्वत्र सलिलं मतम्॥ ११॥

पीपल, लालचन्दन, नागरमोथा, खस, कुटकी, इन्द्रजौ, भुईआमला, अनन्तमूल, अतीस, शालपर्णी, दाख, आमले, बेलकी छाल, त्रायमाण और कटेरी इन प्रत्येक औषधिके कल्क और काथके द्वारा घृतको सिद्ध करे। यह घृत जीर्णज्वरको शीघ्र नष्ट करताहै एवं क्षय, श्वास, हिचकी, शिरकी पीडा, अरुचि, शरीरका सन्ताप और विषमाग्निको दूर करताहै। किसी किसी ग्रन्थमें इस पिप्पल्यादिघृतको दूधके द्वारा पकानेका विधान कियागयाहै। जिस स्नेहपाकमें कल्क और काथका विधान नहीं कियागया हो, वहां स्नेहविधिको जाननेवाले वैद्यको कल्क और काथ दोनों लेने चाहिये। इस वाक्यके अनुसार घृतको

कल्कके द्वारा सिद्ध करे । जहाँ जल, स्नेह और औषधियोंका प्रमाण नहीं कहा हो, वहाँ औषधियोंसे स्नेहपदार्थ चौगुना और स्नेहपदार्थसे चौगुना जल लेना चाहिये । और जहाँपर किसी द्रवपदार्थ (दूध, दही, काँजी और काथ) का उल्लेख नहीं किया हो, वहाँ सब जगह जल लेना चाहिये ॥६-११ ॥

क्षीरषट्पलकघृत ।

पञ्चकोलैः ससिन्धूत्थैः पलिकैः पयसा समम् ।
सर्पिःप्रस्थं शृतं प्लीहविषमज्वरगुल्मनुत् ॥ १२ ॥
अत्र द्रवान्तरेऽनुक्ते क्षीरमेव चतुर्गुणम् ।
द्रवान्तरेण योगे हि क्षीरं स्नेहसमं भवेत् ॥ १३ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और सेंधानमक ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर इनका कल्क और काथ बनाकर उस काथ और कल्कके साथ १ प्रस्थ घी और उसके समान दूध लेकर सबको एकत्र मिला उत्तम प्रकारसे घृतको सिद्धकरे । यह घृत प्लीहा, विषमज्वर और गुल्मरोगको नष्ट करता है । स्नेहशब्दमें जहाँ किसी द्रवपदार्थका विधान नहीं किया हो, वहाँ चौगुना दूध लेना चाहिये । यदि स्नेहपाकमें किसी द्रवपदार्थका विधान होतो स्नेहके समान भाग दूध डालकर पाक करना चाहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥

दशमूलषट्पलकघृत ।

दशमूलीरसे सर्पिः सक्षीरे पंचकोलकैः ।
सक्षारैर्हन्ति तत्सिद्धं ज्वरकासाग्निमन्दताम् ॥
वातपित्तकफव्याधीन् प्लीहानं चापि पाण्डुताम् १४॥

चारप्रस्थ दशमूलके काथ और १प्रस्थ दूधकेसाथ पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार प्रत्येकका कल्क चार २ तोले डालकर यथाविधि एक प्रस्थ घृतको सिद्ध करे। यह घृत ज्वर, खाँसी, मन्दाग्नि, त्रिदोषजनित रोग, प्लीहा और पाण्डुरोगको नष्ट करता है ॥ १४ ॥

वासाद्यघृत ।

वासां गुडूचीं त्रिफलां त्रायमाणां यवासकम् ।
पक्त्वा तेन कषायेण पयसा द्विगुणेन च ॥ १५ ॥
पिप्पलीमूलमृद्वीकाचन्दनोत्पलनागरैः ।
कल्कीकृतैश्च विपचेद्घृतं जीर्णज्वरापहम् ॥ १६ ॥

अडूसा, गिलोय, हरड, आमला, बहेडा, त्रायमाण और जवासा यह सब औषधि समान भाग और सब मिलीहुई १ प्रस्थ लेकर ८प्रस्थ जलमें क्वाथ बनावे और २ प्रस्थ जल शेषरहनेपर उसमें ४ प्रस्थ दूध तथा पीपलामूल, दाख, लालचन्दन,नीलकमल और सोंठ इन सबका दो दो तोला कल्क डालकर उत्तम प्रकारसे घृतको सिद्ध करे। इस घृतको सेवन करनेसे जीर्णज्वर शीघ्र दूर होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

गुडूच्यादि घृत।

गुडूच्याः क्वाथकल्काभ्यां त्रिफलाया वृषस्य च।
मृद्वीकाया बलायाश्च सिद्धाः स्नेहा ज्वरच्छिदः ॥१७

गिलोय, त्रिफला, अडूसा, दाख और खिरेंटी इन पाँचों औषधियोंके क्वाथ और कल्कके द्वारा पृथक् २ सिद्ध कियेहुए पाँच प्रकारके घृत ज्वर नाशक हैं।

इति भैषज्यरत्नावल्यां घृतप्रकरणम्।

अथ तैलप्रकरणम्।

अभ्यङ्गांश्च प्रदेहांश्च सस्नेहान् सावगाहनान्।
विभज्य शीतोष्णकृतान् दद्याज्जीर्णज्वरे भिषक् ॥१॥
तैराशु प्रशमं याति बहिर्मार्गगतो ज्वरः।
लभन्ते सुखमङ्गानि बलं वर्णश्च जायते ॥ २ ॥

वैद्य जीर्णज्वरमें तैलादिकी मालिश, प्रलेप, स्नेहपान और स्नेहादि पदार्थोंसे अवगाहन आदि क्रियाओंको शीत और उष्णताका विभाग करके अर्थात् उष्ण प्रधानज्वरमें शीत तैलादिका और शीतप्रधानज्वरमें उष्ण तैलादिकका प्रयोग करे। इन सब क्रियाओंके द्वारा शरीरके बाहिरीभागमें स्थित ज्वर नष्ट होता है और शरीरमें स्वस्थता एवं बल, वर्णकी वृद्धि होती है ॥ १ ॥ २ ॥

अंगारकतैल।

मूर्वा लाक्षा हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा सेन्द्रवारुणी।
बृहती सैन्धवं कुष्ठं रास्ना मांसी शतावरी ॥ ३ ॥
आरनालाढकेनैव तैलप्रस्थं विपाचयेत्।
तैलमङ्गारकं नाम सर्वज्वरविनाशनम् ॥ ४ ॥

मूर्वा, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ, इन्द्रायन, बडी कटेरी, सेंधानमक, कूठ, रायसन, बालछड और शतावर इनके समान भाग मिश्रित ६४ तोले

कल्क और एक आढक कांजीके साथ एक प्रस्थ तैलको पकावे । यह अङ्गारक नामक तैल सब प्रकारके ज्वरोंको दूर करता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

बृहदङ्गारकतैल ।

शुष्कमूलादिकस्याङ्गैरङ्गैरङ्गारकस्य च ।
पक्वं तैलं ज्वरहरं शोथपाण्ड्वामयापहम् ॥
बृहदङ्गारकं तैलं जलमत्र चतुर्गुणम् ॥ ५ ॥

शुष्क मूलादि गण (सूखीमूली, पुनर्नवा, देवदारु, रायसन, सोंठ) और पूर्वोक्त अंगारक तेलकी औषधियोंका समान कल्क १ प्रस्थ, तिलका तेल २ प्रस्थ और पाकके लिये जल ८ प्रस्थ इन सबको मिलाकर उत्तम विधिसे तेलको पकावे । यह बृहदंगारक तेल ज्वर,सूजन,पाण्डु आदि रोगोंको दूर करताहै५॥

लाक्षादितैल ।

लाक्षाहरिद्रामंजिष्ठाकल्कैस्तैलं विपाचितम् ।
षड्गुणेनारनालेन दाहशीतज्वरापहम् ॥ ६ ॥

लाख, हल्दी और मंजीठ इन तीनोंका कल्क १ प्रस्थ, काँजी १२ प्रस्थ, तिलका तेल २ प्रस्थ इन सबको मिलाकर उत्तम विधिसे तेलको पकावे । इस तेलकी मालिश करनेसे दाह और शीतयुक्त ज्वर नष्ट होता है ॥ ६ ॥

महालाक्षादितैल ।

लाक्षारसाढके प्रस्थं तैलस्य विपचेद्भिषक् ।
मस्त्वाढकसमायुक्तं पिष्ट्वा चात्र समावपेत् ॥ ७ ॥
शतपुष्पां हरिद्रां च मूर्वां कुष्ठं हरेणुकम् ।
कटुकां मधुकं रास्नामश्वगन्धाञ्च दारु च ॥ ८ ॥
मुस्तकं चन्दनं चैव पृथगक्षसमानकैः ।
द्रव्यैरेतैस्तु तत् सिद्धमभ्यङ्गान्मारुतापहम् ॥ ९ ॥
विषमाख्यान् ज्वरान् सर्वानाश्वेव प्रशमं नयेत् ।
कासं श्वासं प्रतिश्यायं कण्डूदौर्गन्ध्यगौरवम् ॥ १० ॥
त्रिकपृष्ठकटीशूलं गात्राणां कुट्टनं तथा ।
पापालक्ष्मीप्रशमनं सर्वग्रहविनाशनम् ॥ ११ ॥
अश्विभ्यां निर्म्मितं श्रेष्ठं तैलं लाक्षादिकं महत् ।
लाक्षायाः षड्गुणं तोयं दत्वैकविंशवारकम् ॥ १२ ॥

परिस्राव्य जलं ग्राह्यं किंवा काथं यथोदितम् ।
शुष्कद्रव्यमुपादाय स्वरसानामसंभवे ॥
वारिण्यष्टगुणे साध्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ १३ ॥

लाखका रस एक आढक, तिलका तेल १ प्रस्थ, दहीका तोड १ आढक तथा सोया, हल्दी, मूर्वा, कूठ, रेणुका, कुटकी मुलैठी, रायसन, असगन्ध, देवदारु,नागरमोथा और लालचन्दन इन प्रत्येकका कल्क दो दो तोले सबको एकत्र मिलाकर यथाविधि तैलको पकावे । इस तैलसे वातविकार सब प्रकारके विषमज्वर, खाँसी, श्वास, प्रतिश्याय, खुजली, दुर्गन्ध, गुरुता, त्रिकशूल, पृष्ठशूल, कटिशूल, शरीरका टूटना, पाप, अलक्ष्मी और सर्वप्रकारकी ग्रहबाधादि उपद्रव दूर होते हैं । इस महालाक्षादिक श्रेष्ठ तैलको अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है । इसमें लाख १ भाग और जल ६ भाग लेने चाहिये । तथा लाखको २१ बार जलमें भिगोकर बारबार उसके रंगको निचोडकर लाखके जलको ग्रहण करे अथवा लाखका काथ बनाकर तेलको सिद्ध करे । सूखी औषधियोंमेंसे स्वरस नहीं निकलसकता । इसलिये उनको अठगुने जलमें पकाकर उनका चतुर्भागावशिष्ट काथ ग्रहण करना चाहिये ॥ ७-१३ ॥

षट्कट्वरतैल ।

सुवर्चिकानागरकुष्ठमूर्वालाक्षानिशालोहितयष्टिकाभिः ।
तैलं ज्वरे षड्गुणतक्रसिद्धमभ्यञ्जनाच्छीतविदाहनुत्स्यात् ॥

सज्जी, सोंठ, कूठ, मूर्वा, लाख, हल्दी, मंजीठ और मुलैठी इन सबका मिलाहुआ कल्क १ प्रस्थ तिलका तेल २ प्रस्थ, कट्वरतक्र १२ प्रस्थ इन सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक तेलको सिद्ध करे । इस तेलकी मालिश करनेसे शीत और दाह सहित ज्वर नष्ट होता है ॥ १४ ॥

महाषट्कट्वरतैल ।

शुक्तारनालैर्दधिमस्तुतक्रैः फलाम्बुभागेन समं हि तैलम् ।
कृष्णादिकल्कैर्मृदुवह्निसिद्धमभ्यञ्जनं वातकफज्वराणाम् ॥

---

१ दध्नः ससारकस्यात्र तक्रं कट्वरमिष्यते ।
दहीकी मलाई सहित तक्रको कट्वर कहते हैं ।

२ कृष्णा चित्रकषड्ग्रन्था वासकं विकसा घनम् ।
ग्रन्थिकैले चातिविषारेणुकं च कटुत्रयम् ॥

ऐकाहिकं द्वित्रिचतुर्थकानां मासार्द्धमासद्वयमासिकानाम्।
निवारणंताद्विषमज्वरुणां तैलन्तु षट्कट्वरकं महत्स्यात् ॥

सिरका, काँजी, दहीका तोड, तक्र और जम्बीरीनींबूका रस ये प्रत्येक चार २ प्रस्थ और तिलका तैल भी चार प्रस्थ लेवे। एवं कल्कके लिये निम्नलिखित कृष्णादिगणकी औषधियाँ लेवे। सबको एकत्र मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे तैलको सिद्ध करे।यह महाषट्कट्वरतैल शरीरपर मालिशकरनेसे वात-कफजन्य-ज्वर, ऐकाहिक, द्व्याहिक, तृतीयक, चातुर्थिक पाक्षिक, मासिक, द्विमासिक और सब प्रकारके विषमज्वरोंको शीघ्र निवारण करताहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

बृहत्पिप्पल्यादितैल।

पिप्पली मुस्तकं धान्यं सैन्धवं त्रिफला वचा।
यमानी चाजमोदा च चन्दनं पुष्कराह्वयम् ॥ १७ ॥
शठी द्राक्षा गवाक्षी च शालपर्णी त्रिकण्टकम्।
भूनिम्बारिष्टपत्राणि महानिम्बं निदिग्धिका ॥ १८ ॥
गुडूची पृश्निपर्णी च बृहती दन्तिचित्रकौ।
दार्वी हरिद्रा वृक्षाम्लं पर्प्पटं गजपिप्पली ॥ १९ ॥
एतेषां कार्षिकैः कल्कैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत्।
दधिकाञ्जिकतक्रैश्च मातुलुंगरसैस्तथा ॥ २० ॥
स्नेहमात्रासमैरेभिः शनैर्मृद्वग्निना पचेत्।
सिद्धमेतत् प्रयोक्तव्यं जीर्णज्वरमपोहति ॥ २१ ॥

—यमानी गोस्तनी व्याघ्री भूनिम्बं बिल्वचन्दनम्।
भार्गी श्यामा शिवा धात्री स्थिरा मूर्वा सजीरका ॥
सर्षप हिंगु कटुकी विडंगश्च समांशिकम्।
एष कृष्णादिको नाम गणो ज्वरविनाशनः ॥

पीपल, चीतेकी जड, वच, अडूसा, मजीठ, नागरमोथा, पीपलामूल, इलायची, अतीस, रेणुका, सोंठ, पीपल, मिरच, अजवाइन, दाख, कटेरी, चिरायता, बेलकी छाल, लालचन्दन, भारंगी, अनन्तमूल, हरड, आमला, शालपर्णी, मूर्वा, जीरा, सरसों, हींग, कुटकी और वाय-विडंग इन सब औषधियोंके समानभाग मिश्रित समुदायको कृष्णादिगण कहते हैं। यह गण सर्व प्रकारके ज्वरोंको नष्ट करनेवालाहै ॥

एकजं द्वन्द्वजं चैव दोषत्रयसमुद्भवम्।
सन्ततं सततान्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकान् ॥ २२ ॥
मासजं पक्षजं चैव चिरकालानुबन्धिनम्।
सर्वांस्तान्नाशयत्याशु पिप्पल्याद्यमिदं शुभम् ॥२३ ॥

पीपल, नागरमोथा, धनियां, सैंधानमक, हरड, आमला, बहेडा, वच, अजवायन, अजमोद, लालचन्दन, पोहकरमूल, कचूर, दाख, इन्द्रायनकी जड, शालपर्णी, गोखरू, चिरायता, नीमके पत्ते, बकायनकी छाल, कटेरी, गिलोय, पृश्निपर्णी, बडीकटेरी, दन्तीकी जड, चीतेकी जड, दारुहल्दी, हल्दी, अम्लवेत, पित्तपापडा और गजपीपल इन प्रत्येक औषधिका कल्क एक एक कर्ष, तिलका तैल एक प्रस्थ एवं दहीका तोड, कांजी, मठ्ठा और बिजौरेनींबूका रस ये प्रत्येक एक एक प्रस्थ लेवे। सबको एकत्र मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे शनैः शनैः तेलको सिद्ध करे। इस तेलकी मालिश करनेसे जीर्णज्वर दूर होता है। यह पिप्पल्यादितैल एक दोषज, द्विदोषज, त्रिदोषजज्वर, द्व्याहिक, तृतीयक (तिजारी) चातुर्थिक (चौथिया) मासिक, पाक्षिक, सन्ततज्वर, सततज्वर और बहुत पुरानेज्वर इन सबको तत्काल नष्ट करता है ॥ १७-२३ ॥

किराताादितैल।

मूर्वा लाक्षा हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा सेन्द्रवारुणी।
ह्रीबेरं पुष्करं रास्ना कपिवल्ली कटुत्रयम् ॥ २४ ॥
पाठा चेन्द्रयवैश्चैव लवणत्रयसंयुतम्।
वासकार्कं श्यामदारु महाकालफलं तथा ॥ २५ ॥
दाधिमस्त्वारनालेन कैरातेन च संपचेत्।
प्रस्थंप्रस्थं समादाय तैलप्रस्थे विपाचयेत् ॥ २६ ॥
लिप्तभुक्तज्वरं चैव सन्ततं सततं तथा।
धातुस्थमस्थिमज्जास्थं ज्वरं सर्वं व्यपोहति ॥ २७ ॥
कामलां ग्रहणीं घोरामातिसारं हलीमकम्।
प्लीहं पाण्डुं च श्वयथुं नाशयेन्नात्र संशयः ॥
नास्ति तैलं वरं चास्माज्ज्वरदर्पकुलान्तकृत् ॥ २८ ॥

मूर्वा, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ, इन्द्रायनकी जड, सुगंधवाला, पोहकरमूल, रायसन, गजपीपल, सोंठ, पीपल, मिरच, पाढ, इन्द्रजौ, सैंधा-

नमक, कालानमक, विडनमक, अडूसाकी छाल, सफेद आककी जड, अनन्तमूल, देवदारु और बडी इन्द्रायनके फल इन सब ओषधियोंका कल्क दो दो तोले एवं दहीका पानी, काँजी, चिरायतेका काथ और सरसोंका तेल ये प्रत्येक एक एक प्रस्थ लेवे. सबको एकत्र मिलाकर यथाविधि तेलको सिद्ध करे। इस तैलको मर्दन और पान प्रयोग करनेसे सन्तत, सतत, धातुगत, अस्थिगत, मज्जागतज्वर एवं अन्य सर्वप्रकारके ज्वर, कामला, संग्रहणी, अतिसार, हलीमक, प्लीहा, पाण्डुरोग और सूजन ये समस्तरोग नष्ट होते हैं। ज्वररूपी हाथीके दर्पको दलन करनेवाला इससे बढकर और कोई उत्तम तैल नहीं है॥२४-२८

बृहत्किरातादितैल।

कैरातस्य तुलामानं जलद्रोणे विपाचयेत्।
कटुतैलस्य पात्रार्द्धं तेनैव साधयेद्भिषक्॥ २९॥
मूर्व्वालाक्षाद्वयक्काथः कांजिकं दधिमस्तु च।
एतानि तैलतुल्यानि कल्कानेतांश्च संपचेत्॥ ३०॥
भूनिम्बः श्रेयसी रास्ना कुष्ठं लाक्षेन्द्रवारुणी।
मञ्जिष्ठा च हरिद्रे द्वे मूर्व्वा मधुकमुस्तकम्॥ ३१॥
वर्षाभूः सैन्धवं मांसी बृहती च तथा विडम्।
ह्रीबेरं शतमूली च चन्दनं कटुरोहिणी॥ ३२॥
हयगन्धा शताह्वा च रेणुका सुरदारु च।
उशीरं पद्मकं धान्यं पिप्पली च वचा शठी॥ ३३॥
फलत्रिकं यमान्यौ द्वे शृङ्गी गोक्षुर एव च।
पर्ण्यौ द्वे तरुणीमूलं विडङ्गं जीरकद्वयम्॥ ३४॥
महानिम्बश्च हबुषा यवक्षारो महौषधम्।
एषां कर्षद्वयं क्षिप्त्वा साधयेन्मृदुवह्निना॥ ३५॥
यथाऽहिवर्गं विनिहन्ति ताक्ष्यों
यथा च भास्वांस्तिमिरस्य संघम्।
तथैव सर्व्वं ज्वरवर्गमेत-
दभ्यङ्गमात्रेण निहन्ति तैलम्॥ ३६॥
सन्ततं सततादींश्च सशोथान् विषमज्वरान्।
प्लीहाश्रितान् सशोथान् वा प्रमेहं ज्वरमेव च॥ ३७॥

अग्निञ्च कुरुते दीप्तं बलवर्णकरं परम्।
पाण्ड्वादीन् हन्ति रोगांश्च किराताद्यमिदं बृहत्॥३८॥

चिरायतेको सौ पल प्रमाण लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे। फिर उस क्राथमें सरसोंका तेल चार सेर एवं मूर्वा और लाखका काथ, कांजी और दहीका तोड ये प्रत्येक चार २ सेर तथा चिरायता, गजपीपल, रायसन, कूठ, लाख, इन्द्रायनकी जड, मंजीठ, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, मुलैठी, नागरमोथा, पुनर्नवा, सेंधानमक, बालछड, बडीकटेरी, विरिया नमक, संचरनमक, सुगन्धवाला, सतावर, लालचन्दन, कुटकी, असगंध, सोया, रेणुका, देवदारु, खस, पद्माख, धनियाँ, पीपल, वच, कचूर, हरड, आमला, बहेडा, अजवायन, अजमोद, काकडासिंगी, गोखरू, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, दन्तीकी जड, बायविडंग, जीरा, कालाजीरा, बकायनकी छाल, हाऊबेर, जवाखार और सोंठ इन सब ओषधियोंका कल्क दो दो कर्ष प्रमाण लेवे। सबको एकत्र मिलाकर विधिसे मन्द मन्द अग्नि द्वारा पकावे। जिस प्रकार गरुड सर्पोंके समूहको और सूर्यका प्रकाश जैसे अन्धकारपुञ्जको नष्ट करदेताहै उसी प्रकार यह तेल मालिश करते ही सर्वप्रकारके ज्वरोंको नष्ट करता है. एवं सन्तत, सतत, शोथ सहित विषमज्वर, प्लीहायुक्त ज्वर, प्रमेह, ज्वर, पाण्डुआदिरोगोंको यह बृहत्किरातादितैल नष्ट करताहै अग्निको दीपन करताहै और बल वर्णकी वृद्धि करताहै॥ २९-३८॥

ज्वरभैरवतैल।

गुडूची वासको निम्बो मूर्वामूलं सचन्दनम्।
कैरातो यवतिक्ता च सिन्दुवारदलानि च॥ ३९॥
एषां पलशतं ग्राह्यं जलद्रोणे विपाचयेत्।
क्राथैः पादावशिष्टैश्च तैलप्रस्थद्वयं पचेत्॥ ४०॥
गुडूच्यातिविषा दारु हरिद्रे द्वे सुपर्णिका।
पिप्पली पिप्पलीमूलं शिग्रुबीजं स्थिरा जतु॥ ४१॥
पटोलं धान्यकं कुष्ठं किराती हेमपुष्पकः।
मूर्वामूलमश्वगन्धा सरलं कण्टकारिका॥ ४२॥
एतैः सार्द्धपलोन्मानैः कल्कैस्तैलं विपाचयेत्।
पाकार्थं दीयते तत्र पयः प्रस्थचतुष्टयम्॥ ४३॥

सिद्धमेतत् प्रयोक्तव्यं जीर्णज्वरमपोहति ।
विषमाख्यान् ज्वरान्सर्वान्प्लीहानं यकृतं तथा ॥४४॥
कामलां पाण्डुरोगं च शोथं हन्ति न संशयः ।
ज्वरभैरवनामाऽयं तैलं शिवकृतं महत् ॥ ४५ ॥

गिलोय, अडूसा, नीमकी छाल, मूर्वाकी जड, लालचन्दन, चिरायता, कल्पनाथ और सम्हालूके पत्ते इन सबको सौसौ पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजावे तब उतारकर छानलेवे। फिर उस क्वाथमें तिलका तैल दो प्रस्थ एवं गिलोय, अतीस, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, बावची, पीपल, पीपलामूल, सहँजनेके बीज, शालपर्णी, लाख, परवल, धनियाँ, कूठ, चिरायता, चम्पा, मूर्वाकी जड, असगन्ध, धूपसरल और कटेरी इन सब ओषधियोंका कल्क दो दो तोले और पाकके लिये जल चार प्रस्थ डालकर उत्तमप्रकारसे तैलको सिद्ध करे। इस तैलका प्रयोग करनेसे जीर्णज्वर दूर होता है। यह (बृहत्) ज्वरभैरवनामकतैल सर्वप्रकारके विषमज्वर, तिल्ली, यकृत, कामला, पाण्डुरोग और सूजनको अवश्य नष्ट करता है ॥ ३९-४५ ॥

घीको मूर्च्छित करनेकी विधि।

पथ्याधात्रीविभीतैर्जलधररजनीमातुलुंगद्रवैस्तु
सर्वैरेतैः सुपिष्टैश्च पलपरिमितैर्मन्दमन्दानलेन ।
आज्यं प्रस्थं विफेनं परिचपलगतं मूर्च्छयेद्वैद्यराज-
स्तस्मादामोपदोषं हरति च सहसा वीर्यवत्सौख्यदायी४६॥

हरड, आमला, बहेडा, नागरमोथा, हल्दी और बिजौरेनिंबूका रस ये छहों पदार्थ घृतको मूर्छित करनेवाले हैं। यह प्रत्येक एकएकपल परिमाण लेवे। प्रथम एकप्रस्थ गोघृतको मन्दमन्द अग्निसे पकावे।जब पकते पकते घृत झागरहित और शब्दरहित होजाय तब नीचे उतारकर उसमें पहिले हल्दी, फिर बिजौरे नींबूका रस पश्चात् अन्य औषधियाँ शीतलजलमें पीसकर डालदेवे। फिर चार प्रस्थ जल डालकर मन्द २ अग्निसे पकाकर एक सप्ताह पर्यन्त रखारहनेदेवे। इस प्रकार मूर्च्छित कियाहुआ घृत आमदोषको नष्टकरता है और वीर्यवान् एवं सुखदायक होता है ॥ ४६ ॥

तैलकी साधारणमूर्च्छाविधि।

कृत्वा तैलं कटाहे दृढतरविमले मन्दमन्दानलैस्त-
त्तैलं निष्फेनभावं गतमिह च यदा शैत्ययुक्तं तदैतत् ४७॥

पहले एक उत्तम कढावमें मीठी २ अग्निसे तेलको पकावे । जब वह तेल झागरहित होजाय, तब उसको चूल्हेपरसे उतारकर कुछ शीतल होनेपर उसमें जलसे पिसीहुई हल्दी क्रम २ से थोडी २ डाले । फिर मँजीठको जलमें पीस कर क्रमसे थोडा २ तेलमें डाले । फिर इसी प्रकार अन्यान्य मूर्च्छाद्रव्योंको क्रमसे तेलमें डालताजाय फिर एक सप्ताहतक उसको रखारहनेदे । इस प्रकार साधारणरूपसे तेल मूर्च्छित होता है ॥ ४७ ॥

कटुतैलमूर्च्छाविधि ।

वयःस्था रजनी मुस्तबिल्वदाडिमकेशरैः ।
कृष्णजीरकह्रीबेरनलिकैः सविभीतकैः ॥ ४८ ॥
एतैः समांशैः प्रस्थे च कर्षमात्रं प्रयोजयेत् ।
अरुणाद्द्विपलं तत्र तोयं चाढकसंमितम् ॥
कटुतैलं पचेत्तेन ह्यामदोषहरं परम् ॥ ४९ ॥

आमला, हल्दी, नागरमोथा, बेलकी छाल, दाडिमकी छाल, नागकेशर, कालाजीरा, सुगन्धवाला, नली, (सुगन्धद्रव्य) बहेडा और मंजीठ ये कटुतैल (सरसोंके तैल) के मूर्च्छा द्रव्य हैं । इन सब औषधियोंको एकएक कर्ष प्रमाण और मंजीठ दो पल लेवे । एवं सरसोंका तैल एक प्रस्थ और जल एक आढक लेवे । प्रथम तैलको मन्दमन्द अग्निसे पकावे । जब तैल पककर झाग रहित होजाय तब उसमें पाहिले हल्दी, फिर मंजीठ तत्पश्चात् आमले आदि औषधियोंके चूर्णको शीतल जलमें पीसकर डालदेवे । यह तैल आमदोषको नष्ट करता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

एरण्डतैलकी मूर्च्छाविधि ।

विकसा मुस्तकं धान्यं त्रिफला वैजयन्तिका ।
ह्रीबेरवनखर्ज्जूरं वटशुंगा निशायुगम् ॥५० ॥
नलिका भेषजं देयं केतकी च समं समम् ।
प्रस्थे देयं शाणमितं मूर्च्छने दधि कांजिकम् ॥ ५१ ॥

मंजीठ, नागरमोथा, धनियाँ, हरड, आमला, बहेडा, अरणीके पत्ते, सुगन्धवाला, वनखजूर, बडके अंकुर, हल्दी, दारुहल्दी, नली (सुगन्धद्रव्य) सोंठ, केवडेकी जड, दही और काँजी ये सब औषधियाँ मूर्च्छाके लिये दो माशे लेवे और अण्डीका तैल एक प्रस्थ लेवे । सबको एकत्र मिलाकर पूर्वोक्त विधिसे पकाकर मूर्च्छित करे ॥ ५० ॥ ५१ ॥

तिलके तैलकी मूर्च्छाविधि।

कृत्वा तैलं कटाहे दृढतरविमले मन्दमन्दानलैस्तं
तैलं निष्फेनभावं गतमिह च यदा शैत्ययुक्तं तदैव।
मञ्जिष्ठारात्रिलोध्रैर्जलधरनलिकैः सामलैः साक्षपथ्यैः
सूचीपुष्पांघ्रिनीरैरुपहितमथितैर्गन्धयोगं जहाति ॥५२॥
तैलस्येन्दुकलांशिकैकविकसाभागोऽपि मूर्च्छाविधौ
ये चान्ये त्रिफलापयोदरजनीह्रीबेरलोध्रान्विताः।
सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्तस्याश्च पादांशिका-
दुर्गन्धं विनिहन्ति तैलमरुणं सौरभ्यमाकुर्वते ॥ ५३ ॥

अत्यन्त दृढ और साफ कढावमें तैलको डालकर मन्द २ अग्निसे पकावे। जब पककर तेल झागरहित होजाय तब चूल्हेपरसे उतार लेवे। फिर शीतल होजानेपर उसमें हल्दीको शीतल जलमें पीसकर छोडे फिर मंजीठको जलमें पीसकर डाले तत्पश्चात् लोध, नागरमोथा, नली (सुगन्धद्रव्य) आमले, बहेडे, हरड, केवडेकी जड और सुगंधवाला इन सब औषधियोंके चूर्णको जलमें पीसकर तैलमें डालदेवे। फिर मूर्च्छाद्रव्योंसे चौगुने तैलमें उससे चौगुना पानी डालकर उसको पकावे। जब पककर कुछेक जल बाकी रहजाय तब उतार कर एक सप्ताहतक उसीप्रकार रक्खा रहनेदेवे। इन हल्दी और मंजीठ आदि पदार्थोंको मूर्च्छाद्रव्य कहतेहैं। इनका परिमाण इस प्रकार है—तेलका परिमाण जितना हो मंजीठका परिमाण उसका सोलहवाँ अंश लेवे और अन्यान्य द्रव्य मंजीठसे चौथाई भाग लेवे अर्थात् तैल सोलह सेर हो तो मंजीठ एक सेर लेवे और त्रिफलेसे लेकर नलिका तक प्रत्येक पदार्थ एकएक पाव लेवे। मूर्च्छापाकके द्वारा तैलकी दुर्गंध दूर होकर वह तैल उत्तमगन्ध और लाल वर्णवाला होजाताहै ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

तैलादिके पकानेका समय।

घृततैलगुडादींश्च नैकाहादवतारयेत्।
व्युषितास्तु प्रकुर्वन्ति विशेषेण गुणान् यतः ॥ ५४॥

घी, तैल और गुडादिका पाक एकदिनमें ही समाप्त न करे। कारण ये द्रव्य बासी होकर ही विशेष गुण करते हैं ॥ ५४ ॥

पाकसिद्धिलक्षण ।

स्नेहकल्को यदाङ्गुल्या वर्त्तितो वर्त्तिवद्भवेत् ।
वह्नौ क्षिप्ते च नो शब्दस्तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत ५५
शब्दस्युपरमे प्राप्ते फेनस्योपरमे तथा ।
गन्धवर्णरसादीनां सम्पत्तौ सिद्धिमादिशेत् ॥ ५६ ॥

घी और तैलादिके पकानेका कल्क जब अंगुलियोंसे मलनेपर जब उसकी बत्तीसी होजाय और घत वा तैलको अग्निमें डालनेसे उसमें चरचरशब्द न हो तब स्नेहादिका पाकहुआ जानना चाहिये । और स्नेहपाकके समय जो तेल घृतादिमें एक प्रकारका शब्द और फेनोद्गम (झागोंका आना) होताहै, उसके शान्त होनेपर एवं स्नेहमें डालेहुए पदार्थोंके गन्ध, वर्ण और रस स्नेहपदार्थमें उत्तमप्रकारसे मिलजानेपर घत तैलादिक सिद्ध हुआ जानना चाहिये ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

जीर्णज्वरमें पेयादि देनेकी अवधि ।

ज्वरे पेयाः कषायाश्च सर्पिः क्षीरं विरेचनम् ।
षडहे षडहे देयं कालं वीक्ष्यामयस्य च ॥ ५७ ॥

ज्वरमें काल (ऋतु) और रोगकी अवस्थाका विचारकर ज्वरके आरंभके दिनसे लेकर छः दिनके बाद रोगीको पेया, कषाय (क्काथ), घी, दूध और मृदुविरेचनकी औषधि देवे ॥ ५७ ॥

ज्वरमें संशोधन ।

ज्वरिभ्यो बहुदोषेभ्य ऊर्ध्वश्चाधश्च बुद्धिमान् ।
दद्यात्संशोधनं काले कल्पे यदुपदेक्ष्यते ॥ ५८ ॥

बुद्धिमान् वैद्यमें अत्यन्त बढेहुए वात, पित्त और कफादिदोषोंसे युक्त ज्वर रोगीको वमन और विरेचनके योग्य अवस्था होजानेपर चरकके कल्पस्थानमें वमन और विरेचन औषधियोंका जो विधि कही है तदनुसार रोगीको वमन और विरेचन देकर शुद्ध करे । किन्तु दोषोंकी अल्पावस्थामें वमन और विरेचन नहीं देवे ॥ ५८ ॥

ज्वरमें वमन ।

मदनं पिप्पलीभिर्वा कालिङ्गैर्मधुकेन वा ।
युक्तमुष्णाम्बुना पेयं वमनं ज्वरशान्तये ॥ ५९ ॥

कफ प्रधानज्वरमें पीपल और मैनफलके चूर्णको, दाहयुक्त ज्वरमें इन्द्रजौके चूर्णके साथ मैनफलके चूर्णको,और पित्तज्वरमें मुलैठीके चूर्णके साथ मैनफलके चूर्णको गरम जलके साथ ज्वरकी शान्तिके लिये वमन करानी चाहिये॥५९॥

ज्वरमें विरेचन ।

आरग्वधं वा पयसा मृद्वीकानां रसेन वा ।
त्रिवृतां त्रायमाणां वा पयसा ज्वरितः पिबेत् ॥६०॥

अमलतासके गूदेको दूधके साथ अथवा दाखोंके काथके साथ अथवा निसोतके चूर्ण या त्रायमाणके चूर्णको दूधके साथ पान कराकर ज्वररोगीको विरेचन करावे ॥ ६० ॥

ज्वरसे क्षीणहुए मनुष्यको वमन विरेचनकी विधि ।

ज्वरक्षीणस्य न हितं वमनं न विरेचनम् ।
कामं तु पयसा तस्य निरूहैर्वा हरेन्मलान् ॥ ६१ ॥
प्रयोजयेज्ज्वरहरान् निरूहान् सानुवासनान् ।
पक्वाशयगते दोषे वक्ष्यन्ते येन सिद्धिषु ॥ ६२ ॥

ज्वरसे क्षीण हुए मनुष्यको वमन और विरेचन नहीं कराने चाहिये । यदि दस्त करानेकी विशेष आवश्यकता हो तो रोगीको गरमदूध अधिक परिमाणमें पानकराकर अथवा निरूहणवस्ति देकर दस्त करावे । पक्वाशयमें दोषोंके प्राप्त होनेपर चरकके सिद्धिस्थानमें कहीहुई ज्वरनाशक निरूहणवस्ति अथवा अनुवासनवस्तिके द्वारा दोषोंको शमन करे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

ज्वरमें शिरोविरेचन ।

गौरवे शिरसः शूले विबद्धेष्विन्द्रियेषु च ।
जीर्णज्वरे रुचिकरं दद्याच्छीर्षविरेचनम् ॥ ६३ ॥

जीर्णज्वरमें रोगीके शिरमें भारीपन और पीडा हो एवं समस्त इन्द्रियोंमें शिथिलता हो तो कोई उत्तम नस्य प्रयोग करना चाहिये । इससे कफके निकल जानेपर शिरकी पीडा दूर होजाती है ॥ ६३ ॥

ज्वरमें शिरपीडानिवारक लेप ।

रक्तकरवीरपुष्पं धात्रीफलं सधान्याम्लम् ।
कल्कः सुखोष्णलेपाज्ज्वरेषु शिरसो रुजं जयति ६४॥

लालकनेरके फूल और आमले इन दोनोंके समान भाग लेकर काँजीके साथ पीसकर और कुछ गरम करके सुहाता २ शिरपर लेपकरनेसे ज्वरमें उत्पन्न हुई शिरकी पीडा नष्ट होती है ॥ ६४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां तैलप्रकरणम् ॥

अथ दुग्धप्रकरणम्।

जीर्णज्वरे कफे क्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपमम्।
तदेव तरुणे पीतं विषवद्धन्ति मानवम् ॥ १ ॥
चतुर्गुणेनाम्भसा च श्रृतं ज्वरहरं पयः।
धारोष्णं वा पयः शीतं पीतं सद्यो ज्वरं जयेत् ॥ २ ॥

जीर्णज्वरमें कफके क्षीण होजानेपर दुग्ध पान करनेसे वह अमृतकी समान गुण करता है। किन्तु नवीनज्वरमें पान कियाहुआ दुग्ध मनुष्यको विषकी समान नष्ट कर देताहै। चौगुने जलके साथ दूधको पकाकर जब केवल दूध मात्र शेष रहजाय तब उतारकर उसको पान करनेसे अथवा धारोष्ण (तत्कालका दुहा हुआ) या पकाकर शीतल कियाहुआ पीनेसे ज्वर शान्त होता है इसप्रकार पियाहुआ दूध ज्वरमें हितकारी है ॥ १ ॥ २ ॥

जीर्णज्वराणां सर्वेषां पयः प्रशमनं परम्।
पेयं तदुष्णं शीतं वा यथास्वमौषधैः श्रृतम् ॥ ३ ॥
कासाच्छ्वासाच्छिरःशूलात्पार्श्वशूलाच्चिरज्वरात्।
मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलीश्रृतं पयः ॥ ४ ॥

सब प्रकारके जीर्णज्वरोंमें ज्वरनाशक औषधियोंके साथ पकायाहुआ दूध गरम अथवा शीतल करके रोगीको इच्छानुसार पान काराना चाहिये। इससे ज्वर शमन होताहै। लघुपंचमूलकी औषधियोंके द्वारा दूधको सिद्ध करके पीनेसे खाँसी, श्वास, शिरःशूल, पार्श्वशूल और बहुत पुराने दिनोंका ज्वर नष्ट होताहै ॥ ३ ॥ ४ ॥

क्षीरपाकविधि।

द्रव्यादष्टगुण क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम्।
क्षीरावशेषः कर्त्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥ ५ ॥

क्षीरपाककी विधि यह है कि, जिस औषधिके साथ दुग्धपाक करना हो तो

उस औषधिसे अठगुना दूध और दूधसे चौगुना जल लेकर सबको एकत्र कर पकावे । जब पककर दूधमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे ॥५॥

त्रिकण्टकबलाव्याघ्री गुडनागरसाधितम् ।
वर्चोमूत्रविबन्धघ्नं शोथज्वरहरं पयः ॥ ६ ॥

गोखरू, खिरैंटी, कटेरी और सोंठ इन औषधियोंके द्वारा यथाविधि सिद्ध कियेहुए दूधमें गुड डालकर पानकरनेसे मल-मूत्रका अवरोध और सूजन सहित ज्वर दूर होता है ॥ ६ ॥

वृश्चीराबिल्ववर्षाभूः पयश्चोदकमेव च ।
पचेत्क्षीरावशिष्टन्तु तद्धि सर्वज्वरापहम् ॥ ७ ॥

सफेद पुनर्नवा, बेलकी छाल और लालपुनर्नवा ये सब औषधि समान भाग और सब मिलाकर दो तोले, दूध १६ तोले और जल ६४ तोले लेकर सबको एकत्रकर पकावे । जब पककर दूधमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । इस दूधको पानकरनेसे सर्वप्रकारके ज्वर शमन होते हैं ॥ ७ ॥

शीतं वोष्णं ज्वरे क्षीरं यथास्वमौषधैः शृतम् ।
एरण्डमूलसिद्धं वा ज्वरे सपरिकर्तृके ॥ ८ ॥

पित्तज्वरमें और वातपित्तज्वरमें शीतल दुग्ध तथा वातज्वर और वातकफ ज्वरमें उष्णदुग्ध वातनाशक औषधियोंके साथ पकाकर सेवन कराना चाहिये। एवं ज्वररोगीके गुदामें कतरनेकी समान पीडा होनेपर अण्डकी जडके साथ सिद्ध कियाहुआ दुग्ध पान कराना चाहिये ॥ ८ ॥

नासाज्वरमें आहवारि रस ।

क्षुद्रैला साभया कृष्णा लौहाभ्रखर्पराणि च ।
समभागं प्रकर्त्तव्यं द्विभागः पारदो मतः ॥ ९ ॥
सर्वमेकत्र सम्मर्द्य द्रोणपुष्परसेन च ।
वल्लमात्रं प्रदातव्यं पुनर्नवरसैर्युतम् ॥ १० ॥
प्लीहानं यकृतं शोथमग्निमान्द्यमरोचकम् ।
नासाज्वरं विशेषेण सर्वञ्च विषमज्वरम् ॥
आहवारिरसो ह्येष नाशयेदविकल्पतः ॥ ११ ॥

छोटी इलायची, हरड, पीपल, लोहा, अभ्रक और खपरिया ये प्रत्येक एक एक तोला और पारा दो तोले लेवे। सबको एकत्र द्रोणपुष्पीके रसमें खरल

करके दो २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे एक एक गोली पुनर्नवेके रसके साथ सेवन करनेसे यह आह्वारिनामकरस प्लीहा, यकृत्, शोथ, अग्निकी मंदता, अरुचि, नासाज्वर और विशेषकर सब प्रकारके विषमज्वरोंको निस्सन्देह नष्ट करता है ॥ ९-११ ॥

गन्धककज्जलीविधि।

कण्टकारी सिन्धुवारस्तथा पूतिकरञ्जकम्।
एतेषां रसमादाय कृत्वा खर्परखण्डके ॥ १२ ॥
प्रक्षेप्यं गन्धकं तत्र ज्वालां मृद्वग्निना दहेत्।
गन्धके स्नेहमापन्ने तत्समं पारदं क्षिपेत् ॥ १३ ॥
मिश्रीकृत्य ततो द्वाभ्यां द्रुतं तमवतारयेत्।
आमर्दयेत्तथा तत्तु यथा स्यात्कज्जलप्रभम् ॥ १४ ॥
ततस्तु रक्तिकामस्य माषकं जीरकस्य च।
माषैकं लवणस्यापि पर्णे कृत्वा निधापयेत् ॥ १५ ॥
ज्वरे त्रिदोषजे घोरे जलमुष्णं पिबेदनु।
छर्द्यां शर्करया दद्यात् सामे दद्यात्तथा गुडम् ॥ १६ ॥
क्षये छागभवं क्षीरं प्रदद्यादनुपानकम्।
रक्तातिसारे कुटजमूलवल्कलजं रसम् ॥ १७ ॥
रक्तवान्तौ तथा दद्यादुदुम्बरभवं जलम्।
सर्वव्याधिहरश्चायं गन्धकः कज्जलीकृतः ॥
आयुर्वृद्धिकरश्चैव मृतश्चापि प्रबोधयेत् ॥ १८ ॥

कटेरी, सिम्हालू और दुर्गन्धकरञ्ज इनके स्वरसको समान भाग लेकर एक मिट्टीके नवीन पात्र (खीपडे) में रखकर उसमें गन्धकको डाल मन्द मन्द अग्निसे पकावे। जब गन्धक अच्छे प्रकारसे पिघलजाय तब उसमें गन्धकके समान भाग पारा डालदेवे फिर जब दोनों मिलकर एकमएक होजायँ तब चूल्हेपरसे शीघ्र उतारकर लोहेके दण्डेसे खूब खरलकरके कज्जलीसमान बनालेवे। पश्चात् इस कज्जलीका एकएक रत्तीकी मात्रासे एकएक माशा जीरे और सैंधानमकके चूर्णके साथ एक पानमें रखकर रोगीको सेवन करावे। भयंकर सन्निपातज्वरमें इसपर गरम जलका अनुपान करे। इस कज्जलीको वमन

रोगमें खाँडके शर्बतके साथ और आमदोषमें पुरानेगुडके साथ देवे। एवं क्षयमें बकरीका दूध, रक्तातिसारमें कुडेकी छालका रस या काढा और रक्तकी वमन होनेपर गूलरके काथका अनुपान करे। यह कज्जली सर्वप्रकारकी दुस्तर व्याधियोंको हरतीहै एवं आयुकी वृद्धिकर मृतपुरुषकोभी जीवितकरतीहै ॥१२-१८

ज्वरबलि।

ज्वरामयगृहीतस्य मुष्टिभिर्नवभिः कृतम्।
तण्डुलैरोदनं तेन कुर्यात् पुत्तलकं शुभम् ॥ १९ ॥
तं हारिद्रावलिप्ताङ्गं चतुःपीतध्वजान्वितम्।
हरिद्रारसपूर्णाभिः पुटिकाभिश्चतसृभिः ॥ २० ॥
मण्डितं गन्धपुष्पाद्यैरवकीर्य्य विसर्ज्जयेत्।
एवं दिनत्रयं कुर्यात् ज्वररोगोपशान्तये ॥ २१ ॥

"ओदनेन पुत्तलिकां निर्माय वीरणचाचिकायां संस्थाप्य हरिद्राभिरवलिप्य चतुःपीतपताकाभिरलंकृत्य गन्धपुष्पाद्यैरवकीर्य्य हरिद्रारसपूर्णाश्चतस्रः पुटिकाश्चतुष्कोणे संस्थाप्य विष्णुर्नमोऽद्येत्यादिना संकल्प्य ज्वरं ध्यात्वा समावाह्य नवकपर्द्दकाक्रीडगन्धपुष्पधूपदीपादिभिः सम्पूज्य सन्ध्यासमये ज्वरितं निर्मञ्छ्य मन्त्रमिमं पठित्वा दिनत्रयबलिं दद्यात्" मन्त्रो यथा-"ॐ नमो भगवते गरुडासनाय त्र्यम्बकाय स्वस्त्यस्तु वस्तुतः स्वाहा। ॐ कँ टँ पँ शँ वैनतेयाय नमः। ॐ ह्रीं क्षः क्षेत्रपालाय नमः। ॐ ह्रीं ठँ ठँ भो भो ज्वर शृणु शृणु हल हल गर्ज्ज गर्ज्ज ऐकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं चातुर्थिकं अर्द्धमासिकं मासिकं नैमेषिकं मौहूर्त्तिकं फट् फट् ह्रीं फट् फट् हल हल मुञ्च मुञ्च भूम्यां गच्छ स्वाहा।" इति पठित्वा एकवृक्षे श्मशाने चतुष्पथे वा विसर्ज्जयेत्। एतत् कर्म्म वास्तुशुचिदक्षिणप्रदेशे कुर्य्यात् ॥ २२ ॥

ज्वररोगीके हाथकी नौ मुट्ठि परिमाण चावल लेकर और भात बनाकर उसके सुन्दर पुतला बनावे। उसको खसके आसनपर स्थापन करके उसपर हल्दीका लेपकर दे और उसके चारों ओर पीले वस्त्रकी चार झंडियें लगावे।

फिर उस पुतलेके सर्वांगमें गन्ध पुष्पादि चढाकर हल्दीके रससे भरेहुए चार घडे उसके चारों कोनोंमें रखदेवे । फिर "ॐ विष्णु ३ नमः परमात्मनेऽद्य" इत्यादि संकल्प कर और ज्वरकी मूर्त्तिका ध्यान तथा आवाहन करके उसमें नौ कौडियें लगाकर गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीपादिके द्वारा उसकी यथा-विधि पूजा करे और सायंकालके समय उस पुतलेको रोगीके ऊपर उतारकर उपर्युक्त 'ॐ नमो भगवते' इत्यादि मन्त्रको पढकर बलि देवे। इस प्रकार यह कर्म रोगीके रहनेके घरके दक्षिणओर पवित्रस्थानमें सन्ध्याके समय क्रमशः ३ दिन तक करे । पश्चात् उस मूर्त्तिको किसी एक वृक्षके नीचे या श्मशानमें अथवा चौराहेमें विसर्जन करदेवे ॥ १९-२२ ॥

नक्षत्रजनितरोगफल ।

कृत्तिकायां यदा व्याधिरुत्पन्नो भवति स्वयम् ।
नवरात्रं भवेत् पीडा त्रिरात्रं रोहिणीषु च ॥ २३ ॥
मृगशीर्षे पञ्चरात्रमार्द्रायां मुच्यतेऽसुभिः ।
पुनर्वसौ तथा पुष्ये सप्तरात्रेण मोचनम् ॥ २४ ॥
नवरात्रं तथाऽऽश्लेषे श्मशानान्तं मघासु च ।
द्वौ मासौ पूर्वफाल्गुन्यामुत्तरासु त्रिपञ्चकम् ॥ २५ ॥
हस्ते च सप्तमे मोक्षश्चित्रायामर्द्धमासकम् ।
मासद्वयं तथा स्वात्यां विशाखे दिनविंशतिः ॥२६॥
मित्रे चैव दशाहानि ज्येष्ठायामर्द्धमासकम् ।
मूलेन जायते मोक्षः पूर्वाषाढे त्रिपञ्चकम् ॥ २७ ॥
उत्तरे दिनविंशत्या द्वौ मासौ श्रवणे तथा ।
धनिष्ठायामर्द्धमासो वारुणे च दशाहकम् ॥ २८ ॥
पूर्वभाद्रपदे देव्येकोनविंशति वासरम् ।
त्रिपक्षश्चाहिर्बुध्ने च रेवत्यां दशरात्रकम् ॥ २९ ॥
अहोरात्रं तथाऽश्विन्यां भरण्यान्तु गतायुषम् ।
एवं क्रमेण जानीयान्नक्षत्रेषु यथोचितम ॥ ३० ॥

कृत्तिका नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ रोग ९ दिन, रोहिणी नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ रोग ३ दिन और मृगशिरा नक्षत्रमें उत्पन्नहुआ रोग ५ दिनतक रहता है

एवं आर्द्रा नक्षत्रमें रोगके उत्पन्न होनेपर रोगी मृत्युको प्राप्त होताहै। पुनर्वसु और पुष्यनक्षत्रमें उत्पन्नहुआ रोग सातदिनमें एवं आश्लेषानक्षत्रमें उत्पन्न हुआ रोग ९ दिनमें दूर होताहै। मघानक्षत्रमें रोगके उत्पन्न होनेपर रोगी मरजाताहै। पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रमें उत्पन्न हुआ रोग २ महीनेतक, उत्तराफाल्गुनीमें १५ दिनतक, हस्तनक्षत्रमें ७ दिनतक, चित्रामें १५ दिनतक, स्वातीमें २ मासतक, विशाखामें २० दिनतक, अनुराधामें १० दिनतक और ज्येष्ठानक्षत्रमें १५ दिनतक रहता है। मूलनक्षत्रमें रोग होनेपर रोगी रोगसे मुक्त नहीं होता और पूर्वाषाढा नक्षत्रमें रोग होनेपर १५ दिनमें, उत्तराषाढा नक्षत्रमें २० दिनमें, श्रवण नक्षत्रमें दो महीने, धनिष्ठा नक्षत्रमें १५ दिन, शतभिषा नक्षत्रमें १० दिन, पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रमें १९ दिन, उत्तराभाद्रपद नक्षत्रमें ४५ दिन, रेवती नक्षत्रमें १० दिनमें, अश्विनी और भरणी नक्षत्रमें रोग उत्पन्न हो तो रोगीको एक दिनरातमें मृत्यु हो जातीहै। इस क्रमसे नक्षत्रोंमें उत्पन्नहुए रोगके यथोचित फलाफलको जानना चाहिये॥ २३-३०॥

ज्वरमुक्तके लक्षण।

स्वेदो लघुत्वं शिरसः कण्डूपाकौ मुखस्य च।
क्षवथुश्चान्नलिप्सा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम्॥ ३१॥

पसीनेका आना, शरीरमें हल्कापन, शिरमें खुजली, मुखपर फुंसियोंका निकलना, छींकोंका आना और भोजनमें इच्छा होना ये सब लक्षण ज्वरके दूर होनेके हैं॥ ३१॥

ज्वरमुक्तरोगीको वर्ज्जनीयपदार्थ।

व्यायामश्च व्यवायं च स्नानं चंक्रमणानि च।
ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्न बलवान् भवेत्॥ ३२॥

ज्वर दूरहोनेके पश्चात् रोगी जबतक अच्छे प्रकारसे बलवान् न होजाय तबतक परिश्रम, स्त्रीसहवास, स्नान और अधिक भ्रमण ये सब त्यागने चाहिये ३२

इति भैषज्यरत्नावल्यां दुग्धप्रकरणम्।

अथ पथ्यापथ्यविधि।

नवीनज्वरमें अपथ्य।

स्नानं विरेकं सुरतं कषायं व्यायाममभ्यञ्जनमह्नि निद्राम्।
दुग्धं घृतं वैदलमामिषं च तक्रं सुरां स्वादु गुरु द्रवञ्च॥
अन्नं प्रवातं भ्रमणं च क्रोधं त्यजेत्प्रयत्नात्तरुणज्वरार्त्तः॥१॥

स्नान, विरेचन, मैथुन, कषायरसवालेपदार्थ, व्यायाम (कसरत आदि परिश्रम) तैलकी मालिश, दिनमें सोना, दूध, घी, दाल, मांस, मट्ठा, मदिरा, मधुररसवाले पदार्थ, भारी और पतले पदार्थ, अन्न, पूर्वदिशाकी वायु अथवा प्रबलवायु इनका सेवन, भ्रमण और क्रोध इन सबको नवीनज्वरवाला रोगी अवश्य त्याग देवे॥ १॥

मध्यज्वरमें पथ्य।

पुरातनाः षष्टिकशालयश्च वार्त्ताकुशोभाञ्जनकारवेल्लम्।
वेत्राग्रमोचाथफलं पटोलं कर्कोटकं मूलकपूतिके च॥ २॥
मुद्गैर्मसूरैश्चणकैः कुलत्थैर्मकुष्ठकैषां विहितश्च यूषः।
पाठामृतावास्तुकतण्डुलीयजीवन्तिशाकानिच काकमाची।
द्राक्षाकपित्थानि च दाडिमानि वैकंकतान्येव पचेलिमानि।
लघूनिसात्म्यानि च भेषजानिपथ्यानि मध्यज्वरिणाममूनि

पुराने साठीके चावल और शालिधानोंके चावल, बैंगन, सहिंजना, करेला, बेंतके अंकुर, केलेका मोचा अथवा फल, परवल, ककोडा, मूली, पोईका साग, मूंग, मसूर, चने, कुलथी और मोठ इनका यूष, एवं पाढ, गिलोय, बथुएका शाक, चौलाई, जीवन्तीका शाक, मकोय, दाख, कैथ, अनार और कण्टाई आदि पकेहुए फल एवं हल्की और सात्म्य (स्वभावानुकूल) औषधियाँ मध्यज्वरमें हितकर हैं॥ २-४॥

पुराने ज्वरमें पथ्य।

विरेचनं छर्द्दनमञ्जनञ्च नस्यञ्च धूमोऽप्यनुवासनञ्च।
शिराव्यधः संशमनं प्रदेहोऽभ्यङ्गावगाहःशिशिरोपचारः ५
एणः कुलिङ्गो हरिणो मयूरो लावःशशस्तित्तिरिकुक्कुटौ च।
क्रौञ्चः कुरङ्गः पृषतश्चकोरः कपिञ्जलो वर्त्तककालपुच्छौ॥
गवामजायाश्च पयो घृतञ्च हरीतकी पर्वतनिर्झराम्भः।

एरण्डतैलं सितचन्दनं च द्रव्याणि सर्वाणि पुरेरितानि ।
ज्योत्स्नाप्रियालिंगनमप्ययंस्याद्गणःपुराणज्वरिणांसुखाय७

विरेचन (जुल्लाब) वमन, अंजन, नस्य, धूम्रपान, अनुवासनवस्ती, शिराका वेधना, संशमन औषधियोंका सेवन, प्रलेप, तैलादिकी मालिश, जलमें घुसकर स्नान करना, सर्व प्रकारके शीतल उपचार, कालाहिरन, चिडा, हरिण, मोर, लवा, खरगोश, तीतर, मुर्गा,(एक प्रकारका बगुला,)एक विशेष प्रकारका हिरन–चितकबराहिरन, चकोर, चातक, बत्तक और कालपुच्छ इन सब पशुपक्षियोंका मांस, या मांसरस एवं गौ और बकरीका दूध, घी, हरड, पहाडी झरनोंका जल, अण्डीका तैल, सफेद चंदन और पहिले कहेहुए सब पदार्थ तथा निर्मल चन्द्रमाकी चांदनी सुन्दरस्त्रीका आलिंगन आदि पुराने ज्वरमें हितकर हैं ॥ ५–७ ॥

ज्वरमें अपथ्य ।

वमिवेगं दन्तकाष्ठमसात्म्यमतिभोजनम् ।
विरुद्धान्यन्नपानानि विदाहीनि गुरूणि च ॥ ८ ॥
दुष्टाम्बु क्षारमम्लानि पत्रशाकं विरूढकम् ।
नलदाम्बु च ताम्बूलं कालिन्दं लैकुचं फलम् ॥ ९ ॥
ओडीमत्स्यश्च पिण्याकं छत्रकं पिष्टवैकृतम् ।
अभिष्यन्दीनि चैतानि ज्वरितः परिवर्ज्जयेत् ॥१०॥
व्यायामश्च व्यवायं च स्नानं चंक्रमणानि च ।
ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्नो बलवान् भवेत् ॥ ११ ॥

वमनके वेगको रोकना, दतौन करना, अपने स्वभावके विरुद्ध भोजन अथवा अत्यन्त भोजन, विरुद्ध (प्रकृति, देश और कालके प्रतिकूल) दाह्कारक और गुरुपाकी अन्नपान, दूषितजल, खारी और खट्टेरसवाले पदार्थ, पत्तोंवाले और अंकुरोंवाले शाक, नीम, पान, तरबूज, निंबूकेफल ओडीनामक मछली, तिलकुट, छत्रक (साँपकी छतरी) का शाक, पिट्ठीके बने (पकान्न, मिष्टान्नादि) पदार्थ, विकृत और अभिप्यन्दकारक (शरीरके स्रोतोंको बन्द करनेवाले) पदार्थोंको ज्वररोगी त्यागदेवे । एवं परिश्रम, स्त्रीप्रसंग,स्नान और भ्रमणादिकर्मोंको ज्वररोगी जबतक अच्छे प्रकारसे बलवान् न होजाय तबतक कदापि न करे ॥ ८–११ ॥

आरोग्यस्नानकाल ।

धनिष्ठा श्रवणा स्वाती ज्येष्ठा शतभिषा तथा ।
रविमन्दभौमवाराश्चन्द्रोऽशुभविवर्जितः ॥ १२ ॥
केन्द्रस्थाश्चाशुभाः शस्ता व्यतीपातादिवासराः ।
तिथिर्न शस्ता प्रतिपत्तृतीया नवमी तथा ॥ १३ ॥
स्नानाय रोगमुक्तानां दशमी च त्रयोदशी ।
बुधेन्दुगुरुशुक्राणां वाराः स्नाने न शोभनाः ॥
रोगान्मुक्तस्य नाश्लेषा रोहिणी भद्रदायिनी ॥ १४ ॥

धनिष्ठा, श्रवण, स्वाती, ज्येष्ठा और शतभिषा इन नक्षत्रों एवं रविवार, शनिवार और मंगलवारोंमें यदि चन्द्रमा शुभ हो और केन्द्रस्थानमें न गया हो तो रोगीको रोगमुक्त होनेपर आरोग्यस्नान कराना चाहिये । इसमें व्यतीपातादिके दिनभी श्रेष्ठ मानेगये हैं । प्रतिपदा, तृतीया, नवमी, दशमी और त्रयोदशी इन तिथियों तथा बुध, सोम, बृहस्पति और शुक्र इन वारोंको रोगसे मुक्तहुए रोगीको स्नान करानेके लिये त्यागदेवे । एवं आश्लेषा रोहिणी और भद्रायुक्ततिथि भी आरोग्यस्नान करनेवाले रोगीके लिये वर्जित हैं ॥१२-१४॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां ज्वरचिकित्सा ।

अथ ज्वरातिसार-चिकित्सा ।

पित्तज्वरे पित्तभवोऽतिसार-
स्तथातिसारे यदि वा ज्वरः स्यात् ।
दोषस्य दूष्यस्य समानभावा-
ज्ज्वरातिसारः कथितो भिषग्भिः ॥ १ ॥
ज्वरातिसारयोरुक्तं भेषजं यत् पृथक् पृथक् ।
न तन्मिलितयोः कुर्य्यादन्योन्यं वर्द्धयेद्यतः ॥ २ ॥
प्रायो ज्वरहरं भेदिस्तम्भनं त्वतिसारनुत् ।
अतोऽन्योन्यविरुद्धत्वाद्वर्द्धनं तत्परस्परम् ॥ ३ ॥
ततस्तौ प्रतिकुर्वीत विशेषोक्तैश्चिकित्सितैः ।
ज्वरातीसारिणामादौ कुर्य्याल्लङ्घनपाचने ॥ ४ ॥

प्रायस्तावामसम्बन्धं विना न भवतो यतः।
ज्वरातिसारे पेयादिक्रमः स्याल्लंघिते हितः॥
ज्वरातिसारी पेयां वा पिबेत्साम्लां शृतां नरः॥ ५॥

यदि पैत्तिकज्वरमें पित्तकी गरमीके कारण अतिसार (दस्त) हों अथवा अतिसाररोगमें ज्वर होजाय तो दोष और दूष्यकी समानता होनेके कारण इससे मिलित रोगको वैद्यलोग ज्वरातिसार कहते हैं. ज्वर और अतिसार रोगमें जो जो पृथक् पृथक् औषधियाँ कही हैं, ज्वरातिसाररोगमें वे ओषधियाँ मिलाकर नहीं देनी चाहिये। कारण—वे आपसमें विरोधी हैं अर्थात् ज्वरनाशक औषधियाँ प्रायः भेदक होती हैं और अतिसार-नाशक औषधियां प्रायः मलस्तम्भक होती हैं। इसलिये दोनों प्रकारकी औष-धियाँ परस्पर विरुद्ध गुणोंवाली होनेसे एक दूसरे रोगोंको बढाती हैं। अत-एव ज्वरातिसाररोगमें उक्त दोनों प्रकारकी औषधियोंका प्रतिकार कर जो विशेष चिकित्सा कही है,उसीके अनुसार वैद्योंको चिकित्सा करनी चाहिये। ज्वरातिसारके रोगीको पहिले लंघन करावे फिर पाचकऔषधि देवे। कारण, दोनों रोग प्रायः आमरसके बिना उत्पन्न नहीं होते हैं। ज्वरातिसारमें लंघन करानेके बाद पेयादि देना हितकर है। इसमें रोगीको अनारआदि खट्टेरस-वाले पदार्थोंके रसके द्वारा पेया बनाकर पान करानी चाहिये॥ १–५॥

ह्रीबेरादि।

ह्रीबेरातिविषामुस्तबिल्वनागरधान्यकैः।
पिबेत् पिच्छाविबन्धघ्नं शूलदोषामपाचनम्॥
सरक्तं हन्त्यतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम्॥ ६॥

सुगन्धवाला, अतीस, नागरमोथा, बेलकी जड, सोंठ और धनियाँ इनका क्वाथ सेवन करनेसे मलकी पिच्छिलता, विबन्ध और शूल नष्ट होते हैं तथा आमदोषका परिपाक हो कर रक्तातिसार, ज्वरातिसार अथवा केवल अति-सार रोग दूर होताहै॥ ६॥

पाठादि।

पाठामृतापर्पटमुस्तविश्वाकिराततिक्तेन्द्रयवान् विपच्य।
पिबन् हरत्येव हरेत सर्वान् ज्वरातिसारानपि दुर्निवारान्॥

पाढ, गिलोय, पित्तपापडा, नागरमोथा, सोंठ, चिरायता और इन्द्रजौ इनका यथाविधि क्वाथ बनाकर पान करनेसे तत्कालही दुस्तर ज्वरातिसार नष्ट होतेहैं

नागरादि ।

नागरातिविषामुस्तभूनिम्बामृतवत्सकैः ।
सर्वज्वरहरः क्काथः सर्वातीसारनाशनः ॥ ८ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय और कुडेकी छाल इनका क्काथ सर्वप्रकारके अतिसारको नष्ट करताहै ॥ ८ ॥

उशीरादि ।

उशीरं बालकं मुस्तं धन्याकं विश्वभेषजम् ।
समङ्गा धातकी लोध्रं बिल्वं दीपनपाचनम् ॥ ९ ॥
हन्त्यरोचकपिच्छामविबन्धं सातिवेदनम् ।
सशोणितमतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् ॥ १० ॥

खस, सुगन्धवाला, नागरमोथा, धनियाँ, सोंठ, बाराहक्रान्ता, (लज्जावन्ती) धायकेफूल, लोध और बेलकी गिरी इनका क्काथ दीपन और पाचन है । इस क्काथको पान करनेसे अरुचि, पिच्छिलता, मलबद्धता, पीडासहित रक्तातिसार, ज्वररहित या ज्वरसहित अतिसार दूर होताहै ॥ ९ ॥ १० ॥

शुण्ठीदशमूल ।

दशमूलीकषायेण विश्वमक्षसमं पिबेत् ।
ज्वरे चैवातिसारे च सशोथे ग्रहणीगदे ॥ ११ ॥

अतिसार और शोथयुक्त संग्रहणीरोगमें दशमूलके क्काथमें थोडा सोंठका चूर्ण डालकर पानकरनेसे शीघ्र लाभ होताहै ॥ ११ ॥

गुडूच्यादि ।

गुडूच्यतिविषाधान्यशुण्ठीबिल्वाब्दबालकैः ।
पाठाभूनिम्बकुटजचन्दनोशीरपद्मकैः ॥ १२ ॥
कषायः शीतलः पेयो ज्वरातीसारशान्तये ।
हल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहशान्तिकृत् ॥ १३ ॥

गिलोय, अतीस, धनियाँ, सोंठ, बेलकी गिरी, नागरमोथा, सुगन्धवाला, पाढ, चिरायता, कुडेकी छाल, लालचन्दन, खस और पद्माख इनका शीतल क्काथ पानकरनेसे ज्वरातिसार, उबकाई, अरुचि, वमन, प्यास और दाह शान्त होती है ॥ १२ ॥ १३ ॥

कलिङ्गादि ।

कालिङ्गातिविषा शुण्ठी किराताम्बु यवासकम् ।
ज्वरातीसारसन्तापं नाशयेदविकल्पतः ॥ १४ ॥

इन्द्रजौ, अतीस, सोंठ, चिरायता, सुगन्धवाला और धमासा इनका काथ पान करनेसे ज्वर और अतिसार निस्सन्देह दूर होताहै ॥ १४ ॥

घनजलादि ।

घनजलादिपाठातिषापथ्योत्पलधान्यरोहिणीविश्वैः ।
सेन्द्रयवैः कृतमम्भः सातीसार ज्वरं जयति ॥ १५ ॥

नागरमोथा, सुगन्धवाला, पाढ, अतीस, हरड, नीलकमल, धनियाँ, कुटकी, सोंठ, इन्द्रजौ इनका काथ बनाकर पानकरनेसे अतिसारसाहितज्वर दूर होताहै १५

धान्यनागरादि ।

धान्यनागरबिल्वाब्दबालकैः साधितं जलम् ।
आमशूलहरं ग्राह्यं दीपनं पाचनं परम् ॥ १६ ॥

धनियाँ, सोंठ, बेलकी गिरी, नागरमोथा और सुगन्धवाला इनका बनाया हुआ काथ आम और शूलको हरनेवाला, संग्राही एवं दीपन और पाचकहै॥१६

बिल्वादि ।

बिल्वबालकभूनिम्बगुडूचीमुस्तवत्सकैः ।
कषायः पाचनः शोथज्वरातीसारनाशनः ॥ १७ ॥

बेलगिरी, सुगन्धवाला, चिरायता, गिलोय, नागरमोथा और इन्द्रजौ इनका काथ आमपाचक एवं सूजन और ज्वरातिसारको हरनेवाला है ॥ १७ ॥

कुटजादि ।

कुटजो नागरं मुस्तममृतातिविषास्तथा ।
एभिः कृतं पिबेत्काथं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ १८ ॥

कुडेकी छाल, सोंठ, नागरमोथा, गिलोय और अतीस इनके द्वारा बनाया हुआ काथ पानकरनेसे ज्वरातीसार शमन होताहै ॥ १८ ॥

पाठादि ।

पाठेन्द्रभूनिम्बघनामृतानां सपर्पटैः क्वाथ इहैव शस्तः ।
आमातिसारञ्च जयेद्द्रुतं वा ज्वरेण युक्तं सहजञ्चतीव्रम्॥१९

पाढ, इन्द्रजौ, चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और पित्तपापडा इनका काथ सेवनकरनेसे ज्वरयुक्त तीव्र और सहज आमातिसाररोग तत्काल नष्ट होताहै॥

किरातादि।

किराताब्दामृताविश्वचन्दनोदीच्यवत्सकैः।
शोथातीसारशमनं विशेषाज्ज्वरनाशनम् ॥ २० ॥

चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, लालचन्दन, सुगन्धवाला और इन्द्रजौ इनका काथ सूजन, अतिसार और विशेषकर ज्वरको नष्ट करता है ॥२०॥

विडङ्गादि।

विडङ्गातिविषामुस्तं पाठा दारु कलिङ्गकम्।
मरिचेन समायुक्तं शोथातीसारनाशनम् ॥ २१ ॥

वायविडङ्ग, अतीस, नागरमोथा, पाढ, देवदारु और इन्द्रजौ इनके काथमें कालीमिरचोंका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे सूजन और अतिसार दूर होता है २१

शुण्ठ्यादि।

शुण्ठी बालकं मुस्तं बिल्वं पाठा विषा च धान्यानि।
पानमरुचिच्छर्दिज्वरातिसारं विनाशयन्ति ॥ २२ ॥

सोंठ, सुगन्धवाला, नागरमोथा, बेलगिरी, पाढ, अतीस और धनियाँ इनका काथ पानकरनेसे अरुचि, वमन, ज्वर और अतिसार नष्ट होते हैं ॥ २२ ॥

वत्सकादि।

वत्सकश्च सुरदारु रोहिणी धान्यबिल्वमगधा त्रिकण्टकम्।
निम्बबीजगजपिप्पलीवृकीक्काथ एव ज्वर-सारमौषधम् ॥

इन्द्रजौ, देवदारु, कुटकी, धनियाँ, बेलकी गिरी, पीपल, गोखुरू, नीमके बीज, गजपीपल और पाढ इनका काथ ज्वर और अतिसारको नष्ट करनेकी उत्तम औषधि है ॥ २३ ॥

भूनिम्बादि।

भूनिम्बबिल्वबालकगुडूचीमुस्तवत्सकैः।
कषायः पाचनः शोथः ज्वरातीसारनाशनः ॥ २४॥

चिरायता, बेलकी गिरी, सुगन्धवाला, गिलोय, नागरमोथा और इन्द्रजौ इनका काथ पाचक और शोथ तथा ज्वरातिसारको दूर करनेवाला है ॥ २४ ॥

कणादि ।

कणाकरिकणालाजक्काथो मधुसितायुतः ।
पीतो ज्वरातिसारस्य तृष्णामाशु विनाशयेत् ॥२५॥

पीपल, गजपीपल और खीलें इनका काथ बनाकर शीतल करके उसमें शहद और मिश्री डालकर पीनेसे ज्वरातिसाररोगीकी तृषा शमन होती है ॥ २५ ॥

पञ्चमूल्यादि ।

पञ्चमूलीबलाबिल्वगुडूचीमुस्तनागरैः ।
पाठाभूनिम्बह्रीबेरकुटजत्वक्फलैः शृतम् ॥ २६ ॥
हन्ति सर्वानतीसारान् ज्वरदोषं वमिं तथा ।
सशूलोपद्रवं कासं श्वासं हन्यात्सुदारुणम् ॥ २७ ॥
पञ्चमूली तु सामान्या योज्या पैत्ते कनीयसी ।
महती पञ्चमूली तु वात्तश्लेष्मातुरे हिता ॥ २८ ॥

शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बडी कटेरी, कटेरी, गोखरू, खिरैंटी, बेलकी गिरी, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ, पाढ, चिरायता, सुगन्धवाला, कुडेकी छाल और इन्द्रजौ इन औषधियोंका यथाविधि काथ बनाकर पान करनेसे समस्त अतिसार, ज्वर, वमन, शूल आदि उपद्रवोंसहित खाँसी और दारुण श्वासरोग शमन होता है । पित्तकी अधिकता होनेपर इसमें लघुपंचमूल और वाताधिक्यमें वृहत्पञ्चमूलका काथ हितकर है ॥ २६–२८ ॥

बृहत्पञ्चमूल्यादि ।

पञ्चमूली शृङ्गवेरशृङ्गाटकञ्चटं घनम् ।
जम्बुदाडिमपत्रञ्च बलाबालं गुडूचिका ॥ २९ ॥
पाठा बिल्वं समंगा च कुटजत्वक्फलं तथा ।
धान्यकं धातकीक्काथं विषाजीरकसंयुतम् ॥ ३० ॥
पिबेत् ज्वरातिसारे च सरक्ते वाप्यरक्तके ।
अपियोगशतैस्त्यक्ते चासाध्ये सर्वरूपके ॥ ३१ ॥

बेलकी गिरी, स्योनापाठा, कुंभेर, पाढल, अरणी, सोंठ, सिंघाडेके पत्ते, जलचौलाई, नागरमोथा, जामुनके पत्ते, खिरैंटी, सुगन्धवाला, गिलोय, पाढ, बेल, वाराहक्रान्ता (लज्जावन्ती) कुडेकी छाल, इन्द्रजौ, धनियाँ और धायके फूल इनके काथमें अतीस और जीरेका थोडा चूर्ण डालकर पान करनेसे ज्वराति-

सार, रक्तातिसार और केवल अतिसाररोगमें आरोग्य लाभ होता है। जिसमें सैकडों औषधियोंसे भी कुछ लाभ नहीं होता ऐसा असाध्य अतिसार रोग भी इससे दूर होता है ॥ २९-३१ ॥

धान्यशुण्ठी ।

धान्यकं विश्वसंयुक्तमामघ्नं वह्निदीपनम् ।
वातश्लेष्मज्वरहरं शूलातीसारनाशनम् ॥ ३२ ॥

धनियाँ और सोंठका क्वाथ आमनाशक, अग्निप्रदीपक, वातश्लेष्मज्वर, शूल और अतिसारको नष्टकरनेवाला है ॥ ३२ ॥

बिल्वपञ्चक ।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बलाबिल्वं सदाडिमम् ।
बिल्वपञ्चकमित्येतत्क्वाथं कृत्वा प्रदापयेत् ॥
अतीसारे ज्वरे छर्द्यां शस्यते बिल्वपञ्चकम् ॥३३॥

शालपर्णी, पृश्निपर्णी, खिरैंटी, बेलगिरी और अनारके छिलके इन औषधियोंके समूहको बिल्वपंचक कहते हैं । इस बिल्वपंचकका क्वाथ बनाकर अतिसार, ज्वर और वमनरोगमें पान कराना चाहिये ॥ ३३ ॥

उत्पलषट्क ।

पृश्निपर्णीबलाबिल्वं धनिकानागरोत्पलैः ।
ज्वरातिसारयोर्वापि पिबेत्साम्लं शृतं नरः ॥ ३४ ॥

पृश्निपर्णी, खिरैंटी, बेलकी गिरी, धनियाँ, सोंठ और कमोदिनी (नीलोफर) इनके क्वाथमें अनारका रस डालकर पान करनेसे ज्वर और अतिसार रोग नष्ट होता है ॥ ३४ ॥

उत्पलाद्यचूर्ण ।

उत्पलं दाडिमत्वक् च पद्मकेशरमेव च ।
पिबेत्तण्डुलतोयेन ज्वरातीसारशान्तये ॥ ३५ ॥

ज्वर और अतिसारको शमन करनेके लिये नीलोत्पल (नीलोफर) अनारके बक्कल और कमलकेशर इनका चूर्ण बनाकर चावलोंके जलके साथ पान करना चाहिये ॥ ३५ ॥

व्योषाद्यचूर्ण ।

व्योषं वत्सकबीजञ्च निम्बभूनिम्बमार्कवम् ।
चित्रकं रोहिणीं पाठां दार्वीमतिविषां समम् ॥

श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वं तत्तुल्या वत्सकत्वचः ॥ ३६ ॥
सर्वमेकत्र संयोज्य पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥
सक्षौद्रं वा लिहेदेतत्पाचनं ग्राहि भेषजम् ।
तृष्णारुचिप्रशमनं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ ३७ ॥
प्रमेहं ग्रहणीदोषं गुल्मं प्लीहानमेव च ।
कामलां पाण्डुरोगं च श्वयथुञ्च विनाशयेत ॥ ३८ ॥

सोंठ, पीपल, मिर्च, इन्द्रजौ, नीमकी छाल, चिरायता, भाँगरा, चीतेकी जड, कुटकी, पाढ, दारुहल्दी और अतीस इनको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे और सब चूर्णकी बराबर भाग कुडेकी छालका चूर्ण लेकर सबको एकत्र मिलालेवे। इस चूर्णको तीन चार माशेकी मात्रासे चावलोंके जलके साथ पीनेसे या शहदके साथ चाटनेसे तृष्णा, अरुचि, ज्वरातिसार, प्रमेह, ग्रहणी, गुल्म, प्लीहा, कामला, पाण्डुरोग और सूजन आदिरोग नष्ट होते हैं। यह चूर्ण, पाचक और ग्राह्य है ॥ ३६-३८ ॥

कलिंगादिगुटिका ।

कलिंगबिल्वनिम्बाम्रं कपित्थं सरसाञ्जनम् ।
लाक्षा हरिद्रे ह्रीबेरं कट्फलं शुकनासिकाम् ॥ ३९ ॥
लोध्रं मोचरसं शंखं धातकी वटशुंगकम् ।
पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन वटकानक्षसम्मितान् ॥ ४० ॥
छायाशुष्कान् पिबेत् क्षिप्रं ज्वरातीसारशान्तये ।
रक्तप्रसाधना ह्येते शूलातीसारनाशनाः ॥ ४१ ॥

इन्द्रजौ, बेलगिरी, नीमकी छाल, आमकी गुठैलीकी मींग, कैथके पत्ते, रसौत, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, सुगन्धवाला, कायफल, अरलूकी छाल, लोध, मोचरस, शंखभस्म, धायके फूल, बडके अंकुर इन सबको समान भाग लेकर चावलोंके जलके साथ पीसकर दो तोलेकी गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे। इनको सेवनसे ज्वरातिसार, रक्तातिसार शूलसंयुक्त अतीसार नष्टहोता है ॥ ३९-४१ ॥

कुटजावलेह ।

कुटजत्वक्पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
तेन पादावशेषेण शर्कराप्रस्थकं पचेत ॥ ४२ ॥

ततो लेहे घनीभूते चूर्णानीमानि दापयेत्।
लवंगं जीरकं मुस्तं धातकी बिल्वबालकम् ॥ ४३ ॥
एला पाठा त्वचं शृंगी जातीफलमधूरिका।
शक्रकातिविषा क्षारं काकोली च रसाञ्जनम् ॥४४॥
शाल्मली वेष्टकं यष्टी समंगा रक्तचन्दनम्।
वटशुंगं खादिरश्च जम्ब्वाम्रं पल्लवं तथा ॥ ४५ ॥
एषामक्षसमं चूर्णं प्रक्षिपेत् पाकविद्भिषक्।
सिद्धेऽवतारिते शीते मधुनः कुडवं न्यसेत् ॥ ४६ ॥
खादयेत्कर्षमात्रं तु चानुपानविधिं शृणु।
अनुपानं प्रदातव्यं दधिमस्तु त्वजापयः ॥ ४७ ॥
चांपेयकदलीमूलस्वरसं कर्षमानतः।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय संग्रहग्रहणीं जयेत् ॥ ४८ ॥
रोगं रक्तातिसारं च चिरकालसमुद्भवम्।
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥
शोथातीसारसहितं ज्वरमाशु व्यपोहति ॥ ४९ ॥

कुडेकी जडकी छाल सौ पल लेकर एकद्रोण जलमें पकावे। जब पककर वह चौथाईभाग शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इस क्वाथमें ६४ तोले मिश्री या शुद्धचीनी मिलाकर पकावे। पककर जब पाक अवलेहकी समान गाढा होजाय तब उसमें लौंग, जीरा, नागरमोथा, धायके फूल, बेलकी गिरी, सुगन्धवाला, छोटी इलायची, पाढ, दालचीनी, काकडासिंगी, जायफल, सौंफ, इन्द्रजौ, अतीस, जवाखार, काकोली, रसौत, मोचरस, मुलैठी, मंजीठ, लालचन्दन, बडके अंकुर, खैर, जामुन और आमके पत्ते इन औषधियोंके दो दो तोले परिमाण बारीक चूर्णको डालदेवे। जब उत्तम प्रकारसे पाक सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें ६४ तोले शहद मिला-देवे। इस अवलेहको प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर एकएक तोला प्रमाण खाय और ऊपरसे दहीका तोड, बकरीका दूध, चम्पकी जडका रस अथवा केलेकी जडका रस इनमेंसे किसी एक पदार्थको एक तोला पान करे। यह अवलेह प्रबल संग्रहणी, बहुत पुराना रक्तातिसार पक्व अथवा अपक्व अनेक वर्णका और

पीडायुक्त अतीसार एवं सूजन और अतिसार युक्त ज्वरको शीघ्र दूर करताहै । अतिसार और संग्रहणीमें यह अवलेह तत्काल प्रत्यक्ष फलदायक है ॥४२-४९

द्वितीय कुटजावलेह ।

कुटजत्वक्पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
तेन पादावशेषेण शर्करापलविंशतिम् ॥ ५० ॥
दत्त्वा पक्त्वा लेहपाके चूर्णानीमानि निःक्षिपेत् ।
पाठा समङ्गा बिल्वं च धातकी मुस्तकं तथा॥ ५१ ॥
दाडिमातिविषा लोध्रं शाल्मली वेष्टसर्ज्जकम् ।
रसाञ्जनं धान्यकञ्च उशीरं बालकं तथा ॥ ५२ ॥
प्रत्येकमेषां कर्षांशं निःक्षिपेत्पाकविद्भिषक् ।
शीते च मधुनस्तत्र कुडवार्द्धं विनिःक्षिपेत् ॥ ५३ ॥
सर्वरूपमतीसारं ग्रहणीं सर्वरूपिणीम् ।
रक्तस्रुतिं ज्वरं शोथं वमिमर्शोगदं तृषाम् ॥
अम्लपित्तं तथा शूलमग्निमान्द्यं नियच्छति ॥ ५४ ॥

कुडेकी जडकी छाल १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय, तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें एक सेर मिश्री डालकर पाककरे । जब पककर वह अवलेहकी समान होजाय तब नीचे उतारकर उसमें पाढ, मंजीठ, बेलकी गिरी, धायके फूल, नागरमोथा, अनारका बक्कल, अतीस, लोध, मोचरस, राल, रसौत, धनियाँ, खस और सुगन्धवाला इन प्रत्येक औषधिका चूर्ण एकएक तोला डालदेवे और शीतल होनेपर आठ तोले शहद डालकर मिलादेवे । उसको पूर्ववत् एकएक तोलेकी मात्रासे सेवन करे और बकरीके दूध अथवा दहीके पानीका अनुपान करे तो यह अवलेह सब प्रकारके अतीसार, समस्त ग्रहणी, रक्तातिसार, ज्वर, सूजन, वमन, बवासीर, तृषा, अम्लपित्त, शूल, मन्दाग्नि आदि रोगोंको शीघ्र शमन करता है । यह अतिसार और ग्रहणीकी प्रत्यक्ष फलदायिनी है ॥ ५०-५४ ॥

सिद्धप्राणेश्वररस ।

गन्धेशाभ्रं पृथग्वेदभागमन्यच्च भागिकम् ।
सर्ज्जिटङ्कयवक्षाराः पञ्चैव लवणानि च ॥ ५५ ॥

वराङ्ग्योषेन्द्रबीजानि द्विजीरामियमनिकाः ।
सहिंगु बीजसारश्च शतपुष्पा सुचूर्णिता ॥ ५६ ॥
सिद्धप्राणेश्वरः सूतः प्राणिनां प्राणदायकः ।
माषैकं भक्षयेदस्य नागवल्लीदलैर्युतम् ॥ ५७ ॥
उष्णोदकानुपानञ्च दद्यात्तत्र पलत्रयम् ।
ज्वरातिसारेऽतिसृतौ केवले वा ज्वरेऽपि च ॥ ५८ ॥
घोरे त्रिदोषजे रोगे ग्रहण्यामसृगामये ।
वातरोगे च शूले च शूले च परिणामजे ॥ ५९ ॥

शुद्धगन्धक, शुद्धपारा और अभ्रकभस्म ये प्रत्येक चार २ तोले, एवं सज्जी-सुहागा, जवाखार, सैंधानमक, साँभरनमक, विरियासंचरनमक, कचियानमक, कालानमक, हरड, आमला, वहेडा, सोंठ, पीपल, मिरच, इन्द्रजौ, जीरा, कालाजीरा, चीतेकी जड, अजवायन, हींग, वायविडंग और सोया ये प्रत्येक औषधि एकएक तोला लेवे। सबको एकत्र जलके द्वारा उत्तमप्रकारसे खरलकरके एक एक माशेकी गोलियाँ बनालेवे फिर इसकी एकएक गोली पानके साथ भक्षण करे और इस रसको ज्वरातिसार, केवल अतिसार अथवा ज्वरमें तथा भयंकर त्रिदोषजनित रोग, ग्रहणी, रक्तविकार, वातरोग, शूल और परिणामजन्यशूलमें प्रयोगकरना चाहिये। इसपर तीनपल प्रमाण गरमजलका अनुपानकरे। यह सिद्धप्राणेश्वर नामवाला रस प्राणियोंके लिये जीवनदाताहै ॥ ५५-५९ ॥

कनकसुन्दररस ।

हिङ्गुलं मरिचं गन्धं पिप्पली टङ्कणं विषम् ।
कनकस्य च बीजानि समांशं विजयाद्रवैः ॥ ६० ॥
मर्दयेद्याममात्रं तु चणमात्रा वटी कृता ।
भक्षणाद्ग्रहणीं हन्ति रसः कनकसुन्दरः ॥ ६१ ॥
अग्निमान्द्यं ज्वरं तीव्रमतीसारञ्च नाशयेत् ।
पथ्यं दध्योदनं दद्याद्यद्वा तक्रोदनं चरेत् ॥ ६२ ॥

सिंगरफ, मिरच, शुद्ध गन्धक, पीपल, सुहागा, शुद्ध मीठा तेलिया और धतूरेके बीज इन सबको समानभाग लेकर भाँगके रसमें एक प्रहरतक खरल-कर चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। यह कनकसुन्दररस सेवन करतेही संग्र-

हणी, मन्दाग्नि, ज्वर और प्रबल अतीसारको नष्ट करता है । इसपर दही, भात अथवा मट्ठे और भातका पथ्य देना चाहिये ॥ ६०-६२ ॥

बृहत्कनकसुन्दररस ।

शुद्धं सूतं समं गन्धं मरिचं टङ्कणं तथा ।
स्वर्णबीजं समं मर्द्यं भार्गीद्रावैर्दिनार्द्धकम् ॥ ६३ ॥
सूततुल्यं मृतश्चाभ्रं रसः कनकसुन्दरः ।
अस्य गुञ्जाद्वयं हन्ति पित्तातीसारमुग्रकम् ॥ ६४ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, मिरच, सुहागेकी खील और धतूरेके बीज सबको समान भाग लेकर भारंगीके रसमें दो प्रहरतक खरल करे फिर उसमें पारेके बराबरभाग अभ्रकभस्म मिलादेवे तो बृहत्कनकसुन्दरस सिद्ध होता है । इसको दो दो रत्तीकी मात्रासे सेवनकरनेसे अत्युग्र पित्तातिसार दूर होता है६३॥६४

गगनसुन्दर रस ।

टङ्कणं दरदं गन्धमभ्रकं च समं समम् ।
दुग्धिकाया रसेनैव भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ ६५ ॥
द्विगुञ्जं मधुना देयं श्वेतसर्ज्जस्य वल्कलम् ।
विविधं नाशयेद्रक्तं ज्वरातीसारमुल्बणम् ॥ ६६ ॥
पथ्यं तक्रं पयश्छागमामशूलं विनाशयेत् ।
अग्निवृद्धिकरो ह्येष रसो गगनसुन्दरः ॥ ६७ ॥

सुहागा, सिंगरफ, गन्धक और अभ्रक इन प्रत्येकको समान भाग लेकर दुद्धीके रसमें ३ दिनतक भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे एक २ गोली सफेद रालके दो रत्ती प्रमाण चूर्ण और शहदके साथ सेवन करनेसे विविधप्रकारका रक्तविकार, ज्वर अत्युग्र अतिसार और आम· शूल नष्ट होता है। और यह गगनसुन्दर रस विशेषकर जठराग्निकी वृद्धि करता है । इसपर मट्ठा और बकरीका दूध पथ्य है ॥ ६५-६७ ॥

कनकप्रभावटी ।

सुवर्णबीजं मरिचं मरालपादं कणा टङ्कणकं विषं च ।
गन्धं जयाद्भिर्दिवसं विमर्द्य गुञ्जाप्रमाणां वटिकां विदध्यात् ।
घोरातिसारग्रहणीं ज्वराग्निमान्द्यं निहन्यात्कनकप्रभेयम् ।
दध्योदनं पथ्यमनुष्णवारि मांसं भजेत्तित्तिरिलावकानाम् ६९

धतूरेके बीज, मिरच, हंसपदी (हंसराज), पीपल, सुहागा, शुद्ध मीठा तेलिया और शुद्ध गन्धक इन सबको समान भाग लेकर भाँगके रस वा काथमें एक दिनतक खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह कनकप्रभावटी सेवन करतेही प्रबल अतिसार, ग्रहणी, ज्वर और अग्निमान्द्य आदि रोगोंको नष्टकरती है। इसपर दही भातका पथ्य, शीतलजल एवं तीतर और लवा पक्षीका मांसरस सेवन करना चाहिये ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

मृतसंजीवनी वटी।

मागधी वत्सनाभश्च तयोस्तुल्यश्च हिङ्गुलम्।
मृतसंजीवनी ख्याता जम्बीररसमर्दिता ॥ ७० ॥
मूलकस्य च बीजानां वटिका तुल्यरूपिणी।
पानीया शीततोयेन ज्वरातीसारनाशिनी ॥
विषूच्यां सन्निपाते च ज्वरे चैवातिदुस्तरे ॥ ७१ ॥

पीपल १ भाग, शुद्ध वत्सनाभ १ भाग और सिंगरफ २ भाग इनको एकत्र जम्बीरीनींबूके रसमें उत्तम प्रकारसे खरलकर मूलीके बीजकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। एकएक गोली शीतजलके साथ सेवन करनेसे ज्वर और अतिसार (दस्त) शीघ्र दूर होते हैं। विषूचिका और अतिदारुण सन्निपातज्वरमें यह मृतसंजीवनी नामक वटी अतीव हितकारी है ॥ ७० ॥ ७१ ॥

आनन्दभैरव रस।

हिङ्गुलश्च विषं व्योषं टंगणं गन्धकं समम्।
जम्बीररससंयुक्तं मर्दयेद्यामकद्वयम् ॥ ७२ ॥
कासश्वासातिसारेषु ग्रहण्यां सान्निपातिके।
अपस्मारेऽनिले मेहेऽप्यजीर्णे वह्निमान्द्यके ॥
गुञ्जामात्रः प्रदातव्यो रस आनन्दभैरवः ॥ ७३ ॥

सिंगरफ, शुद्ध मीठातेलिया, त्रिकुटा, सुहागा और शुद्धगन्धक सबको सम भाग लेकर एकत्र कूटपीसकर जम्बीरीनींबूके रसमें दो प्रहरतक खरल करे फिर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह आनन्दभैरवरस खाँसी, श्वास, अतिसार, संग्रहणी, सन्निपातज्वर, अपस्मार, वातविकार, प्रमेह, अजीर्ण और मन्दाग्नि इन रोगोंको सेवनकरतेही दूर करताहै ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अमृतार्णवरस।

हिंगुलोत्थो रसो लौहं टंगणं गन्धकं शठी।
धान्यकं बालकं मुस्तं पाठा जीरं घुणप्रिया ॥ ७४ ॥
प्रत्येकं तोलकं चूर्णं छागीदुग्धेन पेषयेत्।
माषैका वटिका कार्य्या रसोऽयममृतार्णवः ॥७५॥
वटिकां भक्षयेत्प्रातर्गहनानन्दभाषिताम्।
धान्यजीरकयूषेण विजयाशणबीजतः ॥ ७६ ॥
मधुना छागदुग्धेन मण्डेन शीतवारिणा।
कदलीमोचकरसैः कञ्चटद्रवकेण च ॥ ७७ ॥
अतीसारं जयेदुग्रमेकजं द्वन्द्वजं तथा।
दोषत्रयसमुद्भूतमुपसर्गसमन्वितम् ॥ ७८ ॥
शूलघ्नो वह्निजननो ग्रहण्यर्शोविकारनुत्।
अम्लपित्तप्रशमनः कासघ्नो गुल्मनाशनः ॥ ७९ ॥

सिंगरफसे निकालाहुआ पारा, लोहा, सुहागा, शुद्धगन्धक, कचूर, धनियाँ, सुगन्धवाला, नागरमोथा, पाढ, जीरा और अतीस इन प्रत्येकके चूर्णको एक एक तोला लेवे। फिर सबको एकत्र बकरीके दूधमें खरल करके एकएक माशेकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे एक एक गोली नित्यप्रति प्रातःकाल भक्षण करे और ऊपरसे धनियाँ, जीरा और मूँगका यूष, भाँगका चूर्ण, सनके बीजोंका चूर्ण, शहद, बकरीका दूध, भातका माँड, शीतलजल, केलेका जडका रस, मोचरस और जलचौलाईका रस इनमेंसे किसी एकका अनुपान करे तो अतिप्रबल अतीसार, एकदोषज, द्विदोषज अथवा त्रिदोषज विकार, शूल, संग्रहणी, बवासीर, अम्लपित्त, खाँसी और गुल्मप्रभृति दुस्तर व्याधियाँ शमन होती हैं और अग्नि अत्यन्त दीपन होती है ॥ ७४-७९ ॥

कारुण्यसागर।

भस्मसूताद्द्विधा गन्धं तथा द्वित्वं मृताभ्रकम्।
दिनं सार्षपतैलेन पिष्ट्वा यामं विपाचयेत ॥ ८० ॥
रसैर्मार्कवमूलोत्थैः पिष्ट्वा यामं विपाचयेत्।
त्रिक्षारपञ्चलवणविषव्योषाग्निजीरकैः ॥ ८१ ॥

सविडङ्गैस्तुल्यभागैरयं कारुण्यसागरः ।
माषमात्रं ददीतास्य भिषक् सर्वातिसारके ॥ ८२ ॥
सज्वरे विज्वरे वापि सशूले शोणितोद्भवे ।
निरामे शोथयुक्ते वा ग्रहण्यां सान्निपातिके ।
अनुपानं विनाप्येष कार्यसिद्धिं करिष्यति ॥ ८३ ॥

पारेकी भस्म १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला और अभ्रकभस्म ४ तोले लेवे । इन सबको सरसोंके तेलमें एकदिनतक खरल करके शरावसंपुटमें रख वालुकायंत्रमें एक प्रहरतक पकावे । जब पककर स्वांगशीतल होजाय तब निकालकर भँागरेकी जडके रसमें एकप्रहरतक खरल करके और पूर्वोक्तविधिसे संपुटमें रखकर पकावे । पीछे स्वांगशीतल होनेपर निकालकर उसका चूर्ण कर लेवे । फिर उसमें जवाखार, सज्जी, सुहागा, कालानमक, सैंधानमक, विरियासंचरनमक, कचियानमक, साँभरनमक, शुद्ध मीठातेलिया, सोंठ, मिरच, पीपल, चीता, जीरा और वायविडङ्ग इन औषधियोंके समानभाग मिश्रित चूर्णको मिलाकर खरल करे तो यह कारुण्यसागररस सिद्ध होता है । सर्वप्रकारके अतीसार, ज्वरसहित व ज्वररहित एवं शूलयुक्त रक्तातिसार, आमरहित सूजनवाली ग्रहणी और सन्निपात आदि रोगोंमें एक एक माशे परिमाण सेवन करना चाहिये. यह रस अनुपानके विना भी आरोग्य प्रदान करता है ॥८०-८३ ॥

मृतसञ्जीवनरस ।

रसगन्धौ समौ ग्राह्यौ सूतपादं विषं क्षिपेत् ।
सर्वतुल्यं मृतश्चाभ्रं मर्द्यं धुस्तूरजैर्द्रवैः ॥ ८४ ॥
सर्पाक्ष्याश्च द्रवैर्यामं कषायेणाथ भावयेत् ।
धातक्यातिविषामुस्तं शुण्ठीजीरकबालकम् ॥ ८५ ॥
यमानीधान्यकं बिल्वं पाठा पथ्या कणान्वितम् ।
कुटजस्य त्वचं बीजं कपित्थं बालदाडिमम् ॥ ८६ ॥
प्रत्येकं कर्षमात्रं स्यात्कुट्टितं क्वाथयेज्जलैः ।
चतुर्गुणं जलं दत्त्वा यावत्पादावशेषितम् ॥ ८७ ॥
अनेन त्रिदिनं भाव्यं पूर्वोक्तं मर्दितं रसम् ।
रुध्वा तद्वालुकायन्त्रे क्षणं मृद्वग्निना पचेत् ॥ ८८ ॥

मृतसञ्जीवनो नाम चास्य गुञ्जाचतुष्टयम् ।
दातव्यमनुपानेन चासाध्यमपि साधयेत् ॥ ८९ ॥
षट्प्रकारमतीसारं साध्यासाध्यं जयेद्ध्रुवम् ।
नागरातिविषा मुस्तं देवदारु कणा वचा ॥ ९० ॥
यमानी बालकं धान्यं कुटजत्वक् हरीतकी ।
धातकीन्द्रयवौ बिल्वं पाठा मोचरसं समम् ।
चूर्णितं मधुना लेह्यमनुपानं सुखावहम् ॥ ९१ ॥

शुद्ध किया हुआ पारा और गन्धक प्रत्येक एक एक तोला, शुद्ध मीठा तेलिया तीन माशे और सबकी बराबर भाग अभ्रक भस्म लेवे। इनको एकत्रकर धतूरेके पत्तोंके रसमें और सर्पाक्षीके रस अथवा काथमें एक एक प्रहरतक खरल करे। फिर धायके फूल, अतीस, नागरमोथा, सोंठ, जीरा, सुगन्धवाला, अजवायन, धनियाँ, बेलगिरी, पाढ, हरड, पीपल, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ, कैथ और कच्चाअनार इन प्रत्येक औषधिको एकएक तोला लेकर अच्छेप्रकारसे कूटकर सबको चौगुने जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इस काथमें पूर्वोक्त रसको तीन दिनतक भावना देवे। फिर उसको वालुकायन्त्रमें उत्तमप्रकारसे बन्दकरके मन्दमन्द अग्निसे दो घडीतक पकावे। जब पककर स्वयं शीतल होजाय तब औषधिको निकाल कर चूर्ण करलेवे। इस रसकी चारचार रत्ती प्रमाण मात्राको यथादोषानुसार अनुपानके साथ देनेसे साध्यहों अथवा असाध्य छः हों प्रकारके अतिसार निश्चय नष्ट होते हैं। यह रस मृतसंजीवननामसे प्रसिद्ध है। इस रसको सेवन करनेके पश्चात् सोंठ, अतीस, नागरमोथा, देवदारु, पीपल, वच, अजवायन, सुगन्धवाला, धनियाँ, कुडेकी छाल, हरड, धायके फूल, इन्द्रजौ, बेलगिरी, पाठ और मोचरस इन सब औषधियोंके चूर्णको समान भाग लेकर शहदमें मिलाकर चाटे तो बडा अच्छा अनुपान होता है। इस चूर्णको शहदके साथ चाटनेसे भी अतिसार रोग दूर होता है ॥ ८४-९१ ॥

प्राणेश्वररस।

रसगन्धकमभ्रञ्च टङ्कणं शतपुष्पकम् ।
यमानी जीरकाख्यञ्च प्रत्येकं कर्षयुग्मकम् ॥ ९२ ॥
कर्षमेकं यवक्षारं हिङ्गु कटुकपञ्चकम् ।

विडङ्गेन्द्रयवं सर्ज्जरसकश्चाग्निसंज्ञितम् ॥
घृष्ट्वा च वटिका कार्या नाम्ना प्राणेश्वरो रसः ॥९३॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, अभ्रक, सुहागा, सोया, अजवायन और जीरा ये प्रत्येक दो दो कर्ष एवं जवाखार, हींग, पाँचोंनमक, वायविडङ्ग, इन्द्रजौ, राल और चीता ये पृथक् पृथक् एकएक कर्ष लेवे। सबको जलके द्वारा एकत्र खरल करके चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इसको प्राणेश्वररस कहते हैं। यह रस ज्वरातिसाररोग नाशक है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

अभ्रवटिका ।

अथ शुद्धस्य सूतस्य गन्धकस्याभ्रकस्य च ।
प्रत्येकं कर्षमानं तु ग्राह्यं रसगुणैषिणा ॥ ९४ ॥
ततः कज्जलिकां कृत्वा व्योषचूर्णं प्रदापयेत् ।
केशराजस्य भृङ्गस्य निर्गुण्डयाश्चित्रकस्य च ॥ ९५ ॥
ग्रीष्मसुन्दरकस्याथ जयन्त्याः स्वरसं तथा ।
मण्डूकपर्ण्याः स्वरसं तथा शक्राशनस्य च ॥ ९६ ॥
श्वेतापराजितायाश्च स्वरसं पर्णसम्भवम् ।
दापयेद्रसतुल्यश्च विधिज्ञः कुशलो भिषक् ॥ ९७ ॥
रसतुल्यं प्रदातव्यं चूर्णं मरिचसम्भवम् ।
देयं रसार्द्धभागेन चूर्णं टङ्कणसम्भवम् ॥ ९८ ॥
शुभे शिलामये पात्रे घर्षणीयं प्रयत्नतः ।
शुष्कमातपसंयोगाद्वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ९९ ॥
कलायपरिमाणान्तु खादेत्तां तु प्रयत्नतः ।
दृष्ट्वा वयश्चाग्निबलं यथाव्याध्यनुपानतः ॥ १०० ॥
हन्ति कासं क्षयं श्वासं वातश्लेष्मभवं ज्वरम् ।
परं वाजीकरः श्रेष्ठो बलवर्णाग्निवर्द्धकः ॥ १०१ ॥
ज्वरे चैवातिसारे च सिद्ध एष प्रयोगराट् ।
नातः परतरः श्रेष्ठो विद्यतेऽभ्ररसायनात् ॥ १०२ ॥
भोजने शयने पाने नास्त्यत्र नियमः क्वचित् ।
दधि चावश्यकं भक्ष्यं प्राह नागार्जुनो मुनिः ॥१०३॥

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला दोनोंकी एकत्र कज्जली बनालेवे। फिर इसमें अभ्रक, सोंठ, मिरच और पीपल प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला मिलाकर कुकुरभाँगरा, भाँगरा, सिह्वालू, चीता, ग्रीष्मसुन्दर (सिरयारीका साग) अरणी, मण्डूकपर्णी, भाँग, सफेद कोइल और पान इन प्रत्येकके एक एक तोले स्वरसमें क्रमसे अलग अलग भावना देवे । पश्चात् इसमें काली मिरचोंका चूर्ण एक तोला और सुहागेकी खील छः माशे डालकर उत्तम पत्थरके खरलमें अच्छे प्रकारसे घोटे और धूपमें सुखाकर मटरकी समान गोलियाँ बनालेवे । यह रस रोगीकी अवस्था और अग्निके बलाबलको विचारकर यथादोषानुसार अनुपानके साथ सेवन कराना चाहिये । इससे खाँसी, क्षय, श्वास और वात-कफजन्य ज्वर शीघ्र नष्ट होते हैं। यह अत्यन्त वाजीकरण एवं बल वर्ण और जठराग्निकी विशेषरूपसे वृद्धि करता है। ज्वर और अतिसाररोगमें तो यह सिद्धफलप्रद औषधि है। अभ्ररसायनोंमें इससे बढकर अन्य उत्तम औषध नहीं है । भोजन, पान और शयनादिमें कुछ परहेज नहीं है । किन्तु इसपर दही अवश्य खाना चाहिये ऐसा नागार्जुनमुनिने कहा है॥९४-१०३॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां ज्वरातिसारचिकित्सा ।

अथ अतिसार चिकित्सा ।

आमपक्वक्रमं हित्वा नातिसारे क्रिया यतः ।
अतः सर्वातिसारेण ज्ञेयं पक्वामलक्षणम् ॥ १ ॥

आम और पक्वके क्रमको त्याग कर अतिसारमें अन्य क्रिया ही नहीं है। इस कारण सम्पूर्ण अतिसारोंमें प्रथम आम और पक्वका निश्चय करनाचाहिये ॥१॥

आम और पक्वके लक्षण ।

मज्जत्यामो गुरुत्वाद्विट् पक्वा तूत्प्लवते जले ।
विनातिद्रवसंघातशैत्यश्लेष्मप्रदूषणात् ॥ २ ॥

अपक्वमल भारी होनेके कारण जलमें डूब जाताहै और पक्वमल जलमें तैरता रहताहै। किन्तु अतिद्रव(बहुत पतला)अपक्वमल भी जलके ऊपर तैरता है एवं कठिन, श्वेतवर्ण, शीतल और दुष्ट कफसे दूषित पक्वमल जलमें डूब जाताहै२॥

आम और पक्वके अन्यलक्षण ।

शकृद्दुर्गन्धि साटोपविष्टम्भार्तिप्रसेकिनः ।
विपरीतं निरामं तु कफात पक्वश्च मज्जति ॥ ३ ॥

आमातिसारमें मल दुर्गन्धियुक्त उदरमें अफारेसहित गुडगुडशब्द होना, पीडाके साथ थोडा थोडा मलका उतरना और मुखमेंसे पानीका निकलना इत्यादि लक्षण होतेहैं। एवं आमरहित पक्कातिसारमें इन सब लक्षणोंके विपरीत-लक्षण होतेहैं और कफके कारण भारी होनेसे पकमल जलमें डूब जाताहै ॥३॥

आम और पक्कातिसारकी चिकित्सा।

न तु संग्रहणं दद्यात् पूर्वमामातिसारिणे।
दोषा ह्यादौ रुद्धयमाना जनयन्त्यामयान् बहून्॥४॥
शोथपाण्ड्वामयप्लीहकुष्ठगुल्मोदरज्वरान्।
दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यर्शोगदांस्तथा ॥ ५ ॥
क्षीणधातुबलार्तस्य बहुदोषोऽतिनिःसृतः।
आमोऽपि स्तम्भनीयः स्यात्पाचनान्मरणं भवेत्॥६॥

आमातिसारवाले रोगीको पहिले एकदम मलको रोकनेवाली औषधि कभी नहीं देनी चाहिये। कारण, प्रथमही अर्थात् अपक्व अवस्थामें मलको रोकदेनेसे सब दोष एकत्रित होकर बँधजाते हैं और वे शोथ, पाण्डु, प्लीहा, कोढ, गुल्म, उदर, ज्वर, दण्डक, अलसक, अफारा, संग्रहणी और बवासीर आदि रोगोंको उत्पन्न करदेतेहैं। किन्तु जो रोगी अधिक मलस्राव होनेसे धातुक्षीण और बलहीन हो और अनेक दोषोंसे युक्त हो ऐसे रोगीको आमकी अवस्थामें भी मलावरोधक औषधियाँ देनी चाहिये। कारण—ऐसे रोगीको पाचक औषधि देनेसे रोगीकी मृत्यु होसकतीहै ॥ ४–६ ॥

आमातिसार-चिकित्सा।

आमे विलङ्घनं शस्तमादौ पाचनमेव वा।
कार्यश्चानशनस्यान्ते प्रद्रवं लघुभोजनम् ॥ ७ ॥

आमावस्थामें प्रथम लंघन कराने चाहिये। फिर पाचक औषधियाँ देनी चाहिये। एवं लंघन होचुकनेपर पेयादि पतल और हल्के पदार्थ पथ्यरूपसे भोजनके लिये देने चाहिये ॥ ७ ॥

लंघनमेकं त्यक्त्वा नान्यदस्तीह भेषजं बलिनः।
समुदीर्णं दोषचयं शमयति तत्पाचयत्यपि ॥ ८ ॥

अतिसारमें बलवान् रोगीके लिये लंघनके सिवाय अन्य कोई औषधि हित-

कर नहीं है । कारण-लंघन उत्पन्नहुए दोषोंके समूहको शमन करते हैं और उनको पचादेते हैं ॥ ८ ॥

पक्वोऽसकृदतिसारो ग्रहणीमार्द्दवाद्यदा ।
प्रवर्तते तदा कार्यः क्षिप्रं सांग्राहिको विधिः ॥ ९ ॥

जब पक्वातिसारमें ग्रहणीनाडीके अतिमन्द होजानेसे निरन्तर मल निकलता हो तब तत्काल मलावरोधक औषधिदेकर दस्त बन्द करदेने चाहिये॥९॥

ह्रीबेरशृङ्गवेराभ्यां मुस्तपर्पटकेन वा ।
मुस्तोदीच्यशृतं तोयं देयं वापि पिपासवे ।
युक्तेऽन्नकाले क्षुत्क्षामं लघून्यन्नानि भोजयेत् ॥ १० ॥

अतिसारके रोगीको प्यास लगनेपर सुगन्धवाला और सोंठ अथवा नागरमोथा और पित्तपापडा या नागरमोथा और सुगन्धवाला इनमेंसे किसी एक प्रयोगके द्वारा सिद्ध कियाहुआ जल पीनेको देना चाहिये और लंघनकेबाद अत्यन्त भूँख लगनेपर हलके अन्नादिकोंका भोजन कराना चाहिये ॥ १० ॥

औषधसिद्धाः पेया लाजानां सक्तवोऽतिसारहिताः ।
वस्त्रप्रस्रुतमण्डः पेया च मसूरयूषश्च ॥ ११ ॥

शालपर्णी आदि या धान्यपंचकादि अथवा औषधियोंके द्वारा सिद्ध कीहुई पेया, खीलोंके सत्तू, कपडेमें छानाहुआ माँड, पेया और मसूरका यूष अतिसाररोगमें हितकारी है ॥ ११ ॥

गुर्वी पिण्डी खरात्यर्थं लघ्वी सैव विपर्य्ययात् ।
सक्तूनामाशु जीर्येत मृदुत्वादवलेहिका ॥ १२ ॥

खीलोंके सत्तुओंमें थोडा जल डालकर उसका पिण्डा या गोलासा बनाकर खानेसे वह अत्यन्त कठिन और गुरुपाकी (देरमें पचनेवाले) होजाता है । किन्तु खीलोंके सत्तुओंको अधिक जलमें घोलकर अवलेहकी समान खानेसे वे शीघ्रही पच जाते हैं ॥ १२ ॥

धान्योदीच्यशृतं तोयं तृष्णादाहातिसारनुत् ।
आभ्यामेव सपाठाभ्यां सिद्धमाहारमाचरेत् ॥ १३ ॥

यदि अतिसारके रोगीको धनियाँ और सुगन्धवाला इन औषधियोंके द्वारा पकायाहुआ जल पान करानेसे एवं धनियाँ, सुगन्धवाला और पाढ इनके द्वारा सिद्ध कीहुई पेया सेवन करानेसे तृषा, दाह और अतिसार नष्ट होता है॥१३॥

स्तोकं स्तोकं विबद्धं वा सशूलं योऽतिसार्यते ।
अभयापिप्पलीकल्कैः सुखोष्णैस्तं विरेचयेत् ॥ १४ ॥

जिस अतिसारके रोगीके वारम्वार थोडा २ अथवा अत्यन्त बँधाहुआ और पीडा सहित मल निकलता हो तो उसको हरड और पीपलका बारीक चूर्ण मन्दोष्ण जलके साथ पान कराना चाहिये ॥ १४ ॥

नागरातिविषामुस्तैरथवा धान्यनागरैः ।
तृष्णाशूलातिसारघ्नं पाचनं दीपनं लघु ॥ १५ ॥

सोंठ, अतीस और नागरमोथा अथवा धनियाँ और सोंठ यह दोनों काथ तृषा,शूल और अतिसारको नष्ट करनेवाले पाचक,अग्निप्रदीपक और हल्के हैं१५

पाठावत्सकबीजानि हरीतक्यो महौषधम् ।
एतदामसमुत्थानमतीसारं सवेदनम् ॥
कफात्मकं सपित्तञ्च वर्चो बध्नाति च ध्रुवम् ॥ १६ ॥

पाढ, इन्द्रजौ, हरड और सोंठ इनका बनायाहुआ काथ पीडा सहित आमजन्य अतिसार और कफ तथा पित्तसंयुक्त मलको निस्सन्देह बाँध देता है १६

पयस्युत्क्वाथमुस्ता वा विंशतिं भेडकाह्वया ।
क्षीरावशिष्टं तत् पीतं हन्यादामं सवेदनम् ॥ १७ ॥

नागरमोथेकी बीस जडोंको आठगुने बकरीके दूध और दूधसे चौगुने जलमें पकावे । जब पककर दूधमात्र शेष रहजाय तब उसको उतारकर छानलेवे। उस दूधको शीतल करके पान करनेसे वेदनासहित आमातिसार दूर होता है॥१७

धान्यपञ्चकसंसिद्धो धान्यविश्वकृतोऽथवा ।
आहारो भिषजा योज्यो वातश्लेष्मातिसारिणाम् ॥
वातपित्ते पञ्चमूल्या कफे वा पञ्चकोलकैः ॥ १८ ॥

वातकफातिसारवाले रोगियोंको धान्यपञ्चकके साथ अथवा केवल धनियें और सोंठके साथ पेया बनाकर भोजनके लिये देनी चाहिये । एवं वातपित्तातिसारमें स्वल्पपंचमूलकी औषधियोंके साथ और कफके अतिसारमें पञ्चकोलकी औषधियोंके साथ पेया प्रस्तुत कर भोजनके लिये देनी चाहिये ॥ १८॥

धान्यपञ्चक और धान्यचतुष्क ।

धान्यकं नागरं मुस्तं बालकं बिल्वमेव च ।

आमशूलविबन्धघ्नं पाचनं वह्निदीपनम् ॥
इदं धान्यचतुष्कं स्यात् पैत्ते शुण्ठी विना पुनः॥१९॥

धानियाँ, सौंठ, नागरमोथा, सुगन्धवाला और बेलगिरी इनका क्वाथ पान करनेसे आमशूल और विबन्ध नष्ट होताहै। यह क्वाथ पाचक और अग्निको दीपन करनेवाला है, इसको धान्यपंचक क्वाथ कहतेहैं। किन्तु पित्तातिसारमें इस धान्यपंचकमेंसे सोंठको निकालकर शेष चारों औषधियोंका क्वाथ बनाकर देनो चाहिये। इसको धान्य चतुष्क कहते हैं ॥ १९ ॥

स्वल्प शालपर्ण्यादि ।

शालपर्णीबलाबिल्वैः पृश्निपर्ण्या च साधिता ।
दाडिमाम्ला हिता पेया पित्तश्लेष्मातिसारिणाम् २०

शालपर्णी, खिरैंटी, बेलगिरी और पृश्निपर्णी इनके द्वारा सिद्ध की हुई पेया दाडिमीका रस मिलाकर पित्तकफातिसारवाले रोगीको पिलानी चाहिये॥२०॥

बृहच्छालपर्ण्यादि ।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कण्टकारिका ।
बलाश्वदंष्ट्राबिल्वानि पाठानागरधान्यकम् ॥
एतदाहारसंयोगे हितं सर्वातिसारिणाम् ॥ २१ ॥

शालपर्णी. पश्निपर्णी, बडीकटेरी, कटेरी, खिरैंटी, गोखरू, बेलगिरी,पाढ, सोंठ और धनियाँ इन सब औषधियोंके द्वारा बनायीहुई पेया सब प्रकारके अतिसाररोगमें हितकारी है ॥ २१ ॥

वत्सकादि ।

वत्सकातिविषाशुण्ठीबिल्वहिङ्गुयवाम्बुदैः ।
चित्रकेण युतैः क्वाथ आमातिसारनाशनः ॥ २२ ॥

इन्द्रजौ, अतीस, सोंठ, बेलगिरी, हींग, जौ, नागरमोथा और लाल चीता इनका क्वाथ आमातिसारको नष्ट करताहै ॥ २२ ॥

पथ्यादि ।

पथ्यादारुवचामुस्तनागरातिविषायुतैः ।
आमातीसारनाशार्थं क्वाथमेतत् पिबेन्नरः ॥ २३ ॥

आमातिसारको शमनकरनेके लिये रोगी हरड, देवदारु, वच, नागरमोथा, सोंठ और अतीस इनका बनाया हुआ क्वाथ पान करे ॥ २३ ॥

यमान्यादि।

यमानीनागरोशीरधनिकातिविषाघनैः।
बालबिल्वद्विपर्णीभिर्दीपनं पाचनं भवेत् ॥ २४ ॥

अजवायन, सोंठ, खस, धनियाँ, अतीस, नागरमोथा, कच्चे बेलकी गिरी, शालपर्णी और पृश्निपर्णी इनका काथ सेवनकरनेसे अग्निदीपन और आम परिपक्व होती है ॥ २४ ॥

कलिङ्गादि।

कलिङ्गातिविषा हिङ्गु पथ्या सौवर्चलं वचा।
शूलस्तम्भविबन्धघ्नं पेयं दीपनपाचनम् ॥ २५ ॥

इन्द्रजौ, अतीस, हींग, हरड, कालानमक और वच इनका बनायाहुआ काथ शूल, स्तम्भ और विबन्धका नष्ट करताहै।तथा दीपन और पाचनहै॥२५

कञ्चटादि।

कञ्चटदाडिमजम्बूशृङ्गाटकपत्रह्रीबेरम्।
जलधानागरसहितं गङ्गामधिवेगिनीं रुन्ध्यात् ॥२६॥

जल चौलाईके पत्ते, अनारके पत्ते, जामुनके पत्ते, सिंघाडेके पत्ते, सुगन्धवाला, नागरमोथा और सोंठ इनका काथ गंगाके समान वेगवाले अतिसारको भी रोक देताहै ॥ २६ ॥

कुटजादि।

कुटजं दाडिमं मुस्तं धातकी बिल्वबालकम्।
लोध्रचन्दनपाठाश्च कषायं मधुना पिबेत् ॥ २७ ॥
सामे शूले च रक्ते च पिच्छास्रावे च शस्यते।
कुटजादिरितिख्यातः सर्वातीसारनाशनः ॥२८ ॥

कुडेकी छाल, अनारका बक्कल, नागरमोथा, धायके फूल, बेलगिरी, सुगन्धवाला, लोध, लालचन्दन और पाढ इनके मन्दोष्ण काथको शहद मिलाकर पान करनेसे आम, शूल, रक्तस्राव और मलकी पिच्छलता दूर होती है। यह कुटजादिनामसे प्रसिद्ध प्रयोग सर्वप्रकारके अतिसाररोगको नष्ट करताहै२८

त्र्यूषणादि चूर्ण।

त्र्यूषणातिविषाहिङ्गुबलासौवर्चलाभयाः।
पीत्वोष्णेनाम्भसा हन्यादामातीसारमुद्धतम् ॥ २९॥

अथवा पिप्पलीमूलं पिप्पलीद्वयचित्रकात् ।
सौवर्चलवचाव्योषहिङ्गुप्रतिविषाभयाः ॥
पिबेच्छ्लेष्मातिसारार्त्तश्चूर्णिताश्चोष्णवारिणा ॥ ३० ॥

सोंठ, पीपल, मिर्च, अतीस, हींग, खिरेंटी, कालानमक और हरड इन सबके समान भाग मिश्रित चूर्णको गरमजलके साथ पानकरनेसे प्रबल आमातिसाररोग नष्ट होताहै । अथवा पीपलामूल, पीपल, गजपीपल और चीता एवं कालानमक, वच, त्रिकुटा, हींग, अतीस और हरड इनको समान भाग लेकर चर्ण बनाकर उष्णजलके साथ पान करनेसे कफातिसार दूर होताहै २९॥३०

शुण्ठ्यादिचूर्ण ।

शुण्ठीप्रतिविषाहिङ्गुमुस्ताकुटजचित्रकैः ।
चूर्णमुष्णाम्बुना पीतमामातीसारनाशनम् ॥ ३१ ॥

सोंठ, अतीस, हींग, नागरमोथा, इन्द्र जौ और चीता इनका चूर्ण उष्णजलके साथ सेवन करनेसेही आमातिसार नष्ट होता है ॥ ३१ ॥

वातातीसार-चिकित्सा ।

पञ्चमूलीबलाविश्वधान्यकोत्पलबिल्वजाः ।
वातातिसारिणे देयास्तक्रेणान्यतमेन वा ॥ ३२ ॥

वातज अतिसारवाले रोगीको पञ्चमूल एवं खिरेंटी, सोंठ, धानियाँ, कुमोदिनी (नीलोफर) और बेलगिरी इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर जल मिलेहुए घोलमें पकाकर देना चाहिये ॥ ३२ ॥

पूतिकादि ।

पूतिको मागधी शुण्ठी बलाधान्यं हरीतकी ।
पक्त्वाम्बुना पिबेत् सायं वातातीसारशान्तये॥३३॥

दुर्गन्ध करञ्ज, पीपल, सोंठ, खिरेंटी, धनियाँ और हरड इनका काथ बनाकर सायंकालमें सेवन करनेसे वातजन्य अतीसार शान्त होताहै ॥ ३३॥

पथ्यादि ।

पथ्या दारु वचा शुण्ठी मुस्ता चातिविषालता ।
क्वाथ एषां हरेत् पीतो वातातीसारमुल्बणम् ॥ ३४॥

हरड, देवदारु, वच, सोंठ, नागरमोथा, अतीसऔर गिलोय इनके काथको पानकरनेसे प्रबल वातातीसार नष्ट होता है ॥ ३४ ॥

वचादि ।

वचा चातिविषा मुस्तं बीजानि कुटजस्य च ।
श्रेष्ठः कषाय एतेषां वातातीसारशान्तये ॥ ३५ ॥

वच, अतीस, नागरमोथा और इन्द्रजौ इनका काथ वातातिसारको शमन करनेके लिये देना चाहिये ॥ ३५ ॥

पित्तातीसार-चिकित्सा ।

मधुकादि ।

मधुकं कट्फलं लोध्रं दाडिमस्य फलत्वचौ ।
पित्तातिसारे मध्वाक्तं पाययेत् तण्डुलाम्बुना ॥३६॥

पित्तज अतिसारमें मुलैठी, कायफल, लोध, अनारका कच्चा फल और बकल इनके समान भाग चूर्णको चावलोंके पानी और मधुके साथ मिलाकर सेवन कराना चाहिये ॥ ३६ ॥

बिल्वादि ।

बिल्वशक्रायवाम्भोद-बालकातिविषाकृतः ।
कषायो हन्त्यतीसारं सामं पित्तसमुद्भवम् ॥ ३७ ॥

बेलकी गिरी, इन्द्रजौ, नागरमोथा, सुगन्धवाला और अतीस इनका बना-हुआ काथ पान करनेसे पित्तसे उत्पन्नहुआ आमातिसार नष्ट होता है ॥२७॥

कट्फलादि ।

कट्फलातिविषाम्भोद--वत्सकं नागरान्वितम् ।
शृतं पित्तातिसारघ्नं दातव्यं मधुसंयुतम् ॥ ३८ ॥

कायफल, अतीस, नागरमोथा, इन्द्रजौ और सोंठ इनका काथ वनाकर मधुके साथ पानकरनेसे पित्तातीसार दूर होता है ॥ ३८ ॥

किराततिक्तकादि ।

किराततिक्तकं मुस्तं वत्सकं सरसाञ्जनम् ।
पित्तातीसाररोगघ्नं सक्षौद्रं वेदनापहम् ॥ ३९ ॥

चिरायता, नागरमोथा, इन्द्रजौ और रसौत इनके काथमें शहद मिलाकर सेवन करनेसे पीडा सहित पित्तातिसार शमन होता है ॥ ३९ ॥

अतिविषादि ।

सक्षौद्रातिविषा पिष्टा वत्सकस्य फलं त्वचम् ।
तण्डुलोदकसंयुक्तं पेयं पित्तातिसारनुत् ॥ ४० ॥

अतीस,कुडेकीछाल और इन्द्रजौ इनके समान भाग मिश्रितचूर्णको चावलोंके जल और शहदके साथ मिलाकर सेवनकरनेसे पित्तातिसार नष्ट होताहै ॥४०॥

श्लेष्मातीसार-चिकित्सा ।

पथ्यादि ।

पथ्याग्निकटुका पाठा वचामुस्तकवत्सकैः ।
सनागरैर्जयेत्क्वाथः कल्को वा श्लैष्मिकीं स्रुतिम् ४१॥

हरड, चीता, कुटकी, पाढ, वच, नागरमोथा, इन्द्रजौ और सोंठ इनका काथ अथवा कल्क कफके अतीसारको जीतताहै ॥ ४१ ॥

चव्यादि ।

चव्यं सातिविषं मुस्तं बालबिल्वं सनागरम् ।
वत्सकत्वक्फलं पथ्या च्छर्दिश्लेष्मातिसारनुत ॥ ४२ ॥

चव्य, अतीस, नागरमोथा, कच्चे बेलकी गिरी, सोंठ, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ औरहरड इनका काथ पान करनेसे वमन और कफजनित अतिसार दूर होताहै॥

पाठादिचूर्ण ।

पाठा वचा त्रिकटुकं कुष्ठं कटुकरोहिणी ।
उष्णाम्बुना विनिघ्नन्ति श्लेष्मातीसारमुल्बणम्॥४३॥

पाढ, वच, सोंठ, पीपल, कालीमिरच, कूठ और कुटकी इनका चूर्ण उष्ण जलके साथ पानकरनेसे भयंकर कफातिसार दूर होताहै ॥ ४३ ॥

हिंग्वादिचूर्ण ।

हिङ्गुसौवर्चलं व्योषमभयातिविषा वचा ।
पीतमुष्णाम्बुना चूर्णं श्लेष्मातीसारनाशनम् ॥ ४४ ॥

हींग, कालानमक, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, अतीस और वच इनके चूर्णको गरमजलके साथ पान करनेसे कफातिसार नष्ट होताहै ॥ ४४ ॥

पथ्यादिचूर्ण ।

पथ्या पाठा वचा कुष्ठं चित्रकं कटुरोहिणी ।
चूर्णमुष्णाम्बुना पीतं श्लेष्मातीसारनाशनम् ॥ ४५ ॥

हरड,पाढ, वच,कूठ, चीता और कुटकी इन प्रत्येकके समान भाग चूर्णको गरम जलके साथ पानकरनेसे कफज आतिसार नष्ट होताहै ॥ ४५ ॥

द्वन्द्वजातीसार-चिकित्सा ।

द्विदोषलक्षणैर्विद्यादतीसारं द्विदोषजम् ।
तेषां चिकित्सा प्रोक्तैव विशिष्टा च निगद्यते ॥४६॥

जिस अतिसारमें दो दोषोंके मिलेहुए लक्षण होते हैं उसको द्विदोषज अतिसार कहते हैं । उनकी स्वतन्त्ररूपसे चिकित्सा पहिले लिखी जाचुकी है । अब यहाँ द्विदोषज अतिसारकी विशेषरूपसे चिकित्सा लिखीजाती है ॥४६॥

वातपित्तातिसार-चिकित्सा ।

कालिङ्गादि ।

कलिङ्गकवचामुस्तं दारुसातिविषं समम् ।
कल्कं तण्डुलतोयेन पिबेत् पित्तानिलामयी ॥ ४७ ॥

वात और पित्तके अतिसारवाले रोगीको इन्द्रजौ, वच, नागरमोथा, देवदारु और अतीस इन सबको समान भाग लेकर चावलोंके जलके साथ पीस कर कल्क बनाकर पान करना चाहिये ॥ ४७ ॥

पित्तश्लेष्मातिसार-चिकित्सा ।

मुस्तादि ।

मुस्ता सातिविषा मूर्वा वचा च कुटजः समः ।
एषां कषायः सक्षौद्रः पित्तश्लेष्मातिसारहृत् ॥ ४८ ॥

नागरमोथा, अतीस, मूर्वा, वच और कुडेकी छाल इनको समान भाग लेकर और यथाविधिसे काथ बनाकर उसमें शहद डालकर पानकरनेसे पित्त और कफातीसार दूर होताहै ॥ ४८ ॥

समङ्गादि ।

समङ्गा धातकी बिल्वमाम्रास्थ्यम्भोजकेशरम् ।
बिल्वं मोचरसं लोध्रं कुटजस्य फलत्वचौ ॥ ४९ ॥
पिबेत्तण्डुलतोयेन कषायं कल्कमेव वा ।
श्लेष्मपित्तातिसारघ्नं रक्तं वाथ नियच्छति ॥ ५० ॥

लज्जावन्ती, धायके फूल, बेलगिरी, आमकी गुठलीकी गिरी और कमलकेशर अथवा बेलगिरी, मोचरस, लोध, कुडेकी छाल और इन्द्रजौ;इनके काथ या कल्कको चावलोंके जलके साथ पान करनेसे पित्त-कफातिसार और रक्तज अतिसार शीघ्र दूर होता है॥ ४९ ॥ ५० ॥

कुटजादि ।

कुटजातिविषा मुस्तं हरिद्रापर्णिनीद्वयम् ।
सक्षौद्रशर्करं शस्तं पित्तश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ ५१ ॥

पित्त कफातिसारवाले रोगियोंको कुडेकी छाल, अतीस, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, शालपर्णी और पृश्निपर्णी इनके क्वाथमें शहद और मिश्री डालकर पान करनेसे शीघ्र लाभ होता है ॥ ५१ ॥

वातश्लेष्मातिसार--चिकित्सा ।

चित्रकादि ।

चित्रकातिविषामुस्तं बला बिल्वं सनागरम् ।
वत्सकत्वक्फलं पथ्या वातश्लेष्मातिसारनुत् ॥ ५२ ॥

चीता, अतीस, नागरमोथा, खिरैंटी, बेलगिरी, सोंठ, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ और हरड इनका क्वाथ वात और कफके अतिसारको नष्ट करता है ॥ ५२ ॥

त्रिदोषातिसार-चिकित्सा ।

वराहस्नेहमांसाम्बुसदृशं सर्वरूपिणम् ।
कृच्छ्रसाध्यमतीसारं विद्याद् दोषत्रयोद्भवम् ॥ ५३ ॥

त्रिदोषातिसारमें वातादि तीनों दोषोंके लक्षण प्रकट होते हैं । इसमें मल सूअरकी चर्वी और मांस मिश्रित जलकी समान होता है । यह त्रिदोषज अतीसार अत्यन्त कष्टसाध्य होता है ॥ ५३ ॥

समङ्गादि-कषाय ।

समङ्गातिविषा मुस्ता विश्वं ह्रीबेरधातकी ।
कुटजत्वक्फलं बिल्वं क्वाथः सर्वातिसारनुत् ॥ ५४ ॥

लज्जावन्ती, अतीस, नागरमोथा, सोंठ, सुगन्धवाला, धायके फूल, कुडेकी छाल इन्द्रजौ और बेलगिरी; इनका क्वाथ पान करनेसे सर्व प्रकारका अतीसार दूर होता है ॥ ५४ ॥

पञ्चमूली-बलादि ।

पञ्चमूली बलाबिल्वगुडूचीमुस्तनागरैः ।
पाठाभूनिम्बबर्हिष्ठ-कुटजत्वक्फलैः शृतम् ॥ ५५ ॥
सर्वजं हन्त्यतीसारं ज्वरञ्चापि तथा वमिम् ।
सशूलोपद्रवं श्वासं कासञ्चापि सुदुस्तरम् ॥ ५६ ॥

पञ्चमूल (पित्ताधिक्यमें स्वल्प पंचमूल और वात-कफाधिक्यमें बृहत्पंच-मूल लेनाचाहिये) खिरैंटी, बेलगिरी, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ, पाढ,चिरायता, सुगन्धवाला, कुडेकी छाल और इन्द्रजौ इनका क्वाथ शीतल करके पान करनेसे त्रिदोषजअतिसार, ज्वर, वमन, शूल आदि उपद्रवोंसहित दुस्तर श्वास और कास-विकार दूर होते हैं ॥ ५६ ॥

पुटपकौषधप्रयोगविधि ।

अवेदनं सुसंपक्वं दीप्ताग्नेः सुचिरोत्थितम् ।
नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाचरेत् ॥ ५७ ॥

यदि प्रदीप्तअग्निवाले रोगीके बहुतदिनोंका पुराना, पीडारहित, परिपक्व और अनेक वर्णका अतिसार (रोग) हो तो उसकी अतिसाररोगमें कहीहुई पुटपाककी औषधियोंसे चिकित्सा करनीचाहिये ॥ ५७ ॥

कुटज-पुटपाक ।

स्निग्धं घनं कुटजवल्कलजन्तवजग्ध-
मादाय तत्क्षणमतीव च कुट्टयित्वा ।
जम्बूपलाशपुटतण्डुलतोयसिक्तं
बद्धं कुशेन च बहिर्घनपङ्कलिप्तम् ॥ ५८ ॥
सुस्विन्नमेतदवपीड्य रसं गृहीत्वा
क्षौद्रेण युक्तमतिसारवते प्रदद्यात् ।
कृष्णात्रिपुत्रमतिपूजित एष योगः
सर्वातिसारहरणे स्वयमेव राजा ॥ ५९ ॥

चिकनी मोटी और जिसको कीडोंने न खाया हो, ऐसी कुडेकी जडकी छालको लेकर तत्क्षण खूब बारीक कूटकर चावलोंके जलमें पीसलेवे । फिर उसको जामुनके पत्तोंमें लपेटकर और कुशासे बाँधकर उसके ऊपर गाढी मिट्टीका लेप करके सुखालेवे । पश्चात् जब पककर शीतल होजाय तब उसमेंसे रसको निकाल लेवे।इस रसमें शहद मिलाकर अतिसारवाले.रोगीको सेवन

---

१ " स्वरसस्य गुरुत्वेन पुटपाके पलं पिबेत् ।
पुटपाकस्य पाकोऽयं बहिरारुणवर्णता ॥ "

पुटपाककी विधि यह है कि-जब पुटपाकका बाहरसे लालरंग होजाय, तब उसको पका हुआ जानकर निकाल लवे । फिर उसमेंसे रसको निकालकर एकएक पलकी मात्रासे पानकरे ।

कराना चाहिये। यह प्रयोग सर्वप्रकारके अतिसाररोगको नष्ट करनेके लिये सम्पूर्ण योगोंका राजा है। यह योग कृष्णात्रेयमुनिका कहा हुआहै॥५८॥५९

श्योनाकपुटपाक।

त्वक्पिण्डं दीर्घवृन्तस्य काश्मरीपत्रवेष्टितम्।
मृदावलिप्तं सुकृतमङ्गारेष्ववकूलयेत्॥ ६०॥
स्विन्नमुद्धृत्य निष्पीड्य रसमादाय यत्नतः।
शीतीकृतं मधुयुतं पाययेदुदरामये॥ ६१॥

अरलूकी जडकी छालको कूट पीसकर गोलासा बनालेवे। फिर उसको कुम्भेरके पत्तोंमें लपेटकर और ऊपरसे मिट्टीका लेपकर मन्द मन्द अग्निसे पुटपाक करना चाहिये। जब पककर शीतल होजाय तब औषधिको निकालकर उसमेंसे रसको निचोड लेवे। उस रसको उचित मात्रासे शहदमें मिलाकर उदररोगोंमें सेवन करानेसे शीघ्र लाभ होता है॥ ६०॥ ६१॥

दाडिम-पुटपाक।

दाडिमस्य फलं पिष्ट्वा पचेत् पुटविधानतः।
तद्रसं मधुसंमिश्रं पिबेत् सर्व्वातिसारनुत॥ ६२॥

कच्चे अनारके फलको पीसकर पूर्वोक्त विधिसे पुटपाक करे। फिर उसके रसको निकालकर दो तोले परिमाण लेकर मधुके साथ मिश्रितकर सेवन करनेसे सब प्रकारका अतीसार नष्ट होता है॥ ६२॥

कुटज-लेह।

शतं कुटजमूलस्य क्षुण्णं तोयार्म्मणे पचेत्।
क्वाथे पादावशेषेऽस्मिन् लेहं पूते पुनः पचेत्॥ ६३॥
सौवर्च्चलयवक्षारविडसैन्धवपिप्पली।
धातकीन्द्रयवाजाजीचूर्णं दत्त्वा पलद्वयम्॥ ६४॥
लिह्याद्बदरमात्रन्तु पीतं क्षौद्रेण संयुतम्।
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम्॥
दुर्व्वारं ग्रहणीरोगं जयेच्चैव प्रवाहिकाम्॥ ६५॥

कुडेकी जडकी छाल १०० पल लेकर और उसको अच्छीतरह कूटकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पककर चौथाईभाग जल शेष रहजावे, तब उतारकर छान लेवे। फिर उस काथको दुबारा मन्द मन्द अग्निसे पकावे। पककर

जब वह अवलेहकी समान होजाय, तब उसमें कालानमक, जवाखार, विरिया संचरनमक, सैंधानमक, पीपल, धायके फूल, इन्द्रजौ और जीरा इन प्रत्येक औषधिका चूर्ण दो दो पल मिलादेवे। प्रतिदिन एक एक तोले परिमाण लेकर शहदके साथ सेवन करे तो यह अवलेह पक, अपक, अनेक वर्णवाले और वेदनायुक्त अतिसार दुःसाध्य संग्रहणी और प्रवाहिकारोगको शीघ्र नष्ट करताहै ॥ ६३-६५ ॥

कुटजाष्टकावलेह।

तुलामथार्द्रां गिरिमल्लिकायाः संक्षुद्य पक्त्वा रसमाददीत।
तस्मिन् सुपूते पलसम्मितानि श्लक्ष्णानि पिष्ट्वासहशाल्मलेन
पाठांसमङ्गातिविषांसमुस्तांबिल्वञ्च पुष्पाणि च धातकीनाम्
प्रक्षिप्य भूयो विपचेत्तु तावद्दर्व्वीप्रलेपःस्वरसन्तु यावत्॥
पीतं त्वसौ कालविदा जनेन मण्डेन वाजापयसाथवापि।
निहन्ति सर्वन्त्वतिसारमुग्रं दोषं ग्रहण्या विविधञ्च रक्तम्॥
कृष्णं सितं लोहितपीतकं वा पित्तं तथार्शांसि सशोणितानि
असृग्दरश्चैवमसाध्यरूपं निहन्त्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम् ६९

कुडेकी जडकी गीली छालको सौ पल लेकर ओखलीमें कूटलेवे। फिर उसको एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस क्वाथमें मोचरस, पाढ, लज्जावन्ती, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी और धायके फूल इन औषधियोंको खूब बारीक पीसेहुए चार २ तोले प्रमाण चूर्णको डालकर तबतक मन्दमन्द अग्निसे पकावे जबतक कि वह स्वरस करछीसे चिपकने न लगे। फिर देश,काल और दोषोंका विचार-कर इस अवलेहको उचितमात्रासे मॉड अथवा बकरीके दूधके साथ सेवन करे। यह कुटजाष्टक अवलेह सर्वप्रकारके भयंकर अतिसार, संग्रहणी, नानाप्रकारके रक्तविकार, काला, सफेद, लाल, पीले और पित्तज अतिसार, बवासीर, रुधि-रकी बवासीर और असाध्य रक्त प्रदररोगको भी अवश्य नष्ट करताहै६६-६९

दुग्ध-पानविधि।

जीर्णेऽमृतोपमं क्षीरमतीसारे विशेषतः।
छागं तद्भेषजैः सिद्धं पेयं वा वारिसाधितम्॥ ७०॥

---

१ तुला द्रव्ये जलद्रोणो द्रोणे द्रव्यं तुला मता।

विशेषकर पुराने अतिसारमें बकरीके दूधको अतिसारनाशक औषधियोंके साथ पकाकर अथवा केवल जलके साथ पकाकर देनेसे विशेष लाभ होताहै७०

शोथातिसार-चिकित्सा ।

शोथघ्नीन्द्रयवाः पाठा श्रीफलातिविषाघनाः ।
क्वथिताः सोषणाः पीताः शोथातीसारनाशनाः॥७१॥

पुनर्नवा, इन्द्रजौ, पाढ, बेलगिरी, अतीस और नागरमोथा इनका काथ, काली मिरचोंका चूर्ण बनाकर उसमें डालकर पान करनेसे शोथातीसार नष्ट होता है ॥ ७१ ॥

विडङ्गातिविषामुस्तं दारु पाठा कलिङ्गकम् ।
मरिचेन समायुक्तं शोथातीसारनाशनम् ॥ ७२ ॥

वायविडङ्ग, अतीस, नागरमोथा, देवदारु, पाढ और इन्द्रजौ इनके काथमें कालीमिरचोंका चूर्ण डालकर पानकरनेसे शोथयुक्त अतीसार नष्ट होताहै७२॥

भय-शोकज अतीसार चिकित्सा ।

भयशोकसमद्भूतो ज्ञेयौ वातातिसारवत् ।
तयोर्वातहरी कार्या हर्षणाश्वासनैः क्रिया ॥ ७३ ॥

भय और शोकसे उत्पन्नहुए अतिसारोंको वातज अतिसारकी समान जानना चाहिये । अतः उक्त दोनों प्रकारके अतीसारोंमें वातनाशकचिकित्सा एवं हर्षजनक धैर्यप्रदान आदि कार्य करे ॥ ७३ ॥

पृश्निपर्ण्यादि ।

पृश्निपर्णीबलाबिल्वधान्यकोत्पलनागरैः ।
विडङ्गातिविषा मुस्ता दारुपाठाकलिङ्गकैः ॥
मरिचेन समायुक्तः शोकातीसारनाशनः ॥ ७४ ॥

पृश्निपर्णी, खिरैंटी, बेलगिरी, धनियाँ, कुमोदिनी, (नीलोफर), सोंठ, वायविडंग, अतीस, नागरमोथा, देवदारु, पाढ और इन्द्रजौ इनके काथमें काली-मिरचोंका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे शोकजनित अतिसार दूर होताहै ७४॥

रक्तातिसार-चिकित्सा ।

गुडेन खादितं बिल्वं रक्तातीसारनाशनम् ।
आमशूलविबन्धघ्नं कुक्षिरोगविनाशनम् ॥ ७५ ॥

बेलकी गिरीको गुडके साथ खानेसे रक्तातीसार तथा आम, शूल, मलकी बद्धता और कुक्षिरोग ये सब नष्ट होते हैं ॥ ७५ ॥

शल्लकीबदरीजम्बूपियालाम्राज्र्जुनत्वचः ।
पीताः क्षीरेण मध्वाढ्याः पृथक्शोणितनाशनाः ॥७६॥

सालईकी जडकी छाल, बेरीकी छाल, जामुनकी छाल, चिरोंजीकी छाल, आमकी छाल, या अर्जुनकी छाल इनमेंसे किसी एककी छालको पीसकर दूध और शहदके साथ मिलाकर पान करनेसे रक्तातिसार दूर होता है। ये प्रत्येक छाल रक्तस्रावको बन्द करनेवाली है ॥ ७६ ॥

पीतं मधुसितायुक्तं चन्दनं तण्डुलाम्बुना ।
रक्तातीसारजिद्रक्तपित्ततृड्दाहमेहनुत् ॥ ७७ ॥

शहद, मिश्री और लालचन्दन इनको समानभाग लेकर चावलोंके जलके साथ पानकरनेसे रक्तातीसार, रक्तपित्त,तृषा, दाह और प्रमेहरोग नष्ट होताहै ॥

कषायो मधुना पीतस्त्वचा दाडिमवत्सकात् ।
सद्यो जयेदतीसारं सरक्तं दुर्निवारकम् ॥ ७८ ॥

अनारकी छाल और कुडेकी छालके काथको शहदके साथ पान करनेसे दुर्जय रक्तातीसार तत्काल दूर होता है ॥ ७८ ॥

जम्ब्वाम्रामलकानां तु पल्लवानथ कुट्टयेत् ।
संगृह्य स्वरसं तेषामजाक्षीरेण योजयेत् ॥
तं पिबेन्मधुना युक्तं रक्तातीसारनाशनम् ॥ ७९ ॥

जामुन, आम और आमलेके पत्तोंको कूटकर उनका स्वरस निकालकर बकरीके दूध और शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे रक्तातीसार निवारण होता है ॥ ७९ ॥

बिल्वं छागपयःसिद्धं सितामोचरसान्वितम् ।
कलिङ्गचूर्णसंयुक्तं रक्तातीसारनाशनम् ॥ ८० ॥

बकरीके दूधमें बेलगिरीको पकाकर उसमें मिश्री, मोचरस और इन्द्रजौका चूर्ण डालकर पानकरनेसे रक्तातीसार नष्ट होता है ॥ ८० ॥

ज्येष्ठाम्बुना तण्डुलीयं पीतञ्च ससितामधु ॥

पीत्वा शतावरीकल्कं पयसा क्षीरभुग्जयेत्।
रक्तातिसारं पीत्वा वा तया सिद्धं घृतं नरः॥ ८१॥

चौलाईकी जडको चावलोंके पानीके साथ पीसकर उसमें मिश्री और शहद मिलाकर पानकरनेसे रक्तातीसार नष्ट होता है। शतावरके कल्कको बकरीके दूधके साथ पान करनेसे और उसपर दूधके साथ भोजन करनेसे अथवा शतावरके क्वाथ और कल्कके द्वारा सिद्ध कियेहुए घृतको पान करनेसे रक्तातीसार दूर होता है॥ ८१॥

कुटजत्वक्कृतः क्वाथो घनीभूतः सुशीतलः।
लेहितोऽतिविषायुक्तः सर्वातीसारनुद्भवेत्॥ ८२॥

कुडेकी छालके क्वाथको पकाकर अवलेहकी समान गाढा बनालेवे। जब पककर शीतल होजाय तब उसमें अतीसका चूर्ण मिलाकर चाटनेसे सब प्रकारका अतीसार नष्ट होता है॥ ८२॥

कुटजस्य पलं ग्राह्यमष्टभागजले शृतम्।
तथैव विपचेत् भूयो दाडिमोदकसंयुतम्॥ ८३॥
यावच्चैव लसीकाभं शृतं तमुपकल्पयेत्।
तस्यार्द्धकर्षं तक्रेण पिबेद्रक्तातिसारवान्॥
अवश्यमरणीयोऽपि मृत्योर्याति न गोचरम्॥ ८४॥

कुडेकी छालको ४ तोले लेकर अठगुने जलमें पकावे और चतुर्थांश जल शेष रक्खे। फिर उस क्वाथको छानकर और उसमें अनारका रस डालकर फिर पूर्वोक्त विधिसे पकावे। जब वह पाक अवलेहकी समान गाढा होजाय तब उतारलेवे। पश्चात् उसको एक तोला परिमाण मट्ठेके साथ मिलाकर सेवन करनेसे मृत्युके मुखमें पतितहुआ भी रक्तातिसारवाला रोगी अवश्य आरोग्य लाभ करता है॥ ८३॥ ८४॥

कल्कस्तिलानां कृष्णानां शर्कराभागसंयुतः।
आजेन पयसा पीतः सद्यो रक्तं नियच्छति॥ ८५॥

कालेतिलोंको पीसकर उसमें चौथाई भाग खाँड मिलाकर बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे रक्तातीसार तत्काल दूर होता है॥ ८५॥

निःक्काथ्य मूलममलं गिरिमल्लिकायाः
सम्यक्पलद्वितयमम्बु चतुःशरावे।
तत्पादशेषसलिलं खलु शोषणीयं
क्षीरे पलद्वयमिते कुशलैरजायाः॥ ८६॥
प्रक्षिप्य माषकानष्टौ मधुनस्तत्र शीतले।
रक्तातिसारी तं लीढ्वा नैरुज्यमधिगच्छति॥ ८७॥

कुडेकी शुद्ध छालको ८ तोले लेकर ४ शराव (६४ तोले) जलमें पकावे। जब चौथाई जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर शीतल होजाने-पर उसको ८ तोले प्रमाण बकरीके दूधमें मिलाकर और८माशे शहद डालकर पान करनेसे रक्तातिसारवाला रोगी शीघ्रही आरोग्य लाभ करताहै॥८६॥८७॥

वटरोहन्तु संपिष्य श्लक्ष्णं तण्डुलवारिणा।
तत्पिबेत् तक्रसंयुक्तमतीसाररुजापहम्॥ ८८॥

बडके अंकुरोंको चावलोंके पानीके साथ खूब बारीक पीसकर मट्ठेके साथ पानकरनेसे अतीसाररोग दूर होता है॥ ८८॥

तण्डुलजलपिष्टाङ्कोटमूलककर्षार्द्धपानमपहरति।
सर्वातिसारग्रहणीरोगसमूहञ्च महाघोरम्॥ ८९॥

अङ्कोट (ढेरा) वृक्षकी जडको आठ माशे लेकर चावलोंके जलमें पीसकर पीनेसे सब प्रकारके भयङ्कर अतीसार, संग्रहणी आदि रोग नष्ट होते हैं॥८९॥

विशल्यकरणीक्वाथश्चाथवा कुक्कुरद्रुजः।
वारयेच्छोणितस्रावं रक्तातीसारमुल्बणम्॥ ९०॥

विशल्यकरणी (रकपतिया घास) का क्वाथ अथवा कुकुरौंदेका रस पान करतेही रक्तस्राव और प्रबल रक्तातिसार नष्ट होता है॥ ९०॥

पीत्वा सशर्करं क्षौद्रं चन्दनं तण्डुलाम्बुना।
दाहं तृष्णां प्रमेहञ्च सद्यो रक्तं नियच्छति॥ ९१॥
नवनीतं मधुयुतं लिहेद्वा सितया सह।
नागकेशरसंयुक्तं रक्तसंग्रहणं परम्॥
मधुपादं सिताद्धांशं नवनीतं चतुर्गुणम्॥ ९२॥

मिश्री, शहद और चन्दनका चूर्ण इनको समान भाग लेकर चावलोंके जलके साथ पान करनेसे दाह, तृषा, प्रमेह और रक्तातिसार शीघ्र दूर होता है। अथवा नैनीघीको शहदके साथ या मिश्रीके साथ किम्वा नागकेशरके साथ सेवन करनेसे अथवा शहद १ भाग, मिश्री २ भाग और नैनीघी ४ भाग सबको एकत्र मिलाकर खानेसे रक्तस्राव बन्द होता है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

रसाञ्जनादिचूर्ण ।

रसाञ्जनं चातिविषां कुटजस्य फलत्वचम् ।
धातकीं शृङ्गबेरञ्च पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥
क्षौद्रयुक्तं प्रणुदति रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ ९३ ॥

रसौत, अतसि, इन्द्रजौ, कुडेकी छाल, धायके फूल और सोंठ इनके चूर्णको समानभाग लेकर चावलोंके जलमें पीसकर शहदके साथ सेवन करनेसे प्रबल रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ ९३ ॥

नारायणचूर्ण ।

गुडूची वृद्धदारञ्च कुटजस्य फलं तथा ।
बिल्वञ्चातिविषा चैव भृङ्गराजञ्च नागरम् ॥ ९४ ॥
शक्राशनस्य चूर्णञ्च सर्वमेकत्र मेलयेत् ।
चूर्णमेतत् समं ग्राह्यं कुटजस्य त्वचोऽपि च ॥ ९५ ॥
गुडेन मधुना वापि लेहयेद्भिषजां वरः ।
शोथं रक्तमतीसारं चिरजं दुर्जयं तथा ॥ ९६ ॥
ज्वरं तृष्णाञ्च कासञ्च पाण्डुरोगं हलीमकम् ।
मन्दानलं प्रमेहञ्च गुदजञ्च विनाशयेत् ॥
एतन्नारायणं चूर्णं श्रीनारायणभाषितम् ॥ ९७ ॥

गिलोय, विधारा, इन्द्र जो, बेलगिरी, अतीस, भाँगरा, सोंठ और भाँग इन सबके चूर्णको समान भाग लेवे और सम्पूर्ण चूर्णकी बराबर भाग कुडेकी छालका चूर्ण लेकर सबको एकत्र मिलालेवे। इस चूर्णको पुराने गुड अथवा शहदके साथ सेवन करनेसे सूजन तथा बहुत पुराना और दुस्साध्य रक्तातिसार, ज्वर, तृषा, खाँसी, पाण्डुरोग, हलीमक, मन्दाग्नि, प्रमेह और गुदाके मस्त रोग शीघ्र नष्ट होतेहैं। इस नारायणचूर्णको श्रीनारायणने कहा है॥९७

गुदपाकमें विधि ।

गुददाहे प्रपाके वा पटोलमधुकाम्बुना ।
सेकादिकं प्रशंसन्ति छागेन पयसापि वा ॥
गुदभ्रंशे प्रकर्त्तव्या चिकित्सा तत्प्रकीर्त्तिता ॥ ९८ ॥

अतिसारके कारण गुदामें दाह अथवा पाक होनेपर पटोलपात और मुलैठीके क्वाथ अथवा बकरीके दूधसे गुदाद्वारको सिंचन करना चाहिये और गुदभ्रंशरोगमें कहीहुई चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ९८ ॥

साधारणातिसार-चिकित्सा ।

बिल्वादि ।

बिल्वचूतास्थिनिर्यूहः पीतः सक्षौद्रशर्करः ।
निहन्याच्छर्द्यतीसारं वैश्वानर इवाहुतिम् ॥ ९९ ॥

बेल और आमकी गुठलीका क्वाथमें खांड और शहद डालकर पानकरनेसे वमनयुक्त अतीसार निवारण होताहै ॥ ९९ ॥

पटोलादि ।

पटोलयवधन्याकक्वाथः पीतः सुशीतलः ।
शर्करामधुसंयुक्तश्छर्द्यतीसारनाशनः ॥ १०० ॥

परबल, जौ और धनियाँ इनके शीतल क्वाथमें मधु और खांड मिलाकर पानकरनेसे वमन और अतीसाररोग नष्ट होताहै ॥ १०० ॥

प्रियंग्वादि ।

प्रियंग्वञ्जनमुस्ताख्यं पाययेत्तु यथाबलम् ।
तृष्णातीसारछर्दिघ्नं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ॥ १०१ ॥

फूलप्रियंगु, रसौत और नागरमोथा इनके चूर्णको शहद और चावलोंके पानीके साथ मिलाकर जठराग्निके बलानुसार पान करानेसे तृषा, अतिसार, वमन आदि उपद्रव दूर होतेहैं ॥ १०१ ॥

जम्ब्वादि ।

जम्ब्वाम्रपल्लवोशीर-वटशुङ्गावरोहकम् ।
रसः क्वाथोऽथवा चूर्णं क्षौद्रेण सह योजितम् ॥१०२॥
छर्दिं ज्वरमतीसारं मूर्च्छां तृष्णाञ्च दुर्जयाम् ।
नाशयत्यचिराद्धन्ति स्रुतिं वानेकहेतुकाम् ॥ १०३ ॥

जामुन और आमके कोमलपत्ते, खस, बडके अंकुर और बडकी डाढी इन सबका स्वरस, काथ अथवा चूर्ण मधुके साथ मिलाकर सेवन करनेसे वमन, ज्वर, अतीसार, मूर्च्छा और दुस्तर तृषा दूर होतीहै । यह योग अनेक कारणोंसे उत्पन्नहुए रक्तस्रावको शीघ्र नष्ट करताहै ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

वत्सकादि ।

सवत्सकः सातिविषः सबिल्वः सोदीच्यमुस्तश्च कृतः कषायः ।
सामे सशूले सहशोणिते च चिरप्रवृत्तेऽपि हितोऽतिसारे १०४

इन्द्रजौ, अतीस, बेलगिरी, सुगन्धवाला और नागरमोथा इनका काथ आम और शूलयुक्त पुराने रक्तातिसारमें विशेष हितकारी है ॥ १०४ ॥

नाभिप्रलेप ।

कृत्वालवालं सुदृढं पिष्टैरामलकैर्भिषक् ।
आर्द्रकस्य रसेनाथ पूरयेन्नाभिमण्डलम् ॥
नदीवेगोपमं घोरमतीसारं विनाशयेत् ॥ १०५ ॥

वैद्य, आमलोंको पीसकर उसके द्वारा रोगीकी नाभिके चारों ओर गोलगोल थाँवलासा बनाकर उसमें अदरखके रसको भरदेवे । इससे नदीके वेगकी समान भयंकर अतीसार शीघ्र दूर होता है ॥ १०५ ॥

तथा जातीफलं पिष्ट्वा नाभौ दद्यात् प्रलेपनम् ।
दुर्निवारमतीसारं वारयत्यनिवारितम् ॥ १०६ ॥

जायफलको पीसकर नाभिपर प्रलेप करनेसे असाध्य अथवा कष्टसाध्य अतिसार भी दूर होता है ॥ १०६ ॥

आम्रस्य वल्कलं पिष्टं काञ्जिकेन प्रयत्नतः ।
नाभिं संलेपयेत्तेन कल्केन मतिमान् भिषक् ॥
नदीवेगोपमं घोरमतीसारं निवारयेत् ॥ १०७ ॥

आमकी छालको काँजीमें पीसकर नाभिके चारों ओर प्रलेप करनेसे नदीकी समान वेगवाला अतीसार भी नष्ट होता है ॥ १०७ ॥

प्रवाहिका-चिकित्सा ।

बालं बिल्वं गुडं तैलं पिप्पली विश्वभेषजम् ।
लिह्याद्वाते प्रतिहते सशूले सप्रवाहिके ॥ १०८ ॥

वातज और शूलयुक्त प्रवाहिकारोगमें कच्चे बेलका सूखा गूदा, गुड, तिलका तैल, पीपल और सोंठ इन सबको एकत्र मिलाकर सेवन करना हितकारी हैं॥

पयसा पिप्पलीकल्कः पीतो वा मरिचोद्भवः ।
त्र्यहात् प्रवाहिकां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम्॥१०९

पीपलके कल्क या काली मिरचोंके कल्कको दूधके साथ सेवन करनेसे बहुत दिनोंकी पुरानी प्रवाहिका तीन दिनमें शमन होतीहै ॥ १०९ ॥

कल्कः स्याद्बालबिल्वानां तिलकल्कश्च तत्समम् ।
दध्नः सराम्लस्नेहाढ्यः सद्यो हन्यात् प्रवाहिकाम्॥११०

कच्चे बेलकी गिरीका कल्क और उसके समान तिलोंका कल्क लेकर दहीकी मलाई, खट्टा और स्नेहयुक्त करके पान करनेसे प्रवाहिकारोग शीघ्र नष्ट होताहै॥

बिल्वोषणं गुडं लोध्रं तैलं लिह्यात् प्रवाहणे ॥ ११ ॥

प्रवाहिका रोगीके लिये बेलगिरी कालीमिरच, गुड, लोध और तिलका तेल इन सबको समान भाग लेकर और मिलाकर सेवन करने चाहिये ॥ ११ ॥

दध्ना ससारेण समाक्षिकेण भुञ्जीत निस्सारकपीडितस्तु।
सुतप्तरूप्यक्वथितेन वापि क्षीरेण शीतेन मधुप्लुतेन १२॥

मलाईसहित दहीके साथ शहद मिलाकर भक्षण करनेसे अथवा तपाई हुई चाँदीको बुझाकर उस दूधको शीतल करके और उसमें शहद मिलाकर पान॰ करनेसे प्रवाहिकारोग दूर होता है ॥ १२ ॥

तासामतीसारवदादिशेच्च लिङ्गं क्रमञ्चामविपक्वताञ्च॥१३॥

प्रवाहिकारोगके लक्षण, चिकित्सा एवं आम और पक्वलक्षण अतीसारकी समान जानने चाहिये ॥ १३ ॥

अहिफेनयोग ।

अहिफेनं सुसंभ्रष्टं खर्परे मृदुवह्निना ।
हिक्कातीसारशमनं भेषजं नास्त्यतः परम् ॥ १४ ॥

अफीमको मिट्टीके पात्रमें मन्दअग्निसे अच्छे प्रकार भूनकर उचित मात्रासे प्रयोग करनेसे हिचकी और अतिसाररोग शमन होताहै ॥ १४ ॥

अहिफेनवटिका ।

अहिफेनं सखर्जूरं घृष्ट्वा गुञ्जैकमात्रकम् ।
रक्तस्रावमतीसारमतिवृद्धं विनाशयेत् ॥ १५ ॥

अफीम और खजूर (छुहारा) इन दोनोंको बराबर भाग लेकर एकत्र खरल करके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको सेवन करनेसे अत्यन्तवृद्धिको प्राप्तहुआ अतीसार और रक्तस्राव दूर होताहै ॥ १५ ॥

जातीफलादिवटी ।

जातीफलञ्च खर्ज्जूरमहिफेनं तथैव च ।
समभागानि सर्वाणि नागवल्लीरसेन च ॥ १६ ॥
वल्लमात्रा बटी कार्या देया तक्रानुपानतः ।
अतीसारं जयेद्घोरं वैश्वानर इवाहुतिम् ॥ १७ ॥

जायफल, खजूर (छुहारा) और अफीम इनको समानभाग लेकर पानके रसमें खरल करके दोदो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । एकएक गोली मट्ठेके साथ देनेसे भयंकर अतिसार इस प्रकार नष्ट होजाताहै, जिस प्रकार अग्नि आहुतिको तत्काल भस्म करदेताहै ॥ १६ ॥ १७ ॥

पूर्णचन्द्रोदयरस ।

शुद्धञ्च तालकं लौहं गगनञ्च पलं पलम् ।
कर्पूरं पारदं गन्धं प्रत्येकं वटकोन्मितम् ॥ १८ ॥
जातीकोषं मुरापत्रं शठी तालीशकेशरम् ।
व्योषं चोचं कणामूलं लवङ्गं पिचुसम्मितम् ॥ १९ ॥
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्च्चकः ।
नानारूपमतीसारं ग्रहणीं सर्वरूपिणीम् ॥ २० ॥
अम्लपित्तं तथा शूलं शूलञ्च परिणामजम् ।
रसायनवरश्चायं वाजीकरण उत्तमः ॥ २१ ॥

शुद्धहरिताल, लोहा और अभ्रक ये प्रत्येक चार चार तोले, कपूर,पारा और शुद्धगन्धक ये प्रत्येक एकएक तोला एवं जावित्री, कपूरकचरी, तेजपात, कचूर, तालीसपत्र, केशर, सोंठ, पीपल, मिरच, दारचीनी, पीपलामूल और लौंग ये प्रत्येक दो दो तोले लेवे। सबको एकत्र खरल करके एक शीशीमें भरकर रखदेवे। इस चूर्णको प्रतिदिन प्रातःकाल गुरु और इष्टदेवका पूजन कर दो दो रत्तीकी मात्रासे सेवन करे तो यह अनेक प्रकारके अतिसार, सब प्रकारकी संग्रहणी, अम्लपित्त, शूल और परिमाण शूलको नष्ट करता है। यह चूर्ण अतिश्रेष्ठ रसायन और उत्तम वाजीकरण औषधि है ॥ १८-२१ ॥

बृहद्गगनसुन्दररस ।

पारदं गन्धकश्चाभ्रं लौहश्चापि वराटकम् ।
रूप्यं चातिविषां कर्षं समभागं प्रकल्पयेत् ॥ २२ ॥
धान्यशुण्ठीकृतक्काथैर्भावयेच्च पृथक् पृथक् ।
गुञ्जाप्रमाणां वटिकां कारयेत् कुशलो भिषक् ॥ २३ ॥
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चकः ।
दग्धबिल्वं गुडेनैव कुर्यात्तदनुपानकम् ॥ २४ ॥
अजादुग्धेन वा पेयं जम्बुत्वक्साधितं रसम् ।
अतीसारे ज्वरे घोरे ग्रहण्यामरुचौ तथा ॥ २५ ॥
सामे सशूले रक्ते च पिच्छास्रावे भ्रमे तथा ।
शोथे रक्तातिसारे च संग्रहग्रहणीषु च ॥ २६ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, अभ्रक, लोहा, कौडी और चाँदी इन सबकी भस्म और अतीस इन प्रत्येक औषधिको दो दो तोले लेकर धनियें और सोंठके काथमें अलग २ भावना देवे। फिर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस रसकी प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर गुरु और इष्टदेवका पुजन कर एकएक गोली भक्षण करे और ऊपरसे भुनेहुए बेलको गुडके साथ अथवा बकरीके दूधको किंवा जामुनकी छालके काथको अनुपानरूपसे सेवन करे। इसके सेवनसे अतिसार, ज्वर, ग्रहणी, अरुचि, आम, शूल, रक्तस्राव, भ्रम, सूजन, रक्तातिसार और प्रबल ग्रहणीरोग नष्ट होता है ॥ २२-२६ ॥

लोकनाथरस ।

भस्म सूतस्य भागैकं चत्वारः शुद्धगन्धकात् ।
क्षिप्त्वा वराटिकागर्भे टङ्कणेन निरुध्य च ॥ २७ ॥
भाण्डे रुध्वा पुटे पाच्यं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
लोकनाथरसो नाम क्षौद्रैर्गुञ्जाचतुष्टयम ॥ २८ ॥
नागरातिविषा मुस्तं देवदारु वचान्वितम् ।
कषायमनुपानं तु सर्वातीसारनाशनः ॥ २९ ॥

पारेकी भस्म १ भाग, शुद्ध गन्धक ४ भाग लेकर दोनोंको एक कौडीमें भरकर उसके मुखको सुहागेसे बन्द करके मूषायंत्रमें रखकर पुटपाकविधिसे पकावे। जब पककर स्वांगशीतल होजाय तब कौडीको निकालकर पीसलेवे।

पश्चात् इस लोकनाथनामक रसको चार चार रत्तीकी मात्रासे शहदमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे सोंठ, अतीस, नागरमोथा, देवदारु आर वच इनके काथको पीवे तो इससे सब प्रकारके अतिसार नष्ट होते हैं ॥२७-२९॥

बृहच्चिन्तामणिरस ।

शुद्धसूतं मृतं ताम्रं गन्धकं प्रतिकार्षिकम् ।
चूर्णयेद्विषकर्षार्द्धं विषार्द्धं तिन्तिडीफलम् ॥ ३० ॥
मर्दयेत् खल्लमध्ये तु चाम्लेन गोलकीकृतम् ।
गर्तं षडङ्गुलं कुर्यात सर्वतो वर्त्तुलं शुभम् ॥ ३१ ॥
नागवल्लयाः क्षिपेत् पत्रमादौ पात्रे च गोलकम् ।
आच्छाद्य तच्च पत्रेण रुध्वा गजपुटे पचेत् ॥ ३२ ॥
स्वांगशीतं समुद्धृत्य सपत्रश्च विशेषतः ।
कर्षार्द्धं मरिचं दत्वा कर्षार्द्धं तिन्तिडीफलम् ॥ ३३ ॥
गुञ्जामितां वटीं कुर्याच्चिन्तामणिरसो महान् ।
अतीसारे त्रिदोषोत्थे संग्रहग्रहणीगदे ॥
अनुपानं विधातव्यं यथादोषानुसारतः ॥ ३४ ॥

शुद्धपारा, ताँबेकी भस्म और शुद्धगन्धक यह प्रत्येक औषधि एकएक कर्ष शुद्ध मीठातेलिया ८ माशे और इमलीका गूदा ३ माशे लेवे । इन सबको एकत्र खरल करके गोलासा बनालेवे । फिर छः अंगुल गहरे और चारोंओरसे गोल ऐसे एक उत्तम पात्रको लेकर उसमें एक नागरवेलका पान रक्खे और पानके ऊपर उक्त गोलेको रखकर दूसरे पानसे उसे ढकदेवे । फिर अच्छेप्रकारसे उसके मुखको बन्द करके गजपुटमें रखकर पकावे । जब स्वांगशीतल होजाय तब निकालकर पानोंसहित उसको पीसलेवे । पश्चात् उसमें कालीमिरच और इमलीका आठ आठ माशे चूर्ण डालकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस रसको त्रिदोषज अतिसार और संग्रहणीरोगमें यथादोषानुसार उचित अनुपानके साथ सेवन करना चाहिये । इसको बृहच्चिन्तामणिरस कहते हैं ॥ १३०-३४ ॥

भुवनेश्वर रस ।

सैन्धवं त्रिफलाश्चैव यमानीं बिल्वपेशिकाम् ।
गृहधूमं गृहीत्वा च प्रत्येकं समभागिकम् ॥ ३५ ॥

जलेन मर्दयित्वा तु माषमात्रां वटीं चरेत्।
खादेत्तोयानुपानेन सर्वातीसारशान्तये॥ ३६॥

सैंधानमक, हरड, आमला,बहेडा, अजवायन, बेलगिरी और घरका धुआँ इन सबको समानभाग लेकर जलके साथ खरलकर एकएक माशेकी गोलियाँ बनालेवे। इसकी एकएक गोली जलके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका अतीसार शान्त होता है॥ ३५॥ ३६॥

जातीफलरस।

पारदाभ्रकसिन्दूरं गन्धं जातीफलं समम्।
कुटजस्य फलञ्चैव धूर्त्तबीजानि टङ्कणम्॥ ३७॥
व्योषं मुस्ताभया चैव चूतबीजं तथैव च।
बिल्वकं सर्ज्जबीजञ्च दाडिमीफलवल्कलम्॥ ३८॥
एतानि समभागानि निःक्षिपेत खल्लमध्यतः।
विजयास्वरसेनैव मर्द्दयेत् श्लक्ष्णचूर्णितम्॥ ३९॥
गुञ्जाफलप्रमाणां तु वटिकां कारयेद्भिषक्।
एकां कुटजमूलत्वक्कषायेण प्रयोजयेत्॥ १४०॥
आमातिसारं हरति कुरुते वह्निदीपनम्।
मधुना बिल्वशुण्ठ्या च रक्तग्रहणिकां जयेत॥ ४१॥
शुण्ठीधान्यकयोगेन चातिसारं निहन्त्यसौ।
जातीफलरसो ह्येष ग्रहणीगदहारकः॥ ४२॥

शुद्धपारा, अभ्रक, रससिन्दूर, शुद्ध गन्धक, जायफल, इन्द्रजौ, धतूरेके बीज, सुहागा, सोंठ, पीपल, मिरच, नागरमोथा, हरड, आमकी गुठली, बेलगिरी, शालके बीज, अनारदाने और अनारका बक्कल इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर भाँगके रसमें खूब बारीक खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इसकी एकएक गोली प्रतिदिन प्रातःकाल कुडेकी जडकी छालके काथके साथ सेवनकरे तो यह रस आमातिसारको नष्ट करता है और जठराग्निको दीपन करता है। इस रसको शहद और बेलगिरीके साथ सेवन करनेसे रक्तजग्रहणी दूर होती है।सोंठ और धनियेके काथके साथ सेवन करनेसे अतिसार एवं जायफलके काथके साथ सेवन करनेसे संग्रहणी रोग नष्ट होता है॥ ३७–४२॥

अभयनृसिंहरस ।

दरदञ्च विषं व्योषं जीरकं टङ्कणं समम् ।
गन्धकञ्चाभ्रकञ्चैव भागैकं शुद्धसूतकम् ॥ ४३ ॥
आफूकं सर्व्वतुल्यं स्यान्मर्द्दयेन्निम्बुकद्रवैः ।
एकैकं भक्षयेच्चानु जीरकं मधुना सह ॥ ४४ ॥
त्रिदोषोत्थमतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् ।
सर्वरूपमतीसारं संग्रहग्रहणीं जयेत ॥
रसोऽभयनृसिंहोऽयमतीसारे सुपूजितः ॥ ४५ ॥

सिंगरफ, शुद्ध मीठा तेलिया, सोंठ, पीपल, मिर्च, जीरा, सुहागा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक और शुद्धपारा ये सब समान भाग और अफीम सबके बराबर भाग लेवे। फिर सबको नींबूके रसमें खरल कर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बना-लेवे । इनमेंसे प्रतिदिन १–१ गोली शहदके साथ सेवन करनेसे त्रिदोषज अति-सार, ज्वरसहित व ज्वररहित अतिसार और संग्रहणीरोग नष्ट होता है । यह अभयनृसिंह नामक रस अतिसार रोगकी परमोत्तम औषधि है ॥४३–४५॥

आनन्दभैरवरस ।

दरदं मरिचं टङ्कममृतं मागधीसमम् ।
श्लक्ष्णपिष्टं तु गुञ्जैकं रसमानन्दभैरवम् ॥ ४६ ॥
लेहयेन्मधुना चानु कुटजस्य फलत्वचः ।
चूर्णितं कर्षमात्रं तु त्रिदोषोत्थातिसारजित् ॥ ४७ ॥
दध्यन्नं दापयेत् पथ्यं दध्याजं तक्रमेव च ।
पिपासायां जलं देयं विजया च हिता निशि ॥४८॥

सिंगरफ, मिरच, सुहागा, शुद्धमीठा तेलिया और पीपल इनको समानभाग लेकर खूब बारीक पीसकर जलमें खरलकरके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बना-लेवे । इस आनन्दभैरव नामक रसकी एक एक गोली मधुके साथ सेवन करे और ऊपरसे इन्द्रजौ तथा कुडेकी जडकी छालके चूर्णको एकएक तोला परि-माण लेकर शहदके साथ सेवन करे । इसके सेवन करनेसे त्रिदोषज अतिसार नष्ट होता है । इसपर बकरीके दूध, दही और मट्ठेके साथ भातका पथ्य देवे । प्यास लगनेपर जल पान कराना और रात्रिमें भाँगको सेवन कराना उपयोगी है ॥ ४६–४८ ॥

कर्पूररस ।

हिङ्गुलञ्चाहिफेनञ्च मुस्तकेन्द्रयवं तथा ।
जातीफलञ्च कर्पूरं सर्व्वं संमर्द्य यत्नतः ॥ ४९ ॥
जलेन वटिका कार्या द्विगुञ्जापरिमाणतः ।
ज्वरातिसारिणे चैव तथातीसाररोगिणे ।
ग्रहणीषट्प्रकारे च रक्तातीसार उल्बणे ॥ १५० ॥

हिंगुल, अफीम, नागरमोथा, इन्द्रजौ, जायफल और कपूर इन सबको समान भाग लेकर जलमें उत्तमप्रकारसे खरलकरके दोदो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह कर्पूररस ज्वरातिसारवाले तथा साधारणअतिसारवाले रोगीके लिये एवं छः प्रकारकी संग्रहणी और प्रबलरक्तातिसारमें हितकारी है॥४९॥१५०॥

बर्बूराद्यरिष्ट ।

तुलाद्वयञ्च बर्ब्बूरं चतुर्द्रोणे जले पचेत् ।
द्रोणशेषे रसे शीते गुडस्य च तुलां क्षिपेत् ॥ ५१ ॥
धातकीं षोडशपलां कृष्णां द्विपलिकां तथा ।
जातीफलानि कक्कोलं त्वगेलापत्रकेशरम् ॥ ५२ ॥
लवङ्गं मरिचञ्चैव पलिकान्युपकल्पयेत् ।
मासं भाण्डे स्थितस्त्वेष बर्ब्बूरारिष्टको जयेत् ॥
क्षयं कुष्ठमतीसारं प्रमेहश्वासकासकान् ॥ ५३ ॥

बबूलकी छालको २०० पल लेकर चार द्रोण जलमें पकावे । जब पककर एक द्रोण जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर शीतल होजानेपर उसमें १०० पल गुड डाले. एवं धायके फूल ६४ तोले, पीपल ८ तोले तथा जायफल, शीतलचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौंग और कालीमिरच इन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले डालदेवे। सबको एकमिट्टीके पात्रमें भरकर और उसके मुँहको बन्द करके एक महीनेतक रखारहने देवे तो यह बर्बूराद्यरिष्ट सिद्ध होता है । यह अरिष्ट क्षय, कुष्ठ, सर्वप्रकारके अतिसार प्रमेह, श्वास, कास आदि व्याधियोंको नष्ट करता है ॥ ५१-५३ ॥

कुटजारिष्ट ।

तुलां कुटजमूलस्य मृद्वीकार्द्धतुलां तथा ।
मधूकपुष्पकाश्मर्य्योर्भागान् दशपलोन्मितान् ॥ ५४ ॥

चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणं चैवावशेषितम् ।
धातक्या विंशतिपलं गुडस्य च तुलां क्षिपेत् ॥ ५५ ॥
मासमात्रं स्थितो भाण्डे कुटजारिष्टसंज्ञितः ।
ज्वरान् प्रशमयेत्सर्वान् कुर्यात्तीक्ष्णं धनञ्जयम् ।
दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ ५६ ॥

कुडेकी जडकी छाल सौ पल, दाख ५० पल, महुएके फूल १० पल और कुम्भेरकी छाल १० पल लेकर चार द्रोण जलमें पकावे.जब पककर एक द्रोण जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस काथमें धायके फूल एक सेर और गुड सौपल डालकर एक उत्तम मृत्तिकाके पात्रमें भरकर और उसके मुँहको बन्द करके एक महीने तक रक्खा रहनेदेवे। फिर एक महीने पीछे इसको निकालकर छानलेवे। इसको कुटजारिष्ट कहते हैं। यह अरिष्ट यथोचितमात्रासे सेवन करनेपर सर्व प्रकारके ज्वर दुस्साध्य संग्रहणी और प्रबल रक्तातिसारको शीघ्र नष्ट करता है और अग्निको दीपन करता है ॥५४-५६॥

अहिफेनासव।

तुलां मधुकमद्यस्य शुभे भाण्डे निधापयेत् ।
फणिफेनस्य कुडवं मुस्तकं पलसम्मितम् ॥ ५७ ॥
जातीफलं चेन्द्रयवं तथैलां तत्र दापयेत् ।
मासमात्रं स्थितो भाण्डे यत्नतः परिरक्षयेत् ॥
हन्त्यतीसारमत्युग्रं विषूचीमपि दारुणाम् ॥ ५८ ॥

महुएकी मद्य सौपल, अफीम १६ तोले एवं नागरमोथा, जायफल, इन्द्रजौ और इलायची ये प्रत्येक ४-४ तोले लेवे। सबको एकत्र पीसकर एक उत्तम मिट्टीके बरतनमें भरकर और उसके मुँहको अच्छे प्रकारसे बन्द करके एक महीनेतक रखारहनेदेवे। तत्पश्चात् उसको छानकर उचित मात्रासे सेवनकरे तो यह अहिफेनासव अत्यन्त भयंकर अतीसार और विषूचिकाको शमन करताहै ॥

ग्रहिण्यां ये रसा वाच्यास्तेऽतीसारे नियोजिताः ।
हन्युः सर्वमतीसारं शिवस्याज्ञा विशेषतः ॥ ५९ ॥

ग्रहणीरोगमें जो रस कहे हैं उन सबको विशेषकर अतिसाररोगमें भी प्रयोग करनाचाहिये उनसे सर्व प्रकारके अतिसार नष्ट होते हैं ॥ ५९ ॥

अतीसारमें वर्ज्जनीय ।

स्नानाभ्यङ्गावगाहांश्च गुरुस्निग्धातिभोजनम् ।
व्यायाममग्निसन्तापमतिसारी विवर्ज्जयेत् ॥ १६० ॥

अतिसारवाले रोगीको स्नान, तैलमर्दन, जलमें घुसकर स्नान करना एवं गुरुपाकी और स्निग्धपदार्थोंका भोजन, अधिक भोजन व्यायाम और अग्निका ताप यह सब तत्काल त्यागदेने चाहिये ॥ १६० ॥

अतीसारमें पथ्य ।

वमनं लंघनं निद्रा पुराणाः शालिषष्टिकाः ।
विलेपी लाजमण्डश्च मसूरतुवरीरसः ॥ ६१ ॥
शशैणलावहरिणकपिञ्जलभवा रसाः ।
सर्वे क्षुद्रझषाः शृङ्गी खल्लिशो मधुरालिका ॥ ६२ ॥
तैलं छागघृतक्षीरे दधि तक्रं गवामपि ।
दधिजं वा पयोजं वा नवनीतं गवाजयोः ॥ ६३ ॥
नवं रम्भापुष्पफलं क्षौद्रं जम्बूफलानि च ।
भव्यं महार्द्रकं विश्वं शालूकञ्च विकङ्कतम् ॥ ६४ ॥
कपित्थं वकुलं बिल्वं तिन्दुकं दाडिमद्वयम् ।
तालकं कञ्चटदलं चाङ्गेरी विजयारुणा ।
अन्नपानानि सर्वाणि दीपनानि लघूनि च ॥ ६५ ॥

वमन, लंघन, पुराने शालिधानोंके चावल और साठीके चावल, विलेपी, खीलोंका माँड, मसूर और अरहरका यूष एवं खरगोश,कालेहिरन, लवा, हिरन और कपिञ्जल इनके मांसका रस, सर्व प्रकारकी छोटी मछलियाँ,शृंगीमछली, खलिश मछली, क्षुद्रमछली, गौ या बकरीका घी, दूध, दही, मठ्ठा, दहीका निकाला हुआ या दूधका निकालाहुआ नैनीघी या मक्खन, केलेके नवीन फल-फूल, शहद, जामुन, लिसोडा (किसीके मतमें कमरख) अदरख, सोंठ, भसीडा, कण्टाई, कैथ, मौलसिरीके फूल, बेलगिरी, तेंदु, खट्टे-मीठे दोनों प्रकारके अनार, ताडके फल, जलचौलाई, नोनियाका शाक, भाँग, रक्तवर्णकी चौलाईका शाक एवं सर्व प्रकारके हल्के और अग्निप्रदीपक अन्न पान अतिसार रोगमें हितकर हैं ॥ ६१–६५ ॥

अतीसारमें अपथ्य ।

स्वेदोऽञ्जनं रुधिरमोक्षणमम्बुपानं

स्नानं व्यवायमपि जागरधूमनस्यम्।
अभ्यञ्जनं सकलवेगविधारणं च
रूक्षाण्यसात्म्यमशनञ्च विरुद्धमन्नम्॥ ६६॥
गोधूममाषयववास्तुककाकमाची
निष्पावकन्दमधुशिग्रुरसालपूगम्।
कूष्माण्डतुम्बी बेदरान्नपानं
ताम्बूलमिक्षुगुडमद्यमुपोदिका च॥ ६७॥
द्राक्षाम्लवेतसफलं लशुनञ्च धात्री
दुष्टाम्बु मस्तु गुरुवारि च नारिकेलम्।
सस्नेहनं मृगमदोऽखिलपत्रशाकं
क्षारः सराणि सकलानि पुनर्नवा च॥ ६८॥
एर्वारुकं लवणमम्लमपि प्रकोपि
वर्गोऽतिसारगदपीडितमानवेषु॥ ६९॥

स्वेददेना, अंजन लगाना, रुधिर निकलवाना (फस्तखुलवाना) अधिक जलपान, स्नान, मैथुन, रात्रि जागरण, धूम्रपान, नस्य ग्रहण, तैलादिकी मालिश, मल-मूत्रादिके वेगोंको रोकना एवं रूखे, स्वभाव विरुद्ध, देश-काल, व संयोग विरुद्ध पदार्थोंका भोजन, गेहूँ, उडद, जौ, वथुआ, मकोय, सेमरकी फली, सैंजनकी फली, आम, सुपारी, पेठा, तोम्बी (लौकी) वेर और अन्न पान, ताम्बूल, ईख, गुड, मदिरा, पोईका शाक, दाख, अमलवेत, लहसुन, सर्व प्रकारके कन्द शाक, आमला, दूषितजल, काँजी, नारियल, स्नेहद्रव्य, कस्तूरी, सब प्रकारके पत्तोंवाले शाक, और पुनर्नवा, ककडी, खारवाले और सारक (दस्तावर) पदार्थ, नमकीन, खट्टेपदार्थ ये सब पदार्थ अतीसारमें अहितकारीहैं॥

ग्रहणीरोगकी चिकित्सा।

ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत्।
अतिसारोक्तविधिना तस्यामञ्च विपाचयेत्॥ १॥

संग्रहणीरोगमें अजीर्णरोगकी समान चिकित्सा करनी चाहिये और अतिसाररोगमें कहीहुई विधिके द्वारा अपक्वदोषोंका पकाना चाहिये॥ १॥

---

१ बदरं गुरु चान्नपानं। इतिपाठोदृश्यते।

शरीरानुगते सामे रसे लंघनपाचनम्।
विशुद्धामाशया यस्मै पंचकोलादिभिर्युतम्॥
दद्यात्पेयादि लघ्वन्नं पुनर्योगांश्च दीपकान्॥ २॥

शरीरमें अपक्वरसके संचित होनेपर रोगीको लंघन कराके दोषोंको पचावे। फिर वमन और विरेचनादिके द्वारा आमाशयको शुद्धकरके पंचकोलआदिसे सिद्ध कियेहुए पेयादि हलके अन्न भोजनके लिये और अग्निप्रदीपक औषधियें सेवन करावे॥ २॥

ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनं ग्राहिलाघवात्।
पथ्यं मधुरपाकित्वान्न च पित्तप्रकोपनम्॥ ३॥
कषायोष्णविकाशित्वाद्रौक्ष्याच्चैव कफे हितम्।
वाते स्वाद्वम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कमविदाहि तत्॥ ४॥

संग्रहणीरोगवाले मनुष्योंको तक्र (मट्ठा) लघुपाकी (हलका) होनेसे अग्नि प्रदीपक, मलरोधक और पथ्यहै। एवं मधुरपाकी होनेसे पित्तको कुपित नहीं करता. तथा कषैला, उष्ण, विकाशी और रूक्ष होनेसे कफजन्यरोगोंमें हितकारीहै और मधुर, अम्ल तथा सान्द्र (गाढा) होनेसे वातरोगोंमें उपयोगी है। तत्कालका प्रस्तुतकियाहुआ मट्ठा विशेष गुणकारी और दाह नाशकहै३॥४

शुंठीं समुस्तातिविषां गुडूचीं पिबेज्जलेन क्वथितां समांशाम्।
मन्दानलत्वे सततामतापामामानुबन्धे ग्रहणीगदे च॥ ५॥

मन्दाग्नि, आमातिसार, आमविबन्ध. और आमयुक्तग्रहणीमें सोंठ, नागरमोथा, अतीस और गिलोय इनको समानभाग लेकर यथाविधि क्वाथ बनाकर पान करना चाहिये॥ ५॥

धान्यकातिविषोदीच्ययमानीमुस्तनागरम्।
बला द्विपर्णी बिल्वं च दद्याद्दीपनपाचनम्॥ ६॥

धनियाँ, अतीस, सुगन्धवाला, अजवायन, नागरमोथा, सोंठ, खिरैंटी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी और बेलगिरी, इनका क्वाथ अग्निको दीपन करनेके लिये एवं दोषोंको पचानेके लिये देना चाहिये॥ ६॥

श्रीफलशलाटुकल्को नागरचूर्णेन मिश्रितः सगुडः।
ग्रहणीगदमत्युग्रं तक्रभुजा तु शीलितो जयति॥७॥

कच्चे बेलके कल्क और सोंठके चूर्णके साथ गुड मिलाकर सेवन करनेसे और ऊपरसे तक्र पानकरनेसे अत्यन्त प्रबल ग्रहणीरोग शीघ्र नष्ट होता है ७॥

नागराद्यचूर्ण ।

नागरातिविषा मुस्तं धातकीं सरसाञ्जनाम् ।
वत्सकत्वक्फलं बिल्वं पाठां कटुकरोहिणीम् ॥ ८ ॥
पिबेत्समांशं तच्चूर्णं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ।
पैत्तिके ग्रहणीदोषे रक्तं यच्चोपवेश्यते ॥ ९ ॥
अर्शांस्यथ गुदे शूलं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ।
नागराद्यमिदं चूर्णं कृष्णात्रेयेण पूजितम् ॥ १० ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, धायके फूल, रसौत, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ, बलगिरी, पाढ और कुटकी इन सबके समानभाग मिश्रित चूर्णको शहद और चावलोंके पानीके साथ सेवन करनेसे पित्तज संग्रहणी, रक्तज बवासीर, गुदशूल और प्रवाहिकारोग दूर होता है । यह नागराद्यचूर्ण कृष्णात्रेय करके पूजित हैं ॥ ८-१० ॥

पाठाद्यचूर्ण ।

पाठा बिल्वानलव्योषजम्बुदाडिमधातकी ।
कटुकातिविषामुस्ता दार्व्वीभूनिम्बवत्सकैः ॥ ११ ॥
सर्वैरेतैः समं चूर्णं कौटजं तण्डुलाम्बुना ।
सक्षौद्रञ्च पिबेच्छर्द्दिज्वरातीसारशूलवान् ॥
तृड्दाहग्रहणीदोषारोचकानलसादजित् ॥ १२ ॥

पाढ, बेलगिरी, चीतेकी जड, सोंठ, पीपल, मिरच, जामुनकी छाल, अनारके बक्कल, धायके फूल, कुटकी, अतीस, नागरमोथा, दारुहल्दी, चिरायता और इन्द्रजौ इन सबके चूर्णको समानभाग और सम्पूर्ण चूर्णकी समान कुडेकी जडकी छालका चूर्ण सबको एकत्र मिलाकर चावलोंके जल और मधुके साथ

---

१ " शीतकषायमानेन तण्डुलोदककल्पना ।
केऽप्यष्टगुणतोयेन प्राहुस्तण्डुलभावनाम् ॥ "

तण्डुलोदककी विधि-शीतकषायके मानके अनुसार तण्डुलोदककी कल्पना करनी चाहिये । कोई ऐसा कहते हैं कि, एकभाग कुटेहुए चावलोंको ८भाग जलमें रात्रिको भिगोदेना चाहिये । फिर उसको प्रातःकाल छानकर काममें लाना चाहिये ।

पानकरनेसे वमन, ज्वरातीसार, शूल, तृषा, दाह, संग्रहणी, अरुचि, अग्निमान्द्य आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

कपित्थाष्टकचूर्ण ।

यमानीपिप्पलीमूलचातुर्जातकनागरैः ।
मरिचाग्निजलाजाजीधान्यसौवर्चलैः समैः ॥ १३ ॥
वृक्षाम्लधातकीकृष्णाबिल्वदाडिमतिन्दुकैः ।
त्रिगुणैः षड्गुणासितैः कपित्थाष्टगुणैः कृतः ॥ १४ ॥
चूर्णोऽतीसारग्रहणीक्षयगुल्मगलामयान् ।
कासश्वासाग्निसादार्शःपीनसारोचकाञ्जयेत् ॥ १५ ॥

अजवायन, पीपलामूल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, सोंठ मिरच, लालचीता, सुगन्धवाला, कालाजीरा, धनियाँ और कालानमक इन सब औषधियोंका चूर्ण एक एक भाग एवं तिन्तिडीक, धायके फूल, पीपल, बेल-गिरी, अनारदाने और तेंदु, ये प्रत्येक तीन ३ भाग, मिश्री ६ भाग और कैथका गूदा ८ भाग लेवे। सबको एकत्र मिलाकर इस चूर्णको उपयुक्त मात्रासे सेवन करे तो अतीसार, संग्रहणी, क्षय, गुल्म, गलेके रोग, खाँसी, श्वास, मन्दाग्नि, बबासीर, पीनस और अरुचि ये सब रोग दूर होते हैं ॥१३–१५ ॥

स्वल्प–गङ्गाधरचूर्ण ।

मुस्तसैन्धवशुण्ठीभिर्धातकीलोध्रवत्सकैः ।
बिल्वमोचरसाभ्याञ्च पाठेन्द्रयवबालकैः ॥ १६ ॥
आम्रबीजश्चातिविषा लज्जा चैभिः सुचूर्णितम् ।
क्षौद्रतण्डुलतोयाभ्यां जयेत्पीत्वा प्रवाहिकाम् ॥१७॥
सर्वातिसारशमनं सर्वशूलनिषूदनम् ।
संग्रहग्रहणीं हन्ति सूतिकातङ्कमेव च ॥
एतद्गङ्गाधरं चूर्णं सरिद्वेगावरोधनम् ॥ १८ ॥

नागरमोथा, सैंधानमक, सोंठ, धायके फूल, लोध, कुडेकी छाल, बेलगिरी, मोचरस, पाढ, इन्द्रजौ, सुगन्धवाला, आमकी गुठलीकी मींग, अतीस और लज्जावन्ती इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर चूर्ण बनालेवे। इस चूर्णको यथोचित मात्रासे शहद और चावलोंके जलके साथ पान करनेसे प्रवाहिका रोग दूर होता है। यह गंगाधरचूर्ण सर्वप्रकारके अतिसार, समस्तशूल, संग्रहणी और प्रसूताके सम्पूर्ण रोगोंको दूर करताहै ॥ १६–१८ ॥

मध्यम–गङ्गाधरचूर्ण ।

बिल्वं मोचरसं पाठा धातकी धान्यमेव च ।
ह्रीवेरं नागरं मुस्तं तथैवातिविषा समम् ॥ १९ ॥
अहिफेनं लोध्रकञ्च दाडिमं कुटजं तथा ।
पारदं गन्धकञ्चैव समभागं विचूर्णयेत् ॥ २० ॥
तक्रेण खादयेत् प्रातश्चूर्णं गंगाधरं महत् ।
ज्वरमष्टविधं हन्यादतीसारं सुदुस्तरम् ॥
ग्रहणीं विविधाञ्चैव कोष्ठव्याधिहरं परम् ॥ २१ ॥

बेलगिरी, मोचरस, पाढ, धायके फूल, धानियाँ, सुगन्धवाला, सोंठ, नागरमोथा, अतीस, अफीम, लोध, अनारदाना, कुडेकी छाल, शुद्धपारा और शुद्ध गन्धक इन सबको समान भाग लेवे । प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करलेवे । फिर सब औषधियोंको एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करके उसमें उक्त कज्जलीको खरल करलेवे । इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल तीनतीन माशे चूर्णको मट्ठेके साथ सेवन करे तो यह मध्यम गंगाधरचूर्ण आठ प्रकारके ज्वर, दारुण अतिसार. अनेक प्रकारकी संग्रहणी और अत्यन्तप्रबल कुष्ठ इन सब व्याधियोंको हरता है ॥ १९–२१ ॥

बृहद्गङ्गाधरचूर्ण ।

बिल्वं शृङ्गाटकदलं दाडिमं दलमेव च ।
समुस्तातिविषा चैव सर्ज्जश्वेतञ्च धातकी ॥ २२ ॥
मरिचं पिप्पली शुण्ठी दार्वी भूनिम्बनिम्बकम् ।
जम्बूरसाञ्जनञ्चैव कुटजस्य फलं तथा ॥ २३ ॥
पाठा समङ्गा ह्रीबेरं शाल्मलीवेष्टमेव च ।
शक्राशनं भृङ्गराजचूर्णं देयं समं समम् ॥ २४ ॥
कुटजस्य त्वचश्चूर्णं सर्वचूर्णसमं मतम् ।
एतद्गङ्गाधरं नाम बृहच्चूर्णं महागुणम् ॥ २५ ॥
नानावर्णमतीसारं चिरजं बहुरूपिणम् ।
दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति तृष्णां कासञ्च दुर्ज्जयम् ॥ २६ ॥
ज्वरञ्च विविधं हन्ति शोथञ्चैव सुदारुणम् ।

अरुचिं पाण्डुरोगञ्च हन्यादेव न संशयः ॥
छागीदुग्धेन मण्डेन मधुना वाथ लेहयेत् ॥ २७ ॥

बेलगिरी, सिंघाडेके पत्ते, अनारके कोमलपत्ते, नागरमोथा, अतीस, राल, धायके फूल, मिरच, पीपल, सोंठ, दारुहल्दी, चिरायता, नीमकी छाल, जामुनकी छाल, रसौत, इन्द्रजौ, पाढ, लज्जावंती, सुगन्धवाला, मोचरस, भाँग और भांगरा इन सबका चूर्ण समानभाग और समस्त चूर्णकी बराबर कुडेकी छालका चूर्ण लेवे। सबको एकत्र बारीक पीसकर कपडछान करलेवे। इसको प्रतिदिन उचित मात्रासे बकरीके दूध या मांड अथवा शहदके साथ मिलाकर सेवन करे। यह बृहद्गंगाधर नामवाला चूर्ण विशेष गुणकारी है। एवं विविधप्रकारके, बहुतदिनोंके पुराने और त्रिदोषज अतिसार, दुःसाध्य ग्रहणी, तृषा, प्रबल खाँसी, अनेक प्रकारके ज्वर, दारुण शोथ, अरुचि, पाण्डुरोग आदि व्याधियोंको निस्सन्देह नष्ट करनेवालाहै ॥ २२-२७ ॥

वृद्धगङ्गाधरचूर्ण।

मुस्तारलूकशुण्ठीभिर्धातकीलोध्रबालकैः।
बिल्वमोचरसाभ्यां च पाठेन्द्रयववत्सकैः ॥ २८ ॥
आम्रबीजं समङ्गातिविषायुक्तैश्च चूर्णितैः।
मधुतण्डुलपानीयं पीतं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥ २९ ॥
हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीं हन्ति वेगतः।
वृद्धगङ्गाधरं चूर्णं रुन्ध्याद्गीर्वाणवाहिनीम् ॥ ३० ॥

नागरमोथा, अरलूकी छाल, सोंठ, धायके फूल, लोध, सुगन्धवाला, बेलगिरी, मोचरस, पाढ, इन्द्रजौ, कुडेकी छाल, आमकी गुठलीकी मींग, लज्जावंती और अतीस इन सबके समान भाग मिश्रित चूर्णको शहद और चावलोंके जलके साथ सेवन करनेसे प्रवाहिका और सर्वप्रकारके अतीसार नष्ट होतेहैं। यह वृद्धगंगाधरचूर्ण नदीकी समान वेगवाली संग्रहणीको तत्काल दूर करताहै॥

स्वल्पलवङ्गाद्यचूर्ण।

लवङ्गातिविषामुस्तं बिल्वं पाठा च शाल्मली।
जीरकं धातकीपुष्पं लोध्रेन्द्रयवबालकम् ॥ ३१ ॥
धान्यं सर्जरसं शृङ्गी पिप्पली विश्वभेषजम्।
समङ्गा यावशूकश्च सैन्धवं सरसाञ्जनम् ॥ ३२ ॥

एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
शमयेदग्निमान्द्यञ्च संग्रहग्रहणीं जयेत ॥ ३३ ॥
नानावर्णमतीसारं सशोथां पाण्डुकामलाम् ।
इदमष्ठीलिकां हन्ति कासं श्वासं ज्वरं वमिम् ॥
सर्वरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ३४ ॥

लौंग, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, पाठ, सेमलकी छाल, जीरा, धायके फूल, लोध, इन्द्रजौ, सुगन्धवाला, धनियाँ, राल, काकडासिंगी, पीपल, सोंठ, लज्जावन्ती, जवाखार, सैंधानमक और रसौत इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्णकर लेवे। यह चूर्ण मन्दाग्नि, संग्रहणी अनेकवर्णवाला और शोथ युक्त अतिसार, पाण्डु, कामला, अष्ठीलिका, श्वास, खाँसी, ज्वर, वमन और अनेकप्रकारके रोगोंको तत्काल नष्ट करता है। जैसे सूर्यका प्रकाश अन्धकारको तत्क्षण दूर करदेता है ॥ ३१-३४ ॥

बृहल्लवङ्गाद्यचूर्ण ।

लवङ्गातिविषा मुस्तं पिप्पली मरिचानि च ।
सैन्धवं हबुषा धान्यं कट्फलं पुष्करं तथा ॥ ३५ ॥
जातीकोषफलाजाजी सौवर्च्चलरसाञ्जनम् ।
धातकी मोचकं पाठा पत्रं तालीशकेशरम् ॥ ३६ ॥
चित्रकञ्च विडञ्चैव तुम्बुरुर्बिल्वमेव च ।
त्वगेलापिप्पलीमूलमजमोदा यमानिका ॥ ३७ ॥
समङ्गा वत्सकं शुण्ठी दाडिमं यावशूकजम् ।
निम्बं सर्ज्जरसं क्षारं सामुद्रं टङ्गणं तथा ॥ ३८ ॥
ह्रीबेरं कुटजञ्चैव जम्ब्वाम्रं कटुरोहिणी ।
अभ्रकं पुटितं लौहं शुद्धगन्धकपारदम् ॥ ३९ ॥
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
मधुना वा लिहेच्चूर्णं पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ ४० ॥
सर्वदोषहरं चैव ग्रहणीं हन्ति दुस्तराम् ।
वातिकीं पैत्तिकीञ्चैव श्लैष्मिकीं सान्निपातिकीम् ४१
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ।
कृष्णारुणं च पीतं च मांसधावनसन्निभम् ॥४२॥

ज्वरारोचकमन्दाग्निं कासं श्वासं वमिं तथा ।
अम्लपित्तं तथा हिक्कां प्रमेहं च हलीमकम् ॥ ४३ ॥
पाण्डुरोगं च विष्टम्भमर्शांसि विविधानि च ।
प्लीहगुल्मोदरानाहशोथातीसारपीनसान् ॥ ४४ ॥
आमवातं तथाऽजीर्णं संग्रहग्रहणीं जयेत् ।
उदरं प्रदरं चैव लवङ्गाद्यमिदं शुभम् ॥ ४५ ॥

लौंग, अतीस, नागरमोथा, पीपल, मिरच, सैंधानमक, हाऊबेर, धनियाँ, कायफल, पोहकरमूल, जावित्री, जायफल, कालाजीरा, कालानमक, रसौत, धायके फूल, मोचरस, पाढ, तेजपात, तालीसपत्र, नागकेशर, चीतेकी जड, विरियासंचरनमक, तुम्बुरु, बेलगिरी, दालचीनी, इलायची, पीपलामूल, अजमोद, अजवायन, लज्जावन्ती, इन्द्रजौ, सोंठ, अनारका बकल, जवाखार, नीमकी छाल, राल, सज्जी, समुद्रफेन, सुहागा, सुगन्धवाला, कडेकी छाल, जामुनकी छाल, आमकी छाल, कुटकी, अभ्रककी भस्म, लोहकी भस्म शुद्धगन्धक और शुद्धपारा इन सबके समान भाग लेवे प्रथम पारे और गन्धककी कजली बनावे फिर सबको एकत्र खरल करके बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको शहद अथवा चावलोंके जलके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके रोग, वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषज संग्रहणी नष्ट होती है। एवं पक्वातिसार, आमातिसार, अनेकवर्णका पीडायुक्त काला, लाल, पीला अथवा मांसके धोवनकी, समान अतिसार, ज्वर, अरुचि, मन्दाग्नि, खाँसी श्वास, वमन, अम्लपित्त, हिचकी, प्रमेह, हलीमक, पाण्डुरोग, विबन्ध, अर्श, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, अफारा, शोथयुक्त आतिसार, पीनस, आमवात, अजीर्ण, दारुण संग्रहणी, उदरविकार और प्रदररोग इन सब व्याधियोंको यह लवंगाद्यचूर्ण तत्काल नष्ट करताहै॥ ३५-४५

महालवङ्गाद्यचूर्ण ।

लवङ्गं जीरकं कौन्ती सैन्धवं त्रिसुगन्धिकम् ।
अजमोदा यमानी च मुस्तकं सकटुत्रयम् ॥ ४६ ॥
त्रिफला शतपुष्पा च पाठा भूनिम्बगोक्षुरम् ।
जातीकोषफले दार्व्वी नलदं चन्दनं मुरा ॥ ४७ ॥
शठी मधुरिका मेथी टंगणं कृष्णजीरकम् ।
क्षारद्वयं बालकं च बिल्वं पौष्करकं तथा ॥ ४८ ॥

चित्रकं पिप्पलीमूलं विडङ्गं सधनीयकम् ।
रसाभ्रगन्धकं लोहं समं सर्वं विचूर्णितम् ॥ ४९ ॥
उष्णोदकानुपानेन मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ।
शीततोयानुपानैर्वा बुद्ध्वा दोषगतिं भिषक् ॥ ५० ॥
आमातिसारं ग्रहणीं चिरकालोत्थितामपि ।
शूलं विष्टम्भमानाहं विषूच्यं शोथकामले ॥ ५१ ॥
हलीमकं पाण्डुरोगं हन्ति कासं विशेषतः ।
लवङ्गाद्यं महच्चूर्णं शर्करासहितं पिबेत् ॥ ५२ ॥
आध्मानं शमयेच्छीघ्रं लवंगस्यानुपानतः ।
अश्विभ्यां निर्म्मितं ह्येतल्लोकानुग्रहकाङ्क्षया ॥ ५३ ॥

लौंग, जीरा, रेणुका, सैंधानमक, दालचीनी, तेजपात, इलायची, अजमोद, अजवायन, नागरमोथा, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, सोया, पाढ, चिरायता, गोखुरू, जावित्री, जायफल, दारुहल्दी, खस, रक्तचन्दन, मुरामांसी, कचूर, सोंफ, मेथी, सुहागा, कालाजीरा, जवाखार, सज्जी, सुगन्धवाला, बेल-गिरी, पोहकरमूल, चीतेकी जड, पीपलामूल, वायविडङ्ग, धनियाँ, शुद्धपारा, अभ्रक, शुद्ध गन्धक और लोहेकी भस्म इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको गरम जलके साथ पानकरनेसे अग्नि अत्यन्त दीपन होती है और दोषोंके बलाबलको विचारकर शीतलजलके साथ पानकरनेसे आमयुक्त अतिसार, पुरानी संग्रहणी, शूल, विबन्ध, आनाह, विषूचिका, सूजन, कामला, हलीमक, पाण्डुरोग और विशेषकर खाँसी ये सब रोग शीघ्र नष्ट होते हैं । यह महालवंगाद्यचूर्ण मिश्रीके साथ सेवन करनेसे और इसपर लौंगके जलका अनुपान करनेसे अफारेको तत्काल शमन करता है । इस चूर्णको सांसारिकजीवोंके ऊपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे अश्विनीकुमारोंने निर्माण कियाहै॥

स्वल्पनायिकाचूर्ण ।

त्रिशाणं पञ्चलवणं प्रत्येकं त्र्यूषणं पिचु ।
गन्धकान् माषकानष्टौ चत्वारो माषका रसात् ॥५४॥
इन्द्राशनं पलं शाणत्रितयाधिकमिष्यते ।
खादेन्मिश्रीकृताच्छाणमनुपेयश्च काञ्जिकम् ॥ ५५ ॥

माषकादिक्रमेणैवमनुयोज्यं रसायनम् ।
अत्यन्ताग्निकरश्चैतद्भोजनं सार्वकामिकम् ॥ ५६ ॥
प्रसिद्धा योगिनी नारी तया प्रोक्तं रसायनम् ।
ग्रहणीनाशनं ह्येतदग्निसन्दीपनं परम् ॥ ५७ ॥

पाँचों नमक प्रत्येक एकएक तोला, सोंठ, पीपल, मिरच ये प्रत्येक दो दो तोले, शुद्ध गन्धक, शुद्धपारा ४ माशे मिलाकर और भाँग पांच तोले लेवे। प्रथम गन्धककी कज्जली बनाकर फिर सबको एकत्र खूब बारीक पीसलेवे। इस चूर्णको एक माशेसे बढाकर क्रमशः चार माशेतक सेवनकरे और उसपर कांजीका अनुपान करे तो इससे अग्निकी अत्यन्त वृद्धि होती है और संग्रहणि रोग दूर होता है। इसपर यथेच्छ भोजन करना चाहिये। इस रसायनका एक प्रसिद्ध योगिनीस्त्रीने वर्णन किया है ॥ ५४-५७ ॥

मध्यमनायिकाचूर्ण।

कर्षं गन्धकमर्द्धपारदयुतं कुर्याच्छुभां कज्जलीं
द्व्यक्षांशं त्रिकटोश्च पञ्चलवणात् सार्द्धञ्च कर्षं पृथक् ।
सार्द्धाक्षं द्विपलं विचूर्ण्य सकलं शक्राशनान्मिश्रितात्
खादेच्छाणमतोऽनुकाञ्जिकपलं मन्दाग्निसन्दीपनम् ॥
स्वेच्छं भोजनतो रसायनमिदं कण्ठादिकोपद्रवे
पेयश्चात्र तु काञ्जिकं वदति सा नारी महायोगिनी॥५८
हन्याद्वातश्च पित्तं कफविकृतिमतीसारमत्युग्ररूपं
कासं श्वासञ्च शूलं ज्वरमुदररुजो राजयक्ष्माणमुग्रम् ।
प्लीहानञ्चामवातं षडपि च गुदजान्कुष्ठरोगं समुग्रं
वाताम्रं कण्ठरोगानिदमिहकथितं दीपनं जाठराग्नेः॥५९

शुद्धगन्धक एक तोला और शुद्धपारा ६ माशे इन दोनोंको एकत्र मिलाकर कज्जली बनालेवे। फिर सोंठ, मिरच, पीपल ये प्रत्येक दो दो तोले एवं पाँचोंनमक डेढ २ तोले और भाँगका चूर्ण ८॥ तोले लेवे। इन सबको एकत्र मिलाकर बारीक चूर्ण करलेवे।इस चूर्णको प्रतिदिन चार माशे परिमाण सेवन करे और पीछेसे एक पल कांजीको पान करे। इसके सेवन करनेसे मन्दहुई अग्नि अत्यन्त दीपन होती है। एवं वातज, पित्तज और कफज भयंकर अतिसार, खाँसी, श्वास, शूल, ज्वर, उदररोग, राजयक्ष्मा, प्लीहा, आमवात, छः

प्रकारके गुदाके रोग, सम्पूर्ण कुष्ठरोग, वातरक्त और कण्ठरोग ये सब तत्काल नष्ट होते हैं। इसपर यथेच्छ भोजन करना चाहिये ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

बृहन्नायिकाचूर्ण।

चित्रकं त्रिफला व्योषं विडंगं रजनीद्वयम्॥
भल्लातकं यमानी च हिंगू लवणपञ्चकम् ॥ ६० ॥
गृहधूमो वचा कुष्ठं घनमभ्रकगन्धकम्।
क्षारत्रयं चाजमोदा पारदो गजपिप्पली ॥ ६१ ॥
अमीषां चूर्णकं यावत् तावच्छक्राशनस्य च।
अभ्यचर्य नायिकां प्रातर्योगिनीं कामरूपिणीम्॥६२॥
बिडालपदमात्रं तु भक्षयेदस्य गुण्डकम्।
मन्दाग्निं कासदुर्नाम प्लीहपाण्डुचिरज्वरान् ॥ ६३ ॥
प्रमेहशोथविष्टम्भसंग्रहग्रहणीं जयेत्।
सर्वातीसारहरणः सर्वशूलानिषूदनः ॥ ६४ ॥
आमवातगदोच्छेदी सूतिकातङ्कनाशनः।
न च ते व्याधयः सन्ति वातपित्तकफोद्भवाः ॥ ६५ ॥
मान्द्यं हन्यादसौ सिद्धो गुण्डको नायिकाकृतः।
वार्यन्नमाषमभ्यङ्गस्नानं पिशितभोजनम् ॥ ६६ ॥
काञ्जिकाम्लं सदा पथ्यं दग्धमीनस्तथा दधि।
काष्ठमप्युदरे तस्य भक्षणाद्याति जीर्णताम् ॥ ६७ ॥

चीतेकी जड, हरड, आमला, बहेडा, सोंठ, पीपल, मिरच, वायविडङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी, भिलावे, अजवायन, हींग, पाँचों नमक, घरका धुआँ, वच, कूठ, नागरमोथा, अभ्रक, शुद्ध गन्धक, जवाखार, सज्जी, सुहागा, अजमोद, शुद्धपारा और गजपीपल इन सबको समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली बनालेवे। फिर सबको एकत्र मिलाकर चूर्ण करलेवे। फिर इन औषधियोंका जितना चूर्ण हो, उसीकी बराबर भांगका चूर्ण मिलाकर सबको एकम् एक करके एक उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल कामरूपधारिणी योगिनीकी पूजाकर इस चूर्णको एकएक तोले परिमाण भक्षण करे। इसपर कांजी, चावलोंका जल, उडदका यूष, अभ्यङ्ग स्नान, मांसका

भोजन, मट्ठा, भुनीहुई मछली और दही ये सब हितकर हैं। यह बृहन्नायिका चूर्ण मन्दाग्नि खाँसी, बवासीर, प्लीहा, पाण्डु, जीर्णज्वर, प्रमेह, शोथ, विष्टम्भ प्रबल संग्रहणी सब प्रकारका अतीसार, सम्पूर्ण शूल रोग, आमवात, प्रसूतिकाके विविध प्रकारके रोग इत्यादि दुस्तर व्याधियोंको शीघ्र नष्ट करता है। इस चूर्णसे वातज, पित्तज और कफज किसी प्रकारके भी रोग नहीं ठहर सकते और इससे अग्नि इतनी तीव्र होजाती है कि, भक्षण किया हुआ काष्ठ भी पचजाता है ॥ ६०-६७ ॥

ग्रहणीशार्दूलचूर्ण।

रसगन्धकलौहाभ्रं हिङ्गुर्लवणपञ्चकम्।
हरिद्रे कुष्ठकञ्चैव वचा मुस्तविडङ्गकम् ॥ ६८ ॥
त्रिकटु त्रिफला चित्रमजमोदायमानिका।
गजोपकुल्या क्षाराणि तथैव गृहधूमकम् ॥ ६९ ॥
एतेषां कार्षिकं चूर्णं विजयाचूर्णकं समम्।
माषद्वयमिदं चूर्णं शालितण्डुलवारिणा ॥ ७० ॥
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय ग्रहणीगदनाशनम्।
अग्निश्च कुरुते दीप्तं वडवानलसन्निभम् ॥ ७१ ॥
सर्वातीसारशमनं तृष्णाज्वरविनाशनम्।
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥ ७२ ॥
आमातीसारमखिलं विशेषात् श्वयथुं जयेत्।
असाध्यां ग्रहणीं हन्ति पाण्डुप्लीहचिरज्वरान् ॥
ग्रहणीशार्दूलचूर्णं सर्वरोगकुलान्तकम् ॥ ७३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहा, अभ्रक, हींग, पाँचोंनमक, हल्दी, दारुहल्दी, कूठ, वच, नागरमोथा, वायविडङ्ग, सोंठ. पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, चीतेकी जड, अजमोद, अजवायन, गजपीपल, सज्जी, जवाखार, सुहागा और घरका धुआँ इन प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला और समस्त चूर्णकी बराबर भाँगका चूर्ण लेकर सबको एकत्र मिलालेवे। इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल दो दो माशे चूर्ण शालिधानोंके चावलोंके पानीके साथ सेवन करनेसे संग्रहणीरोग दूर होता है और अग्नि वडवानलकी समान अत्यन्त दीपन होती है। एवं सब प्रकारके अतीसार और सबप्रकारका आमातिसार, तृषा,

ज्वर, पक्व अथवा अपक्व अनेक वर्णका और पीडा युक्त अतिसार सूजन, असाध्यग्रहणी, पाण्डु, प्लीहा, जीर्णज्वर एवं अन्यान्य सर्व प्रकारके रोगसमूहको नाश करनेके लिये विशेषकर यह ग्रहणीशार्दूलचूर्ण सिंहके समान है॥६८-७३॥

जातीफलाद्यचूर्ण ।

जातीफलं विडङ्गानि चित्रकं तगरं तथा ।
तालीशं चन्दनं शुण्ठीलवंगश्चोपकुञ्चिका ॥ ७४ ॥
कर्पूरश्चाभया धात्री मरिचं पिप्पली तुगा ।
एषामक्षसमान् भागान् चातुर्जातकसम्मितान् ॥७५॥
ग्रहणीमतिसारञ्च वह्निमान्द्यं सपीनसम् ।
वातश्लेष्मभवान् रोगान् प्रतिश्यायांश्च दुःसहान् ७६॥

जायफल, वायविडङ्ग, चीतेकी जड, तगर, तालीसपत्र, लालचन्दन, सोंठ, लौंग, कालाजीरा, कपूर, हरड, आमला, मिरच, पीपल, वंशलोचन, दारचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर इन सबको एकएक तोला लेकर बारीक पीसकर चूर्ण करलेवे । यह चूर्ण ग्रहणी, अतिसार, मन्दाग्नि, पीनस, वात-कफजन्यरोग और दुस्साध्य प्रतिश्यायको शीघ्र नष्ट करताहै ॥ ७४-७६

जीरकाद्यचूर्ण ।

जीरकं टंगणं मुस्तं पाठा बिल्वं सधान्यकम् ।
बालकं शतपुष्पा च दाडिमं कुटजं तथा ॥ ७७ ॥
समंगा धातकीपुष्पं व्योषञ्चैव त्रिजातकम् ।
मोचारसं कलिंगञ्च व्योम गन्धकपारदौ ॥ ७८ ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावज्जातीफलानि च ।
एतत प्राशितमात्रेण ग्रहणीं दुस्तरां जयेत् ॥ ७९ ॥
अतीसारं निहन्त्याशु सामं नानाविधं तथा ।
कामलां पाण्डुरोगं च मन्दाग्निं च विशेषतः ॥
जीरकाद्यमिदं चूर्णमगस्त्येन प्रकाशितम् ॥ ८० ॥

जीरा, सुहागा, नागरमोथा, पाढ, बेलगिरी, धनियाँ, सुगन्धवाला, सोया, अनारके बक्कल, कुडेकी छाल, लज्जावंती, धायके फूल, सोंठ, पीपल, मिरच, दारचीनी, तेजपात, इलायची, मोचरस, इन्द्रजौ, अभ्रक, शुद्ध पारे और शुद्ध गन्धककी कज्जली इन सबके चूर्णको समान भाग लेवे और जितना इन सब

औषधियोंका चूर्ण हो उस सबकी बराबर जायफलका चूर्ण लेकर मिलालेवे । इस चूर्णको एकएक माशेकी मात्रासे सेवन करतेही कठिन सग्रहणी, आमयुक्त तथा विविधप्रकारका अतिसार, कामला, पाण्डुरोग और विशेषकर मन्दाग्नि ये सब रोग तत्काल दूर होताहै । इस जीरकाद्यचूर्णको अगस्त्यऋषिने प्रकाशित किया है ॥ ७७-८० ॥

मार्कण्डेयचूर्ण ।

शुद्धसूतश्च गन्धं च हिङ्गुलं टङ्गणं तथा ।
व्योषं जातीफलश्चैव लवङ्गं तेजपत्रकम् ॥ ८१ ॥
एलाबीजं चित्रकं च मुस्तकं गजपिप्पली ।
नागरं सजलं चाभ्रं धातक्यतिविषा तथा ॥ ८२ ॥
शिग्रुजं शालमलं चैवमहिफेनं पलांशिकम् ।
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ८३ ॥
खादेदस्मात प्रतिदिनं माषकं सितया सह ।
संग्रहग्रहणीं हन्ति मन्दाग्निश्च विनाशयेत् ॥ ८४ ॥
धातुवृद्धिं वयोवृद्धिं बलपुष्टिं करोत्यपि ।
मार्कण्डेयमिदं चूर्णं महादेवेन निर्म्मितम् ॥ ८५ ॥

शुद्धपारे और शुद्ध गन्धककी कज्जली, सिंगरफ, सुहागा, सोंठ, पीपल, मिरच, जायफल, लौंग, तेजपात, इलायचीके दाने, चीतेकी जड, नागरमोथा, गजपीपल, सोंठ, सुगन्धवाला, अभ्रक, धायके फूल, अतीस, सहिंजनेके बीज, मोचरस और अफीम ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर सबका एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे । इसमेंसे प्रतिदिन एक २ माशा चूर्ण चार चार मिश्री तोलेके साथ मिलाकर सेवन करे तो यह प्रबल संग्रहणी और अग्निकी मन्दता नष्ट होती है और धातुकी वृद्धि, आयुकी वृद्धि, बलकी वृद्धि तथा पुष्टि होती है । इस मार्कण्डेय चूर्णको श्रीमहादेवजीने कहा है ॥ ८१-८५ ॥

कञ्चटावलेह ।

प्रस्थे पचेत कंचटतालमूल्यौ सितार्द्धप्रस्थं शृतपादशेषे ।
ततोऽक्षमात्राणि समानि दद्याच्चूर्णानिधीरोविधिवत्तदेषाम् ॥
समङ्गा धातकी पाठा बिल्वं मुस्ताथ पिप्पली ।
शक्रकातिविषाक्षारसौवर्च्चलरसाञ्जनम् ॥ ८७ ॥

शाल्मलीविष्टकश्चैव सर्वं सिद्धे निधापयेत् ।
शीते च मधुनश्चात्र कुडवार्द्धं विनिःक्षिपेत् ॥ ८८ ॥
अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत यथाकालं प्रमाणतः ।
सर्वातिसारं शमयेत् संग्रहग्रहणीं तथा ॥ ८९ ॥
अम्लपित्तकृतं दोषमुदरं सर्वरूपिणम् ।
विकारान् कोष्ठजान् हन्ति हन्यात् शूलमरोचकम् ९०

जलपीपल और मूसली इन दोनोंको आठ आठ पल लेकर एक प्रस्थ जलमें पकावे । जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस क्वाथमें ३२ तोले मिश्री और लज्जावन्ती, धायके फूल, पाठ, बेलगिरी, नागरमोथा, पीपल, भाँग, अतीस, जवाखार, कालानमक, रसौत और मोचरस इन प्रत्येक औषधिको डालकर पकावे । जब पककर अवलेहकी समान गाढा होजाय तब चूर्णको बारीक पीसकर डालदेवे । जब अच्छे प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें ८ तोले शहद मिलादेवे । इस अवलेहको दोष, काल और अवस्थाका विचारकर उपयुक्त मात्रासे सेवन करे तो यह सब प्रकारके अतिसार, संग्रहणी, अम्लपित्त, अजीर्ण उदररोग, कोष्ठगतरोग, शूल, अरुचि एवं अन्यान्य सर्वप्रकारके विकारोंको दूर करता है ॥ ८६–९० ॥

दशमूलगुड ।

दशमूली पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
तेन पादावशेषेण पचेद्गुडतुलां भिषक् ॥ ९१ ॥
आर्द्रकस्य रसप्रस्थं दत्त्वा मृद्वग्निना ततः ।
लेहीभूते प्रदातव्यं चूर्णमेषां पलं पलम् ॥ ९२ ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् ।
हिङ्गुभल्लातकं चैव विडंगमजमोदकम् ॥ ९३ ॥
द्वौ क्षारौ चित्रकं चव्यं पंचैव लवणानि च ।
दत्त्वा सुमथितं कृत्वा स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥९४॥
कोलमात्रं ततः खादेत् प्रातः प्रातर्विचक्षणः ।
हन्ति मन्दानलं शोथमामजां ग्रहणीमपि ॥ ९५ ॥

आमं सर्वभवं शूलं प्लीहानमुदरं तथा।
मन्दानलभवं रोगं विष्टम्भं गुदजानि च॥
ज्वरं चिरन्तनं हन्ति तमिस्रं भानुमानिव॥ ९६॥

दशमूलकी औषधियोंको सौ पल लेकर एकद्रोण जलमें पकावे। जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर उसमें पुराना गुड १०० पल और अदरखका रस एकप्रस्थ डालकर मन्द २ अग्निसे पकावे। जब पकते २ लेहकी समान गाढा होजाय तब नीचे उतारकर उसमें पीपल, पीपलामूल, मिरच, सोंठ, हींग, भिलावे, वायविडंग, अजमोद, जवाखार, सज्जी, चीतेकी जड, चव्य और पांचों नमक इन औषधियोंके चारचार तोले चूर्णको डालकर सबको एकमएक करके एक मिट्टीके चिकने बासनमें भरकर रखदेवे। इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक तोला भक्षण करे तो यह औषधि मन्दाग्नि, सूजन, आमसे उत्पन्नहुई संग्रहणी, आम, सर्वप्रकारके शूल, प्लीहा, उदरविकार, मन्दाग्निसे उत्पन्नहुए रोग, विष्टम्भ और गुदामें होनेवाले सम्पूर्ण उपद्रवोंको नष्ट करतीहै॥ ९१-९६॥

कल्याणगुड।

प्रस्थत्रयेणामलकीरसस्य शुद्धस्य दत्त्वार्द्धतुलां गुडस्य।
चूर्णीकृतैर्ग्रन्थिकजीरचव्यव्योषेभकृष्णाहवुषाजमोदैः॥९७॥
विडंगसिन्धुत्रिफलायमानीपाठाग्निधान्यैश्च पलप्रमाणैः।
दत्त्वात्रिवृच्चूर्णपलानिचाष्टावष्टौचतैलस्यपचेद्यथावत्॥
तं भक्षयेदक्षपलप्रमाणं यथेष्टचेष्टं त्रिसुगन्धियुक्तम्।
अनेन सर्वग्रहणीविकाराः सश्वासकासस्वरभेदशोथाः॥९९॥
शाम्यन्ति चायं चिरमन्तराग्नेर्हतस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः।
स्त्रीणाञ्च वन्ध्यामयनाशनोऽयं कल्याणको नाम गुडःप्रदिष्टः
त्रिवृतां भर्ज्जयन्त्यत्र मनाक् तैले चिकित्सकाः।
अत्रोक्तमानसाधर्म्यात्त्रिसुगन्धिपलं पृथक्॥ १०१॥

शुद्ध आमलोंके तीन प्रस्थ रसमें पीपलामूल, जीरा, चव्य, सोंठ, मिरच, पीपल, गजपीपल, हाऊबेर, अजमोद, वायविडङ्ग, सैंधानमक, हरड, आमला, बहेडा, अजवायन, पाढ, चीतेकीजड और धनियाँ इन प्रत्येकको चारचार तोले तेलमें भुनाहुआ निसोतका चूर्ण ३२ तोले, तिलका तैल ३२ तोले और दालचीनी, तेजपात, इलायची इन प्रत्येकका चूर्ण ६४ तोले इन सबको मिला-

कर यथाविधिसे गुड दोदो तोले डालकर पाककर पकावे । जब पाक उत्तम प्रकारसे सिद्ध होजाय तब उसमें त्रिसुगान्धि (दारचीनी तेजपात इलायची) का चूर्ण चारचार तोले मिलाकर प्रातिदिन एकएक तोला प्रमाण भक्षण करे। इससे सर्वप्रकारकी संग्रहणी, श्वास, खाँसी, स्वरभेद और सूजन दूर होती है तथा बहुत दिनोंकी पुरानी मन्दाग्नि दीपन होतीहै और पुरुषत्वकी वृद्धि होतीहै । यह कल्याणनामकगुड वन्ध्यास्त्रियोंके वन्ध्यत्वदोषको निवारणकरनेकी सर्वश्रेष्ठ महौषधहै ॥ ९७–१०१ ॥

कूष्माण्डगुडकल्याण ।

कूष्माण्डकानां रूढानां सुस्विन्नं निष्कुलत्वचम् ।
सर्पिःप्रस्थे पलशतं ताम्रभाण्डे शनैः पचेत् ॥ १०२ ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रकं हस्तिपिप्पली ।
धान्यकानि विडङ्गानि यमानीमरिचानि च ॥१०३॥
त्रिफला चाजमोदा च कलिंगाजाजिसैन्धवम् ।
एकैकस्य पलञ्चैव त्रिवृदष्टपलं भवेत् ॥ १०४ ॥
तैलस्य च पलान्यष्टौ गुडपञ्चाशदेव तु ।
प्रस्थैस्त्रिभिः समेतन्तु रसस्यामलकस्य च ॥ १०५ ॥
यदा दर्व्वीप्रलेपन्तु तदैनमवतारयेत ।
यथाशक्ति गुडान् कुर्यात कर्षकर्षार्द्धमानकान् ॥१०६॥
अनेन विधिना चैव प्रयुक्तस्तु जयेदिमाम् ।
प्रसह्य ग्रहणीरोगान् कुष्ठान्यर्शोभगन्दरान् ॥ १०७ ॥
ज्वरमानाहहृद्रोगगुल्मोदरविषूचिकाः ।
कामलापाण्डुरोगांश्च प्रमेहांश्चैव विंशतिम् ॥ १०८ ॥
वातशोणितवीसर्पान् दद्रुचर्म्महलीमकान् ।
कफपित्तानिलान् सर्वान् प्ररूढांश्च व्यपोहति ॥१०९॥
व्याधिक्षीणा वयःक्षीणाः स्त्रीषु क्षीणाश्च ये नराः ।
तेषां वृष्यश्च बल्यश्च वयःस्थापन एव च ।
गुडकल्याणको नाम वन्ध्यानां गर्भदः परः ॥ ११० ॥

उत्तमप्रकारसे पकेहुए पेठेको लेकर छीललेवे। फिर उसके टुकडे करके १०० पल, घी १ प्रस्थ एवं पीपल, पीपलामूल, चीतेकी जड, अजमोद, इन्द्रजौ, काला-

जीरा और सैंधानमक इन प्रत्येकका चारचार तोले चूर्ण, निसोतका चूर्ण ३२ तोले, तिलका तैल ३२ तोले, गुड पचास पल और आमलोंका रस ३ प्रस्थ लेवे। सबको एकत्र मिलाकर ताँबेके पात्रमें विधिपूर्वक मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब पकते पकते करछीसे लगे तब उसको नीचे उतारले फिर उसमेंसे अपनी अग्निके बलानुसार ६ माशेकी मात्रासे लेकर एक तोला पर्यन्त सेवन करे। इसको प्रतिदिन नियमानुसार सेवन करनेसे संग्रहणी, कुष्ठ, अर्श, भगन्दर, ज्वर, आनाह, हृदयरोग, गुल्म, उदरविकार, विषूचिका, कामला, पाण्डुरोग, वीस प्रकारके प्रमेह, वातरक्त, विसर्प, दाह, चर्मरोग, हलीमक तथा कफ, पित्त और वायुसे उत्पन्नहुए सर्वप्रकारके बहुत पुराने रोग नष्ट होतेहैं। जो मनुष्य व्याधिके कारण क्षीण होगये हैं, या अवस्थासे ही क्षीण हैं अथवा जो स्त्रियोंमें अधिक भोगविलास करनेसे क्षीण होगये हैं, उनके लिये यह गुड अत्यन्त वृष्य, बलकारक और आयुको स्थापनकरनेवाला है। इसको कूष्माण्डगुडकल्याण कहतेहैं। यह वन्ध्यास्त्रियोंकेलिये गर्भप्रदान करता है१०२-११०

कामेश्वरमोदक।

सम्यङ् मारितमभ्रकं कटुफलं कुष्ठाश्वगन्धामृता
मेथी मोचरसो विदारिमुसली गोक्षुरकश्चेक्षुरः।
रम्भाकन्दशतावरीत्वजमुदा मांसी तिला धान्यकं
यष्टीनागबला कचूरमदनं जातीफलं सैन्धवम्॥ ११॥
भार्गी कर्कटश्रृङ्गकं त्रिकटुकं जीरद्वयं चित्रकं
चातुर्जातपुनर्नवा गजकणा द्राक्षा शठी बालकम्।
शाल्मल्याङ्घ्रि फलत्रिकं कपिभवं बीजं समं चूर्णयेत्
चूर्णांशाविजयासिताद्द्विगुणितामध्वाज्ययोः पिंडितं।
कर्षांशा गुडिकार्द्धकर्षमथवा सेव्या सदा कामिभिः
सेव्यं क्षीरसितं सुवीर्यकरणं स्तम्भेऽप्ययं कामिनाम्।
वामावश्यकरः सुखातिसुखदो बह्वङ्गनाद्रावणः
क्षीणे पुष्टिकरः क्षतक्षयहरो हन्याच्च सर्वामयान् १३॥
कासश्वासमहातिसारशमनः कामाग्निसन्दीपनो
दुर्नामग्रहणीप्रमेहनिवहश्लेष्मातिरेकप्रणुत।
नित्यानन्दकरो विशेषकवितां वाचां विलासोद्भवो

धत्ते सर्वगुणं महास्थिरमतिर्बालो नितान्तोत्सवः १४
अभ्यासेन निहन्ति मृत्युपलितं कामेश्वरो वत्सरात्
सर्वेषां हितकारिणा निगदितः श्रीनित्यनाथेन सः।
वृद्धानां मदनोदयोदयकरः प्रौढाङ्गनासंगमे
सिंहोऽयं समदृष्टिप्रत्ययकरो भूपैः सदा सेव्यताम् १५

उत्तम प्रकारसे की हुई अभ्रककी भस्म, कायफल, कूठ, असगन्ध, गिलोय, मेथी, मोचरस, विदारीकंद, मूसली, गोखरू, तालमखाना, केलेकी जड, शतावर, अजमोद, बालछड, तिलोंके चावल, धनियाँ, मुलैठी, गंगेरन, कचूर, मैनफल, जायफल, सैंधानमक, भारंगी, काकडासिंगी, सोंठ, पीपल, मिरच, जीरा, कालाजीरा, चीतेकी जड, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर, पुनर्नवा, गजपीपल, दाख, गन्धपलाशी, सुगन्धवाला, सेमलकी मूसली, हरड, आमला, बहेडा और कौंचके बीज, इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। सम्पूर्ण चूर्णकी बराबर भाँगका चूर्ण और सबसे दूनी मिश्री लेवे। सबको यथोचित मधु और घृतमें विधिपूर्वक मिलाकर एक तोलाके अथवा छः माशेके लड्डू बनालेवे। ये मोदक कामीपुरुषोंको प्रतिदिन दूध और मिश्रीके साथ सेवन करने चाहिये। ये मोदक अत्यन्त वीर्यवर्द्धक, स्तम्भक, स्त्रीको वशमें करनेवाले, अत्यन्त आनन्ददायक, अनेक स्त्रियोंमें रमणकी शक्तिप्रदायक, क्षीण शरीरको पुष्टि करनेवाले, कामाग्निको बढानेवाले तथा क्षतक्षय, खाँसी, श्वास, प्रबल अतिसार, अर्श, संग्रहणी, प्रमेह, कफाविकार एवं अन्यान्य सर्वप्रकारके उपद्रवोंको तत्काल नष्ट करते हैं। नित्य आनन्ददायक, विशेषकर कवित्वशक्ति और वाक्शक्तिको बढानेवाले हैं। इन कामेश्वर मोदकोंको एक वर्ष पर्यन्त नियमपूर्वक सेवन करनेसे मनुष्य सर्वगुणसम्पन्न स्थिर बुद्धि होता है। विना अवस्थाके ही बालोंका पकना और मृत्युतक नष्ट होजाती है। इन श्रीकामेश्वर मोदकोंको सम्पूर्ण प्राणियोंके हितके लिये नित्यनाथने वर्णन कियाहै। ये कामेश्वरमोदक वृद्धमनुष्योंको प्रौढावस्थावाली स्त्रियोंके साथ संगम करनेपर वृद्धमनुष्योंके भी चित्तमें उत्पन्न कामशक्तिकी वृद्धि करते हैं। सिंहके समान पराक्रमी और अनुभव सिद्ध योग है। अतएव यह प्रयोग राजाओंको सदा सेवन करना चाहिये॥ ११-१५॥

मदनमोदक।

त्रैलोक्यविजयापत्रं सबीजं घृतभर्जितम्।
समे शिलातले पश्चाच्चूर्णयेदतिचिक्कणम्॥ १६॥

त्रिकटु त्रिफला शृंगी कुष्ठधान्यकसैन्धवम्।
शठी तालीशपत्रञ्च कट्फलं नागकेशरम्॥ १७॥
अजमोदा यमानी च यष्टीमधुकमेव च।
मेथी जीरकयुग्मञ्च गृहीत्वा श्लक्ष्णचूर्णितम्॥ १८॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावदेव तदौषधम्।
तावदेव सिता देया यावदायाति बन्धनम्॥ १९॥
घृतेन मधुना मिश्रं मोदकं परिकल्पयेत्।
त्रिसुगन्धिसमायुक्तं कर्पूरेणाधिवासयेत्॥ १२०॥
स्थापयेद्घृतभाण्डे च श्रीमन्मदनमोदकम्।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय वातश्लेष्मविनाशनम्॥ २१॥
कासघ्नं सर्वशूलघ्नमामवातविनाशनम्।
सर्वरोगहरो ह्येष संग्रहग्रहणीहरः॥
एतस्य सतताभ्यासाद्वृद्धोऽपि तरुणायते॥ २२॥
(ब्रह्मणः प्रमुखात् श्रुत्वा वासुदेवे जगत्पतौ॥ २३॥
एष कामविवृद्ध्यर्थं नारदैः प्रतिपादितः।
तेन लक्षं वरस्त्रीणां रेमे स यदुनन्दनः॥ २४॥)

घीमें भुनीहुई बीजोंसहित भांगको २० तोले लेकर उत्तम पत्थरपर खूब बारीक पीसलेवे। फिर बहेडा, काकडासिंगी, कूठ,धनियां, सैन्धानमक, कचूर, तालीसपत्र,कायफल, नागकेशर, अजमोद, अजवायन,मुलैठी,मेथी, जीरा और कालाजीरा प्रत्येकका बारीक पिसा हुआ चूर्ण एकएक तोला और संपूर्ण चूर्णके बराबर मिश्री मिलालेवे। पश्चात् घृत और शहद इनको मिलाकर त्रिजातकके चूर्ण मिलाकर मोदक बनावे. और उनको कपूरसे सुवासितकर घीके चिकने बासनमें भरकर रखदेवे। इसको मदनमोदक कहते हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक मोदक भक्षण करनेसे वात कफजन्यरोग, खांसी,सर्व प्रकारके शूल, आमवात,संग्रहणी एवं अनेक प्रकारके रोग शीघ्र नष्ट होतेहैं. इनको निरन्तर सेवन करनेसे वृद्धपुरुषभी तरुण होजाता है॥ १६-२४॥

मेथी मोदक।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तजीरकद्वयधान्यकम्।
कट्फलं पौष्करं शृङ्गी यमानी सैन्धवं विडम्॥ २५॥

तालीशकेशरं पत्रं त्वगेला च फलं तथा ।
जातीकोषलवङ्गं च मुरा कर्पूरचन्दनम् ॥ २६ ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावदेव तु मेथिका ।
संचूर्ण्य मोदकः कार्यः पुरातनगुडेन च ॥ २७ ॥
घृतेन मधुना किञ्चित् खादेदग्निबलं प्रति ।
अग्निश्च कुरुते दीप्तं सामे मेदे महौषधम् ॥ २८ ॥
बलवर्णकरो ह्येष संग्रहग्रहणीहरः ।
प्रमेहान् विंशतिं हन्ति मूत्राघातांस्तथाश्मरीम् ॥ २९ ॥
पाण्डुरोगं तथा कासं यक्ष्माणं हन्ति कामलाम् ।
स्तनौ च पतितौ गाढौ स्यातां तालफलोपमौ ॥ ३० ॥
दृष्टिप्रसादनश्चैव नारीणां चैव पुत्रदः ।
भाषितं कामदेवेन मेथिमोदकसंज्ञकः ॥ ३१ ॥

सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, नागरमोथा, जीरा, काला-जीरा, धनियाँ, कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी, अजवायन, सैंधानमक, विरियासंचरनमक, तालीसपत्र, नागकेशर, तेजपात, दालचीनी, इलायची, जायफल, जावित्री, लौंग, मुरामांसी, कपूर और लालचन्दन; प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला और समस्त चूर्णकी बराबर मेथीका चूर्ण एवं मेथीके चूर्ण सहित समस्त चूर्णसे दूना पुराना गुड मिलाकर यथा विधिसे पाककर मोदक बनालेवे । फिर अग्निका बलाबल विचारकर इन मोदकोंको कुछेक घृत और शहद मिलाकर सेवन करना चाहिये । यह मोदक अग्निको अत्यन्त दीपन करते हैं. और आमयुक्त मेदरोगकी अत्युत्तम औषधि है । बल और वर्णको बढानेवाले तथा संग्रहणीको हरनेवाले हैं । एवं बीस-प्रकारके प्रमेह, मूत्राघात, पथरी, पाण्डुरोग, खाँसी, राजयक्ष्मा और कामला-रोगको दूरकरते हैं इनको सेवन करनेसे स्त्रियोंके गिरेहुए स्तन ताडके फलकी समान दृढ होजाते हैं । ये मोदक दृष्टिशक्तिको बढानेवाले तथा स्त्रियोंको पुत्रके देनेवाले हैं । इनकोभी कामदेवने वर्णन किया है और यह मेथीमोदक नामसे प्रसिद्ध है ॥ २५–३१ ॥

बृहन्मेथीमोदक ।

त्रिफला धान्यकं मुस्तं शुण्ठी मरिचपिप्पली ।
कट्फलं सैन्धवं शृंगी जीरकद्वयपुष्करम् ॥ ३२ ॥

यमानी केशरं पत्रं तालीशं विडमेव च।
जातीफलं त्वगेला च जावित्रीन्दुलवंगकम् ॥ ३३ ॥
शतपुष्पा मुरामांसी यष्टीमधुकपद्मकम्।
चव्यं मधुरिका दारु सर्वमेतत् समं भवेत् ॥ ३४ ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रा तु मेथिका।
सितया मोदकं कार्यं घृतमाध्वीकसंयुतम् ॥ ३५ ॥
भक्षयेत प्रातरुत्थाय यथादोषानुपानतः।
हन्ति मन्दानलान् सर्वानामदोषं विशेषतः ॥ ३६ ॥
महाग्निजननं वृष्यमामवातनिषूदनम्।
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नं प्लीहपाण्डुगदापहम् ॥ ३७ ॥
प्रमेहान् विंशतिं हन्ति कासं श्वासञ्च दारुणम्।
छर्द्यतीसारशमनं सर्वारूढिविनाशनम् ॥
मेथीमोदकनामेदं पातञ्जलिमुनेर्मतम् ॥ ३८ ॥

हरड, आमला, बहेडा, धनियाँ, नागरमोथा, सोंठ, मिरच, पीपल, कायफल, सैंधानमक, काकडासिंगी, जीरा, कालाजीरा, पोहकरमूल, अजवायन, नागकेशर, तेजपात, तालीसपत्र, विरियासंचर नमक, जायफल, दालचीनी, इलायची, जावित्री, कपूर, लौंग, सोया, मुरामांसी, मुलैठी, पदमाख, चव्य, सौंफ और देवदारु इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे, फिर समस्त चूर्णके बराबर मेथीका चूर्ण और मेथीके चूर्णसहित सब चूर्णकी समान भाग मिश्री एवं यथोचित परिमाणसे घृत और शहद मिलाकर लड्डू बनालेवे। इन मोदकोंको नित्य प्रातःकाल यथा दोषानुसार उचित अनुपानके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारकी मन्दाग्नि, विशेषकर आमदोष, संग्रहणी, अर्श, प्लीहा, पाण्डु, बीसों प्रमेह, कठिन खाँसी, श्वास, वमन, अतिसार और सर्व प्रकारके पुराने जटिलरोग नष्ट होते हैं। ये मोदक अग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाले और वृष्य तथा आमवातनाशक हैं। इस बृहन्मेथीमोदकनामक योगको पातञ्जलिमुनिने निर्माण किया है ॥ ३२-३८ ॥

मुस्तकादिमोदक।

धान्यकं त्रिफला भृङ्गं त्रुटिः पत्रं लवङ्गकम्।
केशरं शैलजं शुण्ठी पिप्पली मरिचानि च ॥ ३९ ॥

जीरकं कृष्णजीरञ्च यमानी कट्फलं जलम् ।
धातकीपुष्पकं व्याधिर्ज्जातीकोषफले तथा ॥ ४० ॥
मधूरिका चाजमोदा हबुषं नागपर्ण्यपि ।
उग्रगन्धा शठी मांसी कुटजस्य फलं शुभम् ॥ ४१ ॥
एतानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् कुशलो भिषक् ।
सर्वचूर्णसमं देयं जलदस्यापि चूर्णकम् ॥ ४२ ॥
सिता च द्विगुणा देया मोदकं परिकल्पयेत ।
मन्दाग्निं शमयेदेतत् सरक्तां ग्रहणीं तथा ॥ ४३ ॥
अतीसारं ज्वरं शोथं पाण्डुरोगं हलीमकम् ।
कृमिरोगं रक्तपित्तमर्शोरोगं सुदुर्ज्जयम् ॥
लोकानां गदशान्त्यर्थं भैरवेन प्रकाशितम् ॥ ४४ ॥

धनियाँ, हरड, आमला, वहेडा, दालचीनी, छोटीइलायची, तेजपात, लौंग, नागकेशर. भूरिछरीला, सोंठ, पीपल, मिरच, जीरा, कालाजीरा, अजवायन, कायफल, सुगन्धवाला, धायकेफूल, कूट, जावित्री, जायफल, सौंफ, अजमोद, हाऊवेर, पान, वच, कचूर, बालछड, इन्द्रजौ और वंशलोचन इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर सब चूर्णकी बराबर नागरमोथेका चूर्ण और नागरमोथके चूर्ण सहित समस्त चूर्णसे दुगुनी मिश्री लेवे। सबको यथाविधिसे एकत्र मिलाकर मोदक बनालेवे। ये मोदक मन्दाग्नि, रुधिर युक्त संग्रहणी, अतिसार, ज्वर, सूजन, पाण्डुरोग, हलीमक, क्रिमिरोग, रक्त-पित्त और अत्यन्त दुःसाध्य अर्शरोगको शमन करते हैं। संसारिक मनुष्योंके रोगोंको दूर करनेके लिये इस प्रयोगको भैरवजीने कहा है। इसपर मिश्रीडालकर बकरीका दूध पान करना चाहिये ॥ ३९–४४ ॥

जीरकादिमोदक ।

श्लक्ष्णचूर्णीकृतं जीरं पलाष्टकमितं शुभम् ।
तदर्द्धं विजयाबीजं भर्ज्जितं वस्त्रपूतकम् ॥ ४५ ॥
अयश्चूर्णं तथा वङ्गमभ्रकं कर्षमानतः ।
मधूरिका च तालीशं जातीकोषफले तथा ॥ ४६ ॥
धान्यकं त्रिफला चैव चातुर्जातलवङ्गकम् ।
शैलेयं चन्दने द्वे च मांसी द्राक्षा शठी तथा ॥ ४७ ॥

टङ्कणं कुन्दुरूयष्टी तुगा कक्कोलबालकम्।
गांगेरुस्त्रिकटुश्चैव धातकी बिल्वमर्ज्जुनम् ॥ ४८ ॥
शतपुष्पा देवदारु कर्पूरं सप्रियङ्गुकम्।
जीरकं शाल्मलश्चैव कटुकापद्मनालुकैः ॥ ४९ ॥
एषां कर्षसमं चूर्णं गृह्णीयात कुशलो भिषक्।
शर्करा-मधुनाज्येन मोदकश्च विनिर्मितम् ॥ १५० ॥
खादेत् कर्षसमं तस्य प्रत्यहं प्रातरुत्थितः।
शीततोयानुपानेन सर्वग्रहणिकां जयेत् ॥ ५१ ॥
आमदोषावृते पित्ते वह्निमान्द्ये तथैव च।
रक्तातिसारेऽतीसारे प्रयोज्या विषमज्वरे ॥ ५२ ॥
सशब्दं घोरगम्भीरं हन्ति सद्यो न संशयः।
अम्लपित्तकृतं दोषमुदरं सर्वरूपिणम् ॥ ५३ ॥
सर्वातीसारशमनं संग्रहग्रहणीं जयेत्।
एकजं द्वन्द्वजं चैव दोषत्रयकृतं तथा ॥ ५४ ॥
विकारं कोष्ठजश्चैव हन्ति शूलमरोचकम्।
भाषितं कृष्णनाथेन जन्तूनां हितकारणम् ॥ ५५ ॥

भुनेहुए जीरेका बारीक चूर्ण ३२ तोले, घीमें भुनीहुई भाँगका बारीक और कपडछान कियाहुआ चूर्ण १६ तोले एवं लोहभस्म, वंग, अभ्रक प्रत्येककी एकएक कर्ष तथा सौंफ, तालीशपत्र,जावित्री,जायफल, धनियाँ,हरड,आमला, बहेडा,दालचीनी, तेजपात,इलायची,नागकेशर,लोंग,भूरिछरीला,सफेदचन्दन, लाल चन्दन, बालछड,दाख, कचूर,सुहागा,कुन्दुरू,मुलैठी,वंशलोचन, कंकोल, सुगन्धवाला, गँगेरन, सोंठ, पीपल, मिरच, धायके फूल, बेलगिरी, अर्जुनकी छाल, सोया, देवदारु, कपूर, फूलप्रियंगु, जीरा, मोचरस, कुटकी और कमलकन्द (भसीडा) प्रत्येक औषधिके चूर्णका एकएक कर्ष और समस्तचूर्णसे दुगुनी खाँड लेवे। सबको विधिपूर्वक एकत्र मिलाकर घृत शहदके योगसे लड्डू बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक तोलाप्रमाण खाय और ऊपरसे शीतल जलका अनुपान करे तो इससे सर्वप्रकारकी संग्रहणी दूर होती है। आमदोषयुक्त पित्त, अग्निकी मन्दता, रक्तातिसार, सामान्य अतिसार, और विषमज्वरमें प्रयोग करना चाहिये। यह शब्दयुक्त, भयंकर और गम्भीर

अम्लपित्तरोग, सबप्रकारके उदररोग, सम्पूर्ण अतिसार, संग्रहणी, एकदोषज, द्विदोषज अथवा त्रिदोषज संग्रहणीरोग, कोष्ठगत विकार, शूल और अरुचिको नष्ट करता है ॥ ४५-५५ ॥

बृहज्जीरकादिमोदक ।

जीरकं कृष्णजीरञ्च कुष्ठं शुण्ठी च पिप्पली ।
मरिचं त्रिफला त्वक् च पत्रमेला च केशरम् ॥ ५६ ॥
शुभा लवंगं शैलेयं चन्दनं श्वेतचन्दनम् ।
काकोली क्षीरकाकोली जातीकोषफले तथा ॥ ५७ ॥
यष्टी मधुरिका मांसी मुस्तं सचलकं शठी ।
धान्यकं देवताडश्च मुरा द्राक्षा नखी तथा ॥ ५८ ॥
शतपुष्पा पद्मकश्च मेथी च सुरदारु च ।
सजलं नालिका चैव सैन्धवं गजपिप्पली ॥ ५९ ॥
कर्पूरं वनिता चैव कुन्दखोटि समांशिकम् ।
लौहमभ्रकवंगानां द्विभागं तत्र दापयेत् ॥ १६० ॥
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
सर्वचूर्णसमं देयं भृष्टजीरस्य चूर्णकम् ॥ ६१ ॥
सिता द्विगुणिता देया मोदकं परिकल्पयेत् ।
घृतेन मधुना मिश्रं मोदकञ्च भिषग्वरः ॥ ६२ ॥
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय यथादोषबलाबलम् ।
गव्यं सशर्करञ्चैव अनुपानं प्रयोजयेत् ॥ ६३ ॥
अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ।
सर्वांस्तान् नाशयत्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ६४ ॥
नानावर्णमतीसारं विशेषादामसम्भवम् ।
शूलमष्टविधं हन्ति अर्शोरोगं चिरोद्भवम् ॥ ६५ ॥
जीर्णज्वरञ्च सततं विषमज्वरमेव च ।
क्षीणाश्चैवानपत्यानां दुर्बलानाञ्च देहिनाम् ॥ ६६ ॥
पुष्टिकृत पुत्रकृच्चैव बलवर्णकरं परम् ।
सूतिकारोगमत्युग्रं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ६७ ॥

प्रदरं नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः।
दाहं सार्वांगिकश्चैव वातपित्तोत्थितश्च यत्॥
अयं सर्वंगदोच्छेदी जीरकाद्यो हि मोदकः॥ ६८॥

सफेदजीरा, कालाजीरा, कूठ, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड,आमला, बहेडा, दारचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, वंशलोचन, लौंग, भूरिछरीला, लालचन्दन, सफेदचन्दन, काकोली, क्षीरकाकोली, जावित्री,जायफल, मुलैठी, सौंफ, बालछड, नागरमोथा, कालानमक,कचूर, धनियाँ,देवताडवृक्ष, मुरामांसी, दाख, नखी,सोया, पद्माख, मेथी, देवदारु, सुगन्धवाला, नली गंध द्रव्य सैंधानमक, गजपीपल, कर्पूर, कुन्दुरू प्रत्येक औषधि एकएकतोला एवं लोहा, अभ्रक और वङ्ग ये प्रत्येक दो दो तोले इन सबको एकत्र मिलाकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर सब चूर्णकी बराबर भुनेहुए जीरेका चूर्ण और जीरेके चूर्ण सहित सम्पूर्ण चूर्णसे दुगुनी मिश्री लेवे। प्रथम मिश्रीका पाककरे उसमें उक्त औषधियोंके चूर्णको डालकर घृत और मधुकेयोगसे मोदक बनालेवे। ये मोदक प्रतिदिन प्रातःकाल दोष तथा अग्निके बलाबलको विचारकर भक्षण करने और ऊपरसे मिश्री मिलाकर गायका दूध पान करना चाहिये।यह प्रयोग अस्सी प्रकारके वातज, ४० प्रकारके पित्तज और अन्यान्य सर्वप्रकारके रोगोंको इस प्रकार नष्ट करदेता है जैसे वज्र वृक्षोंको तत्काल नाश करदेता है। एवं अनेक प्रकारके अतिसार, विशेषकर आमातिसार, आठ प्रकारका शूल, बहुत पुराना अर्शरोग, जीर्णज्वर सततज्वर और विषमज्वरको नष्ट करताहै। तथा वन्ध्या स्त्रियोंको पुत्र देनेवाला, दुर्बल मनुष्योंको पुष्ट करनेवाला और अत्यन्त बल, वर्णको बढानेवाला है। प्रसूताके दारुण रोग, प्रदररोग, वातिक व पैत्तिक सर्वशरीरकी दाह आदि रोगोंको निस्सन्देह दूर करताहै॥ ५६-६८॥

अग्निकुमारमोदक।

उशीरं बालकं मुस्तं त्वक् पत्रं नागकेशरम्।
जीरद्वयं च शृंगं च कट्फलं पुष्करं शठी॥ ६९॥
त्रिकटु बिल्वकं धान्यं जातीफललवंगकम्।
कर्पूरं कान्तलौहं च शैलजं वंशलोचना॥ १७०॥
एलाबीजं जटामांसी रास्ना तगरपादुकम्।
समंगातिबला चाभ्रं मुरा वंगं तथैव च॥ ७१॥

अस्य चूर्णसमा मेथी चूर्णार्द्धं विजयारजः।
शर्करामधुसंयुक्तं मोदकं परिकल्पयेत्॥ ७२॥
एककर्षप्रमाणन्तु भक्षयेत् प्रातरुत्थितः।
शीततोयानुपानेन आजेन पयसाथवा॥ ७३॥
ग्रहणीं दुस्तरां हन्ति श्वासं कासमतीव च।
आमवातमग्निमान्द्यमजीर्णं विषमज्वरम्॥ ७४॥
विबन्धानाहशूलं च यकृत्प्लीहोदराणि च।
हन्त्यष्टादशकुष्ठानि ग्रहणीदोषनाशनः॥
उदावर्त्तगुल्मरोगोदरामयविनाशनः॥ ७५॥

खस, सुगन्धवाला, नागरमोथा, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, जीरा, कालाजीरा, काकडासिंगी, कायफल, पोहकरमूल, कचूर, सोंठ, पीपल, मिरच, बेलगिरी, धनियाँ, जायफल, लौंग, कपूर, कान्तलोह, भूरिछरीला, वंशलोचन, इलायची, बालछड, रायसन, तगर, लज्जावंती, कंघी, अभ्रक, मुरामांसी और वंग इन सबका चूर्ण समानभाग और समस्तचूर्णके बराबर मेथीका चूर्ण एवं मेथीके चूर्णसहित सबचूर्णसे आधाभाग भाँगका चूर्ण और सम्पूर्ण चूर्णसे दूनी शुद्ध खाँड मिश्री लेवे। सबको यथाविधिसे एकत्रितकर शहद डालकर मोदक बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक कर्षप्रमाण भक्षण करे और ऊपरसे शीतलजल अथवा बकरीका दूध पानकरे। यह मोदक दुस्तरग्रहणी, श्वास, खाँसी, आमवात, मन्दाग्नि, अजीर्ण, विषमज्वर, विबन्ध, आनाह, शूल, यकृत, प्लीहा, उदररोग १८ प्रकारके कुष्ठ, ग्रहणीके सब उपद्रव, उदावर्त, गुल्म और सर्वप्रकारके उदरविकारोंको शीघ्र नष्ट करतेहैं॥ ६९-१७५॥

हंसपोट्टली।

दग्धान्कपर्द्दकान् पिष्ट्वा त्र्यूषणं टंगणं विषम्।
गन्धकं शुद्धसूतं च तुल्यं जम्बीरजैर्द्रवैः॥ ७६॥
मर्द्दयेद् भक्षयेन्माषं मरिचाज्यं लिहेदनु।
निहन्ति ग्रहणीरोगं पथ्यं तक्रोदनं हितम्॥ ७७॥

कौडीकी भस्म, सोंठ, पीपल, मिरच, सुहागा, शुद्ध मीठातेलिया, शुद्ध गन्धक और शुद्धपारा इन सबको समानभाग लेकर जम्बीरीनींबूके रसमें उत्तमप्रकारसे खरल करले। फिर प्रतिदिन एकएक माशे प्रमाण लेकर मिर-

चोंके चूर्ण और घीमें मिलाकर सेवन करना चाहिये। यह औषधि संग्रहणी रोगको नष्ट करतीहै। इसपर मट्ठे और भातका पथ्य देना हितकरहै ७६॥७७

ग्रहणीकपर्दपोट्टली।

कपर्दतुल्यं रसकन्तु गन्धकं लौहं मृतं टंगणकञ्च तुल्यम्।
जयारसेनैकदिनं विमर्द्य चूर्णेन संवेष्ट्य पुटेच्च भाण्डे॥
ददीत तत्पोट्टलिकाभिधानंवातप्रधानग्रहणीनिवृत्त्यै॥७८॥

कौडीकी भस्म, शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहभस्म और सुहागा इन सबको समान भाग लेकर एकत्रकर भाँगके रसमें एकदिन तक अच्छेप्रकारसे मर्दन करके गोलासा बनालेवे। उसको चूनसे लपेटकर एक बर्त्तनमें बन्दकर पुटपाकविधिसे पाककरे।जब पककर स्वयं शीतल होजाय तब औषधिको निकालकर चूर्ण करलेव। इस ग्रहणीकपर्दपोट्टलीनामकरसको वातजसंग्रहणीरोगमें प्रयोग करना चाहिये॥ ७८॥

अग्निकुमाररस।

रसं गन्धं विषं व्योषं टङ्कणं लौहभस्मकम्।
अजमोदाहिफेनञ्च सर्वतुल्यं मृताभ्रकम्॥ ७९॥
चित्रकस्य कषायेण मर्दयेद्यामभात्रकम्।
मरिचाभां वटीं खादेदजीर्ण ग्रहणीं तथा॥
नाशयेन्नात्र सन्देहो गुह्यमेतच्चिकित्सितम्॥ १८०॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, शुद्धमीठातेलिया, सोंठ, पीपल, मिरच, सुहागा, लोहभस्म, अजमोद और अफीम ये प्रत्येक समानभाग और सबकी बराबर अभ्रककी भस्म लेवे।सबको एकत्र मिलाकर चीतेके काथमें एक प्रहरतक खरल कर कालीमिरचकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इसकी प्रतिदिन एकएक गोली खानेसे अजीर्ण और ग्रहणीरोग दूर होताहै। यह प्रयोग वैद्योंको गोपनीयहै॥

१–स्वल्पग्रहणीकपाटरस।

दरदं गन्धपाषाणं तुगाक्षीर्यहिफेनकम्।
तथा वराटिकाभस्म सर्वं क्षीरेण मर्दयेत्॥ १८१॥
रक्तिकायुग्ममानेन च्छायाशुष्कां वटीं चरेत्।
ग्रहणीं विविधां हन्ति रक्तातीसारमुल्बणम्॥ ८२॥

सिंगरफ, शुद्धगन्धक, वंशलोचन, अफीम और कौडीकी भस्म इन सबको समान भाग लेकर गोदुग्धमें मर्दन करके दो २ रत्तीकी गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे । यह रस विविध प्रकारकी संग्रहणी और अत्युग्र रक्तातिसारको दूर करता है ॥ १८१ ॥ ८२ ॥

२–ग्रहणीकपाटरस ।

रसगन्धकयोश्चापि जातीफललवंगयोः ।
प्रत्येकं शाणमानञ्च श्लक्ष्णचूर्णीकृतं शुभम् ॥ ८३ ॥
सूर्यावर्त्तरसेनैव बिल्वपत्ररसेन च ।
शृंगाटकस्य पत्राणां रसैः प्रत्येकशः पलैः ॥ ८४ ॥
चण्डातपेन संशोष्य वटिकां कारयेद्भिषक् ।
बिल्वपत्ररसेनैव दापयेद्रक्तिकाद्वयम् ॥ ८५ ॥
दध्ना च भोजनीयञ्च ग्रहणीरोगनाशनः ।
पाण्डुरोगमतीसारं शोथं हन्ति तथा ज्वरम् ॥
ग्रहणीकपाटनामायं रसः परमदुर्लभः ॥ ८६ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, जायफल और लवंग ये प्रत्येक औषधि चार २ माशे लेकर बारीक पीसलेवे । फिर हुलहुल, बेलके पत्ते और सिंघाडेके पत्ते, इन प्रत्येकके चार २ तोलेरसमें उत्तम प्रकारसे खरल करके तेजधूपमें सुखाकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन एक एक गोली बेलके पत्तोंके रसके साथ सेवन करनी चाहिये और इसपर दहीके साथ भातका भोजन करना चाहिये। इसके सेवनसे संग्रहणी, पाण्डुरोग, अतीसार, सूजन और ज्वर ये सब रोग नष्ट होते हैं। यह ग्रहणीकपाटनामवाला रस अत्यन्त दुर्लभ है ॥८३-८६॥

३–ग्रहणीकपाटरस ।

श्वेतसर्ज्जस्य शुद्धस्य गन्धकस्य रसस्य च ।
शुभेऽह्नि पृथगादाय चूर्णं माषचतुष्टयम् ॥ ८७ ॥
एकीकृत्य शिलाखल्ले दद्यात्तेषां तदा रसम् ।
सूर्यावर्त्तस्य बिल्वस्य शृंगाटस्य च पत्रजम् ॥ ८८ ॥
प्रत्येकं पलमेकैकं दापयेद्ग्रहणीगदे ।
दापयित्वा ततो यत्नाद्दधिभक्तं समाचरेत् ॥ ८९ ॥
असंवृत्तगुदद्वारं कपाटमिव ढक्कयेत ।

अतश्च ग्रहणीरोगे कपाटोऽयं रसः स्मृतः ॥ १९० ॥

सफेद राल, शुद्ध गंधक और शुद्धपारा इनको शुभदिनमें अलग अलग चार चारमासे लेकर चूर्ण करलेवे। फिर पत्थरके खरलमें डालकर हुलहुल, बेल और सिंघाडेके पत्तोंका रस चार २ तोले डालकर पृथक् पृथक् खरल करे और दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे एक एक गोली सेवन करनेसे और इसपर दहीके साथ भातका भोजन करनेसे ग्रहणीरोग दूर होताहै । यह रस खुले हुए गुदाके द्वारको किवाडोंकी समान ढक देताहै । इसलिये इसे ग्रहणीकपाटरस कहते हैं ॥ ८७-१९० ॥

४-ग्रहणीकपाटरस ।

गिरिजाभवबीजकज्जली परिमर्द्याद्र्रसेन शोषिता ।
कुटजस्य तु भस्मना पुनर्द्विगुणेनाथ विमर्द्य मिश्रिता ॥ ९१ ॥
मर्दयित्वा प्रदातव्यमस्य गुञ्जाचतुष्टयम् ।
अजाक्षीरेण दातव्यं क्वाथेन कुटजस्य वा ॥ ९२ ॥
यूषं देयं मसूरस्य वारि भक्तञ्च शीतलम् ।
दध्ना सह पुनर्देयं ग्रासादौ रक्तिकाद्वयम् ॥ ९३ ॥
वर्द्धयेद्दशपर्यन्तं ह्रासयेत् क्रमशस्तथा ।
निहन्ति ग्रहणीं सर्वां विशेषात् कुक्षिमार्दवम् ॥ ९४ ॥

शुद्धपारा १ तोला और शुद्ध गन्धक १ तोला दोनोंकी एकत्र कज्जली बनाकर उसमें ४ तोले कुडेकी छालकी भस्म मिलाकर अदरखके रसमें खरल करे । फिर छायामें सुखाकर चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस रसकी एक एक गोली बकरीके दूध अथवा कुडेकी छालके क्वाथके साथ सेवन करानी चाहिये । फिर भोजनके पहले ग्रासमें उसको दो रत्तीकी मात्रासे दहीके साथ सेवन करावे । इस रसको पहिले प्रतिदिन दो दो रत्तीकी मात्रासे लेकर दस रत्तीतक बढावे । फिर क्रमसे घटाकर चार रत्तीतक करलेवे । इसपर मसूरका यूष, शीतलजल तथा भातका पथ्य देना चाहिये । यह रस सब प्रकारकी संग्रहणी और विशेषकर कुक्षी (पेट) की मृदुताको दूर करता है ॥ ९१-९४

५-ग्रहणीकपाटरस ।

टङ्कणक्षारगन्धाश्मरसं जातीफलं तथा ।
बिल्वं खदिरसारञ्च जीरकं श्वेतधूनकम् ॥ ९५ ॥

कपिहस्तकबीजञ्च तथैव बकपुष्पकम्।
एषां शाणं समादाय श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ९६॥
बिल्वपत्रककार्पासफलं शालिञ्च दुग्धिका।
शालिञ्चमूलं कुटजत्वचः कञ्चटपत्रकम् ॥ ९७ ॥
सर्वेषां स्वरसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक्।
रक्तिकैकप्रमाणेन खादयेद्दिवसत्रयम् ॥ ९८ ॥
दधिमस्तु ततः पेयं पलमात्रप्रमाणतः।
अपि योगशताक्रान्तां ग्रहणीमुद्धतां जयेत् ॥ ९९ ॥
आमशूलं ज्वरं कासं श्वासं शोथं प्रवाहिकाम्।
रक्तस्रावकरं द्रव्यं कार्यं नैवात्र युक्तितः ॥ २०० ॥
कृष्णवार्ताकुमत्स्यञ्च दधि तक्रञ्च शस्यते।
ज्ञात्वा वायोः कृतिं तत्र तैलं वारि प्रदापयेत ॥२०१॥

सुहागा, जवाखार, शुद्ध गन्धक, शुद्धपारा, जायफल, बेलगिरी, खैरसार, जीरा, सफेदराल, कौंचके बीज और अगस्तियाके फूल प्रत्येक चार चार माशे लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर उस चूर्णको बेलके पत्ते, कपासके फल, शालिञ्चशाक, दुद्धी, शालिञ्चकी जड, कुडेकी छाल और जलचौलाई इन सब औषधियोंके रसमें खरल करके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस औषधिको प्रतिदिन एकएक गोलीके क्रमसे तीन दिनतक सेवन करे और ऊपरसे एकएक पल प्रमाण दहीका तोड पान करे। यह औषधि जो सैकडों प्रयोगोंसे भी दूर नहीं हुई हो ऐसी प्रबल संग्रहणी एवं आमयुक्त शूल, ज्वर, खाँसी, श्वास, शोथ और प्रवाहिका इन सब रोगोंको नष्ट करती है। इसपर रक्तस्राव करनेवाले पदार्थोंको कदापि सेवन नहीं करना चाहिये। काले बैंगन, मछली दही और मट्ठेको सेवन करना चाहिये। एवं वायुके बलाबलको विचारकर इसपर तेल और जल देना चाहिये ॥ ९५-२०१ ॥

६-ग्रहणीवज्रकपाटरस।

सूतं गन्धं यवक्षारं जयन्त्युग्राभ्रटंगणम्।
जयन्तीभृंगजम्बीरद्रवैः पिष्ट्वा दिनत्रयम् ॥ २०२ ॥
यामार्द्धंगोलकं स्वेद्यं मन्देन पावकेन च।
शीते जयारससमैः शाल्मलीविजयाद्रवैः ॥ २०३ ॥

भावयेत्सप्तधा वज्रकपाटः स्याद्रसोत्तमः ।
माषद्वयं त्रयं वास्य मधुना ग्रहणीं जयेत् ॥ २०४ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, जवाखार, अरणी, वच, अभ्रक और सुहागा, इन सब औषधियोंके चूर्णको अरणी, भाँगरा और जम्बीरीनींबू इनके रसमें पृथक् पृथक् तीन दिनतक खरल करके गोलासा बनालेवे। उस गोलेको मन्दमन्द अग्निके द्वारा आधे प्रहरतक स्वेद देवे। फिर शीतल होजानेपर भाँग, सेमलकी मुसली और हरड इनके रस अथवा काथमें सात बार भावना देवे तो यह ग्रहणीवज्र-कपाटरस सिद्ध होता है। इस रसकी दो या तीन मासे मात्रा शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे संग्रहणी दूर होती है ॥ २०२-२०४ ॥

वृहद्ग्रहणीवज्रकपाट ।

तारमौक्तिकहेमानि सारश्चैकैकभागिकम् ।
द्विभागो गन्धकः सूतस्त्रिभागो मर्दयेदिमान् ॥ २०५॥
कपित्थस्वरसैर्गाढं मृगश्रृंगे ततः क्षिपेत् ।
पुटेन्मध्यपुटेनैव तत उद्धृत्य मर्द्दयेत् ॥ २०६ ॥
बलारसैः सप्तधैवमपामार्गरसैस्त्रिधा ।
लोध्रश्चातिविषा मुस्ता धातकीन्द्रयवामृताः ॥२०७॥
प्रत्येकमेतत्स्वरसैर्भावना स्यात्त्रिधा त्रिधा ।
माषमात्रो रसो देयो मधुना मरिचैस्तथा ॥ २०८ ॥
हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वजामपि ।
कपाटो ग्रहणीरोगे रसोऽयं वह्निदीपनः ॥ २०९ ॥

रूपा, मोती, सुवर्ण और लोह इन प्रत्येककी भस्म एक एक भाग शुद्ध गन्धक दो भाग और शुद्ध पारा तीन भाग ले एकत्रितकर कैथके पत्तोंके स्वर-समें उत्तम प्रकारसे खरल करके हिरनके सींगमें भरकर और उसको अच्छे प्रकारसे बंद करके गजपुटमें रखकर पकावे। पश्चात् औषधिको निकालकर खिरैंटीके रसमें ७ वार एवं चिरचिटा, लोध, अतीस, नागरमोथा, धायके फूल, इन्द्रजौ और गिलोय इन प्रत्येकके रसमें तीन तीन बार भावना देकर एक एक माशेकी गोलियाँ बनालेवे इनमेंसे एक एक गोली शहद और काली मिरचोंके चूर्णके साथ सेवन करनेसे यह रस सर्व प्रकारके अतिसार और सर्व दोषोत्पन्न ग्रहणीरोगको शीघ्र नष्ट करता है ॥ २०५-२०९ ॥

संग्रहग्रहणीकपाट ।

मुक्ता सुवर्णं रसगन्धटङ्कं घनं कपर्दामृततुल्यभागः ।
सर्वैः समं शङ्खकचूर्णमिष्टं खल्ले च भाव्योऽतिविषाद्रवेण॥२१०
गोलञ्च कृत्वा मृदुकर्पटस्थं सम्पाच्य भाण्डे दिवसार्द्धकञ्च ।
सर्वाङ्गशीते रस एष भाव्यो धुस्तूरवह्निर्मुसलीद्रवैश्च ॥११॥
लौहस्य पात्रे परिभावितश्च सिद्धो भवेत् संग्रहणीकपाटः ।
वातोत्तरायां मरिचाज्ययुक्तः पित्तोत्तरायां मधुपिप्पलीभिः॥
कफोत्तरायां विजयारसेन कटुत्रयेणाज्ययुतो ग्रहण्याम् ।
क्षयज्वरे चार्शसि षट्प्रकारे मान्द्यातिसारेऽरुचिपीनसेषु ॥
मेहे च कृच्छ्रे गतधातुवर्द्धने गुञ्जाद्वयं चास्य महामयघ्नम्१३

मोती, सुवर्ण, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुहागा, अभ्रक,कौडी इनकी भस्म और शुद्ध मीठातेलिया इन सबको समानभाग और सबको बराबर शङ्खकी भस्म लेवे, फिर सबको खरलमें डालकर अतीसके काथमें खरल करके गोलासा बनालेवे। उस गोलेको सूक्ष्मवस्त्रमें लपेटकर किसी एक मट्टीके उत्तम पात्रमें यथाविधि बन्दकरके गजपुटमें रखकर दो प्रहरतक पकावे । जब स्वांगशीतल होजाय तब औषधिको निकालकर लोहेके पात्रमें डालकर धतूरा, चीता और मुसली इनके रस व काथमें अच्छे प्रकारसे खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बना लेवे । इस प्रकार यह संग्रहग्रहणीकपाटरस सिद्ध होता है । इस रसको वाताधिक्य संग्रहणीमें मिरचोंके चूर्ण और घीके साथ तथा पित्ताधिक्य संग्रहणीमें शहद और पीपलके चूर्णके साथ और कफाधिक्य संग्रहणीमें भाँगके रस अथवा घृत मिश्रित त्रिकुटेके चूर्णके साथ सेवन करना चाहिये। एवं मन्दाग्नि, क्षय, ज्वर, छः प्रकारकी बवासीर, अतिसार, अरुचि, पीनस, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्रादि रोगोंमें और नष्ट हुई धातु वृद्धिके लिये इसका प्रयोग करना चाहिये। यह रस बडी बडी दुस्तर व्याधियोंको नष्ट करता है ॥ २१०-२१३ ॥

ग्रहणीगजेन्द्रवटिका ।

रसगन्धकलौहाभ्रं शङ्खटंगणरामठम् ।
शठीतालीशमुस्तानि धान्यजीरकसैन्धवम् ॥ १४ ॥
धातक्यतिविषाशुण्ठीगृहधूमो हरीतकी ।
भल्लातकं तेजपत्रं जातीफललवंगकम् ॥ १५ ॥

त्वगेला बालकं बिल्वं मेथी शक्राशनस्य च।
रसैः सम्मर्द्य वटिका रसवैद्येन कारिता ॥ १६ ॥
गहनानन्दनाथेन भाषितेयं रसायने।
ग्रहणीगजेन्द्रसंज्ञेयं श्रीमता लोकरक्षणे ॥ १७ ॥
ग्रहणीं विविधां हन्ति ज्वरातीसारनाशिनी।
शूलगुल्माम्लपित्तांश्च कामलाश्च हलीमकम् ॥ १८ ॥
बलवर्णाग्निजननी सेविता च चिरायुषे।
कण्डूं कुष्ठं विसर्पञ्च गुदभ्रंशं कृमिं जयेत् ॥ १९ ॥
माषद्वयां वटीं खादेच्छागीदुग्धानुपानतः।
वयोऽग्निबलमावीक्ष्य युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम् ॥ २२० ॥

शुद्धपारा और शुद्धगन्धक दोनोंकी कज्जली एवं लोहभस्म, शंखभस्म, सुहागा, हींग, कचूर, तालीसपत्र, नागरमोथा, धनियाँ, जीरा, सैंधानमक, धायके फूल, अतीस, सोंठ, घरका धुआँ, हरड, भिलावे, तेजपात, जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, सुगन्धवाला, बेलगिरी और मेथी इन सबके समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर भाँगके रसमें खरल करके दो दो माशेकी गोलियाँ बनालेवे। इसको अवस्था और अग्निके बलाबलका विचारकर मात्राको न्यूनाधिकता करके बकरीके दूधके साथ सेवन करना चाहिये। यह वटिका नानाप्रकारकी संग्रहणी, ज्वर, अतिसार, शूल, गुल्म, अम्लपित्त, कामला, हलीमक, खुजली, कुष्ठ, विसर्प, गुदभ्रंश और कृमिरोगको दूर करती है। एवं बल, वर्ण, अग्नि और आयुकी विशेष वृद्धि करनेवाली है। इस ग्रहणीगजेन्द्र नामक वटिकाको लोकके कल्याणकी इच्छासे श्रीमान् गहनानन्दनाथजीने निर्म्माण किया है। यह अत्युत्तम रसायन है ॥ १४-२२० ॥

जातीफलाद्यवटिका।

जातीफलं टंगणमभ्रकञ्च धुस्तूरबीजं समभागचूर्णम्।
भागद्वयं स्यादहिफेनकस्य गन्धालिकापत्ररसेन मर्द्यम् ॥ २१ ॥
चणप्रमाणा वटिका विधेया मधुप्रयुक्ता ग्रहणीगदेषु।
रोगेषु दद्यादनुपानभेदैर्युक्त्या विदध्यादतिसारवत्सु ॥ २२ ॥
सामेषु रक्तेषु सशूलकेषु पक्केष्वपक्केषु गुदामयेषु।
पथ्यं सदध्योदनमत्र देयं रसोत्तमोऽयं ग्रहणीकपाटः ॥ २३ ॥

जायफल, सुहागा, अभ्रक और धतूरेके बीज प्रत्येक एकएक तोला और अफीम दो तोले लेवे। सबको एकत्र गन्धप्रसारिणीके रसमें मर्दन करके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इसको संग्रहणीरोगमें शहदके साथ अतिसार, आमातिसार, रक्तातिसार, शूल, पक्व व अपक्व गुदारोग आदि विकारोंमें यथादोषानुसार अनुपानके साथ विधिपूर्वक सेवन करे तो सम्पूर्ण विकार नष्ट होतेहैं । इसपर दहीके साथ भातका पथ्य देना चाहिये ॥ २१-२३ ॥

बृहज्जातीफलाद्यवटिका ।

विशुद्धसूतस्य च गन्धकस्य प्रत्येकशो माषचतुष्टयञ्च ।
विधाय शुद्धोपलपात्रमध्ये सुकज्जलीं वैद्यवरः प्रयत्नात् २४॥
जातीफलं शाल्मलिवेष्टमुस्त सटंगणं सातिविषं सजीरम् ।
प्रत्येकमेषां मरिचस्य शाणप्रमाणमेकं विषमाषकञ्च ॥ २५ ॥
विचूर्ण्य सर्वाण्यवलोड्य पश्चाद्विभावयेत्पत्रभवैरमीषाम् ।
रसै रसोन्मानमितै रसालवंशौ च भद्रोत्कटकंचटौच २६ ॥
इन्द्राणिकेन्द्राशनकं सजम्बु जयन्तिका दाडिमकेशराजौ ।
अविद्धकर्णापि च भृंगराजोविभाव्य सम्यग्वटिका विधेया ॥
कोलास्थिमाना च बहुप्रकारं क्षामं निहन्त्यत्र यथानुपानम् ।
कुर्याद्विशेषादनलावलम्बं कासञ्च पश्चात्मकमम्लपित्तम् २८
इयं निहन्ति ग्रहणीं प्रवृद्धं मर्त्यस्य जीर्णग्रहणीमसाध्याम् ।
चिरोद्भवां संग्रहकोष्ठदुष्टिं शोथं समुग्रं गुदजानसाध्यान् २९
आमानुबद्धस्त्वतिसारमुग्रं जयेद्भृशं योगशतैरसाध्यम् ।
विवर्जनीयात्त्विवह भ्रष्टमत्स्यामत्स्यस्तथा पाण्डुरवर्ण एव ३०
रम्भाफलं मूलमथौदनञ्च बुधैर्विधेयं न कदाचिदत्र ।
जातीफलाद्या वटिका विधेया यशोऽर्थिनो वैद्यवरस्य हृद्या ।
अनेकसंभावितमर्त्यलोका नानाविधव्याधिपयोधिनौका॥

शुद्धपारा और शुद्धगन्धक दोनोंको चार २ माशे लेकर एक उत्तम पत्थरके खरलमें डाल कर अच्छे प्रकारसे मर्दन करके कज्जली बनालेवे। फिर जायफल, मोचरस, नागरमोथा, सुहागा, अतीस, जीरा और मिरच ये प्रत्येक चार२माशे और शुद्ध मीठातेलिया एक माशे लेवे । इन सबको एकत्र पीसकर पूर्वोक्त कज्जलीमें मिश्रित करके आम, बाँस, गन्धप्रसारिणी, जलपीपल, सिह्माल्,

भाँग, जामुन, अरणी, अनार, कुकुरभाँगरा, पाढ और भाँगरा इन प्रत्येक औषधिके पत्तोंके स्वरसमें पृथक् २ अच्छे प्रकारसे खरल करके बेरकी गुठलीकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । यह वटी यथादोषानुसार अनुपानके साथ सेवन करनेसे नानाप्रकारके आमयुक्त विकारोंको नष्टकरतीहै और विशेषकर अग्निकी दीपन करतीहै । एवं पाँचों प्रकारकी खांसी, अम्लपित्त, प्रबल और असाध्य संग्रहणी, बहुत पुरानी कोष्टकी खराबी अत्यन्त बढ़ाहुआ शोथ, असाध्य गुदाके रोग, आमयुक्त अत्युग्र अतिसार और जो सैकडों प्रयोगोंसे भी सिद्ध न होसके हों ऐसे असाध्य रोगोंको तत्काल नष्ट करती है।इसको सेवन करने पर भुनीहुई मछली, पीलेरंगकी मछली, केलेकी फली, तथा कदलीके कन्द और भात इन पदार्थोंको कदापि भक्षण नहीं करना चाहिये । यह जातीफलाद्य वटिका यश चाहनेवाले वैद्योंके मनको हरनेवाली है । और इस मनुष्यलोकमें अनेकप्रकारके रोगरूपी समुद्रमें डूबते हुए मनुष्योंको उबारनेके लिये नौकारूप है ॥ २४-३१ ॥

वडवामुख रस ।

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतताम्राभ्रटङ्कणम् ।
सामुद्रश्च यवक्षारं स्वर्जिसैन्धवनागरम् ॥ ३२ ॥
अपामार्गस्य च क्षारं पलाशवरुणस्य च ।
प्रत्येकं सूततुल्यं स्यादम्लयोगेन मर्दयेत् ॥
हस्तिशुण्डीद्रवैश्चाग्नौ मर्दयित्वा पुटेल्लघु ॥ ३३ ॥
माषमात्रः प्रदातव्यो रसोऽयं वडवामुखः ।
ग्रहणीं विविधां हन्ति संग्रहग्रहणीं ज्वरम् ॥ ३४ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताँबेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, सुहागा, सामुद्रिक लवण, जवाखार, सज्जी, सैन्धानमक, सोंठ, चिराचिटेका खार, ढाकका क्षार और वरनेका क्षार इन सबको समानभाग लेकर काँजीके साथ खरल करे फिर हाथीसुण्डा और चीतेकी जडके क्वाथमें खरल करके लघुपुटमें पकावे । यह वडवामुखनामक रस एक २ मासे परिमाण सेवन करनेसे अनेक प्रकारकी संग्रहणी और ज्वरादि रोगोंको शीघ्र दूर करता है ॥ ३२-३४ ॥

ग्रहणीशार्दूलरस ।

रसगन्धकयोश्चापि कर्षमेकं सुशोधितम् ।
द्वयोः कज्जलिकां कृत्वा हाटकं षोडशांशतः ॥ ३५ ॥

लवङ्गं निम्बपत्रञ्च जातीकोषफले तथा।
एतेषां कर्षचूर्णेन सूक्ष्मैलां सह मेलयेत् ॥ ३६ ॥
मुक्तागृहे च संस्थाप्य पुटपाकेन साधयेत।
गुञ्जापञ्चप्रमाणेन प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ ३७॥
सूतिकां ग्रहणीरोगं हरत्येष सुनिश्चितम्।
अर्शोघ्नो दीपनश्चैव बलपुष्टिप्रसाधनः ॥ ३८ ॥
कासश्वासातिसारघ्नो बलवीर्यकरः परः।
संग्रहग्रहणीरोगश्चामशूलञ्च नाशयेत ॥
संसारलोकरक्षार्थं पुरा रुद्रेण भाषितः॥ ३९ ॥

शुद्धपारा और शुद्धगंधकको एकएक कर्ष प्रमाण लेकर एकत्र खरलकर कज्जली बनालेवे. फिर उसमें सुवर्णभस्म सोलहवां भाग एवं लौंग, नीमके पत्ते, जावित्री, जायफल और छोटी इलायची इनको एकएक कर्ष चूर्ण मिलाकर एक सीपीमें अच्छे प्रकारसे बंद करके और ऊपरसे कपरौटीकर पुटपाक करे। पश्चात् स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर प्रातिदिन पांच २ रत्तीकी मात्रासे भक्षण करे। यह रस सूतिका रोग, ग्रहणी, अर्श, खांसी, श्वास, अतीसार, अत्यंत प्रबल ग्रहणी और आमशूल रोगको निश्चय नष्ट करता है. एवं अग्निको दीपन करनेवाला बल पुष्टि और वीर्यको अत्यंत वृद्धि करनेवाला है। इस रसको पूर्वकालमें सांसारिकजीवोंकी रक्षाके लिये महादेवजीने कहा है ॥

महागन्धक और सर्वाङ्गसुन्दररस।

रसगन्धकयोः कर्ष ग्राह्यमेकं सुशोधितम्।
ततः कज्जलिकां कृत्वा मृदुपाकेन साधयेत् ॥ २४०॥
जात्याः फलं तथा कोषं लवङ्गारिष्टपत्रके।
सिन्दुवारदलञ्चैव एलाबीजं तथैव च ॥ ४१ ॥
एतेषां कर्षमात्रेण तोयेन सह मर्दयेत।
मुक्तागृहे पुनः स्थाप्यं पुटपाकेन साधयेत् ॥ ४२ ॥
घनपङ्के बहिर्लिप्ता पुटमध्ये निधापयेत।
गुञ्जाषट्कप्रमाणेन प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ ४३ ॥
एतत् प्रोक्तं कुमाराणां रक्षणाय महौषधम्।

ज्वरघ्नं दीपनञ्चैव बलवर्णप्रसादनम् ॥ ४४ ॥
दुर्वारं ग्रहणीरोगं जयत्येव प्रवाहिकाम् ।
सूतिकाञ्च जयेदेतद्रक्तार्शो रक्तसम्भवम् ॥ ४५ ॥
कासश्वासातिसारघ्नं वाजीकरणमुत्तमम् ।
बालरोगं निहन्त्याशु सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ ४६ ॥
पिशाचा दानवा दैत्या बालानां ये विघातकाः ।
यत्रौषधवरास्तिष्ठेत् तत्र सीमां त्यजन्ति ते ॥ ४७ ॥
बालानां गदयुक्तानां स्त्रीणाञ्चापि विशेषतः ।
महागन्धकमेतद्धि सर्वव्याधिनिषूदनम् ।
विना पाकेन सर्वाङ्गसुन्दरोऽयं प्रकीर्त्तितः ॥ ४८ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक दोनोंको एक एक कर्ष लेकर कज्जली बनालेवे फिर उसमें जल मिलाकर लोहेके पात्रमें मन्द मन्द अग्निसे कुछ देरतक पकावे पश्चात् उसमें जायफल, जावित्री, लौंग, नीमके पत्ते, निर्गुंडीके पत्ते और छोटी इलायची, इन प्रत्येकका एक एक कर्ष चूर्णको मिलाकर जलके साथ खरलकरे। फिर इस औषधिको एक सीपीमें भरकर और दूसरी सीपीसे बन्दकरके केलोंके पत्तोंसे लपेट कर ऊपरसे गाढी २ कींचडका लेप करके आरने उपलोंकी अग्निमें रखकर पुटपाक करे। जब वह पककर लालवर्ण होजाय तब निकालकर शीतल होनेपर खरल करलेवे। इस रसको प्रतिदिन छः रत्ती प्रमाण यथादोषानुसार उचित अनुपानके साथ सेवन करना चाहिये। यह रस ज्वर, दुस्साध्य संग्रहणी, प्रवाहिका, सूतिकारोग, रक्तार्श, खाँसी, श्वास, अतिसारआदि रोगोंको शीघ्र दूर करताहै। तथा अग्निप्रदीपक, बल, वर्णको प्रसन्न करनेवाला और उत्तम वाजीकरण औषधि है। यह रस विशेषकर बालकोंकी रक्षाके लिये कहागया है। बालकोंके सम्पूर्ण उपद्रवों सहित रोगोंको तत्काल नष्ट करता है। जिस स्थानमें यह उत्तम औषधि रहती है वहाँ बालकोंके प्राणोंको हरनेवाले पिशाच, दैत्य और दानव आदि नहीं ठहर सकते। यह महागन्धक नामक रस रोगसे पीडित बालकों और विशेषकर स्त्रियोंके सब प्रकारके रोगोंको दूर करता है। इस रसकी यदि विना पुटपाककिये औषधियोंको एकत्र तपाये जलमें खरलकर गोली बनाली जाय तो इसको सर्वाङ्गसुन्दर रस कहते हैं ॥ २४०-४८ ॥

वैद्यनाथ वटी ।

रसस्य शाणं संगृह्य काञ्जिकेन तु शोधयेत् ।
चित्रकस्य रसेनापि त्रिफलायाश्च बुद्धिमान् ॥ ४९ ॥
रसार्द्धं गन्धकं शुद्धं भृङ्गराजरसेन वा ।
द्वाभ्यां संमूर्च्छनं कृत्वा स्वरसैः शाणसम्मितैः॥२५०॥
खल्लयेत्तु शिलाखल्ले क्रमशो वक्ष्यमाणजैः ।
निर्गुण्डीमण्डुकीश्वेताकुचेलाग्रीष्मसुन्दरैः ॥ ५१ ॥
भृङ्गाह्वकेशराजैश्च जयेन्द्राशनकोत्कटैः ।
सर्षपाभां वटीं कृत्वा दद्यात्तां ग्रहणीगदे ॥ ५२ ॥
आमवातेऽग्निमान्द्ये च ज्वरे प्लीहोदरेषु च ।
वातश्लेष्मविकारेषु तथा श्लेष्मगदेषु च ॥ ५३ ॥
दातव्या गुटिकाः सप्त रोगिणे ग्रहणीगदे ।
अम्लतक्रादिसेव्यन्तु कुर्वीत स्वेच्छया बहु ॥ ५४ ॥
श्रीमता वैद्यनाथेन लोकानुग्रहकारिणा ।
स्वप्नान्ते ब्राह्मणस्येयं भाषिता लिखितापि च ॥५५॥

पारेको चार मासे परिमाण लेकर कांजी, चीतेके काथ और त्रिफलेके काथमें क्रमसे भावना देकर शुद्ध करे। फिर दो मासे गंधकको भांगरेके रसमें शुद्ध करके एकत्र पारेके साथ खरलकर पश्चात् एक पत्थरके खरलमें निर्गुण्डीके पत्ते, ब्राह्मी, सफेद कोयल, पाढ, ग्रीष्मसुन्दर (शालिंचशाक) कुकुरभांगरा, अरणी, भांग और दारचीनी इन प्रत्येकके चार २ मासे रसमें क्रमसे मर्दन करके सरसोंकी बराबर गोलियां बनालेवे। इसको ग्रहणीरोग, आमवात, मंदाग्नि, ज्वर, प्लीहा, उदररोग, वात कफरोग और कफविकारमें सेवन करावे । संग्रहणीरोगमें इसको एक साथ सात गोली देवे और ऊपरसे दहीकी तोड अथवा तक्रको यथेच्छरूपसे सेवन करावे। इससे संग्रहणीरोग नष्ट होता है॥ ४९-२५५ ॥

खसर्पणवटी ।

पक्वेष्टकाहरिद्राभ्यामागारधूमकेन च ।
शोधितं पारदश्चैव कर्षार्द्धं तुलया धृतम् ॥ ५६॥
भृङ्गराजरसैः शुद्धं गन्धकं रससम्मितम् ।
द्वाभ्यां कज्जलिकां कृत्वा भावयेत्तत्तु भेषजैः ॥ ५७ ॥

सिन्दुवारदलरसे मण्डूकपर्णिकारसे ।
केशराजरसे चापि ग्रीष्मसुन्दरजे रसे ॥ ५८ ॥
रसेऽपराजितायाश्च सोमराजीरसे तथा ।
रक्तचित्रकपत्रोत्थे रसे च परिभावितम् ॥ ५९ ॥
रसमानसमानेन च्छायायां शोषयेद्भिषक् ।
सर्षपाभाश्च गुडिकाः कारयेत् कुशलो भिषक् ॥२६०॥
ततः सप्तवटीर्दद्याद्दधिमस्तुसमाप्लुताः ।
नित्यं दध्ना च भोक्तव्यं कोष्ठदुष्टिनिवृत्तये ॥ ६१ ॥
ग्रहणीमतिसारञ्च ज्वरदोषञ्च नाशयेत् ।
अग्निदार्ढ्यकरं श्रेष्ठमाम्रपर्पटिकाद्वयम् ॥ ६२ ॥

पक्की ईटके चूर्ण, हल्दीका चूर्ण और घरका धुआँसा इन तीनोंके द्वारा शुद्ध कियाहुआ पारा एक तोला और भाँगरेके रससे शुद्ध कियाहुआ गन्धक एक तोला लेवे दोनोंके एकत्र कज्जली बनाकर निर्गुण्डीके पत्ते, ब्राह्मी, कुकुरभाँगरा, ग्रीष्मसुन्दर (शालिंचशाक,) बापची और लालचीतेकी पत्ते, इन प्रत्येक औषधिके एकएक तोला रसमें पृथक् २ खरल कर सरसोंकी बराबर गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे । संग्रहणीरोगवाले मनुष्यको इसकी सात २ गोली दहीके पानीके साथ मिलाकर देनीचाहिये । इसपर कोष्ठदोषके निवारण करनेके लिये प्रतिदिन दहीके साथ भोजन करना चाहिये । इससे संग्रहणी, अतिसार और ज्वर दूर होता है । एवं अग्नि अत्यन्त दीपन होती है५६-६२॥

रसाभ्रवटी ।

शुद्धसूतस्य कर्षैकं कर्षैकं गन्धकस्य च ।
द्वयोः कज्जलिकां कृत्वा तुल्यं व्योम प्रदापयेत्॥६३॥
केशराजस्य भृङ्गस्य निर्गुण्ड्याश्चित्रकस्य च ।
ग्रीष्मसुन्दरमण्डूकी जयन्तीन्द्राशनस्य च ॥ ६४ ॥
श्वेतापराजितायाश्च स्वरसं पर्णसम्भवम् ।
रसतुल्यं प्रदातव्यं चूर्णञ्च मरिचोद्भवम् ॥ ६५ ॥
देयं रसार्द्धभागेन चूर्णं टङ्कणसम्भवम् ।
सम्मर्द्य वटिकां कुर्यात् कलायसदृशीं बुधः ॥ ६६ ॥

हन्ति कासंक्षयं श्वासं वातश्लेष्मभवं रुजम् ।
ज्वरे चैवातिसारे च सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥ ६७ ॥
चातुर्थके ज्वरे श्रेष्ठो ग्रहण्यातङ्कनाशनः ।
दधि चावश्यकं देयं प्राह नागार्जुनो मुनिः ॥ ६८ ॥

शुद्धपारा १ कर्ष और शुद्ध गन्धक १ कर्ष दोनोंकी कज्जली करके उसमें दो कर्ष अभ्रककी भस्म मिलाकर उसको कुकुरभाँगरा, भाँगरा, सिह्लाल्ड, चीता, ग्रीष्मसुन्दर, ब्राह्मी, अरणी, भाँग, सफेदकोइल और पान इनके एक एक कर्ष प्रमाण रसमें क्रमसे अलग २ खरल करके कालीमिरचोंका चूर्ण एक कर्ष और सुहागा आधाकर्ष दोनोंको मिलाकर अच्छे प्रकारसे खरल करके मटरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । यह वटी खाँसी, क्षय, श्वास, वात, कफजन्यविकार, ज्वर, अतीसार चातुर्थिक ज्वर और संग्रहणी इन सब रोगोंको नष्ट करती है । इस पर दही अवश्य सेवन करना चाहिये ॥ ६३–६८ ॥

महाभ्रवटी ।

अभ्रकं पुटितं ताम्रं लौहं गन्धकपारदम् ।
कुनटी टङ्कणक्षारं त्रिफला च पलं पलम् ॥ ६९ ॥
गरलस्य तथा माषचतुष्कं चैव चूर्णयेत् ।
तत्सर्वं भावयेदेषां रसैः प्रत्येकशः पलैः ॥ २७० ॥
देवराजाशनाख्यस्य केशराजाख्यकस्य च ।
सोमराजस्य भृङ्गाख्यराजस्य श्रीफलस्य च ॥ ७१ ॥
पारिभद्राग्निमन्थस्य वृद्धदारस्य तुम्बुरोः ।
मण्डूकपर्णी निर्गुण्डी पूतिकोन्मत्तकस्य च ॥ ७२ ॥
श्वेतापराजितायाश्च जयन्त्याश्चार्द्रकस्य च ।
ग्रीष्मसुंदरकस्याटरूषकस्य रसेन तु ॥ ७३ ॥
रसैस्ताम्बूलवल्ल्याश्च पत्रोत्थैर्भावयेत पृथक् ।
द्रव्ये किञ्चित् स्थिते चूर्णं मरिचस्य पलं क्षिपेत् ॥ ७४ ॥
ततश्चैव वटीं कुर्यान्मात्रां दद्याद्यथोचिताम् ।
ज्वरे चैवातिसारे च कासे श्वासे क्षये तथा ॥ ७५ ॥
सन्निपातज्वरे चैव विविधे विषमज्वरे ।

क्षयरोगेषु सर्वेषु क्षीणशुक्रे च यक्ष्मणि ॥ ७६ ॥
ग्रहण्यां चिरभूतायां सूतिकायां विशेषतः।
शोथे शूले तथासाध्ये स्थविरे चामवातके ॥ ७७ ॥
मन्दानलेऽबले चैव सकले श्लेष्मजे गदे।
पीनसेऽपीनसे चैव पक्वेऽपक्वे विशेषतः ॥ ७८ ॥
वातश्लेष्मणि वाते वा विविधे चेन्द्रियस्थिते।
वातवृद्धे वृत्ते पित्ते बलासानावृतेपि च ॥ ७९ ॥
अष्टसूदररोगेषु कुष्ठरोगेषु शस्यते।
अजीर्णे कर्णरोगे च कृशे स्थूले च यक्ष्मणि ॥ ८० ॥
अयं सर्वगदेष्वेव रसो वै परिकीर्त्तितः।
महाभ्रवटिका सेयं परा श्रेष्ठा रसायने ॥ ८१ ॥

अभ्रकभस्म, तांबेकी भस्म, लोहेकी भस्म, शुद्ध गंधक, शुद्ध पारा, मैनसिल, सुहागा, जवाखार, हरड, आमला, बहेडा ये प्रत्येक चार २ तोले और शुद्ध मीठातेलिया चार मासे लेकर प्रथम पारे और गंधककी कज्जली करके सबको खरल करके एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर भांग, कुकुरभांगरा, बापची, भांगरा, बेलपत्र, फरहद, अरणी, विधारा, तुम्बुरु, ब्राह्मी, सिह्मालू, दुर्गन्ध करंज, धतूरेके पत्ते, श्वेत अपराजिता,(सफेदकोयल)जयन्ती, अदरख, ग्रीष्मसुन्दर, अडूसा और पान इन प्रत्येक औषधिके पत्तोंके चार २ तोले रसमें पथक् २ भावना देवे, जब कुछ रस शेष रहजाय तब उसमें कालीमिरचोंका चूर्ण चार तोले मिलाकर और अच्छे प्रकारसे खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियां बनालेवे इन गोलियोंको यथोचितमात्रासे सेवन करनेसे ज्वर, अतीसार, श्वास, खांसी, क्षय, संनिपातज्वर विविधप्रकारके विषमज्वर, सब प्रकारके क्षयरोग, शुक्रका क्षीणता, राजयक्ष्मा, पुरानी संग्रहणी, विशेषकर सूतिकारोग, स्थविर, आमवातरोग, मंदाग्नि, निर्बलता, सर्वप्रकारके कफ रोग, पीनस, पक्व अपक्व अपीनसरोग, वातश्लेष्म अनेक प्रकारके वातरोग आठ प्रकारके उदररोग कुष्ठरोगआदि नष्ट होतेहैं। यह महाभ्रवटिका अत्यन्त श्रेष्ठ रसायन है॥७५-८१

पीयूषवल्ली रस।

सूतकं गन्धकञ्चाभ्रं तारं लौहं सटङ्कणम्।
रसाञ्जनं माक्षिकञ्च शाणमेकं पृथक् पृथक् ॥ ८२ ॥

लवङ्गं चन्दनं मुस्तं पाठा जीरकधान्यकम् ।
समङ्गातिविषा लोध्रं कुटजेन्द्रयवं त्वचम् ॥ ८३ ॥
जातीफलं विश्वबिल्वं कनकं दाडिमीच्छदम् ।
समङ्गा धातकी कुष्ठं प्रत्येकं रससम्मितम् ॥ ८४ ॥
भावयेत् सर्वमेकत्र केशराजरसैः पुनः ।
चणकाभा वटी कार्या च्छागीदुग्धेन पेषिता ॥ ८५।
अनुपानं प्रदातव्यं दग्धबिल्वसमं गुडम् ।
अतिसारं ज्वरं तीव्रं रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ ८६ ॥
ग्रहणीं चिरजां हन्ति शोथं दुर्नामकं तथा ।
आमशूलविबन्धघ्नं संग्रहग्रहणीहरः ॥ ८७ ॥
पिच्छामदोषं विविधं पिपासादाहरोगकम् ।
हृल्लासारोचकच्छर्दिगुदभ्रंशं सुदारुणम् ॥ ८८ ॥
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ।
कृष्णारुणञ्च पीतञ्च मांसधावनसन्निभम् ॥ ८९ ॥
प्लीहगुल्मोदरानाहसूतिकारोगसङ्करम् ।
असृग्दरं निहन्त्येव वन्ध्यानां गर्भदं परम् ॥ २९० ॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च प्रमेहानपि विंशतिम् ।
एतान् सर्वान् निहन्त्याशु मासार्द्धे नात्र संशयः॥९१॥
पीयूषवल्लीवटिका अश्विभ्यां निर्म्मिता पुरा ।
कश्यपाय ददेऽश्विभ्यां ततः प्राप प्रजापतिः ॥ ९२ ॥
धन्वन्तरिस्ततः प्राप देवतानां पतिस्ततः ।
परम्पराप्राप्त एष रसस्त्रैलोक्यदुर्लभः ॥ ९३ ॥

शुद्ध पारे और शुद्ध गन्धककी कज्जली ८ माशे एवं अभ्रक, रौप्यभस्म, लोहभस्म, सुहागा, रसौत, सोनामाखी, लौंग, लालचन्दन, नागरमोथा, पाढ, जीरा, धनियाँ, लज्जावंती, अतीस, लोध, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ, दालचीनी, जायफल, सोंठ, बेलगिरी, धतूरेके बीज, अनारका बक्कल, वराहक्रान्ता, धायके फूल और कूठ प्रत्येक चार२माशे लेवे । सबको एकत्र पीसकरके कुकुरभाँगरेके रसकी वारम्वार भावना देवे । फिर बकरीके दूधमें खरल करके चनेकी बराबर

गोलियाँ बनालेवे। इस रसको समान भाग मिश्रितकर भुनेहुए बेल और गुडके साथ सेवन कराने अतिसार, ज्वर, प्रबल अतिसार, बहुत पुरानी संग्रहणी, सूजन, बवासीर, आमशूल, विबन्ध युक्त संग्रहणी, पिच्छलता, आमदोष, प्यास, दाह, उबकाई, अरुचि, वमन, दारुण गुदभ्रंश, पक्क अथवा अपक्क तथा विविध प्रकारकी पीडायुक्त अतिसार, काला, लाल, पीला और मांसके धोवनकी समानवर्णवाला अतिसार, प्लीहा (तिल्ली) गुल्म, उदररोग, अफारा, सूतिका-रोग, रक्तप्रदर, वन्ध्यत्व, कामला, पाण्डु और बीसों प्रमेह इन सब रोगोंको यह रस एक पक्षमें ही निस्सन्देह नष्ट करदेता है तथा गर्भको उत्पन्न करता है। यह पीयूष वल्लीनामवटी अश्विनी कुमरोंसे प्राप्तहुई थी ॥ ८२-९३ ॥

पानीयभक्तवटी।

कृष्णाभ्रलौहमलशुद्धविडङ्गचूर्णं
प्रत्येकमेकपलिकं विधिवद् विधाय।
चव्यं कटुत्रयफलत्रयकेशराज-
दन्तीपयोदचपलानलघण्टकर्णाः ॥ ९४ ॥
माणोल्लकन्दबृहती त्रिवृताः समूर्व्या-
वर्त्ताः पुनर्नविकया सहितास्त्वमीषाम्।
मूलं प्रति प्रतिविशोधितमक्षमेकं
चूर्णं तदर्द्धरसगन्धकमेकसंस्थम् ॥ ९५ ॥
कृत्वार्द्रकीयरससम्बलितं च भूयः
संपिष्य तस्य वटिका विधिवद्विधेया।
हन्त्यम्लपित्तमरुचिं ग्रहणीमसाध्यां
दुर्नामकामलभगन्दरशोथगुल्मान् ॥ ९६ ॥
शूलञ्च पाकजनितं सतताग्निमान्द्यं
सद्यः करोत्युपचितिं चिरनष्टवह्नेः।
कुष्ठं निहन्ति पलितञ्च वलिं प्रवृद्धां
श्वासञ्च कासमपि पाण्डुगदं निहन्ति ॥ ९७ ॥
वार्यन्नमांसदधिकाञ्जिकतक्रमत्स्य-
वृक्षाम्लतैलपरिपक्कभुजो यथेष्टम्।

शृङ्गाटबिल्वगुडकञ्चटनारिकेल-
दुग्धानि सर्वविदलानि विवर्ज्जयेत्तु ॥ ९८ ॥

काला अभ्रक, शुद्ध लोहमल, (मण्डूर) वायविडङ्ग, ये प्रत्येक ४-४तोले एवं चव्य, सोठ, पीपल, मिरच, हरड़, आमला, बहेड़ा, कुकुरभाँगरा, दन्तीकी जड, नागरमोथा, पपिल, चीतेकी जड, मोघावृक्ष, मानकन्द, जिमीकन्द, बडी कटेरी, निसोत, हुलहुल और विषखपरा इन प्रत्येकके मूलका शुद्ध चूर्ण दो २ तोले और शुद्ध पारा गन्धककी कज्जली एक तोला लेवे। फिर सबको एकत्र अदरखके रसमें भावनादेकर और उसीमें फिर उत्तम प्रकारसे खरल करके दो २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह वटी अम्लपित्त, अरुचि, आसाध्य संग्रहणी, बवासीर, कामला, भगन्दर, शोथ, गुल्म, शूल, निरन्तर अग्निकी मन्दता, कुष्ठ, पालित) विना अवस्थाके ही बालोंका सफेद होजाना) वलि (विनाही अवस्थाके शरीरमें बलिओंका पडजाना) श्वास, खांसी, पण्डुरोग प्रभृतिरोगोंको शीघ्र नष्ट करती है। और बहुत दिनोंसे नष्ट हुई अग्निको तत्काल दीपन करती है। इसपर बासी अन्न, मांस, दही, काँजी, छाछ, मछली, चूका और तेल ये पदार्थ यथेच्छरूपसे सेवन करना चाहिये एवं सिंघाडे, बेलगिरी, गुड, जलचौलाई, नारियल, दूध और सब प्रकारकी दालें इनको त्याग देना चाहिये ॥ ९४-९८ ॥

श्रीनृपतिवल्लभ ।

जातीफललवङ्गाब्दत्वगेला टङ्करामठम् ।
जीरकं तेजपत्रञ्च यमानी विश्वसैन्धवम् ॥ ९९ ॥
लौहमभ्रं रसो गन्धस्ताम्रं प्रत्येकशः पलम् ।
मरिचं द्विपलं दत्त्वा छागीक्षीरेण पेषयेत् ॥ ३०० ॥
धात्रीरसेन वा पेष्यं वटिकां कुरु यत्नतः ।
श्रीमद्गहननाथेन विचिन्त्य परिनिर्म्मितः ॥ ३०१ ॥
सूर्यवत्तेजसा चायं रसो नृपतिवल्लभः ।
अष्टादशवटीं खादेत् पवित्रः सूर्यदर्शकः ॥ ३०२ ॥
हन्ति मन्दानलं सर्वमामदोषविषूचिकाम् ।
प्लीहगुल्मोदराष्ठीला यकृत्पाण्डुत्वकामलाम् ॥ ३०३ ॥
हृच्छूलं कुक्षिशूलञ्च पार्श्वशूलं तथैव च ।
कटिशूलं कुक्षिशूलमानाहमष्टशूलकम् ॥ ३०४ ॥

कासश्वासामवातांश्च श्लीपदं शोथमर्बुदम् ।
गलगण्डं गण्डमालामम्लपित्तञ्च गर्दभीम् ॥ ३०५ ॥
कृमिकुष्ठानि दद्रूणि वातरक्तं भगन्दरम् ।
उपदंशमतीसारं ग्रहण्यर्शःप्रमेहकम् ॥ ३०६ ॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च मूत्राघातं सुदारुणम् ।
ज्वरं जीर्णं तथा पाण्डुं तन्द्रालस्यभ्रमं क्रमम् ॥३०७॥
दाहं च विद्रधिं हिक्कां जडगद्गदमूकताम् ।
मूढं च स्वरभेदं च वृध्नवृद्धिविसर्पकान् ॥ ३०८ ॥
ऊरुस्तम्भं रक्तपित्तं गुदभ्रंशारुचिं तृषाम् ।
कर्णनासामुखोत्थांश्च दन्तरोगांश्च पीनसान् ॥ ३०९॥
शोथं च शीतपित्तं च स्थावरादिविषाणि च ।
वातपित्तकफोत्थांश्च द्वन्द्वजान् सान्निपातिकान्३१०॥
सर्वानेव गदान् हन्ति चण्डांशुरिव पापहा ।
बलवर्णकरो हृद्य आयुष्यो वीर्यवर्द्धनः ॥ ३११ ॥
परं वाजीकरः श्रेष्ठः पटुदो मन्त्रसिद्धिदः ।
अरोगी दीर्घजीवी स्याद्रोगी रोगाद्विमुच्यते ।
रसस्यास्य प्रसादेन बुद्धिमान् जायते नरः ॥ ३१२ ॥

जायफल, लौंग, नागरमोथा, दालचीनी, इलायची, सुहागा, हींग, जीरा, तेजपात, अजवायन, सोंठ,सैंधानमक,लोहा,अभ्रक, शुद्धपारा, शुद्धगन्धक और ताँबेकी भस्म ये प्रत्येक चार २ तोले एवं काली मिरचोंका चूर्ण ८ तोले लेकर सबको एकत्र बकरीके दूधमें खरल करे फिर आमलेंके रसमें खरल करके उचित मात्रासे गोलियाँ तैयार करलेवे । इसकी प्रतिदिन प्रातःकाल शौचादिसे शुद्ध होकर अठारह गोली सेवन करे तो यह सूर्यके समान तेजवाला नृपतिवल्लभ नामक रस मन्दाग्नि, आमदोष, विषूचिका,प्लीहा, गुल्म,उदररोग, ष्ठीला,यकृत, पाण्डु, कामला, हृदयशूल, पृष्ठशूल, पार्श्वशूल, कटिशूल, कुक्षिशूल, आनाह, आठप्रकारके शूल,श्लीपद,खाँसी, श्वास वात, आमवात, अर्बुद,गलगण्ड, गण्डमाला, अम्लपित्त, गर्दभी, कृमि, कुष्ठ, दद्रु, वातरक्त,भगन्दर,उपदंश,संग्रहणी, अतिसार,बवासीर,प्रमेह,पथरी,मूत्रकृच्छ्र,दारुण मूत्राघात, जीर्णज्वर,पांडु,तन्द्रा,

आलस्य, श्रम, ग्लानि, दाह, विद्रधि, हिक्कारोग, जडता, मूकता, गद्गदता, मूढता, स्वरभेद, बृध्न (बद) अंडवृद्धि, विसर्प, ऊरुस्तम्भ, रक्तपित्त, गुदभ्रंश, अरुचि, तृषा, कान, नाक, मुख और दाँतोरोग, पीनस, शोथ, शीतपित्त, स्थावर आदि विष, वात, पित्त और कफसे उत्पन्न हुए, द्वन्द्वज, सान्निपातिक सम्पूर्णरोगोंको शीघ्रही नष्ट करता है। बल वर्णको उत्पन्नकरनेवाला हृदयको हितकारी, आयु और वीर्यके बढानेवाला है। तथा अत्यन्त वाजीकरण है। चातुर्य और मंत्रकी सिद्धिको देनेवाला है। इस रसके प्रतापसे रोगी सब रोगोंसे मुक्त होजाता है और आरोग्य दीर्घजीवी और अत्यन्त बुद्धिमान् होता है ॥ ९९-३१२ ॥

बृहन्नृपवल्लभ।

रसगन्धकलौहाभ्रं नागं चित्रं त्रिवृत्समम्।
टंगं जातीफलं हिङ्गु त्वगेलाब्दलवङ्गकम् ॥ १३ ॥
तेजपत्रमजाजी च यमानी विश्वसैन्धवम्।
प्रत्येकं तोलकं चूर्णं मरिचन्तारयोस्तथा ॥ १४ ॥
निरुत्थकं मृतं हेम तथा द्वादशरक्तिकम्।
आर्द्रकस्य रसेनैव धात्र्याश्च स्वरसेन च ॥ १५ ॥
भावयित्वा प्रदातव्यो माषद्वयप्रमाणतः।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय पथ्यं भक्षेद्यथेप्सितम् ॥ १६ ॥
अग्निमान्द्यमजीर्णश्च दुर्नामग्रहणीं जयेत्।
आमाजीर्णप्रशमनं सर्वरोगनिषूदनः ॥ १७ ॥
नाशयेदुदरान् रोगान् विष्णुचक्रमिवासुरान् ॥ १८ ॥
"ग्रन्थान्तरेऽस्य राजवल्लभ इति संज्ञा ॥"

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, सीसेकी भस्म, चीतेकी जड, निसोत, सुहागा, जायफल, हींग, दालचीनी, इलायची, नागरमोथा, लौंग, तेजपात, कालाजीरा, अजवायन, सोंठ, सैंधानमक, कालीमिरच और रौप्यभस्म प्रत्येक एक एक तोला एवं स्वर्णभस्म १-२ रत्ती सबको एकत्रकर अदरख और आंमलोंके रसमें पृथक् पृथक् भावना देकर दो दो मासेकी गोलियाँ बनालेवे। इसकी एक एक गोली प्रतिदिन प्रातःकाल, सेवन करे और यथेच्छ आहार विहार करे। यह रस मन्दाग्नि, अजीर्ण, बवासीर, ग्रहणी, आमाजीर्ण, उदररोग और अन्यान्य सर्वप्रकारके विकारोंको नष्ट करताहै, "अन्य ग्रन्थकार इस बृहन्नृपवल्लभ रसको राजवल्लभ भी कहते हैं" ॥ १३-१८ ॥

महाराज नृपतिवल्लभ।

कर्षत्रयं मृतं कान्तं मृताभ्रं मृतताम्रकम्।
मृतं तारं माक्षिकञ्च कर्षं कर्षं प्रदापयेत् ॥ १९ ॥
मृतं स्वर्णं मृतं तारं टङ्कणं शृङ्गमेव च।
वसिरं दन्तिमूलञ्च मरिचं तेजपत्रकम् ॥ ३२० ॥
यमानी बालकं मुस्तं शुण्ठकञ्च सधान्यकम्।
सिन्धूद्भवं सकर्पूरं विडङ्गं चित्रकं विषम् ॥ २१ ॥
पारदं गन्धकञ्चैव तोलमानं प्रदापयेत्।
तोलद्वयं त्रिवृच्चूर्णं लवङ्गं तच्चतुर्गुणम् ॥ २२ ॥
जातीकोषफलञ्चैव वराङ्गकन्तु तत्समम्।
सर्वेषामर्द्धभागन्तु विडकं तत्र मिश्रयेत् ॥ २३ ॥
सर्वमेकीकृतं यद्यत त्रुटिचूर्णं च तत्समम्।
भावना च प्रदातव्या च्छागीदुग्धेन सप्तधा ॥ २४ ॥
मातुलुङ्गरसैः पश्चाद्भावयेत् सप्तवारकम्।
छायाशुष्कां वटीं कृत्वा भक्षयेद्दशरक्तिकाम् ॥ २५ ॥
मन्दानलं संग्रहणीं प्रवृद्धामामानुबन्धीं कृमिपाण्डुरोगम्।
छर्द्यम्लपित्तं हृदयामयञ्चगुल्मोदरानाहभगन्दरञ्च ॥ २६ ॥
अर्शांसि वै पित्तकृतानशेषान् सामं सशूलाष्टकमेव हन्ति।
साजीर्णविष्टम्भविसर्पदाहं विलम्बिकाश्चाप्यलसं प्रमेहम् २७
कुष्ठान्यशेषाणि च कासशोषं हन्यात् सशोथं ज्वरमूत्रकृच्छ्रम्।
मतान्तरे सर्वतोभद्रनाम महेश्वरेणैव विभाषितोऽयम्॥ २८ ॥

कान्तलोहभस्म ३ तोले, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, मोतीकी भस्म और सोनामाखी ये प्रत्येक एकएक कर्ष, एवं सोना, चाँदीकी भस्म,सुहागा,काकडासिंगी, गजपीपल, दन्तीकी जड, मिरच, तेजपात, अजवायन, सुगन्धवाला, नागरमोथा, सोंठ, धनियां, सैंधानमक, कपूर, वायविडङ्ग, चीता, शुद्धमीठातेलिया, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक प्रत्येक एक एक तोला, निसोतका चूर्ण दो तोले, तथा लौंग, जावित्री और दालचीनी ये प्रत्येक आठ २ तोले इन सब औषधियोंके चूर्णसे आधाभाग विरियासंचरनमक और समस्तचूर्णकी बराबर छोटी इला-

यचीका चूर्ण लेवे। फिर इन सबको एकत्र करके बकरीके दूधमें सात बार खरल करके बिजौरे नींबूके रसमें सातबार खरल करे फिर छायामें सुखाकर दस२ रत्तीकी गोलियाँ बनाकर भक्षण करे तो इससे मन्दाग्नि, प्रबल संग्रहणी, कृमि, पाण्डुरोग, वमन, अम्लपित्त, हृदयरोग, अर्शादि उपर्य्युक्त समस्त रोग दूर होते हैं। कोई २ आचार्य इस रसको सर्वतोभद्र कहते हैं ॥ १९–३२८ ॥

महाराजनृपवल्लभ।

माक्षिकं लौहमभ्रञ्च वङ्गं रजतहाटकम्।
ग्रन्थिर्यमानिका चोचं ताम्रं नागरटङ्कणम् ॥ २९ ॥
सैन्धवं बालकं मुस्तं धन्याकं गन्धकं रसम्।
शृङ्गी कर्पूरकश्चैव प्रत्येकं माषकोन्मितम् ॥ ३३० ॥
माषद्वयं रामठं स्यान्मरिचानां चतुष्टयम्।
जातीकोषं लवङ्गं च पत्रं च तोलकोन्मितम् ॥ ३१ ॥
नाभिशङ्खं विडङ्गं च शाणं माषद्वयं विषम्।
कर्षषट्कं सत्रिमाषं सूक्ष्मैलानां ततः क्षिपेत् ॥ ३२ ॥
विडं कर्षद्वयं सर्वं छागीक्षीरेण पेषयेत्।
चतुर्गुञ्जामितां खादेत् सानाहग्रहणीं जयेत् ॥ ३३ ॥
शम्भुना निर्मितो ह्येष पूर्ववद्गुणकारकः।
नाम्ना महाराजपूर्वो नृपवल्लभ उच्यते ॥ ३४ ॥

सोनामाखी, लोहेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, वङ्गकी भस्म, चाँदीकी भस्म, सुवर्णकी भस्म, पीपलामूल, अजवायन, दालचीनी, ताँबेकी भस्म, सोंठ, सुहागा, सैंधानमक, सुगन्धवाला, नागरमोथा, धनियाँ, शुद्धगन्धक, शुद्धपारा, काकडासिंगी और कपूर ये प्रत्येक एक एक मासा, हींग दो मासे, कालीमिरचोंका चूर्ण चार मासे, जावित्री, लौंग और तेजपात प्रत्येक एक एक तोला, शंखनाभिकी भस्म और वायविडङ्ग प्रत्येक चार२ मासे शुद्ध सीठा तेलिया दो मासे छोटी इलायचीका चूर्ण ८ मासे और बिरियासंचरनमक २ कर्ष लेवे। सबको एकत्र चूर्ण करके बकरीके दूधमें खरलकरे। फिर चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनाकर सेवन करे इसके सेवनसे आनाहयुक्त संग्रहणी नष्ट होती है और यह पूर्वोक्त प्रयोगकी समान गुण करता है। इसको शिवजीने निर्माण किया है। यह रस महाराजनृपवल्लभ नामसे प्रसिद्ध है ॥ २९–३३४ ॥

अथ रसपर्पटी ।

श्रीविन्ध्यवासिपादान् नत्वा धन्वन्तरिञ्च सुरभिषजम् ।
रसगन्धकपर्पटिकापरिपाटीपाटवं वक्ष्ये ॥ १ ॥
मर्द्यं रसे जयन्त्या पश्चादेरण्डसम्भूते ।
आर्द्रकरसे च सूतं पत्ररसे काकमाच्याश्च ॥ २ ॥
मर्द्दमुदितानुपूर्व्या मर्द्दनशुष्कं करेण गृह्णीयात ।
प्रस्तरभाजनमध्ये शुद्धिरियं पारदस्योक्ता ॥ ३ ॥
शुकपुच्छसमच्छायो नवनीतसमद्युतिः ।
मसृणः कठिनः स्निग्धः श्रेष्ठो गन्धक इष्यते ॥ ४ ॥
कृत्वा भद्रं गन्धकमतिकुशलं क्षुद्रतण्डुलाकारम् ।
तद्भृङ्गराजरसैरनन्तरं भावयेत् पात्रे ॥ ५ ॥
तदनु च शुष्कं कुर्यात् धूलिसमानञ्च सप्तधा रौद्रे ।
तदनु च शुष्कं चूर्णं कृत्वा विन्यस्य लौहिकामध्ये ॥ ६ ॥
निर्धूमबदरकाष्ठाङ्गारे न्यस्तं विलाप्य तैलसमम् ।
पात्रस्थितभृङ्गराजरसमध्ये ढालयेन्निपुणः ॥ ७ ॥
तस्मिन् प्रविष्टमात्रं कठिनत्वं याति गन्धकचूर्णम् ।
पुनरपि रौद्रे शुष्कं केतकरजसा समानतां नीतम् ॥ ८ ॥
शुद्धे सूते शोधितगन्धकचूर्णेन तुल्यता कार्या ।
तावन्मर्द्दनमनयोर्यावन्न कणोऽपि दृश्यते सूते ॥ ९ ॥
पश्चात् कज्जलसदृशं चूर्णं लौहीस्थितं यत्नेन ।
निर्धूमबदरकाष्ठाङ्गारे न्यस्तं विलाप्य तैलसमम् ॥ १० ॥
सद्यो गोमयनिहिते कदलदले चालयेन्मृदुनि ।
लौहीस्थितमवशिष्टं कठिनं तन्न गृहीतव्यम् ॥
पश्चात पर्पटरूपा पर्पटिका कीर्त्यते लोकैः ॥ ११ ॥
मयूरचन्द्रिकाकारं लिङ्गं यत्र तु दृश्यते ॥
तत्र सिद्धं विजानीयाद्वैद्यो नैवात्र संशयः ॥ १२ ॥

सम्मुदितपात्रे भरणाददनीया पर्पटी मनुजैः ।
जीरकगुञ्जे हिङ्गोरर्द्धं खादेच्च वातले जठरे ॥ १३ ॥
जीरकाहिङ्गो रसेन त्वनुपानं सलिलधारया कार्यम् ।
रसगन्धकपर्पटिका भक्षणमात्रे तु नाम्भसः पानम् ॥ १४ ॥
प्रथमं गुञ्जायुगलं प्रतिदिनमेकैकवृद्धितो भक्ष्यम् ।
दशगुञ्जापरिमाणाधिकमदनीयमेकविंशतिदिनानि १५ ॥
वातातपकोपमनश्चिन्तनमाहारसमयवैषम्यम् ।
व्यायामश्चायासः स्नानं व्याख्यानमहितमत्यन्तम् ॥ १६ ॥
पाके स्तोकं सर्पिर्जीरकधन्याकवेशवारैश्च ।
सिन्धूद्भवेन रन्धनमोदनधान्यानि शालयो भक्ष्याः १७ ॥
कृष्णं वार्त्तिङ्गलफलमविद्धकर्णा च वास्तूकम् ।
अक्षतमुद्गं सहितं कदलदलसहितं पटोलञ्च ॥ १८ ॥
क्रमुकफलशृङ्गवेरौ भक्ष्यौ शाकेषु काकमाची च ।
लावककवर्त्तकतित्तिरिमयूरमांसञ्च हिततरं भवति ॥ १९ ॥
मद्गुरोहितमीनावदनीयौ कृष्णमत्स्याश्च ।
नीरक्षीरं व्यञ्जनमदनीयं पक्वकदलञ्च ॥ २० ॥
रम्भाफलदलवल्कलमूलानां वर्जनं कार्यम् ।
तिक्तं निम्बादिकमपि नाद्यं नोष्णं तथान्नञ्च ॥ २१ ॥
आनूपमांसजलचरपतत्रिपललञ्च सर्वथा त्याज्यम् ।
स्त्रीणां सम्भाषणमपि गडकञ्च कृष्णमत्स्येषु ॥ २२ ॥
नाम्लं न दधि शाकं पर्पट्या भक्षणे भक्ष्यम् ।
गुडखण्डशर्करादिकमिक्षुविकारो न भक्ष्य इक्षुश्च ॥ २३ ॥
न दलं न फलं न लताप्यदनीया कारवेल्लस्य ।
स्तोकं घृतमिह भक्ष्यं पथ्ये साकांक्षमुत्थानम् ॥ २४ ॥
क्षुत्पीडायां भोजनमवश्यकार्यं महानिशायाञ्च ।
समजलमिश्रं पक्वं क्षीरं यद्वाधिकजलपक्वञ्च ॥ २५ ॥
कथमपि भोजनसमयातिक्रमजाते ज्वरे विरेके च ।
वमने च नारिकेलं सलिलं दुग्धञ्च पातव्यम् ॥ २६ ॥

स्वप्ने जाते रमिते विरेकतः क्षीरमेव पातव्यम्।
न जायते बुभुक्षा लक्ष्यालक्ष्या प्रतीयते यदि वा ॥२७॥
अशक्तिझिनिझिनिमस्तकशूलाद्यैर्नूनमवधार्या।
किं बहु वाच्यं रोगी यदा यथा भवति साकांक्ष्यः ॥२८॥
पाययितव्यं दुग्धं तदा तदा निर्भयी भूयः।
विहिताकरणे चास्यामविहितकरणे च रोगखिन्नानाम्॥
व्यापत्तयोऽपि बहुधा दृष्टा प्रमाणिकैर्बहुशः।
तस्मादवधातव्यं भवितव्यं भोजने निपुणैः॥ ३० ॥
एवमियं क्रियमाणा भवति श्रेयस्करी नियतम्।
अर्शोरोगं ग्रहणीं सामं शूलातिसारौ च ॥ ३१ ॥
कामलपाण्डुव्याधिं प्लीहानञ्चातिदारुणं हन्ति।
गुल्मजलोदरभस्मकरोगं हन्त्यामवातांश्च ॥ ३२ ॥
अष्टादशैव कुष्ठान्यशेषशोथादिरोगांश्च।
इयमम्लपित्तशमनी त्रिदोषदमनी क्षुधातिसन्दीपनी॥३३॥
अग्निं निमग्नमुदरे ज्वालाजटिलं करोत्याशु।
रसगन्धकपर्पटिका त्वपवार्य व्याधिसंघातम्॥ ३४ ॥
वलीपलितशून्यं पुरुषं दीर्घायुषं कुरुते।
व्याधिप्रभावहरणादपमृत्युत्रासनाशकरणाच्च ॥ ३५ ॥
मर्त्यानाममृतवटी रसगन्धकपर्पटी जयति।
शम्भुं प्रणम्य भक्त्या पूजां कृत्वा च विष्णुचरणाब्जे ॥३६॥
रसगन्धकपर्पटिका भक्ष्या तेनातिसिद्धिदा भवति।
नृणां सरुजां ध्रुवमियमारोग्यं सततशीलिता॥
कुरुते श्रीवत्साङ्कविनिर्म्मिता सम्यग्रसपर्पटी श्रेष्ठा॥३७॥
उक्तमेव हि कर्त्तव्यं नानारोगतया तथा।
औषधाक्रिययैवात्र कर्त्तव्या चोत्तराक्रिया॥ ३८ ॥
प्रत्यवायविनाशार्थं क्षेत्रपालबलिं न्यसेत्।
कृतमंगलकः प्रातर्योगिनीनामतः परम्॥ ३९ ॥

[भक्षणात्पूर्वं बालिदानमन्त्रः-"ॐ क्षँ क्षेँ क्षेत्रपालाय नमः। क्षेत्रपालस्य सामान्यबलिदानमन्त्रः ॐ ह्रीँ ह्रैँ दिव्याभ्यो योगिनीभ्यो मातृभ्यः क्षेत्रीभ्यो भूतेभ्यो शालिकीभ्यो नमो नमो ह्रीँ सामान्ययोगिनीनां बलिः । ॐ गन्धक-महाकालाय स्वाहा ॐ ब्रह्मकोषिणि रक्ष रक्ष स्वाहा । इति विशेषबलिः । अत्र पारदस्य नैसर्गिकदोषत्रयशोधन-श्चावश्यकं कार्यम् ॥ यदुक्तम्-

मलशिखिविषनामानो रसस्य नैसर्गिका दोषाः ।
मूर्च्छां मलेन कुरुते शिखिना दाहं विषेण हिक्काञ्च ॥
गृहकन्या हरति मलं त्रिफला वह्निं चित्रकश्च विषम् ।
तस्मादेभिर्वारान् संमूर्च्छयेत् सप्तसप्तैव ॥ इति ॥]

श्रीविन्ध्याचलवासी (व्यांडिमुनि) को और भगवान् धन्वन्तरिको प्रणाम करके मैं पारे और गन्धककी पर्पटीकी उत्तम विधिको कहता हूं-पर्पटीको प्रस्तुत करनेसे पहले इस प्रकार शुद्ध किया हुआ पारा पर्पटीके लिये लेना योग्य है । पारेके मलदोष, अग्निदोष और विषदोष अवश्य दूर करदेनेचाहिये । उसकी प्रणाली यह है कि-८ तोले पारेको घीग्वारके रसमें मर्दन करनेसे उसका मलदोष दूर होता है, त्रिफलेके चूर्णमें मर्दन करनेसे अग्निदोष दूर होता है । चीतेके पत्तोंके रसमें खरल करनेसे विष दूर होता है इस प्रकार पारेके दोषोंको दूर करके उसको अरणीके पत्ते, अण्डके पत्ते, अदरख और सकोयके पत्ते इनके रसोंमें पृथक् २ मिलाकर क्रमपूर्वक मर्दन करके शोषण करे । पारेकी यह शुद्धि पत्थरके पात्रमें करनी चाहिये । फिर तोतेकी पूँछके समान या नवनीतके समान कान्तिवाला, कोमल, कठिन और स्निग्ध ऐसा गन्धक श्रेष्ठ होता है । ऐसे गन्धकको ८ तोले लेकर उसके चावलोंके समान छोटे छोटे टुकडे करके पत्थरके पात्रमें भाँगरेके रसकी ७ वार भावना देवे । और ७ वार धूपमें सुखावे फिर धूलिकी समान वारीक चूर्ण करके उसको लोहेकी करछीमें रखकर धुएँ रहित बेरीके अंगारोंपर पकावै

1गृहकन्या-घृतकुमारी तस्या दलरसेन खल्लनम्, त्रिफलायाश्चूर्णेन खल्लनम् । चित्रकस्य पत्ररसेन मूर्च्छनम् तदेवं नैसर्गिकदोषापहारानन्तरं जयन्त्यादिद्रव्यचतुष्टयरसेन मूर्च्छनमधिगन्तव्यम् ॥

वह तेलकी समान पिघला होजाय तब भाँगरेके रसमें डाल देवे। उसमें डालतेही गन्धक सख्त होजाताहै । उसको निकालकर और धूपमें सुखाकर केतकीके फूलोंकी रजकी समान चूर्ण करलेवे। इस प्रकार शोधित पारे और गन्धकको समान भाग लेकर कज्जली करे, दोनोंको तबतक मर्दन करे, जबतक पारेके सूक्ष्मकण दीखने बन्द न होजायँ-जब घुटते२ सब चूर्ण कज्जलकी समान कृष्णवर्ण होजाय तब उसको लोहेकी करछीमें रखकर धुएँ रहित बेरीके लकडीके आगोंपर तेलकी समान पतला करके गोबरके ऊपर एक केलेके कोमल पत्तेको रखकर उसमें उक्त पिघलीहुई कज्जलीको ढालदेवे और तत्कालही दूसरे केलेके पत्तेसे ढककर उसपर गोबर रखकर किसी कपडेकी पोटलीसे उसे दाब देवे जिससे कि वह रस पर्पटीके आकारमें होजाय और जो करछीमें पिघली हुई कज्जलीका कठिन अंश शेष रहजाय उसको ग्रहण नहीं करना चाहिये । इस प्रकार यह रसपर्पटी सिद्ध होती है। पर्पटीकी परीक्षा यह है कि जिस पर्पटी मोरकी पूँछकी चन्द्रिकाके समान कान्ति हो वह पर्पटी उत्तम प्रकारसे सिद्ध हुई जाननी चाहिये । इस पर्पटीको वातप्रधान उदररोगमें दो रत्ती जीरे और १ रत्ती हींगके चूर्णके साथ सेवन करे किन्तु भुनेहुए जीरे और भुनीहुई हींगको जलमें घोलकर उसका अनुपान करना चाहिये । और पर्पटीको भक्षण करके अनन्तर जलपान नहीं करना चाहिये । पहले दिन इसको २ रत्ती प्रमाण देवे। फिर प्रतिदिन एक एक रत्तीकी मात्रा बढाकर १० रत्तीतक सेवन करावे और फिर प्रतिदिन १-१ रत्ती घटाकर सेवन करावे इस प्रकार २१ दिनतक सेवन करावे। किन्तु १० रत्तीसे अधिक मात्रा नहीं बढानी चाहिये। इस पर्पटीके सेवन करनेवालेको वायु, धूप, क्रोध, मानासिक चिन्ता, आहारके समयकी विषमता, व्यायाम, अत्यन्त परिश्रम, स्नान और अत्यन्त बोलना ये सब अहितकारी हैं। अतः इन सबको त्याग देना चाहिये। थोडे घी, जीरे, धनिये और अन्यान्य मसालोंके द्वारा सिद्ध कियेहुए सैंधानमक मिलेहुए व्यञ्जनादि, पुराने शालिचावलोंका भात, काले बैंगन, पाढके पत्तोंका शाक, बथुआ, साबुत मूँग, केलेके पत्ते, परवल, सुपारी, अदरख, मकोयके पत्तोंका शाक, लवा, वत्तक, तीतर, मोर, इनका मांस, मद्गुर, रोहित और काली मछली, समानभाग मिश्रित जलके साथ सिद्धकिया हुआ दूध ये सब पदार्थ हितकारी हैं। एवं पकेहुए केलेके फल और बकल और जड, नीमको आदि लेकर सम्पूर्ण कडवे पदार्थ, गरम अनूपदेशके जीवोंका मांस, तथा जलमें रहनेवाले जन्तुओंका मांस, पक्षियोंका मांस, मछली, कालमिछ-

स्त्रियोंमें गडक नामवाली मछली खट्टेपदार्थ, दही और शाक आदि पदार्थ कदापि नहीं भक्षण करने चाहिये और इस पर्पटीका सेवन करतेहुए स्त्रियोंसे बात चीततक भी नहीं करनी चाहिये । तथा गुड, खाँड, शर्करा, ईखके रसके बनेहुए पदार्थ और ईख (गन्ने) करेलेके पत्ते, फल और बेल आदि भी कभी नहीं खाने चाहिये । इसपर घृत थोडा खाना चाहिये और पथ्यमें यथेच्छ आहार देना चाहिये । भूँख लगनेपर अवश्य भोजन करे । यदि आधीरातके समय भूँखलगे तब उस समय भी भोजन करनाचाहिये । यदि कदाचित् भोजनके समयका उल्लंघन होनेसे ज्वर और विरेचन हो तो समानभाग जल मिलाकर अथवा अधिक जलमिश्रित दूधको पकाकर पीना चाहिये । वमन होनेपर नारियलका जल अथवा दूध पानकरना चाहिये । यदि स्वप्नमें वीर्यपात हो जाय तो दुग्धपान करना चाहिये । भूँख उत्पन्न हुई है या नहीं इसकी परीक्षा इस प्रकार करनी चाहिये—जब शरीर शक्ति हीन हो, मस्तकमें शूल और झन झनाहट आदि लक्षण मालूम हों तब निश्चय भूंख लगी समझना चाहिये। बहुत कहनेसे क्या है, रोगीको जब जब भूँख लगे तबही तब निर्भय होकर बारबार दूध पिलावे । इसमें कहेहुए नियमोंका पालन न करनेसे और निषिद्ध नियमोंको करनेसे रोगीको नानाप्रकारकी व्याधियाँ उत्पन्न होजाती हैं । ऐसा वडे २ प्रामाणिक मनुष्योंने अनेक बार देखकर कहाहै, इसलिये भोजनादिमें कुशल वैद्योंको यथाविधि नियमोंका पालन करना चाहिये । इस प्रकार सेवन की हुई यह पर्पटी अवश्य महत् उपकार करती है । यह पर्पटी—बवासीर, आमसहित संग्रहणी, शूल, अतिसार, कामला, पाण्डुरोग, अतिकठिन प्लीहा (तिल्ली), गुल्म, जलोदर, भस्मकरोग, आमवात, १८ प्रकारके कुष्ठ, सम्पूर्ण शोथ आदिरोग और अम्लपित्तको तत्काल नष्ट करतीहै । एवं त्रिदोषको दमन करनेवाली, अत्यन्त भूँखको बढानेवाली, जठराग्निको तत्काल प्रज्वलित करती है । यह पारे और गन्धककी पर्पटी समस्त व्याधिसमूहको नष्ट करती हैं । तथा वली (असमयमें शरीरमें वलीका पडना), पलित (असमय वालोंका पकना) रोगको दूरकरती है और मनुष्यको दीर्घायुषी बनाती है । व्याधिके प्रभावको हरनेसे और अकालमृत्युके भयको नाशकरनेके कारण यह पर्पटी मनुष्योंको अमृतवटीकी समान हितकारी है । भक्तिसहित शिवजीको प्रणाम कर और विष्णुके चरणकमलोंका पूजन करके इस पर्पटीको भक्षण करनेसे यह विशेष सिद्धिके देनेवाली है । यह पर्पटी निरन्तर उत्तमप्रकारसे मनुष्योंके आरोग्य करनेके लिये सर्वोत्तम औषधि है इसमें कहीहुई विधिके अनुसारही

विविध रोगोंमें सेवन कीहुई प्रयोग करना चाहिये । और औषधिकी क्रियाके अनुसार ही इसपर उतर क्रिया करनी चाहिये । विघ्नोंको हरनेके लिये प्रथम क्षेत्रपालको बलिदेवे पश्चात् योगिनियोंको बलिदेवे । फिर माङ्गलिककार्य करके प्रातःसमय इसका सेवन करे ॥ १–३९ ॥

लौहपर्पटी ।

समौ गन्धरसौ कृत्वा कज्जलीकृत्य यत्नतः ।
शुद्धलौहस्य चूर्णन्तु रसतुल्यं प्रदापयेत् ॥ ४० ॥
एकीकृत्य ततो यत्नात् लौहपात्रे प्रमर्द्दितम् ।
घृतप्रलिप्तदर्व्यान्तु स्वेदयेन्मृदुनाग्निना ॥ ४१ ॥
द्रवीभूतं समाहृत्य ढालयेत् कदलीदले ।
चूर्णीकृत्य सुखार्थाय पथ्यभुग्भिः प्रसेव्यते ॥ ४२ ॥
शीतोदकानुपानं वा क्वाथं वा धान्यजीरयोः ।
लौहेन पर्पटी ह्येषा भक्ष्या लोकस्य सिद्धिदा ॥ ४३॥
रक्तिकैकां समारभ्य वर्द्धयेद्रक्तिकां क्रमात् ।
सप्ताहं वा द्वयं वापि यावदारोग्यदर्शनम् ॥ ४४ ॥
सूतिकाश्च ज्वरश्चैव ग्रहणीमतिदुस्तराम् ।
आमशूलातिसारांश्च पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ ४५ ॥
प्लीहानमग्निमान्द्यञ्च भस्मकञ्च तथैव च ।
आमवातमुदावर्त्तं कुष्ठान्यष्टादशैव तु ॥ ४६ ॥
एवमादींस्तथा रोगान् गराणि विविधानि च ।
हन्त्यनेन प्रयोगेण वपुष्मान् निर्म्मलः सुधीः ॥ ४७ ॥
जीवेद् वर्षशतं पूर्णं वलीपलितवर्जितः ।
भोजनं रक्तशालीनां त्यक्त्वा शाकं विदाहि च ॥४८॥
आमवातप्रकोपञ्च चिन्तनं मैथुनं तथा ॥ ४९ ॥
प्रातरुत्थाय संसेव्या विधिनाऽयुःप्रवर्द्धिनी ॥ ५०॥

शोधित पारे और शोधित गन्धकको समान भाग लेकर यथाविधि कज्जली करलेवे । फिर उसमें पारेकी बराबर शुद्ध लोहेकी भस्म मिलाकर लोहेके बर्तनमें खरल करे पश्चात् लोहेकी करछीमें घी लगाकर उसमें कज्जलीको रखकर

मन्दमन्द अग्निसे पकावे जब कज्जली पिघलकर पतली होजाय तब नीचे उतारकर पूर्वोक्त रस पर्पटीकी समान गोबरेपर रक्खेहुए केलेके पत्तेपर ढालकर दूसरे केलेके पत्तेसे ढककर ऊपरसे कपडेकी पोटलीसे धीरे२ दाबदेवे। फिर उसको सुखाकर चूर्ण करके शीशीमें भरकर रखदेवे । यह पर्पटी पथ्यसेवनवालको देनी चाहिये और ऊपरसे शीतल जल अथवा जीरे और धनीयेका काथ पान कराना चाहिये । इसके सेवनसे मनुष्यको यथेष्ट फलको सिद्धि होती है । इसको प्रतिदिन एक एक रत्तीसे बढाकर सात दिन, चौदह दिन अथवा जबतक आरोग्य लाभ न हो तबतक सेवन करावे तो यह लौहपर्पटी प्रसूतिरोग, ज्वर, ग्रहणी, आमशूल, अतिसार, पाण्डुरोग, कामला, प्लीहा, (तिल्ली) मन्दाग्नि, भस्मकरोग, आमवात, उदावर्त्त, १८प्रकारके कुष्ठ एवं अन्यान्यरोगों और विविधप्रकारके विषोंको अवश्य दूर करता है । इस प्रयोगके सेवनसे मनुष्य निर्मल शरीरवाला और विद्वान् होता है। एवं वली और पलित रोगसे मुक्त होकर पूर्ण सौ वर्षतक जीता है । इसपर लाल शालिधानोंके चावलोंका भात खाना चाहिये । तथा शाक, दाहकारक पदार्थ, आमवातको कुपित करनेवाले पदार्थ, चिन्ता और मैथुन ये सब त्याग देने चाहिये । प्रातःकाल उठकर इसको विधिपूर्वक सेवन करनेसे आयुकी वृद्धि होती है ॥ ४०-५० ॥

स्वर्णपर्पटी ।

रसोत्तमं पलं शुद्धं हेम तोलकसंयुतम् ।
शिलायां मर्दयेत्तावद्यावेदकत्वमागतम् ॥ ५१ ॥
गन्धकस्य पलञ्चैकमयःपात्रे ततो दृढे ।
मर्दयेद्दृढपाणिभ्यां यावत् कज्जलतां व्रजेत् ॥ ५२ ॥
ततः पाकविधानज्ञः पर्पटीं कारयेत सुधीः ।
रक्तिकादिक्रमेणैव योजयेदनुपानतः ॥ ५३ ॥
ग्रहणीं विविधां हन्ति यक्ष्माणञ्च विशेषतः ।
शूलमष्टविधं हन्ति वृष्या सर्वरुजापहा ॥ ५४ ॥

सिंगरफसे निकालाहुआ शुद्धपारा ४ तोले और सोनेकी भस्म १ तोला दोनोंको एकत्र मिलाकर पत्थरके खरलमें उत्तमप्रकारसे मर्दन करे जब दोनों मिलकर एकरूप होजाय तब उसमें गन्धक १ पल डालकर लोहेके पात्रमें अच्छे प्रकारसे खरल करे । जब घोटते २ कज्जलकी समान होजाय तब पूर्वोक्त रस-

पर्पटीकी विधिके अनुसार विद्वान् वैद्य इसकी पर्पटी तैयार करलेवे । इसको क्रमशः एकएक रत्तीकी मात्रासे बढताहुआ यथादोषानुसार उचित अनुपानके साथ प्रयोग करावे। यह पर्पटी अनेक प्रकारकी संग्रहणी विशेषकर राजयक्ष्मा, ८ प्रकारके शूल एवं अन्यान्य सर्वप्रकारके रोगको दूर करनेवाली और परम वृष्यहै ॥ ३५१-५४ ॥

पञ्चामृतपर्पटी ।

अष्टौ गन्धकतोलका रसदलं लौहं तदर्द्धं शुभं
लोहार्द्धञ्च वराभ्रकं सुविमलं ताम्रं तथाभ्रार्द्धिकम् ।
पात्रे लौहमये च मर्द्दनविधौ चूर्णीकृतश्चैकतः
दर्व्यां बादरवह्निनातिमृदुना पाकं विदित्वा दले ॥ ५५ ॥
रम्भाया लघु ढालयेत् पटुरियं पञ्चामृता पर्पटी
ख्याता क्षौद्रघृतान्विता प्रतिदिनं गुञ्जाद्वयं वृद्धितः ।
लौहे मर्द्दनयोगतः सुविमलं भक्षक्रिया लौहवत्
गुञ्जाष्टावथवा त्रिकं त्रिगुणितं सप्ताहमेवं भजेत् ॥५६॥
नानावर्णग्रहण्यामरुचिसमुदये दुष्टदुर्नामिकादौ
छर्द्यां दीर्घातिसारे ज्वरभवकलिते रक्तपित्ते क्षयेऽपि ।
वृष्याणां वृष्यराज्ञी वलिपलितहरा नेत्ररोगैकहन्त्री
तुन्दं दीप्तस्थिराग्निं पुनरपिनवकं रोगिदेहं करोति॥५७॥

शुद्ध गन्धक ८ तोले, शुद्धपारा४ तोले, लोहा२ तोले, अभ्रक १ तोला और ताँबा आधा तोला-इन पाँचों औषधियोंको लोहेके पात्रमें एकत्रितकर विधिपूर्वक खरलकरे। फिर उस कज्जलीको लोहेकी करछीमें रखकर बेरीकी लकडीकी मन्द मन्द अग्निके द्वारा पकाकर पूर्वोक्त विधिसे केलेके पत्तेपर ढाल देवे । इस प्रकार यह पञ्चामृतपर्पटी सिद्ध होतीहै । इसकी दो दो रत्ती मात्राको शहद और घृतके साथ लोहेके पात्रमें खरल करके सेवन करे । प्रतिदिन २ रत्तीसे ८ रत्ती या १० रत्तीतक मात्राकी वृद्धिकरता हुआ २१ दिनतक सेवन करे । यह पर्पटी संग्रहणी, अरुचि, दुस्तरबवासीर वमन, बहुत पुराणा अतिसार, ज्वर, रक्तपित्त और क्षय इन सब रोगोंमें हितकारीहै। एवं वृष्य, प्रयोगोंमें यह सर्व श्रेष्ठ है। वली और पलितको हरनेवाली नेत्ररोगको दूर करनेवालीहै । अत्यन्त मन्द जठराग्निको प्रज्वलितकर फिरसे रोगीके शरीरको नवीन करतीहै५५-५७

विजयपर्पटी ।

गन्धकं क्षुद्रितं कृत्वा भाव्यं भृङ्गरसेन तु ।
सप्तधा वा त्रिधा वापि पश्चाच्छुष्कं विचूर्णयेत् ॥५८॥
चूर्णयित्वायसे पात्रे कृत्वा वह्निगतं सुधीः ।
द्रुतं भृङ्गरसे क्षिप्तं तत उद्धृत्य शोषयेत् ॥ ५९ ॥
तस्य गन्धं पलञ्चैकं गन्धार्द्धं शुद्धपारदम् ।
सूतार्द्धं भस्मरौप्यञ्च तदर्द्धं स्वर्णभस्मकम् ॥ ६० ॥
तदर्द्धं मृतवैक्रान्तं तदर्द्धं मौक्तिकं क्षिपेत् ।
एकीकृत्य ततः सर्वं कुर्यात् पर्पटिकां शुभाम् ॥ ६१ ॥
लौहपात्रे समरसं मार्द्दितं कज्जलीकृतम् ।
बदराङ्गारवह्निस्थे लौहपात्रे द्रवीकृते ॥ ६२ ॥
मयूरचान्द्रिकाकारं लिङ्गं वा यदि दृश्यते ।
आद्ययोर्दृश्यते सूतं खरपाके न दृश्यते ॥ ६३ ॥
मृदौ न सम्यगभङ्गः स्यान्मध्ये भङ्गश्च रूप्यवत् ।
खरे लघुर्भवेद्भङ्गो रूक्षः सूक्ष्मोऽरुणच्छविः ॥ ६४ ॥
मृदुमध्यौ तथा खाद्यौ खरस्त्याज्यो विषोपमः ।
ज्वरव्याधिशताकीर्णं विश्वं दृष्ट्वा पुरा हरिः ॥ ६५ ॥
चकार पर्पटीमेतां यथा नारायणोऽमृतम् ।
आदौ शङ्करमभ्यर्च्य द्विजातीन् प्रणिपत्य च ॥ ६६ ॥
प्रभाते भक्षयेदेनां माषरक्तिद्वयसम्मिताम् ।
रक्तिकादिक्रमाद्वृद्धिर्भक्ष्या नैव दशोपरि ॥ ६७ ॥
आरोग्यदर्शनं यावत् तावद्ध्रासस्ततः परम् ।
अजीर्णे भोजनं नैव पथ्यकाले व्यतिक्रमे ॥ ६८ ॥
घृतसैन्धवधन्याकाहिङ्गुजीरकनागरैः ।
शस्यते व्यञ्जनं सिद्धं पित्ते स्वाद्वम्लमाक्षिकम् ॥६९॥
कृष्णमत्स्येन दुग्धेन मांसेन जाङ्गलेन च ।
जाङ्गलेषु शशच्छागौ मत्स्यौ रोहितमद्गुरौ॥ ७० ॥

पटोलफलपक्कं च कृष्णवार्त्ताकुजालिका ।
सुस्विन्नपूगैस्ताम्बूलैर्लाभे कर्पूरसंयुतैः ॥ ७१ ॥
क्षुधाकाले व्यतिक्रान्ते यदि वायुः प्रकुप्यति ।
झिञ्झिनीति शिरःशूले विरेके वमनौ तथा ॥ ७२ ॥
तृष्णायाश्चाधिके पित्ते नारिकेलाम्बु निर्भयम् ।
नारिकेलपयः पेयं द्विर्भक्ष्यं क्षीरमेव च ॥ ७३ ॥
स्वप्ने शुक्रच्युतौ चैव चम्पकं कदलीफलम् ।
वर्ज्या निम्बादिकं शाकं शाकाम्लं काञ्जिकं सुराम् ।
कदलीफलपत्राङ्गित्रपुषालाबुकर्कटी ।
कूष्माण्डं कारवेल्लञ्च व्यायामं जागरं निशि ॥ ७५ ॥
न पश्येन्नस्पृशेद्गच्छेत् स्त्रियं जीवितुमिच्छति ।
यद्यौषधे स्त्रियं गच्छेत् कर्त्तव्या तु प्रतिक्रिया ॥७६॥
दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति दुःसाध्यां बहुवार्षिकीम् ।
आमशूलमतीसारं सामं चैव सुदारुणम् ॥ ७७ ॥
अतीसारं षडर्शांसि यक्ष्माणं सपरिग्रहम् ।
शोथं च कामलां पाण्डुं प्लीहानं च जलोदरम् ॥ ७८ ॥
पंक्तिशूलं चाम्लपित्तं वातरक्तं वमिं कृमिम् ।
अष्टादशविधं कुष्ठं प्रमेहान् विषमज्वरान् ॥ ७९ ॥
वातपित्तकफोत्थांश्च ज्वरान् हन्ति सुदारुणान् ।
जीर्णोऽपि पर्पटीं कुर्वन् वपुषा निर्मलः सुधीः ॥ ८० ॥
जीवेद्वर्षशतं श्रीमान् वलीपलितवर्जितः ॥ ८० ॥

प्रातः करोति सततं नियतं द्विगुञ्जां
यस्तां स विन्दति तुलां कुसुमायुधस्य ।
आयुश्च दीर्घमनघं वपुषः स्थिरत्वं
हानिं वलीपलितयोरतुलं बलञ्च ॥ ८१ ॥

गन्धकके छोटे२ टुकडे करके भाँगरेके रसमें ७बार अथवा तीन बार भावना देकर धूपमें सुखाकर चूर्णकर लेवे। फिर उसको लोहेके बर्तनमें रखकर अग्निपर

पिघलाकर भाँगरेके रसमें डालदेवे । उसमेंसे निकालकर धूपमें सुखालेवे । इस प्रकार शोधित गन्धक ८ तोले, शुद्धपारा ४ तोले, रौप्यभस्म दो तोले, स्वर्णभस्म १ तोला, वैक्रान्तमणिकी भस्म आधातोला और मोतीकी भस्म तीन मासे लेवे । पश्चात् सबको लोहेके पात्रमें एकत्र खरल करके कज्जली करलेवे । फिर उस कज्जलीको लोहेके बरतनमें रखकर बेरीकी लकडीके अंगारोंपर पिघलाकर पूर्वोक्त रस पर्पटीकी भाँति केलेके पत्तेपर ढालदेवे. जो मोरकी पूँछकी चंद्रिकाकी समान कान्तिवाली मालूम हो, वह उत्तम पर्पटी होती है । कज्जलीका पाक मृदु, मध्य और खर इन भेदोंसे तीन प्रकारका होता है । मृदुपाक और मध्यपाककी पर्पटीमें पारा दीखता है किन्तु खरपाकमें नहीं दीखता. मृदुपाकमें पारा अच्छे प्रकारसे नहीं टूटता किन्तु मध्यपाकमें चाँदीकी समान टूट जाता है और खरपाकमें बहुत थोडा टूटता है । खरपाकमें पारा रूक्ष, सूक्ष्म और लालवर्णका होता है । इनमेंसे मृदु और मध्यपाककी पर्पटी सेवन करनी चाहिये और खरपाककी पर्पटी विषकी समान त्याग देनी चाहिये। पूर्वकालमें विष्णुभगवान्ने जरा और व्याधिसे आक्रान्तहुए इस विश्वको देखकर इस विजयपर्पटीको बनयाथा, जो अमृतके समान हितकारी है । पहिले दिन प्रातः समय इसको २ रत्ती प्रमाण भक्षण करे । फिर प्रतिदिन १-१ रत्तीके क्रमसे बढाताहुआ दस रत्तीतक बढाकर सेवन करावे । जब दश रत्तीकी मात्रा होजाय तब क्रमसे १-१ रत्ती घटाताजाय किन्तु इसे रत्तीसे अधिक मात्रा नहीं बढानी चाहिये । इस प्रकार जबतक उत्तम प्रकारसे आरोग्य न होजाय तबतक उसी प्रकार क्रमसे बढाकर और फिर घटाकर उसका सेवन करता रहे । इसके सेवन करनेपर यदि अजीर्ण होजाय तो भोजनके समयका उल्लंघन नहीं करना चाहिये। एवं घृत, सेंधानमक, धनियाँ, हींग, जीरा सोंठ इनके द्वारा सिद्ध कियेहुए व्यंजन खाने चाहिये । किन्तु पित्तकी अधिकता होनेपर मधुर और खट्टे पदार्थ तथा शहद सेवन करे । काली मछली, दूध और जंगलीजीवोंके मांसका पथ्य देवे । जंगली जीवोंमें खरगोश या बकरेका मांस तथा रोहू मछली और मद्गुर मछली उत्तम है । शाकोंमें परवल, पटोलपत्र, काले बैंगन और तोरई, पकाई हुई सुपारी, इलायची और कपूर लगाहुआ पान खाना हितकारीहै । भोजनके समय उल्लंघन होनेपर वायुके कुपित होजानेसे शिरमें झिनझिनाहट, पीडा, विरेचन (दस्त) वमन (कै) उपद्रव उत्पन्न होजाते हैं । उस समय तृष्णा और पित्तकी अधिक वृद्धि होनेपर निर्भय होकर कच्चे नारियलका जल पान करना चाहिये । जलोंमें नारियलका जल और प्रतिदिन दो बार दूध पिलाना

चाहिये । यदि स्वप्नमें वीर्यपात होजाय तो दुग्धपान करे । इसपर चम्पा, केलेके पत्ते, निम्बादिशाक, खट्टे पदार्थ काँजी, मदिरा, केलेकी फली, पत्रांघ्रि, खीरा लौकी ककडी और करेला ये सब पदार्थ, कसरतआदि परिश्रम और रातमें जागना ये सब त्याज्य हैं।जीनेकी इच्छा करनेवाले पुरुष स्त्रीको न देखे न स्पर्श करे और औषधि सेवन करते समय यदि किसी कारणसे स्त्री सहवास करे तो उसका विशेषरूपसे प्रतीकार (चिकित्सा) करना । यह विजयपर्पटी बहुत वर्षोंकी पुरानी अनिवार्य और दुस्साध्य संग्रहणी, आमशूल (आमातिसार,) दारुण अतिसार, छः प्रकारकी बवासीर, सम्पूर्ण उपद्रवोंसहित राजयक्ष्मा, सूजन, कामला, पाण्डुरोग, प्लीहा, जलोदर, पंक्तिशूल, अम्लपित्त, प्रमेह, विषमज्वर, वात-पित्त तथा ज्वर इन सब व्याधियोंको शीघ्र नष्ट करती है । वृद्धमनुष्य भी इस पर्पटीको सेवन करनेसे निर्मल शरीरवाले और विशेष बुद्धिमान् होता है । एवं वली और पलित रोगसे रहित होकर पूरे सौ वर्षतक जीता है । जो पुरुष प्रतिदिन प्रातःकाल इस पर्पटीको दो रत्ती प्रमाण सेवन करता है,वह कामदेवकी समान कान्तिमान्,दीर्घायुषी,पापरहित स्थिर देहवाला होता है । एवं वली, पलित रोगसे रहित होकर अतुल बलशाली होता है ॥

दूसरी विजयपर्पटी ।

रसं वज्रं हेम तारं मौक्तिकं ताम्रमभ्रकम् ।
सर्वतुल्येन गन्धेन कुर्याद् विजयपर्पटीम् ॥ ८१ ॥
दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति दुःसाध्यां बहुवार्षिकीम् ।
आमशूलमतीसारं चिरोत्थमतिदारुणम् ॥ ८२ ॥
प्रवाहिकां षडर्शांसि यक्ष्माणं सपरिग्रहम् ।
शोथश्च कामलां पाण्डुं प्लीहगुल्मजलोदरम् ॥ ८३ ॥
पंक्तिशूलमम्लपित्तं वातरक्तं वमिं भ्रमिम् ।
अष्टादशविधं कुष्ठं प्रमेहान् विषमज्वरान् ॥ ८४ ॥
चतुर्विधमजीर्णश्च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
जीर्णोऽपि पर्पटीमश्नन् वपुषा निर्मलः सुधीः ॥
जीवेद् वर्षशतं श्रीमान् वलीपलितवर्जितः ॥ ८५ ॥
प्रातः करोति सततं नियतं द्विगुञ्जां
यस्तां स विन्दति तुलां कुसुमायुधस्य ।

आयुश्च दीर्घमनघं वपुषः स्थिरत्वं
हानिं वलीपलितयोरतुलं बलञ्च ॥ ८६ ॥
जराव्याधिसमाकीर्णं विश्वं दृष्ट्वा पुरा हरः ।
चकार पर्पटीमेतां यथा नारायणः सुधाम् ॥ ८७ ॥

शुद्ध पारा, हीरा, सुवर्ण, चाँदी, मोती, ताँबा और अभ्रक प्रत्येककी भस्म एक एक तोला एवं शुद्ध गन्धक सबकी बराबर अर्थात् ७ तोले लेवे । सबको एकत्र मर्दन करके कज्जली बनालेवे। फिर उसको पिघलाकर रसपर्पटीकी विधिके अनुसार पर्पटी तैयार कर लेवे । यह पर्पटी भी पूर्वोक्त पर्पटीकी समान संग्रहणी आदि समस्त रोगोंको दूर करती है । एवं इसके अन्यान्य गुण पथ्यापथ्य, और नियमादि पूर्वोक्त विजयपर्पटीकी समानही जानने चाहिये । यह तन्त्रान्तरोक्त विजयपर्पटी है ॥ ८१-८७ ॥

हिरण्यगर्भपोट्टली रस ।

एकांशो रसराजस्य ग्राह्यौ द्वौ हाटकस्य च ।
मुक्ताफलस्य चत्वारो भागाः षड्दीर्घानिःस्वनात् ॥ ८८ ॥
त्र्यंशं बलेर्वराट्याश्च टङ्कणो रसपादिकः ।
पक्वनिम्बुकतोयेन सर्वमेकत्र मर्द्दयेत् ॥ ८९ ॥
मूषामध्ये न्यसेत् कल्कं तस्य वक्त्रं निरोधयेत् ।
गर्त्तेऽरत्निप्रमाणे तु पुटेत् त्रिंशद्वनोपलैः ॥ ९० ॥
स्वाङ्गशीतलतां ज्ञात्वा रसं मूषोदरान्नयेत् ।
ततः खल्लोदरे मर्द्यं सुधारूपं समुद्धरेत् ॥ ९१ ॥
एतस्यामृतरूपस्य दद्याद्गुञ्जाचतुष्टयम् ।
घृतमाध्वीकसंयुक्तमेकोनत्रिंशदूषणैः ॥ ९२ ॥
मन्दाग्नौ रोगसंघे च ग्रहण्यां विषमज्वरे ।
गुदाङ्कुरे महाशूले पीनसे श्वासकासयोः ॥ ९३ ॥
अतीसारे ग्रहण्याञ्च श्वयथौ पाण्डुके गदे ।
सर्वेषु कोष्ठरोगेषु यकृतप्लीहादिकेषु च ॥ ९४ ॥
वातपित्तकफोत्थेषु द्वन्द्वजेषु त्रिदोषजे ।
दद्यात सर्वेषु रोगेषु श्रेष्ठमेतद्रसायनम् ॥ ९५ ॥

शुद्धपारा १ भाग, सुवर्णभस्म २ भाग, मोतीकी भस्म ४ भाग, काँसेकी भस्म ६ भाग, शुद्धगन्धक ३ भाग, कौडीकी भस्म ३ भाग और सुहागा ३मासे इन सबको एकत्रित करके पकेहुए नींबूके रसमें खरलकरे । फिर औषधिको मूषायन्त्रमें रखकर उसके मुँहको बन्दकरके एक बालिश्त गहरे गड्ढेमें रखकर तीस आरले उपलोंकी अग्नि देवे । जब पककर स्वांग शीतल होजाय तब औषधिको मूषायन्त्रमेंसे निकालकर उत्तमप्रकारसे खरल करलेवे । इस अमृतकी समान गुणकारी रसको चार २ रत्ती प्रमाणलेकर घृत, शहद और २९ कालीमिरचोंके चूर्णके साथ मिलाकर सेवन करावे । यह रस मन्दाग्नि, संग्रहणी, विषमज्वर, बवासीर, दारुण शूल, पीनस, श्वास, खाँसी, अतिसार, सूजन, पाण्डुरोग सबप्रकारके उदरविकार, यकृत्, प्लीहा, वात-पित्त तथा कफजन्यरोग, द्विदोषज और त्रिदोषज आदि समस्तरोगोंमें प्रयोग करना चाहिये । इससे उक्तविकार तत्काल नष्ट होते हैं। यह अतिश्रेष्ठ रसायनहै८८-९५

स्वल्पचुक्र ।

यन्मस्तादि शुचौ भाण्डे सगुडक्षौद्रकाञ्जिकम् ।
धान्यराशौ त्रिरात्रस्थं शुक्रं चुक्रं तदुच्यते ॥ ९६ ॥

गुड १ भाग, शहद २ भाग, कांजी ४ भाग एवं दहीका पानी ८ भाग लेवे । इन सबको एक मिट्टीके नवे घडेमें भरकर उसके मुँहको बन्दकरके नवीन धानोंके ढेरमें गाड देवे । फिर तीन दिनके बाद निकालकर सेवन करावे । इसके सेवनसे ग्रहणी प्रभृति विविधरोग नष्ट होते हैं । इसको चुक्र अथवा शुक्र कहते हैं ॥ ९६ ॥

बृहच्चुक्र ।

प्रस्थं तण्डुलतोयतस्तुषजलात प्रस्थत्रयं चाम्लतः ।
प्रस्थार्द्धं दधितोऽम्लमूलकपलान्यष्टौ गुडान मानिके
मान्यौ शोधितशृङ्गवेरशकलात् द्वे सिन्धवजाज्योः पले
द्वे कृष्णोषणयोर्निशापलयुगं निःक्षिप्य भाण्डे दृढे ॥९७॥
स्निग्धे धान्ययवादिराशिनिहितं त्रीन् वासरान् स्थापयेत्।
ग्रीष्मे तोयधरात्यये च चतुरो वर्षासु पुष्पागमे
षट्शीतेऽष्टदिनान्यतः परमिदं विस्राव्य संचूर्णये-
च्चातुर्ज्जातपलेन संहतमिदं शुक्रञ्च चुक्रञ्च तत ॥ ९८ ॥

हन्यद्वातकफामदोषजनितान्नानाविधानामयान्
दुर्नामानि च शूलगुल्मजठरान् हत्वाऽनलं दीपयेत् ९९॥

चावलोंका जल एक प्रस्थ तुषोदक (काँजीका भेद) ३ प्रस्थ, खट्टा दही ३२ तोले, अम्लमूलक बासीकांजीमें पकाई हुई मूलीके टुकडे ८ पल, गुड दो शराव, शुद्ध कियेहुए अदरखके टुकडे ३२ तोले, एवं सैंधानमक, जीरा, पीपल, मिरच और हल्दी ये प्रत्येक आठ आठ तोले लेवे । इन सबको एकत्र मिलाकर मजबूत और चिकने मिट्टीके बर्त्तनमें भरकर उसके मुँहको अच्छे प्रकार बन्द करके धान अथवा जौके ढेरमें गाडदेवे । इसको गरमीके दिनोंमें तीन दिन, शरदृतुमें चार दिन, वर्षाकालमें अथवा वसंतऋतुमें ६ दिन और शीतकालमें ८ दिनतक गडारखना चाहिये । फिर उसको निकालकर उसमें दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर इन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले मिला देवे । इस प्रकार यह वृहद्शुक्त अथवा बृहच्छुक्र सिद्ध होताहै । यह शुक्त सेवन करतेही वात, कफ और आमदोषसे उत्पन्नहुए विविधप्रकारके रोग एवं अर्श, ग्रहणी, शूल, गुल्म और उदररोग इन सबको नष्ट करके अग्निको दीपन करता है ॥ ९७-९९ ॥

आयामकाञ्जिक ।

वाटचस्य दद्याद्यवसक्तुकानां पृथक्पृथक्चाढकसम्मितं तु ।
मध्यप्रमाणानि च मूलकानि दद्याच्चतुःषष्टिसुकल्पितानि ॥
द्रोणेऽम्भसः प्लाव्य घटे सुधौते दद्यादिदं भेषजजातयुक्तम् ।
क्षारद्वयं तुम्बुरुबस्तगन्धा धनीयकं स्याद् विडसैन्धवञ्च ॥
सौवर्च्चलं हिङ्गु शिवाटिकाञ्च चव्यञ्च दद्याद्द्विपलप्रमाणम् ।
इमानि चान्यानिपलोन्मितानि विजर्ज्जरीकृत्यघटे क्षिपेच्च॥
कृष्णामजाजीमुपकुञ्चिकाञ्च तथासुरीं कारविचित्रकञ्च ।
पक्षास्थितोऽयं बलवर्णदेह वयस्करोऽतीव बलप्रदश्च ॥१०३॥

कान् जीवयामीति यतः प्रवृत्तस्तत्-
काञ्जिकेति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।
आयामकालाज्जरयेच्च भुक्त-
मायामिकेति प्रवदन्ति चैनम् ॥ १०४ ॥

दकोदरं गुल्ममथ प्लिहानं हृद्रोगमानाहमरोचकञ्च ।
मन्दाग्नितां कोष्ठगतञ्च शूलमर्शोविकारान् सभगन्दरांश्च ॥
वातामयानाशु निहन्ति सर्वान् संसेव्यमानं विधिवन्नराणां।

वाटय (भूसीरहित जौको १४गुने जलमें पकानेसे जो मांड प्रस्तुत होताहै।) एक आढक,जौके सत्तू१आढक एवं मध्यम दर्जेकी(न बहुत छोटा न बडी) हो ऐसी मूली ६४ इन सबको धोयेहुए स्वच्छ घडेमें डालकर एक द्रोण परिमाण जल भर देवे । फिर उस घडेमें जवाखार, सज्जी, तुम्बुरु, अजवायन, धनियाँ, विरिया।संचरनमक, सैंधानमक, कालानमक, हींग, वंशलोचन और चव्य, प्रत्येक औषधि आठ २ तोले पीपल, जीरा, राई, सफेद सरसों, काला जीरा और चीतेकी जड ये प्रत्येक चार चार तोले सबको बारीक पीसकर डालदेवे। फिर घडेके मुँहको सिकोरेसे अच्छे प्रकार बन्द करके धानोंके ढेरमें १५ दिन-तक गडा रक्खे । तदनन्तर उसको निकालकर यथोचित मात्रासे सेवन करे तो इससे शरीरमें वल, वर्ण और आयुकी वृद्धि होती है । यह अत्यन्त बलके देनेवालीहै. जबकोई चिकित्सक सब औषधियोंसे निराश होकर यह विचारता है कि, रोगीको किस प्रकार जीवरक्षा करूं तब उस समयके लिये आयुर्वेदाचार्य महर्षिगण आयामकाञ्जिक कोही बतलाते हैं । आयाम शब्दका अर्थ–१ प्रहर । यह १ प्रहरमें खाये हुए भोजनको पचादेता है, इसलिये इसको विद्वान्लोग आयामकाञ्जिक कहते हैं । यह उदर रोग, गुल्म, प्लीहा, हृद-यरोग, आनाह, अरुचि, मन्दाग्नि, कोष्ठगतशूल, अर्श, भगन्दर, वातरोग एवं अन्यान्य सर्वप्रकारके रोगोंको शीघ्र दूर करता है ॥ १००–१०५ ॥

अष्टपलघृत ।

त्र्यूषणत्रिफलाकल्के बिल्वमात्रे गुडात्पले ।
सर्पिषोऽष्टपलं पक्त्वा मात्रां मन्दानलः पिबेत् ॥ १ ॥

सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला और बहेडा इनका कल्क समानभाग मिश्रित चार तोले, गुड चार तोले और घी ३२ तोले लेवे । सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । इसको रोगीको अवस्था और अग्निके बलाबलका विचारकर उचित मात्रासे सेवन करे तो मन्दाग्नि आदि सर्व-विकार दूर होते हैं ॥ १ ॥

बिल्वादिघृत ।

बिल्वाग्निचव्यार्द्रकशृङ्गवेरक्काथेन कल्केन च सिद्धमाज्यम् ।
सच्छागदुग्धंग्रहणीगदोत्थशोथाग्निमान्द्यारुचिनुद्वरिष्ठम्॥२

बेलगिरी, चीतेकी जड, चव्य, अदरख और सोंठ इन प्रत्येकके काथ और कल्क, एवं बकरीके दूधके साथ विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे।यह घृत संग्रहणी और तज्जन्य उपद्रव तथा सूजन, मन्दाग्नि, अरुचिप्रभृति विकारोंको नष्ट करनेके लिये सर्वोत्तम है ॥ २ ॥

बिल्वगर्भघृत ।

मसूरस्य कषायेण बिल्वगर्भं पचेद्घृतम् ।
हन्ति कुक्ष्यामयान सर्वान् ग्रहणीपाण्डुकामलाः॥३॥

मसूरकी काथ और बेलगिरीके कल्कके द्वारा यथाविधि घृतको सिद्ध करे । यह घृत सर्वप्रकारके कुक्षिगत रोग एवं ग्रहणी, पाण्डु, कामला आदि विकारोंको शमन करता है ॥ ३ ॥

शुण्ठीघृत ।

विश्वौषधस्य गर्भेण दशमूलजले शृतम् ।
घृतं निहन्त्या च्छ्वयथुं ग्रहणीसामतामयम् ॥ ४ ॥

सोंठके कल्क और दशमूलके काढेमें सिद्ध कियाहुआ घृत आमयुक्त ग्रहणी और सूजनको नष्ट करता है ॥ ४ ॥

नागरघृत ।

घृतं नागरकल्केन सिद्धं वातानुलोमनम् ।
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ॥ ५ ॥

केवल सोंठके कल्कके द्वारा सिद्ध किया हुआ घत ग्रहणी, पाण्डुरोग, तिल्ली खाँसी और ज्वरको दूर करता है और वायुका अनुलोमन करताहै ॥ ५ ॥

चित्रकघृत ।

चित्रकक्काथकल्काभ्यां ग्रहणीघ्नं शृतं हविः ।
गुल्मशोथोदरप्लीहशूलार्शोघ्नं प्रदीपनम् ॥ ६ ॥

चीतेके काथ और कल्कके द्वारा यथाविधि प्रस्तुत किया हुआ घी ग्रहणी, शोथ, उदररोग, गुल्म, प्लीहा, शूल, अर्शादिरोगोंको नाशकरनेवाला और विशेषकर अग्निप्रदीपक है ॥ ६ ॥

चाङ्गेरीघृत ।

नागरं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ।
श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वं पाठायमानिका ॥ ७ ॥
चाङ्गेरीस्वरसे सर्पिः कल्कैरेतैर्विपाचितम् ।
चतुर्गुणेन दध्ना च तद्घृतं कफवातनुत ॥ ८ ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकान् ।
गुदभ्रंशार्त्तिमानाहं घृतमेतद्व्यपोहति ॥ ९ ॥

सोंठ, पीपलामूल, चीतेकी जड, गजपीपल, गोखुरू, पीपल, धनियाँ, बेलगिरी पाढ और अजवायन इनके समानभाग मिश्रित कल्क और अम्ल नोनियाके स्वरसमें चौगुना दहीका पानी डालकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे । यह घृत कफ और वातके रोग एवं बवासीर, संग्रहणी मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, गुदभ्रंशकी पीडा और आनाह इन सबको दूर करताहै ॥ ७-९ ॥

मरिचाद्यघृत ।

मरिचं पिप्पलीमूलं नागरं पिप्पली तथा ।
भल्लातकं यमानी च विडङ्गं हस्तिपिप्पली ॥ १० ॥
हिङ्गु सौवर्चलञ्चैव विडसैन्धवचव्यकम् ।
सामुद्रं सयवक्षारं चित्रको वचया सह ॥ ११ ॥
एतैरर्द्धपलैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
दशमूलीरसे सिद्धं पयसा द्विगुणेन च ॥ १२ ॥
मन्दाग्नीनां हितं श्रेष्ठं ग्रहणीदोषनाशनम् ।
विष्टम्भमामदौर्बल्यं प्लीहानमपकर्षति ॥ १३ ॥
कासं श्वासं क्षयञ्चैव दुर्नाम सभगन्दरम् ।
कफजान् हन्ति रोगांश्च वातजान् कृमिसम्भवान् ।
तान् सर्वान् नाशयत्याशु शुष्कं दावानलो यथा ॥ १४

मिरच, पीपलामूल, सोंठ, पीपल भिलावे, अजवायन, वायविडंग, गजपीपल, हींग, कालानमक, विरियासंचरनमक, सैंधानमक, चव्य, समुद्रनमक, जवाखार, चीतेकी जड और वच इन प्रत्येकका कल्क दो दो तोले, दशमूलका काथ और काथसे दूना दूध लेवे। इन सबके द्वारा विधिपूर्वक एक प्रस्थ घृतको

पकावे। यह घृत मन्दाग्निवालोंको अत्यन्तहितकारी एवं ग्रहणी, विष्टम्भ, आमदोष, दुर्बलता, प्लीहा, खाँसी, श्वास, क्षय बवासीर, भगन्दर, कफजन्यरोग, वातजरोग, और कृमिरोग इन सबको तत्काल इस प्रकार नष्ट करदेता है जैसे दावाग्नि सूखे काष्ठको तत्क्षण भस्म करदेता है ॥ १०-१४ ॥

महाषट्पलकघृत।

सौवर्च्चलं पञ्चकोलं सैन्धवं हबुषा विडम्।
अजमोदा यवक्षारं हिङ्गु जीरकमौद्भिदम् ॥ १५ ॥
कृष्णाजाजीं सभूतीकं कल्कीकृत्य पलार्द्धकम्।
आर्द्रकस्य रसं चुक्रं क्षीरमस्त्वम्लकाञ्जिकम् ॥ १६ ॥
दशमूलकषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
भक्तेन सह पीतव्यं निर्भक्तं वा विचक्षणैः ॥ १७ ॥
कृमिप्लीहोदराजीर्णज्वरकुष्ठप्रवाहिकाम्।
वातरोगान कफव्याधीन् हन्याच्छूलमरोचकम् ॥१८॥
पाण्डुरोगं क्षयं कासं दौर्बल्यं ग्रहणीगदम्।
महाषट्पलकं नाम वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ १९ ॥

कालानमक, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, सेंधानमक, हाऊबेर, बिरियासंचरनमक, अजमोद, जवाखार, हींग, जीरा, समुद्रलवण, काला जीरा और अजवायन इनको कल्क दो दो तोले, एवं अदरखका रस, चूकेका स्वरस, दूध, दहीके तोड काँजी, दशमूलका काथ और घी ये प्रत्येक एक एक प्रस्थ लेवे। सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे। इस घृतको भातके साथ अथवा विना ही भातके सेवन करे तो यह महाषट्पलक नामक घृत कृमिरोग, तिल्ली, उदररोग, अजीर्ण, ज्वर, कुष्ठ, प्रवाहिका, वातरोग, कफरोग, शूल, अरुचि, पाण्डुरोग, क्षय, खाँसी, दुर्बलता, संग्रहणी प्रभृति रोगोंको इस प्रकार नष्ट करताहै; जैसे वज्र वृक्षोंको तत्काल नाश करदेताहै॥

बिल्वतैल।

तुलार्धं शुष्कबिल्वस्य तुलार्द्धं दशमूलतः।
जलद्रोणे विपक्तव्यं चतुर्भागावशेषितम् ॥ २० ॥
आर्द्रकस्य रसप्रस्थमारनालं तथैव च।
तैलप्रस्थं समादाय क्षीरप्रस्थं तथैव च ॥ २१ ॥

धातकी बालबिल्वश्च शठी रास्ना पुनर्नवा।
त्रिकटु पिप्पलीमूलं चित्रकं गजपिप्पली ॥ २२ ॥
देवदारु वचा कुष्ठं मोचकं कटुरोहिणी।
तेजपत्राजमोदे च जीवनीयगणस्तथा ॥ २३ ॥
एषामर्द्धपलान् भागान् पाचयेन्मृदुनाग्निना।
एतद्धि बिल्वतैलाख्यं मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ॥ २४॥
ग्रहणीं विविधां हन्ति चातीसारमरोचकम्।
संग्रहग्रहणीं हन्ति अर्शसामपि नाशकम् ॥ २५ ॥
श्लीपदं विविधं हन्ति अन्त्रवृद्धिश्च नाशयेत्।
कफवातोद्भवं शोथं ज्वरमाशु व्यपोहति ॥ २६ ॥
कासं श्वासञ्च गुल्मञ्च पाण्डुरोगविनाशनम्।
मक्कल्लशूलशमनं सूतिकातङ्कनाशनम् ॥ २७ ॥
मूढगर्भे च दातव्यं मूढवातानुलोमनम्।
शिरोरोगहरञ्चैव स्त्रीणां गदनिषूदनम् ॥ २८ ॥
रजोदुष्टाश्च या नार्यो रेतोदुष्टाश्च ये नराः।
तेऽपि तारुण्यशुक्राढ्या भविष्यन्ति महाबलाः ॥२९
वन्ध्यापि लभते पुत्रं शूरं पण्डितमेव च।
बिल्वतैलमिति ख्यातमात्रेयेण विनिर्मितम् ॥ ३० ॥

सूखी बेलगिरीकी ५० पल और दशमूलकी सब औषधियाँ ५०पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें अदरखका रस१प्रस्थ कांजी १ प्रस्थ दूध१प्रस्थ और तिलका तेल एक प्रस्थ डालदेवे। धायके फूल, कच्ची बेलगिरी, कचूर,रायसन, लाल विषखपरा, सोंठ, पीपल, मिरच, पीपलामूल, चीतेकी जड, गजपीपल, देवदारू, बच, कूठ, मोचरस, कुटकी, तेजपात, अजमोद, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मुगवन, मषवन, जीवन्ती और मुलैठी इन प्रत्येकके दो दो तोले कल्कको लेवे। सबको एकत्र मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे तैलको पकावे। यह बिल्वनामक तैल मन्दाग्निवालोंके लिये विशेषकर उपयोगी है। एवं नानाप्रकारकी ग्रहणी, अतिसार, अरुचि,

संग्रहणी, अर्शादि समस्त उपद्रवोंको शीघ्र नष्ट करता है । जो स्त्रियाँ रजोदोषसे और जो पुरुष वीर्यदोषसे युक्त हैं, वेभी इसका सेवन करनेसे नवयौवनयुक्त, अत्यन्त वीर्यवान् और बलवान् होते हैं । वन्ध्या स्त्रीभी शूरवीर और विद्वान् पुत्रको प्राप्त करती है।इस बिल्वतैलको आत्रेयमुनिने निर्माण कियाहै॥

ग्रहणीमिहिरतैल ।

धन्याकं धातकी लोध्रं समङ्गातिविषा शिवा ।
उशीरं वारिवाहश्च जलं मोचं रसाञ्जनम् ॥ ३१ ॥
बिल्वं नीलोत्पलं पत्रं केशरं पद्मकेशरम् ।
गुडूचीन्द्रयवश्यामा पद्मकं कटुरोहिणी ॥ ३२ ॥
तगरं गलदं भृङ्गं केशराजः पुनर्नवा ।
आम्रजम्बुकदम्बानां त्वचः कुटजवल्कलम् ॥ ३३ ॥
यमानी जीरकश्चैषां कार्षिकाणि प्रकल्पयेत् ।
तैलप्रस्थं पचेत् सम्यक् तक्रेणान्यतमेन वा ॥ ३४ ॥
कुटजत्वक्कषायेण धान्यकक्कथितेन वा ।
बुद्ध्वा दोषगतिं तत्तु तथान्यौषधवारिणा ॥ ३५ ॥
एतद्रसायनवरं वलीपलितनाशनम् ।
हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वरूपिणीम् ॥ ३६ ॥
ज्वरं तृष्णां तथा कासं हिक्कां श्वासं वमिं भ्रमिम् ।
सोपद्रवं कोष्ठरुजं नाशयेत सत्यमेव हि ॥ ३७ ॥
अर्शांसि कामलां मेहं श्वयथुं शूलमुल्बणम् ।
एतद्धि बृंहणं वृष्यं सर्वरोगनिबर्हणम् ॥ ३८ ॥
वशीकरणमेतद्धि पुष्ययोगे विपाचयेत् ।
सायं स्त्रीषु प्रकर्त्तव्यं प्रत्यूषे राजसंसदि ॥ ३९ ॥
विवाहादिषु माङ्गल्यं विवादे विजयप्रदम् ।
गर्भस्य चलितस्यापि स्थापनं परमं शुभम् ॥ ४० ॥
गर्भारम्भे प्रकर्त्तव्यमेतद्गर्भविवर्द्धनम् ।
ग्रहणीमिहिरं नाम तैलं भुवनमङ्गलम् ॥ ४१ ॥

धनियाँ, धायके फूल, लोध, लज्जावन्ती, अतीस, हरड, खस, नागरमोथा, सुगन्धबाला, मोचरस, रसौंत, बेलगिरी, नीलकमल, तेजपात, नागकेशर, कमलकेशर, गिलोय, इन्द्रजौ, अनन्तमूल, पद्माख, कुटकी, तगर, बालछड, दालचीनी, कुकुरभाँगरा, पुनर्नवा, आमकी छाल, जामुनकी छाल, कदमकी छाल, कुडेकी छाल, अजवायन और जीरा, इन प्रत्येक औषधिका कल्क, एकएक कर्ष एवं तिलका तैल एक प्रस्थ, मट्ठा एक प्रस्थ, कुडेकी छालका काथ एक प्रस्थ और धनियेका काथ एक प्रस्थ एवं जल एक द्रोण परिमाण लेवे। सबको एकत्रकर विधिपूर्वक तैलको सिद्ध करे। इस तेलको दोषोंके बलाबलका विचारकर अन्यान्य औषधियोंके साथ मिश्रितकरके सेवन करावे। यह तेल अत्यन्त श्रेष्ठ रसायन है, बृंहण और वृष्य एवं वली पलित आदि विकार तथा सर्वप्रकारके अतिसार नानाप्रकारकी संग्रहणी आदि सम्पूर्ण व्याधियोंका नष्ट करता है। पुष्य नक्षत्रमें इन तेलको पकानेसे यह वशीकरण-योग होता है। यह तेल स्त्रियोंको सायंकालके समय और राजाओंको प्रातः-कालके समय सेवन कराना चाहिये। यह विवाहादिमें मंगल करनेवाला, युद्धमें विजयके देनेवाला और विचलित हुए गर्भको पुनःस्थिर करनेवाला है। गर्भके आरम्भमें इसको सेवन करनेसे गर्भकी वृद्धि होती है। यह ग्रहणीमिहिर-नामवाला तैल चौदह भुवनका कल्याण करनेवाला है॥ ३१-४१॥

बृहद्ग्रहणीमिहिरतैल।

तैलं प्रस्थमितं ग्राह्यं तक्रं दद्याच्चतुर्गुणम्।
कुटजं धान्यकश्चैव ग्राह्यं पलशतं पृथक्॥ ४२॥
तयोः क्वाथं पचेद्द्रोणे अम्बुपादावशेषितम्।
एकीकृत्य पचेद्वैद्यः कल्कं कर्षमितं पृथक्॥ ४३॥
धान्यकं धातकी लोध्रं समङ्गातिविषा शिवा।
लवङ्गं बालकश्चैव शृङ्गाटकरसाञ्जनम्॥ ४४॥
नागपुष्पं पद्मकश्च गुडूचीन्द्रयवं तथा।
प्रियङ्गु कुटकी पद्मकेशरं तगरं तथा॥ ४५॥
शरमूलं भृङ्गराजः केशराजः पुनर्नवा।
आम्रजम्बुकदाम्बानां कल्कानि च प्रदापयेत्॥ ४६॥
ग्रहणीं हन्ति तच्छीघ्रं वलीपलितनाशनम्।
हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वरूपिणीम्॥ ४७॥

ज्वरं तृष्णां तथा श्वासं कासं हिक्कां वमिं भ्रमिम्।
सोपद्रवं कोष्ठरुजं नाशयेत सद्य एव हि॥ ४८॥
वशीकरणमेतद्धि पुष्ययोगेन कारयेत।
बृहद्ग्रहणीमिहिरतैलं भुवनमङ्गलम्॥ ४९॥

तिलका तैल एक प्रस्थ, मट्ठा ४ प्रस्थ एवं कुडेकी छाल और धनियेको अलग२ सौ सौ पल लेकर एक द्रोण जलमें पकाकर चतुर्थांश जल शेष रक्खे फिर छानकर उसमें धनियाँ, धायके फूल, लोध, लज्जावन्ती, अतीस, हरड, लौंग, सुगन्धवाला, सिंघाडेके पत्ते, रसौत, नागकेशर, पद्माख, गिलोय, इन्द्रजौ, फूलप्रियंगु, कुटकी, कमलकेसर, तगर, रामसरकी जड, भांगरा, केशराज, लाल विषखपरा, आमकी छाल, जामुनकी छाल और कदमकी छाल इन समस्त औषधियोंके कल्कको एक एक कर्ष प्रमाण डालकर विधिपूर्वक तैलको पकावे। यह तेल शरीरपर मालिश करनेसे सर्व प्रकारके अतिसार, सर्वदोष युक्त ग्रहणी, बली–पलित रोग, ज्वर, तृष्णा, श्वास, खाँसी, हिचकी वमन, भ्रम और संपूर्ण उपद्रवोंसहित उदरविकार इन सबको बहुत शीघ्र नष्ट करता है। पुष्यनक्षत्रमें इसको सिद्धकरनेसे यह वशीकरणयोग होजाता है। यह बृहद्ग्रहणीमिहिर तैल १४ भुवनका मंगल करनेवाला है॥ ४२–४९॥

तक्रारिष्ट।

यमान्यामलकं पथ्या मरिचं त्रिपलांशिकम्।
लवणानि पलांशानि पञ्च चैकत्र चूर्णयेत्॥ ५०॥
तक्रकं संयुतं जातं तक्रारिष्टं पिबेन्नरः।
दीपनं शोथगुल्मार्शःकृमिमेहोदरापहम्॥ ५१॥

अजवायन, आमले, हरड और मिरच, प्रत्येक बारह १२ तोले और पाँचों नमक प्रत्येक चार २ तोले सबका एकत्र चूर्ण करके ४ सेर मट्ठेमें पकाकर १ मिट्टीके घडेमें भरकर चार दिनतक रक्खा रहनेदेवे पश्चात् उसको निकालकर यथोचितमात्रासे सेवन करे तो अग्नि दीपन होती है एवं शोथ, गुल्म, अर्श, कृमि, प्रमेह और उदररोग दूर होते हैं॥५०॥५१॥

पिप्पल्याद्यासव।

पिप्पली मरिचं चव्यं हरिद्रा चित्रको घनः।
विडङ्गं क्रमुको लोध्रः पाठा धात्र्येलवालुकम्॥५२॥

उशीरं चन्दनं कुष्ठं लवङ्गं तगरं तथा ।
मांसी त्वगेला पत्रञ्च प्रियङ्गुनागकेशरम् ॥ ५३ ॥
एषामर्द्धपलान् भागान् श्लक्ष्णचूर्णीकृताञ्छुभान् ।
जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा दद्याद्गुडतुलात्रयम् ॥ ५४ ॥
पलानि दश धातक्या द्राक्षा षष्टिपला भवेत् ।
एतान्येकत्र संयोज्य मृद्भाण्डे च विनिःक्षिपेत् ॥५५॥
ज्ञात्वा जातरसं सर्वं पाययेदग्न्यपेक्षया ।
क्षयं गुल्मोदरं कार्श्यं ग्रहणीं पाण्डुतां तथा ॥
अर्शांसि नाशयेच्छीघ्रं पिप्पल्याद्यासवस्त्वयम्॥५६॥

पीपल, मिरच, चव्य, हल्दी, चीता, नागरमोथा, वायविडङ्ग, सुपारी, लोध, पाढ़, आमला, एलुआ, खस, लालचन्दन, कूठ, लौंग, तगर, बालछड, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, फूलप्रियंगु, और नागकेसर इन समस्त औषधियोंके खूब बारीक पिसेहुए चूर्ण दो दो तोले, एवं पुराना गुड तीन सौ पल, धायके फूल दसपल और दाख६०पल लेवे। इन सबको दो द्रोण परिमाण जलमें डालकर एक स्वच्छ मिट्टीके बर्त्तनमें भरकर एक महीनेतक रक्खा-रहने देवे जब उसमें उत्तम प्रकारसे रस उत्पन्न होजाय तब निकालकर छान-लेवे फिर इसको अग्निका बलाबल विचारकर पान कराना चाहिये । यह पिप्पल्याद्यासव क्षय, गुल्म, उदररोग, कृशता, ग्रहणी, पाण्डुरोग, और बवासीर इन समस्त रोगोंको नष्ट करता है ॥ ५२-५६ ॥

इति भैषज्य रत्नावल्यां ग्रहणीरोगचिकित्सा ॥

अर्शरोगचिकित्सा ।

दुर्नाम्नां साधनोपायश्चतुर्धा परिकीर्त्तितः ।
भेषजक्षारशस्त्राग्निसाध्यत्वादाद्य उच्यते ॥ १ ॥

आर्शरोगकी चिकित्सा चार प्रकारकी कही गयी हैं। जैसे—औषधप्रयोग, क्षार कर्म, शस्त्रक्रिया और अग्निक्रिया इन चारोंमेंसे यहाँपर औषधचिकि-त्साकाही वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

यद्वायोरानुलोम्याय यदग्निबलवृद्धये ।
अनुपानौषधद्रव्यं तत्सेव्यं नित्यमर्शसैः ॥ २ ॥

औषधियाँ और अनुपान वायुको अनुलोमन करनेवाले और अग्निके बलकी वृद्धि करनेवाले हैं अर्शके रोगियोंको सब नित्य सेवन करने चाहिये ॥ २ ॥

शुष्कार्शतां प्रलेपादिक्रिया तीक्ष्णा विधीयते ।
स्राविणां रक्तमालोक्य क्रिया कार्याऽस्रपैत्तिकी ॥ ३ ॥

शुष्क अर्शरोगवाले मनुष्योंको प्रलेपादि तीक्ष्ण क्रिया करनी चाहिये और रुधिरस्रावहोनेवाले अर्शरोगियोंके रक्तपित्तरोगकी समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

स्नुक्क्षीरं रजनीयुक्तं लेपाद्दुर्नामनाशनम् ।
कोषातकीरजोघर्षान्निपतन्ति गुदोद्भवाः ॥ ४ ॥

थूहरके दूध और हल्दीके चूर्णको एकत्र मिलाकर लेप करनेसे अथवा तोरईके चूर्णको मलनेसे अर्शके अंकुर गिरपडते हैं ॥ ४ ॥

असितानां तिलानां प्राक् प्रकुञ्चं शीतवार्यनु ।
खादतोऽर्शांसि नश्यन्ति द्विजदार्ढ्याङ्गपुष्टिदम् ॥ ५ ॥

काले तिलोंके चार तोले परिमाण चूर्णको शीतल जलके साथ खानेसे अर्शरोग नष्ट होता है । दाँत दृढ और शरीर पुष्ट होताहै ॥ ५ ॥

कफजे शृङ्गवेरस्य क्वाथो नित्योपयोगिकः ॥ ६ ॥

कफकी बवासीरमें प्रतिदिन सोंठका काथ सेवन करना हितकारी है ॥ ६ ॥

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं तिक्ततुम्ब्याश्च पल्लवाः ।
करञ्जो बस्तमूत्रञ्च लेपनं श्रेष्ठमर्शसाम् ॥ ७ ॥

आकका दूध, थूहरका दूध, कडवीतोंबीके पत्ते, दुर्गन्ध करंज और बकरेका मूत्र इनका एकत्र मिलाकर लेप करना अर्शरोगवालोंको लिये हितकर है ॥ ७ ॥

अर्शोघ्नी गुदजा वर्त्तिगुडघोषाफलोद्भवा ।
ज्योतिष्मिकामूलकल्केन लेपो रक्तार्शसां हितः ॥ ८ ॥

गुड और तोरईके फूलोंके चूर्णको एकत्र मिलाकर बत्ती बनावे । उसको गुदामें रखनेसे बवासीर दूर होती है । और मालकांगुनीकी जडके कल्कका लेप करना रक्तार्शवाले रोगियोंको उपयोगी है ॥ ८ ॥

तुम्बीबीजं सोद्भिदन्तु काञ्जिपिष्टं गुडीत्रयम् ।
अर्शोहरं गुदस्थं स्याद्दाधिमाहिषमश्नतः ॥ ९ ॥

कडवी तोंबीके बीज और रेव दोनोंको समभाग लेकर कांजीमें पीसकर तीन गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे एकएक गोली गुदामें रखनेसे और इसपर भैंसका दही खानेसे अर्शरोग दूर होता है ॥ ९ ॥

महारोधिप्रदेशस्य पथ्या कोषातकीरजः ।
सफेनं लेपतो हन्ति लिङ्गार्शो नात्र संशयः ॥ १० ॥

मगध देशकी उत्पन्नहुए हरडका चूर्ण, तोरईका चूर्ण और समुद्रफेन इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे लिङ्गार्शरोग निस्सन्देह नष्ट होता है ॥ १० ॥

अपामार्गोद्भवान्मूलात् क्षारं सहरितालकम् ।
लिङ्गार्शो लेपतो हन्ति चिरजातमसंशयम् ॥ ११ ॥

चिरचिटेकी जडका बनायाहुआ क्षार और हरताल दोनोंको समभाग लेकर जलके साथ पीसकर लेपकरनेसे बहुत पुराना लिङ्गार्शरोग निश्चय दूरहोताहै॥

वातातिसारवद्भिन्नवर्चांस्यर्शांस्युपाचरेत् ।
उदावर्त्तविधानेन गाढविट्कानि चासकृत् ॥ १२ ॥

अर्शके रोगियोंको पतले दस्त होते हों तो वातातिसारकी समस्त चिकित्सा करे और यदि मल कठिन उतरता हो तो उदावर्त्तरोगकी विधिके अनुसार चिकित्सा करे ॥ १२ ॥

विड्विबन्धे हितं तक्रं यमानी विडसंयुतम् ।
वातश्लेष्मार्शसां तस्मात् परं नास्तीह भेषजम् ॥१३॥
तत् प्रयोज्यं यथादोषं सस्नेहं रूक्षमेव वा ।
न विरोहन्ति गुदजाः पुनस्तक्रसमाहिताः ॥ १४ ॥

वात और कफ जनित अर्शके रोगियोंको मल विबन्ध होजानेपर अजवायन और बिरियासंचर नमक डालकर मट्ठेका सेवन करना चाहिये ऐसे रोगियोंके लिये मट्ठेसे बढकर हितकरनेवाली अन्य कोई औषधि नहीं है. इस लिये यथादोषानुसार मक्खन सहित अथवा मक्खन रहित मट्ठेका नित्य सेवन करना चाहिये इस प्रकार तक्रका सेवन करनेसे नष्टहुए गुदोंका अंकुर फिर उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ १३-१४ ॥

त्वचं चित्रकमूलस्य पिष्ट्वा कुम्भं प्रलेपयेत् ।
तक्रं वा दधि वा तत्र जातमर्शोहरं पिबेत् ॥ १५ ॥
पित्तश्लेष्मप्रशमनी कच्छुकण्डुरुजापहा ।
गुदजान्नाशयत्याशु योजिता सगुडाभया ॥ १६ ॥

चीतेकी जडकी छालको पीसकर उसका एक घडेके भीतर लेपकरके उस घडेमें मट्ठा या दही भरकर पानकरनेसे अर्शरोग दूर होता है । हरडका चूर्ण और गुड दोनोंको एकत्रमिलाकर सेवन करनेसे पित्त कफजन्य विकार, कच्छू, कण्डू और अर्शरोग शीघ्र दूर होता है ॥ १५--१६ ॥

सगुडां पिप्पलीयुक्तामभयां घृतभर्जिताम् ।
त्रिवृद्दन्तीयुतां वापि भक्षयेदानुलोमिकीम् ॥ १७ ॥

घीमें भूनीहुई हरडके चूर्ण और पीपलके चूर्ण अथवा निसोतके चूर्ण और दन्तीकी जडके चूर्णको गुडमेंमिलाकर सेवन करनेसे वायुका अनुलोमन होताहै.

तिलारुष्करसंयोगं भक्षयेदग्निवर्द्धनम् ।
कुष्ठरोगहरं श्रेष्ठमर्शसां नाशनं परम् ॥ १८ ॥

काले तिल और भिलावेके चूर्णको समान भाग लेकर भक्षण करनेसे अग्निकी वृद्धि होती है कुष्ठ तथा अर्शरोग नष्ट होता है ॥ १८ ॥

गोमूत्राध्युषितां दद्यात् सगुडां वा हरीतकीम् ।
पञ्चकोलयुतं वापि तक्रमस्मै प्रदापयेत् ॥ १९ ॥

रातको गोमूत्रमें हरडको भिगोकर दूसरे दिन प्रातःकाल पीसकर सेवन करनेसे पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनके चूर्णको मट्ठेमें मिलाकर देनेसे अर्शरोग दूर होता है ॥ १९ ॥

मृल्लिप्तं सौरणं कन्दं पक्त्वाग्नौ पुटपाकवत् ।
दद्यात् सतैललवणैर्दुर्नाम्नां विनिवृत्तये ॥ २० ॥

एक जिमीकन्दको लेकर इसके ऊपर अच्छे प्रकार मिट्टीका पुटपाककी विधिसे लेप करके अग्निमें पकावे । फिर उसको तिलके तैल और सैंधेनमकके साथ भूनकर सेवन करनेसे अर्शरोग दूर होता है ॥ २० ॥

स्विन्नं वार्त्ताकुफलं घोषायाः क्षारजेन सलिलेन ।
तद्घृतभ्रष्टं युक्तं गुडेनातृप्तितो योऽत्ति ॥ २१ ॥
पिबति च तक्रं नूनं तस्याश्वेवातिबद्धगुदजानि ।
यान्ति विनाशं पुंसां सहजान्यपि सप्तरात्रेण ॥ २२॥

तोरईके क्षारको छः गुने जलमें २१ बार छानकर फिर उस क्षारजलमें बैंगनके उत्तम प्रकारसे पकाकर फिर घीमें भून लेवे फिर उसमें कुछ पुराना

गुड मिलाकर जो अर्शरोगी भक्षण करे और ऊपरसे मट्ठा पीवे तो उसके अत्यन्त बढाहुआ सहज अर्शरोग सातदिनमें नष्ट होजाताहै ॥ २१ ॥ २२ ॥

चतुःपलं स्नुहीकाण्डं त्रिपलं लवणत्रयात् ।
वार्त्ताकुकुडवश्चार्कादष्टौ द्वे चित्रकोत्पले ॥ २३ ॥
दग्ध्वा रसेन वार्त्ताकोर्गुडिका भोजनोत्तराः ।
भुक्ता भुक्तं पचत्याशु कासश्वासार्शसां हिता ॥
विषूचिकाप्रतिश्यायहृद्रोगशमनाश्च ताः ॥ २४ ॥

थूहरके वृक्षकी टहनी १६ तोले, काला नमक, सैंधानमक और बिरिया-संचर नमक ये प्रत्येक ४ तोले, काले बैंगन १६ तोले, आककी जडकी छाल ३२ तोले और लालचीतेकी जड ८ तोले लेवे सबको एकत्र दग्ध करके बैंग-नके काथमें खरलकरके चनेके बराबर गोलियाँ बनालेवे इनमेंसे भोजनकरनेके पीछे एक एक गोली सेवन करनेसे खायाहुआ अन्न शीघ्र पच जाता है ये गोलियाँ खाँसी, श्वास और अर्शरोगवालोंके लिये परम हितकारी हैं एवं विषू-चिका, प्रातिश्याय और हृदय रोगको शमनकरने वाली हैं ॥ २३॥२४ ॥

रक्तार्शचिकित्सा ।

रक्तार्शसामुपेक्षेत रक्तमादौ स्रवद्भिषक् ।
दुष्टास्रे निगृहीते तु शूलानाहावसृग्गदाः ॥ २५ ॥

रक्तजबवासीरकी चिकित्सा करते समय वैद्यको चाहिये कि, प्रथमही स्रवते हुये रुधिरको नहीं रोके । कारण-दूषित रक्तको रोकनेसे शूल, आनाह और रक्त सम्बन्धी अनेक रोग उत्पन्न होजाते हैं ॥ २५ ॥

शक्रक्वाथः सविश्वो वा किंवा बिल्वशलाटवः ।
योज्या रक्तार्शसैस्तद्वज्ज्योत्स्निकामूललेपनम् ॥२६॥

इन्द्रजौका काथ सोंठका चूर्ण मिलाकर अथवा बेलगिरीका काथ सोंठका चूर्ण डालकर पान करनेसे किंवा तोरईकी जडका लेप करनेसे रक्तार्शरोग दूर होता है ॥ २६ ॥

नवनीततिलाभ्यासात् केशरनवनीतशर्कराभ्यासात् ।
दधिसरमथिताभ्यासात् गुदजाः शाम्यन्ति रक्तवहाः ॥२७॥

नैनी घी (मक्खन) तिल या नागकेशर, मक्खन और मिश्री अथवा

मलाई सहित मथा हुआ मट्ठेको कुछ दिनोंतक सेवन करनेसे रुधिरकी बवासीर नष्ट होती है ॥ २७ ॥

समङ्गोत्पलमोचाह्वतिरीटतिलचन्दनैः ।
छागक्षीरं प्रयोक्तव्यं गुदजे शोणितापहम् ॥ २८ ॥

लज्जावन्ती, नीलकमलकी जड, मोचरस, लोध, कालेतिल, और लालचन्दन इनके समान भाग मिश्रित कल्कके द्वारा सिद्ध कियाहुआ बकरीका दूध पान करनेसे रक्तजबवासीर दूर होती है ॥ २८ ॥

कोमलं नलिनीपत्रं पिष्ट्वा खादेत् सशर्करम् ।
प्रातराजं पयः पीत्वा रक्तस्रावाद्विमुच्यते ॥ २९ ॥

कमलनीके कोमल पत्तोंको पीसकर उसमें कुछ चीनी मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल बकरीके दूधके साथ पान करनेसे रक्तस्राव बन्द होता है ॥ २९ ॥

सशर्करं कृष्णतिलस्य कल्कं बास्तैःपयोभिः पिबति प्रभाते।
सद्यो हरत्येव गुदोत्थरक्तं योगोऽयमित्थं गिरिशप्रयुक्तः ॥३०

कालेतिलोंके कल्कको मिश्री मिलाकर बकरीके दूधके साथ प्रातःकाल सेवन करनेसे गुदासे रक्तका स्राव होना तत्काल दूर होता है ॥ ३० ॥

कौटजं कल्कमादाय पिष्ट्वा तक्रेण बुद्धिमान् ।
पीत्वा रक्तार्शसो रक्तस्रुतिमाशु नियच्छति ॥ ३१ ॥

कुडेकी छालके चूर्णको मट्ठेके साथ पीसकर सेवन करनेसे रक्तजबवासीरमें रक्तकी गिरना शीघ्र बन्द होता है ॥ ३१ ॥

तण्डुलसलिलोपेतं कल्कमपामार्गजं पिबतः ।
क्षीरमनुवाप्यभीरोर्गुदजाः शाम्यन्ति रक्तवहाः ॥
दाडिमस्य रसः पेयः शर्करामधुरीकृतः ॥ ३२ ॥

चिरचिटेके कल्कको चावलोंके पानीमें पीसकर पीनेसे अथवा शतावरके चूर्णको बकरीके दूधके साथ मिश्री डालकर अनारका रस पानकरनेसे रक्तज बवासीर समूल नष्ट होते हैं ॥ ३२ ॥

कण्टकिफलान्तर्मूलक्षारो गोरोचनाजलम् ।
लेपमात्रेण विस्राव्य रसान् हन्ति गुदाङ्कुरान् ॥३३ ॥

कटहलके फलके भीतरकी मूलके क्षारको गोरोचनके साथ जलमें पीसकर लेप करनेसे रक्तस्राव होकर रक्तज बवासीर नष्ट होती है ॥ ३३ ॥

भावितं रजनीचूर्णैः स्नुहीक्षीरे पुनः पुनः ।
बन्धनात् सुदृढं सूत्रं छिनत्त्यर्शो न संशयः ॥ ३४ ॥

थूहरके दूधमें हलदीके चूर्णको मिलाकर उसमें एक उत्तम और दृढ(मजबूत) सूतके धागेको बारबार भावना देवे फिर उस बवासीरके मस्सेको खूब कसकर बाँधनेसे मस्से शीघ्रही कट पडते हैं ॥ ३४ ॥

लवणोत्तमादि चूर्ण ।

लवणोत्तमवह्निकलिङ्गयवाँ-
श्चिरबिल्वमहापिचुमर्दयुतान् ।
पिब सप्तदिनं मथितालुलितान्
यदि मर्दितुमिच्छसि पायुरुहान् ॥ ३५ ॥

जो अर्शरोगको नष्ट करनेकी इच्छा है तो सैंधानमक, चीतेकी जड, इन्द्रजौ, दुर्गन्ध करञ्ज इनके समानभाग मिश्रित चूर्णको मट्ठेमें मिलाकर सात दिनतक सेवन करना चाहिये ॥ ३५ ॥

समशर्कराचूर्ण ।

शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेलं
चूर्णीकृतं क्रमविवर्द्धितमूर्ध्वमन्त्यात् ।
खादेदिदं समसितं गुदजाग्निमान्द्य-
कासारुचिश्वसनकण्ठहृदामयेषु ॥ ३६ ॥

छोटीइलायची १ भाग, दालचीनी दो भाग, तेजपात तीन भाग, नागकेशर ४ भाग, काली मिरच ५ भाग, पीपल ६ भाग और सोंठ सात भाग सबको एकत्र मिलाकर बारीक चूर्ण करलेवे फिर समस्त चूर्णकी बराबर मिश्री मिलाकर यथोचितमात्रासे सेवन करे। यह चूर्ण अर्श, मन्दाग्नि, खाँसी, अरुचि, श्वास एवं कण्ठ और हृदयके रोगोंमें विशेष हितकारी है ॥ ३६ ॥

व्योषादिचूर्ण ।

व्योषाग्न्यरुष्करविडङ्गतिलाभयानां
चूर्णं गुडेन सहितन्तु सदोपयोज्यम् ।
दुर्नामकुष्ठगरशोषशकृद्विबन्ध-
मग्नेर्जयत्यबलतां कृमिपाण्डुतां च ॥ ३७ ॥

सोंठ, पीपल, कालीमिरच, चीता, भिलावे, वायविडंग, तिल और हरड इनके समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे फिर समस्त चूर्णकी बराबर

गुड मिलाकर उपयुक्त मात्रासे प्रतिदिन सेवन करे तो बवासीर, कुष्ठ, विष-दोष, शोथ, मलविबन्ध, मन्दाग्नि, कृमि और पाण्डुप्रभृति विविध प्रकारके रोग नष्ट होते हैं ॥ ३७ ॥

विजयचूर्ण।

त्रिकत्रयवचाहिंगु पाठाक्षारनिशाद्वयम्।
चव्यतिक्ताकलिङ्गाग्निशताह्वालवणानि च ॥ ३८ ॥
ग्रन्थिबिल्वाजमोदा च गणोऽष्टाविंशतिर्मतः।
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ३९ ॥
ततो बिडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा।
एरण्डतैलयुक्तन्तु सदा लिह्यात् ततो नरः ॥ ४० ॥
कासं हन्यात् तथा शोथमर्शांसि च भगन्दरम्।
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च वातगुल्मं तथोदरम् ॥ ४१ ॥
हिक्काश्वासप्रमेहांश्च कामलां पाण्डुरोगताम्।
आमाशयमुदावर्त्तमन्त्रवृद्धिं गुदं कृमीन् ॥ ४२ ॥
अन्ये च ग्रहणीदोषा ये मया परिकीर्त्तिताः।
महाज्वरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसाम् ॥ ४३ ॥
अप्रजानान्तु नारीणां प्रजावर्द्धनमेव च।
विजयो नाम चूर्णोऽयं कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥ ४४ ॥

सोंठ, पीपल, मिरच, हरड आमला, बहेडा, दालचीनी, इलायची, तेजपात, बच, हींग, पाढ, जवाखार, हल्दी, दारुहल्दी, चव्य, कुटकी, इन्द्रजौ, चीता, सौंफ, पाँचोंनमक, पीपलामूल, बेलगिरी और अजमोद इन अट्ठाईस औषधिको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे फिर इसमेंसे प्रतिदिन एक तोला चूर्णको मन्दोष्ण जलके साथ अथवा अण्डीके तेलके साथ सेवन करे तो यह विजय-नामवाला चूर्ण खाँसी, सूजन, बवासीर, भगन्दर, हृदयका शूल, फसलीका शूल, वातगुल्म, उदररोग, हिचकी, श्वास, प्रमेह, कामला, पाण्डुरोग, आमा-शयके रोग, उदावर्त्त, अन्त्रवृद्धि, गुदाके विकार, कृमिरोग, संग्रहणी आदि जो अन्यान्य रोग मैंने कहे हैं उन सबको नष्ट करता है एवं महाज्वर और भूत बाधाको दूर करता है। तथा वन्ध्यास्त्रियोंको सन्तानके देनेवाला यह चूर्ण कृष्णात्रेय ऋषि करके पूजित है ॥ ३८-४४ ॥

शूरणपिण्डी।

चूर्णीकृताः षोडश शूरणस्य भागास्ततोऽर्द्धेन च चित्रकस्य।
महौषधाद्दौ मरिचस्य चैको गुडेन दुर्नामजयाय पिण्डी॥
"पिण्ड्यां गुडो मोदकवत् पिण्डत्वापत्तिकारकः"॥ ४५॥

जिमीकंदका चूर्ण १६ भाग लालचीतेकी जडका चूर्ण८भाग, सोंठका चूर्ण दो भाग और समस्त चूर्णकी बराबर गुड लेवे सबको एकत्र मिलाकर पिण्डी अर्थात् छोटे २ लड्डू बनालेवे। यह पिण्डी सर्व प्रकारकी बवासीरको नष्ट करनेके लिये अत्युत्तम औषध है। इसको उपयुक्त मात्रासे सेवन करे॥४५॥

भल्लातकादिमोदक।

भल्लातकं तिलं पथ्या चूर्णं गुडसमन्वितम्।
मोदकं भक्षयेत् कर्षं मासात् पित्तार्शसां जयेत्॥४६॥

भिलावे, तिल और हरड इनका चूर्ण समान भाग और समस्त चूर्णसे दुगुना गुड लेवे। सबको एकत्र मिलाकर एकएक कर्ष प्रमाणके मोदक बनालेवे इन मोदकोंको एक मास पर्यन्त सेवन करनेसें पित्तज बवासीर दूर होती है॥४६॥

नागरादिमोदक।

सनागरारुष्करवृद्धदारकंगुडेनयोमोदकमत्युदारकम्।
अशेषदुर्नामकरोगदारकं करोति वृद्धं सहसैव दारकम्।
"चूर्णे चूर्णसमो देयो मोदके द्विगुणो गुडः"॥ ४७॥

सोंठ शुद्ध भिलावेके अभावमें लालचन्दन और विधारा इन सबके समान-भाग चूर्णमें समस्तचूर्णकी बराबर गुड मिलावे और मोदक बनाने हो तो उसमें दुगुना गुड डालकर लड्डू बनालेवे। इस औषधिके सेवन करनेसे सर्व प्रकारकी दारुण बवासीर शीघ्र ही नष्ट होती है। यह मोदक वृद्धपुरुषको युवा करदेता हैं॥ ४७॥

स्वल्पशूरणमोदक।

मरिचमहौषधचित्रकशूरणभागा यथोत्तरं द्विगुणाः।
सर्वसमो गुडभागः सेव्योऽयं मोदकः सिद्धफलः॥
ज्वलनं ज्वलयति जाठरमुन्मूलयति गुल्मशूलगदान्।
निःशेषयति श्लीपदमवश्यमर्शांसि नाशयत्याशु॥ ४८॥

कालीमिरचोंका चूर्ण एक भाग, सोंठका चूर्ण २ भाग, चीतेकी जडका चूर्ण ४भाग, जिमीकंदका चूर्ण ८ भाग और सब चूर्णकी बराबर गुड लेवे. सबको यथाविधि एकत्र मिलाकर लड्डू बनालेवे । ये मोदक तत्काल सिद्ध फलके देनेवाले हैं एवं अग्निको दीपन करते हैं । उदररोग गुल्म और शूलादि रोगोंको जडसे उखाड देते हैं और श्लीपद तथा अर्शरोगको निस्सन्देह तत्काल नष्ट करते हैं ॥ ४८ ॥

बृहच्छूरणमोदक ।

शूरणषोडशभागा वह्नेरष्टौ महौषधस्यातः ।
अर्द्धेन भागयुक्तिर्मरिचस्य च ततोऽपि चार्द्धेन ॥४९॥
त्रिफला कणा समूला तालीशारुष्करकृमिघ्नानाम् ।
भागा महौषधसमा दहनांशा तालमूली च ॥ ५० ॥
भागः शूरणतुल्यो दातव्यो वृद्धदारकस्यापि ।
भृङ्गैले मरिचांशे सर्वाण्येकत्र संचूर्ण्य ॥ ५१ ॥
द्विगुणेन गुडेन युतः सेव्योऽयं मोदकः प्रकामधनैः ।
गुरुवृष्यभोज्यरहितेष्वितरेषूपद्रवं कुर्यात् ॥ ५२ ॥
भस्मकमनेन जनितं पूर्वमगस्त्यस्य योगराजेन ।
भीमस्य मारुतेरपि येन तौ महाशनौ जातौ ॥५३॥
अग्निबलबुद्धिहेतुर्न केवलं शूरणो महावीर्यः ।
प्रभवति शस्त्रक्षाराग्निभिर्विनाप्यर्शसामेषः ॥ ५४ ॥
श्वयथुश्लीपदजिद्ग्रहणीमपि कफवातसम्भूताम् ।
नाशयति वलीपलितं मेधां कुरुते वृषत्वञ्च ॥ ५५ ॥
हिक्काश्वासं कासं सराजयक्ष्मप्रमेहांश्च ।
प्लीहानञ्चाथोग्रं हन्ति च रसायनं पुंसाम् ॥ ५६ ॥

जिमीकन्दका चूर्ण १६ तोले, चीतेकी जडका चूर्ण ८ तोले, सोंठका चूर्ण ४ तोले, मिरचोंका चूर्ण २ तोले एवं हरड, आमला, बहेडा, पीपल, पीपलामूल, तालीसपत्र, शुद्ध भिलावे और वायविडंग इन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले, मुशलीका चूर्ण ८ तोले, विधारेका चूर्ण १६ तोले, दालचीनी और छोटी इलायची प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले, सबको एकत्र खूब बारीक पीसकर दुगुने पुरानेगुड मिलाकर तैयार करलेवे। ये मोदक काम और धनकी इच्छा करने-

वाले पुरुषोंके सेवन करने चाहिये। किन्तु जो मनुष्य इन मोदकको सेवन करके इनपर भारी और वृष्यपदार्थ नहीं खाते हैं, उनके ये मोदक अनेक प्रकारके उपद्रवोंको उत्पन्न करदेते हैं। इसी योगराजके प्रभावसे पूर्वकालमें अगस्त्यऋषिके और भीमसेनके भस्माग्नि उत्पन्न होगयी थी, जिससे वे दोनों अधिक भोजन करतेथे। इसमें अग्निके बलको बढानेवाला अत्युग्र वीर्यवान् केवल एक जिमीकन्दही है। यह प्रयोग शस्त्र, क्षार और अग्निक्रियाके बिनाही अर्शरोगको दूर करताहै। एवं सूजन, श्लीपद, कफ-वातजन्य-ग्रहणी, वली-पलितरोग, हिचकी, श्वास, खांसी राजयक्ष्मा, प्रमेह और अत्युग्र प्लीहा इन सब व्याधियोंको शीघ्र नष्ट करता है। तथा बुद्धिको तीव्र करता है मनुष्योंके लिये वृष्य और उत्तम रसायन है॥ ४६-५६॥

काङ्कायणमोदक।

पथ्यापञ्चपलानेकमजाज्या मरिचस्य च।
पिप्पलीपिप्पलीमूल-चव्यचित्रकनागराः॥ ५७॥
पलाभिवृद्धाः क्रमशो यवक्षारपलद्वयम्।
भल्लातकपलान्यष्टौ कन्दस्तु द्विगुणो मतः॥ ५८॥
द्विगुणेन गुडेनैषां वटकानक्षसम्मितान्।
कृत्वैनं भक्षयेत् प्रातस्तक्रमम्भोऽनु वा पिबेत्॥ ५९॥
मन्दाग्निं दीपयत्येष ग्रहणीपाण्डुरोगनुत।
काङ्कायणेन शिष्येभ्यः शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना॥
भिषग्जितमिति प्रोक्तं श्रेष्ठमर्शोविकारिणाम्॥ ६०॥

हरड २० तोले, जीरा, कालीमिरच और पीपल ये प्रत्येक एक एक पल, एवं पीपलामूल २ पल, चव्य ३ पल, चीतेकी जड ४ पल, सोंठ ५ पल, जवाखार २ पल, शुद्ध भिलावे आठ पल, जिमीकन्द १६ पल और सब औषधियोंसे दुगुना पुराना गुड लेवे सबको एकत्र कूटपीसकर एक तोलेके बडे बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक बडा खाय और ऊपरसे मट्ठा अथवा शीतल जल पान करे तो यह बडे मन्दाग्निको दीपन करते हैं। एवं ग्रहणी पाण्डुरोग आदि विविध रोगोंको नष्ट करते हैं। क्षार और अग्निक्रियाके बिनाही इस कांकायण मोदकके द्वारा अर्शरोगको जीते। यह मोदक कांकायण ऋषिने अपने शिष्योंसे वर्णन किये हैं। अर्शरोगियोंको लिये विशेषहितकारी है॥

माणिभद्रमोदक।

विडङ्गसारामलकाभयानां पलंपलं स्यात्त्रिवृतात्त्रयञ्च।
गुडस्य षड्द्वादशभागयुक्तामासेनत्रिंशद्गुटिकाविधेया ६१
निवारणे यक्षवरेण सृष्टः स माणिभद्रः किल शाक्यभिक्षवे।
अयं हि कासक्षयकुष्ठनाशनो भगन्दरप्लीहजलोदरार्शसाम्॥
यथेष्टचेष्टान्नविहारसेवी ह्यनेन वृद्धस्तरुणो भवेच्च॥ ६२॥

वायविडंगसार आमले और हरड प्रत्येक चार २ तोले एवं निसोत १२ तोले और पुराना गुड २४ तोले सबको विधिपूर्वक मिलाकर ३० गोलियाँ बनालेवे फिर एक मासपर्यन्त प्रतिदिन छः २ माशेकी एक २ गोली सेवन करे इस मोदकोंको माणिभद्रनामवाले यक्षने शाक्यमुनिके अर्शको निवारण-करनेके लिये बनाया था। यह मोदक खाँसी, श्वास, क्षय, कुष्ठ, भगन्दर, जलोदर, बवासीर प्रभृति नानाप्रकारके रोगोंको नष्ट करते हैं। इसका सेवन करते समय यथेच्छ आहार विहार करना चाहिये इस औषधिको सेवनकरनेसे वृद्धपुरुषभी तरुण होजाता है॥ ६१॥ ६२॥

प्राणदा गुटिका।

त्रिपलं शृङ्गवेरस्य चतुर्थं मरिचस्य च।
पिप्पल्याः कुडवार्द्धञ्च चव्यञ्च पलमेव च॥ ६३॥
तालीशपत्रस्य पलं पलार्द्धं केशरस्य च।
द्वे पले पिप्पलीमूलादर्द्धकर्षञ्च पत्रकात॥ ६४॥
सूक्ष्मैला कर्षमेकञ्च कर्षं च त्वङ्मृणालयोः।
गुडात् पलानि त्रिंशच्च चूर्णमेकत्र कारयेत्॥ ६५॥
अक्षप्रमाणा गुटिका प्राणदेति प्रकीर्त्तिता।
पूर्वं भक्ष्या च पश्चाच्च भोजनस्य यथाबलम्॥ ६६॥
मद्यं मांसरसं यूषं क्षीरं तोयं पिबेदनु।
हन्यादर्शांसि सर्वाणि सहजान्यस्रजान्यपि॥ ६७॥
वातपित्तकफोत्थानि सन्निपातोद्भवानि च।
पानात्यये मूत्रकृच्छ्रे वातरोगे गलग्रहे॥ ६८॥
विषमज्वरे च मन्देऽग्नौ पाण्डुरोगे तथैव च।

कृमिहृद्रोगिणाञ्चैव गुल्मशूलार्त्तिनां तथा ॥ ६९ ॥
श्वासकासपरीतानामेषा स्यादमृतोपमा ।
शुण्ठ्याः स्थानेऽभया देया विड्ग्रहे पित्तपायुजे ॥७०
प्राणदायाः सिता देया चूर्णमानाच्चतुर्गुणाः ।
अम्लपित्ताग्निमान्द्यादौ प्रयोज्यं गुदजातुरे ॥ ७१ ॥
अनुपानं प्रयोक्तव्यं व्याधौ श्लेष्मभवे पलम् ।
पलद्वयन्त्वनिलजे पित्तजे तु पलत्रयम् ॥ ७२ ॥
पक्त्वैनं गुडिकाः कार्या गुडेन सितयाऽथवा ।
परं हि वह्निसंसर्गाल्लघिमानं भजन्ति ताः ॥ ७३ ॥

सोंठ १२ तोले, काली मिरच १६ तोले, पीपल ८ तोले, चव्य ४ तोले, तालीसपत्र ४ तोले, नागकेशर २ तोले, पीपलामूल ८ तोले, तेजपात ८ मासे, छोटी इलायची १६ माशे, दालचीनी १६ माशे खस १६ माशे और पुराना गुड डेढसेर सबको एकत्र कूट पीसकर और गुडमें मिलाकर एक एक तोलेकी गोलियाँ बनालेवे इसको प्राणदा गुटिका कहते हैं । इस बटीको जठराग्निका बलाबल विचारकर भोजनके पहले या पीछे सेवनकरे और मदिरा, मांसरस, यूष, दूध और जल इनका अनुपानकरे । यह गुटिका सहज बबासीर, रक्तकी बबासीर आदि सर्वप्रकारकी बवासीर, एवं वात-पित्त-कफसे उत्पन्नहुए रोग तथा सन्निपातजन्यरोग एवं अन्यान्य सर्व प्रकारके विकारोंमें अमृतकी समान हितकारी है इस बटीको मलविबन्धमें सोंठकी जगह हरड डालकर देवे । और पित्तकी बवासीरमें गुडकी जगह सब औषधियोंके चूर्णसे चौगुनी मिश्री डालकर देवे। इस प्राणदा गुटिकाको अम्लपित्त मन्दाग्नि और बवासीरमें प्रयोग करे इस पर कफके रोगोंमें, चार तोले, वातरोगोंमें ८ तोले और पित्तके रोगोंमें १२ तोले अनुपानके द्रव्योंका सेवनकरे । यह प्राणदा गुटिका गुडके साथ अथवा मिश्रीके साथ पकाकरभी सिद्ध की जासकतीहै । इस प्रकार सिद्ध की हुई वे गोलियाँ अग्निके संसर्गसे अत्यन्त हल्की होजाती हैं ॥ ६३-७३ ॥

नागार्जुनयोग ।

त्रिफला पञ्चलवणं कुष्ठं कटुकरोहिणी ।
देवदारुविडङ्गानि पिचुमर्दफलानि च ॥ ७४ ॥
बला चातिबला चैव हरिद्रे द्वे सुवर्च्चला ।

एतत् सम्भूतसम्भावं करञ्जत्वग्रसेन च ॥ ७५ ॥
पिष्ट्वा च गुडिकां कृत्वा बदरास्थिसमां बुधः ।
एकैकां तां समुद्धृत्य रोगे रोगे पृथक् पृथक् ॥ ७६ ॥
उष्णेन वारिणा पीता शान्तमग्निं प्रदीपयेत् ।
अर्शांसि हन्ति तक्रेण गुल्ममम्लेन निर्हरेत् ॥ ७७ ॥
जन्तुदष्टन्तु तोयेन त्वग्दोषं खदिराम्बुना ।
मूत्रकृच्छ्रन्तु तोयेन हृद्रोगे तैलसंयुता ॥ ७८ ॥
इन्द्रस्वरससंयुक्ता सर्वज्वरविनाशिनी ।
मातुलुङ्गरसेनाथ सद्यः शूलहरी स्मृता ॥
कपित्थातिन्दुकानान्तु रसेन सह मिश्रिता ।
विषाणि हन्ति सर्वाणि पानाशनप्रयोगतः ॥ ७९ ॥
गोशकृद्रससंयुक्ता हन्यात् कुष्ठानि सर्वशः ।
श्यामाकषायसहिता जलोदरविनाशिनी ॥ ८० ॥
भक्तच्छन्दं जनयति भुक्तस्योपरि भक्षिता ।
अक्षिरोगेषु सर्वेषु मधुना घृष्य चाञ्जयेत् ॥ ८१ ॥
लेहमात्रेण नारीणां सद्यः प्रदरनाशिनी ।
व्यवहारे तथा द्यूते संग्रामे मृगयादिषु ॥
समालभ्य नरो ह्येनां क्षिप्रं विजयमाप्नुयात् ॥ ८२ ॥

हरड, आमला, बहेडा, सैंधानमक विरियासंचरनमक, समुद्रनमक, सांभर, कालानमक, कूठ,कुटकी, देवदारु, वायविडङ्ग नीमके फल(निबौली), खिरैंटी हल्दी, दारुहल्दी और हुलहुल इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर उस चूर्णको करंजकी छालके काथमें खरल करके बेरकी गुठलीकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंमेंसे एक एक गोली पृथक् २ रोगोंमें अलग २ अनुपानोंके साथ सेवन करनी चाहिये। यह वटी गरम जलके साथ सेवन करनेसे मन्दाग्निको दीपन करती है । एवं मट्ठेके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारकी बवासीर, और काँजीके साथ सेवन करनेसे गुल्मरोग, शीतल जलके साथ खानेसे विषैले जीवोंका काटा हुआ विष, खैरके काढेके साथ खानेसे त्वचाके रोग, जलके साथ सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र,तिलके तेकले

साथ सेवन करनेसे हृदयरोग, वर्षाके जलके साथ प्रयोग करनेसे सर्वप्रकारके ज्वर, बिजौरे नींबूके रसके साथ देनेसे समस्त शूलरोग एवं कैथ और तेन्दूके रसके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके विषोंको तत्काल नष्ट करती है । एवं गोबरके रसके साथ सेवन करनेसे सर्वप्रकारके कुष्ठरोग और निसोतके काथके साथ सेवन करनेसे जलोदररोगको दूर करती है । भोजनके पश्चात् इसको भक्षण करनेसे अरुचि दूर होकर रुचि उत्पन्न होती है । सर्वप्रकारके नेत्ररोगोंमें शहदके साथ घिसकर आँखोंमें आँजनेसे शीघ्र लाभ होता है । यह वटी शहदमें मिलाकर चाटनेसे स्त्रियोंके प्रदररोगको तत्काल नष्ट करताहै । जो पुरुष न्यायालय, जूआ संग्राम और शिकार खेलनेके समय इस वटीको लेकर जाता है, वह शीघ्रही विजय पाता है ॥ ७४-८२ ॥

कुटजलेह ।

कुटजत्वक्पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
अष्टभागावशिष्टन्तु कषायमवतारयेत् ॥ ८३ ॥
वस्त्रपूतं पुनः क्काथं पचेल्लेहत्वमागतम् ।
भल्लातकं विडङ्गानि त्रिकटुत्रिफला तथा ॥ ८४ ॥
रसाञ्जनं चित्रकञ्च कुटजस्य फलानि च ।
वचामतिविषां बिल्वं प्रत्येकञ्च पलं पलम् ॥ ८५ ॥
गुडात् पलानि त्रिंशच्च चूर्णीकृत्य विनिःक्षिपेत् ।
मधुनः कुडवं दद्याद् घृतस्य कुडवं तथा ॥ ८६ ॥
एष लेहः शमयति चार्शोरक्तसमुद्भवम् ।
वातिकं पैत्तिकञ्चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥८७॥
ये च दुर्नामजा रोगास्तान् सर्वान्नाशयत्यपि ।
अम्लपित्तमतीसारं पाण्डुरोगमरोचकम् ॥ ८८ ॥
ग्रहणीमार्दवं कार्श्यं श्वयथुं कामलामपि ।
अनुपानं घृतं दद्यान्मधु तक्रं जलं पयः ॥
रोगानीकविनाशाय कौटजो लेह उत्तमः ॥ ८९ ॥

कुडेकी जडकी छालको सौ पल लेकर एक द्रोणजलमें पकावे । जब पककर आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छान लेवे । फिर उस काथको दुबारा पकावे । जब पकते २ लेहकी समान गाढा होजाय

तब नीचे उतारकर उसमें शुद्ध भिलाव, वायविडङ्ग, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, रसौत, चीतेकी जड, इन्द्रजौ, बच, अतीस, बेलगिरी इन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले एवं गुड ३० पल, शहद १६ तोले और घी १६ तोले डालकर सबको एकमएक कर देवे। यह लेह रुधिरकी बवासीर एवं वात पित्त और कफ इन प्रत्येकसे उत्पन्न हुई अथवा त्रिदोषोत्पन्न बवासीर तथा अन्यान्य सर्वप्रकारकी जो दुस्तर व्याधियाँ उन सबको तथा अम्लपित्त, अतिसार, पाण्डुरोग, अरुचि, ग्रहणीकी मृदुता, कृशता, सूजन और कामलारोगको तत्काल नष्ट करता है इसपर घृत, शहद, मट्ठा, जल और दूध इन पदार्थोंका अनुपान करना चाहिये । यह कुटज अवलेह रोगसमूहको नष्ट करनेके लिये सर्वश्रेष्ठ है ॥ ८३-८९ ॥

कुटजरसक्रिया ।

कुटजत्वचो विपाच्यं शतपलमार्द्रं महेन्द्रसलिलेन ।
यावत सान्द्ररसं तद्द्रव्यं स्वरसस्ततो ग्राह्यः ॥ ९० ॥
मोचरसः ससमङ्गा फलिनी च पलांशिभिस्त्रिभिस्तैश्च ।
वत्सकबीजं तुल्यं चूर्णीकृतमत्र दातव्यम् ॥ ९१ ॥
पूतोत्क्वथितः सान्द्रः सरसो दर्वीप्रलेपनो ग्राह्यः ।
मात्रा कालोपहिता रसक्रियैषा जयत्यसृक्स्रावम्॥९२॥
छगलीपयसा युक्ता पेया मण्डेन वा यथाग्निबलम् ।
जीर्णौषधश्च शालीन् पयसा च्छागेन भुञ्जीत ॥ ९३ ॥
रक्तार्शांस्यतिसारं शूलं सासृग्रुजो निहन्त्याशु ।
बलवच्च रक्तपित्तं रसक्रियैषा ह्युभयभागम् ॥ ९४ ॥

गीली कुडेकी छालको सौ पल लेकर वर्षाके एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते २ जल गाढा होजाय तब उसको नीचे उतार छानकर सकुस रस निकाले फिर उस रसमें मोचरस, लज्जावन्ती और फूलप्रियंगु इन प्रत्येकका चूर्ण ४-४ तोले और इन्द्रजौका चूर्ण १२ तोले मिलाकर पकावे। जल पकते २ गाढा होजाय और करछीसे लगने लगे तब उसके नीचे उतार लेवे । फिर इस रसक्रियामात्राको समयानुसार निर्द्धारितकर और अपनी अग्निके बलाबल विचार कर बकरीके दूध अथवा मांडके साथ सेवन करे तो यह कुटज रसक्रिया तत्काल रक्तस्रावको बन्द करती है । इस औषधिके जीर्ण होजानेपर बकरीके

दूधके साथ शालिधानोंके चावलोंका भात खावे यह औषधि रक्तज बवासीर रक्तका अतिसार, शूल सर्वप्रकारके रुधिरके विकार और ऊर्ध्व व अधः इन दोनों मार्गोंसे बहनेवाले बलवान् रक्त पित्तको शीघ्र नष्ट करती है ॥९०-९४॥

दशमूल-गुड।

दशमूलाग्निदन्तीनां प्रेत्यकं पलपञ्चकम्।
जलद्रोणेन संक्वाथ्य पादशेषे समुद्धरेत् ॥ ९५ ॥
गुडं पलशतञ्चैव सिद्धे शीते विमिश्रयेत्।
त्रिवृतायाा रजः प्रस्थस्तदर्द्धं पिप्पलीरजः ॥ ९६ ॥
घृतभाण्डे स्थितं खादेत् कर्षमात्रं दिनेदिने।
दशमूलगुडः ख्यातः शमयेद्रोग आर्शसम् ॥
अजीर्णं पाण्डुरोगञ्च सर्वरोगहरं परम् ॥ ९७ ॥

दशमूलकी सब औषधियाँ चीतेकी जड और दन्तीकी जड प्रत्येक औषध २०-२० तोले लेकर एक द्रोणजलमें पकावे जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे फिर उसमें १०० पल गुड डालकर दूसरी बार पकावे उत्तम प्रकारसे पाक होजानेपर नीचे उतारलेवे शीतल होनेपर उसमें निसोतका चूर्ण १ प्रस्थ और पीपलका चूर्ण आधा प्रस्थ मिलाकर घीके चिकने बासनमें भरकर रखदेवे इसमेंसे प्रतिदिन एक एक कर्ष प्रमाण सेवन करे तो यह दशमूलनामवाला गुड सर्व प्रकारकी बवासीर, अजीर्ण, पाण्डुरोग एवं अन्यान्य सम्पूर्ण रोगोंको दूर करता है ॥ ९५-९७ ॥

बाहुशाल गुड।

त्रिवृत्तेजोवती दन्ती श्वदंष्ट्रा चित्रकं शठी।
गवाक्षी मुस्तबिल्वाह्वविडङ्गानि हरीतकी ॥ ९८ ॥
पलोन्मितानि चैतानि पलान्यष्टावरुष्करात्।
षट्पलं वृद्धदारस्य शूरणस्य तु षोडश ॥ ९९ ॥
जलद्रोणद्वये क्वाथं चतुर्भागावशेषितम्।
पूतन्तु तं रसं भूयः क्वाथेभ्यस्त्रिगुणो गुडः ॥ १०० ॥
लेहं पचेत्तु तं तावत् यावद्दर्वीप्रलेपनम्।
अवतार्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ १ ॥

त्रिवृत्तेजोवतीकन्दचित्रकान् द्विपलांशिकान्।
एलात्वङ्मरिचञ्चापि गजाह्वाञ्चापि षट्पलाम् ॥ २ ॥
द्वात्रिंशत्पलमेवात्र चूर्णं दत्त्वा निधापयेत्।
ततो मात्रां प्रयुञ्जीत जीर्णे क्षीररसाशनः ॥ ३ ॥
पञ्चगुल्मान् प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं हलीमकम्।
जयेदर्शांसि सर्वाणि तथा सर्वोदराणि च ॥ ४ ॥
दीपयेद् ग्रहणीं मन्दां यक्ष्माणञ्चापकर्षति।
पीनसे च प्रतिश्याये आढ्यवाते तथैव च ॥ ५ ॥
अयं सर्वगदेष्वेव कल्याणो लेह उत्तमः।
दुर्नामारिरयञ्चाशु दृष्टो वारसहस्रशः ॥ ६ ॥
भवन्त्येनं प्रयुञ्जानाः शतवर्षं निरामयाः।
आयुषो दैर्घ्यजननो वलीपलितनाशनः ॥ ७ ॥
रसायनवरश्चैव मेधाजनन उत्तमः।
गुडः श्रीबाहुशालोऽयं दुर्नामारिः प्रकीर्त्तितः ॥ ८ ॥
"तोयपूर्णे यदापात्रे क्षिप्तो न प्लवते गुडः।
क्षिप्तश्च निश्चलस्तिष्ठेत् पतितस्तु न शीर्यते ॥ ९ ॥
यदा दर्वीप्रलेपः स्याद्यावद्धा तन्तुली भवेत्।
एष पाको गुडादीनां सर्वेषां परिकीर्त्तितः ॥ ११० ॥
सुखमर्द्दः खरस्पर्शो गन्धवर्णरसान्वितः।
पीडितो भजते मुद्रां गुडः पाकमुपागतः" ॥ ११ ॥

निसोत, चव्य, दन्ती, गोखरू, चीतेकी जड, कचूर, इन्द्रायन, नागरमोथा, बेलगिरी, वायविडङ्ग और हरड येप्रत्येक ४ तोले, भिलावे ३२ तोले, विधारेकी जड २४ तोले और जिमीकन्द ६४ तोले लेवे इन सबको एकत्रकर दो-द्रोण ५१२ पल परिमाण जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतार कर छान लेवे। फिर इस काथमें काथसे तिगुना पुराना गुड मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब पकते पकते करछीसे समस्त लेह चिपकने लगे तब नीचे उतारकर उसमें निसोत, चव्य, जिमीकन्द और चीतेकी जड इन प्रत्येकका चूर्ण ८८ तोले एवं छोटी इलायची, दालचीनी,

कालीमिरच और गजपीपल प्रत्येकका चूर्ण २४-२४तोले लेकर मिलादेवे (उक्त औषधियोंकी मात्रा निश्चितकर दीगई है तथापि " द्वात्रिंशतपलम् " यह पद जो कहा गया है वह कहीं कहीं व्यवधान रहित निर्देश करनेपर भी प्रत्येक औषध समभाग नहीं है यह बतलानेके लिये है ।) फिर अपनी शक्तिके अनुसार मात्रा निर्द्धारित करके सेवनकरे औषधके जीर्ण होनेपर दूध और मांसरस भक्षण करे । यह गुड पाँचों प्रकारके गुल्म, प्रमेह, पाण्डुरोग, हलीमक सर्वप्रकारके अतिसार, सम्पूर्ण उदररोग, संग्रहणी, मन्दाग्नि, राजयक्ष्मा, पीनस, प्रतिश्याय, आढ्यवात और अन्यान्य सर्वप्रकारके विकारोंमें हितकरनेवाला है और यह बवासीरको तत्काल नष्ट करताहै । यह हजारोंवार परीक्षा करके देखा है। इसको सेवन करनेवाले मनुष्य आरोग्य होकर सौ वर्षतक जीते हैं यह आयुको बढानेवाला, बली—पलितरोगनाशक, श्रेष्ठरसायन और उत्तम मेधाजनक औषध है। यह श्री बाहुशालगुड बवासीरका शत्रु कहागया है। " जब जलसे भरेहुए पात्रमें गुड डालनेपर तैरता न रहे अथवा जलमें नीचे न बैठे और फैले भी नहीं वा करछीसे चिपकने लगे किम्वा अँगुलीपर लेकर बटनेसे तारसे छूटनेलगे और जिस समय गुडको सहज २ मर्दन अथवा स्पर्श करे एवं अँगुलीसे मसले उस समय यदि गुडके ऊपर अंगुलीके निशान पडजायँ और गुडमें उपयुक्त गन्ध, वर्ण एवं रस हो तब गुडपाक हुआ जानना चाहिये यह समस्त गुडपाकोंकी विधि कहीगई है " ॥ ९८-१११ ॥

गुडभल्लातक ।

भल्लातकसहस्रे द्वे जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादशेषे रसे तास्मिन् पचेद्गुडतुलां भिषक् ॥ १२ ॥
भल्लातकसहस्रार्द्धं छित्वा तत्र प्रदापयेत ।
सिद्धेऽस्मिंस्त्रिफलाव्योषयमानीमुस्तसैन्धवम् ॥ १३ ॥
कर्षांशसम्मितं दद्यात् त्वगेलापत्रकेशरम् ।
खादेदग्निबलापेक्षी प्रातरुत्थाय मानवः ॥ १४ ॥
कुष्ठार्शःकामलामेहग्रहणीगुल्मपाण्डुताः ।
हन्यात् प्लीहोदरं कासकृमिरोगभगन्दरान् ।
गुडभल्लातको ह्येष श्रेष्ठश्चार्शोविकारिकाम् ॥ १५ ॥

शुद्धकिये हुए २००० भिलावोंको लेकर १ द्रोण जलमें पकावे जब पकतेर चतुर्थांश जल शेष रहजाय तब उतार कर छानलेवे फिर उस रसमें गुड१०० पल और टुकडे किये हुए ५०० भिलावे डालकर पकावे जब पाक अच्छे प्रकारसे सिद्ध होजाय तब त्रिफला, त्रिकुटा अजवायन, नागरमोथा, सेंधानमक, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेसर ये प्रत्येक औषधि एक२कर्ष प्रमाण बारीक पीसकर मिलादेवे। इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल अपनी अग्निके बलानुसार सेवन करे इससे कुष्ठ, अर्श, कामला,प्रमेह, ग्रहणी, गुल्म, पाण्डुता, खाँसी, कृमिरोग, भगन्दर,प्लीहा और उदरविकार ये सब रोग नष्ट होते हैं। यह गुडभल्लातक बवासीरके रोगियोंकी एकमात्र उत्तम औषधि है१५

अन्य-गुडभल्लातक।

दशमूलामृता भार्गी श्वदंष्ट्रा चित्रकं शठी।
भल्लातकसहस्रञ्च पलांशं क्वाथयेद् बुधः॥ १६॥
पादशेषे जलद्रोणे रसे तस्मिन् विपाचयेत्।
दत्त्वा गुडतुलामेकां लेहीभूतं समुद्धरेत्॥ १७॥
माक्षिकं पिप्पलीं तैलमौरुबूकञ्च दापयेत्।
कुडवं कुडवञ्चात्र त्वगेला मरिचस्तथा॥ १८॥
अर्शःकासमुदावर्त्तं पाण्डुत्वं शोथमेव च।
नाशयेद्वह्निसादञ्च गुडभल्लातकः स्मृतः॥ १९॥

दशमूल, गिलोय, भारंगी, गोखुरू, चीतेकी जड और कचूर प्रत्येक चार २ तोले एवं शुद्ध भिलावे एक हजार लेवे सबको एकत्र मिलाकर एक द्रोण जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे फिर इस काथमें अण्डीका तेल एक कुडव और पुराना गुड सौपल डालकर फिर पाककरे जब पककर लेहकी समान होजाय तब नीचे उतारकर उसमें पीपल,दालचीनी, छोटी इलायची और काली मिरच ये चारों एक कुडव और शीतल होनेपर शहद एक कुडव परिमाण मिलादेवे यह गुडभल्लातक अर्शरोग,खाँसी, उदावर्त्त, पाण्डु शोथ और मन्दाग्नि इन सब विकारोंको नष्ट करता है१६-१९

माणशूरणादि-लोह।

माणशूरणभल्लातत्रिवृद्दन्तीसमन्वितम्।
त्रिकत्रयसमायुक्तमयो दुर्नामनाशनम्॥ १२०॥

मानकन्द, जिमीकन्द, भिलावे, निसोत, दन्तीकी जड, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, चीतेकी जड, नागरमोथा और वायविडंग, इन प्रत्येकका चूर्ण समान भाग और सब चूर्णकी बराबर लोहभस्म लेवे सबको एकत्र खरल करके एक माशेकी मात्रासे सेवन करनेसे अर्शरोग नष्ट होता है ॥ १२० ॥

अग्निमुखलोह।

त्रिवृच्चित्रकानिर्गुण्डीस्नुहीमुण्डीतिकाज्झटाः।
प्रत्येकशोऽष्टपलिका जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २१ ॥
पलत्रयं विडङ्गाच्च व्योषात् कर्षत्रयं पृथक्।
त्रिफलायाः पञ्चपलं शिलाजतुपलं न्यसेत् ॥ २२ ॥
दिव्यौषधिहतस्यापि वैकङ्कतहतस्य वा।
पलद्वादशकं देयं रुक्मलौहस्य चूर्णनम् ॥ २३ ॥
पलैश्चतुर्विंशत्याज्यान्मधुशर्करयोरपि।
घनीभूते सुशीते च दापयेदवतारिते ॥ २४ ॥
एतदग्निमुखं नाम दुर्नामान्तकरं परम्।
मन्दमग्निं करोत्याशु कालाग्निसमतेजसम् ॥ २५ ॥
पर्वता अपि जीर्यन्ति प्राशनादस्य देहिनः।
गुरुवृष्यान्नपानानि पयो मांसरसो हितः ॥ २६ ॥
दुर्नामपाण्डुश्वयथुकुष्ठप्लीहोदरापहम्।
अकालपलितं हन्यादामवातं गुदामयम् ॥ २७ ॥
न स रोगोऽस्ति यश्चापि स निहन्यादिदं क्षणात्।
करीरकाञ्जिकादीनि ककारादीनि वर्ज्जयेत् ॥
स्रवत्यतोऽन्यथा लोहं देहात् किट्टश्च दुर्ज्जयम् ॥२८॥

निसोत, चीता, सिह्मालू, थूहर, मुण्डी और भुईआमला ये प्रत्येक बत्तीस तोले लेकर एकद्रोण जलमें पकावे। जब चतुर्थांश जल शेष रहजाय तब उतार-कर छानलेवे फिर वायविडङ्ग १२ तोले, सोंठ, पीपल और कालीमिरच प्रत्येक चारचार तोले, हरड, आमला और बहेडा प्रत्येक समानभाग मिश्रित २० तोले, शोधित शिलाजित ४ तोले, मैनशिल अथवा कंटाईके रसद्वारा भस्म कियेहुए

रुक्मलोहका चूर्ण १२ पल, एवं गौका घी, शहद और मिश्री प्रत्येक २४-२४ पल लेवे. पाकके नियमानुसार, प्रथम घीको चूल्हेपर चढाकर गरम करे फिर उसमें लोहचूर्ण डालकर मन्दमन्द अग्निसे भूने जब अच्छे प्रकारसे भुनजाय तब उस चूर्णको निकाल कर खांडकी चासनी कर उसमें उक्त काथको डालकर धीरे २ पकावे जब पककर पाक गाढा हो जाय तब शीतल होजानेपर उसमें उक्त औषधियोंके चूर्णको मिलादेवे । यह अग्निमुखनामक लोह बवासीरको नष्ट करनेवाला और मन्दाग्निको दीपन करनेवाला है । इसके खानेसे मनुष्यको पत्थर तक हजम हो सकतेहैं इसपर भारी और पुष्टिकारक अन्न पान, दूध और मांसरस ये पदार्थ हितकारी हैं यह बवासीर, पाण्डुरोग, सूजन, कुष्ठ, प्लीहा, उदररोग, असमयमें बालोंका पकना आमवात और गुदाके रोग इन सब रोगोंको एवं अन्यान्य और कोईभी ऐसा रोग नहीं है जिसको यह तत्क्षण ही नष्ट न करता हो इसपर करीर, कांजी ककडी आदि समस्त ककाराद्यपदार्थ सर्वथा त्यागदेने चाहिये इस प्रकार न करनेसे शरीरसे लोहेका दुर्जय मैल टपकने लगता है ॥ २१-२८ ॥

चन्द्रप्रभागुटिका ।

कृमिरिपुदहनव्योष-त्रिफलासुरदारुचव्यभूनिम्बम् ।
मागधिमूलं मुस्तं सशठी वचा धातुमाक्षिकश्चैव ॥
लवणक्षारनिशायुगकुस्तुम्बुरुगजकणातिविषाः ॥ २९ ॥
कर्षांशकान्येव समानि कुर्यात्पलाष्टकञ्चाश्मजतोर्विदध्यात् ।
निष्पन्नशुद्धस्य पुरस्य धीमान् पलद्वयं लोहरजस्तथैव ॥
सिताचतुष्कं पलमत्रवांश्या निकुम्भकुम्भीत्रिसुगन्धियुक्तम् ।
चन्द्रप्रभेयं गुटिका विधेया ह्यर्शांसि निर्नाशयते षडेव ॥
भगन्दरं कामलपाण्डुरोगं विनष्टवह्नेः कुरुते च दीप्तिम् ।
हन्त्यामयान् पित्तकफानिलोत्थान्नाडीगते मर्मगते व्रणे च ॥
ग्रन्थ्यर्बुदे विद्रधिराजयक्ष्ममेहे भगाख्ये प्रदरे च योज्या ।
शुक्रक्षये चाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे मूत्रप्रवाहे ऽप्युदरामये च ॥ ३३ ॥
तक्रानुपानस्त्वथ मस्तुपानमाजो रसो जाङ्गलजो रसो वा ।
पयोऽथवा शीतजलानुपानं बलेन नागस्तुरगो जवेन ॥ ३४
दृष्ट्या सुपर्णःश्रवणे वराहःकान्त्या रतीशो धिषणश्च बुद्ध्या ।

न पानभोज्ये परिहार्यमस्ति न शीतवातातपमैथुनेषु ॥ ३५॥
शम्भुं समभ्यर्च्य कृतप्रणामं प्राप्ता गुडी चन्द्रमसः प्रसादात्

संमर्द्यं मधुसर्पिर्भ्यामादौ रक्तिचतुष्टयम् ॥ ३६ ॥
भक्ष्यं वृद्ध्या यथायुक्ति यावन्माषचतुष्टयम् ।
त्रिवृद्दन्तीत्रिजातानां कर्षमाणं पृथक् पृथक् ॥ ३७ ॥
शुक्रदोषान् निहन्त्याशु प्रमेहानपि दारुणान् ।
वलीपलितनिर्मुक्तो वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ३८ ॥
"वृद्धवैद्योपदेशेन पलार्द्धं रसगन्धकम् ॥ ३९ ॥
केवलं मूर्च्छितं वापि पलं वा दापयेद्रसम् ॥ ४० ॥
अभ्रकञ्च क्षिपेत् कश्चित् पलमानं भिषग्वरः ॥ ४१ ॥

वायविडंग, चीतेकी जड, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, देवदारु, चव्य, चिरायता, पीपलामूल, नागरमोथा, कचूर, वच, सोनामाखी, सेंधानमक, कालानमक, जवाखार, सज्जी,हल्दी, दारुहल्दी,धनियाँ, गजपीपल और अतीस ये प्रत्येक एक एक कर्ष और शिलाजीत ३२ तोले, शोधित गूगल ८ तोले, लोहभस्म ८ तोले, मिश्री १६ तोले, वंशलोचन ४ तोले, दन्तीकी जड ४ तोले, निसोत ४ तोले, एवं दालचीनी, तेजपात और इलायची ये तीनों मिश्रित ४ तोले लेवे । सबको यथाविधिसे एकत्र मिलाकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह चन्द्रप्रभानामवाली गुटिका छहों प्रकारके अर्शरोग, भगन्दर, कामला और पाण्डुरोग इनको जड सहित नष्ट करदेती है और नष्ट हुई जठराग्निको फिरसे दीपन करती है इसको पित्त, कफ और वायुसे उत्पन्न हुए विकार, नाडीगतरोग, मर्मस्थानसम्बन्धी विकार, व्रण, ग्रन्थि, अर्बुद, विद्रधि, राजयक्ष्मा, प्रमेह, भगरोग, प्रदर, शुक्रक्षय, पथरी, मूत्रकृच्छ, मूत्रप्रवाह और उदररोग इन सबमें सेवन कराना चाहिये इसपर मट्ठा, दहीका तोड, बकरेके मांसका रस, जंगली जीवोंका मांसरस, दूध अथवा शीतल जल इनमेंसे किसीएक वस्तुका अनुपान करना चाहिये इस वटीके सेवनकरनेवाला बलमें हाथीकी समान, वेगमें घोडेकी समान, दृष्टिमें गरुडकी समान, सुननेमें बराहकी समान, कान्तिमें कामदेवकी समान और बुद्धिमें बृहस्पतिकी समान होजाता है इसपर खान पानके शीत, वायु, धूप और मैथुन आदिका कुछभी परहेज नहीं है । यह वटी शिवजी महाराजका पूजनकरके और उनको

प्रणाम करके चन्द्रदेवकी कृपासे प्राप्तकी है। अतः प्रतिदिन शिवजीकी अर्चना और वन्दनाकरके पहले इसवटीको चार रत्ती प्रमाण लेकर शहद और घीमें अच्छे प्रकारसे खरल करके सेवनकरे फिर यथाक्रमसे बढाते २ चार माशे-तक इसकी मात्राको बढावे औषधसेवनके पश्चात् यदि निसोत दन्ती दार-चीनी तेजपात और इलायची इनके एक एक कर्षप्रमाण चूर्णको भक्षणकरे तो यह सम्पूर्ण शुक्रगत दोष और दारुण प्रमेहोंको तत्काल दूर करती है। वली (शरीरमें बल पडना) और पलित (असमय बालोंका पकना)में विकारोंसे रहित होकर वृद्धपुरुषभी तरुण होजाता है । "वृद्धवैद्योंके उपदेशसे कोई२ वैद्य इसमें दो तोले शुद्धपारा और दो तोले शुद्धगन्धक अथवा केवल मूर्छित पारेको ही ४ तोले किम्बा कोई कोई चार तोले अभ्रककोही डालतेहैं ॥ २९-४१ ॥

रसगुडिका ।

रसस्तु पादिकस्तुल्या विडङ्गमरिचाभ्रकाः ।
गङ्गापालङ्कजरसे खल्लयित्वा पुनः पुनः ॥
रक्तिमात्रा गुदार्शोघ्नी वह्नेरत्यर्थदीपनी ॥ ४२ ॥

रससिन्दूर १ भाग एवं वायविडंग कालीमिरच और अभ्रक ये प्रत्येक एक एक भाग लेवे । सबको एकत्र मिलाकर शालिञ्चशाक बड़ी पालकके रसमें खरलकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह वटी अर्शरोगको नष्ट करती है और अग्निको अत्यन्त दीपन करती है ॥ ४२ ॥

तीक्ष्णमुखरस ।

मृतसूतार्कहेमाभ्रं तीक्ष्णं मुण्डञ्च गन्धकम् ।
मण्डूरञ्च समं ताप्यं मर्द्यं कन्याद्रवैर्दिनम् ॥ ४३ ॥
अन्धमूषागतं सर्वं ततः पाच्यं दृढाग्निना ।
चूर्णितं सितया माषं खादेत्तच्चार्शसां हितम् ॥
रसस्तीक्ष्णमुखो नाम चासाध्यमपि साधयेत् ॥ ४४ ॥

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, सुवर्णभस्म, अभ्रकभस्म, तीक्ष्णलोहभस्म, लोह-भस्म, शुद्धगन्धक, मण्डूरभस्म और सोनामाखीकी भस्म इन सबको समान भाग लेकर एक दिनतक घीगुवारके रसमें खरल करे फिर उसको अन्ध-मूषायन्त्रमें रखकर तीक्ष्ण अग्निके द्वारा पकावे । जब पककर स्वयं शीतल होजाय तब उसमें औषधको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे इसमेंसे एक एक माशे परिमाण लेकर मिश्रीके साथ सेवन करे तो यह तीक्ष्णमुख नामक रस

असाध्य अर्शरोगको भी दूर करदेता है। अर्शरोगियोंके लिये यह अत्यन्त हितकारी है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अर्शकुठाररस।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मृतलौहञ्च ताम्रकम्।
प्रत्येकं द्विपलं दन्ती त्र्यूषणं शूरणं तथा ॥ ४५ ॥
शुभाटङ्कयवक्षारसैन्धवं पलपञ्चकम्।
पलाष्टकं स्नुहीक्षीरं द्वात्रिंशच्च गवां जलैः ॥ ४६ ॥
आपिण्डी तं पचेदग्नौ खादेन्माषद्वयं ततः।
रसश्चार्शःकुठारोऽयं सर्वरोगकुलान्तकः ॥ ४७ ॥

शुद्धपारा ४ तोले एवं शुद्धगन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, दन्तीकी जड, सोंठ, पीपल, मिरच और जिमीकन्द ये प्रत्येक ८-८ तोले, वंशलोचन, सुहागा, जवाखार और सेंधानमक प्रत्येक २०-२० तोले, थूहरका दूध ३२ तोले और गोमूत्र १२८ तोले लेवे। इन सबको एकत्र कूट पीसकर गोमूत्रमें मन्द मन्द अग्निसे पकावे। जव उत्तमप्रकारसे पकजाय तब औषधिको सुखाकर चूर्ण करलेवे फिर इस अर्शकुठारनामक रसको प्रतिदिन दो दो माशेकी मात्रासे सेवन करे तो इससे सर्वप्रकारके रोग नष्ट होते हैं ॥ ४५-४७ ॥

चक्राख्यरस।

मृतसुताभ्रवैक्रान्तं ताम्रं कांस्यं समं समम्।
सर्वतुल्येन गन्धेन दिनं भल्लातकैर्द्रवैः ॥ ४८ ॥
मर्द्दयेद्यततः पश्चाद्वटीं कुर्याद्द्विगुञ्जिकाम्।
भक्षणाद्गुदजान् हन्तिद्वन्द्वजान् सर्वजानपि ॥ ४९ ॥

रसासिन्दूर, अभ्रक, वैक्रान्तमणि, ताँबा और कांसा प्रत्येककी भस्म समान भाग और सबकी समानभाग शुद्ध गन्धक लेवे। सबको एकत्र मिलाकर भिलावोंके रसमें एक दिनतक उत्तम प्रकारसे खरलकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंके खानेसे द्विदोषज अथवा त्रिदोषज सभी प्रकारके अर्शरोग नष्ट होते है ॥ ४८॥४९ ॥

वज्रकुठाररस।

रसगन्धकलौहानां प्रत्येकं भागयुग्मकम्।
त्रिकटुदन्तीकुष्ठैकं षड्भागं लाङ्गलस्य च ॥ १५० ॥

क्षारसैन्धवटङ्कानां प्रत्येकं भागपञ्चकम् ।
गोमूत्रस्य च द्वात्रिंशत् स्नुहीक्षीरं तथैव च ॥ ५१ ॥
यावच्च पिण्डितं सर्वं तावन्मृद्वग्निना पचेत् ।
माषद्वयं ततः खादेद्दिवास्वप्नादि वर्जयेत् ॥
रसश्चञ्चूत्कुठारोऽयमर्शसां कुलनाशनः ॥ ५२ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक और लोहा ये प्रत्येक दो दो भाग, सोंठ, पीपल, मिरच, दन्ती और कूठ ये प्रत्येक एक एक भाग, कलिहारीकी जड ६ भाग, जवाखार, सैंधानमक और सुहागा प्रत्येक ५-५ भाग, गोमूत्र और थूहरका दूध प्रत्येक बत्तीस बत्तीस भाग लेवे । सबको एकत्र मिलाकर तबतक मन्द २ अग्निसे पकावे जबतक पकते पकते सब औषधि पिण्डकी समान न होजाय । फिर उसका चूर्ण करके उसमेंसे दो दो माशे परिमाण सेवन करे इसपर दिनमें सोना त्याग देना चाहिये । यह चञ्चूकुठाररस सम्पूर्ण उपद्रवोंसहित अर्शरोगको नष्ट करताहै ॥ १५०-५२ ॥

चक्रेश्वररस ।

चतुर्भागं शुद्धसूतं पञ्च टङ्कणमभ्रकम् ।
त्रिदिनं भावयेद् घर्म्मे द्रवैः श्वेतपुनर्नवैः ॥ ५३ ॥
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं वातदुर्नामशान्तये ।
सिद्धश्चक्रेश्वरो नाम रसश्चार्शःकुलान्तकः ॥ ५४ ॥

शुद्धपारा ४ भाग एवं सुहागा और अभ्रक प्रत्येक ५-५ भाग लेवे । सबको सफेद पुनर्नवेके रसमें धूपमें रखकर तीन दिनतक भावना देवे । पश्चात् दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनाकर नित्य एक एक गोली सेवनकरे । वातज बवासीरको नष्ट करनेके लिये तो यह चक्रेश्वर नामकरस प्रसिद्धही है । एवं अन्यान्य अर्शोंको भी समूल नष्ट करता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

शिलागन्धकवटी ।

शिलागन्धकयोश्चूर्णं पृथग्भृंगरसाप्लुतम् ।
सप्ताहं भावयेत सर्पिर्मधुभ्याञ्च विमर्दयेत ॥ ५५ ॥
अर्शसश्चानुलोम्यार्थं हताग्निबलवर्द्धनम् ।
रक्तिकाद्वितयं खादेत कुष्ठादिरहितो नरः ॥ ५६ ॥

मैनसिल और गन्धकके चूर्णको अलग अलग भाँगरेके रसमें १ सप्ताहतक भावना देकर घी और शहदके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ प्रस्तुत करलेवे इसके खानेसे अर्शरोगीके वायुका अनुलोमन होता है, नष्ट हुई अग्नि पुनः दीपन होती है और कुष्ठादि उपसर्गोंसे रहित होकर मनुष्य आरोग्य होताहै ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

जातीफलादिवटी।

जातीफलं लवङ्गं च पिप्पली सैन्धवं तथा।
शुण्ठी धुस्तूरबीजश्च दरदं टङ्कणं तथा ॥ ५७ ॥
समं सर्वं विचूर्ण्याथ जम्भाम्भसा विमर्दयेत्।
जातीफलवटिकेयमर्शोऽग्निमान्द्यनाशिनी ॥ ५८ ॥

जायफल, लौंग, पीपल, सैंधानमक, सोंठ, धतूरेके बीज, सिंगरफ और सुहागा इन सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे फिर जम्बीरी नींबूके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ तैयार करलेवे। यह जाती-फलाद्यवटी सर्वप्रकारके अर्शरोग और मन्दाग्निको नष्ट करती है ॥ ५७॥५८॥

पञ्चाननवटी।

मृतसूताभ्रलौहानि मृतार्कगन्धकैः सह।
सर्वाणि समभागानि भल्लातं सर्वतुल्यकम् ॥ ५९ ॥
वन्यशूरणकन्दोत्थैर्द्रवैः पलप्रमाणतः।
मर्द्दयेद्दिनमेकञ्च माषमात्रं पिबेद्घृतैः ॥ १६० ॥
भक्षणाद्घ्नन्ति सर्वाणि चार्शांसि च न संशयः।
असाध्येष्वपि कर्त्तव्या चिकित्सा शङ्करोदिता।
कुष्ठरोगं निहन्त्याशु मृत्युरोगविनाशिनी ॥ ६१ ॥

रससिन्दूर, अभ्रक, लोहा, ताँबा और शुद्धगन्धक ये सब समान भाग और शुद्ध भिलावे सबकी बराबर भाग लेवे। फिर सबको एकत्र पीसकर ४ तोले प्रमाण जंगली जिमीकन्दके रसमें खरलकरके एक एक माशेकी गोलियाँ बनालेवे इनमेंसे प्रतिदिन एक एक गोली घृतके साथ पान करे। इस बटीके सेवन करनेसे सर्वप्रकारके अर्शरोग निस्सन्देह नष्ट होते हैं। इस वटीके द्वारा असाध्य रोगोंमें भी चिकित्सा करनी चाहिये ऐसा शंकरने कहाहै यह बटी कुष्ठरोग और मृत्युरोगको तत्काल नाश करनेवाली है ॥ ५९-६१ ॥

नित्योदित रस।

शुद्धसूताभ्रलौहार्कविषं गन्धं समं समम्।
सर्वतुल्यन्तु भल्लातफलमेकत्र चूर्णयेत्॥ ६२॥
द्रवैः शूरणकन्दोत्थैः खल्ले मर्द्यं दिनत्रयम्।
माषमात्रं लिहेदाज्यैरसश्चार्शांसि नाशयेत्॥
रसो नित्योदितो नाम गुदोद्भवकुलान्तकः॥ ६३॥

शुद्धपारा, अभ्रक, लोहा, ताँबा, शुद्ध मीठातेलिया और शुद्धगन्धक ये सब समानभाग और सबकी बराबर भाग भिलावे लेकर सबको एकत्र चूर्ण करलेवे फिर जिमीकन्द और मानकन्दके रसमें तीन दिनतक उत्तम प्रकारसे खरलकरके इसमेसें प्रतिदिन एक एक माशे परिमाण रसको घीके साथ मिलाकर चाटे तो सर्व प्रकारके अर्शरोग नष्ट होते हैं। विशेषकर यह नित्योदित नामक रस बवासीरको समूल नष्ट करते हैं॥ ६२॥ ६३॥

अष्टाङ्गरस।

गन्धं रसेन्द्रं मृतलौहकिट्टं फलत्रयं त्र्यूषणवह्निभृङ्गम्।
कृत्वा समं शाल्मलिकागुडूचीरसेन यामात्रितयं विमर्द्य॥
निष्कप्रमाणंगदितानुपानैः सर्वाणि चार्शांसि हरेद्रसस्य॥

शुद्धगन्धक, शुद्धपारा, लोहभस्म, मण्डूरभस्म, हरड, आमला, बहेडा, सोंठ पीपल, मिरच, चीता और भाँगरा इन सबको समान भाग लेकर सेमलकी मुसली और गिलोय प्रत्येकके रसमें तीन प्रहरतक खरल करके ४-४ माशेकी गोलियाँ बनालेवे। इस रसकी एक एक गोली प्रतिदिन घृतके साथ खानेसे सम्पूर्ण अर्शरोग दूर होता है॥ ६४॥

उदकषट्पलकघृत।

सक्षारैः पञ्चकोलैस्तु पलिकैस्त्रिगुणोदकैः।
समं क्षीरं घृतं प्रस्थं ज्वरार्शःप्लीहकासनुत॥ ६५॥

जवाखार, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड और सोंठ ये प्रत्येक४-४ तोले, जल सब औषधियोंसे तिगुना, दूध एक प्रस्थ और घी एक प्रस्थ लेवे सबको एकत्र मिलाकर यथाविधि घृतको सिद्धकरे यह घृत ज्वर, बबासीर, प्लीहा, खांसी आदि विकारोंको दूर करता है॥ ६५॥

व्योषाद्यघृत।

व्योषगर्भं पलाशस्य त्रिगुणे भस्मवारिणि।
साधितं पिबतः सर्पिः पतन्त्यर्शांस्यसंशयम् ॥ ६६ ॥

सोंठ, पीपल और मिरच इनके समानभाग मिश्रित कल्कसे तिगुने ढाककी भस्मके जलमें घृतको सिद्धकरके पानकरनेसे अर्शके अंकुर निश्चय गिरजाते हैं ॥ ६६ ॥

चव्याद्यघृत।

चव्यं त्रिकटुकं पाठां क्षारं कुस्तुम्बुरूणि च।
यमानी पिप्पलीमूलसूते च विडसैन्धवे ॥ ६७ ॥
चित्रकं बिल्वमभयां पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत्।
शकृद्वातानुलोम्यार्थं जाते दध्नि चतुर्गुणे ॥ ६८ ॥
प्रवाहिकां गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं परिस्रवम्।
गुदवङ्क्षणशूलञ्च घृतमेतद्व्यपोहति ॥ ६९ ॥

चव्य, सोंठ, पीपल, मिरच, पाट, जवाखार, धनियां, अजवायन, पीपलामूल, नागरमोथा, बिरियासंचर नमक, सैंधानमक, चीतेकी जड, बेलगिरी और हरड इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसलेवे फिर इनके कल्क और कल्कसे चौगुने दहीके पानीमें १ प्रस्थ घृतको पकावे इस घृतको पानकरनेसे मल और वायुका अनुलोमन होता है। एवं यह घृत प्रवाहिका,गुदभ्रंश, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, रक्तस्राव,गुदा और वंक्षणका शूल इन सबको दूर करताहै६७–६९

कुटजाद्यघृत।

कुटजफलवल्कलकेशरनीलोत्पललोध्रधातकीकल्कैः।
सिद्धं घृतं विधेयं शूलं रक्तार्शसां भिषजा ॥ १७० ॥

इन्द्रजौ, कुडेकी जडकी छाल, नागकेशर, नीलकमल, लोध और धायके फूल इनके समान भाग मिश्रित कल्कके द्वारा घृतको यथाविधि सिद्धकरके शूल और रुधिरकी बवासीरवाले रोगियोंको सेवन कराना चाहिये ॥१७०॥

सिद्धामृतघृत।

पचेद्वारि चतुर्द्रोणे कण्टकार्यमृताशतम्।
तत्राग्नित्रिफलाव्योषपूतीकत्वकूकलिङ्गकैः ॥ ७१ ॥

सकाश्मर्यविडङ्गैस्तु सिद्धं दुर्नामपेहनुत् ।
घृतं सिंहयमृतं नाम बोधिसत्वेन भाषितम् ॥ ७२ ॥

कटेरी और गिलोय दोनोंको सौ सौ पल लेकर ४ द्रोण परिमाण जलमें पकावे जब चतुर्थांश जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे फिर उसमें चीतेकी जड, हरड, आमला, बहेडा, सोंठ, पीपल मिरच, दुर्गन्ध करंजकी छाल, इन्द्रजौ, कुम्भेर और वायविडंग इनके समान भाग मिश्रित कल्क और १ प्रस्थ घृतको डालकर विधिपर्वक घृतको सिद्धकरे । यह सिंहामृत नामकघृत ववासीर और प्रमेहको नष्ट करताहै ऐसा बोधिसत्त्वमुनिने कहा है ॥७१॥७२

सुनिषण्णक—चांगेरीघृत ।

अवाक्पुष्पी बला दार्वी पृश्निपर्णी त्रिकण्टकः ।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गाश्च द्विपलोन्मिताः ॥ ७३ ॥
कषाय एषां पेष्यास्तु जीवन्ती कटुरोहिणी ।
पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं देवदारु च ॥ ७४ ॥
कालिङ्गं शाल्मलीपुष्पं वीरा चन्दनमञ्जनम् ।
कट्फलं चित्रको मुस्तं प्रियंग्वतिविषे स्थिरा ॥ ७५ ॥
पद्मोत्पलानां किञ्जल्कः समङ्गा सनिदिग्धिका ।
बिल्वं मोचरसः पाठा भागाः स्युः कार्षिकाः पृथक् ७६
चतुःप्रस्थश्रृतं प्रस्थं कषायमवतारयेत् ।
त्रिंशत्पलानि तु प्रस्थो विज्ञेयो द्विपलाधिकः ॥ ७७॥
सुनिषण्णकचाङ्गेर्योः प्रस्थौ द्वौ स्वरसस्य च ।
सर्वैरेतैर्यथोद्दिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७८ ॥
एतदर्शस्स्वतीसारे त्रिदोषे रुधिरश्रुतौ ।
प्रवाहणे गुदभ्रंशे पिच्छासु विविधासु च ॥ ७९ ॥
उत्थाने चातिबहुशः शोथशूले गुदाश्रये ।
मूत्रग्रहे मूढवाते मन्देऽग्नावरुचावपि ॥ १८० ॥
प्रयोज्यं विधिवत् सर्पिर्बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ।
विविधेष्वन्नपानेषु केवलं वा निरत्ययम् ॥ ८१ ॥

सोया, खिरैंटी, दारुहल्दी, पृश्निपर्णी, गोखुरू, वड, गूलर और पीपलके अंकुर ये प्रत्येक आठ २ तोले लेकर एकद्रोण जलमें पकावे जब चौथाई भाग

जल शेषरह जाय तब उतारकर छानलेवे फिर इस काथमें जीवन्ती, कुटकी, पीपल, पीपलामूल, मिरच, देवदारु, इन्द्रजौ, सेमलके फूल, क्षीरकाकोली, लालचन्दन, रसौत, कायफल, चीता, नागरमोथा, फूलप्रियंगु, अतीस, शालपर्णी, कमल केशर, नीले कमलकी केशर, लज्जावन्त, कटेरी, मोचरस और पाठ इन प्रत्येक औषधिको एकएक कर्ष प्रमाण लेकर बारीक पीसकर औषधियोंके ४ प्रस्थ काथमें डालकर जब पकते २ एक प्रस्थ काथ शेष रहजाय तब उतारलेवे । (यहाँपर प्रस्थ ३२ पलका जानना चाहिये) । फिर उसमें शिरियारीके शाकका स्वरस और नोनियाका स्वरस एक एक प्रस्थ एवं घृत एक प्रस्थ डालकर विधिपूर्वक घृतको पकावे । इस घृतको सर्वप्रकारके अर्शरोग, अतिसार, त्रिदोषज रक्तस्राव, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, नाना- प्रकारकी पिच्छिलता, बारबार मलका निकालना, गुदागत शोथ अथवा शूल, मूत्राशय सम्बन्धी रोग, मूढवात, मन्दाग्नि, अरुचि आदि रोगोंमें विविधप्रका- रके अन्नपानोंके साथ अथवा केवल घृतको ही विधिपूर्वक सेवनकरानेसे उक्त समस्त विकार दूर होते हैं एवं बल वर्ण और अग्निकी वृद्धि होतीहै॥७२-१८१

कासीसाद्यतैल ।

कासीसं दन्तिसिन्धूत्थकरवीरानलैः पचेत् ।
तैलमर्कपयोमिश्रमभ्यङ्गात् पायुकीलजित् ॥ ८२ ॥

कसीस, दन्तीकी जड, सैंधानमक, कनेरकी जड और चीतेकी जड इन प्रत्ये- कके एकएक तोले कल्कके द्वारा एक प्रस्थ प्रमाण तिलके तैलको पकावे । फिर आकके दूधमें मिलाकर मालिश करनेसे अर्शके अंकुरोंको दूर करताहै ॥८२॥

बृहत्कासीसाद्यतैल ।

कासीसं सैन्धवं कृष्णा शुण्ठीकुष्ठश्च लाङ्गली ।
शिलाभिदश्वमारश्च दन्ती जन्तुघ्नचित्रकम् ॥ ८३ ॥
तालकं कुनटी स्वर्णक्षीरी चैतैः पचेद्भिषक् ।
तैलं स्नुह्यर्कपयसा गवां मूत्रं चतुर्गुणम् ॥
एतदभ्यङ्गतोऽर्शांसि क्षारेणैव पतन्ति हि ॥
क्षारकर्मकरं ह्येतन्न च सन्दूषयेद्वलिम् ॥ ८४ ॥

कसीस, सैंधानमक, पीपल, सोंठ, कूठ, कलिहारीकी जड, पाषाणभेद, कने- रकी जड, दन्तीकी जड, वायविडङ्ग, चीतेकी जड, हरताल, मैनसिल, पीले फूलकी सत्यानासी, कटेरी इन सबको समानभाग एवं तिलका तैल एक प्रस्थ

थूहरका दूध, १ प्रस्थ आकका दूध १ प्रस्थ और गोमूत्र ४ प्रस्थ लेवे । सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक तैलको पकावे । इस तैलकी मालिश करनेसे अर्शके अंकुर इस प्रकार निस्सन्देह गिरजाते हैं, जिसप्रकार क्षारसे गुदाके अंकुर नष्ट होजाते हैं । क्षारकी समानकार्यकरनेवाला यह तैल अर्शकी वलिको दूषित नहीं करता है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

पिप्पल्याद्यतैल ।

पिप्पली मधुकं बिल्वं शताह्वां मदनं वचाम् ।
कुष्ठं शुण्ठीं पुष्कराख्यं चित्रकं देवदारु च ॥ ८५ ॥
पिष्ट्वा तैलं विपक्तव्यं द्विगुणक्षीरसंयुतम् ।
अर्शसां मूढवातानां तच्छ्रेष्ठमनुवासनम् ॥ ८६ ॥
गुदनिस्सरणं शूलं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् ।
कट्यूरुपृष्ठदौर्बल्यमानाहं वङ्क्षणाश्रयम् ॥ ८७ ॥
पिच्छास्रावं गुदे शोथं वातवर्चोविनिग्रहम् ।
उत्थानं बहुशो यच्च जयेच्चैवानुवासनात् ॥ ८८ ॥

पीपल, मुलैठी, बेलगिरी, सोया, मैनफल, वच, कूठ, सोंठ, पोहकरमूल, चीता और देवदारु इन सबको समानभाग लेकर एकत्र पीस लेवे । इस कल्कके द्वारा १ प्रस्थ तेलको दुगुने दूधके साथ मिलाकर पकावे । इस तेलको अर्शरोगियों और वातसे पीडित रोगियोंके अनुवासनवस्ति द्वारा प्रयोग करना श्रेष्ठ है । एवं गुदाका बाहर निकलना, शूल, मूत्रकृच्छ्रता, प्रवाहिका, कमर, पीठ और जंघाओंकी दुर्वलता, अफारा, वंक्षणकी पीडा, पिच्छिलतायुक्त स्राव, गुदाकी सूजन, वायु और मलका अवरोध ये लक्षण यदि बारबार उत्पन्न हो तो इस तेलकी अनुवासनबस्तिसे इन सब विकारोंको जीतना चाहिये॥

दन्त्यरिष्ट ।

दन्तीचित्रकमूलानामुभयोः पञ्चमूलयोः ।
भागान् पलांशानापोथ्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥८९॥
त्रिपलं त्रिफलायाश्च दलानां तत्र दापयेत् ।
रसे चतुर्थशेषे तु पूतशीते प्रदापयेत् ॥ ९० ॥
तुलां गुडस्य तत्तिष्ठेन्मासार्द्धं घृतभाजने ।
तन्मात्रया पिबेन्नित्यमर्शोभ्यः प्रविमुच्यते ॥ ९१ ॥

ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं वातवर्च्चोऽनुलेपनम् ।
दीपनश्चारुचिघ्नश्च दन्त्यरिष्टमिदं विदुः ॥
पात्रेऽरिष्टादिसन्धानं धातकीलोध्रलेपिते ॥ ९२ ॥

दन्तीकी जड, चीतेकी जड और दशमूलकी समस्त औषधियाँ प्रत्येकको चार चार तोले लेकर एकत्र कूटकर १ द्रोण जलमें पकावे और पाक होते समय उसमें हरड आमला और बहेडा इन तीनोंके पत्तोंको तीनपल प्रमाण डाल देवे। जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर कपडेमें छानलेवे । फिर शीतल होनेपर उसमें पुराना गुड सौ पल प्रमाण डालकर घीके चिकने बर्त्तनमें भरकर और उसके मुँहको अच्छे प्रकारके बन्द करके पन्द्रह दिनतक रक्खा रहनेदेवे । तत्पश्चात् इसको उचित मात्रासे प्रतिदिन पान करनेसे मनुष्य अर्शरोगसे सर्वथा मुक्त होजाता है । यह अरिष्ट ग्रहणी और पाण्डुरोग-नाशक, वायु और मलका अनुलोमन करनेवाला, अग्निदीपक और अरुचिको दूर करनेवाला है । इसको पूर्वाचार्यगण दन्त्यरिष्ट कहते हैं । धायके फूल और लोधके द्वारा लेपकियेहुए पात्रमें अरिष्टादि रखने चाहिये ॥ ८९-९२ ॥

क्षार ।

प्रशस्तेऽहनि नक्षत्रे कृतमङ्गलपूर्वकम् ।
कालमुष्ककमाहृत्य दग्ध्वा भस्म समाहरेत् ॥ ९३ ॥
आढकस्त्वेकमादाय जलद्रोणे पचेद्भिषक् ।
चतुर्भागावशिष्टेन वस्त्रपूतेन वारिणा ॥ ९४ ॥
शंखचूर्णस्य कुडवं प्रक्षिप्य विपचेत् पुनः ।
शनैः शनैर्मृद्वग्नौ तु यावत् सान्द्रतनुर्भवेत् ॥ ९५ ॥
सर्ज्जिकायावशूकाभ्यां शुण्ठी मरिचपिप्पली ।
वचा चातिविषा चैव हिङ्गुचित्रकयोस्तथा ॥ ९६ ॥
एषां चूर्णानि निःक्षिप्य पृथक्त्वेनाष्टमाषकम् ।
दर्व्या संघट्टितश्चापि स्थापयेदायसे घटे ।
एष वह्निसमः क्षारः कीर्त्तितः काश्यपादिभिः ॥ ९७ ॥

उत्तम दिन और शुभ नक्षत्रमें पहले मांगलिक कार्य करके काले फलके घण्टापाढलवृक्षकी शाखा लाकर उसको अग्निमें जलाकर भस्म करलेवे फिर उस भस्मको १ आढक परिमाण लेकर १ द्रोण जलमें पकावे जब पकते २

चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छानलेवे फिर उसमें शंखका चूर्ण १ कुडव परिमाण डालकर धीरे २ मन्द मन्द अग्निसे पकावे जब पकते२ पाक गाढा होजाय तब उसको नीचे उतारकर उसमें सज्जी, जवाखार, सोंठ, मिरच, पीपल, वच, अतीस, हींग और लालचीतेकी जड इन औषधियोंके आठ २ मासे चूर्णको डालकर करछीसे अच्छीतरह घोटकर लोहेके पात्रमें भरकर रखदेवे । यह क्षार अग्निकी समान तीक्ष्णहै ऐसा कश्यपादि ऋषियोंने कहा है ॥ ९७ ॥

क्षारपाकविधि।

तोये कालकमुष्ककस्य विपचेद्भस्माढकं षड्गुणे
पात्रे लौहमये दृढे विपुलधीर्दर्व्या शनैर्घट्टयन् ।
दग्ध्वाग्नौ बहुशंखनाभिशकलान् पूतावशेषे क्षिपे-
द्यद्येरण्डजनालमेष दहति क्षारो वरो वाक्शतात् ९८
प्रायस्त्रिभागशिष्टेऽस्मिन्नच्छपैच्छिल्यरक्तता ।
सञ्जायते तदास्राव्य क्षारतो ग्राह्यमिष्यते ॥ ९९ ॥
तुर्येणाष्टमकेन षोडशगुणेनांशेन संव्यूहिमा
मध्यः श्रेष्ठ इति क्रमेण विहितः क्षारोदकाच्छङ्खकः॥
नातिसान्द्रो नातितनुः क्षारपाक उदाहृतः ।
दुर्नामकादौ निर्दिष्टः क्षारोऽयं प्रतिसारणः ॥ १ ॥
पानीयो यस्तु गुल्मादौ तं वारानेकविंशतिम् ।
स्रावयेत षड्गुणे तोये केचिदाहुश्चतुर्गुणे ॥ २ ॥

काले फूलके घण्टापाढलवृक्षकी भस्मको १ आढक परिमाण लेकर छः गुने जलमें डालकर लोहेके पात्रमें मन्द २ अग्निसे पकावे और करछीसे धीरे धीरे चलाताजाय और उसमें शंखनाभिके टुकडोंको अग्निमें दग्धकरके और वस्त्रमें छानकर डालदेवे सौकी गिनती गिननेमें जितनी देरलगे उतनी देरमें यह क्षार यदि अण्डकी नालको जलादेवे तो उत्तम क्षार हुआ जानना चाहिये प्रायः तीसरा भाग जल अवशेष रहनेपर इस क्षारमें पिच्छलता और लालिमा उत्पन्न होजाय तो उसको टपकाकर क्षार जल ग्रहण करना चाहिये । इन भेदोंसे क्षार तीन प्रकारका होता है-मृदु, मध्य और तीक्ष्ण श्रेष्ठ पूर्वोक्त क्षार जलसे चौथाई भाग शंखभस्म डालकर बनायाहुआ क्षार मृदु क्षार, जलसे आठवाँ भाग शंख भस्म डालकर बनायाहुआ क्षार मध्यम और

जलसे सोलहवाँ भाग शंखभस्म डालकर बनायाहुआ क्षार तीक्ष्ण वा श्रेष्ठ होता है। क्षारका पाक न अत्यन्त गाढा और न अत्यन्त पतला होना चाहिये। किन्तु जिससे अर्शके अंकुरोंपर सहजही मालिश की जासके इस प्रकारका क्षार पाक करना चाहिये। बवासीर आदि रोगोंमें प्रतिसारण क्षार उत्तम कहागया है। और पानीय क्षार गुल्मादिरोगोंमें हितकर है। इस पानीय क्षारको क्षारसे ६गुने किसी २ के मतसे ४ गुने जलमें डालकर२१ बार टपकाना चाहिये॥

अर्शरोगमें पथ्य।

विरेचनं लेपनमस्रमोक्षः क्षाराग्निशस्त्राचरितश्च कर्म।
पुरातना लोहितशालयश्च सषष्टिकाश्चापि यवाः कुलित्थाः॥
पटोलपत्तूररसोनवह्निपुनर्नवाशूरणवास्तुकानि।
जीवन्तिका दन्तिशठी सुरा च त्रुटिर्वयःस्था नवनीततक्रम्
कक्कोलधात्रीरुचकं कपित्थमौष्ट्राणि मूत्राज्यपयांसि चापि।
भल्लातकं सर्षपजञ्च तैलं गोमूत्रसौवीरतुषोदकानि॥
वातापहं यच्च यदग्निकारि तदन्नपानं हितमर्शसेभ्यः॥५॥

अर्शरोगियोंके लिये विरेचन, प्रलेप, रक्तमोक्षण, क्षार, अग्नि और शस्त्रकर्म पुराने लाल शालिधानोंके चावल, सांठीके चावल, जौ, कुलथी, परबल, शालिंचशाक, लहसुन, चीता, लालविषखपरा, जिमी कन्द, बथुआ, जीवन्तीका शाक, दन्तीकी जड, कचूर, मद्य, छोटी इलायची, हरड, नैनीघी, मट्ठा, शीतलचीनी, आमला, कालानमक, कैथ, ऊँटका मूत्र, घी और दूध, भिलावे, सरसोंका तैल, गोमूत्र, सौवीरनामककाँजी और तुषोदक नामककाँजी एवं वायुनाशक और अग्निवर्द्धक समस्त अन्न पान हितकारी हैं॥ ३-५॥

अर्शरोगमें अपथ्य।

आनूपमामिषं मत्स्यं पिण्याकं दधिपिष्टकम्।
माषान् करीरं निष्पावं बिल्वं तुम्बीमुपोदिकाम्॥६॥
पक्वाम्रं शालुकं सर्वं विष्टम्भीनि गुरूणि च।
आतपं जलपानानि वमनं वस्तिकर्म च॥७॥
विरुद्धानि च सर्वाणि मारुतं पूर्वदिग्भवम्।
वेगरोधं स्त्रियं पृष्ठयानमुत्कटकासनम्॥८॥

यथास्वं दोषलश्चान्नमर्शसः परिवर्ज्जयेत् ।
यत् पथ्यं यदपथ्यञ्च वक्ष्यते रक्तपित्तिनाम् ॥
रक्तार्शोरोगिणां तत्तदपि विद्याद्विशेषतः ॥ ९ ॥

आनूपदेशके पशुपक्षियोंका मांस, मछली, तिलकुट, दही, पिट्ठीके बने पदार्थ, उडद, बाँसके अंकुर, सेमकीफली, बेल, लौकी, पोईका शाक, पक्का आम, भसींडा एवं सर्व प्रकारके विबन्धकारक गुरुपाकी पदार्थ, धूप, जलपान, वमन, वस्तिकर्म, सर्वप्रकारके प्रकृतिविरुद्ध, देश काल और संयोगविरुद्ध-पदार्थ, पूर्वदिशाकी वायु, मलमूत्रादिके वेगको रोकना, स्त्रीप्रसंग, घोडे आदिकी सवारी करना, टेढे तिरछे होकर बैठना, एवं अर्शके दोषको बढानेवाले यथेच्छ अन्न पानादि पदार्थ अर्शरोगवालेको त्यागदेने चाहिये । रक्तपित्तरोगियोंके लिये अर्शमें भी जो पथ्यापथ्य रक्तपित्त रोगीयोंके लिये कहा गया है वह सब पथ्यापथ्य विशेषरूपसे सेवन कराना चाहिये ॥ ६-९ ॥

इति अर्शोरोगचिकित्सा ॥

अग्निमान्द्यचिकित्सा ।

सारमेतच्चिकित्सायाः परमग्नेश्च पालनम् ।
तस्माद्यत्नेन कर्त्तव्यं वह्नेस्तु प्रतिपालनम् ॥ १ ॥
अस्तु दोषशतं क्रुद्धं सन्तु व्याधिशतानि च ।
कायाग्निमेव मतिमान् रक्षन् रक्षति जीवितम् ॥ २ ॥

जठराग्निको समान भावसे रक्षाकरनाही इस रोगकी चिकित्साका प्रधान कर्त्तव्य है इस लिये सैकडों दोषों और सैकडों व्याधियोंके कुपित होनेपरभी सबसे पहले यत्न पूर्वक अग्निकी रक्षा करनी चाहिये । कारण, अग्निके क्षीण हो-जानेपर कोई भी औषधि गुण नहीं करती है जठराग्निकी रक्षा करताहुआ बुद्धिमान् वैद्य जीवनकी रक्षा करता है ॥ १ ॥ २ ॥

समस्य रक्षणं कार्यं विषमे वातनिग्रहः ।
तीक्ष्णे पित्तप्रतीकारो मन्दे श्लेष्मविशोधनम् ॥ ३ ॥

समाग्निकी सदैव रक्षा करनी चाहिये विषमाग्निमें वायुकी शान्ति, तीक्ष्णाग्निमें पित्तको शमन करनेवाली और मन्दाग्निमें कफको प्रशमनकरनेवाली क्रिया एवं लंघनादि करने चाहिये ॥ ३ ॥

हरीतकी भक्ष्यमाणा नागरेण गुडेन वा ।
सैन्धवोपहितावापि सातत्येनाग्निदीपनी ॥ ४ ॥

हरड और सोंठके चूर्णको, गुड वा सैन्धानमकके साथ प्रतिदिन सेवन करनेसे अग्नि दीपन होती है ॥ ४ ॥

समयावशूकमहौषधचूर्णं लीढं घृतेन गोसर्गे ।
कुरुते क्षुधां सुखोदकं पीतं विश्वौषधं वैकम् ॥ ५ ॥

जवाखार और सोंठके चूर्णको समान भाग लेकर अथवा केवल सोंठके चूर्णको गौके घीमें मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल चाटे और ऊपरसे कुछ गरम जल पीवे तो क्षुधाकी वृद्धि होती है ॥ ५ ॥

अन्नमण्डं पिबेदुष्णं हिङ्गुसौवर्चलान्वितम् ।
विषमोऽपि समस्तेन मन्दो दीप्येत पावकः ॥ ६ ॥

हींग और काला नमक मिलाकर भातका सुहाता २ मांड पीनेसे विषमाग्नि सम और मन्दाग्नि दीपन होती है ॥ ६ ॥

भोजनाग्रे सदा पथ्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम् ।
अग्निसन्दीपनं हृद्यं लवणार्द्रकभक्षणम् ॥ ७ ॥

भोजन करनेसे पहले प्रतिदिन सैंधानमक और अदरखको भक्षण करनेसे जीभ और कण्ठका शुद्ध होता हैं । अग्नि दीपन होती है और यह प्रयोग हृदयको हितकारी है ॥ ७ ॥

तीक्ष्णाग्निचिकित्सा ।

नारीक्षीरेण संयुक्तां पिबेदौदुम्बरं त्वचम् ।
आभ्यां वा पायसं सिद्धं पिबेदत्यग्निशान्तये ॥ १ ॥
यत्किञ्चिद्गुरु मेध्यञ्च श्लेष्मकारि च भेषजम् ।
सर्वं तदत्यग्निहितं भुक्त्वा प्रस्वपनं दिवा ॥ २ ॥

तीक्ष्णाग्निको शान्त करनेके लिये गूलरकी छालको स्त्रीके दूधमें पीसकर पान करे अथवा स्त्रीके दूध और गूलरकी छालकी खीर बनाकर सेवन करे । एवं गुरुपाकी मेध्य और कफकारक जितने पदार्थ या औषध हैं, उन सबको सेवन करना और दिनमें सोना ये सब तीक्ष्णाग्निवाले रोगीके लिये हितकरहैं॥

मुहुर्मुहुरजीर्णेऽपि भोज्यमस्योपकल्पयेत् ।
निरिन्धनोऽन्तरं लब्ध्वा यथैनं न निपातयेत् ॥ ३ ॥

तीक्ष्ण अग्निवाले मनुष्यको अजीर्ण होनेपर भी बारबार भोजन कराना चाहिये । कारण जिससे भोजनरूपी ईंधनके विना जठराग्नि अवसर पाकर शरीरके रसादिको सुखाकर रोगोको नष्ट न करदेवे ॥ ३ ॥

आमाजीर्णचिकित्सा ।

तत्रामे वमनं कार्यं विदग्धे लंघनं हितम् ॥ १ ॥

आमके अजीर्णमें वमन और विदग्धाजीर्णमें लंघन कराने उपयोगी है॥१॥

वचालवणतोयेन वान्तिरामे प्रशस्यते ।
कणासिन्धुवचाकल्कं पीत्वा च शिशिराम्भसा ॥२॥

आमयुक्त अजीर्णमें वच और सैंधेनमकके चूर्णको गरम जल डालकर पान करानेसे अथवा पीपल सैंधानमक और वच इनके कल्कको शीतल जलके साथ पान करानेसे वमन होकर आम शान्त होती है ॥ २ ॥

धान्यनागरसिद्धन्तु तोयं दद्याद्विचक्षणः ।
आमाजीर्णप्रशमनं दीपनं वस्तिशोधनम् ॥ ३ ॥

धनियाँ और सोंठका क्काथ सेवन करनेसे आमाजीर्ण शमन होता है अग्नि दीपन होती है और मूत्राशय शुद्ध होता है ॥ ३ ॥

भवेद्यदा प्रातरजीर्णशङ्का तदाभयां नागरसैन्धवाभ्याम् ।
विचूर्णितां शीतजलेन भुक्त्वा भुञ्ज्यादशङ्कं मितमन्नकाले ॥

यदि प्रातःसमयअजीर्णकी आशंका हो तो हरड, सौंठ और सैंधानमक इनको एकत्र पीसकर शीतल जलके साथ पान करके भोजनके समय थोडा भोजन कराना चाहिये ॥ ४ ॥

चित्रकगुडिका ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौ क्षारौ लवणानि च ।
व्योषं हिङ्ग्वाजमोदञ्च चव्यञ्चैकत्र चूर्णयेत ॥ ५ ॥
सौवर्चलं सैन्धवञ्च विडमौद्भिदमेव च ।
सामुद्रेण समं पञ्चलवणान्यत्र योजयेत् ॥
गुडिका मातुलुङ्गस्य दाडिमस्य रसेन वा ।
कृत्वा विपाचयत्यामं दीपयत्याशु चानलम् ॥ ६ ॥
[दृष्टफलोऽयम्]

चीतेकी जड, पीपलामूल, जवाखार, सज्जी, काला नमक, सेन्धानमक, बिरियासंचर नमक, साम्भर नमक, सामुद्र नमक, पीपल, मिरच, हींग, अजमोद और चव्य इन सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे अथवा बिजौरे नीम्बूके रसमें किम्वा अनारके रसमें खरल करके एक एक माशेकी गोलियां बनाकर सेवन करे तो यह गोली आमको तत्काल पचाती है और अग्निको दीपन करती है यह अनुभवसिद्ध प्रयोग है ॥ ५ ॥ ६ ॥

विदग्धाजीर्णचिकित्सा।

अन्नं विदग्धं हि नरस्य शीघ्रं
शीताम्बुना वै परिपाकमेति।
तत्तस्य शैत्येन निहन्ति पित्त-
माक्लेदिभावाच्च नयत्यधस्तात् ॥ १ ॥

शीतल जल पान करनेसे मनुष्यके विदग्ध अन्न शीघ्र पचजाता है एवं जलकी शीतलताके कारण पित्त प्रशमित होता है और क्लेदयुक्त (द्रव) होनेसे भोजनको नीचे गेरदेता है ॥ १ ॥

विदह्यते यस्य च भुक्तमात्रं दह्येत हृत्कोष्ठगलञ्च यस्य।
द्राक्षासितामाक्षिकसंप्रयुक्तां लीढ्वाभयां वै स सुखं लभेत ॥

जिसके भोजनकरते ही दाह उत्पन्न हो एवं हृदय कोष्ठ और गलेमें जलन हो तो दाख मिश्री शहद और हरड इन सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे सुख प्राप्त होता है ॥ २ ॥

हरीतकी धान्यतुषोदसिद्धा सपिप्पली सैन्धवहिंगुयुक्ता।
सोद्गारधूमं भृशमप्यजीर्णं विभज्य सद्यो जनयेत्क्षुधाञ्च ॥

हरड धान्य तुषोदकनामक काँजीमें पकाकर उसमें पीपल, सेंधानमक और हींग मिलाकर सेवन करे तो यह धुएँकी समान डकारोंका आना अत्यन्त प्रबल अजीर्णको नष्ट करके क्षुधाको तत्काल उत्पन्न करता है ॥ ३ ॥

विष्टब्धरसशेषाजीर्णचिकित्सा।

विष्टब्धे स्वेदनं पथ्यं पेयञ्च लवणोदकम्।
रसशेषे दिवास्वप्नो लङ्घनं वातवर्ज्जनम् ॥ १ ॥

विष्टब्ध अजीर्णमें पसीना निकलवाना और सेंधानमक मिलाहुआ जल पान करना हितकारी है। एवं रसशेषाजीर्णमें दिनमें सोना, लंघन करना और वातरहित स्थानमें रहना उत्तम है ॥ १ ॥

व्यायामश्रमदाध्ववाहनरतः क्लान्तानतीसारिणः
शूलश्वासवतस्तृषापरिगतान् हिक्कामरुत्पीडितान् ।
क्षीणान् क्षीणकफांश्चशिशून्मदहतान्वृद्धान् रसाजीर्णिनो
रात्रौ जागरितान्नरान् निरशनान् कामं दिवा स्वापयेत् ॥

रसशेषाजीर्णमें व्यायाम, दण्ड, कसरत आदि परिश्रम, स्त्रीप्रसङ्ग, मार्ग चलने और घोडे आदिकी सवारीपरचढनेसे थकेहुए मनुष्योंको एवं अतीसार, शूल, श्वास, तृषा, हिचकी और वायुसे पीडित रोगियोंको तथा क्षीणकफवाले, वालक, मद्यपीनेसे बेहोश, वृद्ध, अजीर्णरसवाले रात्रिमें जागनेवाले और लंघन करनेवाले ऐसे मनुष्योंको दिनमें यथेच्छशयन करानाही श्रेष्ठ है२॥

आलिप्य जठरं प्राज्ञो हिङ्गुत्र्यूषणसैन्धवैः ।
दिवास्वप्नं प्रकुर्वीत सर्वाजीर्णप्रणाशनम् ॥ ३ ॥

हींग, सोंठ, पीपल, मिरच और सैंधानमक इनको पीसकर पेट पर लेप करके दिनमें शयन करानेसे सर्वप्रकारका अजीर्ण नष्ट होताहै ॥ ३ ॥

पथ्यात्रिक् ।

पथ्यापिप्पलिसंयुक्तं चूर्णं सौवर्चलं पिबेत् ।
मस्तुनोष्णोदकेनाथ बुद्ध्वा दोषगतिं भिषक् ॥ ४ ॥
चतुर्विधमजीर्णञ्च मन्दानलमथारुचिम् ।
आध्मानं वातगुल्मञ्च शूलञ्चाशु नियच्छति ॥ ५ ॥

हरड, पीपल और कालानमक इनके चूर्णको समानभाग लेकर दहीके पानी अथवा उष्णजलके साथ पान करनेसे दोषोंकी गतिको जानकर चारों प्रकारका अजीर्ण, मन्दाग्नि, अरुचि, अफारा, वातगुल्म और शूल ये सब तत्काल दूर होते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

विशिष्टद्रव्याजीर्णकी विधि ।

फलं पनसपाकाय फलं कदलसम्भवम् ।
कदलस्य तु पाकाय बुधैरपि घृतं हितम् ॥
घृतस्य परिपाकाय जम्बीरस्य रसो हितः ॥ ६ ॥
नारिकेलफलतालबीजयोः पाचकं सपदि तण्डुलं विदुः ।
क्षीरमेव सहकारपाचनं चारमज्जनि हरीतकी हिता ॥ ७ ॥

मधूकमालूरनृपादनानां परूषखर्ज्जूरकपित्थकानाम् ।
पाकाय पेयं पिचुमर्द्दबीजं घृतेऽपि तक्रेऽपि तदेव पथ्यम्॥८॥
खर्ज्जूरशृङ्गाटकयोः प्रशस्तं विश्वौषधं कुत्र च भद्रमुस्तम् ।
यज्ञाङ्गबोधिद्रुफलेषु शस्तं प्लक्षे तथा पर्युषितः प्रपीतम्॥९॥
तण्डुलेषु च पयः पयःस्वथो दीपकन्तु चिपिटे कणायुतः ।
षष्टिका दधिजलेन जीर्य्यते कर्कटी च सुमनेषु जीर्य्यते १०

गोधूममाषहरिमन्थसतीनमुद्र-
पाको भवेज्झटिति मातुलपुत्रकेण ।
खर्ज्जूरिकाबिसकशेरुसितासु शस्तः
शृंगाटके मधुफलेष्वपि भद्रमुस्तम् ॥ ११ ॥
कङ्गुश्यामाकनीवारा कुलित्थाश्चाविलम्बितम् ।
दध्नो जलेन जीर्य्यन्ति वैदलः काञ्जिकेन तु ॥१२॥
पिष्टान्नं शीतलं वारि कृसरां सैन्धवं पचेत् ।
माषेण्डरीं निम्बुफलं पायसं मुद्गयूषकः ॥ १३ ॥

वटो वेशवाराल्लवङ्गेन फेनी समं पर्पटः शिग्रुबीजेन याति।
कणामूलतोलड्डुकापूपसज्यादिपाकोभवेत्तण्डुली मण्डयोश्च

कटहलके खानेसे अजीर्ण हुआ हो तो उसको पचानेके लिये केला खाना चाहिये । यदि केलेके खानेसे अजीर्ण हुआ हो तो घृत पान कराना चाहिये । घृतके अजीर्णमें जम्बीरीनींबूका रस पीना चाहिये । नारियल और ताडके फलोंके अजीर्णमें भात चावलोंका खाना चाहिये । आमको पचानेके लिये दूध सर्वश्रेष्ठ है । चिरौंजीके अजीर्णमें हरड सेवन करना हितकरहै । महुआ, बेल, खिरनी, फालसे, खजूर और कैथको पचानेके लिये नीमके बीजों(निबौलियों)को पीसकर पीना चाहिये। घृत और मट्ठेके अजीर्णमें भी नीमके बीजों (निबौलियों)सेवन करना चाहिये। खजूर और सिंघाडेके अजीर्णमें सोंठ और किसी किसी मतसे नागरमोथेको सेवन करना चाहिये गूलर, पीपलके फल और पाखरके फलको खानेसे हुए अजीर्णमें बासीजल पान करना चाहिये।चावलोंके अजार्णमें दूध,दूधके अजीर्णमें अजवायन और चिबिडै अर्थात् चौलोंके अजीर्णमें पीपल और अजवायनकी चूर्ण सेवन करना चाहिये। सांठीके चावल दहीके तोडको पीनेसे पचाते हैं और ककडी-गेहूंके पदार्थ खानेसे पचजाती है।

गेहूँ, उरद, चने, मटर और मूँग इन सबका अजीर्ण धतूरेके बीजोंको सेवन करनेसे शीघ्र दूर होताहै । पिण्डखजूर, भसींडा, कशेरु, मिश्री सिंघाडे और छुहारेके अजीर्णमें नागरमोथाका सेवन उत्तम है. कंगनी, समा, नीवारधान और कुलथी ये अन्न दहीके पानीके सेवनसे शीघ्र जीर्ण होजातेहैं । और कांजीके सेवनसे सर्व प्रकारके दो दलवाले अन्न पचजाते हैं । पिष्टान्न (पिट्ठीके बने मिष्टान्नादि) पदार्थोंके अजीर्णमें शीतलजल और खिचडीके अजीर्णमें सैंधानमक सेवन करना चाहिये । इमरतीके अजीर्णको कागजी नींबूका रस और खीरको मूँगका यूष पचादेताहै । बडे वैशवार (मसाले) चरपटे सेवन करनेसे, और फेनी लौंगके सेवन करनेसे पचती है पापडका अजीर्ण सैंजनेके बीजोंको खानेसे दूर होता है । लड्डुओंके अजीर्णमें पीपलामूलका चूर्ण गरम जलके साथ सेवन करना चाहिये । मालपुये और सत्र्यकादि अजीर्णमें तिलमिश्रित यवागू सेवन करना चाहिये ॥ ६-१४ ॥

विषूचिकाकी चिकित्सा ।

विषूचिकायां वमितं विरिक्तं सुलङ्घितं वा मनुजं विदित्वा।
पेयादिभिर्दीपनपाचनैश्च सम्यक् क्षुधार्त्तं समुपक्रमेत ॥१॥

विषूचिका (हैजा) में वमन, विरेचन और लंघन करानेके पश्चात् रोगीको अच्छे प्रकारसे भूंख लगनेपर अग्निप्रदीपक और दोषोंको पचानेवाले पेयादि हलका पथ्य देना चाहिये ॥ १ ॥

जलपीतमपामार्गमूलं हन्ति विषूचिकाम् ॥ २ ॥

चिरचिटेकी जडको जलमें पीसकर सेवन करनेसे विषूचिकारोग दूर हो ॥

कुष्ठसैन्धवयोः कल्कं चुक्रतैलसमन्वितम् ।
विषूच्या मर्दनं कोष्णं खल्लीशूलनिवारणम् ॥ ३ ॥

विषूचिकामें कूठ और सेंधानमकके चूर्णको चूक और तिलके तेलमें मिलाकर गरमकरके सुहाता २ पेटपर लेप करनेसे खल्लीशूल दूर होताहै ॥ ३ ॥

व्योषं करञ्जस्य फलं हरिद्रा-
मूलं समावाप्य च मातुलुङ्ग्याः ।
छायाविशुष्का गुडिकाः कृतास्ता
हन्युर्विषूचीं नयनाञ्जनेन ॥ ४ ॥

सोंठ, पीपल, मिरच, करंजुयेके फल, हलदी और बिजौरेनींबूकी जड इन सबको समान भाग लेकर जलमें खरल करके गोलियाँ बनाकर छायामें सुखा लेवे । इन गोलियोंको घिसकर आँखोंमें आँजनेसे विषूचिका नष्ट होतीहैं॥४॥

गुडपुष्पसाराशिखरीतण्डुलागिरिकर्णिकाहरिद्राभिः ।
अंजनगुडिका विलयति विषूचिकां त्रिकटुसंयुक्ता ॥ ५ ॥

महुएका सार, चिरचिटेके चावल, सफेद अपराजिताकी जड, हल्दी, सोंठ, पीपल और काली मिरच इन सबको एकत्र पीसकर गोलियाँ बनालेवे । यह गोली आँखोंमें आँजतेही विषूचिकारोगको दूर करती है ॥ ५ ॥

त्वक्पत्ररास्नागुरुशिग्रुकुष्ठैरम्लप्रपिष्टैः सवचाशताह्वैः ।
उद्वर्त्तनं खल्लिविषूचिकाघ्नं तैलं विपक्वञ्च तदर्थकारि ॥ ६ ॥

दालचीनी, तेजपात, अगर, सहिंजनेकी छाल, कूठ, वच और सोया इनको समान भाग लेकर काँजीमें पीसकर पेटपर मलनेसे खल्लीरोग और विषूचिका रोग नष्ट होताहै । अथवा उक्त औषधियों और काँजीके द्वारा तिलके तैलको यथाविधि पकाकर मालिश करनेसे भी वैसाही गुण होताहै ॥ ६ ॥

अलसकचिकित्सा ।

वमनं त्वलसे पूर्वं लवणेनोष्णवारिणा ।
स्वेदो वर्त्तिर्लङ्घनञ्च क्रमश्चातोऽग्निवर्द्धनः ॥ १ ॥

अलसकरोगमें पहले सेंधानमक मिश्रित गरम जलपान कराकर वमन करावे । फिर स्वेद, वार्त्ति, लंघन और अग्निवर्द्धक औषधियोंका प्रयोग इन क्रियाओंको क्रमपूर्वक करे ॥ १ ॥

उदरकी पीडाकी चिकित्सा ।

सरुक् चानद्धमुदरमम्लापिष्टैः प्रलेपयेत् ।
दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिङ्गुसैन्धवैः ॥ १ ॥

देवदारु, वच, कूठ, सौंफ, हींग और सेंधानमक इन औषधियोंको समान भाग लेकर काँजीमें पीसकर उदरपर प्रलेप करनेसे पेटकी पीडा और अफारा दूर होतीहै ॥ १ ॥

तक्रेण युक्तं यवचूर्णमुष्णं सक्षारमार्त्तिं जठरे निहन्यात ।
स्वेदो घटैर्वा बहुबाष्पपूर्णैरुष्णैस्तथान्यैरपि पाणितापैः॥२॥

जौके चूर्णको मट्ठेमें सानकर और गरम करके नाभिके चारोंओर लेप करे अथवा मठ्ठा जौचूर्ण और जवाखार इन सबको एक घडेमें भरकर पकावे । या हाथोंको गरम करके पेटको बार बार सेक करनेसे इस प्रकार घडेमें गरम काँजी भरकर हल्के स्वेद देंनेसे भी उदरकी पीडा दूर होती है ॥ २ ॥

तीव्रार्त्तिरपि नाजीर्णी पिबेच्छूलघ्नमौषधम् ।
दोषच्छन्नोऽनलो नालं पक्तुं दोषौषधाशनम् ॥ ३ ॥

अत्यन्त तीव्र पीडावाले अजीर्णरोगीको शूलनाशक औषधि कदापि सेवन नहीं करनी चाहिये । कारण, वातादि दोषोंसे ढकीहुई जठराग्नि दोषोंको और खाईहुई औषधिको पचानेके लिये समर्थ नहीं होती ॥ ३ ॥

१–सैन्धवाद्यचूर्ण ।

सिन्धूत्थपथ्यामगधोद्भववह्निचूर्ण--
मुष्णाम्बुना पिबति यः खलु नष्टवह्निः ।
तस्यामिषेण सघृतेन वरं नवान्नं
भस्मीभवत्याशितमात्रमिह क्षणेन ॥ ४ ॥

जो पुरुष सैंधानमक, हरड, पीपल और चीतेकी जड इनके समानभाग चूर्णको गरम जलके साथ सेवन करता है उसकी नष्टहुई अग्नि अत्यन्त दीपन होजाती है इस औषधिको सेवन करके घीमें भुनेहुए मांस इसके साथ नये चावलोंके भातको खाने परभी वह तत्क्षण भस्म होजाताहै ॥ ४ ॥

२–सैन्धवाद्यचूर्ण ।

सैन्धवं चित्रकं पथ्या लवङ्गं मरिचं कणा ।
टङ्कणं नागरं चव्यं यमानी मधुरी वचा ॥ ५ ॥
द्रव्याणि द्वादशैतानि समभागानि चूर्णयेत् ।
भावयेन्निम्बुकद्रावैस्त्रिसप्ताहं प्रयत्नतः ॥ ६ ॥
ततो माषद्वयं चूर्णं वारिणोष्णेन पाचयेत् ।
सैन्धवेन सतक्रेण मस्तुना कांजिकेन वा ।
सैन्धवाद्यमिदं चूर्णं सद्यो वह्निं प्रदीपयेत् ॥ ७ ॥

सैंधानमक, चीतेकी जड, हरड, लौंग, काली मिरच, पीपल, सुहागा, सोंठ, चव्य, अजवायन, सौंफ और वच इन बारहों औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे । फिर नींबूके रसमें २१ दिनतक भावना देकर सुखालेवे । फिर उसमेंसे प्रतिदिन दो दो माशे परिमाण चूर्णको गरमजल, सैंधानमक मिलाहुआ मट्ठा दहीका तोड अथवा काँजी इनमेंसे किसी एक अनुपानके साथ सेवन करे तो यह सैन्धवाद्यचूर्ण अग्निको तत्काल दीपन करताहै ॥ ७ ॥

हिंग्वष्टकचूर्ण ।

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे
समधरणधृतानामष्टमो हिङ्गुभागः ।
प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेत-
ज्जनयति जठराग्निं वातरोगांश्च हन्यात् ॥ ८ ॥

सोंठ, पीपल, मिरच, अजमोद, सेंधानमक, जीरा, कालाजीरा प्रत्येकका चूर्ण समान भाग और सब औषधियोंका आठवाँ भाग हींग लेवे । सबको एकत्र कूटपीसकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको भोजनके पहले ग्रासमें घीके साथ मिलाकर भक्षण करे तो यह चूर्ण अग्निको दीपन करता है और वातरोगोंको नष्ट करताहै ॥ ८ ॥

वडवामुखचूर्ण ।

पथ्यानागरकृष्णाकरञ्जबिल्वाग्निभिः सितातुल्यैः ।
वडवामुखं विजयते गुरुतरमपि भोजनं चूर्णम् ॥ ९ ॥

हरड, सोंठ, पीपल, करञ्जके बीज, बेलगिरी और चीतेकी जड इन सबका चूर्ण समान भाग और समस्त चूर्णकी बराबर मिश्री मिलाकर यथोचित मात्रासे सेवन करे तो यह वडवामुख नामक चूर्ण अत्यन्त भारीभोजनको भी शीघ्र पचादेता है ॥ ९ ॥

स्वल्पाग्निमुखचूर्ण ।

हिङ्गुभागो भवेदेको वचा च द्विगुणा भवेत् ।
पिप्पली त्रिगुणा प्रोक्ता शृङ्गवेरं चतुर्गुणम् ॥ १० ॥
यमानिका पञ्चगुणा षड्गुणा च हरीतकी ।
चित्रकं सप्तगुणितं कुष्ठमष्टगुणं भवेत् ॥ ११ ॥
एतद्वातहरं चूर्णं पीतमात्रं प्रसन्नया ।
पिबेद्दध्ना मस्तुना वा सुरया कोष्णवारिणा ॥ १२ ॥
सोदावर्त्तमजीर्णञ्च प्लीहानमुदरं तथा ।
अङ्गानि यस्य शीर्यन्ते विषं वा येन भक्षितम् ॥ १३ ॥
अर्शोहरं दीपनञ्च शूलघ्नं गुल्मनाशनम् ।
कासं श्वासं निहन्त्याशु तथैव क्षयनाशनम् ॥
चूर्णमग्निमुखं नाम न क्वचित् प्रतिहन्यते ॥ १४ ॥

हींग १ भाग, वच २ भाग, पीपल ३ भाग, सोंठ, ४ भाग, अजवायन ५-भाग, हरड ६ भाग, चीतेकी जड ७ भाग और कूठ ८ भाग, लेकर सबको एकत्र बारीक पीस लेवे। यह स्वल्पाग्निमुखचूर्ण सुरामण्ड, दही, दहीका पानी मदिरा अथवा गरमजल इनमेंसे किसी एक अनुपानके साथ सेवन करतेही वायुको हरता है।तथा उदावर्त्त,अजीर्ण, प्लीहा,उदररोग अर्श,शूल,गुल्म, खाँसी, श्वास और क्षय इन सब रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है। एवं अग्निको दीपन करता है। जिसके अङ्ग शिथिल होगये हो या जिसने विष खालियाहो उनकेलिये भी यह चूर्ण हितकरहै।यह अग्निमुखनामक चूर्ण कहीं भी विफल नहीं होताहै १४

बृहदाग्निमुखचूर्ण।

द्वौ क्षारौ चित्रकं पाठा करञ्जं लवणानि च।
सूक्ष्मैलापत्रकं भार्गी कृमिघ्नं हिङ्गु पुष्करम् ॥ १५ ॥
शठी दार्वी त्रिवृन्मुस्तं वचा चेन्द्रयवस्तथा।
धात्री जीरकवृक्षाम्लं श्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥ १६ ॥
अम्लवेतसमम्लीका यमानी सुरदारु च।
अभयातिविषा श्यामा हवुषारग्वधं समम् ॥ १७ ॥
तिलमुष्ककशिग्रूणां कोकिलाक्षपलाशयोः।
क्षाराणि लौहकिट्टञ्च तप्तं गोमूत्रसेचितम् ॥ १८ ॥
समभागानि सर्वाणि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्।
मातुलुङ्गरसेनैव भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ १९ ॥
दिनत्रयन्तु शुक्तेन आर्द्रकस्य रसेन च।
अत्यग्निकारकं चूर्णं प्रदीप्ताग्निसमप्रभम् ॥ २० ॥
उपयुक्तविधानेन नाशयत्यचिराद्गदान्।
अजीर्णकमथो गुल्मान् प्लीहानं गुदजानि च ॥ २१ ॥
उदराण्यन्त्रवृद्धिश्च अष्ठीलां वातशोणितम्।
प्रणुदत्युल्बणान् रोगान् नष्टमग्निं प्रदीपयेत् ॥ २२ ॥
समस्तव्यञ्जनोपेतं भक्तं कृत्वा सुभाजने।
दापयेदस्य चूर्णस्य बिडालपदमात्रकम् ॥
गोदोहमात्रात्तत्सर्वं भस्मीभवति सोष्मकम् ॥ २३ ॥

जवाखार, सज्जी, चीतेकी जड, पाढ, करंज, पाँचों नमक, छोटी इलायची, तेजपात, भारंगी, वायविडङ्ग, हींग, पोहकरमूल, कचूर, दारुहल्दी, निसोत, नागरमोथा, वच, इन्द्रजौ, आमला, जीरा, विषांबिल,(तिन्तडीक) गजपीपल, कालाजीरा, अम्लवेत, इमली, अजवायन, देवदारु, हरड, अतीस, अनन्तमूल, हाऊबेर, अमलवास, तिलोंका क्षार, मोखेका क्षार, सहिंजनेका क्षार, तालमखानेका क्षार, ढाकका क्षार और गोमूत्रमें सिद्ध कियाहुआ लोहकी मण्डूर इन सबको समान भाग लेकर पीसकर एकत्र बारीक चूर्ण कर लेवे। फिर इस चूर्णको बिजौरेनींबूके रसमें तथा तीन दिन शुक्तनामककाँजी और तीन दिन अदरखके रसमें भावना देवे तो यह बृहदग्निमुखचूर्ण सिद्ध होताहै। यह चूर्ण-जठराग्निको प्रज्वलित अग्निकी समान अत्यन्त दीपन करता है। इसको उपयुक्त विधिसे सेवन कियाजाय तो यह अजीर्ण, गुल्म, प्लीहा, अर्श, उदररोग, अन्त्रवृद्धि, अष्ठीला, वातरक्त और अत्यन्त उल्वण दोष इन समस्त रोगोंको बहुत जल्द नष्ट करता है। एवं नष्टहुई अग्निको पुनः दीपन करता है। सम्पूर्ण व्यञ्जनोंसे युक्त भातको सुन्दर थालमें रखकर उसमें चूर्ण डालकर भक्षणकरे तो गोदोहन कालमें जितना समय लगता है उतने समयमें अर्थात् तत्कालही खायाहुआ भोजन सब भस्महोजाता है अर्थात् पच जाताहै॥

अग्निमुखलवण ।

चित्रकं त्रिफला दन्ती त्रिवृत्ता पुष्करं समम् ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रन्तु सैन्धवम् ॥२४॥
भावयित्वा स्नुहीक्षीरैस्तत्काण्डे निःक्षिपेत्ततः ।
मृदुपङ्केनानुलिप्तं प्रक्षिपेज्जातवेदसि ॥ २५ ॥
सुदग्धन्तु समुद्धृत्य संचूर्ण्योष्णाम्बुना पिबेत् ।
एतदग्निमुखं नाम लवणं वह्निकृत्परम् ॥
यकृत् प्लीहोदरानाहगुल्मार्शः पार्श्वशूलनुत ॥२६॥

चीतेकी जड, हरड, आमला, बहेडा, दन्तीकी जड, निसोत और पोहकरमूल इन सबका चूर्ण समानभाग और सब चूर्णकी बराबरभाग सैंधानमकका चूर्ण लेवे। फिर सबको एकत्र थूहरके दूधमें अच्छीतरह खरल करके एक थूहरके डंडेमें भरकर ऊपरसे कपरौटीकरके अग्निमें पुटपाककी विधिसे पकावे। जब उत्तम प्रकारसे पकजाय तब उसको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस

अग्निमुखनामक लवणको छः छः रत्तीकी मात्रासे मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करनेसे अग्निकी अत्यन्त वृद्धि होतीहै। एवं यकृत्, प्लीहा, उदररोग, आनाह, गुल्म, अर्श और पार्श्वशूल आदिरोग दूर होते हैं ॥ २४–२६ ॥

भास्करलवण ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं धान्यकं कृष्णजीरकम् ।
सैन्धवञ्च विडञ्चैव पत्रं तालीशकेशरम् ॥ २७ ॥
एषां द्विपलिकान् भागान् पञ्च सौवर्च्चलस्य च ।
मरिचाजाजिशुण्ठीनामेकैकस्य पलं पलम् ॥ २८ ॥
त्वगेला चार्द्धभागे च सामुद्रात् कुडवद्वयम् ।
दाडिमात् कुडवञ्चैव द्वे पले चाम्लवेतसात् ॥ २९ ॥
एतच्चूर्णीकृतं श्लक्ष्णं गन्धाढ्यममृतोपमम् ।
लवणं भास्करं नाम भास्करेण विनिर्म्मितम् ॥३०॥
जगतस्तु हितार्थाय वातश्लेष्मामयापहम् ।
वातगुल्मं निहन्त्याशु वातशूलानि यानि च ॥३१॥
तक्रमस्तुसुरासीधुशुक्तकाञ्जिकयोजितम् ।
जाङ्गलानान्तु मांसेन रसेषु विविधेषु च ॥ ३२ ॥
मन्दाग्नेरश्नतो नित्यं भवेदाश्वेव पावकः ।
अर्शांसि ग्रहणीदोषं कुष्ठामयभगन्दरान् ॥ ३३ ॥
हृद्रोगमामदोषञ्च विविधानुदरस्थितान् ।
प्लीहानमश्मरीञ्चैव श्वासकासोदरकृमीन् ॥ ३४ ॥
विशेषतः शर्करादीन् रोगान् नानाविधांस्तथा ।
पाण्डुरोगांश्च विविधान् नाशयत्यशनिर्यथा ॥ ३५ ॥

पीपल, पीपलामूल, धनियाँ, काला जीरा, सैंधानमक, विरियासंचरनमक, तेजपात, तालीशपत्र और नागकेशर ये प्रत्येक औषधि आठ आठ तोले काला-नमक २० तोले, मिरच, जीरा और सोंठ प्रत्येक ४–४ तोले, दालचीनी दो तोले, इलायची २ तोले, समुद्रनमक ३२ तोले, अनारदाना १६ तोले और अम्लवेत ८ तोले लेवे। सबको एकत्र कूटपीसकर बारीक चूर्ण करलेवे तो लवणभास्करनामक चूर्ण सिद्ध होता है। इस अत्यन्त सुगन्धित और अमृ-

तकी समान गुणकारी चूर्णको संसारके कल्याणके लिये सूर्यभगवान्‌ने निर्माण कियाहै। इस चूर्णको मट्ठा, दहीका तोड, मदिरा, सिर्का, शुक्तनामक काँजी, और जंगलीजीवोंका मांसरस इन अनुपानोंके साथ अथवा अन्यान्य विविध प्रकारके रसोंके साथ प्रतिदिन सेवन करनेसे मन्दहुई अग्नि तत्कालही अत्यन्त दीपन होती है। एवं वात-कफजन्यरोग, वातगुल्म और सर्वप्रकारके वात-शूल नष्ट होते हैं। यह चूर्ण बवासीर, संग्रहणी, कुष्ठ, भगन्दर, हृदयरोग, आमदोष, अनेक प्रकारके उदरविकार, प्लीहा, पथरी, श्वास, खाँसी, उदरके कृमि, विशेषकर शर्करासम्बन्धीरोग, पाण्डुरोग तथा अन्यान्य विविध प्रकारके रोगोंको इस प्रकार नष्ट करताहै-जैसे वज्र वृक्षोंको तत्काल विनाशकरदेताहै॥२७--३५

श्रीरामबाणरस।

पारदामृतलवङ्गगन्धकं भागयुग्ममरिचेन मिश्रितम्।
जातीफलमथार्द्धभागिकं तिन्तिडीफलरसेन मर्दितम्॥३६
माषमात्रमनुपानयोगतः सद्य एव जठराग्निदीपनः।
संग्रहग्रहणिकुम्भकर्णकं सामवातखरदूषणं जयेत॥
वह्निमान्द्यदशवक्त्रनाशनो रामबाण इव विश्रुतो रसः॥३७

शुद्धपारा, शुद्ध मीठा तेलिया, लौंग और शुद्ध गन्धक प्रत्येक एक एक तोला, मिरच दो तोले एवं जायफल ६ मासे इन सबको एकत्र पीसकर कच्ची इमलीके रसमें खरल करके उर्दकी बराबर गोलियाँ बनालेवे तो यह रामबाण रस सिद्ध होता है। इस रसके सेवनसे जठराग्नि शीघ्रही अत्यन्त दीपन होती है। एवं प्रबलसंग्रहणीरूपी कुम्भकर्ण आमवात रूपखरदूषण और मन्दाग्निरूपी रावणको रामबाणकी समान नष्ट कर देताहै। ऐसा सुना-गया है॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अग्नितुण्डीरस।

शुद्धसूतं विषं गन्धमजमोदा फलत्रयम्।
सर्ज्जिक्षारं यवक्षारं वह्निसैन्धवजीरकम्॥ ३८॥
सौवर्चलविडङ्गानि सामुद्रं टङ्कणं समम्।
विषमुष्टिं सर्वतुल्यं जम्बीराम्लेन मर्द्दयेत॥
मरिचाभां वटीं खादेदग्निमान्द्यप्रशान्तये॥ ३९॥

शुद्ध पारा, शुद्ध मीठातेलिया, शुद्ध गन्धक, अजमोद, हरड, आमला, बहेडा, सज्जी, जवाखार, चीतेकी जड, सेंधानमक, जीरा, कालानमक, वायविडंग, सामुद्रनमक और सुहागा ये सब समान भाग और शुद्ध कुचला सबकी बराबर भाग लेवे । सबको एकत्र कूट पीसकर जम्बीरीनींबूके रसमें खरल करके काली मिरचकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । मन्दाग्निको नष्ट करनेके लिये इनमेंसे प्रतिदिन एक एक गोली खानी चाहिये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अमृतकल्पवटी ।

शुद्धौ पारदगन्धौ च समानौ कज्जलीकृतौ ।
तयोरर्द्धं विषं शुद्धं तत्समं टङ्कणं भवेत् ॥ ४० ॥
भृङ्गराजद्रवैर्भाव्यं त्रिदिनं यत्नतः पुनः ।
मुद्गप्रमाणा वटिका कर्तव्या भिषजां वरैः ॥ ४१ ॥
वटीद्वयं हरेच्छूलमाग्निमान्द्यं सुदारुणम् ।
अजीर्णं जरयत्याशु धातुपुष्टिं करोति च ॥ ४२ ॥
नानाव्याधिहरा चेयं वटी गुरुवचो यथा ।
अनुपानविशेषेण सम्यग्गुणकरी भवेत् ॥ ४३ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक दोनोंको समानभाग लेकर कज्जली करलेवे । फिर शुद्ध मीठातेलिया और सुहागा दोनों आधे भाग लेवे । सबको एकत्र मिलाकर भाँगरेके रसमें ३ दिनतक भावना देकर मूँगकी समान गोलियाँ तैयार करलेवे । इसमेंसे दो दो वटी नित्य सेवन करनेसे शूल, मन्दाग्नि, दारुण, अजीर्ण आदि विकार शीघ्र ही दूर होते हैं । यह वटी धातुपुष्टिको करनेवाली नानाप्रकारकी व्याधियोंको हरनेवाली और गुरुदेवके वचनसे अनुपान विशेषके द्वारा सेवन करनेसे उत्तम गुण करता है ॥ ४०-४३ ॥

अमृतवटी ।

अमृतवराटकमरिचैर्द्विपञ्चनवभागिकैः क्रमशः ।
वटिका मुद्गसमाना कफपित्ताऽग्निमान्द्यहारिणी ४४

शुद्धमीठातेलिया दो भाग, कौडीकी भस्म ५ भाग और काली मिरच ९ भाग लेकर सबको एकत्र जलमें पीसकर मूंगकी बराबर गोलियां बनालेवे । यह वटी कफ-पित्तके विकार और अग्निमान्द्यको दूर करते हैं ॥ ४४ ॥

क्षुधासागर रस ।

त्रिकटुत्रिफला चैव तथा लवणपञ्चकम् ।
क्षारत्रयं रसं गन्धं भागैकं पूर्ववद्द्विषम्[1] ॥ ४५ ॥
गुञ्जामात्रां वटीं कुर्याल्लवङ्गैः पञ्चभिः सह ।
क्षुधासागरनामायं रसः सूर्य्येण निर्म्मितः ॥ ४६ ॥

सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, पाँचोंनमक, जवाखार, सज्जीखार और सुहागा प्रत्येक १-१ तोला एवं पारे गन्धककी कजली और शुद्ध मीठातेलिया प्रत्येक २-२ तोले इन सबको एकत्र जलमें बारीक पीसकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । प्रतिदिन एक एक गोली पाँच २ लौंगोंके साथ सेवन करनेसे क्षुधाकी अत्यन्त वृद्धि होती है । इस क्षुधासागरनामवाले रसको सूर्यभगवान्‌ने निर्म्माण किया है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

लवङ्गादिवटी ।

लवङ्गशुण्ठीमरिचानि भृष्टसौभाग्यचूर्णानि समानि कृत्वा ।
भाव्यान्यपामार्गहुताशवारामभूतमांसादिकजारणाय ४७॥

लौंग, सोंठ, मिरच, और भुनाहुआ सुहागा इनको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे फिर उसको चिरचिटे और चीतेकी जडके रसमें अलग २ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे इस गोलीके सेवन करनेसे बहुतसा खायाहुआ मांस भी पच जाता है ॥ ४७ ॥

बृहल्लवङ्गादिवटी ।

लवङ्गजातीफलधान्यकुष्ठं जीरद्वयं त्र्यूषणत्रैफलञ्च ।
एलात्वचं टङ्गवराटमुस्तं वचाजमोदा विडसैन्धवञ्च ॥ ४८॥
तदर्द्धकं पारदगन्धमभ्रं लौहञ्च तुल्यं सुविचूर्ण्य सर्वम् ।
तन्नागवल्लीदलतोयपिष्टं बल्लप्रमाणां वटिकाञ्च कृत्वा ॥४९॥
प्रातर्विदध्यादपि चोष्णतोयैरियं निहन्याद्ग्रहणीविकारम् ।
आमानुबद्धं सरुजं प्रवाहं ज्वरं तथा श्लेष्मभवं सशूलम् ॥५०
कुष्ठाम्लपित्तं प्रबलं समीरं मन्दानलं कोष्ठगतञ्च वातम् ।
वटीलवङ्गाद्यवसुप्रणीता तथा सवातं विनिहन्ति शीघ्रम् ॥

[1] " पूर्ववद्द्विषमिति अमृतवटयुक्तभागवत् " ॥

लौंग, जायफल, धनियाँ, कूठ, जीरा, कालाजीरा, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, इलायची, दारचीनी, सुहागा, कौडीकी भस्म, नागरमोथा, वच, अजमोद, विरियासंचरनमक और सैंधानमक ये प्रत्येक १-१ भाग एवं शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, अभ्रककी भस्म लोहेकी भस्म ये प्रत्यक आधा २ भाग सबको एकत्र पानोंके रसमें खरलकरके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेनी चाहिये । इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली गरमजलके साथ सेवन करे तो यह बृहल्लवंगाद्यवटी संग्रहणी, आमसहित मलविबन्ध, पीडायुक्त प्रवाह, ज्वर, कफजन्य, शूल, कुष्ठ, अम्लपित्त, प्रबलवायु, मन्दाग्नि, कोष्ठगतवायु तथा वातयुक्त अन्यान्य सर्वप्रकारके विकारोंको नष्ट करतीहै ५०

अजीर्णकण्टकरस ।

शुद्धसूतं विषं गन्धं समं सर्वं विचूर्णयेत ।
मरिचं सर्वतुल्यं स्यात् कण्टकार्य्याः फलद्रवैः ॥५१॥
मर्दयेद्भावयेत् सर्वमेकविंशतिवारकम् ।
गुञ्जामात्रां वटीं खादेत्सर्वाजीर्णप्रशान्तये ॥
अजीर्णकण्टकः सोऽयं रसो हन्ति विषूचिकाम् ॥५२॥

शुद्ध पारे और शुद्ध गन्धकको एक एक तोला लेकर कज्जली बनालेवे । फिर शुद्ध मीठातेलिया १ तोला और मिरच ३ तोले लेकर सबको एकत्र कटेरीके फलोंके रसमें २१ वार भावना देकर खरल करे फिर सर्वप्रकारके अजीर्णको शमन करनेके लिये इसमेंसे एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनाकर सेवन करे । यह अजीर्णकण्टकरस विषूचिकाको विशेषकर दूर करताहै ॥५१॥५२॥

महोदधिवटी ।

एकैकं विषसूतौ च जाती टङ्कं द्विकं द्विकम् ।
कृष्णात्रिकं विश्वषट्कं गन्धं कापर्दकं द्विकम् ॥ ५३ ॥
देवपुष्पं बाणमितं सर्वं संमर्द्य यत्नतः ।
महोदधिवटी नाम्ना नष्टमग्निं प्रदीपयेत् ॥ ५४ ॥

शुद्ध मीठा तेलिया १ तोला, शुद्धपारा १ तोला, जायफल २ तोले, सुहागा दो तोले पीपल ३ तोले, सोंठ ६ तोले, शुद्धगन्धक २ तोले, कौडीकी भस्म २ तोले और लौंग ५ तोले सबको एकत्र जलमें यथाविधि खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह महोदधि नामवाली वटी नष्टहुई अग्निको तत्काल दीपन करतीहै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

बृहन्महोदधिवटी ।

लवङ्गं चित्रकं शुण्ठी जयपालं समं समम् ।
टङ्कणञ्च प्रदातव्यं वृद्धदारञ्च कार्षिकम् ॥ ५५ ॥
चतुर्द्दशभावनाश्च दन्तीद्रावैः प्रदापयेत् ।
लिम्पाकेन त्रिधा देया वृद्धदारेण पञ्चधा ॥ ५६ ॥
रसं गन्धञ्च गरलं मेलयित्वा विभावयेत् ।
आर्द्रकस्य रसेनैव चित्रकस्य रसेन वा ॥ ५७ ॥
मुद्गप्रमाणां वटिकां कृत्वा खादेत् दिनेदिने ।
क्षुत्प्रबोधकरी चेयं जीर्णज्वरविनाशिनी ॥ ५८ ॥

लौंग, चीतेकी जड, सोंठ, जमालगोटा और सुहागा प्रत्येक एक एक तोला और विधारा २ तोले इन सबको एकत्र मिश्रित करके दन्तीके काथमें१४-वार कागजीनींबूके रसमें ३ बार और विधारेके रसमें ५ बार भावना दे। पश्चात् उसमें शुद्ध पारे और शुद्धगन्धककी कज्जली २ भाग और शुद्धवत्स-नाभविष १ भाग मिलाकर अदरखके रसमें और चीतेके रसमें ७-७ बार खर-लकरके मूँगकी बराबर गोलियाँ तैयार करलेवे इनमेंसे प्रतिदिन एक एक गोली खानेसे क्षुधाकी वृद्धि होती है और जीर्णज्वर दूर होताहै ॥ ५५-५८ ॥

अग्निकुमाररस ।

रसेन्द्रगन्धौ सह टङ्कणेन समं विषं योज्यमिह त्रिभागम् ।
कपर्द्दशङ्खाविह नेत्रभागौ मरीचमत्राष्टगुणं प्रदेयम् ॥ ५९ ॥
सुपक्वजम्बीररसेन घृष्टः सिद्धो भवेदग्निकुमार एषः ।
विषूचिकाजीर्णसमीरणार्त्ते दद्याद्द्विवल्लं ग्रहणीगदेच॥६०॥
"अत्र सर्वमेकभागापेक्षया वचनान्तरसंवादात" ॥

पारे और गन्धककी कज्जली २ भाग, सुहागा १ भाग, शुद्ध मीठा तेलिया ३ भाग, कौडीकी भस्म ३ भाग, शंखकी भस्म ३ भाग और मिरच ८ भाग, इन सबका एकत्र चूर्ण करके पकेहुए जम्बीरीनींबूके रसमें खरलकरे तो अग्नि कुमाररस सिद्ध होताहै। इस रसको विषूचिका, अजीर्ण, वातविकार और संग्रहणीरोगमें दो दो रत्ती प्रमाण सेवन कराना चाहिये॥ ५९ ॥ ६० ॥

बृहदाग्निकुमाररस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं गन्धतुल्यश्च टङ्कणम् ।
फलत्रयं यवक्षारं व्योषं पञ्चपटूनि च ॥ ६१ ॥
द्वादशैतानि सर्वाणि रसतुल्यानि दापयेत् ।
संमर्द्य सप्तधा सर्वं भावयेदार्द्रकद्रवैः ।
संशोष्य चूर्णयित्वा तु भक्षयेदार्द्रकाम्बुना ।
शाणमात्रं वयो वीक्ष्य नानाजीर्णप्रशान्तये ॥ ६२ ॥
रसश्चाग्निकुमारोऽयं महेशेन प्रकाशितः ।
महाग्निकारकश्चैव कालभास्करतेजसाम् ॥ ६३ ॥
अग्निमान्द्यभवान् रोगान् शोथं पाण्ड्वामयं जयेत् ।
दुर्नामग्रहणी सामरोगान् हन्ति न संशयः ॥
यथेष्टाहारचेष्टस्य नास्त्यत्र नियमः क्वचित् ॥ ६४ ॥

शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, सुहागेकी खील २ भाग एक हरड, आमला, बहेडा, जवाखार, सोंठ, पीपल, मिरच और पाँचों नमक ये बारहों औषधियें एक एक भाग लेवे । सबको एकत्र खरल करके अदरखके रसमें ७ बार भावना देवे फिर उसको सुखाकर चूर्ण करलेवे । इस रसको चार २ मासेकी मात्रासे अथवा अवस्थाका विचार करके अदरखके रसके साथ भक्षण करे तो इससे विविधप्रकारके अजीर्ण शमन होते हैं । इस बृहद-ग्निकुमार रसको महादेवजीने प्रकाशित किया है । यह रस–कालाग्निके तेजकी समान जठराग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाला एवं मन्दाग्निसे उत्पन्नहुए रोग, सूजन, पाण्डुरोग, बवासीर संग्रहणी और आमयुक्त अनेक प्रकारके रोगोंको निश्चय नष्ट करनेवाला है । इसपर यथेष्ट आहार विहार करना चाहिये । इस-पर किसी प्रकारका परहेज नहीं है ॥ ६१–६४ ॥

हुताशनरस ।

गन्धेशटङ्कमेकैकं विषमत्र त्रिभागिकम् ।
अष्टभागन्तु मरिचं जम्भाम्भोमर्दितं दिनम् ॥ ६५ ॥
तद्वटीं मुद्गमानेन कृत्वार्द्रेण प्रयोजयेत् ।
शूलारोचकगुल्मेषु विषूच्यामग्निमान्द्यके ॥
अजीर्णसन्निपातादौ शैत्ये जाड्ये शिरोगदे ॥ ६६ ॥

शुद्ध गन्धक, शुद्धपारा और सुहागा प्रत्येक एक एक भाग, शुद्ध मीठातेलिया ३ भाग और मिरच ८ भाग इन सबको नींबूके रसमें १ दिन तक खरल करके मूँगकी बराबर गोलियाँ बनालेवे इस रसकी एक एक गोली अदरखके रसके साथ सेवन करनेसे शूल, अरुचि, गुल्म, विषूचिका, मन्दाग्नि, अजीर्ण, सन्निपात, शिथिलता जडता, शिरोरोगमें अधिक लाभ होताहै॥६६॥

बृहद्धुताशन रस ।

एकद्विकद्वादशभागयुक्तं योज्यं विषं टङ्कणमूषणञ्च ।
हुताशनो नाम हुताशनस्य करोति वृद्धिं कफजिन्नराणाम्

शुद्ध मीठातेलिया १ भाग, सुहागा २ भाग और मिरच १२ भाग इनको एकत्र खरल करके दो दो रत्तीके गोलियाँ बनाकर सेवन करनेसे यह हुताशननामवाला रस जठराग्निकी विशेषरूपसे वृद्धि करता है और कफको नष्ट करताहै ॥ ६७ ॥

जातीफलादिवटी ।

जातीफलं लवङ्गं च पिप्पली सिन्धुकामृतम् ।
शुण्ठी धुस्तूरबीजं च दरदं टङ्कणं तथा ॥ ६८ ॥
समं सर्वं समाहृत्य जम्भाम्भसा विमर्दयेत् ।
वल्लमाना वटी कार्या चाग्निमान्द्यप्रशान्तये ॥ ६९ ॥

जायफल, लौंग, पीपल, सिम्हालूके पत्ते, (किसी किसीके मतसे सैंधानमक), शुद्ध मीठातेलिया, सोंठ, धतूरेके बीज, सिंगरफ और सुहागा इन सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके जम्बीरी नींबूके रसमें खरल करे। फिर इसकी दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनाकर मन्दाग्निको शान्त करनेके लिये सेवन करे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

भास्कररस ।

विषं सूतं फलं गन्धं त्र्यूषणं टङ्कजीरकम् ।
एकैकं द्विगुणं लौहं शङ्खमभ्रवराटकम् ॥ ७० ॥
सर्वतुल्यं लवङ्गं च जम्बीरैर्भावयेद्भिषक् ।
सप्तवासरपर्यन्तं ततः स्याद् भास्करो रसः ॥ ७१ ॥

" अत्र सिन्धुकः सिन्धुवारः। भट्टस्तु सैन्धवमित्याह ॥ "

गुञ्जाद्वयप्रमाणेन वटीं कुर्याद् विचक्षणः।
ताम्बूलीदलयोगेन वटीं संचर्व्य भक्षयेत् ॥ ७२ ॥
शूलरोगेषु सर्वेषु विषूच्यामग्निमान्द्यके।
सद्यो वह्निकरो ह्येष चन्द्रनाथेन भाषितः ॥ ७३ ॥

शुद्ध मीठातेलिया, शुद्धपारा, त्रिफला, शुद्धगन्धक, सोंठ, पीपल, मिरच, सुहागा और जीरा ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला एवं लौह, शंखभस्म, अभ्रक और कौडीकी भस्म, ये प्रत्येक २-२ तोले और सम्पूर्ण औषधियोंका बराबर भाग लौंग लेवे इन सबका एकत्र चूर्ण करके जम्बीरी नींबूके रसमें ७ दिनतक खरल करे तो भास्करनामकरस सिद्ध होता है। इसकी दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन एक एक गोली पानमें रखकर भक्षण करे तो यह रस जठराग्निको तत्काल दीपन करता है एवं सर्वप्रकारके शूल, विषूचिका और अग्निमान्द्यादि विकारोंमें हितकारी है। ऐसा चन्द्रनाथने कहाहै॥ ७०--७३ ॥

अग्निसन्दीपन रस।

षडूषणं पञ्चपटु त्रिक्षारं जीरकद्वयम्।
ब्रह्मदर्भोग्रगन्धे च मधुरीहिङ्गु चित्रकम् ॥ ७४ ॥
जातीफलं तथा कुष्ठं जातीकोषं त्रिजातकम्।
चिञ्चाशेखारिकक्षारममृतं रसगन्धकौ ॥ ७५ ॥
लौहमभ्रञ्च वङ्गञ्च लवङ्गञ्च हरीतकी।
समभागानि सर्वाणि भागौ द्वावम्लवेतसात् ॥ ७६ ॥
शङ्खस्य भागाश्चत्वारः सर्वमेकत्र भावयेत्।
क्काथेन पञ्चकोलस्य चित्रापामार्गयोस्तथा ॥ ७७ ॥
अम्ललोणीरसेनैव प्रत्येकं भावयेद्द्विधा।
त्रिःसप्तकृत्वा लिम्पाकरसैः पश्चाद्विभावयेत् ॥ ७८ ॥
बदराभा वटी कार्या भोक्तव्या सन्ध्ययोर्द्वयोः।
अनुपानं प्रदातव्यं बुद्ध्वा दोषानुसारतः ॥ ७९ ॥
अग्निसन्दीपनो नाम रसोऽयं भुवि दुर्लभः।
दीपयत्याशु मन्दाग्निमजीर्णञ्च विनाशयेत् ॥
अम्लपित्तं तथा शूलं गुल्ममाशु व्यपोहति ॥ ८० ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड, सोंठ, मिरच, पाँचों नमक, जवाखार, सज्जी, सुहागा, जीरा, कालाजीरा, अजवायन, वच, सौंफ, हींग, चीतेकी जड, जायफल, कूठ, जावित्री, दारचीनी, तेजपात, इलायची, इमलीकी छालकी भस्म, चिरचिटेकी भस्म, शुद्ध मीठा तेलिया, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहा, अभ्रक, वङ्ग, लौंग और हरड इन सबको समानभाग अर्थात् प्रत्येक १-१ तोला, एवं अम्लवेत २ तोले और शंखभस्म ४ तोले लेवे। सबको एकत्र चूर्ण करके पञ्चकोलके काथ, चीतेकी जडके काथ, चिरचिटेके काथ और नोनियाके रसमें पृथक् पृथक् दो दो बार भावना देवे। फिर जम्बीरी नींबूके रसमें २१ बार भावना देकर छोटे बेरकी समान गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकालमें एक एक गोली खानी चाहिये। और ऊपरसे वातादि दोषोंको देखकर तदनुसार अनुपान सेवन करना चाहिये। यह अग्निसन्दीपननामक रस पृथ्वीमें परमदुर्लभ है। यह मन्दाग्निको तत्क्षण दीपन करता है। एवं अजीर्ण, अम्लपित्त, शूल और गुल्मरोगको शीघ्र नष्ट करता है॥ ७४-८०॥

त्रिफलालौह।

त्रिफलामुस्तवेल्लैश्च सितया कणया समम्।
खरमञ्जरिबीजैश्च लौहं भस्मकनाशनम्॥ ८१॥

त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, मिश्री, पीपल और चिरचिटेके बीज इन समस्त औषधियोंका चूर्ण समान भाग और सम्पूर्ण चूर्णकी बराबर लोहभस्म मिलाकर दो दो रत्तीकी मात्रासे सेवन करे तो यह लोह भस्मकरोगको दूर करताहै॥ ८१॥

प्रदीपनरस।

रसनिष्कं गन्धनिष्कं निष्कमात्रं प्रदीपनम्।
मानमर्द्धं प्रदातव्यं चुल्लिकालवणं भिषक्॥ ८२॥
मर्दयित्वा प्रदातव्यमथास्य माषमात्रकम्।
अजीर्णे चाग्निमान्द्ये च दातव्यो रसवल्लभः॥ ८३॥

शुद्धपारा ४ मासे, शुद्ध गन्धक ४ मासे, शुद्ध मीठा तेलिया ४ मासे और चुल्लिकालवण २ मासे इनको एकत्र खरल करके अजीर्ण और मन्दाग्नि रोगमें एक एक मासेकी मात्रासे सेवन करावे॥ ८२॥ ८३॥

विजयरस ।

रसस्यैकं पलं दत्त्वा नागंञ्च गन्धकं पलम् ।
क्षारत्रयं पलं देयं लवङ्गं पलपञ्चकम् ॥ ८४ ॥
दशमूलीजयाचूर्णं तद्द्रवेण तु भावयेत् ।
चित्रकस्य रसेनाथ भृङ्गराजरसेन तु ॥ ८५ ॥
शिग्रुमूलद्रवैश्चापि ततो भाण्डे निरुध्य च ।
याममात्रं पचेदग्नौ मर्द्दयेदार्द्रकद्रवैः ॥
ताम्बूलीपत्रसंयुक्तं खादेन्निष्कमितं सदा ॥ ८६ ॥

शुद्धपारा, शुद्ध विष, शुद्ध गन्धक, सुहागा, जवाखार और सज्जी ये प्रत्येक चार चार तोले एवं लौंग २० तोले, दशमूलकी सब औषधियाँ २० तोले और भाँग २० तोले लेवे। एकत्र चूर्ण करके दशमूलके काथ, भाँगके रस चीतेके काथ,भाँगरेके स्वरस और सहिंजनेकी जडके काथमें अलग २ सात२बार भावना देवे। फिर एक पात्रमें बन्द करके १ प्रहरतक अग्निमें पकावे पश्चात् औषधिको निकालकर अदरखके रसमें खरल करलेवे। इस रसको प्रतिदिन चार चार मासे प्रमाण लेकर पानमें रखकर सेवन करना चाहिये। इसमें मन्दाग्नि-आदि उदर सम्बन्धी विकार दूर होते हैं ॥ ८४--८६ ॥

अग्निरस ।

मरिचाब्दवचा कुष्ठं समांशं विषमेव च ।
आर्द्रकस्य रसैः पिष्ट्वा मुद्गमात्रस्तु कारयेत् ॥
स्वयमग्निरसो नाम सर्वाजीर्णप्रशान्तये ॥ ८७ ॥

मिरच, नागरमोथा, वच और कूठ, ये प्रत्येक ११ तोले एवं शुद्ध वत्सनाभ ४ तोले, सबको अदरखके रसमें खरल करके मूँगकी बराबर गोलियाँ बना-लेवे। यह स्वयं अग्निनामवाला रस सर्वप्रकारके अजीर्णको शमन करनेके लिये देना चाहिये ॥ ८७ ॥

टङ्कणादि वटी ।

टङ्कणनागरगन्धकपारदगरलं मरिचं समभागयुतम् ।
लकुचस्वरसैश्चणकप्रतिमा गुडिका जनयत्यचिरादनलम् ॥

---

१ "नागशब्देन विषं ग्राह्यम्" ॥

सुहागा, सोंठ, शुद्धगन्धक, शुद्धपारा, शुद्धविष और कालीमिरच ये प्रत्येक औषधि समानभाग लेकर वडहलके पत्तोंके रसमें खरल करके चनेकी समान गोलियाँ बनाकर सेवन करे। यह वटी तत्काल अग्निको दीपन करती है॥८८

रस-राक्षस।

ताम्रं पारदगन्धकं त्रिकटुकं तीक्ष्णञ्च सौवर्चलं
खल्ले मर्द्य दिनं निधाय सिकताकुम्भेषु यामं ततः।
स्विन्नं तेष्वपि रक्तशाकिनिभवं क्षारं समं भावये-
देकीकृत्य च मातुलुङ्गकजलैर्नाम्ना रसो राक्षसः॥८९॥

ताँबाकी भस्म, शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, सोंठ, पीपल, मिरच, तीक्ष्णलोह और कालानमक इन सबको समानभाग लेकर खरलमें १ दिनतक घोटकर बालुकायंत्रमें रख १ प्रहरतक पकावे। जब पककर स्वयं शीतल होजाय तब उसमें लाल विषखपरेका क्षार सब औषधिके समान मिलाकर बिजौरेनींबूके रसमें खरल करलेवे तो यह रसराक्षसनामसे प्रसिद्ध रस सिद्ध होताहै। यह मन्दाग्निको नष्ट करताहै॥ ८९॥

पञ्चामृतवटी।

अभ्रकं पारदं ताम्रं गन्धकं मरिचानि च।
समभागमिदं चूर्णं चाङ्गेरीरसमर्दितम्॥ ९०॥
मर्दिते हि रसे भूयो जयन्तीसिन्धुवारयोः।
भावनापि च दातव्या गुञ्जापरिमिता वटी॥ ९१॥
तप्तोदकानुपानेन चतस्रस्तिस्र एव वा।
वह्निमान्द्ये प्रदातव्या वट्यः पञ्चामृतास्तथा॥ ९२॥

अभ्रककी भस्म, शुद्धपारा, ताँबाकी भस्म, शुद्धगन्धक और मिरच इन प्रत्येकके चूर्णको समान भाग लेकर नोनियाके रसमें खरल करके अरणी और सिह्मालूके रसमें खरल करे। फिर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनाकर इनमेंसे ३ वा ४ गोली गरम जलके साथ सेवन करावे तो यह पञ्चामृतनामवाली वटी मन्दाग्निरोगमें पञ्चामृतकी समान गुण करती है॥ ९०-९२॥

ज्वालानलरस।

क्षारद्वयं सूतगन्धौ पञ्चकोलमिदं समम्।
सर्वतुल्या जया देया तदर्द्धं शिग्रुवल्कलम्॥ ९३॥

एतत् सर्वं जया शिग्रु वह्निमार्कवजै रसैः।
भावयेत्रिदिनं घर्मे ततो लघुपुटे पचेत् ॥ ९४॥
भावयेत्सप्तधा चार्द्रद्रवैर्ज्वालानलो भवेत्।
पाचनो दीपनो हृद्यश्चोदरामयनाशनः ॥ ९५ ॥

जवाखार, सज्जी, पारा, गन्धक और पंचकोलकी औषधियाँ ये सब समान भाग, समस्त औषधियोंकी बराबर भाँग और भाँगसे आधी सैंजनेकी जडकी छाल इन सबका एकत्र चूर्ण करके भाँग, सैंजना, चीता और भाँगरा प्रत्येकके रसमें वा काथमें पृथक् २ तीन दिनतक धूपमें खरल करके लघुपुटमें पकावे। फिर अदरखके रसमें ७बार खरल करे तो ज्वालानल नामकरस सिद्ध होता है। यह रस पाचक, अग्निप्रदीपक हृदयको हितकारी, उदररोग नाशक है९३-९५

भक्तविपाकवटी।

माक्षिकं रसगन्धौ च हरितालं मनःशिला।
त्रिवृद्दन्ती वारिवाहं चित्रकञ्च महौषधम् ॥ ९६ ॥
पिप्पली मरिचं पथ्या यमानी कृष्णजीरकम्।
रामठः कटुका पाठा सैन्धवं साजमोदकम् ॥ ९७ ॥
जातीफलं यवक्षारं समभागं विचूर्णयेत्।
आर्द्रकस्य रसेनैव निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च ॥ ९८ ॥
सूर्य्यावर्त्तरसेनैव तुलस्याः स्वरसेन च।
आतपे भावयेद्वैद्यः खल्लपात्रे च निर्म्मले ॥
पेषयित्वा वटीं खादेद्गुञ्जाफलसमप्रभाम् ॥ ९९ ॥
भुक्तोत्तरीये बहुभोजनान्ते मुहुर्मुहुर्वाञ्छति भोजनानि।
आमानुबन्धे च चिराग्निमान्द्ये विड्विग्रहे पित्तकफानुबन्धे॥
शोथोदरे चार्शोगदेऽप्यजीर्णे शूलप्रदोषे प्रभवे ज्वरे च।
शस्ता वटीभक्तविपाकसंज्ञा सुखं विपाच्याशु नरस्य कोष्ठम्

सोनामाखीकी भस्म, शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, हरतालकी भस्म, मैनसिलकी भस्म, निसोत, दन्ती, नागरमोथा, चीता, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, अजवायन, कालाजीरा, हींग, कुटकी, पाढ, सैंधानमक, अजमोद, जायफल और जवाखार इन सबको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण करे लेवे। फिर इस चूर्णको उत्तम खरलमें डालकर अदरख, निर्गुण्डी, हुलहुल और तुलसी इन प्रत्येकके

स्वरससे अलग २ धूपमें रखकर भावना देवे। पश्चात् खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनाकर सेवन करे। इस वटीको बहुतसा भोजन करनेके बाद सेवन करनेसे बार बार भोजनकी इच्छा होती है। एवं आमयुतमलविबन्ध, बहुत पुरानी मन्दाग्नि, मलावरोध, पित्त और कफका अनुबन्ध, शोथ, उदररोग, बवासीर, अजीर्ण, शूल और ज्वर इन समस्त रोगोंमें यह भक्तविपाकनामवाली वटी हितकारिणी कहीगई है। तथा मनुष्यके कोठेको शीघ्रही शुद्ध करके सुख उत्पन्न करती है॥ ९६-१०१॥

बृहद्भक्तपाकवटी।

अभ्रं पारदगन्धकौ सदरदौ ताम्रञ्च तालं शिला
वङ्गञ्च त्रिफला विषञ्च कुनटी भागास्त्रयो दन्तिनः।
शृङ्गीव्योषयमानिचित्रजलदं द्वे जीरके टङ्कणं
ह्येलापत्रलवङ्गहिङ्गु कुटकी जातीफलं सैन्धवम्॥१०२॥
एतान्यार्द्रकचित्रदन्तिसुरसावासारसैर्बिल्वजैः
पत्रोत्थैरपि सप्तधा सुविमले खल्ले विभाव्यान्यतः।
खादेद्वल्लमितं तथा च सकलव्याधौ प्रयोज्या बुधैः
विड्बन्धे कफजे त्रिदोषजनिते ह्यामानुबन्धेऽपि च १०३
मन्देऽग्नौ विषमज्वरे च सकले शूले त्रिदोषोद्भवे
हन्यात्तानपि भक्तपाकवटिका भूयश्च सामं जयेत्॥१०४

अभ्रककी भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सिंगरफ, ताँबेकी भस्म, हरतालकी भस्म, मैनसिलकी भस्म, वंग भस्म, त्रिफला, शुद्ध मीठातेलिया, नैपाली मैनसिल, दन्तीके बीज, काकडासिंगी, त्रिकुटा, अजवायन, चीता, नागरमोथा, जीरा, कालाजीरा, सुहागा, इलायची, तेजपात, लौंग, हींग, कुटकी, जायफल और सेंधानमक इन सबको समान भाग लेकर शुद्ध खरलमें रख अदरख, चीता, दन्ती, तुलसी, अडूसा और बेल इन प्रत्येकके पत्तोंके रसमें ७-७ बार भावना देवे। फिर इसकी दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनाकर सेवन करे। बुद्धिमान् वैद्यको चाहिये कि इस वटीको सब प्रकारकी व्याधियोंमें प्रयोग करे। मलावरोध, कफजनितरोग, त्रिदोषसे उत्पन्नहुए रोग, आमानुबन्ध, मन्दाग्नि, विषमज्वर, सर्वप्रकारके शूल एवं त्रिदोषजन्य अन्यान्य प्रकारके तथा आमयुक्त विकार इन सबको यह बृहद्भक्तपाकवटी दूर करती है॥

पाशुपतरस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं त्रिभागं तीक्ष्णभस्मकम् ।
त्रिभिः समं विषं देयं चित्रकक्वाथभावितम् ॥ १०५ ॥
धूर्त्तबीजस्य भस्मापि द्वात्रिंशद्भागसंयुतम् ।
कटुत्रयं त्रिभागं स्याल्लवङ्गैला च तत्समम् ॥ १०६ ॥
जातीफलं तथा कोषमर्द्धभागं नियोजयेत् ।
तथार्द्धं लवणं पञ्च स्नुह्यर्कैरण्डतिन्तिडी ॥ १०७ ॥
अपामार्गाश्वत्थजं च क्षारं दद्याद्विचक्षणः ।
हरीतकी यवक्षारं स्वर्जिका हिङ्गु जीरकम् ॥ १०८ ॥
टङ्कणं सूततुल्यं तु चाम्लयोगेन मर्द्दयेत् ।
भोजनान्ते प्रयोक्तव्या गुञ्जाफलप्रमाणतः ॥ १०९ ॥
रसः पाशुपतो नाम सद्यः प्रत्ययकारकः ।
दीपनः पाचनो हृद्यः सद्यो हन्ति विषूचिकाम्॥११०
तालमूलीरसेनैव उदरामयनाशनः ।
मोचारसेनातिसारं ग्रहणीं तक्रसैन्धवैः ॥ १११ ॥
सौवर्च्चलकणाशुण्ठीयुतः शूलं विनाशयेत् ।
अर्शो हन्ति च तक्रेण पिप्पल्या राजयक्ष्मकम्॥११२
वातरोगं निहन्त्याशु शुण्ठीसौवर्च्चलान्वितः ।
शर्कराधान्ययोगेन पित्तरोगं निहन्त्ययम् ॥ ११३ ॥
पिप्पलीक्षौद्रयोगेन श्लेष्मरोगश्च तत्क्षणात् ।
अतः परतरो नास्ति धन्वन्तरिमतो रसः ॥ ११४ ॥

शुद्धपारा एक भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, तीक्ष्ण लोहभस्म ३ भाग और शुद्ध मीठा तेलिया ६ भाग इन सबको एकत्र कर चीतेके क्वाथमें भावना देवे। फिर उसमें धतूरेके बीजोंकी भस्म ३२ भाग, त्रिकुटा ३ भाग, लौंग ३ भाग, इलायची ३ भाग, जायफल और जावित्री प्रत्येक डेढ २ भाग, तथा पाँचों-नमक, थूहर, आक, अण्ड, इमली, चिरचिटा, पीपल इनका क्षार दो भाग, और हरड, जवाखार, सज्जी, हींग, जीरा और सुहागा ये प्रत्येक एक एक भाग मिलाकर काँजी आदि अम्लपदार्थोंके रसमें खरल करे इसको प्रतिदिन एकएक

रत्तीकी मात्रासे भोजनके पश्चात् सेवन करे । यह पाशुपतनामवाला रस तत्काल अग्निको दीपन करनेवाला, पाचक, हृदयको हितकारी और विषूचिका-रोगको शीघ्र नष्ट करता है । मुसलीके क्वाथके साथ इस रसको सेवन करनेसे उदररोग दूर होते हैं । मोचरसके साथ देनेसे अतिसार, मट्ठे और सैंधानमकके साथ देनेसे संग्रहणी एवं कालानमक पीपल और सोंठ इनके समान भाग चूर्णके साथ इस रसको देनेसे शूलरोग दूर होता है । यह रस तक्रके साथ बवासीर, पीपलके साथ राजयक्ष्मा, सोंठ और कालेनमकके साथ सेवन करनेसे वातरोगको नष्ट करता है । एवं मिश्री और धनियेके साथ सेवन करनेसे पित्तके रोग और पीपल तथा शहदके साथ सेवन करनेसे कफके रोगोंको तत्क्षण दूर करता है । इससे बढकर अन्य औषध नहीं है ऐसा धन्वन्तरि महाराजने कहा है ॥ १०५--११४ ॥

अजीर्णबलकालानलरस ।

द्विपलं शुद्धसूतञ्च गन्धकञ्च समं समम् ।
लौहं ताम्रं हरतालं विषं तुत्थं सवङ्गकम् ॥ १५ ॥
पलप्रमाणञ्च पृथक् लवङ्गं टङ्कणं तथा ।
दन्तीमूलं त्रिवृच्चूर्णमेकैकं पलसम्मितम् ॥ १६ ॥
अजमोदा यमानी च द्विक्षारलवणानि च ।
पृथगर्द्धपलं ग्राह्यमेकीकृत्य च भावयेत् ॥ १७ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैकविंशतिः पञ्चकोलजैः ।
दशधा भावयेत्तोयैर्गुडूचीनां रसैर्दश ॥ १८ ॥
सर्वार्द्धं मरिचं दत्त्वा काचकुप्याञ्च धारयेत् ।
चणमात्रां वटीं कृत्वा च्छायायां परिशोषयेत् ॥१९॥
रसोऽजीर्णबलकालानल एष प्रकीर्त्तितः ।
अनेककालनष्टाग्नेर्दीपनः परमः स्मृतः ॥ १२० ॥
आमवातकुलध्वंसी प्लीहपाण्डुगदापहः ।
प्रमेहानाहविष्टम्भसूतिकाग्रहणीहरः ॥ २१ ॥
श्वासकासप्रतिश्याययक्ष्मक्षयविनाशनः ।
अम्लपित्तञ्च शूलञ्च भगन्दरगुदोद्भवौ ॥ २२ ॥

अष्टोदराणि प्लीहानां यकृतं हन्ति दारुणम् ।
आकण्ठं भोजयित्वा तु खादयेच्च रसोत्तमम् ॥ २३ ॥
अर्द्धयामेन तत् सर्वं भस्मीभवति निश्चितम् ।
चतुर्विधरसोपेतं महाभोजनमिच्छतः ॥ २४ ॥
भोजस्य नृपतेः कांक्षा भोजनात्कृपया कृतः ।
गहनानन्दनाथेन सर्वलोकहितैषिणा ॥ २५ ॥

शुद्धपारा ८ तोले, शुद्धगन्धक ८ तोले, दोनोंकी कज्जली एवं लोहेकी भस्म, ताम्रभस्म, हरताल भस्म, शुद्ध विष, शुद्ध तूतिया, वंगभस्म, लौंग, सुहागा, दन्तीकी जड और निसोथ ये प्रत्येक चार चार तोले तथा अजमोद, अजवायन, जवाखार, सज्जी और पाँचोंनमक प्रत्येक औषधि दो दो तोले इन सबको एकत्र मिलाकर अदरखके रसमें २१ बार एवं पंचकोलकी औषधियोंके क्वाथमें और गिलोयके रसमें दसदस बार खरल करे। फिर इसमें समस्त औषधिसे आधा भाग मिरचोंका चूर्ण मिलाकर चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । उनको छायामें सुखाकर शीशीमें भरकर रखदेवे । इसको अजीर्णबलकालानलरस कहते हैं । यह रस बहुत कालसे नष्टहुई जठराग्निको अत्यन्त दीपन करता है । एवं आमवात, प्लीहा, पाण्डुरोग, प्रमेह, अफारा, मलविबन्ध, प्रसूतिरोग, संग्रहणी, श्वास, खाँसी, प्रातिश्याय, राजयक्ष्मा, क्षय, अम्लपित्त, शूल, भगन्दर, ववासीर, ८ प्रकारके उदररोग और दारुण यकृत् इन सब रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है । जो कण्ठपर्यन्त भोजन करके इस रसको खावे तो खायाहुआ सब भोजन अर्द्धप्रहरमें ही निश्चय भस्म होजाता है भोज्य, भक्ष्य, चोष्य और लेह्य इन चारों प्रकारके रसोंसेयुक्त भोजनोंमें राजा भोजकी अधिक इच्छा होनेसे और संपूर्ण मनुष्योंके हितकी इच्छासे श्रीगहानान्दनाथजीने कृपाकरके इस रसको निर्माण किया है ॥ १५–२५ ॥

शङ्खवटी ।

चिञ्चाक्षारपलं पटुव्रजपलं निम्बूरसे कल्कितं
तस्मिन् शंखपलं प्रतप्तमसकृत् संस्थाप्य शीर्णावधि ।
हिङ्गुव्योषपलं रसामृतवलीन् निःक्षिप्य निष्कांशिकान्
बद्धा शंखवटी क्षयग्रहणिकारुक्पंक्तिशूलादिषु ॥ २६ ॥

["पटु-लवणं पञ्चलवणं मिलित्वा पलं हिङ्गुशुण्ठी-
पिप्पलीमरिचानामपि मिलित्वा पलं, रसविषग-

न्धकानां प्रत्येकं निष्कं माषचतुष्टयं शंखं गडुयां वह्नौ ध्मात्वा निम्बुरस तप्तां निःक्षिपेत् यावच्चूर्णीभूय तद्रसे पतति सर्वं चूर्णमेकीकृत्य निम्बूरसेन रौद्रे तावद्भावयेद्यावदम्लता भवति "]

इमलीका क्षार ४ तोले और पाँचोंनमक ४ तोले और शंखभस्म ४ तोले लेवे । उसमें शंखभस्म ४ तोले लेकर नींबूके रसमें न मिलने लगे तबतक अग्निमें तपाकर नींबूके रसमें बुझाता रहे । फिर सब चूर्णको एकत्र करके नीम्बूके रसमें धूपमें तबतक भावना देवे कि जबतक उसमें अम्लता (खटाई) न आजाय, हींग, सोंठ, पीपल और मिरच ये समान भाग मिश्रित ४ तोले एवं शुद्धपारा, शुद्धगन्धक और शुद्ध मीठा तेलिया ये प्रत्येक चारचार मासे लेवे । सबको एकत्र मिलाकर नींबूके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको क्षय, संग्रहणी; अजीर्ण और शूलादि रोगोंमें सेवन करना चाहिये ॥ २६ ॥

द्वितीय शङ्खवटी ।

सार्द्धकर्षं रसेन्द्रस्य गन्धकस्य तथैव च ।
विषं कर्षत्रयं दद्यात्सर्वतुल्यं मरीचकम् ॥ २७ ॥
दग्धशङ्खश्च तत्तुल्यं पञ्चकर्षाणि नागरात् ।
स्वर्जिकारामठकणा सिन्धुसौवर्च्चलं विडम्॥ २८ ॥
सामुद्रमौद्भिदश्चैव भावयेन्निम्बुकद्रवैः ।
वटी ग्रहण्यम्लपित्तशूलघ्नी वह्निदीपनी ॥
वह्निमान्द्यकृतान् रोगान् सामदोषं विनाशयेत्॥२९॥

शुद्धपारा और शुद्धगन्धक प्रत्येक १॥ कर्ष लेकर कज्जली करलेवे । फिर शुद्ध मीठा तेलिया३कर्ष, और सबके बराबर काली मिरचोंका चूर्ण, शंखभस्म कालीमिरचोंके बारबर, सोंठका चूर्ण ५कर्ष,एवं सज्जी, हींग, पीपल सैंधानमक, कालानमक, विरियासंचर नमक समुद्रीनमक, और रेह, ये प्रत्येक पांच २ कर्ष लेवे। सबको नीम्बूके रसमें खरल करके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह शंखवटी, संग्रहणी, अम्लपित्त, शूल, आमदोष, मन्दाग्नि तथा तज्जन्य विकार इन सबको दूर करती है और अग्निको दीपन करती है ॥ २७-२९ ॥

तृतीय बृहच्छङ्खवटी ।

द्वौ क्षारौ रसगन्धकौ सलवणौ व्योषश्च तुल्यं विषं
चिञ्चाशङ्खचतुर्गुणं रसवरैर्लिम्पाकजातैः कृतम् ।
वारं वारमिदं सुपाकराचितं लोहं क्षिपेद्धिङ्गुकं
भृष्टं वङ्गसमं सुमर्द्दितमिदं गुञ्जाप्रमाणा भवेत् ॥ १३० ॥
ख्याता शङ्खवटी महाग्निजननी शूलान्तकृत् पाचनी
कासश्वासविनाशिनी क्षयहरी मन्दाग्निसन्दीपिनी ।
वातव्याधिमहोदरादिशमनी तृष्णामयोच्छेदिनी
सर्वव्याधिविनाशिनी कृमिहरी दुष्टामयध्वंसिनी॥१३१

जवाखार, सज्जी, शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, सैंधानमक, विरियासंचर नमक, सोंठ, पीपल मिरच, और शुद्धमीठा तेलिया यह प्रत्येक १-१ तोला एवं इमलीका क्षार ४ तोले और शंखभस्म ४ तोले सबको एकत्र मिलाकर नीम्बूके रसमें खरल करे। फिर उसमें लोहभस्म, घीमें भुनी हुई हींग और वंगभस्म प्रत्येक एक एक तोला मिलाकर अच्छे प्रकारसे खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह शंखवटी जठराग्निकी अत्यन्त वृद्धिकरनेवाली, शूलको नष्ट करनेवाली, पाचनशक्तिको बढानेवाली, एवं श्वास, खाँसी, क्षय, मन्दाग्नि, वातरोग, उदरके भयंकर रोग, तृषा, कृमिरोग, दुष्टव्याधि तथा अन्यान्य सर्वप्रकारके रोगोंको नष्ट करनेवाली है ॥ १३० ॥ १३१ ॥

चतुर्थ शङ्खवटी और महाशङ्खवटी ।

दग्धशङ्खस्य चूर्णं स्यात्तथा लवणपञ्चकम् ।
तिन्तिडीक्षारकश्चैव कटुकत्रयमेव च ॥ ३२ ॥
तथैव हिङ्गुकं ग्राह्यं विषं पारदगन्धकम् ।
अपामार्गस्य वह्नेश्च क्वाथैर्लिम्पाकजै रसैः ॥ ३३ ॥
भावयेत् सर्वचूर्णं तदम्लवर्गैर्विशेषतः ।
यावत्तदम्लतां याति गुडिकाऽमृतरूपिणी ॥ ३४ ॥
सद्यो वह्निकरी चैव भस्मकञ्च नियच्छति ।
भुक्त्वाकण्ठन्तु तस्यान्ते खादेच्च गुडिकामिमाम्॥३५॥
तत्क्षणाज्जारयत्याशु पुनर्भोजनमिच्छति ।
ज्वरं गुल्मं पाण्डुरोगं कुष्ठं शूलं प्रमेहकम् ॥ ३६ ॥

वातरक्तं महाशोथं वातपित्तकफानपि ।
दुर्नामारिरयञ्चाशु दृष्टा वारसहस्रशः ॥ ३७ ॥
निर्म्मूलं दह्यते शीघ्रं तूलकं वह्निना यथा ।
लौहवङ्गयुता सेयं महाशङ्खवटी स्मृता ॥ ३८ ॥
प्रभाते कोष्णतोयानुपानमेव प्रशस्यते ।
"जम्बीरं बीजपूरञ्च मातुलुङ्गकचुक्रकम् ॥ ३९ ॥
चाङ्गेरी तिन्तिडी चैव बदरी करमर्द्दकम् ।
अष्टावम्लस्य वर्गोऽयं कथितो मुनिसत्तमैः" ॥१४०॥

शंखभस्म, पाँचोंनमक, इमलीका क्षार, त्रिकटु, हींग, शुद्ध मीठातेलिया, शुद्धपारा और शुद्धगन्धक इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर चिरचिटेके काथ, चीतेकी जडके काथ और नींबूके रसमें तथा विशेषकर अम्लवर्गके रसमें (जबतक खट्टापान उत्पन्न न हो तबतक) खरल करे फिर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे।यह अमृतरूपी वटी तत्काल अग्निको दीपन करती है. और भस्मक रोगको दूर करती है। कण्ठपर्यन्त भोजन करनेपरभी इस गोलीको खावे तो यह वटी तत्क्षण सम्पूर्ण अन्नको पचा देती है और सर्वप्रकारके अजीर्णको नष्ट करतीहै । एवं ज्वर, गुल्म, पाण्डुरोग, कुष्ठ, शूल, प्रमेह, वातरक्त, अत्यन्तसूजन, वातापित्तकफके विकार और बवासीर इन सब व्याधियोंको समूल नष्ट करदेतीहै. ऐसा हजारों बार देखागया है। जैसे अग्निके द्वारा रुई तत्काल भस्म होजातीहै। यदि इसमें लोहभस्म और वंगभस्म मिलादीजाय तो यही वटी महाशंखवटी कहलाती है । प्रातःकालमें मन्दोष्णजलके अनुपानसे इस वटीको सेवन करना चाहिये। "जम्बीरीनींबू, बिजौरानींबू, मातुलुङ्ग, चकोतराके चूका, नोनिया, इमली, बेर और करौंदा इन आठ अम्लपदार्थोंको मुनियोंने अम्लवर्ग कहाहै" ॥ ३३–१४० ॥

पंचम महाशंखवटी।

पटुपञ्चकाहिङ्गुशङ्खचिञ्चाभासितव्योषबलरसा-
मृतानि । शिखिशेखरिकाम्लवर्गनिम्बुभृश-
भाव्यानि यथाम्लतां व्रजन्ति ॥ १४१ ॥
महाशंखवटी ख्याता भोजनान्ते प्रकीर्त्तिता ।
दीपनी परमा हन्ति महार्शोग्रहणीमुखान् ॥ ४२ ॥

पाचोंनमक, हींग, शंखभस्म, इमलीका क्षार, सोंठ, पीपल, मिरच, शुद्धगन्धक,शुद्धपारा और शुद्ध मीठा तेलिया इन सबको समान भाग लेकर चीतेके

काथ, चिरचिटेके काथ, अम्लवर्गकी औषाधियोंके रस और नीम्बूके रसमें (जबतक उसमें खट्टापन न आजाय तबतक) उत्तम प्रकारसे खरल करके पश्चात् १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनाकर भोजन करनेके पश्चात् इसे एक एक गोलीकी मात्रासे सेवनकरना चाहिये। यह अत्यन्त अग्निवर्द्धक एवं अर्श-ग्रहणी आदि दुस्तर रोगोंको नष्ट करतीहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

षष्ठम महाशंखवटी।

कणामूलं वह्निदन्ती पारदं गन्धकं कणा।
त्रिक्षारं पञ्चलवणं मरिचं नागरं विषम् ॥ ४३ ॥
अजमोदामृता हिङ्गु क्षारं तिन्तिडिकाभवम्।
संचूर्ण्य समभागन्तु द्विगुणं शङ्खभस्मकम् ॥ ४४ ॥
अम्लद्रवेण संभाव्य वटी कोलास्थिसम्मिता।
अम्लदाडिमतोयेन लिम्पाकस्वरसेन च ॥ ४५ ॥
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय नाम्ना शङ्खवटी शुभा।
तक्रमस्तुसुरासीधुकाञ्जिकोष्णोदकेन वा ॥ ४६ ॥
शशैणादिरसेनैव रसेन विविधेन च॥
मन्दाग्निं दीपयत्याशु वडवाग्निसमप्रभम् ॥ ४७ ॥
अर्शांसि ग्रहणीरोगं कुष्ठं मेहभगन्दरम्।
प्लीहानमश्मरीं श्वासं कासं महोदरं कृमीन् ॥४८॥
हृद्रोगं पाण्डुरोगञ्च विबद्धानुदरे स्थितान्।
तान् सर्वान् नाशयत्याशु भास्करात्तिमिरं यथा ४९

पीपलामूल, चीता, दन्तीकी जड,शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, पीपल, जवाखार, सज्जी, सुहागा, पाँचों नमक, मिरच, सोंठ, शुद्ध मीठा तेलिया, अजमोद, गिलोय, हींग और इमलीकी क्षार ये प्रत्येक एकएक तोला एवं शङ्खभस्म दो तोले लेवे। सबको एकत्र मिलाकर अम्लवर्गकी औषधियोंके रसमें पृथक् २ भावना देकर बेरकी गुठलीके बराबर गोलियाँ बनालेवे। इस महाशंखवटी नामसे प्रसिद्ध उत्तम औषधिको प्रतिदिन प्रातःकाल खट्टे अनारके रस,जम्बीरी नींबूके रस, मट्ठा, दहीका तोड, मदिरा, सिरका, काँजी अथवा गरमजल इनमेंसे किसी एक अनुपानके साथ सेवन करे, एवं खरगोश व कृष्णमृग आदिके मांसरसके साथ अथवा अन्यान्य विविध प्रकारके रसोंकें साथ सेवन

करे तो यह मन्दाग्निको वडवानलकी समान तत्काल दीपन करती है । तथा अर्श, ग्रहणी, कुष्ठ, प्रमेह, भगन्दर, तिल्ली, पथरी, श्वास, खाँसी, उदररोग, कृमिरोग, हृदयरोग, पाण्डुरोग, मलविबन्ध इन सब रोगोंको इस प्रकार नष्ट करदेती है जैसे सूर्यका प्रकाश अन्धकारको ॥ ४३-४९ ॥

वज्रक्षार ।

स्वर्जिः सौवर्च्चलं ग्राह्यं प्रत्येकं शाणमानतः ।
यवक्षारस्य शुद्धस्य पलार्द्धं परिकल्पयेत् ॥
स्थापयित्वायसे पात्रे स्वेदयेन्मृदुनाग्निना ॥ १५० ॥
द्रुतं तच्चालयेत् प्राज्ञः प्रस्तरे भाजने शुभे ।
दद्याद्रक्तिद्वयं वारि वारिदस्वरसादिभिः ।
अग्निमान्द्यमजीर्णञ्च शूलानाहोदरामयान् ॥ ५१ ॥
अम्लपित्तं तथाध्मानं विष्टम्भं गुल्ममेव च ।
वज्रक्षारो निहन्त्याशु शक्रवज्रो यथा तरुम् ॥ ५२ ॥

सज्जी चार मासे, कालानमक चार मासे और शुद्ध जवाखार २ तोले इनको लोहेके वर्त्तनमें रखकर मन्द मन्द अग्निसे गलाकर पत्थरके वर्त्तनमें ढालकर पर्पटी तैयार करलेवे । इसको दो दो रत्तीकी मात्रासे शीतलजल अथवा नागरमोथेके स्वरसके साथ सेवन करनेसे यह वज्रक्षार, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, शूल, आनाह, उदररोग, अम्लपित्त, अफारा, विवन्ध, गुल्मप्रभृति विविध-प्रकारके रोग नष्ट होते हैं ॥ ४९-५२ ॥

क्रव्यादरस ।

पलं रसस्य द्विपलं बलेः स्याच्छुल्बायसी चार्द्धपलप्रमाणे ।
विचूर्ण्य सर्वं द्रुतवह्नियोगादेरण्डपत्रेऽथ निवेशनीयम् ॥५३॥
कृत्वाथ तां पर्पटिकां विदध्याल्लौहस्य पात्रे वरपूतमस्मिन् ।
जम्बीरजं पक्वरसं पलानि शतं नियोज्याग्निमथाल्पमल्पम्
जीर्णे रसे भावितमेतदेतैः सुपञ्चकोलोद्भववारिपूरैः ।
सेवेत साम्लैः शतमत्र देयं समं रजष्टङ्कणजं सुभृष्टम् ॥ ५५ ॥
विडं तदर्द्धं मरिचं समञ्च तत्सत्तधार्द्रं चरकाम्लकेन ।
क्रव्यादनामा भवति प्रसिद्धो रसस्तु मन्थानकभैरवोक्तः ५६

माषद्वयं सैन्धवतक्रपीतमेतत् सुधन्यं खलु भोजनान्ते ।
गुरूणि मांसानि पयांसि पिष्टं घृतानि सेव्यानि फलानि चैव
मात्रातिरिक्तान्यपि सेवितानि यामद्वयाज्जारयति प्रसिद्धः॥
कार्श्यस्थौल्यनिबर्हणो गरहरः सामातिनिर्णाशनः
गुल्मप्लीहजलोदरादिशमनः शूलार्त्तिशूलापहः ।
वातश्लेष्मनिबर्हणो ग्रहणिकातीसारविध्वंसनः
वातग्रन्थिमहोदरापहरणः क्रव्यादनामा रसः॥५८॥

शुद्धपारा ४ तोले, शुद्धगन्धक ८ तोले, ताम्रभस्म २ तोले और लोहभस्म २ तोले इन सबको एकत्र चूर्ण करके लोहेकी कडाहीमें डालकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे । जब अच्छे प्रकारके पाक होजाय तब अण्डके पत्तेपर लोटकर उसकी पर्पटी बनालेवे । फिर उस पर्पटीको जम्बीरीनींबूके १०० पल रसमें धीरे धीरे पकावे । जब सब रस सूखजाय तब पञ्चकोलके काथ सौ पल और अम्ल-वेतके सौपल काथको पृथक् पृथक् डालकर भावना देवे पश्चात् सुहागेकी खील १६ तोले, विरियासंचर नमक ८ तोले और कालीमिरचोंका चूर्ण ४० तोले मिलाकर भीगेहुए चनोंके खारके पानीमें सातबार भावना देवे तो यह मन्थानकभैरवका कहा हुआ क्रव्यादनामवाला प्रसिद्ध रस सिद्ध होताहै इस रसको दो दो माशेकी मात्रासे भोजनके बाद सैंधानमक और तक्रके साथ सेवन करे इसपर गुरुपाकी पदार्थ, मांस, दूध, पिष्ट (मैदा व पिठ्ठीके बने पदार्थ), घृत और फल इनका सेवन करना हितकारी है।यदि मात्रासे अधिक भोजन करालिया जाय तो उसको भी यह प्रसिद्ध रस दो प्रहरमेंही पचादेताहै. तथा कृशता, स्थूलता, विषविकार, आमदोष, गुल्म, प्लीहा, जलोदर, शूलकी पीडा, शूल, वात-कफजन्यरोग, ग्रहणी, अतिसार, वातजग्रन्थि और भयंकर उदररोग इन सबको यह रस शीघ्र नष्ट करताहै ॥ ५३-१५८ ॥

विश्वोदीपकाभ्र ।

अभ्रं निर्म्मलमारितं पलमितं चूर्णीकृतं यत्नत-
श्चव्यं चित्रकमिन्द्रसुरकनकं मालूरपत्रार्द्रकम् ।
मूलं पिप्पलिसम्भवं मधुरिका नीपोऽर्कमूलं पृथक्
चैषां सत्वपलैर्विमर्दितमिदं कर्षं क्षिपेट्टङ्कणम् ॥ ५९ ॥

गुञ्जासम्मितमेतदेव वलितं तत्पारिभद्रद्रवै-
र्मन्दाग्निं चिरजातगुल्मनिचयं शूलाम्लपित्तं ज्वरम्।
छर्दिं दुष्टमसूरिकामलसकं श्वासञ्च कासं तृषां
प्लीहानं यकृतं क्षयं स्वरहतं कुष्ठं महारोचकम्॥६०॥
दाहं मोहमशेषदोषजनितं कृच्छ्रञ्च दुर्नामकं
ह्यामं वातविमिश्रितं नयनजं रोगं समुन्मूलयेत्।
विश्वोद्दीपकनाम रोगहरणे प्रोक्तं पुरा शम्भुना
सर्वेषां हितकारकं गदवतां सर्वामयध्वंसनम्॥
पाषाणं यदि भक्षितं तदपि तत्कुर्यात् सुजीर्णं पुन-
र्बल्यं वृष्यतरं रसायनवरं मेधाकरं कान्तिदम् ॥६१॥

शुद्ध अभ्रकभस्म ४ तोले, चव्य ४ तोले एवं चीता, सहालू, धतूरा और बेल और अदरखका रस ४ तोले, एवं पीपलामूल, सौंफ,कदम्ब और आककी जड इन प्रत्येकका काथ चारचार तोले लेवे। सबको पृथक् २ खरलमें डालकर मर्दन करे। फिर उसमें एक कर्ष सुहागा मिलाकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन एकएक गोली फरहदके रसके साथ सेवन करे तो यह रस मन्दाग्नि, बहुत पुराना गुल्म, शूल, अम्लपित्त,ज्वर, वमन, दुष्ट मसूरिका, अलसक, श्वास, खाँसी, तृषा, प्लीहा, यकृत्, क्षय, स्वरभंग, कुष्ठ, अरुचि, दाह, मोह, समस्त दोषोत्पन्न मूत्रकृच्छ्र, ववासीर, आमवात और नेत्ररोग इन सबको समूल नष्ट करदेता है। इस विश्वोद्दीपकनामवाले अभ्रकको सर्व प्रकारके रोगोंको हरनेके लिये पूर्वकालमें शिवजीने कहा है। यह समस्त रोगियोंके लिये हितकारी और सम्पूर्ण रोगोंका नाश करनेवाला है। अतिसारकोभी पचादेता है। तथा बलकारक, अत्यन्त वीर्यवर्द्धक, उत्तम रसायन एवं बुद्धि और शरीरकी कान्तिको बढाता है॥ ५९--६१॥

वीरभद्राभ्रक।

अभ्रकं पुटसहस्रमारितं कर्षयुग्ममतिनिर्म्मलीकृतम्।
वासराणि नवतिं विमर्दितं चित्रकस्वरससाधुसिक्तकम्
शृङ्गवेररसमर्दिता वटी कारिता सकलरोगनाशिनी।
भक्षिता भुजगवल्लिपत्रकैः शृङ्गवेरशकलेन वा पुनः॥६२

वह्निमान्द्यमभिनाश्य सत्वरं कारयेत् प्रखरपावकोत्करम्।
श्वासकासवमिशोथकामलाप्लीहगुल्मजठरारुचिभ्रमान्॥
रक्तपित्तयकृदम्लपित्तकं शूलकोष्ठजगदान् विषूचिकाम्।
आमवातवातशोणितं दाहशीतबलह्रासकार्श्यकम् ६५
विद्रधिं ज्वरगदं शिरोगदं नेत्ररोगमखिलं हलीमकम्।
हन्ति वृष्यतममेतदभ्रकं वीरभद्रमतिबल्यमुत्तमम्॥
भक्षितं विविधभक्ष्यमानलं काष्ठसङ्घमिव भस्मतां नयेत्

उत्तम सहस्रपुटित अभ्रकको दो कर्ष लेकर चीतेके रसमें ९०दिनतक उत्तम प्रकारसे खरल करे। फिर अदरखके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह बटी सर्वप्रकारके रोगोंको नाश करनेवाली है। इस वटीको पानके साथ अथवा अदरखके टुकडोंके साथ सेवन करनेसे मन्दाग्नि, श्वास, खाँसी आदि उल्लिखित सभी रोग शीघ्र नष्ट होतें हैं। यह वीरभद्रक-नामक अभ्रक अत्यन्त वृष्य और बलकारक है इसके सेवनसे अनेक प्रकारके भारीसेभारी भक्ष्यपदार्थ भस्म होजाते हैं॥ ६२-६६॥

लवङ्गाद्यमोदक।

लवङ्गं पिप्पली शुण्ठी मरिचं जीरकद्वयम्।
केशरं तगरश्चैव एला जातीफलं तुगा॥ ६७॥
कट्फलं तेजपत्रञ्च पद्मबीजं सचन्दनम्।
कक्कोलमगुरुश्चैव उशीरमभ्रकं तथा॥ ६८॥
कर्पूरं जातिकोषञ्च मुस्तं मांसी यवस्तथा।
धान्यकं शतपुष्पा च लवङ्गं सर्वतुल्यकम्॥ ६९॥
सर्वचूर्णद्विगुणितां शर्करां विनियोजयेत्।
सर्वरोगं निहन्त्याशु अम्लपित्तं सुदारुणम्॥ १७०॥
अग्निमान्द्यमजीर्णञ्च कामलापाण्डुरोगनुत्।
["बलपुष्टिकरश्चैव विशेषात् शुक्रवर्द्धनम्॥ ७१॥
ग्रहणीं सर्वरूपाञ्च अतीसारं सुदुर्जयम्।
अश्विभ्यां निर्म्मितं हन्ति लवङ्गाद्यमिदं शुभम्॥७२"]

लौंग, पीपल, सोंठ, मिरच, जीरा, कालाजीरा, नागकेशर, तगर, छोटी-इलायची, जायफल, वंशलोचन, कायफल, तेजपात, कमलगट्टा, लालचन्दन,

शीतलचीनी, अगर, खस, अभ्रकभस्म, कपूर, जावित्री, नागरमोथा, बालछड, इन्द्रजौ, धनियाँ और सोया इन प्रत्येकका चूर्ण समान भाग और समस्त चूर्णकी बराबर लौंगका चूर्ण सबको एकत्र मिलाकर फिर सब चूर्णसे दुगुनी मिश्री लेवे। प्रथम मिश्रीको पकाकर उत्तम विधिसे चासनी बनाकर औषधियोंमें उपरोक्त औषधियोंका समस्तचूर्ण मिलाकर घी और मधुके योगसे मोदक प्रस्तुत करलेवे। ये मोदक अम्लपित्त, मन्दाग्नि,अजीर्ण, कामला पाण्डुरोग, सर्वप्रकारकी ग्रहणी, अतिसार आदिरोगोंको नष्ट करतेहैं ॥ ६७-७२॥

सुकुमारमोदक।

पिप्पली पिप्पलीमूलं नागरं मरिचं शिवा।
धात्री चित्रकमभ्रञ्च गुडूची कटुरोहिणी ॥ ७३ ॥
प्रत्येकमेषां कर्षांशं चूर्णं दन्त्यास्त्रिकार्षिकम्।
द्विपलं त्रिवृताचूर्णं शर्करायाः पलत्रयम् ॥ ७४ ॥
मधुना मोदकं कार्य्यं सुकुमारकमोदकम्।
वाताजीर्णप्रमशनं विष्टम्भे परमौषधम् ॥
उदावर्त्तानाहहरं सर्वाजीर्णविनाशनम् ॥ ७५ ॥

पीपल, पीपललामूल, सोंठ, मिरच, हरड, आमला, चीतेकी जड, अभ्रकभस्म, गिलोय और कुटकी प्रत्येक औषधिका चूर्ण एक एक कर्ष, दन्तीकी जडका चूर्ण ३ कर्ष, निसोतका चूर्ण ८ तोले और मिश्री १२ तोले सबको एकत्र विधिपूर्वक पकाकर घी और शहदके योगसे लड्डू बनालेवे। ये सुकुमारनामवाले मोदक वात, अजीर्ण, विष्टम्भ, उदावर्त्त, आनाह और सर्वप्रकारके अजीर्णोंके उत्तम औषधिहै ॥ ७३-७५ ॥

त्रिवृतादिमोदक।

त्रिवृद्दन्तीकणामूलं कणा वह्निः पलं पलम्।
सर्वतुल्यामृता शुण्ठी गुडेन सह मोदकम् ॥
कर्षैकं भक्षयेन्नित्यं दीप्ताग्निं कुरुते क्षणात् ॥ ७६ ॥

निसोत, दन्तीकी जड, पीपलामूल, पीपल और चीतेकी जड ये चारचार तोले एवं गिलोयका और सोंठका चूर्ण बीस २० तोलेसबको एकत्र चूर्ण करके गुडके साथ मिलाकर एक एक कर्षके लड्डू बनाकर प्रतिदिन सेवन करे। ये मोदक अग्निको तत्क्षण दीपन करते हैं ॥ ७६ ॥

हरीतकीप्रयोग।

हरीतक्याः शतं ग्राह्यं तक्रैः स्विन्नश्च कारयेत्।
यत्नाद्बीजं समुद्धृत्य चूर्णानीमानि पूरयेत् ॥ ७७ ॥
षडूषणं पञ्चकटु यमानीद्वयमेव च।
त्रिक्षारं हिङ्गु दिव्यञ्ज कर्षद्वयमितं पृथक् ॥ ७८ ॥
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वं चुक्राम्लेनापि भावयेत्।
लिम्पाकस्वरसेनापि भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ ७९ ॥
खादयेदभयामेकां सर्वाजीर्णविनाशनम्।
चतुर्विधमजीर्णञ्च वह्निमान्द्यं विषूचिकाम् ॥
गुल्मशूलादिरोगांश्च नाशयेदविकल्पतः १८० ॥

बडीबडी १०० हरडोंको लेकर मट्ठेमें भिगोदेवे। जब अच्छे प्रकारसे वे फूल जाय तब उनकी गुठलियाँ निकालडाले। फिर पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड, सोंठ, मिरच, पाँचोंनमक, अजवायन, अजमोद, जवाखार, सज्जी, सुहागा, हींग और लौंग इन प्रत्येक औषधिके दो दो कर्ष परिमाण लेकर बारीक पीसकर भरदेवे। पश्चात् उन हरडोंको चूकेके रसमें और जम्बीरी नीम्बूके रसमें तीन तीन दिन तक भावना देवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक हरड खानेसे सर्व प्रकारका अजीर्ण दूर होता है। यह हरीतकीप्रयोग चारों प्रकारके अजीर्ण, मन्दाग्नि, विषूचिका, वायुगोला, शूल प्रभृति रोगोंको निश्चय नष्ट करता है ॥ ७७-१८० ॥

अमृता-हरीतकी।

तक्रे समुत्स्वेद्य शिवाशतानि तद्बीजमुद्धृत्य च कौशलेन।
षडूषणं पञ्चपटूनि हिङ्गु क्षारावजाजीमजमोदकञ्च ॥ ८१ ॥
षडूषणादेस्त्रिवृदर्द्धभागा गणस्य देयास्वरगालितस्य।
विभाव्य चुक्रेण रजांस्यमीषां क्षिपेच्छिवाबीजनिवासगर्भे॥
समूह्य घर्म्मे च विशोष्य तासां हरीतकीमन्यतमां निषेवेत्।
अजीर्णमन्दानलजाठरामयान् सगुल्मशूलग्रहणीगुदाङ्कुरान्
विबन्धमानाहरुजौजयत्यसौतथामवातांस्त्वमृताहरीतकी

बडी बडी सौ हरडोंको मट्ठेमें उबालकर उनकी गुठलियों निकाल डाले। फिर सोंठ, पीपल, मिरच, पीपलामूल, चव्य, चीता, पाँचोंनमक, हींग, जवा-

खार, सज्जी, कालाजीरा और अजमोद इन सबका चूर्ण दो दो तोले एवं निसोतका चूर्ण १ तोला लेवे । इन सब औषधियोंके चूर्णको चूकके द्वारा भावना देकर उक्त हरडोंमें भरदेवे और उनको धूपमें सुखाकर रखदेवे । उन-मेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल हरड एक एक भक्षण करे तो यह अमृता-हरीतकी अजीर्ण, मन्दाग्नि, उदराविकार, गुल्मशूल, ग्रहणी, बवासीरके अंकुर, मलावे-बन्ध और आनाह इन समस्त रोगोंको शीघ्र दूर करदेतीहै ॥ ८४ ॥

शार्दूलकाञ्जिक ।

पिप्पलीशृङ्गवेरञ्च देवदारु सचित्रकम् ।
चविकां बिल्वपेशीञ्च अजमोदां हरीतकीम् ॥ ८५ ॥
महौषधं यमानीञ्च धान्यकं मरिचं तथा ।
जीरकञ्चापि हिङ्गुञ्च काञ्जिकं साधयेद्भिषक् ॥ ८६ ॥
एष शार्दूलको नाम काञ्जिकोऽग्निबलप्रदः ।
सिद्धार्थतैलसंभृष्टो दशरोगान् व्यपोहति ॥ ८७ ॥
कासं श्वासमतीसारं पाण्डुरोगं सकामलम् ।
आमञ्च गुल्मरोगञ्च वातशूलं सवेदनम् ॥ ८८ ॥
अर्शांसि श्वयथुश्चैव भुक्ते पीते च सात्म्यतः ।
क्षीरपाकविधानेन काञ्जिकस्यापि साधनम् ॥ ८९ ॥

पीपल, अदरख, देवदारु, चीतेकी जड, चव्य, बेलगिरी, अजमोद, हरड, सोंठ, अजवायन, धनियाँ, मिरच, जीरा ये प्रत्येक औषधि समान भाग और सम्पूर्ण चूर्णको अष्टमांश सबको अठगुनी हींग काँजी और काँजीसे चौगुने जलमें मिलाकर पकावे और जब पककर कांजीमात्र शेष रह जाय तब उतार-कर छान लेवे । यह शार्दूलनामककाँजी अत्यन्त अग्निको वढानेवाली है । इसको सफेद सरसोंके तेंलमे बधारकर अग्निके बलानुसार सेवन करनेसे यह खाँसी श्वास अतिसार, पाण्डुरोग, कामला, आम, गुल्मरोग अत्यन्त वेदना युक्त वात शूल, अर्श, शोथ आदि रोगोंको दूर करती है इसको भोजन करके पान करना चाहिये ॥ ८५-८९ ॥

मुस्तकारिष्ट ।

मुस्तकस्य तुलाद्वन्द्वं चतुर्द्रोणेऽम्बुनः पचेत् ।
पादशेषे रसे तस्मिन् क्षिपेद्गुडतुलात्रयम् ॥ १९० ॥

धातकी षोडशपलां यमानीं विश्वभेषजम् ।
मरिचं देवपुष्पञ्च मेथीं वह्निश्च जीरकम् ॥ ९१ ॥
पलयुग्ममितं क्षिप्त्वा रुद्धभाण्डे निधापयेत् ।
संस्थाप्य मासमात्रन्तु ततः संस्रावयेद्भिषक् ॥ ९२ ॥
अजीर्णमग्निमान्द्यञ्च विषूचीमपि दारुणाम् ।
ग्रहणीं विविधां हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥९३॥

नागरमोथा २०० पल लेकर चार द्रोण परिमाण जलमें पकावे । जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छानलेवे । फिर उस काथमें गुड ३०० पल, धायके फूल १६ पल, एवं अजवायन, सोंठ, मिरच, लौंग, मेथी, चीतेकी जड और जीरा, ये प्रत्येक आठ आठ तोले एवं इन सब औषधियोंका एकत्र चूर्ण करके मिलादेवे । पश्चात् उसको एक उत्तम मट्टीके चिकने पात्रमें भरकर उसके मुँहको अच्छे प्रकारसे बन्दकरके रखदेवे । एक महीनेतक रक्खा रहनेके बाद निकालकर उसको वस्त्रमें छानलेवे । फिर इसको अग्निके बलानुसार सेवन करे तो यह मुस्तकारिष्ट अजीर्ण, मन्दाग्नि, दारुण विषूचिका विविध प्रकारकी संग्रहणी आदि रोगोंको निस्सन्देह नष्ट करता है ॥ १९०-९३ ॥

चित्रकगुड ।

नासारोगे विधातव्या या चित्रकहरीतकी ।
विना धात्रीरसं सोऽस्मिन् प्रोक्तश्चित्रगुडोऽग्निदः ॥ ९४ ॥

नासारोगमें जो चित्रक हरीतकी नामक औषधि कहीगई है । उसमें यदि आमलाके रस न डाला जाय तो वह ही चित्रकगुड होजाता है ऐसा आयुर्वेदाचार्योंने कहा है । यह चित्रक गुड अत्यन्त अग्नि प्रदीपकहै ॥ ९४ ॥

क्षारगुड ।

द्वे पञ्चमूले त्रिफलामर्कमूलं शतावरीम् ।
दन्ती चित्रकमास्फोतां रास्नां पाठां सुधां शठीम् ॥९५॥
पृथग् दशपलान् भागान् दग्ध्वा भस्म समावपेत् ।
त्रिःसप्तकृत्वस्तद्भस्म जलद्रोणे च गालयेत् ॥ ९६ ॥
तद्रसं साधयेदग्नौ चतुर्भागावशेषितम् ।
ततो गुडतुलां दत्त्वा साधयेन्मृदुनाग्निना ॥ ९७ ॥

सिद्धं गुडन्तु विज्ञाय चूर्णानीमानि दापयेत् ।
वृश्चिकाली द्विकाकोल्यौ यवक्षारं समावपेत् ॥ ९८ ॥
एते पंच पला भागाः पृथक् पञ्च पलानि च ।
हरीतकी त्रिकटुकं स्वर्ज्जिकां चित्रकं वचाम् ॥ ९९ ॥
हिंग्वम्लवेतसाभ्याञ्च द्वे पले तत्र दापयेत् ।
अक्षप्रमाणां गुडिकां कृत्वा खादेद्यथाबलम् ॥ २०० ॥
अजीर्णं जरयत्येष जीर्णे सन्दीपयत्यपि ।
भुक्तं भुक्तञ्च जीर्य्येत पाण्डुत्वमपकर्षति ॥ २०१ ॥
प्लीहार्शःश्वयथुञ्चैव श्लेष्मकासमरोचकम् ।
मन्दाग्निविषमाग्नीनां कफे कण्ठोरसि स्थिते ॥ २०२ ॥
कुष्ठानि च प्रमेहांश्च गुल्मञ्चाशु व्यपोहति ।
ख्यातः क्षारगुडो ह्येष रोगयुक्ते प्रयोजयेत् ॥ २०३ ॥

दशमूल, त्रिफला, आककी जड, शतावर, दन्तीकी जड, चीतेकी जड, विष्णुक्रान्ता, रास्ना,पाढ, थूहरकी जड और कचूर ये प्रत्येक औषधि चालीस चालीस तोले लेकर अग्निमें जलाकर भस्म करलेवे । फिर उस भस्मको एक द्रोण जलमें मिलाकर २१ बार छाने पश्चात् उसको मन्दमन्द अग्निसे पकावे । जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें गुड सौपल डालकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे जब गुड अच्छे प्रकारसे पकजाय तब उसमें बिछाटी, कोकाली, क्षीरकाकोली और जवाखार इन प्रत्येकका चूर्ण बीस तोले एवं हरड, त्रिकुटा, सज्जी, चीता और वच इन औषधियोंका चूर्ण समान भाग मिश्रित २० तोले हींग और अम्लवेतका चूर्ण आठ २ तोले मिलाकर सबको एकम एक करदेवे। इसको प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक तोलेकी गोली बनाकर अग्निके बलानुसार भक्षण करे तो यह क्षारगुड अजीर्णको जीर्ण करनेवाला और अग्निको दीपन करनेवाला है । भोजनके खाते २ ही पचादेता है । तथा पाण्डुरोग, प्लीहा,बवासीर,सूजन, कफ, खाँसी अरुचि, मन्दाग्नि, विषमाग्नि, कण्ठ और हृदयमें स्थित कफ, कुष्ठ, प्रमेह और गुल्म इन सब रोगोंको तत्काल नष्ट करताहै । यह क्षारगुडनामसे प्रसिद्ध गुड विविधप्रकारके रोगोंसे युक्त मनुष्यके लिये सेवन कराना चाहिये॥९५-२०३

मस्तुषट्पलघृत ।

पलिकैः पञ्चकोलैस्तु घृतं मस्तुचतुर्गुणम् ।
सक्षारैः सिद्धमल्पाग्निं कफगुल्मं विनाशयेत् ॥२०४॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार इन प्रत्येकके चार२ तोले प्रमाण कल्कके साथ एक प्रस्थ घी और चार प्रस्थ दही मिलाकर यथाविधि घृतको सिद्ध करे। यह घृत मन्दाग्नि,कफ और गुल्मरोगको दूरकरता है॥

अग्निघृत ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ।
हिङ्गुचव्याजमोदा च पञ्चैव लवणानि च ॥ २०५॥
द्वौ क्षारौ हबुषा चैव दद्यादर्द्धपलोन्मितान् ।
दधिकाञ्जिकशुक्तानि स्नेहमात्रासमानि च ॥ २०६ ॥
आर्द्रकस्वरसप्रस्थं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
एतदग्निघृतं नाम मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ॥ २०७ ॥
अर्शसां नाशनं श्रेष्ठं तथा गुल्मोदरापहम् ।
ग्रन्थ्यर्बुदापचीकासकफमेदोऽनिलानपि ॥ २०८ ॥
नाशयेद्ग्रहणीदोषं श्वयथुं सभगन्दरम् ।
ये च वस्तिगता रोगा ये च कुक्षिसमाश्रिताः ।
सर्वांस्तान् नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः ॥२०९॥

पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, हींग, चव्य, अजमोद, पाँचोंनमक, जवाखार, सज्जी और हाऊबेर इन प्रत्येकका कल्क दो दो तोले, एवं दही, काँजी, सिरका, अदरखका रस और घी ये प्रत्येक एक एक प्रस्थ लेवे। सबको एकत्र मिलाकर यथाविधि घृतको पकावे। यह अग्निघृत मन्दाग्निवाले मनुष्योंके लिये अत्यन्त हितकारी है। सर्वप्रकारकी बवासीर, गुल्म, उदररोग, ग्रन्थिआदि दुस्तररोग तथा जो वस्तिगत और जो कुक्षिगतरोग हैं उन सबको यह घृत इस प्रकार तत्काल नष्ट करदेता है जैसे सूर्यका प्रकाश अन्धकारको तत्क्षण नष्टकरदेता है ॥ २०५-२०९ ॥

बृहदग्निघृत ।

भल्लातकसहस्रार्द्धं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
अष्टभागावशेषञ्च कषायमवतारयेत् ॥ २१० ॥

घृतप्रस्थं समादाय कल्कानीमानि दापयेत् ।
त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ॥ ११ ॥
हिङ्गुचव्याजमोदा च पञ्चैव लवणानि च ।
द्वौ क्षारौ हबुषा चैव दद्यादर्द्धपलोन्मितान् ॥ १२ ॥
दधिकाञ्जिकशुक्तानि स्नेहमात्रासमानि च ।
आर्द्रकस्वरसश्चैव शोभाञ्जनरसं तथा ॥ १३ ॥
तत्सर्वमेकतः कृत्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
एतदग्निघृतं नाम मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ॥ १४ ॥
अर्शसां नाशनं श्रेष्ठं मूढवातानुलोमनम् ।
कफवातोद्भवे गुल्मे श्लीपदे च दकोदरे ॥ १५ ॥
शोथं पाण्ड्वामयं कासं ग्रहणीं श्वासमेव च ।
एतान् विनाशयत्याशु तमः सूर्य इवोदितः ॥ १६ ॥

पाँच सौ भिलावोंको लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पककर अष्टमांश जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर उस काथमें घी १ प्रस्थ और सोंठ, पीपल, मिरच, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, हींग, चव्य, अजमोद, पाँचों नमक, जवाखार, सज्जी और हाऊबेर इन समस्त औषधियोंका कल्क दो दो तोले एवं दही, काँजी, सिरका अदरखका रस और सहिंजनेका रस ये प्रत्येक एक एक प्रस्थ लेकर सबको एकत्र करके मन्दमन्द अग्निसे विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । यह बृहदाग्निनामक घृत मन्दाग्निवाले रोगियोंको विशेष उपयोगी है एवं अर्शको नष्ट करनेके लिये अत्युत्तम, मूढवायुका अनुलोमन करनेवाला, तथा कफ-वातजन्य गुल्म, श्लीपद, जलोदर, शोथ, पाण्डुरोग, खाँसी, ग्रहणी और श्वास इन सम्पूर्ण विकारोंको जैसे सूर्यका प्रकाश अन्धकारको तत्क्षण नष्ट करदेताहै उसीप्रकार दूर करता है ॥ २१०–१६ ॥

अग्निमान्द्यरोगमें पथ्य ।

श्लैष्मिके वमनं पूर्वं पैत्तिके मृदुरेचनम् ।
वातिके स्वेदनञ्चाथ यथावस्थं हितञ्च यत् ॥ १७ ॥
नानाप्रकारो व्यायामो दीपनानि लघूनि च ।
बहुकालसमुत्पन्नाः सूक्ष्मा लोहितशालयः ॥ १८ ॥
विलेपी लाजमण्डश्च मण्डो मुद्गरसः सुरा ।

एणो बर्ही शशो लावः क्षुद्रमत्स्याश्च सर्वशः ॥ १९ ॥
शालिञ्चशाकं वेत्राग्रं वास्तूकं बालमूलकम्।
लशुनं वृद्धकूष्माण्डं नवीनकदलीफलम् ॥ २२० ॥
शोभाञ्जनं पटोलञ्च वार्त्ताकुं नलदम्बु च।
कर्कोटकं कारवेल्लं बार्हतञ्च महार्द्रकम् ॥ २१ ॥
प्रसारणी मेषशृङ्गी चाङ्गेरी सुनिषण्णकम्।
धात्रीफलं नागरङ्गं दाडिमं यवपर्पटाः ॥ २२ ॥
अम्लवेतसजम्बीरमातुलुङ्गानि माक्षिकम्।
नवनीतं घृतं तक्रं सौवीरकतुषोदके ॥ २३ ॥
धान्याम्लं कटुतैलञ्च रामठं लवणार्द्रकम्।
यमानी मरिचं मेथी धान्यकं जीरकं दधि ॥ २३ ॥
ताम्बूलं तप्तसलिलं कटुतिक्तौ रसावपि।
मन्दानलेऽप्यजीर्णेऽपि पथ्यमेतन्नृणां भवेत् ॥ २४ ॥

रोगीकी अवस्थाको यथाविधि विचारकर कफजन्य अजीर्णमें प्रथम वमन, पित्तके अजीर्णमें प्रथम मृदु विरेचन और वातके अजीर्णमें प्रथम स्वेद देना-आदि क्रियायें हितकर हैं एवं विविध प्रकारकी व्यायाम (दण्ड कसरत आदि परिश्रम) अग्निप्रदीपक और लघुपाकी पदार्थ, बहुत पुराने और बारीक लाल शालिधानोंके चावल, विलेपी एवं खीलोंका माँड, भातका माँड, मूँगका यूष, मद्य तथा हिरन, मोर, खरगोश, लवापक्षी इन सबका मांसरस, सर्व प्रकारकी छोटी२मछलियाँ, शान्तिशाक, वेतके अंकुर,बथुएका शाक,कच्चीमूली, लहसुन, पक्का पेठा, कच्ची केलेकी फली, सहिंजनेकी फली,परवल, बैंगन, नीम, ककोडा, करेला, बडी कटेरीके फल, अदरख, गन्धप्रसारिणी, मेढासिंगी, नोनिया, चौपातिया शाक, आमला, नारंगी, अनार, जौका मांड, पित्तपापडा, अम्ल-वेत, जम्बीरी नींबू, विजौरानीम्बू, शहद, मक्खन, घी, मट्ठा, सौवीर नाम-वाली कांजी, तुषोदक और धान्याम्लनामक काँजी, सरसोंका तेल, हींग, सैंधानमक और अदरख अजवायन, मिरच, मेथी, धनियाँ, जीरा, दही,पान, गरमजल एवं चरपरे और कडवे रसवाले पदार्थ ये मन्दाग्नि और अजीर्ण-रोगमें पथ्य हैं ॥ १७–२२४ ॥

अग्निमान्द्यरोगमें अपथ्य ।

विरेचनानि विण्मूत्रवायुवेगविधारणम् ।
अध्यशनं समशनं जागरं विषमाशनम् ॥ १२५ ॥
रक्तस्रुतिं शमीधान्यं मत्स्यं मांसमुपोदिकाम् ।
जलपानं पिष्टकञ्च जाम्बवं सर्वमालुकम् ॥ १२६ ॥
कूर्च्चिकां मोरटं क्षीरं किलाटञ्च प्रपाणकम् ।
तालास्थिशस्यं तद्वालं स्नेहनं दुष्टवारि च ॥ १२७ ॥
विरुद्धासात्म्यपानान्नं विष्टम्भीनि गुरूणि च ।
अग्निमाद्येऽप्यजीर्णे च सर्वाणि परिवर्ज्जयेत् ॥ १२९ ॥

विरेचन,मल-मूत्र और अधोवायुके वेगको रोकना,भोजनपर भोजन करना, अपथ्य पदार्थोंका भोजन, रातको जागना, विषमभोजन, रक्तमोक्षण सब प्रकारके दो दलवाले अन्न, मछली, मांस, पोईकाशाक, अधिक जलपान, पिष्टक, जामुन, सर्व प्रकारके आलू आदि कन्द, फटाहुआ दूध, खीस, मद्य अधिक शरबत व पन्ना (मिष्टान्न पकवान आदि) ताडके फलकी गुठलीकी मींग, घी--तैलादि स्नेहपदार्थ, दूषितजल, स्वभावविरुद्ध व प्रकृति विरुद्ध और असात्म्य अन्नपान विष्टम्भकारक और गुरुपाकी पदार्थ समस्त मन्दाग्नि और अजीर्णरोगमें सर्वथा त्याग देना चाहिये ॥ २२५-२२९ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्ल्यां अग्निमान्द्यचिकित्सा ॥

कृमिरोग-चिकित्सा ।

पारसीययमानी पीत्वा पर्युषितवारिणा प्रातः ।
गुडपूर्वा कृमिजातं कोष्ठगतं पातयत्याशु ॥ १ ॥

प्रातःकालमें खुरासानी अजवायनके चूर्ण किंचित् गुड मिलाकर बासी जलके साथ पीनेसे मलके साथ कोष्ठगत कृमि तत्काल निकल जाते हैं ॥१॥

पारिभद्रकपत्रोत्थं रसं क्षौद्रयुतं पिबेत् ।
केबूकस्य रसं वापि पत्तूरस्याथवा पुनः ॥

फरहदके पत्तोंके रसको वा केउआँके अथवा पतङ्गके पत्तोंके रसको शहद मिलाकर पान करनेसे सब प्रकारके कृमि नष्ट होते हैं ॥

लिह्यात् क्षौद्रेण वैडङ्गं चूर्णं कृमिहरं परम् ॥ २ ॥

वायविडंगके चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे यह चूर्ण सब प्रकारके कृमिको नष्ट करते हैं ॥ २ ॥

मुस्ताखुकर्णीफलशिग्रुदारुक्वाथः सकृष्णाकृमिशत्रुकल्कः ।
मार्गद्वयेनापि चिरप्रवृत्तान् कृमीन्निहन्ति कृमीजांश्च रोगान्

नागरमोथा, मूसाकानी, हरड,आमला, बहेडा,सहिंजनेकी छाल और देवदारु इनके क्वाथमें पीपलका चूर्ण और वायविडङ्गका चूर्ण डालकर पान करनेसे ऊर्ध्व और अध इन दोनों मार्गोंसे निकलनेवाले बहुत दिनोंके कृमि तथा कृमिजन्य अन्यान्य उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

पलाशबीजस्वरसं पिबेद्वा क्षौद्रसंयुतम् ।
पिबेत्तद्बीजकल्कं वा तक्रेण कृमिनाशनम् ॥ ४ ॥

ढाकके बीजोंके स्वरसको शहदके साथ मिलाकर पीनेसे अथवा ढाकके बीजोंके चूर्णको मट्ठेके साथ सेवन करनेसे कृमि नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

क्वाथं खर्ज्जूरपत्राणां सक्षौद्रमुषितं निशि ।
पीत्वा निवारयत्याशु कृमिसङ्घमशेषतः ॥ ५ ॥

खजूरके पत्तोंके वासी क्वाथको शहद मिलाकर पान करनेसे सर्व प्रकारके कृमि तत्काल नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

अपक्वं क्रमुकं पिष्टं पीतं जम्बीरजै रसैः ।
निहन्ति विड्भवं कीटं रसः खर्ज्जूरजम्बयोः ॥ ६ ॥

कच्ची सुपारीको जलमें पीसकर जम्बीरी नींबूके रसके साथ अथवा खजूरके पत्तोंका रस और जामुनके पत्तोंका रस मिलाकर पान करनेसे मलमें उत्पन्न हुए कृमि निश्चय नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

पिबेत्तुम्बीबीजचूर्णं तक्रेण कृमिनाशनम् ॥ ७ ॥

कडवीतोंबीके बीजोंके चूर्णको मट्ठेके साथ सेवन करनेसे कृमि दूर होते हैं७

नारिकेलजलं पीतं सक्षौद्रं कृमिनाशनम् ॥ ८ ॥

नारियलके जलमें शहद डालकर पान करनेसे कृमि नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

विडङ्गपिप्पलीमूलशिग्रुभिर्मरिचेन च ।
तक्रसिद्धा यवागू स्यात् कृमिघ्नी सद्युवर्च्चिका ॥
पीतं बिम्बीघृतं हन्ति पक्वामाशयगान् कृमीन् ॥ ९ ॥

वायविडङ्ग, पीपलामूल, सहिंजनेके बीज और कालीमिरच इन सब चूर्णके साथ मट्ठेमें यवागू सिद्धकरके उसमें सज्जीका चूर्ण डालकर पान करनेसे अथवा बिम्बी (कंदूरी)के द्वारा सिद्ध कियेहुए घीको सेवन करनेसे आमाशय और पक्वाशयगत कृमि नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

यमानीं लवणोपेतां भक्षयेत् कल्य उत्थितः।
अजीर्णमामवातञ्च कृमिजांश्च जयेद्गदान् ॥ १० ॥

प्रातःकालमें अजवायन, सैंधानमक दोनोंको एकत्र पीसकर भक्षण करनेसे अजीर्ण आमवात और कृमि तथा कृमिजन्य अन्यान्य सर्व प्रकारके रोग दूर होते हैं ॥ १० ॥

पलाशबीजेन्द्रविडङ्गनिम्बभूनिम्बचूर्णं सगुडं लिहेद्यः।
दिनत्रयेण कृमयः पतन्ति पलाशबीजेन यमानिका वा११॥

ढाकके बीज, इन्द्रजौ, वायविडङ्ग,नीमकी छाल और चिरायता इन सबके चूर्णको समानभाग लेकर गुडमें मिलाकर सेवन करनेसे अथवा ढाकके बीज और अजवायनको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे सर्वप्रकारके कृमि तीन दिनमें नष्ट होकर गिरजाते हैं ॥ ११ ॥

पेषयेदारनालेन नाडीचस्य फलानि च।
यूकालिख्याः प्रशान्त्यर्थं दद्याल्लेपन्तु मस्तके ॥१२॥

जुओं और लीखोंको नष्ट करनेके लिये नाडीके शाकके फलोंको काँजीके साथ पीसकर सिरपर लेप करे ॥ १२ ॥

रसेन्द्रेण समायुक्तो रसो धुत्तूरपत्रजः।
ताम्बूलपत्रजो वापि लेपाद्यूकाविनाशनः ॥ १३ ॥

पारेको धतूरेके पत्तोंके रस अथवा पानके रसमें खरल करके मस्तकपर लेप करनेसे शिरकी सब जुयें नष्ट होजाती हैं ॥ १३ ॥

आखुकर्णीदलैः पिष्टैः पिष्टकेन च पूपिकाम्।
जग्ध्वा सौवीरकञ्चानु पिबेत्कृमिहरं परम् ॥ १४ ॥

मूसाकानीके पत्तोंके रससे जौ अथवा चावलोंके चूर्णको मलकर पूए बनाकर खाय और ऊपरसे काँजी पीवे तो कृमिरोग नष्ट होता है ॥ १४॥

सुरसादिगणं वापि सर्वथैवोपयोजयेत्।
विडङ्गसैन्धवक्षारकाम्पिल्लकहरीतकी ॥
पिबेत्तक्रेण सम्पिष्य सर्वकृमिनिवृत्तये ॥ १५ ॥

सुरसादिगणकी औषधियोंका कल्क वा क्काथ सेवन करनेसे अथवा वाय-विडङ्ग, सेंधानमक, जवाखार, कवीला और हरड इन सब औषधि समानभाग लेकर और सबका एकत्र चूर्ण करके मट्ठेके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारके कृमि नष्ट होते हैं ॥ १५ ॥

पारसीयादिचूर्ण ।

पारसीययमानिकाघनकणाशृङ्गीविडङ्गारुणा-
चूर्णं श्लक्ष्णतरं विलीढमपि तत्क्षौद्रेण संयोजितम् ।
कासं नाशयति ज्वरञ्च जयति प्रौढातिसारं जये-
च्छर्दिं मर्दयति क्रृमिन्तु नियतं कोष्ठस्थमुन्मूलयेत् ॥ १६ ॥

खुरासानी अजवायन, नागरमोथा, पीपल, काकडासिंगी, वायविडङ्ग और अतीस इन औषधियोंका बारीक चूर्ण समानभाग लेकर शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे खाँसी, ज्वर, पुराना अतिसार, वमनका होना और कोष्ठगत कृमि आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १६ ॥

कृमिकालानल रस ।

विडङ्गं द्विपलश्चैव विषचूर्णं तदर्द्धकम् ।
लौहचूर्णं तदर्द्धञ्च तदर्द्धं शुद्धपारदम् ॥ १७ ॥
रसतुल्यं शुद्धगन्धं छागीदुग्धेन पेषयेत् ।
छायाशुष्कां वटीं कृत्वा खादेत्षोडशरक्तिकाम् ॥ १८ ॥
धान्यजीरानुपानेन नाम्ना कालानलो रसः ।
उदरस्थं कृमिं हन्याद्ग्रहण्यर्शःसमान्वितम् ॥ १९ ॥
अग्निदः शोथशमनो गुल्मप्लीहोदरान् जयेत् ।
गहनानन्दनाथेन भाषितो विश्वसम्पदे ॥ २० ॥

वायविडङ्ग ८ तोले, शुद्ध मीठा तेलिया ४ तोले, लोहभस्म २ तोले, शुद्ध पारा १ तोला और शुद्ध आमलासार गन्धक १ तोला इन सब औषधियोंको एकत्र मिलाकर बकरीके दूधमें खरल करे । फिर छायामें सुखाकर सोलह २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली खाकर ऊप-रसे धनिये और जीरेके क्काथको पीवे तो यह कृमिकालानलनामक रस उद-रस्थ कृमि, संग्रहणी, ववासीर, सूजन, वायगोला, तिल्ली और उदररोग इन सबको नष्ट करता है और पाचकाग्निको बढाता है । इस प्रयोगको महाराज गहनानन्दनाथने सांसारिक मनुष्योंके हितके लिये कहा है ॥ १७--२० ॥

कृमिधूलिजलप्लव रस।

पारदं गन्धकं शुद्धं वङ्गं शङ्खं समं समम्।
चतुर्णां योजयेत्तुल्यं पथ्याचूर्णं भिषग्वरः॥ २१॥
दण्डयन्त्रेण निर्मथ्य पटोलस्वरसं क्षिपेत्।
कार्पासबीजसदृशीं वटिकां कुरु यत्नतः॥ २२॥
त्रिवटीं भक्षयेत्प्रातः शीततोयं पिबेदनु।
केवलं पैत्तिके योज्यः कदाचिद्वातपैत्तिके॥
श्रीमद्गहननाथोक्तः कृमिधूलिजलप्लवः॥ २३॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, वङ्ग और शंखभस्म ये चारों समान भाग और हरडका चूर्ण चौगुना सबको एकत्र बारीक चूर्ण करके उसमें पटोलपातके स्वरसको डालकर अच्छे प्रकारसे खरल करे और बिनौलोंके बराबर गोलियाँ बनालेवे फिर प्रतिदिन प्रातःकाल तीन ३ गोली खाकर ऊपरसे शीतल जल पान करे। इस रसको केवल पित्तजनित रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये और कभी कभी वात-पित्तजनितरोगोंमें भी देवे। इस कृमिधूलिजलप्लवरसको श्रीमद्गहनानन्दनाथने कहा है॥ २१-२३॥

कृमिकाष्ठानल रस।

विशुद्धं पारदं गन्धं वङ्गं तालं वराटकम्।
मनःशिलाकृष्णकाचं सोमराजीविडङ्गकम्॥ २४॥
दन्तीबीजञ्च जैपालं शिलाटङ्कणचित्रकम्।
कर्षमात्रन्तु प्रत्येकं वज्रीक्षीरेण मर्दयेत्॥ २५॥
कलायसदृशीं कृत्वा वटिकां भक्षयेत्ततः।
कृमिकाष्ठानलो नाम रसोऽयं परिनिर्मितः॥
श्लैष्मिके श्लेष्मपित्ते च श्लेष्मवाते च शस्यते॥ २६॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, वङ्गभस्म, हरतालभस्म, कौडीकीभस्म, शुद्ध मैनसिल, काला काँच, बावची, वायविडङ्ग, दन्तीके बीज, जमालगोटा, शुद्ध मैनसिल, सुहागा और चीता इन सबको एक एक कर्ष लेकर थूहरके दूधमें अच्छे प्रकारसे खरल कर मटरकी बराबर गोलियाँ बनाकर नित्यप्रति प्रातःसमय एक एक गोली सेवन करे। इस कृमिकाष्ठानलनामक रस कफ और पित्त एवं कफ और वातके रोगोंमें विशेष हितकारी है॥ २४-२६॥

लाक्षादि वटी ।

लाक्षाभल्लातश्रीवासश्वेतापराजिताशिफाः ।
अर्जुनस्य फलं पुष्पं विडङ्गमजगुग्गुलुः ॥ २७ ॥
एभिः कीटाश्च शाम्यन्ते तिष्ठन्तोऽपि गृहे सदा ।
भुजङ्गा मूषिका दंशाः सङ्घनामा मतङ्गजाः ॥
दूरादेव पलायन्ते किं न कीटाश्च ये पराः ॥ २८ ॥

लाख, भिलावे, सरलका गोंद, सफेद कोयलकी जड, अर्जुनके फल और फूल, वायविडंग और गूगल इन सब औषधियोंको समान भाग ले एकत्र खरल करके गोलियाँ बनाले । इन गोलियोंको प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक करके सेवन करनेसे सर्व प्रकारके कृमि नष्ट होते हैं और ये गोलियाँ जिस घरमें सदैव रहती हैं वहाँ सर्प, चूहे, डाँस संघनामवाले कृमि, मतङ्गज आदि अनेक प्रकारके कृमि दूरसे ही भाग जाते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

कृमिमुद्गर रस ।

क्रमेण वृद्धं रसगन्धकाजमोदाविडङ्गं विषमुष्टिका च ।
पलाशबीजश्च विचूर्णमस्य निष्कप्रमाणं मधुनावलीढम् २९॥
पिबेत्कषायं घनजं तदूर्द्ध्वं रसोऽयमुक्तः कृमिमुद्गराख्यः ।
कृमीन्निहन्ति कृमिजांश्च रोगान्सन्दीपयत्यग्न्यमयं त्रिरात्रात्

शुद्धपारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, अजमोद ३ तोले, वायविडङ्ग ४ तोले, शुद्धकुचला ५ तोले और ढाकके बीज ६ तोले इन सब औषधियोंका एकत्र चूर्ण करके जलके साथ खरलकर चार चार मासेकी मात्रा प्रतिदिन प्रातःकाल शहदके साथ खाय और ऊपरसे नागरमोथेका काथ पान करे तो यह कृमिमुद्गरनामक रस तीन दिनमें ही सर्व प्रकारके कृमिरोग एवं कृमियोंसे उत्पन्नहुए अनेक विकारोंको दूर करता है और पाचकाग्निको दीपन करताहै

कीटारिरस ।

शुद्धसूतं चेन्द्रयवं चाजमोदामनःशिला ।
पलाशबीजं गन्धश्च देवदाल्या द्रवैर्दिनम् ॥ ३१ ॥
संमर्द्य भक्षयेन्नित्यं मुद्गपर्णीरसैः सह ।
सितायुक्तं पिबेच्चानु कृमिपातो भवत्यलम् ॥ ३२ ॥

शुद्धपारा, इन्द्रजौ, अजमोद, शुद्धमैनसिल, ढाकके बीज और शुद्धगन्धक इन सबको बराबर २ भाग लेकर बंदालके रसमें एकदिनतक

खरल करे। फिर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे नित्यप्रति प्रातःकाल एक गोली खाकर ऊपरसे मुद्गपर्णी वनमूँगका काथ मिश्री डालकर पान करनेसे सब प्रकारके कृमि नष्ट होते हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

कीटमर्दरस ।

शुद्धसूतं शुद्धगन्धमजमोदाविडङ्गकम् ।
विषमुष्टिर्ब्रह्मबीजं यथाक्रमगुणोत्तरम् ॥ ३३ ॥
चूर्णयेन्मधुना मिश्रं निष्कैकं कृमिजिद्भवेत् ।
कीटमर्दो रसो नाम मुस्ताक्वाथं पिबेदनु ॥ ३४ ॥

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्धगन्धक दो तोले, अजमोद ३ तोले, वायविडङ्ग ४ तोले, शुद्ध कुचला ५ तोले और ढाकके बीज ६ तोले सबका एकत्र बारीक चूर्ण करके इसमें प्रतिदिन प्रातःकाल चार २ मासेकी मात्रासे शहदमें मिलाकर खाय और ऊपरसे नागरमोथेका काथ पीवे तो यह कीटमर्दनामकरस कृमिरोगको दूर करता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

कृमिघातिनी गुटिका ।

रसो गन्धाजमोदानां कृमिघ्नब्रह्मबीजयोः ।
एकाद्वित्रिश्चतुःपञ्च तिन्दोर्बीजस्य षट्क्रमात ॥ ३५ ॥
सञ्चूर्ण्य मधुना सर्वं गुटिकां कृमिघातिनीम् ।
खादन् पिपासुस्तोयञ्च मुस्तानां कृमिशान्तये ॥
आखुकर्णीकषायं वा प्रपिबेच्छर्करान्वितम् ॥ ३६ ॥

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्धगन्धक २ तोले, अजमोद ३ तोले, वायविडङ्ग ४ तोले, ढाकके बीज ५ तोले और तेंदूके बीज ६ तोले लेवे । सबको एकत्र चूर्ण करके शहदके साथ खरलकर, डेढ डेढ मासेकी मात्रासे कृमिरोगको नष्ट-करनेके लिये प्रातिदिन प्रातःकाल शहदके साथ सेवन करे अथवा इसकी गोली बनाकर शहदमें मिलाकर और प्यास लगनेपर नागरमोथेके काथ अथवा मूसाकानीका काथ मिश्री मिलाकर पीवे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

कृमिविनाशरस ।

शुद्धसूतं समं गन्धमभ्रं लौहं मनःशिला ।
धातकी त्रिफला लोध्रं विडङ्गं रजनीद्वयम् ॥ ३७ ॥
भावयेत्सप्तधा सर्वं शृङ्गवेरभवै रसैः ।
चणमात्रां वटीं कृत्वा त्रिफलारससंयुताम् ॥ ३८ ॥

भक्षयेत्प्रातरुत्थाय कृमिरोगोपशान्तये।
वातिकं पैत्तिकं हन्ति श्लैष्मिकञ्च त्रिदोषजम्॥
कृमिविनाशनामायं कृमिरोगकुलान्तकः॥ ३९॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, शुद्धमैनसिल, धायके फूल, त्रिफला, लोध, वायविडङ्ग, हल्दी और दारुहल्दी--इन सब औषधियोंको बराबर २ भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके अदरखके रसमें सातबार भावना देकर चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे नित्यप्रति प्रातःकाल एक एक गोली त्रिफलेके काथके साथ सेवन करे तो यह कृमिविनाश नामक रस वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषसे उत्पन्नहुए सब प्रकारके कृमिरोगको समूल नष्ट करता है॥ ३७-३९॥

कृमिहररस।

शुद्धसूतमिन्द्रयवमजमोदामनःशिला।
पलाशबीजं गन्धश्च देवदाल्याद्रवैर्दिनम्॥ ४०॥
संमर्द्य भक्षयेन्नित्यं शालपर्णीरसैः सह।
सितायुक्तं पिबेच्चानु कृमिपातो भवत्यलम्॥ ४१॥

शुद्धपारा, इन्द्रजौ, अजमोद, शुद्ध मैनासिल, ढाकके बीज और शुद्धगन्धक इन सब औषधियोंको बराबर भाग लेकर बंदालके रसमें एक दिनतक अच्छे-प्रकारसे खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बनाकर नित्यप्रति एक एक गोली खाय और ऊपरसे शालपर्णीके काथमें मिश्री मिलाकर पान करे तो सब प्रकारके कृमि गिरजाते हैं॥ ४०॥ ४१॥

कृमिरोगारिरस।

सूतं गन्धं मृतं लौहं मरिचं विषमेव च।
धातकी त्रिफलाशुण्ठीविडङ्गं सरसाञ्जनम्॥ ४२॥
त्रिकटुमुस्तकं पाठा बालकं बिल्वमेव च।
भावयेत्सर्वमेकत्र स्वरसैर्भृङ्गजैस्ततः॥ ४३॥
वराटिकाप्रमाणेन भक्षणीयो विशेषतः।
कृमिरोगारिनामायं रसोऽयं कृमिनाशनः॥ ४४॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहभस्म, कालीमिरच, शुद्ध मीठा तेलिया, धायके फूल, त्रिफला, सोंठ, वायविडङ्ग, रसौत, त्रिकुटा, नागरमोथा, पाढ, सुगन्धवाला और बेलगिरी इन सबको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण करके भाँग-

रेके स्वरसमें खरल करे। फिर कौडीकी बराबर गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन एक एक गोली सेवन करे। यह कृमिरोगारिनामकरस विशेषकर कृमिरोग नाशक है ॥ ४२-४४ ॥

कृमिघ्नरस।

कृमिघ्नं किंशुकारिष्टबीजं सुरसभस्मकम् ।
वल्लद्वयश्चाखुकर्णीरसैः कृमिविनाशनम् ॥ ४५ ॥

वायविडंग, ढाकके बीज, नीमके बीज और रससिन्दूर इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर मूसाकानीके रसमें खरल करके तीन तीन रत्तीकी गोलियाँ बनाकर सेवन करनेसे कृमिरोग दूर होता है ॥ ४५ ॥

विडंगलौह।

रसं गन्धश्च मरिचं जातीफललवङ्गकम् ।
शुण्ठी टङ्कं कणा तालं प्रत्येकं भागसम्मितम् ॥ ४६ ॥
सर्वचूर्णसमं लौहं विडङ्गं सर्वतुल्यकम् ।
लौहं विडङ्गकं नाम कोष्ठस्थकृमिनाशनम् ॥ ४७ ॥
दुर्नामारुचिश्चैव मन्दाग्निश्च विषूचिकाम् ।
शोथं शूलं ज्वरं हिक्कां श्वासं कासं विनाशयेत् ॥४८॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, मिरच, जायफल, लौंग, सोंठ, सुहागा, पीपल और हरताल ये सब समानभाग और सबको बराबर लोहभस्म एवं लोहभस्म सहित सम्पूर्ण औषधियोंकी बराबर वायविडंगका चूर्ण मिलाकर सबको एकत्र खरल करलेवे। इस विडंगलोहनामक चूर्णको प्रतिदिन सेवन करनेसे कोष्ठगतकृमि, बवासीर, अरुचि, मन्दाग्नि, विषूचिका, शोथ, शूल,ज्वर, हिचकी, श्वास और खाँसी आदि रोग नष्ट होते हैं॥ ४६-४८ ॥

हरिद्राखण्ड।

स्वरसं पारिभद्रस्य प्रस्थमादाय यत्नतः ।
तदर्द्धञ्च सितां दत्त्वा घृतं कुडवसम्मितम् ॥ ४९ ॥
प्रस्थार्द्धं रजनीचूर्णं दत्त्वा पाकं समाचरेत् ।
यदा दर्वीप्रलेपः स्यात्तदेषां चूर्णमाक्षिपेत् ॥ १५० ॥
चित्रकं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं कृष्णजीरकम् ।
यमानीद्वयसिन्धूत्थं निर्गुण्डीफलमेव च ॥ ५१ ॥

पाठाविडङ्गकञ्चैव शारिवाद्वयवासकौ।
पलाशबीजं व्योषञ्च त्रिवृद्दन्ती सरेणुका ॥ ९२ ॥
अरिष्टं सोमराजी च प्रत्येकन्तु द्विकार्षिकम्।
ततो माषाष्टकं खादेत्तोयञ्चानु पिबेन्नरः ॥ ९३ ॥
कृमींश्च विंशतिविधान् नाशयेन्नात्र संशयः।
दुष्टव्रणञ्च कुष्ठञ्च नाडीव्रणभगन्दरम् ॥ ५४ ॥
शीतपित्तं विद्रधिञ्च दद्रुं चर्मदलं तथा।
अजीर्णं कामलां गुल्मं श्वयथुञ्च विनाशयेत् ॥ ९५ ॥
बलपुष्टिकरो ह्येष बलीपलितनाशनः।
हरिद्राखण्डनामायं सर्वव्याधिनिषूदनः॥
व्रणिनां हितकामो हि प्राह नागार्जुनो मुनिः ॥५६॥

फरहदका स्वरस १ प्रस्थ (६४ तोले), मिश्री आधा प्रस्थ (३२ तोले), घृत १ कुडव (१६ तोले) और हल्दीका चूर्ण ३२ तोले लेवे। इन सबको एकत्र मिलाकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे जब वह करछीसे लगने लगे तब उतारकर उसमें चीतेकी जड, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, कालाजीरा, अजवायन, अजमोद, सेंधानमक, निर्गुण्डीके फल, पाढ, वायविडंग, अनन्त-मूल, जवासा, अडूसा, ढाकके बीज, सोंठ, मिरच, पीपल, निसोत, दन्तीकी जड, रेणुका, नीमकी छाल और बावची ये प्रत्येक औषधि दो दो कर्ष लेकर चूर्ण करके मिलादेवे। फिर इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल आठ २ मासे परिमाण शीतल जलके साथ सेवन करे। यह हरिद्रानामक खंड बीसों प्रकारके कृमिरोग, दुष्टव्रण, कोढ, नासूर, भगन्दर, शीतपित्त, विद्रधि, दाद, चर्म्मदल, अजीर्ण, कामला, गुल्म, शोथ, असमयमें शरीरपर वलियोंका पडना तथा बालोंका पकना और अन्यान्य सर्वप्रकारके रोगोंको समूल नष्ट करता है। एवंशरीरकी पुष्टि और बलकी वृद्धि करता है। यह योग विशेष कर सर्वप्रकारके व्रणोंको दूरकरनेवाला है। इसको श्रीनागार्जुनमुनिने वर्णन कियाहै ॥ ४९-५६ ॥

त्रिफलाद्यघृत।

त्रिफला त्रिवृता दन्ती वचा कम्पिल्लकं तथा।
सिद्धमेभिर्गवां मूत्रैः सर्पिः कृमिविनाशनम् ॥ ५७ ॥

त्रिफला, निसोत, दन्तीकी जडकी छाल, वच और कबीला इन सब औषधियोंके समानभाग मिश्रित कल्क और गोमूत्रके द्वारा यथाविधिसे सिद्ध कियाहुआ घृतको सिद्ध करे यह घृत कृमिरोगको नष्ट करता है ॥ ५७ ॥

विडङ्गघृत ।

त्रिफलायास्त्रयः प्रस्था विडङ्गप्रस्थ एव च ।
दीपनं दशमूलञ्च लाभतः समुपाहरेत ॥ ५८ ॥
पादशेषे जलद्रोणे शृते सर्पिर्विपाचयेत् ।
प्रस्थोन्मितं सिन्धुयुतं तत्परं कृमिनाशनम् ॥ ५९ ॥
विडङ्गघृतमेतद्धि लेह्यं शर्करया सह ।
सर्वान्कृमीन् प्रणुदति वज्रं मुक्तमिवासुरान् ॥ १६० ॥

त्रिफला ३ प्रस्थ (१९२ तोले), वायविडङ्ग १ प्रस्थ (६४ तोले), एवं पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड, और सोंठ ये सब समानभाग मिलेहुए १ प्रस्थ और दशमूलकी ओषधियाँ एक प्रस्थ (६४ तोले) लेवे । सबको एकत्र मिलाकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें घृत १ प्रस्थ और सैंधेनमकका चूर्ण १ प्रस्थ डालकर पकावे । इस घृतको छः २ मासे प्रमाण लेकर मिश्रीके साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करनेसे यह विडङ्गघृत सम्पूर्ण कृमिरोगोंको इस प्रकार नष्ट करदेता है जैसे इन्द्रका वज्र असुरोंको ॥ ५८-१६० ॥

विडङ्गतैल ।

सविडङ्गगन्धकाशिलासिद्धं सुरभिजलेन कटुतैलम् ।
आजन्म नयाति नाशं लिख्यासहितांश्च यूकांश्च ॥ ६१ ॥

वायविडङ्ग, शुद्धगन्धक और शुद्धमैनासिल-इन तीनोंके कल्क और गोमूत्रके द्वारा सरसोंके तेलको पकावे । यह तैल--शिरपर मालिश करनेसे लीखों जुएँ आदि सब प्रकारके शिरके कृमियोंका समूल नष्ट करता है ॥ ६१ ॥

धुस्तूरतैल ।

धुस्तूरपत्रकल्केन तद्रसेन च साधितम् ।
तैलमभ्यङ्गमात्रेण यूकान्नाशयाति ध्रुवम् ॥ ६२ ॥

धतूरेके पत्तोंके कल्क और स्वरसके साथ यथाविधि सरसोंके तैलको सिद्ध करके शिरमें लगानेसे जूँएं और लीखें नष्ट होती हैं ॥ ६२ ॥

क्रमिरोगमें पथ्य।

आस्थापनं कायशिरोविरेचनं धूमः कफघ्नानि शरीरमार्जना। चिरन्तता वैणवरक्तशालयः पटोलवेत्राग्ररसोनवास्तुकम् ॥ ६३॥ हुताशमन्दारदलानि सर्षपं नवीनमोचं बृहतीफलान्यपि। तिक्तानि नाली च दलानि मौषिकं मांसं विडङ्गं पिचुमर्दपल्लवम् ॥ ६४॥ पथ्या च तैलं तिलसर्षपोद्भवं सौवीरशुक्तञ्च तुषोदकं मधु। पचेदिमं तालमरुष्करं गवां मूत्रञ्च ताम्बूलसुरामृगाण्डजम्॥६५॥उष्ट्रानि मूत्राज्यपयांसि रामठं क्षाराजमोदा खदिरश्च वत्सकम्। जम्बीरनीरं सुषवी यमानिका साराःसुराह्वागुरुशिंशपोद्भवाः॥ तिक्तःकषायः कटुको रसोऽप्ययं वर्गो नराणां कृमिरोगिणां सुखः॥६६॥

आस्थापन वस्ति (पिचकारी) देना, कायविरेचन (जुल्लाब) और शिरोविरेचन (नस्य) देना, कफनाशकपदार्थोंका धूम्रपान कराना, शरीरको मार्जन करना या उबटन करना, बाँसके और लालशालिधानोंके पुराने चावल, परबल, बेंतके अंकुर, लहसुन, बथुआ, चीतेके पत्तोंका शाक,आकके पत्ते, सरसोंके पत्ते, नवीन केलेका मोचा, बडी कटेरीके फल, कडवे पदार्थ, नाडीका शाक, चूहेका मांस, वायविडंग, नीमके पत्ते, हरड, तिल और सरसोंका तैल, सौबीरनामक काँजी, सिरका, तुषोदकनामक काँजी, शहद, पके ताडके फल, भिलावे, गोमूत्र, पान,मदिरा, कस्तूरी, ऊँटका मूत्र, घी, दूध, हींग, जवाखार, अजमोद, खैर, इन्द्रजौ, जम्बीरीनींबूका रस, करेले, अजवायन, देवदारु, अगर और शीशमके वृक्षका सार तथा कडवे, कषैले और चरपरे रसवाले पदार्थ ये सब कृमिरोगवाले मनुष्योंके लिये हितकारी हैं ॥ ६३-६६ ॥

कृमिरोगमें अपथ्य।

छर्दिंश्च तद्वेगविधारणञ्च विरुद्धपानाशनमाह्नि निद्राः।
द्रवञ्च पिष्टान्नमजीर्णतां च घृतानि माषान्दधिपत्रशाकम् ॥
मांसं पयोऽम्लं मधुरं रसञ्च कृमीञ्जिघांसुः परिवर्जयेच्च ॥ १६७॥

वमनको और वमनके वेगको रोकना, प्रकृति विरुद्ध अन्न-पान करना, दिनमें सोना, द्रव (पतले) पदार्थ, मिठाई, पकवान्न आदि अजीर्णकारक

पदार्थ, घी, उडद, दही, पत्तेवाले शाक, मांस, दूध, खट्टे रसवाले और मधुर रसवाले पदार्थ--ये सब कृमिरोगवालोंको तत्काल त्याग देने चाहिये ॥१६७॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां कृमिरोग-चिकित्सा।

पाण्डु-कामला-हलीमककी चिकित्सा।

साध्यञ्च पाण्ड्वामयिनं समीक्ष्य स्निग्धं घृतेनोर्द्धमधश्च शुद्धम्।
सम्पादयेत्क्षौद्रघृतप्रगाढैर्हरीतकीचूर्णमयैः प्रयोगैः ॥ १ ॥

प्रथम पाण्डुरोगीको साध्य देखकर उसे घृतके द्वारा स्निग्ध करके वमन और विरेचन कराकर शरीरको शुद्ध करे। फिर शहद और घृतमें मिलाकर हरडोंका चूर्ण सेवन करावे ॥ १ ॥

पिबेद्घृतं वा रजनीविपक्कं यत्त्रैफलं तैन्दुकमेव वापि।
विरेचनद्रव्यकृतान्पिबेद्वा योगांश्च वैरेचनिकान् घृतेन २

हल्दीके कल्क और काथसे सिद्ध कियाहुआ घृत अथवा त्रिफलेके काथ और कल्कके द्वारा सिद्ध कियाहुआ वा तेन्दूके कल्क और काथसे सिद्ध किया घृत पानकरे या विरेचन औषधियोंको घृतके साथ अथवा विरेचन औषधियोंके द्वारा सिद्ध कियेहुए घृतको पान करे ॥ २ ॥

विधिः स्निग्धश्च वातोत्थे तिक्तशीतश्च पैत्तिके।
श्लैष्मिके कटुरूक्षोष्णः कार्यो मिश्रस्तु मिश्रके ॥ ३ ॥

वातज पाण्डुरोगमें स्निग्धक्रिया, पित्तज पाण्डुरोगमें कडवे पदार्थोंका सेवन और शीतलक्रिया, कफज पाण्डुरोगमें, चरपरे और रूखे पदार्थोंका सेवन एवं उष्णक्रिया करे तथा मिलेहुए दोषोंवाले पाण्डुरोगमें मिश्रित क्रिया करनी चाहिये

पाण्डुरोगे सदा सेव्या सगुडा च हरीतकी।

पाण्डुरोगमें सर्वदा हरडका चूर्ण गुड मिलाकर सेवन करना चाहिये॥

त्रिफलाक्काथितं तोयं सघृतञ्च सशर्करम्।
वातपाण्ड्वामयी पीत्वा स्वास्थ्यमाशु व्रजेद्ध्रुवम्॥४॥

वातज पाण्डुरोगी त्रिफलेके काथमें घी और मिश्री मिलाकर सेवन करे तो शीघ्र आरोग्य होता है ॥ ४ ॥

द्विशर्करं त्रिवृच्चूर्णं पलार्द्धं पैत्तिके पिबेत्।
कफपाण्डौ च गोमूत्रयुक्तां क्लिन्नां हरीतकीम् ॥ ५ ॥
नागरं लोहचूर्णं वा कृष्णं पथ्यां तथाश्मजम्।
गुग्गुलुं वाथ मूत्रेण कफपाण्ड्वामयी पिबेत् ॥ ६ ॥
सप्तरात्रं गवां मूत्रे भावितं चाप्ययोरजः।
पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थं पयसा प्रपिबेन्नरः ॥ ७ ॥

पित्तज पाण्डुरोगमें निसोतका चूर्ण दो तोले और मिश्री २ तोले मिलाकर सेवन करे। कफज पाण्डुरोगमें हरडको रात्रिमें गोमूत्रमें भिजोकर प्रातःकाल गोमूत्रमें पीसकर पान करे। अथवा सोंठ, लोहभस्म, पीपलका चूर्ण, हरडका चूर्ण, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध गूगल इनमेंसे किसी एक औषधिको गोमूत्रके साथ उचित मात्रासे सेवन करनेसे पाण्डुरोग दूर होता है। लोहभस्मको गोमूत्रमें सात दिनतक भावना देकर दूधके साथ पान करनेसे पाण्डुरोग शमन होताहै॥

अयस्तिलत्र्यूषणकोलभागैः सर्वैः समं माक्षिकधातुचूर्णम्।
तैर्मोदकः क्षौद्रयुतोऽनुतक्रः पाण्ड्वामये दूरगतेऽपि शस्तः ८॥

लोहेकी भस्म, काले तिल, सोंठ, मिरच, पीपल, प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेवे और इन सबकी बराबर शुद्ध सोनामाखीका चूर्ण लेवे। सबका एकत्र चूर्ण करके शहदमें मिलाकर लड्डू वनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन एक एक लड्डू तक्रके साथ सेवन करे। ये मोदक पुराने पाण्डुरोगमें अथवा रोगके दूर होजानेपर भी सेवन करने हितकारी है ॥ ८ ॥

लौहपात्रे शृतं क्षीरं सप्ताहं पथ्यभोजनः।
पिबेत्पाण्ड्वामयी शोषी ग्रहणीदोषपीडितः ॥ ९ ॥

पाण्डुरोगी, क्षयी और संग्रहणीवाले रोगी एक सप्ताह पर्यन्त लोहेके पात्रमें चौगुने जलके साथ पकाया हुआ गोदुग्ध पान करे और पथ्यपदार्थोंका भोजन करे तो उक्त रोग नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

अयोमलन्तु सन्तप्तं भूयो गोमूत्रशोधितम्।
मधुसर्पिर्युतं चूर्णं सह भक्तेन योजयेत् ॥
दीपनं चाग्निजननं शोथपाण्ड्वामयापहम् ॥ १० ॥

मण्डूरभस्मको सात बार अग्निमें तपाकर सातवार गोमूत्रमें बुझावे। फिर उसका बारीक चूर्ण करके शहद घृत और भातके साथ मिलाकर सेवन करनेसे अत्यन्त दीपन होती है एवं शोथ और पाण्डुरोग दूर होते हैं॥ १०॥

कामला-चिकित्सा।

रेचनं कामलार्त्तस्य स्निग्धस्यादौ प्रयोजयेत।
ततः प्रशमनी कार्या क्रिया वैद्येन जानता॥ ११॥

कामलारोगीको पहले घृतादिके द्वारा स्निग्ध करके विरेचन करावे। फिर योग्यवैद्यके द्वारा रोगनाशकचिकित्सा करानी चाहिये॥ ११॥

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निम्बस्य वा रसः।
प्रातर्माक्षिकसंयुक्तः शीलितः कामलापहः॥ १२॥

त्रिफलेके क्राथ अथवा गिलोयके स्वरस या दारुहल्दीके क्राथ या नीमकी छालके क्राथ अथवा स्वरसको शहद मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल पीनेसे कामलारोग नष्ट होता है॥ १२॥

अञ्जनं कामलार्त्तस्य द्रोणपुष्पीरसः स्मृतः।
निशागैरिकधात्रीणां चूर्णं वा संप्रकल्पयेत॥ १३॥

कामलारोगीको गूमाके पत्तोंका रस, अथवा हल्दी, गेरू और आमलोंके चूर्णको शहदमें मिलाकर आँखोंमें आँजनेसे शीघ्र आराम होता है॥ १३॥

नस्यं कर्कोटमूलं वा घ्रेयं वा जालिनीफलम्॥ १४॥

ककोडेकी जडको पीसकर उसके रसकी अथवा कडवी तोरईको पीसकर उसके रसकी नस्य देनेसे कामलारोग दूर होता है॥ १४॥

सशर्करं कामलिनां त्रिभण्डीहिता गवाक्षीसगुडा च शुण्ठी॥

निसोतका चूर्ण अथवा इन्द्रायनका चूर्ण खांड मिलाकर सेवन करनेसे या गुड मिलाकर सोंठका चूर्ण सेवन करनेसे कामलारोगीको आरोग्यलाभ होताहै॥

कुम्भकामलाकी चिकित्सा।

दग्ध्वाक्षकाष्ठैर्मलमायसन्तु गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान्।
विचूर्ण्य लीढं मधुना चिरेण कुम्भाह्वयं पाण्डुगदं निहन्ति १६

लोहेके मैलको लेकर बहेडेकी लकडीकी अग्निमें आठवार तपाकर क्रमसे आठ बार गोमूत्रमें बुझावे। फिर उसका बारीक चूर्ण करके शहदके साथ सेवन करनेसे कुम्भकामला और पाण्डुरोग नष्ट होते हैं॥ १६॥

हलीमककी-चिकित्सा ।

पाण्डुरोगक्रियां सर्वां योजयेच्च हलीमके ।
कामलायाञ्च यादिष्टा सापि कार्या भिषग्वरैः ॥१७॥

पाण्डु और कामलारोगमें जो चिकित्सा कहीगई है वही समस्त चिकित्सा हलीमकरोगमें भी करनी चाहिये ॥ १७ ॥

मारितञ्चायसं चूर्णं मुस्ताचूर्णेन संयुतम् ।
खदिरस्य कषायेण पिबेद्धन्तुं हलीमकम् ॥ १८ ॥

लोहेकी भस्मको नागरमोथेके चूर्ण और खैरके क्काथके साथ मिलाकर सेवन करे तो हलीमकरागे नष्ट होता है ॥ १८ ॥

सिता तिक्ता बला यष्टित्रिफलारजनीयुगैः ।
लौहं लिह्यात्समध्वाज्यं हलीमकनिवृत्तये ॥ १९ ॥

मिश्री, कुटकी, खिरैटी, मुलैठी, त्रिफला, हल्दी और दारुहल्दी इन सबको समान भाग और सबकी बराबर लोहभस्म लेकर सबका एकत्र चूर्ण करलेवे फिर शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे हलीमकरोग दूर होताहै॥१९॥

फलत्रिकादि--कषाय ।

फलत्रिकामृता वासा तिक्ता भूनिम्बनिम्बजः ।
क्काथः क्षौद्रयुतो हन्यात्पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ २०॥

त्रिफला, गिलोय, बिसौंटा, कुटकी, चिरायता और नीमकी छाल इनका काढा बनाकर मधुके साथ सेवन करे तो पाण्डु और कामला नष्ट होते हैं२०

वासादिकषाय ।

वासामृतानिम्बकिरातकट्वीकषायकोऽयं समधुर्निपीतः ।
सकामलं पाण्डुमथास्रपित्तं हलीमकं हन्ति कफादि रोगान्॥

बिसौंटेकी छाल,गिलोय,नीमकी छाल, चिरायता और कुटकी इन सबको बराबर भाग लेकर यथाविधि क्काथ बनावे. शहद डालकर पान करे कामला, पाण्डु, रक्तपित्त हलीमक और कफादिरोग नष्ट होते हैं ॥ २१ ॥

नवायसलौह ।

त्र्यूषणत्रिफलामुस्तविडङ्गचित्रकाः समाः ।
नवायोरजसो भागास्तच्चूर्णं मधुसर्पिषा ॥ २२ ॥

भक्षयेत्पाण्डुहृद्रोगकुष्ठार्शःकामलापहम् ।
नवायसमिदं लौहं कृष्णात्रेयेण भाषितम् ॥ २३ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडङ्ग और चीतेकी जड--ये सब औषधियाँ समानभाग और लोहभस्म ९ भाग लेकर सबका एकत्र बारीक चूर्ण करके शहद और घीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे पाण्डु, हृद्रोग, कुष्ठ, बवासीर और कामला ये सब रोग दूर होते हैं । इस नवायसलोहको कृष्णात्रेयने कहाहै ॥ २२ ॥ २३ ॥

निशालौह ।

लौहचूर्णं निशायुग्मं त्रिफलारोहिणीयुतम् ।
प्रलिह्यान्मधुसर्पिर्भ्यां कामलापाण्डुशान्तये ॥ २४ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला और कुटकी ये सब समानभाग और सबकी बराबर लोहेका चूर्ण एकत्र खरलकरके शहद और घृतके साथ मिलाकर सेवन करनेसे पाण्डु और कामलारोग नष्ट होते हैं ॥ २५ ॥

धात्री लौह ।

धात्रीलौहरजोव्योषनिशाक्षौद्राज्यशर्कराः ।
भक्षणाद्विनिहन्त्याशु कामलाश्च हलीमकम् ॥ २६ ॥

आमले, लोहभस्म, सोंठ, मिरच, पीपल और हल्दी इनके समानभाग चूर्णको शहद, घी और मिश्रीमें मिलाकर सेवन करनेसे कामला और हलीमक रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ २६ ॥

विडंगादिलौह ।

विडङ्गत्रिफलाव्योषं शुद्धलौहन्तु तत्समम् ।
पुरातनगुडेनैव लेहयेद्दिनसप्तकम् ॥
श्वयथुं नाशयेच्छीघ्रं पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ २७॥

वायविडंग, त्रिफला और त्रिकुटा इनको समानभाग और सबकी बराबर शुद्धलोहेकी भस्म लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको पुराने गुडके साथ मिलाकर सात दिनतक सेवन करनेसे शोथ, पाण्डु और हलीमक रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ २७ ॥

विडङ्गमुस्तत्रिफलादेवदारुषडूषणैः ।
तुल्यमात्रमयश्चूर्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥ २८ ॥

तैरक्षमात्रां गुटिकां कृत्वा खादेद्दिने दिने।
कामलापाण्डुरोगार्त्तः सुखमाप्यतेऽचिरात्॥ २९॥

वायविडंग, नागरमोथा, त्रिफला, देवदारु, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और कालीमिरच ये सब औषधि समानभाग और इन सबकी बराबर गोमूत्रमें शुद्ध कियाहुआ लोहचूर्ण लेवे। फिर सबको एकत्र पीसकर अठगुने गोमूत्रमें पकावे। जब पककर लोहेकी समान गाढा होजाय, तब एकएक तोलेकी गोलियाँ बनाकर इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली खानेसे कामला और पाण्डुरोग शीघ्र दूर होते हैं॥ २८॥ २९॥

दार्व्यादिलौह।

दार्वीसत्रिफलाव्योषविडङ्गान्ययसो रजः।
मधुसर्पिर्युतं लिह्यात् कामलापाण्डुरोगवान्॥ ३०॥

दारुहल्दी, त्रिफला, त्रिकुटा और वायविडङ्ग इन सबके चूर्णको समान भाग और सब चूर्णकी बराबर लोहभस्म लेकर सबको एकत्र शहद और घृतके साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करनेसे कामला और पाण्डुरोगी स्वास्थ्यलाभ करते हैं॥ ३०॥

त्रिकत्रयाद्यलौह।

पलं लौहस्य किट्टस्य पलं गव्यस्य सर्पिषः।
सितायाश्च पलञ्चैकं मधुनश्च पलं तथा॥ ३१॥
तोलैकं कान्तलौहस्य त्रिकत्रयसमन्वितम्।
ततः पात्रे विधातव्यं लौहे वा मृण्मये तथा॥ ३२॥
भावितं मधुसर्पिर्भ्यां रौद्रे शिशिर एव च।
भोजनादौ तथा मध्ये चान्ते चैव प्रयोजयेत्॥ ३३॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च हलीमकमथापि च।
अम्लपित्तं तथा शूलं शूलञ्च परिणामजम्॥ ३४॥
कासं पञ्चविधञ्चैव प्लीहश्वासज्वरानपि।
अपस्मारं तथोन्मादमुदरं गुल्ममेव च॥ ३५॥
अग्निमान्द्यमजीर्णञ्च श्वयथुञ्च सुदारुणम्।
निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा॥ ३६॥

मण्डूर (लोहेका मैल) ४ तोले, गौका घी ४ तोले, मिश्री ४ तोले, शहद ४ तोले, कान्तलोहका चूर्ण १ तोला, एवं त्रिकुटा, त्रिफला, चीतेकी जड, नागरमोथा और वायविडंग इन सबका चूर्ण एक एक तोला लेवे । फिर इन ओषधियोंको एकत्र लोहेके पात्र अथवा मिट्टीके पात्रमें करके दिनको धूपमें और रातको ओसमें तीनदिन तक शहद और घृतकी भावना देवे । इसको भोजनसे पहले, मध्यमें और अन्तमें सेवन करनेसे यह त्रिकत्रयाद्यलौह कामला, पाण्डु, हलीमक, अम्लपित्त, शूल, परिणामशूल, पाँचों प्रकारकी खाँसी, प्लीहा, श्वास, ज्वर, अपस्मार, उन्माद, उदररोग, गुल्म, अग्निमान्द्य, अजीर्ण और दारुण शोथ--आदि रोगोंको नष्ट करता है ॥ ३१-३६ ॥

कामलान्तकलौह ।

द्विपलं जारितं लौहं लौहार्द्धं जारिताभ्रकम् ।
मण्डूरञ्च तदर्द्धञ्च तदर्द्धं मृतवङ्गकम् ॥ ३७ ॥
वङ्गार्द्धं मागधः शुण्ठी पिप्पली गजपिप्पली ।
ग्रन्थिकं गन्धपत्रञ्च दार्वी चव्यं यमानिका ॥ ३८ ॥
चित्रकं कट्फलं रास्ना देवदारुफलत्रिकम् ।
रसाञ्जनं चातिविषां समभागानि चूर्णयेत् ॥ ३९ ॥
केशराजस्य भृङ्गस्य सोमराजरसस्य च ।
मण्डूकपर्ण्याः स्वरसैर्भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ ४० ॥
भक्षयेन्मधुना युक्तं सर्वमेहकुलान्तकः ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च हलीमकमथारुचिम् ॥ ४१ ॥
कासं श्वासं शिरःशूलं प्लीहानमग्रमांसकम् ।
जीर्णज्वरं तथा शोथमङ्गग्रहनिपीडितम् ॥ ४२ ॥
गुल्मशूलञ्च हृद्रोगं संग्रहग्रहणीहरम् ।
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं ज्वरं जीर्णं व्यपोहति ॥
कामलान्तकनामेदं लोहं कामलरोगनुत् ॥ ४३ ॥

लोहेकी भस्म ८ तोले, अभ्रककी भस्म ४ तोले, मण्डूरभस्म २ तोले, वंगभस्म १ तोला एवं जीरा, सोंठ, पीपल, गजपीपल, गठिबन, तेजपात, दारुहलदी, चव्य, अजवायन, चीता, कायफल, रासना, देवदारु, त्रिफला, रसौत

और अतीस ये सब औषधियाँ छः छः मासे लेकर सबका एकत्र चूर्ण करलेवे । फिर इस चूर्णको कुकुरभाँगरा, भाँगरा, बावची और मण्डूकपर्णी इनके स्वरसमें पृथक् पृथक् तीन तीन दिनतक भावना देवे । इस कालान्तकनामक लोहको शहदके साथ मिलाकर भक्षण करनेसे सर्व प्रकारके प्रमेह, कामला, पाण्डु, हलीमक, अरुचि, खाँसी, श्वास, शिरदर्द, प्लीहा, अग्रमांस, पुराना ज्वर, शोथ, अंगपीडा, गुल्म, शूल, हृदयरोग, संग्रहणी आदि रोग नष्ट होते हैं । यह अग्निको दीपन करता और जीर्णज्वरको दूर करता है और विशेष करके कामलारोगको नष्टकरता है ॥ ३७-४३ ॥

पञ्चामृतलौह--मंडूर ।

लौहं ताम्रं गन्धकाभ्रं पारदञ्च समांशिकम् ।
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चित्रकं तथा ॥ ४४ ॥
किरातं देवकाष्ठञ्च हरिद्राद्वयपुष्करम् ।
यमानीजीरयुग्मञ्च शठी धान्यकचव्यकम् ॥ ४५ ॥
प्रत्येकं लौहभागञ्च श्लक्ष्णचूर्णन्तु कारयेत् ।
सर्वचूर्णस्य चार्द्धांशं सुशुद्धं लौहकिट्टकम् ॥ ४६ ॥
गोमूत्रे पाचयेद्द्वैधो लौहकिट्टं चतुर्गुणे ।
पुनर्नवाष्टगुणितं क्वाथं तत्र प्रदापयेत् ॥ ४७ ॥
सिद्धेऽवतारिते चूर्णं मधुनः पलमात्रकम् ।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय कोकिलाक्षानुपानतः ॥ ४८ ॥
ग्रहणीं चिरजां हन्ति सशोथं पाण्डुकामलाम् ।
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं ज्वरं जीर्णं व्यपोहति ॥ ४९ ॥
प्लीहानं यकृतं गुल्ममुदरञ्च विशेषतः ।
कासं श्वासं प्रतिश्यायं कान्तिपुष्टिविवर्द्धनम् ॥ ५० ॥

लोहभस्म, ताँबेकी भस्म, शुद्धगन्धक, अभ्रकभस्म, शुद्धपारा, त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, चीतेकी जड, चिरायता, देवदारु, हल्दी, दारुहलदी, पोहकरमूल, अजवायन, जीरा, कालाजीरा, कचूर, धनियाँ और चव्य ये प्रत्येक औषधि समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर सब चूर्णसे आधा भाग शुद्ध लोह मण्डूर लेकर चौगुने गोमूत्रमें पकावे । कुछ देर पकनेके पश्चात् उसमें मण्डूरसे अठगुना पुनर्नवेका क्वाथ डालकर पकावे । पाक

तैयार होजानेपर उसमें पूर्वोक्त औषधियोंका चूर्ण डालकर नीचे उतारलेवे। और शीतल होजानेपर ४ तोले शहद मिलाकर एक चिकने बासनमें भरकर रखदेवे। फिर इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल तीन तीन मासे परिमाण लेकर तालमखानेके पत्तोंके काथके साथ सेवन करे। यह मण्डूर--पुरानी संग्रहणी, शोथयुक्त पाण्डु और कामला, जीर्णज्वर, प्लीहा, यकृत, गुल्म, उदररोग, विशेषकर खांसी, श्वास और प्रतिश्याय इन सब रोगोंको दूर करताहै और पाचकाग्निको दीपन करता एवं शरीरको कान्तियुक्त और पुष्ट करताहै४४-५०

वज्रवटकमण्डूर।

पञ्चकोलं समरिचं देवदारु फलत्रिकम्।
विडङ्गमुस्तयुक्ताश्च भागास्त्रिपलसम्मिताः॥ ५१॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि मण्डूरं द्विगुणं ततः।
पक्का चाष्टगुणे मूत्रे घनीभूते तदुद्धरेत्॥ ५२॥
ततोऽक्षमात्रान्वटकान् पिबेत्तक्रेण तक्रभुक्।
पाण्डुरोगं जयत्येष मन्दाग्नित्वमरोचकम्॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषमूरुस्तम्भं हलीमकम्॥ ५३॥
कृमिं प्लीहानमुदरं गलरोगञ्च नाशयेत्।
मण्डूरो वज्रनामायं रोगानीकाविनाशनः॥ ५४॥
निर्वाप्य बहुशो मूत्रे मण्डूरं ग्राह्यमिष्यते।
ग्राहयन्त्यष्टगुणितं मूत्रं मण्डूरचूर्णतः॥ ५५॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड, सोंठ, मिरच, देवदारु, त्रिफला, वायविडंग और नागरमोथा--ये प्रत्येक औषधि बारह २ तोले लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर जितना चूर्ण हो उससे दुगुना शुद्ध मण्डूर लेकर अठगुने गोमूत्रमें पकावे। जब वह पकते २ गाढा होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होनेपर उसमें उक्त औषधियोंका चूर्ण डालकर एक एक तोलेके बडे बनालेवे। इनमेंसे एक एक बडा प्रतिदिन मट्ठेके साथ सेवन करे और तक्रके साथ भोजन करे। यह वज्रवटक नामक मण्डूर--पाण्डुरोग, मन्दाग्नि, अरुचि, बवासीर, संग्रहणी, ऊरुस्तम्भ, हलीमक, कृमिरोग, प्लीहा, उदरविकार, गलेके रोग और अन्यान्य सर्वप्रकारके रोगसमूहको नष्ट करता है। इसमें पहले मण्डूरको अग्निमें तपाकर और कईबार गोमूत्रमें बुझाकर ग्रहण करना चाहिये ५१-५५॥

पुनर्नवादिमण्डूर ।

पुनर्नवा त्रिवृच्छुण्ठी पिप्पली मरिचानि च ।
विडङ्गं देवकाष्ठञ्च चित्रकं पुष्कराह्वयम् ॥ ५६ ॥
त्रिफला द्वे हरिद्रे च दन्ती च चविका तथा ।
कुटजस्य फलं तिक्ता पिप्पलीमूलमुस्तकम् ॥ ५७ ॥
एतानि समभागानि मण्डूरं द्विगुणं ततः ।
गोमूत्रेऽष्टगुणे पक्त्वा स्थापयेत्स्निग्धभाजने ॥
पाण्डुशोथोदरानाहशूलार्शःकृमिगुल्मनुत् ॥ ५८ ॥

पुनर्नवा, निसोत, सोंठ, पीपल, मिरच, वायविडंग, देवदारु, चीतेकी जड, पोहकरमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, दन्तीमूल, चव्य, इन्द्रजौ, कुटकी, पीपलामूल और नागरमोथा इन सबको समानभाग लेवे और सब चूर्णसे दुगुना मण्डूर लेवे प्रथम मण्डूरको अठगुने गोमूत्रमें पकावे । जब वह पककर सिद्ध होजाय तब उक्त ओषधियोंका चूर्ण डालकर नीचे उतारलेवे। शीतल होजानेपर उसको एक घीके चिकने बर्तनमें भरकर रखदेवे । यह मण्डूर प्रतिदिन तीन तीन माशे परिमाण सेवन करनेसे पाण्डु, शोथ, उदररोग, आनाह, शूल, अर्श, कृमि और गुल्म आदि रोगोंको नष्ट करताहै ॥ ५६-५८ ॥

त्र्यूषणादिमण्डूर ।

त्र्यूषणं त्रिफलामुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकौ ।
दार्वीत्वङ्माक्षिको धातुर्ग्रन्थिकं देवदारु च ॥ ५९ ॥
एषां द्विपलिकान्भागाञ्चूर्णान्कृत्वा पृथक्पृथक् ।
मण्डूरं द्विगुणं चूर्णाच्छुद्धमञ्जनसन्निभम् ॥ ६० ॥
मूत्रे चाष्टगुणे पक्त्वा तस्मिंस्तु प्रक्षिपेत्ततः ।
उदुम्बरसमान्कृत्वा वटकांस्तान् यथाग्नि तु ॥ ६१ ॥
उपयुञ्जीत तक्रेण सात्म्यं जीर्णे च भोजनम् ।
मण्डूरवटका ह्येते प्राणदाः पाण्डुरोगिणाम् ॥ ६२ ॥
कुष्ठान्यरोचकं शोथमूरुस्तम्भं कफामयान् ।
अर्शांसि कामलां मेहान् प्लीहानं शमयन्ति च ॥ ६३ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल त्रिफला, नागरमोथा, वायविडङ्ग, चव्य, चीतेकी जड, दारुहल्दी, दारचीनी, सोनामाखी, गठिवन और देवदारु इन सबको

पृथक् पृथक् आठ आठ तोले लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे फिर सब चूर्णसे दुगुना अञ्जनकी समान काला शुद्ध मण्डूर लेकर अठगुने गोमूत्रमें पकावे । जब पाक तैयार होजाय तब उसमें पूर्वोक्त ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर गूलरके फलकी समान बडे बनालेवे। इन बडोंको अपनी अग्निका बलाबल विचारकर प्रतिदिन मट्ठेके साथ सेवन करे और जीर्ण होनेपर हितकर पदार्थोंका भोजन करे । ये मण्डूरवटक पाण्डुरोगियोंको प्राण देनेवाले तथा कुष्ठ,अरुचि, शोथ, ऊरुस्तम्भ, कफके रोग,अर्श,कामला,प्रमेह और प्लीहा आदि रोगोंको नष्ट करतेहैं५९–६३

चन्द्रसूर्यात्मकरस ।

सूतकं गन्धकं लौहमभ्रकञ्च पलं पलम् ।
शङ्खटङ्कनराटञ्च प्रत्येकार्द्धपलं हरेत ॥ ६४ ॥
गोक्षुरबीजचूर्णञ्च पलैकं तत्र दीयते ।
सर्वमेकीकृतं चूर्णं बाष्पयन्त्रे विभावयेत ॥ ६५ ॥
पटोलं पर्पटं भार्गीं विदारीशतपुष्पिका ।
कुण्डली दन्तिनी वासा काकमाचीन्द्रवारुणी॥६६॥
वर्षाभूः केशराजश्च शालिञ्ची द्रोणपुष्पिका ।
प्रत्येकार्द्धपलैर्द्रावैर्भावयित्वा वटीं कुरु ॥ ६७ ॥
चतुर्दशवटीं खादेच्छागीदुग्धानुपानतः ।
गहनानन्दनाथोक्तश्चन्द्रसूर्यात्मको रसः ॥ ६८ ॥
हलीमकं निहन्त्याशु पाण्डुरोगञ्च कामलाम् ।
जीर्णज्वरं सविषमं रक्तपित्तमरोचकम् ॥ ६९ ॥
शूलं प्लीहोदरानाहमष्ठीलागुल्मविद्रधीन् ।
शोथं मन्दानलं कासं श्वासं हिक्कां वमिं भ्रमिम्॥७०॥
भगन्दरोपदंशौ च दद्रुकण्डू व्रणानि च ।
दाहं तृष्णाक्षुरुस्तम्भमामवातं कटिग्रहम् ॥ ७१ ॥
युक्तया मद्येन मण्डेन मुद्गयूषेण वारिणा ।
गुडूचीत्रिफलावासाक्काथनीरेण वा क्वचित ॥ ७२ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहभस्म और अभ्रकभस्म ये प्रत्येक चार २ तोले, शङ्खभस्म, सुहागा, कौडीकी भस्म ये तीनों दो दो तोले और गोखुरूके बीजोंका चूर्ण ४ तोले लेकर सबका एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे । फिर इस चूर्णको-

पटोलपात, पित्तपापडा, भारंगी, विदारीकन्द, सौंफ, गिलोय, दन्तीमूल, अडूसा, मकोय, इन्द्रायन, पुनर्नवा, भांगरा, शालिञ्चशाक और गूमा इन प्रत्येक ओषधिके दो दो तोले स्वरसके साथ गरम खरलमें डालकर क्रमसे भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंमेंसे एक एक गोली नित्य प्रातःकाल बकरीके दूधके साथ अथवा मदिरा, मांड, मूँगका यूष, जल, या गिलोय, त्रिफला और अडूसा इनमें किसी एकके काढेके साथ चौदह दिनतक सेवन करे। यह चन्द्रसूर्यात्मक रस–हलीमक, पाण्डु, कामला जीर्णज्वर, विषमज्वर, रक्तपित्त, अरुचि, शूल, तिल्ली, उदररोग, आनाह, अष्ठीला, गुल्म, विद्रधि, सूजन, मन्दाग्नि, खाँसी, श्वास, हिचकी, वमन, भ्रम, भगन्दर, उपदंश, दाद, खुजली, व्रण, जलन, तृषा, ऊरुस्तम्भ, आमवात और कमरकी पीडा इन समस्त रोगोंको तत्काल नष्ट करता है। इस रसको श्रीगहनानन्दनाथजीने वर्णन किया है ॥ ६४–७२ ॥

प्राणवल्लभरस।

हिङ्गुलसम्भवं सूतं गन्धं काश्मीरसम्भवम्।
लौहं ताम्रं वराटञ्च तुत्थं हिङ्गु फलत्रयम् ॥ ७३ ॥
स्नुहीमूलं यवक्षारं जैपालं टङ्कणं त्रिवृत्।
प्रत्येकन्तु समं भागं छागीदुग्धेन भावयेत् ॥ ७४ ॥
चतुर्गुञ्जां वटीं खादेद्वारिणा मधुना सह।
प्राणवल्लभनामायं गहनानन्दभाषितः ॥ ७५ ॥
श्लेष्मदोषञ्च संवीक्ष्य युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम्।
निहन्ति कामलां पाण्डुमानाहं श्लीपदं तथा ॥ ७६ ॥
गलगण्डं गण्डमालां कृच्छ्राणि च हलीमकम्।
शोथं शूलमुरुस्तम्भं संग्रहग्रहणीं तथा ॥ ७७ ॥
हन्ति मूर्च्छां वमिं हिक्कां कासं श्वासं गलग्रहम्।
असाध्यं सन्निपातञ्च जीर्णज्वरमरोचकम् ॥ ७८ ॥
जलदोषभवं शोथं महोग्रञ्च जलोदरम्।
नातःपरतरं श्रेष्ठं कामलार्त्तिरुजापहम् ॥ ७९ ॥

सिंगरफसे निकालाहुआ शुद्ध पारा, शुद्ध आमलासार गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, कौडीकी भस्म, तूतिया, हींग, त्रिफला, थूहरकी जड, जवाखार,

जमालगोटा, सुहागा और निसोत प्रत्येक समानभाग लेकर बकरीके दूधमें उत्तम प्रकारसे खरल करके चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । फिर नित्य प्रातःकाल एक एक गोली शहद अथवा जलके साथ भक्षण करे और कफदोषको विचारकर मात्राको युक्तिपूर्वक घटाता बढाता रहे यह रस कामला, पाण्डु, अफारा, श्लीपद (फीलपाय) गलगण्ड, गण्डमाला, हलीमक, सूजन, ऊरुस्तम्भ, संग्रहणी, मूर्च्छा, वमन, हिचकी, खाँसी, श्वास, गलेकी पीडा और असाध्य सन्निपात, ज्वर, तथा जीर्णज्वर अरुचि, जलदोषसे उत्पन्नहुआ शोथ और अतिदारुण जलोदर इन सब रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है । कामला, पाण्डु, आदि रोगोंको दूर करनेके लिये इस रससे बढकर अन्य औषधि नहीं है. इस प्राणवल्लभ नामक रसको श्रीगहनानन्दनाथने निर्म्माण किया है ॥७३-७९॥

पञ्चाननवटी ।

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतताम्राभ्रगुग्गुलुः ।
जैपालबीजं तुल्यांशं घृतेन गुडकीकृतम् ॥ ८० ॥
भक्षयेद्बादरास्थ्याभं शोथपाण्डुप्रशान्तये ।
पञ्चाननवटी ख्याता पाण्डुरोगकुलान्तिका ॥ ८१ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, गूगल इन सबका चूर्ण समानभाग और सब चूर्णकी बराबर शुद्ध जमालगोटेके बीजोंका चूर्ण लेवे । फिर सबको एकत्र घृतके साथ एक प्रहरतक खरल करके बेरकी गुठलीकी बराबर गोलियाँ बनाकर चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे । इनमेंसे प्रतिदिन एक गोली गूमाके क्वाथके साथ सेवन करे । यह पञ्चाननवटी शोथ और पाण्डुरोगको समूल नष्ट करता है ॥ ८० ॥ ८१ ॥

पाण्डुसूदनरस ।

रसं गन्धं मृतं ताम्रं जयपालञ्च गुग्गुलुम् ।
समांशमाज्यसंयुक्तां गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ८२ ॥
एकैकां खादयेन्नित्यं पाण्डुशोथोपशान्तये ।
शीतलञ्च जलञ्चाम्लं वर्जयेत्पाण्डुसूदने ॥ ८३ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, ताम्रभस्म, जमालगोटा और गूगल इन सब औषधिका समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण करके घृतके साथ खरल कर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । नित्यप्रति प्रातःकाल एक एक गोली सेवन करे । इसपर

शीतल जल और अम्ल पदार्थोंको त्यागदेवे । इससे पाण्डु और शोथ रोगकी शान्ति होती है ॥ ८२॥८३ ॥

आनन्दोदयरस ।

पारदं गन्धकं लौहमभ्रकं विषमेव च ।
समांशं मरिचस्याष्टौ टङ्कणश्च चतुर्गुणम् ॥ ८४ ॥
भृङ्गराजरसैः सप्तभावनाश्चाम्लदाडिमैः ।
द्विगुञ्जं पर्णखण्डेन खादेत्सायं निहन्ति च ॥ ८५ ॥
वातश्लेष्मभवान् रोगान्मन्दाग्निं ग्रहणीं ज्वरान् ।
अरुचिं पाण्डुताश्चैव जयेदचिरसेवनात् ॥ ८६ ॥
नष्टमग्निं करोत्येष कालभास्करतेजसम् ।
पर्वतोऽपि हि जीर्येत प्राशनादस्य देहिनः ॥
गुर्वन्नमम्लमाषश्च भक्षणादेव जीर्यति ॥ ८७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रक भस्म और शुद्ध मीठा तेलिया ये चारों एक एक भाग, कालीमिरच, आठभाग और सुहागा चार भाग इन सबका एकत्र चूर्ण करके पहले भाँगरेके रसमें, फिर खट्टे अनारके रसमें सात सात वार भावना देवे । इसको प्रतिदिन सन्ध्यासमय दो दो रत्तीकी मात्रासे पानके साथ सेवन करनेसे वात-कफ जन्यरोग, मन्दाग्नि, संग्रहणी, ज्वर, अरुचि और पाण्डु ये सब रोग तत्काल नष्ट होते हैं। यह रस नष्टहुई अग्निको अत्यन्त दीपन करता है । इसके सेवनसे गुरु (पचनेमें भारी) अन्न, अम्लपदार्थ, उडद और पत्थर तकभी खातेही जीर्ण होजाते हैं ॥ ८४-८७ ॥

त्रैलोक्यसुन्दररस ।

मानश्चैकं ततः सूतं षडभ्रं वसुलौहकम् ।
गन्धकं त्रिफलाव्योषचूर्णं मोचरसस्य च ॥ ८८ ॥
मुसली चामृतासत्त्वं प्रत्येकं पञ्चभागिकम् ।
भावयेत्सर्वमेकत्र त्रिफलायाः कषायके ॥ ८९ ॥
भावना विंशतिर्देया दशरात्रं सुभावना ।
शिग्रुचित्रकमूलाभ्यामष्टधा च पृथक्पृथक् ॥ ९० ॥
त्रैलोक्यसुन्दरो नाम रसो निष्कमितो हितः ।

सितया च समं क्षौद्रैः शोथपाण्डुक्षयापहः ॥
ज्वरातीसारसंयुक्तसर्वोपद्रवनाशनः ॥ ९१ ॥

शुद्धपारा १ भाग, अभ्रकभस्म ६ भाग, लोहभस्म ८ भाग और शुद्ध गन्धक, त्रिफला, त्रिकुटा, मोचरस, मुसली और गिलोयका सत ये प्रत्येक पाँच पाँच भाग इन सब ओषधियोंका एकत्र चूर्ण करके त्रिफलेके काढेमें दशदिन तक बीस बार भावना देवे। फिर सेहंजनेकी जड और चीतेकी जडके काथमें अलग २ आठ २ बार भावना देवे तो यह त्रैलोक्यसुन्दर नामकरस सिद्ध होता है। इसको प्रतिदिन प्रातःकाल चार चार मासे प्रमाण मिश्री और शहद्में मिलाकर सेवन करनेसे शोथ, पाण्डु, क्षय, ज्वर और अतिसार आदि सम्पूर्ण उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ ८८-९१ ॥

योगराज।

त्रिफलायास्त्रयो भागास्त्रयस्त्रिकटुकस्य च।
भागश्चित्रकमूलस्य विडङ्गानां तथैव च ॥ ९२ ॥
पञ्चाश्मजतुनो भागास्तथा रूप्यमलस्य च।
माक्षिकस्य विशुद्धस्य लौहस्य रजसस्तथा ॥ ९३ ॥
अष्टौ भागाः सितायाश्च तत्सर्वं श्लक्ष्णचूर्णितम्।
माक्षिकेणाप्लुतं स्थाप्यमायसे भाजने शुभे ॥ ९४ ॥
उदुम्बरसमां मात्रां ततः खादेद्यथाग्निना।
दिनेदिने प्रयुञ्जीत जीर्णे भोज्यं यथोप्सितम् ॥ ९५ ॥
वर्जयित्वा कुलत्थांश्च काकमाचीं कपोतकाम्।
योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ ९६ ॥
रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम्।
पाण्डुरोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषमज्वरम् ॥ ९७ ॥
कुष्ठान्यज्वरकं मेहं श्वासं हिक्कामरोचकम्।
विशेषाद्धन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानि च ॥ ९८ ॥

हरड, बहेडा, आमला-ये तीनों १२ तोले, सोंठ, मिरच और पीपल-तीनों १२ तोले, चीतेकी जड और वायाविडंग दोनों चार २ तोले, एवं शिला-जीत, चाँदीका मैल, शुद्ध सोनामाखी और लोहभस्म ये प्रत्येक बीस २ तोले और मिश्री ६४ तोले लेवे। सबका एकत्र बारीक चूर्ण करके शहदमें मिलाकर

उत्तम लोहेके बर्त्तनमें भरकर रखदेवे। इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल गूलरके फलकी समान अथवा अपनी अग्निके बलानुसार उचितमात्रासे सेवन करे। औषधिके पचजानेपर यथेच्छ भोजन करे। किन्तु इसपर कुलथी, मकोय और ब्राह्मीके पत्तोंका शाक आदि पदार्थ त्यागदेने चाहिये। यह योगराज-नामक प्रसिद्ध प्रयोग अमृतके समान गुणकारी और उत्तम रसायन है। यह रसायन--पाण्डुरोग, विषविकार, खाँसी, राजयक्ष्मा, विषमज्वर, कुष्ठ ज्वर, प्रमेह, श्वास, हिचकी, अरुचि, विशेषकर अपस्मार, कामला और बवासीर आदि रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है॥ ९२--९८॥

धात्र्यरिष्ट।

धात्रीफलसहस्रे द्वे पीडयित्वा रसं भिषक्।
क्षौद्राष्टभागं पिप्पल्याश्चूर्णार्द्धकुडवान्वितम्॥ ९९॥
शर्करार्द्धतुलोन्मिश्रं पक्कं स्निग्धघटे स्थितम्।
प्रपिबेत्पाण्डुरोगार्त्तो जीर्णे हितमिताशनः॥ १००॥
कामलापाण्डुहृद्रोगवातासृग्विषमज्वरान्।
कासहिक्कारुचिश्वासांश्चैषोऽरिष्टः प्रणाशयेत्॥१०१॥

उत्तम और पकेहुए दो हजार आमलोंका स्वरस, पीपलका चूर्ण आधा कुडव (८ तोले) और खाँड २०० तोले--सबको एकत्र मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब पाक उत्तम प्रकारसे सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें आमलोंके स्वरसका आठवाँ भाग शहद मिलाकर एक घीके चिकने पात्रमें भरकर रखदेवे। १५दिनके पश्चात् इसको प्रतिदिन अपनी अग्निके बलानुसार उचितमात्रासे सेवनकरे और औषधिके पचजानेपर हितकर पदार्थोंका परिमित भोजनकरे। यह अरिष्ट--कामला, पाण्डु, हृदयरोग, वातरक्त, विषम-ज्वर, खाँसी, हिचकी, अरुचि और श्वासादि विकारोंको नष्ट करताहै९९-१०१॥

हरिद्राद्यघृत।

हरिद्रा त्रिफला निम्बबलामधुकसाधितम्।
सक्षीरं माहिषं सर्पिः कामलाहरमुत्तमम्॥ १०२॥

हल्दी, हरड, बहेडा, आमला, नीमकी छाल, खिरैंटी और मुलैठी इन सबके समानभाग मिश्रित एक सेर कल्क, चौगुने गोदुग्ध और अठगुने जलके

साथ भैंसके चार सेर घृतको विधिपूर्वक सिद्ध करे। यह घृत कामलारोगको नष्ट करनेके लिये अत्युत्तम है॥ १०२॥

द्राक्षाघृत।

पुराणसर्पिषः प्रस्थो द्राक्षार्द्धप्रस्थसाधितः।
कामलागुल्मपाण्ड्वर्त्तिज्वरमेहोदरापहः॥ १०३॥

पुराना गोघृत १ प्रस्थ (६४ तोले) कल्कके लिये दाख आधाप्रस्थ (३२ तोले) गोदुग्ध ४ प्रस्थ और जल ४ प्रस्थ सबको एकत्र मिलाकर पकावे। जब पकते पकते घृतमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे प्रतिदिन इस घृतको सेवन करनेसे कामला, गुल्म, पाण्डु रोग, ज्वर, प्रमेह और उदरविकार आदि रोग दूर होतेहैं॥ १०३॥

मूर्वाद्यघृत।

मूर्वातिक्तानिशायासकृष्णाचन्दनपर्पटैः।
त्रायन्तीवत्सभूनिम्बपटोलाम्बुददारुभिः॥ १०४॥
अक्षमात्रैर्घृतप्रस्थं सिद्धं क्षीरचतुर्गुणम्।
पाण्डुताज्वरविस्फोटशोथाऽर्शोरक्तपित्तनुत्॥ १०५॥

गौका घी १ प्रस्थ, मूर्वाकी जड, कुटकी, हल्दी, धमासा, पीपल, चन्दन, पित्तपापडा त्रायमाण, कुडेकी छाल, चिरायता, पटोलपात, नागरमोथा और दारुहल्दी इन सब औषधियोंका कल्क दो दो तोले, पाकके लिये जल ४ प्रस्थ और दूध ४ प्रस्थ सबको मिलाकर यथाविधि घृतको सिद्ध करे। जब घृतमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। इस घृतको प्रतिदिन छः छः माशे परिमाण पान करनेसे पाण्डु, ज्वर, विस्फोट, सूजन, बवासीर और रक्तपित्त ये सब रोग नष्ट होते हैं॥ १०४॥ १०५॥

व्योषाद्यघृत।

व्योषं बिल्वं द्विरजनी त्रिफला द्विपुनर्नवम्।
मुस्तान्ययोरजः पाठा विडङ्गं देवदारु च॥ १०६॥
वृश्चिकाली च भार्गी च सक्षीरैस्तैः शृतं घृतम्।
सर्वान् प्रशमयत्येतद्विकारान्मृत्तिकाकृतान्॥ १०७॥

सोंठ, मिरच, पीपल, बेलगिरी, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, सफेद और लाल दोनों पुनर्नवा, नागरमोथा, लोहभस्म, पाढ, वायविडंग, देवदारु, बिछा-

टीपास और भारङ्गी इन सब औषधोंका कल्क एक सेर, गोघृत ४ सेर और जल ६४ सेर एवं दुग्ध१६ सेर लेवे। इसको एकत्र मिलाकर घृतको सिद्धकरे। जब शीतल होजाय तब उतारकर छानलेवे. यह घृत मृत्तिकाके खानेसे उत्पन्न हुए विकार एवं अन्यान्य सम्पूर्ण उपद्रवोंको शमन करताहै ॥ १०६॥१०७॥

पाण्डुरोगमें पथ्य।

छर्दिर्विरेचनं जीर्णयवगोधूमशालयः।
मुद्गाढकमसूराणां यूषा जाङ्गलजा रसाः ॥ १०८ ॥
पटोलं वृद्धकूष्माण्डं तरुणं कदलीफलम्।
जीवन्ती क्षुरमत्स्याक्षी गुडूची तण्डुलीयकम् ॥१०९॥
पुनर्नवा द्रोणपुष्पी वार्त्ताकुर्लशुनद्वयम्।
पक्काम्रमभयां बिम्बी शृङ्गी मत्स्या गवां जलम्११०॥
धात्री तक्रं घृतं तैलं सौवीरकतुषोदकम्।
नवनीतं गन्धसारो हरिद्रा नागकेशरम् ॥ ११ ॥
यवक्षारो लौहभस्म कषायाणि च कुंकुमम्।
यथादोषमिदं पथ्यं पाण्डुरोगवतां भवेत् ॥ १२ ॥

वमन और विरेचन कराना, पुराने जौ, गेहूँ और शालिधानोंके चावल, मूँग, अरहर, मसूर इनका यूष और जाङ्गलदेशोत्पन्न जीवोंके मांसका रस, परवल, पकापेठा, कच्चाकेला, जीवन्तीका शाक, तालमखानेके पत्तोंको शाक, मछेछीका शाक, गिलोय, चौलाईका शाक, पुनर्नवा, गूमा, बैंगन, प्याज, लहसुन, पका आम, हरड, कन्दूरी, शृंगवाली मछली, गोमूत्र, आमले, मट्ठा, घृत, तैल, सौवीरक और तुषोदक नामकी काँजी, मक्खन (नैनीघी,) लालचन्दन, हलदी, नागकेशर, जवाखार, लोहभस्म, केशर और कषायरसवाले पदार्थ ये सब पाण्डुरोगियोंको यथादोषानुसार पथ्य हैं ॥ १०८–११२ ॥

पाण्डुरोगमें अपथ्य।

रक्तस्रुतिर्धूमपानं वमिवेगविधारणम्।
स्वेदनं मैथुनं शिम्बी पत्रशाकानि रामठम् ॥ १३ ॥
माषोऽम्बुपानं पिण्याकस्ताम्बूलं सर्षपाः सुराः।
मृद्भक्षणं दिवास्वप्नस्तीक्ष्णानि लवणानि च ॥ १४ ॥

सह्यविन्ध्याद्रिजातानां नदीनां सलिलानि च ॥
गुर्वन्नश्च विदाहीनि पाण्डुरोगवतां भवेत् ॥ १५ ॥

फस्त खुलवाना या जौंक लगवाना, धूमपान करना, वमनके वेगको रोकना, स्वेददेना, स्त्रीप्रसंग करना, सेमकी फली, पत्तोंवाले शाक, हींग, उडद, अधिक जलपान, तिलकुट, पान, सरसोंका तेल, मद्य, मिट्टीका खाना, दिनमें सोना, बहुत तीक्ष्ण, चरपरे और नमकवाले पदार्थ एवं सह्यगिरि और विन्ध्याचलसे निकलीहुई नदियोंका जल, सब प्रकारके खट्टेपदार्थ व खटाईयाँ, दूषितजल, स्वभाव और देश-काल विरुद्ध भोजन पचनेमें भारी और दाहकारक पदार्थ ये सब पाण्डुरोगियोंको अहितकर हैं, अतः इनको त्याग देना चाहिये१३-१५॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां पाण्डु-कामला-हलीमक चिकित्सा ।

अथ रक्तपित्त-चिकित्सा ।

नोद्रिक्तमादौ संग्राह्यं बलिनोऽप्यश्नतश्च यत् ।
हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीहगुल्मज्वरादिकृत् ॥ १ ॥

रक्त-पित्तरोगमें--रोगीके शरीरमें बल और भोजन करनेकी शक्ति रहतेहुए प्रथम प्रबल रक्तस्रावको रोकना नहीं चाहिये । कारण-शरीरमें दूषित रक्तके रुकजानेसे हृदयरोग, पाण्डु, संग्रहणी, प्लीहा (तिल्ली), गुल्म एवं ज्वरादि रोग उत्पन्न होजाते हैं ॥ १ ॥

ऊर्ध्वं प्रवृत्तदोषस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः ।
अक्षीणबलमांसाग्नेः कर्त्तव्यमनतर्पणम् ॥ २ ॥

ऊर्ध्वमार्गगत रक्तपित्तमें--रोगीके बल और मांसके क्षीण न होनेपर एवं अग्निके प्रदीप्त होनेपर पहले उसको लंघन कराने चाहिये ॥ २ ॥

ऊर्ध्वगे तर्पणं पूर्वं कर्त्तव्यश्च विरेचनम् ।
प्रागधोगमने पेया वमनश्च यथाबलम् ॥ ३ ॥

ऊर्ध्वगत रक्तपित्तरोगमें-पहले तृप्तिजनक क्रियायें और फिर विरेचन देना चाहिये । एवं अधोगत रक्तपित्तमें प्रथम भोजनके विषे पेया देवे, फिर उसके बलानुसार वमन कराकर दोषोंको दूर करे ॥ ३ ॥

शालिषष्ठिकनीवारकोरदूषप्रशातिकाः ।
श्यामाकश्च प्रियङ्गुश्च भोजनं रक्तपित्तिनाम् ॥ ४ ॥

पुरानेशालि चावल, सांठी चावल, नीवार, लडियाधान, कोदों, लालनीवार, समा और कंगनी चावल ये सब अन्न रक्तपित्तवाले रोगियोंको भोजनके लिये देने चाहिये ॥ ४ ॥

मसूरमुद्गचणकाः समुकुष्ठाढकीफलाः ।
प्रशस्ताः सूपयूषार्थं कल्पिता रक्तपित्तिनाम् ॥ ५ ॥

रक्तपित्तवाले रोगीको, मसूर, मूँग, चने, मोंठ और अरहर इन सबकी दालोंका यूष देना चाहिये ॥ ५ ॥

शाकं पटोलवेत्राग्रतण्डुलीयादिकं हितम् ।
मांसं लावकपोतादिशशैणहरिणादिजम् ॥ ६ ॥

रक्तपित्तवाले रोगीको--पटोलपात, बेंतका अग्रभाग, चौलाई आदिका शाक एवं लवा कबूतर,खरगोश और काला हिरन आदि जीवोंका मांस हितकारी हैं॥

क्षीणमांसबलं वृद्धं बालं शोषानुबन्धिनम् ।
अवम्यमविरेच्यश्च स्तम्भनैः समुपाचरेत् ॥ ७ ॥

जिसका मांस और बल क्षीण होगया हो, एवं वृद्ध, बालक और जो शोष रोगसे पीडित हो ऐसे रक्तपित्तरोगीको वमन और विरेचन नहीं कराने चाहिये, किन्तु स्तंभन औषधिके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

वृषपत्राणि निष्पीड्य रसं समधुशर्करम् ।
पिबेत्तेन शमं याति रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ ८ ॥

अडूसेके पत्तोंको एक बर्त्तनमें भरकर और दूसरे बर्त्तनसे उसको ढककर कुछ देरतक अग्निपर गरम करे । फिर उनको निचोडकर रस निकाल लेवे । उसमेंसे दो दो तोले प्रमाण रसको शहद और मिश्रीमें मिलाकर पीनेसे दारुण रक्तपित्तरोग शमन होता है ॥ ८ ॥

समाक्षिकः फल्गुफलोद्भवो वा-
पीतो रसः शोणितमाशु हन्ति ॥ ९ ॥

कठूमरके फलोंका रस २ तोले लेकर शहदमें मिलाकर पीनेसे रक्तपित्तरोग नष्ट होता है ॥ ९ ॥

अभया मधुसंयुक्ता पाचनी दीपनी मता ।
श्लेष्माणं रक्तपित्तञ्च हन्ति शूलातिसारनुत् ॥ १० ॥

हरडको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे आमका परिपाक होकर अग्नि-दीपन होती है; एवं कफ, रक्तपित्त, शूल और अतिसार आदि रोग शीघ्र दूर होते हैं ॥ १० ॥

वासकस्वरसे पथ्या सप्तधा परिभाविता ।
कृष्णा वा मधुना लीढा रक्तपित्तं द्रुतं जयेत् ॥ ११ ॥

अडूसेके रसमें हरडको सातबार भावना देकर सेवन करनेसे अथवा पीपलको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे रक्तपित्तरोग शीघ्र दूर होता है ॥११॥

पक्वोदुम्बरकाश्मर्यपथ्याखर्जूरगोस्तनाः ।
मधुना घ्नन्ति संलीढा रक्तपित्तं पृथक् पृथक् ॥ १२ ॥

गूलरके पके फल, कुम्भेर, हरड, खजूर और दाख ये सब औषधि रक्तपित्त रोग नाशक हैं। इसलिये रक्तपित्तको दूर करनेके लिये इनमेंसे किसी एक औषधिको शहदमें मिलाकर सेवन करे ॥ १२ ॥

खदिरस्य प्रियंगूनां कोविदारस्य शाल्मलेः ।
पुष्पं चूर्णन्तु मधुना लिहन्नारोग्यमश्नुते ॥ १३ ॥

खैर, फूलप्रियंगु, कचनार और सेमल इनमेंसे किसी एकके फूलोंका चूर्ण शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे रक्तपित्तरोग दूर होता है ॥ १३ ॥

लाक्षाचूर्णं सुकृतं क्षौद्राज्यसमन्वितं सकृल्लीढम् ।
शमयाति सोद्धतवमनं सरक्तपित्तस्य सिद्धमिदम् ॥ १४ ॥

लाखका बारीक चूर्णको ६ मासे लेकर शहद और घीमें मिलाकर एकबार चाटनेसे ही वमन और रक्तपित्त दूर होता है ॥ १४ ॥

द्राक्षामधुककाश्मर्यसितायुक्तं विरेचनम् ।
यष्टिमधुकयुक्तश्च सक्षौद्रं वमनं हितम् ॥ १५ ॥

रक्तपित्तरोगमें–दाख, मुलैठी और कुम्भेर इनके चूर्णको मिश्रीमें मिलाकर विरेचनके लिये और मुलैठीके चूर्णको शहदमें मिलाकर वमनके लिये देना अत्युत्तम है ॥ १५ ॥

लङ्घितस्य ततः पेयां विदध्यात्स्वल्पतण्डुलम् ।
तर्पणं पाचनं लेहान् सर्पींषि विविधानि च ॥ १६ ॥

लंघन करानेके पश्चात् थोडे चावलोंकी बनाई हुई पेया पान करावे फिर तर्पण, पाचन, अवलेह और विविध प्रकारके घृत प्रयोग करे ॥ १६ ॥

तर्पणं सघृतक्षौद्रलाजचूर्णैः प्रदापयेत् ।
ऊर्ध्वगं रक्तपित्तं तत्पीतकाले व्यपोहति ॥ १७ ॥
जलं खर्जूरमृद्वीकामधुकैः सपरूषकैः ।
शृतशीतं प्रयोक्तव्यं तर्पणार्थं सशर्करम् ॥ १८ ॥

ऊर्ध्वगत रक्तपित्तरोगमें खीलेंके चूर्णको घृत और शहदमें मिलाकर रोगीको खानेके लिये देवे । अथवा छुहरा, दाख, मुलठी और फालसे इनका षडंग पानीय विधिके अनुसार बनायाहुआ शीतल क्वाथ मिश्री मिलाकर पान करानेसे रक्तपित्तरोग शमन होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

त्रिवृता त्रिफला श्यामा पिप्पली शर्करा मधु ।
मोदकः सन्निपातोर्द्ध्वरक्तपित्तज्वरापहः ॥ १९ ॥

ऊर्ध्वगत रक्तपित्तमें यदि ज्वर हो तो निसोत, त्रिफला, अनन्तमूल और पीपल इन सबको चूर्ण समान भाग और समस्त चूर्णसे दुगुनी खाँड एवं शहद मिलाकर लड्डू बनालेवे । इनके सेवनसे ऊर्ध्वगत रक्तपित्त और सन्निपात ज्वर दूर होताहै ॥ १९ ॥

शालपर्ण्यादिना सिद्धा पेया पूर्वमधोगते ।
वमनं मदनोन्मिश्रो मन्थः सक्षौद्रशर्करः ॥ २० ॥

अधोगत रक्तपित्तमें पहले शालपर्णी आदि स्वल्प पञ्चमूलके क्वाथमें सिद्ध की हुई पेया सेवन करावे । फिर वमनके लिये मैनफल, शहद और खांड मिला· हुआ मन्थ बनाकर देवे ॥ २० ॥

विना शुण्ठीषडङ्गेन सिद्धं तोयञ्च दापयेत् ॥ २१ ॥

रक्तपित्तरोगीको, ज्वराधिकारमें कहेहुए षडंग पानीयकी औषधियों (नागरमोथा, पित्तपापडा, सुगन्धवाला, खस, सोंठ और लालचन्दनमेंसे सोंठको निकालकर अन्य५औषधियोंके द्वारा सिद्धकियाहुआ शीतल क्वाथ पान करावे ॥

आटरूषकनिर्यूहे प्रियंगूमृत्तिकाञ्जने ।
विनीय लोध्रं सक्षौद्रं रक्तपित्तहरं पिबेत् ॥ २२ ॥

अडूसेके क्वाथमें फूलप्रियंगु, मृत्तिका, अञ्जन, लोध और शहद डालकर पीनेसे रक्तपित्त दूर होताहै ॥ २२ ॥

वासाकषायोत्पलमृत्प्रियङ्गुलोध्राञ्जनाम्भोरुहकेशराणि ।
पीत्वा सिताक्षौद्रयुतानि हन्यात्पित्तासृजोर्वेगमुदीर्णमाशु॥

अडूसेके काथमें उत्पल (नीलोफर) गोपीचन्दन, फूलप्रियंगु, लोध, रसौत और कमलकी केशर इनका समान भाग चूर्ण, शहद और मिश्री मिलाकर पान करनेसे अत्यन्त वेगवान् रक्तपित्त शीघ्र नष्ट होता है ॥ २३ ॥

तालीशचूर्णसहितः पेयः क्षौद्रेण वासकस्वरसः ।
कफपित्ततमकश्वासस्वरभेदरक्तपित्तहरः ॥ २४ ॥

अडूसेके स्वरसमें तालीशपत्रका चूर्ण और शहद मिलाकर पीनेसे कफपित्त, तमक श्वास, स्वरभेद और रक्तपित्तरोग शमन होता है ॥ २४ ॥

वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च ।
रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥ २५ ॥

रक्तपित्त, श्वास, क्षय और खाँसीवाले रोगियोंके लिये अडूसेकी समान अन्य हितकर औषधि नहीं है । इसलिये अडूसेके विद्यमान रहतेहुए उक्तरोगवाले मनुष्य जीवनकी आशा करनेमें क्यों दुःखी होते हैं ? ॥ २५ ॥

मद्यन्त्यङ्घ्रिजः क्काथस्तद्वत् समधुशर्करः ।

मोतियाकी जडके काथमें शहद और मिश्री मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त नष्ट होता है ॥

अतसीकुसुमसमङ्गा वटावरोहत्वगम्भसा पीता ।
प्रशमयति रक्तपित्तं यदि भुंक्ते मुद्गयूषेण ॥ २६ ॥

अलसीके फूल, लज्जावन्ती, वडके अंकुर और छाल इन सबको समानभाग लेकर जलके साथ पीसकर पान करनेसे और मूँगके यूषका पथ्य देनेसे रक्तपित्त शमन होता है ॥ २६ ॥

घ्राणप्रवृत्ते जलमाशुदेयं सशर्करं नासिकया पयो वा ।
द्राक्षारसं क्षीरघृतं पिबेद्वा सशर्करञ्चेक्षुरसं हितं वा ॥२७॥

नासिकाके द्वारा रक्तस्राव होनेपर तत्काल जलको अथवा दूधको शर्करा मिलाकर नासिका द्वारा पान करे । अथवा दाखोंका स्वरस (या काथ) या दूधमेंसे निकलाहुआ घी अर्थात् मक्खन अथवा ईखका रस मिश्री मिलाकर नासिकासे पानकरना हितकर है ॥ २७ ॥

नस्यं दाडिमपुष्पाख्यो रसो दूर्वाभवोऽथवा ।
आम्रास्थिजः पलाण्डोर्वा नासिकास्रुतरक्तजित् २८॥

अनारके फूलोंका रस अथवा दूबका स्वरस आमकी गुठलीका चूर्ण अथवा प्याजका स्वरस इनमेंसे किसी एक रसका नस्य लेनेसे नासिकाके द्वारा रक्तका स्राव होना दूर होता है ॥ २८ ॥

रसो दाडिमपुष्पस्य दूर्वारससमन्वितः ।
अलक्तकरसोपेतः पथ्ययावा समन्वितः ॥ २९ ॥

योजितो नस्यतः क्षिप्रं त्रिदोषमपि देहिनाम् ।
नासाप्रवृत्तं रक्तन्तु हन्यादेव न संशयः ॥ ३० ॥

अनारके फूलोंका स्वरस और दूबका स्वरस दोनोंको एकत्र मिलाकर अथवा आलका काथ और हरडका काथ मिलाकर नस्य देनेसे त्रिदोषजनित नासिकागत रक्तस्राव निस्सन्देह तत्काल बन्द होता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

नासाप्रवृत्तरुधिरं घृतभृष्टं श्लक्ष्णपिष्टमामलकम् ।
सेतुरिव तोयवेगं रुणद्धि मूर्ध्नि प्रलेपेन ॥ ३१ ॥

आमलोंको खूब बारीक पीसकर और घीमें भूनकर मस्तकपर लेपकरे तो नासिकासे होनेवाला रक्तस्राव इस प्रकार तत्काल नष्ट होता है, जैसे पुलके द्वारा जलका वेग रुकजाता है ॥ ३१ ॥

मेढ्रगेऽतिप्रवृत्ते तु वस्तिरुत्तरसंज्ञितः ।
शृतं क्षीरं पिबेद्वापि पञ्चमूल्या तृणाह्वया ॥ ३२ ॥

लिंगके द्वारा रक्तका स्राव होनेपर प्रथम वस्तिक्रिया करे । फिर पञ्चतृण मूल (कुशा, काँस, रामसर, काली ईख और धान इन पाँचोंकी जडको पञ्चतृणमूल कहते हैं) को दूधमें औटाकर पान करे तो लिंगगत रक्तपित्त रोग दूर होता है ॥ ३२ ॥

ह्रीवेरादि ।

ह्रीबेरमुत्पलं धान्यं चन्दनं यष्टिकामृताः ।
उशीरश्च त्रिवृच्चैषां क्वाथं समधुशर्करम् ॥ ३३ ॥
पाययेत्तेन सद्यो हि रक्तस्रुति प्रशाम्यति ।
रक्तपित्तं जयत्युग्रं तृष्णां दाहं ज्वरं तथा ॥ ३४ ॥

सुगन्धवाला, नीलकमल, धनियाँ, लालचन्दन, मुलैठी, गिलोय, खस और निसोथ इनके काथको शहद और चीनी मिलाकर पान करानेसे दारुण रक्तपित्त, रुधिरका स्राव, तृषा, दाह और ज्वर ये सब रोग नष्ट होते हैं ३३॥३४

वासकादि।

वासापत्रसमुद्भूतो रसः समधुशार्करः।
क्वाथो वा हरते पीतो रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ ३५ ॥

अडूसेके पत्तोंका स्वरस अथवा क्वाथ शहद और मिश्री मिलाकर पान करनेसे अत्यन्त दारुण रक्तपित्तरोग दूर होता है ॥ ३५ ॥

धान्यकादि।

धन्याकधात्रीवासानां द्राक्षापर्पटयोर्हिमः।
रक्तपित्तं ज्वरं दाहं तृष्णां शोषञ्च नाशयेत् ॥ ३६ ॥

धनियाँ, आमले, अडूसेके पत्ते, दाख और पित्तपापडा इनके शीतल क्वाथको शहद और मिश्री मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त, ज्वर, दाह, तृषा और शोष आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ३६ ॥

अटरूषकादि।

अटरूषकमृद्वीकापथ्याक्वाथः सशार्करः।
क्षौद्राढ्यः श्वसनोत्क्लेशरक्तपित्तनिवारणः ॥ ३७ ॥

अडूसा, दाख और हरड इनके क्वाथमें चीनी और शहद डालकर पान करनेसे कठिनतासे श्वासका लेना, रक्तवमन, रक्तपित्त आदि रोग निवृत्त होतेहैं॥

उशीरादिचूर्ण।

उशीरं तगरं शुण्ठी कक्कोलं चन्दनद्वयम्।
लवङ्गं पिप्पलीमूलं कृष्णैला नागकेशरम् ॥ ३८ ॥
मुस्ता मधुककर्पूरं तुगाक्षीरी च पत्रकम्।
कृष्णागुरुसमं चूर्णं सिता चाष्टगुणा तथा ॥
रक्तवान्तिश्च तापश्च नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ३९ ॥

खस, तगर, सोंठ, कङ्कोल, सफेद चन्दन, लालचन्दन, लवङ्ग, पीपलामूल, बडी इलायची, नागकेशर, नागरमोथा, मुलैठी, कपूर, वंशलोचन और तेजपात इन सब औषधियोंका चूर्ण समानभाग और काली अगरका चूर्ण सम्पूर्ण चूर्णके बराबर भाग लेवे। फिर अगरके चूर्णसहित सब चूर्णसे अठगुनी मिश्री मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल छः छः माशे परिमाण सेवनकरे। इसका सेवन करनेसे रक्तवमन और शरीरकी दाह नष्ट होती है ॥ ३८-३९ ॥

एलादिगुटिका ।

एलापत्रत्वचोऽर्द्धाक्षाः पिप्पल्यार्द्धपलं तथा ।
सितामधुकखर्जूरमृद्वीकाश्च पलोन्मिताः ॥ ४० ॥
सञ्चूर्ण्य मधुना युक्ता गुटिकां कारयेद्भिषक् ।
अक्षमात्रां ततश्चैकां भक्षयेच्च दिने दिने ॥ ४१ ॥
श्वासं कासं ज्वरं हिक्कां छर्दिं मूर्च्छां मदं भ्रमम् ।
रक्तनिष्ठीवनं तृष्णां पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ४२ ॥
शोषप्लीहामवातांश्च स्वरभेदं क्षतक्षयम् ।
गुटिका तर्पणी वृष्या रक्तपित्तं विनाशयेत् ॥ ४३ ॥

इलायची १ तोला, तेजपात १ तोला, दारचीनी १ तोला, पीपल दो तोले और मिश्री, मुलैठी, खजूर और दाख ये प्रत्येक चार चार तोले लेवे। इन सबका एकत्र चूर्ण करके शहदके साथ खरलकर एक एक तोलेकी गोलियाँ बना-लेवे इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःसमय एक एक गोली सेवन करे तो श्वास, खाँसी, ज्वर, हिचकी, वमन, मूर्च्छा, मद, भ्रम, रुधिरका थूकना, तृषा, पसलीकी पीडा, अरुचि, शोषरोग, तिल्ली, आमवात, स्वरभेद, क्षतक्षय और रक्तपित्तादि सब रोग नष्ट होते हैं। यह वटी वीर्यवर्द्धक और तृप्तिकारक है ॥ ४०-४३ ॥

अर्केश्वररस ।

मृतार्कं मृतवङ्गश्च मृताभ्रञ्च समाक्षिकम् ।
अमृतास्वरसैर्भाव्यं त्रिसप्तकं पुटे पचेत् ॥ ४४ ॥
वासाक्षीरविदारीभ्यां चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः ।
भक्षणाद्विनिहन्त्याशु रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ ४५ ॥

ताम्रभस्म, वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म और सोनामाखीकी भस्म इन सबको समानभाग लेकर गिलोयके स्वरसमें २१ बार भावना देवे, फिर सम्पुटमें रख-कर पकावे तो अर्केश्वररस सिद्ध होताहै। इसको चार चार रत्तीकी मात्रासे अडूसा और दूध विदारीकन्दके स्वरस वा काथके साथ प्रतिदिन सेवन कर-नेसे अत्यन्त दारुण रक्तपित्तरोग शीघ्र नष्ट होताहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

रक्तपित्तान्तकरस ।

मृताभ्रं मृततीक्ष्णञ्च माक्षिकं रसतालकम् ।
गन्धकञ्च भवेत्तुल्यं यष्टिद्राक्षामृताद्रवैः ॥ ४६ ॥

दिनैकं मर्दयेत्खल्ले सिताक्षौद्रसमन्वितम् ।
माषमात्रं निहन्त्याशु रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥
ज्वरं दाहं क्षतक्षीणं तृष्णां शोषमरोचकम् ॥ ४७ ॥

अभ्रकभस्म, तीक्ष्ण लोहभस्म, सोनामाखीकी भस्म, शुद्धपारा, शुद्ध हर-ताल और शुद्धगन्धक इन सबको समानभाग लेकर मुलैठी, दाख और गिलोय प्रत्येकके काथमें एक एक दिन तक खरलकरे । फिर नित्यप्रति प्रातः-काल इसको एक एक मासे परिमाण मिश्री और शहदमें मिलकार सेवन करे। इससे दुस्तर रक्तपित्त, ज्वर, दाह, क्षतक्षय, तृषा, शोथ और अरुचि आदि रोग दूर होते हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

रसामृतरस ।

रसस्य द्विगुणं गन्धं माक्षिकञ्च शिलाजतु ।
चन्दनं गुडुची द्राक्षा मधुपुष्पञ्च धान्यकम् ॥ ४८ ॥
कुटजस्य त्वचं बीजं धातकी निम्बपत्रकम् ।
यष्टीमधुसमायुक्तं मधुशर्करयान्वितम् ॥ ४९ ॥
विधिना मर्दयित्वा तु कर्षमात्रन्तु भक्षयेत् ।
धारोष्णपयसा युक्तं प्रातरेव समुत्थितः ॥ ५० ॥
पित्तं तथाम्लपित्तञ्च रक्तपित्तं विशेषतः ।
निहन्ति सर्वदोषञ्च ज्वरं सर्वं न संशयः ॥
रसामृतरसो नाम गहनानन्दभाषितः ॥ ५१ ॥

शुद्धपारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, सोनामाखीकी भस्म, शुद्ध शिला-जीत, लालचन्दन, गिलोय, दाख, महुके फूल, धनियाँ, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ, धायके फूल, नीमके पत्ते और मुलैठी-ये प्रत्येक एक एक भाग लेवे। सब औष-धियोंको यथाविधि एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करले । इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक तोला परिमाण लेकर शहद और मिश्री मिलाकर धारोष्ण दूधके साथ सेवनकरे । इसको सेवनकरनेसे पित्त, अम्लपित्त विशेषकर रक्त-पित्त, ज्वर और अन्यान्य सर्वप्रकारके विकार नष्ट होते हैं । इस रसामृत नामक रसको श्रीगहनानन्दजीने निर्माण किया है ॥ ४८-५१ ॥

सुधानिधिरस ।

सूतं गन्धं माक्षिकं लौहचूर्णं सर्वं वृष्टं त्रैफलेनोदकेन ।

मूषामध्ये भूधरे तत्पुटित्वा दद्याद् गुञ्जां त्रैफलेनोदकेन ॥
लौहे पात्रे गोपयः पाचयित्वा रात्रौ दद्याद्रक्तपित्तप्रशान्त्यै॥

शुद्ध पारा, शुद्धगन्धक, सोनामाखीकी भस्म, लोहभस्म इन सबको समान भाग लेकर त्रिफलेके काथमें एकदिन तक खरलकरके एक घडियामें रखकर भूधरयन्त्रमें पकावे। जव पककर शीतल होजाय तब औषधि निकालकर खरल करलेवे। इसको प्रतिदिन रात्रिके समय एक एक रत्तीकी मात्रासे त्रिफलेके काथके साथ सेवन करावे और ऊपरसे लोहेके पात्रमें गायका दूध औटाकर पानकरावे।यह रस रक्तपित्तको नष्ट करनेके लिये अत्युत्तम है॥५२॥

कपर्द्दकरस।

मृतं वा मूर्च्छितं सूतं कार्पासकुसुमद्रवैः।
मर्दयेद्दिनमेकन्तु तेन पूर्या वराटिका ॥ ५३ ॥
निरुध्य चान्धमूषायां भाण्डे रुध्वा पुटे पचेत्।
उद्धृत्य चूर्णयेत् श्लक्ष्णं मरिचैर्द्विगुणैः सह ॥ ५४ ॥
गुञ्जामात्रं घृतेनैव भक्षयेत्प्रातरुत्थितः।
उदुम्बरं घृतश्चैव अनुपानं प्रयोजयेत् ॥
कपर्दका रसो नाम रक्तपित्तविनाशनः ॥ ५५ ॥

रससिन्दूर अथवा शुद्धकियेहुए पारेको कपासके फूलोंके रसमें एक दिन-तक खरल करके कौडीमें भरलेवे फिर उस कौडीको अन्धमूषानामक यन्त्रमें रखकर और उस यन्त्रको मिट्टीके पात्रमें बन्दकरके पुटपाक करे। जब वह उत्तम प्रकारसे पककर अपने आप शीतल होजाय तब औषधि निकालकर उसमें दुगुना काली मिरचोंका चूर्ण मिलाकर लेवे। इसमेंसे प्रतिदिन प्रातः-काल एक एक रत्ती प्रमाण घृतके साथ मिलाकर सेवन करे। अनुपान--गूल-रका रस और घृत। यह कपर्दक नामकरस रक्तपित्तनाशक है॥ ५३-५५ ॥

समशर्कर लौह।

लौहाच्चतुर्गुणं क्षीरमाज्यं द्विगुणमुत्तमम्।
चूर्णं पादन्तु वैडङ्गं दद्यान्मधुसिते समे ॥ ५६ ॥
ताम्रपात्रे शुभे पक्का स्थापयेद्घृतभाजने।
माषकादिक्रमेणैव भक्षयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ५७ ॥

अनुपानं प्रयुञ्जीत नारिकेलजलादिकम् ।
रक्तपित्तं जयेत्तीव्रमम्लपित्तं क्षतक्षयम् ॥
पुष्टिदं कान्तिजननमायुष्यं वृष्यमुत्तमम् ॥ ५८ ॥

लोहभस्म ४ तोले, बकरीका दूध १६ तोले, घी ८ तोले, मिश्री ४ तोले, शहद ४ तोले और वायविडङ्गका चूर्ण लोहभस्मसे चौथाई भाग लेवे। प्रथम ताँबेके एक उत्तम पात्रमें लोहभस्म, दूध, घी और मिश्री इनको एकत्रकर पकावे। जब पाक उत्तमप्रकारसे सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर उसमें वायविडङ्गका चूर्ण मिलादेवे और शीतल होजानेपर शहद डालकर घीके चिकने बासनमें भरकर रखदेवे। इसको प्रतिदिन एक एक मासेकी मात्रासे सेवनकरने और ऊपरसे नारियलका जल पानकरनेसे तीव्र अम्लपित्त, रक्तपित्त, क्षतक्षय आदि रोग दूर होते हैं। यह लोह--अत्यन्त पुष्टिकारक, कान्तिजनक, आयुकी वृद्धिकरनेवाला और वृष्यतम है ॥ ५६-५८ ॥

शतमूल्यादिलौह।

शतमूलीसिताधान्यनागकेशरचन्दनैः ।
त्रिकत्रयतिलैर्युक्तं लोहं सर्वगदापहम् ॥
तृष्णादाहज्वरच्छर्दिरक्तपित्तहरं परम् ॥ ५९ ॥

शतावर, मिश्री, धनियाँ, नागकेशर, लालचन्दन, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडां, आमला, वायविडङ्ग, नागरमोथा, चीतेके जडकी छाल और काले तिल इन सबका चूर्ण समानभाग और सब चूर्णकी बराबर लोहभस्म मिलाकर एकत्र खरल करके रखलेवे। इसको उचित मात्रासे नित्य शहदमें मिलाकर सेवन करे। इससे तृषा, दाह, ज्वर, वमन और रक्तपित्त दूर होताहै ॥५९॥

शर्कराद्यलौह।

शर्करातिलसंयुक्तं त्रिकत्रययुतन्त्वयः ।
रक्तपित्तं निहन्त्याशु चाम्लपित्तहरं परम् ॥ ६० ॥

मिश्री, कालेतिल, त्रिकुटा, त्रिफला और वायविडङ्ग, नागरमोथा, चीता सब समान भाग और सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे अम्लपित्त और रक्तपित्त शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६० ॥

रक्तपित्तान्तकलौह।

धात्री च पिप्पलीचूर्णं तुल्यन्तु सितया सह ।
रक्तपित्तहरं लौहं योगराजमिति स्मृतम् ॥ ६१ ॥

वृष्याग्निदीपनं बल्यमम्लपित्तविनाशनम् ।
पित्तोत्थानपि वातोत्थान्निहन्ति विविधान् गदान्६२

आमले, पीपल और मिश्री प्रत्येक एक एक तोला और लोहभस्म२तोले इन सबको जलके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी मात्रासे सेवन करे। यह योगराजलोह रक्तपित्त, अम्लपित्त और पित्तज तथा वातज अनेक प्रकारके विकारोंको नष्ट करताहै। एवं अग्निको दीपन करनेवाला और बल-वीर्यवर्द्धकहै॥६२

खण्डकाद्यलौह ।

शतावरीच्छिन्नरुहा वृषमुण्डीभिका बलाः ।
तालुमूली च गायत्री त्रिफलायास्त्वचस्तथा ॥ ६३ ॥
भार्गी पुष्करमूलञ्च पृथक्पञ्चपलानि च ।
जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम्॥ ६४ ॥
दिव्यौषधिहतस्यापि माक्षिकेण हतस्य वा ।
पलद्वादशकं देयं कान्तलौहस्य चूर्णितम् ॥ ६५ ॥
खण्डतुल्यं घृतं देयं पलं षोडशिकं बुधैः ।
पचेत्ताम्रमये पात्रे गुडपाको मतो यथा ॥ ६६ ॥
प्रस्थार्द्धं मधुनो देयं शुभाश्म जतुकं त्वचम् ।
शृङ्गी कृष्णा विडङ्गञ्च शुण्ठ्याजाजी पलं पलम्६७॥
त्रिफला धान्यकं पत्रं द्व्यक्षं मरिचकेशरम् ।
चूर्णं दत्वा सुमथितं स्निग्धभाण्डे निधापयेत् ॥ ६८॥
यथाकालं प्रयुञ्जीत बिडालपदकं ततः ।
गव्यक्षीरानुपानञ्च सेव्यो मांसरसः पयः ॥ ६९ ॥
गुरुवृष्यान्नपानानि स्निग्धं मांसादिबृंहणम् ।
रक्तपित्तं क्षयं कासं पंक्तिशूलं विशेषतः ॥ ७० ॥
वातरक्तं प्रमेहञ्च शीतपित्तं वमिं क्लमम् ।
श्वयथुं पाण्डुरोगञ्च कुष्ठं प्लीहोदरन्तथा ॥ ७१ ॥
आनाहं शोणितस्रावमम्लपित्तं निहन्ति च ।
चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं माङ्गल्यं प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ७२ ॥

आरोग्यं पुत्रदं श्रेष्ठं कामाग्निबलवर्द्धनम् ।
श्रीकरं लाघवकरं खण्डकाद्यं प्रकीर्त्तितम् ॥ ७३ ॥

शतावर, गिलोय, अडूसेकी छाल, गोरखमुण्डी, गंगेरन, मुसली, खैरसार, त्रिफला, भारंगी, पोहकरमूल ये प्रत्येक औषधि बीस बीस तोले लेकर १ द्रोण जलमें पकावे। जब आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर मैनसिलके द्वारा अथवा सुवर्णमाक्षिकके द्वारा भस्म किया हुआ कान्त-लोह ४८ तोले खाँड ६४ तोले और घी ६४ तोले लेकर सबको उक्त काथके साथ ताँबेके वर्त्तनमें पकावे. जब पकते पकते गुडपाककी समान गाढा होजाय तब उसमें वंशलोचन, शिलाजीत, दारचीनी, काकडासिंगी, वायविडङ्ग, पीपल, सोंठ और कालाजीरा प्रत्येक चार चार तोले, एवं त्रिफला, धनियाँ, तेजपात, कालीमिरच और केशर प्रत्येक दो दो तोले बारीक पीसकर डाल देवे और शीतल होनेपर ३२ तोले शहद मिलाकर चिकने वर्त्तनमें भरकर रखदेवे। इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःसायंकाल एक एक तोला परिमाण सेवन करे। अनुपान गोदुग्ध इसपर मांसरस, दूध, गुरुपाकी वीर्यवर्द्धक स्निग्ध अन्नपान और मांसादि पौष्टिक पदार्थ सेवन करने चाहिये। यह लौह रक्तपित्त, क्षय, खाँसी, परिणामशूल, वातरक्त, प्रमेह, शीतपित्त, वमन, क्लम, सूजन, पाण्डु-रोग, कुष्ठ, प्लीहा, उदररोग, अफारा, रुधिरस्राव और अम्लपित्त इन सम्पूर्ण व्याधियोंको नष्ट करताहै। एवं नेत्रोंको हितकर, अत्यन्त पौष्टिक, वीर्यवर्द्धक, कल्याणकारक, स्नेहवर्द्धक, आरोग्यप्रद, पुत्रजनक, कामाग्नि और बलकी वृद्धि करनेवाला है। तथा कान्तिजनक और लघुता उत्पन्न करनेवालाहै। इसको खण्डकाद्यलौह कहते हैं ॥ ६३-७३ ॥

कूष्माण्डखण्ड।

कूष्माण्डकात्पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम् ।
पचेत्तप्ते घृतप्रस्थे शनैस्ताम्रमये दृढे ॥ ७४ ॥
यदा मधुनिभः पाकस्तदा खण्डशतं न्यसेत् ।
पिप्पलीशृङ्गवेराभ्यां द्वे पले जीरकस्य च ॥ ७५ ॥
त्वगेलापत्रमरिचधान्यकानां पलार्द्धकम् ।
न्यसेच्चूर्णीकृतं तत्तु दर्व्या संघट्टयेत्पुनः ॥ ७६ ॥
तत्पक्वं स्थापयेद्भाण्डे दत्वा क्षौद्रं घृतार्द्धकम् ।
तद्यथाग्निबलं खादेद्रक्तपित्ती क्षतक्षयी ॥ ७७ ॥

कासश्वासतमश्छर्दितृष्णाज्वरनिपीडितः।
वृष्यं पुनर्नवकरं बलवर्णप्रसादनम्॥ ७८॥
उरःसन्धानकरणं बृंहणं स्वरवर्द्धनम्।
अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं कूष्माण्डकरसायनम्॥ ७९॥
"खण्डामलकमानानुसारात्कूष्माण्डकद्रवात्।
पात्रं पाकाय दातव्यं यावद्धान्नरसो भवेत्॥
अत्रापि मुद्रया पाको निस्त्वचं निष्कुलीकृतम्॥८०"

एक उत्तम पुराने पेठेको छीलकर और बीज निकालकर साफ करलेवे। फिर उसको जलमें कुछदेर उबालकर, वस्त्रमें निचोडकर उसका रस निकाललेवे उस पेठेको धूपमें सुखालेवे। पश्चात् उक्त सुखायेहुए पेठेके टुकडोंको १००पल चूर्णको एक उत्तम ताँबेके पात्रमें डालकर एक प्रस्थ गरम घृतमें धीरे धीरे भूने, जब वह भुनते २ मधुकी समान लाल होजाय तब उसको पूर्वोक्त पेठेके रसके साथ सौ पल खाँड मिलाकर यथाविधि पकावे। जब उत्तम प्रकारसे पाक सिद्ध होजाय तब पीपल, सोंठ और जीरा प्रत्येक दो पल, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, कालीमिरच और धनियाँ ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले बारीक पीसकर मिलादेवे और शीतल होजानेपर६४तोले शहद डालकर करछीसे सबको एकमएक करके घीके चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे। इसको प्रतिदिन अपनी अग्निके बलानुसार सेवन करे और बकरीके गरम दूधका अनुपान करे। इसके सेवनसे रक्तपित्त, क्षतक्षय, खाँसी, श्वास, तमक, तृषा, ज्वर आदि रोगोंसे पीडित रोगी शीघ्र आरोग्य होता है। यह औषधि अत्यन्त वीर्यवर्द्धक, शरीरको फिरसे नवीन करनेवाली, बल और वर्णको उत्पन्न करनेवाली, उरःसन्धानकारक, पौष्टिक और स्वरवर्द्धक है। इस कूष्माण्डखण्ड नामक उत्तम रसायनको अश्विनीकुमारोंने निर्म्माण किया है॥ ७४-८०॥

वासाकूष्माण्डखण्ड।

पञ्चाशच्च पलं स्विन्नं कूष्माण्डात्प्रस्थमाज्यतः।
ग्राह्यं पलशतं खण्डं वासाक्वाथाढके पचेत्॥८१॥
मुस्ता धात्री शुभा भार्गी त्रिसुगन्धैश्च कार्षिकैः।
ऐलेयविश्वधन्याकमरिचैश्च पलांशिकैः॥ ८२॥
पिप्पलीकुडवश्चैव मधुमानीं प्रदापयेत्।
एतच्चूर्णीकृतं तत्र दर्व्या संघट्टयेत्पुनः॥ ८३॥

कासं श्वासं क्षयं हिक्कां रक्तपित्तं हलीमकम् ।
हृद्रोगमम्लपित्तञ्च पीनसञ्च व्यपोहति ॥ ८४ ॥

एक उत्तम पकाहुआ पेठा लेकर और उसको छीलकर तथा बीज निकाल-कर कुछ उबालकर सुखालेवे । ऐसे पेठेके टुकडोंको ५०पल लेकर और उनको पीसकर एक प्रस्थ घृतमें उत्तम प्रकारसे भूनलेवे । फिर उसको अडूसेके २५६ तोले काथमें ४०० तोले खाँडके साथ धीरे धीरे पकावे । जब पाक यथाविधि सिद्ध होजाय तब उसमें नागरमोथा, आमले, वंशलोचन, भारंगी, दारचीनी, तेजपात और छोटी इलायची ये प्रत्येक एक एक कर्ष, एलुआ, सोंठ, धनियाँ और कालीमिरच ये प्रत्येक एक एक तोला और पीपल १६ तोले इन सबको बारीक पीसकर डालदेवे और शीतल होजानेपर ३२ तोले शहद डालकर कर-छीसे सबको एकमएक करके घीके चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे । इस वासा-कूष्माण्डखण्डको प्रतिदिन छः छः मासे प्रमाण सेवन करनेसे खाँसी, श्वास, क्षय, हिचकी, रक्तपित्त, हलीमक, हृदयरोग, अम्लपित्त और पीनस ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ८१-८४ ॥

वासाखण्ड ।

तुलामादाय वासायाः पचेदष्टगुणे जले ।
तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं भिषक् ॥ ८५ ॥
चूर्णानामभयानाञ्च खण्डाच्छुद्धाच्छतं तथा ।
द्विपलं पिप्पलीचूर्णात्सिद्धे शीते च माक्षिकात् ॥ ८६ ॥
कुडवं पलमानन्तु चातुर्जातन्तु चूर्णितम् ।
क्षिप्त्वा विलोडितं खादेद्रक्तपित्ती क्षतक्षयी ॥
कासश्वासपरीतश्च यक्ष्मणा च प्रीडितः ८७ ॥

अडूसेको१००पल लेकर अठगुने जलमें पकावे । जब पकते२ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । उस काथमें सौ पल शुद्ध खाँड डालकर पकावे। जब अच्छे प्रकारसे चासनी होजाय तब उसमें हरडोंका चूर्ण २५६ तोले और पीपलका चूर्ण ८ तोले डालकर अग्निसे नीचे उतार लेवे । शीतल होजानेपर दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेशर इनका चूर्ण ४ तोले एवं शहद ३२ तोले डालकर करछीसे सबको मिलादेवे । इस औषधिको छःछः मासेकी मात्रासे प्रतिदिन सेवन करनेसे रक्तपित्त, उरःक्षत, खाँसी, श्वास और यक्ष्मारोगसे पीडित रोगी आरोग्यलाभ करताहै॥८५॥८७

बृहत्कूष्माण्डावलेह।

पुराणं पीनमानीय कूष्माण्डस्य फलं दृढम्।
तद्बीजाधारबीजत्वक्-शिराशून्यं समाचरेत् ॥ ८८ ॥
ततोऽतिसूक्ष्मखण्डानि कृत्वा तस्य तुलां पचेत्।
गोदुग्धस्य तुलामध्ये मन्देऽग्नौ वा पचेच्छनैः ॥ ८९ ॥
शर्करायास्तुलां सार्द्धां गोघृतं प्रस्थमात्रकम्।
प्रस्थार्द्धं माक्षिकञ्चापि कुडवं नारिकेलतः ॥ ९० ॥
पियालफलमज्ज्ञानां द्विपलं गोक्षुरी पलम्।
क्षिपेदेकत्र विपचेल्लेहवत्साधु साधयेत् ॥ ९१ ॥
भिषक् सुपक्वमालोक्य ज्वलनादवतारयेत्।
कोष्णे तत्र क्षिपेदेषां चूर्णं तानि वदाम्यहम् ॥ ९२ ॥
एकोऽक्षः शतपुष्पाया अथ क्षारो यमानिका।
गोक्षुरः क्षुरकः पथ्या कपिकच्छुफलानि च ॥ ९३ ॥
सप्तमी त्वक् च सर्वेषामक्षयुग्मं पृथक् पृथक्।
धान्यकं पिप्पलीमुस्तमश्वगन्धा शतावरी ॥ ९४ ॥
तालमूली नागवला बालकं पत्रकं शठी।
जातीफलं लवङ्गञ्च सूक्ष्मैला बृहदेलिका ॥
शृङ्गाटकं पर्पटकं सर्वं पलमिदं पृथक् ॥ ९५ ॥
चन्दनं नागरं धात्री फलञ्चापि कशेरुकम्।
प्रत्येकं पञ्चकर्षाणि चत्वार्य्येतानि निःक्षिपेत् ॥
पलद्वयमुशीरस्य मसनस्योषणस्य च ॥ ९६ ॥
कूष्माण्डस्यावलेहोऽयं भक्षितं पलमात्रया।
किम्वा यथावह्निबलं भुक्त्वा रोगं विनाशयेत् ॥ ९७ ॥
रक्तपित्तं शीतपित्तमम्लपित्तमरोचकम्।
वह्निमान्द्यं सदाहञ्च तृषां प्रदरमेव च ॥ ९८ ॥
रक्ताऽर्शोऽपि तथा च्छर्दिं पाण्डुरोगञ्च कामलाम्।
उपदंशं विसर्पञ्च जीर्णञ्च विषमज्वरम् ॥ ९९ ॥

लेहोऽयं परमो वृष्यो बृंहणो बलवर्द्धनः।
स्थापनीयः प्रयत्नेन भाजने मृण्मये नवे ॥ १०० ॥

उत्तम पकेहुए, पुराने और एक दृढ पेठेको लेकर और उसको छीलकर बीज और छिलके रहित करलेवे। फिर उसको कुछ उबालकर और उसको वस्त्रमें रस निचोडकर छोटे २ टुकडे करके धूपमें सुखालेवे। ऐसे पेठेके ४०० तोले टुकडोंको चार सौ तोले गोदुग्धमें धीरे धीरे मन्द मन्द अग्निके द्वारा पकावे। जब वह अच्छी तरह पकजाय तब १५०पल खाँड, ६४ तोले गोघृत, शहद ३२ तोले, नारियल १६ तोले, चिरौंजीकी मींग ८ तोले, गोखुरू ४ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर लेहकी समान पकावे। वैद्य पाकको उत्तम प्रकारसे सिद्ध हुआ जानकर चूल्हेपरसे उतारलेवे। कुछगरम रहनेपर उसमें नीचे-लिखी औषधियोंका चूर्ण मिलादेवे। सौंफका चूर्ण २ तोले, जवाखार, अजवायन, गोखुरू, तालमखाना, हरड, कौंछके बीज और दारचीनी ये प्रत्येक चार तोले, धनियाँ, पीपल, नागरमोथा, असगन्ध, शतावर, मुसली, गंगेरन, सुगन्धवाला, तेजपात, कचूर, जायफल, लौंग, छोटी इलायची, बडी इलायची, सिंवाडे और पित्तपापडा ये सब एक एक पल, लाल चन्दनका चूरा, सोंठ, आमले और कशेरू ये चारों पाँच २ कर्ष लेवे. एवं खस ८ तोले, बावची ८ तोले और काली मिरच ८ तोले—सबको एकत्र मिलाकर मिट्टीके एक नवीन चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे। इसको प्रतिदिन प्रातः सायंकाल चार २ तोले अथवा अपनी जठराग्निके बलानुसार सेवन करनेसे रक्तपित्त, शीतपित्त, अम्लपित्त, अरुचि, मन्दाग्नि, दाह, तृषा, प्रदर, रुधिरकी बवासीर, वमन, पाण्डु, कामला, उपदंश, विसर्प, जीर्ण ज्वर और विषमज्वर आदि रोग शीघ्रही नष्ट होते हैं। यह अवलेह अत्यन्त बल, वीर्य्यवर्द्धक और पुष्टिकारक है। इसको बृहत् कूष्माण्डावलेह कहते हैं ॥ ८८–१०० ॥

त्रिवृत्तादिमोदक।

त्रिवृत्ता त्रिफला श्यामा पिप्पली शर्करा मधु।
मोदकं सन्निपातोर्द्धरक्तपित्तज्वरापहम् ॥ १ ॥

निसोत, त्रिफला, फूल प्रियंगू, पीपल और खाँड—सबको समानभाग लेकर यथाविधि मधुके साथ मिलाकर मोदक बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन छः २ मासे मोदकको शीतल जलके साथ सेवन करनेसे सन्निपातजन्य ऊर्ध्वगत रक्तपित्त और ज्वर दूर होता है ॥ १ ॥

वासाद्यघृत।

वासां सशाखां सफलां समूलां
कृत्वा कषायं कुसुमानि चास्याः।
प्रदाय कल्कं विपचेद्घृतञ्च
क्षौद्रेण पानाद्विनिहन्ति रक्तम् ॥
"शणस्य कोविदारस्य वृषस्य ककुभस्य च।
कल्काढचत्वात्पुष्पकल्कं प्रस्थे पलचतुष्टयम्" ॥२॥

शाखा, फल और जडसहित अडूसेको ४ सेर लेकर ३२ सेर जलमें पकाकर ८ सेर जल शेष रक्खे। फिर उस काथमें अडूसेके फूलोंका कल्क आठ तोले और गोघृत १ सेर डालकर यथाविधि घृतको सिद्धकरे। इस घृतको शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे रक्तपित्त नष्ट होता है। (किसी २ के मतसे इसमें--सन, कचनार, अडूसा और अर्जुन-इनके फूलोंका कल्क चार पल, घी १ प्रस्थ डालकर घृतको पकाना चाहिये।॥ २॥

दूर्वाद्यघृत।

दूर्वा सोत्पलकिंजल्का मञ्जिष्ठा सैलवालुका।
सिताशीतमुशीरञ्च मुस्तं चन्दनपद्मकम् ॥ ३ ॥
विपचेत्कार्षिकैरेतैः सर्पिराजं सुखाग्निना।
तण्डुलाम्बु त्वजाक्षीरं दत्त्वा चैव चतुर्गुणम् ॥ ४ ॥
तत्पानं वमतो रक्तं नावनं नासिकागते।
कर्णाभ्यां यस्य गच्छेत्तु तस्य कर्णौ प्रपूरयेत् ॥ ५ ॥
चक्षुःस्राविणि रक्ते च पूरयेत्तेन चक्षुषी।
मेढ्रपायुप्रवृत्ते च वस्तिकर्मसु तद्धितम् ॥
रोमकूपप्रवृत्ते तु तदभ्यङ्गे प्रयोजयेत् ॥ ६ ॥

दूब, कमल, कमलकी केशर, मँजीठ, एलुआ, मिश्री, सफेद चन्दन, खस, नागरमोथा, लालचन्दन और पद्माख--प्रत्येक औषधि एक एक कर्ष एवं चावलोंका जल और बकरीका दूध सब औषधियोंसे चौगुना, बकरीका घी १सेर लेवे। सबको एकत्र मिलाकर यथाविधि मन्द मन्द अग्निके द्वारा घृतको सिद्ध करे। इस दूर्वाद्यघृतको--वमनके द्वारा रक्तस्राव होनेपर पानकरे, नासिकाके

द्वारा रुधिरका स्राव होनेपर नस्य देवे । कानोंमेंसे रक्तस्राव हो तो इस घृतको कानोंमें डाले । नेत्रोंमेंसे रुधिरका स्राव होनेपर नेत्रोंमें भरे, जो लिङ्ग और गुदाके द्वारा रक्तस्राव हो तो इस घृतकी पिचकारी लगावे और रोमकूपोंके द्वारा रक्तस्राव होय तो इस घृतकी शरीरमें मालिशकरे ॥ ३–६ ॥

सप्तप्रस्थघृत ।

शतावरी पयोद्राक्षाविदारीक्ष्वामले रसैः ।
सर्पिषा सह संयुक्तैः सप्तप्रस्थं पचेद्धृतम् ॥ ७ ॥
शर्करापादसंयुक्तं रक्तपित्तहरं पिबेत ।
उरःक्षते पित्तशूले चोष्णवातेऽप्यसृग्दरे ॥
बल्यमोजस्करं वृष्यं क्षयहृद्रोगनाशनम् ॥ ८ ॥

शतावर, सुगन्धवाला, दाख, विदारीकन्द, ईख और आमले इन सबका स्वरस और गोघृत ये प्रत्येक एक एक प्रस्थ लेवे । सबको घृतके साथ मिलाकर यथाविधि घृतको पकावे । जब उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब उसमें १६ तोले शुद्ध खांड मिलादेवे । इस घृतको प्रतिदिन छः छः मासे पान करनेसे रक्तपित्त, क्षय और हृदयरोग दूर होताहै । यह घृत उरःक्षत, पित्तशूल उष्णवात और रक्तप्रदर रोगोंमें हितकारी एवं बल, ओज और वीर्यकी अत्यन्त वृद्धि करता है । तथा क्षय और हृदयरोगको नष्ट करताहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

शतावरीघृत ।

शतावर्यास्तु मूलानां रसं प्रस्थद्वयं मतम् ।
तत्समश्च भवेत्क्षीरं घृतप्रस्थं विपाचयेत ॥ ९ ॥
जीवकर्षभकौ मेदा महामेदा तथैव च ।
काकोली क्षीरकाकोली मृद्वीका मधुकं तथा ॥ १० ॥
मुद्गपर्णी माषपर्णी विदारी रक्तचन्दनम् ।
शर्करामधुसंयुक्तं सिद्धं विस्रावयेद्घृतम् ॥ ११ ॥
रक्तपित्तविकारेषु वातरक्तगदेषु च ।
क्षीणशुक्रेषु दातव्यं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ १२ ॥
अङ्गदाहं शिरोदाहं ज्वरं पित्तसमुद्भवम् ।
योनिशूलञ्च दाहञ्च मूत्रकृच्छ्रञ्च पैत्तिकम् ॥ १३ ॥

एतान्रोगान्निहन्त्याशु छिन्नाभ्राणीव मारुतः ।
शतावरीसर्पिरिदं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥
स्नेहपादः स्मृतः कल्कः कल्कवन्मधुशर्करे ॥ १४ ॥

शतावरका रस दो प्रस्थ, गौका दूध दो प्रस्थ, उत्तम घृत १ प्रस्थ, तथा जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, दाख, मुलैठी, मुगवन, मषवन, विदारीकन्द और लालचन्दन इनका कल्क १६ तोले डालकर घृतको सिद्ध करे । जब घृत अच्छे प्रकारसे सिद्ध होजाय तब उसमें सोलह सोलह तोले मिश्री और शहद मिलाकर उतार लेवे.इस घृतको रक्तपित्त, वातरक्त और शुक्रकी क्षीणतामें देना चाहिये । यह अत्यन्त वाजीकरणहै एवं शरीरकी दाह, शिरोदाह, पित्तज्वर, योनिशूल, सर्वप्रकारकी दाह और पित्तज मूत्रकृच्छ्र इन समस्त विकारोंको इस प्रकार नष्ट करदेताहै जैसे वायुके वेगसे मेघोंका समूह तत्काल छिन्न भिन्न होजाताहै । यह शतावरीघृत बल,वर्ण और जठराग्निकी विशेष वृद्धि करताहै ॥ १०९–११४ ॥

बृहच्छतावरीघृत ।

शतावरीमूलतुलाश्चतस्रः संप्रपीडयेत् ।
रसेन क्षीरतुल्येन पचेत्तेन घृताढकम् ॥ १५ ॥
जीवनीयैः शतावर्या मृद्वीकाभिः परूषकैः ।
पिष्टैः पियालैश्चाक्षांशैर्द्वियष्टिमधुकैर्भिषक् ॥ १६ ॥
सिद्धशीते च मधुनः पिप्पल्याश्च पलाष्टकम् ।
दत्त्वा दशपलश्चात्र सितायास्तद्विमिश्रितम् ॥ १७ ॥
ब्राह्मणान्प्राशयेत्पूर्वं लिह्यात्पाणितलं ततः ।
योन्यसृक्शुक्रदोषघ्नं वृष्यं पुंसवनञ्च तत् ॥ १८ ॥
क्षतक्षयं रक्तपित्तं कासं श्वासं हलीमकम् ।
कामलां वातरक्तञ्च विसर्पं हृच्छिरोग्रहम् ॥
उन्मादादीनपस्मारान्वातपित्तात्मकाञ्जयेत ॥ १९ ॥

शतावरकी जडको कूट पीसकर वस्त्रमें निचोडकर रस निकाल लेवे । ऐसा रस ४०० पल, गौका दूध ४०० पल और घी १ आढक लेवे । सबको एकत्र मिलाकर घृतको पकावे । कुछ देर बाद जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलैठी, मुगवन, मषवन, शतावर, दाख,

फालसे, चिरौंजी, मुलैठी और महुआ प्रत्येक औषधिको दो दो तोले पीसकर डालदेवे। जब घृत उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारलेवे। शीतल होनेपर घृतको छानकर उसमें शहद ३२ तोले, पीपलका चूर्ण ३२ तोले और मिश्री ४० तोले डालकर सबको अच्छी तरह मिलादेवे। यह घृत पहले ब्राह्मणोंको भोजन कराकर पश्चात् एकएक तोला परिमाण सेवन करना चाहिये इसका सेवन करनेसे योनिद्वारा रक्तका स्राव, वीर्यदोष, क्षतक्षय. रक्तपित्त, खाँसी, श्वास, हलीमक, कामला, वातरक्त, विसर्प, हृदयरोग, शिरदर्द, उन्माद, अपस्मार, वात पित्तजन्य आदि विकार नष्ट होते हैं, एवं वीर्यकी वृद्धि और पुरुषत्वकी प्राप्ति होती है॥ १५-१९॥

कामदेवघृत।

अश्वगन्धापलशतं तदर्द्धं गोक्षुरस्य च।
शतावरी विदारी च शालपर्णी बला तथा॥ १२०॥
अश्वत्थस्य च शुङ्गानि पद्मबीजं पुनर्नवा।
काश्मरीफलमेतत्तु माषबीजं तथैव च॥ २१॥
पृथग्दशपलान्भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत्।
चतुर्भागावशेषन्तु कषायमवतारयेत्॥ २२॥
मृद्वीका पद्मकं कुष्ठं पिप्पली रक्तचन्दनम्।
बालकं नागपुष्पञ्च आत्मगुप्ताफलं तथा॥ २३॥
नीलोत्पलं शारिवे द्वे जीवनीयं विशेषतः।
पृथक् कर्षसमञ्चैव शर्करायाः पलद्वयम्॥ २४॥
रसस्य पौण्ड्रकेक्षूणामाढकं तत्र दापयेत्।
चतुर्गुणेन पयसा घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ २५॥
रक्तपित्तं क्षतक्षीणं कामलां वातशोणितम्।
हलीमकं तथा शोथं स्वरभेदं बलक्षयम्॥ २६॥
अरोचकं मूत्रकृच्छ्रं पार्श्वशूलञ्च नाशयेत्।
एतद्राज्ञां प्रयोक्तव्यं बह्वन्तःपुरचारिणाम्॥ २७॥
स्त्रीणाञ्चैवानपत्यानां दुर्बलानाञ्च देहिनाम्।
क्लीबानामल्पशुक्राणां जीर्णानामल्परेतसाम्॥ २८॥

श्रेष्ठं बलकरं हृद्यं वृष्यं पेयं रसायनम्।
ओजस्तेजस्करश्चैव आयुःप्राणविवर्द्धनम् ॥ २९ ॥
संवर्द्धयति शुक्रश्च पुरुषं दुर्बलेन्द्रियम्।
सर्वरोगविनिर्मुक्तस्तोयासिक्तो यथा द्रुमः ॥
कामदेव इति ख्यातः सर्वर्तुषु च शस्यते ॥ १३० ॥

असगन्ध १०० पल, गोखुरू ५० पल एवं शतावर, विदारीकन्द, शालपर्णी, खिरैंटी, पीपलके वृक्षके अंकुर, कमलगट्टा, पुनर्नवा, कुम्भरेके फल और उडद ये प्रत्येक औषधि दश दश पल लेवे। सबको एकत्र कूटकर ४ द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस क्काथमें दाख, पद्माख, कूठ, पीपल, लालचन्दन, सुगन्धवाला, नागकेशर, कौंछके बीज, नीलकमल, दोनों सारिवा और जीवनीयगणकी समस्त औषधियाँ (जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगवन और मषवन) ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले मिश्री ९ तोले, पौण्डे गन्नोंका रस १ आढक, दूध ४ प्रस्थ और घी १ प्रस्थ डालकर मन्दमन्द अग्निके द्वारा धीरे धीरे विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे। यह कामदेव घत रक्तपित्त, क्षत, क्षीण, कामला, वातरक्त, हलीमक, सूजन, स्वरभंग, बलकी क्षीणता, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र और पसलीका शूल इन सम्पूर्ण व्याधियोंको नष्ट करताहै। यह घृत अधिकतर अन्तःपुरमें रहनेवाले राजाओंको सेवन करना चाहिये एवं बन्ध्यास्त्रियों, दुर्बल मनुष्यों, नपुंसक, क्षीणवीर्य, वृद्धमनुष्य और अल्पवीर्यवाले मनुष्योंको अत्यन्त हितकारी है। एवं बलकारक, हृदयको हितकारी, वीर्यवर्द्धक, रसायन तथा ओज, तेज, आयु और प्राणोकों वृद्धि करनेवाला दुर्बल इन्द्रियवाले पुरुषके शरीरमें पुरुषत्वकी प्राप्ति और वीर्यकी वृद्धि करताहै। इस घृतके सेवनसे सर्वप्रकारके रोग दूर होते हैं॥१२०-१३०॥

उशीरासव।

उशीरं बालकं पद्मं काश्मरीं नीलमुत्पलम्।
प्रियङ्गु पद्मकं लोध्रं मञ्जिष्ठाधन्वयासकम् ॥ ३१ ॥
पाठा किराततिक्तश्च न्यग्रोधोदुम्बरं शठी।
पर्पटं पुण्डरीकश्च पटोलं काञ्चनारकम् ॥ ३२ ॥
जम्बुशाल्मलिनिर्यासं प्रत्येकं पलसम्मितम्।
भागांस्तु चूर्णितान्कृत्वा द्राक्षायाः पलविंशतिम् ३३

धातकीं षोडशपलां जलद्रोणद्वये क्षिपेत्।
शर्करायास्तुलां दत्त्वा क्षौद्रस्यैकतुलां तथा ॥ ३४ ॥
मासैकं स्थापयेद्भाण्डे मांसीमरिचधूपिते।
उशीरासव इत्येष रक्तपित्तविनाशनः ॥
पाण्डुकुष्ठप्रमेहार्शःकृमिशोथहरस्तथा ॥ ३५ ॥

खस, सुगन्धवाला, कमल, कुम्भेरकी छाल, नीलकमल, फूलप्रियंगु, पद्माख, लोध, मजीठ, धमासा, पाढ, चिरायता, बडकी छाल, गूलरकी छाल, कचूर, पित्तपापडा, सफेदकमल, पटोलपात, कचनारकी छाल, जामुनकी छाल और मोचरस ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर सबका एकत्र चूर्ण कर-लेवे। फिर दाख २० पल, धायके फूल १६ पल, खाँड १०० पल और शहद १०० पल इन सबको एकत्रकर दो द्रोण परिमाण जलमें डालदेवे। फिर उसको बालछड और कालीमिरचोंके चूर्णके द्वारा धूप दियेहुए पात्रमें भरकर और उसका मुँह बाँधकर एक महीनेतक रक्खा रहनेदेवे। एक महीनेके पश्चात् उसको निकालकर छानलेवे। इसको उशीरासव कहते हैं इसका सेवन कर-नेसे रक्तपित्त, पाण्डु, कुष्ठ, प्रमेह, अर्श, कृमि और शोथ ये सब विकार नष्ट होते हैं ॥ ३१–३५ ॥

रक्तपित्तमें पथ्य।

अधोगते च्छर्दनमूर्द्धनिर्गमे विरेचनं स्यादुभयत्रलङ्घ-नम्। पुरातनाः षष्टिकशालिकोद्रवप्रियङ्गुनीवारय-वप्रशातिकाः ॥३६॥ मुद्गामसूराश्चणकास्तुवर्यो मुकु-ष्टकाश्चिङ्गटवर्मिमत्स्याः। शशः कपोतो हरिणैणला-वशरारिपारावतवर्तकाश्च॥३७॥वका उरभ्राश्च सकाल-पुच्छाः कपिञ्जलाश्चापि कषायवर्गः। गवामजायाश्च पयो घृतञ्च घृतं महिष्याः पनसं पियालम् ॥ ३८ ॥ रम्भा फलं कञ्चटतण्डुलीयपटोलवेत्राग्रमहार्द्रकाणि। पुराणकूष्माण्डफलञ्च पक्वतालानि तद्बीजजलानि वासा ॥ ३९ ॥ स्वादूनि बिम्बानि च दाडिमानि खर्जूरधात्रीमिषिनारिकेलम्। कशेरुशृङ्गाटमरुष्क-

राणि कपित्थशालूकपरूषकाणि ॥ १४० ॥ भूनिम्बशाकं पिचुमर्दपत्रं तुम्बी कलिङ्गानि च लाजसक्तुः। द्राक्षा सिता माक्षिकमैक्षवञ्च शीतोदकञ्चौद्भिदवारि चापि ॥ ४१॥ सेकोऽवगाहः शतधौतसर्पिरभ्यङ्गयोगः शिशिरप्रदेहः। हिमानिलश्चन्दनमिन्दुपादा यथा विचित्राश्च मनोऽनुकूलाः॥४२॥धारागृहं भूमिगृहं सुशीतं वैडूर्यमुक्तामणिधारणञ्च।रम्भोत्पलाम्भोरुहपत्रशय्या क्षौमाम्बरञ्चोपवनं सुशीतम्॥४३॥ प्रियङ्गुकश्चन्दनरूषितानामालिङ्गनञ्चापि वराङ्गनानाम्।पद्माकराणां सरितां ह्रदानां चन्द्रोदयानां हिमवद्दरीणाम् ॥ ४४ ॥ सुशीतलानां गिरिनिर्झराणां श्रुतिः प्रशस्तानि च कीर्त्तितानि। प्रकृष्टनीरं हिमवालुका च मित्रं नृणां शोणितपित्तरोगे ॥ ४५ ॥

अधोगतरक्तपित्तमें—वमन, ऊर्ध्वगत रक्तपित्तमें—विरेचन और अधो व ऊर्ध्व दोनों मार्गोसे रुधिरस्राव होनेपर लंघन करावे। पुराने साँठीके चावल, शालिधानोंके चावल, कोदों, कङ्गनीके चावल, नीवार धान, जौ और लाल नीवार धानोंके चावल, मूँग, मसूर, चने, अरहर, मोंठ और चिङ्गट मछली, वर्म्मिमछली, एवं खरगोश, कबूतर, हिरन, काले हिरन, लवा, शरारिपक्षी, परेवा, बत्तक, बगुला, मेढा, बारहासिंहा और तीतर इन सब जीवोंका मांस, एवं कषायवर्गकी सब औषधियाँ, गौका दूध, घी, बकरीका दूध, घी, भैंसका घी, कटहल, चिरौंजी, केलेकी फली, नारीका शाक, चौलाईका शाक, परबल, बेंतका अग्रभाग, वनअदरख, पुराना पेठा, पके ताडके फल और उसके बीज, अडूसा, मधुररसवाले पदार्थ, कन्दूरी, अनार, खजूर, आमले, सौंफ, नारियल, कशेरू, सिंघाडे, भिलावा, कैथ, भसींडे, फालसे, चिरायता, नीमके पत्ते, लौकी, तरबूज, खीलोंके सत्तू, दाख, मिश्री, शहद, ईखका रस और ईखके रसके बनेहुए अन्यपदार्थ, शीतल जल, औद्भिदजल, शरीरपर शीतल जलका सिंचन, जलमें घुसकर स्नान, सौबार धोयेहुए घीकी मालिश, शीतलवस्तुओंका प्रलेप, शीतलवायुका सेवन, लालचन्दन, चाँदनी, मनको आनन्ददायक मधुर वार्त्तालाप, फुहारेवाले और शीतलभूमिगृहमें निवास, वैदूर्यमणि और मोतियोंकी

मालाको धारण करना, केलेके पत्तों, कुमुदके पत्तों और कमलके पत्तोंपर शयन करना, रेशमी वस्त्रोंका पहरना, शीतलवायुयुक्त बगीचेमें भ्रमण, फूलप्रियंगु और चन्दनसे सुगन्धित अङ्गोंवाली कामिनी स्त्रियोंके साथ आलिङ्गन करना, खिले हुए कमलोंसे युक्त नदियें और तालाब, चाँदनी युक्त बरफके कणोंसे शीतलपर्वतोंकी गुफाओंमें निवास, पर्वतके झरनोंका जलपान, कर्णप्रियगीत और वाद्योंका सुनना, निर्मलजल और कपूर ये सब पदार्थ रक्तपित्तरोगवाले मनुष्योंके लिये हितकारी हैं ॥ ३६--१४५ ॥

रक्तपित्तमें अपथ्य ।

व्यायामाध्वनिषेवणं रविकरस्तीक्ष्णानि कर्म्माणि च
क्षोभो वेगविधारणं चपलता हस्त्यश्वयानानि च ।
स्वेदास्रस्रुतिधूमपानसुरतक्रोधाः कुलत्थो गुडो
वार्ताकुस्तिलमाषसर्षपदधिक्षाराणि कौपं पयः ॥
ताम्बूलं नलदम्बुमद्यलशुनः शिम्बी विरुद्धाशनं
कट्वम्लं लवणं विदाहि च गणस्त्याज्योऽस्रपित्ते नृणाम् ॥

कसरत आदि परिश्रम, अधिक रास्ता चलना, तीक्ष्ण धूपका सेवन, कठिन काम करना, क्षोभ, मल मूत्र आदिके वेगको रोकना, चञ्चलता, हाथीं, घोडे आदिकी सवारीपर चढकर चलना, स्वेद निकलवाना, रुधिर निकलवाना, धूम्रपान, स्त्रीप्रसंङ्ग, क्रोध, कुलथी, गुड, बैंगन, तिल, उडद, सरसों, दही, क्षारवाले पदार्थ, कुएँका जल, ताम्बूल, नीम, मदिरा, लहसुन, सेमकी फली, विरुद्ध भोजन, चरपरे, खट्टे, अधिक लवणरसवाले और दाहकारकपदार्थ ये सब रक्तपित्त रोगवाले मनुष्योंको त्यागदेने चाहिये ॥ १४६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां रक्तपित्तचिकित्सा ॥

अथ यक्ष्मारोग-चिकित्सा ।

ज्वराणां शमनीयो यः पूर्वमुक्तः क्रियाविधिः ।
क्षयीणां ज्वरदाहेषु स सर्वोऽपि प्रशस्यते ॥ १ ॥

ज्वरकी चिकित्सामें जो संशमनविधि कही है वह समस्त विधि क्षयरोग ज्वर और दाहमें करनी चाहिये ॥ १ ॥

उपद्रवा ज्वराद्यास्ते साध्याः स्वैः स्वैश्चिकित्सितैः ।
तेषु शान्तेषु रोगेषु पश्चाच्छोषमुपाचरेत् ॥ २ ॥

यदि यक्ष्मरोगमें ज्वर आदि उपद्रव, उत्पन्न हो तो उनकी चिकित्सा उन्हीं २ रोगोंके अधिकारमें कहीहुई विधिके अनुसार करनी चाहिये । उन सम्पूर्ण रोगोंके शमन होनेपर फिर यक्ष्मरोगकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २ ॥

शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गादयः शुभाः ।
मद्यानि जाङ्गलाः पक्षिमृगाः शस्ता विशुष्यताम् ॥ ३
शुष्यतां क्षीणमांसानां कल्पितानि विधानवित् ।
दद्यात्क्रव्यादमांसानि बृंहणानि विशेषतः ॥ ४ ॥

एक वर्षसे अधिक पुराने शालिधान और साठी धानोंके चावल, गेहूँ, जौ, मूँग, मद्य, जांगलदेशके पशु और पक्षियोंका मांस ये सब यक्ष्मारोगीके लिये हितकर हैं । यक्ष्मरोगमें यदि रोगीका बल और मांस क्षीण होगया हो तो व्याघ्र और गिद्ध आदिके मांसको शास्त्रोक्त विधिके अनुसार विविध प्रकारकी कल्पनाओंद्वारा सिद्धकरके देवे और विशेषकर पौष्टिक पदार्थ देवे । ये सब मांसवर्द्धक, बलकारक और पौष्टिक हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

दोषाधिकानां वमनं शस्यते सविरेचनम् ।
स्नेहस्वेदोपपन्नानां सस्नेहं यन्न कर्षणम् ॥ ५ ॥

अधिक दोषोंवाले यक्ष्मरोगियोंको प्रथम स्वेद देकर और स्नेह (घृत-तैलादि) पान कराकर सस्नेह मृदु वमन और विरेचन कराने चाहिये । किन्तु ऐसा उपाय करे जिससे रोगी दुर्बल और कृश न हो ॥ ५ ॥

बलिनो बहुदोषस्य पञ्चकर्माणि कारयेत् ।
यक्ष्मिणः क्षीणदेहस्य तत्कृतं स्याद्विषोपमम् ॥ ६ ॥

दोषोंकी अधिकता हो तो बलवान् यक्ष्मरोगीके पञ्चकर्म (अर्थात् वमन विरेचन, अनुवासन बस्ति, निरूहणबस्ति और नस्यकर्म) का प्रयोग करना चाहिये। किन्तु बल हीन और क्षीण रोगीके लिये उक्त सम्पूर्ण क्रियायें विषकी समान हानिकर हैं ॥ ६ ॥

शुद्धकोष्ठस्य युञ्जीत विधिं बृंहणदीपनम् ।
शुक्रायत्तं बलं पुंसां मलायत्तं हि जीवनम् ॥
तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥ ७ ॥

वमन विरेचनादिके द्वारा कोष्ठ शुद्धि हो जानेपर रोगीको बलकारक और अग्निवर्द्धक औषधियाँ देनी चाहिये. क्योंकि मनुष्योंका बल शुक्रके आधीन है और जीवन मलके आधीनहै । इसलिये राज यक्ष्मरोगीके वीर्य और मलकी

यत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिये। कारण, अधिक वीर्यक्षय होनेसे बलका ह्रास और अधिक मल निकलनेसे जीवन नष्ट होताहै ॥ ७ ॥

पारावतकपिच्छागकुरङ्गानां पृथक्पृथक्।
मांसचूर्णमजाक्षीरैः पीतं क्षयहरं परम् ॥ ८ ॥

परेवा (कबूतर) बन्दर, बकरा और हिरन इनके मांसको पृथक् पृथक् भूनकर और उनका चूर्णकरके बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे क्षयरोग नष्ट होताहै ॥ ८ ॥

घृतकुसुमरसलीढं क्षयं नयति गजबलामूलम्।
दुग्धेन केवलेन च वायसजङ्घा निपीतैव ॥ ९ ॥

गंगेरनकी जडको वारीक पीसकर घी और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे वा केवल मसीघासको पीसकर दूधके साथ पीनेसे क्षयरोग निवृत्त होताहै॥९

शर्करामधुसंयुक्तं नवनीतं लिहन्क्षयी।
क्षीराशी लभते पुष्टिमतुल्ये चाज्यमाक्षिके ॥ १० ॥

क्षयरोगी, मिश्री और शहदको नैनीघीमें मिलाकर सेवन करे और दूधका भोजन करे अथवा घृत और शहदको असमानभाग अर्थात् ४ माशे और २ माशे लेकर सेवनकरे तो उसके शरीरकी पुष्टि होतीहै ॥ १० ॥

अलक्तकरसैः क्षौद्रं रक्तवान्तिहरं परम् ॥ ११ ॥

लाखके रस अथवा लाखके काढेमें शहद मिलाकर सेवन करनेसे रक्तकी वमन दूर होतीहै॥ ११ ॥

ककुभत्वङ्नागबला वानारिबीजानि चूर्णितं पयसि।
पक्वं घृतमधुयुक्तं ससितं यक्ष्मादिकासहरम् ॥ १२ ॥

अर्जुनकी छाल, गंगेरन और कौंछके बीज-इनके समानभाग चूर्णको दूधमें डालकर पकावे, फिर उसमें शहद, घी और मिश्री मिलाकर पानकरनेसे यक्ष्मा, खाँसी आदि रोग दूर होते हैं ॥ १२ ॥

कृष्णा द्राक्षा सितालेहः क्षयहा क्षौद्रतैलवान्।
मधुसर्पिर्युतो वाश्वगन्धाकृष्णासितोद्भवः ॥ १३ ॥

पीपल, दाख और मिश्री इन तीनोंको समानभाग लेकर शहद और तिलके साथ अथवा असगन्ध, पीपल और मिश्री इनको शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे क्षयरोग नष्ट होताहै ॥ १३ ॥

यष्ट्याह्वं चन्दनोपेतं सम्यक् क्षीरप्रपेषितम् ।
क्षीरेणालोड्य पातव्यं रुधिरच्छर्दिनाशनम् ॥ १४ ॥

मुलैठी और चन्दन, दोनोंको समानभाग लेकर और दूधमें बारीक पीस-कर और दूधमें घोलकर पान करनेसे रुधिरकी वमन दूर होती है ॥ १४ ॥

छागमांसं पयश्छागं छागं सर्पिः सशर्करम् ।
छागोपसेवा शयनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत् ॥ १५ ॥

बकरीका मांस खाना, बकरीका दूध पीना, बकरीके घृतको मिश्रीमें मिला-कर सेवन करना, बकरियोंकी सेवा करना और बकरियोंके बीचमें सोना इन उपायोंकेद्वारा यक्ष्मारोग नष्ट होताहै ॥ १५ ॥

दशमूलकाथ ।

दशमूलबलारास्ना पुष्करसुरदारुनागरैः क्वथितम् ।
पेयं पार्श्वांसशिरोरुक् क्षयकासादिशान्तये सलिलम् १६

दशमूलकी समस्त औषधियाँ, खिरैंटी, रास्ना, पोहकरमूल, देवदारु और सोंठ इनका यथाविधि काथ बनाकर पीनेसे क्षय, कास, पार्श्वशूल कन्धोंकी पीडा और शिरःशूलादिरोग शमन होते हैं ॥ १६ ॥

अश्वगन्धादि ।

अश्वगन्धामृताभीरुदशमूलीबलावृषाः ।
पुष्करातिविषे घ्नन्ति क्षयं क्षीररसाशिनः ॥ १७ ॥

असगन्ध, गिलोय, शतावर, दशमूल, खिरैंटी, अडूसा, पोहकरमूल और अतीस इनका काथ बनाकर पान करे और दूध तथा मांसरसका भोजन करे तो क्षयरोग नष्ट होता है ॥ १७ ॥

त्रयोदशाङ्ग ।

धन्याकपिप्पलीविश्वदशमूलीजलं पिबेत् ।
पार्श्वशूलज्वरश्वासपीनसादिनिवृत्तये ॥ १८ ॥

धनियाँ, पीपल, सोंठ और दशमूल इनके काथको पान करनेसे क्षयरोगीके पार्श्वशूल, ज्वर, श्वास, पीनस आदि विकार दूर होते हैं ॥ १८ ॥

बलादिचूर्ण ।

बलाश्वगन्धा श्रीपर्णी बहुपुत्री पुनर्नवा ।
पयसा नित्यमभ्यस्ताः शमयन्ति क्षतक्षयम् ॥ १९ ॥

खिरैंटी, असगन्ध, कुम्भेर, शतावर और पुनर्नवा इनको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके एक वस्त्रमें छानलेवे । इस चूर्णको प्रतिदिन दूधके साथ सेवन करनेसे क्षत और क्षय दूर होता है ॥ १९ ॥

लवंगाद्य चूर्ण ।

लवङ्गकक्कोलमुशीरचन्दनं नतं सनीलोत्पलपत्रजीरकम् ।
त्रुटिः सकृष्णागुरुभृङ्गकेशरं मुस्ता सविश्वानलदंसहाम्बुदम्
अहीन्द्रजातीफलवंशलोचनाःसिताष्टभागं समसूक्ष्मचूर्णितं
सुरोचनं तर्पणमग्निदीपनं बलप्रदं वृष्यतमं त्रिदोषनुत् ॥२१
उरोविबद्धं तमकं गलग्रहं सकासहिक्कारुचियक्ष्मपीनसम्।
ग्रहण्यतीसारभगन्दरार्बुदं प्रमेहगुल्मांश्च निहन्ति सज्वरान्॥

लौंग, कंकोल, खस, चन्दन, तगर, नीलकमल (अभावमें नीलोफर) तेजपात, जीरा, छोटी इलायची, पीपल, अगर, दारचीनी, नागकेशर, नागरमोथा, सोंठ, बालछड,सुगन्धवाला, अनन्तमूल, जायफल और वंशलोचन इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करके अठगुनी मिश्री मिलादेवे । इस चूर्णको प्रतिदिन चार २ मासेकी मात्रासे सेवन करे । यह चूर्ण रुचिकारक, तृप्तिजनक और अग्निवर्द्धक एवं बल-वीर्यको उत्पन्न करनेवाला और त्रिदोषनाशक है और उरःक्षत, तमक, गलेकी पीडा, खाँसी, हिचकी, अरुचि, यक्ष्मा, पीनस, संग्रहणी, अतिसार, भगन्दर, अर्बुद, प्रमेह, गुल्म और ज्वर इन सब रोगोंको नष्ट करता है ॥ २०-२२ ॥

शृङ्ग्यर्जुनाद्य चूर्ण ।

शृङ्ग्यर्जुनाश्वगन्धानागबलापुष्कराभयाच्छिन्नरुहाः ।
तालीसादिसमेता लेह्या मधुसर्पिर्भ्यां यक्ष्महराः ॥२३॥

काकडासिंगी, अर्जुनकी छाल, असगन्ध, गंगेरन, पोहकरमूल, हरड गिलोय, तालींशपत्र, सोंठ, मिरच, पीपल, वंशलोचन,दारचीनी, छोटी इलायची और मिश्री इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्णकरके वस्त्रमें छानलेवे । इसको ३ मासे परिमाण शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे राजयक्ष्मा रोग दूर होताहै ॥ २३ ॥

सितोपलादिलेह ।

सितोपला तुगाक्षीरी पिप्पली बहुलात्वचः ।
अन्त्यादूर्द्धं द्विगुणितं लेहयेत्क्षौद्रसर्पिषा ॥ २४ ॥

चूर्णं वा भक्षयेदेतं श्वासकासक्षयापहम्।
सुप्तजिह्वारोचकिनं मन्दाग्निं पार्श्वशूलिनम् ॥
हस्तपादांसदाहेषु ज्वरे रक्ते तथोर्द्धगे ॥ २५ ॥

मिश्री१६तोले, वंशलोचन ८तोले, पीपल ४तोले, छोटी इलायची दो तोले और दारचीनी १ तोला लेवे। सबको एकत्र चूर्णकरके शहद और घीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे श्वास, खाँसी, क्षय, जिह्वाकी जडता, अरुचि, मन्दाग्नि, पसलीकी पीडा आदि रोगी दूर होते हैं। इसको हाथ पाँव एवं शिरकी दाह, ज्वर और ऊर्ध्वगत रक्तपित्तादि रोगोंमेंभी सेवन कराना चाहिये ॥२४॥२५॥

वासावलेह।

शतं संगृह्य वासायास्तोयद्रोणे विपाचयेत्।
चतुर्भागावशेषेऽस्मिन् शर्करायाः पलं शतम् ॥ २६ ॥
त्रिकटु त्रिसुगन्धिश्च कट्फलं मुस्तकं गदम्।
जरिकं पिप्पलीमूलं रोचनी चविका शुभा ॥ २७ ॥
कटुका श्रेयसी चैव तालीशं सधनीयकम्।
कार्षिकं पृथगेतेषां क्षिपेन्मधुपलाष्टकम् ॥ २८ ॥
तद्यथाग्निबलं लिह्याच्छृतशीताम्बुपानतः।
निहन्ति राजयक्ष्माणं रक्तपित्तं क्षतक्षयम् ॥ २९ ॥
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्वासञ्चैव सुदारुणम्।
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च वमिञ्चैवारुचिं ज्वरम्।
"अश्विभ्यां निर्मितो ह्येष बृहद्वासावलेहकः" ॥३०॥

अडूसेके पंचांगको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें १०० पल शुद्ध खांड डालकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब वह पककर कुछ गाढा होजाय तब त्रिकुटा, दारचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, कायफल, नागरमोथा, कूठ, जीरा, पीपलामूल, गोरोचन, चव्य, वंशलोचन, कुटकी, गजपीपल, तालीशपत्र और धनियाँ, प्रत्येक औषधिका चूर्ण दो दो तोले डालदेवे और शीतल होजानेपर ३२ तोले शहद मिलादेवे। इस अवलेहको अपनी अग्निके बलानुसार (शृतशीतल) औटाकर शीतल किया हुआ जलके साथ सेवन करनेसे राजयक्ष्मा, रक्तपित्त, क्षतक्षय, वात-पित्तजन्य दारुण श्वास, हृदयशूल,

पसलीकी पीडा, वमन, अरुचि, ज्वरादिविकार शीघ्र नष्ट होते हैं । इस वासावलेहको अश्विनीकुमारोंने निर्माण कियाहै ॥ २९-३० ॥

बृहद्वासावलेह ।

पञ्चविंशत्पलं ग्राह्यं बृहत्योर्वासकस्य च ।
भार्ग्याश्च पञ्चविंशच्च जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ३१ ॥
पादशेषे रसे तस्मिन् खण्डं शतपलं न्यसेत् ।
कुडवार्द्धञ्च हविषो मधुनः कुडवन्तथा ॥ ३२ ॥
मृताभ्रकं पलञ्चैकं कणाचूर्णं चतुःपलम् ।
कुष्ठं तालीशपत्रञ्च मरिचं तेजपत्रकम् ॥ ३३ ॥
मुरामांसीमुशीरञ्च लवङ्गं नागकेशरम् ।
त्वग्भार्गी बालकं मुस्तं प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ॥ ३४ ॥
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वं लेहीभूते विनिःक्षिपेत् ।
हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं कासं पञ्चविधन्तथा ॥ ३५ ॥
रक्तपित्तं क्षयं कासं ज्वरं प्लीहानमेव च ।
बालानामपि वृद्धानां तरुणानां विशेषतः ॥ ३६ ॥
पार्श्वशूलञ्च हृच्छूलमम्लपित्तं वमिं तथा ।
बृहद्वासावलेहोऽयं महादेवेन निर्मितः ॥ ३७ ॥

बडीकटेरी, कटेरी, अडूसा और भारङ्गी इन ओषधियोंको पचीस २ पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते चतुर्थांश जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे फिर उसमें सौ पल शुद्ध खाँड डालकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे । जब पाक उत्तम प्रकारसे सिद्ध होजाय तब उसमें अभ्रकभस्म ४तोले पीपलका चूर्ण १६ तोले, एवं कूठ, तालीशपत्र, मिरच, तेजपात, मुरा मांसी, खस, लौंग, नागकेशर, दारचीनी, भारंगी, सुगन्धवाला और नागरमोथा प्रत्येकका बारीक चूर्ण एक एक कर्ष और घी ८ तोले डालदेवे । शीतल होनेपर १६ तोले शहद मिलादेवे । सबको अच्छे प्रकारसे मिलाकर एक उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे. इसको प्रतिदिन छःछः माशे परिमाण सेवन करे । यह बृहद्वासावलेह दारुण राजयक्ष्मा, पाँच प्रकारकी खाँसी, रक्तपित्त, क्षय, ज्वर प्लीहा, पसलीकी पीडा, हृदयशूल, अम्लपित्त और वमन इन सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करताहै एवं बालक वृद्ध और तरुण पुरुषोंके लिये विशेष उपयोगी है ॥

द्वितीय-बृहद्वासावलेह ।

तुलामादाय वासाया जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादशेषे रसे तस्मिन् खण्डं शतपलं न्यसेत् ॥ ३८ ॥
शनैर्मृद्वग्निना सम्यक् सिद्धे तत्र प्रदापयेत् ।
त्रिकटु त्रिसुगन्धञ्च कट्फलं मुस्तमेव च ॥ ३९ ॥
कुष्ठं काम्पिल्लकं श्वेतजीरकं कृष्णजीरकम् ।
त्रिवृता पिप्पलीमूलं चव्यं कटुकरोहिणी ॥ ४० ॥
शिवा तालीशधन्याकं प्रत्येकं च द्विकार्षिकम् ।
चूर्णयित्वा क्षिपेत्तत्र शीते मधुपलाष्टकम् ॥ ४१ ॥
अस्य मात्रां ततो लीढ्वा तोयमुष्णं पिबेदनु ।
सर्वकासाधिकारेषु स्वरभङ्गे विशेषतः ॥ ४२ ॥
राजयक्ष्माणि दुस्साध्ये वातश्लेष्माश्रये तथा ।
आनाहे वह्निमान्द्ये च हृद्रोगे च क्षतक्षये ॥
मूत्रकृच्छ्रे च कृच्छ्रे च शस्तोऽयं लेह उत्तमः ॥ ४३ ॥

अडूसेकी जडकी छाल या पञ्चांगको सौ पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते २ चौथाई जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे फिर उस काथमें सौ पल शुद्ध खांड डालकर धीरे धीरे मन्दमन्द अग्निसे पकावे । जब पककर लेहकी समान गाढा होजाय तब--सोंठ, मिरच, पीपल, दारचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, कायफल, नागरमोथा, कूठ, कबीला, सफेदजीरा, कालाजीरा, निसोत, पीपलामूल, चव्य, कुटकी, हरड, तालीशपत्र और धनियाँ इन प्रत्येक औषधिको दो दो कर्ष बारीक पीसकर डालदेवे और शीतल होनेपर ३२ तोले शहद मिलादेवे। इसको प्रतिदिन प्रातःकाल छःमासे अथवा १ तोला परिमाण सेवनकरके ऊपरसे मन्दोष्ण जल पानकरे। यह अवलेह सर्वप्रकारकी खाँसी, स्वरभंग, विशेषकर दुस्साध्य राजयक्ष्मा, वात-कफजन्यरोग, आनाह, मन्दाग्नि, हृदयरोग, क्षतक्षय, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात आदि रोगमें विशेष उपयोगी है ॥ ३८-४३ ॥

च्यवनप्राश ।

बिल्वाग्निमन्थश्योनाककाश्मर्यः पाटला बला ।
पर्ण्यश्चतस्रः पिप्पल्यः श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ॥ ४४ ॥

श्रृङ्गी तामलकी द्राक्षा जीवन्ती पुष्करागुरु ।
अमृता चाभया ऋद्धिर्जीवकर्षभकौ शठी ॥ ४५ ॥
मुस्तं पुनर्नवा मेदा सूक्ष्मैलोत्पलचन्दने ।
विदारी वृषमूलानि काकोली काकनासिका ॥ ४६ ॥
एषां पलोन्मितान्भागाञ्छतान्यामलकस्य च ।
पञ्च दद्यात्तदैकध्यं जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ४७ ॥
ज्ञात्वा गतरसान्येतान्यौषधान्यथ तं रसम् ।
तच्चामलकमुद्धृत्य निष्कुलं तैलसर्पिषोः ॥ ४८ ॥
पलद्वादशके भृष्ट्वा दत्त्वा चार्द्धतुलां भिषक् ।
मत्स्यण्डिकायाः पूताया लेहवत्साधु साधयेत् ॥४९॥
षट्पलं मधुनश्चात्र सिद्धशीते प्रदापयेत् ।
चतुःपलं तुगाक्षीर्याः पिप्पल्या द्विपलं तथा ॥ ५० ॥
पलमेकं विदध्याच्च त्वगेलापत्रकेशरात् ।
इत्ययं च्यवनप्राशः परमुक्तो रसायनः ॥ ५१ ॥
कासश्वासहरश्चैव विशेषेणोपदिश्यते ।
क्षीणक्षतानां वृद्धानां बालानाञ्चाङ्गवर्द्धनः ॥ ५२ ॥
स्वरक्षयमुरोरोगं हृद्रोगं वातशोणितम् ।
पिपासां मूत्रशुक्रस्थान् दोषांश्चैवापकर्षति ॥ ५३ ॥
अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत नोपरुन्ध्याच्च भोजनम् ।
अस्य प्रयोगाच्च्यवनः सुवृद्धोऽभूत्पुनर्युवा ॥ ५४ ॥
मेधां स्मृतिं कांतिमनामयत्वमायुःप्रकर्षबलमिंद्रियाणाम्।
स्त्रीषु प्रहर्षं परमाग्निवृद्धिं बलप्रसादं पवनानुलोम्यम्॥५५॥
रसायनस्यास्य नरः प्रयोगाल्लभेतजीर्णोऽपिकुटिप्रवेशात
जराकृतं पूर्वमपास्य रूपं बिभर्त्ति रूपं नवयौवनस्य॥५६
सिता मत्स्यण्डिकालाभे धात्र्याश्च मृदुभर्जनम् ।
चतुर्भागजले प्रायो द्रव्यं गतरसं भवेत् ॥ ५७ ॥

बेल, अरणी, स्योनापाठा, (आलू) कुम्भेर, पाढल इनकी छाल, खिरैटी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पीपल, गोखुरु, कटेरी, बडीकटेरी, काकडासिंगी, भुई आमला, दाख, जीवन्ती, पोहकरमूल, अगर, गिलोय, हरड, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, कचूर, नागरमोथा, पुनर्नवा, मेदा, (अभावमें असगन्ध), छोटी इलायची, नीलकमल, लालचन्दन, विदारीकन्द, अडूसेकी जड, काकोली और काकनासा (कौआठोडी) ये प्रत्येक ओषधि चार चार तोले, एवं सुपक और बडेबडे आमले ५०० लेवे। प्रथम आमलोंको वस्त्रकी पोटलीमें बाँधकर समस्त ओषधियोंके साथ१द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे और आमलोंको निकालकर उनकी गुठली अलग करके हाथसे मथकर वस्त्रमें छानलेवे।फिर उन आमलोंको ४८तोले तिलके तैल और४८तोले गोघृतमें मन्दमन्द अग्निसे भूनकर पीसलेवे। फिर पूर्वोक्त काथमें५०पल मिश्री और उक्त आमले डालकर धीरे२पकावे। जब पकते२लेहकी समान होजाय तब नीचे उतारकर उसमें वंशलोचन १६ तोले, पीपल ८तोले, एवं दारचीनी, छोटी इलायची तेजपात और नागकेशर इनका चूर्ण चार चार तोले डालदेवे और शीतल होनेपर२४तोले शहद मिलादेवे।फिर करछीसे सबको अच्छे प्रकारसे मिलाकर घीके चिकने बासनमें भरकर रखदेवे। यह च्यवनप्राशावलेह परमश्रेष्ठ रसायन है। इसके सेवन करनेसे खाँसी और श्वास दूर होते हैं। यह अवलेह विशेषकर क्षतक्षीणरोगी वृद्ध मनुष्य और बालकोंके अंगोंकी वृद्धि और पुष्टि करनेवाला है। एवं स्वरभंग, उरोरोग, हृदयरोग, वातरक्त, तृषा, मूत्र और वीर्यसम्बन्धी सम्पूर्णदोष इन सब विकारोंको हरता है। इस अवलेहको ३ मासे अथवा ६ मासे परिमाण लेकर बकरीके दूध या शहदके साथ सेवन करना चाहिये। इसपर भोजनादि किसी प्रकारके पथ्य करनेका नियम नहीं है। इस अवलेहको सेवन करनेसे अत्यन्त वृद्ध च्यवन ऋषि फिरसे तरुण हो गये थे।यह अवलेह मेधा,स्मरणशक्ति, कान्ति, आरोग्य, आयु और इन्द्रियोंके बलकी वृद्धि करता है। एवं स्त्रियोंमें आनन्द, जठराग्निकी अत्यन्त वृद्धि, शरीरमें बलका संचार और वायुका अनुलोमन करता है। इस रसायनको सेवन करनेसे वायु और धूपको न सहनेवाला वृद्धमनुष्यभी वृद्धावस्थाके पूर्वरूपको दूरकर नवयौवनके रूपको प्राप्त करता है ॥४४-५७॥

द्राक्षारिष्ट।

द्राक्षातुलार्द्धं द्विद्रोणे जलस्य विपचेत्सुधीः।
पादशेषे कषाये च पूते शीते विनिःक्षिपेत ॥ ५८ ॥

गुडस्य द्वितुलां तत्र त्वगेलापत्रकेशरम् ।
प्रियङ्गुर्मरिचं कृष्णा विडङ्गश्चेति चूर्णयेत् ॥ ५९ ॥
पृथक्पलोन्मितैर्भागैर्घृतभाण्डे निधापयेत् ।
मासस्ततो घट्टयित्वा पिबेज्जातरसं ततः ॥ ६० ॥
उरःक्षतं क्षयं हन्ति कासश्वासगलामयान् ।
द्राक्षारिष्टाह्वयः प्रोक्तो बलकृन्मलशोधनः ॥ ६१ ॥

उत्तमदाख ५० पल लेकर दो द्रोण जलमें पकावे । जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर शीतल होजानेपर उस काथमें गुड२००पल एवं दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात,नागकेशर, फूल-प्रियंगु, कालीमिरच, पीपल और वायविडंग प्रत्येकके चूर्णको चार चार तोले डालदेवे । फिर सबको अच्छे प्रकारसे मिलाकर घीके चिकने बर्त्तनमें भरकर और उसका मुँह बन्द करके रखदेवे । एक महीनेतक रक्खा रहनेके पश्चात् जब उसमें रस उत्पन्न होजाय तब निकालकर छानलेवे । यह द्राक्षारिष्ट यथोचित मात्रासे पान करते ही उरःक्षत, क्षय, खाँसी, श्वास और सर्व प्रकारके गलरोगोंको दूर करताहै।एवं बलको बढाताहै।मलको शुद्ध करता है।।५८-६१।।

विन्ध्यवासियोग ।

व्योषं शतावरी त्रीणि फलानि द्वे बले तथा ।
सर्वामयहरो योगः सोऽयं लौहरजोन्वितः ॥ ६२ ॥
एष वक्षःक्षतं हन्ति कण्ठजांश्च गदांस्तथा ।
राजयक्ष्माणमत्युग्रं बाहुस्तम्भमथार्दितम् ॥ ६३ ॥

सोंठ, पीपल, मिरच, शतावर, हरड, बहेडा, आमला, खिरैंटी और कंघी इन सब ओषधियोंका चूर्ण एक एक तोला और लोहभस्म९तोले लेकर सबको एकत्र जलके साथ खरल करलेवे । यह उत्तम योग सम्पूर्ण रोगोंको हरनेवाला इसको उचित मात्रासे सेवन करनेसे उरःक्षत, कण्ठगतरोग, अत्यन्त भयंकर राजयक्ष्मा, बाहुस्तम्भ और आर्दितादिरोग नष्ट होते हैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

यक्ष्मारि लौह ।

मधुताप्यविडङ्गाश्मजतुलौहघृताभयाः ।
हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं सेव्यमाना हिताशिनः ॥ ६४ ॥

स्वर्णमाक्षिक, वायविडंग, शिलाजीत और हरड इन ओषधियोंको एक एक भाग और सबकी बराबर लोहभस्म लेकर एकत्र खरल करलेवे । इस यक्ष्मारिलोहको घी और शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे और पथ्य पदार्थोंको सेवन करनेसे अत्यन्त उग्र यक्ष्मारोग दूर होताहै ॥ ६४ ॥

यक्ष्मान्तकलौह ।

रास्नातालीशकर्पूरभेकपर्णीशिलाह्वयैः ।
त्रिकत्रयसमायुक्तैर्लौहो यक्ष्मान्तको मतः ॥ ६५ ॥
सर्वोपद्रवसंयुक्तमपि वैद्यविवर्जितम् ।
हन्ति कासं स्वराघातं क्षयकासं क्षतक्षयम् ।
बलवर्णाग्निपुष्टीनां साधनं दोषनाशनम् ॥ ६६ ॥

रास्ना, तालीशपत्र, कपूर, मण्डूकपर्णी, शिलाजीत, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, नागरमोथा और चीतेकी जडकी छाल प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला और लोहभस्म चौदह तोले लेवे सबको एकत्र जलके द्वारा खरलकरके गोलियाँ बनालेवे । यह यक्ष्मान्तकलोह है । इसीको रास्नादिलौहभी कहते हैं । यह लोह--खाँसी, स्वरभंग, क्षयकी खाँसी, क्षतक्षय एवं सम्पूर्ण उपद्रवोंसे युक्त और वैद्योंसे त्यागेहुये राजयक्ष्मारोग और अन्यान्य समस्त दोषोंको नष्ट करता है । बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि तथा पुष्टि करताहै ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

शिलाजत्वादिलौह ।

शिलाजतुमधुव्योषताप्यलौहरजांसि च ।
क्षीरेण लोहितस्याशु क्षयं क्षयमवाप्नुयात् ॥ ६७ ॥

शिलाजीत, मुलैठी, सोंठ, मिरच, पीपल और सोनामाखी--ये प्रत्येक एक एक तोला और लोहभस्म ६ तोले लेकर सबको एकत्र जलके साथ खरल करके गोलियाँ बनालेवे । इस लोहको दूधके साथ सेवन करनेसे क्षयरोग शीघ्र नष्ट होताहै ॥ ६७ ॥

रजतादिलौह ।

भस्मीभूतं रजतममलं तत्समं व्योमचूर्णं
सर्वैस्तुल्यं त्रिकटु सवरं साय आज्येन युक्तम् ।
लीढं प्रातः क्षपयतितरां यक्ष्मपाण्डूदरार्शः-
श्वासं कासं नयनजरुजः पित्तरोगानशेषान् ॥ ६८ ॥

चाँदीकी भस्म १ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग, त्रिकुटा, त्रिफला और लोह-भस्म ये प्रत्येक तीन २ भाग लेवे । इन सबको एकत्र खरल करके गोलियाँ बनालेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली घृतके साथ मिलाकर सेवन करनेसे राजयक्ष्मा, पाण्डुरोग, उदर विकार, अर्श, श्वास, खाँसी, नेत्ररोग और पित्तजनितसम्पूर्ण उपद्रव--शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ६८ ॥

क्षयकेसरी ।

त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवङ्गकैः ।
नवभागान्वितं लोहं समं सिन्दूरसन्निभम् ॥ ६९ ॥
छागीदुग्धेन सम्पिष्य वल्लमस्य प्रयोजयेत् ।
मधुना क्षयरोगांश्च हन्त्ययं क्षयकेसरी ॥ ७० ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, छोटी इलायची, जायफल और लौंग प्रत्ये-कका चूर्ण एक एक तोला और सिन्दूरकी समान कान्तियुक्त लौहभस्म ९ तोले लेवे । सबको एकत्र बकरीके दूधके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे।प्रतिदिन एक एक गोली शहदके साथ सेवन करनेसे यह क्षयकेसरी क्षयरोग और उसके सम्पूर्ण उपद्रवोंको नष्ट करताहै ॥ ६९ ॥ ७० ॥

द्वितीय-क्षयकेसरी ।

मृतमभ्रं मृतं सूतं मृतं लौहं तथा रविः ।
मृतं नागश्च कांस्यश्च मण्डूरं विमलं शिला ॥ ७१ ॥
वङ्गं खर्परकं तालं शङ्खटङ्कणमाक्षिकम् ।
वैक्रान्तं कान्तलौहश्च स्वर्णं विद्रुममौक्तिकम् ॥ ७२ ॥
वराटं मणिरागश्च राजपट्टश्च गन्धकम् ।
सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य खल्लमध्ये विनिःक्षिपेत् ॥ ७३ ॥
मर्दयेत्त्वग्निभानुभ्यां प्रपुटेत्रिदिनं लघु ।
भावयेत्पुटयेदेभिर्वाराँस्त्रींश्च पृथक्पृथक् ॥ ७४ ॥
मातुलुङ्गवरावह्निस्वम्लवेतसमार्कवैः ।
हयमारार्द्रकरसैः पाचितो लघुवह्निना ॥ ७५ ॥
वातपित्तकफोत्क्लेशाञ्ज्वरान्संमार्दितानपि ।
सन्निपातं निहन्त्याशु सर्वाङ्गैकाङ्गमारुतान् ॥ ७६ ॥

सेवितश्च सितायुक्तो मागधीरजसा युतः ।
मधुकार्द्रकसंयुक्तस्तद्व्याधिहरणौषधैः ॥ ७७ ॥
सेवितो हन्ति रोगीणां व्याधिवारणकेसरी ।
क्षयमेकादशविधं शोथं पाण्डुं कृमिं जयेत् ॥ ७८ ॥
कासं पञ्चविधं श्वासं मेहं मेदो महोदरम् ।
अश्मरीं शर्करां शूलं प्लीहगुल्मं हलीमकम् ॥
सर्वव्याधिहरो बल्यो वृष्यो मेध्यो रसायनः ॥ ७९ ॥

अभ्रकभस्म, रससिन्दूर, लोहभस्म, ताम्रभस्म, शीशेकीभस्म, काँसेकीभस्म मण्डूरभस्म, रूपामाखीकी भस्म, शुद्ध मैनसिल, वङ्गभस्म, शुद्धखपरिया, हरतालभस्म, शङ्खभस्म, सुहागा, सोनामाखीकी भस्म, वैक्रान्तकीभस्म, कान्तलोह, सुवर्णभस्म, मूँगा, मोती और कौडीकी भस्म, सिंगरफ, राजपट्ट (रेपटी अभावमें गोदन्ती हरताल) और शुद्ध गन्धक इन सबको समानभाग लेकर सबको एकत्र खरलमें डालकर खूब बारीक चूर्ण करके चीते और आकके काथमें खूब खरल करके ३ दिनतक लघुपुटमें पकावे । इसीप्रकार क्रमसे बिजौरेनींबूका रस, त्रिफला, चीता, अमलवेंत, भाँगरा, कनेर और अदरख इन प्रत्येक औषधिके स्वरस व काथमें ३-३ दिनतक भावना देकर लघुपुटमें पकावे। फिर स्वांग शीतल होनेपर औषधको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । इसको दो रत्ती प्रमाण लेकर मिश्री, पीपलका चूर्ण, शहद और अदरख इनके साथ मिलाकर अथवा यथादोषानुसार अनुपानोंके साथ सेवन करे । यह क्षयकेसरीरस वात, पित्त और कफके उत्पन्नहुए ज्वर, सन्निपात ज्वर, सर्वांगवात, एकांगवात, ग्यारहप्रकारका क्षय, सूजन, पाण्डु, कृमि, पाँच प्रकारकी खाँसी, श्वास, प्रमेह, मेद, जलोदर, पथरी, शर्करा, शूल, प्लीहा, गुल्म, हलीमक आदि सम्पूर्ण व्याधियोंको नष्ट करता है । यह सब रोगनाशक बल, वीर्य और मेधाशक्तिकी वृद्धि करनेवाला और अत्युत्तम रसायन है ॥ ७१-७९ ॥

रसेन्द्रगुटिका ।

कर्षं शुद्धरसेन्द्रस्य स्वरसेन जयार्द्रयोः ।
शिलायां खल्लयेत्तावद्यावत्पिण्डं घनं भवेत् ॥ ८० ॥
जलकणाकाकमाचीरसाभ्यां भावयेत्पुनः ।
सौगन्धिकपलं भृङ्गस्वरसेन सुभावितम् ॥ ८१ ॥

चूर्णितं रससंयुक्तमजाक्षीरपलद्वये।
खल्लितं घनपिण्डन्तु गुटीः स्विन्नकलायवत् ॥ ८२ ॥
कृत्वादौ शिवमभ्यर्च्य द्विजादीन्परितोष्य च।
जीर्णान्ने भक्षयेदेकां क्षीरमांसरसाशन- ॥ ८३ ॥
सर्वरूपं क्षयं कासं रक्तपित्तमरोचकम्।
अपि वैद्यशतैस्त्यक्तमम्लपित्तं नियच्छति ॥ ८४ ॥

शोधित पारेकी भस्मको १ कर्ष लेकर एक उत्तम पत्थरके खरलमें डालकर जयंती और अदरखके स्वरसमें तबतक मर्दन करे, जबतक कि उसका पिण्डसा न बनजाय। फिर उसको जलपीपल और मकोयके स्वरसमें पृथक् पृथक् उत्तम प्रकारसे भावना देवे। पश्चात् इसी प्रकार भँगरेके स्वरसमें भावना दियाहुआ शुद्ध गंधकका चूर्ण चार तोले लेकर पारेके साथ खरल करके दोनोंकी कज्जली बनालेवे। फिर उस कज्जलीको ८ तोले बकरीके दूधके साथ खरलकरके सीजे हुए मटरकेदानेकी समान गोलियाँ बनालेवे। प्रथम शिवजी महाराजका पूजन कर और ब्राह्मणोंको सन्तुष्टकरके प्रतिदिन इसकी एक एक गोली भोजनके जीर्ण होनेपर सेवन करे। इसपर दूध और मांसरसका पथ्य करे। इसके सेवनसे सर्व प्रकारका क्षय, खाँसी, रक्तपित्त और अरुचि ये सब उपद्रव और जिसको सैकडों वैद्योंने त्याग दिया हो ऐसा अम्लपित्तरोगभी शीघ्र नष्ट होता है ८०-८४

बृहद्रसेन्द्रगुटिका।

कुमार्या त्रिफलाचूर्णैश्चित्रकस्य रसैः क्रमात्।
शोधयित्वा पुना राजीगृहधूमहरिद्रया ॥ ८५ ॥
पक्वेष्टकारजोभिश्च धूर्त्तपत्ररसेन च।
शृङ्गवेररसेनापि शोधयित्वा पुनःपुनः ॥ ८६ ॥
प्रक्षालयेत्पुनः पश्चाच्छानयेद्वसने घने।
कर्षद्वयं रसेन्द्रस्य भावयेद्द्विजयारसे ॥ ८७ ॥
शिलायां खल्लयेच्चापि यावच्चूर्णत्वमागतम्।
जलकणाकाकमाचीरसाभ्यां भावयेत्पुनः ॥ ८८ ॥
सौगन्धिकपलं शुद्धमर्द्धं मरिचटङ्कणम्।
माक्षिकञ्च शिखिग्रीवं तालकं चाभ्रकं तथा ॥८९ ॥

एतांस्तु मिलितान्दत्त्वा भावयेदार्द्रकद्रवैः ।
रक्तिद्वयप्रमाणेन कारयेद्गुटिकां भिषक् ॥ ९० ॥
जीर्णान्ने भोजयेदेकां क्षीरमांसरसाशनः ।
हन्ति कासं क्षयं श्वासं रक्तपित्तमरोचकम् ॥ ९१ ॥
पाण्डुकृमिस्वरहरं कृशानां पुष्टिवर्द्धनम् ।
वाजीकरणमुद्दिष्टमम्लपित्तहरं परम् ॥ ९२ ॥

शुद्धपारेको दो कर्ष लेकर यथाक्रमसे घीग्वारके रस, त्रिफलेके चूर्ण, चीतेके रस, राई, घरका धुआँ, हल्दी, ईंटके चूर्ण, धतूरेके पत्तोंके रस और अदरखके रसमें पृथक् पृथक् एक एक बार खरल करे । फिर उस खरल कियेहुए पारेको जलसे प्रक्षालन करके मोटे वस्त्रमें छान लेवे, फिर खरलमें रख भाँगके रसमें भावना देकर उत्तम प्रकारसे मर्दन करे । पश्चात् जलपीपल और मकोयके रसमें पृथक् पृथक् एक एक बार भावना देवे । इस प्रकार शुद्ध किया हुआ पारा दो कर्ष और शोधित गन्धक ४ तोले लेकर दोनोंकी कज्जली बनालेवे फिर उसमें कालीमिरच, सुहागा, सोनामाखीकी भस्म शुद्ध तूतिया, शुद्धहरताल और अभ्रकभस्म ये प्रत्येक दो दो तोले मिलाकर अदरखके रसके द्वारा उत्तम प्रकारसे खरलकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । भोजनके जीर्ण होजानेपर इसकी एक एक गोली सेवन करे और दूध तथा मांसरसका पथ्य करे । यह गुटिका खाँसी, क्षय, श्वास, रक्तपित्त, अरुचि, पाण्डु, कृमि, स्वरभङ्ग आदि विकारोंको नष्ट करतीहै । एवं कृशमनुष्योंकी कृशताको दूर कर शरीरको पुष्ट करतीहै । यह अत्यन्त वाजीकरण और अम्लपित्त नाशकहै ॥

कल्याणसुन्दराभ्र ।

वज्राभ्रमेकपलिकं पुटनैः सुजीर्णं धात्रीपयोदबृहती-
शतमूलिकेक्षुः । बिल्वाग्निमन्थजलवासककण्टकारी-
श्योनाकपाटलिबलाश्च रसैरमीषाम् ॥ ९३ ॥ सम्मर्दितं
पलमितैः पृथगेकशश्च गुञ्जासमं सुवलितं वटिकाकृ-
तञ्च । यक्ष्मक्षयौ सकलशोषबलासपित्तं श्वासं समीर
मरुचिं सकलाङ्गसादम् ॥ ९४ ॥ शोथं स्वरक्षयमजी-
र्णमुदर्दशूलं मेहं ज्वरं विषमुरोग्रहपाण्डुहिक्काः । कार्श्यं
कृमिं बलविनाशनमम्लपित्तं प्लीहामयं सहहलीमक-

मस्त्रगुल्मम् ॥ ९५ ॥ तृष्णामवातनिचयं ग्रहणीं प्रदुष्टां विस्फोटकुष्ठनयनास्यशिरोगदांश्च । मूर्च्छां वमिं विरसतां विनिहन्ति सद्यः कल्याणसुन्दरमिदं बलदं सुवृष्यम् ॥ मेध्यं रसायनवरं सकलामयानां नाशाय यक्ष्मनिवहे कथितं हरेण ॥ ९६ ॥

पुटपाकके द्वारा उत्तम प्रकारसे भस्म कियेहुए वज्र अभ्रकको ४ तोले प्रमाण लेकर आमले, नागरमोथा, बडीकटेरी, शतावर, ईख, बेलकी छाल, अरणी, सुगन्धवाला, अडूसेके पत्ते, कटेरी, सोनापाठा, पाढल और खिरेंटी इन प्रत्येक औषधिके चार चार तोले रसके साथ पृथक् पृथक् खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह कल्याणसुन्दरनामकरस यक्ष्मा, क्षय, सम्पूर्ण शोष कफ पित्तसम्बन्धी रोग, श्वास, वातविकार, अरुचि समस्त शारीरिकपीडा, सूजन, स्वरभङ्ग, अजीर्ण, उदरशूल, प्रमेह, ज्वर, विषविकार, उरोग्रह, पाण्डुरोग, हिक्का, कृशता, कृमिरोग, बलनाशक, अम्लपित्त, प्लीहा, हलीमक, रक्तगुल्म, तृषा, आमवात, दुष्टसंग्रहणी, स्फोटक, कुष्ठ, नेत्र, मुख और शिरके सम्पूर्ण रोग, मूर्च्छा, वमन, मुखकी नीरसता आदि व्याधियोंको शीघ्र नष्ट करताहै । एवं अत्यन्त बलकारक, वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, मेधाजनक और सकल रोगोंको नाश करनेके लिये परमोत्कृष्ट रसायनहै । यह रस विशेषकर यक्ष्मारोगके नष्ट करनेके लिये शिवजीने वर्णन किया है ॥

बृहच्चन्द्रामृतरस ।

रसगन्धकयोर्ग्राह्यं कर्षमेकं सुशोधितम् ।
अभ्रं निश्चन्द्रिकां दद्यात् पलार्द्धञ्च विचक्षणः ॥ ९७ ॥
कर्पूरं शाणकं दद्यात्स्वर्णं तोलकसम्मितम् ।
ताम्रञ्च तोलकं दद्याद्विशुद्धं मारितं भिषक् ॥ ९८ ॥
लौहं कर्षं क्षिपेत्तत्र वृद्धदारकजीरकम् ।
विदारी शतमूली च क्षुरकञ्च बला तथा ॥ ९९ ॥
मर्कट्यतिबला चैव जातीकोशफले तथा ।
लवङ्गं विजयाबीजं श्वेतसर्जरसं तथा ॥ १०० ॥
शाणभागं समादाय चैकीकृत्य प्रयत्नतः ।
मधुना मर्दयेत्तावद्यावदेकत्वमागतम् ॥ १०१ ॥

चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कुरु यत्नतः।
भक्षयेद्वटिकामेकां पिप्पली मधुना सह ॥ १०२ ॥

शुद्धपारा १ कर्ष, शुद्ध गन्धक १ कर्ष, श्वेत अभ्रकभस्म २ तोले, कपूर ४ माशे, सुवर्णभस्म १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, लौहभस्म १ कर्ष, विधारा, जीरा, विदारीकन्द, शतावर, गोखुरू, खिरैंटी, कौंछके बीज, कंघी, जायफल, जावित्री, लौंग, भँगके बीज और सफेद राल इनको चार चार माशे लेकर सबको एकत्र करके शहदके साथ उत्तमप्रकारसे खरल करे। जब सब औषधें घुटकर एकमएक होजायँ तब चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस बृह-चन्द्रामृतरसकी एक एक गोली पीपलके चूर्ण और शहदके साथ सेवन करनेसे राजयक्ष्मा, खाँसी और रक्तपित्त आदिरोग दूर होते हैं ॥९७-१०२॥

कुमुदेश्वररस।

हेमभस्मरसभस्मगन्धकं मौक्तिकन्तु रसटङ्कणन्तथा।
तालकं गरुडं सर्वतुल्यकं काञ्जिकेन परिमर्द्य गोलकम्
मृत्स्नया च परिवेष्ट्य शोषितं भाण्डके लवणगेऽथपाचयेत्
एकरात्रमृदुसम्पुटेन वा सिद्धिमेति कुमुदेश्वरो रसः।
वल्लमस्य मरिचैर्घृताप्लुतैराजयक्ष्मपरिशान्तये पिबेत् ॥

सुवर्णभस्म, शुद्धपारेकी भस्म, शुद्धगन्धक, मोतीभस्म, शुद्धपारा, सुहागा, हरताल और सोनामाखी इन सबको समान भाग लेकर एकत्र काँजीके साथ खरलकर गोलासा बनालेवे। फिर उसके ऊपर गोबरमिली मिट्टीका लेप करके उसको नमकसे भरेहुए पात्रमें रखकर एकरात्रि पर्यन्त मृदुपुटके द्वारा पकावे। इस प्रकार यह कुमुदेश्वररस सिद्ध होताहै। इस रसको दो दो रत्ती प्रमाण लेकर कालीमिरचोंके चूर्ण और घृतके साथ मिलाकर सेवन करे। यह रस राजयक्ष्मारोगको शमन करनेके लिये परमोत्तमहै ॥ १०३ ॥

काञ्चनाभ्ररस।

काञ्चनं रससिन्दूरं मौक्तिकं लौहमभ्रकम्।
विद्रुमश्चाभया तारं कस्तूरी च मनःशिला ॥ १०४॥
प्रत्येकं बिन्दुमात्रञ्च सर्वं सम्मर्द्य यत्नतः।
वारिणा वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः ॥१०५॥
अनुपानं प्रयोक्तव्यं यथादोषानुसारतः।
क्षयं हन्ति यथा कासं श्लेष्मपित्तसमुद्भवम् ॥ १०६ ॥

प्रमेहं विविधञ्चैव दोषत्रयसमुत्थितम् ।
कफजान्वातजान्रोगान्नाशयेत्सद्य एव हि ॥ ७ ॥
बलवृद्धिं वीर्यवृद्धिं लिङ्गदार्ढ्यं करोति च ।
श्रीकरः पुष्टिजननो नानारोगनिषूदनः ॥
गहनानन्दनाथोक्तो रसोऽयं काञ्चनाभ्रकः ॥ ८ ॥

सुवर्णभस्म, रससिंदूर, मोतीकी भस्म, लोहभस्म अभ्रककीभस्म, भूँगोंकी भस्म, हरड, चाँदीकी भस्म, कस्तूरी और शुद्ध मैनासिल इन सबके समानभाग जलके साथ खरलकरके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस रसको प्रतिदिन एक एक गोली यथादोषानुसार अनुपानके साथ सेवन करे तो यह क्षयरोग, खाँसी कफ पित्तजनितविकार, तीनों दोषोंसे उत्पन्नहुए विविध प्रकारके प्रमेह और कफ वातसम्बन्धी सम्पूर्ण रोगोंको तत्काल नष्ट करती है। एवं बल, वीर्यकी वृद्धि और लिङ्गको दृढ करती है। यह काञ्चनाभ्ररस कान्तिवर्द्धक, पुष्टिकारक और विविध प्रकारके रोगोंको नष्ट करनेवाला है॥ १०४-८ ॥

बृहत्काञ्चनाभ्ररस ।

काञ्चनं रससिन्दूरं मौक्तिकं लौहमभ्रकम् ।
विद्रुमं मृतवैक्रान्तं तारं ताम्रञ्च वङ्गकम् ॥ ९ ॥
कस्तूरिका लवङ्गञ्च जातिकोषैलवालुकाम् ।
प्रत्येकं बिन्दुमात्रञ्च सर्वं सम्मर्द्य यत्नतः ॥ ११० ॥
कन्यानीरेण सम्मर्द्य केशराजरसेन च ।
अजाक्षीरेण सम्भाव्य प्रत्येकं दिवसत्रयम् ॥ ११ ॥
चतुर्गुंजाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं यथादोषानुसारतः ॥ १२ ॥
क्षयं हन्ति तथा कासं यक्ष्माणं श्वासमेव च ।
प्रमेहान् विंशतिञ्चैव दोषत्रयसमुद्भवान् ॥
सर्वरोगं निहन्त्याशु भास्करास्तिमिरं यथा ॥ १३ ॥

सुवर्ण भस्म, रससिन्दूर, मोतीकी भस्म, लोहा भस्म, अभ्रकभस्म, भूँगाकी भस्म, वैक्रान्तकी भस्म, चाँदीकी भस्म, ताँबेकी भस्म, वङ्गभस्म, कस्तूरी, लौंग, जावित्री और एलुआ इन प्रत्येक ओषधिको समानभाग लेकर सबको एकत्र घीग्वारके रसके साथ उत्तम प्रकारसे खरलकरके कुकुरभाँगरेके रस और

बकरीके दूधके साथ पृथक् २ तीन दिन तक भावना देकर चार २ रत्तीकी गोलियां बनालेवे। यह रस यथादोषानुसार अनुपानके साथ सेवन करनेसे क्षय, खाँसी, राजयक्ष्मा, श्वास, कफ-वात-पित्तादि तीनों दोषोंसे उत्पन्न बीसोंप्रकारके प्रमेह और अन्यान्य सर्वप्रकारके रोगोंको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकारको ॥ १०९--११३ ॥

स्वल्पमृगाङ्करस।

रसभस्म हेमभस्म तुल्यं गुञ्जाद्वयं भजेत्।
दोषं बुद्ध्वानुपानेन मृगाङ्कोऽयं क्षयापहः ॥ १४ ॥

शुद्धपारेकी भस्म और सुवर्णभस्म दोनोंको समानभाग लेकर एकत्र खरल करलेवे। इसको वातादिदोषोंका विचारकर यथा--अनुपानोंके साथ दो दो रत्तीप्रमाण सेवनकरनेसे यह मृगाङ्करस--क्षयरोगको नष्टकरताहै ॥ १४ ॥

मृगाङ्करस।

स्याद्रसेन समं हेम मौक्तिकं द्विगुणं ततः।
गन्धकश्च समं तेन रसपादन्तु टङ्कणम् ॥ १५ ॥
सर्वं तद्गोलकं कृत्वा काञ्जिकेन च पेषयेत्।
भाण्डे लवणपूर्णेऽथ पचेद्यामचतुष्टयम् ॥ १६ ॥
मृगांकसंज्ञः स ज्ञेयो रोगराजनिषूदनः।
गुञ्जाचतुष्टयं चास्य मरिचैः सह भक्षयेत् ॥ १७ ॥
पिप्पलीदशकैर्वाथ मधुना लेहयेद्बुधः।
पथ्यं सुलघुमांसेन प्रायशोऽस्य प्रयोजयेत् ॥ १८ ॥
दध्याजं गव्यतक्रं वा मांसमाजं प्रयोजयेत्।
व्यञ्जनैर्घृतपक्वैश्च नातिक्षारैरहिङ्गुभिः ॥ १९ ॥
एलाजाजीमरीचैस्तु संस्कृतैरविदाहिभिः।
वृन्ताकं तैलबिल्वादि कारवेल्लञ्च वर्जयेत् ॥
स्त्रियं परिहरेद्दूरे कोपश्चापि परित्यजेत ॥ १२० ॥

शुद्धपारा, १ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला, मोतीकी भस्म २ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले और सुहागा ३ मासे इन सबको एकत्र काँजीके द्वारा खरल करके गोलासा बनाकर धूपमें सुखालेवे। फिर गोलेको मूषायन्त्रमें बन्द करके नमकसे भरेहुए पात्रमें रखकर चार प्रहरतक पकावे। यह मृगाङ्कनामवाला

रस रोगराज क्षयको नष्ट करनेवाला है । इस रसको ४ रत्ती प्रमाण लेकर मिरचोंके चूर्ण और शहदके साथ अथवा १० पीपलोंके चूर्ण और शहदके साथ मिलाकर सेवन करे। इसपर लघुपाकी मांस, बकरीका दही, गौका मट्ठा, बकरेका मांस और घृतके द्वारा बनेहुए विविध प्रकारके व्यञ्जनादि पथ्य हैं। एवं इलायची, जीरा और कालीमिरच इनके द्वारा संस्कार कियेहुए खाद्यपदार्थोंको भक्षण करे और अत्यन्त क्षार पदार्थ, हींग, दाहकारक पदार्थ, बैंगन, तैल, बेल, करेला आदि पदार्थोंको त्यागदेवे । स्त्रीप्रसंग और क्रोधको तो सर्वथा त्यागदेना चाहिये ॥ १५-१२० ॥

राजमृगाङ्क रस ।

रसभस्म त्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम् ।
मृतताम्रस्य भागैकं शिलातालकगन्धकम् ॥ २१ ॥
प्रतिभागद्वयं शुद्धमेकीकृत्य विचूर्णयेत ।
वराटिका तेन पूर्य्या चाजाक्षीरेण टङ्कणम् ॥ २२ ॥
पिष्ट्वा तेन मुखं रुध्वा मृद्भाण्डे तां निरोधयेत ।
शुष्कं गजपुटे पाच्यं चूर्णयेत्स्वाङ्गशीतलम् ॥ २३ ॥
रसो राजमृगांकोऽयं चतुर्गुञ्जं क्षयापहः ।
दशपिप्पलिकैः क्षौद्रैर्मरिचैकोनविंशकैः ॥
सघृतैर्दापयेद्वातपित्तश्लेष्मोद्भवे क्षये ॥ २४ ॥

शुद्ध पारेकी भस्म ३ तोले, स्वर्णभस्म एक तोला, ताम्रभस्म एक तोला, (किसी २ ग्रन्थमें 'मृतताम्रस्य'के स्थानमें 'मृततारस्य' ऐसा पाठहै।) शिलाजीत २ तोले, हरतालकी भस्म २ तोलेऔर शुद्धगन्धक २ तोले, इन सबको एकत्र बारीक पीसकर १ बडी कौडीके भीतर भरदेवे । और उसके मुखको बकरीके दूधके साथ घिसेहुए सुहागेसे बन्दकर देवे फिर उसको मूषायन्त्रमें वा एक मिट्टीके बरतनमें रख ऊपरसे कपरौटीकरके धूपमें सुखालेवे। फिर गजपुटमें रखकर पकावे । जब पककर स्वांगशीतल होजाय तब औषध निकालकर चूर्ण करलेवे यह राजमृगांकनामक रस है । इसको दो रत्तीसे लेकर चार रत्ती तक दस पीपलोंके चूर्ण और शहदके साथ अथवा १९ काली मिरचोंके चूर्ण और घृतके साथ मिलाकर सेवन करावे । यह रस-वात पित्त और कफ इन तीनों दोषोंसे उत्पन्नहुए क्षयरोगमें विशेष उपयोगी है । क्षयरोगको नष्ट करनेके लिये यह परमोत्कृष्ट औषध है ॥ २१-२४ ॥

महामृगाङ्करस ।

निरुत्थभस्म सौवर्णं द्विगुणं भस्मसूतकम् ।
त्रिगुणं भस्म मुक्तोत्थं शुकपुच्छं चतुर्गुणम् ॥ २५ ॥
मृततताप्यञ्च पञ्चांशं तारभस्म चतुर्गुणम् ।
सप्तभागं प्रवालञ्च रसतुल्यञ्च टङ्कणम् ॥ २६ ॥
सर्वमेकत्र सम्मर्द्य त्रिदिनं निम्बुवारिणा ।
तत्ततो गोलकं कृत्वा शोषयित्वा खरातपे ॥ २७ ॥
लवणैः पात्रमापूर्य तन्मध्ये गोलकं क्षिपेत् ।
तन्मुखञ्च मृदा रुद्ध्वा पचेद्यामचतुष्टयम् ॥ २८ ॥
आकृष्य चूर्णयेच्छुद्धं चतुःषष्टिविभागतः ।
वज्रञ्च तदभावे तु वैक्रान्तं षोडशांशिकम् ॥ २९ ॥
महामृगांकः खलु सिद्ध एष श्रीनन्दिनाथप्रकटीकृतोऽयम् ।
वल्लोऽस्यसेव्योमरिचाज्ययुक्तःसेव्योऽथवापिप्पलिकासमेतः
अत्रोपचाराः कर्त्तव्याः सर्वे क्षयगदोदिताः ।
बल्यं घृतञ्च भोक्तव्यं त्याज्यं शूरविरोधि यत् ॥३१॥
यक्ष्माणं बहुरूपिणं ज्वरगणं गुल्मं तथा विद्रधिं
मन्दाग्निं स्वरभेदकासमरुचिं वान्तिञ्च मूर्च्छां भ्रमिम् ।
अष्टावेव महागदान् गदगणान्पाण्ड्वामयान्कामलान्
पित्तार्त्तिं समलग्रहान्बहुविधानन्यांस्तथानाशयेत्॥ ३२ ॥

सुवर्णभस्म १ तोला, रससिन्दूर २ तोले, मोतीकी भस्म ३ तोले, शुद्धगन्धक ४ तोले, स्वर्णमाक्षिक भस्म ५ तोले, चाँदीकी भस्म ४ तोले, मूँगेकी भस्म ७ तोले और सुहागा २ तोले इन सब औषधियोंको एकत्र कागजी नींबूके रसके साथ तीन दिनतक खरल करके गोलासा बनाकर तीक्ष्ण धूपमें सुखालेवे। फिर उस गोलेको मूषामें रखकर उसके ऊपर कपरौटीकर नमकसे भरेहुए मिट्टीके पात्रमें बन्द करके चार प्रहरतक पकावे। जब स्वाङ्गशीतल होजाय तब औषधि निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर समस्त चूर्णका चौसठवाँ भाग हीरेकी भस्म (हीरेके अभावमें सम्पूर्ण चूर्णका १६ वाँ भाग वैक्रान्तमणिकी भस्म) मिलादेवे। इस प्रकार यह महामृगाङ्करस सिद्ध होता है। इसको श्रीनन्दिनाथजीने निर्माण किया है। इस रसको दो रत्ती प्रमाण

लेकर कालीमिरचोंके चूर्ण और घृतके साथ अथवा पीपलके चूर्ण और घृतके साथ मिलाकर सेवन करना चाहिये। इसके सेवन करनेपर क्षयरोगमें कहेहुए सम्पूर्ण पदार्थोंका उपचार करना चाहिये और बलकारक पदार्थ, घृत तथा घृतके बने खाद्यद्रव्योंका सेवन करना चाहिये। एवं प्रकृतिके विरुद्ध पदार्थोंको त्यागदेना चाहिये। यह रस विविध प्रकारके यक्ष्मारोग, सर्व प्रकारके ज्वर, गुल्म, विद्रधिरोग, मन्दाग्नि, स्वरभंग, खाँसी, अरुचि, वमन, मूर्च्छा, भ्रम, पाण्डुरोग, कामला, पित्तसम्बन्धी विकार और अन्यान्य अत्यन्त भयंकर व्याधि-समूहको शीघ्र नष्ट करता है॥ २५-३२॥

लोकेश्वरपोट्टलीरस।

भस्मसूताच्चतुर्थांशं मृतस्वर्णं प्रदापयेत्।
द्विगुणं गन्धकं दत्वा मर्दयेच्चित्रकाम्बुना॥ ३३॥
पूर्या वराटिका तेन टङ्कणेन निरुध्य च।
भाण्डे चूर्णप्रलिप्तेऽथ क्षिप्त्वा रुद्ध्वा च मृण्मये॥३४॥
शोषयित्वा गजपुटे पुटेत्तु चापराह्निके।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य चूर्णयित्वा तु विन्यसेत॥ ३५॥
एष लोकेश्वरो नाम वीर्यपुष्टिविवर्द्धनः।
गुञ्जाचतुष्टयं चास्य पिप्पलीमधुसंयुतम्॥ ३६॥
भक्षयेत्पयसा भक्त्या लोकेशः सर्वदर्शनः।
अङ्गकार्श्येऽग्निमान्द्ये च कासे पित्ते क्षयेऽपि च॥३७॥
मारिचैर्घृतयुक्तैश्च भक्षयेद्दिवसत्रयम्।
लवणं वर्जयेत्तत्र साज्यं दधि च योजयेत्॥ ३८॥
एकविंशद्दिनं यावत्सघृतं मरिचं पिबेत।
पथ्यं मृगाङ्कवद्देयं शयीतोत्तानपादतः॥ ३९॥

ये शुष्का विषमाशनैः क्षयरुजा याप्याश्च येऽष्ठीलया
ये पाण्डुत्वहताः कुवैद्यविधिना ये शोषिणो दुर्भगाः।
ये नष्टा विविधैर्ज्वरैः श्रममदोन्मादैः प्रमादं गता-
स्ते सर्वे विगतामया हतरुजाः स्युः पोट्टलीसेवनात्॥४०

रससिन्दूर ४ तोले, सुवर्णभस्म १ तोला और शुद्धगन्धक ८ तोले इनको एकत्र चीतेके काथके द्वारा खरल करके एक कौडीमें भरकर सुहागेसे उसका

मुँह वन्द करदेवे। फिर एक मिट्टीके पात्रमें चूनेका प्रलेप करके उसमें उक्त कौडीको रखकर मिट्टीसे उस पात्रका मुँह वन्दकरके धूपमें सुखाकर अपराह्णके समय गजपुटमें पकावे। जब उत्तम प्रकारसे पककर स्वाङ्गशीतल होजाय तब ओषाधि निकालकर चूर्ण करके शीशीमें भरकर रखदेवे। यह लोकेश्वर पोट्टलीनामकरस अत्यन्तवीर्यवर्द्धक और पुष्टिकारक है। इसको चार चार रत्ती प्रमाण लेकर पीपलके चूर्ण और शहदके साथ मिलाकर सेवन करे और दूधके साथ भोजन करे। यह सर्वप्रियरस है इसको शरीरकी कृशता, मन्दाग्नि, खाँसी दुष्टपित्त और क्षयादि रोगोंके होनेपर कालीमिरच और घीके साथ मिलाकर ३ दिनतक सेवन करे। इसपर नमक त्यागकर घृतयुक्त दहीका भोजन करना चाहिये और २१ दिनतक मिरचोंके चूर्णको घृतमें मिलाकर सेवन करना चाहिये। इस रसको सेवन करते समय मृगाङ्करसकी समान पथ्य पदार्थोंको देना चाहिये और रोगीको ऊपरको पैर उठाकर शयन करना चाहिये। विषम पदार्थोंके भक्षण करनेसे जिनका शरीर शुष्क होगया है, जो क्षयरोग और वाताष्ठीलारोगसे पीडित हैं और जो पाण्डुरोगसे जो कुवैद्योंकी कुचिकित्साके द्वारा असाध्य होगये हैं, जो विविधप्रकारके ज्वरोंसे सन्तप्त हैं और जो अत्यन्त परिश्रम व अत्यंत मद्यपान करनेसे अथवा उन्मादसे पीडित हैं और जो भाग्यहीन राजयक्ष्मारोगी हैं वे इस पोट्टलीको सेवन करनेसे सम्पूर्ण रोगोंसे मुक्त होकर आरोग्य होते हैं॥ ३३-१४०॥

हेमगर्भपोट्टलीरस।

रसभस्म त्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम्।
मृतताम्रस्य भागैकं भागैकं गन्धकस्य च॥ ४१॥
मर्दयेच्चित्रकद्रावैर्द्रियामान्ते समुद्धरेत्।
पूर्या वराटिका तेन टङ्कणेन विलेपयेत्॥ ४२॥
वराटीं पूरयेद्भाण्डे रुद्धा गजपुटे पचेत्।
विचूर्णयेत्स्वाङ्गशीते पोटलीं हेमगार्भिकाम्॥
मृगाङ्कवच्चतुर्गुञ्जाभक्षणाद्राजयक्ष्मनुत्॥ ४३॥

पारेकी भस्म ३ तोले, सुवर्णभस्म १ तोला, ताँबेकी भस्म १ तोला और शुद्ध गन्धक १ तोला लेवे। सबको दो प्रहरतक चीतेके काढेमें खरल करके एक कौडीमें भरकर सुहागेसे उसका मुँह बंद करदेवे। फिर उस कौडीको एक मिट्टीके पात्रमें रखकर उस पात्रका मुँह बन्द करके गजपुटमे पकावे। जब

अच्छेप्रकार पककर स्वाङ्गशीतल होजाय तब औषध निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस हेमगर्भपोट्टली नामक रसको मृगांकरसकी समान चार चार रत्ती परिमाण सेवन करनेसे राजयक्ष्मारोग नष्ट होताहै ॥ ४१-४३ ॥

रत्नगर्भपोट्टलीरस।

रसं वज्रं हेमतारं नागं लौहञ्च ताम्रकम्।
तुल्यांशं मारितं योज्यं मुक्तामाक्षिकविद्रुमम् ॥ ४४ ॥
शङ्खं तुत्थञ्च तुल्यांशं सप्ताहं चार्द्रकद्रवैः।
मर्दयित्वा विचूर्ण्याथ तेन पूर्या वराटिका ॥ ४५ ॥
टङ्कणं रविदुग्धेन मुखं लिप्त्वा निरोधयेत्।
मृद्भाण्डे तां निरुध्याथ सम्यग्गजपुटे पचेत् ॥ ४६ ॥
आदाय चूर्णयेत्सर्वं निर्गुण्ड्या सप्तभावनाः।
आर्द्रकस्य रसैः सप्त चित्रकस्यैकविंशतिः ॥ ४७ ॥
द्रवैर्भाव्यं ततः शोषं देयं गुञ्जाचतुष्टयम्।
यक्ष्मरोगं निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशयः ॥४८॥
योजयेत्पिप्पलीक्षौद्रैः सघृतैर्मरिचैस्तथा।
महारोगाष्टके कासे ज्वरे श्वासेऽतिसारके ॥ ४९ ॥
पोट्टलीरत्नगर्भोऽयं योगवाहेन योजयेत् ॥
"वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभगन्दराः।
अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्त्तिताः" ॥ १५०

शुद्धपारा, हीरा, सोना, चाँदी, शीशा, लोहा, ताँबा, मोती, सोनामाखी, प्रवाल, शङ्ख और तूतिया इन सबकी भस्मोंको समानभाग लेकर एकत्र सात दिन तक अदरखके रसके द्वारा खरलकरे। फिर उसको कौडीमें भरकर आकके दूधके द्वारा खरल कियेहुए सुहागेसे उस कौडीका मुँह बन्दकर देवे और एक मिट्टीके पात्रमें उसको यथाविधि बन्दकरके उत्तम प्रकारसे गजपुटमें पकावे। जब पककर स्वांगशीतल होजाय तब औषध निकालकर चूर्ण करलेवे। फिर निर्गुण्डीके रसमें सातबार, अदरखके रसकी सातबार और चीतेके रसकी २१ बार भावना देकर धूपमें सुखालेवे। यह रस--चार २ रत्ती प्रमाण लेकर पीपलके चूर्ण और शहदके साथ अथवा मिरचोंके चूर्ण और घृतके साथ मिलाकर नियमपूर्वक सेवन करनेसे साध्य वा असाध्य सर्वप्रकारके राज-

यक्ष्मारोगको निस्सन्देह शीघ्र नष्ट करता है। एवं आठ प्रकारके महारोग (वातव्याधि, पथरी, कोढ, प्रमेह, उदररोग, भगन्दर, ववासीर और संग्रहणी) इनमें और खाँसी, श्वास, ज्वर, अतिसारादिरोगोंमें इस रत्नगर्भपोट्टली नामक रसको यथादोषानुसार अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे शीघ्र आरोग्य लाभ होताहै ॥ ४४-१५० ॥

कनकसुन्दररस।

रसस्य तुर्यभागेन हेमभस्म प्रयोजयेत।
मनःशिला गन्धकञ्च तुत्थं माक्षिकतालकम् ॥ ५१ ॥
विषं टङ्कणकं सर्वं रसतुल्यं प्रदापयेत्।
मर्दयेत्सर्वमेकत्र खल्लपात्रे च निर्मले ॥ ५२ ॥
जयन्तीभृङ्गराजोत्थैः पाठाया वासकस्य च।
अगस्तिलाङ्गलाग्नीनां स्वरसैश्च पृथक् पृथक् ॥ ५३ ॥
भावयित्वा विशोष्याथ पुनश्चार्द्रकवारिणा।
सप्तधा भावयित्वा च रसः कनकसुन्दरः ॥ ५४ ॥
गुञ्जाद्वयं त्रयं वास्य राजयक्ष्मप्रशान्तये।
मधुना पिप्पलीभिर्वा मरिचैर्वा घृतान्वितम् ॥ ५५ ॥
सन्निपाते प्रदातव्यमार्द्रकस्य रसेन वै।
जयपालरजोभिर्वा गुल्मिने शूलरोगिणे ॥ ५६ ॥
अम्लवर्जं चरेत्पथ्यं बल्यं हृद्यं रसायनम्।
वर्जयेल्लवणं हिङ्गु तक्रं दधि विदाहि यत् ॥ ५७ ॥

पारेकी भस्म १ तोला, सुवर्णभस्म ३ मासे, एवं शुद्ध मैनसिल, शुद्धगंधक, तूतिया, स्वर्णमाक्षिक, हरताल, मीठा तेलिया और सुहागा ये प्रत्येक ओषधि एक एक तोला लेकर सवको एकत्र साफ पत्थरके खरलमें मर्दन करे। फिर जयन्ती, भाँगरा, पाढ, अडूसा, अगस्ति, लांगल और चीता इनके रसमें पृथक् २ एक एक वार भावना देकर और सुखाकर फिर अदरखके रसमें सात वार भावना देवे। इस प्रकार यह कनकसुन्दररस सिद्ध होता है। इसको प्राति दिन प्रातःकाल दो रत्ती अथवा ३ रत्ती लेकर पीपलके चूर्ण और शहद, या मिरचोंके चूर्ण और घृतके साथ मिलाकर सेवन करनेसे राजयक्ष्मा नष्ट होता है। सन्निपातज्वरमें इस रसको अदरखके रसके साथ और

शूल व गुल्मरोगमें जमालगोटेके चूर्णके साथ देना चाहिये। इस औषधिको सेवन करते समय अम्लपदार्थ, नमक, हींग, मट्ठा, दही और दाहकारी पदार्थोंको त्याग देना चाहिये। एवं बलकारक, हृदयग्राही, रासायनिक और पथ्य पदार्थोंका सेवन करना चाहिये ॥ ५१-५७ ॥

सर्वांगसुन्दररस।

रसं गन्धश्च तुल्यांशं द्वौ भागौ टङ्कणस्य च।
मौक्तिकं विद्रुमं शङ्खभस्म देयं समांशिकम् ॥ ५८ ॥
हेमभस्मार्द्धभागश्च सर्वं खल्ले विमर्दयेत्।
निम्बुद्रवेण सम्पिष्य पिण्डिकां कारयेत्ततः ॥ ५९ ॥
पश्चाद्गजपुटं दत्त्वा सुशीतश्च समुद्धरेत।
हेमभस्मसमं तीक्ष्णं तीक्ष्णार्द्धं दरदं मतम् ॥ ६० ॥
एकीकृत्य समस्तानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।
ततः पूजां प्रकुर्वीत रसस्य दिवसे शुभे ॥ ६१ ॥
सर्वांगसुन्दरो ह्येष राजयक्ष्मनिकृन्तनः।
वातपित्तज्वरे घोरे सन्निपाते सुदारुणे ॥ ६२ ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषे मेहे गुल्मे भगन्दरे।
निहन्ति वातजान्रोगान् श्लैष्मिकांश्च विशेषतः ॥६३॥
पिप्पलीमधुसंयुक्तं घृतयुक्तमथापि वा।
भक्षयेत्पर्णखण्डेन सितया चार्द्रकेन वा ॥ ६४ ॥

शुद्धपारा और शुद्धगन्धक--इनकी कज्जली २ तोले, सुहागा २ तोले, मोती, मूँगा और शङ्ख इनकी भस्म प्रत्येक १-१ तोला और सुवर्णभस्म ६ मासे, सबको एकत्र कागजीनींबूके रसके साथ खरल करके गोलासा बनालेवे उसको मूषामें बन्दकरके गजपुटमें रखकर तीव्र अग्निके द्वारा पकावे। जब पककर शीतल होजाय तब निकालकर उसमें तीक्ष्ण लोहभस्म ६ मासे और शुद्ध हिंगुलभस्म ६ मासे मिलाकर सबको एकत्र करके बारीक चूर्णकर लेवे। इसके पश्चात् शुभदिनमें शिवजीका पूजनकरके इस सर्वाङ्गसुन्दररसको दोदो रत्तीकी मात्रासे पीपलके चूर्ण, शहद और घृतके साथ अथवा पानके रस या मिश्री वा अदरखके रसके साथ मिलाकर सेवन करनेसे राजयक्ष्मारोग नष्ट होताहै। यह रस--घोर वात-पित्तजन्य ज्वर, दारुण सन्निपात, अर्श संग्रहणी, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, विशेषकर वातज और कफज रोगोंको शीघ्र दूर करता है ६४

सर्पिर्गुड।

बला विदारी ह्रस्वा च पञ्चमूली पुनर्नवा।
पञ्चानां क्षीरिवृक्षाणां शुङ्गा मुष्टचंशिकाः पृथक्॥ ६५॥
एषां कषाये द्विक्षीरे विदार्याजरसांशिके।
जीवनीयैः पचेत्कल्कैरक्षमात्रैर्घृताढकम्॥ ६६॥
सितोपलानि पूते च शीते द्वात्रिंशदावपेत्।
गोधूमापिप्पलीवांशीचूर्णं शृङ्गाटकस्य च॥ ६७॥
समाक्षिकं कौडविकं तत्सर्वं खजमूर्च्छितम्।
स्त्यानं सर्पिर्गुडान कृत्वा भूर्जपत्रेण वेष्टयेत॥ ६८॥
ताञ्जग्ध्वा पलिकान्क्षीरं मद्यञ्चानु पिबेत्कफे।
शोषे कासे क्षतक्षीणे श्रमस्त्रीभारकर्षिते॥ ६९॥
रक्तनिष्ठीवने तापे पीनसे चोरासि स्थिते।
शस्ताः पार्श्वशिरःशूले भेदे च स्वरवर्णयोः॥ १७०॥

खिरैंटी, विदारीकन्द, लघुपञ्चमूल, पुनर्नवा, एवं वड, गूलर, पीपल, पारिस पीपल और पिलखन इन वृक्षोंके अंकुर ये प्रत्येक ओषाधि चार २ तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तव उतारकर छानलेवे। फिर उस काथमें बकरीका दूध, गौका दूध, बकरीका मांसरस और विदारीकन्दका स्वरस ये प्रत्येक काथकी समानभाग, एवं जीवनीयगणकी सम्पूर्ण ओषधियोंका चूर्ण दो दो तोले और गोघृत एक आढक परिमाण डालकर पकावे। जव घृत पककर शीतल होजाय तब उसमें मिश्री ३२ वोले, गेहूं, पीपल, वंशलोचन और सिंघाडेका चूर्ण तथा शहद ये प्रत्येक सोलह २ तोले मिलाकर करछीसे सवको एकमएक करके एक उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे और भोजपत्रसे उस पात्रका मुख बन्दकरके रखदेवे। इसको प्रतिदिन चार चार तोले प्रमाण सेवन करे और दूध या मद्यका अनुपान करे। यह सर्पिर्गुड कफविकार, शोष, खाँसी, क्षतक्षीण, अधिक परिश्रम, अत्यन्त स्त्री प्रसंग और वहुत बोझ उठानेसे क्लान्त होनेपर, रक्तकी वमन, दाह, पीनस, उरःशूल, पार्श्वशूल, शिरकी पीडा, स्वरभंग और शरीर विवर्णतादि रोगोंमें विशेष उपयोगी है॥ ६५-१७०॥

एलादिमन्थ।

एलाजमोदामलकाभयाक्षगायत्रिनिम्बासनशालसारान्।
विडंगभल्लातकचित्रकांश्च कटुत्रिकाम्भोदसुराष्ट्रिकांश्च ७१॥
पक्त्वा जले तेन पचेत्तु सर्पिस्तस्मिन्सुसिद्धे त्ववतारिते च।
त्रिंशत्पलान्यत्र सितोपलाया दद्यात्तुगाक्षीरिपलानि षट् च
प्रस्थे घृतस्य द्विगुणञ्च दद्यात्क्षौद्रं ततो मन्थहतं निदध्यात्।
पलं पलं प्रातरतो लिहेच्च पश्चात्पिबेत्क्षीरमतन्द्रितश्च॥७३॥
एतद्धि मेध्यं परमं पवित्रं चक्षुष्यमायुष्यतमं तथैव।
यक्ष्माणमाशु व्यपहन्ति शूलं पाण्ड्वामयश्चापि भगन्दरञ्च॥
न चात्र किञ्चित्परिवर्जनीयं रसायनञ्चैतदुपास्यमानः॥७४॥
"अत्र चतुर्गुणक्काथेन कल्कमिदं पाच्यम्"॥

इलायची, अजमोद, आमले, हरड, बहेडा, खैर, नीम, विजयसार, सालका सार, वायविडंग, भिलावे, चीता, त्रिकुटा, नागरमोथा और गोपीचन्दन ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर चौगुने जलमें पकावे। जब पककर चतुर्थांश जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस क्काथमें एक प्रस्थ घी डालकर पकावे। जब वह उत्तम प्रकारसे पकजाय तब अग्निसे नीचे उतारकर उसमें मिश्री १२० तोले, वंशलोचन २४ तोले और शहद दो प्रस्थ डालकर सबको अच्छे प्रकार मिलाकर शुद्ध पात्रमें भरकर रखदेवे। इसको प्रतिदिन प्रातःकाल चार चार तोले सेवन करे और ऊपरसे यथाशक्ति दुग्ध पान करे। यह एलादिमन्थ अत्यन्त पवित्र, मेधाजनक, नेत्रोंको हितकारी, अत्यन्त आयुवर्द्धक एवं राजयक्ष्मा, शूल, पाण्डुरोग और भगन्दर इन सब व्याधियोंको बहुत शीघ्र नष्ट करताहै। इसपर किसी प्रकारका भी परहेज नहीं करना चाहिये। यह रसायन औषध सभीके सेवन करने योग्य है ७१-७४॥

पिप्पलीघृत।

पिप्पलीगुडसंसिद्धं छागक्षीरयुतं घृतम्।
एतदग्निप्रवृद्ध्यर्थं सर्पिश्च क्षयकासिनाम्॥ ७५॥

पीपलका चूर्ण, पुराना गुड और बकरीका दूध इनके साथ यथाविधि घृतको सिद्ध करे। यह घृत क्षय और खाँसीरोगवाले मनुष्योंकी जठराग्निको बढानेके लिये सेवन कराना चाहिये॥ ७५॥

निर्गुण्डी घृत ।

समूलफलपत्राया निर्गुण्ड्याः स्वरसैर्घृतम् ।
सिद्धं पीत्वा क्षतक्षीणो निर्व्याधिर्भाति देववत् ॥७६॥

मूल, फल और पत्तोंसहित सिह्मालूके स्वरसके साथ विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करके पान करनेसे क्षतक्षीणरोगी आरोग्य होकर देवताके समान होताहै॥७६॥

बलाद्यघृत ।

घृतं बलानागबलार्जुनाम्बुसिद्धं सयष्टीमधुकल्कपादम् ।
हृद्रोगशूलक्षतरक्तपित्तकासानिलासृक्शमयत्युदीर्णम् ॥

खिरैंटी, गंगरेन और अर्जुनकी छाल इनके समानभागकाथमें काथसे चौथाई भाग मुलैठीका कल्क डालकर घृतको सिद्ध करे। यह घृत हृदयरोग, शूल, क्षत, रक्तपित्त, खाँसी और अतिप्रबल वातरक्त इन सबको नष्ट करता है ॥७७॥

द्वितीय-बलाद्यघृत ।

बलां श्वदंष्ट्रां बृहतीं कलसीं धावनीं स्थिराम् ।
निम्बं पर्पटकं मुस्तं त्रायमाणां दुरालभाम् ॥ ७८ ॥
कृत्वा कषायं पेष्यार्थं दद्यात्तामलकीं शठीम् ।
द्राक्षा पुष्करमूलञ्च मेदामामलकानि च ॥ ७९ ॥
घृतं पयश्च तत्सिद्धं सर्पिर्ज्वरहरं परम् ।
क्षयकासप्रशमनं शिरःपार्श्वरुजापहम् ॥ १८० ॥
चरकोदितवासाद्यघृतानन्तरमुक्तितः ।
वदन्तीह घृतात्काथं पयश्च द्विगुणं पृथक् ॥ ८१ ॥

खिरैंटी, गोखुरू, बडी कटेरी, पिठवन, कटेरी, शालपर्णी, नीमकी छाल, पित्तपापडा, नागरमोथा, त्रायमाण और धमासा इन सब ओषधियोंको समान भाग लेकर चौगुने जलमें पकावे। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे। फिर उसमें भुई आमला, कचूर, दाख, पोहकरमूल, मेद और आमले इनका बारीक चूर्ण और गोघृत काथसे आधा भाग एवं काथकी समान गोदुग्ध डालकर उत्तमप्रकारसे घृतको सिद्ध करे। इस प्रकार सिद्ध किया हुआ घृत ज्वर, क्षय, खाँसी, शिरःशूल और पसलीकी पीडा आदि सम्पूर्ण उपद्रवोंको दूर करता है। चरकमें वासाद्यघृतके पश्चात् इसी घतका वर्णन कियागया है। इसमें काथ और दूध घृतसे दुगुने लेने चाहिये ॥ ७८-८१ ॥

नागबलाघृत ।

पादशेषं जलद्रोणे पचेन्नागबलातुलाम् ।
तेन क्वाथेन तुल्यांशं घृतं क्षीरञ्च साधयेत् ॥ ८२ ॥
पलार्द्धकैश्चातिबला बलायष्टिपुनर्नवा ।
प्रपौण्डरीककाश्मर्यपियालकपिकच्छुभिः ॥ ८३ ॥
अश्वगन्धासिताभीरुमेदायुग्मत्रिकण्टकैः ।
मृणालबिषशालूकशृङ्गाटककेशरुकैः ॥ ८४ ॥
एतन्नागबलासर्पीरक्तपित्तक्षतक्षयम् ।
हन्ति दाहं भ्रमं तृष्णां बलपुष्टिकरं परम् ॥ ८५ ॥
बल्यमोजस्यमायुष्यं बलीपलितनाशनम् ।
उपयुञ्जीत षण्मासान्वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ८६ ॥

गंगेरनको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस क्वाथमें घी और दूध क्वाथकी समान, एवं कंघी, खिरैंटी, मुलैठी, पुनर्नवा, पुण्डेरिया, कुम्भेर, चिरौंजी, कौंछके बीज, असगन्ध, मिश्री, शतावर, मेदा, महामेदा, गोखुरू, कमलकी नाल, कमलकेशर, भसींडे, सिंघाडे और कशेरू इन सबका दो दो तोले चूर्ण डालकर घृतको सिद्ध करे । इस नागबलाघृतको सेवन करनेसे रक्तपित्त, क्षतक्षय, दाह, भ्रम, तृषा और असमयमें बालोंका पकना, शरीरमें बलियोंका पडना आदि विकार नष्ट होते हैं । यह घृत अत्यन्त बलकारक, पुष्टिकारक, ओज और आयुवर्द्धकहै । इस घृतको छः महीने पर्यन्त सेवन करनेसे वृद्ध पुरुष भी तरुण होजाताहै ॥ ८२-८६ ॥

बलागर्भघृत ।

द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कषाये प्रस्थद्वये मांसरसस्य चैके ।
कल्कं बलायाः सुनियोज्य गर्भं सिद्धं पयः प्रस्थयुतं घृतञ्च ।
सर्वाभिघातोत्थितयक्ष्मशूलक्षतक्षयोत्कासहरं प्रदिष्टम् ८७ ॥

दशमूलके २ प्रस्थ क्वाथमें मांसरस एक प्रस्थ, खिरैंटीका कल्क चौथाई प्रस्थ, गोघृत १ प्रस्थ और गौका दूध १ प्रस्थ मिलाकर घृतको सिद्ध करे । यह घृत सर्व प्रकारके उपद्रवोंसे उत्पन्न हुए राजयक्ष्मा, शूल, क्षतक्षय और उत्कट खाँसी आदिको हरनेवालाहै ॥ ८७ ॥

पाराशरघृत ।

यष्टी बला गुडूच्यल्पपञ्चमूलीतुलां पचेत् ।
शूर्पेऽपामष्टभागस्थे तत्र पात्रं पचेद्धृतम् ॥ ८८ ॥
धात्री विदारीक्षुरसे त्रिपात्रे पयसोऽर्मणे ।
सुपिष्टैर्जीवनीयैश्च पाराशरमिदं घृतम् ॥
ससैन्धं राजयक्ष्माणमुन्मूलयति शीलितम् ॥ ८९ ॥

मुलैठी, खिरैंटी, गिलोय और लघुपञ्चमूल इन सब ओषधियोंको १०० पल लेकर दो द्रोण जलमें पकावे । जब आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें घी ८ सेर, आमले, विदारीकन्द और ईख इनका रस २४ सेर, दूध एक द्रोण और जीवनीयगणकी समस्त ओषधियोंका चूर्ण चार चार तोले लेकर दूधमें पीसकर डालदेवे, फिर विधिपूर्वक घृतको पकावे । यह पाराशर नामक घृत प्रतिदिन नियम पूर्वक सेवन करनेसे संपूर्ण उपद्रवोंसे राजयक्ष्मारोगको समूल नष्ट करदेताहै ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

अजापञ्चक घृत ।

छागशकृद्रसमूत्रक्षीरैर्दध्ना च साधितं सर्पिः ।
सक्षारं यक्ष्महरं श्वासकासोपशान्तये परम् ॥ १९० ॥

बकरीकी विष्ठाका रस, मूत्र, दूध, दही और बकरीका घी ये सब समान भाग और घृतसे चौथाई भाग जवाखार लेकर सबको एकत्र करके घृतको पकावे यह घृत राजयक्ष्माको हरनेवाला और श्वास, कासादि रोगोंको शान्त करनेके लिये परम उपयोगी है ॥ १९० ॥

छागलाद्यघृत ।

छागमांसतुलां गृह्य साधयेन्नलवणेऽम्भसि ।
पादशेषेण तेनैव सर्पिः प्रस्थं विपाचयेत् ॥ ९१ ॥
ऋद्धिवृद्धी च मेदे द्वे जीवकर्षभकौ तथा ।
काकोलीक्षीरकाकोलीकल्कैः पृथक् पलोन्मितैः ९२
सम्यक्सिद्धे चावतार्य शीते तस्मिन्प्रदापयेत् ।
शर्करायाः पलान्यष्टौ मधुनः कुडवं क्षिपेत् ॥ ९३ ॥
पलं पलं पिबेत्प्रातर्यक्ष्माणं हन्ति दुर्ज्जयम् ।
क्षतक्षयञ्च कासञ्च पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ९४ ॥

स्वरक्षयमुरोरोगं श्वासं हन्यात्सुदारुणम् ।
बल्यं मांसकरं वृष्यमग्निसंदीपनं परम् ॥ ९५ ॥

बकरेके मांसको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें घी ६४ तोले, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, काकोली और क्षीरकाकोली इन सब ओषधियोंका कल्क चार चार तोले डालकर घृतको पकावे । जब उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें खाँड ३२ तोले और शहद १६ तोले डालकर सबको मिलादेवे । यह घृत, प्रतिदिन प्रातःकाल चार चार तोले प्रमाण सेवन करनेसे अतिदुर्जय राजयक्ष्मा, क्षतक्षय, खाँसी, पसलीकी पीडा, अरुचि, स्वरभंग, हृदयरोग और अतिदारुण श्वासको नष्ट करता है । एवं बल, मांस और वीर्यकी अधिक वृद्धि करता और अग्निके अत्यन्त दीपन करता है ॥ ९१-९५ ॥

द्वितीय-छागलाद्यघृत ।

तोयद्रोणद्वितयेच्छागलमांसस्य पलशतं पक्त्वा ।
जलमष्टांशं सुकृतं तस्मिन्विपचेद्घृतं प्रस्थम् ॥ ९६ ॥
कल्केन जीवनीयानां कुडवेन तु मांससर्पिरिदम् ।
पित्तानिलं निहन्यात्तज्जानपि रसकयोजितं पीतम् ९७
कासश्वासावुग्रौ यक्ष्माणं पार्श्वहृद्रुजां घोराम् ।
अध्वव्यवायशोषं शमयति चैवापरं किञ्चित् ॥ ९८ ॥

बकरेके मांसको सौ पल लेकर दो द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें घी एक प्रस्थ और जीवनीयगणकी सब औषधियोंका कल्क एक कुडव डालकर घृतको सिद्ध करे यह छागलाद्यघृत वातज और पित्तजरोग, अत्युग्र खाँसी, श्वास, राजयक्ष्मा, पार्श्वशूल, हृदयरोग, मार्गश्रम, स्त्रीप्रसङ्गकी व्यग्रता, शोष एवं अन्यान्य सम्पूर्ण उपद्रवोंको शमन करताहै ॥ ९६-९८ ॥

जीवन्त्याद्यघृत ।

जीवन्तीं मधुकं द्राक्षां फलानि कुटजस्य च ।
शठीं पुष्करमूलञ्च व्याघ्रीं गोक्षुरकं बलाम् ॥ ९९ ॥
नीलोत्पलं तामलकीं त्रायमाणां दुरालभाम् ।

पिप्पलीश्च समं पिष्ट्वा घृतं वैद्यो विपाचयेत ॥
एतद्व्याधिसमूहस्य रोगेशस्य समुत्थितम् ।
रूपमेकादशविधं सर्पिरुग्रं व्यपोहति ॥ २०० ॥

जीवन्ती, मुलैठी, दाख, इन्द्रजौ, कचूर, पोहकरमूल, कटेरी, गोखुरू, खिरैंटी, नीलकमल, भुईआमला, त्रायमाण, धमासा और पीपल इन सबको समानभाग लेकर एकत्र पीसकर चौगुने जलमें डालकर १ सेर घतको पकावे यह घृत समस्त रोगसमूहको और ग्यारह प्रकारके लक्षणों सहित अत्युग्र राजयक्ष्माको दूर करताहै ॥ १९९ ॥ २०० ॥

अमृतप्राशघृत।

जीवकर्षभकौ वीरां जीवन्तीं नागरं शठीम् ।
चतस्रः पर्णिनीर्मेदे काकोल्यौ द्वे निदिग्धिके ॥ १ ॥
पुनर्नवे द्वे मधुकमात्मगुप्तां शतावरीम् ।
ऋद्धिं परुषकं भार्गीं मृद्वीकां बृहतीं तथा ॥
शृङ्गाटकं तामलकीं पयस्यां पिप्पलीं बलाम् ।
बदरास्फोटखर्जूरवातामाभिषुकाण्यपि ॥ २ ॥
फलानि चैवमादीनि कल्कान्कुर्वीत कार्षिकान् ।
धात्रीरसविदारीक्षुच्छागमांसरसं पयः ॥
दत्वा प्रस्थोन्मितान्भागान्घृतप्रस्थं विपाचयेत ।
प्रस्थार्द्धं मधुनः शीते शर्करार्द्धतुलां तथा ॥ ३ ॥
पलार्द्धकश्च मरिचत्वगेलापत्रकेशरात ।
विनीय चूर्णितं तस्माल्लिह्यान्मात्रां सदा रसः ॥
अमृतप्राशमित्येतन्नराणाममृतं घृतम् ॥ ४ ॥
सुरामृतरसप्राख्यं क्षीरमांसरसाशिनः ॥
नष्टशुक्रक्षतक्षीणदुर्बलव्याधिकार्षितान् ।
स्त्रीप्रसक्तान् कृशान् वर्णस्वरहीनांश्च बृंहयेत् ॥ ५ ॥
कासहिक्काज्वरश्वासदाहतृष्णास्रपित्तनुत् ।
पुत्रदं वमिमूर्च्छाहृद्योनिमूत्रामयापहम् ॥ ६ ॥

जीवक, ऋषभक, कपूरकचरी, जीवन्ती, सोंठ, कचूर, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, कटेरी, गोखुरू,

श्वेतपुनर्नवा, लालपुनर्नवा, मुलैठी, कौंछके बीज, शतावर, ऋद्धि, फालसे, भारंगी, दाख, बडी कटेरी, सिंघाडे, भुईआमला, क्षीरविदारीकन्द, पीपल, श्वेत खिरैटी, बेर, अखरोट, खजूर, बादाम और पिस्ते ये प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर आमले, विदारीकन्द, ईख इनका स्वरस, बकरेका मांस रस, गोदुग्ध और गोघृत इन सबको एक एक प्रस्थ लेकर एकत्र करके पकावे। जब घी उत्तम प्रकारसे पकजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें शहद ३२ तोले, मिश्री ५० पल कालीमिरच, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर इनका चूर्ण दो दो तोले डालकर सबको एकमएक करलेवे। यह अमृतप्राशनामक घृत मनुष्योंके लिये अमृतकी समान हितकारी है। इसको अग्निका बलाबल विचारकर यथोचित मात्रासे सेवन करे और दूध एवं मांसरसका पथ्य करे। यह अमृतप्राशघृत क्षीणवीर्य, क्षतक्षीण, देहकी दुर्बलता, रोगसे अथवा अत्यन्त स्त्रीप्रसङ्गकरनेसे उत्पन्नहुई कृशता विवर्णता, स्वरभंग, खाँसी, श्वास, हिचकी, ज्वर, दाह, तृषा, रक्तपित्त, वमन,, मूर्च्छा, हृद्रोग, योनिरोग और मूत्रकृच्छ्र आदि सम्पूर्ण व्याधियोंको दूर करता है। एवं पुष्टिकारक और पुत्र जनक है ॥ २०१-२०६ ॥

द्वितीय-अमृतप्राशघृत।

क्षीरे च धात्री मञ्जिष्ठा क्षीरिणाश्च तथा रसैः ।
पचेत्समैर्घृतप्रस्थं जीवकर्षभकौ विना ॥
जीवनीयगणेषूक्तैः प्रत्येकं कर्षसम्मितैः ॥ २०७ ॥
द्राक्षाद्विचन्दनोशीरैः शर्करोत्पलपद्मकैः ॥
मधूककुसुमानन्ताकाश्मरीतृणसंज्ञकैः ।
प्रस्थार्द्धं मधुनः शीते शर्करार्द्धतुलां तथा ॥ २०८ ॥
पलार्द्धकांश्च सञ्चूर्ण्य त्वगेलापत्रकेशरात् ।
विनीय तत्र सँल्लिह्यान्मात्रां नित्यं सुयंत्रितः ॥२०९॥
अमृतप्राशमित्येतदाश्विभ्यां परिकीर्तितम् ।
क्षीरमांसाशिनां हन्ति रक्तपित्तं क्षतक्षयम् ॥ २१० ॥
तृष्णारुचिश्वासकासच्छर्दिमूर्च्छाप्रमर्द्दनम् ।
मूत्रकृच्छ्रं ज्वरघ्नश्च बल्यं स्त्रीरतिवर्द्धनम् ॥ ११ ॥

गोदुग्ध, आमलोंका रस, मजीठ, बड, गूलर, पीपल, पाखर और पारस पीपल इनका क्काथ समानभाग, गोघृत १ प्रस्थ एवं जीवक ऋषभकको छोडकर जीवनीय-

गण (ऋद्धि,वृद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली,क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलैठी) की औषधियों एक एक कर्ष और दाख, सफेद चन्दन,खस, खाँड, नीलकमल, पद्माख, महुएके फूल, अनन्तमूल, कुम्भेर, कुशाकी जड, काशकीजड,सर्पटेकी जड,कालीईखकी जड और शालिधानोंकी जड, प्रत्येकका चूर्ण एक एक कर्ष सबको एकत्र मिलाकर घृतको पकावे। जब घृत अच्छे प्रकारसे पककर शीतल होजाय तब शहद ३२ तोले, खाँड २०० तोले और दारचीनी,इलायची,तेजपात,केशर ये प्रत्येक दोदो तोले बारीक चूर्णकर मिला-देवे। इसको प्रतिदिन अग्निका बलाबल विचारकर उपयुक्त मात्रासे सेवन करे। इस अमृतप्राश घृतको आश्विनीकुमारोने निर्माण कियाहै। इसको सेवन करते समय दूध और मांसरसका पथ्यकरे। यह घत रक्तपित्त, क्षतक्षय, तृषा, अरुचि, श्वास, खाँसी, वमन,मूर्च्छा, शरीरका टूटना मूत्रकृच्छ्र और ज्वरको नष्ट करनेवाला एवं बल और स्त्रियोंमें रतिशक्तिवर्द्धक हैं॥ २०७-२११॥

महाचन्दनादितैल।

चन्दनं शालपर्णी च पृश्निपर्णी निदिग्धिका।
बृहती गोक्षुरश्चैव मुद्गपर्णी विदारिका॥ १२॥
अश्वगन्धा माषपर्णी तथामलकमेव च।
शिरीषं पद्मकोशीरं सरलं नागकेशरम्॥ १३॥
प्रसारणी तथा मूर्वा प्रियंगूत्पलबालकम्।
वास्यालकं चातिबला मृणालं विषशालुकम्॥१४॥
पञ्चाशत्पलमेतेषां श्वेतवास्यालकं तथा।
जलद्रोणे विपक्तव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम्॥ १५॥
अजाक्षीरं तैलसमं शतमूलीरसाढके।
लाक्षारसं काञ्जिकश्च दधिमस्तु तथैव च॥ १६॥
हरिणच्छागशशकमांसानाञ्च पृथक् पृथक्।
चतुः प्रस्थं विनिष्क्वाथ्याढकं तैलं विपाचयेत्॥१७॥
श्रीखण्डागुरुकक्कोलं नखं शैलेयकेशरम्।
पत्रं चोचं मृणालञ्च हरिद्रे शारिवाद्वयम्॥ १८॥
रक्तोत्पलं नतं कुष्ठं त्रिफला च परूषकम्।
मूर्वा च ग्रन्थिपर्णी च नलिका देवदारु च॥ १९॥

सरलं पद्मकोशीरं धातकी बिल्वपेषिका ।
रसाञ्जनं मुस्तकञ्च शैलकं बालकं वचा ॥ २० ॥
मञ्जिष्ठा लोध्रमधुरी जीवनीयं प्रियङ्गुकम् ।
शठ्येला कुंकुमञ्चैव खट्टाशी पद्मकेशरम् ॥ २१ ॥
रास्ना च जातीकोषश्च विश्वकं सधनीयकम् ।
पलार्द्धमेषां प्रत्येकं पेषयित्वा विनिःक्षिपेत ॥ २२ ॥
महासुगन्धितैलस्य गन्धमत्र प्रदीयते ।
काश्मीरमदचन्द्रांशुसिद्धे पूते विनिःक्षिपेत ॥ २३ ॥
यथालाभं शुभे पात्रे संगोपेन निधापयेत् ।
वातपित्तहरं वृष्यं धातुपुष्टिकरं परम् ॥
निहन्ति क्षीणमत्युग्रं रक्तपित्तमुरःक्षतम् ॥ २४ ॥

येषां भूरिपरिश्रमादनुदिनं नश्यन्ति देहा नृणां
ये वा कामकलानुकूलतरुणीसङ्गे च निर्धातवः ।
ये वा व्याधिविशीर्णतानुपगतास्तेषां परं भेषजं
बल्यं वृष्यतमं तनूपचयकृच्छ्रीचन्दनाद्यं महत् ॥ २५॥

लालचन्दन, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेरी, बडीकटेरी, गोखुरू, मुगवन, विदारीकन्द, असगन्ध, मषवन, आमले,शिरसकी छाल, पद्माख, खस, सरलधूप, नागकेशर, प्रसारिणी, मूर्वा, फूलप्रियंगु, कुमुद, नीलोफर, सुगन्धवाला, खिरैंटी, कंघी, कमलकी नाल, भसींडा और सफेद खिरैंटी इन सब ओषधियोंको पचास पल लेकर ३२ सेर जलमें पकावे । जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस क्वाथमें बकरीका दूध ८ सेर, तिलका तैल ८ सेर, शतावरका रस ८ सेर, लाखका रस ८ सेर, काँजी ८ सेर, दहीका तोड ८ सेर, एवं हिरन, बकरा और खरगोश-इन प्रत्येकका मांसरस आठ २ सेर और कल्कके लिये सफेद चन्दन, अगर, कङ्कोल, नख (नामगन्धद्रव्य), भूरिछरीला, नागकेशर, तेजपात, दारचीनी, कमलकी नाल, हल्दी, दारुहल्दी, उसवा, अनन्तमूल, लालकमल, तगर, कूठ, त्रिफला, फालसे, मूर्वा, ग्रन्थिपर्णी, नलिका, देवदारु, धूपसरल, पद्माख, खस, धायके फूल, बेलगिरी; रसौत, नागरमोथा, शिलारस, सुगन्धवाला, वच, मजीठ, लोध, सौंफ, जीवनीयगणकी समस्त ओषधियाँ, फूलप्रियंगु, कचूर,

छोटी इलायची, केशर, खट्टासी, कमलकेशर, रायसन, जायफल, सोंठ, और धानियाँ—प्रत्येक दो २ तोले बारीक चूर्णकरके डालदेवे और फिर यथाविधि तैलको पकावे । जब तैल उत्तमप्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर छानलेवे । इस तैलमें महा सुगन्धितैलकी सुगन्धित ओषधियाँ, एवं कस्तूरी केशर और कपूर ये जितनी मिलसकें उतनी लेकर डालदेवे और तैलको शुद्ध पात्रमें भरकर और उसका मुँह बाँधकर रखदेवे । यह तैल वात-पित्तनाशक, अत्यन्त वीर्यवर्द्धक, धातुपुष्टिकारक एवं अतिप्रबलक्षय, रक्तपित्त और उरः-क्षतको नष्ट करनेवाला है । जिन मनुष्योंके प्रतिदिन अधिक परिश्रमकरनेसे शरीर क्षीण होगये हों या जो कामकलाओंमें प्रवीण तरुणी-स्त्रियोंके साथ अत्यन्त प्रसङ्गकरनेसे धातुहीन होगये हो अथवा जो रोगोंके कारण अत्यन्त कृश होगये हों ऐसे पुरुषोंके लिये यह महाचन्दनादि तैल अत्युत्तम औषध है। एवं अत्यन्त बलकारक, वीर्यवर्द्धक और शरीरको पुष्ट करनेवाला है ॥१२–२५॥

यक्ष्मारोगमें पथ्य ।

मद्यानि जाङ्गलं पक्षिमृगमांसं विशुष्यताम् । मुद्गषष्टिकगोधूमयवशाल्यादयो हिताः ॥ २६ ॥ दोषाधिकस्य बलिनो मृदुशुद्धिरादौ गोधूममुद्गचणकारुणशालयश्च । छागादिमांसनवनीतपयोघृतानि क्रव्यादमांसमपि जाङ्गलजा रसाश्च ॥ २७ ॥ पक्वानि मोचपनसाम्रफलानि धात्री खर्जूरपौष्करपरूषकनारिकेलम् । शोभाञ्जनञ्च कुलकं नवतालशस्यं द्राक्षाफलानि मिषयोऽपि च माणिमन्थम् ॥ २८ ॥ सिंहास्यपत्रमपि गोमाहिषीघृतञ्च छागाश्वयोश्च (?) तत्पुरीषमूत्रलेपः । मत्स्याण्डिका शिखरिणी मदिरा रसाला कर्पूरकं मृगमदः सितचन्दनञ्च ॥ २९ ॥ अभ्यञ्जनानि सुरभीण्यनुलेपनानि स्नानानि वेषरचनान्यवगाहनानि । हर्म्यं स्रजं स्मरकथा मृदुगन्धवाहो गीतानि नृत्यमपि चन्द्ररुचो विपञ्ची । मुक्तामणिप्रचुरभूषणधारणञ्च होमः प्रदानममरद्विजपूजनानि ॥ ३० ॥

मदिरा, जाङ्गलदेशके पशु पक्षियोंका शुष्क मांस, मूँग, साठीके चावल, गेहूँ, जौ और शालिधानोंके चावल आदिपदार्थ यक्ष्मरोगीके लिये हितकर हैं।

दोषोंकी अधिकतावाले बलवान् रोगीके प्रथम मृदुवमन और विरेचनके द्वारा कोष्ठको शुद्धकरे। फिर गेहूँ, मूँग, चने, लाल शालिधानोंके चावल, बकरेका मांस, बकरीका नैनी घी, बकरीका दूध, बकरीका घी, मांसाहारी जीवोंका मांस और जाङ्गल देशमें उत्पन्नहुए पशुपक्षियोंका मांसरस, पके केलेका मोचा, पका कटहल, पकेआम, आमले, खजूर, पोहकरमूल, फालसे, नारियल, सैंजनेकी फली, बेर, नवीनताडका फल, दाख, सौंफ, सैंधानमक, बिसौंटेके पत्ते, गौ और भैंसका घी, बकरियोंके बीचमें शयन और बकरीके मल मूत्रका प्रलेप मत्स्याण्डिका, मिश्री, शिखरन, मद्य, रसाला, कपूर, कस्तूरी श्वेतचन्दन और सुगन्धित तैलादि द्रव्योंकी शरीरपर अनुलेपन, स्नान, सुन्दर वेशरचना, जलमें गोता लगाकर स्नान करना, ऊंची अट्टालिकाओंमें निवास, पुष्पमालायें पहरना, काम कथा, मन्द-सुगन्ध वायुका सेवन, चन्द्रमाकी निर्मल चाँदनी, सुन्दर सुन्दर गाने गीत और नृत्य देखना, मोती और मणियोंके निर्मित भूषण धारण करना, यज्ञकरना, दान देना, देवता और ब्राह्मणोंका एवं पुण्य पुरुषोंका पूजन, सम्मान आदि ये सब क्रियायें करनी चाहिये ॥ २३० ॥

यक्ष्मारोगमें अपथ्य।

विरेचनं वेगविधारणानि श्रमं स्त्रियं स्वेदनमञ्जनञ्च।
प्रजागरं साहसकर्म्मसेवा रूक्षान्नपानं विषमाशनञ्च ॥३१॥
ताम्बूलकालिङ्गकुलत्थमाषरसोनवंशांकुररामठानि।
अम्लानि तिक्तानि कषायकाणि कटूनि सर्वाणि च पत्रशाकं
क्षारान्विरुद्धान्यशनानिशिम्बीककोंटकश्चापिविदाहिसर्वं
कठिल्लकं कृष्णमपि क्षयेषु विवर्जयेत्सन्ततमप्रमत्तः ॥ ३२ ॥
वृन्ताकं कारवेल्लञ्च तैलं बिल्वञ्च राजिकाम्।
व्यायामञ्च दिवानिद्रां क्षयी कोपं विवर्जयेत् ॥ २३४ ॥

विरेचन कराना, मल मूत्रादिके वेगोंको रोकना, अधिक परिश्रम, अत्यन्त मैथुन, स्वेद देना, नेत्रोंमें अँजन लगाना, रात्रिमें जागना, साहसके कार्य सेवा, रूक्ष अन्नपान, विषमभोजन, पान, तरबूज, मटर, उडद, लहसुन, बाँसके अंकुरोंका शाक, हींग, खट्टे-कडवे-कषैले-चरपरे पदार्थ, सम्पूर्ण पत्तोंवाले शाक, क्षारपदार्थ, विरुद्ध भोजन, सेमकी फली, ककोडा, समस्त दाह कारक पदार्थ, कालीतुलसी, बैंगन, करेला, तैल, बेल, सरसों, व्यायाम, दिनमें सोना और क्रोध, क्षयरोगमें क्षयरोगीको ये सब त्यागदेने चाहिये ॥ २३१-२३४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां यक्ष्मारोग-चिकित्सा।

कासरोगकी चिकित्सा।

वास्तुको वायसीशाकं मूलकं सुनिषण्णकम्।
स्नेहास्तैलादयो भक्ष्याः क्षीरेक्षुरसगौडिकाः॥ १॥
दध्यारनालाम्लफलं प्रसन्नापानमेव च।
प्रशस्यते वातकासे स्वाद्वम्ललवणानि च॥ २॥
ग्राम्यानूपोदकैः शालियवगोधूमषष्टिकान्।
रसैर्माषात्मगुप्तानां यूषैर्वा भोजयेद्धितान्॥ ३॥

बथुआ, मकोय, मूली और शिरियारीका शाक, घृत, तैलादि स्नेह पदार्थ, दूध, ईखका रस, गुडके बने पदार्थ, दही, काँजी, खट्टेफल, प्रसन्ना नामक मदिरा, मधुर, अम्ल और नमकीन पदार्थ, एवं ग्राम्य, आनूप और जलचर-जीवोंका मांसरस, वा यूष, शालिधानोंके चावल, जौ, गेहूं, साठीके चावलोंका भात, उडद और कौंचके बीजोंके यूषके साथ हितकर पदार्थोंको वातज कास-रोगमें भोजन करना हितकर है॥ १-३॥

शठीशृङ्गीकणाभार्गीगुडवारिदयासकैः।
सतैलैर्वातकासघ्नो लेहोऽयमपराजितः॥ ४॥

कचूर, काकडासिंगी, पीपल, भारङ्गी, पुराना गुड, नागरमोथा और धमासा इन सबको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण करके सरसोंके तैलके साथ खरल करके सेवन करनेसे वातकी खाँसी नष्ट होती है॥ ४॥

पित्तकासे तनुकफे त्रिवृतां मधुरैर्युताम्।
दद्याद्धनकफे तिक्तैर्विरेकार्थं युतां भिषक्॥ ५॥

पित्तकी खाँसीमें--कफकी तरलता और कोष्ठबद्धता हो तो रोगीको विरेचन करानेके लिये खाँड या मिश्री आदि मधुरपदार्थोंके साथ निसोतका चूर्ण वा क्वाथ और कफके गाढे होनेपर तिक्त पदार्थोंके रसके साथ निसोतका चूर्ण या क्वाथ सेवन कराना चाहिये॥ ५॥

मधुरैर्जाङ्गलरसैः श्यामाकयवकोद्रवाः।
मुद्गादियूषैः शाकैश्च तिक्तकैर्मात्रया हिताः॥ ६॥

पित्तकी खाँसीमें जांगलदेशके जीवोंके मांसरस, मधुर पदार्थ, मूँग आदिका यूष और कडवे शाकादिके साथ--समा, जौ और कोदों आदिका अन्न सेवन करना चाहिये॥ ६॥

द्राक्षामधुरखर्जूरं पिप्पलीमरिचान्वितम् ।
पित्तकासहरं ह्येतल्लिह्यान्माक्षिकसर्पिषा ॥ ७ ॥

दाख, मुलैठी, खजूर, पीपल और मिरच इनके समानभाग मिश्रित चूर्णको घी और शहदके साथ सेवन करनेसे पित्तकी खाँसी दूर होती है ॥ ७ ॥

बलिनं वमनेनादौ शोधितं कफकासिनाम् ।
यवान्नैः कटुरूक्षोष्णैः कफघ्नैश्चाप्युपाचरेत् ॥ ८ ॥

कफकी खाँसीवाले बलवान् रोगीको प्रथम वमनके द्वारा शुद्ध करके कफ नाशक कटु रूक्ष और उष्णपदार्थोंके साथ जौका माँड आदि सेवन कराना॥८

पार्श्वशूले ज्वरे श्वासे कासे श्लेष्मसमुद्भवे ।
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं दशमूलीजलं पिबेत् ॥ ९ ॥

पार्श्वशूल, ज्वर, श्वास और कफजनित खाँसीमें-पीपलका चूर्ण मिलाकर दशमूलका क्वाथ पान करना चाहिये ॥ ९ ॥

स्वरसं शृङ्गवेरस्य माक्षिकेन समन्वितम् ।
पाययेच्छ्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफापहम् ॥ १० ॥

अदरखके स्वरसको शहदके साथ मिलाकर पान करानेसे श्वास, खाँसी, जुकाम और कफके सब विकार नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

कण्टकारीकृतक्वाथं सकृष्णा सर्वकासहा ।
पीपलके चूर्णसहित कटेरीके क्वाथको पीनेसे सर्वप्रकारकी खाँसी दूर होतीहै॥

विभीतकं घृताभ्यक्तं गोशकृत्परिवेष्टितम् ।
स्विन्नमग्नौ हरेत्कासं ध्रुवमास्यविधारितम् ॥ ११ ॥

बहेडेको घीमें सानकर फिर गौके गोबरमें लपेटकर उसको अग्निमें पकावे पश्चात् उसकी गुठलीको निकालकर बहेडेको मुखमें धारण करनेसे खाँसी शान्त होती है ॥ ११ ॥

वासकस्य रसः पेयो मधुयुक्तो हिताशिना ।
पित्तश्लेष्मकृते कासे रक्तपित्ते विशेषतः ॥ १२ ॥

पित्तकी और कफकी खाँसीमें एवं विशेषकर रक्तपित्तमें अडूसेके पत्तोंके स्वरसको शहद मिलाकर सेवन करने और हितकर पदार्थोंको भक्षण करनेसे लाभ होता है ॥ १२ ॥

वासायाः स्वरसं पूतं कणामाक्षिकसंयुतम् ।
अभ्यासान्मुच्यते पीत्वाप्यसाध्यात्कासरोगतः ॥१३

अडूसेके पत्तोंके शुद्ध स्वरसमें पीपलका चूर्ण और शहद मिलाकर प्रतिदिन पान करनेसे असाध्य कासरोग दूर होताहै ॥ १३ ॥

समूलं चित्रकश्चैव पिप्पलीचूर्णकं हरेत् ।
कासं श्वासञ्च हिक्काञ्च मधुयुक्तं द्विजोत्तमः ॥ १४ ॥

चीतेकी जड और पीपलके समानभाग चूर्णको शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे खाँसी, श्वास और हिचकी दूर होतीहै ॥ १४ ॥

तद्वत् क्रव्यादजं मांसं कौलिङ्गं मांसमेव च ।
असाध्यान्मुच्यते भुक्त्वा कासादभ्यासयोगतः ॥१५॥

श्येन आदि मांसाहारी पक्षियों और चिडेआदिके मांसरसको नियमपूर्वक सेवन करनेसे असाध्य कास (खाँसी) रोग दूर होता है ॥ १५ ॥

मुस्तकं पिप्पलीद्राक्षा सुपक्वं बृहतीफलम् ।
घृतक्षौद्रयुतो लेहः क्षयकासनिबर्हणः ॥ १६ ॥

नागरमोथा, पीपल, दाख और पकेहुए बडी कटेरीके फल इनके समान भाग चूर्णको घृत और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे क्षयकी खाँसी नष्ट होतीहै१६

तिन्तिडीपत्रजः क्वाथो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः ।
दुष्टकासं जयत्याशु तृणवृन्दमिवानलः ॥ १७ ॥

इमलीके पत्तोंके क्वाथमें हींग और सैंधानमक डालकर पानकरनेसे दारुण खाँसी इस प्रकार शीघ्र नाश होजाती है, जैसे अग्निके द्वारा तृणसमूह ॥१७॥

मरिचशिलार्कक्षीरैर्वार्त्ताकीं त्वचमाशुभाविताम् ।
शुष्कां कृत्वा विधिना धूमं पिबतः कासाः शमं यांति॥

कालीमिरच, मैनशिल और आकके दूधके द्वारा कटेरीको विधिपूर्वक भावना देकर सुखाकर उसका धूम्रपान करनेसे खाँसी शमन होती है ॥ १८ ॥

पञ्चमूलीकाथ ।

निहन्ति कासं गुरुपञ्चमूलीकृतः कषायश्च मगधसहायः१९

बेलकी छाल, शोनापाठाकी छाल, कुम्भेरकी छाल, पाढरकी छाल, और अरणीकी छाल इनका काथ बनाकर उसमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे खाँसी दूर होती है ॥ १८ ॥

पिप्पल्यादि काथ ।

पिप्पली कट्फलं शुण्ठी शृङ्गी भार्गी तथोषणम् ।
कारवी कण्टकारी च सिन्धुवारो यमानिका ॥ १९ ॥
चित्रको वासकश्चैषां कषायं विधिवत्कृतम् ।
कफकासविनाशाय पिबेत्कृष्णारजोयुतम् ॥ २० ॥

पीपल, कायफल, सोंठ, काकडासिंगी, भारङ्गी, मिरच, कालाजीरा, कटेरी, सिह्मालू, अजवायन, चीता और बिसौंटा इनका यथाविधि काथ बनाकर उसमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे कफकी खाँसी नष्ट होती है ॥१९॥२०॥

कण्टकार्यादिकाथ ।

कण्टकारीयुगं द्राक्षा वासा कर्पूरबालकैः ।
नागरेण च पिप्पल्या क्वथितं सलिलं पिबेत् ॥
शर्करामधुसंयुक्तं पित्तकासापहं परम् ॥ २१ ॥

कटेरी, बडीकटेरी, दाख, अडूसा, कपूर, सुगन्धवाला, सोंठ और पीपल इनके काथमें मिश्री और शहद मिलाकर पीनेसे पित्तकी खाँसी दूर होती है ॥२१॥

मरिचाद्यचूर्ण ।

कर्षः कर्षार्द्धमथो पलं पलद्वयं तदार्द्धकर्षश्च ।
मरिचस्य पिप्पलीनां दाडिमगुडयावशूकानाम् २२॥
सर्वौषधैरसाध्या ये कासाः सर्ववैद्यविवर्जिताः ।
अपि पूयं छर्दयतां तेषामिदं महौषधं पथ्यम् ॥ २३ ॥

कालीमिरच १६ मासे, पीपल आठ मासे, अनारदाना २ तोले, पुराना गुड ४ तोले और जवाखार आठ मासे लेकर सबको एकत्र पीसकर प्रतिदिन दो या तीन मासे परिमाण सेवन करे । सर्व प्रकारकी औषधियोंके सेवनकरनेसे भी जो खाँसी दूर न हुआ हो और जिसको वैद्योंने त्यागदिया हो ऐसी खाँसी भी शीघ्र दूर होती है । और जिनको पीवकी वमन होती हो उनके लिये यह अत्यन्त हितकर औषध है ॥ २२ ॥ २३ ॥

समशर्कर चूर्ण ।

लवङ्गजातीफलपिप्पलीनां भागान्प्रकल्प्याक्षयुतानमीषाम् । पलार्द्धमेकं मरिचस्य दद्यात्पलानि चत्वारि महौषधस्य ॥ २४ ॥ सितासमं चूर्णमिदं प्रसह्य रोगा-

निमानाशु बलान्निहन्यात् । कासज्वरारोचकमेह-
गुल्मश्वासाग्निमान्द्यग्रहणीप्रदोषान् ॥ २५ ॥

लौंग, जायफल और पीपल ये प्रत्येक एक एक तोला, कालीमिरच २ तोले, सोंठ १६ तोले और इन सबकी बराबर मिश्री लेकर सबको एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे । यह चूर्ण खाँसी, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, श्वास, अग्निमान्द्य और संग्रहणी आदि कठिन रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

तालीशाद्यचूर्ण और मोदक ।

तालीशपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली शुभा ।
यथोत्तरं भागवृद्धया त्वगेले चार्द्धभागिके ॥ २६ ॥
पिप्पल्यष्टगुणा चात्र प्रदेया सितशर्करा ।
कासश्वासारुचिहरं तच्चूर्णं दीपनं परम् ॥ २७ ॥
हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीहशोथज्वरापहम् ।
छर्द्यतीसारशूलघ्नं मूढवातानुलोमनम् ॥ २८ ॥
कल्पयेद्गुटिकाश्चैतच्चूर्णं पक्त्वा सितोपलाम् ।
गुटिका ह्यग्निसंयोगाच्चूर्णाल्लघुतरा स्मृता ॥ २९ ॥

तालीशपत्र १ तोला, मिरच, २ तोले, सोंठ ३ तोले, पीपल ४ तोले, वंशलोचन ५ तोले, दारचीनी और इलायची छः २ मासे और पीपलसे अठगुनी मिश्री लेकर सबको एकत्र मिलालेवे । इसको तालीशाद्यचूर्ण कहते हैं और कुछ जलके साथ मिश्रीकी चासनीकरके उसमें उक्त चूर्ण डालकर लड्डू बनालेवे तो उसको तालीशाद्यमोदक कहते हैं । इस चूर्ण अथवा मोदकको सेवन करनेसे खाँसी, श्वास, अरुचि, मन्दाग्नि, हृद्रोग, पाण्डु,संग्रहणी, प्लीहा, सूजन, ज्वर, वमन, अतिसार, शूल आदिरोग शीघ्र नष्ट होते हैं, मूढवातका अनुलोमन होता है और अग्नि अत्यन्त दीपन होती है । मोदक अग्निके संयोग होनेसे चूर्णकी अपेक्षा हलके होते हैं ॥ २६–२९ ॥

[पैत्तिके ग्राहयन्त्येके शुभायां वंशलोचनाम् ।
विशेषणं हि पिप्पल्या अन्यत्र पैत्तिकाच्छुभा ॥३०॥]

कासान्तक ।

त्रिफलाव्योषचूर्णञ्च समभागं प्रकल्पयेत् ।
मधुना सह पानात्तु दुष्टकासं नियच्छति ॥ ३१ ॥

त्रिफला और त्रिकुटा इनका समान भाग चूर्ण लेकर शहदके साथ सेवन करनेसे अतिदुष्ट खाँसी नष्ट होती है ॥ ३१ ॥

कासान्तकरस ।

सूतं गन्धं विषश्चैव शालपर्णी च धान्यकम् ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रं मरीचकम् ॥
गुञ्जाचतुष्टयं खादेन्मधुना कासशान्तये ॥ ३२ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, शालपर्णी और धानिया इन सबका चूर्ण समानभाग और सब चूर्णकी बराबर मिरचोंका चूर्ण मिलाकर जलके द्वारा खरल करके चार २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । एक एक गोली शहदके साथ खानेसे कासरोग शान्त होता है ॥ ३२ ॥

कासकुठार ।

हिङ्गुलं मरिचं गन्धं सत्र्योषं टङ्कणं तथा ।
द्विगुञ्जामार्द्रकद्रावैः सन्निपातं सुदारुणम् ॥
कासं नानाविधं हन्ति शिरोरोगं विनाशयेत् ॥३३॥

हींग, मिरच, शुद्धगन्धक, त्रिकुटा, और सुहागा ये प्रत्येक ओषधि समान भाग लेकर अदरखके रसके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बना-लेवे । इनको सेवन करनेसे दारुण सन्निपात, अनेक प्रकारकी खाँसी और शिरकी पीडा—ये सबरोग नष्ट होते हैं ॥ ३३ ॥

पित्तकासान्तकरस ।

भस्म ताम्राभ्रकान्तानां कासमर्दत्वचो रसैः ।
मुनिजैर्वेतसाम्लैश्च दिनं मर्द्यं सुपिण्डितम् ॥ ३४ ॥
निष्कार्द्धं पित्तकासार्त्तो भक्षयेच्च दिनत्रयम् ।
कासश्वासाग्निमान्द्यञ्च क्षयश्चापि निहन्त्यलम् ॥३५॥

ताँबा, अभ्रक और कान्तिसार लोह इन तीनोंकी भस्म समानभाग लेकर कसोंदीकी छालके रस, अगस्तके रस और अमलवेतके रसके साथ एक दिन-तक खरलकरके दो दो मासेकी गोलियाँ बनालेवे । पित्तकी खाँसीवाला रोगी तीन दिनतक इसकी एक एक गोली सेवन करे । इससे पित्तकी खाँसी, श्वास, अग्निमान्द्य और क्षयादि सब रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

पुरन्दरवटी ।

सूतकाद्विगुणं गन्धमेकधा कज्जलीकृतम् ।
त्रिकटुत्रिफलाचूर्णं प्रत्येकं सूतसम्मितम् ॥ ३६ ॥
अजाक्षीरेण सम्भाव्य वटिकां कारयेत्ततः ।
आर्द्रकस्य रसैः सेव्यो शीतं तोयं पिबेदनु ॥ ३७ ॥
कासश्वासप्रशमनी विशेषादग्निवर्द्धनी ।
इयं यदि सदा सेव्या तदा स्याद्योगवाहिका ॥
वृद्धोऽपि तरुणः शक्तः स्त्रीशतेषु वृषायते ॥ ३८ ॥

शुद्ध पारा १ तोला और शुद्धगन्धक दो तोले लेकर दोनोंकी एकत्र कज्जली करलेवे, फिर सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला--ये प्रत्येक एक एक तोला मिलाकर बकरीके दूधके साथ खरलकरके एक २ रत्तीकी गोलियाँ बना-लेवे । इनमेंसे एक गोली अदरखके रसके साथ खाकर ऊपरसे शीतल जल पान करनेसे यह गोली खाँसी और श्वासको दूर करती है और विशेषकर अग्निवृद्धि करती है । यदि इसको सदैव सेवन कियाजाय तो यह योगवाही होजाती है । इसके प्रसादसे, वृद्ध मनुष्यभी तरुण होजाता है और सैकडों स्त्रियोंके साथ रमण करनेको समर्थ होता है ॥ ३६-३८ ॥

पञ्चामृतरस ।

शुद्धसूतस्य भागैकं भागौ द्वौ गन्धकस्य च ।
भागद्वयं मृतं ताम्रं मरिचं दशभागिकम् ॥ ३९ ॥
मृताभ्रस्य चतुर्भागं भागमेकं विषं क्षिपेत् ।
अम्लेन मर्दयेत्सर्वं माषैकं वातकासनुत् ॥
अनुपानं लिहेत्क्षौद्रैर्विभीतकफलत्वचम् ॥ ४० ॥

शुद्धपारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, ताम्रभस्म २ तोले, मिरच १० तोले, अभ्रक भस्म ४ तोले और शुद्ध मीठा तेलिया १ तोला इन सबको एकत्र मिलाकर जम्बीरी नीम्बूके रसमें खरल करके उडदकी बराबर गोलियाँ बना लेवे । नित्यप्राति प्रात:समय एक एक गोली बहेडेकी छालके चूर्ण और शह-दके साथ मिलाकर खानेसे वातजखाँसी नष्ट होती है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अमृतार्णवरस ।

पारदं गन्धकं शुद्धं मृतलौहञ्च टङ्कणम् ।
रास्ना विडङ्गत्रिफलादेवदारु कटुत्रिकम् ॥ ४१ ॥

अमृता पद्मकं क्षौद्रं विषश्चापि विचूर्णयेत ।
द्विगुञ्जं वातकासार्त्तः सेवयेदमृतार्णवम् ॥ ४२ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहभस्म, सुहागा, रास्ना, वायविडङ्ग, त्रिफला, देवदारु, सोंठ, मिरच, पीपल, गिलोय, पद्माख और शुद्ध मीठा तेलिया, इन सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्णकर लेवे। इस अमृतार्णवरसको दो दो रत्तीकी मात्रासे शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे वातकी खाँसी दूर होती है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

श्रीचन्द्रामृतरस ।

रसगन्धकलौहानां प्रत्येकं कार्षिकं शुभम् ।
टङ्कणस्य पलं दत्त्वा मरिचस्य पलार्द्धकम् ॥ ४३ ॥
त्रिकटु त्रिफला चव्यं धान्यजीरकसैन्धवम् ।
प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यं छागीक्षीरेण पेषयेत् ॥ ४४ ॥
नवगुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ।
प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा चिन्तयित्वामृतेश्वरीम् ॥४५॥
एकैकां वटिकां खादेद्रक्तोत्पलरसप्लुताम् ।
नीलोत्पलरसेनापि कुलत्थस्य रसेन वा ॥ ४६ ॥
पिप्पल्या मधुना वापि शृङ्गवेररसेन वा ।
हन्ति पञ्चविधं कासं वातपित्तसमुद्भवम् ॥ ४७ ॥
वातश्लेष्मोद्भवं दोषं पित्तश्लेष्मोद्भवं तथा ।
वातिकं पैत्तिकञ्चैव नानादोषसमुद्भवम् ॥ ४८ ॥
रक्तनिष्ठीवनञ्चापि ज्वरं श्वाससमन्वितम् ।
तृष्णां दाहं भ्रमं हन्ति जठराग्निप्रदीपनम् ॥ ४९ ॥
बलवर्णकरो ह्येषः प्लीहगुल्मोदरापहः ।
आनाहकृमिहृत्पाण्डुजीर्णज्वरविनाशनः ॥ ५० ॥
अयं चन्द्रामृतोनाम चन्द्रनाथेन निर्मितः ।
वासा गुडूची भार्गी च मुस्तकं कण्टकारिका ॥
सेवनान्ते प्रकर्त्तव्या रसोऽयं वीर्यवर्द्धनः ॥ ५१ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक और लोहभस्म ये प्रत्येक एक एक कर्ष, सुहागा ४ तोले, मिरच २ तोले, त्रिकुटा, त्रिफला, चव्य, धनिया, जीरा और सैंधानमक ये प्रत्येक एक एक तोला लेवे। सबको एकत्र बकरीके दूधके साथ खरल करके नौ २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल पवित्र होकर अमृतेश्वरीका ध्यान करके एक एक गोली सेवन करे और लालकमल, नीलकमल, कुलथी वा अदरखके रस और शहदका अनुपान करे। अथवा पीपलके चूर्णको शहद मिलाकर चाटे। यह श्रीचन्द्रामृतनामक रस वातपित्तजन्य व वातकफोत्पन्न और पित्त-कफजानित तथा वातिक, पैत्तिक आदि पाँचोंप्रकारकी खाँसी एवं अन्यान्य विविध प्रकारके दोषोंसे उत्पन्नहुई खाँसीको दूर करता है। एवं इसके सेवन करनेसे रुधिरकी वमन, श्वासयुक्त ज्वर, श्वास, तृषा, दाह, भ्रमादिरोग दूर होते हैं और जठराग्नि दीपन होती है। यह रस बल, वर्णकी वृद्धि करता एवं प्लीहा, गुल्म, उदरविकार, आनाह, कृमिरोग, हृदयरोग, पाण्डु और जीर्णज्वरादि व्याधियोंको शमन करता है। इस चन्द्रामृतरसको श्रीचन्द्रनाथने निर्माण किया है। इसको सेवन करनेके पश्चात् अडूसेकी छाल, गिलोय भारंगी, नागरमोथा और कटेरीका क्काथ पान करनेसे यह रस वीर्यकी वृद्धि करता है ॥ ४३-५१ ॥

श्रीडामरानन्दाभ्रक।

अभ्रस्यामलमारितस्य तु पलं क्षुद्राटरूष स्थिरा
बिल्वश्योऽरलुपाटलाकलसिकाः सब्रह्मयष्ट्यार्द्रकाः।
चित्रग्रन्थिकगोक्षुरं सचविकां भार्ग्यात्मगुप्तान्वितं
सत्त्वैर्मर्दितमेकशश्च पलिकैर्गुञ्जार्द्धकं भाक्षितम् ॥ ५२ ॥
कासं पञ्चविधं स्वरामयमुरोघातश्च हिक्कां ज्वरं
श्वासं पीनसमेहगुल्ममरुचिं यक्ष्माम्लपित्तं क्षयम्।
दाहं मोहमशेषदोषजनितं शूलं बलासं कृमिं
छर्दिं पाण्डुहलीमकं गलगदं विस्फोटकं कामलाम् ॥ ५३ ॥
मन्दाग्निं ग्रहणीं क्षयश्च यकृतं प्लीहानमर्शांसि षट्
हन्यादामकफोद्भवानपि गदाञ्छ्रीडामरानन्दकम् ॥
बल्यं वृष्यमशेषदोषहरणं धातुप्रदं कामिनां
मेध्यं हृद्यरसायनं हरमुखाज्ज्ञात्वा मया भाषितम् ॥ ५४ ॥

आमलेके रसके द्वारा भस्म की हुई अभ्रकको ४ तोले लेकर कटेरी, अडूसेकी जड, शालपर्णी, बेलकी जड, शोनापाठाकी जड, पाढरकी जड, पिठवन, भारङ्गी, अदरख, चीतेकी जड, पीपलामूल, गोखुरू चव्य, चिरचिटा और कौंछके बीज इन ओषधियोंके चार चार तोले रसमें पृथक् पृथक् खरल करके आधी आधी रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इसकी प्रतिदिन एक एक गोली सेवन करनेसे यह श्रीडामरानन्दाभ्रक पाँचों प्रकारकी खाँसी, श्वास, स्वरभङ्ग उरःक्षत, हिचकी, ज्वर, पीनस, प्रमेह, गुल्म, अरुचि, यक्ष्म, अम्लपित्त, क्षय, दाह, मूर्च्छा और सम्पूर्ण दोषजनित शूल, कफविकार, कृमि, वमन, पाण्डु, हलीमक, कण्ठरोग, फोडा, कामला, मन्दाग्नि, संग्रहणी, यकृत्विकार, प्लीहा, छः प्रकारका अर्श, आमवात और कफजन्यरोग आदि व्याधियोंको शीघ्र नष्ट करता है। एवं बलकारक, वीर्यवर्द्धक, सम्पूर्णदोषनाशक, कामी पुरुषोंके धातु वृद्धि करनेवाला, मेधाजनक, हृदयको हितकर और रसायनहै।मैंने(डाम रानन्द) शिवजी महाराजके मुखसे श्रवणकर इस अभ्रकको वर्णन कियाहै॥५२-५४॥

महाकालेश्वररस।

मृतं लौहं मृतं वङ्गं मृतार्कं मृतमभ्रकम्।
शुद्धं सूतश्च गन्धश्च माक्षिकं हिङ्गुलं विषम्॥ ५५॥
जातीफलं लवङ्गश्च त्वगेला नागकेशरम्।
उन्मत्तस्य च बीजानि जयपालश्च शोधितम्॥ ५६॥
एतानि समभागानि मरिचं हरनेत्रकम्।
सर्वं द्रव्यं क्षिपेत्खल्ले लौहदण्डेन मर्दयेत॥ ५७॥
शक्राशनस्य स्वरसैर्भावयेदेकविंशतिम्।
गुञ्जामात्रा प्रदातव्या आर्द्रकस्य रसैर्युता॥ ५८॥
तदर्द्ध बालवृद्धेषु पथ्यं देयं यथोचितम्।
पञ्चकासान्क्षयं श्वासं राजयक्ष्माणमेव च॥ ५९॥
सन्निपातं कण्ठरोगमभिन्यासमचेतनम्।
महाकालेश्वरो हन्ति कालनाथेन भाषितः॥ ६०॥

लोहभस्म, वङ्गभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, सोनामाखी, सिंगरफ, शुद्ध मीठातेलिया, जायफल, लौंग, दारचीनी, छोटी इलायची, नागकेशर, धतूरेके बीज और शोधित जमालगोटा इन सब ओषधि-

योंको समान भाग और मिरच ३ भाग लेकर सबको खरलमें एकत्रित करके लोहेके उण्डेसे घोटे, फिर भाँगके रसकी २१ बार भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । प्रातिदिन प्रातःकाल एक एक गोली अदरखके रसके साथ सेवन करे। किंतु बालक और वृद्धको आधी२रत्तीकी मात्रासे सेवन करानी चाहिये और दोषानुसार पथ्य देना चाहिये। यह महाकालेश्वररस पाँच प्रकारकी खाँसी,क्षय,श्वास, राजयक्ष्मा, सान्निपात ज्वर, कण्ठरोग, अभिन्यासज्वर,मूर्च्छादिरोगोंको नाश करताहै।इसको कालनाथने कहा है ५५–६०

विजयभैरवरस ।

सूतकं गन्धकं लौहं विषमभ्रकतालकम् ।
विडङ्गं रेणुकं मुस्तमेलाग्रन्थिककेशरम् ॥ ६१ ॥
त्रिकटु त्रिफला चित्रं शुद्धं जैपालबीजकम् ।
एतानि समभागानि द्विगुणो गुडदीयते ॥ ६२ ॥
तिन्तिडीबीजमानेन प्रातःकाले तु भक्षयेत् ।
कासं श्वासं क्षयं गुल्मं प्रमेहं विषमज्वरम् ॥ ६३ ॥
अजीर्णं ग्रहणीरोगं हन्ति पाण्ड्वामयं तथा ।
अरुच्यावतिसारे च सूतिकातङ्कपीडिते ॥ ६४ ॥
अपाने हृदये शूले वातरोगे गलग्रहे ।
ब्रह्मणा निर्मितो ह्येष रसो विजयभैरवः ॥ ६५ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहभस्म, विष, अभ्रकभस्म, हरताल, वायविडङ्ग, रेणुका, नागरमोथा, छोटी इलायची, पीपलामूल, नागकेशर, सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, चीतकी जड और शोधित जमालगोटेके बीज इन सब ओषधियोंको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे । फिर चूर्णसे दुगुना गुड मिलाकर इमलीके चोइयेकी बराबर गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली सेवन करे । इस विजयभैरव रसको ब्रह्माने निर्माण किया है । यह रस--खाँसी श्वास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, अजीर्ण, संग्रहणी, पाण्डु, अरुचि, अतिसार, सूतिकारोग, अपान, हृद्रोग, शूल, वातरोग, कण्ठगतरोग इत्यादि विकारोंको नष्ट करता है ॥ ६१–६५ ॥

कासंहारभैरव रस ।

रसगन्धकताम्राभ्रशङ्खटङ्कणलौहकम् ।
मरिचं कुष्ठतालीशजातीफललवङ्गकम् ॥ ६६ ॥

कार्षिकं चूर्णमादाय दण्डेनामर्द्य भावयेत् ।
भेकपर्णी केशराजो निर्गुण्डी काकमाचिका ॥ ६७ ॥
द्रोणपुष्पी शालपर्णी ग्रीष्मसुन्दरमेव च ।
भार्गी हरीतकी वासा कार्षिकैः पत्रजै रसैः ॥ ६८ ॥
वटिकां कारयेद्वैद्यः पञ्चगुञ्जाप्रमाणतः ।
वातजं पित्तजं कासं द्वन्द्वजं चिरकालजम्॥ ६९ ॥
निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ।
श्रीमद्गहननाथेन काससंहारभैरवः ।
रसोऽयं निर्मितो यत्नाल्लोकरक्षणहेतवे ॥ ७० ॥
वासा शुण्ठी कण्टकारीक्वाथेन पाययेद्बुधः ।
कासं नानाविधं हन्ति श्वासमुग्रमरोचकम् ॥
बलवर्णकरः श्रीदः पुष्टिदो वह्निदीपनः ॥ ७१ ॥

शुद्धपारा,शुद्धगन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, शङ्खभस्म,सुहागा, लोहभस्म, मिरच, कूठ, तालीसपत्र, जायफल और लौंग प्रत्येकके एक एक कर्ष चूर्णको लेकर सबको एकत्र बारीक पीसलेवे । फिर खरलमें डालकर मण्डूकपर्णी, भाँगरा, निर्गुण्डी, मकोय, गूमा, शालपर्णी, ग्रीष्मसुन्दर (शाक विशेष), भारंगी, हरड और अडूसा इन प्रत्येकके पत्तोंके एक एक कर्ष प्रमाण रससें भावना देकर पाँच २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह रस-वातज, पित्तज, द्वन्द्वज और बहुत पुरानी खाँसीको इस प्रकार नष्ट करदेता है; जैसे-सूर्यका प्रकाश अन्धकारको दूर करदेता है । इस कालसंहारभैरवरसको संसारकी रक्षाके लिये श्रीगहननाथजीने बडे यत्नसे निर्माण किया है । इसको सेवन करनेपर अडूसा, सोंठ और कटेरीका क्वाथ पान कराना चाहिये । यह-विविध प्रकारकी खाँसी, अत्युग्र श्वास और अरुचिको दूर करता है । एवं बल वण कान्तिकी वृद्धि करनेवाला,पुष्टिदायक,जठराग्निको दीपनकरनेवालाहै।। ६६-७१

बृहद्रसेन्द्रगुटिका ।

कर्षं शुद्धरसेन्द्रस्य गन्धकस्याभ्रकस्य च ।
ताम्रस्य हारितालस्य लौहस्य च विषस्य च ॥७२॥
मनःशिलायाः क्षाराणां बीजं धुस्तूरकस्य च ।
मरिचस्य च सर्वेषां समं चूर्णं प्रकल्पयेत ॥ ७३ ॥

जयन्ती चित्रकं मानं घण्टकर्णोल्लमण्डुकी।
शक्राशनं भृङ्गराजं केशराजार्द्रकं तथा॥ ७४॥
सिन्दुवारस्य च रसैः कर्षमात्रैर्विभावयेत्।
कलायपरिमाणान्तु गुटिकां कारयेद्भिषक्॥ ७५॥
आर्द्रकस्य रसेनैव पञ्चकासं व्यपोहति।
हन्ति कासं तथा श्वासं यक्ष्माणं सभगन्दरम्॥ ७६॥
अग्निमान्द्यारुचिं शोथमुदरं पाण्डुकामलाम्।
रसायनी च वृष्या च बलवर्णप्रदायिनी॥ ७७॥

शोधित पारा, शुद्धगन्धक, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध हरताल, लोहभस्म शुद्ध विष, शुद्ध मैनसिल, जवाखार, सज्जी, सुहागा, धतूरेके बीज और मिरच इन सबको एकएक कर्ष लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर जयन्ती, चीता, मानकन्द, घण्टाकर्ण, जिमीकन्द, ब्राह्मी, भाँग, भाँगरा, केशराज (भाँगरेका भेद) अदरख और सिह्मालूके पत्ते प्रत्येकके एक एक कर्ष रसके साथ पृथक् २ खरल करके मटरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इसकी एक एक गोली प्रतिदिन अदरखके रसके साथ सेवन करनेसे यह गुटिका पाँचों प्रकारकी खाँसी, श्वास, यक्ष्मा, भगन्दर, अग्निमान्द्य, अरुचि, शोथ, उदररोग, पाण्डु, कामला आदि रोगोंको शीघ्र नष्ट करती है। और यह गुटिका रसायन, वीर्यवर्द्धक और बल वर्ण प्रदान करनेवाली है॥ ७२-७७॥

महोदधि रस।

सूतकं गन्धकं लौहं विषञ्चापि वराङ्गकम्।
ताम्रकं वङ्गभस्मापि व्योमकञ्च समांशकम्॥ ७८॥
पत्रं त्रिकटुकं मुस्तं विडङ्गं नागकेशरम्।
रेणुकामेलकञ्चैव पिप्पलीमूलमेव च॥ ७९॥
एषाञ्च द्विगुणं दत्त्वा मर्दयित्वा प्रयत्नतः।
भावना तत्र दातव्या गजपिप्पलिकाम्बुभिः॥ ८०॥
मात्रा चणकतुल्या तु वटिकेयं प्रकीर्तिता।
हन्ति कासं तथा श्वासमर्शांसि च भगन्दरम्॥ ८१॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कर्णरोगं कपालिकाम्।
हरेत्संग्रहणीरोगानष्टौ च जठराणि च॥

प्रमेहान्विंशतिश्चैवाप्यश्मरीश्च चतुर्विधाम् ॥ ८२ ॥
न चान्नपाने परिहार्यमस्ति न चातपे चाध्वनि मैथुने च।
यथेष्टचेष्टाभिरतः प्रयोगे नरो भवेत्काञ्चनराशिगौरः ८३

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहभस्म, शुद्ध मीठा तेलिया, दारचीनी, ताम्रभस्म, वङ्गभस्म और अभ्रकभस्म प्रत्येक एक एक तोला और तेजपात, सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, वायविडङ्ग, नागकेशर, रेणुका, छोटी इलायची और पीपलामूल ये प्रत्येक ओषधि दो दो तोले लेकर सबको एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर इस चूर्णको गजपीपलके रसके साथ भावना देकर चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इसमेंसे प्रतिदिन एक एक गोली सेवन करनेसे खाँसी, श्वास, अर्श, भगन्दर, हृदयशूल, पार्श्वशूल, कानके रोग, शिरःसम्बन्धी सब रोग, संग्रहणी, आठप्रकारके उदर रोग, वीसप्रकारके प्रमेह और चारप्रकारकी पथरी दूर होती है। इस रसको सेवनकरनेपर किसी प्रकारके अन्न, पान, धूपसेवन, मार्गश्रम और मैथुन आदिका परहेज नहीं करना चाहिये। एवं यथेच्छ आहारविहार करनेवाला मनुष्य सुवर्णकी राशिके समान कान्तिमान् होता है ॥ ८३ ॥

तरुणानन्दरस।

कर्षद्वयं रसेन्द्रस्य शुद्धस्य गन्धकस्य च।
कज्जलीकृत्य यत्नेन शिलातलशुभे दृढे ॥ ८४ ॥
बिल्वाग्निमन्थश्योनाकः काश्मरी पाटला बला।
मुस्तं पुनर्नवा धात्री बृहतीवृषपत्रकम् ॥ ८५ ॥
विदारी शतमूली च कर्षैरेषां पृथग्रसैः।
मर्दयित्वा पुनर्वासास्वरसैर्दशतोलकैः ॥ ८६ ॥
मर्दयेत्तत्र शुद्धाभ्रं रसस्य द्विगुणं क्षिपेत्।
रसस्यार्द्धञ्च कर्पूरं तत्रैव दापयेद्भिषक् ॥ ८७ ॥
जातीकोषफले मांसी तालीशैलालवङ्गकम्।
चूर्णं कृत्वा प्रयत्नेन माषमात्रं क्षिपेत्पृथक् ॥ ८८ ॥
विदारीस्वरसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक्।
राजयक्ष्माणमत्युग्रं क्षयं चाग्रमुरःक्षतम् ॥ ८९ ॥
कासं पञ्चविधं श्वासं स्वराघातमरोचकम्।
कामलां पाण्डुरोगञ्च प्लीहानं सहलीमकम् ॥ ९० ॥

जीर्णज्वरं तृषां गुल्मं ग्रहणीमामसम्भवम्।
अतीसारश्च शोथश्च कुष्ठानि च भगन्दरम्॥ ९१॥
नाशयेदेष विख्यातस्तरुणानन्दसंज्ञितः।
रसायनवरो वृष्यश्चाक्षुष्यः पुष्टिवर्द्धनः॥ ९२॥
सहस्रं याति नारीणां भक्षणादस्य मानवः।
क्षीणता न च शुक्रस्य न च बुद्धिबलक्षयः॥ ९३॥
द्विमासमुपयोगेन निहन्ति सकलान् गदान्।
शुक्रसंदीपनं कृत्वा ज्वरं हन्ति न संशयः॥ ९४॥
नारिकेलजलेनैव भक्ष्योऽयं च रसायनः।
क्षीरानुपानाद्वृष्योऽयं न क्वचित्प्रतिहन्यते॥ ९५॥

शुद्धपारा और शुद्धगन्धक दोनोंको दो दो तोले लेकर कज्जली करलेवे। फिर उस कज्जलीको बेल, अरणी, अरलु, कम्भारी, पाढर, खिरैंटी इनकी छाल, नागरमोथा, पुनर्नवा, आमले, बडी कटेरी, अडूसेके पत्ते, विदारीकन्द और शतावर इन प्रत्येकके एक एक कर्ष रसके साथ क्रमसे खरल करके फिर अडूसेके पत्तोंके १० तोले रसमें खरल करे। पश्चात् सुखाकर उसमें शुद्ध अभ्रक-भस्म ४ तोले, कपूर एक तोला एवं जावित्री, जायफल, जटामांसी, तालीश-पत्र, इलायची और लौंग प्रत्येकको एक एक माशे लेकर बारीक चूर्ण करके मिलादेवे, फिर विदाकन्दकें रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बना-लेवे। यह सुप्रसिद्ध तरुणानन्द नामक रस अत्यन्त उग्रराजयक्ष्मा, प्रबलक्षय, घोर उरःक्षत, पाँच प्रकारकी खाँसी, श्वास, स्वरभङ्ग, अरुचि, कामला, पाण्डु, प्लीहा, हलीमक, पुरानाज्वर, तृषा, गुल्म, आमजन्य संग्रहणी, अतिसार, सूजन, कुष्ठ, भगन्दर आदि समस्त व्याधियोंको नाश करता है। एवं श्रेष्ठ रसायन, वीर्यवर्द्धक, नेत्रहितकारी और पुष्टिकर है। इसके सेवन करनेसे मनुष्य हजारों स्त्रियोंके साथ भोगकरे, किन्तु फिरभी वीर्य, बुद्धि और बलका क्षय नहीं होता, दो मासतक निरन्तर सेवन करनेसे यह रस सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करदेताहै। शुक्रको बढाता और ज्वरको दूर करताहै। इस रसायनको नारि-यलके जलके साथ सेवन करना चाहिये और दूधके साथ सेवन करनेसे यह अत्यन्त वृष्य होजाताहै इसपर कुछ परहेज नहीं करना चाहिये॥८४-९५॥

समशर्करलोह।

लवङ्गं कटफलं कुष्ठं यमानी त्र्यूषणं तथा।
चित्रकं पिप्पलीमूलं वासकं कण्टकारिका॥ ९६॥

चव्यं कर्कटशृंगी च चातुर्जातं हरीतकी ।
शठी कक्कोलकं मुस्तं लौहमभ्रं यवाग्रजम् ॥ ९७ ॥
सर्वं प्रतिसमं चूर्णं तावच्छर्करयान्वितम् ।
सर्वमेकीकृतं चूर्णं स्थापयेत्स्निग्धभाजने ॥ ९८ ॥
निहन्ति सर्वजं कासं वातश्लेष्मसमुद्भवम् ।
क्षयकासं रक्तपित्तं श्वासमाशु विनाशयेत् ॥
क्षीणस्य पुष्टिजननं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ९९ ॥

लौंग, कायफल, कूठ, अजवायन, सोंठ, मिरच, पीपल, चीतेकी जड,पीपलामूल, अडूसा, कटेरी, चव्य, काकडासिंगी, दारचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर, हरड, कचूर, कंकोल, नागरमोथा, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, जवाखार इन सबका चूर्ण समान भाग और सब चूर्णकी बराबर मिश्री मिलाकर खूब बारीक पीसकर घीके चिकने वर्त्तनमें भरकर रखदेवे। यह लौह वातकफजन्य खाँसी और क्षय आदि सर्वप्रकारके उपद्रवोंसे उत्पन्न हुई खाँसी, रक्तपित्त और श्वासको शीघ्र नष्ट करताहै एवं क्षीण देहवाले मनुष्यकी पुष्टि करता तथा बल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि करता है ॥ ९६-९९ ॥

श्रीचन्द्रामृतलौह ।

त्रिकटु त्रिफला धान्यं चव्यं जीरकसैन्धवम् ।
दिव्यौषधिहतस्यापि तत्तुल्यमयसो रजः ॥ १०० ॥
नवगुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ।
प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा चिन्तयित्वामृतेश्वरीम् ॥१०१
एकैकां वटिकां खादेद्रक्तोत्पलरसाप्लुताम् ।
नीलोत्पलरसेनैव कुलत्थस्वरसेन च ॥ १०२ ॥
निहन्ति विविधं कासं दोषत्रयसमुद्भवम् ।
सरक्तमथ नीरक्तं ज्वरं श्वाससमन्वितम् ॥ १०३ ॥
भ्रमतृड्दाहशूलघ्नं रुच्यं वह्निप्रदीपनम् ।
बलवर्णकरं वृष्यं जीर्णज्वरविनाशनम् ॥
इदं चन्द्रामृतं लौहं चन्द्रनाथेन निर्मितम् ॥ १०४ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, धनियाँ, चव्य, जीरा सैंधानमक, ये प्रत्येक समानभाग, एवं मैनसिल द्वारा भस्म कियाहुआ लोहचूर्ण पूर्वोक्त ओषधियोंकी बराबर

लेकर एकत्र जलके साथ खरलकरके नौ २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । फिर प्रतिदिन प्रातःकाल पवित्र होकर अमृतेश्वरी देवीको स्मरणकरके एक एक गोली लालकमल, वा नीले कमलके रस अथवा कुलथीके काथके साथ सेवन करनेसे यह लौह कफ वात और पित्त इन तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई खाँसी एवं अन्यान्य प्रकारकी खाँसी, रुधिर सहित वा रुधिररहित खाँसी, श्वासयुक्त ज्वर, भ्रम, तृषा, दाह, शूलादि रोग और जीर्णज्वरको नष्ट करता है। एवं अत्यन्त रुचिकर, बल, वर्ण, वीर्य और अग्निको बढानेवाला है। इस चन्द्रामृतनामक लौहको चन्द्रनाथने निर्माण किया है ॥ १००-१०४ ॥

भागोत्तरगुटिका ।

रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो भवेत् ।
त्रिभागा पिप्पली पथ्या चतुर्भागा विभीतकः॥१०५॥
पञ्चभागस्तथा वासा षड्गुणा सप्तभागिका ।
भार्गी सर्वमिदं चूर्णं भाव्यं बब्बोलजैर्द्रवैः ॥ १०६ ॥
एकविंशतिवारास्तु मधुना गुटिका कृता ।
विभीतकप्रमाणेन प्रातरेकान्तु भक्षयेत ॥
कासं श्वासं हरेत्क्षुद्रा क्काथस्तदनु कृष्णया ॥ १०७ ॥

शुद्ध पारा, १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, पीपल ३ तोले, हरड ४ तोले, बहेडा ५ तोले, अडूसेकी छाल ६ तोले और भारङ्गी ७ तोले इन सबको एकत्र चूर्णकरके बबूरकी छालके काथमें २१ बार भावना देकर दो दो तोलेकी गोलियां बनालेवे । प्रविदिन प्रातःकाल एक २ गोली शहदके साथ मिलाकर भक्षण करे और ऊपरसे पीपलका चूर्ण डालकर कटेरीका काथ पान करे। इससे श्वास, कासरोग दूर होताहै ॥ १०५-१०७ ॥

लक्ष्मीविलासरस ।

शुद्धसूतं सतालञ्च तालार्द्धं रसखर्परम् ।
वङ्गं ताम्रं घनं कान्तं कांस्यं गन्धं पलं पलम् ॥१०८॥
केशराजरसेनापि भावना दिवसत्रयम् ।
कुलत्थस्य रसेनाथ भावयेच्च पुनः पुनः॥ १०९ ॥
एला जातीफलाख्यञ्च तेजपत्रलवंगकम् ।
यमानी जीरकञ्चैव त्रिकटु त्रिफला समम् ॥ ११० ॥

नतं भृङ्गं वंशगर्भं कर्षमात्रञ्च कारयेत्।
भावयेच्च रसेनाथ गोलयेत्सर्वमौषधम् ॥ १११ ॥
छायाशुष्का वटी कार्य्या चणकप्रतिमा तथा।
शीताम्बुना पिबेद्धीमान् सर्वकासनिवृत्तये ॥
मत्स्यं मांसं तथा क्षीरं पथ्यं स्यात्स्निग्धभोजनम् ११२
क्षयं कासं तथा श्वासं ज्वरं हन्ति न संशयः।
हलीमकं पाण्डुरोगं शोथं शूलं प्रमेहकम् ॥ ११३ ॥
अर्शोनाशं करोत्येष बलवृद्धिश्च कारयेत्।
कामदेवसमं वर्णं तृष्णारोचननाशनम् ॥ ११४ ॥
वर्ज्यं शाकाम्लमादौ च भ्रष्टद्रव्यं हुताशनम्।
रसो लक्ष्मीविलासोऽयं महादेवेन भाषितः ॥११५॥

शुद्धपारा और हरताल ये दोनों चार चार तोले, खपरिया दो तोले, वङ्गभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, कान्तलोहभस्म, काँसेकी भस्म और शुद्धगन्धक इन सबको चार चार तोले लेकर एकत्रित करके काले भाँगरेके रसमें और कुलथीके रससें पृथक् पृथक् तीन तीन दिनतक भावना देवे। फिर उसमें इलायची, जायफल, तेजपात, लौंग, अजवायन, जीरा, त्रिकुटा, त्रिफला, तगर, दारचीनी और वंशलोचन इन प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले मिलाकर भाँगरेके रस और कुलथीके क्काथके साथ खरल करके छायामें सुखा लेवे और चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इसकी एक एक गोली शीतल जलके साथ सेवन करनेसे सर्वप्रकारकी खाँसी नष्ट होती है। यह रसक्षय, खाँसी, श्वास, ज्वर, हलीमक, पाण्डु, शोथ, शूल, प्रमेह और अर्शरोगको नाश करताहै। एवं बलकी वृद्धि कामदेवकी समान सुन्दर कान्ति उत्पन्न करता है तृषा और अरुचिको दूरकरताहै। इसपर दूध, स्निग्ध भोजन और पौष्टिक पदाथ हितकर हैं और शाक, अम्लरसयुक्त पदार्थ, भुनाहुआ अन्न, अग्नि सेवन आदि त्याज्य हैं। इस लक्ष्मीविलासरसको श्रीमहादेवजीन वर्णन किया है ॥१०८-११५ ॥

शृङ्गाराभ्र।

शुद्धं कृष्णाभ्रचूर्णं द्विपलपरिमितं शाणमानं यदन्यत्
कर्पूरं जातिकोशं सजलमिभकणा तेजपत्रं लवङ्गम्।
मांसी तालीसचोचे गजकुसुमगदं धातकी चेति तुल्यं
पथ्याधात्रीविभीतं त्रिकटुरथ पृथक् त्वर्द्धशाणं द्विशाणम्१६

एलाजातीफलाख्यं क्षितितलविधिना शुद्धगंधाश्मकोलं
कोलार्द्धं पारदस्य प्रतिपदविहितं पिष्टमेकत्र मिश्रम्।
पानीयेनैव कार्याः परिणतचणकास्विन्नतुल्याश्च वटचः
प्रातः खाद्याश्चतस्रस्तदनु च भजतु शृङ्गवेरं सपर्णम् ॥ १७ ॥
पानीयं पीतमन्ते ध्रुवमपहरति क्षिप्रमादौ विकारान्
कोष्ठे दुष्टाग्निजातान् ज्वरमुदररुजो राजयक्ष्मक्षयञ्च ।
कासं श्वासं सशोथं नयनपरिभवं मेहमेदोविकारान्
छर्दिं शूलाम्लपित्तं तृषमपि महतीं गुल्मजालं विशालम् ॥ १८
पाण्डुत्वं रक्तपित्तं गरगरलगदान् पीनसान्प्लीहरोगान्
हन्यादामाशयोत्थान् कफपवनकृतान्पित्तरोगानशेषान् ।
बल्यो वृष्यश्च योगस्तरुणतरकरः सर्वरोगे प्रशस्तः
पथ्यं मांसैश्च यूषैर्घृतपरिललितैर्गव्यदुग्धैश्च भूयः ॥ १९ ॥
भोज्यं मिष्टं यथेष्टं ललितललनया दीयमानं मुदा य-
च्छृङ्गाराभ्रेण कामी युवतिजनशताभोगयोगादतुष्टः ।
वर्ज्यं शाकाम्लमादौ दिनकतिचिदथ स्वेच्छया भोज्यमन्य-
द्दीर्घायुः काममूर्त्तिर्गतवलिपलितो मानवोऽस्य प्रसादात्२०

शुद्ध कृष्ण अभ्रककी भस्म ८ तोले, एवं कपूर, जावित्री, नेत्रवाला, गजपीपल, तेजपात, लौंग, जटामांसी, तालीसपत्र, तज, नागकेशर, कूठ और धायके फूल ये प्रत्येक चार चार मासे, हरड, आमले, बहेडा, सोंठ, मिरच, पीपल ये दो दो मासे, छोटी इलायची, जायफल प्रत्येक एक एक तोला, शुद्ध आमलासार गन्धक १ तोला और शुद्धपारा ६ मासे लेवे। सबको एकत्र चूर्ण करके और जलके साथ खरल करके सीजेहुए चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इसकी प्रतिदिन प्रातःकाल चार चार गोलियाँ सेवन करे और पत्तों-सहित अदरखके रसका अनुपान करे। यह शृङ्गाराभ्र कोष्ठगत दूषित अग्निके द्वारा उत्पन्नहुए सम्पूर्ण विकारोंको निस्सन्देह नष्ट करता है। एवं ज्वर, उदर-रोग, राजयक्ष्मा, क्षय, खाँसी, श्वास, शोथ, नेत्रविकार, प्रमेह, मेदरोग, वमन, शूल, अम्लपित्त, तृषा, वायुगोला, पाण्डु, रक्तपित्त, विषोत्पन्नरोग, पीनस, तिल्ली एवं आमाशयके विकृत होनेसे उत्पन्नहुए रोग और कफ, वात, पित्त-जन्य सम्पूर्ण उपद्रवोंको दूर करता है। यह बलकारक, वीर्यवर्द्धक, युवाव-

स्थाको उत्पन्न करनेवाला और सब रोगोंमें सेवन करनेयोग्य है। इसपर घृतके द्वारा सिद्ध कियाहुआ मांसका यूष, गौका दूध, घी, सुन्दर स्त्रीके द्वारा हर्षसे दियेहुए मधुर भोज्यपदार्थोंका भोजन करना पथ्य है। इसको सेवन करनेसे कामीपुरुष सैकडों स्त्रियोंको भोगनेसे भी सन्तुष्ट नहीं होता। इसको सेवन करते समय कुछ दिनके लिये शाक और अम्लपदार्थ त्यागदेने चाहिये। एवं अन्यान्य पदार्थ यथेच्छरूपसे सेवन करने चाहिये। इस औषधिके प्रसादसे मनुष्य दीर्घायुवाला, कामदेवकी समान रूपवान् और वली पलितरोगसे मुक्त होता है॥ ११६-१२०॥

सार्वभौमरस।

जीर्णं सुवर्णं लोहं वा यद्यत्रैव प्रदीयते।
तदयं सर्वरोगाणां सार्वभौमो न संशयः॥ २१॥

यदि इस शृंगाराभ्रमें सुवर्णभस्म अथवा लोहभस्म २ मासे मिलादीयाजाय तो इसको सार्वभौमरस कहते हैं। यह रसभी शृङ्गाराभ्रकी समान सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करनेवाला है॥ १२१॥

बृहच्छृङ्गाराभ्र।

पारदं गन्धकञ्चैव टङ्गणं नागकेशरम्।
कर्पूरं जातिकोषञ्च लवङ्गं तेजपत्रकम्॥ २२॥
सुवर्णञ्चापि प्रत्येकं कर्षमात्रं प्रकल्पयेत्।
शुद्धकृष्णाभ्रचूर्णन्तु चतुःकर्षं प्रयोजयेत्॥ २३॥
तालीशं घनकुष्ठञ्च मांसी त्वग्धात्रिपुष्पिका।
एलाबीजं त्रिकटुकं त्रिफला करिपिप्पली॥ २४॥
कर्षद्वयममीषाञ्च पिप्पलीक्वाथमार्दितम्।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं चोचं क्षौद्रसमन्वितम्॥ २५॥
अग्निमान्द्यादिकान् रोगानरुचिं पाण्डुकामलाम्।
उदराणि तथा शोथमानाहं ज्वरमेव च॥ २६॥
ग्रहणीं ज्वरकासञ्च हन्याद् यक्ष्माणमेव व।
नानारोगप्रशमनं बलवर्णाग्निकारकम्॥ २७॥
बृहच्छृङ्गाराभ्रनाम विष्णुना परिकीर्त्तितम्।
एतदभ्यासमात्रेण निर्व्याधिर्जायते नरः॥ २८॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुहागा, नागकेशर, कपूर, जावित्री, लौंग, तेजपात और सुवर्णभस्म ये प्रत्येक एक एक कर्ष, शुद्ध काले अभ्रकी भस्म ४ कर्ष, एवं तालीशपत्र, नागरमोथा, कूठ, जटमांसी, दारचीनी, धायके फूल, छोटी इलायचीके बीज, त्रिकुटा, त्रिफला और गजपीपल इन सबको दो दो कर्ष लेकर सबका एकत्र चूर्ण करके पीपलके काथमें खरलकरे । इस औषधिको दारचीनीके चूर्ण और शहदके साथ सेवन करनेसे यह अग्निकी मन्दता आदि विविध प्रकारके रोग, अरुचि, पाण्डु, कामला, उदररोग, शोथ अफारा, ज्वर, संग्रहणज्वर और खाँसी, राजयक्ष्मा एवं अन्यान्य प्रकारके रोगोंको शमन करता है और बल, वर्ण, अग्निकी वृद्धि करता है । इस बृहच्छृङ्गाराभ्रनामक रसको विष्णुभगवान्‌ने रचा है । इसको सेवन करनेसे मनुष्य व्याधिरहित होजाता है ॥ १२२–२८ ॥

नित्योदय रस ।

सुशुद्धं पारदं गन्धं प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ।
ततः कज्जालिकां कृत्वा मर्दयेच्च पृथक् पृथक् ॥ २९ ॥
बिल्वाग्निमन्थश्योनाकं काश्मरी पाटला बला ।
मुस्तं पुनर्नवा धात्री बृहती वृषपत्रकम् ॥ १३० ॥
विदारी बहुपुत्री च एषां कर्षैरसैर्भिषक् ।
सुवर्णं रजतं ताप्यं प्रत्येकं शाणमात्रकम् ॥ ३१ ॥
पलमात्रन्तु कृष्णाभ्रं तदर्द्धन्तु सिताभ्रकम् ।
जातीकोषफले मांसी तालीशैलालवङ्गकम् ॥ ३२ ॥
प्रत्येकं कोलमात्रन्तु वासानीरैर्विमर्दयेत् ।
शोषयित्वातपे पश्चात विदार्याः पेषयेद्रसैः ॥ ३३ ॥
द्विगुञ्जां वटिकां कृत्वा पिप्पलीमधुना भजेत् ।
नाम्ना नित्योदयश्चायं रसो विष्णुविनिर्मितः ॥ ३४ ॥
पञ्चकासान्निहन्त्याशु चिरकालोद्भवानपि ।
राजयक्ष्माणमत्युग्रं जीर्णज्वरमरोचकम् ॥ ३५ ॥
धातुस्थं विषमाख्यञ्च तृतीयकचतुर्थकम् ॥
अर्शांसि कामलां पाण्डुमग्निमान्द्यं प्रमेहकम् ।
सेवनादस्य कन्दर्परूपो भवति मानवः ॥ ३६ ॥

शुद्धपारा और शुद्धगन्धक प्रत्येक दो दो कर्ष लेकर दोनोंकी एकत्र कज्जली करके बेलगिरी, अरणी, अरलु, कम्भारी, पाढर, खिरेंटी, नागरमोथा, पुनर्नवा, आमले, बडीकटेरी, अडूसेके पत्ते, विदारीकन्द और शतावर इन प्रत्येकके एकएक कर्ष रसके साथ अलग २ खरलकरे। फिर उसमें सुवर्णभस्म, चाँदीकी भस्म और सोनामाखीकी भस्म चारचार माले, शुद्ध कृष्ण-अभ्रककी भस्म ४ तोले, श्वेत अभ्रककी भस्म २ तोले एवं जावित्री, जायफल, बालछड, तालीशपत्र, इलायची और लौंग-प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला मिलाकर अडूसेके स्वरसमें खरलकरे। फिर धूपमें सुखाकर विदारीकन्दके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली पीपलके चूर्ण और शहदके साथ सेवनकरे। इस नित्योदयनामक रसको विष्णुभगवान्ने निर्म्माण किया है। यह रस--बहुत दिनोंकी पुरानी, पाँचों प्रकारकी खाँसी, अत्यन्त भयङ्कर राजयक्ष्मा, जीर्णज्वर, अरुचि, धातुगतज्वर, विषमज्वर, तिजारी, चौथियाज्वर, अर्श, कामला, पाण्डुरोग, मन्दाग्नि और प्रमेहरोगको शीघ्र नष्ट करताहै। इसके सेवनसे मनुष्य कामदेवकी समान रूपवान् होजाता है ॥ १२९-३६ ॥

वसन्ततिलक रस।

हेम्नो भस्मकतोलकं घनयुगं लौहास्त्रयः पारदाः-
श्चत्वारो नियतास्तु वङ्गयुगलश्चैकीकृतं मर्दयेत ।
मुक्ताविद्रुमयो रसेन समता गोक्षूरवासेक्षुणा
सर्वं वालुकयन्त्रगं परिपचेद्यामं दृढं सप्तकम् ॥ ३७ ॥
कस्तूरीघनसारमार्दितरसः पश्चात्सुसिद्धो भवेत्
कासश्वासससपित्तवातकफजित्पाण्डुक्षयादीन् हरेत् ।
शूलादिग्रहणीं विषादिहरणो मेहाश्मरीविंशतिं
हृद्रोगापहरो ज्वरादिशमनो वृष्यो वयोवर्द्धनः ॥
"श्रेष्ठः पुष्टिकरो वसन्ततिलको मृत्युञ्जयेनोदितः" ॥ ३८

सोनेकी भस्म १ तोला, अभ्रककी भस्म २ तोले, लोहेकी भस्म ३ तोले, शुद्धपारा ४ तोले, शुद्धगन्धक ४ तोले, वंगभस्म २ तोले, मोतीकी भस्म दो तोले और मूँगेकी भस्म २ तोले इन सबको एकत्र पीसकर गोखुरू, अडूसा और ईखके समानभाग रसमें एक एक बार भावनादेवे। फिर बालुकायन्त्रमें रखकर आरनेउपलोंकी अग्निके द्वारा सात प्रहरतक पकावे। जब शीतल हो-

जाय तब उसमें कस्तूरी ४ तोले और भीमसेनी कपूर ४ तोले खरलकर मिला-देवे। इस प्रकार यह रस-सिद्ध होता है। यह रस दो दो रत्ती प्रमाण सेवन करनेसे खाँसी, श्वास, वात, पित्त, कफके विकार, पाण्डु, क्षय, शूल, संग्रहणी, विषजन्यरोग, प्रमेह, हृदयरोग और सर्वप्रकारके ज्वरादिरोगोंको हरताहै। एवं पुष्टिकारक, वीर्य और आयुकी वृद्धि करनेवाला तथा अत्यन्त श्रेष्ठ रस है। इस वसन्ततिलकनामक रसको शिवजीने वर्णन कियाहै ॥१३७-३८॥

व्याघ्रीहरीतकी।

समूलपुष्पच्छदकण्टकार्यास्तुलां जलद्रोणपरिप्लुताश्च।
हरीतकीनाश्च शतं निदध्याद्विपचय सम्यकचरणावशेषम् ३९
गुडस्य दत्त्वा शतमेतदग्नौ विपक्वमुत्तीर्थ ततः सुशीते।
कटुत्रिकश्च द्विदलप्रमाणं पलानि षट् पुष्परसस्य तत्र॥१४०॥
क्षिपेच्चतुर्जातपलं यथाग्निः प्रयुज्यमानो विधिनावलेहः।
वातात्मकं पित्तकफोद्भवश्च द्विदोषकासानपि च त्रिदोषम्।
क्षयोद्भवश्च क्षतजश्च हन्यात्सपीनसश्वासमुरःक्षतश्च।
यक्ष्माणमेकादशमुग्ररूपं भृगूपदिष्टं हि रसायनं स्यात् ॥४२॥

जड, फूल और पत्तोंसहित कटेरी १०० पल और हरड १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें डालकर पकावे। जब पककर चौथाई जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे और हरडोंकी गुठली निकालडाले फिर उस क्वाथमें उक्त हरडे और पुराना गुड १०० पल डालकर पकावे। जब पाक तैयार होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होनेपर उसमें त्रिकुटा ९ तोले, शहद २४ तोले और दारचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर इनका चूर्ण चार चार तोले मिलाकर सबको एकमएक करलेवे। इस अवलेहको अपनी अग्निका बलाबल विचारकर सेवन करे तो यह हरीतकी वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज और त्रिदोषज खाँसी, क्षयकी खाँसी और क्षतकी खाँसी तथा पीनस, श्वास, उरःक्षत और ग्यारह प्रकारके प्रबल राजयक्ष्माको नष्ट करतीहै। यह भृगुजीकी निर्दिष्ट की हुई रसायन है॥ १३९-४२॥

वासावलेह।

वासकस्वरसप्रस्थे मानिकासितशर्करा।
पिप्पली द्विपलं दत्त्वा सर्पिषश्च पचेच्छनैः॥ ४३॥

लेहीभूते ततः पश्चाच्छीते क्षौद्रपलाष्टकम् ।
दत्त्वावतारयेद्वैद्यो मात्रया लेह उत्तमः ॥ ४४ ॥
निहन्ति राजयक्ष्माणं कासं श्वासञ्च दारुणम् ।
पार्श्वशूलञ्च हृच्छूलं रक्तपित्तं ज्वरं तथा ॥ ४५ ॥

अडूसेके दो सेर स्वरसमें एक सेर सफेद खाँड डालकर मन्द मन्द अग्निके द्वारा धीरे धीरे पकावे। जब पकते पकते लेहकी समान होजाय तब नीचे उतारकर उसमें पीपलका चूर्ण ८ तोले, घी ८ तोले और शीतल होनेपर शहद ३२ तोले मिलाकर एक चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे। इस अवलेहको यथोचित मात्रासे सेवन करे। यह राजयक्ष्मा, खाँसी, दारुण श्वास, पसलीका शूल, हृदयका शूल, रक्तपित्त और ज्वरको नष्ट करनेवाली अत्युत्तम औषधिहै ॥

कण्टकार्यवलेह ।

कण्टकारीतुलां नीरद्रोणे पक्त्वा कषायकम् ।
पादशेषं गृहीत्वा च तत्र चूर्णानि दापयेत् ॥ ४६ ॥
पृथक् पलांशो ह्येतानि गुडूची चव्यचित्रकौ ।
मुस्तं कर्कटशृङ्गी च त्र्यूषणं धनुमासकः ॥ ४७ ॥
भार्गी रास्ना शठी चैव शर्करा पलविंशतिः ।
प्रत्येकञ्च पलान्यष्टौ प्रदद्याद्घृततैलयोः ॥ ४८ ॥
पक्त्वा लेहसमं कृत्वा शीते मधुपलाष्टकम् ।
चतुर्भागं तुगाक्षीर्याः पिप्पल्याश्च चतुःपलम् ॥ ४९ ॥
क्षिप्त्वा निदध्यात्सुदृढे मृण्मये भाजने शुभे ।
लेहोऽयं हन्ति हिक्कार्त्तिकासश्वासमशेषतः ॥ १५० ॥

कटेरीका १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उसको उतारकर छान लेवे। फिर उसमें सफेद खांड २० पल डालकर पकावे। पाकके सिद्ध होजानेपर उसमें गिलोय, चव्य, चीता, नागरमाथो, काकडासिंगी, त्रिकुटा, धमासा, भारंगी, रायसन और कचूर प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले, घी ३२ तोले और तिलका तैल ३२ तोले डालकर पकावे। जब पककर लेहकी समान होजाय तब नीचे उताकर शीतल होजानेपर उसमें शहद ३२ तोले, वंशलोचन १६ तोले और पीपल १६ तोले डालकर सबको एकमएक करके मिट्टीके मजबूत और सुन्दर बासनमें भरकर

रखदेवे। यह अवलेह सेवन करतेही हिचकी, सर्वप्रकारकी खांसी और श्वास रोगको नष्ट करताहै ॥ १४६-१५० ॥

कण्टकारीघृत।

घृतं रास्नाबलाव्योषश्वदंष्ट्राकल्कपाचितम्।
कण्टकारिरसे सर्पिः पञ्चकासनिषूदनम् ॥ ५१ ॥

रायसन, खिरैंटी, सोंठ, मिरच, पीपल और गोखुरू इनके समान भाग मिश्रित एक सेर कल्क और कटेरीके १६ सेर काथके द्वारा ४ सेर घृतको सिद्ध करे। यह घृत पाँचों प्रकारकी खाँसीको दूर करता है ॥ १५१ ॥

दशमूलषट्पलक घृत।

दशमूलीचतुःप्रस्थे रसे प्रस्थोन्मितं हविः।
सक्षारैः पञ्चकोलैस्तु कल्कितं साधु साधितम् ॥५२॥
कासहृत्पार्श्वशूलघ्नं हिक्काश्वासनिवारणम्।
कल्कं षट्पलमेवात्र ग्राहयन्ति भिषग्वराः ॥ ५३ ॥

दशमूलके चार प्रस्थ काथमें गौका घी एक प्रस्थ, एवं जवाखार, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इन प्रत्येकका कल्क चार चार तोले डालकर उत्तम प्रकारसे घृतको पकावे। यह घृत पाँचोंप्रकारकी खाँसी, हृदयरोग, पसलीका शूल, हिचकी और श्वास रोगको दूर करता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

छागलाद्यघृत।

आजमांसं तुलामानं वासकस्य पलं शतम्।
अश्वगन्धापलशतं कटाहे समाधिक्षिपेत् ॥ ५४ ॥
जलद्रोणे पृथक् पक्त्वा चतुर्भागावशेषितैः।
कषायैर्विपचेद्रव्यं प्रस्थद्वयमितं घृतम् ॥ ५५ ॥
छागक्षीरं घृतसमं दद्यात्कल्कानि यानि च।
वक्ष्याम्यतः परं तानि सर्वाणि शृणु यत्नतः ॥ ५६ ॥
अष्टवर्ग पञ्चमूली चातुर्जातं शतावरी।
त्रिकटु त्रिफला यष्टि विदारी शाल्मली वचा ॥५७॥
शङ्खपुष्पी सुधामूली मुषली चविका तथा।
कपिकच्छुकबीजञ्च दीप्या खदिरजीरकौ ॥ ५८ ॥

सूक्ष्मैला मेथिका भार्गी प्रत्येकं शुक्तिमानतः ।
संगृह्य साधयेत्सर्पिः शनैर्मृद्वग्निना भिषक् ॥ ५९ ॥
राजयक्ष्माणि दुःसाध्ये सर्वकासगदेषु च ।
स्वरभेदे क्षये श्वासे ध्वजभङ्गे ज्वरे तथा ॥ १६० ॥
प्रमेहमूत्रकृच्छ्रे च रक्तपित्ते त्वरोचके ।
छागलाद्यं घृतं शस्तं सर्वरोगविनाशनम् ॥ ६१ ॥

नपुंसक बकरेका मांस १०० पल, अडूसेकी छाल १०० पल और असगन्ध १०० पल इनको पृथक् पृथक् कढावमें डालकर बत्तीस सेर जलमें पकावे जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब नीचे उतारकर छान लेवे । फिर उस क्वाथमें गौका घी २ प्रस्थ और बकरीका दूध २ प्रस्थ डालदेवे। एवं कल्ककी ओषधियाँ ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, बडीकटेरी, कटेरी, गोखुरू, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, शतावर, त्रिकुटा, त्रिफला, मुलैठी, विदारीकन्द, सेमलकी मुसली, वच, शङ्खपुष्पी, शालमाश्रिी, मुसली, चव्य, कौंछके बीज, अजवायन, खैर, जीरा, इलायची, मेथी और भारङ्गी इन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले डालकर मन्द मन्द अग्निके द्वारा शनैः शनैः घृतको सिद्ध करे । यह छागलाद्यघृत दुस्साध्य राजयक्ष्मा, सर्वप्रकारकी खाँसी, स्वरभंग, क्षय, श्वास, ध्वजभंग, ज्वर, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त और अरुचिरोगमें विशेषकर प्रयोग करना चाहिये। यह सर्वप्रकारके रोगोंको विनाश करनेवालाहै॥५४-१६१

कुंकुमाद्यघृत ।

मधुकं क्षीरकाकोली दुःस्पर्शा दशमूलिका ।
तुलामानानि सर्वाणि जलद्रोणे पचेत्पृथक् ॥ ६२ ॥
पादावशेषितैः क्वाथैर्घृतं कुङ्कुममूर्च्छितम् ।
घृताच्चतुर्गुणश्चाजं क्षीरं दत्त्वा विपाचयेत् ॥ ६३ ॥
द्रव्याणि यानि पेष्याणि तानि वक्ष्याम्यतः परम् ।
जीवनीयगणो मुस्तं लवङ्गं कुङ्कुमं वचा ॥ ६४ ॥
नीलोत्पलं बला व्योषं पृश्निपर्णी सरेणुका ।
चर्म्मकारालुकश्छिन्ना प्रियङ्गुश्चैलवालुकम् ॥ ६५ ॥
एलाद्वयं तुगा धात्री प्रसूनं मालतीभवम् ।

हबुषा चविका पत्रं तालीशं नागकेशरम् ॥ ६६ ॥
वरदा जीरको दीप्या प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ।
सर्वाण्येतानि संहृत्य शनैर्मृद्वाग्निना पचेत् ॥ ६७ ॥
हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं कासं श्वासं क्षयं ज्वरम् ।
रक्तपित्तं प्रमेहश्च कुङ्कुमाद्यं घृतं शुभम् ॥ ६८ ॥

मुलैठी १०० पल, क्षीरकाकोली १०० पल, कटेरी १०० पल और दशमूलकी सब ओषधियाँ १०० पल लेकर पृथक् २ एक एक द्रोण परिमाण जलमें पकावे। जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब नीचे उताकर छानलेवे। फिर उस क्वाथमें केशरके द्वारा मूर्च्छित कियाहुआ घत १ सेर, बकरीका दूध ४ सेर और कल्कके लिये आगे लिखीहुई जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मुगवन, मषवन, जीवन्ती और मुलैठी) की ओषाधियाँ, नागरमोथा, लौंग, केशर, वच, नीलकमल, खिरैंटी, त्रिकुटा, पिठवन, रेणुका, वाराहीकन्द, गिलोय, फूलप्रियंगु, एलुआ, छोटी और वडी इलायची, वंशलोचन, आमलें, मालतीके फूल, हाऊबेर, चव्य, तेजपात, तालीशपत्र, नागकेशर, असगन्ध, जीरा और अजवायन ये प्रत्येक दो दो तोले डालकर मन्द मन्द अग्निके द्वारा घृतको पकावे। यह कुंकुमाद्यघृत अत्यन्त भयंकर राजयक्ष्मा, खाँसी, श्वास, क्षय, ज्वर, रक्तपित्त और प्रमेहरोगको नष्ट करता है ॥ १६२–६८ ॥

चन्दनाद्यतैल ।

चन्दनागुरुतालीशमाञ्जिष्ठानखपद्मकम् ।
मुस्तकश्च शठी लाक्षा हरिद्रे रक्तचन्दनम् ॥ ६९ ॥
एषां प्रतिपलैश्चूर्णैस्तैलार्द्धं पात्रकं पचेत् ।
भार्गीवासाकण्टकारीवाट्यालकगुडूचिकाः ॥ १७० ॥
एषां शतपले क्वाथे समभागे जडीकृते ।
पक्त्वा तैलं प्रदातव्यं राजयक्ष्माविनाशनम् ॥ ७१ ॥
कासघ्नं गददोषघ्नं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ।
पापालक्ष्मीप्रशमनं ग्रहदोषविनाशनम् ॥ ७२ ॥

चन्दन, अगर, तालीशपत्र, मँजीठ, नख, पद्माख, नागरमोथा, कचूर, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, लालचन्दन इन सबको चार चार तोले लेकर चूर्ण

करलेवे । फिर भारंगी, अडूसेकी छाल, कटेरी, खिरैंटी और गिलोय इन सबके समान भाग मिश्रित १०० पल काथमें उक्त चूर्ण और चार सेर तिलका तैल डालकर यथाविधि तैलको सिद्ध करे । यह तैल राजयक्ष्मा, खाँसी और गलेके सम्पूर्ण दोषोंको नष्ट करता है । और बल, वर्ण, जठराग्निकी वृद्धि करता है । पाप, दारिद्रय और समस्त ग्रहदोषोंको दूर करता है ॥ १६९-७२ ॥

वासा-चन्दनाद्य तैल ।

चन्दनं रेणुका पूतिर्हयगन्धा प्रसारिणी ।
त्रिसुगन्धिकणामूलं नागकेशरमेव च ॥ ७३ ॥
मेदे द्वे च त्रिकटुकं रास्ना मधुकशैलजम् ।
शठी कुष्ठं देवदारु वनिता च विभीतकम् ॥ ७४ ॥
एतेषां पलिकैर्भागैः पचेत्तैलाढकं भिषक् ।
वासायाश्च पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ७५ ॥
लाक्षारसाढकश्चैव तथैव दधिमस्तुकम् ।
चन्दनश्चामृता भार्गी दशमूलं निदिग्धिका ॥ ७६ ॥
एतेषां विंशतिपलं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादशेषे स्थिते क्वाथे तैलं तेनैव साधयेत् ॥ ७७ ॥
कासान् ज्वरान् रक्तपित्तं पाण्डुरोगं हलीमकम् ।
कामलाश्च क्षतक्षीणं राजयक्ष्माणमेव च ॥ ७८ ॥
श्वासान्पश्वाविधान् हन्ति बलवर्णाग्निपुष्टिकृत् ।
तैलं चन्दनवासादि कृष्णात्रेयेण भाषितम् ॥ ७९ ॥

अडूसेकी छाल १०० पल, एवं लालचन्दन, गिलोय, भारङ्गी, दशमूल और कटेरी इन प्रत्येकको बीस बीस पल लेकर पृथक् पृथक् एक एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे।फिर सबको एकत्र मिलाकर उसमें लाखका रस एक आढक, दहीका तोड १ आढक, तिलका तैल ८ सेर और चन्दन, रेणुका, रोहिषतृण, असगन्ध, प्रसारणी, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, पीपलामूल, नागकेशर, मेदा, महामेदा, त्रिकुटा, रायसन, मुलैठी, भूरिछरीला, कचूर, कूठ, देवदारु, प्रियंगु और बहेडा इन प्रत्येकका चार चार तोले चूर्ण डालकर मन्द मन्द अग्निसे तैलको पकावे । यह वासा-चन्दनादि तैल मालिश करनेसे सर्वप्रकारकी

खाँसी, ज्वर, रक्तपित्त, पाण्डु, हलीमक, कामला, क्षत क्षीण, राजयक्ष्मा और पाँचप्रकारके श्वासरोगको नष्ट करता है। बल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि एवं पुष्टि करताहै ॥ १७३-७९ ॥

कासरोगमें पथ्य।

स्वेदो विरेचनं छर्दिर्धूमपानं समाशनम्।
शालिषष्टिकगोधूमश्यामाकयवकोद्रवाः ॥ १८० ॥
आत्मगुप्तामाषमुद्गकुलत्थानां रसाः पृथक्।
ग्राम्योदकानूपधन्वमांसानि विविधानि च ॥ ८१ ॥
सुरा पुरातनं सर्पिश्छागश्चापि पयोयुतम्।
वास्तुकं वायसीशाकं वार्त्ताकूवालमूलकम् ॥ ८२ ॥
कण्टकारी कासमर्दो जीवन्ती सुनिषण्णकम्।
द्राक्षा बिम्बी मातुलुङ्गं पौष्करं वासकस्त्रुटिः ॥ ८३ ॥
गोमूत्रं लशुनं पथ्या व्योषमुष्णोदकं मधु।
लाजा दिवसनिद्रा च लघून्यन्नानि यानि च ॥
पथ्यमेतद्यथादोषमुक्तं कासगदातुरे ॥ ८४ ॥

स्वेददेना, विरेचन, वमन और धूम्रपान कराना, परिमित आहार-विहार करना, शालिधान और साँठी धानोंके चावल, गेहूँ, समेके चावल, जौ, कोदों, कौंछके बीज, उडदोंका यूष, मूँगका यूष और कुलथीका यूष, ग्राममें होनेवाले पशु-पक्षी, जलचरजीव, अनूपदेशजात पशु-पक्षियोंका और मरुदेशोत्पन्न विविध प्रकारके जीवोंका मांस, मदिरा, पुराना घी, बकरीका दूध, घी, बथुएका शाक, मकोय, बैंगन, कच्ची मूली इनका शाक, कटेरी, परबल, जीवन्ती, चौपातियाका शाक, दाख, कन्दूरी, बिजौरा नींबू, पोहकरमूल, अडूसा, छोटी इलायची, गौका मूत्र, लहसुन, हरड, सोंठ, मिरच, पीपल, उष्णजल, शहद, खीलें, दिनमें सोना और हल्के अन्नोंका भोजन ये सब पदार्थ यथादोषानुसार कासरोगमें हितकर कहेगये हैं ॥ १८०-८४ ॥

कासरोगमें—अपथ्य।

बस्तिं नस्यमसृङ्मोक्षं व्यायामं दन्तघर्षणम्।
विष्टम्भीनि विदाहीनि रूक्षाणि विविधानि च ॥ ८५ ॥
शकृन्मूत्रोद्गारकासवामिवेगाविधारणम्।
आतपं दुष्टपवनं रजोमार्गनिषेवणम् ॥ ८६ ॥

मत्स्यं कन्दं सर्षपञ्च तुम्बीफलमुपोदिकाम् ।
दुष्टाम्बु चान्नपानञ्च विरुद्धान्यशनानि च ॥
गुरु शीतञ्चान्नपानं कासरोगी परित्यजेत् ॥१८७॥

वस्तिक्रिया, नस्य, रक्तमोक्ष (रुधिरका निकलवाना) कसरत, दन्तधावन, विष्टम्भकारक पदार्थ, दाहकरक और अनेकप्रकारके रूखे पदार्थोंका सेवन, मल, मूत्र, उबकाई, खाँसी और वमनके वेगोंको रोकना, धूप, दूषित वायु और धूलका सेवन, मार्ग चलना, मछली, कन्दशाक, सरसों, लौकी, पोईका शाक, दूषित जल, दूषित और विरुद्ध अन्नपान एवं भारी और शीतल अन्नपान ये सब कासरोगवालेको त्याग देने चाहिये ॥ १८५-१८७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां कासरोगचिकित्सा ॥

हिक्का-श्वासरोगकी चिकित्सा ।

हिक्काश्वासातुरे पूर्वं तैलाक्ते स्वेद इष्यते ।
स्निग्धैर्लवणयोगैश्च मृदुवातानुलोमनम् ॥
ऊर्ध्वाधः शोधनं शक्ते दुर्बले शमनं मतम् ॥ १ ॥

हिक्का (हुचकी) और श्वास रोगमें प्रथम रोगीके वक्षःस्थलपर सैंधानमक मिलाकर सरसोंके तैलकी मालिशकरे, फिर स्निग्ध द्रव्योंके द्वारा स्वेद देवे । पश्चात् यदि रोगी बलवान् हो तो वायुको अनुलोमन करनेवाली, मृदु वमनकारक और मृदु विरेचन औषधिके द्वारा ऊपर और नीचेसे शरीरको शुद्ध करे और रोगी निर्बल हो तो दोषोंको शमन करनेवाली औषधि देवे ॥ १ ॥

कोलमज्जाञ्जनं लाजातिक्ता काञ्चनगैरिकम् ।
कृष्णा धात्री सिता शुण्ठी कासीसं दधिनाम च॥२॥
पाटल्याः सफलं पुष्पं कृष्णाखर्जूरमस्तकम् ।
षडेते पादिकालेहा हिक्काघ्ना मधुसंयुताः ॥ ३ ॥

१-बेरकी गुठलीकी मींग,कालासुरमा और खीलें. २-कुटकी,कचनार और गेरू ३-पीपल, आमले, मिश्री और सोंठ ४-कसीस और कैथ. ५-पाढलके फल और फूल. ६-पीपल और खजूरका मस्तक इन छः प्रयोगोंमेंसे किसी एक प्रयोगका उत्तम प्रकारसे बारीक चूर्ण करके शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे हिक्कारोग दूर होता है ॥ २ ॥ ३ ॥

मधुकं मधुसंयुक्तं पिप्पलीशर्करान्विता।
नागरं गुडसंयुक्तं हिक्काघ्नं नावनत्रयम् ॥ ४ ॥

मुलैठीको शहदमें मिलाकर अथवा पीपलको मिश्रीके साथ मिलाकर वा सोंठके चूर्णको गुडमें मिलाकर नस्य देनेसे हिक्कारोग दूर होता है ॥ ४ ॥

स्तन्येन मक्षिकाविष्ठा नस्यं वाऽलक्तकाम्बुना।
योज्यं हिक्काभिभूताय स्तन्यं वा चन्दनान्वितम् ५

मक्खीकी विष्ठाको स्त्रीके दूधके साथ अथवा आलको जलके साथ पीसकर लाल चन्दनको स्त्रीके दूधमें घिसकर हिक्कारोगीको नस्य देनेसे हिचकियोंका जाना दूर होता है ॥ ५ ॥

मधुसौवर्चलोपेतं मातुलुङ्गरसं पिबेत्।
हिक्कार्त्तस्य पयश्छागं हितं नागरसाधितम् ॥ ६ ॥

बिजौरेनींबूके रसमें शहद और कालेनमक मिलाकर पीनेसे अथवा बकरीके दूधमें सोंठ डालकर और उसको पकाकर पीनेसे हिक्कारोग दूर होता है ॥ ६॥

अप्यसाध्यां नयत्यस्तं हिक्कां क्षौद्रविलेहनम्।
सद्य एव महायोगः काशमूलभवं रजः ॥ ७ ॥

काँसकी जडके चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे असाध्य हिक्कारोग भी शीघ्र शमन होताहै ॥ ७॥

माषचूर्णभवो धूमो हिक्कां हन्ति न संशयः।
असाध्यां साधयेद्धिक्कां सितयैलाभवं रजः ॥ ८ ॥

उडदोंके चूर्णको चिलममें रखकर उसका धूम्रपान करनेसे अथवा इलायचीके चूर्णको मिश्रीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे असाध्य हिक्कारोगभी दूरहोताहै॥

शर्करामरिचं चूर्णं लीढं मधुयुतं मुहुः।
निहन्ति प्रबलां हिक्कामसाध्यामपि देहिनाम् ॥ ९ ॥

मिश्री कालीमिरच और शहद इन तीनोंको एकत्र मिलाकर बारम्बार सेवन करनेसे मनुष्योंका असाध्य और प्रबल हिक्कारोग शीघ्र शमन होताहै॥ ९ ॥

हिक्काघ्नः कदलीमूलरसः पेयः सशर्करः ॥ १० ॥

केलेकी जडका रस चीनी मिलाकर पानकरनेसे हिचकी दूर होती है ॥१०॥

कृष्णामलकशुण्ठीनां चूर्णं मधुसिताघृतम्।
मुहुर्मुहुः प्रयोक्तव्यं हिक्काश्वासानिबर्हणम् ॥ ११ ॥

पीपल, आमले और सोंठ इनके चूर्णको शहद, मिश्री और घीमें मिलाकर बार बार सेवन करनेसे हिक्का और श्वासरोग निवृत्त होताहै ॥ ११ ॥

हिक्कां हरति प्रबलां श्वासमतिप्रवृद्धं जयति ।
शिखिपुच्छभस्मपिप्पलीचूर्णं मधुमिश्रितं लीढम् ॥ १२ ॥

मोरकी पूँछकी भस्म, पीपलका चूर्ण ये शहद इनको मिलाकर सेवन करनेसे अतिप्रबल हिक्का और बहुत ज्यादा बढा हुआ श्वासरोग निवारण होताहै ॥ १२ ॥

अभयानागरकल्कं पौष्करयवशूकमरिचकल्कं वा ।
तोयेनोष्णेन पिबेच्छ्वासी हिक्की च तच्छान्त्यै ॥ १३ ॥

हरड और सोंठका चूर्ण अथवा पोहकरमूल, जवाखार और कालीमिरचोंके चूर्णको एकत्र मिलाकर गरम जलके साथ पान करनेसे श्वास और हिक्कारोग शान्त होता है ॥ १३ ॥

कर्षं कलिफलचूर्णं लीढश्चात्यन्तमिश्रितं मधुना ।
अचिराद्धरति श्वासं प्रबलामूर्द्ध्वहिक्काश्चैव ॥ १४ ॥

बहेडेके एककर्ष परिमाण चूर्णको शहदके साथ उत्तम प्रकारसे मिलाकर सेवन करनेसे श्वास और अत्यन्त प्रबल ऊर्ध्वगत हिक्कारोग बहुत शीघ्र दूर होताहै १४

गुडं कटुकतैलेन मिश्रयित्वा समं लिहेत् ।
त्रिसप्ताहप्रयोगेण श्वासं निर्मूलतो जयेत् ॥ १५ ॥

पुराने गुड और सरसोंके तैलको समान भाग लेकर एकत्र मिश्रित करके २१ दिनतक सेवन करनेसे श्वासरोग समूल नष्ट होताहै ॥ १५ ॥

बिल्वाटरूषदलवारिसमूलशुक्ल-
दण्डोत्पलोत्पलजलं कटुतैलमिश्रम् ।
भार्गी गुडो यदि च तत्र हतप्रभाव-
स्तं श्वासमाशु विनिहन्ति महाप्रभावम् ॥ १६ ॥

बेलके पत्तोंका रस, अडूसेके पत्तोंका रस, मूलसहित सफेद दण्डोत्पलके पत्तोंका रस और कमलके पत्तोंका रस सरसोंके तैलके साथ मिलाकर पानकरे। जहाँपर भार्गीगुडका प्रभाव भी नष्ट होजाता है, ऐसे अत्यन्त प्रबल श्वास-रोगको यह ओषधि शीघ्र नष्ट करती है ॥ १६ ॥

कूष्माण्डकानां चूर्णन्तु पेयं कोष्णेन वारिणा ।
शीघ्रं प्रशमयेच्छ्वासं कासश्चैव सुदारुणम् ॥ १७ ॥

पेठेके चूर्णको मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करनेसे दारुण श्वास और कास रोग शीघ्र शमन होता है ॥ १७ ॥

कृष्णासैन्धवचूर्णं स्वरसेन शृङ्गवेरस्य हि ।
यो लेढि शयनकाले स जयति सप्ताहतः श्वासम् १८

पीपल और सैंधानमकके चूर्णको अदरखके स्वरसके साथ मिलाकर रात्रिमें शयन करते समय सेवन करनेसे सातदिनमेंही श्वासरोग दूर होता है ॥ १८॥

गन्धकं मरिचं साज्यं श्वासकासक्षयापहम् ।
गन्धकं घृतयोगेन श्वासकासक्षयापहम् ॥ १९ ॥

शुद्ध गन्धकके चूर्ण और मिरचोंके चूर्णको घृतके साथ अथवा केवल शुद्ध गन्धकके ही चूर्णको घृतके साथ मिलाकर सेवन करनेसे श्वास, खाँसी और क्षयरोग दूर होता है ॥ १९ ॥

दशमूलादि ।

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं दशमूलीजलं पिबेत् ।
पार्श्वशूलं ज्वरश्वासकासश्लेष्म विनाशयेत् ॥ २० ॥

दशमूलके काथमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे पार्श्वशूल, ज्वर, श्वास, खाँसी और कफविकार नष्ट होते हैं ॥ २० ॥

शठ्यादि ।

शठीदशमूलीरास्नापिप्पलीविश्वपौष्करैः ।
शृङ्गीत्वामलकीभार्गीगुडूचीनागराग्निभिः ॥ २१ ॥
विधिवत्सेव्यमाने तु कषायं वा पिबेन्नरः ।
श्वासहृद्ग्रहपार्श्वार्त्तिहिक्काकासप्रशान्तये ॥ २२ ॥

कचूर, दशमूलकी सब औषधियाँ, रायसन, पीपल, सोंठ, पोहकरमूल, काकडासिंगी, भुईआमला, भारङ्गी, गिलोय, सोंठ और चीता इन सब औषधियोंका विधिपूर्वक काथ बनाकर अथवा इनका चूर्ण बनाकर सेवन करनेसे श्वास, हृदयरोग पार्श्वशूल, हिचकी और खाँसी ये सब रोग शान्त होतेहैं॥२२

वासादि काथ ।

वासा हरिद्रा मगधा गुडूची भार्गीघनानागरधावनी नाम् ।
क्वाथेन मारीचरजोन्वितेन श्वासःशमं याति न कस्यपुंसः॥

अडूसा, हल्दी, पीपल, गिलोय, भारङ्गी, नागरमोथा, सोंठ और कटेरी इनके काथके साथ मिरचोंका चूर्ण मिलाकर पानकरनेसे सब प्रकारका श्वास शमन होताहै ॥ २३ ॥

शुण्ठीभार्गी क्वाथ।

शुण्ठीभार्गीकृतः क्वाथः कसनश्वसनापहिराट्॥ २४॥

सोंठ और भारंगीका काढा बनाकर पान करनेसे खाँसी और श्वासरोग दूर होता है॥ २४॥

हरिद्रादिचूर्ण।

हरिद्रां मरिचं द्राक्षां गुडं रास्नां कणां शठीम्।
जह्यात्तैलेन विलिहन् श्वासान्प्राणहरानपि॥ २५॥

हलदी, मिरच, दाख, पुराना गुड, रायसन, पीपल और कचूर इन सब ओषधियोंके समानभाग चूर्णको सरसोंके तैलमें मिलाकर सेवन करनेसे प्राण-नाशक श्वास रोगभी दूर होताहै॥ २५॥

शृङ्गयादिचूर्ण।

शृङ्गीकटुत्रिकफलत्रयकण्टकारी भार्गी सपुष्करजटा-लवणानि पञ्च। चूर्णं पिबेदशिशिरेण जलेन हिक्का-श्वासोर्द्ध्ववातकसनारुचिपीनसेषु॥ २६॥

काकडासिंगी, सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, बहेडा, आमला, कटेरी, भारंगी, पोहकरमूल, जटामांसी और पाँचों नमक इन सबके समानभाग मिश्रित चूर्णको गरम जलके साथ सेवन करनेसे हिचकी, श्वास, ऊर्ध्ववात, खाँसी, अरुचि, पीनस आदि रोगोंमें विशेष लाभ होता है॥ २६॥

विजयवटी।

सुतकं गन्धकं लौहं विषमभ्रकमेव च।
विडङ्गं रेणुकं मुस्तमेलाग्रन्थिककेशरम्॥ २७॥
त्रिकटु त्रिफला शुल्वभस्म जैपालचित्रकम्।
एतानि समभागानि द्विगुणो दीयते गुडः॥ २८॥
कासे श्वासे क्षये गुल्मे प्रमेहे विषमज्वरे।
सुतायां ग्रहणीदोषे शूले पाण्ड्वामये तथा।
हस्तपादादिदाहेषु वटिकेयं प्रशस्यते॥ २९॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहभस्म, शुद्धमीठा तेलिया, अभ्रकभस्म, वाय-विडङ्ग, रेणुका, नागरमोथा, छोटी इलायची, पीपलामूल, नागकेशर, त्रिकुटा, त्रिफला, ताम्रभस्म, शुद्धजमालगोटा और चीता इन सब ओषधियोंको समान

भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे । फिर सब चूर्णसे दुगुना पुराना गुड लेकर सबको एकत्र खरल करके गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको खाँसी, श्वास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, प्रसूतरोग, संग्रहणी, शूल, पाण्डुरोग, हाथ पाँवकी दाह आदि विकारोंमें व्यवहार करना चाहिये ॥ २७-२९ ॥

डामरेश्वराभ्र ।

मेचकं पलमितं मृतमभ्रं ब्रह्मयष्टिकणकामृतवासाः ।
कासमर्दवननिम्बकचव्यं ग्रन्थिकं दहनमूलसमेतम् ३०॥
एकशश्च पलिकैरिह सत्त्वैर्मर्दितं जयति तद्गुरुहिक्काम्
श्वासकासमुदरं चिरमेहात् पाण्डुगुल्मयकृतं गलरोगम् ३१
शोथमोहनयनास्यजरोगं यक्ष्मपीनसगदं बलसादम् ।
गण्डमुण्डलवमिभ्रमिदाहं प्लीहशूलविषमज्वरकृच्छ्रम् ॥
हन्ति वातकफपित्तमशेषं डामरेश्वरमिदं महदभ्रम् ॥३२॥

कृष्ण अभ्रककी भस्मको चार तोले लेकर ब्रह्मदण्डीकी छाल, धतूरेके पत्ते, गिलोय, अडूसा, कसौंदी, बकायन, चव्य, पीपलामूल और चीतेकी जडकी छाल इन प्रत्येकके चार चार तोले रसके साथ क्रमसे खरल करलेवे । यह डामरेश्वराभ्रक, प्रबलहिक्का, श्वास, खाँसी, उदरविकार, पुराना प्रमेह, पाण्डु, गुल्म, यकृत, गलेकेरोग, सूजन, मूर्च्छा, नेत्र और मुखकेरोग, राजयक्ष्मा, पीनस, बलक्षय, गण्डरोग, शिरोरोग, वमन, भ्रम, दाह, प्लीहा, शूल, विषमज्वर, मूत्रकृच्छ्र, एवं वायु, कफ और पित्तजन्य सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करताहै॥३०-३२

महाश्वासारिलौह ।

कर्षद्वयं लौहचूर्णं कर्षार्द्धमभ्रमेव च ।
सिताकर्षद्वयञ्चैव मधु कर्षद्वयं तथा ॥ ३३ ॥
त्रिफला मधुकं द्राक्षा कणा कोलास्थिवंशजा ।
तालीसपत्रं वैडङ्गमेला पुष्करकेशरम् ॥ ३४ ॥
एतानि श्लक्ष्णचूर्णानि कर्षार्द्धञ्च समांशिकम् ।
लौहे च लौहदण्डेन मर्दयेत्प्रहरद्वयम् ॥ ३५ ॥
ततो मात्रां लिहेत्क्षौद्रैर्बुद्ध्वा दोषबलाबलम् ।
इदं श्वासारिलौहञ्च महाश्वासं विनाशयेत् ॥ ३६ ॥

कासं पञ्चविधश्चैव रक्तपित्तं सुदारुणम् ।
एकजं द्वन्द्वजश्चैव तथैव सान्निपातिकम् ॥
निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ३७ ॥

लोहभस्म दो कर्ष, अभ्रकभस्म आधाकर्ष, मिश्री दो कर्ष, शहद दो कर्ष, त्रिफला, मुलैठी, दाख, पीपल, बेरकी गुठलीकी गिरी, वंशलोचन, तालीसपत्र, वायविडङ्ग, छोटी इलायची, पोहकरमूल और नागकेशर इन सबको आधा आधा कर्ष लेकर बारीक चूर्ण करके लोहेके पात्रमें लोहेके दण्डेसे दो प्रहरतक खरल करे । फिर दोषोंका बलाबल विचारकर इसकी यथोचितमात्रा शहदके साथ सेवन करे । यह श्वासारिलौह प्रबलश्वास,पाँचों प्रकारकी खाँसी, दारुण, रक्तपित्त, एकदोषज, द्विदोषज और त्रिदोषज रोगोंको इस प्रकार निस्सन्देह नष्ट करदेता है, जैसे सूर्य अन्धकारको नष्ट कर देता है ॥ ३३-३७ ॥

पिप्पल्याद्य लौह ।

पिप्पल्यामलकी द्राक्षा कोलास्थिमधुशर्करा ।
विडङ्गपुष्करैर्युक्तं लौहं हन्ति सुदुस्तरम् ॥ ३८ ॥
हिक्कां छर्दिं महाश्वासं त्रिरात्रेण न संशयः ।
सर्वचूर्णसमं लौहं मधु-(यष्टिमधु,पुष्करं)पुष्करमूलकम्॥

पीपल, आमले, दाख, बेरकी गुठलीकी गिरी, मुलैठी, मिश्री, वायविडङ्ग और पोहकरमूल इन प्रत्येकका चूर्ण समानभाग और सब चूर्णकी बराबर लोहभस्म सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे दुस्तर हिक्का, वमन और महाश्वासरोग तीन दिनमें ही निश्चय दूर होता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

श्वासकुठाररस ।

रसं गन्धं विषं टङ्कं शिलोषणकटुत्रिकम् ।
सर्वं सम्मर्द्य दातव्या रसः श्वासकुठारकः ॥
वातश्लेष्मसमुद्भूतं कासं श्वासं स्वरक्षयम् ॥ ४० ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, शुद्धमीठा तेलिया, सुहागा, मैनसिल, सोंठ और पीपल ये प्रत्येक एक एक तोला और मिरच २ तोले लेवे । सबको एकत्र जलके साथ खरल करके एक एक रत्ती प्रमाण लेकर अदरखके रस और शहदके साथ सेवन करावे । यह श्वासकुठाररस वात और कफसे उत्पन्नहुई खाँसी, श्वास और स्वरभंगरोगको दूर करता है ॥ ४० ॥

महाश्वासकुठार रस।

रसं गन्धं विषञ्चैव टङ्कणं समनःशिलम्।
एतानि समभागानि मरिचञ्चाष्टटङ्कणात्॥ ४१॥
टङ्कषट्कं त्रिकटुकं खल्ले कृत्वा विचूर्णयेत्।
रसः श्वासकुठारोऽयं विषमश्वासकासजित्॥ ४२॥
प्रतिश्यायञ्च यक्ष्माणमेकादशविधं क्षयम्।
हृद्रोगं पार्श्वशूलञ्च स्वरभेदञ्च दारुणम्॥ ४३॥
सन्निपातं तथा तन्द्रां प्रमेहांश्च विनाशयेत्।
गता संज्ञा यदा पुंसां तदा नस्यं प्रदापयेत्॥ ४४॥
घ्रापयेन्नासिकारन्ध्रे संज्ञाकारणमुत्तमम्।
सूर्य्यावर्त्तार्द्धभेदौ च दुस्सहां च शिरोव्यथाम्॥
अनुपानं पर्णरसमार्द्रकस्य रसन्तथा॥ ४५॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, शुद्धमीठा तेलिया, सुहागा और मैनसिल ये प्रत्येक एकएक भाग, कालीमिरच आठ भाग, सोंठ ६भाग और पीपल ६ भाग लेकर सबका एकत्र चूर्ण करके जलके साथ खरल करलेवे। इसपर पानके रस अथवा अदरखके रसका अनुपान करे। मात्रा एक एक रत्ती। यह श्वासकुठाररस अत्यन्त कठिन श्वास, खाँसी, प्रतिश्याय, राजयक्ष्मा, ग्यारह प्रकारके क्षय, हृदयरोग, पसलीकी पीडा, स्वरभेद, दारुण सन्निपात, तन्द्रा और प्रमेहको नष्ट करता है। जब मनुष्यको संज्ञा नष्ट होकर बेहोशी होजावे तब उसकी नासिकाके छिद्रोंमें इस रसकी नस्य देवे यह चैतन्य लाभ करानेके लिये अंत्युत्तम औषध है। एवं सूर्यावर्त्त (आधा शीशीका दर्द), अर्द्धावभेदक और दुस्सह शिरकी पीडाको नष्ट करनेवालाहै॥ ४१-४५॥

श्वासभैरवरस।

रसं गन्धं विषं व्योषं मरिचं चव्यचित्रकम्।
आर्द्रकस्य रसेनैव सम्मर्द्य वटिकां ततः॥ ४६॥
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन खादेत्तोयानुपानतः।
स्वरभेदं निहन्त्याशु श्वासं कासं सुदुर्जयम्॥ ४७॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, शुद्धमीठा तेलिया, सोंठ,पीपल, चव्य और चीतेकी जड इन सबका चूर्ण एक एक भाग और मिरचोंका चूर्ण दो भाग लेवे

फिर सबको एकत्र अदरखके रसके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस रसको गरमजलके अनुपानके साथ सेवन करनेसे स्वरभेद, दुस्साध्य श्वास और खाँसी शीघ्र दूर होतीहै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

श्वासचिन्तामणि ।

द्विकर्षं लौहचूर्णस्य तदर्द्धं गन्धमभ्रकम् ।
तदर्द्धं पारदं ताप्यं पारदार्द्धेन मौक्तिकम् ॥ ४८ ॥
शाणमानं हेमचूर्णं सर्वं सम्मर्द्य यत्नतः ।
कण्टकारीरसैश्चापि शृङ्गवेररसैस्तथा ॥ ४९ ॥
छागीक्षीरेण मधुकैः क्रमेण मतिमान् भिषक् ।
गुञ्जाचतुष्टयश्चास्य विभीतकसमन्वितम् ॥
भक्षयेच्छ्वासकासार्त्तो राजयक्ष्मानिपीडितः ॥ ५० ॥

लोहेकी भस्म २ कर्ष, शुद्धगन्धक १ कर्ष, अभ्रकभस्म १ कर्ष, शुद्धपारा ८ माशे, सोनामाखीकी भस्म ८ माशे, मोतीकी भस्म ४ माशे और सुवर्णभस्म ४ मासे इन सबको एकत्र खूब खरलकर कटेरीके रस, अदरखके रस, बकरीके दूध और मुलैठीके रसके साथ क्रमपूर्वक पृथक् पृथक् भावना देकर चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह श्वास, कास और राजयक्ष्मारोगसे पीडित मनुष्यको बहेडेके चूर्ण और शहदके साथ मिलाकर भक्षण करना चाहिये । यह श्वास कास और राजयक्ष्माको दूर करता है ॥ ४८-५० ॥

श्वासकासचिन्तामणि ।

पारदं माक्षिकं स्वर्णं समांशं परिकल्पयेत् ।
पारदार्द्धं मौक्तिकञ्च सूताद्द्विगुणगन्धकम् ॥ ५१ ॥
अभ्रञ्चैव तथा योज्यं व्योम्नो द्विगुणलोहकम् ।
कण्टकारीरसेनैव छागीदुग्धेन च पृथक् ॥ ५२ ॥
यष्टीमधुरसेनैव पर्णपत्ररसेन च ।
भावयेत्सप्तवारञ्च द्विगुञ्जां वटिकां भजेत् ॥
पिप्पलीमधुसंयुक्तां श्वासकासविमर्दिनीम् ॥ ५३ ॥

शुद्धपारा, सुवर्णमाक्षिक और सुवर्णकी भस्म ये प्रत्येक एक एक तोला. मोतीकी भस्म ६ मासे, शुद्धगन्धक २ तोले, अभ्रककी भस्म २ तोले और

लौहभस्म ४ तोले इनको एकत्र पीसकर कटेरीके रस, बकरीके दूध, मुलैठीके साथ और पानके रसके साथ क्रमसे पृथक् पृथक् सात सात बार भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवेइस बटीको पीपलके चूर्ण और शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे श्वास और खांसी दूर होती है ॥ ५१-५३ ॥

बृहद्-मृगाङ्कवटी ।

हेमायस्कान्तसूताभ्रप्रवालमौक्तिकानि च ।
विभीतककषायेण सर्वाणि भावयेत्त्रिधा ॥ ५४ ॥
एरण्डपत्रमध्यस्थं धान्यराशौ दिनत्रयम् ।
स्थापयित्वा तदुद्धृत्य द्विगुञ्जां वटिकां चरेत् ॥ ५५ ॥
विभीतकास्थि शस्यं च माषार्द्धं मधुसंयुतम् ।
अनुपानमिह प्रोक्तं क्वाथो वाक्षसमुद्भवः ॥ ५६ ॥
क्षयं हन्ति तथा कासं यक्ष्माणं श्वासमेव च ।
स्वरभेदं ज्वरं मेहं सर्वव्याधिं विनाशयेत् ॥ ५७ ॥

सुवर्णभस्म, कान्तलोह, पारेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, मूँगोंकी भस्म और मोतीकी भस्म इन सबको समान भाग लेकर एकत्र मिश्रित करके बहेडेके क्राथमें तीनबार भावना देवे । फिर उसको सुखाकर अण्डके पत्तेमें लपेटकर धानोंकी राशिमें तीनदिनतक रक्खा रहने देवे । फिर निकालकर दोदो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे इस बटीको चार चार रत्ती प्रमाण बहेडेकी गुठलीकी गिरी और शहदके साथ या बहेडेके क्वाथ और शहदके साथ सेवन करे । यही वटी सम्पूर्णक्षय, खाँसी, राजयक्ष्मा, श्वास, स्वरभेद, ज्वर, प्रमेह आदि सर्वप्रकारके रोगोंको नष्ट करती है ॥ ५४-५७ ॥

कनकासव ।

संक्षुद्य कनकं शाखामूलपत्रफलैः सह ।
ततश्चतुष्पलं ग्राह्यं वृषमूलत्वचं तथा ॥ ५८ ॥
मधुकं मागधी व्याघ्री केशरं विश्वभेषजम् ।
भार्गीं तालीशपत्रञ्च संचूर्ण्यैषां पलद्वयम् ॥ ५९ ॥
संगृह्य धातकीप्रस्थं द्राक्षायाः पलविंशतिम् ।
जलद्रोणद्वयं दत्त्वा शर्करायास्तुलां तथा ॥ ६० ॥

क्षौद्रस्यार्धतुलां चापि सर्वं सम्मिश्र्य यत्नतः ।
भाण्डे निःक्षिप्य चावृत्य निदध्यान्मासमात्रकम् ६१
निहन्ति निखिलान् श्वासान् कासं यक्ष्माणमेव च ।
क्षतक्षीणं ज्वरं जीर्णं रक्तपित्तमुरःक्षतम् ॥ ६२ ॥

शाखा, जड, पत्ते और फलसहित धतूरा १६ तोले और अडूसेकी जडकी छाल १६ तोले लेकर दोनोंको पृथक् पृथक् कूट लेवे । फिर मुलैठी, पीपल, कटेरी, नागकेशर, सोंठ, भारङ्गी और तालीसपत्र प्रत्येकको दो दो पल लेकर बारीक चूर्ण करलेवे एवं धायके फूल १ प्रस्थ, दाख २० पल, शर्करा १०० पल और शहद ५० पल लेकर सबको दो द्रोण परिमाण जलमें डालकर एक शुद्ध मिट्टीके पात्रमें भरदेवे और उस पात्रका मुँह बाँधकर एक महीनेतक रक्खा रहने देवे । फिर उसको छानकर प्रतिदिन एक तोलेसे लेकर दो तोलेतक सेवन करे । यह कनकासव सर्वप्रकारके श्वासरोग, खाँसी, राजयक्ष्मा, क्षतक्षीण, जीर्णज्वर, रक्तपित्त और उरःक्षत इन सबको नष्ट करताहै ॥ ५८-६२ ॥

शृंगीगुडघृत ।

कण्टकारीद्वयं वासामृता पञ्चपलं पृथक् ।
शतावर्याः पञ्चदश भार्गी दश पलानि च ॥ ६३ ॥
गोक्षुरं पिप्पलीमूलं पृथक्पलसमन्वितम् ।
पाटला त्रिपलश्चैव चतुर्गुणजले पचेत् ॥ ६४ ॥
चतुर्भागावशिष्टन्तु कषायमवतारयेत् ।
पुरातनगुडस्यात्र पलानि दश दापयेत् ॥ ६५ ॥
घृतस्य पञ्च दत्त्वा च दत्त्वा दशपलं पयः ।
सर्वमेकीकृतं पक्त्वा चूर्णमेषां विनिःक्षिपेत् ॥ ६६ ॥
शृङ्गी द्वितोलकं जातीफलं पत्रं त्रितोलकम् ।
चतुस्तोलं लवङ्गञ्च तुगाक्षीरी पृथक् पृथक् ॥ ६७॥
गुडत्वगेले च तथा तोलकद्वयमानके ।
कुष्ठं तोलचतुष्कञ्च शुण्ठ्यास्तोलकसप्तकम् ॥ ६८ ॥
पिप्पल्याः पलमेकञ्च तालीशं तोलकत्रयम् ।
जातीकोषं तोलकैकं शीते च मधुनः पलम् ॥ ६९ ॥

ततः खादेच्च कर्षैकमनुपानविधिं शृणु ।
काष्ठमार्ज्जारिकाचूर्णं मरिचं तच्चतुर्गुणम् ॥ ७० ॥
एकीकृत्य वटीं कुर्याच्चतुर्माषमिता भिषक् ।
तासामेकां चर्वयित्वा पिबेदनु जलं कियत् ॥ ७१ ॥
शृङ्गीगुडघृतं नाम सर्वरोगहरं परम् ।
अपि वैद्यशतैस्त्यक्तं श्वासं हन्ति सुदारुणम् ॥ ७२ ॥
कासं पञ्चविधं हन्ति विविधोपद्रवान्वितम् ।
रक्तपित्तं क्षयञ्चैव स्वरभङ्गमरोचकम् ॥
विशेषाच्चिरकालोत्थं श्वासं हन्ति सुदुस्तरम् ॥ ७३ ॥

बडी और छोटी दोनों कटेरी, अडूसा और गिलोय ये प्रत्येक २०-२० तोले शतावर ६० तोले, भारंगी ४० तोले, गोखुरू, पीपलामूल प्रत्येक चार चार तोले और पाढलकी छाल १२ तोले लेवे । इन सबको एकत्र कूटकर चौगुने जलमें पकावे । जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उसको उतार-कर छान लेवे । फिर उस क्वाथमें पुराना गुड ४० तोले, गायका घी २० तोले और दूध ४० तोले डालकर पकावे । जब घृत उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर उसमें काकडासिंगी २ तोले, जायफल ३ तोले, तेजपात ३तोले,लौंग चार तोले, वंशलोचन ४तोले, दारचीनी दो तोले, छोटी इलायची २तोले, कूठ ४तोले, सोंठ ७तोले, पीपल ४तोले, तालीशपत्र ३तोले और जावित्री एक तोला इन सब ओषधियोंका चूर्ण डालदेवे और शीतल होजानेपर चार तोले शहद डालकर सबको उत्तम प्रकारसे मिलादेवे । इस ओषधिको एकएक कर्षकी मात्रासे निम्नलिखित अनुपानोंके साथ सेवन करावे। काठ बिलाईका चूर्ण १ तोला और मिरचोंका चूर्ण ४ तोले दोनोंको एकत्र जलके साथ खरल करके चार चार मासेकी गोलियाँ बनालेवे । प्रथम पूर्वोक्त औषधको भक्षण करे, फिर इनमेंसे एक गोली खाकर ऊपरसे थोडासा गरम-जल पान करे। यह शृङ्गीगुडघृतनामक घृत सर्व प्रकारके रोगोंको नाश करनेके लिये परमोत्कृष्ट औषध है । जिसको सैकडों वैद्योंने त्यागदिया हो ऐसे दारुण श्वासरोगको एवं पाँचों प्रकारकी खाँसी वा अनेक प्रकारके उपद्रवोंसे युक्त खाँसी, रक्तपित्त, क्षय, स्वरभंग, अरुचि और विशेषकर बहुत पुराने दुस्साध्य श्वासरोगको यह घृत नष्ट करता है ॥ ६३-७३ ॥

भार्गीशर्करा ।

भार्ग्याः शतार्द्धं वासायाः कण्टकार्याश्च पाचयेत् ।
चतुर्गुणं जलं दत्त्वा प्रस्थञ्च दशमूलकम् ॥ ७४ ॥
जलाढके पचेत्तेन चतुर्थमवशेषयेत् ।
वस्त्रपूतश्च तत्सर्वं सिताप्रस्थं ततः क्षिपेत् ॥ ७५ ॥
उष्णेऽवतारिते तत्र चूर्णानीमानि दापयेत् ।
त्रिकटु त्रिफलामुस्तं तालीशं नागकेशरम् ॥ ७६ ॥
भार्गी वचा श्वदंष्ट्रा च त्वगेलापत्रजीरकम् ।
यमानी चाजमोदा च वांशी कौलत्थजं रजः ॥ ७७ ॥
कट्फलं पौष्करं शृङ्गी कोलमात्रं क्षिपेत्ततः ।
शीते क्षौद्रं प्रदातव्यं कुडवार्द्धं शुभे दिने ॥ ७८ ॥
लिहेत् पिचुमितं नित्यं प्रातर्वीक्ष्यानुपानतः ।
हन्ति पञ्चविधं कासं श्वासमेव सुदारुणम् ॥
यक्ष्माणं हन्ति हिक्काञ्च ज्वरं जीर्णं व्यपोहति ॥ ७९ ॥

भारंगीकी जड ५० पल, अडूसेकी छाल ५० पल और कटेरी ५० पल इन सबको चौगुने जलमें पकावे और दशमूलकी सब ओषधियाँ १ प्रस्थ लेकर १ आढक जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब दोनों काथोंको नीचे उतारकर कपडेमें छानलेवे । फिर दोनोंको एकत्र मिलाकर उसमें १ प्रस्थ खाँड डालकर पकावे । जब वह पककर लेहकी समान होजाय तब नीचे उतारकर उसमें त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, तालीसपत्र, नागकेशर, भारंगी, बच, गोखुरू, दारचीनी, छोटी इलायची, पत्रज, जीरा, अजवायन, अजमोद, वंशलोचन, कुलथी, कायफल, पोहकरमूल और काकडासिंगी इन प्रत्येक ओषधिका चूर्ण एकएक तोला डालदेवे और शीतल होजानेपर १६ तोले शहद मिलादेवे । इस ओषधिको शुभ दिनसे प्रारम्भकर नित्य प्रातःसमय एक एक कर्ष परिमाण लेकर यथादोषानुसार अनुपानके साथ सेवन करे । यह भार्गीशर्करानामक औषध पाँचों प्रकारकी खाँसी, दारुणश्वास, यक्ष्मा, हिचकी और पुराने ज्वरको दूर करती है ॥ ७४-७९ ॥

भार्गीगुड ।

शतं संगृह्य भार्ग्यास्तु दशमूल्यास्तथा शतम् ।
शतं हरीतकीनाञ्च पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ ८० ॥

पादावशेषे तस्मिंस्तु रसे वस्त्रपरिस्रुते।
आलोड्य च तुलां पूतां गुडस्य त्वभयां ततः॥ ८१॥
पुनः पचेत्तु मृद्वग्नौ यावल्लेहत्वमागतम्।
शीते च मधुनश्चात्र षट्पलानि प्रदापयेत्॥ ८२॥
त्रिकटु त्रिसुगन्धञ्च पलिकानि पृथक्पृथक्।
कर्षद्वयं यवक्षारं संचूर्ण्य प्रक्षिपेत्ततः॥ ८३॥
भक्षयेदभयामेकां लेहस्यार्धपलं लिहेत्।
श्वासं सुदारुणं हन्ति कासं पञ्चविधन्तथा॥ ८४॥
स्वरवर्णप्रदो ह्येष जठराग्नेश्च दीपनः।
नाम्ना भार्गीगुडः ख्यातो भिषग्भिःसकलैर्मतः॥ ८५

भारंगीकी जड १०० पल, दशमूलकी सब औषधियाँ १०० पल और बडी बडी हरडें सौ लेवे। हरडोंको कपडेकी पोटलीमें बाँधकर सब औषधियोंका एकत्रकर चौगुने जलमें पकावे.जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उसको उतारकर कपडेमें छानलेवे और हरडोंकी गुठली निकाल डाले। फिर उस काथमें पुराना गुड १०० पल और उक्त हरडें डालकर मन्दमन्द अग्निके द्वारा पकावे। जब वह पककर लेहकी समान गाढा होजाय तब नीचे उतारकर उसमें त्रिकुटा, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, ये प्रत्येक चार चार तोले और जवाखार दो कर्ष सबको बारीक चूर्णकरके डालदेवे और शीतल होजानेपर २४ तोले शहद मिलादेवे। इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक हरड और दो तोले अवलेह सेवन करे। यह गुड भयंकर श्वास, पाँचों प्रकारकी खाँसी, स्वरभेद आदि रोगोंको नष्ट करताहै और जठराग्निको दीपन करता है। आयुर्वेदाचार्योंने इसको भार्गीगुडनामसे वर्णन कियाहै॥ ८०-८५॥

कुलत्थगुड।

कुलत्थं दशमूलञ्च तथैव द्विजयष्टिका।
शतं शतञ्च संगृह्य जलद्रोणे विपाचयेत्॥ ८६॥
पादावशेषे तस्मिंस्तु गुडस्यार्द्धतुलां क्षिपेत।
शीतीभूते च पक्के च मधुनोऽष्टौ पलानि च॥ ८७॥
षट्पलानि तुगाक्षीर्याः पिप्पल्याश्च पलद्वयम्।

त्रिसुगन्धि सुगन्धं तत् खादेदग्निबलं प्रति ॥
श्वासं कासं ज्वरं हिक्कां नाशयेत्तमकं तथा ॥ ८८ ॥

कुलथी, दशमूल और भारङ्गी ये प्रत्येक सौ सौ पल लेकर एक एक द्रोण जलमें पकावे. पकते पकते जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे और सबको एकत्र मिलाकर फिर उसमें ५० पल पुराना गुड डालकर पकावे. जब पककर लेहकी समान होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें शहद ३२ तोले, वंशलोचन २४ तोले, पीपल ८ तोले और दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात ये तीनों समानभाग मिश्रित ८ तोले लेकर बारीक चूर्ण करके मिलादेवे । इसको अपनी अग्निका बलाबल विचारकर उचित मात्रासे सेवन करे इससे श्वास, खाँसी, ज्वर, हिचकी और तमक श्वास आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ८६-८८ ॥

अगस्त्यहरीतकी ।

दशमूलीं स्वयंगुप्तां शङ्खपुष्पीं शठीं बलाम् ।
हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकान् ॥ ८९ ॥
भार्गीपुष्करमूलञ्च द्विपलांशं यवाढकम् ।
हरीतकीशतञ्चैव जले पञ्चाढके पचेत् ॥ ९० ॥
यवैः स्विन्नैः कषायं तं पूतं तच्चाभयाशतम् ।
पचेद्गुडतुलां दत्त्वा कुडवञ्च पृथक् घृतात् ॥ ९१ ॥
तैलात्सपिप्पलीचूर्णात् सिद्धे शीते च माक्षिकात् ।
लिह्याद्द्वे चाभये नित्यमतः खादेद्रसायनात् ॥ ९२ ॥
तद्वलीपलितं हन्याद्वर्णायुर्बलवर्द्धनम् ।
पञ्चकासान् क्षयं श्वासं हिक्काश्च विषमज्वरान्॥९३॥
हन्यात्तथा ग्रहण्यर्शोहृद्रोगारुचिपीनसान् ।
अगस्त्यविहितं धन्यमिदं श्रेष्ठं रसायनम् ॥ ९४ ॥

दशमूल, कौंछके बीज, शङ्खपुष्पी, कचूर, खिरैंटी, गजपीपल, चिरचिटा, पीपलामूल, चीतेकी जड, भारङ्गी और पोहकरमूल ये प्रत्येक औषधि आठ आठ तोले, पोटली बद्ध जौ १ आढक और उत्तम हरडें सौ लेवे । सबको एकत्रकर ५ आढक जलमें पकावे । जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे और उक्त हरडोंकी गुठली निकाल डाले । फिर हरडोंको

१६ तोले घी और १६ तोले तेलमें भूनकर उक्त क्वाथमें डालकर और सौ पल गुड डालकर पकावे । जब उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर उसमें पीपलका चूर्ण १६ तोले और शीतल होजानेपर शहद १६ तोले मिलादेवे । इसमेंसे प्रतिदिन दो दो हरडें भक्षण करे और ६-६ माशे अवलेह सेवन करे । वह वली-पलितरोग नष्ट करता है और बल, वर्ण आयुकी वृद्धि करता है तथा पाँचों प्रकारकी खाँसी, क्षय, श्वास, हिचकी, विषमज्वर, संग्रहणी, बवासीर, हृदयरोग, अरुचि और पीनसादि रोग दूर करता है । इस श्रेष्ठ रसायनको अगस्त्यऋषिने निर्माण कियाहै ॥ ८९-९४ ॥

हिंस्राद्यघृत ।

हिंस्राविडङ्गपूतीकत्रिफलाव्योषचित्रकैः ।
द्विक्षीरं सर्पिषः प्रस्थं चतुर्गुणजलान्वितम् ॥ ९५ ॥
कोलमात्रं पचेत्तद्धि श्वासकासौ व्यपोहति ।
अर्शांस्यरोचकं गुल्मं शकृद्भेदं क्षयन्तथा ॥ ९६ ॥

कंटकपाकी, वायाविडङ्ग, दुर्गन्धकरञ्ज, त्रिफला, त्रिकुटा और चीता प्रत्येकका कल्क दो दो तोले, गोदुग्ध २ प्रस्थ और घृत १ प्रस्थ इन सबको चौगुने जलमें डालकर घृतको पकावे । जब पककर घृतमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । इस घृतको एक एक तोला सेवन करनेसे श्वास, खाँसी, अर्श-अरुचिं, गुल्म, मलभेद और क्षयरोग दूर होताहै ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

तेजोवत्याद्यघृत ।

तेजोवत्यभया कुष्ठं पिप्पली कटुरोहिणी ।
भूतिकं पौष्करं मूलं पलाशश्चित्रकं शठी ॥ ९७ ॥
सौवर्चलं तामलकी सैन्धवं बिल्वपेशिका ।
तालीशपत्रं जीवन्ती वचा तैरक्षसम्मितैः ॥ ९८ ॥
हिङ्गुपादैर्घृतप्रस्थं पचेत्तोयचतुर्गुणे ।
एतद्यथाबलं पीत्वा हिक्काश्वासौ जयेन्नरः ॥
शोथानिलार्शोग्रहणीहृत्पार्श्वरुज एव च ॥ ९९ ॥

चव्य, हरड, कूठ, पीपल, कुटकी, गन्धेज घास, पोहकरमूल, ढाककी जड, चीता, कचूर, कालानमक, भुईआमला, सैंधानमक, बेलगिरी, तालीशपत्र, जीवन्ती और बच ये प्रत्येक दो दो तोले एवं हींग ६ माशे और घी १ प्रस्थ सबको चौगुने जलमें पकावे । जब घृत उत्तम प्रकारसे सिद्ध होजाय तब उता-

रकर छानलेवे। इस घृतको अपने बलाबलके अनुसार पान करनेसे हिक्का, श्वास खाँसी, शोथ, वातार्श, संग्रहणी, हृदयरोग और पार्श्वशूल नष्ट होताहै॥९७-९९॥

चन्दनाद्यतैल।

चन्दनाम्बु नखं वाप्यं यष्टी शैलेयपद्मकम्।
मञ्जिष्ठा सरलं दारु पटोला पूतिकेशरम्॥ १००॥
पत्रं शैलं मुरामांसी कक्कोलं वनिताम्बुदम्।
हरिद्रे शारिवे तिक्ता लवङ्गागुरुकुंकुमम्॥ १॥
त्वग्रेणुनलिकाश्चैभिस्तैलं मस्तु चतुर्गुणम्।
लाक्षारसं समं सिद्धं ग्रहघ्नं बलवर्णकृत्॥ २॥
रक्तपित्तक्षतक्षीणश्वासकासविनाशनम्।
आयुःपुष्टिकरश्चैव वाजीकरणमुत्तमम्॥ ३॥

लालचन्दन, सुगन्धवाला, नख, कूठ, मुलैठी, भूरिछरीला, पद्माख, मँजीठ, धूपसरल, देवदारु, पटोलपात, रोहिषतृण, पद्मकेशर, तेजपात, शिलाजीत, मुरामांसी, शीतलचीनी, फूलप्रियंगु, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, उसवा, अनन्तमूल, कुटकी, लौंग, अगर, केशर, दारचीनी, रेणुका और नली (गन्थ-द्रव्य) इनका समानभाग मिश्रित कल्क १५ पल, तिलका तैल १ प्रस्थ, दहीका तोड ४ प्रस्थ और लाखका रस ४ प्रस्थ सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक तैलको सिद्ध करे। यह चन्दनादि तैल ग्रहदोषनाशक और बल, वर्णको उत्पन्न करता है। एवं रक्तपित्त, क्षतक्षीण, श्वास, कास आदि रोगोंको नष्टकर आयुकी वृद्धि और पुष्टि करनेवाला है। यह अत्युत्तम वाजीकरण योग है॥१००-१०३

बृहच्चन्दनाद्यतैल।

द्रव्याणि चन्दनादेस्तु चन्दनं रक्तचन्दनम्।
पत्तङ्गमथ कालीयागुरुकृष्णागुरूणि च॥ ४॥
देवद्रु सरलं पद्मं पद्मकोतृणकोऽपि च।
कर्पूरो मृगनाभिश्च लता कस्तूरिकाऽपि च॥ ५॥
सिह्लकः कुंकुमं नव्यं जातीफलकमेव च।
जातीकोषं लवङ्गञ्च सूक्ष्मैला महती च सा॥ ६॥
कंकोलफलकं स्पृक्का पत्रकं नागकेशरम्।
बालकञ्च तथोशीरं मांसी दारु सितापि च॥ ७॥

कृतकर्पूरकश्चापि शैलेयं भद्रमुस्तकम् ।
रेणुका च प्रियङ्गुश्च श्रीवासो गुग्गुलुस्तथा ॥ ८ ॥
लाक्षा नखश्च रालश्च धातकी कुसुमस्तथा ।
ग्रन्थिपर्णं च माञ्जिष्ठा तगरं सिक्थकं तथा ॥ ९ ॥
एतानि शाणमानानि कल्कीकृत्य शनैः पचेत् ।
अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धोऽशीतिसमोऽपि सः ॥१११० ॥
युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः ।
वन्ध्यापि लभते गर्भं वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ११ ॥
अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेद्वर्षशतं सुखी ।
चन्दनादिमहातैलं रक्तपित्तं क्षयं ज्वरम् ॥
दाहप्रस्वेददौर्गन्ध्यकुष्ठकण्डुं विनाशयेत् ॥ १२ ॥

सफेदचन्दन, लालचन्दन, पत्तंगकी लकडी, काला चन्दन, अगर, कालीअगर, देवदारु, धूपसरल, पद्माख, तृणपञ्चमूल (कुशा, काँस, रामसर, काली ईख, धान), कपूर, कस्तूरी, मुष्कदाना, शिलारस, नवीनकेशर, जायफल, जावित्री, लौंग, छोटी इलायची, बडी इलायची, कंकोलफल, असवर्ग, तेजपात, नागकेशर, सुगन्धवाला, खस, बालछड, दारचीनी, भीमसेनी कपूर, भूरिछरीला, नागरमोथा, रेणुका, फूलप्रियंगु, सरलका गोंद, गूगल, लाख, नख, राल, धायके फूल, गठिवन, मजीठ, तगर और मोम ये प्रत्येक औषधि चार चार मासे लेकर कल्क बनालेवे । इस कल्कके साथ एक प्रस्थ तिलके तैलको यथाविधि मन्दमन्द अग्निके द्वारा पकावे । जब तैल उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब उतार कर छानलेवे । इस तैलको मर्दन करनेसे अस्सी वर्षका बूढापुरुषभी जवान होजाता है. एवं अत्यन्त वीर्यवान् और स्त्रियोंको प्रिय होता है । वन्ध्यास्त्री भी गर्भवती होती है और वृद्ध मनुष्य फिरसे तरुण होता है । पुत्रहीन पुत्रको पाता है और स्वस्थमनुष्य इसका सेवन करनेसे सौ वर्षतक जीता है । यह बृहच्चन्दनादि तैल रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, दाह, स्वेद, दुर्गन्ध, कुष्ठ, खुजली आदि विकारोंको शीघ्र विनष्ट करता है ॥ ४-१२ ॥

हिक्कारोगमें पथ्य ।

स्वेदनं वमनं नस्यं धूमपानं विरेचनम् ।
निद्रा स्निग्धानि चाम्लानि मृदूनि लवणानि च १३॥

जीर्णाः कुलत्था गोधूमाः शालयः षष्टिका यवाः ।
एणतित्तिरिलावाद्या जाङ्गला मृगपक्षिणः ॥ १४ ॥
पक्वं कपित्थं लशुनं पटोलं बालमूलकम् ।
पौष्करं कृष्णतुलसी मदिरा नलदम्बु च ॥ १५ ॥
उष्णोदकं मातुलुङ्गं माक्षिकं सुरभीजलम् ।
अन्नपानानि सर्वाणि वातश्लेष्महराणि च ॥ १६ ॥
शीताम्बुसेकः सहसा त्रासो विस्मापनं भयम् ।
क्रोधो हर्षः प्रियोद्वेगः प्राणायामनिषेवणम् ॥ १७ ॥
दग्धासिक्तमृदाघ्राणं कूर्चे धाराजलार्पणम् ।
नास्यूर्द्धघातनं दाहो दीपदग्धहरिद्रया ।
पादयोर्द्व्यङ्गुलान्नाभेरूर्द्ध्वंश्वेष्टानि हिक्किनाम्॥ १८ ॥

स्वेदक्रिया, वमन, नस्य, धूमपान, विरेचन आदि क्रियायें, निद्रा, स्निग्ध और हलके अन्न, खट्टे और मृदु पदार्थ, सैंधानमक, पुरानी कुलथी, गेहूँ, शालि और साँठी धानोंके चावल, जौ आदि अन्न, काले हिरनका मांस, तीतर, लवा और जांगलदेशके पशु–पक्षियोंका मांस, एवं पकाहुआ कैथ, लहसुन, परवल और कच्ची मूली इनका शाक, पोहकरमूल, कालीतुलसी, मद्य, नीम, गरमजल, बिजौरे नींबूका रस, शहद, गोमूत्र और वात कफनाशक अन्नपान, शीतल जलका सेचन, अकस्मात् त्रास, विस्मय, भय, क्रोध और हर्षको उत्पन्न करने- वाले कामोंको करना प्रियजनके वियोगके कारण उत्पन्नहुआ उद्वेग और प्राणा- याम,जलीहुई मिट्टीपर जल छिडककर सूंघना, जलमें भिगोकर उसको सूँघना, नाभिके ऊपर दबाना, नाभिसे दो अंगुल ऊपर और दोनों पैरोंके दो अंगुल दीपकके द्वारा जलाईहुई हल्दीसे दाह देना ये सम्पूर्ण क्रियायें हिक्कारोगि- योंको हितकर हैं ॥ १३–१८ ॥

हिक्कारोगमें अपथ्य ।

वातमूत्रोद्गारकासशकृद्वेगविधारणम् ।
रजोनिलातपायासान् विरुद्धान्यशनानि च ॥१९॥
विष्टम्भीनि विदाहीनि रूक्षाणि कफदानि च ।
निष्पावं पिष्टकं माषं पिण्याकानूपजामिषम् ॥ १२० ॥

अवीदुग्धं दन्तकाष्ठं वस्तिं मत्स्यांश्च सर्षपान्।
अम्लं तुम्बीफलं कन्दं तैलभृष्टमुपोदिकाम्॥
गुरुशीतञ्चान्नपानं हिक्कारोगी विवर्जयेत्॥ २१॥

अपानवायु, मूत्र, डकार, खाँसी और मलके वेगको रोकना, धूल, वायु और धूपका सेवन, परिश्रम, विरुद्ध भोजन, विष्टम्भी (विबन्धकारी), दाहकारक, रूखे और कफकारक पदार्थ, सेमकी फली, पिट्ठी, उडद, पिण्याक (तिल-कल्क), अनूपदेशोत्पन्न जीवोंका मांस, भेडका दूध, दतौन, वस्तिकर्म, मछली-सरसों, अम्लपदार्थ, लौकी, कन्द शाक, (आलू घुइया, जिमीकन्द. आदि), तैलमें भुनेहुए पदार्थ, पोईका शाक, भारी और शीतल अन्नपान इन सब पदार्थोंको हिक्कारोगी तत्काल त्यागदेवे॥ १९-१२१॥

श्वासरोगमें पथ्य।

विरेचनं स्वेदनधूमपानं प्रच्छर्द्दनादिस्वपनं दिवा च।
पुरातनाः षष्टिकरक्तशालिकुलत्थगोधूमयवाः प्रशस्ताः २२
शशाहिभुक्तित्तिरिलावदक्षशुकादयो धन्वमृगाद्विजाश्च।
पुरातनं सर्पिरजाप्रसूतं पथ्यो घृतञ्चापिसुरा मधूनि॥ २३॥
निदिग्धिका वास्तुकतण्डुलीयं जीवन्तिका मूलकपोतिकञ्च
पटोलवार्त्ताकुरसोनपथ्या जम्बीरबिम्बीफलमातुलुङ्गम् २४
द्राक्षा त्रुटिः पौष्करमुष्णवारि कटुत्रयं गोजानितञ्च मूत्रम्।
अन्नानि पानानिचभेषजानि कफानिलघ्नानिचयानियानि
वक्षःप्रदेशादपि पादयुग्मे करस्थयोर्मध्यमयोर्द्वयोश्च।
प्रदीप्तलौहेन च कण्ठकूपे दाहोऽपि च श्वासिनि पथ्यवर्गः २६

विरेचन, स्वेदक्रिया, धूमपान, वमन कराना, दिनमें सोना, पुराने साँठी और लालशालिधानोंके चावल, कुलथी, गेहूँ, जौ आदि अन्न, खरगोश, मोर, तीतर, लवा, मुर्गा, तोता और धन्वदेशजातपशु पक्षियोंका मांस, पुराना घी, बकरीका दूध, बकरीका घी, मदिरा, शहद, कटेरी, बथुआ, चौलाई, जीवंती, कच्ची मूली, करञ्ज, परवल, बैंगन, लहसुन, हरड, जम्बीरीनिम्बू, कन्दूरीका शाक, बिजौरानींबू, दाख, छोटी इलायची, पोहकरमूल, गरमजल, सोंठ, मिरच, पीपल, गोमूत्र एवं कफ वातनाशक अन्न पान और ओषधियाँ, वक्षः-स्थल, दोनों पाँव और दोनों हाथोंकी मध्यम अंगुलीकी मूल और कण्ठमें तपाये हुए लोहेके द्वारा दाहदेना ये सब श्वासरोगमें पथ्य हैं॥ २२-२६॥

श्वासरोगमें अपथ्य।

मूत्रोद्गारच्छर्दितृट्कासरोधो नस्यं बस्तिर्दन्तकाष्ठं श्रमश्च।
पन्थाभारो रेणवः सूर्यपादा विष्टम्भीनि ग्राम्यधर्मो विदाहि॥
आनूपानामामिषं तैलभृष्टं निष्पावश्च श्लेष्मकारीणि माषः।
रक्तस्रावः पूर्ववातोऽनुपानं मेषीसर्पिर्दुग्धमम्भोऽपि दुष्टम्॥
मत्स्याः कन्दाः सर्षपाश्चान्नपानं रूक्षं शीतं गुर्वपिश्वासयामित्रम्

मूत्र, डकार, वमन, तृषा, खाँसी इनके वेगको रोकना, नस्य, बस्तिकर्म, दतौन करना, परिश्रम करना, मार्गमें चलना, बोझ उठना, धूल और धूपका सेवन, विष्टम्भी (मलरोधक) पदार्थ, स्त्रीप्रसङ्ग, दाहकारक पदार्थ, अनूपदेशजन्य जीवोंका मांस, तेलमें तलेहुए पदार्थ, सेमकी फली, कफकारक पदार्थ, उडद, रुधिरका निकलवाना, पूर्वदिशाकी वायुका सेवन, अनुपान (आहार विहारादिके पश्चात् शीतल जल पीना), भेंडका दूध, भेंडका घृत, दूषित जल, मछली, कन्दशाक, सरसों एवं रूक्ष, शीतल और गुरुपाकी अन्नपान ये सब श्वासरोगमें अपथ्य हैं॥ १२७॥ १२८॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां हिक्काश्वासरोग चिकित्सा।

स्वरभंगकी चिकित्सा।

वाते सलवणं तैलं पित्ते सर्पिः समाक्षिकम्।
कफे सक्षारकटुकं क्षौद्रं कवल इष्यते॥ १॥
गले तालुनि जिह्वायां दन्तमूलेषु चाश्रितः।
तेन निष्कृष्यते श्लेष्मा स्वरश्चास्य प्रसीदति॥ २॥
स्वरोपघाते मेदोजे कफवद्विधिरिष्यते।
क्षयजे सर्वजे चापि प्रत्याख्याय चरेत्क्रियाम्॥ ३॥

वातजनित स्वरभंगरोगमें कुछ गरम कडवे तैलमें सैंधानमक मिलाकर कवल धारण करे,पित्तज स्वरभेदमें घी और शहद मिलाकर और कफोत्पन्न स्वरभङ्ग-रोगमें जवाखार, मिरच या पीपल और शहद इनको एकत्र मिलाकर उनका कवल धारण करावे। इस प्रकार करनेसे गला, तालु, जीभ और दाँतोंकी जडोंमें स्थित कफ बाहर निकल जाता है, इससे स्वर शुद्ध होजाताहै। मेदोजन्य स्वरभेदमें कफजनित स्वरभेदकी समान चिकित्सा करनी चाहिये। क्षयज और त्रिदोषज स्वरभेदरोगमें स्वरभङ्ग रोगमें कहीहुई पृथक् पृथक् दोषोंकी मिश्रित चिकित्सा करे॥ १-३॥

अजमोदां निशां धात्रीं क्षारं वह्निं विचूर्णयेत् ।
मधुसर्पिर्युतं लीढ्वा स्वरभेदमपोहति ॥ ४ ॥

अजमोद, हल्दी, आमले, जवाखार और चीता इन सबके समान भाग चूर्णको घी और शहदमें मिलाकर चाटनेसे स्वरभेदरोग दूर होता है ॥ ४ ॥

बदरीपत्रकल्कं वा घृतभृष्टं ससैन्धवम् ।
स्वरोपघाते कासे च लेहमेनं प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

बेरके कच्चे पत्तोंको पीसकर घीमें भूनकर सेंधानमकका चूर्ण मिलालेवे । इसको स्वरभंग और कासरोगमें सेवन करनेसे विशेष लाभ होताहै ॥ ५ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् ।
पिबेन्मूत्रेण मतिमान् कफजे स्वरसंक्षये ॥ ६ ॥

कफजनित स्वरभंगमें पीपल, पीपलामूल, मिरच और सोंठ इन ओषधियोंका समानभाग चूर्ण गोमूत्रके साथ सेवन करना चाहिये ॥ ६ ॥

चव्यादिचूर्ण ।

चव्याम्लवेतसकटुत्रयातिन्तिडीक-
तालीसजीरकतुगादहनैः समांशैः ।
चूर्णं गुडैः प्रमृदितं त्रिसुगन्धियुक्तं
वैस्वर्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम् ॥ ७ ॥

चव्य, अमलवेत, सोंठ, मिरच, पीपल, विषांबिल (तिन्तडी) तालीसपत्र, जीरा, वंशलोचन, चीता, दारचीनी, छोटी इलायची और तेजपात इन सब ओषधियोंका चूर्ण समान भाग और समस्त चूर्णकी बराबर पुराना गुड लेकर सबको एकत्र मर्दन करलेवे । यह चूर्ण स्वरभंग, पीनस और कफजनित अरुचिरोगमें सेवन करना चाहिये ॥ ७ ॥

त्र्यम्बकाभ्र ।

अभ्रं मेचकमारितं पलमितं व्याघ्री बला गोक्षुरं
कन्या पिप्पलिमूलभृङ्गवृषकाः पत्रं तथा बादरम् ।
धात्रीरात्रिगुडूचिकाः पृथगतैः स्वत्त्वैः पलांशैर्युतं
संमर्द्यातिमनोरमं सुवलितं कृत्वा यदासेवितम् ॥ ८ ॥
वातोत्थं कफपित्तजं स्वरगदं यच्च त्रिदोषात्मकं
ह्यत्युच्चैर्वदतो हतं बहुविधं पानीयदोषोद्भवम् ।

कासं श्वासमुरोग्रहं सयकृतं हिक्कां तृषां कामला-
मर्शांसि ग्रहणीं ज्वरं बहुविधं शोथं क्षयश्चार्बुदम्।
हन्ति त्र्यम्बकमभ्रमद्भुततरं वृष्यातिवृष्यं परं
वह्नेर्वृद्धिकरं रसायनवरं सर्वामयध्वंसि तत्॥ ९॥

कृष्णाभ्रककी भस्मको ४ तोले लेकर कटेरी, खिरैंटी, गोखुरू, घीकुँवार, पीपलामूल, भाङ्गरा, अडूसा, बेरके पत्ते, आमले, हल्दी और गिलोय इनके चार चार तोले रसके द्वारा क्रमसे पृथक् पृथक् भावना देकर उत्तम प्रकारसे खरल करके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। यह त्र्यम्बकाभ्र सेवन करतेही वात, कफ और पित्तसे उत्पन्नहुए वा त्रिदोषज अथवा बहुत जोरसे चिल्लानेसे और अनेक प्रकारके पानादिकोंके दोषसे उत्पन्न हुये स्वररोगको एवं खाँसी, श्वास, उरोरोग, यकृत्, हिक्का, तृषा, कामला, अर्श, संग्रहणी, विविध प्रकारके ज्वर, शोथ, क्षय, अर्बुद और अन्यान्य सर्वप्रकारके रोगोंको नष्ट करताहै। एवं अत्यन्त वीर्यवर्द्धक, अग्निको दीपन करनेवाला और श्रेष्ठ रसायन है॥९॥

भैरवरस।

रसं गन्धं विषं टङ्कं मरिचं चव्यचित्रकम्।
आर्द्रकस्य रसेनैव सम्मर्द्य वटिकां ततः॥ १०॥
गुञ्जात्रयप्रमाणेन खादेत्तोयानुपानतः।
स्वरभेदं निहन्त्याशु श्वासं कासं सुदुस्तरम्॥ ११॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, सुहागा, मिरच, चव्य और चीता इनके समानभाग चूर्णको अदरखके रसमें खरल करके तीन तीन रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन एक एक गोली मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करनेसे स्वरभेद, दारुण श्वास और कासरोग शीघ्र नष्ट होता है॥ १०॥ ११॥

किन्नरकण्ठरस।

रसं गन्धकमभ्रञ्च माक्षिकं लौहमेव च।
कर्षप्रमाणं संगृह्य वैक्रान्तं रसपादिकम्॥ १२॥
वैक्रान्तार्द्धं तथा हेम रौप्यं हेमचतुर्गुणम्।
वासायाश्च तथा भार्ग्या बृहत्योरार्द्रकस्य च॥ १३॥
स्वरसेन सरस्वत्या भावयित्वा पृथक् पृथक्।
रक्तिद्वयमिताः कुर्याद्वटीश्छायाप्रशोषिताः॥ १४॥

स्वरभेदानशेषांश्च कासान् श्वासांश्च दारुणान् ।
निखिलान्कफजान्व्याधीन् वातश्लेष्मसमुद्भवान् १५॥
हन्यात्किन्नरकण्ठाख्यो रसोऽसौ रुद्रनिर्मितः ।
किन्नरस्येव कण्ठस्य स्वरोऽस्य प्राशनाद्भवेत् ॥ १६ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, अभ्रकभस्म, सोनामाखीभस्म और लोहभस्म ये प्रत्येक औषधि एकएक कर्ष, वैक्रान्तमणिभस्म चार मासे, सुवर्णभस्म २ मासे और चाँदीकी भस्म ८ मासे इन सबको एकत्र पीसकर अडूसेका पत्ते, भारंगीकी जडकी छाल, कटेरी, बडीकटेरी, अदरख और ब्राह्मी इनके स्वरसमें अलग अलग भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे और उनको छायामें सुखालेवे । यह रस सर्वप्रकारके स्वरभंगरोग, खाँसी, श्वास, सम्पूर्ण कफजनित और वातकफोत्पन्न व्याधियोंको नष्ट करता है और इस रसके सेवन करनेसे किन्नरके कण्ठकी समान उत्तम स्वर होजाता है ॥ १२-१६ ॥

निदिग्धिकावलेह ।

निदिग्धिका तुला ग्राह्या तदर्द्धं ग्रन्थिकस्य तु ।
तदर्द्धं चित्रकस्यापि दशमूलञ्च तत्समम् ॥ १७ ॥
जलद्रोणद्वये क्वाथ्यं गृह्णीयादाढकं ततः ।
पूते क्षिपेत्तदर्द्धं तु पुराणस्य गुडस्य च ॥ १८ ॥
सवमेकत्र कृत्वा तु लेहवत्साधु साधयेत् ।
अष्टौ पलानि पिप्पल्यास्त्रिजातकपलन्तथा ॥ १९ ॥
मरिचस्य पलञ्चैकं सर्वमेकत्र चूर्णितम् ।
मधुनः कुडवं दत्त्वा तदश्नीयाद्यथानलम् ॥ २० ॥
निदिग्धिकावलेहोऽयं भिषग्भिर्मुनिभिर्मतम् ।
स्वरभेदहरो मुख्यं प्रतिश्यायहरस्तथा ॥ २१ ॥
कासश्वासाग्निमान्द्यादिगुल्ममेहगलामयान् ।
अनाहमूत्रकृच्छ्राणि हन्याद्ग्रन्थ्यर्बुदानि च ॥ २२ ॥

कटेरी १०० पल, पीपलामूल ५० पल, चीता २५पल और दशमूल समभाग मिश्रित २५ पल इन सबको एकत्र कूटकर दो द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते एक आढक जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें क्वाथसे आधा पुराना गुड डालकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे । जब पककर

लेहकी समान सिद्ध होजावे तब नीचे उतारकर उसमें पीपलका चूर्ण ३२ तोले, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात इनका समान भाग मिश्रित चूर्ण ४ तोले और मिरचोंका चूर्ण ४ तोले एवं शीतल होनेपर १६ तोले शहद डालकर सबको अच्छे प्रकारसे मिलादेवे और एक चिकने वर्त्तनमें भरकर रखदेवे। फिर इसको जठराग्निके बलाबलके अनुसार सेवन करे। इस अवलेहको आयुर्वेदज्ञ मुनियोंने कहा है। यह विशेषकर स्वरभङ्ग और प्रतिश्यायको दूर करताहै एवं खाँसी, श्वास, मन्दाग्नि,गुल्म, प्रमेह, गलेके रोग, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, ग्रन्थि और अर्व्बुद इन सबको नष्ट करताहै ॥ १७-२२ ॥

व्याघ्रीघृत।

व्याघ्रीस्वरसाविपक्कं रास्नावाट्यालगोक्षुरव्योषैः।
सर्पिः स्वरोपघातं हन्यात्कासञ्च पञ्चविधम् ॥ २३ ॥
" शुष्कद्रव्यमुपादाय स्वरसानामसम्भवे।
वारिण्यष्टगुणे साध्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ "

हरीकटेरीके स्वरस एवं रायसन, खिरैंटी, गोखुरू और त्रिकुटा इनके कल्कके साथ यथाविधि घृतको सिद्धकरे। इस घृतको उष्णदुग्धके साथ पान करनेसे स्वरक्षय और पाँचों प्रकारकी खाँसीको नष्ट करताहै। " कटेरीके स्वरसके अभावमें १ भाग सूखी कटेरीको लेकर अठगुने जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उसको छानकर ग्रहणकरे " ॥ २३ ॥

सारस्वतघृत (ब्राह्मीघृत)।

समूलपत्रमादाय ब्राह्मीं प्रक्षाल्य वारिणा।
उदूखले क्षोदयित्वा रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ २४ ॥
रसे चतुर्गुणे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
औषधानि तु पेष्याणि तानीमानि प्रदापयेत् ॥२५॥
हरिद्रा मालती कुष्ठं त्रिवृता सहरीतकी।
एतेषां पलिकान्भागान् शेषाणि कार्षिकाणि च २६॥
पिप्पल्योऽथ विडङ्गानि सैन्धवं शर्करा वचा।
सर्वमेतत्समालोड्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ २७ ॥
एतत्प्राशितमात्रेण वाग्विशुद्धिः प्रजायते।
सप्तरात्रप्रयोगेण किन्नरैः सह गीयते ॥ २८ ॥

अर्द्धमासप्रयोगेण सोमराजीवपुर्भवेत् ।
मासमात्रप्रयोगेण श्रुतमात्रन्तु धारयेत् ॥ २९ ॥
हन्त्यष्टादशकुष्ठानि अर्शांसि विविधानि च ।
पञ्चगुल्मान्प्रमेहांश्च कासं पञ्चविधं तथा ॥ ३० ॥
वन्ध्यानामपि नारीणां नराणामल्परेतसाम् ।
घृतं सारस्वतं नाम बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ३१ ॥

जड और पत्तोंसहित ब्राह्मीको जलसे धोकर ओखलीमें कूटकर वस्त्रमें उसका रस निचोड लेवे । ऐसा रस चार प्रस्थ, गौका घी एक प्रस्थ, एवं हल्दी, मालतीके फूल, कूठ, निसोत और हरड ये प्रत्येक ओषधि चार चार तोले, पीपल, वायविडंग, सैंधानमक, खाँड और वच ये प्रत्येक दो दो तोले इन सबको एकत्र पीसकर आर उक्त रसमें मिलाकर मन्दमन्द अग्निकेद्वारा घृतको पकावे जब पकते पकते घृतमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर एक उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे । इस घृतको सेवन करतेही वाणी अत्यन्त शुद्ध होजाती है । सातदिनतक सेवन करनेसे किन्नरकी समान गाने लगता है । १५ दिन तक पान करनेसे शरीर चन्द्रमाकी समान कान्तिमान् हो जाता है और एक महीनेतक सेवन करनेसे सुनतेही बातको धारण करलेता है । अर्थात् स्मरण शक्ति अत्यन्त तीव्र होजाती है । यह सारस्वत नामक घृत १८ प्रकारके कुष्ठ, अनेक प्रकारका अर्श, पाँच प्रकारका गुल्म, प्रमेह और पाँचों प्रकारकी खाँसीको नष्ट करता है । वन्ध्यास्त्रियों और अल्पवीर्यवाले मनुष्योंके लिये भी यह अत्यन्त उपयोगी है । एवं बल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि करता है ॥

भृंगराजाद्यघृत ।

भृङ्गराजामृतावल्लीवासकदशमूलकासमर्द्दरसैः ।
सर्पिः सपिप्पलीकं सिद्धं स्वरभेदकासजिन्मधुना ॥ ३२ ॥

भांगरेके स्वरस, गिलोयके काथ, अडूसेके पत्तोंके स्वरस, दशमूलके काथ और कसौंदीके पत्तोंके स्वरसके साथ पीपलका चूर्ण और गोघृत मिलाकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । इस घृतको शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे स्वरभङ्ग और कासरोग दूर होता है ॥ ३२ ॥

स्वरभङ्गमें पथ्य ।

स्वेदो वस्तिर्धूमपानं विरेकः कवलग्रहः ।
नस्यं भाले शिरावेधो यवा लोहितशालयः ॥ ३३ ॥

हंसाटवीताम्रचूडकेकिमांसरसाः सुरा ।
गोक्षुरः काकमाची च जीवन्ती बालमूलकम् ॥३४॥
द्राक्षा पथ्या मातुलुङ्गं लशुनं लवणार्द्रकम् ।
ताम्बूलं मरिचं सर्पिः पथ्यानि स्वरभेदिनाम् ॥३५॥

स्वेदक्रिया, बस्तिकर्म, धूम्रपान, विरेचन, कवल धारण करना, नस्य देना, मस्तककी शिराको वेधना, जौ, लालशालिधानोंके चावल, हंस, जंगली मुर्गा और मोर इनका मांसरस, मदिरा, गोखुरू, मकोय, जीवन्तीशाक, कच्चीमूली, दाख, हरड, बिजौरानींबू, लहसुन, सैंधानमक, अदरख, पान, कालीमिरच और घृत ये समस्त पदार्थ स्वरभङ्गरोगवाले मनुष्योंको हितकारी हैं॥३३-३५॥

स्वरभङ्गमें अपथ्य ।

आमं कपित्थं वकुलं शालूकं जाम्बवानि च ।
तिन्दुकानि कषायाणि वमिं स्वप्नं प्रजल्पनम् ॥
अनुपानञ्च यत्नेन स्वरभेदी विवर्जयेत् ॥ ३६ ॥

कैथका कच्चाफल, मौलसिरीके फल भसींडा, जामुन, तेंदुके फल, कषाय रसवाले पदार्थोंका सेवन, वमन, अधिक निद्रा, बहुत बोलना और अनुपान (अर्थात् आहार विहारादिपर शीतल जलादिका पान) इन सबको स्वरभंग-रोगी यत्नपूर्वक त्यागदेवे ॥ ३६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां स्वरभङ्ग-चिकित्सा ।

अरोचक चिकित्सा ।

बस्तिं समीरणे पित्ते विरेकं वमनं कफे ।
कुर्याद्धृद्यानुकूलानि हर्षणञ्च मनोजजे ॥ १ ॥

वातकी अरुचिमें वस्तिकर्म, पित्तकी अरुचिमें विरेचन, कफजनित अरुचिमें वमन, शोक और कामादिके द्वारा उत्पन्नहुए अरुचिरोगमें हृदयको हितकारी और मनके अनुकूल और हर्षजनक क्रिया करे ॥ १ ॥

कुष्ठसौवर्चलाजाजी शर्करा मरिचं विडम् ।
धात्र्येलापद्मकोशीरपिप्पल्यश्चन्दनोत्पलम् ॥ २ ॥
लोध्रं तेजोवती पथ्या त्र्यूषणं सयवाग्रजम् ।
आर्द्रदाडिमनिर्यासश्चाजाजीशर्करायुतः ॥ ३ ॥

सतैलमाक्षिकाश्चैते चत्वारः कवलग्रहाः ।
चतुरोऽरोचकान् हन्युर्वाताद्येकजसर्वजान् ॥ ४ ॥

(१) कूठ, कालानमक, जीरा, खाँड, कालीमिरच और विडनमक. (२) आमले, इलायची, पद्माख, खस, पीपल, चन्दन और कमल. (३) लोध, चव्य, हरड, सोंठ, पीपल, मिरच और जवाखार. (४) अदरखका रस, अनारका रस, जीरा और खाण्ड इन चारों प्रयोगोंमेंसे किसी एकको कडवेतैल और शहदमें मिलाकर उसके कवल धारण करनेसे वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज अरुचि दूर होती है । ये चारों प्रयोग अरुचि नाशक हैं ॥ २-४ ॥

त्वङ्मुस्तमेलाधान्यानि मुस्तमामलकं त्वचः ।
त्वक् च दार्वी यमान्यश्च पिप्पल्यस्तेजोवत्यपि ॥ ५ ॥
यमानीतिन्तिडीकश्च पञ्चैते मुखशोधनाः ।
श्लोकपादैरभिहिताः सर्वारोचकनाशनाः ॥ ६ ॥

(१) दारचीनी, नागरमोथा, छोटी इलायची और धनियाँ. (२) नागरमोथा, आमले और दारचीनी. (३) दारचीनी, दारुहल्दी और अजवायनका चूर्ण, (४) पीपल और चव्यका चूर्ण, (५) इमली और अजवायनका चूर्ण ये पाँचों प्रकारके योग मुखको शुद्ध करनेवाले हैं । ये सब प्रयोग सब प्रकारकी अरुचिको दूर करते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

अम्लीकागुडतोयश्च त्वगेलामरिचान्वितम् ।
अभ्यक्तच्छन्दरोगेषु शस्तं कवलधारणम् ॥ ७ ॥

पुरानी इमली और गुडको एकत्र जलके साथ पीसकर उसमें दारचीनी, इलायची और मिरचोंका चूर्ण मिलाकर उसका मुखमें कवल धारण करनेसे अरुचि दूर होती है ॥ ७ ॥

कारव्यजाजी मरिचं द्राक्षा वृक्षाम्लदाडिमम् ।
सौवर्चलं गुडं क्षौद्रं सर्वारोचकनाशनम् ॥ ८ ॥

कालाजीरा, सफेदजीरा, मिरच, दाख, अमलवेत, अनार, कालानमक, गुड और शहद इन सबको समानभाग लेकर एकत्र खरल करके सेवन करनेसे सर्वप्रकारकी अरुचि दूर होती है ॥ ८ ॥

विड्चूर्णमधुसंयुक्तो रसो दाडिमसम्भवः ।
असाध्यमपि संहन्यादरुचिं वक्त्रधारितः ॥ ९ ॥

अनारके रसमें विरियासंचरनमक और शहद मिलाकर उसका मुखमें कवल धारण करनेसे असाध्य अरुचि भी दूर होती है ॥ ९ ॥

त्रीण्यूषणानि त्रिफला रजनीद्वयञ्च
चूर्णीकृतानि यवशूकविमिश्रितानि।
क्षौद्रान्वितानि वितरेन्मुखधारणार्थ-
मन्यानि तिक्तकटुकानि च भेषजानि ॥ १० ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी और जवाखार इनको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको शहद और तिक्त, कटु ओषधियों (अर्थात् दारचीनी, इलायची आदि) के साथ मिलाकर मुखमें धारण करनेसे अरुचि नष्ट होती है ॥ १० ॥

यमानीषाडव।

यमानी तिन्तिडीकञ्च नागरञ्चाम्लवेतसम्।
दाडिमं बदरञ्चाम्लं कार्षिकाण्युपकल्पयेत् ॥ ११ ॥
धान्यसौवर्चलाजाजी वराङ्गञ्चार्द्धकार्षिकम्।
पिप्पलीनां शतञ्चैव द्वे शते मरिचस्य च ॥ १२ ॥
शर्करायाश्च चत्वारि पलान्येकत्र चूर्णयेत्।
जिह्वाविशोधनं हृद्यं तच्चूर्णं भक्तरोचनम् ॥ १३ ॥
हृत्पीडापार्श्वशूलघ्नं विबन्धानाहनाशनम्।
कासश्वासहरं ग्राही ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥ १४ ॥

अजवायन, पुरानी इमली, सोंठ, अमलवेंत, अनारका रस और खट्टे बेर, ये प्रत्येक ओषधि दो दो तोले एवं धनियाँ, कालानमक, कालाजीरा और दारचीनी ये सब एक एक तोला, पीपलें १००, काली मिरचें २०० और मिश्री १६तोले लेकर सबको एकत्र चूर्ण करलेवे। यह चूर्ण जिह्वाको शुद्ध करनेवाला, हृदयको हितकारी, भोजनमें रुचि उत्पन्न करनेवाला एवं हृदयकी पीडा, पसलीकी पीडा, विबन्ध, आनाह, खाँसी, श्वास, मलावरोध, संग्रहणी और अर्श इन सब विकारोंको नष्ट करताहै ॥ ११-१४ ॥

कलहंस कांजी।

अष्टादशाशिग्रुफलानिदशमरिचानि विंशतिःपिप्पल्याश्च।
आर्द्रकपलं गुडपलं प्रस्थद्वयमारनालस्य च ॥ १५ ॥

एतद्धिङलवणसहितं खजाहतं सुरभिगन्धाढ्यम् ।
व्यञ्जनसहस्रघाति ज्ञेयं कलहंसकं नाम ॥ १६ ॥

सहिंजनेके बीज १८, मिरचें १०, पीपल २०, अदरख ४ तोले, गुड ४-तोले, काँजी २प्रस्थ और विरियासंचरनमक ४तोले इन सबको एकत्र मिलाकर उसमें सुगन्धिके लिये दारचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर इनका चूर्ण यथोचित परिमाणमें मिलादेवे । यह कलहंस नामक काँजी अनेक प्रकारके पदार्थोंसे उत्पन्न हुई अरुचिको दूर करती है ॥ १५ ॥ १६ ॥

तिन्तिडीपानकं ।

भागास्तु पञ्च चिञ्चायाः खण्डस्यापि चतुर्गुणाः ।
धान्यकार्द्रकयोर्भागाश्चतुर्जाताद्धभागिकम् ॥ १७ ॥
द्विगुणं जलमेतेषामेकपात्रे विलोडितम् ।
पिहितं तप्तदुग्धेन ततो वस्त्रपरिप्लुतम् ॥ १८ ॥
विधिना धूपिते पात्रे कृत्वा कर्पूरवासितम् ।
नृपयोग्यमिदं पानं भवेद्युक्त्या सुयोजितम् ॥ १९ ॥

पुरानी इमली २० तोले, खाँड ८० तोले, धनियाँ २ तोले, अदरख २ तोले, दारचीनी, तेजपात, छोटी इलायची और नागकेशर ये प्रत्येक एक एक तोला और इन सबसे दूना शीतल जल लेकर सब ओषधियोंको एक मिट्टीके शुद्ध पात्रमें भरकर उत्तम प्रकारसे मथे, उसमें थोडा गरम दूध डालकर ढकदेवे । पश्चात् उसको वस्त्रमें छानकर कर्पूर आदि सुगन्धितपदार्थोंसे सुवासित करके अगर आदिके द्वारा धूप दियेहुए पात्रमें भरकर रखदेवे । युक्तिपूर्वक प्रयोग कियाहुआ यह पानक राजाओंके सेवन करनेयोग्य होता है ॥ १७-१९ ॥

रसाला ।

अर्द्धाढकं सुचिरपर्युषितस्य दध्नः
खण्डस्य षोडशपलानि शशिप्रभस्य ।
सर्पिः पलं मधु पलं मरिचं द्विकर्ष
शुण्ठ्याः पलार्द्धमपि चार्द्धपलं चतुर्णाम् ॥२०॥
शुक्लोपले ललनया मृदुपाणिघृष्टा
कर्पूरचूर्णसुरभीकृतभाण्डसंस्था ।

एषा वृकोदरकृता सुरसा रसाला
आस्वादिता भगवता मधुसूदनेन ॥ २१ ॥
" रसाला बृंहणी वृष्या स्निग्धा बल्या रुचिप्रदा " ॥

खट्टा दही ४ सेर, सफेद खाँड ६४ तोले, गोघृत ४ तोले, शहद ४ तोले, कालीमिरच २ तोले, सोंठ २ तोले एवं दारचीनी, तेजपात, छोटी इलायची और नागकेशर ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेवे । फिर सफेद पत्थरपर मृदुकरपल्लवोंवाली ललनाके द्वारा पीसेहुए ओषधियोंके चूर्णको और अन्य सब पदार्थोंको एकत्र मिलाकर कपूरके द्वारा सुवासित कियेहुए पात्रमें भरकर रख-देवे । इस अत्यन्त स्वादिष्ट रसालेको भीमसेनने बनाया था और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आस्वादन कियाथा । " यह रसाला अत्यन्त पुष्टिकारक, वीर्य-वर्द्धक, स्निग्ध, बलकारक और रुचिकर है " ॥ २० ॥ २१ ॥

रसकेसरी ।

रसगन्धौ समौ शुद्धौ दन्तीकाथेन मर्दयेत् ।
देवपुष्पं बाणमितं रसपादं तथामृतम् ॥ २२ ॥
माषमात्रञ्च तत्सेव्यं नागरेण गुडेन वा ।
सर्व्वारोचकशूलार्त्तिमामवातं विनाशयेत् ॥ २३ ॥
विषूचीमग्निमान्द्यञ्च भक्तद्वेषं सुदारुणम् ।
रसो निवारयत्येष केसरी करिणं यथा ॥ २४ ॥

शुद्धपारा १ तोला और शुद्धगन्धक १ तोला दोनोंकी कज्जली, लौंग ५-तोले और शुद्धमीठा तेलिया ३ मासे इन सबको एकत्र दन्तीके काथके द्वारा खरल करके एक एक मासेकी गोलियाँ बनालेवे । इसको सोंठके चूर्ण अथवा गुडके साथ मिलाकर सेवन करनेसे सब प्रकारकी अरुचि, शूल, आमवात, विषूचिका और मन्दाग्नि आदि रोग दूर होते हैं । यह रस विशेषकर अरु-चिको तो इस प्रकार दूरकरदेताहै जैसे सिंह हाथीको ॥ २२-२४ ॥

सुधानिधि रस ।

रसगन्धौ समौ शुद्धौ दन्तीकाथेन भावयेत् ।
जम्बीरस्वरसेनैव आर्द्रकस्य रसेन च ॥ २५ ॥
मातुलुङ्गस्य तोयेन तस्य मज्जरसेन च ।
पश्चाद्विशोष्य सर्वांशं टङ्कणञ्चावतारयेत् ॥ २६ ॥

देवपुष्पं बाणामितं रसपादं तथामृतम् ।
माषमात्रञ्च तत्सेव्यं नागरेण गुडेन वा ॥
सर्वारोचकशूलार्त्तिमामवातं सुदारुणम् ॥ २७ ॥

शुद्ध पारा १ तोला और शुद्धगन्धक १ तोला, दोनोंकी कज्जली करके दन्तीके क्वाथ जम्बीरीनिम्बूके रस, अदरखके रस, बिजौरेनिंबूके रस और बिजौरेनिम्बूके बीजोंके रसमें क्रमसे भावना देकर सुखालेवे। फिर उसमें सुहागा दो तोले, लौंग ५ तोले और शुद्ध मीठा तेलिया ३ माशे मिलाकर खरल करलेवे । इस रसको प्रतिदिन एक एक मासेकी मात्रासे सोंठके चूर्ण अथवा गुडके साथ मिलाकर सेवन करनेसे सत प्रकारकी अरुचि, शूल और दारुण आमवातरोग नष्ट होताहै ॥ २५-२७ ॥

सुलोचनाभ्र ।

पलं सुजीर्णं गगनन्तु वज्रकं तेजोवती कोलमुशीरदाडिमम्। धात्र्यम्ललोणीरुचकंपृथक् दशपलोन्मितं मर्द्दितमेव सेवितम् ॥ २८॥ अरोचकं वातकफत्रिदोषजं पित्तोद्भवंगन्धसमुद्भवंनृणाम् । कासंस्वराघातमुरोग्रहं रुजं श्वासं बलासं यकृतं भगन्दरम् ॥ २९ ॥ प्लीहाग्निमान्द्यं श्वयथुं समीरणं मेहं भृशं कुष्ठमसृग्दरं क्रिमिम् । शूलाम्लपित्तक्षयरोगमुद्धतं सरक्तपित्तं वमिदाहमश्मरीम् ॥ निहन्ति चार्शांसि सुलोचनाभ्रकं बलप्रदं वृष्यतमं रसायनम् ॥ ३० ॥

वज्र अभ्रककी पुरानी भस्म ४ तोले, चव्य, बेरकी गुठलीकी मींग, खस, अनार, आमले, चाङ्गेरी, नौनिया और बिजौरेनींबूके बीज प्रत्येक दस २ पल लेकर सबका एकत्र बारीक चूर्ण करके सेवन करे । यह सुलोचनाभ्रक वात, कफ और पित्त इन पृथक् २ दोषोंसे अथवा तीनों दोषोंके मिलनेसे उत्पन्न हुई वा दुर्गन्धजनित अरुचि एवं खाँसी, स्वरभेद, उरोरोग, श्वास, कफविकार, यकृत्, भगन्दर, प्लीहा, मन्दाग्नि, शोथ, वातरोग, प्रमेह, कुष्ठ, रक्तप्रदर, कृमिरोग, शूल, अम्लपित्त, वमन, दाह, पथरी और सर्वप्रकारकी बवासीर इन सम्पूर्ण व्याधियोंको नष्ट करता है । एवं अत्यन्त बलकारक, वीर्यवर्द्धक और रसायन है ॥ २८-३० ॥

अरोचकमें पथ्य ।

वस्तिर्विरेको वमनं यथाबलं धूमोपसेवा कवलग्रहस्त-
था। तिक्तानि काष्ठानि च दन्तघर्षणं चित्रान्नपानानि
हितैः कृतानि च ॥३१॥ गोधूममुद्गारुणशालिषष्टिका
मांसं वराहाजशशैणसम्भवम् । चेङ्गो झषाण्डं मधुरा-
लिकेल्लिशः प्रोष्ठी खलीशः कवयी च रोहितः ॥३२॥
कर्कारुवेत्राग्रनवीनमूलकं वार्ताकुशोभाञ्जनमोचदा-
डिमम्। भव्यंपटोलं रुचकं घृतं पयो बालानि तालानि
रसोनशूरणम् ॥ ३३ ॥ द्राक्षा रसालं नलदम्बु काञ्जिकं
मद्यं रसाला दधि तक्रमार्द्रकम् । कङ्कोलखर्ज्जूरपि-
यालतिन्दुकं पक्कं कपित्थं बदरं विकङ्कतम् ॥ ३४ ॥
तालास्थिमज्जा हिमबालुका सिता पथ्या यमानी
मरिचानि रामठम् । स्वाद्वम्लतिक्तानि च देहमार्जना
वर्गोऽयमुक्तोऽरुचिरोगिणे हितः ॥ ३५ ॥

अरुचिरोगमें रोगीके बलानुसार वस्तिक्रिया, विरेचन, वमन (ये सब क्रियायें रोगीके बलानुसार कराना), धूमपान, कवल, तिक्तरसवाले काष्ठकी दाँतुन, नानाप्रकारके पदार्थोंके द्वारा बनायेहुए रुचिकारक और हितकर अन्न पान, गेहूँ, मूँग, लालशालिधान और साठीधानोंके चावल, सूअर, बकरा खरगोश, काला हिरन इनका मांस चेङ्गनामक मछली, मछलीके अण्डे, मधुरालिका (क्षुद्रमत्स्यविशेष), इल्लिश (इलीस मछली), छोटी मछली, केई मछली, खलीश मछली और रोहूमछली, ककोडा, बेंतके अंकुर, कच्ची मूली, बैंगन, सहिंजनेकी फली, केलेका मोचा, अनार, भव्यफल (कमरख), परबल, बिजौरानीम्बू, घी, दूध, कच्चे ताडके फल, लहसुन, जिमीकन्द, दाख, आम, नीम, काँजी, मद्य, रसाला, दही, मट्ठा, अदरख, कंकोल, खजूर, चिरौंजी, तिन्दुके फल, पक्काकैथ, बेर, कण्टाई, ताडके फलकी गिरी, कपूर, मिश्री, हरड, अजवायन, मिरच, हींग, एवं खट्टे, मीठे और कडवे पदार्थोंका सेवन और शरीरमार्जन ये सब अरुचिरोगवाले मनुष्यके लिये हितकारक हैं ॥ ३२–३५॥

अरोचकमें अपथ्य ।

कासोद्गारक्षुधानेत्रवारिवेगविधारणम् ।

अहृद्यान्नमसृङ्मोक्षं क्रोधं लोभं भयं शुचम् ॥
दुर्गन्धरूपसेवाश्च न कुर्य्यादरुचौ नरः ॥ ३६ ॥

अरुचिरोगमें खाँसी डकार भूँख आँसुके वेगको रोकना, अहृद्य पदार्थोंका सेवन, रक्त मोक्षण (रुधिर निकलवाना,) क्रोध, लोभ, भय, शोक, दुर्गन्धित और घृणित वस्तुओंका दर्शन आदि क्रियायें नहीं करनी चाहिये॥३६॥

इति भैषज्यरत्नावल्याम् अरोचक-चिकित्सा।

छर्दि (वमन)-चिकित्सा।

आमाशयोत्क्लेशभवा हि सर्वाश्छर्द्यो मता लङ्घनमेव तस्मात्। प्राक्कारयेन्मारुतजां विमुच्य संशोधनं वा कफपित्तहारि ॥ १ ॥

आमाशयमें उत्क्लेश होनेसे सब प्रकारकी वमन होती है, इसलिये वमनरोगमें प्रथम लंघन कराने चाहिये। वातजवमनको छोडकर अन्य दोषोंकी अधिकता होनेपर कफपित्तनाशक ओषधियोंके द्वारा वमन विरेचन करावे ॥१

चन्दनेनाक्षमात्रेण संयोज्यामलकीरसम्।
पिबेन्माक्षिकसंयुक्तं छर्दिस्तेन निवार्यते ॥ २ ॥

दो तोले आमलोंके रसमें एक तोला सफेद चन्दन घिसकर उत्तम शहद मिलाकर पानकरनेसे वमन होना दूर होताहै ॥ २ ॥

चन्दनञ्च मृणालञ्च बालकं नागरं वृषम्।
सतण्डुलोदकक्षौद्रः पीतकल्को वमिं जयेत् ॥ २ ॥

श्वेतचन्दन, कमलकी नाल, सुगन्धवाला, सोंठ और अडूसा इन ओषधियोंके समानभाग चूर्णको चावलोंके जल और शहदके साथ मिलाकर पीनेसे वमन दूर होती है ॥ २ ॥

क्काथः पर्पटजः पीतः सक्षौद्रश्छर्द्दिनाशनः ॥ ३ ॥

पित्तपापडेके क्वाथको शहदके साथ पीनेसे छर्दिरोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

हरीतकीनां चूर्णन्तु लिह्यान्माक्षिकसंयुतम्।
अधोभागीकृते दोषे क्षिप्रं वान्तिर्निवर्त्तते ॥ ४ ॥

हरडोंके चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवनसे दस्त होकर वमनहोना शीघ्र दूर होता है ॥ ४ ॥

कषायो भृष्टमुद्गस्य सलाजमधुशर्करः ।
छर्द्यतीसारतृड्दाहज्वरघ्नः संप्रकाशितः ॥ ५ ॥

भुनीहुई मूँगके काथमें खीलें, शहद और खाँड मिलाकर पीनेसे वमन, अतिसार, प्यास, दाह और ज्वरादिविकार शमन होते हैं ॥ ५ ॥

जातीरसः कपित्थस्य पिप्पलीमरिचान्वितः ।
क्षौद्रेण युक्तः शमयेल्लेहोऽयं छर्दिमुल्बणम् ॥ ६ ॥

आमलोंका रस या क्वाथ कैथका गूदा, पीपल और मिरचोंका चूर्ण इनको यथोचित परिमाणमें शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे यह अवलेह प्रबल वमनको शमन करता है ॥ ६ ॥

पित्तात्मिकायान्त्वनुलोमनार्थं द्राक्षाविदारीक्षुरसे-
स्त्रिवृत्स्यात् । कफाशयस्थं त्वतिमात्रवृद्धं पित्तं जये-
त्स्वादुभिरूर्द्ध्वमेव ॥ ७॥ शुद्धस्य काले मधुशर्कराभ्यां
लाजैश्च मन्थं यदि वापि पेयाम् । प्रदापयेन्मुद्गरसेन
वापि शाल्योदनं जाङ्गलजै रसैर्वा ॥ ८ ॥

पित्तज वमन रोगमें-अनुलोमनके लिये दाख, विदारीकन्द और ईखके रसके साथ निसोतका चूर्ण मिलाकर पान करावे । कफाशयमें स्थित अत्यन्त बढेहुए पित्तको शमन करनेके लिये दाख आदि मधुर रसयुक्त द्रव्योंके द्वारा शरीरके शुद्ध होनेपर रोगीको जठराग्निके बलानुसार शहद और खाँड मिलाकर खीलोंका मन्थ, पेया अथवा मूँगका यूष, वा जाङ्गल देशके पशु-पक्षियोंके मांसरसके साथ शालिधानोंके चावलोंका भात भोजन करावे ॥ ७ ॥ ८ ॥

कफात्मिकायां वमनं प्रशस्तं सपिप्पलीसर्षपनिम्बतोयैः।
पिण्डीतकैः सैन्धवसंप्रयुक्तैश्छर्द्यां कफामाशयशोधनार्थम् ९

कफज वमनरोगमें-कफयुक्त आमाशयके शुद्ध करनेके लिये पीपल, सरसों और नीमकी छालके काथको गरम जलके साथ पान कराकर अथवा सैंधानमक और मैनफलका चूर्ण सेवन कराकर वमन करानी चाहिये ॥ ९ ॥

विडङ्गत्रिफलाविश्वचूर्णं मधुयुतं जयेत् ।
विडङ्गप्लवशुण्ठीनामथवा श्लेष्मजां वमिम् ॥ १० ॥

वायविडंग, त्रिफला, सोंठ इनका चूर्ण अथवा वायविडंग, नागरमोथा और सोंठ इनके चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवनकरनेसे कफजवमिरोग नष्ट होय१०॥

सजाम्बवं वा बदरस्य चूर्णं मुस्तायुतां कर्कटकस्य शृङ्गीम् ।
दुरालभां वा मधुसंप्रयुक्तां लिह्यात्कफच्छर्दिविनिग्रहार्थम् ११

जामुन और बेरकी गिरीकाचूर्ण, वा नागरमोथा, काकडासिंगीकाचूर्ण अथवा धमासेके चूर्ण और शहदको मिलाकर सेवन करनेसे कफकी वमन दूर हो ११

श्रीफलस्य गुडूच्या वा कषायो मधुसंयुतः ।
पेयश्छर्दित्रये शीतो मूर्वा वा तण्डुलाम्बुना ॥ १२ ॥

त्रिदोषज वमनरोगमें बेलकी छाल और गिलोयके शीतल काथको शहदके साथ अथवा मूर्वाके काथको चावलोंके जलके साथ पान करना चाहिये १२॥

लाजाकपित्थमधुमागधिकोषणानां
क्षौद्राभयां त्रिकटुधान्यकजीरकाणाम् ।
पथ्यामृता मरिचमाक्षिकपिप्पलीनां
लेहास्त्रयः सकलवम्यरुचिप्रशान्त्यै ॥ १३ ॥

(१) खीलें, कैथका गूदा, शहद, पीपल और कालीमिरच । (२) शहद, हरड, सोंठ, मिरच, पीपल, धनियाँ और ज़ीरा (३) हरड, गिलोय, मिरच, शहद और पीपलका चूर्ण । इन तीनों प्रयोगोंमेंसे किसी एक अवलेहको सेवन करनेसे सब प्रकारकी वमन अरुचि शान्त होतीहै ॥१३॥

अश्वत्थवल्ककं शुष्कं दग्ध्वा निर्वापितं जले ।
तज्जलं पानमात्रेण च्छर्दिमाशु व्यपोहति ॥ १४ ॥

पीपलकी सूखी छालको जलाकर पानीमें बुझालेवे । उस जलको वस्त्रमें छानकर पान करनेसे वमन होना तत्काल दूर होताहै ॥ १४ ॥

एलादिचूर्ण ।

एलालवङ्गगजकेशरकोलमज्जलाजाप्रियङ्गुघनचन्दन-
पिप्पलीनाम् । चूर्णानि माक्षिकासितासहितानि
लीढ्वा च्छर्दिं निहन्ति कफमारुतपित्तजातम् ॥ १५॥

इलायची, लौंग, नागकेशर, बेरकी गुठलीकी गिरी, खीलें, फूलप्रियंगु, नागरमोथा, लालचन्दन और पीपल इन ओषधियोंके समानभाग चूर्णको शहद मिश्रीके साथ मिलाकर सेवनकरनेसे वात, कफ और पित्त इन तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई वमन शमन होती है ॥ १५ ॥

रसेन्द्र।

अजाजीधान्यपथ्याभिः सक्षौद्राभिः कटुत्रिकैः।
एभिस्सार्द्धं भस्मसूतः सेव्यो वान्तिप्रशान्तये ॥१६॥

कालाजीरा, धनियाँ, हरड, त्रिकुटा और शहद ये सब समानभाग और पारेकी भस्म आधाभाग इन सबको एकत्र मिलाकर वमनको शान्त करनेके लिये सेवन करना चाहिये ॥ १६ ॥

वृषध्वजरस ।

शुद्धं रसं गन्धकञ्च लौहमेव समांशिकम् ।
मधुकं चन्दनं धात्री सूक्ष्मैला सलवङ्गकम् ॥ १७ ॥
टङ्कणं पिप्पली मांसी तुल्यं पारदसम्मितम् ।
विदारीक्षुरसाभ्याञ्च भावयेद्दिनसप्तकम् ॥ १८ ॥
संशोष्य मर्द्दयेद्यामं छागीदुग्धेन यत्नतः ।
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं विदारीरससंयुतम् ॥ १९ ॥
वातात्मिकां पित्तयुक्तां छर्दिं हन्ति सशोणिताम् ।
वृषध्वजरसोनाम वृषध्वजविनिर्मितः ॥ २० ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहभस्म, मुलैठी, लाल चन्दन, आमले, छोटी इलायची, लौंग, सुहागा, पीपल और बालछड इन सबको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण करके विदारी कन्द और ईखके रसमें क्रमसे सात सात दिन तक भावनादेवे। फिर उसको सुखाकर बकरीके दूधमें एक प्रहरतक खरलकरके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन एक एक गोली विदारीकन्दके रसके साथ भक्षण करे। यह रस वातज, पित्तज और रुधिरकी वमनको दूरकरताहै॥

पद्मकाद्य घृत ।

पद्मकामृतनिम्बानां धान्यचन्दनयोः पचेत् ।
कल्के क्काथे च हविषःप्रस्थं छर्दिनिवारणम् ॥ २१ ॥
तृष्णारुचिप्रशमनं दाहज्वरहरं परम् ॥ २२ ॥

पद्माख, गिलोय, नीम, धनियाँ और चन्दन इनके क्काथ और कल्कके साथ एक प्रस्थ घीको पकालेवे। यह घृत सेवन करतेही वमन, तृषा, अरुचि, दाह और ज्वर दूर होते हैं॥ २१ ॥ २२ ॥

छर्दिरोगमें पथ्य।

विरेचनच्छर्दनलंघनानि स्नानं मृजा लाजकृतश्च मण्डः।
पुरातनः षष्टिकशालिमुद्गकलायगोधूमयवा मधूनि ॥ २३ ॥
शशाहिभुक्तित्तिरिलावकाद्यामृगाद्विजाजाङ्गलसाङ्गताश्च
मनोज्ञनानारसगन्धरूपा रसाश्च यूषा अपि षाडवाश्च॥२४॥
रागाःखडाःकाम्बलिकासुरा च वेत्राग्रकुस्तुम्बुरुनारिकेलम्
जम्बीरधात्रीसहकारकोलद्राक्षाकपित्थानि पचेलिमानि२५
हरीतकी दाडिमबीजपूरं जातीफलं बालकानिम्बवासा।
सिताशताह्वाकरिकेसराणि भक्ष्यामनःप्रीतिकरा हिताश्च॥
भुक्तस्य वक्त्रे शिशिराम्बुसेकः कस्तूरिकाचन्दनमिन्दुपादाः
मनोज्ञगन्धान्यनुलेपनानि पुष्पाणि पत्राणि फलानि चापि
रूपाणिशब्दाश्च रसाश्चगन्धाःस्पर्शाश्चये सस्यमनोऽनुकूलाः।
दाहश्च नाभेस्त्रियवोपरिष्टादिदं हि पथ्यं वमनातुरेषु ॥२८॥

विरेचन, वमन, लंघन, स्नान, शरीरका मार्जन, खीलोंका माँड, पुराने सांठी और शालिधानोंके चावल, मूँग, मटर, गेहूँ, जौ ये सब अन्न, शहद, एवं खरगोश, मोर, तीतर, लवा आदि पक्षी, हिरन आदि पशु, अण्डज जीव और मनको प्यारे लगनेवाले नानाप्रकारके रूप, रस और सुगन्धसे युक्त जाङ्गल देशके पशु-पक्षियोंका मांसरस, यूष, खाण्डव, आमका मुरब्बा, खड- (यूष विशेष,)काम्बालिक यूष (एक विशेषप्रकारकी काँजी)मद्य, बेंतका अग्र-भाग, धनियाँ, नारियल, जम्बीरी नींबू, आमले, आम, बेर, दाख और स्वयं पकाहुआ कैथका फल,हरड,अनार,बिजौरानींबू, जायफल, सुगन्धवाला, नीम, अडूसा, मिश्री, सौंफ, नागकेशर,रुचिकर भक्ष्य पदार्थ, भोजन करनेके पश्चात् मुखपर शीतल जल छिडकना, कस्तूरी,चन्दन, चाँदनी,मनोहर और सुगान्धित पदार्थोंका प्रलेप, सुगन्धित पुष्प, पत्र, फल, सुन्दररूप, कर्णप्रिय शब्द, सुस्वादु रस,सुगन्धियुक्त पदार्थ, कोमलस्पर्श और मनको प्रिय लगनेवाले अन्नादिकोंका आहार और रोगीकी नाभिसे ऊपर तीन जौका अन्तर रखकर दग्ध लौहद्वारा दाहदेना ये सब वमन रोगमें आहार विहारादि क्रियायें हितकारीहैं।॥२३-२८॥

छर्दिरोगमें अपथ्य।

नस्यं वस्तिं स्वेदनं स्नेहपानं रक्तस्रावं दन्तकाष्ठं नवान्नम्।

बीभत्सेक्षांभीतिमुद्वेगमुष्णं स्निग्धासात्म्याहृद्यवैरोधिकान्नम्
शिम्बीबिम्बीकोषातकयोर्मधूकंचित्रामेलांसर्षपान्देवदालीं
व्यायामश्च च्छत्रिकामञ्जनश्च छर्द्यां सत्यां वर्जयेदप्रमत्तः ॥ ३० ॥

नस्य, वस्तिक्रिया, स्वेद देना, घृतादि स्नेहपदार्थोंका पान, रुधिर निकलवाना, दतौन करना, नये अन्नका भोजन, घृणित वस्तुओंको देखना, भय, उद्वेग, एवं गरम, स्निग्ध, असात्म्य, अरुचिकर और विरुद्धपदार्थोंका भोजन, सेमकी फली, कन्दूरी, लौकी, महुआ, चीता, सरसों, देवदाली, व्यायाम, साँपकी छतरीका शाक और अञ्जन लगाना, वमन रोगमें ये सब अपथ्य हैं ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां छर्दिरोग-चिकित्सा।

तृषाकी चिकित्सा ।

तृष्णायां पवनोत्थायां सगुडं दधि शस्यते ।
रसाश्च बृंहणाः शीता गुडूच्या रस एव च ॥ १ ॥

वातजनित तृषामें गुड मिलाहुआ दही, शीतल और बलकारक रस और गिलोयका रसपान करना चाहिये ॥ १ ॥

पित्तजायान्तु तृष्णायां पक्कोदुम्बुरजो रसः ।
तत्क्काथो वा हिमस्तद्वत् सारिवादिगणाम्बु वा ॥ २ ॥

पित्तकी पिपासामें पकेहुए गूलरके फलोंका रस वा गूलरका क्काथ पान करावे । अथवा सारिवादिगण (अनन्तमूल, मुलैठी, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, पद्माख, महुआ, कम्भारी और खस) की ओषधियोंको समान भाग मिश्रित दो तोले लेकर आधपाव जलमें रात्रिमें भिगोदेवे । फिर दूसरे दिन प्रातःकाल छ नकर पान करावे ॥ २ ॥

लाजोदकं मधुयुतं शीतं गुडाविमर्दितम् ।
काश्मर्यशर्करायुक्तं पिबेत्तृष्णार्दितो नरः ॥ ३ ॥

आधपाव खीलोंको एक सेर गरम जलमें रात्रिमें भिजोकर दूसरे दिन प्रातःकाल छानकर उसमें शहद,गुड, कुम्भेरका चूर्ण और मिश्री प्रत्येक छःछःमासे मिलाकर थोडा थोडा बारम्बार पान करनेसे पिपासा शान्त होती है ॥ ३ ॥

बिल्वाढकीधातकिपञ्चकोलदर्भेषु सिद्धं कफजां निहन्ति ।
हितं भवेच्छर्दनमेव चात्र तप्तेन निम्बप्रसवोदकेन ॥ ४ ॥

बेलगिरी, अरहरके पत्ते, धायके फूल, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और कुशाकी जड इनका क्वाथ बनाकर पानकरनेसे कफजनित तृषा शान्त होती है। अथवा कफकी तृषामें नीमकी छाल, नीमके फूल अथवा नीमके पत्तोंका गरम काढा पिलाकर वमन करानेसे विशेष उपकार होताहै ॥ ४ ॥

क्षतोत्थितां रुग्विनिवारणेन जयेद्रसानामसृजश्च पानैः।
क्षयोत्थितां क्षीरजलं निहन्यान्मांसोदकं वाथ मधूदकं वा॥५॥

क्षतके कारण उत्पन्नहुई तृषामें क्षतनिवारक ओषधियोंका सेवन, मांसरस और कृष्णमृग, खरगोश आदिका मन्दोष्ण रक्त पान कराना चाहिये और क्षयजनित तृषामें दूध मिलाहुआ जल (लस्सी), या मांसरस अथवा शहद मिलाहुआ वर्षाका जल पान कराना चाहिये ॥ ५ ॥

गुर्वन्नजामुल्लिखनैर्जयेत्तु क्षयादृते सर्वकृताश्च तृष्णाम् ६॥

क्षयकी तृषाको छोडकर गुरुपाकी पदार्थोंके खानेसे उत्पन्नहुई तृषाको और अन्य सर्व प्रकारकी तृषाओंको वमन कराकर दूर करना चाहिये ॥ ६ ॥

अतिरूक्षदुर्बलानां तृषां शमयेन्नृणामिहाशु पयः।
छागो वा घृतभृष्टः शीतो मधुरो रसो हृद्यः ॥ ७ ॥

अत्यन्त रूक्ष और दुर्बलदेहवाले मनुष्योंके तृषारोगमें बकरीका दूध या घीमें भुना हुआ बकरेके मांसका शीतल यूष और मधुररस ये सब हितकारी हैं। और हृदयको प्रियहैं ॥ ७ ॥

गोस्तनेक्षुरसक्षीरयष्टीमधुमधूत्पलैः।
नियतं नस्यतः पीतैस्तृष्णा शाम्यति दारुणा ॥ ८ ॥

दाखोंका रस या क्वाथ, ईखका रस, दूध, मुलैठीका क्वाथ, शहद और कुमोदनी (नीलोफर) के फूलोंका रस इनको नासिकाके द्वारा पान करनेसे या इनका नस्य लेनेसे दारुण तृषा शान्त होती है ॥ ८ ॥

क्षीरेक्षुरसमाध्वीकैः क्षौद्रसीधुगुडोदकैः।
वृक्षाम्लाम्लैश्च गण्डूषास्तालुशोषनिवारणाः ॥ ९ ॥

दूध, ईखका रस, महुएकी मद्य, शहद, सीधु नामक मद्य (शिर्का,) गुडका शर्बत, विषाम्बिल और अम्लद्रव्योंके रसके द्वारा गण्डूष (कुल्ले) धारण करनेसे तालुशोष दूर होता है ॥ ९ ॥

आम्रजम्बुकषायो वा पिबेन्माक्षिकसंयुतः।
छर्दिं सर्वां प्रणुदति तृष्णाश्चैवापकर्षति ॥ १० ॥

आम अथवा जामुनके हरेपत्तोंका काथ बनाकर उसमें शहद मिलाकर पान करनेसे सबप्रकारकी वमन और तृषा नष्ट होती हैं ॥ १० ॥

वटशुङ्गसितालोध्रदाडिमं मधुकं मधु ।
पिबेत्तण्डुलतोयेन छर्दितृष्णानिवारणम् ॥ ११ ॥

वडके अंकुर, मिश्री, लोध, अनार, मुलैठी और शहद इन सबको समान भाग लेकर सबको एकत्र पीसकर चावलोंके जलके साथ पान करनेसे वमन और तृषा निवृत्त होती है ॥ ११ ॥

केशरं मातुलुङ्गस्य सक्षौद्रं दाडिमीयुतम् ।
क्षणमात्रेण दुर्वारां तृष्णां कवलतो जयेत् ॥
दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगण्डूषधारणम् ॥ १२ ॥

बिजौरे नींबूके फूलोंकी केशर, शहद और अनारका रस इनको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर इनका कवल धारण करनेसे क्षणमात्रमें ही दुःसाध्य तृषा और शहदके गण्डूष धारण करनेसे दाह और तृषा शान्त होती है॥१२॥

असञ्चार्य्या तु या मात्रा गण्डूषे सा प्रकीर्त्तिता ।
सुखं सञ्चार्य्यते या तु सा मात्रा कवले हिता ॥१३॥

जितने द्रव्य मुखमें इतनी औषधि भरले कि जो मुखमें चलायी न जासके उसको गण्डूष कहतेहैं और मुखमें भरी हुई औषधि जो अच्छे प्रकारसे मुखमें चलाई जासके उसको कवल कहते हैं ॥ १३ ॥

वटशुङ्गामयक्षौद्रलाजनीलोत्पलैर्दृढा ।
गुडिका वदनन्यस्ता क्षिप्रं तृष्णामुदस्याति ॥ १४ ॥

वडके अंकुर, कूठ, मधु, खीलें और नीलकमल इन सबको समभाग लेकर एकत्र खरल करके गोली बनालेवे । इन गोलियोंको मुखमें धारण करनेसे तत्काल तृषा निवारण होती है ॥ १४ ॥

ओदनं रक्तशालीनां शीतं माक्षिकसंयुतम् ।
भोजयेत्तेन शाम्येत छर्दिस्तृष्णा चिरोत्थिता ॥१५॥

पुराने लालशालिके चावलोंके शीतल भातको शहद मिलाकर खानेसे बहुतदिनोंकी वमन और तृष्णा दूर होती है ॥ १५ ॥

वारिशीतं मधुयुतमाकण्ठाद्वा पिपासितम् ।
पाययेद्वामयेच्चापि तेन तृष्णा प्रशाम्यति ॥ १६ ॥

तृषितरोगीको कण्ठपर्यन्त शहद मिलाहुआ शीतल जल पान कराकर वमन करादेनेसे तृषा शान्त होती है ॥ १६ ॥

मूर्च्छाच्छर्दितृषादाहस्त्रीमद्यभृशकर्षिताः ।
पिबेयुः शीतलं तोयं रक्तपित्ते मदात्यये ॥ १७ ॥
पूर्वामयातुरः सन् दीनस्तृष्णार्दितो जलं याचन् ।
लभते न चेदाश्वेव मरणं प्राप्नोति दीर्घरोगं वा ॥ १८ ॥
तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विमुञ्चति ।
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु न क्वचिद्वारि वार्यते ॥ १९ ॥
अन्नेनापि विना जन्तुः प्राणान्धारयते चिरम् ।
तोयाभावे पिपासार्त्तः क्षणात्प्राणैर्विमुच्यते ॥ २० ॥

मूर्च्छा, वमन, पिपासा, दाह आदिरोग, अत्यन्त स्त्रीप्रसंग और अत्यन्त मद्यपान करनेसे जिनका शरीर अत्यन्त क्षीण होगया हो ऐसे मनुष्योंको एवं रक्तपित्त और मदात्ययरोगमें शीतल जल पान करना चाहिये । यदि उक्त रोगोंसे आक्रान्त और तृषासे अत्यन्त पीडित मनुष्य दीन होकर जलको माँगे तब उसको शीघ्र जल न मिलनेसे उसकी मृत्यु होजाती है अथवा रोगकी वृद्धि होती है। कारण, तृषासे मोह (मूर्च्छा) उत्पन्न होताहै और उससे मृत्यु होजाती है। इसलिये सभी अवस्थाओंमें तृषातुररोगीको जल देना चाहिये । मनुष्य अन्नके विना चिरकालतक जीवन धारण करसकता है,किन्तु जलके विना तृषितव्यक्ति क्षणमात्रमें ही प्राण विसर्जन करदेताहै ॥१७-२०॥

अत्यम्बुपानात्प्रभवन्ति रोगा निरम्बुपानाच्च स एव दोषः।
तस्माद्बुधः प्राणविवर्द्धनार्थं मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि ॥२१॥

अधिक जल पान करनेसे अथवा प्यास लगने पर बिलकुल जल न पीनेसे अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होता है। इसलिये बुद्धिमान् प्राणरक्षाके लिये बारम्बार थोडा २ जलपान करे ॥ २१ ॥

रसादिचूर्ण ।

रसगन्धककर्पूरैः शैलोशीरमरीचकैः ।
ससितैः क्रमवृद्धैश्च सूक्ष्मं कृत्वा त्वहर्मुखे ॥ २२ ॥
त्रिगुञ्जाप्रमितं खादेत्पिबेत्पर्युषिताम्बु च ।
भृशं तृषां निहन्त्येवमश्विभ्याश्च प्रकाशितम् ॥ २३ ॥

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, कपूर ३ तोले, शिलाजीत ४ तोले, खस ५ तोले, काली मिरचें ६ तोले और मिश्री ७ तोले लेकर सबका एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको प्रतिदिन प्रातःकाल तीन २ रत्ती प्रमाण भक्षण करे और ऊपरसे बासी जल पान करे तो यह अत्यन्त बढीहुई तृषाको शीघ्र शमन करताहै।इसको अश्विनीकुमारोंने प्रकाशित कियाहै ॥२३॥

महोदधिरस ।

ताम्रं चक्रिकया वङ्गं सूतं तालं सतुत्थकम् ।
वटाङ्कुररसैर्भाव्यं तृष्णाहृद्वल्लमानतः ॥ २४ ॥
सक्षौद्रमाम्रजम्बूत्थं पिबेत्क्वाथं पलोन्मितम् ।
सकृष्णा मधुना कुर्याद्गण्डूषान् शीतले स्थितः ॥२५॥
["यत्र केवल एव रसस्तत्र भस्मसूतो देयः ॥"]

ताम्रभस्म, वंगभस्म, रससिन्दूर, हरतालभस्म और शुद्ध तूतिया सबको समानभाग लेकर बडके अंकुरोंके रसमें खरलकर लेवे। इस रसको प्रतिदिन दो दो रत्ती प्रमाणसे सेवन करके ऊपरसे आम और जामुनकी छालके चार तोले काढेको शहद मिलाकर पान करे तो तृषा शान्त होती है । इस औषधको सेवन करनेपर शीतलशय्यापर शयन एवं शहद और पीपलके चूर्णका गण्डूष धारण करना चाहिये । [जहाँपर केवल रसशब्दही कहा हो वहाँ पारेकी भस्म देनी चाहिये]॥ २४ ॥ २५ ॥

तृष्णारोगमें पथ्य ।

शोधनं शमनं निद्रां स्नानं कवलधारणम् ।
जिह्वाधःशिरयोर्दाहो दीपदग्धहरिद्रया ॥ २६ ॥
कोद्रवाः शालयः पेया विलेपी लाजसक्तवः ।
अन्नमण्डो धन्वरसाः शर्करारागखाण्डवौ ॥ २७ ॥
भृष्टैर्मुद्गैर्मसूरैर्वा चणकैर्वा कृतो रसः ।
रम्भापुष्पं तैलकूर्चं द्राक्षापर्पटपल्लवाः ॥ २८ ॥
कपित्थाः कोलमम्लीका कूष्माण्डकमुपोदिका ।
खर्जूरं दाडिमं धात्री कर्कटी नलदम्बु च ॥ २९ ॥
जम्बीरं करमर्दश्च बीजपूरं गवां पयः ।
मधूकपुष्पं ह्रीबेरं तिक्तानि मधुराणि च ॥ ३० ॥

बालतालाम्बु शीताम्बु पयःपेटीप्रपाणकम् ।
माक्षिकं सरसीतोयं शताह्वानागकेशरम् ॥ ३१ ॥
एला जातीफलं पथ्या कुस्तुम्बुरु च टङ्कणम् ।
घनसारो गन्धसारः कौमुदीशिशिरानिलः ॥ ३२ ॥
चन्दनार्द्रप्रियाश्लेषो रत्नाभरणधारणम् ।
हिमानुलेपनञ्च स्यात्पथ्यमेतत्तृषातुरे ॥ ३३ ॥

संशोधन और संशमन ओषधियाँ, निद्रा, स्नान, कवलधारण करना दीपकके द्वारा जलाई हुई हल्दीसे जीभके नीचेकी दो शिराओंमें दागदेना, कोदों और शालिधानोंके चावल, पेया, विलेपी (चतुर्गुण जलसिद्धअन्न), खीलोंके सत्तू, भातका माँड, मरुदेशोत्पन्न पशु पक्षियोंके मांसका यूष, मिश्री, राग खाण्डव, भुनीहुई मूँग, मसूर और चनोंका यूष, नवीन केलेका मोचा या केलेका फूल, तैलकूर्च, दाख, पित्तपापडेके पत्ते, कैथ, बेर, इमली, पेठा, पोईका शाक, खजूर, अनार, आमले, ककडी, नीम, जम्बीरीनींबू, करौंदा, बिजौरा-नींबू, गौका दूध, महुएके फूल, सुगन्धवाला, तीखे और मीठे पदार्थ, कच्चे ताडके फलोंका जल, शीतल जल, कच्चे नारियलका जल, मीठे शर्बत, पन्ना शहद, नदीका जल, शतावर, नागकेशर, इलायची, जायफल, हरड, धनियाँ, सुहागा, कपूर, चन्दन, चाँदनी, शीतल वायु, चन्दनादिका लेप कीहुई स्त्रीका आलिङ्गन, रत्नजटित आभूषणोंका धारण करना और शीतल पदार्थोंका प्रलेप ये सब तृषारोगमें हितकारी हैं ॥ २६-३३ ॥

तृष्णारोगमें अपथ्य ।

स्नेहाञ्जनस्वेदनधूमपानव्यायामनस्यातपदन्तकाष्ठम् ।
गुर्वन्नमम्लं लवणं कषायं कटुं स्त्रियं दुष्टजलानि तीक्ष्णम् ॥
एतानि सर्वाणि हिताभिलाषी तृष्णातुरो नैव भजेत्कदाचित्

तैलघृतादि स्निग्धपदार्थ, अञ्जन, स्वेदक्रिया, धूमपान, व्यायाम, नस्य, धूपका सेवन, दाँतौन, गुरुपाकी अन्न, खट्टे, नमकीन, कषैले और चरपरे-पदार्थ, स्त्रीप्रसंग, दूषित जल और तीक्ष्णपदार्थ इन सबको तृषारोगी कदापि सेवन न करे ॥ ३४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां तृषारोगचिकित्सा ॥

मूर्च्छारोगकी चिकित्सा।

सेकावगाहौ मणयः सहाराः शीताः प्रदेहा व्यजनानिलाश्च।
शीतानिपानानिच गन्धवन्तिसर्वासुमूर्च्छास्वानिवारितानि

सर्व प्रकारके मूर्च्छारोगमें शीतल जलका सेचन और शीतल जलमें गोता लगाकर स्नान करना, मणि मुक्तादिके हारोंको पहरना, चन्दन कपूर आदि शीतल द्रव्योंका प्रलेप, ताड आदि पङ्खेकी पवन और कपूरआदिसे सुगन्धित कियेहुए शीतल पानीय पदार्थ ये सब मूर्च्छारोगमें हितकारी हैं॥ १॥

रक्तजायां तु मूर्च्छायां हितं शीतक्रियाविधिः।
मद्यजायां वमेन्मद्यं निद्रां सेवेद्यथासुखम्॥
विषजायां विषघ्नानि भेषजानि प्रयोजयेत्॥ २॥

रक्तके देखनेसे उत्पन्न हुई मूर्च्छामें शीतल उपचार करने चाहिये। मद्यपानजन्य मूर्च्छामें वमनकारक औषधियोंके द्वारा वमन कराकर उदरस्थ मद्यको निकालदेवे और रोगीको सुखपूर्वक शयन करादेवे। विषजनित मूर्च्छामें विषनाशक औषधियाँ प्रयोग करानी चाहिये॥ २॥

कोलमज्जोषणोशीरकेशरं शीतवारिणा।
पीतं मूर्च्छां जयेल्लीढ्वा कृष्णां वा मधुसंयुताम्॥ ३॥

बेरकी गिरी, कालीमिरच, खस और नागकेशर इनको शीतल जलमें पीस कर पीनेसे अथवा पीपलके चूर्णको शहद मिलाकर चाटनेसे मूर्च्छा दूर होतीहै

पिबेद्दुरालभाक्काथं सघृतं भ्रमशान्तये।
त्रिफलायाः प्रयोगो वा प्रयोगः पयसोऽपि वा॥
रसायनानां कौन्तस्य सर्पिषो वा प्रशस्यते॥ ४॥

धमासेके क्वाथमें घृत मिलाकर पानकरनेसे भ्रम शान्त होताहै अथवा हरड, बहेडा आमला इनके समानभाग चूर्णको शहदके साथ सेवन करनेसे भ्रम दूर होता है। इस रोगमें उष्ण दुग्ध पीना, दसवर्षके पुराने घृतकी मालिश और रसायन ओषधियोंका सेवन करना हितकारी है॥ ४॥

मधुना हन्त्युपयुक्ता त्रिफला रात्रौ गुडार्द्रकं प्रातः।
सप्ताहात्पथ्याशी मदमूर्च्छाकामलोन्मादान्॥ ५॥

हितकर पदार्थोंको भोजन करनेवाला रोगी प्रतिदिन रात्रिमें त्रिफलेके समान

भाग चूर्णको शहदके साथ एवं प्रातःकाल गुड और अदरखको भक्षण करे तो इससे एक सप्ताहमेंही मद, मूर्च्छा, कामला और उन्मादरोग दूर होय ॥ ५ ॥

अञ्जनान्यवपीडाश्च धूमाः प्रधमनानि च ।
सूचीभिस्तोदनं शस्तं दाहः पीडा नखान्तरे ॥ ६ ॥
लुञ्चनं केशलोम्नाञ्च दन्तैर्दशनमेव च ।
आत्मगुप्तावघर्षश्च हितस्तस्यावबोधने ॥ ७ ॥

त्रिदोष जनित मूर्च्छारोगमें तीक्ष्ण अञ्जन, लहसुन, अदरख आदिके रस और त्रिकुटेके चूर्णकी नस्य देना, पुराने कागज आदिका धूम ग्रहणकरना, प्रधमन,त्रिकुटे आदिकी चूर्ण कागजकी फुकनीमें रखकर नाकमें फूंकना, नखोंके भीतर सुई चुभोना, शरीरमें लोहेकी गरम शलाका जलाकर दागदेना शरीरको पीडित करना बाल और रोमोंको उखाडना, दाँतोंसे काटना और शरीरपर कौंछकी फलीको मर्दन करना आदि उपचारोंसे मूर्च्छितरोगीको चेतनता प्राप्त कराने चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

गुडं पिप्पलिमूलस्य चूर्णेनातिचिरं लिहन् ।
चिरादपि च सन्नष्टां निद्रामाप्नोत्यसंशयम् ॥ ८ ॥

पीपलामूलके चूर्णको गुडमें मिलाकर सेवन करनेसे चिरकालको नष्टहुई निद्रा फिर आजाती है ॥ ८ ॥

इक्षवः पोतकी माषाः सुरा मांसं घृतं पयः ।
गोधूमगुडमत्स्याश्च निद्रां कुर्वन्ति देहिनाम् ॥ ९ ॥

ईखका रस, पोईका शाक, उडद, मदिरा, मांस, घी, दूध, गेहूँ, गुड और मछली; ये सब पदार्थ मनुष्यको निद्रा प्राप्तकरानेवाले हैं ॥ ९ ॥

शक्राशनमजाक्षीरं पादलेपात्तदर्थकृत् ॥ १० ॥

भाँगको बकरीके दूधके साथ पीसकर पैरोंपर लेपकरनेसे निद्रा आतीहै१०

मूर्च्छान्तकरस ।

सिन्दूरं माक्षिकं हेम शिलाजत्वायसी तथा ।
शतमूल्या विदार्य्याश्च स्वरसेन विभावयेत् ॥ ११ ॥
श्लक्ष्णं पिष्ट्वा ततः कुर्याद्गुटिका वल्लसम्मिताः ।
रसो मूर्च्छान्तको हन्यादसौ मूर्च्छां शिवोदितः १२

रससिन्दूर, सुवर्णमाक्षिकभस्म, सुवर्णभस्म, शिलाजीत और लोहभस्म इन सबको समभाग लेकर एकत्र खरल करके शतावर और विदारीकन्दके स्वरसमें भावना देवे । फिर उसको बारीक पीसकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बना लेवे । इस मूर्च्छान्तक रसको शिवजीने वर्णन किया है । यह रस मूर्च्छाको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

अश्वगन्धारिष्ट ।

तुलार्द्धश्चाश्वगन्धाया मुषल्याः पलविंशतिः ।
मञ्जिष्ठाया हरीतक्या रजन्योर्मधुकस्य च ॥ १३ ॥
रास्नाविदारीपार्थानां मुस्तकत्रिवृतोरपि ।
भागान्दशपलान्दद्यादनन्ताश्यामयोस्तथा ॥ १४ ॥
चन्दनद्वितयस्यापि वचायाश्चित्रकस्य च ।
भागानष्टपलान् क्षुण्णानष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ १५ ॥
द्रोणशेषे कषायेऽस्मिन् पूते शीते प्रदापयेत् ।
धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम् ॥ १६ ॥
व्योषस्य द्विपलञ्चापि त्रिजातकचतुःपलम् ।
चतुःपलं प्रियङ्गोश्च द्विपलं नागकेशरम् ॥ १७ ॥
मासादूर्द्ध्वं पिबेदेनं पलार्द्धपरिमाणतः ।
मूर्च्छायापस्मृतीशोषमुन्मादमपि दारुणम् ॥ १८ ॥
कार्श्यमर्शांसि मन्दत्वमग्नेर्वातभवान् गदान् ।
अश्वगन्धाद्यरिष्टोऽयं पीतो हन्यादसंशयम् ॥ १९ ॥

असगन्ध ५० पल, सफेद मुसली २० पल, मंजीठ, हरड, हल्दी, दारुहल्दी, मुलैठी, रास्ना, विदारीकन्द, अर्जुनकी छाल, नागरमोथा और निसोत ये प्रत्येक ओषधि दस दस पल एवं अनन्तमूल, उसवा, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, बच और चीता ये प्रत्येक आठ आठ पल लेवे । सबको एकत्र कूटकर आठ द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते एक द्रोण जल शेष रहजाय तब उतार कर छानलेवे । फिर शीतल होनेपर उसमें धायके फूल १६ पल, शहद ३०० पल, त्रिकुटा ८ तोले, दारचीनी, इलायची और तेजपात ये प्रत्येक १६ तोले, फूलप्रियंगु १६ तोले और नागकेशर ८ तोले इन सबको बारीक चूर्ण करके डालदेवे । फिर इसको एक मिट्टीके शुद्ध पात्रमें भरकर और उसका उत्तम प्रका-

रसे मुँह बन्द करके रखदेवे । एक महीनेके बाद उसको निकालकर वस्त्रमें छानकर प्रातिदिन दो दो तोले परिमाण सेवन करे । यह अश्वगन्धादि अरिष्ट पान करते ही मूर्च्छा, अपस्मार, शोष, भयंकर उन्माद, कृशता, अर्श, अग्निकी मन्दता और अनेक प्रकारके रोगोंको निश्चय दूर करता है ॥ १३–१९ ॥

मूर्च्छारोगमें पथ्य ।

धूमोऽञ्जनं नावनमस्रमोक्षो दाहश्च सूचीपरितोदनानि । रोम्णां कचानामपि कर्षणानि नखान्तपीडा दशनोपदंशः ॥ २० ॥ नासामुखद्वारमरुन्निरोधे विरेचनच्छर्दनलङ्घनानि । क्रोधो भयं दुःखकरी च शय्या कथा विचित्रा च मनोहराणि ॥ २१ ॥ छाया नभोऽम्भः शतधौतसर्पिर्मृदूनि तिक्तानि च लाजमण्डः । जीर्णा यवालोहितशालयश्च कौम्भं हविर्मुद्गसतीनयूषाः २२ धन्वोद्भवा मांसरसाश्च रागाः सषाडवा गव्यपयः सिता च । पुराणकूष्माण्डपटोलमोचहरीतकी दाडिमनारिकेलम् ॥ २३ ॥ मधूकपुष्पाणि च तण्डुलीय उपोदिकान्नानि लघूनि चापि । प्रकृष्टनीरः सितचन्दनानि कर्पूरनीरं हिमबालुका च ॥ २४ ॥ अत्युच्चशब्दोऽद्भुतदर्शनानि गीतानि वाद्यान्यपि चोत्कटानि । श्रमः स्मृतिश्चिन्तनमात्मबोधो धैर्यञ्च मूर्च्छावति पथ्यवर्गः ॥ २५ ॥

धूमपान, अञ्जन लगाना, नस्य देना, रक्तमोक्षण, अग्निसे दाग देना, सुई चुबोना, रोम और बालोंको उखाडना, नखोंके भीतर पीडा पहुँचाना, दाँतोंसे काटना, नाक और मुँहको बन्दकरके श्वासको रोकना, विरेचन, वमन और लंघन कराना, क्रोध, भय, कष्टजनक शय्यापर शयन कराना, विचित्र और मनोहर (कथा) कहानी सुनाना, छाया, वर्षाका जल, सौबार धोयाहुआ घी, मृदु और कडवे पदार्थ, खीलोंका माँड, पुराने जौ, लालशालिधानोंके चावल, सौ वर्षका पुराना घी, मूँग और मटरका यूष जाङ्गल देशोत्पन्न जीवोंका मांसरस, राग खाण्डवयूष, गौका दूध, मिश्री, पुराना पेठा, परवल, केलेका मोचा, हरड, अनार, नारियल, महुयेके फूल, चौलाईका शाक, पोईका शाक, लघु (हल्के) अन्नोंका भोजन, स्वच्छ जल, सफेद चन्दन, कपुर सुवासित जल,

कपूर, जोरसे चिल्लाना, अद्भुत वस्तुओंका दर्शन, अत्यन्त तीव्र स्वरसे गाना, उत्कट स्वरवाले बाजे बजाना, परिश्रम, स्मरण, चिन्ता, आत्मज्ञान और धैर्य ये सब मूर्च्छितरोगीको हितकर हैं ॥ २०-२५ ॥

मूर्च्छारोगमें अपथ्य ।

ताम्बूलं पत्रशाकानि दन्तघर्षणमातपम् ।
विरुद्धान्यन्नपानानि व्यवायं स्वेदनं कटुम् ॥
तृड्निद्रयोर्वेगरोधं तक्रं मूर्च्छामयी त्यजेत् ॥ २६ ॥

ताम्बूल (पान), पत्रवाले शाक, दन्तधावन, धूपका सेवन, विरुद्ध अन्न-पान, स्त्रीप्रसङ्ग, स्वेदक्रिया, चरपरे द्रव्य, तृषा और निद्राके वेगको रोकना और मट्ठेका सेवन ये सब मूर्च्छारोगीको त्यागदेने चाहिये ॥ २६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मूर्च्छारोग-चिकित्सा ।

मदात्ययरोग-चिकित्सा ।

मन्थः खर्जूरमृद्वीका वृक्षाम्लाम्लकदाडिमैः ।
परूषकैः सामलकैर्युक्तो मद्यविकारनुत ॥ १ ॥

खीलोंका चूर्ण, खजूर, दाख, विषांविल, इमली, अनार, फालसे और आमले इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर सेवन करनेसे मद्यपान-जनित विकार नष्ट होता है ॥ १ ॥

मुद्गं सौवर्चलव्योषयुक्तं किञ्चिज्जलान्वितम् ।
जीर्णमद्याय दातव्यं वातपानात्ययापहम् ॥ २ ॥

कालानमक, सोंठ, मिरच और पीपल इनको अष्टमांश जलमें पीसकर मूँगके यूषके साथ जीर्णमद्यवाले रोगीको सेवनकरनेसे वातजमदात्ययविकार दूर होय२

मुद्गयूषः सितायुक्तः स्वादुर्वा पैशितो रसः ।
पित्तपानात्यये योज्यः सर्वतश्च क्रिया हिमाः ॥ ३ ॥

पित्तज मदात्ययरोगमें मिश्री मिलाकर मूँगका यूष और सुस्वादुमांसरस सेवन करना चाहिये और सर्व प्रकारके शीतल उपचार करने चाहिये ॥ ३ ॥

पानात्यये कफोद्भूते लङ्घनञ्च यथाबलम् ।
दीपनीयौषधोपेतं पिबेन्मद्यं समाहितः ॥ ४ ॥

कफोत्पन्न पानात्यय रोगमें रोगीके बलानुसार लंघन कराने चाहिये और दीपनीयगणकी ओषधियोंके चूर्णके साथ यथोचितमात्रासे मद्यपान कराना ॥४

सर्वजे सर्वमेवेदं प्रयोक्तव्यं चिकित्सितम् ।
आभिः क्रियाभिः सिद्धाभिः शमं याति मदात्ययः॥५

त्रिदोषजन्य मदात्ययरोगमें पूर्वोक्त वातादि तीनों दोषोंकी मिलीहुई चिकित्सा करनी चाहिये । इन सम्पूर्ण क्रियाओंके द्वारा चिकित्सा करनेसे त्रिदोषज मदात्ययरोग शमन होता है ॥ ५ ॥

सच्छर्दिमूर्च्छातीसारं मद्यं पूगफलोद्भवम् ।
सद्यः प्रशमयेत्पीतमातृप्तेर्वारि शीतलम् ॥ ६ ॥

अत्यन्त सुपारी खानेसे उत्पन्नहुई वमन, मूर्च्छा और अतिसार युक्त मदात्यमें तृप्तिपूर्वक शीतलजल पानकरनेसे शीघ्र शान्ति होती है ॥ ६ ॥

वन्यकरीषघ्राणाज्जलपानाल्लवणभक्षणादपि च ।
शाम्यति पूगफलमदश्चूर्णरुजीशर्कराकवलात ॥ ७ ॥

सुखेहुए आरने उपलोंको सूँघनेसे, अत्यन्त जल पीनेसे अथवा नमक खानेसे शखत सुपारीके भक्षण करनेसे उत्पन्नहुआ मदात्ययरोग नष्ट होती है । चूनाखानेसे मुख या जीभमें छाले होजानेपर खाँडके कवल धारण करना ॥७

सगुडः कूष्माण्डरसः शमयाति मदमाशु मदनकोद्रवजम् ।
धुस्तूरजश्च दुग्धं सशर्करं पानयोगेन ॥ ८ ॥

मैनफल और कोदोंअन्नके खानेसे उत्पन्न हुआ मद, पेठेके रसमें गुड मिलाकर खानेसे शीघ्र शमन होता है । और खाँड मिलाकर दूधको पीनेसे धतूरेका मद शान्त होताहै ॥ ८ ॥

फलत्रिकाद्यचूर्ण ।

फलत्रिकं त्रिवृच्छ्यामा देवदारुमहौषधम् ।
अजमोदा यमानी च दार्वी लवणपञ्चकम् ॥ ९ ॥
शतपुष्पा वचा कुष्ठं त्रिसुगन्ध्येलवालुकम् ।
सर्वाण्येतानि सञ्चूर्ण्य पिबेच्छीतेन वारिणा ॥१०॥
पानात्ययादिरोगाणां हरणेऽग्नेश्च दीपने ।
संग्रहग्रहणीध्वंसेऽप्येतदेवौषधं क्षमम् ॥ ११ ॥

हरड, बहेडा, आमला, निसोत, श्यामालता, देवदारु, सोंठ, अजमोद, अजवायन, दारुहल्दी, पाँचों नमक, सौंफ, बच, कूठ, दारचीनी, इलायची, तेजपात और एलुआ इन सब ओषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके शीतल जलके साथ सेवन करनेसे पानात्ययादि रोग दूर होतेहैं । अग्नि दीपन होतीहै संग्रहणीआदिव्याधियोंके नष्टकरनेमें यह परमोत्कृष्ट औषध है ॥

एलाद्यमोदक ।

एलां मधुकमग्निश्च रजन्यौ द्वे फलत्रिकम् ।
रक्तशालिं कणां द्राक्षां खर्जूरश्च तिलं यवम् ॥ १२ ॥
विदारीं गोक्षुरबीजं त्रिवृताञ्च शतावरीम् ।
सञ्चूर्ण्य मोदकं कुर्य्यात्सितया द्विप्रमाणया ॥ १३ ॥
धारोष्णेनापि पयसा मुद्गयूषेन वा समम् ।
पिबेदक्षप्रमाणाश्च प्रातर्नत्वाम्बिकां गदी ॥ १४ ॥
मद्यपानसमुत्थाना विकारा निखिला अपि ।
सेवनादस्य नश्यन्ति व्याधयोऽन्याश्च दारुणाः ॥ १५ ॥

इलायची, मुलैठी, चीता, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, लालशालिधानोंके चावल, पीपल, दाख, खजूर, तिल, जौ, विदारीकन्द, गोखुरूके बीज, निसोत और शतावर इन सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर उसमें सब चूर्णसे दुगुनी मिश्री मिलाकर दो दो तोलेके लड्डू बनालेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल भगवतीको प्रणाम करके इनमेंसे एक एक लड्डूके धारोष्णदूध या मूँगके यूषके साथ सेवन करे । इसको सेवनकरनेसे मद्यपानजनित सम्पूर्ण विकार और नानाप्रकारकी दारुण व्याधियाँ शीघ्र नष्ट होती हैं ॥ १२-१५ ॥

महाकल्याणवटी ।

हेमाभ्रञ्च रसं गन्धमयो मौक्तिकमेव च ।
धात्रीरसेन सम्मर्द्य गुञ्जामात्रां वटीं चरेत् ॥ १६ ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय तिलक्षौद्रमधुप्लुताम् ।
सिताक्षौद्रयुतां वापि नवनीतेन वा सह ॥ १७ ॥
अयथापानजा रोगा वातजाः कफपित्तजाः ।
गदाः सर्वे विनश्यति ध्रुवमस्य निषेवणात् ॥ १८ ॥

सुवर्णभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहभस्म और मोतीकी भस्म इन सबको समानभाग लेकर आमलोंके रसके साथ खरलकरके एक एक

रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । फिर प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक गोलीको विलोंके चूर्ण और शहदमें मिलाकर अथवा शहद मिश्रीके साथ या मक्खनके साथ मिलाकर भक्षण करे । इसके सेवनसे कुविधिद्वारा मद्यपान करनेसे उत्पन्नहुए रोग, वातज, कफज, पित्तज और अन्य सर्वप्रकारके रोग निश्चय नष्टहोते हैं॥

पुनर्नवाद्यं घृत ।

पयः पुनर्नवाक्काथयष्टिकल्कप्रसाधितम् ।
घृतं पुष्टिकरं पानान्मद्यपानहतौजसः ॥ १९ ॥

दूध, पुनर्नवेके काथ और मुलैठीके कल्कके साथ विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करके पान करनेसे मद्यपानसे क्षीणहुए शरीरकी पुष्टि होती है ॥ १९ ॥

मदात्ययरोगमें पथ्य ।

संशोधनं संशमनं स्वपनं लङ्घनं श्रमः ।
सम्वत्सरसमुत्पन्नाः शालयः षष्टिका यवाः ॥ २० ॥
मुद्गा माषाश्च गोधूमाः सतीना रागषाडवौ ।
एणतित्तिरिलावाजदक्षबर्हिशशामिषम् ॥ २१ ॥
वेशवारो विचित्रान्नं हृद्यं मद्यं पयः सिता ।
तण्डुलीयं पटोलञ्च मातुलुङ्गं परूषकम् ॥ २२ ॥
खर्जूरं दाडिमं धात्री नारिकेलञ्च गोस्तनी ।
सर्पिः पुराणं कर्पूरं प्रनीरं शिशिरानिलः ॥ २३ ॥
धारागृहं चन्द्रपादा मणयो मित्रसङ्गमः ।
क्षौमाम्बरं प्रियाश्लेषो गीतं वादित्रमुद्धतम् ॥
शीताम्बु चन्दनं स्नानं सेव्यमेतन्मदात्यये ॥ २४ ॥

वमन और विरेचनादिके द्वारा संशोधन-संशमन ओषधियाँ, शयन, लंघन, परिश्रम, एक वर्षके पुराने शालिधानों और साठी धानोंके चावल, जौ, मूँग, उडद, गेहूँ, मटर, राग और खाण्डव यूष, कृष्णमृग, तीतर, लवा, बकरा, मुर्गा, मोर और खरगोश इनका मांस, वेसवार, हृदयको हितकारी विविध प्रकारके अन्नादिका पान, मदिरा, दूध, मिश्री, चौलाईका शाक, परवल, बिजौरानींबू, फालसे, खजूर, अनार, आमले, नारियल, दाख, पुराना घी, कपूर, स्वच्छ-जल, शीतल वायु, फुहारेवाले घर, चन्द्रमाकी चाँदनी, मणि रत्न आदिका धारण, इष्टमित्रोंकी संगति, रेशमी वस्त्र, सुन्दरी स्त्रीका आलिङ्गन, अतितीव्र

गायन और तीव्रबाजोंका सुनना, शीतलजल, चन्दनका लेप और स्नान ये सब मदात्ययरोगमें हितकारी हैं ॥ २०-२४ ॥

मदात्ययरोगमें अपथ्य।

स्वेदोऽञ्जनं धूमपानं नावनं दन्तघर्षणम्।
ताम्बूलश्चेत्यपथ्यं स्यान्मदात्ययविकारिणाम् ॥२५॥

स्वेद, अञ्जन, धूमपान, नस्य, दन्तधावन और ताम्बूलभक्षण ये सब मदात्ययरोगियोंको आहितकर हैं ॥ २५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मदात्ययरोगचिकित्सा।

दाहकी चिकित्सा।

यत्पित्तज्वरदाहोक्तं दाहे तत्सर्वमिष्यते ॥ १ ॥

पैत्तिकज्वरमें दाहनाशक जो औषधियाँ कहीगयी हैं; उन सबको दाहरोगमें प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

चन्दनाम्बुकणास्यन्दितालवृन्तोपवीजितः।
सुप्याद्दाहार्दितोऽम्भोजकदलीदलसंस्तरे ॥ २ ॥

दाहरोगमें चन्दनको जलमें घिसकर उस जलमें ताडके पंखेको भिगोकर उसक द्वारा हवा करे, कमल वा केलेके कोमलपत्तोंपर रोगीको शयन करावे२

परिषेकावगाहेषु व्यञ्जनानाञ्च सेवने।
शस्यते शिशिरं तोयं तृष्णादाहोपशान्तये ॥ ३ ॥

तृषा और दाहको शान्तकरनेके लिये शरीरपर शीतल जलका सेचन, जलमें गोता लगाकर स्नान करना, पंखेकी हवा और शीतल जल सेवन करे ॥ ३ ॥

फलिनीलोध्रसेव्याम्बु हेमपत्रं कुटन्नटम्।
कालीयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥ ४ ॥

फूलप्रियंगु, लोध, खस, सुगन्धवाला, नागकेशर, तेजपात और नागरमोथा इन सबको समानभाग लेकर कलम्बक(कालाचन्दन) के रसमें पीसकर दाहरोगमें लेप करना चाहिये ॥ ४ ॥

ह्रीबेरपद्मकोशीरचन्दनक्षोदवारिणा।
सम्पूर्णामवगाहेत द्रोणीं दाहार्दितो नरः ॥५॥

सुगन्धवाला, पद्माख, खस और लालचन्दन इनके समानभाग चूर्णको शीतल जलमें मिलाकर उस जलको एक बाल्टीमें भरकर दाहरोगी उसमें शिर डुबाकर स्नान करे ॥ ५ ॥

चन्दनादि काथ।

पटीरपर्पटोशीरमीरनीरदनीरजैः।
मृणालमिसिधान्याकपद्मकामलकैः कृतः ॥ ६ ॥
अर्द्धशिष्टः शृतः शीतः पीतः क्षौद्रसमान्वितः।
काथो व्यपहरेद्दाहं नृणाञ्च परमोल्बणम् ॥ ७ ॥

लालचन्दन, पित्तपापडा, खस, सुगन्धवाला, नागरमोथा, कमल, कमलकी नाल, सौंफ, धनियाँ, पद्माख और आमले इनका अर्द्धावशिष्ट शीतल काथ तैयार करके शहद मिलाकर पीनेसेही मनुष्योंकी अतिप्रबलदाह दूर होय ॥७॥

पर्पटादिकाथ।

पर्पटः सघनोशीरः कथितः शर्करान्वितः।
शीतपानं निहन्त्याशु दाहं पित्तज्वरं नृणाम् ॥ ८ ॥

पित्तपापडा, नागरमोथा और खस इनके काथको शीतल करके मिश्री मिलाकर पान करनेसे दाह और पित्तज्वर शीघ्र शान्त होता है ॥ ८ ॥

दाहान्तकरस।

सूतात्पश्चार्कतश्चैकं कृत्वा पिण्डं सुशोभनम्।
जम्बीरस्वरसैर्मर्द्य सूततुल्यञ्च गन्धकम् ॥ ९ ॥
नागवल्लीदलैः पिष्ट्वा ताम्रपत्रीं प्रलेपयेत्।
प्रपुटेद्भूधरे यन्त्रे यावद्भस्मत्वमाप्नुयात् ॥ १० ॥
द्विगुञ्जमार्द्रकद्रावैस्त्र्यूषणेन च योजयेत्।
निहन्ति दाहसन्तापं मूर्च्छां पित्तसमुद्भवाम् ॥ ११ ॥

शुद्धपारा ५ तोले, ताम्रपत्र १ तोला और शुद्धगन्धक ५ तोले लेवे। प्रथम पारे और गन्धकको जम्बीरीनींबूके रसमें खरल करके गोलासा बनालेवे, फिर उसको पानोंके रसमें खरल करके ताम्रके पत्रोंपर लेप करके भूधरयन्त्रमें रखकर पुटपाक करे। जब उसकी उत्तम प्रकारसे भस्म होजाय तब निकालकर खरल करलेवे। इसमेंसे प्रतिदिन दो दो रत्ती प्रमाण लेकर अदरखके रस अथवा त्रिकुटेके चूर्ण और शहदके साथ सेवन करे। यह रस दाह, सन्ताप और पित्तजन्य मूर्च्छाको दूर करता है ॥ ९-११ ॥

सुधाकररस।

सिन्दूराभ्रकहेमानि मौक्तिकं त्रिफलाम्भसा।
शतपुत्रीरसेनापि मर्दयेत्सप्त सप्तधा ॥ १२ ॥
ततो रक्तिमितां कुर्याद्वटीं छायाप्रशोषिताम्।
एकैकां योजयेत्तां तु यथादोषानुपानतः ॥ १३ ॥
रसः सुधाकरस्सोऽयं हन्ति दाहं महाबलम्।
प्रमेहानपि वातास्रं बलशुक्रकरः परः ॥ १४ ॥

रससिन्दूर, अभ्रक, सुवर्ण और मोती इनको समान भाग लेकर एकत्र त्रिफलेके क्वाथ और शतावरके रसमें क्रमसे सात सात बार भावना देवे। फिर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे। इसकी प्रतिदिन एक एक गोली यथादोषानुसार अनुपानके साथ सेवन करे। यह सुधाकरनामकरस अत्यन्त प्रबलदाह, सर्वप्रकारके प्रमेह और वातरक्तको नष्ट करता है और बलवीर्यकी अत्यन्त वृद्धि करता है ॥ १२-१४ ॥

कुशाद्यतैल और घृत।

कुशादिशालपर्णीभिर्जीवकाद्येन साधितम्।
तैलं घृतं वा दाहघ्नं वातपित्तविनाशनम् ॥ १५ ॥

कुशा, काँस, रामशर, डाभ और काली ईखकी जड इनके क्वाथ और शालपर्णीके क्वाथ एवं जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली और क्षीरकाकोली) की ओषधियोंके कल्कके साथ तिलके तैल या घृतको यथाविधि सिद्ध करे। यह तैल वा घृत दाह और वातपित्तके विकारोंको नष्ट करनेवाला है ॥ १५ ॥

दाहरोगमें पथ्य।

शालयः षष्टिका मुद्गा मसूराश्चणका यवाः।
धन्वमांसरसा लाजमण्डस्तच्छक्तवः सिता ॥ १६ ॥
शतधौतघृतं दुग्धं नवनीतं पयोभवम्।
कूष्माण्डं कर्कटीमोचं पनसं स्वादुदाडिमम् ॥ १७ ॥
पटोलं पर्पटं द्राक्षा धात्रीफलपरूषकम्।
बिम्बी तुम्बी पयःपेटी खर्जूरं धान्यकं मिषिः ॥१८॥
बालतालं पियालश्च शृङ्गाटककशेरुकम्।

मधूकपुष्पं ह्रीबेरं पथ्यातिक्तानि सर्वशः ॥ १९ ॥
शीताः प्रलेपा भूवेश्म सेकोऽभ्यङ्गोऽवगाहनम् ।
पद्मोत्पलदलक्षौमशय्याशीतलकाननम् ॥ २० ॥
कथा विचित्रा गीतानि शिशिरो मञ्जुभाषिणः।
उशीरचन्दनालेपः शीताम्बु शिशिरानिलः ॥ २१ ॥
धारागृहं प्रियास्पर्शः प्रनीरं हिमबालुका ।
सुधांशुरश्मयः स्नानं मणयो मधुरो रसः ॥ २२ ॥
पुरा यानि विधेयानि पित्तहारीणि तानि च ।
इति दाहवतां नृणां पथ्यवर्ग उदाहृतः ॥ २३ ॥

शालि और सांठीके चावल, मूँग, मसूर, चना, जौ ये सब अन्न, जाङ्गलके पशुपक्षियोंका मांसरस, खीलोंका माँड, खीलोंके सत्तू, मिश्री, सौ बार धोया-हुआ घी, दूध, दूधसे निकालाहुआ मक्खन, पेठा, ककडी, केलेका मोचा, कटहल, मीठा अनार, परवल, पित्तपापडा, दाख, आमले, फालसे, कन्दूरी, लौकी, नारियल, खजूर, धनियाँ, सौंफ, कच्चा ताडका फल, चिरौंजी, सिंघाडे, कसेरू, महुएके फूल, सुगन्धवाला, हरड, सब प्रकारके कडुवे पदार्थ शीतल प्रलेप, भूमिगर्भस्थ गृह (तहखाना) में निवास, देहपर शीतल जलका छिडकना, सुगन्धिततेलोंकी मालिश, जलमें गोता लगाकर स्नान करना, कमल, कुमुद(बब्बूलों)से आच्छादित और जिसपर रेशमी वस्त्र बिछा हो ऐसी शय्यापर शयन, शीतल बगीचे या उपवनोंमें भ्रमण, मधुरभाषी मनुष्योंसे मनोहर कथा एवं विचित्र गायनको सुनना, शीतल पदार्थ, खस और चन्दनका प्रलेप, शीतल जल, शीतल वायु, फुहारे युक्त गृह, प्रियस्त्रीका आलिङ्गन, शीतल और सुगन्धित जल, कपूर, निर्मल चाँदनी, स्नान, रत्नोंका धारण करना, मधुररसवाले पदार्थ और पित्ताधिकारमें जो पित्तनाशकपदार्थ कहेगये हैं वे सब दाहरोगियोंके लिये हितकारी हैं ॥ १६–२३ ॥

दाहरोगमें अपथ्य ।

विरुद्धान्यन्नपानानि क्रोधं वेगविधारणम् ।
गजाश्वयानमध्वानं क्षारं पित्तकराणि च ॥ २४ ॥
व्यायाममातपं तक्रं ताम्बूलं मधु रामठम् ।
व्यवायं कटुतीक्ष्णोष्णं दाहवान् परिवर्जयेत ॥ २५ ॥

विरुद्ध अन्न पान, क्रोध, मल मूत्रादिके वेगोंको रोकना, हाथी और घोडेकी सवारी करना, मार्ग चलना, खारी और पित्तकारक द्रव्योंका सेवन, व्यायाम, धूपका सेवन, मट्ठा, ताम्बूल, (पान,) शहद, हींग, स्त्रीप्रसङ्ग, चरपरे, तीखे और गरम पदार्थ इन सबको दाहरोगी त्यागदेवे ॥ २४ ॥ २५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां दाहरोग-चिकित्सा ॥

उन्मादरोगकी चिकित्सा।

उन्मादे वातिके पूर्वं स्नेहपानं विरेचनम्।
पित्तजे कफजे वान्तिः पयोवस्त्यादिकः क्रमः॥ १॥

वातज उन्मादरोगमें पहले तैल और घृतादि स्नेहपदार्थोंका पान, पित्तके उन्मादमें विरेचन और कफजनित उन्मादमें प्रथम वमन फिर दूधकी पिचकारी लगानी चाहिये ॥ १ ॥

यच्चोपदेक्ष्यते किञ्चिदपस्मारचिकित्सिते।
उन्मादे तच्च कर्त्तव्यं सामान्याद्दोषदूष्ययोः॥ २॥

उन्माद और अपस्मार इन दोनों रोगोंके दोष और दूष्यकी समानता होनेके कारण, अपस्माररोगविधिके अनुसार उन्मादरोगकी चिकित्सा की जासकतीहै॥

ब्राह्मी कूष्माण्डफलषड्ग्रन्थाशङ्खपुष्पिकास्वरसाः।
दृष्टा उन्मादहृतः पृथगेते कुष्ठमधुमिश्रिताः॥ ३॥

ब्राह्मी, पेठा, वच और शंखपुष्पी इन सबका स्वरस इनमें किसी एक स्वरसको लेकर कूठके चूर्ण और शहदमें मिलाकर पृथक् पृथक् सेवन करनेसे उन्मादरोग नष्ट होताहै ॥ ३ ॥

सम्भोज्य पिकमांसं वा निर्वाते स्वापयेत्सुखम्।
त्यक्त्वा स्मृतिमतिभ्रंशं संज्ञां लब्ध्वा प्रबुध्यते॥
अपक्वचटकक्षीरपानमुन्मादनाशनम्॥ ४॥

उन्मादरोगीको कोयलका कच्चा मांस भक्षण कराकर वायुरहित स्थानमें सुखपूर्वक शयन करादेवे। कारण-सुनिद्रा आजानेसे स्मृतिभ्रंश और बुद्धिभ्रंश दूर होकर चैतन्यलाभ होताहै। चिडियाके कच्चे मांसको दूधके साथ सेवन करनेसे उन्माद नष्ट होताहै ॥ ४ ॥

कूष्माण्डकबीजकल्कः पीतो विनाशयत्यपि।
उन्मादरोगमत्युग्रं मधुना दिवसत्रयम् ॥ ५ ॥

पुराने पेठेके बीजोंके कल्कको शहदमें मिलाकर ३ दिनतक सेवन करनेसे अतिदारुण उन्मादरोग नष्ट होताहै ॥ ५ ॥

उन्मादे समधुः पेयः शुद्धो वा तालशाखजः।
रसो नस्येऽभ्यञ्जने च सार्षपं तैलमिष्यते ॥
बद्धं सार्षपतैलाक्तमुत्तानञ्चातपे न्यसेत ॥ ६ ॥

उन्मादरोगमें ताडकी शाखाके शुद्ध रसको शहदमें मिलाकर या केवल अकेले रसको ही पान करना एवं सरसोंके तेलकी नस्य दे और शरीरपर मालिश करनी। उन्मादरोगीके सब शरीरमें सरसोंका तैल मलकर उसके हाथ पाँवोंको बाँधकर कुछ देरके लिये धूपमें चित्तकरके लिटादेवे। फिर ज्ञानावस्था होतेही वन्धन खोलकर उसको छायामें आरामसे रक्खे और शीतल उपचारकरे ऐसा करनेसे शरीरके स्रोत शुद्ध होकर उन्माद शमन होता है ॥ ६ ॥

पुराणमथवा सर्पिः पिबेत्प्रातरतन्द्रितः ॥ ७ ॥

प्रतिदिन प्रातःकाल नियमसे १० वर्षके पुराने घृतको पान करे ॥ ७ ॥

शुद्धस्याचारविभ्रंशे तीक्ष्णं नावनमञ्जनम्।
ताडनञ्च मनोबुद्धिस्मृतिसंवेदनं हितम् ॥ ८ ॥
तर्जनं त्रासनं दानं सान्त्वनं हर्षणं भयम्।
विस्मयं विस्मृतेर्हेतोर्नयन्ति प्रकृतिं मनः ॥ ९ ॥

शुद्धाचारी मनुष्य किसी कारणसे आचारभ्रष्ट होकर जब उन्मत्त होजाताहै तब उस अवस्थामें उसको प्रथम वमन कराकर पश्चात् तीक्ष्ण नस्य और अञ्जन प्रयोग करना चाहिये। तथा मारना,डाटना,भय दिखाना, उत्तम और प्रियपदार्थोंका देना, सान्त्वना (ढाढस) देना, हर्षजनक भय और आश्चर्यकार्यकरना इस प्रकार करनेसे मन,बुद्धि और स्मृति प्रकृतिस्थ होकर उन्मादरोगदूरहोय॥

कामशोकभयक्रोधहर्षेर्ष्यालोभसम्भवान्।
परस्परप्रतिद्वन्द्वैरेभिरेव शमं नयेत् ॥ १० ॥

काम, शोक, भय, क्रोध, हर्ष, ईर्ष्या और लोभ इन सम्पूर्ण कारणोंसे उत्पन्नहुए उन्मादरोगको उक्त प्रत्येक कारणके विपरीत चिकित्साके द्वारा शमन करे। अर्थात् कामज उन्मादमें रोगीको प्रिय स्त्रीप्रदान, शोकज उन्मा-

दमें शोकनाशक क्रिया, भयज उन्मादमें भयनाशक और क्रोधज उन्मादमें क्रोधनाशक क्रिया करनी चाहिये ॥ १० ॥

इष्टद्रव्यविनाशात्तु मनो यस्योपहन्यते ।
तस्य तत्सदृशप्राप्त्या सान्त्वाश्वासैश्च तं जयेत् ॥११॥

इष्टवस्तुके नाश होनेसे जिसका मन विकृत होगया हो उसको उसीकी समान वस्तु प्रदान करे, सान्त्वना और आश्वासजनक वचनोंके द्वारा विकारको शान्त करे ॥ ११ ॥

सर्पिःपानादिनागन्तोर्मन्त्रादिश्चेष्यते विधिः ।
पूजाबल्युपहारेष्टिहोममन्त्राञ्जनादिभिः ॥
जयेदागन्तुमुन्मादं यथाविधि शुचिर्भिषक् ॥ १२ ॥

आगन्तुक अर्थात् भूतादिजन्य उन्मादरोगको, चैतसघृतादिके पान, एवं मन्त्रोच्चारण, पूजा, वलिदान, भेंट, याग, होम, मन्त्र और अञ्जनादि क्रियाओंके द्वारा यथाविधि चिकित्सा करके शमन करे ॥ १२ ॥

देवर्षिपितृगन्धर्वैरुन्मत्तस्य च बुद्धिमान् ।
वर्जयेदञ्जनादीनि तीक्ष्णानि क्रूरमेव च ॥ १३ ॥

देव, ऋषि, पितर और गन्धर्व इनकी वाधासे उत्पन्नहुए उन्मादरोगीके बुद्धिमान् वैद्य तीक्ष्ण अञ्जन-ओषधियोंका प्रयोग एवं ताडनादि न करे ॥ १३ ॥

अञ्जन ।

कृष्णामरिचासिन्धूत्थमधुगोपित्तनिर्मितम् ।
अञ्जनं सर्वभूतोत्थं महोन्मादविनाशनम् ॥ १४ ॥

पीपल, कालीमिरच, सैंधानसक, मधु और गोरोचन इन सबको समानभाग लेकर एकत्र खरल करके आँखोंमें आँजनेसे सर्व प्रकारका भूतोन्मादरोग दूर होता है ॥ १४ ॥

निम्बधूप ।

निम्बपत्रवचाहिंगुसर्पनिर्मोकसर्षपैः ।
डाकिन्यादिहरो धूपो भूतोन्मादविनाशनः ॥ १५ ॥

नीमके पत्ते, वच, हींग, साँपकी कैंचली और सरसों इन सबको समानभाग लेकर धूप देनेसे डाकिनी आदि भाग जातीहैं और भूतोन्माद शमन होताहै १५

महाधूप ।

कार्पासास्थिमयूरपुच्छबृहतीनिर्म्माल्यपिण्डीतकै-
स्त्वग्वांशीवृषदंशविट्तुषवचाकेशाहिनिर्म्मोककैः ।
गोशृङ्गद्विपदन्तु हिङ्गुमरिचैस्तुल्यैस्तु धूपः कृतः
स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशज्वरघ्नः स्मृतः ॥ १६ ॥

कपासके बीज (विनौले), मोरकी पूँछ, बडी कटेरी, शिवका निर्माल्य, मैनफल, दारचीनी, वंशलोचन, बिलावकी सूखी विष्ठा, धानोंकी भुसी, वच, मनुष्यके बाल, साँपकी कैंचली, गौका सींग, हाथीदाँत, हींग और कालीमिरच इन सबको समान भाग लेकर एकत्र करके उन्मादरोगीको धूपदेनेसे स्कन्द उन्माद, पिशाच, राक्षसबाधा, देवताका आवेश आदि कारणोंसे उत्पन्नहुआ भूतोन्माद और भूतज्वर भी नष्ट होता है ॥ १६ ॥

सारस्वत चूर्ण ।

कुष्ठाश्वगन्धे लवणाजमोदे द्वे जीरके त्रीणि कटूनि पाठा ।
मांगल्यपुष्पीचसमान्यमूनि सर्वैःसमानाश्च वचां विचूर्ण्य ॥
ब्राह्मीरसेनाखिलमेव भाव्यं वारत्रयं शुष्कमिदं हि चूर्णम् ।
अक्षप्रमाणं मधुना घृतेन लिह्यान्नरः सप्तदिनानि चूर्णम् ॥ १८
सारस्वतमिदं चूर्णं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
हिताय सर्वलोकानां दुर्मेधसाश्च विचेतसाम् ॥ १९ ॥
एतस्याभ्यासतः पुंसां बुद्धिर्मेधा धृतिः स्मृतिः ।
सम्पत्तिः कविताशक्तिः प्रवर्द्धतोत्तरोत्तरम् ॥ २० ॥

कूठ, असगन्ध, सैंधानमक, अजमोद, कालाजीरा, सफेद जीरा, त्रिकुटा, पाढ और शङ्खपुष्पी इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करलेवे, फिर उसमें सब चूर्णकी बराबर बचका चूर्ण मिलाकर एकत्र करके ब्राह्मीके रसमें तीनवार भावना देकर धूपमें सुखालेवे । फिर उसको बारीक पीसकर रखलेवे । इस चूर्णको एक एक तोलेकी मात्रासे घृत और शहदके साथ मिलाकर सात दिन पर्यन्त सेवन करे । इस सारस्वतचूर्णको पूर्वकालमें सम्पूर्ण लोकोंके दुर्बुद्धि और विकृतचित्तवाले मनुष्योंके हितके लिये ब्रह्माजीने निर्माण किया था । इसको सेवन करनेसे मनुष्योंकी बुद्धि, मेधा, धैर्य, स्मरणशक्ति, सम्पत्ति और कवित्वशक्तिकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती है ॥ १७-२० ॥

उन्मादपर्पटीरस ।

कृष्णधुस्तूरजैर्बीजैः पञ्चभिः पर्पटीरसः ।
संप्रयोज्यः प्रशान्त्यर्थमुन्मादं भूतसम्भवम् ॥ २१ ॥

काले धतूरेके ५ बीजोंको लेकर पित्तपापडेके रसमें उत्तम प्रकारसे खरल करके भूतोन्मादको शमन करनेके लिये सेवन करे ॥ २१ ॥

उन्मादभञ्जिनी ।

शुद्धं मनःशिलाचूर्णं सैन्धवं कटुरोहिणी ।
वचा शिरीषबीजञ्च हिङ्गु च श्वेतसर्षपम् ॥ २२ ॥
करञ्जबीजं त्रिकटु मलं पारावतस्य च ।
एतानि समभागानि गोमूत्रैर्वटिकां कुरु ॥ २३ ॥
गिरिमल्लीबीजसमां छायाशुष्कांश्च कारयेत् ।
प्रातः सन्ध्यानिशाकाले चक्षुषोरञ्जनं हितम् ॥२४॥
मधुरादिरसे चाञ्ज्यं रात्रावपि जलेन च ।
वटिकैका समाख्याता नाम्ना चोन्मादभञ्जिनी ।
चातुर्थकमपस्मारमुन्मादस्य विनाशिनी ॥ २५ ॥

शुद्ध मैनासिल, सैंधानमक, कुटकी, वच, सिरसके बीज, हींग, सफेद सरसों, करञ्जके बीज, त्रिकुटा और कबूतरकी बीठ इन सबको समान भाग लेकर, गोमूत्रके साथ खरल करके इन्द्रजौकी बराबर गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे । इससे एक एक बटीको प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकालमें शहदके साथ और रात्रिमें जलके साथ घिसकर नेत्रोंमें आँजनेसे उन्मादरोगीको विशेष उपकार होताहै । इस बटीको उन्मादभञ्जिनी कहते हैं । यह बटी चातुर्थकज्वर, अपस्मार और उन्मादरोगको नष्ट करतीहै ॥ २२-२५ ॥

उन्मादगजकेसरी ।

सूतं गन्धं शिलातुल्यं स्वर्णबीजं विचूर्ण्य च ।
भावयेदुग्रगन्धायाः क्वाथे मुनिदिनैः पृथक् ॥ २६ ॥
रास्नाक्वाथेन सप्तैव भावयित्वा विचूर्णयेत् ।
रसः सञ्जायते नूनमुन्मादगजकेसरी ॥ २७ ॥
अस्य माषः ससर्पिष्को लीढो हन्ति हठाद्गदम् ।
उन्मादाख्यमपस्मारं भूतोन्मादमपि ज्वरम् ॥ २८ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, मैनसिल और शुद्ध धतूरेके बीज इनको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके वच और रायसनके क्काथमें पृथक् पृथक् सात दिनतक सात सात बार भावना देकर खरल करलेवे। इस प्रकार यह उन्मादगजकेशरीरसे सिद्ध होताहै। इसको प्रतिदिन एक एक माशे परिमाण लेकर घृतके साथ सेवन करनेसे यह रस उन्माद, अपस्मार, भूतोन्माद और ज्वरको शीघ्र नष्ट करताहै ॥ २६-२८ ॥

उन्मादगजांकुश।

त्रिदिनं कनकद्रावैर्महाराष्ट्रीरसैः पुनः।
विषमुष्टिद्रवैः सूतं समुत्थाप्यार्कचक्रिकाम् ॥ २९ ॥
कृत्वा तप्तां सगन्धां तां युक्त्या बन्धनमाचरेत्।
तत्समं कानकं बीजमभ्रकं गन्धकं विषम् ॥ ३० ॥
मर्दनात्त्रिदिनं सर्वं वल्लमात्रं प्रयोजयेत्।
दोषोन्मादं द्रुतं हन्ति भूतोन्मादं विशेषतः ॥ ३१ ॥

पारेको एक तोला लेकर धतूरेके पत्तोंके रस, जलपीपलके रस और कुचलेके रसमें क्रमसे तीन तीन दिनतक भावना देवे, फिर उसके साथ एक तोला शुद्ध गन्धक मिलाकर ताम्र चक्रिकाको यत्नपूर्वक स्थापन करके पुटपाक करे। फिर उसमें धतूरेके बीज, अभ्रक भस्म, शुद्धगन्धक और शुद्ध मीठा तेलिया ये प्रत्येक एक एक तोला मिलाकर तीन दिनतक खरल करे। इस रसको प्रतिदिन दो दो रत्ती प्रमाण सेवन करनेसे वात पित्तादि दोषजन्य उन्माद और विशेषकर भूतोन्मादरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ २९-३१ ॥

उन्मादभञ्जनरस।

त्रिकटु त्रिफला चैव गजपिप्पलिका तथा।
देवदारु विडङ्गञ्च किरातं कुटकी तथा ॥ ३२ ॥
कण्टकारी च यष्टीन्द्रयवं चित्रकमेव च।
बला च पिप्पलीमूलं मूलञ्च वीरणस्य च ॥ ३३ ॥
शोभाञ्जनस्य बीजानि त्रिवृता चेन्द्रवारुणी।
वङ्गं रूप्यकमभ्रञ्च प्रवालं समभागिकम् ॥ ३४ ॥
सर्वचूर्णसमं लौहं सलिलेन विमर्दयेत्।
उन्मादमपि भूतोत्थमुन्मादं वातजं तथा ॥ ३५ ॥

अपस्मारं तथा कार्श्यं रक्तपित्तं सुदारुणम्।
नाशयेदविकल्पेन रसश्चोन्मादभञ्जनः॥ ३६॥

त्रिकुटा, त्रिफला, गजपीपल, देवदारु, वायविडङ्ग, चिरायता, कुटकी, कटेरी, मुलैठी, इन्द्रजौ, चीता, खिरैंटी, पीपलामूल, खसकी जड, सहिंजनेके बीज, निसोत, इन्द्रायण, वङ्गभस्म, चाँदीकी भस्म और अभ्रक भस्म, मूँगाकी भस्म सब समानभाग और सबके चूर्णकी बराबर लोहभस्म लेकर सबको एकत्र जलके साथ खरल करलेवे। इसको दो दो रत्ती प्रमाण सेवन करे। यह उन्मादभञ्जन रस भूतोन्माद, वातज उन्माद, अपस्मार, कृशता और दारुण रक्तपित्त इन सब रोगोंको नष्ट करताहै॥ ३२-३६॥

भूतांकुशरस।

सूतायस्तारताम्रञ्च मुक्ता चापि समं समम्।
सूतपादं तथा वज्रं तालं गन्धं मनःशिला॥ ३७॥
तुत्थं शिलाञ्जनं शुद्धमब्धिफेनं रसाञ्जनम्।
पञ्चानां लवणानाञ्च प्रतिभागं रसोन्मितम्॥ ३८॥
भृङ्गराजचित्रवज्रीदुग्धेनापि विमर्दयेत्।
दिनान्ते पिण्डिकां कृत्वा रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्॥३९॥
भूतांकुशो रसो नाम नित्यं गुञ्जाद्वयं लिहेत्।
आर्द्रकस्य रसेनापि भूतोन्मादनिवारणः॥ ४०॥
पिप्पल्याक्तं पिबेच्चानु दशमूलकषायकम्।
स्वेदयेत्कटुतुम्ब्या च तीक्ष्णं रूक्षञ्च वर्जयेत॥ ४१॥
माहिषञ्च घृतं क्षीरं गुर्वन्नमपि भोजयेत्।
अभ्यङ्गः कटुतैलेन हितो भूतांकुशे रसे॥ ४२॥

शुद्धपारा, लोहभस्म, चाँदीकी भस्म, ताँबेकी भस्म और मोतीकी भस्म प्रत्येक एक एक तोला, हीरेकी भस्म ३ मासे एवं हरतालकी भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध तूतिया, सफेद सुर्मा, समुद्रफेन, रसौत और पाँचों नमक ये प्रत्येक एक एक तोला लेवे। इन सबको एकत्र पीसकर भाङ्गरे और चीताके रस और थूहरके दूधमें क्रमसे पृथक् पृथक् एक दिनतक खरल करके सन्ध्याके समय गोला बनाकर गजपुटमें बन्दकरके पकावे। यह भूतांकुशनामकरस प्रतिदिन दो दो रत्तीकी मात्रासे अदरखके रसके साथ सेवन करनेसे भूतोन्मादरोग

निवारण होता है । इसको सेवन करनेके पश्चात् पीपलका चूर्ण मिलाकर दश-मूलका काथ पान करे और कडवीतूंबीके द्वारा स्वेद देवे । इसपर तीखे और रूखे पदार्थ त्याग देने चाहिये । भैंसका घी, भैंसका दूध और गुरु (पचनेमें भारी) अन्नोंका भोजन करे । इस भूतांकुशरसपर शरीरमें सरसोंके तैलकी मालिश करना हितकर है ॥ ३७-४२ ॥

चतुर्भुजरस ।

मृतसूतस्य भागौ द्वौ भागैकं हेमभस्मकम् ।
शिला कस्तूरिकातालं प्रत्येकं हेमतुल्यकम् ॥ ४३ ॥
सर्वं शिलातले क्षिप्त्वा कन्यया मर्द्दयेद्दिनम् ।
एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यराशौ दिनत्रयम् ॥ ४४ ॥
संस्थाप्य च तदुद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत् ।
एतद्रसायनश्रेष्ठं त्रिफलामधुमर्दितम् ॥ ४५ ॥
तद्यथाग्निबलं खादेद्वलीपलितनाशनम् ।
अपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मन्दानले क्षये ॥ ४६ ॥
हस्तकम्पे शिरःकम्पे गात्रकम्पे विशेषतः ।
वातपित्तसमुत्थांश्च कफजान्नाशयेद्ध्रुवम् ॥
चतुर्भुजरसो नाम महेशेन प्रकाशितः ॥ ४७ ॥

पारेकी भस्म २ भाग, एवं सुवर्णकी भस्म, शुद्ध मैनसिल, कस्तूरी और हर-तालकी भस्म ये प्रत्येक एकएक भाग लेवे । सबको खरलमें डालकर घीगुवारके रसके साथ एक दिनतक घोटे, फिर उसको अण्डके पत्तोंसे लपेटकर धानोंके ढेरमें तीन दिनतक गाड देवे. फिर चौथे दिन निकालकर उसको सर्व प्रकारके रोगोंमें प्रयोग करे । यह अत्यन्त श्रेष्ठ रसायन है । इसको अपनी अग्निके बला-नुसार मात्रासे त्रिफलेके और शहदके साथ, मिलाकर सेवन करनेसे वली और पलितरोग नष्ट होता है । यह रस अपस्मार, ज्वर, खाँसी, शोष, मन्दाग्नि, क्षय, हाथोंका काँपना, शिरका काँपना, शरीरका काँपना इन सब रोगोंमें उप-योगी और विशेषकर वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंसे उत्पन्नहुये सर्व प्रकारके उपद्रवोंको अवश्य नष्ट करता है । इस चतुर्भुज नामक रसको श्रीमहा-देवजीने निर्माण किया है ॥ ४३-४७ ॥

हिंग्वाद्यघृत ।

हिङ्गुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् ।
चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥ ४८ ॥

हींग, कालानमक, सोंठ, मिरच, पीपल ये प्रत्येक दो दो पल और घृत एक आढक, इन सबको चौगुने गोमूत्रमें डालकर विधिपूर्वक घृतको सिद्धकरे इस घृतको पान करनेसे उन्मादरोग शमन होता है ॥ ४८ ॥

लशुनाद्यघृत ।

लशुनस्य विशुद्धस्य तुलार्द्धं निस्तुषीकृतम् ।
तदर्द्धं दशमूल्यास्तु द्व्याढकेऽपां विपाचयेत् ॥ ४९ ॥
पादशेषे घृतप्रस्थं लशुनस्य रसं तथा ।
कोलमूलकवृक्षाम्लमातुलुङ्गार्द्रकै रसैः ॥ ५० ॥
दाडिमाम्बुसुरामस्तुकाञ्जिकाम्लैस्तदर्द्धिकैः ।
साधयेत्रिफलादारुलवणव्योषदीप्यकैः ॥ ५१ ॥
यमानीचव्यहिंग्वम्लवेतसैश्च पलार्द्धिकैः ।
सिद्धमेतात्पिबेच्छूलगुल्माशोंजठरानलम् ॥ ५२ ॥
ब्रध्नपाण्ड्वामयप्लीहयोनिदोषकृमिज्वरान् ।
वातश्लेष्मामयांश्चान्यानुन्मादांश्चापकर्षति ॥ ५३ ॥

छिल्के रहित शुद्ध लहसुन ५० पल और दशमूल २५ पल लेकर दोनोंको दो आढक जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई जल शेष रहजाय तब उतार कर छानलेवे । फिर उसमें घी एक प्रस्थ एवं लहसुनका रस, बेरोंका क्काथ, मूलीका रस, विषांबिल, बिजौरेनींबूका रस, अदरखका रस, अनारका रस, मदिरा, दहीका तोड और अम्लकाँजी ये प्रत्येक पदार्थ आधा २ प्रस्थ एवं हरड, बहेडा, आमला, देवदारु, सैंधानमक, त्रिकुटा, अजमोद, अजवायन, चव्य, हींग और अमलवेत इनके कल्कको दो दो तोले डालकर यथाविधि घृतको पकावे । इस प्रकार सिद्ध कियेहुए इस घृतको यथोचितमात्रासे सेवन करनेसे शूल, गुल्म, अर्श, मन्दाग्नि, ब्रध्न, पाण्डु, प्लीहा, योनिरोग, कृमिरोग, ज्वर, वात कफजन्यरोग, उन्माद और अन्य सर्वप्रकारके रोग दूर होतेहैं ॥ ४९-५३ ॥

पानीयकल्याणकघृत ।

विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्वेलवालुकम् ।
स्थिरानतं हरिद्रे द्वे शारिवे द्वे प्रियङ्गुकम् ॥ ५४ ॥

नीलोत्पलैलामञ्जिष्ठा दन्ती दाडिमकेशरम् ।
तालीसपत्रं बृहती मालत्याः कुसुमं नवम् ॥ ५५ ॥
विडङ्गं पृश्निपर्णी च कुष्ठं चन्दनपद्मकौ ।
अष्टाविंशतिभिः कल्कैरेतैरक्षसमान्वितैः ॥ ५६ ॥
चतुर्गुणं जलं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
अपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मन्दानले क्षये ॥ ५७ ॥
वातरक्ते प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके ।
वम्यर्शोमूत्रकृच्छ्रेषु विसर्पोपहतेषु च ॥ ५८ ॥
दोषोपहतचित्तानां गद्गदानामरेतसाम् ।
शतं स्त्रीणाञ्च वन्ध्यानां वर्णायुर्बलवर्द्धनम् ॥ ५९ ॥
अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं सर्वग्रहनिवारणम् ।
कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ॥ ६० ॥

इन्द्रायन. त्रिफला, रेणुका, देवदारु, एलुआ, शालपर्णी, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, उसवा, अनन्तमूल, फूलप्रियंगु, नीलकमल, इलायची, मंजीठ, दन्ती, अनार, केशर, तालीसपत्र, बडी कटेरी, मालतीके नवीन फूल, वायविडङ्ग, पृश्निपर्णी, कूठ, चन्दन और पद्माख इन २८ औषधियोंके दो दो तोले कल्कके साथ एक प्रस्थ घृतको चौगुना जल डालकर उत्तम प्रकारसे पकावे। यह कल्याणकनाम घृत अपस्मार, ज्वर, खाँसी, शोष, मन्दाग्नि, क्षय, वातरक्त, प्रतिश्याय, तिजारी और चौथिया ज्वर, वमन, अर्श, मूत्रकृच्छ्र और विसर्परोगमें एवं उन्माद, गद्गदरोग, नपुंसक और सैकडों वन्ध्या स्त्रियोंके लिये हितकर एवं बल, वर्ण और आयुकी वृद्धि करता है। दारिद्रय, पाप, राक्षसबाधा और सर्व प्रकारकी ग्रहबाधाको निवारण करता है और पुंसवन कर्ममें अत्यन्त श्रेष्ठ है॥

क्षीरकल्याणक घृत।

द्विजलं सचतुः क्षीरं क्षीरकल्याणकन्त्विदम् ॥ ६१ ॥

इस क्षीरकल्याणक घृतको दूने जल और चौगुने दूधके साथ पानीयकल्याणक घृतकी ओषधियोंका कल्क डालकर सिद्ध करे। यह घृतभी पूर्वोक्त घृतकी समान उपयोगी है ॥ ६१ ॥

महाकल्याणकघृत।

एभ्य एव स्थिरादीनि जले पक्त्वैकविंशतिम्।
रसे तस्मिन्पचेत्सर्पिर्गृष्टिक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ६२ ॥
वीराद्धिमाषकाकोली स्वयंगुप्तर्षभर्द्धिभिः।
मेदया च रसैः कल्कैस्तत्स्यात्कल्याणकं महत् ॥
बृंहणीयं विशेषेण सन्निपातहरं परम् ॥ ६३ ॥

शालपर्णी, तगर, हलदी, दारुहलदी, उसवा, अनन्तमूल, फूलप्रियंगु, नीलकमल, इलायची, मँजीठ, दन्तीकी जड, अनारके बीज, नागकेशर, तालीसपत्र, बडी कटेरी, मालतीके फूल, वायाविडंग, पृश्निपर्णी, कूठ, लालचन्दन और पद्माख इनके समानभाग लेकर चौगुने जलमें पकाकर चतुर्भागावशिष्ट क्काथ बनालेवे। फिर उस क्काथमें एकभाग गौका घी और एकवारकी ब्याई हुई गौका चौगुना दूध एवं बडी शतावर, मुगवन, मषवन, काकोली. कौंछ, ऋषभक, ऋद्धि और मेदा इनका कल्क डालकर घृतको पकावे। इस प्रकार यह महाकल्याणकघृत सिद्ध होता है। यह अत्यन्त बृंहणीय और विशेषकर सन्निपातजन्य रोगको हरताहै ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

स्वल्पचैतसघृत।

पञ्चमूल्यावकाश्मर्योरास्नैरण्डात्रिवृद्बला।
मूर्वा शतावरी चेति क्काथैर्द्विपलिकैरिमैः ॥ ६४ ॥
कल्याणकस्य चाङ्गेन तद्घृतं चैतसं स्मृतम्।
सर्वचेतोविकाराणां शमनं परमं मतम् ॥ ६५ ॥
"घृतप्रस्थोऽत्र पक्तव्यः क्काथो द्रोणाम्भसा घृतात्।
चतुर्गुणोऽत्र सम्पाद्यः कल्कः कल्याणकेरितः॥" ६६॥

कुम्भरेको छोडकर दोनों पञ्चमूलकी अन्य सब औषधियाँ, रायसन, अण्डकी जड, निसोत, खिरैंटी, मूर्वा और शतावर इन प्रत्येकको आठ आठ तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे चौथाई जल शेष रहजानेपर उतारकर छान लेवे। फिर उस क्काथमें पानीयकल्याणघृतकी सब ओषधियोंका कल्क और घृतको डालकर पकावे। इसको कल्याणकघृतका अङ्ग होनेसे चैतसघृत कहते हैं। यह घृत सर्वप्रकारके मनके विकारोंको शमन करताहै। इसको छः छः माशेकी मात्रासे उष्ण दुग्धके साथ सेवन करना चाहिये। "इसमें घी एक

प्रस्थ लेना चाहिये एक द्रोण जलमें क्काथ करे और घीसे चौगुना कल्याण घृतकी ओषधियोंका कल्क डालना चाहिये ॥ ६४-६६ ॥

महापैशाचिकघृत।

जटिला पूतना केशी चारटी मर्कटी वचा।
त्रायमाणा जया वीरा चोरकः कटुरोहिणी ॥ ६७ ॥
कायस्था शूकरीच्छत्रा सातिच्छत्रा पलंकषा।
महापुरुषदन्ता च वयःस्था नाकुलीद्वयम् ॥ ६८ ॥
कटम्भरा वृश्चिकाली स्थिरा चैव शृतं घृतम्।
चातुर्थिकज्वरोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ ६९ ॥
महापैशाचिकं नाम घृतमेतद्यथामृतम्।
मेधाबुद्धिस्मृतिकरं बालानाञ्चाङ्गवर्द्धनम् ॥ ७० ॥

बालछड, हरड, भूतकेशी, भुईआमला, कौंछके बीज, वच, त्रायमाण, अरणी, क्षीरकाकोली चोरपुष्पी, कुटकी, आमले, बाराहीकन्द, सौंफ, छोटा-गोखुरू, बडी शतावर, ब्राह्मी, रास्ना, गन्धरास्ना, गन्धप्रसारणी, बिछाटी घास और शालपर्णी इन सबके समान भाग मिश्रित कल्क और चौगुने जलके साथ यथाविधि घृतको सिद्ध करे। यह महापैशाचिक नामक घृत चौथियाज्वर, उन्माद, ग्रहबाधा और अपस्मारका नष्ट करनेके लिये अमृतकी समान है। एवं मेधा, बुद्धि, स्मरणशक्ति और बालकोंके अङ्गोंकी वृद्धि करनेवाला है ६७-७०

शिवाघृत।

शिवायास्तु सुपूतायाः पञ्चाशत्पललात्पलम्।
पञ्चपञ्चसमादाय पञ्चमूलीयुगात्पृथक् ॥ ७१ ॥
कुट्टयित्वा चतुःषष्टिशरावैरम्भसः पचेत्।
ज्ञात्वा पादावशेषेण तेन क्काथोदकेन च ॥ ७२ ॥
क्षीरस्याष्टाभिराज्यस्य शरावाणां चतुष्टयम्।
यष्टीमधुकमञ्जिष्ठाकुष्ठचन्दनपद्मकैः ॥ ७३ ॥
विभीतकाशिवाधात्रीबृहतीतगरादिकैः।
विडङ्गदाडिमीदेवदारुदन्तीहरेणुभिः ॥ ७४ ॥
तालीशकेशरश्यामाविशालाशालपर्णिभिः।
प्रियङ्गुमालतीपुष्पकाकोलीयुगलोत्पलैः ॥ ७५ ॥

हरिद्रायुगलानन्तामेदैलाहरिबालुकैः ।
सपृश्निपर्णीकैरेभिः कल्कैरक्षसमान्वितैः ॥ ७६ ॥
सिद्धमेतद्घृतं यच्च तन्मे निगदितं शृणु ।
देवासुरग्रहग्रस्ते मानसे राक्षसक्षते ॥ ७७ ॥
गन्धर्वधर्षिते चैव पितृग्रहनिपीडिते ।
भूतैरप्यभिभूते च पिशाचैश्च परिप्लुते ॥ ७८ ॥
भुजङ्गमगृहीते च तथा जाङ्गलभक्षिते ।
यक्षैरपि परिक्षिप्ते भयैरप्यर्दिते भृशम् ॥ ७९ ॥
शस्यते सर्ववाते च सर्वापस्मार एव च ।
शोषे सोरःक्षते कासे पीनसे च मदात्यये ॥ ८० ॥
मेहे मूत्रग्रहे चैव ज्वरे जीर्णे च शस्यते ।
वृष्यं बलकरं हृद्यं वन्ध्यानामपि पुत्रदम् ॥ ८१ ॥
श्रीविन्ध्यवासिपादेन सिद्धिदं समुदीरितम् ।
शिवाघृतमिदं नाम्ना शिवायोन्मादिनां सदा॥८२॥

गीदडका शुद्ध किया हुआ मांस ५० पल लेकर एक कपडेकी पोटलीमें बांधलेवे और दशमूलकी प्रत्येक ओषधि पाँच पाँच पल लेकर एकत्र कूटकर सबको चौसठ शरावपरिमाण जलमें पकावे जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर उस काढेमें बकरीका दूध८शराव परिमाण बकरीका घी ४ शराव परिमाण एवं मुलैठी, मंजीठ, कूठ, लालचन्दन, पद्माख, बहेडा, हरड, आमले, बडीकटेरी, तगर, वायविडंग, अनारके बीज, देवदारु, दन्ती, रेणुका, तालीसपत्र, नागकेशर, सारिवा, इन्द्रायनकी जड, शालपर्णी, फूलप्रियंगु, मालतीके फूल, काकोली, क्षीरकाकोली, कमल, नीलकमल, हलदी, दारुहलदी, अनन्तमूल, मेदा, इलायची, एलुआ और पृश्निपर्णी इन प्रत्येक ओषधिके दो दो तोले कल्कको डालकर उत्तमप्रकारसे घृतको सिद्ध करे। इस प्रकार सिद्ध कियेहुए इस घृतको देवता, असुर, ग्रहादिकी बाधासे उत्पन्नहुए उन्माद, राक्षसपीडा, गन्धर्वबाधा, पितर, भूत, पिशाच और नागोंके ग्रसनेसे उत्पन्नहुए उन्माद, या जाङ्गलीजीवोंका मांस खानेसे उत्पन्न हुए विकार. यक्षबाधा, भयसे अत्यन्त आक्रान्त होनेपर एवं सर्वप्रकारके वातरोग, सर्व प्रकारके अपस्मार, उरःक्षत, खाँसी, पीनस, मदात्यय, प्रमेह,

मूत्रकृच्छ्र और जीर्णज्वर इन सब रोगोंमें हितकारी है। यह घृत अत्यन्त वीर्य-वर्द्धक, बलकारक, हृदयको हितकारी, वन्ध्यास्त्रियोंको पुत्रदायक और श्रीविन्ध्येश्वरी देवीकी कृपासे सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। यह शिवानामक घृत उन्मादरोगियोंके लिये सदा कल्याणकारक है॥ ७१-८२॥

शिवातैल।

प्रस्थं शृगालमांसस्य त्यक्त्वा मुखनखादिकम्।
दशमूलातुलार्द्धञ्च जलद्रोणे विपाचयेत्॥ ८३॥
पादशेषे रसे तस्मिन्क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम्।
प्रस्थञ्च तिलतैलस्य कल्कं दत्त्वा प्रयत्नतः॥ ८४॥
पञ्चमूली वचा कुष्ठं शैलेयं शारिवाद्वयम्।
धुस्तूरवरुणामूलं भण्टाकी बृहतीद्वयम्॥ ८५॥
चित्रकं पिप्पलीमूलं मधुकं सैन्धवं बला।
शतपुष्पा देवदारु रास्ना वारणपिप्पली॥ ८६॥
मुस्ता शठी च लाक्षा च(प्र)सारणी च सचन्दनम्।
एषाञ्च कार्षिकं भागं शनैर्मृद्वग्निना पचेत्॥ ८७॥
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्।
उन्मादं सकलं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा॥ ८८॥
सर्ववातविकारघ्नमेकाङ्गं सर्वसंग्रहम्।
अपस्मारे ज्वरे कासे हनुस्तम्भार्दितेऽशुभे॥ ८९॥
भूतोन्मादे क्रोधोन्मादे ऊर्द्धजत्रुगदेऽपि च।
तैलमेतत्प्रयोक्तव्यं शिवया निर्म्मितं शुभम्॥ ९०॥

मुख और नखादि रहित गीदडका मांस (पोटलीमें बँधा हुआ) एक प्रस्थ और दशमूल समानभाग मिश्रित ५० पल लेकर सबको एकद्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर उस काढेमें गोदुग्ध चार प्रस्थ, तिलका तैल एक प्रस्थ एवं बेलकी छाल, सोनापाठेकी छाल, कम्भारी, पाढर, अरणी, वच, कूठ, भूरिछरीला, उसबा, अनन्तमूल, धतूरेके बीज, वरनाकी जड, बैंगन, बडी कटेरी, चीता, पीपलामूल, मुलैठी, सैंधानमक, खिरैंटी, सोया, देवदारु, रायसन, गजपीपल, नागरमोथा, कचूर, लाख, प्रसारणी और लालचन्दन इनके एकएक कर्ष कल्कको डालकर

मन्दमन्द अग्निके द्वारा शनैः शनैः तैलको पकावे। इस प्रकार सिद्ध कियाहुआ यह तैल वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज इन सर्वप्रकारके उन्माद, सम्पूर्ण वातरोग और एकाङ्ग व सर्वाङ्गकी पीडा इन सबको इस प्रकार नष्ट करदेता जैसे वज्र वृक्षोंको। इसको अपस्मार, ज्वर, खाँसी, हनुस्तम्भ, क्रोधजन्य उन्माद और ऊर्ध्वजत्रु रोगोंमें भी प्रयोग करना चाहिये। इस उत्तम तैलको श्रीपार्वतीजीने निर्माण किया है ॥ ८३-९० ॥

तैलं नारायणं वापि महानारायणं तथा।
हितमत्र प्रयोक्तव्यमिति चक्रेण भाषितम् ॥ ९१ ॥

उन्मादरोगमें नारायण तैल अथवा महानारायणतैलका प्रयोग करना चाहिये। यह चक्रदत्तका मत है ॥ ९१ ॥

उन्मादरोगमें पथ्य।

आश्वासनत्रासनबन्धनानि भयानि दानानि च हर्षणानि।
धूपो दमो विस्मरणं प्रदेहः शिराव्यधः संशमनश्च सेकः ९२॥
आश्चर्यकर्म्माणि च धूमपानं धीधैर्यसत्त्वात्मनिवेदनानि।
अभ्यञ्जनं स्नापनमासनञ्च निद्रासुशीतान्यनुलेपनानि ९३
गोधूममुद्रारुणशालयश्च धारोष्णदुग्धं शतधौतसर्पिः।
नवीनभूतञ्च पुरातनञ्च कूर्मामिषं धन्वरसा रसालम् ॥९४॥
पुराणकूष्माण्डफलं पटोलं ब्राह्मीदलं वास्तुकतण्डुलीयम्।
खराश्वमूत्रं गगनाम्बु पथ्या सुवर्णचूर्णानि च नारिकेलम् ॥
द्राक्षा कपित्थं पनसञ्च वैद्यैर्विधेयमुन्मादगदेषु पथ्यम् ॥९५॥

आश्वासनदेना, डराना, बांधना, भय, दान, हर्ष आदिके काम, धूप, इन्द्रिय-रोगके भुलानेवाली बातें, सुगन्धित वस्तुओंका प्रलेप, शिरा बेधना, संशमन ओषधियाँ, जलसिञ्चन, आश्चर्यजनक कार्य, धूमपान, बुद्धि, धीरता, सत्त्वगुण ये आत्मज्ञानका वर्णन, तैलकी मालिश, स्नान, स्थिरचित्तसे बैठना, शयन करना, शीतल पदार्थोंका प्रलेप करना, गेहूँ, मूँग, लालशालि धानोंके चावल, धारोष्ण दूध, सौबारका धोया हुआ घी, नैनी घी और पुराना घी, कछुएका मांस, मरुदेशोत्पन्न पशु-पक्षियोंका मांसरस, रसाला, पुराना पेठा, परवल, ब्राह्मीका शाक, बथुएका शाक, चौलाईका शाक, गदहेका मूत्र, घोडेका मूत्र, वर्षाका जल, हरड, सुवर्णभस्म, नारियल, दाख, कैथ कटहल ये सब उन्माद रोगमें पथ्यहैं ॥

उन्मादरोगमें अपथ्य।

मद्यं विरुद्धाशनमुष्णभोजनं निद्राक्षुधातृट्कृतवेगधारणम्।
व्यवायमाषाढफलं कठिल्लकं शाकानिपत्रप्रभवाणि सर्वशः॥
तिक्तानि बिम्बीचभिषग्समादिशेदुन्मादरोगोपहतेषुगर्हितम्

मदिरा, विरुद्ध आहार, गरमभोजन, निद्रा, क्षुधा और तृषा इनके वेगको रोकना, स्त्रीप्रसङ्ग, ढाकके बीज, करेला, सर्वप्रकारके पत्रशाक, कडवे पदार्थ और कन्दूरी ये सब पदार्थ उन्मादरोगमें अपथ्य हैं॥ ९६॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामुन्मादरोगचिकित्सा॥

अपस्माररोगकी चिकित्सा।

वातिकं वस्तिभिः प्रायः पैत्तं प्रायो विरेचनैः।
श्लैष्मिकं वमनप्रायैरपस्मारमुपाचरेत्॥ १॥

वातज अपस्मारको प्रायः वस्तिकर्मके द्वारा, पित्तज अपस्मारको विरेचनसे और कफजनित अपस्मार रोगको प्रायः वमनके द्वारा शमन करे॥ १॥

पुष्योद्धृतं शुनःपित्तमपस्मारघ्नमञ्जनम्।
तदेव सर्पिषा युक्तं धूपनं परमं स्मृतम्॥ २॥

पुष्यनक्षत्रमें कुत्तेके पित्तको निकालकर आँखोंमें आँजनेसे अथवा उसको घृतके साथ मिलाकर धूनी देनेसे अपस्मार रोग नष्ट होताहै॥ २॥

नकुलोलूकमार्जारगृध्रकीटाहिकाकजैः।
तुण्डैः पक्षैः पुरीषैश्च धूपनं कारयेद्भिषक्॥ ३॥

अपस्मारमें वेद्य नौला, उल्लू, बिलाव, गिद्ध, कीडा, सर्प और कौआ इन सबकी चोंच, पंख और विष्ठाकी धूप दिलवानी चाहिये॥ ३॥

मनोह्वा तार्क्ष्यजञ्चैव शकृत्पारावतस्य च।
अञ्जनं हन्त्यपस्मारमुन्मादञ्च विशेषतः॥ ४॥

मैनसिल, रसौत और कबूतरकी बीठ इनको एकत्र पीसकर आंखोंमें आँजनेस अपस्मार और विशेषकर उन्मादरोग नष्ट होताहै॥ ४॥

अपेतराक्षसीकुष्ठपूतनाकेशिचोरकैः।
उत्सादनं मूत्रपिष्टैर्मूत्रैरेवावसेचनम्॥ ५॥

सफेद तुलसीकी जड, कूठ, हरड, भूतकेशी और भटेउर इन सबको समान भाग लेकर बकरेके मूत्रमें पीसकर शरीरमें मालिश करनेसे अथवा बकरेके मूत्रमें मिलाकर सेचन करनेसे अपस्मार शमन होता है ॥ ५ ॥

जतुकाशकृता तद्वत् दग्धैर्वा बस्तलोमभिः ।
अपस्मारहरो लेपो मूत्रसिद्धार्थशिग्रुभिः ॥ ६ ॥

गोमूत्रके साथ चिमगादडकी विष्ठा या बकरेके भस्म कियेहुए रोम अथवा सफेद सरसों सहिंजनेके बीजोंको पीसकर लेप करनेसे अपस्मार दूर होय ॥

यः खादेत्क्षीरभक्ताशी माक्षिकेण वचारजः ।
अपस्मारं महाघोरं स चिरोत्थं जयेद्ध्रुवम् ॥ ७ ॥

यदि दूध और भातका भोजन करनेवाला मनुष्य शहदके साथ बचके चूर्णको मिलाकर सेवन करे तो वह चिरकालोत्पन्न और महाभयंकर अपस्मारको अवश्य जीतता है ॥ ७ ॥

उल्लम्बितनरग्रीवापाशं दग्ध्वा कृता मसी ।
शीताम्बुना समं पीत्वा हन्त्यपस्मारमुद्धतम् ॥ ८ ॥

फाँसीके द्वारा मरेहुए मनुष्यकी गर्दनकी रस्सीको जलाकर स्याही बनालेवे । उस स्याहीको शीतल जलके साथ पानकरनेसे अत्युग्र अपस्मार नष्ट होताहै८॥

प्रयोज्यं तैललशुनं पयसा वा शतावरी ।
ब्राह्मीरसश्च मधुना सर्वापस्मारभेषजम् ॥ ९ ॥

तैलके साथ लहसुन अथवा दूधके साथ शतावर या ब्राह्मीके रसको शहदके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारका अपस्मार दूर होता है ॥ ९ ॥

निर्दह्य निर्द्रवां कृत्वा च्छागिकामरनालिकाम् ।
तामम्लसाधितां खादेदपस्मारमुदस्याति ॥ १० ॥

बकरीकी अमरा नामक नाडीको रक्तादिसे शुद्धकरके अच्छे प्रकारके जलाकर उसको काँजीके साथ पकाकर सेवन करनेसे अपस्मार नष्ट होता है १०॥

अभ्यङ्गे सार्षपं तैलं बस्तमूत्रे चतुर्गुणे ।
सिद्धं स्याद्गोशकृन्मूत्रैः स्नानोत्सादनमेव च ॥ ११ ॥

सरसोंके तैलको चौगुने बकरेके मूत्रमें पकाकर मालिश करना अथवा गोवरको शरीरपर मलना और गोमूत्रसे स्नान व सेचन करना आदि उपचारोंसे अपस्मार दूर होता है ॥ ११ ॥

सूतभस्मप्रयोग।

शङ्खपुष्पी वचा ब्राह्मी कुष्ठमेलारसैः सह।
सूतभस्मप्रयोगोऽयं रक्तिकाद्वयमानतः॥
सर्वापस्मारनाशाय महादेवेन भाषितः॥ १२॥

शङ्खपुष्पी, बच, ब्राह्मी, कूठ और इलायची, इनके काथके साथ दो दो रत्ती परिमाण पारेकी भस्मको सेवन करे। सर्वप्रकारके अपस्मारको नाश करनेके लिये श्रीमहादेवजीने इस प्रयोगको वर्णन किया है॥ १२॥

इन्द्रब्रह्मवटी।

मृतसूताभ्रकं तीक्ष्णं तारं ताप्यं विषं समम्।
पद्मकेशरसंयुक्तं दिनैकं मर्दयेद्द्रवैः॥ १३॥
स्नुह्यग्निविजयैरण्डवचानिष्पावशूरणैः।
निर्गुण्ड्याश्च द्रवैर्मर्द्य तद्गोलं पाचयेत्पुनः॥ १४॥
कङ्गुनीसर्षपोत्थेन तैलेन गन्धसंयुतम्।
ततः पक्त्वा समुद्धृत्य चणमात्रा वटीकृता॥ १५॥
इन्द्रब्रह्मवटीनाम भक्षयेदार्द्रकद्रवैः।
दशमूलकषायञ्च कणायुक्तं पिबेदनु॥
अपस्मारं जयत्याशु यथा सूर्योदये तमः॥ १६॥

पारेकी भस्म, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, चाँदीकी भस्म, सोनामाखीकी भस्म, शुद्ध मीठा तेलिया और कमलकी केशर इनको समानभाग लेकर सबको एकत्र करके थूहर, चीता, भाँग, अण्ड, वच, सेम, जिमीकन्द और निर्गुण्डी इनके रसमें क्रमसे एक एक दिनतक खरल कर गोलासा बनालेवे। फिर पुटपाक करके उस औषधकी समान भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर मालकांगुनी और सरसोंके तैलमें पकाकर चनेकी बराबर गोलियां बनालेवे। इस इन्द्रब्रह्मवटीकी प्रति दिन एक एक गोलीको अदरखके रस और शहदके साथ भक्षण करके पीपलका चूर्ण मिलाकर दशमूलका काथ पान करे। इससे अपस्मार इस प्रकार दूर होता है,जैसे सूर्यका प्रकाश होनेपर अन्धकार तत्काल नष्ट होताहै॥

भूतभैरव रस।

शुद्धसूतार्कलौहञ्च शिलागन्धकतालकम्।
रसाञ्जनञ्च तुल्यांशं नरमूत्रेण मर्दयेत॥ १७॥

तद्गोलं द्विगुणं गन्धं लोहपात्रे क्षणं पचेत् ।
पञ्चगुञ्जामितं भक्ष्यमपस्मारहरं परम् ॥ १८ ॥
हिङ्गुसौवर्चलं व्योषं नरमूत्रेण सर्पिषा ।
कर्षमात्रं पिबेच्चानु रसोऽयं भूतभैरवः ॥ १९ ॥

शुद्ध पारा, तांबा, लोहा, मैनसिल, शुद्धगन्धक, हरताल और रसौत इनको समभाग लेकर मनुष्यके मूत्रके साथ खरल कर गोला बनालेवे। फिर उसमें समस्त औषधसे दुगुनी शुद्ध गन्धक मिलाकर लोहेके पात्रमें थोडी देर तक मन्द मन्द अग्निके द्वारा पकावे। इस भूतभैरवरसको प्रतिदिन पाँच पाँच रत्ती प्रमाण भक्षण करे और ऊपरसे हींग, कालानमक, सोंठ, मिरच और पीपल इनके एक कर्ष परिमाण चूर्णको मनुष्यके मूत्र और घीमें मिलाकर सेवन करे। यह रस अपस्मारको हरनेके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ १७--१९ ॥

वातकुलान्तक।

मृगनाभिः शिवा नागकेशरं कलिवृक्षजम् ।
पारदं गन्धकं जातीफलमेलालवङ्गकम् ॥ २० ॥
प्रत्येकं कार्षिकञ्चैव श्लक्ष्णचूर्णञ्च कारयेत् ।
जलेन मर्दयित्वा तु वटीं कुर्याद्द्विरक्तिकाम् ॥ २१ ॥
यथाव्याध्यनुपानेन योजयेच्च चिकित्सकः ।
अपस्मारे महाघोरे मूर्च्छारोगे च शस्यते ॥ २२ ॥
वातजान्सर्वरोगांश्च हन्यादचिरसेवनात् ।
नातः परतरं श्रेष्ठमपस्मारेषु वर्त्तते ॥
ब्रह्मणा निर्मितः पूर्वं नाम्ना वातकुलान्तकः ॥२३॥

कस्तूरी, हरड, नागकेशर, बहेडा, पारा गन्धक, जायफल, इलायची और लौंग इन प्रत्येकको एक एक कर्ष लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर उस चूर्णको जलके साथ खरलकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। वैद्य इस रसको यथादोषानुसार अनुपानके साथ अत्यन्त प्रबल अपस्मार और मूर्च्छारोगमें प्रयोग करे। यह सर्वप्रकारके वातरोगोंको बहुत शीघ्र नष्ट करता है। अपस्माररोगपर इस रससे बढकर अन्य कोई श्रेष्ठ औषधि नहीं है। इस वातकुलान्तक रसको पूर्वकालमें ब्रह्माजीने निर्माण किया है ॥ २०--२३ ॥

कूष्माण्डघृत।

कूष्माण्डस्वरसे सर्पिरष्टादशगुणे पचेत्।
यष्ट्याह्वकल्कं तत्पानमपस्मारविनाशनम्॥ २४॥

अठारह गुने पेठेके स्वरसमें १ भाग गोघृत चौथाई भाग मुलैठीका कल्क डालकर घृतको पकावे। उस घृतको पान करतेही अपस्मार नाशहोताहै॥२४॥

ब्राह्मी घृत।

ब्राह्मीरसे वचाकुष्ठशङ्खपुष्पीभिरेव च।
पुराणं मेध्यमुन्मादग्रहापस्मारनुद्घृतम्॥ २५॥

ब्राह्मीके रसमें वच, कूठ, और शङ्खपुष्पी इनके समानभाग मिश्रित कल्कके साथ पुराने घृतको डालकर पकावे। वह घृत मेधाजनक एवं उन्माद ग्रहबाधा और अपस्मार रोग नाशक है॥ २५॥

स्वल्पपञ्चगव्य घृत।

गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैः समैर्घृतम्।
सिद्धं चातुर्थिकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम्॥ २६॥

गौके गोबरका रस, खट्टा दही, दूध, गोमूत्र और घी इन सबको समान भाग लेकर यथाविधि घृतको सिद्ध करे। इस घृतको सेवन करनेसे चौथिया ज्वर, उन्माद, ग्रहपीडा और अपस्मार नष्ट होताहै॥ २६॥

बृहत्पञ्चगव्यघृत।

द्वे पञ्चमूले त्रिफलां रजन्यौ कुटजत्वचम्।
सप्तपर्णमपामार्गं नीलिनीं कटुरोहिणीम्॥ २७॥
शम्याकं फल्गुमूलञ्च पौष्करं सदुरालभम्।
द्विपलानि जलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषिते॥ २८॥
भार्गीं पाठां त्रिकटुकं त्रिवृतां निचुलानि च।
श्रेयसीमाढकीं मूर्वां दन्तीं भूनिम्बचित्रकौ॥ २९॥
द्वे शारिवे रौहिषञ्च भूतिकां मदयन्तिकाम्।
क्षिपेत्पिष्ट्वाक्षमात्राणि तैः प्रस्थं सर्पिषः पचेत्॥ ३०॥
गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैश्च तत्समैः।
पञ्चगव्यमिदं ख्यातं महत्तदमृतोपमम्॥ ३१॥

अपस्मारे ज्वरे कासे श्वयथावुदरे तथा।
गुल्मार्शःपाण्डुरोगेषु कामलायां हलीमके॥
अलक्ष्मीग्रहरक्षोघ्नं चातुर्थिकविनाशनम्॥ ३२॥

दोनों पञ्चमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कुडेकी छाल, सतवन, चिरचिटा, नील, कुटकी, अमलतास, कठूमरकी जड, पोहकरमूल और धमासा इन प्रत्येक ओषधिको आठ आठ तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें भारङ्गी, पाढ, त्रिकुटा, निसोत, जलबेंत, गजपीपल, अरहर, मूर्वा, दन्ती, चिरायता, चीता, कालीसर, गौरीसर, रोहिषतृण, अजवायन और मोतियाके फूल इन प्रत्येकका कल्क दो दो तोले एवं गौका घी, गोबरका रस, खट्टा दही, दूध और गोमूत्र ये प्रत्येक एक एक प्रस्थ डालकर उत्तम प्रकारसे घृतको पकावे। यह बृहत्पञ्चगव्यनामक घृत अपस्मार, ज्वर, खाँसी, शोथ, उदररोग, गुल्म, अर्श, पाण्डुरोग, कामला, हलीमकादि रोगोंमें अमृतकी समान हितकरहै। एवं दारिद्र्य, ग्रहबाधा, राक्षसबाधा और चातुर्थिकज्वरको दूर करताहै॥२७–३२॥

महाचैतसघृत।

शणस्त्रिवृत्तथैरण्डो दशमूली शतावरी।
रास्ना मागधिका शिग्रुः क्वाथ्यं द्विपलिकं भवेत् ३३
विदारी मधुकं मेदे द्वे काकोल्यौ सिता तथा।
एभिः खर्जूरमृद्वीका भीरुमुञ्जातगोक्षुरैः॥ ३४॥
चैतसस्य घृतस्याङ्गे पक्तव्यं सर्पिरुत्तमम्।
महाचैतससंज्ञन्तु सर्वापस्मारनाशनम्॥ ३५॥
गरोन्मादप्रतिश्यायतृतीयकचतुर्थकान्।
पापालक्ष्मीर्जयेदेतत्सर्वग्रहनिवारणम्॥ ३६॥
श्वासकासहरश्चैव शुक्रार्त्तवविशोधनम्।
घृतमानं क्वाथविधिरिह चैतसवन्मतः॥ ३७॥
कल्कश्चैतसकल्कोक्तद्रव्यैः सार्द्धश्च पादिकः।
"नित्यं मुञ्जातकाभावे तालमस्तकमिष्यते"॥ ३८॥

सनके बीज, निसोत, अण्डकी जड, दशमूल, शतावर, रायसन, पीपल और सहिंजना इन प्रत्येक ओषधिको आठ आठ तोले लेकर काथ बनालेवे।

फिर उस क्वाथमें विदारीकन्द, मुलैठी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मिश्री, खजूर, दाख, शतावर, पुष्पशाकभेद (अभावमें ताडका गूदा) गोखरू और चैतसघृतकी समस्त औषधियोंके कल्कके साथ उत्तम प्रकारसे घृतको पकाना चाहिये । यह महाचैतसनामक घृत सर्वप्रकारके अपस्मारको नष्ट करताहै एवं विषोत्पन्न उन्माद, प्रतिश्याय, तिजारीज्वर, चौथियाज्वर, पापग्रह, अलक्ष्मी, सर्वप्रकारकी ग्रहबाधा, श्वास और खाँसी इन सबको निवारण करता है । शुक्र और आर्त्तवको शुद्ध करताहै । इसमें चैतसघृतकी समान यथाविधि क्वाथ बनाकर उसमें उक्त घृतके कल्ककी समस्त ओषधियोंका कल्क एकभाग और घी चार भाग डालकर घृतको सिद्ध करे ॥ ३३-३८ ॥

पलंकषाद्यतैल ।

पलङ्कषा वचा पथ्यावृश्चिकाल्यर्कसर्षपैः ।
जटिलापूतनाकेशीलाङ्गलीहिङ्गुचोरकैः ॥ ३९ ॥
लशुनातिविषाचित्राकुष्ठैर्विड्भिश्च पक्षिणाम् ।
मांसाशिनां यथालाभं बस्तमूत्रे चतुर्गुणे ॥
सिद्धमभ्यञ्जनात्तैलमपस्मारविनाशनम् ॥ ४० ॥

गोरखमुण्डी, वच, हरड, बिछाटी घास, आककी जड, सरसों, बालछड, भूपकेशी, जलपीपल, हींग, असवरग, लहसन, अतीस, चीता, कूठ और बाज आदि मांसाहारी पक्षियोंकी (जितनी प्राप्त होसके) विष्ठा इन सबके समान भाग मिश्रित कल्कके साथ तिलके तैलको बकरेके चौगुने मूत्रमें सिद्ध करे। इस तैलको शरीरमें मर्दन करनेसे अपस्माररोग नाश होताहै ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अपस्माररोगमें पथ्यापथ्यविधि ।

उन्मादेषु यदुद्दिष्टं पथ्यं नस्याञ्जनौषधम् ।
अपस्मारेऽपि तत्सर्वं प्रयोक्तव्यं भिषग्वरैः ॥ ४१ ॥

उन्मादरोगमें जो पथ्य, नस्य, अञ्जन और ओषधियाँ कहीगई हैं, उन सबको अपस्माररोगमें भी प्रयोगकरना चाहिये ॥ ४१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामपस्माररोगचिकित्सा ।

वातव्याधिकी चिकित्सा।

स्वाद्वम्ललवणैः स्निग्धैराहारैर्वातरोगिणाम्।
अभ्यङ्गस्नेहवस्त्याद्यैः सर्वानेवोपपादयेत् ॥ १ ॥

मधुर, अम्ल, नमकीन, स्निग्ध आहारके द्वारा, तैलादि मर्दन, स्नेह पदार्थोंकी वस्ति आदि क्रियाओंके द्वारा वातरोगियोंके समस्त रोगोंकी चिकित्सा करे॥१

कोलं कुलत्थाः सुरदारुरास्ना माषातसीतैलफलानि कुष्ठम्
वचाशताह्वायवचूर्णमम्लमुष्णानि वातामयिनां प्रदेहः॥२॥

बेर, कुलथी, देवदारु, रायसन, उडद, अलसीका तैल, त्रिफला, कूठ, वच, सौंफ और जौका चूर्ण इन सबको समानभाग लेकर काँजीके साथ खरल करके उसको कुछ गरमकर वातरोगियोंके प्रलेप करना चाहिये ॥ २ ॥

पक्षाघातं कटिहनुशिरःकर्णनासाक्षितालु-
ग्रीवाग्रन्थिप्रबलमनिलं सार्दितं सापतानम्।
मूत्राघातं ग्रहणिगलरुक्श्वाससर्वाङ्गकम्पं
तैलद्रोणी हरति न चिरात्काञ्जिकद्रोणिका च ॥ ३ ॥

एक बडे वर्त्तनमें तिलका तैल या काँजी भरकर उसमें गोता लगाकर स्नान करनेसे पक्षाघात, कमर, ठोडी, शिर, कान, नाक, आँख, तालु, ग्रीवा और ग्रन्थि इनमें स्थित प्रबलवायु, एवं अर्दित, अपतानक, मूत्राघात, संग्रहणी, गलेके रोग, श्वास सम्पूर्ण अङ्गोंमें कम्प आदि विकार शीघ्र दूर होते हैं ॥ ३ ॥

तैलं घृतं चार्द्रकमातुलुङ्गयो रसं सचुक्रं सगुडं पिबेद्वा।
कट्यूरुपृष्ठत्रिकगुल्मशूलगृध्रस्युदावर्त्तहरः प्रयोगः ॥ ४ ॥

तिलका तैल, घी, अदरखका रस, बिजौरेनींबूका रस इन सबको समान भाग लेकर चूक अथवा गुड मिलाकर सेवन करनेसे कमरकी पीडा, ऊरुस्तम्भ, पृष्ठदण्डकी पीडा, गुल्म, शूल, गृध्रसी और उदावर्त ये सब रोग नष्ट होते हैं॥

पञ्चमूली बला सिद्धं क्षीरं वातामये हितम् ॥ ५ ॥

वातरोगमें बृहत्पञ्चमूल और खिरैंटीके द्वारा सिद्ध कियाहुआ दुग्ध पान-करना हितकर है ॥ ५ ॥

कोष्ठगत-वातकी चिकित्सा।

विशेषतस्तु कोष्ठस्थे वाते क्षारं पिबेन्नरः ॥ ६ ॥

कोष्ठगत वातमें विशेषकर जवाखार अथवा संग्रहणीरोगमें कहीहुई अग्नि-प्रदीपक और क्षारयुक्त ओषधियाँ सेवन करनी चाहिये ॥ ६ ॥

आमाशयगत–वातकी चिकित्सा।

अमाशयस्थे शुद्धस्य यथा रोगहरी क्रिया।
आमाशयगते वाते छर्दिताय यथाक्रमम्।
रूक्षः स्वेदो लङ्घनञ्च कर्त्तव्यं वह्निदीपनम् ॥ ७ ॥

आमाशयस्थित वातमें रोगीको प्रथम वमन और विरेचनके द्वारा शुद्धकर पश्चात् रोगनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। एवं वमन कराकर रूक्षस्वेद देना, लंघन कराना अग्निदीपक ओषधियोंका सेवन आदि क्रियायें करनी चाहिये ॥

पक्वाशयगत–वातकी चिकित्सा।

पक्वाशयगते वाते हितं स्नेहाविरेचनम् ॥ ८ ॥

पक्वाशयमें वातरोगकेहोनेपर रोगीको अण्डीका तेलपानकराकर दस्त कराना

वस्त्यादिगतवातकी चिकित्सा।

कार्यो वस्तिगते वापि विधिर्वस्तिविशोधनः।
त्वङ्मांसासृक्शिराप्राप्ते कुर्याच्चासृग्विमोक्षणम् ॥९॥

वस्ति (मूत्राशय) गत वातरोगमें मूत्राघात और अश्मरीरोगमें कहीहुई विधिसे चिकित्सा करनी चाहिये। त्वचा, मांस, रुधिर और शिरागत वायु-रोगमें रक्तमोक्षण कराना चाहिये ॥ ९ ॥

स्नायुसन्ध्यस्थिगत-वातकी चिकित्सा।

स्नेहोपनाहाग्निकर्म्मबन्धनान्मर्दनानि च।
स्नायुसन्ध्यास्थिसंप्राप्ते कुर्याद्वाते विचक्षणः ॥ १० ॥

तैल, घृतादिका सेवन, प्रलेप, अग्निकर्म, बन्धन और तेलकी मालिश आदिके द्वारा स्नायु, सन्धि और अस्थिगतवातकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १० ॥

त्वगत-वातकी चिकित्सा।

स्वेदाभ्यङ्गावगाहांश्च हृद्यं चान्नं त्वगाश्रिते ॥ ११ ॥

त्वचामें वातरोग होनेपर स्वेदक्रिया, तैलकी मालिश, गोतालगाकर जलमें स्नान करना और हृदयको हितकारी अन्नका भोजन आदि उपचार कराना ॥

रक्तगद-वातकी चिकित्सा।

शीताः प्रदेहा रक्तस्थे विरेको रक्तमोक्षणम् ॥ १२ ॥

रुधिरगत वातरोगमें शीतल प्रलेप, विरेचन और रक्तमोक्षण आदिके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १२ ॥

मांसमेदोगतवातकी चिकित्सा।

विरेको मांसमेदस्थे निरूहाः शमनानि च ॥ १३ ॥

मांस और मेदोगत वातरोगमें विरेचन, निरूहवस्ति और शमनकारक ओषधियाँ प्रयोग करनी चाहिये ॥ १३ ॥

अस्थिमज्जागत-वातकी चिकित्सा।

बाह्याभ्यन्तरतः स्नेहैरस्थिमज्जागतं जयेत् ॥ १४ ॥

अस्थि और मज्जामें स्थित वातको घृतपान और तैलादिकी मालिश आदिके द्वारा जीतना चाहिये ॥ १४ ॥

शुक्रग-तवातकी चिकित्सा।

हृद्यान्नपानं शुक्रस्थे बलशुक्रकरं हितम् ॥ १५ ॥

विबद्धमार्गशुक्रन्तु दृष्ट्वा दद्याद्विरेचनम् ॥ १६ ॥

शुक्रस्थित वातमें हृदयको हितकारी, सुस्वादु, बलकारक और शुक्रवर्द्धक अन्न पान सेवन करने हितकारी हैं। यदि शुक्र निकलनेका मार्ग अवरुद्ध होगया हो तो विरेचक ओषधियाँ सेवन करावे। कारण-विरेचनके द्वारा कुपित वायुके सरल होजानेसे वीर्य निकलनेका मार्ग साफ होजाताहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

शुष्कगर्भकी चिकित्सा।

गर्भे शुष्के तु वातेन बालानाञ्चापि शुष्यताम्।
सितामधुककाश्मर्यैर्हितमुत्थापने पयः ॥ १७ ॥

वायुके द्वारा गर्भाशय अथवा गर्भस्थ सन्तानके शुष्क होजानेपर मिश्री, मुलैठी, कुम्भेर इनके साथ दूधको पकाकर गर्भिणीको पान कराना चाहिये॥१७॥

शिरोगत वातकी चिकित्सा।

शिरोगतेऽनिले वाताशिरोरोगहरी क्रिया ॥ १८ ॥

शिरमें वातरोग होनेपर वातज शिरोरोगमें कहीहुई विधिके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १८ ॥

व्यादितकी चिकित्सा।

व्यादितास्ये हनुं स्विन्नमङ्गुष्ठाभ्यां प्रपीड्य च।
प्रदेशिनीभ्याञ्चोन्नम्य चिबुकोन्नमनं हितम् ॥१९॥

वातरोगमें मुखके फैलजानेपर गण्डस्थलोंमें स्वेद देकर अँगूठोंके द्वारा ठोडीको दबावे फिर तर्जनी और मध्यमा अँगुलियोंके द्वारा ठोडीको ऊपरेका उठावे । इस प्रकार करनेसे मुखका विकृतभाव दूर होताहै ।। १९ ।।

आर्दितकी चिकित्सा ।

रसोनकल्कं नवनीतमिश्रं खादेन्नरो योऽर्दितरोगयुक्तः ।
तस्यार्दितं नाशयतीह शीघ्रं वृन्दं घनानामिव मातरिश्वा ॥

यदि आर्दित रोगी लहसुनके कल्कको नैनीघीमें मिलाकर सेवन करे तो उसका आर्दितरोग इस प्रकार शीघ्र नाश होजाता है, जैसे वायुका वेग मेघोंके समूहको तत्काल नष्ट करदेता है ।। २० ।।

आर्दिते नवनीतेन खादेन्माषण्डरीं नरः ।
क्षीरमांसरसैर्भुक्त्वा दशमूलीरसं पिबेत् ॥ २१ ॥

आर्दितरोगमें नैनीघीके साथ उडदकी वाडियें भक्षण करे । पश्चात् दूध और मांसरसके साथ भोजन करके दशमूलका काथ पान करे ।। २१ ।।

स्वेदाभ्यङ्गशिरोबस्तिपाननस्यपरायणः ।
आर्दितं संजयेत्सर्पिः पिबेदोत्तरभाक्षितम् ॥ २२ ॥

आर्दितरोगमें स्वेद, वैलमर्दन, घृतपान, शिरोबस्ति और नस्य इन क्रियाओंका यथाविधि प्रयोगकर भोजनके बाद घृत पानकरानेसे आर्दितरोग नष्टहो।।

मन्यास्तम्भकी चिकित्सा ।

पञ्चमूलीकृतः क्काथो दशमूलीकृतोऽथवा ।
रूक्षः स्वेदस्तथा नस्यं मन्यास्तम्भे प्रशस्यते ॥ २३ ॥

मन्यास्तम्भरोगमें बृहत्पञ्चमूल अथवा दशमूलका काथ पानकरना एवं रूक्ष स्वेद और नस्यदेना चाहिये ।। २६ ।।

ग्रीवास्तम्भकी चिकित्सा ।

कटुतैलेनाभ्यक्ते लिप्ते कल्केन वाजिगन्धायाः ।
शाम्येद्ग्रीवास्तम्भशूलं महदप्यनायासम् ॥ २४ ॥

कडुवे तैलकी मालिश और असगन्धकी जडको पानीमें पीसकर लेप करनेसे अत्यन्त प्रबल ग्रीवास्तम्भकी शूलभी सहजमें ही दूर होजाता है ।। २४ ।।

जिह्वास्तम्भकी चिकित्सा ।

वाताद्वाग्धमनीदुष्टौ स्नेहगण्डूषधारणम् ॥ २५ ॥

वायुसे वाणीको बहानेवाली नाडीके विकृत होजानेपर वातनाशक तैल अथवा घृतके गण्डूषधारण करने चाहिये ॥ २५ ॥

कुब्जकी चिकित्सा ।

वातघ्नैर्दशमूल्या च नरं कुब्जमुपाचरेत् ।
स्नेहैर्मांसरसैर्वापि प्रवृद्धन्तं विवर्जयेत् ॥ २६ ॥

वायुके द्वारा मनुष्यके शरीरमें कुब्ज (कुबडापन) होजानेपर वातनाशक भद्रदार्व्वादिगणकी ओषधियोंका क्वाथ या दशमूलका क्वाथ अथवा वातनाशक तैल घृतादि और मांसरस सेवन आदि उपचार करे। किन्तु बहुत पुराने स्थायी कुब्जको असाध्य जानकर छोडदेवे ॥ २६ ॥

आध्मानकी चिकित्सा ।

आध्माने लंघनं पाणितापश्च फलवर्त्तयः ।
दीपनं पाचनश्चैव वस्तिश्चाप्यत्र शोधनः ॥ २७ ॥

आध्मान (अफारा) रोगमें लंघन कराना, हाथको अग्निपर तपाकर स्वेद देना, फलवर्त्ति क्रिया, अग्निदीपक और पाचक ओषधियोको प्रयोग करनी और वस्तिक्रिया करनी चाहिये ॥ २७ ॥

अष्ठीला और प्रत्यष्ठीलाकी चिकित्सा ।

प्रत्यष्ठीलाष्ठीलिकयोरन्तर्विद्रधिगुल्मवत् ॥ २८ ॥

अष्ठीला, प्रत्यष्ठीलारोगमें अन्तर्विद्रधि और गुल्मरोगकी समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २८ ॥

गृध्रसीकी चिकित्सा ।

तैलमेरण्डजं वापि गोमूत्रेण पिबेन्नरः ।
मासमेकं प्रयोगोऽयं गृध्रस्यूरुग्रहापहः ॥ २९ ॥

अण्डीके तेलको गोमूत्रके साथ एक महीनेतक सेवन करनेसे गृध्रसी और ऊरुस्तम्भ दूर होता है ॥ २९ ॥

शेफालिकादलक्काथो मृद्वग्निपरिसाधितः ।
दुर्वारं गृध्रसीरोगं पीतमात्रं समुद्धरेत ॥ ३० ॥

मन्दमन्द अग्निके द्वारा सिद्ध किया हुआ निर्गुण्डीके पत्तोंका क्वाथ पान करतेही दुस्साध्य गृध्रसीरोगको नष्ट करताहै ॥ ३० ॥

पिष्टैरण्डफलं क्षीरे सविश्वं वा फलं रुबोः ।
पायसो भक्षितः सिद्धो गृध्रसीकटिशूलनुत् ॥ ३१ ॥

छिलकेरहित अण्डके बीजोंको पीसकर अथवा अण्डके बीज और सोंठको एकत्र पीसकर उनकी दूधमें खीर बनाकर भक्षण करनेसे गृध्रसी और कमरका शूल नष्ट होताहै । (इसमें अण्डके बीजोंसे चौगुने चावल और चावलोंसे चौगुना दूध लेना चाहिये ।। ३१ ।।

वातकण्टककी चिकित्सा ।

रक्तावसेचनं कार्य्यमभीक्ष्णं वातकण्टके ।
पिबेदेरण्डतैलं वा दहेत्सूचीभिरेव वा ॥ ३२ ॥

वातकण्टकरोगमें बार बार रक्तमोक्षण करावे अथवा अण्डीके तेलका पान करे या गरम सुईके द्वारा व्याधिस्थानको दग्धकरे ।। ३२ ।।

खल्वकी चिकित्सा ।

खल्व्यां स्निग्धाम्ललवणैः स्वेदोन्मर्दोपनाहनम् ॥३३ ॥

स्निग्ध, अम्ल और लवणयुक्त द्रव्योंके द्वारा स्वेद देना, मर्दन और प्रलेप करना आदि क्रियायें खल्वी (एक प्रकारका कम्प) रोगमें उपयोगी हैं ।।३३।।

शिराग्रहकी चिकित्सा ।

शिराग्रहे तु कर्त्तव्या शिरागतमरुत्क्रिया ।
दशमूलीकषायेण मातुलुङ्गरसेन च ॥
शृतेन तैलेनाभ्यङ्गः शिरोवस्तिश्च युज्यते ॥ ३४ ॥

शिराग्रहरोगमें शिराओंमें स्थितवायुकी वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये एवं दशमूलके क्वाथ और बिजौरे नींबूके रसके साथ पकायेहुए तेलकी मालिश करना और शिरमें वस्ति(पिचकारी) प्रयोग करना चाहिये ।। ३४ ।।

अपतानकी चिकित्सा ।

अथापतानकेनार्त्तमस्रुताक्षमवेपनम् ।
अखट्वापातिनश्चैव त्वरया समुपाचरेत् ॥ ३५ ॥

अपतानकरोगसे आक्रान्तरोगीकी जिसके नेत्रोंमें आँसू न निकले हों, शरीरमें कम्प न हुआ हो और वह खाटपर न पडा हो तो उसकी बहुत शीघ्र चिकित्सा करनी चाहिये । कारण,चिकित्सामें देर करनेसे रोग असाध्य होताहै।।

पक्षाघातकी चिकित्सा ।

पक्षाघातसमाक्रान्तं सुतीक्ष्णैश्च विरेचनैः ।
शोधयेद्वस्तिभिश्चापि व्याधिरेवं प्रशाम्यति ॥ ३६ ॥

पक्षाघातवाले रोगीको तीक्ष्ण ओषधियोंके द्वारा विरेचन कराकर और बस्तिक्रियाके द्वारा शोधन करे। इस प्रकार करनेसे रोग शमन होताहै ॥३६॥

दशमूलीबलामाषक्वाथं तैलाज्यमिश्रितम्।
सायं भुक्त्वा पिबेन्नस्यं विश्वाच्यामवबाहुके ॥ ३७ ॥

विश्वाची और अवबाहुकरोगमें दशमूल, खिरेंटी और उडद इनके काथको तिलका तैल और घी मिलाकर शामको भोजन करनेके पश्चात् नासिका द्वारा पान करे ॥ ३७ ॥

अपतन्त्रककी चिकित्सा।

अथापतन्त्रकेनार्त्तमातुरं नापतर्पयेत्।
निरूहवस्तिवमनं सेवयेन्न कदाचन ॥ ३८ ॥
श्वसनाः कफवाताभ्यां रुद्धास्तस्य विमोक्षयेत्।
तीक्ष्णैः प्रधमनैः संज्ञां तासु मुक्तासु विन्दति ॥३९॥

अपतन्त्रकरोगसे ग्रसितरोगीको लङ्घन, निरूहवस्ति और वमन कदापि नहीं करानी चाहिये। इसमें कफ और वायुके द्वारा श्वास प्रश्वासको वहानेवाली सब नाडियें रुकजाती हैं,इसलिये तीक्ष्ण प्रधमन क्रियाकरके उनको खोलदेवे। नाडियोंके खुलजानेपर रोगी चैतन्यताको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

खञ्ज और पंगुताकी चिकित्सा।

उपाचरेदभिनवं खञ्जं पङ्गुमथापि वा।
विरेकास्थापनस्वेदगुग्गुलुस्नेहवस्तिभिः ॥ ४० ॥

विरेचन, निरूहवास्ति, स्वेद, गूगल और स्नेहवस्ति इन क्रियाओंके द्वारा नवीन खञ्ज और पंगु रोगीकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४० ॥

क्रोष्टुकशीर्षकी चिकित्सा।

गुग्गुलुं क्रोष्टुशीर्षे तु गुडूचीत्रिफलाम्भसा।
क्षीरेणैरण्डतैलं वा पिबेद्वा वृद्धदारुकम् ॥ ४१ ॥
रसैस्तित्तिरिमांसस्य पीतैर्गुग्गुलुसंयुतैः।
वातरक्तक्रियाभिश्च जयेज्जम्बुकमस्तकम् ॥ ४२ ॥

क्रोष्टुकशीर्ष वातरोगमें गिलोय और त्रिफलेके काथके साथ शुद्ध गूगल या गौके दूधके साथ अण्डीको तैल अथवा दूधके साथ विधारेका चूर्ण सेवन करना चाहिये। तीतरके मांसरसके साथ गूगलको मिलाकर पान करनेसे और

वातरक्ताधिकारमें कही हुई विधिके अनुसार चिकित्सा करनेसे क्रोष्टुकशीर्ष रोग नष्ट होताहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

कलायखञ्जकी चिकित्सा।

क्रमः कलायखञ्जस्य खञ्जपङ्गोरिव स्मृतः।
विशेषात्स्नेहनं कर्म कार्यमत्र विचक्षणैः ॥ ४३ ॥

खञ्ज और पंगुरोगकी समान कलायखञ्जरोगकी चिकित्सा करनी इसमें विशेषकर स्नेहकर्म अर्थात् वातनाशक तैल घृतादिका मर्दन व पान करना ४३

बाह्यान्तरायामकी चिकित्सा।

बाह्यायामेऽन्तरायामे विधेयार्दितवत्क्रियाः ॥ ४४ ॥

बाह्यायाम और अन्तरायामरोगमें अर्दितरोगकी समान चिकित्सा करनी४४

त्रिकशूलकी चिकित्सा।

कारयेद्वालुकास्वेदं त्रिकशूले प्रयत्नतः।
यद्वाधस्तात्करीषाग्निं धारयेत्सततं नरः ॥ ४५ ॥

त्रिकशूलरोगमें बालूके द्वारा विधिपूर्वक स्वेद देवे अथवा कमरके नीच आरने उपलोंकी अग्निको रखकर बार बार सेके ॥ ४५ ॥

पाददाहकी चिकित्सा।

वातरक्तक्रमं कुर्यात्पाददाहे विशेषतः।
मसूरविदलैः पिष्टैः शृतशीतेन वारिणा ॥ ४६ ॥
चरणौ लेपयेत्सम्यक् पाददाहप्रशान्तये।
नवनीतेन संलिप्तौ वह्निना परितापितौ ॥
मुच्येते चरणौ क्षिप्रं परितापात्सुदारुणात् ॥ ४७ ॥

पाददाहरोगमें विशेषकर वातरक्तकी समान चिकित्सा करनी चाहिये। मसूरकी दालको पीसकर जलके साथ पकाकर शीतल होजानेपर पैरोंमें लेप करनेसे पावोंकी दाह शान्त होती है। अथवा पाँवोंमें नैनीघी लगाकर अग्निपर तपानेसे पैरोंकी दारुण दाह शीघ्र दूर होतीहै ॥ ४७ ॥

पादहर्षकी चिकित्सा।

पादहर्षे तु कर्त्तव्यः कफवातहरो विधिः ॥ ४८ ॥

पादहर्षरोगमें कफ और वातनाशकचिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४८ ॥

दशमूलादिकाथ ।

दशमूलीकृतं क्वाथं पञ्चमूल्यपि कल्पितम् ।
मन्यास्तम्भं निहन्त्याशु कम्पवातं विशेषतः॥ ४९ ॥

दशमूल अथवा बृहत्पञ्चमूलका काढा बनाकर पान करनेसे मन्यास्तम्भ रोग और विशेषकर कम्पवातरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ४९ ॥

बलादिकाथ ।

बलामूलं शृतं तोयं सैन्धवेन समन्वितम् ।
बाहुशोषकरे वाते मन्यास्तम्भे च शस्यते ॥ ५० ॥

बाहुशोष और मन्यास्तम्भ वातरोगमें खिरैंटीकी जडका काथ बनाकर उसको सैन्धानमकके साथ सेवन करना चाहिये ॥ ५० ॥

एरण्डादिकाथ ।

एरण्डमूलं बिल्वञ्च बृहती कण्टकारिका ।
कषायो रुचकोपेतः पीतो वङ्क्षणवस्तिजम् ॥
गृध्रसीजं हरेच्छूलं चिरकालानुबन्धि च ॥ ५१ ॥

अण्डकी जडकी छाल, बेलकी छाल, बडीकटेरी और कटेरी इनके काढेमें कालानमक डालकर पानकरनेसे वंक्षण और वस्तिगतशूल, पुरानी गृध्रसी शूलरोग दूर होताहै ॥ ५१ ॥

सिंहास्यादिकाथ ।

सिंहास्यदन्तीकृतमालकानां पिबेत्कषायं रुबुतैलमिश्रम् ।
यो गृध्रसी नष्टगतिःप्रसुप्तः स शीघ्रगः स्याद्धि किमत्रचित्रम्

जो गृध्रसीरोगकी गतिशक्ति नष्ट होगई हो और जडता होगई हो तो उसको अडूसा, दन्तीकी जड और अमलतासे इनका काथ अण्डीका तेल मिलाकर पानकराना चाहिये इससे रोगी शीघ्र चलने लगता है ॥ ५२ ॥

रास्नासप्तककाथ ।

रास्नामृतारग्वधदेवदारु त्रिकण्टकैरण्डपुनर्नवानाम् ।
काथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं जंघोरुपृष्ठत्रिकपार्श्वशूली ५३॥

रायसन, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखुरू, अण्डकी जड और पुनर्नवा इनके मन्दोष्ण काथको सोंठका चूर्ण डालकर पान करनेसे जङ्घा, ऊरु, पीठ, त्रिक और पार्श्वशूलवाला रोगी आरोग्य होताहै ॥ ५३ ॥

माषादिक्वाथ ।

माषात्मगुप्तावातारिवाट्यालकजटाशृतम् ।
हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं पक्षाघातं विनाशयेत् ॥ ५४ ॥

उडद, कौंछके बीज, एरण्डमूल, खिरैंटी और बालछड इनके क्वाथमें हींग और सैंधानमक डालकर पीनेसे पक्षाघात रोग नष्ट होता है ॥ ५४ ॥

गोक्षुरादिक्वाथ ।

गोक्षुरमेरण्डमूलं रास्ना वचा पुनर्नवा ।
कषाय एव प्रशस्तः सर्वाङ्गप्रगते वाते ॥ ५५ ॥

गोखुरू, अण्डकी जड, रायसन, वच और पुनर्नवा इनका क्वाथ सर्वाङ्ग-गतवातरोगमें हितकारी है ॥ ५५ ॥

माषबलादिक्वाथ ।

माषबलाशुकशिम्बीकत्तृणरास्नाश्वगन्धोरुबूकानाम् ।
क्वाथो यस्य निपीतो रामठलवणान्वितः कोष्णः ॥
अपहरति पक्षाघातं मन्यास्तम्भं सकर्णनादं रुजम् ।
दुर्जयमर्दितवातं सप्ताहाज्जयति चावश्यम् ॥ ५६ ॥

उडद, खिरैंटीकी जड, कौंछके बीज, रोहिषतृण, रायसन, असगन्ध और अण्डकी जड इनके मन्दोष्ण क्वाथको हींग और सैंधानमक मिलाकर पानकर-नेसे पक्षाघात, मन्यास्तम्भ, कर्णरोग और दुस्साध्य अर्दितरोग सात दिनमेंही अवश्य नाश होता है ॥ ५६ ॥

कल्याणलेह ।

सहरिद्रा वचा कुष्ठं पिप्पलीविश्वभेषजम् ।
अजाजी चाजमोदा च यष्टीमधुकसैन्धवम् ॥ ५७ ॥
एतानि श्लक्ष्णचूर्णानि समभागानि कारयेत् ।
तच्चूर्णं सर्पिषालोड्य प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ ५८ ॥
एकविंशतिरात्रेण नरः श्रुतिधरो भवेत् ।
मेघदुन्दुभिनिर्घोषो मत्तकोकिलनिःस्वनः ॥
जडगद्गदमूकत्वं लेहः कल्याणको जयेत् ॥ ५९ ॥

हल्दी, वच, कूठ, पीपल, सोंठ, कालाजीरा, अजमोद, मुलैठी और सैंधा नमक इन सबको समानभाग लेकर बारीक पीसकर वस्त्रमें छानलेवे । इस

चूर्णको घीमें मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करनेसे मनुष्य इक्कीस दिनमें सुनतेही बातको धारण करता है । मेघ और दुन्दुभिकी समान घोर शब्द करनेवाला और मदोन्मत्त कोयलकी समान कण्ठस्वरवाला होता है । यह कल्याण लेह जिह्वाकी जडता गद्गदपन और मूकताको दूर करता है ॥ ५७–५९ ॥

शाल्वणस्वेद ।

काकोल्यादिः सवातघ्नः सर्वाम्लद्रव्यसंयुतः ।
सानूपमांसः सुस्विन्नः सर्वस्नेहसमन्वितः ॥ ६० ॥
सुखोष्णः स्पष्टलवणः शाल्वणः परिकीर्त्तितः ।
तेनोपनाहं कुर्वीत सर्वदा वातरोगिणाम् ॥ ६१ ॥
वातघ्नो भद्रदार्वादिः काकोल्यादिस्तु सौश्रुतः ।
मांसेनात्रौषधं तुल्यं यावताम्लेन चाम्लता ॥ ६२ ॥
पट्टी स्यात्स्वेदनार्थञ्च काञ्जिकाद्यम्लमिष्यते ।
चतुःस्नेहोऽत्र तावान्स्यात्सुस्विन्नत्वं यतो भवेत् ६३॥
समस्तं वर्गमर्द्धं वा यथालाभमथापि वा ।
प्रयुञ्जीतेति वचनं सर्वत्र गणकर्म्माणि ॥ ६४ ॥

काकोल्यादिगणकी समस्त ओषधि, भद्रदार्वादिगणकी सब ओषधि, सर्वप्रकारके अम्लपदार्थ, सर्वप्रकारके स्नेह (तैल, घृत, चर्बी, मज्जा) द्रव्य और सर्वप्रकारके अनूपदेशके जीवोंका मांस इन सबको एकत्र उत्तम प्रकारसे पकावे फिर उसमें नमक डालकर उससे सुहाता२ स्वेद देनेको शाल्वणस्वेद कहते हैं । इसके द्वारा वातरोगियोंको सदा उपनाह स्वेद देना । भद्रदार्वादिगण और काकोल्यादिगणकी ओषधियाँ वातनाशक हैं, यह सुश्रुतने कहा है । इसमें मांसकी बराबर सब ओषधियाँ जितने अम्लपदार्थोंके द्वारा अम्लता होसके वह पट्टी स्वेददेनेके लिये ग्रहण करनी, काँजी आदि अम्लपदार्थ लेना । इसमें चारों स्नेह द्रव्य उतनेहीं लेने जितने द्रव्योंसे वह अच्छी तरह सीजजाव । सम्पूर्णवर्गकी या आधे वर्गकी अथवा जितनी मिलसकें उतनी ओषधियाँ लेनी चाहिये । यह वचन सब जगह गणकर्ममें प्रयोग करना ॥ ६०-६४ ॥

वातगजांकुश ।

मृतं सूतं मृतं लौहं ताप्यं गन्धकतालकम् ।
पथ्याश्रृङ्गीविषं व्योषमग्निमन्थश्च टङ्कणम् ॥ ६५ ॥

तुल्यं खल्ले दिनं मर्द्यं मुण्डीनिर्गुण्डिकाद्रवैः ।
द्विगुञ्जां वटिकां खादेत्सर्ववातप्रशान्तये ॥ ६६ ॥
कणाचूर्णयुतश्चैव जिङ्गीक्वाथं पिबेदनु ।
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु रसो वातगजांकुशः ॥६७॥
सप्ताहाद्गृध्रसीं हन्ति दारुणं सान्निपातिकम् ।
क्रोष्टुशीर्षकवातञ्चाप्यवबाहुकसंज्ञकम् ॥ ६८ ॥
मन्यास्तम्भमुरुस्तम्भं हनुस्तम्भं विनाशयेत् ।
पक्षाघातादिरोगेषु कथितः परमोत्तमः ॥ ६९ ॥

शुद्धपारेकी भस्म, लोहभस्म, सोनामाखीकीभस्म, शुद्धगन्धक, हरताल, हरड काकडासिंगी शुद्ध मीठा तेलिया, सोंठ, पीपल, मिरच, अरणी और सुहागा इन सबको समान भाग लेकर मुण्डी और निर्गुण्डीके रसके साथ एक एक दिनतक खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। सर्व प्रकारके वात-रोगको शमन करनेके लिये इसकी प्रतिदिन एक एक गोली भक्षण करे और ऊपरसे पीपलका चूर्ण मिलाकर मंजीठके काथको पीवे। यह वातगजांकुशरस साध्य व असाध्य सर्वप्रकारके वातरोगको तत्काल नष्ट करताहै। एवं गृध्रसी दारुण सन्निपात, क्रोष्टुकशीर्ष, अवबाहुक, मन्यास्तम्भ और हनुस्तम्भ इन समस्त वातरोगोंको सात दिनमें ही नाश करदेताहै। पक्षाघात आदि व्याधि-योंमें यह अत्युत्तम कहागया है ॥ ६५-६९ ॥

बृहद्वातगजांकुश ।

सूताभ्रतीक्ष्णकान्तानि ताम्रतालकगन्धकम् ।
स्वर्णं शुण्ठी बला धान्यं कट्फलञ्चाभयाविषम् ॥ ७० ॥
पथ्या शृङ्गी पिप्पली च मरिचं टङ्कणं तथा ।
तुल्यं खल्ले दिनं मर्द्यं मुण्डीनिर्गुण्डिकाद्रवैः ॥ ७१ ॥
द्विगुञ्जां वटिकां खादेत्सर्ववातप्रशान्तये ।
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु बृहद्वातगजाङ्कुशः ॥ ७२ ॥

शुद्धपारा, अभ्रक, कान्तलोह, ताँबा, हरताल इनकी भस्म, शुद्धगन्धक, सुवर्णभस्म, सोंठ, खिरैंटी, धनियाँ, कायफल, शुद्ध मीठा तेलिया, काकडासिङ्गी, पीपल, मिरच और सुहागा ये प्रत्येक एक एक भाग और हरड दो भाग लेकर सबको एकत्र मुण्डी और निर्गुण्डीके रसमें एक एक दिनतक खरल करके

दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस रसको सर्वप्रकारके वातरोगोंको शान्त करनेके लिये सेवन करे। यह वृहद्वातगजांकुशरस साध्य और असाध्य सम्पूर्ण वात विकारोंको शीघ्र नष्ट करताहै ॥ ७०-७२ ॥

महावातगजांकुश ।

मृताभ्रतीक्ष्णताम्रञ्च सूततालकगन्धकम् ।
भार्गी शुण्ठी बला धान्यं कट्फलञ्चभया विषम्॥७३॥
संपिष्य चपलाद्रावैर्निष्कैकां भक्षयेद्वटीम् ।
वातश्लेष्महरो ह्येष गुरुवातगजाङ्कुशः ॥ ७४ ॥

अभ्रकभस्म, लोहभस्म, ताम्रभस्म, शुद्धपारा, हरताल, शुद्धगन्धक, भारङ्गी, सोंठ, खिरैंटी, धानियां, कायफल, हरड और शुद्ध मीठातेलिया इन सबको समानभाग लेवे।फिर एकत्र पीसकर पीपलके क्राथमें खरलकरके दोदो रत्तीकी गोलियां बनाकर प्रतिदिन एक एक गोली सेवनकरे । यह महावातगजांकुश रस वात और कफसे उत्पन्नहुये सब रोगोंको दूर करता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

लघुआनन्दरस ।

पारदं गन्धकं लौहमभ्रकं विषमेव च ।
समांशं मरिचस्याष्टौ टङ्कणन्तु चतुर्गुणम् ॥ ७५ ॥
भृङ्गराजरसेनैव दातव्या पञ्च भावना ।
तथा दाडिमतोयेन वटीं कुर्यात्समाहितः ॥
निहन्ति वातजान्रोगान्भ्रमदाहपुरःसरान् ॥ ७६ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और शुद्ध मीठा तेलिया ये सब समानभाग काली मिरच अठगुनी और सुहागा चौगुना लेकर सबको एकत्र करके भाँगरेके रस और अनारके रसमें पाँच २ बार भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह रस सर्वप्रकारके वातरोग, भ्रम, दाह आदि उपद्रवोंको नष्ट करता है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

गगनादिवटी ।

मृतगगनरसार्कं मुण्डतीक्ष्णं सताप्यं सबलिसममिदं स्याद्यष्टितोयप्रपिष्टम् । तदनु सलिलजातैर्वासकैर्गोस्तनीभिर्मृदितमनु विदारीवारिणा घस्रमेकम् ॥ घृतमधुसहितेयं निष्कमात्रा वटीति क्षपयति गुरुवातं

पित्तरोगं क्षयञ्च । भ्रममदकफशोषान्दाहतृष्णासमु-
त्थान्मलयजमिह पेयश्चानुपेयं सचन्द्रम् ॥ ७७ ॥

अभ्रकभस्म, शुद्धपारा, ताम्रभस्म, मण्डूरभस्म, तीक्ष्ण लोहभस्म, सोनामाखीकी भस्म और शुद्ध गन्धक इन प्रत्येक ओषधिको समानभाग लेकर मुलैठीके काथमें खरल करके फिर कमल, अडूसेके पत्ते, दाख और विदारीकन्दके रसमें क्रमसे एक एक दिन तक खरलकर सुखालेवे । फिर तीन २ रत्तीकी गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन एक एक गोली घृत और शहदके साथ मिलाकर सेवन करे । औषध सेवन करनेके पश्चात् सफेदचन्दन और कपूरका अनुपान करे । यह वटी प्रबल वातरोग, पित्तके रोग,क्षय, भ्रम, मद, कफ, शोष, दाह और तृषासे उत्पन्नहुए सब विकारोंको दूर करती है ॥ ७७ ॥

कुब्जविनोद रस ।

रसगन्धौ समौ शुद्धौ चाभया तालकन्तथा ।
विषं कटुकि व्योषञ्च बोलजैपालकौ समौ ॥ ७८ ॥
भृङ्गराजरसैर्मर्द्य स्नुह्यर्कस्वरसैस्तथा ।
गुञ्जाद्वयं भक्षयेच्च हृच्छूलं पार्श्वशूलकम् ॥ ७९ ॥
आमवाताद्यवातादीन् कटिशूलञ्च नाशयेत् ।
अग्निञ्च कुरुते दीप्तिं स्थौल्यञ्चाप्यपकर्षति ॥ ८० ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, हरड, हरताल, शुद्ध मीठा तेलिया, कुटकी, सोंठ, मिरच, पीपल, बोल और जमालगोटा इन सबको समान भाग लेकर भाँगरेके रस, थूहरके दूध और आकके दूधके साथ क्रमसे एकएक दिन तक खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इसकी प्रतिदिन एक एक गोली सेवन करनेसे हृदयका शूल, पसलीकी पीडा, आमवात आदि सर्वप्रकारके वातरोग और कमरकी पीडा नाश होती है । यह रस अग्निको अत्यन्त दीपन करता और स्थूलताको दूर करता है ॥७८-८० ॥

सर्वाङ्गकम्पारिरस ।

मृतं सूतं मृतं ताम्रं मर्दयेत्कटुकद्रवैः ।
एकविंशतिवारञ्च शोष्यं पेष्यं पुनःपुनः ॥
चणमात्रा वटी भक्ष्या रसः सर्वाङ्गकम्पजित् ॥ ८१ ॥

शुद्धपारे और ताँबेकी भस्मको समान भाग लेकर कुटकीके काथमें इक्कीसबार भावना देकर सुखालेवे । फिर पीसकर इसकी चनेकी बराबर गोली बनाकर भक्षण करनेसे सर्वाङ्गगत कम्पवात नष्ट होता है ॥ ८१ ॥

चिन्तामणिरस।

कर्षैकं रससिन्दूरं तत्समं मृतमभ्रकम्।
तदर्द्धं मृतलौहञ्च स्वर्णं शाणं क्षिपेद्बुधः॥ ८२॥
कन्यारसेन सम्मर्द्य गुञ्जामात्रां वटीं चरेत्।
अनुपानादिकं दद्याद्बुद्धा दोषबलाबलम्॥ ८३॥
हन्ति श्लेष्मान्वितं वातं केवलं पित्तसंयुतम्।
हल्लासमरुचिं दाहं वान्तिं भ्रान्तिं शिरोग्रहम्॥ ८४॥
प्रमेहं कर्णनादञ्च ज्वरगद्गदमूकताम्।
बाधिर्यं गर्भिणीरोगमश्मरीं सूतिकामयम्॥ ८५॥
प्रदरं सोमरोगञ्च यक्ष्माणं ज्वरमेव च।
बलवर्णाग्निदः सम्यक् कान्तिपुष्टिप्रसाधकः॥
चिन्तामणिरसश्चायं चिन्तामणिरिवापरः॥ ८६॥

रससिन्दूर और अभ्रकभस्म ये प्रत्येक दो दो तोले, लोहभस्म एक तोला, और सुवर्णभस्म ४ मासे इन सबको घीगुआरके रसमें खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस वटीको दोषोंका बलाबल विचारकर यथोचित अनुपानकेसाथ सेवन करावे। यह चिन्तामणिनामक रस कफसहित वात, केवल वात और पित्तयुक्त वात, एवं हल्लास, अरुचि, दाह, वमन, भ्रान्ति शिरःपीडा, प्रमेह, कर्णनाद, ज्वर, गद्गदता, मूकता, बहरापन, गर्भिणीके रोग, पथरी, प्रसूत-रोग, प्रदर, सोमरोग, राजयक्ष्मा और सर्वप्रकारके ज्वरको नष्ट करता है। एवं बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि कान्ति और पुष्टिको उत्पन्न करनेवाला है। यह चिन्तामणिरस दूसरी चिन्तामणिकी समान है॥ ८२-८६॥

चिन्तामणिचतुर्मुख।

विशुद्धं रससिन्दूरं तदर्द्धं लौहमभ्रकम्।
तदर्द्धं कनकं खल्ले कन्यास्वरसमर्दितम्॥ ८७॥
एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यराशौ निधापयेत्।
त्रिदिनान्ते समुद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत्॥ ८८॥
एतद्रसायनवरं त्रिफलामधुसंयुतम्।
तद्यथाग्निबलं खादेद्वलीपलितनाशनम्॥ ८९॥

अपस्मारं महोन्मादं रोगान्वातसमुद्भवान् ।
क्रमेण शीलितं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनियथा ॥ ९० ॥

शुद्धरससिन्दूर दो तोले, लोहभस्म १ तोला, अभ्रक भस्म एक तोला और सुवर्णभस्म ६ मासे इन सबको एकत्र घीकुँआरके रसमें खरल करके अण्डके पत्तोंसे लपेटकर धानोंकी राशिमें रखदेवे । फिर तीन दिनके बाद निकालकर उसको सर्वप्रकारके रोगोंमें प्रयोग करे । इस उत्तम रसायनको अग्निका बलाबल विचारकर यथोचितमात्रासे त्रिफलेके रस और शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे वली और पलितरोग नाश होते हैं । एवं अपस्मार महोन्माद और वातजनित समस्त रोगोंको यह रस इस प्रकार नष्ट करदेता है जैसे इन्द्रका वज्र वृक्षको नाश करदेता है ॥ ८७–९० ॥

बृहद्वातचिन्तामणि ।

भागत्रयं स्वर्णभस्म द्विभागं रौप्यमभ्रकम् ।
लौहात्पञ्च प्रवालञ्च मौक्तिकं त्रयसम्मितम् ॥ ९१ ॥
भस्मसूतं सप्तकञ्च कन्यारसविमर्दितम् ।
वल्लमात्रा वटी कार्या भिषग्भिः परियत्नतः ॥ ९२ ॥
यथाव्याध्यनुपानेन नाशयेद्रोगसङ्कुलम् ।
वातरोगं पित्तकृतं निहन्ति नात्र चिन्तनम् ॥ ९३ ॥
वृद्धोऽपि तरुणस्पर्शी कन्दर्पसमविक्रमः ।
दृष्टः सिद्धफलश्चायं वातचिन्तामणिस्त्विह ॥ ९४ ॥

सुवर्णभस्म ३ तोले, चाँदीकी भस्म २ तोले, अभ्रकभस्म २ तोले, लोहभस्म ५ तोले, मूँगेकी भस्म ५ तोले, मोतीकी भस्म ३ तोले और शुद्धपारेकी भस्म ७ तोले; इन सबको एकत्र घीकुँआरके रसमें खरलकरके दो या डेढ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । फिर रोगके अनुसार अनुपानके साथ इसको प्रतिदिन सेवन करनेसे समस्तरोगसमूह और पित्ताश्रित वातरोग निस्सन्देह नष्ट होते हैं । एवं वृद्धपुरुषभी कामदेवकी समान पराक्रमशाली और तरुण होजाता है । यह वातचिन्तामणि रस वातरोगमें सिद्धफलका देनेवाला है ॥९१–९४॥

चतुर्मुखरस ।

रसगन्धकं लौहाभ्रं समं सूताङ्घ्रि हेम च ।
सर्वं खल्लतले क्षिप्त्वा कन्यास्वरसमर्दितम् ॥ ९५ ॥

एरण्डपत्रैरावेष्टय धान्यराशौ दिनत्रयम्।
संस्थाप्य च तदुद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत्॥ ९६॥
एतद्रसायनवरं त्रिफलामधुयोजितम्।
तद्यथाग्निबलं खादेद्वलीपलितनाशनम्॥ ९७॥
क्षयमेकादशविधं पाण्डुरोगं प्रमेहकम्।
कासं शूलञ्च मन्दाग्निं हिक्काञ्चैवाम्लपित्तकम्॥ ९८॥
व्रणान्सर्वानाढ्यवातं विसर्पं विद्रधिं तथा।
अपस्मारं महोन्मादं सर्वार्शांसि त्वगामयान्॥ ९९॥
क्रमेण शीलितं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा।
पौष्टिकं बल्यमायुष्यं स्त्रीणां प्रसवकारकम्॥ १००॥
जगताञ्च हितार्थाय चतुर्मुखमुखोदितः।
रसश्चतुर्मुखोनाम चतुर्मुख इवापरः॥ १०१॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म ये प्रत्येक एक एक तोला और सुवर्णभस्म तीन मासे लेकर सबको खरलमें एकत्र करके घीकुँआरके रसमें खरलकरे। फिर गोलासा बनाकर उसको अण्डके पत्तोंसे लपेटकर धानोंकी राशिमें गाडदेवे। तीन दिनतक रखारहनेके बाद उसको निकालकर सर्वप्रकारके रोगोंमें प्रयोग करे। इस उत्तम रसायनको प्रतिदिन जठराग्निके बलाबलके अनुसार उपयुक्त मात्रासे त्रिफलेके क्वाथ और शहदके साथ सेवनकरे तो यह रस, वली और पलितरोग, ग्यारहप्रकारका क्षय, पाण्डु, प्रमेह, खाँसी, शूल, मन्दाग्नि, हिचकी, अम्लपित्त, सर्वप्रकारके व्रण, आमवात, विसर्प, विद्रधि, मृगी, घोर उन्माद, सब प्रकारकी बवासीर और त्वचाके समस्तरोग इन सबको इस प्रकार शीघ्र नष्ट करता है, जैसे वज्र वृक्षको तत्काल नष्ट करदेताहै। एवं यह अत्यन्त पौष्टिक, बलकारक, आयुवर्द्धक और स्त्रियोंके सन्तानोत्पत्ति करनेवाला है। इस रसको संसारके हितके लिये ब्रह्माजीने निर्माण किया है, इस लिये इसको चतुर्मुख रस कहते हैं। यह दूसरे ब्रह्माकी समान है॥९५-१०१॥

लक्ष्मीविलासरस।

पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य तदर्द्धौ रसगन्धकौ।
बला नागबला भीरु विदारीकन्दमेव च॥ १०२॥

कृष्णधुस्तूरनिचुलं गोक्षुरवृद्धदारयोः ।
बीजं शक्राशनस्यापि जातीकोषफले तथा ॥१०३॥
कर्पूरश्चैव कर्षांशं श्लक्ष्णचूर्णं पृथक्पृथक् ।
गृहीत्वा चाष्टमांशेन स्वर्णं पर्णरसेन च ॥ १०४ ॥
वटिकां स्विन्नचणकप्रमाणां कारयेद्भिषक् ।
रसो लक्ष्मीविलासोऽयं पूर्ववद्गुणकारकः ॥ १०५ ॥

काली अभ्रककी भस्म४तोले,शुद्धपारा और शुद्ध गन्धक ये प्रत्येक एक एक तोला लेकर दोनोंकी कज्जली करलेवे । एवं खिरैंटी,गंगेरन, शतावर, विदारीकन्द, काला धतूरा, बेंत, गोखुरू, विधारा, भाँगके बीज, जावित्री, जायफल और भीमसेनीकपूर ये प्रत्येक औषधि एकएक कर्ष लेकर सबका बारीक चूर्ण करलेवे । फिर समस्त चूर्णसे आठवाँ भाग स्वर्णभस्म लेकर सबको एकत्र पानके रसके साथ खरल करके सीजेहुए चनेकी बराबर गोलियाँ बनाले यह लक्ष्मीविलासरस पूर्वोक्त चतुर्मुखरसकी समानही गुण करनेवाला है ॥१०२-१०५॥

योगेन्द्ररस ।

विशुद्धं रससिन्दूरं तदर्द्धं शुद्धहाटकम् ।
तत्समं कान्तलौहञ्च तत्समं चाभ्रमेव च ॥ १०६ ॥
विशुद्धं मौक्तिकश्चैव वङ्गञ्च तत्समं मतम् ।
कुमारिकारसैर्भाव्यं धान्यराशौ दिनत्रयम् ॥ १०७ ॥
ततो रक्तिद्वयमितां वटीं कुर्याद्विचक्षणः ।
योगवाही रसो ह्येष सर्वरोगकुलान्तकः ॥ १०८ ॥
वातपित्तभवान् रोगान्प्रमेहान्बहुमूत्रताम् ।
मूत्राघातमपस्मारं भगन्दरगुदामयान् ॥ १०९ ॥
उन्मादं मूर्च्छां यक्ष्माणं पक्षाघातं हतेन्द्रियम् ।
शूलाम्लपित्तकं हन्ति भास्करास्तिमिरं यथा ॥११०॥
त्रिफलारसयोगेन शुभया सितयापि वा ।
भक्षयित्वा भवेद्रोगी कामरूपी सुदर्शनः ॥ १११ ॥
रात्रौ सेव्यं गवां क्षीरं कृशानाञ्च विशेषतः ।
योगेन्द्राख्यो रसो नाम्ना कृष्णात्रेयेण निर्मितम् ११२

शुद्ध रससिन्दूर २ तोले. एवं सुवर्णभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, मोतीकी भस्म और वङ्गभस्म इन सबको एक एक तोला लेकर घीकुँआरके रसमें खरल करके तीन दिन तक धानोंकी राशिमें रक्खे । फिर उसको निकालकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह योगवाही रस सर्वप्रकारके रोगोंको समूल नष्ट करता है । एवं वातज, पित्तजरोग, प्रमेह, बहुमूत्रता, मूत्राघात, अपस्मार, भगन्दर, गुदाके रोग, उन्माद, मूर्च्छा, राजयक्ष्मा, पक्षाघात, इन्द्रियका नष्ट होजाना, सर्वप्रकारके शूल और अम्लपित्तादिरोगोंको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकारको नष्ट करदेता है। इस रसको प्रतिदिन त्रिफलेके काथ और शहदके साथ अथवा मिश्रीके साथ भक्षणकरके रात्रिमें काली गौका दूध पीनेसे रोगी कामदेवकी समान कान्तिमान् होताहै । इस योगेन्द्रनामक रसको कृष्णात्रेयजीने निर्म्माण किया है ॥ १०६-११२ ॥

वातारिरस ।

रसभागो भवेदेको द्विगुणो गन्धको मतः ।
त्रिगुणा त्रिफला ग्राह्या चतुर्भागन्तु चित्रकम् ॥ ११३ ॥
गुग्गुलोः पञ्चभागः स्यादुबूतैलेन मर्दयेत ।
क्षिप्त्वात्र पूर्वकं चूर्णं पुनस्तेनैव मर्दयेत् ॥ ११४ ॥
गुडिकां कर्षमात्रान्तु भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ।
नागरैरण्डमूलानां कषायं प्रपिबेदनु ॥ ११५ ॥
अभ्यज्यैरण्डतैलेन स्वेदयेत्पृष्ठदेशकम् ।
विरेके तेन सञ्जाते स्निग्धमुष्णञ्च भोजयेत् ॥ ११६ ॥
वातारिसंज्ञको ह्येष रसो निर्वातसेवितः ।
मासेन मरुतो रोगान् हरेत्सुरतवर्जितः ॥ ११७ ॥

शुद्धपारा 1 भाग और शुद्धगन्धक २ भाग लेकर दोनोंकी कज्जली करलेवे । फिर गूगलको ५ भाग लेकर अण्डीके तैलके साथ खरल करके उसके साथ पूर्वोक्तकज्जली एवं त्रिफलेका चूर्ण ३ भाग और चीतेकी जडका चूर्ण ४ भाग मिलाकर फिर अण्डीके तैलमें खरलकरे । पश्चात् एक एक कर्षकी गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली सेवनकरे ऊपरसे सोंठ और अण्डकी जडका काथ पान करे । प्रातःकाल औषध सेवन करनेके पश्चात् रोगीकी पीठमें अण्डीका तैल मलकर स्वेददेवे । इसके द्वारा विरेचन होजाने पर स्निग्ध और उष्ण पदार्थोंका भोजन करावे । स्त्रीप्रसंगको त्यागकर इस

वातारिनामक रसको वायुरहित स्थानमें रहताहुआ मनुष्य एकमासपर्यन्त सेवन करे; यह रस सर्वप्रकारके वातरोगोंको दूर करताहै ॥ ११३-११७ ॥

अनिलारिरस ।

रसेन गन्धं द्विगुणं विमर्द्य वातारिनिर्गुण्डिरसैर्दिनैकम् ।
निवेशयेत्ताम्रमयेपुटे तत्सर्वं मृदावेष्ट्य च बालुकाख्ये ॥१८॥
यन्त्रे पुटेद्गोमयचूर्णवह्नौ स्वभावशीते तु समुद्धरेत्तत् ।
निर्गुण्डिकावातहराग्नितोयैः सञ्चूर्ण्य यत्नेन विभावयेत्तत् ॥
रसोऽनिलारिः कथितोऽस्य वल्लमेरण्डतैलेन ससैन्धवेन ।
मरीचचूर्णेन ससर्पिषा वा निर्गुण्डिचित्रैश्च कटुत्रिकैर्वा १२०

शुद्धपारा १ तोला और शुद्धगन्धक २ तोले लेकर दोनोंको अण्डकी जड और निर्गुण्डीके रसके साथ एक एक दिनतक खरल करे। फिर उसको ताँबेके पात्रमें बन्द करके मिट्टीसे ल्हेसकर बालुकायन्त्रमें रख आरने उपलोंकी अग्निमें एक प्रहरतक पकावे। जब उत्तम प्रकारसे पककर स्वयं शीतल होजाय तब उसको निकालकर निर्गुण्डी, अण्ड और चीता इनके रसमें क्रमसे एक एक बार भावना देकर दो अथवा तीन रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इसको अण्डीके तेल और सैन्धानमकके चूर्णके साथ या मिरचोंके चूर्ण और घीके साथ अथवा त्रिकुटेके चूर्ण, निर्गुण्डी और चीतेके क्वाथके साथ सेवन करे। इसको अनिलारि (वातनाशक) रस कहते हैं ॥ १८-१२० ॥

सर्वाङ्गसुन्दररस ।

शुद्धसूताभ्रताम्रायोहिङ्गुलं कार्षिकं मतम् ।
गन्धकश्चैकभागः स्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ २१ ॥
सप्तपर्णार्कस्नुक्क्षीरवासावातारिवारिणा ।
विषमुष्टिसमं सर्वं पेष्यन्तद्गोलकीकृतम् ॥ २२ ॥
विपचेद्वालुकायन्त्रे द्वियामान्ते समुद्धरेत् ।
पिप्पलीविषसंयुक्तो रसः सर्वाङ्गसुन्दरः ॥
सर्ववातविकारघ्नः सर्वशूलनिषूदनः ॥ २३ ॥

शुद्धपारा, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म और सिंगरफ ये प्रत्येक दो दो तोले और शुद्धगन्धक एक तोला लेकर सबको एकत्रकर सतौना, आक, थूह-

रका दूध, अडूसा और अण्डके काथमें भावना देवे । फिर सब औषधकी बराबर कुचला मिलाकर खरल करके गोलासा बनालेवे । उस गोलेको बालुका यन्त्रमें रखकर दो प्रहरतक पकावे । पककर शीतल होजानेपर उसमें पीपलका चूर्ण और शुद्ध मीठा तेलिया दो दो तोले मिलादेवे । यह सर्वांगसुन्दर रस सर्व प्रकारके वायुके विकार और सर्वप्रकारके शूलरोगको नष्ट करताहै ॥२१-२३॥

शीतारिरस ।

रसेन गन्धं द्विगुणं प्रगृह्य पुनर्नवाग्निस्वरसैर्विभाव्य ।
पक्वार्कपत्रस्य रसेन पश्चाद्विपाचयेदष्टगुणेन यत्नात् ॥ २४ ॥
रसार्द्धभागश्च विषश्च दत्त्वा विपाचयेदाग्निजले क्षणं तत् ।
शीतारिसंज्ञस्य रसायनस्य वल्लश्च सार्द्धं मरिचार्द्रकेण॥२५॥
मरीचचूर्णेन घृताप्लुतेन सेवेत मांसश्च घृतश्च पथ्यान् ॥२६॥

शुद्धपारा एक तोला और शुद्धगन्धक २ तोले लेकर दोनोंको पुनर्नवा और चीतेके स्वरसमें भावना देकर पकेहुए आकके पत्तोंके अठगुने रसके साथ वालुकायन्त्रमें रखकर यत्नपूर्वक पकावे । पश्चात् पारेसे आधा शुद्ध मीठातेलिया डालकर चीतेके रसमें क्षणभरतक पकावे । इस शीतारिनामक रसायनको डेढ वा दो रत्ती परिमाण लेकर मिरचोंके चूर्ण और अदरखके रसके साथ अथवा मिरचोंके चूर्ण और घृतके साथ मिलाकर सेवन करे । इसपर मांसरस और घृतका पथ्य करे । यह रस शीतवातको नष्ट करता है ॥ २४-२६ ॥

तालकेश्वररस ।

एकभागो रसस्य स्याच्छुद्धतालैकभागिकः ।
अष्टौ स्युर्विजयायाश्च गुडिकां गुडतश्चरेत् ॥ २७ ॥
एकैकां भक्षयेत्प्रातश्छायायामुपवेशयेत् ।
तालकेश्वरनामायं रोगश्चास्पर्शनाशनः ॥ २८ ॥

शुद्धपारा १ तोला, शुद्धहरताल १ तोला और भाँग ८ तोले लेकर सबका एकत्र चूर्ण करलेवे । फिर सब चूर्णकी बराबर गुड मिलाकर तीन तीन माशेकी गोलियाँ बनालेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली भक्षण करे और छायामें रहे । यह तालकेश्वर नामक रस अस्पर्शवातरोगको नष्ट करनेवालाहै२७॥२८॥

वातविध्वंसन रस ।

सूतमभ्रकसत्त्वश्च कांस्यं शुद्धश्च माक्षिकम् ।
गन्धकन्तालकं सर्वं भागोत्तराविवर्द्धितम् ॥ २९ ॥

कज्जलीकृत्य तत्सर्वं वातारिस्नेहसंयुतम् ।
सप्ताहं मर्दयित्वा तु गोलकीकृत्य यत्नतः ॥ १३० ॥
निम्बुद्रवेण सम्पीड्य तिलकल्केन लेपयेत् ।
अर्द्धाङ्गुलदलेनैव परिशोष्य प्रयत्नतः ॥ ३१ ॥
प्रपचेद्वालुकायन्त्रे द्वादशप्रहरं ततः ।
जठरस्य रुजाः सर्वास्तथा च मलविग्रहम् ॥ ३२ ॥
आध्मानकन्तथानाहं विषूचिं वह्निमान्द्यकम् ।
आमदोषमशेषञ्च गुल्मं छर्दिञ्च दुर्जयम् ॥ ३३ ॥
ग्रहणीं श्वासकासौ च कृमिरोगं विशेषतः ।
हन्यात्पूर्वाङ्गशूलञ्च मन्यास्तम्भन्तथैव च ॥ ३४ ॥
ज्वरे चैवातिसारे च शूलरोगे त्रिदोषजे ।
पथ्यं रोगानुसारेण देयमस्मिन् भिषग्वरैः ॥
श्रीमता नन्दिनाथेन वातविध्वंसनो रसः ॥ ३५ ॥

शुद्धपारा १ भाग, अभ्रकसत्त्व २ भाग, काँसा ३ भाग, शुद्ध सोनामाखी ४ भाग, शुद्धगन्धक ५ भाग और शुद्ध हरताल ६ भाग लेवे । पहले पारे और गन्धककी एकत्र कज्जली करके उसमें अन्य सब औषधियोंको मिलाकर अण्डीके तैलमें ७ दिनतक खरल करे । फिर जम्बीरीनींबूके रसमें खरल करके गोलासा बनालेवे । उस गोलेपर आध अंगुल परिमाण तिलके कल्कका लेप कर और धूपमें सुखाकर उसको बालुकायन्त्रमें रखकर १२ प्रहरतक पकावे । इस प्रकार सिद्ध कियाहुआ यह रस उदरके सब विकार, मलका अवरोध, आध्मान, आनाह, विषूचिका, मन्दाग्नि, समस्त आमदोष, गुल्म, दुर्जय वमन, संग्रहणी, श्वास, खाँसी, विशेषकर कृमिरोग, पूर्वांग व सर्वांगशूल, मन्यास्तम्भ, ज्वर, अतिसार और त्रिदोषज शूलरोग इन सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करताहै । इसमें रोगके अनुसार पथ्य देना चाहिये । इस वातविध्वंसनरसको श्रीमान् नन्दिनाथने निर्माण कियाहै ॥ २९–३५ ॥

वातनाशनरस ।

सूतहाटकवज्राणि ताम्रं लौहञ्च माक्षिकम् ।
तालं नीलाञ्जनं तुत्थं सिन्धुफेनं समांशिकम् ॥ ३६ ॥

पञ्चानां लवणानाञ्च भागैकं सुविमर्दयेत् ।
वज्रीक्षीरैर्दिनैकन्तु रुद्धा तं भूधरे पचेत् ।
माषैकमार्द्रकद्रावैर्लिह्याद्वातविनाशनम् ॥ ३७ ॥
पिप्पलीमूलकक्वाथं सकृष्णमनुपाययेत् ॥
सर्वान्वातविकारांश्च निहन्त्याक्षेपकादिकान् ॥ ३८ ॥

शुद्धपारा, सुवर्णभस्म, हीराभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म, सोनामाखी, भस्म, हरताल, नीलासुरमा, नीलाथोथा और समुद्रफेन ये प्रत्येक समान भाग और पाँचों नमक एकभाग लेकर सबका एकत्र चूर्ण करलेवे । उस चूर्णको थूहरके दूधके साथ एक दिनतक खरल करके भूधरयन्त्रमें रखकर पकावे । इस रसको प्रतिदिन एक एक माशे परिमाण लेकर अदरखके रस और शहदके साथ मिलाकर सेवन करे और औषधिसेवन करनेके पश्चात् पीपलका चूर्ण डालकर पीपलामूलका क्काथ पानकरे । यह रस आक्षेपकादि सम्पूर्ण वातविकारोंको दूर करता है ॥ ३६-३८ ॥

वातकण्टकरस ।

वज्रं मृताभ्रहेमार्कतीक्ष्णमुण्डं क्रमोत्तरम् ।
मरिचं मर्दयेदम्लवर्गेण दिवसत्रयम् ॥ ३९ ॥
द्विक्षारं पञ्चलवणं मर्दितं स्यात्समं समम् ।
ततो निर्गुण्डिकाद्रावैर्मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥ १४० ॥
शुद्धमेतद्विचूर्ण्याथ विषञ्चास्याष्टमांशतः ।
टङ्कणं विषतुल्यांशं दत्त्वा (तं) जम्बीरकद्रवैः॥ ४१ ॥
भावयेद्दिनमेकन्तु रसोऽयं वातकण्टकः ।
दातव्यो वातरोगेषु सन्निपाते विशेषतः ॥ ४२ ॥
द्विगुञ्जमार्द्रकद्रावैर्घृतैर्वा वातरोगिणे ।
निर्गुण्डीमूलचूर्णन्तु महिषाक्षञ्च गुग्गुलुम् ॥ ४३ ॥
समांशं मर्दयेदाज्ये तद्वटी कर्षसम्मिता ।
अनुयोज्या घृतैर्नित्यं स्निग्धमुष्णञ्च भोजयेत् ॥ ४४ ॥
मण्डलं नाशयेत्सर्वं वातरोगं विशेषतः ।
सन्निपाते पिबेच्चानु तालमूलीकषायकम् ॥ ४५ ॥

हीरा १ भाग, अभ्रक २ भाग, सुवर्ण ३ भाग, तांबा ४ भाग, तीक्ष्णलोह ५ भाग, मुण्डलोह ६ भाग और कालीमिरच ७ भाग इन सब ओषधियोंको एकत्रकर अम्लवर्गकी ओषधियोंके द्वारा ३ दिनतक खरल करे। फिर उसमें सर्जी, जवाखार, पाँचोंनमक ये प्रत्येक समानभाग मिलाकर निर्गुण्डीके रसमें तीनदिन खरल करे। फिर औषधिको सुखाकर और चूर्णकरके समस्त औषधका आठवाँ भाग शुद्ध मीठा तेलिया और विषकी बराबर सुहागा मिलाकर जम्बीरी नींबूके रसमें एक दिनतक भावना देवे। इस प्रकार यह वातकण्टकरस सिद्ध होता है। सर्वप्रकारके वातरोगोंमें यह रस दो दो रत्ती प्रमाण लेकर अदरखके रस अथवा गोघृतके साथ वातरोगीको सेवन करावे। औषध सेवन करनेके पश्चात् निर्गुण्डीकी जडका चूर्ण और भैंसिया गूगल इनको समानभाग लेकर घीमें खरल करके एकएक कर्षकी गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन एकएक गोली घृतके साथ मिलाकर सेवन करनी चाहिये। और इसपर स्निग्ध और उष्ण पदार्थोंका भोजन करे। इसके द्वारा शरीरके चकत्ते और सम्पूर्ण वातरोग दूर होते हैं। सन्निपातमें इस रसको सेवनकर ऊपरसे मुसलीका क्वाथ पानकरे॥३९-४५॥

त्रैलोक्यचिन्तामणिरस।

हीरं सुवर्णं सुमृतञ्च तारमेषां समं तीक्ष्णरजश्चतुर्णाम्।
समं मृताभ्रं रससिन्दुरश्च निष्पिष्टतीक्ष्णस्य तथाश्मनो वा॥
खल्ले द्रवेणैव कुमारिकाया गुञ्जाप्रमाणां वटिकां प्रकुर्यात्।
त्रैलोक्यचिन्तामणिरेषनाम्नासंपूज्य सम्यग्गिरिजांदिनेशम्॥
हन्त्यामयान् योगशतैर्विवर्ज्यांमयप्रणाशाय मुनिप्रणीतः।
अस्यप्रसादेन गदानशेषान् जरां विनिर्जित्य सुखंविभाति॥

स्निग्धे श्लेष्मण्यार्द्रकस्य रसेन पाययेत्सुधीः।
शुष्के च माक्षिकेणैव पित्ते घृतसितायुतम्॥ ४९॥
श्लेष्माणि मारुते सम्यग्दुष्टे च समताङ्गते।
कणाचूर्णं क्षौद्रयुतं प्रमेहे दुग्धसंयुतम्॥ १५०॥
बलवर्णाग्निजननः कासघ्नः कफवातजित्।
आयुःपुष्टिकरो वृष्यः सर्वरोगनिषूदनः॥ १५१॥

(" तारशब्देनात्र शुद्धमौक्तिकमेवोच्यते नतु रजतम्। सममिति समभागं, चतुर्णां समं कृताभ्रम्, केषाञ्चिन्मते रससिन्दूरस्थाने स्वर्णसिन्दूरं देयमिति॥ ")

हीरा, सुवर्ण, मोती और लोहा इन चारोंकी भस्म एक एक तोला, अभ्रक भस्म चार तोले और रससिन्दूर चार तोले इन सबको लोहेके अथवा पत्थरके खरलमें एकत्र करके घीकुँआरके रसके साथ उत्तम प्रकारसे खरलकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस त्रैलोक्यचिन्तामणिनामक रसको प्रतिदिन प्रातःकाल पार्वती और सूर्यनारायणका यथाविधि पूजनकर सेवन करे । सैकडों प्रयोगोंके करनेसे भी जो दूर न हुए हों ऐसे रोगोंको नष्ट करनेके लिये मुनियोंने इस रसको निर्दिष्ट किया है । इसके प्रभावसे मनुष्य सम्पूर्ण रोगों और वृद्धताको जीतकर सुख भोगता है । बुद्धिमान् वैद्य इस रसको कफकी तरल अवस्थामें अदरखके रसके साथ, कफके शुष्क होनेपर शहदके साथ, पित्ताधिक्यमें घी और मिश्रीके साथ, कफका प्रकोप होनेपर एवं वायुकी समान अवस्थामें पीपलके चूर्ण और शहदके साथ और प्रमेहरोगमें दूधके साथ सेवन करावे । यह रस बल, वर्ण और अग्निको उत्पन्न करता एवं खाँसी, कफ और वातको दूर करता है । एवं आयुवर्द्धक, पुष्टिकारक वृष्य और सब रोगोंका नाश करनेवाला है ॥ ४६-१५१ ॥

(“ यहाँ तारशब्दसे शुद्ध मोती कहागया है, चाँदी नहीं । ‘समम्’ शब्दसे चारों भस्में समानभाग और चारोंकी बराबर अभ्रक भस्म लेवे । किसी २ के मतमें रससिन्दूरकी जगह स्वर्णसिन्दूर डालना चाहिये ॥ हीरेके अभावमें वैक्रान्तमणि अथवा पीली कौडीकी भस्म लेनी चाहिये ।)

स्वल्परसोनपिण्ड ।

पलमर्द्धपलञ्चैव रसोनस्य सुकुट्टितम् ।
हिङ्गुजीरकसिन्धूत्थैः सौवर्चलकटुत्रिकैः ॥ ५२ ॥
चूर्णितैर्माषकोन्मानैरवचूर्ण्य विलोडितम् ।
यथाग्निर्भक्षितं प्रातरुबुकाथानुपानतः ॥ ५३ ॥
दिनेदिने प्रयोक्तव्यं मासमेकं निरन्तरम् ।
वातरोगं निहन्त्याशु अर्दितं सापतन्त्रकम् ॥ ५४ ॥
एकाङ्गरोगिणे चैव तथा सर्वाङ्गरोगिणे ।
ऊरुस्तम्भे च गृध्रस्यां कृमिदोषे विशेषतः ।
कटीपृष्ठामयं हन्यादुदरञ्च विनाशयेत ॥ ५५ ॥

छिल्के आदिसे रहित और शुद्ध लहसनको ६ तोले लेकर कूटलेवे । फिर उसमें हींग, जीरा, सैंधानमक, कालानमक और त्रिकुटा ये प्रत्येक एक एक

माशे परिमाण बारीक चूर्णकर मिलादेवे। इसको प्रतिदिन प्रातःकाल अग्निके बलानुसार उपयुक्त मात्रासे अण्डके क्वाथके साथ एक महीनेतक सेवन करे। यह रसोनपिण्ड वातरोग, अर्दित, अपतन्त्रक, एकाङ्गरोग, सर्वाङ्गरोग, ऊरुस्तम्भ, गृध्रसी, कृमिरोग, विशेषकर कमर व पीठकी पीडा और सब प्रकारके उदररोगोंको नष्ट करता है॥ ५२-५५॥

त्रयोदशाङ्गगुग्गुलु।

आभाश्वगन्धा हबुषा गुडूची शतावरी गोक्षुरवृद्धदारम्।
रास्ना शताह्वा सशठी यमानी सनागराचेतिसमैश्च चूर्णम्॥
तुल्यं भवेत्कौशिकमत्रमध्ये देयं तथा सर्पिरथार्द्धभागम्।
सार्द्धाक्षमात्रन्तु ततः प्रयोगात्कृत्वानुपानं सुरयाथ यूषैः॥
मद्येन वा कोष्णजलेन वाथ क्षीरेण वा मांसरसेन वापि।
कटीग्रहे गृध्रसि बाहुपृष्ठे हनुग्रहे जानुनि पादयुग्मे॥ ५८॥
सन्धिस्थिते चास्थिगते च वाते मज्जाश्रिते स्नायुगते च कुष्ठे।
रोगाञ्जयेद्वातकफानुविद्धान् वातेरितान्हृद्ग्रहयोनिदोषान्॥
भग्नास्थिबद्धेषु च खञ्जवाते त्रयोदशाङ्गं प्रवदन्ति सन्तः ५९

आभा (बबूरकी फली), असगन्ध, हाऊबेर, गिलोय, शतावर, गोखुरू, विधारेके बीज, रायसन, सौंफ, कचूर, अजवायन और सोंठ इन प्रत्येक औषधिका चूर्ण समानभाग और सम्पूर्ण चूर्णकी बराबर गूगल और गूगलसे आधा गौका घी लेकर सबको एकत्र उत्तम प्रकारसे खरल करके शुद्ध पात्रमें भरकर रखदेवे। इस गूगलका छः मासे वा एक तोला परिमाण लेकर मदिरा, यूष, मन्दोष्णजल वा दूध अथवा मांसरसके साथ सेवन करना चाहिये। इस त्रयोदशागगूगलको कमरकी पीडा, गृध्रसी, बाहु और पृष्ठगत वात, हनु (ठोडी) जानु (घुटना), दोनों चरण, सन्धिस्थान, अस्थि, मज्जा और स्नायुगत वातरोग, कुष्ठ, अस्थिके भुग्न व विद्ध होनेपर और खञ्जवातरोगमें प्रयोग करना चाहिये। यह गूगल वातकफजन्यरोग, वातजनित हृदयकी पीडा, योनिदोष आदि सम्पूर्ण व्याधियोंको नष्ट करताहै। इस प्रकार आयुर्वेदाचार्योंने कहाहै॥

दशमूलाद्यघृत।

दशमूलस्य निर्यूहे जीवनीयैः पलोन्मितैः।
क्षीरेण च घृतं पक्कं तर्पणं वातपित्तजित्॥
क्वाथोऽत्र द्विगुणः सर्पिः प्रस्थः साध्यः पयः समम् १६०

दशमूलके काढेमें जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलैठी, ऋद्धि और वृद्धि) की ओषधियोंका कल्क चार चार तोले, दूध एक प्रस्थ और घी एकप्रस्थ डालकर यथाविधि घृतको सिद्ध करे। यह घृत तृप्तिकारक, वात और पित्तको दूर करनेवालाहै। इसमें दुगुना क्वाथ, घी और दूध समानभाग लेना चाहिये ॥ १६० ॥

अश्वगन्धाद्यघृत ।

अश्वगन्धाकषाये च कल्के क्षीरं चतुर्गुणम् ।
घृतं पक्कं तु वातघ्नं वृष्यं मांसविवर्द्धनम् ॥ ६१ ॥

असगन्धके क्वाथ और कल्कमें घी और घीसे चौगुना दूध डालकर घृतको पकावे । यह घृत वातनाशक, वृष्य और मांसवर्द्धकहै ॥ ६१ ॥

नकुलाद्यघृत ।

नकुलस्य च मांसस्य पचेत्प्रस्थं जलाढके ।
तत्समं दशमूलञ्च पक्कं माषबलान्वितम् ॥ ६२ ॥
घृतप्रस्थं पचेत्तत्र चतुर्भागावशेषितम् ।
शतावरीरसप्रस्थं गव्यदुग्धञ्च तत्समम् ॥ ६३ ॥
अष्टौ वर्गाश्च काकोल्यौ जीवन्ती मधुयष्टिका ।
एला त्वचश्च पत्रञ्च त्रिकटु त्रिफला तथा ॥ ६४ ॥
मुस्तकं नागजिह्वा च कर्षं कर्षं प्रदापयेत् ।
सर्ववातविकारेषु अपस्मारे विशेषतः ॥ ६५ ॥
महोन्मादे पक्षघाते चाध्माने कोष्ठनिग्रहे ।
हस्तकम्पे शिरःकम्पे बाधिर्य्ये मूकमिन्मिने ॥ ६६ ॥
ऊर्ध्वजत्रुगते वाते जंघापार्श्वादिसंश्रिते ।
नकुलाद्यमिदं नाम्ना ऊर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ६७ ॥

नौलेके १ प्रस्थ मांसको १ आढक जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। इसी प्रकार दशमूलकी ओषधियाँ, उडद और खिरैंटी इनको एक एक प्रस्थ लेकर पृथक् पृथक् एक एक आढक जलमें पकाकर चौथाई जल शेष रक्खे । फिर उसमें घृत १ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ, गौका दूध १ प्रस्थ एवं अष्टवर्गकी ओषधियाँ (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, काकोली, क्षीरकाकोली), जीवन्ती, मुलैठी, इला-

यची, दारचीनी, तेजपात, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा और अनन्तमूल इन प्रत्येकके कल्कको एक एक कर्ष परिमाण डालकर विधिपूर्वक घृतको पकावे । इन नकुलाद्यनामकघृतको सर्वप्रकारके वातविकार, विशेषकर अपस्मार, महोन्माद, पक्षाघात, आध्मान, कोष्ठबद्धता, हस्तकम्प, शिरःकम्प, बधिरता, मूकता, मिनामिनापन, ऊर्ध्वजत्रुगतवात, जंघागतवात और पार्श्वादिगत वातरोगमें सेवन कराना चाहिये । यह ऊर्ध्वजत्रुगत सम्पूर्ण रोगोंको दूर करता है ॥ ६२–६७ ॥

छागलाद्यघृत ।

आजं चर्मविनिर्मुक्तं त्यक्तशृङ्गनखादिकम् ।
पञ्चमूलीद्वयश्चैव जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ६८ ॥
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
जीवनीयैः सयष्ट्याह्वैः क्षीरश्चैव शतावरीम् ॥ ६९ ॥
छागलाद्यमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ।
अर्दिते कर्णशूले च बाधिर्य्ये मूकमिन्मिने ॥ १७० ॥
जडगद्गदपंगूनां खञ्जे गृध्रसिकुब्जयोः ।
अपतानेऽपतन्त्रे च सर्पिरेतत्प्रशस्यते ॥ ७१ ॥

चर्म, सींग और नखादिसे रहित बकरेका मांस ५० पल और दशमूलकी समान भाग मिश्रित समस्त ओषधियाँ ५० पल लेकर दोनोंको अलग अलग एकएक द्रोण (३२ सेर) जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें घी १ प्रस्थ, दूध १ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ एवं जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगवन, मषवन, जीवन्ती और मुलैठी इन सबका कल्क घीसे चौथाई भाग डालकर घृतको पकाना चाहिये । इस छागलाद्य घृतको सेवन करनेसे सर्व प्रकारके वातरोग नष्ट होते हैं । यह घृत अर्दितवात, कर्णशूल, बधिरता, मूकता, मिन्मिनपन, जडता, गद्गदता, पंगुता, खञ्जवात, गृध्रसी, कुबडापन, अपतानक और अपतन्त्रक इन समस्तरोगोंमें हितकर है॥

वृहच्छागलाद्यघृत ।

छागमांसतुलां गृह्य दशमूल्याः पलं शतम् ।
अश्वगन्धापलशतं वाट्यालकशतन्तथा ॥ ७२ ॥

घृताढकं पचेत्तोयैश्चतुर्भागावशेषितैः ।
क्षीरं स्नेहमयं दद्याच्छतावर्या रसं तथा ॥ ७३ ॥
ताम्रपात्रे दृढे चैव शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
अस्यौषधस्य कल्कस्य प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ॥ ७४॥
जीवन्ती मधुकं द्राक्षा काकोल्यौ नीलमुत्पलम् ।
मुस्तं सचन्दनं रास्ना पर्णिनीद्वयशारिवे ॥ ७५ ॥
मेदे द्वे च तथा कुष्ठं जीवकर्षभकौ शठी ।
दार्वी प्रियङ्गु त्रिफला नतं तालीशपद्मकौ ॥ ७६ ॥
एला पत्रं वरी नागं जातीकुसुमधान्यकम् ।
माञ्जिष्ठां दाडिमं दारु रेणुकं शैलवालुकम् ॥ ७७ ॥
विडङ्गं जीरकश्चैव पेषयित्वा विनिःक्षिपेत ।
वस्त्रपूते च शीते च शर्कराप्रस्थसंयुतम् ॥ ७८ ॥
निधापयेत्स्निग्धभाण्डे मृण्मये भाजने शुभे ।
अस्यौषधस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम् ॥ ७९ ॥
देवदेवं नमस्कृत्य सम्पूज्य गणनायकम् ।
पिबेत्पाणितलं तस्य व्याधिं वीक्ष्यानुपानतः ॥१८०॥
सर्ववातविकारेषु अपस्मारे विशेषतः ।
उन्मादे पक्षघाते च आध्माने कोष्ठनिग्रहे ॥ ८१ ॥
कर्णरोगे शिरोरोगे बाधिर्ये चापतन्त्रके ।
भूतोन्मादे च गृध्रस्यां सोदरे चाक्षिपातजे ॥ ८२ ॥
पार्श्वशूले च हृच्छूले बाह्यायामेऽर्दिते तथा ।
वातकण्टकहृद्रोगमूत्रकृच्छ्रसपङ्गुके ॥ ८३ ॥
क्रोष्टुशीर्षे तथा खञ्जे कुब्जे चाध्वानमिन्मिने ।
अपतानेऽन्तरायामे रक्तपित्ते तथोर्ध्वगे ॥ ८४ ॥
आनाहेऽर्शोविकारेषु चातुर्थिकज्वरेऽपि च ।
हनुग्रहे तथा शोषे क्षीणे चैवापबाहुके ॥ ८५ ॥
दण्डापतानके भग्ने दाहे चाक्षेपके तथा ।
जीर्णज्वरे विषे कुष्ठे शेफःस्तम्भे मदात्यये ॥ ८६ ॥

आढचवातेऽग्निमान्द्ये च वातरक्तगदेषु च ।
एकाङ्गरोगिणे चैव तथा सर्वाङ्गरोगिणे ॥ ८७ ॥
हस्तकम्पे शिरःकम्पे जिह्वास्तम्भे ज्वरे भ्रमे ।
क्षीणेन्द्रिये नष्टशुक्रे शुक्रनिःसरणे तथा ॥ ८८ ॥
स्त्रीणां वातास्रपाते च पटले चाक्षिस्पन्दने ।
एकाङ्गस्पन्दने चैव सर्वाङ्गस्पन्दने तथा ॥ ८९ ॥
नागादिपतिते वाते स्त्रीणामप्राप्तिहेतुके ।
आभिचारिकदोषे च मनःसन्तापसम्भवे ॥ १९० ॥
ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः ।
शिरोमध्यगता ये च जङ्घापार्श्वादिसंस्थिताः ॥ ९१॥
मातृग्रहाभिभूतश्च शिशुर्यश्च विशुष्यति ।
प्रक्षीणबलमांसश्च न वर्त्मगमनक्षमः ॥ ९२ ॥
घृतेनानेन सिध्यन्ति वज्रमुक्तिरिवासुरान् ।
निहन्ति सकलान्रोगान् घृतं परमदुर्लभम् ॥ ९३ ॥
रसायनं वह्निबलप्रदश्च वपुःप्रकर्षं विदधाति रूपम् ।
दन्तावलेन्द्रेण समानतेजा दीर्घायुषं पुत्रशतं करोति॥९४॥
स्त्रीणां शतं गच्छति चातिरेकं न याति तृप्तिं सरसः समाङ्गः।
अपुत्रिणीं पुत्रशतं करोति गतायुषं कामसमं बलिष्ठम् ॥९५॥
महद्घृतं नाम तु छागलाद्यं विनिर्मितं वातनिषूदनञ्च ।
शिवं शुभं रोगभयापहञ्च चकार हारीतमुनिर्विशिष्टः॥९६॥

आरोग्य बकरीका अथवा नपुंसक बकरेका मांस १०० पल, दशमूल १०० पल, असगन्ध १०० पल और खिरैंटी १०० पल लेकर प्रत्येकको एक एक द्रोण परिमाण जलमें पकावे । जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उताकर छानलेवे और सबको एकत्र मिलालेवे । फिर उस काथमें गौका घी, दूध और शतावरका रस प्रत्येक एकएक आढक (१२८ पल) डालकर सुदृढ ताँबेके बर्त्तनमें धीरे धीरे मन्दमन्द अग्निके द्वारा पकावे । और कल्कके लिये जीवन्ती, मुलैठी, दाख, काकोली, क्षीरकाकोली, नीला कमल, नागरमोथा, लालचन्दन, रास्ना, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, शारिवा, अनन्तमूल, मेदा, महामेदा, कूठ, जीवक, ऋषभक, कचूर, दारुहल्दी, फूलप्रियंगु, त्रिफला, तगर,

तालीसपत्र, पद्माख, इलायची, तेजपात, शतावर, नागकेशर, चमेलीके फूल, धनियाँ, मजीठ, अनार, देवदारु, रेणुका, भूरिछरीला, एलुआ, वायविडंग और जीरा इन प्रत्येक ओषधिको चार चार तोले पीसकर पकते समय डाल-देवे। जब घृत उत्तम प्रकारसे पककर शीतल होजाय तब वस्त्रमें छानकर उसमें एक प्रस्थ शुद्ध खाँड मिलाकर चिकने और स्वच्छ मिट्टीके बर्त्तनमें भरकर रखदेवे। अब इस सिद्ध औषधके वीर्यको कहते हैं. उसको सुनो-प्रतिदिन प्रातःकाल देवाधिदेव गणेशजीको नमस्कार और पूजनकर एकएक तोला परिमाण घृत पान करे और ऊपरसे यथारोगानुसार अनुपानका सेवन करे। यत घृत सर्व प्रकारके वातरोग, विशेषकर अपस्मार, उन्माद, पक्षाघात, आध्मान, कोष्ठ-बद्धता, कर्णरोग, शिरोरोग, बधिरता, अपतन्त्रक, भूतोन्माद, गृध्रसी, उदर-रोग, नेत्ररोग, पार्श्वशूल, हृदयशूल, बाह्यायाम, अर्दित, वातकण्टक, हृदयरोग, मूत्रकृच्छ्र, पंगुता, क्रोष्टुशीर्ष, खञ्जवात, कुब्जवात, गद्गदवात, मिनमिनवात, अपतानक, अन्तरायाम, ऊर्ध्वगत रक्तपित्त, अफारा, बवासीर, चौथिया ज्वर, हनुग्रह, शोष, क्षीणता, अपबाहुक, दण्डापतानक, भ्रमरोग, दाह, आक्षेप, जीर्णज्वर, विषविकार, कोढ, लिंगस्तम्भ, मदात्यय, आढ्यवात, अग्निकी मन्दता, वातरक्त, एकांगवात, सर्वांगवात, हस्तकम्प, शिरःकम्प, जिह्वाकी जडता, ज्वर, भ्रम, इन्द्रियोंकी क्षीणता, वीर्यकी हीनता, शुक्रपात, स्त्रियोंके वातके द्वारा रक्तस्राव होना, पटलगत नेत्ररोग, आँख फडकना, एक अंग व सम्पूर्ण अंगोंका स्पन्दन (फडकना) वृक्ष, पर्वतादिके ऊपरसे गिरनेसे उत्पन्न हुई वात, स्त्रियोंकी अप्राप्तिके कारण उत्पन्नहुई वात, अभिचारक दोष और मनके सन्तापसे उत्पन्नहुई वातव्याधिमें सेवन करना चाहिये। सर्व प्रकारके वातसे उत्पन्न होनेवाले रोग, पित्तसे होनेवाले सर्वप्रकारके रोग, सम्पूर्ण शिरके रोग, जंघा, पसली आदिके रोग, मातृग्रहादिके आक्रमणसे या अन्यान्य दोषोंसे बालकका सूखना, बल और मांसकी क्षीणता और मार्गमें चलनेकी असमर्थता आदि सम्पूर्ण रोग इस घृतके सेवन करनेसे इस प्रकार नष्ट होजाते हैं, जैसे छूटाहुआ वज्र असुरोंको तत्काल नाश करदेता है। यह परमदुर्लभ घृत समस्त रोगोंको हरनेवाला एवं रसायन, अग्निप्रदीपक, बलवर्द्धक, शरीरको श्रेष्ठ और सुन्दर करनेवाला, गजेन्द्रकी समान तेजस्वी और चिरायुवाले सौ पुत्रोंको उत्पन्न करनेवाला है। इसको सेवन करनेवाला मनुष्य, सौ स्त्रियोंके साथ रमण करे तो भी सारस पक्षीकी समान तृप्त नहीं होता। वन्ध्यास्त्री भी सैकडों पुत्रों-वाली होती है। और वृद्ध मनुष्य कामदेवकी समान बलवान् होता है। इस

बृहच्छागलाद्य नामक घृतको वातके नष्ट करने एवं कल्याण करनेके लिये और रोगोंका भय निवारण करनेके लिये हारीतमुनिने निर्म्माण कियाहै॥७२-९६॥

हंसाद्यघृत ।

हंसमांसं तुलां नीत्वा जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादशेषे रसे तस्मिन्प्रस्थं पुराणसर्पिषः ॥ ९७ ॥
सैन्धवं कुडवार्द्धञ्च तैलमेरण्डसम्भवम् ।
कुडवं घृततुल्यञ्च भूलतासम्भवं रसम् ॥ ९८ ॥
प्रक्षिप्य विपचेत्सर्पिः कुशलो मतिमान् भिषक् ।
पक्षाघातादिवातेषु घृतं स्यादमृतोपमम् ॥ ९९ ॥

हंसके मांसको १०० पल लेकर ३२ सेर जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस रसमें पुराना घी १ प्रस्थ, सैंधानमक १६ तोले, अण्डीका तेल ३२ तोले और केंचुएका रस ६४ तोले डालकर चतुर वैद्य विधिपूर्वक घृतको पकावे । यह घृत पक्षाघात आदि वातरोगोंमें अमृतकी समान गुण करता है ॥ ९७-९९ ॥

रसोनाद्य तैल ।

रसोनकल्कस्वरसेन पक्वं तैलं पिबेद्यस्त्वनिलामयार्त्तः ।
तस्याशु नश्यन्ति च वातरोगा ग्रन्था विशाला इवदुर्गृहीताः

जो वातरोगी लहसनके कल्क और स्वरसके साथ तिलके तैलको पकाकर पानकरे तो उसके सम्पूर्ण वातरोग और बडी बडी वातकी ग्रन्थियाँ शीघ्र नष्ट होती हैं ॥ २०० ॥

मूलकाद्य तैल ।

मूलकस्वरसं तैलं क्षीरं दध्यम्लकाञ्जिकम् ।
तुल्यं विपाचयेत्कल्कैर्बलाशिग्रुकसैन्धवैः ॥ १ ॥
पिप्पल्यातिविषारास्नाचविकागुरुचित्रकैः ।
भल्लातकवचाकुष्ठश्वदंष्ट्राविश्वभेषजैः ॥ २ ॥
पुष्कराह्वशठीबिल्वशताह्वानतदारुभिः ।
तत्सिद्धं पीतमत्युग्रान् हन्ति वातात्मकान् गदान्॥३॥

मूलीका रस, तिलका तैल, गौका दूध दही और काँजी ये सब समान भाग कल्कके लिये खिरैंटी, सहिंजना, सैंधानमक, पीपल, अतीस, रायसन,

चव्य, अगर, चीता, भिलावा, बच, कूठ, गोखुरू, सोंठ, पोहकरमूल, कचूर, बेलकी छाल, सोंफ, तगर और देवदारु इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे और सबको यथाविधि मिलाकर तैलको पकावे। इस प्रकार सिद्ध कियेहुए तैलको पीनेसे अत्यन्त प्रबल वातजन्यरोग शीघ्र नष्ट होतेहैं॥

वायुच्छायासुरेन्द्रतैल।

वाट्यालकं पलशतं तत्समं दशमूलकम्।
जलषोडाशिके पक्त्वा पादशेषं समुद्धरेत्॥ ४॥
एतत्काथे पचेत्तैलं द्वात्रिंशत्पलमेव च।
कल्कार्थं दीयते तत्र मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम्॥ ५॥
कुष्ठमेला देवदारु शैलजं सैन्धवं वचा।
कक्कोलं पद्मकाष्ठञ्च शृङ्गी तगरपादिका॥ ६॥
गुडूची मुद्गपर्णी च माषपर्णी शतावरी।
नागजिह्वा श्यामलता शतपुष्पा पुनर्नवा॥ ७॥
एषां तोलद्वयं भागं दत्त्वा तैलन्तु पाचयेत्।
एतत्तैलवरं नाम्ना वायुच्छायासुरेन्द्रकम्॥ ८॥
सर्ववातविकारेषु हितं पुंसाञ्च योषिताम्।
क्षीणशुक्रार्त्तवानाञ्च नारीणाञ्च विशेषतः॥ ९॥
चेतोविकारं हन्त्याशु वातमाक्षेपसम्भवम्।
मर्म्मवातं श्रमकृतं गात्रकम्पादिकन्तथा॥ २१०॥
हिक्कां श्वासञ्च कासञ्च वातपित्तसमुद्भवम्।
अपस्मारे महोन्मादे हितं लेपे च भक्षणे॥
श्रीमद्गहननाथेन रचितं विश्वसम्पदे॥ २११॥

खिरैंटी १०० पल और दशमूल १०० पल लेकर दोनोंको पृथक् पृथक् सोलहगुने जलमें पकावे। जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इस काथमें तिलका तेल ३२ पल और कल्कके लिये मजीठ, लालचन्दन, कूठ, इलायची, देवदारु, भूरिछरीला, सैंधानमक, बच, शीतलचीनी, पद्माख, काकडासिंगी, तगर, गिलोय, मुगवन, मषवन, शतावर, अनन्तमूल, सारिवा, सोया और पुनर्नवा इन प्रत्येकके दो दो तोले चूर्णको डालकर विधिपूर्वक तैलको पकावे। यह वायुच्छायासुरेन्द्रनामक श्रेष्ठ तैल सर्व

प्रकारके वातरोगोंमें हितकारी है। विशेषकर क्षीणवीर्यवाले पुरुषों और क्षीणरजवाली स्त्रियोंके लिये अत्यन्त उपकारी है। एवं मानसिकविकार, वातजन्य आक्षेपरोग, मर्मगतवात, श्रमजनित वात, शरीरमें कम्प होना, हिक्का रोग और वातपित्तजन्य श्वास, कासरोगको शीघ्र नष्ट करताहै। अपस्मार और प्रबल उन्माद रोगमें इस तेलको मर्दन और भक्षण करनेसे विशेष उपकार होताहै। इसको संसारके कल्याणके लिये श्रीगहननाथजीने रचाहै ॥ २०४-२११ ॥

महाबलातैल।

बलामूलकषायस्य दशमूलीकृतस्य च।
यवकोलकुलत्थानां क्वाथस्य पयसस्तथा ॥ १२ ॥
अष्टावष्टौ शुभा भागास्तैलादेकस्तदेकतः।
पचेदावाप्य मधुरं गणं सैन्धवसंयुतम् ॥ १३ ॥
तथागुरु सर्जरसं सरलं देवदारु च।
माञ्जिष्ठां चन्दनं कुष्ठमेलां कालानुशारिवाम् ॥ १४ ॥
मांसी शैलेयकं पत्रं तगरं शारिवां वचाम्।
शतावरीमश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम् ॥ १५ ॥
तत्साधु सिद्धं सौवर्णे राजते मृण्मयेऽपि वा।
प्रक्षिप्य कलशे सम्यक् सुनिगुप्तं निधापयेत् ॥ १६ ॥
बलातैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत्।
यथाबलं भिषङ्मात्रां सूतिकायै प्रदापयेत ॥ १७ ॥
या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान्।
क्षीणवाते मर्महतेऽभिहते मथितेऽथवा ॥ १८ ॥
भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैवोपयोजयेत्।
सर्वमाक्षेपकादींश्च वातव्याधीन्व्यपोहति ॥ १९ ॥
हिक्कां कासमधीमन्थं गुल्मं श्वासं सुदुस्तरम्।
षण्मासानुपयुज्यैतदन्त्रवृद्धिमपोहति ॥ २२० ॥
प्रत्युग्रधातुः पुरुषो भवेच्च नवयौवनः।
एतद्धि राज्ञा कर्त्तव्यं राजमात्राश्च ये नराः ॥
सुखिनः सुकुमाराश्च बलिनश्चैव ये नराः ॥ २१ ॥

खिरैंटीकी जडका क्वाथ, दशमूलका क्वाथ, जौ, बेर और कुलथी इन प्रत्येकका क्वाथ आठ आठ सेर, दूध ९ सेर और तिलका तैल एक सेर लेवे। फिर सबको एकत्र मिलाकर उसमें काकोल्यादि गणकी ओषधियाँ (जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, गिलोय, मुगवन, मषवन, पद्माख, वंशलोचन, काकडासिंगी, जीवन्ती, मुलैठी, दाख, पुण्डरिया), सैंधानमक, अगर, सफेदराल, धूपसरल, देवदारु, मजीठ, लालचन्दन, कूठ, इलायची, तगर, बालछड, भूरिछरीला, तेजपात, तगर, सारिवा, वच, शतावर, असगन्ध, सोया और पुनर्नवा इन सब ओषधियोंके समान भाग मिश्रित एक सेर कल्कको डालकर मन्दमन्द अग्निके द्वारा उत्तम प्रकारसे तैलको सिद्ध करे। फिर उसको सुवर्ण या चाँदी अथवा मिट्टीके शुद्ध बर्त्तनमें भरकर और अच्छे प्रकारसे ढककर रखदेवे। यह महाबलानामक तैल सर्वप्रकारके वातरोग और अन्य अनेक रोगोंको नष्ट करताहै। वैद्य, यह तैल प्रसूता स्त्रीको उसके बलके अनुसार एव गर्भकी इच्छा करनेवाली स्त्री और क्षीणवीर्य मनुष्यको यथोचित मात्रासे सेवन करावे। इस तैलको वातके द्वारा शरीर क्षीण होनेपर, मर्महत, अभिहत, अथवा मथितवात, अस्थि आदिके टूटजानेपर और श्रमजन्य वातरोगमें सर्वथा प्रयोग करना चाहिये। यह सर्वप्रकारकी आक्षेपादि वातव्याधि, हुचकी, खाँसी, नेत्ररोग, गुल्म, श्वास और अंत्रवृद्धिरोग इन सबको छः मास पर्यन्त सेवन करनेसे नष्ट कर देताहै। इसको सेवन करनेसे मनुष्य अत्यन्त प्रबलधातुवाला और नवयौवन युक्त होताहै। राजकर्मचारी मनुष्य, सुख चाहनेवाले और बलकी इच्छा करनेवाले सुकमार मनुष्योंको राजाकी आज्ञासे यह तैल निर्माणकर सेवन करना चाहिये २१२-२२१

अश्वगन्धातैल।

शतं पक्त्वाश्वगन्धाया जलद्रोणेंऽशशेषितम्।
विस्राव्य विपचेत्तैलं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ २२ ॥
कल्कैर्मृणालशालूकाबिसाकिञ्जल्कमालतीः।
पुष्पैर्ह्रीबेरमधुकशारिवापद्मकेशरैः ॥ २३ ॥
मेदा पुनर्नवा द्राक्षा मञ्जिष्ठाबृहतीद्वयैः।
एलैलबालुत्रिफलामुस्तचन्दनपद्मकैः ॥ २४ ॥
पक्वं रक्ताश्रयं वातं रक्तपित्तमसृग्दरम्।
हन्यात्पुष्टिबलं कुर्यात्कृशानां मांसवर्द्धनम् ॥ २५ ॥

रेतोयोनिविकारघ्नं व्रणदोषापकर्षणम् ।
षण्ढानपि वृषान्कुर्यात्पानाभ्यङ्गानुवासनैः ॥ २६ ॥

असगन्धको १०० पल लेकर १ द्रोण जलमें पकावे । जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर उसमें तिलका तैल और तेलसे चौगुना दूध डालकर एवं कमलकी नाल, भसींडा, कमलके सूक्ष्म तन्तु, नागकेशर, मालतीके फूल, सुगन्धवाला, मुलैठी, सारिवा, कमलकेशर, मेदा, पुनर्नवा, दाख, मँजीठ, कटेरी, बडीकटेरी, इलायची, एलुआ, त्रिफला, नागरमोथा, चन्दन और पद्माख इन ओषधियोंके समानभाग मिश्रित कल्कके साथ विधिपूर्वक तैलको सिद्ध करे । यह तैल वातरक्त, रक्तपित्त और रक्तप्रदरको नष्ट करताहै । एवं शारीरिक पुष्टि, बल और कृश मनुष्योंके मांसकी वृद्धि करताहै । वीर्य और योनिके विकारोंको दूर करता और व्रणके सम्पूर्ण दोषोंको हरताहै । पान,मर्दन और अनुवासनवस्तिके द्वारा सेवन करनेसे यह तैल षण्ढ (नपुंसक) मनुष्योंकोभी अत्यन्त वीर्यवान् करता है ॥ २२-२६ ॥

श्रीगोपाल तैल ।

रसाढकं शतावर्याः कूष्माण्डामलयोस्तथा ।
वाजिगन्धासहचरबलानाञ्च शतं पृथक् ॥ २७ ॥
परिपच्याम्भसां द्रोणे पादशेषेऽवतारयेत् ।
पञ्चमूलं महद्व्याघ्री मूर्वा केतकपूतिका ॥ २८ ॥
पारिभद्रस्य सर्वेषां ग्राह्यं दशपलं शुभम् ।
क्राथयित्वा जलद्रोणे तत्पादमवशेषयेत् ॥ २९ ॥
आढकं तिलतैलस्य कल्कैरेतैश्च संपचेत् ।
अश्वगन्धा चोरपुष्पी पद्मकं कण्टकारिका ॥ ३० ॥
बलागुरु घनं पूति शिह्लकागुरुचन्दनम् ।
चन्दनं त्रिफला मूर्वा जीवनीयकटुत्रयम् ॥ ३१ ॥
पूतिकुंकुमकस्तूर्य्याश्चातुर्जातं च शैलजम् ।
नखमुस्तमृणालानि नीलोत्पलमुशीरकम् ॥ ३२ ॥
मांसी मुरा सुरतरु वचा दाडिमतुम्बुरू ।
ऋद्धिवृद्धी दमनकं क्षुद्रैलार्द्धपलं पृथक् ॥ ३३ ॥
एतत्तैलवरं हन्ति वातपित्तकफोद्भवान् ।
व्याधीनशेषाञ्जनयेत्स्मृतिं मेधां धृतिं धियम् ॥ ३४ ॥

वातरोगान्विशेषेण प्रमेहान् हन्ति विंशतिम् ।
गर्भं संस्थापयेत्स्त्रीणां सर्वं शूलं व्यपोहति ॥ ३५ ॥
मूत्रकृच्छ्रमपस्मारमुन्मादान्निखिलानपि ।
स्थविरोऽपि जराजीर्णस्तैलस्यास्य निषेवणात् ॥३६॥
लीलया प्रमदानाञ्च उन्मादानां शतं जयेत् ।
तिष्ठेद्यस्य गृहे तैलं श्रीगोपालाभिधं शुभम् ॥ ३७ ॥
न तत्र भूताः सर्पन्ति न पिशाचा न राक्षसाः ।
न दारिद्यं भवेत्तस्य विघ्नः कश्चिन्न जायते ॥
अश्विभ्यां निर्मितं ह्येतद्विश्वकल्याणहेतवे ॥ ३८ ॥

शतावरका रस १ आढक, पेठेका रस १ आढक, आमलोंका रस १ आढक (२५६ तोले,) असगन्ध, पीली कटसरैया और खिरैंटी इन तीनोंको सौ सौ पल लेकर पृथक् पृथक् एकएक द्रोण जलमें पकावे । जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहे तब उतारकर छानलेवे । इसी प्रकार बेलकी छाल, शोनापाठेकी छाल, कम्भारीकी छाल, पाढरकी छाल, अरणीकी छाल, बडी कटेरी, मूर्वाकी जड, केतकीकी जड, पोईका शाक और फरहदकी छाल इन सबको दसदस पल लेकर एकएक द्रोणपरिमाण जलमें पकाकर चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतार-कर छानलेवे । फिर सबको एकत्र मिलाकर उसमें तिलका तेल १ आढक एवं असगन्ध, चोरपुष्पी, पद्माख, कटेरी, खिरैंटी, अगर, नागरमोथा, रोहिषतृण, शिलारस, अगर, लालचन्दन, सफेदचन्दन, त्रिफला, मूर्वा, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगवन, मषवन, जीवन्ती, मुलैठी, त्रिकुटा, रोहिषतृण, केशर, कस्तूरी, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, भूरिछरीला, नख, मोथा, कमलनाल, नीलकमल, खसकी जड, जटामांसी, मुरामांसी, देवदारु, बच, अनार, तुम्बुरु, ऋद्धि, वृद्धि, दौना और छोटी इला-यची इन प्रत्येक ओषधिके दो दो तोले कल्कको डालकर मन्दमन्द अग्निके द्वारा उत्तम प्रकारसे तैलको पकावे । यह उत्तम तैल मर्दन करनेसे वात, पित्त और कफसे उत्पन्नहुई सम्पूर्ण व्याधियोंको शीघ्र नष्ट करता है । एवं स्मरणशक्ति, मेधा, धैर्य्य और बुद्धिको उत्पन्न करता है । विशेषकर वातरोग और बीसों प्रकारके प्रमेहोंको दूर करता है और स्त्रियोंके गर्भको स्थापन करता है । सर्व प्रकारके शूलरोग, मूत्रकृच्छ्र, अपस्मार और सर्वप्रकारके उन्मादरोगको नाश करता है । वृद्धावस्थाके द्वारा जीर्ण होगया हो देह जिसका ऐसा वृद्ध मनुष्यभी

इस तेलको सेवन करनेसे सैकडों उन्मत्त स्त्रियोंको सहजही जीत सकता है। जिसके घरमें यह श्रीगोपालनामक तेल होता है वहाँ भूत, पिशाच और राक्षस कभी नहीं प्रवेश करते। उसको न दरिद्रता प्राप्त होती है और न कोई विघ्न उपस्थित होता है। इस तैलको संसारके कल्याणके लिये अश्विनीकुमारोंने निर्म्माण किया है ॥ २२७-२३८ ॥

विष्णुतैल ।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बला च बहुपुत्रिका ।
एरण्डस्य च मूलानि बृहत्योः पूतिकस्य च ॥ ३९ ॥
गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च ।
एतेषां पलिकैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २४० ॥
आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ।
अस्य तैलस्य पक्कस्य शृणु वीर्यमतः परम् ॥ ४१ ॥
अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां तथैव च ।
अपुमांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन पुमान्भवेत् ॥ ४२ ॥
हृच्छूले पार्श्वशूले च तथैवार्द्धावभेदके ।
कामलापाण्डुरोगेषु शर्करास्वश्मरीषु च ॥ ४३ ॥
क्षीणेन्द्रिया नरा ये च जरसा जर्जरीकृताः ।
येषाञ्चैव क्षयो व्याधिरन्त्रवृद्धिश्च दारुणा ॥ ४४ ॥
अर्दितं गलगण्डञ्च वातशोणितमेव च ।
स्त्रियो या न प्रसूयन्ते तासाञ्चैव प्रदापयेत् ॥ ४५ ॥
गर्भमश्वतरी विन्द्यान्न च मृत्युवशं व्रजेत् ।
एतत्तैलवरञ्चैव विष्णुना परिकीर्त्तितम् ॥ ४६ ॥

शालपर्णी, पृश्निपर्णी, खिरैंटी, शतावर, अण्डकी जड, कटेरी, बडी कटेरीकी जड, दुर्गन्धकरञ्जकी जड, गरहेडुकी जड और पियाबाँसेकी जड इन प्रत्येकके चार चार तोले कल्क और गौके अथवा बकरीके चार प्रस्थ दूधके साथ एक प्रस्थ (६४ तोले) तिलका तेल मिलाकर यथाविधि पकाना चाहिये। अब इस प्रकार सिद्ध कियेहुए तेलके वीर्यको कहता हूँ; उसको सुनो—यह तेल वातकी प्रबलतासे नष्टअङ्गवाले हाथी और घोडोंके लिये अत्यन्त हितकर है। पुरुषत्वहीन मनुष्य इस तेलको पान करनेसे अवश्य पुरुषत्वको प्राप्त

होताहै। हृदयशूल, पार्श्वशूल, अर्द्धावभेदक रोग, कामला, पाण्डुरोग, शर्कराका जाना, पथरीरोगमें एवं वृद्धताके कारण क्षीण होगई हैं इन्द्रियें जिनकी ऐसे और जीर्णदेहवाले वृद्ध मनुष्योंको, क्षयरोग, दारुण अन्त्रवृद्धि, अर्दितवात, गलगण्डरोग, वातरक्तरोगी और वन्ध्यास्त्रियोंको यह तेल सेवन कराना चाहिये। इसके प्रभावसे खचरी भी गर्भको धारण करती है और इसको सेवन करनेवाला मनुष्य मृत्युको प्राप्त नहीं होता; इस अत्युत्तमतेलको विष्णुभगवान्‌ने वर्णन कियाहै ॥ ३९-४६ ॥

बृहद्विष्णुतैल।

जलधरमसगन्धा जीवकर्षभकौ शठी।
काकोली क्षीरकाकोली जीवन्ती मधुयष्टिका॥ ४७॥
मधूरिका देवदारु पद्मकाष्ठञ्च शैलजम्।
मांसी चैला त्वचं कुष्ठं वचा चन्दनकुङ्कुमम्॥ ४८॥
मञ्जिष्ठा मृगनाभिश्च श्वेतचन्दनरेणुकम्।
पर्णिन्यः कुन्दुखोटी च ग्रन्थिकश्च नखी तथा॥ ४९॥
एतेषां पालिकैर्भागैस्तैलस्यापि तथाढकम्।
शतावरीरस तुल्यं दुग्धश्चापि समं पचेत्॥ ५०॥
विष्णुतैलमिदं श्रेष्ठं सर्ववातविकारनुत्।
ऊर्ध्ववातं तथा वातमङ्गानिग्रहमेव च॥ ५१॥
शिरोमध्यगतं वातं मन्यास्तम्भं गलग्रहम्।
हन्ति नानाविधं वातं सन्धिमज्जागतं तथा।
यस्य शुष्यति चैकाङ्गं गतिर्यस्य च विह्वला॥ ५२॥
ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः।
सर्वांस्तान्नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः॥ ५३॥

नागरमोथा, असगन्ध, जीवक, ऋषभक, कचूर, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलैठी, सोंफ, देवदारु, पद्माख, भूरिछरीला, बालछड, इलायची, दारचीनी, कूठ, वच, लालचन्दन, केशर, मजीठ, कस्तूरी, श्वेतचन्दन, रेणुका, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुगवन, मषवन, कुन्दुरू, गठीवन और नख इन प्रत्येक ओषधिका कल्क चार चार तोले एवं तिलका तैल १ आढक, शतावरका रस १ आढक और गोदुग्ध १ आढक लेवे। इन सबको एकत्र मिलाकर विधि-

पूर्वक तैलको पकावे। यह श्रेष्ठ विष्णुतैल सर्व प्रकारके वातविकारोंको दूर करता है। ऊर्ध्वगत वात, सर्वांगवातकी पीडा, शिरके वातरोग, मन्यास्तम्भ, गलेके रोग, सन्धि व मज्जागत वात और अन्य नानाप्रकारके वातरोगोंको नष्ट करता है। एक अंगका सूख जाना, गतिशक्तिकी शिथिलता एवं वातसे और पित्तसे उत्पन्नहुए सर्वप्रकारके रोगोंको यह तेल इस प्रकार नाश करदेता है जैसे सूर्यका प्रकाश अन्धकारको तत्काल नष्ट करदेता है॥ ४७-२५३॥

नारायणतैल।

शतावरी चांशुमती पृश्निपर्णी शठी बला।
एरण्डस्य च मूलानि बृहत्योः पूतिकस्य च॥ ५४॥
गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च।
एषां दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत्॥ ५५॥
पादशेषे च पूते च गर्भश्चैनं समावपेत्।
पुनर्नवा वचा दारु शताह्वा चन्दनागुरु॥ ५६॥
शैलेयं तगरं कुष्ठमेला मांसी स्थिरा बला।
अश्वाह्वा सैन्धवं रास्ना पलार्द्धानि च योजयेत्॥५७॥
गव्याजपयसोः प्रस्थौ द्वौ द्वावत्र प्रदापयेत्।
शतावरीरसप्रस्थं तैलप्रस्थं विपाचयेत्॥ ५८॥
अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम्।
अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां तथा नृणाम्॥ ५९॥
तैलमेतत्प्रयोक्तव्यं सर्ववातविकारनुत।
आयुष्मांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन दृढो भवेत्॥ २६०॥
गर्भमश्वतरी विन्द्यात्किंपुनर्मानुषी तथा।
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च वातरक्तं गलग्रहम्॥ ६१॥
अपचीं गण्डमालाञ्च तथैवार्द्धावभेदकम्।
कामलां पाण्डुरोगञ्च अश्मरीञ्चैव नाशयेत्॥ ६२॥
तैलमेतद्भगवता विष्णुना परिकीर्त्तितम्।
नारायणमिदं ख्यातं वातान्तकरणं परम्॥ ६३॥

शतावर, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कचूर, खिरैंटी, अण्डकी जड, कटेरी और बडी कटेरीकी जड, दुर्गन्धकरञ्जकी जड, गरहेडुयेकी जड और पियाबाँसेकी

जड इन सबको दस दस पल लेकर १ द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छान लेवे। फिर इस काथमें पुनर्नवा, बच, देवदारु, सौंफ, रक्तचन्दन, अगर, भूरिछरीला, तगर, कूठ, इलायची, बालछड, शालपर्णी, खिरेंटी, असगन्ध, सैंधानमक और रास्ना इन प्रत्येकका कल्क दो दो तोले, एवं गौका दूध २ प्रस्थ, बकरीका दूध दो प्रस्थ, शतावरका रस१प्रस्थ और तिलका तैल एक प्रस्थ डालकर उत्तम प्रकारसे तैलको पकावे । अब इस प्रकार सिद्ध कियेहुए तेलके वीर्यको सुनो–यह तेल वातरोगसे टूटगये हैं अंग जिनके ऐसे घोडे, हाथी और मनुष्योंको सेवन कराना चाहिये । इससे सर्वप्रकारके वातरोग नष्ट होते हैं । इसको पान करनेसे मनुष्य दीर्घायु और सुदृढअंगवाला होताहै । इसके सेवन करनेसे खचरीभी गर्भको धारण कर देतीहै फिर स्त्रीका तो कहनाही क्या ?. यह तैल हृदयशूल, पसलीकी पीडा, वातरक्त, गलेके रोग, अपची, गण्डमाला, अर्द्धावभेदक, कामला, पाण्डुरोग और पथरी इन सब रोगोंको नष्ट करताहै । इस तैलको विष्णुभगवान्‌ने निर्माण कियाहै, इसलिये इसको नारायणतैल कहतेहैं । यह सर्वप्रकारके वातरोगोंको समूलनाश करताहै ॥ २५४–२६३ ॥

मध्यमनारायणतैल ।

बिल्वोऽग्निमन्थः श्योनाकः पाटलः पारिभद्रकः ।
प्रसारण्यश्वगन्धा च बृहती कण्टकारिका ॥
बला चातिबला चैव श्वदंष्ट्रा सपुनर्नवा ॥ ६४ ॥
एषां दशपलान्भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ।
पादशेषं परिस्राव्य तैलपात्रं प्रदापयेत् ।
शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेयकं वचा ॥ ६५ ॥
चन्दनं तगरं कुष्ठमेला पर्ण्यश्चतुष्टयम् ।
रास्ना तुरगगन्धा च सैन्धवं सपुनर्नवम् ॥ ६६ ॥
एषां द्विपलिकान्भागान्पेषयित्वा विनिःक्षिपेत् ।
शतावरीरसश्चैव तैलतुल्यं प्रदापयेत् ॥ ६७ ॥
आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ।
पाने वस्तौ तथाभ्यङ्गे भोज्ये चैव प्रशस्यते ॥ ६८ ॥
अश्वो वा वातभग्नो वा गजो वा यदि वा नरः ।
पङ्गुश्च पीठसर्पी च तैलेनानेन सिद्ध्यति ॥ ६९ ॥

अधोभागे च ये वाताः शिरोमध्यगताश्च ये ।
मन्यास्तम्भे हनुस्तम्भे दन्तरोगे गलग्रहे ॥ २७० ॥
यस्य शुष्यति चैकाङ्गं गतिर्यस्य च विह्वला ॥
क्षीणेन्द्रियाः क्षीणशुक्राः ज्वरक्षीणाश्च ये नराः ७१॥
बधिरा लम्बजिह्वाश्च मन्दमेधस एव वा ॥
अल्पप्रजा च या नारी या च गर्भं न विन्दति॥७२॥
वातार्त्तौ वृषणौ येषामन्त्रवृद्धिश्च दारुणा ॥
एतत्तैलवरं तेषां नाम्ना नारायणं स्मृतम् ॥ ७३ ॥

बेलकी छाल, अरणीकी छाल,सोनापाठेकी छाल,पाढरकी छाल, फरहदकी छाल, प्रसारणी, असगन्ध, बडीकटेरी, कटेरी, खिरैंटी, कन्घी, गोखुरू और पुनर्नवा इन सबको दसदस पल लेकर ४ द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाईभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें तिलका तेल १ आढक (२५६ तोले) एवं सोया, देवदारु, बालछड, भूरिछरीला, वच, चन्दन,,तगर कूठ, इलायची, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, माषपर्णी, रास्ना, असगन्ध, सैधानमक पुनर्नवा इन प्रत्येक औषधिका कल्क आठ आठ तोले, शतावरका रस एक आढक आर बकरी अथवा गौका दूध चार आढक परिमाण डालकर यथाविधि तेलको सिद्धकरे । इस तेलको पानकरना, वस्तिक्रिया (पिचकारी लगाना), मालिश करना और भोजनादिकमोंमें व्यवहार करना चाहिये । इस तेलको सेवन करनेसे वातरोगसे पीडित घोडा, हाथी अथवा मनुष्य और पीठसे खिचडनेवाला व पंगु मनुष्य आरोग्य होता है । यह तेल अधोभाग-स्थित और शिरोमध्यगत जो वातरोग हैं, एवं मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, दन्तरोग और गलेके रोगोंमें विशेष उपयोगी है । जिसका एक अंग सूख गया हो, जिसकी गति विह्वल होगयी हो, जो क्षीण इन्द्रिय, नष्टवीर्य और जो ज्वरसे क्षीण देहवाले हैं तथा बहरे, लम्बी जीभवाले और मन्दबुद्धिवाले जो पुरुष हैं, अल्प सन्तानवाली और जो कदापि गर्भको धारण नहीं करती ऐसी स्त्री, जिनके अण्डकोष वातसे पीडित हैं और जिनके दारुण अन्त्रवृद्धि रोग हो उन मनुष्योंको यह अत्युत्तम तेल है । इसको नारायणतैल कहते हैं ॥२६३–७३॥

महानारायणतैल ।

बिल्वाश्वगन्धा बृहती श्वदंष्ट्रा श्योनाकवाटचालक-पारिभद्रम् । क्षुद्रा कठिल्लातिबलाग्निमन्थं मूलानि

चैषां सरणीयुतानाम् ॥ ७४ ॥ मूलं विदध्यादथ पाट-
लानां प्रस्थं सपादं विधिनोद्धृतानाम् । द्रोणैरपामष्ट-
भिरेव पक्त्वा पादावशेषेण रसेन तेन ॥ ७५ ॥ तैला-
ढकाभ्यां सममेव दुग्धमाजं निदध्यादथवापि गव्यम् ।
एकत्र सम्यग्विपचेत्सुबुद्धिर्दद्याद्रसञ्चैव शतावरीणाम्
॥७६॥तैलेन तुल्यं पुनरेव तत्र रास्नाश्वगन्धामिषिदारु-
कुष्ठम्।पर्णीचतुष्कागुरुकेशराणि सिंधूत्थमांसी रजनी-
द्वयञ्च ॥७७॥ शैलेयकं चन्दनपुष्कराणि एलाह्वयष्टी-
तगराब्दपत्रम् । भृङ्गाष्टवर्गाम्बु वचा पलाशं स्थौणेय-
वृश्चीरकचोरकाख्यम् ॥ ७८ ॥ एतैः समस्तैर्द्विपलप्र-
माणैरालोड्य सर्वं विधिना विपक्वम् । कर्पूरकाश्मीर-
मृगाण्डजानां चूर्णीकृतानां त्रिपलप्रमाणम् ॥ ७९ ॥
प्रस्वेददौर्गन्ध्यनिवारणाय दद्यात्सुगन्धाय वदन्ति
केचित् । नारायणं नाम महच्च तैलं सर्वप्रकारैर्विधि-
वत्प्रयोज्यम् ॥ २८० ॥ आश्वेव पुंसां पवनार्दितानामे-
काङ्गहीनार्दितवेपमानाः । ये पङ्गवः पीठविसर्पिणश्च
बाधिर्यशुक्रक्षयपीडिताश्च ॥ ८१ ॥ मन्याहनुस्तम्भ-
शिरोरुजार्त्ता मुक्तामयास्ते बलवर्णयुक्ताः । संसेव्य
तैलं सहसा भवन्ति वन्ध्या च नारी लभते च पुत्रम्॥
वीरोपमं सर्वगुणोपपन्नं सुमेधसं श्रीविनयान्वितञ्च ।
शाखाश्रिते कोष्ठगते च वाते वृद्धौ विधेयं पवनार्दि-
तानाम् ॥ ८३ ॥ जिह्वानिले दन्तगते च शूले उन्मा-
दकौब्ज्यज्वरकार्षितानाम् । प्राप्नोति लक्ष्मीं प्रमदा-
प्रियत्वं वपुःप्रकर्ष विजयञ्च नित्यम् ॥ ८४ ॥ तैलो-
पसेवी जरयाविमुक्तो जीवेच्चिरञ्चापि भवेद्युवेव । देवा-
सुरे युद्धपरे समीक्ष्य स्नाय्वस्थिभङ्गानसुरैः सुरांश्च ॥
नारायणेन सुरबृंहणार्थं स्वनामतैलं विहितञ्च तेषाम्॥८५

बेलकी छाल, असगन्ध, बडीकटेरी, गोखुरू, सोनापाठा, खिरैंटी, फरहद, कटेरी, पुनर्नवा, कंघी, अरणी, प्रसारणी और पाढलकी जड इन प्रत्येक ओषधिको अस्सी २ अस्सी तोले लेकर आठ द्रोण जलमें पकावे।जब पकते पकते दो द्रोण जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस काथके साथ तिलका तेल दो आढक (सोलह सेर) बकरी या गौका दूध दो आढक,शतावरका रस दो आढक, एवं रायसन, असगन्ध, सौंफ, देवदारु, कूठ, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी,माषपर्णी, अगर, केशर, सैंधानमक, बालछड, हल्दी, दारुहल्दी, भूरिछरीला, चन्दन, पोहकरमूल, इलायची, मँजीठ, तगर, नागरमोथा, तेजपात, भाँगरा, अष्टवर्गकी आठों ओषधियाँ (जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली), सुगन्धवाला, बच, ढाककी जड,गठिवन, सफेद पुनर्नवा और चोरक (भटेउर) इन सब ओषधियोंके कल्कको आठ आठ तोले मिलाकर विधिपूर्वक तैलको पकावे। उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजानेपर इसमें सुगन्धिके लिये अथवा प्रस्वेद और दुर्गन्धको दूर करनेके लिये कपूर, केशर और कस्तूरी ये प्रत्येक चार चार तोले बारीक पीसकर मिलादेवे। इसको महानारायणतेल कहते हैं। यह तैल वातसे पीडित मनुष्य, एकाङ्गहीन, अर्दितवात और कम्पवातयुक्त मनुष्योंको सर्वप्रकारसे विधिपूर्वक सेवन कराना चाहिये। जो पंगु मनुष्य हैं और जो पीठसे खिचडते हैं एवं बहरे, वीर्यके क्षय होनेसे पीडित,मन्यास्तम्भ,हनुस्तम्भ और जो शिरोरोगसे पीडित मनुष्य हैं वे इस तैलको सेवन करनेसे सम्पूर्ण रोगोंसे तत्काल मुक्त होजातेहैं और बल वर्णयुक्त होतेहैं। और वन्ध्या स्त्री,वीरपुरुषकी समान, सर्वगुण सम्पन्न, अत्यन्त बुद्धिमान्, लक्ष्मीवान् और विनययुक्त पुत्रको उत्पन्न करतीहै। यह तैल शाखागतवात, कोष्ठास्थित वात और वातसे पीडित मनुष्योंके वातवृद्धि होनेपर, जिह्वागत और दन्तगतवात पीडामें एवं सर्वप्रकारके उन्माद, कुब्जता और ज्वरसे कृशदेहवाले मनुष्योंको सेवन करानेसे शीघ्र उपकार होताहै। इसको सर्वप्रकारके वातरोगोंमें देना चाहिये। इस तैलको नित्य सेवन करनेवाला मनुष्य लक्ष्मी, स्त्रीसे प्रीति और विजयको प्राप्त होताहै। एवं वृद्धमनुष्य जरा (बुढापा) से मुक्त होकर युवा पुरुषकी समान चिरकालतक जीवित रहताहै। पूर्वकालमें, देवता और असुरोंके भयंकर संग्राममें असुरोंके प्रहारसे टूटगये हैं स्नायु और हड्डियें जिनकी ऐसे देवताओंको देखकर श्रीविष्णुभगवान्ने उनकी रक्षाके लिये अपने नामसे इस तैलको निर्माण कियाहै ॥ २७४-२८५ ॥

पुष्पराजप्रसारणीतैल ।

प्रसारणीपलशतं मूलश्चैवाश्वगन्धजम् ।
पञ्चाशत्पलमानन्तु जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ८६ ॥
पादशेषे हरेत्काथं काथांशं तिलतैलकम् ।
तैलाच्चतुर्गुणं क्षीरं गव्यं वा माहिषं तथा ॥ ८७ ॥
पुण्डरीकरसस्तत्र शतावर्य्या रसस्तथा ।
तैलसमः प्रदातव्यः पाचयेन्मृदुवह्निना ॥ ८८ ॥
शतपुष्पा कणा चैव कुष्ठश्च कण्टकारिका ।
शुण्ठी यष्टी देवदारु शालपर्णी पुनर्नवा ॥ ८९ ॥
मञ्जिष्ठा पत्रकं रास्ना वचा पुष्करमूलकम् ।
यमानी भूतिकं मांसी निर्गुण्डी च तथा बला॥९०॥
वह्निगोक्षुरकश्चैव मृणालं बहुपुत्रिका ।
प्रतिकर्षमितं योज्यं सर्वमेकत्र पाचयेत् ॥ ९१ ॥
तैलशेषं समुद्धृत्य पुष्पराजप्रसारणीम् ।
अभ्यङ्गे योजयेत्पाने नस्यकर्माणि सर्वदा ॥९२॥
भग्नानां खञ्जपंगूनां शिरोरोगे हनुग्रहे ।
समस्तान्वातजान्रोगांस्तूर्णं नाशयति ध्रुवम् ॥ ९३ ॥

प्रसारणी १०० पल और असगन्धकी जडको ५० पल लेकर १ द्रोण (३२- सेर) जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग (८ सेर) जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर तिलका तेल काथसे चौथाई भाग अर्थात् २ सेर, तेलसे चौगुना गौ अथवा भैंसका दूध एवं श्वेत कमलका रस और शतावरका रस ये प्रत्येक दो दो सेर लेकर सबको एकत्र मिश्रित करके मन्द मन्द अग्निके द्वारा पकावे । पकते समय उसमें सोया, पीपल, कूठ, कटेरी, सोंठ, मुलैठी, देवदारु, शालपर्णी, पुनर्नवा, मंजीठ, तेजपात, रास्ना, वच, पोहकरमूल, अजवायन, गन्धेजघास, बालछड, निर्गुण्डी, खिरैंटी, चीतेकी जड, गोखुरू, कमलकी नाल और शतावर ये प्रत्येक ओषधि एक एक कर्ष परिमाण कल्क करके डाल देवे । जब पककर तेलमात्र शेष रहजाय तब उतार कर छानलेवे । इस पुष्पराजप्रसारणीतैलको अभ्यङ्ग, पान और नस्यकर्ममें सदा प्रयोग करे । यह तेल वातसे भग्न होगये हैं अङ्ग जिनके ऐसे खञ्ज और

पंगु मनुष्योंके एवं शिरोरोग, हनुग्रह और वातजन्य सम्पूर्ण रोगोंको निश्चयही शीघ्र नष्ट करताहै ॥ ८६-२९३ ॥

हिमसागरतैल।

शतावरीरसप्रस्थे विदार्य्याः स्वरसे तथा।
कूष्माण्डकरसप्रस्थे धात्र्याश्च स्वरसे तथा ॥ ९४ ॥
शाल्मल्याः स्वरसप्रस्थे तथा गोक्षुरकस्य च।
नारिकेलरसप्रस्थे तिलतैलस्य प्रस्थतः ॥ ९५ ॥
कदल्याः स्वरसप्रस्थे क्षीरप्रस्थचतुष्टये।
अस्यौषधस्य कल्कस्य प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ॥ ९६ ॥
चन्दनं तगरं वाप्यं मञ्जिष्ठा सरलागुरु।
मांसी मुरा च शैलेयं यष्टी दारु नखी शिवा ॥९७॥
पूतिका पीडिका पत्रं कुन्दुरुर्नलिका तथा।
वरी लोध्रं तथा मुस्तं त्वगेलापत्रकेशरम् ॥ ९८ ॥
लवङ्गं जातिकोषञ्च तथा मधुरिका शठी।
चन्दनं ग्रन्थिपर्णञ्च कर्पूरं लाभतः क्षिपेत् ॥ ९९ ॥
अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम्।
उच्चैः प्रपततो वायोर्गजतो वाजिनस्तथा ॥ ३०० ॥
उष्ट्रतो लोष्ट्रपाताच्च पंगूनां पीठसर्पिणाम्।
एकाङ्गशोषिणाञ्चैव तथा सर्वाङ्गशोषिणाम् ॥ १ ॥
क्षतानां क्षीणशुक्राणामत्यन्तक्षयरोगिणाम्।
हनुमन्याहतानाञ्च दुर्बलानां तथैव च ॥ २ ॥
शोषिणां लम्बजिह्वानां तथा मिन्मिनभाषिणाम्।
अत्यन्तदाहयुक्तानां क्षीणानां वातरोगिणाम् ॥ ३ ॥
एतत्तैलवरं श्रेष्ठं विष्णुना परिकीर्तितम्।
हिमसागरमाख्यातं सर्ववातविकारनुत् ॥ ४ ॥
ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः।
शिरोमध्यगता ये च शाखामाश्रित्य ये स्थिताः ॥
ते सर्वे प्रशमं यान्ति तैलस्यास्य प्रसादतः ॥ ५ ॥

शतावरका रस १ प्रस्थ, विदारीकन्दका स्वरस १ प्रस्थ, पेठेका रस एक प्रस्थ, आमलोंका स्वरस १ प्रस्थ, सेमलकी जडका स्वरस १ प्रस्थ, गोखुरूका रस एक प्रस्थ, नारियलका जल एक प्रस्थ, केलेकी जडका स्वरस एक प्रस्थ, तिलका तैल एक प्रस्थ और दूध ४ प्रस्थ लेकर इनमें लालचन्दन, तगर, कूठ, मँजीठ, धूपसरल, अगर, बालछड, कपूरकचरी, भूरिछरीला, मुलैठी, देवदारु, नख, हरड, गन्धमार्जारवीर्य, पोई शाकके पत्ते, कुन्दुरु, नली, शतावर, लोध, नागरमोथा, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौंग, जावित्री, सौंफ, कचूर, श्वेतचन्दन, गठिवन और कपूर इन प्रत्येक ओषधिका कल्क एकएक कर्ष परिमाण अथवा इनमेंसे जितनी ओषधियाँ. मिलसके उतनीहीका कल्क डालकर तेलको सिद्ध करे। अब इस सिद्ध तेलके प्रभावको सुनो। उच्चस्थान, वात व हाथी, घोडा, ऊंट और मकानपरसे गिरेहुए मनुष्योंकेलिये एवं पंगु (लँगडे), पीठसे खिचडनेवाले जिनका एक अंग सूख गया हो, या जिनके सम्पूर्ण अंग सूखगये हों ऐसे मनुष्य, क्षतरोगी, क्षीणवीर्यवाले, अत्यन्त क्षय-रोगी, हनुस्तम्भ और मन्यास्तम्भरोगी, दुर्बलमनुष्य, शोषरोगी, लम्बी जिह्वा-वाले और मिन्मिनाकर बोलनेवाले रोगी, अत्यन्त दाह युक्त, क्षीणदेहवाले और वातरोगसे ग्रसित मनुष्योंकेलिये यह अत्यन्त श्रेष्ठ तैल है। इस हिमसागर नामक तेलको विष्णुभगवान्‌ने वर्णन किया है। यह सर्वप्रकारके वातविकारोंको नष्ट करनेवाला है। वातसे उत्पन्नहुए, पित्तसे उत्पन्नहुए, शिरमें होनेवाले और शाखाश्रित जितने रोग हैं वे सब इस तेलके प्रभावसे नाशहोतेहैं॥९४-२०५॥

सिद्धार्थक तैल।

शतावरीस्तु निष्पीड्य रसं प्रस्थद्वयं हरेत्।
तिलतैलं पचेत्प्रस्थं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ २०६ ॥
शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेयकं बला।
चन्दनं तगरं कुष्ठमेला चांशुमती तथा ॥ ७ ॥
रास्ना तुरगगन्धा च समङ्गा शारिवाद्वयम्।
पृश्निपर्णी वचा चैव तथा गन्धर्वहस्तकम् ॥ ८ ॥
सिन्धूद्भवं समं दद्याद्विश्वभेषजमेव च।
एभिस्तैलं पचेद्धीमान् दत्त्वार्द्रकरसं समम् ॥ ९ ॥
कौब्ज्येन वामना ये च पङ्गुपादाश्च ये नराः।
महावातेन ये भग्ना अङ्गसङ्कुटिताश्च ये ॥ २१० ॥

तेषां हितमिदं तैलं सन्धिवाते च शस्यते।
येषां शुष्यति चैकाङ्गं गतिर्येषाञ्च विह्वला ॥ ११ ॥
क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्रा जरया जर्जरीकृताः।
अमेधसश्च बधिरास्तेषामपि परं हितम् ॥ १२ ॥
मासमेकं पिबेद्यस्तु यौवनस्थः पुनर्भवेत्।
सिद्धार्थकमिति ख्यातं नरनारीहिताय च ॥ १३ ॥

शतावरको कूटकर निकालाहुआ रस २ प्रस्थ (१२८ तोले), तिलका तैल १ प्रस्थ (६४ तोले), गौका दूध ४ प्रस्थ, अदरखका रस १ प्रस्थ और कल्कके लिये सोया, देवदारु, बालछड़, भूरिछरीला, खिरैंटी, लाल चन्दन, तगर, कूठ, इलायची, शालपर्णी, रायसन, असगन्ध, वराहक्रान्ता, उसवा, अनन्तमूल, पृश्निपर्णी,वच, अण्डकी जड, सैंधानमक और सोंठ इन सब औषधियोंको समान भाग मिश्रित १६ तोले लेकर सबको यथाविधि एकत्र करके उत्तम प्रकारसे तैलको सिद्ध करे। कुब्जताके होनेसे जो बौने होगयेहैं, जो लँगडे हैं, जिनके भयङ्कर वातव्याधिसे शरीर नष्ट होगये हैं या जिनके अङ्ग कुचलगये हैं ऐसे मनुष्योंको यह तेल अत्यन्व हितकारी है। सन्धिगतवातमें एवं जिनका एक अङ्ग सूख गयाहै, जिनकी गति विह्वल है, जो क्षीण इन्द्रिय, क्षीणवीर्य मनुष्य, वृद्धतासे जर्जर होगयेहैं देह जिनके ऐसे वृद्ध, बुद्धिहीन और बहरे जो मनुष्यहैं उनके लियेभी यह अत्यन्त उपयोगी है। जो एक महीनेतक इस तेलको निरन्तर पान करे तो वृद्धमनुष्य फिर युवा होजाताहै। यह सिद्धार्थक नामकतैल स्त्री और पुरुषोंके कल्याणकेलिये प्रसिद्धहै ॥ ३०६-३१३ ॥

नकुलतैल।

मधुकं जीरकं रास्ना सैन्धवं शतपुष्पिका।
यमानी मरिचं कुष्ठं विडङ्गं गजपिप्पली ॥ १४ ॥
सौवर्चलं चाजमोदा बला षड्ग्रन्थिका तथा।
ग्रन्थिकं शैलजं मांसी कर्षमेषां पृथक्पृथक् ॥ १५ ॥
विनीय पाचयेत्तैलं प्रस्थं रुबुसमुद्भवम्।
प्रस्थे नकुलमांसस्य क्वाथे च दशमूलजे ॥ १६ ॥
प्रस्थे च काञ्जिकस्यापि मस्तुप्रस्थे तथैव च।
सिद्धं तैलमिदं हन्ति कम्पवातं सुदारुणम् ॥ १७ ॥

हस्तकम्पं शिरःकम्पं बाहुकम्पञ्च नाशयेत् ।
आमवातं समूलञ्च सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ १८ ॥
पानाभ्यञ्जनवस्तीभिर्नाशयेन्नात्र संशयः ।
आढ्यवातं कटीपृष्ठजानुजङ्घाश्रितं तथा ॥ १९ ॥
सन्धिस्थं वातमाश्वेव जयेन्नकुलसंज्ञकम् ।
हारीतभाषितमिदं तैलं हितचिकीर्षया ॥ ३२० ॥
वैद्यानां सारभूतानां शतेनापि समुज्झितम् ।
वातव्याधिं निहन्त्याशु कम्पवातं विशेषतः ॥
अशीतिर्वातजान्रोगान्नाशयेदाशु देहिनाम् ॥ २१ ॥

नौलेका मांसरस, दशमूलका काथ, काँजी और दहीका तोड इन सबको एकएक प्रस्थ लेकर एकत्र मिलालेवे। फिर इसमें अण्डीका तेल एक प्रस्थ और कल्कके लिये मुलैठी, जीरा, रायसन, सैंधानमक, सोया, अजवायन, मिरच, कूठ, वायविडङ्ग, गजपीपल, कालानमक, अजमोद, खिरेंटी, वच, पीपलामूल, भूरिछरीला और वालछड इन प्रत्येकके कल्कको दो दो तोले डालकर विधिपूर्वक तेलको पकावे। इस प्रकार सिद्ध कियाहुआ यह तैल दारुण कम्पवात, हाथोंका काँपना, शिरका काँपना, बाहुओंका काँपना, सर्वप्रकारके उपद्रव और शूलसहित आमवातरोग इन सबको निश्चय नाश करताहै। इस नकुलनामकतैलको पान, मर्द्दन और वस्तिक्रियाद्वारा प्रयोग करनेसे आढयवात एवं कमर, पीठ, जानु, जङ्घा सन्धिस्थानगत वातकी पीडा तत्काल नाश होतीहै। इस तैलको सम्पूर्ण प्राणियोंका हित करनेकी इच्छासे हारीतमुनिने वर्णन कियाहै। जिसको सैकडों बडे बडे योग्य चिकित्सकोंने त्यागदिया हो ऐसे वातरोगको यह तैल शीघ्र नष्ट करताहै। विशेषकर यह मनुष्योंके कम्पवात और अस्सीप्रकारके वातरोगोंको बहुत शीघ्र दूरकरताहै॥ ३१४--३२१ ॥

महाकुक्कुटमांसतैल।

माषस्यार्द्धाढकं देयं दशमूल्यास्तुलार्द्धकम् ।
बलामूलञ्च तस्यार्द्धं केतकीनां तथैव च ॥ २२ ॥
दक्षमांसपलत्रिंशज्झिण्टिकापञ्चविंशतिः ।
जलद्रोणद्वये पक्का पादशेषेऽवतारिते ॥ २३ ॥
तिलतैलस्य च प्रस्थं पयो दत्त्वा चतुर्गुणम् ।
जीवनीयानि यान्यष्टौ मञ्जिष्ठा चव्यकट्फलम्॥२४॥

व्योषं रास्ना कणामूलं मधुकं पुष्करं तथा ।
माषात्मगुप्ता सैरण्डा शताह्वा लवणत्रयम् ॥ २५ ॥
कृष्णाश्वगन्धा ह्यमृता यमानीन्द्रवरी शठी ।
नागरं मागधी मुस्तं वर्षाभू रजनीद्वयम् ॥ २६ ॥
शतावरी बृहत्यौ च एतैरक्षसमन्वितैः ।
पक्षाघातेषु सर्वेषु अर्दिते च हनुग्रहे ॥ २७ ॥
मन्दश्रुतौ चाश्रवणे तिमिरे च त्रिदोषजे ।
हस्तकम्पे शिरःकम्पे गात्रकम्पे शिरोग्रहे ॥ २८ ॥
शस्तं कलायखञ्जे च गृध्रस्यामपबाहुके ।
बाधिर्ये कर्णनादे च सर्ववातविकारनुत् ॥ २९ ॥
दण्डापतानके चैव मन्यास्तम्भे विशेषतः ।
हनुस्तम्भे प्रशस्तं स्यात्सूतिकातङ्कनाशनम् ॥३३०॥
त्वच्यं मांसप्रदश्चैव शुक्राग्निबलवर्द्धनम् ।
अण्डवृद्ध्यन्त्रवृद्धिं वा वातरक्तञ्च नाशयेत् ॥ ३१ ॥

उडद ४ सेर, दशमूल ५० पल, खिरैंटीकी जड २५ पल, केतकीकी जड २५ पल, मुर्गेका मांस ३० पल और पियाबांसेकी जड २५ पल इन सबको दो द्रोण जलमें पकाकर चौथाई भाग जल शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । फिर उस काथमें तिलका तैल १ प्रस्थ, गौका दूध ४ प्रस्थ एवं जीवनीयगणकी आठों ओषधियाँ, मँजीठ, चव्य, कायफल, त्रिकुटा, रायसन, पीपलामूल, मुलैठी, पोहकरमूल, उडद, कौंछके बीज, अण्डकी जड, सोया, बिडनमक, सैंधानमक, कालानमक, काली असगन्ध, गिलोय, अजवायन, इन्द्रजौ, कचूर, सोंठ, पीपल, नागरमोथा, पुनर्नवा, हल्दी, दारुहल्दी, शतावर, बडी कटेरी और कटेरी इन प्रत्येक दो दो तोले कल्कको मिलाकर उत्तम प्रकारसे तैलको सिद्ध करे । इस तैलको पक्षाघात, अर्दित, हनुग्रह, श्रवणशक्तिका नाश, त्रिदोषजन्य नेत्ररोग, हस्तकम्प, शिरःकम्प, देहकम्प, शिरःपीडा, कलायखञ्ज, गृध्रसी, अपबाहुक, बहरापन, कर्णनाद, दण्डापतानक, विशेषकर मन्यास्तम्भ और हनुस्तम्भ इन सब रोगोंमें सेवन करना । यह तैल सर्वप्रकारके वातरोग, प्रसूतसम्बन्धी सब रोग, अण्डवृद्धि, अन्त्रवृद्धि और वातरक्तरोगको नाश करताहै । एवं त्वचाको हितकारी, वीर्य, अग्नि बलकी वृद्धि करता है ॥ २२-३१ ॥

१-माषतैल ।

तैलं संकुचितेऽभ्यङ्गो माषसैन्धवसाधितम् ।
बाहुशीर्षगते नस्यं पानञ्चोत्तरभक्तिकम् ॥
क्वाथोऽत्र माषनिष्पाद्यः सैन्धवं कल्कमेव च ॥ ३२ ॥

उडद और सैन्धेनमकके द्वारा सिद्ध कियेहुए तैलको वायुके द्वारा शरीरमें संकोच होनेपर और बाहुशीर्षगतवातरोगमें मर्दन, नस्य, पान और उत्तर वस्तिद्वारा प्रयोग करनेसे शीघ्र उपकार होता है । इसमें उडदोंका क्वाथ और सेंधानमकका कल्क लेना चाहिये ॥ ३२ ॥

२-माषतैल ।

माषात्मगुप्तातिरसोरुबूकरास्नाशताह्वालवणैः सुपिष्टैः ।
चतुर्गुणे माषबलाकषाये तैलं कृतं हन्ति च पक्षवातम् ॥ ३३

उडद, कौंछके बीज, मूर्वा, अण्डकी जड, रास्ना, सोया और सेंधानमक इन सबके समानभाग मिश्रित कल्कके साथ उडद और खिरैंटीके चौगुने क्वाथमें सिद्ध कियाहुआ तिलका तैल पक्षवातरोगको नष्ट करता है ॥ ३३ ॥

लघु माषतैल ।

माषप्रस्थं समावाप्य पचेत्सम्यग्जलाढके ।
पादशेषे रसे तस्मिन् क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ ३४ ॥
प्रस्थञ्च तिलतैलस्य कल्कं दत्त्वाक्षसम्मितम् ।
जीवनीयानि यान्यष्टौ शतपुष्पां ससैन्धवाम् ॥ ३५ ॥
रास्नात्मगुप्ता मधुकं बला व्योषं त्रिकण्टकम् ।
पक्षाघातेऽर्दिते वाते कर्णशूले च दारुणे ॥ ३६ ॥
मन्दश्रुतौ चाश्रवणे तिमिरे च त्रिदोषजे ।
हस्तकम्पे शिरःकम्पे विश्वच्यामपबाहुके ॥ ३७ ॥
शस्तं कलायखञ्जे च पानाभ्यञ्जनवस्तिभिः ।
माषतैलमिदं श्रेष्ठमूर्द्धजत्रुगदापहम् ॥ ३८ ॥

उत्तम उडदोंको १ प्रस्थ लेकर एक आढक जलमें पकावे । जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस क्वाथमें दूध ४ प्रस्थ, तिलका तैल १ प्रस्थ एवं जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, सोया, सैंधानमक, रास्ना, कौंछके बीज, मुलैठी, खिरैंटी,

त्रिकुटा और गोखुरू इन सब ओषधियोंके कल्कको दो दो तोले डालकर विधि-पूर्वक उत्तम प्रकारसे तैलको सिद्ध करे। इस तैलको पान, अभ्यञ्जन (मालिश) और वस्तिक्रियाद्वारा पक्षाघात, अर्दितवात, दारुण कानकी पीडा, श्रवणशक्तिका ह्रास, बहरापन, त्रिदोषजन्य नेत्ररोग, हस्तकम्प, शिरःकम्प, विश्वची, अपबाहुक और कलायखञ्ज इन सब वातरोगोंमें प्रयोग करना चाहिये। यह माषतैल ऊर्ध्वजत्रुरोगको दूर करनेके लिये अत्युत्तमहै ॥ ३४–३८ ॥

बृहन्माषतैल।

माषातसीयवकुरुण्टककण्टकारीगोकण्टटुण्टुकजटा-कपिकच्छुतोयैः। कार्पासकास्थिशणबीजकुलत्थकोलक्काथेन बस्तपिशितस्य रसेन चापि ॥ ३९ ॥ शुण्ठ्या समागधिकया शतपुष्पया च सैरण्डमूलसपुनर्नवया सरण्या। रास्ना बलामृतलताकटुकैर्विपक्कं माषाख्य-मेतदपबाहुहरश्च तैलम् ॥ ४० ॥ अर्द्धाङ्गशोषमपतानकमाढ्यवातमाक्षेपकं सभुजकम्पशिरःप्रकम्पम्। नस्येन वस्तिविधिना परिषेचनेन हन्यात्कटीजघन-जानुरुजश्च सर्वाः ॥ ४१ ॥

उडद, अलसी, जौ, पियाबाँसेकी जड, कटेरी, गोखुरू, शोनापाठेकी जडकी छाल, बालछड, कौंछके बीज, कपासके बीज (बिनौले), सनके बीज, कुलथी और सूखे बेर इन प्रत्येकके क्वाथ और बकरेके मांसरसके साथ सोंठ, पीपल, सोया, अण्डकी जड, पुनर्नवा, प्रसारिणी, रास्ना, खिरैंटी, गिलोय और कुटकी इन ओषधियोंके समानभाग मिश्रित कल्कके साथ तिलके तैलको यथाविधि पकावे। यह बृहन्माषनामक तैल नस्य, बस्तिक्रिया और मालिश द्वारा प्रयोग करनेसे अपबाहुकवात, अर्द्धाङ्गशोष, अपतानक, आढयवात, आक्षेपक वातरोग, बाहुकम्प, शिरःकम्प एवं कमर, जंघा और जानुगत सर्व-प्रकारके रोगोंको निवारण करताहै ॥ ३३९–३४१ ॥

सप्तप्रस्थमहामाषतैल।

माषक्काथे बलाक्काथे रास्नाया दशमूलजे।
यवकोलकुलत्थानां छागमांसरसे पृथक् ॥ ४२ ॥
प्रस्थे तैलस्य च प्रस्थं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम्।
रास्नात्मगुप्तासिन्धूत्थशताह्वैरण्डमुस्तकैः ॥ ४३ ॥

जीवनीयबलाव्योषैः पचेदक्षसमैर्भिषक् ।
हस्तकम्पे शिरःकम्पे बाधिर्ये चापबाहुके ॥ ४४ ॥
बाहुशोषे कर्णशूले कर्णनादे च दारुणे ।
विश्वच्यामर्दिते कौब्जे गृध्रस्यामपतानके ॥ ४५ ॥
वस्त्यभ्यञ्जनपानेषु नावने च प्रयोजयेत् ।
माषतैलमिदं श्रेष्ठमूर्द्धजत्रुगदापहम् ॥
क्वाथप्रस्थाः षडेवात्र विभक्त्यन्तेन दर्शिताः ॥ ४६ ॥

उडदोंका काथ, खिरैंटीका काथ, रास्नाका काथ, दशमूलका काथ एवं जौ, बेर, कुलथी इन तीनोंका मिश्रित काथ और बकरेका मांसरस ये प्रत्येक एक प्रस्थ लकर एकत्र मिलालेवे । फिर उसमें तिलका तेल एक प्रस्थ, दूध ४ प्रस्थ एवं रास्ना, कौंछके बीज, सैन्धानमक, सोया, अण्डकी जड, नागरमोथा, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगवन, मषवन, जीवन्ती, मुलैठी, खिरैंटी, सोंठ, मिरच और पीपल इन प्रत्येकके कल्कको दो दो तोले डालकर उत्तमप्रकारसे तैलको पकावे । इस तैलको हस्तकम्प, शिरःकम्प, बाधिरता, अपबाहुक, बाहुशोष, कर्णशूल, दारुण कर्णनाद, विश्वची, आर्दित, कुबडापन, गृध्रसी, अपतानक आदि वातरोगोंमें वस्तिक्रिया, मर्दन, पान और नस्यकर्म द्वारा प्रयोग करनेसे शीघ्रलाभ होताहै । यह तेल ऊर्ध्वजत्रुरोगको नाश करनेके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ औषधहै । इसमें छः काथ एकएक प्रस्थ लेना । यह बात काथद्रव्यवाचकशब्दोंके अन्तमें स्थित विभक्तियों द्वारा मालूम होती है ॥

महामाषतैल ।

माषस्यार्द्धाढकं दत्त्वा तुलार्द्धं दशमूलतः ।
पलानि छागमांसस्य त्रिंशद्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥४७॥
पूतशीते कषाये च चतुर्थांशावशेषिते ।
प्रस्थश्च तिलतैलश्च पयो दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ ४८ ॥
आत्मगुप्ता रुबूकश्च शताह्वा लवणत्रयम् ।
जीवनीयानि मञ्जिष्ठा चव्यचित्रककट्फलम् ॥ ४९ ॥
सव्योषं पिप्पलीमूलं रास्ना मधुकसैन्धवम् ।
देवदार्वमृता कुष्ठं वाजिगन्धा वचा शठी ॥ ३५० ॥

एतैरक्षसमैर्भागैः साधयेन्मृदुनाग्निना।
पक्षाघातेऽर्दिते वाते बाधिर्य्ये हनुसंग्रहे ॥ ५१ ॥
कर्णमन्याशिरःशूले तिमिरे च त्रिदोषजे।
पाणिपादाशिरोग्रीवाभ्रमणे मन्दसंक्रमे ॥ ५२ ॥
कलायखञ्जे पाङ्गुल्ये गृध्रस्यामपबाहुके।
पाने वस्तौ तथाऽभ्यङ्गे नस्ये कर्णाक्षिपूरणे ॥
तैलमेतत्प्रशंसन्ति सर्ववातरुजापहम् ॥ ५३ ॥

कपडेकी पोटलीमें बंधेहुए उडद अर्द्धआढक, दशमूल ५० पल और पोटलीमें बँधाहुआ बकरेका मांस ३० पल लेकर इन सबको १ द्रोण जलमें पकावे। पकते पकते जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर शीतल होनेपर वस्त्रमें छानलेवे। फिर इस काथमें तिलका तैल १ प्रस्थ, दूध ४ प्रस्थ एवं कौंछ, अण्डकी जड, सोया, सैंधानमक, विरियासञ्चरनमक, कालानमक, जीवनीयगणकी दशों ओषधियाँ, मंजीठ, चव्य, चीतेकी जड, कायफल, त्रिकुटा, पीपलासूल, रास्ना, मुलैठी, सैंधानमक, देवदारु, गिलोय, कूठ, असगन्ध, बच और कचूर इन सब ओषधियोंके दो दो तोले कल्कको डालकर मन्दमन्द अग्निद्वारा तैलको पकावे। यह तैल पक्षाघात, अर्दितवात, बधिरता, हनुग्रह, कर्णशूल, मन्यास्तम्भ, शिरःशूल, त्रिदोषज तिमिररोग, हाथ, पाँव, शिर और गर्दनका हिलना, शनैःशनैः चलना, कलायखञ्ज, पंगुता, गृध्रसीवात और अपबाहुक आदि वातरोगोंमें अत्यन्त प्रशंसनीय औषधहै। इस तेलको पान, वस्तिकर्म, मर्द्दन, नस्य आदि कार्योंमें एवं कानों और आँखोंमें भरना आदि क्रियाओं द्वारा व्यवहार करे। यह सर्वप्रकारके वातरोगोंको नष्ट करनेवालाहै ॥ ३४७-३५३ ॥

निरामिषमहामाषतैल।

दशमूलाढकं पक्त्वा जलद्रोणेऽङ्घ्रिशोषिते।
तद्वन्माषाढकक्काथे तैलप्रस्थं पयः समे ॥ ५४ ॥
कल्कैरेतैश्च मतिमान् साधयेन्मृदुनाग्निना।
अश्वगन्धा शठी दारु बला रास्ना प्रसारिणी ॥५५॥
कुष्ठं परूषकं भार्गी द्वे विदार्यौ पुनर्नवा।
मातुलुङ्गफलाजाज्यौ रामठं शतपुष्पिका ॥ ५६ ॥

शतावरी गोक्षुरकं पिप्पलीमूलचित्रकौ ।
जीवनीयगणं सर्वं संहृत्यैव ससैन्धवम् ॥ ५७ ॥
तत्साधु सिद्धं विज्ञाय माषतैलमिदं महत् ।
वस्त्यभ्यञ्जनपाने च नावने च प्रशस्यते ॥ ५८ ॥
पक्षाघाते हनुस्तम्भे अर्दिते सापतन्त्रके ।
अपबाहुकविश्वच्योः खाञ्ज्यपाङ्गुल्ययोरपि ॥ ५९ ॥
शिरोमन्याग्रहे चैव अधिमन्थे च वातिके ।
शुक्रक्षये कर्णनादे कर्णक्ष्वेडे च दारुणे ।
कलायखञ्जशमने भैषज्यमिदमादिशेत् ॥ ३६० ॥

एक आढक परिमाण दशमूलको एक द्रोण जलमें पकाकर चौथाई भाग जल शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । इसी प्रकार एक आढक उडदोंका काथ सिद्धकर दोनोंको एकत्र मिलालेवे । फिर उसमें तिलका तैल १ प्रस्थ,दूध ४-प्रस्थ एवं असगन्ध, कचूर, देवदारु, खिरैंटी, रायसन, प्रसारिणी, कूठ, फालसे, भारंगी, विदारीकन्द, क्षीरविदारी, पुनर्नवा, बिजौरानींबू, जीरा, कालाजीरा, हींग, सोया, शतावर, गोखुरु, पीपलामूल, चीतेकी जड, जीवनीयगणकी सब ओषधियाँ और सैंधानमक इन सबके समान भाग मिलित कल्कको तेलसे चौथाईभाग डालकर यथाविधि तेलको पकावे । जब उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब इस महामाषतैलको वस्तिक्रिया, अभ्यञ्जन (मालिश करना) पान करना और नस्य देना इन क्रियाओंद्वारा प्रयोग करना चाहिये । यह औषध पक्षाघात, हनुस्तम्भ, अर्दित, अपतन्त्रक, अपबाहुक, विश्वची, खञ्ज-वात, पंगुता, शिरःपीडा, मन्यास्तम्भ, वातज नेत्ररोग- शुक्रक्षय, कर्णनाद, दारुण कर्णक्ष्वेड और कलायखञ्ज इन सब रोगोंको शमन करनेके लिये अत्यन्त उपयोगी है ॥ ५४-३६० ॥

माषबलादितैल ।

माषक्काथे बलाक्काथे रास्नाया दशमूलजे ।
प्रसारण्याः शताह्वायाः प्रस्थं दद्याद्भिषग्वरः ॥ ६१ ॥
एतत्क्वाथस्तैलसमो दधि क्षीरं समं समम् ।
लाक्षारसं काञ्जिकञ्च तिलतैलं प्रदापयेत् ॥ ६२ ॥
शतावरीविदार्योश्च रसं तैलार्द्धमेव च ।
शताह्वा मधुरी मेथी रास्ना वारणपिप्पली ॥ ६३ ॥

मुस्तकश्चाश्वगन्धा च उशीरं मधुयष्टिका ।
शालपर्णी पृश्निपर्णी बला च बहुपुत्रिका ॥ ६४ ॥
पलद्वयं गृहीत्वा च तैलपात्रे प्रदापयेत् ।
वातरोगं निहन्त्याशु मन्यास्तम्भं नियच्छति ॥ ६५॥
हनुस्तम्भविकारश्च जिह्वादन्तगलग्रहान् ।
प्रमेहान्विंशतिं हन्ति गात्रकम्पादिकं जयेत् ॥
एतान्हरति रोगांश्च तैलं माषबलादिकम् ॥ ६६ ॥

उडदोंका काथ, खिरैंटीका काथ, रास्नाका काथ, दशमूलका काथ, गन्धप्रसारणीका काथ, सोयेका काथ, तिलका तेल, दही, दूध, लाखका रस और काँजी इन सबको एक एक प्रस्थ, शतावर और बिदारीकन्दका काथ आधा आधा प्रस्थ (३२-३२ तोले) लेकर एकत्र मिलाकर मन्द-मन्द अग्निद्वारा उत्तम प्रकारसे पकावे । पकते समय उसमें सोया, सौंफ, मेथी, रास्ना, गजपीपल, नागरमोथा, असगन्ध, खस, मुलैठी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, खिरैंटी और शतावर इन ओषधियोंके कल्कको आठ आठ तोले लेकर डालदेवे। जब तैल अच्छे प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर वस्त्रमें छानलेवे। यह माषबलादि तैल सम्पूर्ण वातरोग, मन्यानाडीका जकड-जाना, हनुस्तम्भरोग, जीभ, दाँत और गलेकी पीडा, वीसों प्रकारके प्रमेह और शरीरका काँपना इन सब रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ६१-३६६ ॥

कुब्जप्रसारणीतैल ।

प्रसारणीशतं क्षुण्णं पचेत्तोयार्मणे शुभे ।
पादशेषे समं तैलं दधि दद्यात्सकाञ्जिकम् ॥ ६७ ॥
द्विगुणञ्च पयो दत्त्वा कल्कान्द्विपलिकांस्तथा ।
चित्रकं पिप्पलीमूलं मधुकं सैन्धवं बलाम् ॥ ६८ ॥
शतपुष्पां देवदारु रास्नां वारणपिप्पलीम् ।
प्रसारण्याश्च मूलानि मांसीभल्लातकानि च ॥ ६९ ॥
पचेन्मृद्वग्निना तैलं वातश्लेष्मामयाञ्जयेत् ।
अशीतिं नरनारीस्थान्वातरोगान्व्यपोहति ॥३७०॥
कुब्जास्तिमितपङ्गुत्वं गृध्रसीखुडकार्दितम् ।
हनुपृष्ठशिरोग्रीवास्तम्भश्चाशु नियच्छति ॥ ७१ ॥

सौ पल प्रसारणीको कूटकर एक द्रोण (३२ सेर) जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग (८ सेर) जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस काथमें तिलका तैल, दही और काँजी ये प्रत्येक आठ आठ सेर, दूध सोलह सेर एवं चीता, पीपलामूल, मुलैठी, सैंधानमक, खिरेंटी, सोया, देवदारु, रास्ना, गजपीपल, प्रसारणीकी जड, वालछड और भिलावे इन सबके कल्कको दो दो पल डालकर मन्दमन्द अग्निसे तैलको सिद्ध करे। यह तैल वात और कफजन्य सब रोगोंको दूरकरता है। एवं स्त्री पुरुषोंके अस्सी प्रकारके वातरोगोंको नष्ट करता है। इससे कुब्जता, जडता, पंगुता, गृध्रसी, खुडक, अर्दितवात, हनुस्तम्भ, पृष्ठशूल, शिरःपीडा और ग्रीवास्तंभ ये सब रोग शीघ्र नाश होते हैं॥ ६७–३७१॥

त्रिशतीप्रसारणीतैल।

समूलपत्रशाखाश्च जातसारां प्रसारणीम्।
कुट्टयित्वा पलशतं दशमूलशतं तथा॥ ६२॥
अश्वगन्धापलशतं कटाहे समधिक्षिपेत्।
वारिद्रोणे पृथक् कृत्वा पादशेषेऽवतारितम्॥७३॥
कषायसममात्रन्तु तैलमत्र प्रदापयेत्।
दध्नस्तथाढकं दत्त्वा द्विगुणश्चाम्लकाञ्जिकात्॥ ७४॥
चतुर्द्रोणेन पयसा जीवनीयैः पलोन्मितैः।
शृङ्गवेरपलात्पञ्च त्रिंशद्भल्लातकानि च॥ ७५॥
द्वे पले पिप्पलीमूलाच्चित्रकाच्च पलंद्वयम्।
यवक्षारपले द्वे च सैन्धवस्य पलद्वयम्॥ ७६॥
सौवर्चलपले द्वे च मञ्जिष्ठायाः पलद्वयम्।
प्रसारणीपले द्वे च मधुकस्य पलद्वयम्॥ ७७॥
सर्वाण्येतानि संहृत्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत्।
एतदभ्यञ्जने श्रेष्ठं वस्तिकर्मनिरूहणे॥ ७८॥
पाने नस्ये च दातव्यं न क्वचित्प्रतिहन्यते।
अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान्॥ ७९॥
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव सर्वानेतान् व्यपोहति।
गृध्रसीमस्थिभङ्गञ्च मन्दाग्नित्वमरोचकम्॥ ३८०॥

अपस्मारं तथोन्मादं विभ्रमं मन्दगामिताम्।
त्वग्गताश्चापि ये वाताः शिरःसन्धिगताश्च ये ॥ ८१ ॥
जानुसन्धिगताश्चैव पादपृष्ठगताश्च ये।
अश्वो वा वातसंभग्नो गजो वा यदि वा नरः ॥ ८२ ॥
प्रसारयति यस्मात्तु तस्मादेषा प्रसारणी।
इन्द्रियाणाञ्च जननी वृद्धानाञ्च प्रसूयनी ॥ ८३ ॥
एतेनान्धकवृष्णीनां कृतं पुंसवनं महत्।
प्रसारणीतैलमिदं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ८४ ॥
अपनयति जरां पलितं शोषयति।
रुजामुत्पादयति तारुण्यम् ॥
पक्षाघातं सर्वाङ्गहतं वातगुल्मञ्च नाशयेत्।
एतदुपयुज्यमानः प्रसन्नवर्णेन्द्रियो भवति ॥ ८५ ॥

मूल, पत्ते और शाखासहित प्रसारणी १०० पल, दशमूल १०० पल और असगन्ध १०० पल इन तीनोंको अलग २ कूटकर जब उसमें सारभाग उत्पन्न होजाय तब एक एक द्रोणजलमें डालकर कढाईमें पकावे। जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर सबको एकत्र मिलाकर उसमें तिलका तेल ८ सेर, दहीका तोड ८ आढक, काँजी २ आढक, पाकके लिये जल ४ द्रोण, कल्कके लिये जीवनीयगणकी प्रत्येक औषधि एकएक पल, अदरख ५ पल, भिलावे ३० पल, पीपलामूल २ पल, चीता २ पल, जवाखार दो पल, सैंधानमक २ पल, कालानमक २ पल, मंजीठ २ पल, गन्धप्रसारिणी दो पल और मुलैठी २ पल इन सब ओषधियोंको कूट पीसकर डालदेवे। फिर मन्दमन्द अग्निद्वारा धीरे धीरे तेलको पकावे। जब उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर छानलेवे। इस तैलको मालिश करना, वस्तिकर्म, निरूहवास्ति, पान करना, नस्य देना आदिकर्मोंमें प्रयोग करना। इसपर किसीप्रकारका परहेज नहीं करना चाहिये। यह तैल अस्सीप्रकारके वातरोग, चालीसप्रकारके पित्तरोग, बीस प्रकारके कफके रोग एवं गृध्रसी-वात, हड्डीका टूटजाना,मन्दाग्नि, अरुचि, अपस्मार, उन्माद, भ्रम, मन्दमन्द चलना, त्वचा, शिर, सान्धि, जानुसन्धि, पाँव और पृष्ठ इन स्थानोंमें स्थित वातकी पीडा इन सबको नष्ट करताहै। वातसे पीडित घोडे या हाथी अथवा

मनुष्यको आनन्द करताहै, इस कारण इसको प्रसारणी तैल कहतेहैं । यह प्रसारणीतैल इन्द्रियशक्तिको उत्पन्न करनेवाला, वृद्धमनुष्योंको प्रसन्न करनेवाला, अन्धोंको दृष्टिशक्ति, नपुंसकोंको पुरुषत्व देनेवाला एवं बल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि करताहै । वृद्धताको और पलितरोगको दूर करताहै । रोगोंको नष्टकर तरुणताको उत्पन्न करताहै । एवं पक्षाघात, सर्वाङ्गगतवात और वात-गुल्मरोगका नाश करताहै । इस तेलको सेवन करनेसे मनुष्य निर्मलवर्ण और प्रसन्न इन्द्रियोंवाला होताहै ॥ ८५ ॥

सप्तशतिकप्रसारणीतैल ।

समूलपत्रमुत्पाट्य शरत्काले प्रसारणीम् ।
शतं ग्राह्यं सहचराच्छतावर्याः शतं तथा ॥ ८६ ॥
बलात्मगुप्ताश्वगन्धाकेतकीनां शतं शतम् ।
पचेच्चतुर्गुणे तोये द्रवैस्तैलाढकं पृथक् ॥ ८७ ॥
मस्तु मांसरसं चुक्रं पयश्चाढकमाढकम् ।
दध्याढकसमायुक्तं पाचयेन्मृदुनाग्निना ॥ ८८ ॥
द्रव्याणां तु प्रदातव्या मात्रा चार्द्धपलांशिका ।
तगरं मदनं कुष्ठं केशरं मुस्तकं त्वचम् ॥ ८९ ॥
रास्ना सैन्धवपिप्पल्यौ मांसीमञ्जिष्ठयष्टिकाः ।
तथा मेदा महामेदा जीवकर्षभकौ पुनः ॥ ३९० ॥
शतपुष्पा व्याघ्रनखं शुण्ठी देवाह्वमेव च ।
काकोली क्षीरकाकोली वचा भल्लातकं तथा ॥ ९१ ॥
पेषयित्वा समानेतान्साधनीया प्रसारणी ।
नातिपक्वं न हीनञ्च सिद्धं पूतं निधापयेत् ॥ ९२ ॥
यत्र यत्र प्रदातव्या तन्मे निगदतः शृणु ।
कुब्जानामथ पंगूनां वामनानां तथैव च ॥ ९३ ॥
यस्य शुष्यति चैकाङ्गं ये च भग्नास्थिसन्धयः ।
वातशोणितदुष्टानां वातोपहतचेतसाम् ॥ ९४ ॥
स्त्रीमद्यक्षीणशुक्राणां वाजीकरणमुत्तमम् ।
वस्तौ पाने तथाभ्यङ्गे नस्ये चैव प्रयोजयेत् ॥
प्रयुक्तं शमयत्याशु वातजान्विविधान्गदान् ॥ ९५ ॥

शरदृतुमें मूल और पत्तोंसहित प्रसारणीको उखाड कर १०० पल लेवे, पियाबाँसा १०० पल, शतावर १०० पल, खिरैंटी १०० पल, कौंछकी जड १०० पल, असगन्ध १०० पल और केतकी १०० पल इन सबोंको अलग २ कूटकर चार २ सौ पल जलमें पकावे। जब चौथाई भाग जल शेष रहे तब उतारकर छानलेवे। फिर उस काथमें दहीका तोड, बकरेके मांसका रस, चूका, दूध, दही और तिलका तैल ये प्रत्येक एक एक आढक (२५६ तोले)। एवं तगर, मैनफल, कूठ, केशर, नागरमोथा, दारचीनी, रास्ना, सैंधानमक, पीपल, बालछड, मंजीठ, मुलैठी, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, सोया, नख, सोंठ, देवदारु, काकोली, क्षीरकाकोली, वच और भिलावे इन प्रत्येक द्रव्योंको दो दो तोले परिमाण पीसकर डालदेवे। फिर सबको यथाविधि एकत्र कर मन्दमन्द अग्निद्वारा तेलको पकावे। इस तेलको न तो बहुत पकावे और न कच्चा रक्खे। जब उत्तमप्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर छान लेवे और शुद्धपात्रमें भरकर रखदेवे। जिस २ रोगमें इस तैलको देना चाहिये, उसको कहतेहैं सुनो—कुबडे, लँगडे और बौने मनुष्य एवं जिसका एक अङ्ग सूख गयाहो, जिनकी हड्डियें और सन्धियें टूटगई हों, वातरक्तसे पीडित, दूषितवातसे नष्ट होगया है चित्त जिनका ऐसे, अधिक स्त्रीप्रसङ्ग, अत्यन्तमद्यपान करनेवाले और क्षीणवीर्यवाले मनुष्योंके लिये यह तेल अत्युत्तमवाजीकरण औषध है। इसको पान, वस्तिकर्म, मालिश और नस्यकर्ममें प्रयोग करना चाहिये। विधिपूर्वक सेवन करनेसे यह तैल नानाप्रकारके वातजनित-रोगोंको बहुत जल्द नष्ट करता है॥ ८६–९५॥

एकादशशतिकप्रसारणीतैल।

शाखामूलदलैः प्रसारणितुलास्तिस्रः कुरुण्टातुले
छिन्नायाश्च तुले तुले रुबुकतो रास्नाशिरीषात्तुलाम्।
देवाह्वाच्च सकेतकाद्घटशते निःक्वाथ्य कुम्भांशिके
तोये तैलघटं तुषाम्बुकलसौ दत्त्वाढकं मस्तुनः॥ ९६॥
शुक्ताच्छागरसादथेक्षुरसतः क्षीराच्च दत्त्वाढकं
पृक्काकर्कटजीवकाद्यविकसाकाकोलिकाकच्छुराः।
सूक्ष्मैलाघनसारकुन्दुसरलाकाश्मीरमांसीनखैः
कालीयोत्पलपद्मकाह्वयनिशाकक्कोलकग्रन्थिकैः॥ ९७॥
चाम्पेयाभयचोचपूगकटुकाजातीफलाभीरुभिः
श्रीवासामरदारुचन्दनवचाशैलेयसिन्धूद्भवैः।

तैलाम्भोदकटम्भरांघ्रिनालिकावृश्चीरकच्चोरकैः
कस्तूरीदशमूलकेतकनतध्यामाश्वगन्धाम्बुभिः ॥ ९८ ॥
कौन्तीतार्क्ष्यजशल्लकीफललघुश्यामाशताह्वाभयै
र्भल्लातत्रिफलाब्जकेशरमहाश्यामालवङ्गान्वितैः ।
सव्योषैस्त्रिपलैर्महार्यसि पचेन्मन्देन पात्रेऽग्निना
पानाभ्यञ्जनवस्तिनस्यविधिना तन्मारुतं नाशयेत् ९९॥
सर्वार्द्धाङ्गगतं तथावयवगं सन्ध्यस्थिमज्जाश्रितं
श्लेष्मोत्थानकपैत्तिकांश्च शमयेन्नानाविधानामयान् ।
धातून् बृंहयति स्थिरञ्च कुरुते पुंसां नवं यौवनं
वृद्धस्यापि बलं करोति सुमहद्वन्ध्यासु गर्भप्रदम्॥४००॥
पीत्वा तैलमिदं जरत्यपि सुतं सूतेऽमुना भूरुहाः
सिक्ताःशोषमुपागताश्च फलिनःस्निग्धा भवन्ति स्थिराः।
भग्नाङ्गाः सुदृढा भवंति मनुजा गावो हयाः कुञ्जरा[1]ः॥१॥

काथके लिये शाखा, मूल और पत्तोंसहित गन्धप्रसारणी ३०० पल, नीली-कटसरैया २०० पल, गिलोय २०० पल, अण्डकी जड २०० पल, रास्ना और शिरसकी छाल सौ सौ पल, देवदारु १०० पल और केवडेकी जड१०० पल इन सबको कूटकर सौ द्रोण अर्थात् ३२०० सेर जलमें डालकर पकावे। जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस काथमें तिलका तेल १ द्रोण, काँजी २ द्रोण, दहीका तोड १ आढक, शुक्त (एक प्रकारकी काँजी), बकरेके मांसका रस, ईखका रस और गौका दूध ये प्रत्येक एक एक आढक (आठ२ सेर) परिमाण डालदेवे। एवं कल्कके लिये असबरग, काकडासिङ्गी, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मुगवन, मषवन, जीवन्ती, मुलैठी, मंजीठ, काकोली, कौंछकी जड, छोटी इलायची, कपूर, कुन्दरू, धूपसरल, केशर, बालछड, नख, कालीअगर, कुमुद, पद्माख, हल्दी, शीतलचीनी, गठिवन, नागकेशर, खस, दारचीनी, सुपारी, (किसी २ के मतसे सुपारीके वृक्षकी छाल लेनी), कुटकी, जायफल, शतावर, गन्धाविरोजा, देवदारु, लालचन्दन, वच, भूरिछरीला, सैंधानमक, शिलारस, नागरमोथा, प्रसारणीकी जड, नलिका, पुनर्नवा, चोरक, कस्तूरी, दशमुल, केतकीकी जड, तगर, सुगन्धित

१ अत्र ग्रन्थपातो दृश्यते ॥

तृण, असगन्ध, सुगन्धवाला, रेणुका, रसौत, सेमलकी जड, मैनफल, अगर, श्यामालता, सोया, कूठ, भिलावे, त्रिफला, कमलकी केशर, कालीसर, लौङ्ग और त्रिकुटा इन सबको तीन २ पल लेकर कल्ककरके डालदेवे। फिर सबको एक बहुत बडे पात्रमें भरकर मन्दमन्द अग्निद्वारा तेलको पकावे। इस तेलको पान और मालिश कराना, वस्तिक्रिया, (पिचकारी लगाना), नस्यदेना आदि क्रियाओं द्वारा सेवन करानेसे वातरोग नाश होताहै। यह तैल सम्पूर्ण अङ्ग, अर्द्धाङ्ग व एकाङ्गमें स्थित वातकी पीडा एवं सन्धि, अस्थि और मज्जागत वातव्याधि, कफजन्य और पित्तजन्य नानाप्रकारके रोगोंको शमन करता है। एवं धातुओंको पुष्ट, स्थिर और मनुष्योंके नवयौवनको स्थिर करता है। वृद्ध मनुष्यको भी अत्यन्त बलवान् करनेवाला और वन्ध्यास्त्रियोंको गर्भप्रदान करनेवालाहै। इस तेलके पान करनेसे बुढापेमेंभी स्त्री पुत्रको उत्पन्न करतीहै। सूखे हुए वृक्षोंको इस तेलके द्वारा सींचनेसे वे फिर हरे भरे, फल फूल युक्त स्निग्ध और मजबूत होजाते हैं। टूटगये हैं अंग जिनके ऐसे मनुष्य, गौयें, घोडे और हाथी इस तेलके सेवनसे अत्यन्त दृढ अंगवाले होतेहैं॥९६-४०१॥

अष्टादशशतिकप्रसारणीतैल।

समूलदलशाखायाः प्रसारण्याः शतत्रयम्।
शतमेकं शतावर्या अश्वगन्धाशतं तथा॥ २॥
केतकीनां शतञ्चैकं दशमूलाच्छतं शतम्।
शतं वाट्यालकस्यापि शतं सहचरस्य च॥ ३॥
जलद्रोणशतं दत्त्वा शतभागावशेषितम्।
ततस्तेन कषायेण कषायद्विगुणेन च॥ ४॥
सुव्यक्तेनारनालेन दधिमस्त्वाढकेन च।
क्षीरशुक्तेक्षुनिर्यासच्छागमांसरसाढकैः॥ ५॥
तैलद्रोणसमायुक्तं दृढे पात्रे निधापयेत्।
द्रव्याणि यानि पेष्याणि तानि वक्ष्याम्यतः परम्॥६॥
भल्लातकं नतं शुण्ठी पिप्पली चित्रकं शठी।
वचा पृक्का प्रसारण्याः पिप्पल्या मूलमेव च॥ ७॥
देवदारुशताह्वा च सूक्ष्मैलात्वचबालकम्।
कुंकुमं मदमञ्जिष्ठा तुरुष्कं नखिकागुरु॥ ८॥

कर्पूरकुन्दुरुनिशालवङ्गश्यामचन्दनम् ।
कक्कोलं नलिका मुस्तं कालीयोत्पलपत्रकम् ॥ ९ ॥
शठी हरेणुशैलेयश्रीवासश्च सकेतकम् ।
त्रिफला कच्चूरा भीरु सरलं पद्मकेशरम् ॥ ४१० ॥
प्रियंगूशरिनलदं जीवकाद्यं पुनर्नवा ।
दशमूलयश्वगन्धे च नागपुष्पं रसाञ्जनम् ॥ ११ ॥
कटुकाजातिपूगानां फलानि शल्लकीरसम् ।
भागांस्त्रिपलिकान्दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ १२ ॥
विस्तीर्णे सुदृढे पात्रे पाच्यैषा तु प्रसारणी ।
प्रयोगं षड्विधश्चात्र रोगार्त्तानां विधीयते ॥ १३ ॥
अभ्यङ्गात्त्वग्गतं हन्ति पानात्कोष्ठगतं तथा ।
भोजनात्सूक्ष्मनाडीस्थान्नस्यादूर्ध्वगतं तथा ॥ १४ ॥
पक्वाशयगते वस्तिर्निरूहः सर्वकायिके ।
एतद्धि वडवाश्वानां किशोराणां यथामृतम् ॥ १५ ॥
एतदेव मनुष्याणां कुञ्जराणां गवामपि ।
अनेनैव च तैलेन शुष्यमाणा महाद्रुमाः॥ १६ ॥
सिक्ताः पुनः प्ररोहन्ति भवन्ति फलशालिनः ।
वृद्धोऽप्यनेन तैलेन पुनश्च तरुणायते ॥ १७ ॥
न प्रसूते च या नारी सापि पीत्वा प्रसूयते ।
अप्रजः पुरुषो यस्तु सोऽपि पीत्वा लभेत्सुतम् ॥१८॥
अशीतिं वातजान्रोगान्पैत्तिकाञ्श्लैष्मिकानपि ।
सन्निपातसमुत्थांश्च नाशयेत्क्षिप्रमेव हि ॥ १९ ॥
एतेनान्धकवृष्णीनां कृतं पुंसवनं महत् ।
कृत्वा विष्णोर्बलिश्चापि तैलमेतत्प्रयोजयेत् ॥ ४२० ॥

मुल, पत्ते और शाखा सहित प्रसारणी ३०० पल, शतावर १०० पल असगन्ध १०० पल, केतकी १०० पल, दशमूलकी प्रत्येक ओषधि १००-१०० पल खिरैंटी १०० पल और पियाबाँसा १०० पल इन सबको एकत्र कूटकर १०० द्रोण

(३२००सेर) जलमें पकावे। जब पकते पकते एक द्रोण (३२ सेर) जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलवे। फिर उस काढेके साथ काढेसे दुगुनी काँजी अर्थात् ६४ सेर, दहीका तोड ८ सेर, दूध ८ सेर, शुक्त नामक काँजी ८ सेर, ईखका रस ८ सेर, बकरेके मांसका रस८सेर और तिलका तैल३२सेर मिलाकर एक सुदृढ पात्रमें भरदेवे। अब कल्ककी ओषधियोंको कहते हैं--भिलावे, तगर, सोंठ, पीपल, चीता, कचूर, वच, असवरग, प्रसारणी, पीपलामूल, देवदारु, सोया, छोटी इलायची, दारचीनी, सुगन्धवाला, केशर, कस्तूरी, मंजीठ, शिलारस, नख, अगर, कपूर, कुन्दुरु, हल्दी, लौंग, सुगन्ध तृण, रक्तचन्दन, शीतल चीनी, नलिका, नागरमोथा, काली अगर, कुमुद, तेजपात, कचूर, रेणुका, भूरिछरीला, गन्धविरोजा, केवडा, त्रिफला, कौंछ, शतावर, धूपसरल, कम-लकी केशर, फूलप्रियंगु, खस, बालछड, जीवकादिगणकी औषधियाँ, पुनर्नवा, दशमूल, असगन्ध, नागकेशर, रसौत, कुटकी, जायफल, सुपारी, सेमलकी मुषली और सालइका गोंद इन प्रत्येकके कल्कको बारह बारह तोले डालकर सबको एक बहुत बडे और दृढ पात्रमें भरकर इस प्रसारणीतैलको मन्दमन्द अग्निद्वारा शनैःशनैः पकाना चाहिये। फिर यह तैल वातपीडितरोगियोंको छः प्रकारसे सेवन करावे। इसको मालिश करनेसे त्वचागत वातरोग, पान कर-नेसे कोष्ठगत वात, भोजन करनेसे सूक्ष्मनाडियोंमें स्थित वात, नस्य देनसे ऊर्ध्व अर्थात् शिरोगत वायु, वस्तिक्रिया (पिचकारी लगाने) से पक्वाशयगत वात और निरूहवास्तिद्वारा प्रयोग करनेसे समस्त शरीरगत वातकी पीडा नाश होती है। यह तैल किशोर अवस्थावाले मनुष्य एवं घोडा, घोडी, हाथी, गाय, बैल आदि पशुओंको भी अमृतकी समान हितकारी है। इस तैलके द्वारा सींच-नेसे बडे बडे सूखे वृक्ष फिरसे हरे भरे और फल फूलयुक्त होजाते हैं। वृद्ध मनु-ष्यभी इस तैलके सेवनसे फिर तरुण होजाताहै। जिस स्त्रीके सन्तान पैदा नहीं होती इस तैलको पान करनेसे उस स्त्रीके भी सन्तान उत्पन्न होती है। जो मनुष्य सन्तान हीन है वह भी इसको पान करके पुत्रको प्राप्त करता है। यह तैल अस्सी प्रकारके वातजरोग, एवं पित्तज और कफज सर्वप्रकारके रोग और सन्निपातसे उत्पन्नहुए सम्पूर्ण रोगोंको तत्काल नष्ट करता है। इस तैलके प्रभा-वसे अन्धक और वृष्णिवंशी यादवोंको अत्यन्त सन्तानोत्पत्ति हुईथी। प्रथम विष्णुभगवान्‌का यथाविधि पूजनकर फिर इस तैलको प्रयोग करना चाहिये। (इस तैलके काथोंको एकत्र एक बडे बर्त्तनमें पकावे। बडे बर्त्तनके अभावमें प्रत्येक ओषधिका अलग अलग काथ पकावे ॥ ४०२-४२० ॥

महाराजप्रसारणीतैल।

शतत्रयं प्रसारण्या द्वे च पीतसहचरात्।
अश्वगन्धैरण्डबला वरी रास्ना पुनर्नवा ॥ २१ ॥
केतकीदशमूलञ्च पृथक् त्वक्पारिभद्रकः।
एषां तुलान्तु प्रत्येकं तुलार्द्धं किलिमात्तथा ॥ २२ ॥
तुलार्द्धं स्याच्छिरीषाच्च लाक्षायाः पञ्चविंशतिः।
पलानि लोध्राच्च तथा सर्वमेकत्र साधयेत् ॥ २३ ॥
जलपञ्चाढकशते सपादे तत्र शेषयेत्।
द्रोणद्वयं काञ्जिकस्य षड्विंशत्याढकोन्मितम् ॥२४॥
क्षीरदध्नोः पृथक् प्रस्थान् दशमस्त्वाढकन्तथा।
इक्षो रसाढकौ चापि छागमांसतुलात्रये ॥ २५ ॥
जलं पञ्चचत्वारिंशत् प्रस्थान् पक्के तु शेषयेत्।
सप्तदश रसप्रस्थान् मञ्जिष्ठाक्काथ एव च ॥ २६ ॥
कुडवोनाढकोन्मानो द्रवैरेभिस्तु साधयेत्।
सुशुद्धं तिलतैलस्य द्रोणं प्रस्थेन संयुतम् ॥ २७ ॥
आद्य एभिर्द्रवैः पाकः कल्को भल्लातकं कणा।
नागरं मरिचञ्चैव प्रत्येकं षट्पलोन्मितम् ॥ २८ ॥
पथ्याक्षधात्र्याः सरलं शताह्वा कर्कटो वचा।
चोरपुष्पी शठी मुस्तद्वयं पद्मञ्च सोत्पलम् ॥ २९ ॥
पिप्पलीमूलमञ्जिष्ठा साश्वगन्धापुनर्नवा।
दशमूलं समुदितं चक्रमर्दो रसाञ्जनम् ॥ ४३० ॥
गन्धतृणं हरिद्रा च जीवनीयो गणस्तथा।
एषां त्रिपलिकैर्भागैराद्यः पाको विधीयते ॥ ३१ ॥
देवपुष्पी बोलपत्रं शल्लकीरसशैलजे।
प्रियंगूशीरमधुरी मांसी दारु बलाचलम् ॥ ३२ ॥
श्रीवासो नलिका खोटिः सूक्ष्मैला कुन्दुरुर्मुरा।
नखीत्रयञ्च त्वक्पत्री परमा पूतिचम्पकम् ॥ ३३ ॥

---

१ भल्लातकासहत्वेतु रक्तचन्दनमिष्यते।

मदनं रेणुका पृक्का मरुवश्च पलत्रयम् ।
प्रत्येकं गन्धतोयेन द्वितीयः पाक इष्यते ॥ ३४ ॥
गन्धोकदन्तु त्वक्पत्री पत्रकोशीरमुस्तकम् ।
प्रत्येकं सबलामूलं पलानि पञ्चविंशतिः ॥ ३५ ॥
कुष्ठार्द्धभागोऽत्र जलप्रस्थास्तु पञ्चविंशतिः ।
अर्द्धावशिष्टाः कर्त्तव्याः पाके गन्धाम्बुकर्मणि ॥३६॥
गन्धाम्बुचन्दनाम्बुभ्यां तृतीयः पाक इष्यते ।
कल्कोऽत्र केशरं कुष्ठं त्वक्कालीयककुंकुमम् ॥ ३७ ॥
भद्रश्रियं ग्रन्थिपर्णं लता कस्तूरिका तथा ।
लवङ्गागुरुकक्कोलजातीकोषफलानि च ॥ ३८ ॥
एला लवङ्गच्छल्ली च प्रत्येकं त्रिपलोन्मितम् ।
कस्तूरी षट्पलं चन्द्रात्पलं सार्द्धञ्च गृह्यते ॥ ३९ ॥
वेधनार्थं पुनश्चन्द्रमदौ देयौ तथोन्मितौ ।
महाप्रसारिणी सेयं राजभोग्या प्रकीर्त्तिता ॥ ४४० ॥
गुणान्प्रसारिणीनान्तु वहत्येषा बलोत्तमान् ।
काञ्जिकं मानतो द्रोणः शुक्तेनात्र विधीयते ॥ ४१ ॥

शुक्तविधि ।

अत्र शुक्तविधिर्मण्डप्रस्थः पञ्चाढकोन्मितम् ।
काञ्जिकं कुडवं दध्नो गुडप्रस्थोऽम्लमूलकात् ॥ ४२ ॥
पलान्यष्टौ शोधितार्द्रात् पलषोडशिकं तथा ।
कणाजीरकासिन्धूत्थं हरिद्रामरिचं पृथक् ॥ ४३ ॥
द्विपलं भाविते भाण्डे घृतेनाष्टदिनं स्थितम् ।
सिद्धं भवति तच्छुक्तं यदावतार्य गृह्यते ॥ ४४ ॥
तदा देयं चतुर्जातं पृथक् कर्षत्रयोन्मितम् ।
पञ्चपल्लवतोयेन गन्धानां क्षालनं तथा ॥ ४५ ॥

गन्धप्रसारिणी २०० पल, पीले फूलकी कटसरैया २०० पल, असगन्ध, अण्डकी जड, खिरैंटी, शतावर, रास्ना, पुनर्नवा, केतकी, दशमूल और फरहदकी छाल ये प्रत्येक सौ सौ पल, देवदारु ५० पल, शिरसकी छाल ५० पल,

लाख २५ पल और लोध २५ पल इन सबको एकत्र कूटकर ५२५ आढक जलमें पकावे। जब पकते पकते दो द्रोण जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर काँजी १ द्रोण, (यद्यपि मूलमें काँजीका परिमाण २६ आढक लिखाहै तथापि वृद्ध वैद्योंके मतसे १ द्रोण ही डालनी चाहिये, क्योंकि अधिक डालनेसे काँजीकी गन्ध आने लगती है) दूध दस प्रस्थ, दही दस प्रस्थ, दहीका तोड एक आढक, ईखका रस २ आढक, बकरेके मांसको ३०० पल लेकर ४५-प्रस्थ जलमें पकावे। जब पककर १७ प्रस्थ जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। मञ्जीठका काथ १५ शराव परिमाण इन सब द्रव्योंके साथ उत्तम तिलका तैल १ द्रोण १ प्रस्थ मिलाकर पकावे। पकते समय उसमें मिलावे (अभावमें लालचन्दन), पीपल, सोंठ और मिरच ये प्रत्येक छः छः पल, हरड, बहेडा, आमला, धूपसरल, सोया, काकडासिंगी, बच, चोरपुष्पी, कचूर, नागरमोथा, मोथा, कमल, नीलकमल, पीपलामूल, मंजीठ, असगन्ध, पुनर्नवा, दशमूल, चकवड, रसौत, सुगन्धतृण, हल्दी, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगवन, मषवन, जीवन्ती और मुलैठी इन सबके तीन तीन पल कल्कको डालकर प्रथम पाक करे। पश्चात् चोरपुष्पी, गन्धबोल, तेजपात, शल्लकी रस (राल), भूरिछरीला, फूलप्रियंगु, खस, सौंफ, बालछड, देवदारु, खिरैंटी, शिलारस, सरलका गोंद, नलिका, पालकका शाक, छोटी इलायची, कुन्दुरु, मुरामांसी, तीनों प्रकारका नखीद्रव्य अर्थात् बेरके पत्तेकी समान, नीलकमलके पत्तेकी समान कान्तिवान् और घोडेके खुरकी समान आकारवाली तेजपात, गन्धपलाशी, खट्टासमुष्क, चम्पाके फूल, मैनफल, रेणुका, असवरग और मरुआ (छोटे पत्तोंकी तुलसी) इन प्रत्येकके बारह बारह तोले कल्क और गन्धोदकके साथ तैलका दूसरा पाक करे॥

गन्धोदक बनानेकी विधि—

तेजपात, सुगन्धितपत्र (तेजपातकी समान पत्रविशेष), खस, नागरमोथा और खिरैंटीकी जड ये प्रत्येक ओषधि पच्चीस पच्चीस पल और कूठ १२॥ पल लेकर सबको एकत्र २५ प्रस्थ जलमें पकावे। जब पकते पकते आधा जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। (गन्धोदकका पाक करनेपर अर्द्धावशेष जल रखना चाहिये।) फिर गन्धोदक और निम्नलिखित चन्दनोदकके साथ तैलका तीसरा पाककरे। इस तीसरे पाकमें कल्कके लिये नागकेशर कूठ, दारचीनी, कलम्बक (पीलाचन्दन), केशर, सफेदचन्दन, गठिवन, लताकस्तूरी,

लौंग, अगर, शीतलचीनी, जावित्री, जायफल, इलायची और लौंगकी छाल ये प्रत्येक तीन तीन पल, कस्तूरी ६ पल और कपूर १॥पल डालना चाहिये ।

चन्दनोदक बनानेकी विधि-

सफेद चन्दनको ५०पल लेकर ५० सेर जलमें पकावे,२५ सेर शेष रहनेपर उतार लेवे । चन्दनको बारीक पीसकर जलमें घोलकर चन्दनोदक बनावे ।

जब तैल उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब वेधनके लिये कपूर और कस्तूरीको पूर्वोक्त परिमाणमें पीसकर उस चूर्ण और थोडेसे तेलको एक बर्त्तनमें मिलालेवे फिर उसको सिद्धहुए सम्पूर्ण तैलके साथ उत्तम प्रकारसे मिलाकर एक सकोरेसे ढककर रखदेवे । यह महाराजप्रसारणीतैल राजाओंके सेवन करनेयोग्य कहागयाहै । यह पूर्वोक्त प्रसारणी तैलोंके जो गुणहैं उनसे भी अधिक गुणोंको करताहै । इसमें काँजीको एक द्रोण परिमाण शुक्तके साथ डालना चाहिये ।

अब शुक्त बनानेकी विधि कहते हैं-

यथा-भातका माँड १ प्रस्थ, काँजी ५ आढक, दही १६ तोले, गुड १ प्रस्थ, अम्लमूलक (काँजीके नीचेकी जमी हुई गाद) आठ पल, शुद्ध अदरख १६ पल एवं पीपल, जीरा, सैंधानमक, हल्दी और कालीमिरच ये प्रत्येक ओषधि दो दो पल लेवे । इन सबको घीसे भावना दियेहुए पात्रमें भरकर उसका मुख बन्दकरके आठ दिनतक रखा रहनेदेवे । जब उत्तम प्रकारसे सिद्ध होजाय तब उसको निकालकर छानलेवे । फिर उसमें दारचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर इनको तीन तीन कर्ष बारीक पीसकर मिलादेवे । इसको शुक्त कहते हैं॥यह शुक्तही महाराजप्रसारिणीतैलमें काँजीके बदलेमें डालाजाताहै । इसके सम्पूर्ण गन्धद्रव्योंको पञ्चपल्लवके काथसे धोकर सुखालेना॥२१-४४५॥

महासुगन्धितैल और लक्ष्मीविलासतैल ।

जिङ्गीचोरकदेवदारुसरलव्याघ्रीवचाचेलकात्वक्पत्रैः सह गन्धपत्रकशठीपथ्याक्षधात्रीघनैः । एतैः शोधितसंस्कृतैः पलयुगेत्याख्यातया संख्यया तैलप्रस्थमवस्थितैः स्थिरमतिः कल्कैः पचेद्गान्धिकैः ॥ ४६ ॥ मांसीमुरामदनचम्पकसुन्दरीत्वग्ग्रन्थ्यम्बुरुङ्मरुवकैर्द्विपलैः सपृक्कैः । श्रीवासकुन्दुरुनखीनलिकामिषीणां प्रत्येकतः पलमुपास्य पुनः पचेत्तु ॥ ४७ ॥ एलालवङ्ग-

चलचन्दनजातिपूतिकक्कोलकागुरुलताघुसृणैः पलार्द्धैः । कस्तूरिकाक्षसहितामलदीप्तियुक्तैः पक्वा तु मन्दशिखिनैव महासुगन्धम् ॥ ४८ ॥

पञ्चद्विकेन चार्द्धेन मदात्कर्पूरमिष्यते ।
कर्पूरमदयोरर्द्धं पत्रकल्कमिहेष्यते ॥ ४९ ॥
पक्वपूतेऽप्युष्ण एव सम्यक् पेषणवर्त्तितम् ।
दीयते गन्धवृद्ध्यर्थं पत्रकल्कं तदुच्यते ॥ ४५० ॥
प्रागुक्तौ शुद्धिसंस्कारौ गन्धानामिह तैः पुनः ।
लक्ष्मीविलासो द्विगुणैः स्यादयं तैलसत्तमः ॥ ५१ ॥
पञ्चपत्राम्बुना चाद्यो द्वितीयो गन्धवारिणा ।
तृतीयोऽपि च तेनैव पाको वा धूपिताम्बुना ॥ ५२ ॥
तैलयुग्ममिदं तूर्णं विकारान्वातसम्भवान् ।
क्षपयेज्जनयेत्पुष्टिं कान्तिं मेधां धृतिं धियम् ॥ ५३ ॥

मंजीठ, चोरपुष्पी (भटेउर) देवदारु, धूपसरल, व्याघ्रनख, वच, सुपारीके पेडकी छाल, तेजपात, सुगन्धतृण, कचूर, हरड, आमले, बहेडा और नागरमोथा इन पन्द्रह ओषधियोंको दो दो पल लेकर कूट पीसकर कल्क बनावे । इस कल्क और बिल्वादि पञ्चपल्लवके गन्धोदक (क्वाथ) के साथ एकप्रस्थ तिलके तेलको प्रथमवार पकावे । फिर बालछड, कपूरकचरी, मैनफल, चम्पाके फूल, फूलप्रियंगु, दारचीनी, गठिवन, सुगन्धवाला, कूठ, मरुएके फूल और असवरग ये प्रत्येक दो दो पल एवं गन्धविरोजा, कुन्दुरु, नखी, नलिका और सौंफ इन प्रत्येकके एक २ पल कल्कको डालकर और महाराजप्रसारणी तैलमें कहेहुए गन्धोदकके साथ दूसरा पाक करे । फिर इलायची, लौंग, शिलारस, चन्दन, चमेलीके फूल, खट्टासमुष्क, शीतलचीनी; अगर, लताकस्तूरी और केशर ये प्रत्येक दो दो तोले, कस्तूरी २ तोले और कपूर छःमासे दो रत्ती इन ओषधियोंके कल्कके साथ इस महासुगन्धिततैलको मन्दमन्द अग्निके द्वारा तीसरीबार पकावे । इसमें कस्तूरी ५ भाग और कपूर आधा लेवे । कपूर और कस्तूरीसे आधे पत्र कल्कको बारीक पीसकर सुगन्ध बढानेके लिये तैलको पकाकर छानलेनेपर गरममें ही मिलादेवे । गन्धद्रव्योंके शुद्धि और संस्कार पहले कहचुके हैं, उन्हींके द्वारा इसमेंभी व्यवहार करे । कल्क

द्रव्योंको दुगुनी मात्रासे इस तेलमें डालनेसे यह ही सर्वोत्तम लक्ष्मीविलास तैल होजाता है। प्रथमपाक पञ्चपल्लवके क्वाथके साथ, दूसरा पाक गन्धोदकके साथ, तीसरापाक अगरके द्वारा धूपितकियेहुए गन्ध जलके साथ करना। यह दोनों प्रकारका तैल वातजनित सम्पूर्ण विकारोंको शीघ्र नष्ट करताहै। एवं पुष्टि, कान्ति, मेधा, धृति और बुद्धिको उत्पन्न करताहै॥ ४६-५३॥

वातव्याधिमें पथ्य।

अभ्यङ्गो मर्दनं वस्तिः स्नेहः स्वेदोऽवगाहनम्।
संवाहनं संशमनं प्रावृत्तिर्वातवर्ज्जनम्॥ ५४॥
अग्निकर्मोपनाहश्च भूशय्या स्नानमासनम्।
तैलद्रोणी शिरोवस्तिः शयनं नस्यमातपः॥ ५५॥
सन्तर्पणं बृंहणञ्च किलाटो दधिकूर्चिका।
सर्पिस्तैलं वसा मज्जा स्वाद्वम्ललवणा रसाः॥ ५६॥
नवीनास्तिलगोधूमा माषाः संवत्सरोत्थिताः।
शालयः षष्टिकाश्चापि कुलत्थानां रसः सुराः॥५७॥
ग्राम्यगोऽश्वतरोष्ट्राश्वरासभच्छागलादयः।
आनूपाः कोलमहिषन्यंकुखड्गिगजादयः॥ ५८॥
औदका हंसकादम्बचक्रमद्गुबकादयः।
बिलेशया भेकगोधानकुलश्वाविदादयः॥ ५९॥
यथाश्रयं यथावस्थं यथावरणमेव हि।
वातव्याधौ समुत्पन्ने पथ्यमेतन्नृणां भवेत्॥ ४६०॥
चटकः कुक्कुटो बर्ही तित्तिरिश्चेति जाङ्गलाः।
शिलिन्दः पर्वतो नक्रो गर्गरः कवयील्लिशः॥ ६१॥
एरङ्गश्चुल्लकी कूर्मः शिशुमारस्तिमिङ्गिलः।
रोहितो मद्गुरुः शृङ्गी वर्म्मी च कुलिशो झषाः॥६२॥
पटोलं शिग्रुवार्त्ताकुर्लशुनं दाडिमद्वयम्।
पक्कतालं रसालञ्च नलदम्बु परूषकम्॥ ६३॥
जम्बीरं बदरं द्राक्षा नागरङ्गं मधूकजम्।
प्रसारणी गोक्षुरकः शुक्कांगी पारिभद्रकः॥ ६४॥

पयांसि च पयःपेटी रुबुतैलं गवां जलम् ।
मत्स्यण्डिका च ताम्बूलंधान्याम्लं तिन्तिडीफलम्६५

तेलकी मालिश, अंगमर्दन, वस्तिक्रिया, स्नेहपदार्थोंका सेवन, स्वेदक्रिया, जलमें घुसकर स्नान, शरीरको मलना, वातनाशक ओषधियोंका प्रयोग, वस्त्रादिसे शरीरको ढकना, वायु सेवनका त्याग, अग्निकर्म, उपनाह स्वेद देना, पृथ्वीपर सोना, स्नान करना, बैठना, तेलसे भरहुए काष्ठादिके पात्रमें कण्ठपर्यन्त गोता लगाकर स्नानकरना, शिरोवस्ति, शयन करना, नस्य देना, धूपका सेवन सन्तर्पण क्रिया, पुष्टिकर द्रव्य, मावा दहीके साथ, पकायाहुआ दूध, घी, तेल, चर्बी, मज्जा, मधुर, अम्ल और लवण रसयुक्त पदार्थ, नये तिल, नये गेहूँ, नये उडद, एक वर्षके पुराने शालि और सांठी धानोंके चावल, कुलथीका यूष, मदिरा, बैल, खच्चर, ऊँट, घोडा, गधा और बकराआदिग्राम्यपशुओंका मांस, सुअर, भैंसा, बारहसिंगा, गैंडा और हाथी आदि अनूप देशजात–पशुओंका मांस, हंस, कलहंस, चकवा, जलकौआ और बगला आदि जलचरजीवोंका मांस, मेंडक, गोह, नौला और खरगोश प्रभृति बिलमें रहनेवाले जीवोंका मांस, चिडिया, मुर्गा, मोर, तीतर आदिजंगलके पक्षियोंका मांस, शिलिन्द और पर्वत (मत्स्यभेद विशेष) एवं नाका, गर्गरनामक मछली, कवयीमच्छ, इल्लिश मत्स्य, अरंगा नामकीमछली, चुल्लकी (उत्पलनाम मत्स्यविशेष), कछुआ, शिशुमार (जलजन्तु विशेष), तिमिंगिल (बडी मछली), रोहूमछली, मद्गुरु मत्स्य, सींगोंवाली मछली, वर्मी मछली, केंकडा, छोटी मछली ये सब जन्तु एवं परवल, सहिंजना, बैंगन, लहसन, मीठा और खट्टा दोनों प्रकारका अनार, पकाहुआ ताडका फल, आम, नीम, फालसे, जम्बीरीनीम्बू, बेर, दाख, नारंगी, महुएके फल, गन्धप्रसारिणी, गोखुरू, सिह्लक, फरहद, दूध, कच्चानारियल, अण्डीका तैल, गोमूत्र, मिश्री, पान, काँजी और इमली ये सब पदार्थ वातरोगमें मनुष्योंको हितकर हैं ॥ ४५४–४६५ ॥

वातव्याधिमें अपथ्य ।

चिन्ताप्रजागरणवेगविधारणानि छर्दिः श्रमोऽनशनता चणकाः कषायाः । नीवारकङ्कुशरवैणवकोरदूषश्यामाकचूर्णकुरुविन्दमुखानि यानि ॥६६॥ धान्यानि तानि तृणजानि च राजमाषा मुद्गास्तडागसरिदम्बु

यवः करीरम्। जम्बुः कशेरु तृणकं क्रमुकं मृणालं निष्पावबीजमपि तालफलास्थिमज्जा॥६७॥ शालूक-तिन्दुककठिल्लकबालतालं शिंबी च पत्रभवशाकमुडु-म्बुरश्च। शीताम्बु रासभपयोऽपि विरुद्धमन्नं क्षारोऽपि शुष्कपललं क्षतजस्रुतिश्च॥६८॥ क्षौद्रं कषाय-कटुतिक्तरसा व्यवायो हस्त्यश्वयानमपि चंक्रमणश्च खट्वा। आध्मानिनोऽर्दितवतोऽपि पुनर्विशेषात्स्नानं प्रदुष्टसलिलं द्विजघर्षणञ्च॥६९॥ निःशेषतस्तु परि-कीर्त्तित एष वर्गो नृणां समीरणगदेषु मुदं न दत्ते॥७०॥

चिन्ता, रात्रिमें जागना, मल मूत्रादिके वेगोंको रोकना, वमन, परिश्रम, और लंघन करना, चने, कषैले पदार्थ, नीवार (पुनीर) के धान, कंगनीके चावल, शरतृणजात धान, बाँसके चावल, कोदों, समेके चावल, सांठीआदिके चावल और वनकुलथी आदि समस्त तृणधान्य, लोभिया, मूँग एवं तालाब और नदीका जल, जौ, बाँसके अंकुर, जामुन, कसेरू, चीनाघास, सुपारी, कमलकी नाल, सेमके बीज, ताडके फलोंकी गुठलीकी गिरी, भसींडा, तेन्दू, करेला, कच्चे ताडका शाक, सेमकी फली, लौकी और पेठा आदि पत्रशाक, गूलर, शीतलजल, गधीका दूध, विरुद्ध अन्नपान, क्षारपदार्थ, शुष्क मांस, रक्त मोक्षण (फस्त खुलवाना), शहद, कषैले कडुवे और तीखे रसवाले पदार्थ, स्त्रीप्रसंग, हाथी घोडे आदिकी सवारी करना, रास्ता चलना और खाटपर सोना ये सम्पूर्ण अन्नपान और क्रियायें वातरोगमें मनुष्योंको विशेषकर आध्मान और अर्दितवाले रोगियोंको स्नान, दूषितजल और दन्तधावन करना इत्यादि क्रियायें अहितकरक हैं॥ ४६६-४७०॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वातव्याधिचिकित्सा।

पित्तरोगकी चिकित्सा।

अकालपलितं नेत्ररक्तत्वं तस्य पीतिमा।
तद्वन्मूत्रस्य पीतत्वं मलस्यापि च पीतता ॥ १ ॥
नखानामल्परक्तत्वं तेषामपि च पीतता।
दन्तानाश्चापि पीतत्वं पीतत्वं वपुषस्तथा ॥ २ ॥
तमसो दर्शनश्चापि तथा च वदनाम्लता।
उच्छ्वासस्योष्णता चापि धूमोद्गारस्तथैव च ॥ ३ ॥
श्रमः क्लमस्तथा क्रोधो दाहो भेदसमन्वितः।
तेजो द्वेषश्च शीतेच्छाद्यतृप्तिररतिस्तथा ॥ ४ ॥
भक्षितस्य विदाहश्च जठरानलतीक्ष्णता।
रक्तप्रवृत्तिर्विड्भेदः पुरीषस्योष्णता तथा।
मूत्रोष्णता मूत्रकृच्छ्रं शुक्राल्पत्वन्त्वनूष्णता ॥ ५॥
स्वेदस्यापि च दौर्गन्ध्यं देहप्रावरणं तथा।
शरीरस्यावसादश्च पाकश्च वपुषस्तथा ॥ ६ ॥
चत्वारिंशदमी पित्तव्याधयो मुनिनिर्मिताः।
एषां पृथक् चिकित्सा तु बोद्धव्या स्वप्रकरणके ॥ ७ ॥

असमयमें बालोंका पकना, नेत्रोंमें लाली और पीलापन, मूत्र और मलका पीतवर्ण होना, नाखूनोंकी लाली कम होना और पीला पडजाना, दाँतोंका और समस्त शरीरका पीलारंग होना, आँखोंके सामने अन्धेरा आना, मुखमें खट्टापन, निःश्वासवायुका उष्ण होना, गलेमें धुआँसा घुटना, श्रम, खेद, क्रोध, दाह, दस्तोंका होना, अग्नि और धूपकी तेजी बुरी मालूम होना, शीतोपचारकी इच्छा होना, असन्तोष, किसी कार्यमें चित्तका न लगना, भोजन करनेके बाद दाह होना, जठराग्निका तीक्ष्ण होना, रक्तकी वमन और रुधिरके दस्त होना, मलका पतलापन और उष्णताका हाना, मूत्रमें उष्णता, मूत्रकृच्छ्र, वीर्यकी अल्पता, तरलता और उष्णताका होना, शरीरका गरम रहना, पसीना और शरीरमें दुर्गन्ध आना, देहकी त्वचाका फटना, शरीरकी अवसन्नता और पकना अर्थात् फोडे, फुन्सी आदिका निकलना ये ४० प्रकारकी पित्तकी व्याधियाँ मुनियोंने निर्दिष्ट की हैं। इन सबकी पृथक् पृथक् चिकित्सा मूलरोगाधिकारके अनुसार जाननी चाहिये ॥ १-७ ॥

धात्रीलौह ।

धात्रीचूर्णस्याष्टौ पलानि चत्वारि लौहचूर्णस्य ।
यष्टीमधुकरजश्च द्विपलं दद्यात्पटे घृष्टम् ॥ ८ ॥
धात्र्याश्च क्वाथेन तच्चूर्णं भाव्यश्च सप्ताहकम् ।
चण्डातपेन संशुष्कं भूयः पिष्टं घटे स्थितम् ॥ ९ ॥
घृतेन मधुना युक्तं भोजनाद्यन्तमध्यतः ।
त्रीन्वारान्भक्षयेन्नित्यं पथ्यं दोषानुबन्धतः ॥ १० ॥
भक्तस्यादौ नाशयेच्च दोषान् पित्तकृतानपि ।
मध्ये चानाहविष्टब्धं तथान्ते चाग्निमान्द्यताम् ॥
रक्तपित्तसमुद्भूतान् रोगान् हन्ति न संशयः ॥ ११ ॥

आमलोंका चूर्ण ३२ तोले, लोहभस्म १६ तोले और मुलैठीका चूर्ण ८ तोले लेकर इन सबको खरलमें एकत्र पीसलेवे । फिर आमलोंके काथके साथ उस चूर्णको ७ दिनतक भावना देकर तीक्ष्ण धूपमें सुखालेवे और बारीक पीस-कर मिट्टीके बर्त्तनमें भरकर रखदेवे । इस लोहको घृत और शहदके साथ मिला कर प्रतिदिन भोजनके पहले मध्यमें और अन्तमें इस प्रकार तीनबार भक्षण करे । यह औषध भोजनके पहले सेवन करनेसे पित्तजनित रोगोंको, भोजनके मध्यकालमें सेवन करनेसे आनाह विष्टब्धाजीर्ण आदि और भोजनके अन्तमें सेवनकरनेसे अग्निकी मन्दता और रक्तपित्तसे उत्पन्नहुए सम्पूर्ण रोगोंको निश्चय नाश करती है । इसपर यथादोषानुसार पथ्य देना चाहिये ॥ ८-११ ॥

पित्तान्तक रस ।

जातीकोषफले मांसी कुष्ठं तालीशपत्रकम् ।
माक्षिकं मृतलौहश्च अभ्रं दिव्यं समांशिकम् ॥ १२ ॥
सर्वतुल्यं मृतं तारं समं निष्पिष्य वारिणा ।
द्विगुञ्जाभा वटी कार्या पित्तरोगविनाशिनी ॥ १३ ॥
कोष्ठास्थितश्च यत्पित्तं शाखाश्रितमथापि वा ।
शूलश्चैवाम्लपित्तश्च पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ १४ ॥
दुर्नामभ्रान्तिवान्तिश्च क्षिप्रमेव विनाशयेत् ।
रसः पित्तान्तको ह्येष काशिराजेन भाषितः ॥ १५ ॥

जावित्री, जायफल, बालछड, कूठ, तालीशपत्र, सोनामाखी, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और लौंग ये सब ओषधियाँ समानभाग और सबकी बराबर चाँदीकी भस्म लेकर सबको एकत्र जलके साथ खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह वटी सर्वप्रकारके पित्तके रोगोंको शमन करनेवाली है, एवं कोष्ठगत और हाथ, पाँव आदि अंगोंमें स्थित पित्त,शूल, अम्लपित्त,पाण्डु, हलीमक,बवासीर,भ्रान्ति और वमन इन सब रोगोंको यह पित्तान्तकरस शीघ्रही नष्ट करताहै। इसको काशिराजने निर्दिष्ट कियाहै॥ १२-१५॥

महापित्तान्तकरस।

यद्यत्र माक्षिकं त्यक्त्वा सुवर्णमपि दीयते।
महापित्तान्तको नाम सर्वपित्तविनाशनः॥ १६॥

यदि उक्त पित्तान्तक रसमें सोनामाखीको त्यागकर सुवर्णभस्म मिलादीजाय तो यही महापित्तान्तक रस कहाजाताहै।यह सम्पूर्ण पित्तविकारोंको नाशकरे॥

गुडूचीतैल।

गुडूचीक्वाथकल्काभ्यां सिद्धं तैलं प्रयत्नतः।
वातरक्तं निहन्त्याशु नात्र कार्या विचारणा॥ १७॥

गिलोयके काथ और कल्कके साथ विधिपूर्वक तिलके तैलको सिद्ध करे। यह तैल मर्दन करनेसे वातरक्त और पित्तरोगोंको निस्सन्देह शीघ्र नष्टकरताहै॥

पित्तरोगमें पथ्य।

तिक्तस्वादुकषायशीतपवनच्छायानिशावीजनं
ज्योत्स्नाभूगृहयन्त्रवारि जलजं स्त्रीगात्रसंस्पर्शनम्।
सर्पिः क्षीरविरेकसेकरुधिरस्रावप्रदेहादिकं
पानाहारविहारभेषजमिदं पित्तप्रशान्तिं नयेत्॥१८॥

तिक्त (कडवे) रसवाले पदार्थ, मधुर और कषैलेरसवाले पदार्थ, शीतल-वायु, छाया, रात्रिकी वायु, पंखेकी वायु, चाँदनी, कच्चेमकान, फुहारेका जल, कमल, स्त्रीका आलिंगन, घृत, दूध, विरेचन, अभिषेचन, रुधिरस्राव कराना और प्रलेप आदिकरना ये सम्पूर्ण पान और आहार, विहारादि औषधियाँ पित्तको शमन करती हैं॥ १८॥

पित्तरोगमें अपथ्य।

कट्वम्लोष्णविदाहितीक्ष्णलवणक्रोधोपवासातप-
स्त्रीसम्भोगतृषाक्षुधाभिहननव्यायाममद्यादिभिः॥१९

माषैस्तिलैः कुलत्थैश्च मत्स्यैर्मेषामिषेण च ।
गव्येन दधितक्रेण नृणां पित्तं प्रकुप्यति ॥ २० ॥

चरपरेरस, खट्टेरस, गरम, दाहकारक, तीक्ष्ण और लवणयुक्त पदार्थ, क्रोध, उपवास, धूप, स्त्रीप्रसंग, क्षुधा और तृषाके वेगको रोकना, व्यायाम, मद्यपान, उडद, तिल, कुलथी, मछली, भेंडका मांस, गौका दही और मट्ठा इन समस्त पदार्थोंके द्वारा मनुष्योंके पित्त कुपित होता है ॥ १९-२० ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां पित्तरोगचिकित्सा ॥

कफरोगचिकित्सा ।

प्रथमं मुखमाधुर्यं तथैव मुखलिप्तता ।
तथा मुखप्रसेकश्च निद्राधिक्यं तथैव च ॥ १ ॥
कण्ठे घुर्घुरता चापि कटुकांक्षोष्णकामिता ।
बुद्धिमान्द्यमचैतन्यमालस्यं तृप्तिरेव च ॥ २ ॥
अग्निमान्द्यं मलाधिक्यं मलशैत्यं तथैव च ।
मूत्राधिक्यं मूत्रशौक्ल्यं शुक्राधिक्यं तथैव च ।
स्तैमित्यं गौरवं शैत्यमेत एव हि विंशतिः ॥ ३ ॥
योगतो रूढितः प्रोक्तो मुनिभिः श्लैष्मिको गदः ।
एषां पृथक् चिकित्सा तु बोद्धव्या स्वप्रकरणके ॥४॥

प्रथम मुखमें मधुरताका होना, मुँहका लिहसासा रहना, मुँहसे पानीको गिरना, निद्राका अधिक आना, कण्ठमें घुर्घुर शब्द होना, चरपरे और गरम पदार्थोंकी इच्छा होना, बुद्धिकी मन्दता, मूर्च्छा, आलस्य और तृप्तिका होना, अग्निकी मन्दता, मलका अधिक और शीतल होना, मूत्रकी अधिकता और सफेद होना, वीर्यकी अधिकता, शरीरमें आर्द्रता, गुरुता और शीतलताका होना। ये २०प्रकारके कफके रोग योगसे विचारकर मुनियोंने वर्णन कियेहैं। इनकी पृथक् पृथक् चिकित्सा मूलरोगाधिकारकी समान जाननी चाहिये१-४॥

कफश्चितो हि शिशिरे वसन्तेऽर्कांशुतापितः ।
हत्वाग्निं कुरुते रोगांस्तत्र तत्र प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥
तीक्ष्णं वमननस्यादिकवलग्रहमञ्जनम् ।
व्यायामोद्वर्त्तनं धूमं शौचकार्ये सुखोदकम् ॥ ६ ॥

शिशिर ऋतुमें कफ उत्पन्न होताहै और वसन्तऋतुमें सूर्यकी गर्मीसे पिघल-कर अग्निको मन्द करके अनेक प्रकारके कफजन्य रोगोंको उत्पन्न करताहै । इस लिये उस समय तीक्ष्ण पदार्थ, वमनकारक ओषधियाँ, नस्य, कवलधारण करना, अञ्जन आँजना, कसरत, उबटन धूम्रपान एवं शौच और स्नानादि कार्योंमें गरम जल व्यवहार करना चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

कफजकोपविनाशनानलवमननावनरूक्षनिषेवणम् ॥७॥

कफके कोपके शमन करनेके लिये अग्निका सेवन, वमन करना, नस्य देना और रूक्ष पदार्थोंका सेवन करना चाहिय ॥ ७ ॥

विविधः सुरतानन्दः संश्रमः कफवारणः ।
कटुक्षाराम्लकाः सेव्याः शोधनं कफसम्भवे ॥ ८ ॥

कफजनित रोगोंमें—स्त्रीसहवास, परिश्रम, चरपरे, खारी और अम्लरस (खट्टे) वाले पदार्थोंका सेवन और वमन, विरेचनादिकें द्वारा शरीरकी शुद्धि करना ये सब कफनाशक हैं ॥ ८ ॥

कफचिन्तामणिरस ।

हिङ्गुलेन्द्रयवं टङ्कं त्रैलोक्यबीजमेव च ।
मरिचञ्च समं सर्वं त्रिभाग रससिन्दुरम् ॥ ९ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव मर्दयेद्याममात्रकम् ।
चणकाभा वटी कार्या सर्ववातप्रशान्तये ॥
कफरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १० ॥

सिंगरफ, इन्द्रजौ, सुहागा, भाँगके बीज और कालीमिरच ये प्रत्येक एक एक भाग और रससिन्दूर तीन भाग लेकर सबको एकत्र अदरखके रसके साथ एक प्रहरतक खरल करे, फिर चनेकी बराबर गोलियाँ बनाकर सर्वप्रकारके वातरोगोंको शमन करनेकेलिये सेवन करावे । यह रस कफरोगोंको इस प्रकार, शीघ्र नाश करदेता है, जैसे सूर्य अन्धकारको नष्ट करता है ॥ ९ ॥ १० ॥

बृहत्कफकेतुरस ।

मुक्तासुवर्णे च समानभागे प्रवालभस्मापि तयोः समानम् ।
अभ्रञ्च योज्यं द्विगुणप्रवालात्स्वर्णात्थासिन्दूरसमं विकल्प्य॥
दुग्धेन नार्या विमलाश्मपात्रे यत्नेन मर्द्यं कुशलैर्भिषग्भिः ।
गुञ्जात्रयञ्चास्य कफप्रकोपे सेवेत सद्यः कफनाशमिच्छन् ॥११

मोती १तोला, सुवर्ण १तोला, मूँगाभस्म २ तोले, अभ्रकभस्म ४ तोले और स्वर्ण सिन्दूर ८ तोले लेवे । इन सबको साफ पत्थरके खरलमें डालकर स्त्रीके दूधके साथ उत्तम प्रकारसे खरल करे । कफका प्रकोप होनेपर शीघ्र कफनाश करनेकी इच्छावाला मनुष्य इस रसको प्रतिदिन तीनतीन रत्तीप्रमाणसेवनकरे॥

महाश्लेष्मकालानलरस ।

हिङ्गूलसम्भवं सूतं शिलागन्धकटङ्कणम् ।
ताम्रं वङ्गं तथाभ्रञ्च स्वर्णमाक्षिकतालकम् ॥ १२ ॥
धुस्तूरं सैन्धवं कुष्ठं हिङ्गु पिप्पलि कट्फलम् ।
दन्तीबीजं सोमराजी वनराजफलं त्रिवृत् ॥ १३ ॥
वज्रीक्षीरेण सम्मर्द्य वटिकां कारयेद्भिषक् ।
कलायपरिमाणां तु खादेदेकां यथाबलम् ॥ १४ ॥
सन्निपातं निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।
मदसिंहो यथारण्ये मृगाणां कुलनाशनः ॥
तथायं सर्वरोगाणां सद्यो नाशकरो महान् ॥ १५ ॥

हिंगुलसे निकालाहुआ पारा, मैनसिल, शुद्धगन्धक, सुहागा, ताँबा, बंग, अभ्रक, सोनामाखी इन सबकी भस्म, वंशपत्री, हरतालकी भस्म, धतूरा, सैंधानमक, कूठ, हींग, पीपल, कायफल, जमालगोटा, बापची, अमलतासकी फली और निसोत इन सबको एकत्र चूर्ण करके थूहरके दूधके साथ खरलकर मटरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे प्रतिदिन जठराग्निके बलाबलके अनुसार एकएक गोली भक्षण करनेसे त्रिदोषजन्यविकार इसप्रकार तत्काल नष्ट होते हैं, जैसे वज्र वृक्षको शीघ्र विनाश करदेता है । वनमें जैसे मदोन्मत्त सिंह पशुओंके समूहको नाश करता है वैसेही यह महाश्लेष्मकालानलरस सर्वप्रकारके रोगोंको शीघ्र नष्ट करदेता है ॥ २१२-१५ ॥

श्लेष्मशैलेन्द्ररस ।

गन्धकं पारदञ्चाभ्रं त्र्यूषणं जीरकद्वयम् ।
शठी शृङ्गी यमानी च पुष्करं रामठं तथा ॥ १६ ॥
सैन्धवं यावशूकञ्च टङ्कणं गजपिप्पली ।
जातीकोषाजमोदे च लौहं यासलवङ्गकम् ॥ १७ ॥
धुस्तूरबीजं जैपालं कट्फलं चित्रकं तथा ।
प्रत्येकं कार्षिकञ्चैषां श्लक्ष्णचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ १८ ॥

पाषाणे विमले पात्रे घृष्टं पाषाणमुद्गरैः ।
बिल्वमूलरसं दत्त्वा चार्कचित्रकदन्तिकाः ॥ १९ ॥
शिखरी काञ्जिका वासा निर्गुण्डी गणकारिका ।
धुस्तूरं कृष्णजीरञ्च पारिभद्रकपिप्पली ॥ २० ॥
कण्टकार्यार्द्रयोश्चैव मूलान्येतानि दापयेत् ।
एषां मूलरसं दत्त्वा घृष्टमातपशोषितम् ॥ २१ ॥
गुञ्जाप्रमाणां वटिकां कारयेत्कुशलो भिषक् ।
चतुर्विधवटीं खादेन्नित्यमार्द्रकवारिणा ॥ २२ ॥
उष्णतोयानुपानेन श्लेष्मव्याधिं व्यपोहति ।
विंशतिं श्लैष्मिकाँश्चैव शिरोरोगांश्च दारुणान् ॥२३॥
प्रमेहान्विंशतिश्चैव पञ्चगुल्मनिषूदनः ।
उदराण्यन्त्रवृद्धिश्चाप्यामवातविनाशनः ॥ २४ ॥
पञ्चपाण्ड्वामयान् हन्ति कृमिस्थौल्यामयापहः ।
सोदावर्त्तं ज्वरं कुष्ठं गात्रकण्ड्वामयापहः ॥ २५ ॥
यथा शुष्केन्धने वह्निस्तथा वह्निविवर्द्धनः ।
श्लेष्मामये कृपाहेतो रसेन्द्रो मुनिभाषितः ॥
श्लेष्मशैलेन्द्रको नाम रसेन्द्रगुडिका स्मृता ॥ २६ ॥

शुद्धगन्धक, शुद्धपारा, अभ्रकभस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, जीरा, कालाजीरा, कचूर, काकडासिंगी, अजवायन, पोहकरमूल, हींग, सैंधानमक, जवाखार, सुहागा, गजपीपल, जावित्री, अजमोद,लोहभस्म, जवासा,लौङ्ग, धतूरेके बीज,जमालगोटा,कायफल और चीतेकी जड इन प्रत्येक ओषधिको दो दो तोले लेकर बारीक चूर्ण करलेवे।फिर उस चूर्णको पत्थरके शुद्ध खरलमें डालकर पत्थरकी मूसलीके द्वारा बेलकी जड, आककी जड, चीतेकी जड, दन्ती और चिरचिटेकी जड,धमासा,अडूसेकी जडकी छाल,निर्गुण्डीके पत्ते, अरणीकी जडकी छाल, धतूरेके पत्ते, कालाजीरा,फरहद, पीपल, कटेरी और अदरख इन प्रत्येक ओषधिके स्वरस या काथके साथ क्रमपूर्वक उत्तम प्रकारसे खरलकरे।फिर धूपमें सुखाकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इसकी प्रातिसमय एक एक गोली अदरखके साथ दिनमें चार वार भक्षण करे । इसको गरम जलके साथ सेवन करनेसे कफरोग नष्ट होते हैं । यह रस बीसों प्रकारके कफके रोग, दारुण

शिरोरोग, बीस प्रकारके प्रमेह, पाँच प्रकारका गुल्मरोग, उदररोग, अन्त्रवृद्धि आमवात, पाँचप्रकारका पाण्डुरोग, कृमिरोग, स्थूलता, उदावर्त्त, ज्वर, कुष्ठ और खुजली इन सब रोगोंको शमन करता है, जैसे सूखे ईंधनमें अग्नि शीघ्र प्रज्वलित होतीहै वैसेही इससे जठराग्निकी वृद्धि होती है। कफरोगके होनेपर उसकी निवृत्तिके लिये मुनियोंने कृपाकर इस रसको निर्माण कियाहै। इसको श्लेष्मशैलेन्द्र अथवा रसेन्द्रगुडिका कहते हैं ॥ १६–२६ ॥

महालक्ष्मीविलास।

पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य तदर्द्धं गन्धकं भवेत्।
तदर्द्धं वङ्गभस्मापि तदर्द्धं पारदस्तथा।
तत्समं हरितालञ्च तदर्द्धं ताम्रभस्मकम् ॥ २७ ॥
रससाम्यश्च कर्पूरं जातीकोषफले तथा
वृद्धदारकबीजञ्च बीजं स्वर्णफलस्य च।
प्रत्येकं कार्षिकं भागं मृतस्वर्णञ्च शाणकम् ॥ २८ ॥
निष्पिष्य वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः।
निहन्ति सन्निपातोत्थान् गदान्घोरान्सुदारुणान् २९
गलोत्थानन्त्रवृद्धिञ्च तथातिसारमेव च।
कुष्ठमेकादशविधं प्रमेहान्विंशतिं तथा ॥ ३० ॥
श्लीपदं कफवातोत्थं चिरजं कुलजन्तथा।
नाडीव्रणं व्रणं घोरं गुदामयभगन्दरम् ॥ ३१ ॥
कासपीनसयक्ष्मार्शःस्थौल्यदौर्गन्ध्यरक्तनुत।
आमवातं सर्वरूपं जिह्वास्तम्भं गलग्रहम् ॥ ३२ ॥
उदरं कर्णनासाक्षिमुखं वैजाड्यमेव च।
सर्वशूलं शिरःशूलं स्त्रीरोगञ्च विनाशयेत् ॥ ३३ ॥
वटिकां प्रातरेकैकां खादेन्नित्यं यथाबलम्।
अनुपानमिह प्रोक्तं मांसं पिष्टं पयो दधि ॥ ३४ ॥
वारिभक्तं सुरासीधुसेवनात्कामरूपधृक्।
वृद्धोऽपि तरुणस्पर्शी न च शुक्रक्षयो भवेत् ॥ ३५ ॥
न च लिङ्गस्य शैथिल्यं न केशा यान्ति पक्वताम्।
नित्यं गच्छेच्छतं स्त्रीणां मत्तवारणविक्रमः ॥ ३६ ॥

द्विलक्षयोजनीदृष्टिर्जायते पौष्टिकं तथा।
प्रोक्तः प्रयोगराजोऽयं नारदेन महात्मना ॥ ३७ ॥
महालक्ष्मीविलासोऽयं वासुदेवो जगत्पतिः।
प्रसादादस्य भगवाँल्लक्षनारीषु वल्लभः ॥ ३८ ॥

काली अभ्रककी भस्म ४ तोले शुद्धगन्धक २ तोले वङ्गभस्म १ तोला, शुद्ध पारा ६ मासे,हरताल ६ मासे,ताम्रभस्म ३ मासे, भीमसेनी कपूर ६ मासे एवं जावित्री जायफल विधारेके बीज और धतूरेके बीज ये प्रत्येक एकएक तोला और सुवर्णभस्म ४ मासे लेवे इन सबको पानके रसके साथ एकत्र खरलकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह रस सन्निपातसे उत्पन्नहुए अत्यन्त भयंकर और दारुण रोगोंको नष्ट करता है। एवं गलेके रोग, अन्त्रवृद्धि, अतीसार, ११ प्रकारके कुष्ठ, बीसों प्रमेह, श्लीपद, कफवातजन्यरोग, पुराने और कुलोत्पन्नरोग नाडीव्रण भयंकर व्रण गुदाके रोग भगन्दर खाँसी पीनस राजयक्ष्मा अर्श स्थूलता दुर्गन्ध रुधिरविकार सर्वप्रकारका आमवात जिह्वास्तम्भ गलग्रह उदररोग कान नाक आँख और मुखकी जडता सर्वप्रकारके शूल शिरःशूल और स्त्रीरोग इन सबको नाश करता है। इसकी प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक गोली अथवा अग्निके बलानुसार सेवन करे। अनुपान अदरखका रस इसपर मांस पिट्ठीके बने पदार्थ दूध दही भातका माँड मद्य और सीधुनामक इन काँजी पदार्थोंको सेवन करनेसे कामदेवकी समान रूपवान् होता है। वृद्ध मनुष्यभी युवाकी समान हो जाता है। वीर्यक्षीण नहीं होता लिङ्गमें शिथिलता नहीं आती बाल सफेद नहीं होते। इस रसको सेवन करनेवाला मनुष्य सदोन्मत्त हाथीके पराक्रमकी समान नित्य सैकडों स्त्रियोंको भोगताहै। दो लाख योजन तक जानेवाली और पुष्ट दृष्टि होती है। इस प्रयोगको महातमा नारदने वर्णन किया है। यह महालक्ष्मी विलास नामक रस है। इसीके प्रसादसे जगतपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी लक्ष स्त्रियोंके प्रियहुए थे ॥ २७-२८ ॥

धुस्तूरतैल।

धुस्तूरक्काथकल्काभ्यां कटुतैलं विपाचयेत्।
सन्निपातज्वरश्लेष्मशोथशीर्षार्त्तिदाहनुत् ॥
कर्णग्रहहरश्चास्थिसन्धिग्रहविनाशनम् ॥ ३९ ॥

पत्रसहित धतूरेके क्वाथ और कल्कके साथ सरसोंके तैलको पकावे। इस तैलकी मालिश करनेसे सान्निपातिकज्वर कफरोग शोथ शिरोरोग दाह कर्णरोग अस्थिग्रह और सन्धिग्रहादि विकार नष्ट होते हैं ॥ ३९ ॥

कनकतैल।

कनकार्कबला दूर्वा वासको वैजयन्तिका।
निर्गुण्डी पूतिका भार्गी निकोटकपुनर्नवाः॥ ४०॥
बदरी विजयापत्रं श्रीफलं बृहती तथा।
चित्रकश्च स्नुहीमूलमग्निमन्थो व्यडम्बकम्॥ ४१॥
त्रिवृद्दन्ती गोमठी च पत्रमारग्वधस्य च।
प्रत्येकं द्विपलश्चैषां गृह्णीयात्तत्क्षणादपि॥ ४२॥
जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम्।
प्रस्थश्च कटुतैलस्य पाचयेत्तीव्रवह्निना॥ ४३॥
द्रव्याण्येतानि सर्वाणि कल्कितानि प्रदापयेत्।
चक्षुःशूलं शिरःशूलं श्लीपदं मांसरक्तजम्॥ ४४॥
आमवातश्च हृच्छूलं वृद्धिश्च गलगण्डकम्।
शोथं बाधिर्यमुदरं कासं हन्ति न संशयः॥ ४५॥
दूर्वायां पतिते बिन्दौ शुष्कतां याति तत्क्षणात्।
कनकाख्यमिदं तैलं कफरोगकुलान्तकम्॥ ४६॥

धतूरा, आककी जड, खिरैंटी, दूर्वा, अडूसा, जयन्ती, निर्गुण्डीके पत्ते, पूतिकरञ्ज, भारंगी, ढेरावृक्ष, पुनर्नवा, बेरीके पत्ते, भाँगके पत्ते, बेलकी जड, बडीकटेरी, चीता, थूहरकी जड, अरणी, अण्डकी जड, निसोतकी जड, दन्तीकी जड, गोमठी (राम बैंगन) और अमलतासके पत्ते इन सबको आठआठ तोले लेकर ३२ सेर जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें सरसोंका तैल १ प्रस्थ और उक्त काथकी ओषधियोंका समानभाग मिश्रित कल्क डालकर तीक्ष्ण अग्निके द्वारा उत्तम प्रकारसे तैलको पकावे। इस तैलकी मालिश करनेसे कफजन्य नेत्रपीडा, शिरदर्द, श्लीपद, मांस रक्तविकार, आमवात, हृदयशूल, अन्त्रवृद्धि, गलगण्ड, शोथ, बधिरता, उदरविकार, खाँसी आदिरोग निस्सन्देह नष्ट होते हैं। दूबमें इसकी बून्द पडनेपर वह तत्क्षण शुष्क होजाती है। यह कनकाख्यनामवाला तैल समस्त कफके रोगोंको दूर करता है। किसी किसी ग्रन्थमें-"पाचयेत्तीव्रवह्निना" इसकी जगह "दिनैकेन विपाचयेत्" ऐसा पाठ है॥ ४०-४६॥

तप्तराजतैल ।

धुस्तूरं पूतिकां पीता जयन्ती सिन्धुवारकम् ।
शिरीषं हिज्जलं शिग्रुर्दशमूलं समं भवेत् ॥ ४७ ॥
प्रस्थं प्रस्थं समादाय कटुतैलं समांशकम् ।
जलद्रोणे विपक्तव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ ४८ ॥
गोमूत्रश्चाढकं दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
मदनं त्र्यूषणं कुष्ठमजाजी विश्वभेषजम् ॥ ४९ ॥
कट्फलं वरुणं मुस्तं हिज्जलं बिल्वमेव च ।
हरितालजवापुष्पममृतं कुनटी तथा ॥ ५० ॥
कर्कटं चन्दनं शिग्रुर्यमानी व्याघ्रपादपि ।
एतेषां कार्षिकैर्भागैः समभागं प्रकल्पयेत् ॥ ५१ ॥
तप्तराजमिति ख्यातं महोद्भवेन निर्मितम् ।
सन्निपातं महाघोरं शिरोरोगं महोत्तरम् ॥ ५२ ॥
शिरःशूलं नेत्ररोगं कर्णशूलञ्च दारुणम् ।
ज्वरं दाहं महाघोरं स्वेदश्चैव महोत्तरम् ॥ ५३ ॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च पीनसञ्च हलीमकम् ।
त्रयोदशसन्निपातं हन्ति सद्यो न संशयः ॥ ५४ ॥

धतूरा,पूतिकरञ्ज,पीली कटसरैया, अरणी, सिह्मालू शिरस, समुद्रफल और साहिंजनेकी जड ये प्रत्येक एक एक प्रस्थ और दशमूल समान भाग मिश्रित एक प्रस्थ लेवे । इन सबको एकत्र कूटकर १ द्रोण जलमें पकावे । जब चौथाई भाग जल शेष रहे तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें सरसोंका तैल १ प्रस्थ गोमूत्र १ आढक एवं मैनफल त्रिकुटा कूठ कालाजीरा सोंठ कायफल बरनाकी छाल, नागरमोथा, जलतटस्थ हिज्जलवृक्षके बीज, बेलका गूदा, हरताल, लाल जवा (गुडहल) के फूल, शुद्ध मीठा तेलिया, मैनसिल, काकडासिंगी, चन्दन, सहिंजनेकी छाल, अजवायन और कंटाईकी जड इन सब ओषधियोंको दो दो तोले एकत्र कूट पीसकर डालदेवे फिर शनैः शनैः मन्द मन्द अग्निसे तैलको पकावे । इस तप्तराज नामक तेलको महादेवजीने निर्माण किया है । यह तैल भयंकर सान्निपात शिरोरोग शिरकी पीडा नेत्ररोग दारुण कर्णशूल ज्वर अत्यन्त घोरदाह अधिक पसीनेका आना कामला पाण्डु हलीमक

पीनस और १३ प्रकारके सन्निपात इन सब व्याधियोंको निस्सन्देह तत्काल नष्ट करता है ॥ ४७-५४ ॥

कफरोगमें पथ्य ।

रूक्षक्षारकषायतिक्तकटुकव्यायामनिष्ठीवनं
धूमान्युष्णाशिरोविरेकवमनस्वेदोपवासादिकम् ।
तृड्वातातपजागरादिजलजक्रीडाङ्गनासेवनं
पानाहारविहारभेषजमिदं श्लेष्माणमुग्रं हरेत् ॥ ५५ ॥

रूखे खारी कषैले कडवे और चरपरे रसवाले पदार्थ परिश्रम थूकना धूम्रपान गरम पदार्थोंका भोजन शिरोविरेचन (नस्य) वमन स्वेदक्रिया उपवास प्यासको रोकना वायु और धूपका सेवन रातमें जागना जलक्रीडा और स्त्रीसङ्गम ये सम्पूर्ण पान आहार विहार और ओषधियाँ सेवन करनेसे अत्यन्त प्रबल कफरोग नाश होते हैं ॥ ५५ ॥

कफरोगमें अपथ्य ।

गुरुपटुमधुराम्लस्निग्धमाषैस्तिलैश्च
द्रवदधिदिननिद्राशीतसर्पिःप्रपूरैः ।
भवति हि कफकोपस्त्याज्यमेतत्सरुग्भिः ॥ ५६ ॥

गुरुपाकी पदार्थ लवण मधुर अम्ल और स्निग्धद्रव्य उडद तिल पतले पदार्थ दही दिनमें सोना शीतका सेवन और घृत भरे हुए पदार्थोंका भक्षण करना इन सबके द्वारा कफ कुपित होता है इसलिये कफरोगियोंको ये सब पदार्थ त्याग देने चाहिये ॥ ५६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां कफरोगचिकित्सा।

वातरक्तकी चिकित्सा ।

वायुः प्रवृद्धो वृद्धेन रक्तेनावारिते पथि ।
क्रुद्धः संदूषयेद्रक्तं तज्ज्ञेयं वातशोणितम् ॥ १ ॥
उत्तानमथ गम्भीरं द्विविधं वातशोणितम् ।
त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानं गम्भीरं त्वन्तराश्रयम् ॥ २ ॥

जब कि बढेहुए रक्तसे वृद्धिगृत वायुका मार्ग रुकजाता है तब वह कुपित हुआ वायु सम्पूर्ण रक्तको दूषित करदेताहै, उसको वातशोणित रोग जानना

---

१ अत्रापि ग्रन्थपतनमिति प्रतिभगति ।

चाहिये। यह वातरक्त रोग, उत्तान और गम्भीर भेदोंसे दो प्रकारका है। जो त्वचा और मांसमें स्थित हो वह उत्तान और जो अन्तराओं अर्थात् धातुओंमें स्थित हो वह गम्भीर कहलाताहै ॥ १ ॥ २ ॥

दिवास्वप्नाग्निसन्तापं व्यायामं मैथुनं तथा ।
कट्वूष्णगुर्वभिष्यन्दिलवणाम्लानि वर्जयेत् ॥ ३ ॥

वातरक्तरोगमें दिनमें शयन, अग्निका तापना, सन्ताप करना, व्यायाम, स्त्रीप्रसंग करना, चरपरे, गरम, भारी, क्लेदजनक पदार्थ, नमक और खटाई इन पदार्थोंको छोडदेना चाहिये ॥ ३ ॥

आढक्यश्चणका मुद्गा मसूराः समुकुष्ठकाः ।
यूषार्थे बहुसर्पिष्काः प्रशस्ता वातशोणिते ॥ ४ ॥

वातरक्तरोगमें अडहर, चने, मूँग, मसूर और मोठ इनका यूष बनाकर बहुतसा घी डालकर देना चाहिये ॥ ४ ॥

छिन्नोद्भवा कषायेण सेव्यं शुद्धं शिलाजतु ।
पञ्चकर्मविशुद्धेन वातरक्तप्रशान्तये ॥ ५ ॥

वातरक्तको शान्त करनेके लिये वमन, विरेचनादि पञ्चकर्मोंके द्वारा शरीरकी शुद्धि करके पश्चात् गिलोयके काथके साथ शुद्ध शिलाजीत सेवन करनी चाहिये ॥ ५ ॥

पुराणा यवगोधूमनीवाराः शालिषष्टिकाः ।
भोजनार्थे हिता गव्यमहिषाजपयो हितम् ॥ ६ ॥

पुराने जौ, गेहूँ, नीवारधान, शालिधान और साठी धान ये सब धान्य एवं गौ भैंस और बकरीका दूध ये सब वातरक्तरोगीको भोजनके लिये हितकर हैं ॥ ६ ॥

हरीतकीः प्राश्य समं गुडेन तिस्रोऽथवा पञ्च ततो गुडूच्या।
काथोऽनु पीतः शमयत्यवश्यं प्रभिन्नमाजानुजवातरक्तम् ७

तीन अथवा पाँच हरडोंको गुडके साथ खाकर ऊपरसे गिलोयका काढा पीनेसे जानुपर्यन्त स्फुटित वातरक्तरोग निस्सन्देह नष्ट होता है ॥ ७ ॥

शम्याकामृतवासानामेरण्डस्नेहसंयुतम् ।
पीत्वा क्वाथमसृग्वातं क्रमात्सर्वाङ्गजं जयेत् ॥ ८ ॥

अमलतासकी फलीका गूदा गिलोय और अडूसा इनका काथ अण्डीका तेल मिलाकर पान करनेसे सर्वांगगत वातरक्तरोग दूर होताहै ॥ ८ ॥

गोधूमचूर्णाजपयो घृतञ्च सच्छागदुग्धो रुबुबीजकल्कः।
लेपो विधेयः शतधौतसर्पिः सेके पयश्चाविकमेव शस्तम् ९

गेहूँका आटा बकरीका दूध और बकरीका घी अथवा बकरीका दूध और अण्डीके बीजोंका कल्क किंवा सौबार धोयाहुआ घी ये तीनों प्रकारके प्रलेप करने और भेंडका दुग्ध पान करना वातरक्तरोगमें हितकारी है ॥ ९ ॥

गुडूच्याः स्वरसं चूर्णं कल्कं वा काथमेव वा।
प्रभूतकालमासेव्य मुच्यते वातशोणितात् ॥
लेपे पिष्टास्तिलास्तद्वद्भृष्टाः पयसि निर्वृताः ॥ १० ॥

गिलोयका स्वरस चूर्ण कल्क अथवा काथ बहुत दिनोंतक सेवन करनेसे रोगी वातरक्तरोगसे मुक्त होताहै। और वातरक्तमें भुनेहुए तिलोंको दूधमें पीसकर लेप करनेसे भी वातरक्त रोग दूर होताहै ॥ १० ॥

गन्धर्वहस्तवृषगोक्षुरकामृतानां
मूलं बलेक्षुरकयोश्च पचेत्तु धीमान्।
वातास्रमाशु विनिहन्ति चिरप्ररूढ-
माजानुगं स्फुटितमूर्ध्वगतं तु धीमान् ॥ ११ ॥

अण्डकी जड बिसौंटेकी जड गोखुरू गिलोय खिरैंटीकी जड और तालमखानेकी जड इनका काथ बनाकर सेवन करनेसे बहुत दिनोंका पुराना जानुपर्यन्त फैलाहुआ और ऊर्ध्वगत भयानक वातरक्त शीघ्र नष्ट होताहै ॥ ११ ॥

कोकिलाक्षामृताकाथे पिबेत्कृष्णां यथाबलम्।
पथ्यभोजी त्रिसप्ताहान्मुच्यते वातशोणितात् १२ ॥

तालमखाना और गिलोयके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर अपनी अग्निके बलानुसार पान करे और हितकर पदार्थोंका सेवन करे तो २१ दिनमेंही वातरक्तरोगसे मुक्त होताहै ॥ १२ ॥

तालेन निहतं ताम्रं रसगन्धकसंयुतम्।
बहुधा पुटितं तालं वातरक्ते महौषधम् ॥ १३ ॥

हरतालके द्वारा ताम्रपत्रको लेसकर यथाविधि पुटपाक करके उसकी भस्म करलेवे। फिर उक्त ताँबेकी भस्म एवं शुद्धपारा और शुद्धगन्धक इन तीनोंको

समानभाग मिलाकर सेवन करनेसे वातरक्त दूर होताहै। एवं वातरक्तरोगमें बहुतसे सम्पुटोंद्वारा भस्म की हुई हरताल परमोत्कृष्ट औषधि है ॥ १३ ॥

अमृतादि।

अमृतानागरधान्यकत्रितयेन पाचनं सिद्धम्।
जयति सरक्तं वातं सामं कुष्ठान्यशेषाणि ॥ १४ ॥

गिलोय सोंठ और धनियाँ इन तीनोंको समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर सेवन करनेसे वातरक्त आमवात और सम्पूर्ण कुष्ठरोग दूर होते हैं ॥ १४ ॥

सिंहास्यादि।

सिंहास्यपञ्चमूलीच्छिन्नरुहैरण्डगोक्षुरक्काथः।
एरण्डतैलरामठसैन्धवचूर्णान्वितं पीतः ॥ १५ ॥
प्रशमयति वातरक्तं तथामवातं कटिशूलम्।
मूत्रपुरीषविबन्धं ब्रध्नविकारं सुदुर्वारम् ॥ १६ ॥

अडूसेकी जड, पञ्चमूलकी ओषधियाँ, गिलोय, अण्डकी जड और गोखुरू इनके क्वाथमें अण्डीका तेल, हींग और सैंधानमकका चूर्ण मिलाकर पानकरनेसे वातरक्त शीघ्र शमन होता है तथा आमवात, कटिशूल, मल मूत्रका अवरोध और दुस्तर ब्रध्नरोग नष्ट होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

पटोलादि।

पटोलकटुकाभीरुत्रिफलामृतसाधितम्।
क्वाथं पीत्वा जयेज्जन्तुः सदाहं वातशोणितम् ॥ १७ ॥

पटोलपात, कुटकी, शतावर, हरड, बहेडा, आमला और गिलोय इनके यथाविधि सिद्ध कियेहुए क्वाथको पीनेसे दाहयुक्त रोग दूर होता है ॥ १७ ॥

मञ्जिष्ठादि।

माञ्जिष्ठा त्रिफला निम्बं वचा कटुकरोहिणी।
वत्सादनी दारुनिशाक्काथो वातरक्तादिनुत् ॥ १८ ॥

मञ्जीठ, त्रिफला, नीमकी छाल, वच, कुटकी, गिलोय और दारुहल्दी इनका क्वाथ सेवन करनेसे वातरक्त नष्ट होता है ॥ १८ ॥

त्रिवृतादि।

त्रिवृद्विदारीगोक्षुरक्काथोवातास्रनाशनः ॥ १९ ॥

निसोत, विदारीकन्द और गोखुरू इन तीनोंका क्वाथ वातरक्तको नष्टकरताहै॥

नवकार्षिक।

त्रिफलानिम्बमाञ्जिष्ठा वचा कटुकरोहिणी।
वत्सादनी दारुनिशा कषायो नवकार्षिकः॥ २०॥
वातरक्तं तथा कुष्ठं पामानं रक्तमण्डलम्।
कण्डुः कापालिकाकुष्ठं पानादेवापकर्षति॥ २१॥
पञ्चरक्तिकमाषेण कार्योऽयं नवकार्षिकः।
किन्त्वेवं साधिते क्वाथे योग्यमात्रा प्रदीयते॥ २२॥

त्रिफला, नीमकी छाल, मंजीठ, वच, कुटकी, गिलोय और दारुहल्दी इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे वातरक्त, कुष्ठ, खुजली, रक्तमण्डल, कण्डू और कपालकुष्ठ ये सब रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। (इसमें प्रत्येक ओषधि ५-रत्तीके मासेके हिसाबसे एकएक कर्षलेवे। इस प्रकार ९ ओषधियोंको ९ कर्ष लेकर उपयुक्त जलमें पकाकर यथाविधि क्वाथ बनावे।) किन्तु इस क्वाथको रोगीके बलानुसार उचितमात्रासे देना चाहिये॥ २०-२२॥

निम्बादिचूर्ण।

निम्बामृताभयाधात्री प्रत्येकञ्च पलोन्मितम्।
सोमराजी पलं शुण्ठी विडङ्गैडगजाः कणाः॥ २३॥
यमानी चोग्रगन्धा च जीरकं कटुकं तथा।
खादिरं सैन्धवं क्षारं द्वे हरिद्रे च मुस्तकम्॥ २४॥
देवदारु तथा कुष्ठं कर्षं कर्षं प्रदापयेत्।
सर्वं सञ्चूर्णितं कृत्वा श्लक्ष्णवस्त्रेण छानयेत॥ २५॥
शाणमात्रं तु भोक्तव्यं छिन्नाक्वाथं पिबेदनु।
मासमात्रप्रयोगेण भवेत्काञ्चनसन्निभः॥ २६॥
वातशोणितमत्युग्रं श्वित्रमौदुम्बरं तथा।
कोठं चर्मदलारण्यञ्च सिध्मपामा च विप्लुता॥ २७॥
कण्डूर्विचर्चिकारूंषि दद्रुमण्डलकिट्टिभम्।
सर्वाण्येव निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा॥ २८॥
आमवातकृतं शोथमुदरं सर्वरूपिणम्।
प्लीहानं गुल्मरोगञ्च पाण्डुरोगं सकामलम्॥ २९॥

सर्वान्कण्डुव्रणांश्चैव हरते नात्र संशयः।
एतन्निम्बादिकं चूर्णं प्राह नागार्जुनो मुनिः ॥ ३० ॥

नीमकी छाल, गिलोय, हरड, आमला और बापची येप्रत्येक चारचार तोले एवं सोंठ, वायविडङ्ग, पमारकी जड,पीपल, अजवायन, बच, जीरा कुटकी, खैर, सैंधानमक,जवाखार, हल्दी, दारुहल्दी,नागरमोथा, देवदारु और कूठ इन सबको दो दो तोले लेवे। फिर सबको एकत्र चूर्णकर बारीक कपडेमें छान-लेवे। इस चूर्णको प्रतिदिन चारचार मासे सेवनकर ऊपरसे गिलोयका क्वाथ पानकरे। इस प्रकार एक महीनेतक सेवन करनेसे शरीर सुवर्णकीसमान कान्ति-मान् होजाता है। यह चूर्ण अत्यन्त भयंकर वातरक्त, श्वेतकुष्ठ, औदुम्बरकुष्ठ, कोठेके रोग, चर्मदलरोग, सिध्म, पामा, विप्लुता, खुजली, विचर्चिका, फुन्सियाँ,दाद,चकत्ते और किट्टिभकुष्ठ इन सम्पूर्णरोगोंको इस प्रकार शीघ्र नष्ट करदेता है जैसे वज्र वृक्षको तत्काल नाश करदेता है। एवं आमवातजात शोथ, सर्वप्रकारके उदरविकार, प्लीहा, गुल्म, पाण्डु, कामला सब प्रकारकी खुजली और सम्पूर्ण व्रणोंको निस्सन्देह दूर करता है। इस निम्बादिचूर्णको नागार्जुनमुनिने वर्णन किया है ॥ २३-३० ॥

वातरक्तान्तकरस।

पारदं गन्धकं लौहं घनं तालं मनःशिला।
शिलाजतु पुरं शुद्धं समभागं विचूर्णयेत् ॥ ३१ ॥
विडङ्गं त्रिफला व्योषमब्धिफेनं पुनर्नवा।
देवदारु चित्रकश्च दार्वी श्वेतापराजिता ॥ ३२ ॥
चूर्णमेषां पृथक् तुल्यं सर्वमेकत्र भावयेत्।
त्रिफलाभृङ्गराजस्य रसेनैव त्रिधा त्रिधा ॥ ३३ ॥
सम्भाव्य भक्षयेत्पश्चान्माषमात्रं दिनेदिने।
कृत्वानुपानं निम्बस्य पत्रं पुष्पं समं त्वचम् ॥ ३४ ॥
शाणमात्रं घृतैः कुर्यात्सर्ववातविकारनुत्।
वातरक्तं महाघोरं गम्भीरं सर्वजं जयेत् ॥
सर्वोपद्रवसंयुक्तं साध्यासाध्यं निहन्त्ययम् ॥ ३५ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, हरताल, मैनसिल, शिला-जीत, शुद्धगूगल, वायविडंग, त्रिफला, त्रिकुटा, समुद्रफेन, पुनर्नवा, देवदारु, चीतेकी जड, दारुहल्दी और श्वेतकोयल इनके चूर्णको समानभाग लेकर

त्रिफले और भँगरेके रसके साथ पृथक् पृथक् तीन तीन बार भावना देवे। फिर प्रतिदिन इसको एक एक माशा खाय और ऊपरसे नीमके पत्ते, फूल एवं छाल इनके समानभाग मिश्रित काथको चार माशे घृतके साथ मिलाकर भक्षणकरे। यह रस सर्वप्रकारके वातविकारोंको नष्ट करता है। तथा महाघोर वातरक्त, अत्यन्त गम्भीर, सम्पूर्ण उपद्रवोंसे युक्त, साध्य अथवा असाध्य और सर्वदोषोत्पन्न वातरक्त रोगको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ३१--३५ ॥

(अन्य प्रकार वातरक्त चिकित्सा)

विश्वेश्वररस।

रसाद्दश विषात्पञ्च गन्धकाद्दश शोधितात्।
तुत्थाद्दशपलाशस्य बीजेभ्यः पञ्च कारयेत्॥ १ ॥
क्षुद्राश्वमारधुस्तूरकरहाटकनीलितः।
दशकं दशकं कुर्याच्छोषयित्वा जटात्वचः ॥ २ ॥
दशकं दशकं दत्त्वा कुचिलाद्दशनूतनात्।
भल्लातकाच्च दशकं चूर्णयित्वा भिषक् ततः ॥ ३ ॥
सुदिने च बलिं दत्त्वा वैद्यः पूजापरायणः।
रक्तिकाद्वितयं दद्यात्सहते यदि वा त्रयम् ॥ ४ ॥
वातरक्तं ज्वरं कुष्ठं खरस्पर्शमसौख्यदम्।
आजानुस्फुटितं हन्ति विषजं वान्तिनिःसृतम् ॥५॥
कुष्ठमष्टादशविधमग्निमान्द्यमरोचकम्।
विश्वेश्वरो रसो नाम विश्वनाथेन भाषितः ॥ ६ ॥

शुद्धपारा १० तोले, शुद्ध मीठा तेलिया ५ तोले, शुद्ध गन्धक १० तोले, तूतिया १० तोले, ढाकके बीज ५ तोले, एवं कटेरी, कनेर, धतूरेके बीज, मैनफल, नीलका वृक्ष, बालछड, दारचीनी, शुद्धकुचला और भिलावे ये प्रत्येक ओषधि दश दश तोले लेकर सबका एकत्र बारीक चूर्ण करके कपडछान करलेवे। फिर चतुर वैद्य शुभदिनमें इष्टदेवका पूजनकर और बलि देकरके रोगीको प्रतिदिन दो दो रत्ती अथवा उसकी सहनशक्तिके अनुसार तीन तीन रत्ती प्रमाण सेवन करावे। यह रस वातरक्त,ज्वर कुष्ठ, दुःखद खरस्पर्श, जानुपर्यन्त स्फुटितवात, विषजन्य विकार, रुधिरकी वमन, १८ प्रकारके कोढ, मन्दाग्नि, अरुचिप्रभृति रोगोंको तत्काल नष्ट करताहै। यह विश्वेश्वरनामवाला रस है; इसको विश्वनाथ शिवजीने कहा है ॥ १--६ ॥

द्वादशायस।

गुरुत्मान् दरदस्तीक्ष्णं सर्वाख्यो वंगशुक्तिके।
शुल्वञ्च गगनं फेनं रुधिरञ्च त्रिनेत्रकम् ॥ ७ ॥
पातालनृपतिश्चैव वह्निमूलं सरामठम्।
त्रिकटु त्रिफला शिग्रू चाजमोदा यमानिका ॥ ८ ॥
पिप्पलीमूलकं भार्गी लशुनं जीरकद्वयम्।
आर्द्रकस्य रसेनैव वटिकां कारभेद्भिषक् ॥ ९ ॥
वातरक्तं महाकुष्ठं गलिताङ्गं त्रिदोषजम्।
शोथं कण्डूञ्च रुधिरं सर्वमेतद्व्यपोहति ॥ १० ॥
मन्दानलामवातञ्च श्लेष्माणञ्च जलोदरम्।
घ्राणाक्षिकर्णजिह्वानां सर्वरोगं विनाशयेत्॥ ११ ॥

सोनामाखी, हिंगुल, लोहभस्म, पारेकीभस्म, वंगभस्म, शुद्धगन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रक, समुद्रफेन, गेरू, सुवर्ण, शीशा, चीतेकी जड, हींग, सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, सहिंजनेके बीज, अजमोद, अजवायन, पीपलामूल, भारंगी, लहशुन, जीरा और कालाजीरा इन सबको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण करके अदरखके रसमें खरलकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस बटीके सेवन करनेसे वातरक्त, दुस्तर कुष्ठ, गलित कुष्ठ, त्रिदोषोत्पन्न शोथ, खुजली, दूषित रुधिर, मन्दाग्नि, आमवात, कफ, जलोदर एवं नाक, आँख कान और जिह्वाके सम्पूर्णरोग दूर होते हैं ॥ ७-११ ॥

गुडूच्यादिलौह।

गुडूची सारसंयुक्तं त्रिकत्रययुतन्त्वयः।
वातरक्तं निहन्त्याशु पित्तरोगहरं परम् ॥ १२ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, वायविडंग, नागरमोथा, चीता और गिलोयका सत्त्व ये प्रत्येक एकएक तोला लोहभस्म १०तोले लेकर सबको एकत्र खरल करके पाँच पाँच रत्ती प्रमाण सेवन करे। इसके सेवनसे वातरक्त शीघ्र नष्ट होताहै ये पित्तरोगको हरनेके लिये तो यह परमोत्कृष्ट औषधहै १२

पित्तान्तकलौह।

रसं गन्धकमभ्रञ्च गुडूचीमभयां तथा।
उशीरं बालकं ताम्रसारं सर्वं समं समम् ॥ १३ ॥

गृहीत्वायः सर्वसमं खल्वे संस्थाप्य मर्दयेत् ।
रक्तिद्वयमिता खादेद्वटिकामतियत्नतः ॥ १४ ॥
पटोलपत्रधन्याककाथेनैवानुपानतः ।
पाण्डुं पित्तोद्भवान् रोगानशेषान्यकृतं तथा ॥ १५ ॥
उपदंशं तथा हन्याद्विकृतिं पारदोद्भवाम् ।
लौहं पित्तान्तको नाम वातरक्तं सुदारुणम् ॥
दाहञ्च हस्तपादाना हन्ति सूर्यो यथा तमः ॥ १६ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, अभ्रक, गिलोय, हरड, खस, सुगन्धवाला और लालचन्दन इन सबको समान भाग और सबकी बराबर लोहभस्म लेवे । फिर सबका एकत्र चूर्ण करके खरलमें डालकर जलके साथ घोटे और दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इसकी प्रतिदिन एकएक गोली भक्षणकर पटोलपात और धनियेके काथका अनुपान करे । यह पित्तान्तक नामक लौह पाण्डु, पित्तजन्य सम्पूर्णरोग, यकृत, उपदंश और पारेके दोषसे उत्पन्नहुए विकारोंको नष्ट करता है। एवं दारुण वातरक्त और हाथ पाँवकी दाहको इस प्रकार नष्ट कर-देता है जैसे सूर्य अन्धकारको तत्काल नाश करदेता है ॥ १३-१६ ॥

लांगलाद्यलोह ।

विशुद्धलाङ्गलीमूलत्रिकटुत्रिफलैस्तथा ।
द्राक्षागुग्गुलुभिस्तुल्यं लौहचूर्णं नियोजयेत् ॥ १७ ॥
मातुलुङ्गरसेनैव त्रिफलाया रसेन वा ।
विमर्द्य यत्नतः पश्चाद्वटिकां कोलसम्मिताम् ॥ १८ ॥
भक्षयेन्मधुना सार्द्धं शृणु कुर्वन्ति यान् गुणान् ।
आजानुस्फुटितं घोरं सर्वाङ्गस्फुटितं तथा ॥
तत्सर्वं नाशयत्याशु साध्यासाध्यश्च शोणितम् १९ ॥

शुद्ध कलिहारीकी जड, त्रिकुटा, त्रिफला, दाख और गगल ये प्रत्येक समान भाग और सबकी बराबर लोहभस्म मिलाकर बिजौरेनींबूके रसके साथ पश्चात् त्रिफलेके काथके साथ खरल करके छोटे बेरकी समान गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे नित्य एकएक गोली शहदके साथ भक्षण करे । यह लौह जिनजिन गुणोंको करता है उनको कहते हैं सुनो । यह लौह जानुपर्यंतस्फुटित और सर्वाङ्गस्फुटित घोर वातरक्तको एवं साध्य व असाध्य सर्वप्रकारके वातरक्तको शीघ्र नष्ट करता है ॥ १७-१९ ॥

योगसारामृत।

शतावरी नागबला वृद्धदारकमुञ्चटाः।
पुनर्नवामृता कृष्णा वाजिगन्धा त्रिकण्टकम् ॥ २० ॥
पृथक् दशपलान्येषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्।
तदर्द्धं शर्करायुक्तचूर्णं सम्मर्दयेद्बुधः ॥ २१ ॥
स्थापयेत्सुदृढे पात्रे मध्वाढ्याढकसंयुतम्।
घृतप्रस्थे समालोड्य त्रिसुगन्धिपलेन तु ॥ २२ ॥
तं खादेदिष्टचेष्टात्मा यथावह्निबलं नरः।
वातरक्तं क्षयं कुष्ठं कार्श्यं पित्तास्रसम्भवम् ॥ २३ ॥
वातपित्तकफोत्थांश्च रोगानन्यांश्च तद्विधान्।
हत्वा करोति पुरुषं वलीपलितवर्जितम् ॥
योगसारामृतो नाम लक्ष्मीकान्तिविवर्द्धनः ॥ २४ ॥

शतावर, गंगेरन, विधारेके बीज, भुई आमला, पुनर्नवा, गिलोय, पीपल, असगन्ध और गोखुरू इन सबको अलग अलग दश दश पल लेकर बारीक चूर्ण कर लेवे। फिर सब चूर्णसे दुगुनी खाँड, शहद दो प्रस्थ और घी १ प्रस्थ (६४ तोले) लेकर सबको एक उत्तम और सुदृढ पात्रमें भरकर अच्छे प्रकारसे मिलादेवे। पश्चात् दारचीनी, इलायची, तेजपात इनके चार चार तोले चूर्णको डालकर सबको एकमएक करलेवे। बुद्धिमान् मनुष्य इसको अपनी अग्निका बलाबल विचारकर उचित मात्रासे सेवन करे और इच्छानुसार आहार विहार करे। योगसारामृत नामक औषध वातरक्त, क्षय, कोढ, कृशता, पित्तरक्तजन्यरोग, वात पित्त, कफोत्पन्नरोग और अन्यान्य अनेक प्रकारके रोगोंको नष्टकर पुरुषार्थको बढाताहै। वली और पलितरोगको दूर कर शोभा और कान्तिको उत्पन्न करताहै ॥ २०–२४ ॥

तालभस्म।

हरितालं पलं शुद्धं तथा कर्षं विषस्य च।
श्वेताङ्कोटरसेनैव द्वयमेकत्र खल्लयेत् ॥ २५ ॥
पलाशभस्म द्विपलं निधाय स्थालिकोपरि।
तद्भस्मोपरि तालस्य गोलकं स्थापयेत्सुधीः ॥ २६ ॥
तस्योपरि अपामार्गभस्म दद्यात्पलत्रयम्।

स्थालीमुखे शरावञ्च दद्याद्यत्नेन लेपयेत् ॥ २७ ॥
लेपयित्वा ततश्चुल्यामहोरात्रं पचेद्भिषक् ।
ततस्तु जायते भस्म शुद्धकर्पूरसन्निभम् ॥ २८ ॥
गुञ्जात्रयं ततो भक्ष्यमनुपानविशेषतः ।
वातरक्तञ्च कुष्ठञ्च दद्रुविस्फोटकापचीः ॥ २९ ॥
विचर्चिकां चर्मदलं वातापित्तञ्च शोणितम् ।
रक्तपित्तं तथा शोथं गलत्कुष्ठं विनाशयेत् ॥
हलीमकं तथा शूलमग्निमान्द्यमरोचकम् ॥ ३० ॥

शुद्ध हरताल ४ तोले, शुद्ध मीठा तेलिया २ तोले इन दोनोंको सफेद अङ्कोलके रससे एकत्र खरल कर गोलासा बनालेवे । फिर आठ तोले ढाककी भस्मको एक हाँडीमें भरकर उस भस्मके ऊपर पूर्वोक्त हरतालके गोलेको रखे। और उसके ऊपर चिरचिटेकी भस्म १२ तोले रखे । फिर हाँडीके मुखपर सकोरेको ढककर और अच्छेप्रकारसे सन्धिस्थानोंमें मिट्टीका लेप करके चूल्हे-पर रखकर एक दिन और एक रात्रिपर्यन्त पकावे । इस प्रकार पकानेसे सफेद कर्पूरकी समान हरताल भस्म होजाती है । इसको नित्यप्रति तीन २ रत्तीकी मात्रासे अनुपान विशेषके साथ सेवन करना चाहिये । यह वातरक्त, कुष्ठ, दाद, विस्फोटक, अपची, विचर्चिका, त्वक्रोग, वातापित्त, रुधिरविकार, रक्तपित्त, शोथ, गलत्कुष्ठ, हलीमक, शूल, मन्दाग्नि और अरुचिआदि रोगोंको नाश करती है ॥ २५–३० ॥

महातालेश्वर रस ।

तथा सिद्धेन तालेन गन्धतुल्येन मेलयेत् ।
द्वयोस्तुल्यं जीर्णताम्रं वालुकायन्त्रगं पचेत् ॥ ३१ ॥
अयं तालेश्वरो नाम रसः परमदुर्लभः ।
हन्यात्कुष्ठानि सर्वाणि वातरक्तमथापि च ॥
शूलमष्टविधं श्वित्रं रसस्तालेश्वरो महान् ॥ ३२ ॥

उपर्युक्त विधिके अनुसार हरतालकी भस्म करके उसके साथ शुद्ध गन्धक समानभाग मिलावे और दोनोंकी वरावर ताम्रभस्म मिलावे । फिर सबको एकत्र करके बालुकायन्त्रमें पकावे । इस प्रकार यह परमदुर्लभ महातालेश्वर-नामक रस सिद्ध होताहै । यह रस सर्वप्रकारके कुष्ठ, वातरक्त, आठप्रकारके शूल और श्वेतकुष्ठको नष्ट करता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अमृतागुग्गुलु।

त्रिप्रस्थममृतायाश्च प्रस्थमेकन्तु गुग्गुलोः।
प्रत्येकं त्रिफला प्रस्थं वर्षाभूप्रस्थमेव च॥ ३३॥
सर्वमेकत्र संकुत्य साधयेल्लवणेऽम्भसि।
पुनः पचेत्पादशेषं यावत्सान्द्रत्वमागतम्॥ ३४॥
दन्तीचित्रकमूलानां कणा विश्वफलत्रिकम्।
गुडूचीत्वग्विडङ्गानां प्रत्येकार्द्धपलं मतम्॥ ३५॥
त्रिवृत्ताकर्षमेकन्तु सर्वमेकत्र चूर्णयेत।
सिद्धे उष्णे क्षिपेत्तत्र अमृतागुग्गुलं परम्॥ ३६॥
ततो यथाबलं खादेदम्लपित्ती विशेषतः।
वातरक्तं तथा कुष्ठं गुदजान्यग्निसादनम्॥ ३७॥
दुष्टव्रणप्रमेहांश्च आमवातं भगन्दरम्।
नाड्याढ्यवातं श्वयथुं हन्यात्सर्वामयांस्तथा॥
अश्विभ्यां निर्मितश्चायममृताख्यो हि गुग्गुलुः॥३८॥

गिलोय ३ प्रस्थ, गूगल १ प्रस्थ, त्रिफलेकी प्रत्येक ओषधि एकएक प्रस्थ और पुनर्नवा १ प्रस्थ सबको एकत्र कूटकर ३२ सेर जलमें पकावे। जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इस छनेहुए काथको पकावे। पकते पकते जब गाढा होजाय तब उसमें दन्तीकी जड, चीतेकी जड, पीपल, सोंठ, हरड, बहेडा, आमला, गिलोय, दारचीनी और वायविडंग इन प्रत्येक ओषधियोंका चूर्ण दो दो तोले और निसोतका चूर्ण एक तोला पाकके सिद्ध होने पर गरममेंही डालकर सबको एकमएक करलेवे। फिर इस परमश्रेष्ठ अमृतागूगलको विशेषकर अम्लपित्तरोगी जठराग्निके बलानुसार खाय यह विशेषकर अम्लपित्त, वातरक्त, कुष्ठ, बवासीर, मन्दाग्नि, दुष्टव्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर, नाडीगतवात, आढयवात, सूजन एवं सर्वप्रकारके अन्यान्यरोगोंको दूर करता है। इस अमृतानामवाली गूगलको अश्विनीकुमारोंने निर्मित कियाहै॥३३-३८॥

रसाभ्रगुग्गुलु।

कर्षद्वयं पारदस्य लौहं गन्धश्च तत्समम्।
लौहगन्धसमं चाभ्रं गुग्गुलुं कुडवद्वयम्॥ ३९॥

अमृताया रसप्रस्थे रसप्रस्थे फलत्रिके ।
सान्द्रीभूते रसे तस्मिन् गर्भं दत्त्वा विचक्षणः ॥ ४० ॥
त्रिकटु त्रिफला दन्ती गुडूची चेन्द्रवारुणी ।
विडङ्गं नागपुष्पञ्च त्रिवृता च सुचूर्णितम् ॥ ४१ ॥
प्रत्येकं कर्षमादाय सर्वमेकत्र कारयेत् ।
भक्षयेत्कोलमात्रं तु छिन्नाक्काथानुपानतः ॥ ४२ ॥
वातरक्तं महाघोरं स्फुटितं गलितं जयेत् ।
अष्टादशविधं कुष्ठं कृमिरोगाश्मरीं तथा ॥ ४३ ॥
भगन्दरं गुदभ्रंशं श्वेतकुष्ठं सकामलम् ।
अपचीं गण्डमालां च पामाकण्डूविचर्चिकाः ॥ ४४ ॥
चर्मकीलं महादद्रुं नाशयेन्नात्र संशयः ।
वातरक्तविनाशाय धन्वन्तरिकृतं पुरा ॥
रसाभ्रगुग्गुलुः ख्यातो वातरक्तेऽमृतोपमः ॥ ४५ ॥

शुद्धपारा २ तोले, लोहभस्म २ तोले, शुद्धगन्धक २ तोले, अभ्रक ४ तोले और शुद्ध गूगल दो कुडव लेवे । फिर इन सबको गिलोयके १ प्रस्थ रस और त्रिफलेके एक प्रस्थ क्वाथमें मिलाकर मन्दमन्द अग्निके द्वारा शनैः शनैः पाक करे । जब रस पकते पकते गाढा पडजाय तब उसमें त्रिकुटा, त्रिफला, दन्ती, गिलोय, इन्द्रायनकी जड, वायविडङ्ग, नागकेशर और निसोत ये प्रत्येक ओषधि एकएक तोला लेकर बारीक चूर्ण करके डालदेवे। इसको प्रतिदिन एकएक तोला परिमाण लेकर गिलोयके क्वाथके साथ सेवन करे । यह सर्वाङ्गमें फैलेहुए घोर तर वातरक्त और गलितकुष्ठको दूर करता है । तथा अठारह प्रकारके कुष्ठ, कृमिरोग, पथरी, भगन्दर, बवासीर, श्वेतकुष्ठ, कामला, अपची, गण्डमाला, पामा, खुजली, विचर्चिका, चर्मदल, दद्रु आदिरोगोंको निस्सन्देह नष्ट करता है । वातरक्तको नाशकरनेके लिये इस रसाभ्रनामक गुग्गुलको पूर्वकालमें धन्वन्तरि महाराजने बनाया है । यह वातरक्तमें अमृतके समान गुण करती है ॥

कैशोरकगुग्गुलु ।

वरमहिषलोचनोदरसन्निभवर्णस्य गुग्गुलोः प्रस्थम् ।
प्रक्षिप्य तोयराशौ त्रिफलाञ्च यथोक्तपरिमाणम् ॥ ४६ ॥

द्वात्रिंशाच्छिन्नरुहापलानि देयानि यत्नेन ।
विपचेदप्रमत्तो दर्व्या संघट्टयेन्मुहुर्यावत् ॥ ४७ ॥
अर्द्धक्षयितं तोयं जातं ज्वलनस्य सम्पर्कात् ।
अवतार्य वस्त्रपूतं पुनरपि संसाधयेत्पात्रे ॥ ४८ ॥
सान्द्रीभूते तस्मिन्नवतार्य हिमोपलप्रस्थे ।
त्रिफलाचूर्णार्द्धपलं त्रिकटाश्चूर्णं षडक्षपरिमाणम् ॥४९ ॥
कृमिरिपुचूर्णार्द्धपलं कर्षं कर्षं त्रिवृद्दन्त्योः ।
अमृतायाः पलमेकं दत्त्वा सम्मूर्च्छयं यत्नेन ॥ ५० ॥
उपयुज्य चानुपानं यूषं क्षीरं सुगन्धिसलिलञ्च ।
इच्छाहारविहारी भेषजमुपयुज्य सर्वकालमिदम् ॥५१॥
तनुरोधिवातशोणितमेकजमथ द्वन्द्वजं चिरोत्थञ्च ।
जयति स्रुतं परिशुष्कं स्फुटितं चाजानुजञ्चापि ॥ ५२ ॥
व्रणकासकुष्ठगुल्मश्वयथूदरपाण्डुमेहांश्च ।
मन्दाग्निञ्च विबन्धं प्रमेहपिटिकांश्च नाशयत्याशु॥ ५३ ॥
सततं निषेव्यमाणं कालवशाद्धन्ति सर्वगदान् ।
अभिभूय जरादोषं करोति कैशोरकं रूपम् ॥ ५४ ॥
प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थो जलमत्र षडाढकम् ॥
पाकायत्तं जलं पाके क्वाथे पाकप्रधानता ।
तस्मात् क्वाथविधौ नित्यं यतितव्यं चिकित्सकैः ॥५५॥

भैंसेके नेत्रके पेटकी समान उत्तम वर्णवाली भैंसिया गूगल ६४ तोले, त्रिफलेकी प्रत्येक ओषधि एक एक प्रस्थ और गिलोय ३२ पल इन सबको एकत्र६४सेर जलमें पकावे और करछीसे बारबार चलाताजाय । जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । (यद्यपि मूलमें लिखा है कि अर्द्धावशेष जल रहनेपर उतारलेवे । किन्तु आधाजल शेष रखनेसे क्वाथ ठीक नहीं बनता अतएव वृद्ध वैद्योंके उपदेशसे चतुर्थांशही शेष रखना चाहिये)। फिर इस क्वाथको लोहेकी कढाईमें करके अग्निपर चढाकर पकावे। जब पकते पकते गाढा होजाय तब उतारकर उसमें सफेद मिश्री ६४ तोले, त्रिफलेका चूर्ण दो तोले, त्रिकुटेका चूर्ण ६ तोले, वायविडङ्गका चूर्ण २ तोले, निसोत और दन्तीका चूर्ण एक एक तोला एवं गिलोयका चूर्ण ४ तोले डाल

कर सबको यथाविधि करछीसे मिलादेवे। इसको नित्यप्रति प्रातःसमय आधा आधा तोला मूँगके यूष,दूध अथवा सुगंधित जलके साथ सेवन करे और इसपर इच्छानुकूल आहार विहारकरे। यह ओषधि सब ऋतुओंमें सेवन करने योग्य है। यह गूगल शरीरको तन्दुरुस्तरखनेवाला, एकदोषज, द्विदोषज, त्रिदोषज, स्रवता हुआ व सूखाहुआ और जानुपर्यन्त फैलाहुआ, अत्यन्त पुराना वातरक्त रोग निश्चय दूर होताहै। तथा व्रण, खाँसी, कुष्ठ, गुल्म, सूजन, उदररोग, पाण्डु, प्रमेह, मन्दाग्नि, विबन्ध और प्रमेहपिडिका आदि सम्पूर्ण रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। यह गूगल निरन्तर सेवन करनेवाले मनुष्यको कालकी पाशसे मुक्त करदेताहै। वृद्धावस्थाको दूर करके फिरसे सुन्दर नवयौवन युक्त बनाता है। इसमें त्रिफलेकी प्रत्येक ओषधि पृथक् पृथक् एक एक प्रस्थ (६४ तोले) लेनी और जल ६ आढक परिमाण लेना चाहिये। पाकमें पाकके आधीन जल होताहै और उत्तम क्वाथके होनेपर श्रेष्ठ पाक होताहै, इसलिये चिकित्सकोंको क्वाथकी विधि जाननेके लिये यत्न करना चाहिये॥ ४६-६५॥

पुनर्नवा--गुग्गुलु।

पुनर्नवामूलशतं विशुद्धं रुबूकमूलञ्च तथा प्रयोज्य। दत्वा पलं षोडशकञ्च शुण्ठ्याः संकुट्य सम्यग्विपचेद्घटेऽपाम्॥ ५६॥ पलानि चाष्टावथ कौशिकस्य तेनाष्टशेषेण पुनः पचेत्तु। एरण्डतैलं कुडवञ्च दद्याद्दत्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि पञ्च॥ ५७॥ निकुम्भचूर्णस्य पलं गुडूच्याः पलद्वयञ्चार्द्धपलं पलं वा। फलत्रयं त्र्यूषणचित्रकानि सिन्धूत्थभल्लातविडङ्गकानि॥ ५८॥ कर्ष तथा माक्षिकधातुचूर्ण पुनर्नवायाः पलमेव चूर्णम्। चूर्णानि दत्त्वा ह्यवतार्य शीते खादेन्नरः कर्षसमप्रमाणम्॥ ५९॥ वातासृजं वृद्धिगदञ्च सप्त जयत्यवश्यं गृध्रसीं तथाच। जङ्घोरुपृष्ठत्रिकवस्तिजञ्च तथामवातं प्रबलञ्च हन्ति॥ ६०॥

पुनर्नवेकी जड १०० पल, अण्डकी जड १०० पल और सोंठ १६ पल, इन सबको एकत्र कूटकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते अष्टमांश जल शेष रहे तब उतारकर छानलेवे। पश्चात् इस क्वाथमें उत्तम शुद्ध गूगल

८ पल अण्डीका तेल एक कुडव (१६ तोले), निसोंतका चूर्ण ५ पल, दन्तीका चूर्ण ४ तोले, गिलोय, २ पल, हरड, बहेडा, आमला और त्रिकुटेकी प्रत्येक ओषधिका चूर्ण छः छः तोले, चीतेकी जड, सेंधानमक, भिलावे और बायविडङ्ग इन सबका चूर्ण डेढ डेढ पल, सोनामाखीका चूर्ण एक तोला और पुनर्नवेका चूर्ण ४ तोले डाल कर शनैः शनैः मन्दमन्द अग्निद्वारा अच्छे प्रकारसे पकावे । जब पककर स्वयंशीतल होजाय तब उतारलेवे । इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक तोला खाय । यह गूगल वातरक्त और सात प्रकारके वृद्धिरोगको अवश्य नष्ट करता है।एवं गृध्रसीवात-जंघागत, ऊरुगत, पृष्ठगत, त्रिकगतवात, वस्तिगत और प्रबल आमवातको दूर करताहै५६--६०

गुडूचीघृत ।

गुडूचीक्वाथकल्काभ्यां सपयस्कं शृतं घृतम् ।
हन्ति वातं तथा रक्तं कुष्ठं जयति दुस्तरम् ॥ ६१ ॥

गिलोयके क्वाथ और कल्क एवं दूधके साथ पकायाहुआ घृत वातरक्त और कठिनतर कुष्ठरोगको नष्ट करता है ॥ ६१ ॥

शतावरीघृत ।

शतावरीकल्कगर्भं रसे तस्याश्चतुर्गुणे ।
क्षीरतुल्यं घृतं पक्वं वातशोणितनाशनम् ॥ ६२ ॥

शतावरके कल्क और चौगुने क्वाथमें दूध और घी समानभाग डालकर घीको पकावे । यह घी वातरक्तको दूर करताहै ॥ ६२ ॥

अमृताद्यघृत ।

अमृता मधुकं द्राक्षा त्रिफला नागरं बला ।
वासारग्वधवृश्चीरदेवदारुत्रिकण्टकम् ॥ ६३ ॥
कटुकासवरी कृष्णा काश्मर्यस्य फलानि च ।
रास्नाक्षुरकगन्धर्ववृद्धदारघनोत्पलैः ॥ ६४ ॥
कल्कैरेभिः समैः कृत्वा सर्पिःप्रस्थं विपाचयेत् ।
धात्रीरससमं दत्त्वा वारित्रिगुणसंयुतम् ॥ ६५ ॥
सम्यक्सिद्धन्तु विज्ञाय भोजये पाने प्रशस्यते ।
बहुदोषान्वितं वातं रक्तेन सह मूर्च्छितम् ॥ ६६ ॥
उत्तानश्चापि गम्भीरं त्रिकजङ्घोरुजानुजम् ।

क्रोष्टुशीर्षे महाशूले चामवाते सुदारुणे ॥ ६७ ॥
वातरोगोपसृष्टस्य वेदनाश्चापि दुस्तराम् ॥
मूत्रकृच्छ्रमुदावर्त्तं प्रमेहं विषमज्वरम् ॥
एतान् सर्वान्निहन्त्याशु वातपित्तकफोद्भवान् ॥ ६८ ॥
सर्वकालोपयोगेन वर्णायुर्बलवर्द्धनम् ।
अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं घृतमेतदनुत्तमम् ॥ ६९ ॥

गिलोय, मुलैठी, दाख, त्रिफला, सोंठ, खिरैंटी, अडूसा, अमलतास, श्वेत पुनर्नवा, देवदारु, गोखुरू, कुटकी, शतावर, पीपल, कुम्भेरके फल, रास्ना, तालमखाना, अण्डकी जड, विधारेके बीज, नागरमोथा और नीलकमल इन सब ओषधियोंके समान भाग मिश्रित कल्कके साथ एक प्रस्थ आमलोंका रस, एक प्रस्थ घी और तीन प्रस्थ जल मिलाकर शनैःशनैः मन्दमन्द अग्निके द्वारा उत्तम विधिसे घृतको पकावे। जब अच्छे प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब इसको भोजन और पानमें व्यवहार करना चाहिये। यह घृत अनेक दोषोंसे युक्त वातरक्त, उत्तानवातरक्त, गम्भीरवातरक्त, त्रिक, जंघा, ऊरु और जानुओंमें स्थित वातरक्त तथा क्रोष्टुशीर्ष, प्रबलशूल, दुस्तर आमवात, वातरोगसे उत्पन्नहुई तीव्र पीडा, मूत्रकृच्छ्र, उदावर्त्त, प्रमेह, विषमज्वर और वात, पित्त, कफसे उत्पन्न हुये समस्त रोगोंको अल्पकालमें ही नाश करता है। इसको नित्यप्रति नियमानुसार सेवन करनेंसे बल, वर्ण और आयुकी वृद्धि होती है। इस परमोत्तम घृतको अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है ॥ ६३-६९ ॥

मध्यमगुडुची तैल ।

गुडूचीक्काथकल्काभ्यां सिद्धं तैलं पयः समम् ।
वातरक्तं निहन्त्याशु साध्यासाध्यमथापि वा ॥७०॥
एकजं द्वन्द्वजञ्चैव तथैव सान्निपातिकम् ।
नाशयेत्तिमिरं घोरं गुडूचीतैलमुत्तमम् ॥ ७१ ॥

गिलोयके क्काथ और कल्कके साथ दूध और तिलके तैलको समान भाग मिलाकर तैलको सिद्ध करे। यह तेल साध्य अथवा असाध्य वातरक्त, तथा एकदोषज, द्विदोषज और त्रिदोषज घोरतिमिररोगको तत्काल नष्ट करताहै ७१

बृहद्गुडूची तैल ।

शतं छिन्नरुहायाश्च जलद्रोणे विपाचयेत् ।
तेन पादावशेषेण तैलप्रस्थं विपाचयेत ॥ ७२ ॥

क्षीरं चतुर्गुणं दद्यात्कल्कानेतान् प्रयत्नतः ।
अश्वगन्धा विदारी च काकोल्यौ हरिचन्दनम् ॥ ७३ ॥
शतावरी चातिबला श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ।
कृमिघ्नं त्रिफला रास्नां त्रायमाणा च शारिवा ॥ ७४ ॥
जीवन्ती ग्रन्थिकं व्योषं वागुची भेकपर्णिका ।
विशाला ग्रन्थिपर्णश्च मञ्जिष्ठा चन्दनं निशा ॥ ७५ ॥
शताह्वा सप्तपर्णी च कार्षिकान्युपकल्पयेत् ।
पानाभ्यञ्जननस्येषु वातरक्ते प्रयोजयेत् ॥ ७६ ॥
वातरक्तमुदावर्त्तं कुष्ठान्यष्टादशैव तु ।
हनुस्तम्भं प्रमेहञ्च कामलां पाण्डुतां जयेत् ॥ ७७ ॥
विस्फोटश्च विसर्पश्च नाडीव्रणभगन्दरम् ।
विचर्चिकां गात्रकण्डुं पाददाहं विशेषतः ॥ ७८ ॥
एतत्तैलवरं श्रेष्ठं वलीपलितनाशनम् ।
आत्रेयनिर्मितञ्चैव बलवर्णकरं स्मृतम् ॥ ७९ ॥

सौ पल गिलोयको ३२सेर जलमें पकावे । पकते पकते जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर काथके साथ तिलका तैल १ प्रस्थ, दूध ४ प्रस्थ, कल्कके लिये असगन्ध, विदारीकन्द, काकोली, क्षीरकाकोली, श्वेतचन्दन, शतावर, कंघी, गोखुरू, बडी कटेरी, कटेरी, वायविडंग, त्रिफला, रायसन, त्रायमाणा, अनन्तमूल, जीवन्ती, पीपलामूल, त्रिकुटा, वापची, मंडूकपर्णी, इन्द्रायन, गठिवन, मजीठ, लालचन्दन, हल्दी, सौंफ और लज्जावन्ती इन प्रत्येकके एकएककर्ष परिमाण कल्कको मिलाकर यथाविधि तैलको पकावे । इस बृहद्गुडूची तैलको वातरक्तमें पान, मर्द्दन और नस्य कर्मोंके द्वारा प्रयोग करे । यह श्रेष्ठ तैल वातरक्त, उदावर्त्त, १८ प्रकारके कुष्ठ, हनुस्तम्भ, प्रमेह, कामला, पाण्डु, विस्फोटक, विसर्प, नाडीव्रण, भगन्दर, विचर्चिका, शरीरकी खुजली, पैरोंकी जलन और वली, पलित आदि विकारोंको दूर कर बल, वर्ण और अग्निको बढाता है । इसको आत्रेय ऋषिने बनाया है ॥ ७२-७९ ॥

महारुद्रगुडूचीतैल ।

अमृतायास्तुलां सम्यग् जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पिचुमर्दत्वचं क्षुण्णां भाजनप्रतिमां तथा ॥ ८० ॥

जलद्रोणे विनिःक्वाथ्य ग्राह्यं पादावशेषितम्।
प्रस्थश्च कटुतैलस्य गोमूत्रश्चापि तत्समम् ॥ ८१ ॥
अमृता वागुची कुम्भी करवीरफलत्रिकम्।
दाडिमं निम्बबीजञ्च रजन्यौ बृहतीद्वयम् ॥ ८२ ॥
नागबला त्रिकटुकं पत्रं मांसी पुनर्नवा।
ग्रन्थिकं विकसाश्वाह्वा शतपुष्पा च चन्दनम् ॥ ८३ ॥
शारिवे द्वे सप्तपर्णो गोमयस्य रसस्तथा।
एषां कर्षमितैर्भागैः साधयेन्मृदुनाग्निना ॥ ८४ ॥
वातरक्तं निहन्त्याशु सर्वोपद्रवसंयुतम्।
कुष्ठश्चाष्टादशविधं विसर्पञ्च व्रणामयम् ॥
महारुद्रगुडूच्याख्यं तैलं भुवनदुर्लभम् ॥ ८५ ॥

सौ पल उत्तम गिलोयको १ द्रोण जलमें पकावे। जब चौथाई भाग जल शेष रहे तब उतारकर छान लेवे। इसी प्रकार आठसेर नीमकी छालको कूटकर एक द्रोण जलमें पकाकर चतुर्थांश जलशेष रहनेपर ग्रहण करे। फिर उसमें सरसोंका तैल १ प्रस्थ, गोमूत्र १ प्रस्थ, कल्कके लिये गिलोय, बापची, दन्तीकी जड, कनेरकी जड, त्रिफला, अनार, निबौली, हल्दी, दारुहल्दी, कटेरी, वडी कटेरी, गंगेरन, त्रिकुटा, तेजपात, बालछड, पुनर्नवा, पपिलामूल, मंजीठ, असगन्ध, सोया, रक्तचन्दन, अनन्तमूल, श्यामालता (कालीसर), सातिवन और गोबरका रस इन सबको एक एक कर्ष परिमाण डालकर मन्द मन्द अग्निके द्वारा तैलको सिद्ध करे। यह तैल सम्पूर्ण उपद्रवोंसे युक्त वातरक्त, अठारह प्रकारके कुष्ठ, विसर्प और व्रणरोगोंको बहुत जल्द नाश करदेता है। यह महारुद्रगुडूची नामवाला तैल पृथ्वीमें परम दुर्लभहै ॥ ८०-८५ ॥

महापिण्डतैल।

अमृतायाः पलशतं सोमराजीतुलां तथा।
प्रसारण्याः पलशतं जलद्रोणे पृथक् पचेत् ॥ ८६ ॥
पादशेषं गृहीत्वा च तैलप्रस्थं पचेद्भिषक्।
क्षीरं चतुर्गुणं दत्त्वा मन्दमन्देन वह्निना ॥ ८७ ॥
पिण्डशालजनिर्याससिन्दुवारफलत्रयम्।
विजया बृहती दन्ती कक्कोलकपुनर्नवाः ॥ ८८ ॥

वह्निग्रन्थिककुष्ठानि निशे द्वे चन्दनद्वयम्।
पूतिपूतीकसिद्धार्थवागुचीचक्रमर्दकम् ॥ ८९ ॥
वासानिम्बपटोलानि वानरीबीजमेव च।
आश्वाह्वा सरलं सर्वं प्रतिकर्षमितं पचेत् ॥ ९० ॥
एतत्तैलवरं हन्ति वातरक्तमसंशयम्।
कुष्ठमष्टादशविधं ग्रन्थिवातं सुदारुणम् ॥ ९१॥
सन्धिग्रहश्चामवातं भगन्दरगुदामयम्।
ज्वरमष्टविधं हन्ति मर्दनान्नात्र संशयः ॥ ९२ ॥

उत्तम गिलोय १०० पल, बापची १०० पल और प्रसारणी १०० पल इनको पृथक् पृथक् एक द्रोण जलमें पकावे। एक पकते पकते जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें कडवा तैल १ प्रस्थ, दूध ४ प्रस्थ (४ सेर), एवं शिलारस, राल, सिह्लाक, त्रिफला, भाँग बडी कटेरी, दन्तीमूल, काकोली, पुनर्नवा, चीतेकी जड, पीपलामूल, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, सफेदचन्दन, लालचन्दन, खट्टासी मुश्क, दुर्गन्धकरञ्ज, सफेद सरसों बापचीके बीज, चकवडके बीज, अडूसेकी छाल, नीमकी छाल, पटोलपात, कौंछके बीज, असगन्ध और धूपसरल ये प्रत्येक एक एक कर्ष डालकर मन्द-मन्द अग्निके द्वारा तैलको पकावे। यह परमोत्तम तैल वातरक्तको निस्सन्देह नष्ट करता है। एवं अठारह प्रकारके कुष्ठ, दारुण ग्रन्थिवात, सान्धिग्रह, आमवात, भगन्दर, अर्शरोग और आठप्रकारके ज्वर ये सब रोग इस तैलको मर्दन करनेसे अवश्य नष्ट होते हैं ॥ ८६--९२ ॥

विषतिन्दुकतैल।

विषतरुफलमज्जप्रस्थयुग्मश्च शिग्रु-
स्वरसलकुचवारिप्रस्थमेकैकशश्च।
कनकवरुणचित्रापत्रनिर्गुण्डिकास्नुक्
स्वरसतुरगगन्धा वैजयन्तीरसश्च ॥ ९३ ॥
पृथगिति परिकल्प्य प्रस्थयुग्मेन युग्मं
विषतरुफलमज्जातुल्यतैलं विपक्वम्।
लशुनसरलयष्टीकुष्ठसिन्धूत्थयुग्मं
दहनतिमिरकृष्णाकल्कयुक्तं सुसिद्धम् ॥

हराति सकलवातान् घोररूपानसाध्यान
प्रतिदिनमनुलेपात् सुप्तवातस्य जन्तोः ॥ ९४ ॥
कुष्ठमष्टादशविधं द्विविधं वातशोणितम् ॥
वैवर्ण्यं त्वग्गतान्दोषान्नाशयत्याशुमर्द्दनात् ॥ ९५ ॥

उत्तम पकेहुए २ प्रस्थ कुचलेको कूटकर १६ सेर जलमें पकावे। जब पकते पकते चार सेर जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसके साथ सहिंजनेका स्वरस, बडहरका स्वरस, काले धतूरेके पत्तोंका स्वरस, बरनाकी छालका स्वरस, चीतेके पत्तोंका रस, निर्गुण्डीके पत्तोंका स्वरस, थूहरके पत्तोंका स्वरस, असगन्धका क्काथ और जयन्तीके पत्तोंका स्वरस ये प्रत्येक एकएक प्रस्थ (उक्त ओषधियोंके स्वरसके अभावमें सूखी ओषधिको १ प्रस्थ लेकर चौगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई जलभाग शेष रहजाय तब उतारकर छानकर उस क्काथको ग्रहण करे।) मिलाकर एवं लहसुन, धूपसरल, मुलैठी, कूठ, सैंधानमक, विरियासञ्चर नमक, चीतेकी जड, हल्दी और पीपल इनके कल्कके साथ दो प्रस्थ कडवे तैलको सिद्ध करे। यह तैल अत्यन्त भयङ्कर और असाध्य सर्वप्रकारके वातरोगोंको दूर करताहै। इसको प्रतिदिन मर्दनकरनेसे सुप्तवात, अठारह प्रकारके कुष्ठ, दोनों प्रकारका वातरक्त, शरीरकी विवर्णता और त्वचासम्बन्धी सब विकार शीघ्र नाश होते हैं ॥ ९३-९५ ॥

रुद्रतैल।

पुनर्नवा निशा निम्बं वार्त्ताकुबृहतीत्वचम्।
कण्टकारी करञ्जश्च निर्गुण्डीवृषमूलकम् ॥ ९६ ॥
अपामार्गं पटोलञ्च धुस्तूरं दाडिमीफलम्।
जयन्तीमूलकं दन्ती प्रत्येकं कार्षिकद्वयम् ॥ ९७ ॥
त्रिफलायाः प्रदातव्यं द्विकर्षञ्च पृथक् पृथक्।
दत्त्वा छिन्नरुहायाश्च द्वात्रिंशच्च पलानि च ॥ ९८ ॥
पाचयेद्भाजने तोये चतुर्भागावशेषितम्।
कटुतैलस्य च प्रस्थं दुग्धञ्च तत्समं भवेत् ॥ ९९ ॥
वासकस्वरसप्रस्थं मन्दमन्देन वह्निना।
गन्धं शठी च काकोली चन्दनं ग्रन्थिकं नखी॥१००॥
पूतिकं केशरं कुष्ठं प्रत्येकं कार्षिकं पुनः।

हस्तपादाङ्गुलीसन्धिगलितं स्फुटितं तथा ॥ १ ॥
कृष्णं श्वेतं तथा रक्तं नानावर्णं सदाहकम् ।
पामां विचर्चिकां कण्डूं छायां त्वचश्च कालिनीम् ॥२॥
मसूरिकां मण्डलञ्च ज्वलनञ्च विसर्पकम् ।
नाडीव्रणं मर्म्महीनं गात्रवैवर्ण्यदद्रुकम् ॥
निहन्ति रक्तदोषञ्च भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १०३ ॥

काथके लिये गिलोयको ३२ पल लेकर ८ सेर जलमें पकावे। पकते पकते जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर उस काथमे पुनर्नवा, हल्दी, नीमकी छाल, बैंगन बडीकटेरी, दारचीनी, कटेरी, दुर्गन्धकरञ्ज, सिह्वाल, अडूसेकी जड, चिरचिटा, पटोलपात, धतूरा, अनारका बक्कल, जयन्तीकी जड, दन्ती, हरड, बहेडा और आमला प्रत्येक ओषधिका कल्क दो दो कर्ष डालकर एवं सरसोंका तेल ६४ तोले, दूध ६४ तोले और अडूसेका स्वरस ६४ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर मन्दमन्द अग्निके द्वारा तैलको पकावे । पश्चात् गन्धपाकके लिये काली अगर, कचूर, काकोली, सफेद चन्दन, गठिवन, नखी, दुर्गन्ध करञ्ज, नागकेशर और कूठ इन प्रत्येक औषधिको एक एक कर्ष परिमाण बारीक पीसकर मिलादेवे । उत्तम प्रकारसे सिद्ध हुआ यह तैल प्रतिदिन मर्द्दन करनेसे समस्त शरीरगत या हाथ, पाँव, अँगुली और सन्धिस्थानोंमें स्थित वातरक्त, गलितकुष्ठ, स्फुटकुष्ठ तथा काला, सफेद, लाल आदि अनेक वर्णोंके दाहयुक्त, कुष्ठ, पामा, विचर्चिका, खुजली, छाया रोग, त्वचाके रोग, कालिमा, मसूरिका, मण्डल (पित्ती) रोग, जलन, विसर्प, नाडीव्रण, मर्महीनता, शरीरकी विवर्णता, दाद और रुधिरके सम्पूर्ण विकार इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धेरेको दूरकरदेताहै ॥

महारुद्रतैल ।

पुनर्नवा निशा निम्बं वार्त्ताकुदाडिमीफलम् ।
बृहत्यौ पूतिकामूलं वासकं सिन्दुवारकम् ॥ १०४ ॥
पटोलपत्रं धुस्तूरमपामार्गं जयन्तिका ।
दन्ती वरा पृथक् सर्वं कर्षद्वयमितं पुनः ॥ १०५ ॥
विषस्य द्विपलं देयं पृथक् व्योषं फलत्रयम् ।
प्रस्थश्च सार्षपं तैलं प्रस्थाम्बु वृषपत्रजम् ॥ १०६ ॥

गुडूच्यास्तु चतुःषष्टिपलक्काथरसेन च।
वारिप्रस्थेन पक्तव्यं महारुद्रमिदं शुभम् ॥ १०७ ॥
वातरक्तं निहन्त्याशु नानादोषसमुद्भवम्।
अष्टादशविधं कुष्ठं हन्ति वर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ १०८ ॥
कृमिं दुष्टव्रणञ्चैव दाहं कण्डू निहन्ति च।
अस्वेदनं महास्वेदमभ्यङ्गादेव नश्यति ॥ १०९ ॥

गिलोयके ६४ पल स्वरस या क्काथके साथ सरसोंका तैल १ प्रस्थ, अडूसेके पत्तोंका स्वरस १ प्रस्थ और जल १ प्रस्थ एवं पुनर्नवा, हल्दी, नीमकी छाल, बैंगन, अनार, कटेरी, बडी कटेरी, दुर्गन्धकरञ्जकी जड, अडूसेकी छाल, सिह्माल्के पत्ते, पटोलपत्र, धतूरा, चिरचिटा, जयन्ती, दन्ती, हरड, बहेडा और आमला ये प्रत्येक ओषधि दो दो कर्ष, शुद्ध मीठातेलिया ८ तोले और सोंठ, मिरच, पीपल प्रत्येक बारह बारह तोले इन सबके कल्कको मिलाकर इस महारुद्र तैलको विधिपूर्वक पकाना चाहिये। यह उत्तम महारुद्रनामक तैल अनेक दोषोंसे उत्पन्नहुए वातरक्तको शीघ्र नष्टकरता है और अठारहप्रकारके कुष्ठ, कृमिरोग, दुष्टव्रण, दाह, खुजली, पसीनेका न आना अथवा अधिक आना इत्यादि सम्पूर्ण विकार इसकी मालिश करनेसे शीघ्र दूर होते हैं १०४-१०९॥

वातरक्तमें पथ्य।

यवषष्टिकनीवारकलमारुणशालयः।
गोधूमाश्चणका मुद्गास्तुवर्योऽपि मुकुष्टकाः ॥ १० ॥
अजानां महिषीणाञ्च गवामपि पयांसि च।
लावतित्तिरिसर्पद्विट्ताम्रचूडादिविष्किराः ॥ ११ ॥
प्रतूदाः शुकदात्यूहकपोतचटकादयः।
उपोदिका काकमाची वेत्राग्रं सुनिषण्णकम् ॥ १२ ॥
वास्तुकं कारवेल्लञ्च तण्डुलीयः प्रसारणी।
पत्तुरो वृद्धकूष्माण्डं सर्पिः शम्याकपल्लवम् ॥ १३ ॥
पटोलं रुबुतैलञ्च मृद्वीका श्वेतशर्करा।
नवनीतं सोमवल्ली कस्तूरी सितचन्दनम् ॥ १४ ॥
शिंशपागुरुदेवाह्वसरलं स्नेहमर्दनम्।
तिक्तश्च पथ्यमुद्दिष्टं वातरक्तगदे नृणाम् ॥ १५ ॥

जौ, साँठीके चावल, नीवारधान, कलमीधान, लालशालिके धान, गेहूँ, चने, मूँग, अरहर, मोठ, बकरी, भैंस और गौका दूध, लवा, तीतर, मोर, मुर्गा, विष्किरनामक पक्षी, गिद्ध, बाज, कौआ आदि प्रतूदसंज्ञक पक्षी, तोता, चातक, कबूतर, चिडिया आदिजीवोंका मांस, पोईका शाक, मकोय, बेंतका अग्रभाग, चौपतिया शाक, बथुआ, करेला, चौलाईका शाक, प्रसारणी, शांति-शाक, पकाहुआ पेठा, घृत, अमलतास, परवल, अण्डीका तेल, दाख, मिश्री, नैनी घी, सौमलता, कस्तूरी, सफेदचन्दन, शीशम, अगर, देवदारु, धूपसरल और कडवेरसवाले पदार्थ, तेलकी मालिश ये सब वातरक्तरोगमें हितकर है॥

वातरक्तमें अपथ्य ।

दिवास्वप्नाग्निसन्तापव्यायामातपमैथुनम् ।
माषाः कुलत्था निष्पावा कलायाः क्षारसेवनम् १६॥
अम्बुजानूपमांसानि विरुद्धानि दधीनि च ।
इक्षवो मूलकं मद्यं पिण्याकोऽम्लानि काञ्जिकः १७॥
कटुगुर्व्यभिष्यन्दी च लवणानि च सक्तवः ।
इत्यपथ्यं निगदितं वातरक्तगदे नृणाम् ॥ ११८ ॥

दिनमें शयनकरना, अग्निसेवन, कसरत, धूपका, सेवन, स्त्रीप्रसङ्ग करना, उडद, कुलथी, सेमकीफली, लोबिया, मटर, खारी पदार्थोंका सेवन जलचरोंका मांस, अनूपदेशजात जीवोंका मांस, प्रकृतिविरुद्ध पदार्थ, दही, गन्ना, मूली, मदिरा, तिलकुट, खट्टे द्रव्य, काँजी, चरपरे, भारी और कफकारक पदार्थ, नमक एवं सत्तू ये सब वस्तुयें वातरक्तमें अपथ्य कहीगई हैं ॥ १६-११८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वातरक्तचिकित्सा ।

ऊरुस्तम्भकी चिकित्सा ।

श्लेष्मणक्षपणं यत्स्यान्न च मारुतकोपनम् ।
तत्सर्वं सर्वदा कार्य्यमूरुस्तम्भस्य भेषजम् ॥ १ ॥
तस्य न स्नेहनं कार्यं न बस्तिर्न विरेचनम् ।
सर्वो रूक्षक्रमः कार्यस्तत्रादौ कफनाशनः ॥
पश्चाद्वातविनाशाय कृत्स्नः कार्यः क्रियाक्रमः ॥ २ ॥

ऊरुस्तम्भ रोगीको कफके नाश करनेवाली और वायुको कुपित न करनेवाली जो ओषधियाँ हैं वे सब सेवन करानी चाहिये । इस रोगीको तैलादि स्नेहपदार्थोंका पान, मर्दन अथवा स्नेहवस्तिक्रिया और वमन, विरेचन नहीं कराने चाहिये । इस रोगमें पहले कफनाशक और सम्पूर्ण रूक्षक्रियायें करें, पश्चात् वातको शमन करनेके लिये सम्पूर्ण वातविनाशक चिकित्सा करनी ॥

शिलाजतुं गुग्गुलुं वा पिप्पलीमथ नागरम् ।
ऊरुस्तम्भे पिबेन्मूत्रैर्दशमूलीरसेन च ॥ ३ ॥

ऊरुस्तम्भमें शिलाजीत, गूगल, पीपल अथवा सोंठ इनमेंसे किसी एक ओषधिको गोमूत्र या दशमूलके काथके साथ सेवन करे ॥ ३ ॥

त्रिफला चव्यकटुकं ग्रन्थिकं मधुना लिहेत् ।
ऊरुस्तम्भविनाशाय पुरं मूत्रेण वा पिबेत् ॥ ४ ॥

ऊरुस्तम्भ रोगको दूर करनेके लिये त्रिफला, चव्य, सोंठ, पीपल मिरच और पीपलामूल इन सबके समानभाग चूर्णको शहदके साथ मिलाकर चाटे अथवा शुद्ध गूगलको गोमूत्रके साथ पान करे ॥ ४ ॥

लिह्याद्वा त्रिफलाचूर्णं क्षौद्रेण कटुकायुतम् ।
सुखाम्बुना पिबेद्वापि चूर्णं षड्धरणं नरः ॥ ५ ॥

ऊरुस्तम्भरोगी हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच और पीपल, इनके चूर्णको समभाग लेकर शहदमें मिलाकर सेवन करे । अथवा षड्धरण योगके चूर्णको मन्दोष्णजलके साथ पान करे ॥ ५ ॥

पिप्पलीवर्द्धमानं वा माक्षिकेन गुडेन वा ।
स्नेहवर्ज्जी पिबेदत्र चूर्णं षडूषणं नरः ॥
हितमुष्णाम्बु वा तद्वत् पिप्पल्यादिगणैः कृतम् ॥ ६ ॥

पीपलको प्रतिदिन एक एकके क्रमसे बढाकर शहद अथवा गुडके साथ खानेसे ऊरुस्तम्भरोग दूर होता है । इस रोगमें स्नेह (घृत, तैलादि) पदार्थोंको त्यागकर रोगी पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड, सोंठ और मिरच इन ओषधियोंके समानभाग चूर्णको सेवन करे और इस रोगमें पिप्पल्यादि गणोक्त उष्णकाथ पान करना हितकर है । (वर्द्धमान पिप्पलीकी यह विधिहै कि रोगी दुग्धपान करता हुआ पहले दिन एक, दूसरे दिन दो और तीसरे दिन तीन इस क्रमसे दश दिनतक पीपलको बढाताहुआ जलमें पीसकर

गरम दूधके साथ सेवन करे । फिर ग्यारहवें दिनसे एक एकके क्रमसे पीपलको घटाकर दश दिनतक सेवन करे ॥ ६ ॥

क्षौद्रसर्षपवल्मीकमृत्तिकासंयुतं भिषक् ।
गाढमुत्सादनं कुर्यादूरुस्तम्भे प्रलेपनम् ॥ ७ ॥

ऊरुस्तम्भरोगमें शहद, सरसों और बांबईकी मिट्टी इन तीनों चीजोंको धतूरेके पत्तोंके रस अथवा थूहरके पत्तोंके रसके साथ उत्तम प्रकारसे पीसकर गाढा गाढा लेप करके कपडेकी पट्टी बाँध देवे ॥ ७ ॥

भल्लातकादि ।

भल्लातकामृताशुण्ठीदारुपथ्यापुनर्नवाः ।
पञ्चमूलीद्वयोन्मिश्रा ऊरुस्तम्भनिबर्हणाः ॥ ८ ॥

लालचन्दन, गिलोय, सोंठ, देवदारु, हरड, पुनर्नवा और दशमूल इन ओषधियोंका क्वाथ ऊरुस्तम्भरोगनाशकहै ॥ ८ ॥

पिप्पल्यादि ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलभल्लातक्वाथमेव वा ।
कल्कं मधुयुतं पीत्वा ऊरुस्तम्भाद्विमुच्यते ॥ ९ ॥

पीपल, पीपलामूल और लालचन्दन इनके क्वाथको पीनेसे अथवा इनके समानभागमिश्रितचूर्णको शहदके साथ सेवनकरनेसे ऊरुस्तम्भ नष्ट होताहै९

गुञ्जाभद्ररस ।

निष्कत्रयं शुद्धसूतं निष्कद्वादशगन्धकम् ।
गुञ्जाबीजन्तु षड्निष्कं जयन्ती निम्बबीजकम् ॥ १० ॥
प्रत्येकं निष्कमात्रन्तु निष्कं जैपालबीजकम् ।
जयाजम्बीरधुस्तूरकाकमाचीद्रवैर्दिनम् ॥ ११ ॥
भावयित्वा वटीं कुर्याद्घृतैर्गुञ्जाचतुष्टयीम् ।
गुञ्जाभद्रो रसो नाम्ना हिङ्गुसैन्धवसंयुतः ॥
शमयत्येव नो चित्रमूरुस्तम्भं सुदुर्ज्जयम् ॥ १२ ॥

शुद्धपारा३निष्क, (एक तोला) शुद्ध गन्धक, १२निष्क (४तोले), चोंटलीके दाने २ तोले, जयन्ती, नीमके बीज और जमालगोटा ये प्रत्येक चार चार मासे लेवे । इन सबको एकत्र पीसकर जयन्ती, जम्बीरीनींबू, धतूरा और मकोय इनके रसके साथ क्रमसे एकएक दिनतक खरल करके और घृतके साथ मर्दनकर चार

२५

चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस गुञ्जाभद्रनामक रसकी एकएक गोली प्रतिदिन हींग और सैंधानमकके साथ सेवन करनेसे दुर्जय ऊरुस्तम्भ रोग निश्चय दूर होता है॥ १०-१२॥

अष्टकट्वरतैल।

पलाभ्यां पिप्पलीमूलनागराद्दष्टकट्वरः।
तैलप्रस्थः समो दध्नो गृध्रस्यूरुग्रहापहः॥
अष्टकट्वरतैलेऽस्मिन् तैलं सार्षपमिष्यते॥ १३॥

पीपलामूल और सोंठ ये दोनों आठ आठ तोले, मलाईयुक्त दहीसे बनाई हुई खट्टी छाँछ ६४ तोले, दही ६४ तोले और सरसोंका तेल ६४ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर यथाविधि तैलको सिद्ध करे। यह तैल गृध्रसीवात और ऊरुस्तम्भरोगको दूर करता है॥ १३॥

कुष्ठाद्यतैल।

कुष्ठश्रीवेष्ठकोदीच्यं सरलं दारुकेशरम्।
अजगन्धाश्वगन्धा च तैलं तैः सर्षपं पचेत्॥
सक्षौद्रं मात्रया तस्मादूरुस्तम्भार्दितः पिबेत्॥ १४॥

कूठ, सरलका गोंद, सुगन्धवाला, धूपसरल, देवदारु, नागकेशर, वनतुलसी और असगन्ध इनके कल्कके साथ सरसोंके तैलको पकावे। इस तेलको शहद मिलाकर उचितमात्रासे सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भ रोग दूर होता है॥ १४॥

महासैन्धवाद्यतैल।

सिन्धुरुग्विश्वजासोग्राभार्गीयष्टिस्थिराफलैः।
दारुविश्वशठीधान्यकृष्णाकट्फलपौष्करैः॥ १५॥
दीप्यकातिविषैरण्डनीलीनीलाम्बुजैः पचेत्।
तैलं सकाञ्जिकं हन्ति पानाभ्यञ्जननावनैः॥ १६॥
आमवातं कृमीन्गुल्मान्प्लीहोदराशिरोरुजः।
मन्दाग्निं पक्षसन्ध्यादिवातस्तम्भगदानपि॥ २७॥

सैंधानमक, कूठ, सोंठ, वच, भारङ्गी, मुलैठी, शालपर्णी, जायफल, देवदारु, सोंठ, कचूर, धनियाँ, पीपल, कायफल, पोहकरमूल, अजवायन, अतीस, अण्डकी जड, नीलवृक्ष और नीलकमल इनके समानभाग मिश्रित कल्क और काँजीके साथ सरसोंके तैलको विधिपूर्वक पकावे। यह तैल पान, मर्दन और

नस्य द्वारा व्यवहार करनेसे आमवात, कृमिरोग, गुल्म, प्लीहा, उदररोग, शिरोरोग, मन्दाग्नि, पक्षसन्धि आदिस्थानोंकी वातव्याधि, ऊरुस्तम्भ आदिरोगोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ १५-१७ ॥

ऊरुस्तम्भमें पथ्य।

रूक्षः सर्वविधः स्वेदः कोद्रवा रक्तशालयः।
यवाः कुलत्थाः श्यामाका उद्दालाश्च पुरातनाः ॥१८॥
शोभाञ्जनः कारवेल्लं पटोलं लशुनानि च।
सुनिषण्णं काकमाची वेत्राग्रं निम्बपल्लवम् ॥ १९ ॥
पत्तूरो वास्तुकं पथ्या वार्त्ताकुस्तप्तवारि च ॥
शम्याकशाकं पिण्याकतक्रारिष्टमधूनि च ॥ २० ॥
कटुतिक्तकषायाणि क्षारसेवा गवां जलम्।
व्यायामश्च यथाशक्ति स्थूलस्याक्रमणानि च ॥ २१ ॥
स्वच्छे ह्रदे सन्तरणं प्रतिस्रोतो नदीषु च।
श्लेष्मापहरणं यच्च न च मारुतकोपनम् ॥
एतत्पथ्यं नरैः सेव्यमूरुस्तम्भविकारिभिः ॥ २२ ॥

सर्व प्रकारकी रूक्ष और स्वेदक्रिया करना, कोदों, पुराने लाल शालिधानोंके चावल, जौ, कुलथी, सामाधानके चावल, वनकोदों, सहिंजना, करेला, परवल, लहसुन, चौपतियाका शाक, मकोय, बेंतका अग्रभाग, नीमकी कोंपल, शालिञ्जशाक, बथुआ, हरड, बैंगन, गरम जल, अमलतास, तिलकुट, मट्ठा, अरिष्ट (एक प्रकारकी मद्यविशेष), शहद, एवं चरपरे, कडवे, कषैले और खारीपदार्थोंका सेवन, गोमूत्र, शक्तिके अनुसार कसरत करना और भ्रमण करना, स्वच्छ जलवाले तालाव और स्रोतवाली नदियोंमें तैरना एवं कफनाशक और वायुको कुपित न करनेवाले पदाथ ये सब पथ्यद्रव्य ऊरुस्तम्भ रोगवाले मनुष्योंको सेवन करने चाहिये ॥ १८-२२ ॥

ऊरुस्तम्भमें अपथ्य।

गुरुशीतद्रवास्निग्धाविरुद्धासात्म्यभोजनम्।
विरेचनं स्नेहनञ्च वमनं रक्तमोक्षणम् ॥
वस्तिं च न हितं प्राहुरूरुस्तम्भविकारिणाम् ॥२३॥

गुरु (भारी) पाकी, शीतल, पतले और स्निग्धद्रव्य, संयोगविरुद्ध और प्रकृतिविरुद्ध भोजन, विरेचन (जुल्लाब), तैलादि स्नेहद्रव्योंका प्रयोग, वमन (कै) रक्तस्राव (फस्त खुलवाना) और वस्तिक्रियाकरना ये सब ऊरुस्तम्भरोगियोंके लिये अनुपयोगी कहेगये हैं ॥ २३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां ऊरुस्तम्भचिकित्सा ॥

आमवातकी चिकित्सा ।

लङ्घनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि च ।
विरेचनं स्नेहपानं वस्तयश्चाममारुते ॥ १ ॥

आमवातरोगमें लङ्घनकराना, स्वेददेना, कडवे और चरपरेरसवाले तथा अग्निवर्द्धकपदार्थोंका सेवन, विरेचन, घृतादिस्नेहपदार्थोंका पान और विरेचक ओषधियोंके द्वारा पिचकारी लगाना ये सब क्रियायें करनी चाहिये॥१॥

आमवाते पञ्चकोलसिद्धं पानान्नमिष्यते ॥ २ ॥

आमवातरोगमें रोगीकी पिपासाको निवारण करनेकेलिये पञ्चकोल(पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड और सोंठ) की ओषधियोंको समानभाग मिश्रित दो तोले लेकर दो सेर जलमें पकावे। जब १ सेर जल रहे तब उतारकर और छानकर पीनेको देवे और इसीनियमके अनुसार सिद्ध जलके द्वारा चावलोंकी यवागू बनाकर रोगीको भोजनके लिये देवे ॥ २ ॥

रूक्षस्वेदो विधातव्यो बालूकपुटकैस्तथा ॥ ३ ॥

आमवातमें बालुकाकी पोटलीबनाकर अग्निपर गरमकरके रूक्ष स्वेद देवे॥३॥

गोजलपिष्टं हिंस्राकेबुकाशिग्रूद्भवं मूलम् ।
नाकयुतं परिलेपात्साम: समीरण: कुत्र ॥ ४ ॥

कटेरी, केबुककी जड, सहिंजनेकी जड और बाँबीकी मिट्टी इनको समानभाग लेकर गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे आमवातरोग कहाँ रहसकताहै?॥४॥

शतपुष्पा वचा शिग्रुः श्वदंष्ट्रा वारुणत्वचः ।
सहदेवा च वर्षाभूः शठी च सहभादली ॥ ५ ॥
सतकारीफलं हिङ्गु शुक्तकाञ्जिकपेषितम् ।
आमवातहरं श्रेष्ठं सुखोष्णं लेपनं हितम् ॥ ६ ॥

सोया, वच, सहिंजनेकी छाल, गोखुरू, बरनाकी छाल, खिरैंटी, पुनर्नवा, कचूर, प्रसारणी, जयन्तीके फल और हींग इन सबको समानभाग लेकर सिरके और काँजीके साथ पीसकर शोथके ऊपर सुहाता २ प्रलेप करे । यह प्रयोग आमवातको हरनेके लिये परमश्रेष्ठहै ॥ ५ ॥ ६ ॥

आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः ।
एक एव निहन्त्यस्य ह्येरण्डस्नेहकेसरी ॥ ७ ॥

शरीररूपी वनमें विचरनेवाले आमवातरूपी गजेन्द्रको एकमात्र अण्डीका तेलरूपी सिंह ही नष्ट करसकताहै ॥ ७ ॥

एरण्डतैलसंयुक्तां हरीतकीं भक्षयेन्नरो विधिवत् ।
आमानिलार्त्तियुक्तो गृध्रसीवृद्ध्यर्दितो नित्यम् ८॥

आमवातरोगी प्रतिदिन हरडको अण्डीके तेलके साथ भक्षण करे । इससे आमवत, गृध्रसीवात, अर्दित और वृद्धिरोग दूर होते हैं ॥ ८ ॥

भृष्टाद्यात्कटुतैलेऽन्नैः सहारग्वधपल्लवम् ।
किंवाम्लकाञ्जिके पक्त्वा खादेदामानिलापहम् ॥९॥

सरसोंके तेलमें अमलतासके पत्तोंको भूनकर भोजनके साथ खावे । अथवा खट्टी काँजीमें पकाकर खावेतो आमवात नष्ट होताहै ॥ ९ ॥

कर्षं नागरचूर्णस्य काञ्जिकेन पिबेत्सदा ।
आमवातप्रशमनं कफवातहरं परम् ॥ १० ॥

एक तोला सोंठके चूर्णको नित्यप्रति काँजीके साथ सेवन करनेसे आमवात और कफवात शमन होतेहैं ॥ १० ॥

त्रिवृत्सैन्धवशुण्ठीनामारनालेन चूर्णितम् ।
पीत्वा विरिच्यते जन्तुरामवातहरं परम् ॥ ११ ॥

निसोतका चूर्ण ६माशे, सैन्धानमक३माशे,सोंठका चूर्ण३मासे इन तीनोंको काँजीके साथ पानकरनेसे दस्त होकर आमवातरोग दूर होता है ॥ ११ ॥

सप्ताहं त्रिवृतश्चूर्णं त्रिवृत्क्वाथेन भावितम् ।
काञ्जिकेन तु तत्पीतं रेचयेदामवातिनम् ॥ १२ ॥

निसोतके चूर्णको, निसोतके क्वाथमें सातदिन तक भावना देकर आमवात-वाले रोगीको काँजीके साथ पानकराकर विरेचन (दस्त) करावे ॥ १२ ॥

रास्नादिक्वाथसंयुक्तं तैलं वातारिसंज्ञकम् ।
प्रपिबन् वातरोगार्त्तः सद्यः शूलाद्विमुच्यते ॥ १३ ॥

आमवातरोगमें रास्नापञ्चक और रास्नासप्तक आदि काथोंके साथ अण्डीके तैलको पान करनेसे आमवात और उसकी पीडा शीघ्र दूर होती है ॥ १३ ॥

दशमूलकषायेण पिबेद्वा नागराम्भसा।
कुक्षिबस्तिकटीशूले तैलमेरण्डसम्भवम् ॥ १४ ॥

दशमूलके काथ अथवा सोंठके काथके साथ अण्डीके तैलको पान करना कुक्षिशूल, बस्तिशूल और कटिशूलमें हितकारी है ॥ १४ ॥

एरण्डादि।

एरण्डं गोक्षुरं रास्ना शतपुष्पा पुनर्नवा।
पानं पाचनके शस्तं सामे वाते सुनिश्चयम् ॥ १५ ॥

अण्डकी जड, गोखुरु, रायसन, सोया और पुनर्नवा इन ओषधियोंके उष्ण काथको आमवातरोगमें पान करना चाहिये ॥ १५ ॥

शठ्यादि।

शठी शुण्ठ्यभया चोग्रा देवाह्वातिविषामृताः।
कषायमामवातस्य पाचनं रूक्षभोजनम् ॥ १६ ॥

कचूर, सोंठ, हरड, बच, देवदारु, अतीस और गिलोय इनके काथको पान करके रूक्षद्रव्योंका भोजन करे तो आमवात नष्ट होता है ॥ १६ ॥

रसोनादि।

रसोनविश्वनिर्गुण्डीक्काथमामार्दितः पिबेत्।
नातःपरतरं किञ्चिदामवातस्य भेषजम् ॥ १७ ॥

आमवातरोगी लहसन, सोंठ और निर्गुण्डी इनके काथको पान करे। आमवातरोगकी इससे बढकर अन्य कोई औषध नहीं है ॥ १७ ॥

रास्नापञ्चक।

रास्नां गुडूचीमेरण्डं देवदारु महौषधम्।
पिबेत्सर्वाङ्गिणे वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे ॥ १८ ॥

रायसन, गिलोय, अण्डकी जड, देवदारु, सोंठ इनके काथको सम्पूर्ण अङ्गोंमें स्थित आमवात एवं सन्धि, अस्थि मज्जागत आमवातरोगमें पान करे ॥ १८ ॥

रास्नासप्तक।

रास्नामृतारग्वधदेवदारुत्रिकण्टकैरण्डपुनर्नवानाम्।
क्काथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं जंघोरुपार्श्वत्रिकपृष्ठशूली १९

रास्ना, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखुरू, अण्डकी जड और पुनर्नवा इन ओषधियोंके काथको सोंठका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे जंघा, पार्श्व, ऊरु, कटि और पृष्ठदेशकी पीडा दूर होती है ॥ १९ ॥

रास्नादशमूलक।

दशमूलयमृतैरण्डरास्नानागरदारुभिः।
काथो रुबुकतैलेन सामं हन्त्यनिलं गुरुम् ॥ २० ॥

दशमूल, गिलोय, अण्डकी जड, रायसन, सोंठ और देवदारु इनके काथको अण्डीके तेलके साथ पान करनेसे अत्यन्त बढाहुआ आमवात नष्ट होता है२०

मध्यमरास्नादि।

रास्नैरण्डशतावरीसहचरादुष्पर्शवासामृता
देवाह्वातिविषाभयाघनशठीशुण्ठीकषायः कृतः।
पातव्यं रुबुतैलमेव विहितः सामे सशूलेऽनिले
कट्यूरुत्रिकपृष्ठकोष्ठजठरक्रोडेषु वामार्त्तिजित ॥२१॥

रास्ना, अण्डकी जड, शतावर, पीली कटसैया, धमासा, अडूसा, गिलोय, देवदारु, अतीस, हरड, नागरमोथा, कचूर और सोंठ इन ओषधियोंके काथको यथाविधि बनाकर अण्डीके तैलके साथ पान करे। इससे कटि, ऊरु, पृष्ठ, त्रिक, कोष्ठ और उदरस्थित आमवातकी पीडा दूर होती है ॥ २१ ॥

महारास्नादि।

रास्नावातारिमूलञ्च वासकञ्च दुरालभम्।
शठी दारु बला मुस्तं नागरातिविषाभयाः ॥ २२ ॥
श्वदंष्ट्रा व्याधिघातञ्च मिसिधान्यपुनर्नवाः।
अश्वगन्धामृता कृष्णा वृद्धदारुशतावरी ॥ २३ ॥
वचा सहचरश्चैव चविका बृहतीद्वयम्।
समभागान्वितैरेतै रास्नाद्विगुणभागिकैः ॥ २४ ॥
कषायं पाययेत्सिद्धमष्टभागावशेषितम्।
शुण्ठीचूर्णसमायुक्तमाभाद्येन युतं तथा ॥ २५ ॥
अलम्बुषादिसंयुक्तमजमोदादिसंयुतम्।
यथादोषं यथाव्याधिः प्रक्षेपं कारयेद्भिषकू ॥ २६ ॥

सर्वेषु वातरोगेषु सन्धिमज्जागतेषु च ।
आनाहेषु च सर्वेषु सर्वगात्रानुकम्पने ॥ २७ ॥
कुब्जके वामने चैव पक्षाघाते तथार्दिते ।
जानुजंघास्थिपीडासु गृध्रस्यां च हनुग्रहे ॥ २८ ॥
सर्वेषां पाचनानां तु श्रेष्ठमेतद्धि पाचनम् ।
महारास्नादिकं नाम प्रजापतिविनिर्मितम् ॥ २९ ॥

रायसन, अण्डकी जड, अडूसेकी छाल, धमासा, कचूर, देवदारु, खिरैंटी, नागरमोथा, सोंठ, अतीस, हरड, गोखुरू, अमलतास, सोंफ, धनियाँ, पुनर्नवा, असगन्ध, गिलोय, पीपल, विधारेके बीज, शतावर, बच, पियाबाँसा, चव्य, बडी कटेरी और कटेरी ये प्रत्येक ओषधि एक एक भाग और रास्ना दो भाग लेकर इन सबका विधिपूर्वक अष्टावशेष क्काथ सिद्ध करे । चिकित्सक इस क्काथको रोगीके दोष, रोग और अवस्थाके अनुसार उचितमात्रासे सोंठका चूर्ण, बबूरका चूर्ण, मुण्डीका चूर्ण अथवा अजमोदादि चूर्ण डालकर पान करावे । यह क्काथ सर्वप्रकारके वातरोग, सन्धि और मज्जागत वात, आनाहरोग, सर्वशरीरगतकम्प, कुब्जकवात, वामनकवात, पक्षाघात, अर्दितवात, तथा जानु, जंघा और अस्थिगत वातकी पीडा, गृध्रसी, हनुग्रह और सर्वप्रकारके आमवातरोगमें हितकारी है और सब पाचनोंमें उत्तम पाचनहै । इस महारास्नादिनामक क्काथको ब्रह्माजीने निर्माण कियाहै ॥ २२-२९ ॥

शतपुष्पाद्यचूर्ण ।

शतपुष्पा विडङ्गश्च सैन्धवं मरिचं समम् ।
चूर्णमुष्णाम्बुना पीतमामवातहरं परम् ॥ ३० ॥

सोया, वायविडङ्ग, सैंधानमक कालीमिरच समान भाग चूर्णको एकत्र मिलाकर गरम जलके साथ पान करनेसे अत्यन्त प्रबल आमवातरोग दूर होताहै ॥

हिंग्वाद्यचूर्ण ।

हिङ्गु चव्यं विडं शुण्ठी कृष्णाजाजी सपौष्करम् ।
भागोत्तरमिदं चूर्णं पीतं वातामजिद्भवेत् ॥ ३१ ॥

हींग १ भाग, चव्य २ भाग, विड्नमक ३ भाग, सोंठ ४ भाग, पीपल ५ भाग, कालाजीरा ६ भाग और पोहकरमूल ७ भाग इन सब ओषधियोंके चूर्णको एकत्र मिलाकर शीतल जलके साथ पानकरनेसे आमवात नष्ट होताहै॥

१-अलम्बुषाद्यचूर्ण।

अलम्बुषां गोक्षुरकं त्रिफलानागरामृताः।
यथोत्तरं भागवृद्धया श्यामाचूर्णश्च तत्समम्॥ ३२॥
पिबेन्मस्तुसुरातक्रकाञ्जिकेनोदकेन वा।
पीतं जयत्यामवातं सशोथं वातशोणितम्॥
त्रिकजानूरुसन्धिस्थं ज्वरारोचकनाशनम्॥ ३३॥

गोरखमुण्डी १ भाग, गोखुरू २ भाग, हरड ३ भाग, आमले ४ भाग, बहेडा ५ भाग, सोंठ ६ भाग, गिलोय ७ भाग और इन सबकी बराबर निसोत-का चूर्ण लेकर सबको एकत्र बारीक पीसलेवे। इस चूर्णको प्रतिदिन दहीके तोड, मद्य, तक्र, काँजी अथवा गरम जलके साथ सेवन करे। इसके सेवन करनेसे आमवात, शोथयुक्त वातरक्त, एवं त्रिक, जानु, ऊरु और सन्धिगत-वात, ज्वर और अरुचि ये सब रोग दूर होते हैं॥ ३२॥ ३३॥

२-द्वितीय अलम्बुषाद्यचूर्ण।

अलम्बुषां गोक्षुरकं गुडूचीं वृद्धदारकम्।
पिप्पलीं त्रिवृतां मुस्तां वरुणं सपुनर्नवम्॥ ३४॥
त्रिफलां नागरश्चैव श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्।
मस्त्वारनालतक्रेण पयोमांसरसेन वा॥
आमवातं निहन्त्याशु श्वयथुं सन्धिसंस्थितम्॥ ३५॥

गोरखमुण्डी, गोखुरू, गिलोय, विधारा, पीपल, निसोत, नागरमोथा, वर-नेकी छाल, पुनर्नवा, त्रिफला और सोंठ ये सब ओषधियाँ समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको दहीके तोड, काँजी, मट्ठा, दूध अथवा मांस रस, इनमेंसे किसी एक अनुपानके साथ सेवन करे। यह चूर्ण आमवात और सन्धिगत शोथको शीघ्र दूर करता है॥ ३४॥ ३५॥

वैश्वानरचूर्ण।

माणिमन्थस्य भागौ द्वौ यमान्यास्तद्वदेव हि।
भागास्त्रयोऽजमोदाया नागराद्भागपञ्चकम्॥ ३६॥
दश द्वौ च हरीतक्याः श्लक्ष्णचूर्णीकृताः शुभाः।
मस्त्वारनालतक्रेण सर्पिषोष्णोदकेन वा॥ ३७॥

पीतं जयत्यामवातं गुल्मं हृद्बस्तिजान्गदान् ।
प्लीहानं ग्रन्थिशूलादीनर्शांस्यानाहमेव च ॥ ३८ ॥
विबन्धं वातजान् रोगाँस्तथैव हस्तपादजान् ।
वातानुलोमनमिदं चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम् ॥ ३९ ॥

सैंधानमक २ भाग, अजवायन २ भाग, अजमोद३ भाग, सोंठ ५ भाग और हरड १२ भाग लेकर सबको एकत्र बारीक पीसलेवे । यह वैश्वानर चूर्ण दहीके तोड, काँजी, तक्र, घृत अथवा उष्णजलके साथ सेवन करनेसे आमवात, गुल्म, हृदयरोग, वस्तिरोग, तिल्ली, ग्रन्थिरोग, शूल, अर्श, अफारा विबन्ध, सम्पूर्ण वातरोग और हस्तपादादिगत समस्तविकारोंको नष्ट करता है और वायुको अनुलोमन करता है ॥ ३६-३९ ॥

शङ्करस्वेद ।

कार्पासास्थिकुलत्थिकातिलयवैरेरण्डमूलातसी-
वर्षाभूशणबीजकाञ्जिकयुतैरेकीकृतैर्वा पृथक् ।
स्वेदःस्यादितिकूर्परोदरशिरःस्फिक्पाणिपादांगुली-
गुल्फस्कंधकटीरुजा विजयते सामाः समीरानुगाः४०

कपासके विनौले, कुलथी, तिल, जौ, अण्डकी जड, अलसी, पुनर्नवा, और सनके बीज इन सब औषधियोंको एकत्र कूटकर काँजीमें भिगोकर दो पोटली बनावे। फिर जलतेहुए चूल्हेपर काँजीसे भरी हाँडीको रक्खे और उस हाँडीके मुखपर छिद्रोंवाला एक सरावा ढककर सन्धिस्थानोंको बन्द करदेवे । फिर उस सरावेके छिद्रोंके ऊपर पूर्वोक्त १ पोटलीको रखकर गरम करके स्वेद (सेंक) देवे । इसी प्रकार फिर दूसरी पोटलीको गरमकरके बारम्बार स्वेद देवे । इस प्रकार स्वेद देनेसे कोहनी, उदर, शिर, कूला, हाथ, पाँव, अँगुली, एँडी, कन्धा और कमर इन स्थानोंकी पीडा सहित चिरकालोत्पन्न आमवातरोग नष्ट होताहै ॥ ४० ॥

प्रसारणीसन्धान ।

प्रसारण्याढकक्काथे प्रस्थो गुडरसोनयोः ।
पञ्चकोलरजः पक्वः पादः स्यादामवातहा ॥ ४१ ॥

प्रसारणीके १ आढककाथमें १ प्रस्थ,गुड और १ प्रस्थ लहसनका रस डालकर पकावे । फिर उसको एक सप्ताहपर्यन्त एक स्वच्छपात्रमें भरकर और उसका मुँह बन्दकरके रखा रहनेदेवे । फिर उसमें पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता

और सोंठ इनके समान भाग मिश्रित ३२ तोले चूर्णको डालकर सेवनकरे। यह प्रयोग आमवातनाशक है ॥ ४१ ॥

आमवातारिवटिका ।

रसगन्धकलौहार्कतुत्थसैन्धवटङ्कणान् ।
समभागान्विचूर्ण्याथ चूर्णाद्द्विगुणगुग्गुलुः ॥ ४२ ॥
गुग्गुलोः पादिकं देयं त्रिवृतश्चूर्णमुत्तमम् ।
तत्समं चित्रकस्याथ घृतेन वटिकां कुरु ॥ ४३ ॥
खादेन्माषद्वयञ्चेदं त्रिफलाजलयोगतः ।
आमवातारिवटिका पाचिका भेदिका मता ॥४४॥
आमवातं निहन्त्याशु गुल्मशूलोदराणि च ।
यकृत्प्लीहोदराष्ठीलां कामलां पाण्डुरोगकम् ॥ ४५ ॥
हलीमकं चाम्लपित्तं श्वयथुं श्लीपदार्बुदौ ।
ग्रन्थिशूलं शिरःशूलं वातरोगञ्च गृध्रसीम् ॥ ४६ ॥
गलगण्डं गण्डमालां कृमिकुष्ठविनाशिनी ।
विद्रधिं गर्दभानाहावन्त्रवृद्धिञ्च नाशयेत् ॥ ४७ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, तूतिया, सैन्धानमक और सुहागा इन सब ओषधियोंको समान भाग लेकर चूर्ण करलेवे फिर सब चूर्णसे दुगुनी गूगल और गूगलसे चौथाई भाग निसोतका चूर्ण एवं निसोतके चूर्णकी बराबर चीतेका चूर्ण लेकर सबको एकत्र मिलाकर घृतके साथ खरल करके गोलियाँ बनालेवे । इसको प्रतिदिन दो दो माशे परिमाण लेकर त्रिफलेके क्वाथके साथ सेवन करे । यह आमवातारिवटिका भोजनको उत्तम प्रकारसे पचाती और दस्तको साफ लाती है । यह आमवात, गुल्म, शूल, उदररोग, यकृत, प्लीहोदर, अष्ठीला, कामला, पाण्डु, हलीमक, अम्लपित्त, सूजन, श्लीपद, अर्बुद, ग्रन्थिशूल, शिरःशूल, वातरोग, गृध्रसी, गलगण्ड, गण्डमाला, कृमिरोग, कुष्ठरोग, विद्रधि, गर्दभरोग, आनाह और अन्त्रवृद्धि इन सब रोगोंको नाश करती है ॥ ४२-४७ ॥

आमवातारिरस ।

रसो गन्धो वरा वह्निर्गुग्गुलुः क्रमवर्द्धितः ।
एतदेरण्डतैलेन श्लक्ष्णचूर्णं प्रपेषयेत् ॥ ४८ ॥

कर्षोऽस्यैरण्डतैलेन हन्त्युष्णजलपायिनाम् ।
आमवातमतीवोग्रं दुग्धमुद्गादिवर्जयेत् ॥ ४९ ॥

शुद्धपारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, त्रिफला ३ तोले, चीता ४ तोले और गूगल ५ तोले इन सब ओषधियोंको एकत्र बारीक पीसकर अण्डीके तेलके साथ खरल करे। इसको प्रतिदिन एक एक तोलेकी मात्रासे अण्डीके तेलके साथ सेवन करके ऊपरसे गरम जल पानकरनेसे अतिप्रबल आमवात-रोग शीघ्र नष्ट होता है। इसके सेवन करनेपर दूध और मूँगकी दाल आदि पदार्थोंको त्याग देवे ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

आमवातेश्वररस ।

शुद्धगन्धपलार्द्धञ्च मृतताम्रञ्च तत्समम् ।
ताम्रार्द्धं पारदं देयं रसतुल्यं मृतायसम् ॥ ५० ॥
सर्वं पञ्चाङ्गुलेनैव भावयेच्च पुनः पुनः ।
संचूर्ण्य पञ्चकोलस्य क्वाथे सर्वं विमर्दयेत् ॥ ५१ ॥
रौद्रे विंशतिवारांश्च गुडूचीनां रसैर्दश ।
भृष्टटङ्कणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत् ॥ ५२ ॥
टङ्कणार्द्धं विडं देयं मरिचं बिडतुल्यकम् ।
तिन्तिडीक्षारतुल्यञ्च सूततुल्यञ्च दन्तिकम् ॥ ५३ ॥
त्रिकटु त्रिफला चैव लवङ्गं चार्द्धभागिकम् ।
आमवातेश्वरो नाम विष्णुना परिकीर्त्तितः ॥ ५४ ॥
महाग्निकारको ह्येष आमवातकुलान्तकः ।
स्थूलानां कुरुते कार्श्यं कृशानां स्थौल्यकारकम् ॥ ५५ ॥
अनुपानवशेनैव सर्वरोगकुलान्तकः ।
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु आमवातं सुदारुणम् ५६ ॥
गुरुवृष्यान्नपानानि पयो मांसरसो हिताः ।
भोजयेत्कण्ठपर्यन्तं चतुर्गुञ्जामितं रसम् ॥ ५७ ॥
कट्वम्लतिक्तरहितं पिबेत्तदनुपानकम् ।
शीघ्रं जीर्यति तत्सर्वं जायते दीपनं परम् ॥ ५८ ॥

अनेन सदृशो नास्ति वह्निसन्दीपनो रसः।
गुल्मार्शोग्रहणीरोगशोथपाण्डूदरापहः ॥ ५९ ॥

शुद्धगन्धक २ तोले, ताँबेकी भस्म २ तोले, पारेकी भस्म १ तोला और लोहेकी भस्म १ तोला लेवे। इन सबको एकत्र पीसकर अण्डकी जडके रसमें सात बार भावना देवे। फिर पञ्चकोलके काथमें २० बार और गिलोयके काथके साथ १० बार भावना देवे। फिर धूपमें सुखाकर चूर्णकरके सबकी बराबर सुहागेकी खीलें, सुहागेसे आधा विड्नमक, विड्नमककी समानभाग काली मिरच एवं इमलीके बीजोंका खार और दन्तीकी जड पारेकी समानभाग, त्रिकुटा, त्रिफला और लौंग ये प्रत्येक पारेसे आधा आधा भाग लेकर सबको एकत्र कूट पीसकर तैयार करलेवे। इस आमवातेश्वर नामक रसको विष्णुभगवान्ने बनाया है। यह रस अत्यन्त अग्निवर्द्धक और आमवातको समूल नष्ट करनेवाला है। स्थूल मनुष्योंको कृश और कृश मनुष्योंको स्थूल करता है और अनुपानविशेषसे सर्वप्रकारके रोगोंको समूल नाश करता है। एवं साध्य अथवा असाध्यदारुण आमवातको तो शीघ्र दूर करदेता है। इसपर भारी और वृष्यअन्न पान, दूध और मांसरस ये पदार्थ हितकारी है। इसपर कण्ठपर्यंत (अर्थात् खूब पेट भरकर) भोजन करे। इस रसको चार चार रत्ती प्रमाण सेवन करे और कटु, अम्ल व तिक्तरस रहितपदार्थोंका अनुपान करे। यह रस सर्व प्रकारके भोजनको तत्काल जीर्ण करता और अग्निको अत्यन्त दीपन करता है। अग्निको दीपन करनेवाला इसकी समान और दूसरा रस नहीं है। इससे गुल्म, बवासीर, संग्रहणी, सूजन, पाण्डु और उदररोग ये सब रोग दूर होते हैं। इसका दूसरा नाम "सर्वतोभद्ररस" भी है॥ ५०-५९ ॥

वातगजेन्द्रसिंह।

अभ्रं लौहं रसं गन्धं ताम्रं नागं सटङ्कणम्।
विषं सिन्धुं लवङ्गञ्च हिङ्गु जातीफलं समम् ॥ ६० ॥
तदर्द्धं त्रिसुगन्धञ्च त्रैफलं जीरकं तथा।
कन्यारसेन संपिष्य वटी कार्या त्रिरक्तिका ॥ ६१ ॥
सेव्या पयोऽनुपानेन सदा प्रातः सुखान्वितः।
अशीतिं वातजान् रोगान् चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ६२
विंशतिं श्लैष्मिकान् रोगान्सेवनादेव नाशयेत।
अभिघातेन ये क्षीणाः क्षीणार्द्धावयवाश्च ये ॥ ६३ ॥

व्याधिक्षीणा वयक्षीणाः श्रीहीनाश्चापि ये नराः ।
क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्रा वह्निहीनाश्च मानवाः ॥ ६४ ॥
तेषां वृष्यश्च बल्यश्च वयःस्थापन एव च ।
खञ्जानां पङ्गुकुब्जानां क्षीणानां मांसवर्द्धनः ॥ ६५ ॥
अरोगी सुखमाप्नोति रोगी रोगाद्विमुच्यते ।
रसस्यास्य प्रसादेन नास्ति रोगाद्भयं क्वचित् ॥
वातगजेन्द्रसिंहोऽयं रसो रोगविनाशकः ॥ ६६ ॥

अभ्रकभस्म, लोहभस्म, शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, ताम्रभस्म, शीशेकी भस्म, सुहागा, शुद्ध मीठातेलिया, सैंधानमक, लौंग, हींग और जायफल ये प्रत्येक एक एक तोला और दारचीनी, तेजपात, इलायची, त्रिफला, जीरा ये प्रत्येक छः२ माशे लेकर सबको एकत्र कूटपीसकर घीकुँआरके रसमें खरलकरके तीन तीन रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे नित्य प्रातःकाल एकएकगोली शीतल जलके साथ सेवन करे । यह रस ८० प्रकारके वातरोग, ४० प्रकारके पित्तजरोग और बीस प्रकारके कफके रोगोंको सेवन करतेही नष्ट करताहै और जो पुरुष अभिघात (चोट, अथवा शस्त्रप्रहारादि) के द्वारा क्षीणशरीर होगयेहैं या जिनका अर्द्धाङ्ग क्षीण होगयाहै, एवं व्याधिसे क्षीण, अवस्थाक्षीण, कान्तिहीन, क्षीणेन्द्रिय, क्षीणवीर्य और मन्दाग्निवाले जो पुरुष हैं उनके लिये अत्यन्त पुष्टिकर, बलवर्द्धक और आयुको स्थापन करनेवालाहै । खञ्जरोगी, पंगु, कुब्जक और क्षीणदेहवाले मनुष्योंके शरीरमें मांसकी वृद्धि करता है । इसका सेवनकरनेसे आरोग्य मनुष्य सुख पाता है और रोगी रोगसे मुक्त होताहै । इस रसके प्रसादसे किसी रोगसे भय नहीं होता । यह वातगजेन्द्रसिंहनामकरस सम्पूर्णरोगोंको नाशकरनेवाला है ॥ ६०–६६ ॥

आमप्रमाथिनी वटिका ।

सोरकं रविमूलञ्च गन्धकं लौहमभ्रकम् ।
पिष्ट्वारग्वधतोयेन कुर्यान्माषमितां वटीम् ॥ ६७ ॥
त्रिवृत्क्वाथे च सा सेव्या कफामयनिषूदनी ।
आमवातप्रशमनी वटिकामप्रमाथिनी ॥ ६८ ॥

सोरा, आककी जडकी छाल, शुद्ध गन्धक, लोहे और अभ्रककी भस्म इन सबको समानभाग लेकर एकत्र पीसकर अमलतासके रसके साथ खरल करके एक एक माशेकी गोलियाँ बनालेवे । इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक

गोली निसोतके काथमें मिलाकर सेवन करनेसे यह आमप्रमाथिनीवटी कफके सम्पूर्ण रोग और आमवातको शमन करती है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

आमवाताद्रिवज्ररस।

रसगन्धकलौहाभ्रफणिफेनं समं समम्।
सप्तधा यावशूकस्य मर्दयेद्विजयाम्भसा ॥ ६९ ॥
ततो माषार्द्धमानश्च विदध्याद्वटिकां भिषक्।
यथादोषानुपानेन प्रदद्यादामवातिने ॥ ७० ॥
आमवातं महाघोरं प्रमेहानपि विंशतिम्।
आमवाताद्रिवज्राख्यो रसो हन्ति न संशयः ॥७१॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और अफीम ये प्रत्येक एक एक भाग और जवाखार ७ भाग लेवे। इन सबको एकत्र मिश्रित करके भाँगके काथके साथ खरल करके चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह रस यथादोषानुसार अनुपानके साथ आमवातरोगीको सेवन करावे। यह आमवातादिवज्रनामकरस अत्यन्तप्रबल आमवात और बीसों प्रकारके प्रमेहोंको निस्सन्देह दूर करताहै ॥ ६९-७१ ॥

त्रिफलादिलोह।

त्रिफला मुस्तकं व्योषं विडङ्गं पुष्करं वचा।
चित्रकं मधुकश्चैव पलांशं श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ ७२ ॥
अयश्चूर्णपलान्यष्टौ गुग्गुलोस्तावदेव हि।
आलोड्य मधुनोपेतं पलद्वादशकेन च ॥ ७३ ॥
प्रातर्विलिह्य भुञ्जानो जीर्णे तस्मिन्नयेद्द्विजः।
दुःसाध्यमामवातञ्च पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥
जीर्णान्नसम्भवं शूलं श्वयथुं विषमज्वरम् ॥ ७४ ॥

त्रिफला, नागरमोथा, त्रिकुटा, वायविडंग, पोहकरमूल, बच, चीता और मुलैठी इन प्रत्येकका बारीक चूर्ण एक एक पल, लोहे और शुद्ध गूगलका चूर्ण आठ आठ पल लेकर सबको १२ पल परिमाण शहदके साथ मिलालेवे। इसको प्रतिदिन प्रातःकाल छः छः माशे सेवन करे और ओषधिके पचजानेपर भोजन करे। इसके सेवनसे दुःसाध्य आमवात, पाण्डुरोग, हलीमक, अजीर्ण, शूल, सूजन और विषमज्वर आदि समस्तरोग नष्ट होतेहैं ॥७२-७४॥

विडङ्गादिलौह।

वज्रपाण्ड्वादिलौहानां ग्राह्यं पञ्चपलं शुभम्।
चूर्णं मृताभ्रकस्यापि लौहार्द्धं पारदं तथा॥ ७५॥
त्रिगुणा त्रिफला ग्राह्या लौहाभ्रं षोडशैर्जलैः।
पक्त्वाष्टभागशेषन्तु ग्राह्यं क्वाथजलं ततः॥ ७६॥
तेन लौहाभ्रचूर्णञ्च पुनः पाच्यं समं घृतम्।
शतावर्या रसञ्चैव क्षीरञ्च द्विगुणं रसात्॥ ७७॥
लौहमय्या पचेद्दर्व्या पात्रे चायसि ताम्रके।
पचेत् पाकविधिज्ञस्तु वह्निना मृदुना शनैः॥ ७८॥
सिद्धे च प्रक्षिपेदेतान् विडङ्गादि यथोदितान्।
विडङ्गं नागरं धान्यं गुडूचीसत्त्वजीरकम्॥ ७९॥
पलाशबीजं मरिचं पिप्पली हस्तिपिप्पली।
त्रिवृता त्रिफला दन्ती एला चैरण्डकं तथा॥ ८०॥
चविका ग्रन्थिकं चित्रं मुस्तकं वृद्धदारकम्।
सर्वेषां चूर्णमेतेषां लौहाभ्रकसमं भवेत्॥ ८१॥
आमवातगजेन्द्रस्य केसरी विधिनिर्म्मितः।
आमवातञ्च शोथञ्चाप्यग्निमान्द्यं हलीमकम्॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च हन्याद्बल्यं रसायनम्॥ ८२॥

वज्र या पाण्ड्वादि लोहोंमेंके किसी एक लोहेकी भस्म २० तोले, अभ्रक भस्म १० तोले, शुद्ध पारा १० तोले और शुद्ध गन्धक १० तोले लेवे। क्राथके लिये त्रिफला लोहे और अभ्रकसे तिगुना लेकर १६ गुने जलमें पकावे। जब पककर आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर उस क्राथके साथ उक्त लोहे और अभ्रककी भस्म एवं गोघृत ३० तोले, शतावरका रस ३० तोले और दूध ६० तोले मिलाकर लोहे या ताँबेके पात्रमें करके पाककी विधिको जाननेवाला वैद्य, मन्दमन्द अग्निके द्वारा पकावे और लोहेकी करछीसे चलाता जाय। जब वह क्राथ पककर सिद्ध होजाय तब उसमें वायविडङ्ग, सोंठ, धनियाँ, गिलोयका सत्त्व, जीरा, ढाकके बीज, मिरच, पीपल, गजपीपल, निसोत, त्रिफला, दन्ती, इलायची, अण्डकी जड, चव्य,

पीपलामूल, चीता, नागरमोथा और विधारा इन सब ओषधियोंके चूर्णको लोहे और अभ्रककी समानभाग अर्थात् तीस तीस तोले एवं पूर्वोक्त पारद और गन्धककी कज्जली बनाकर डालदेवे और करछीसे चलाकर सबको एक-मएक करलेवे। आमवातरूपी गजेन्द्रको नष्ट करनेके लिये ब्रह्माजीने इस विडङ्गादि लौहरूपी सिंहको निर्माण कियाहै। इसको नित्यप्रति उचित मात्रासे सेवन करनेसे आमवात, शोथ, मन्दाग्नि, हलीमक, कामला, पाण्डुआदि रोग नष्ट होते हैं। यह रसायन अत्यन्त बलकारी और पौष्टिक है॥ ७५-८२॥

पञ्चाननरसलौह।

जारितं पुटितं लौहचूर्णं पञ्चपलं शुभम्।
गुग्गुलोश्च पलं पञ्च लौहार्द्धं मृतमभ्रकम्॥ ८३॥
शुद्धसूतमभ्रसमं गन्धकं तत्समं भवेत्।
त्रिगुणामयसश्चूर्णात् कृत्वा तां त्रिफलां पचेत्॥ ८४॥
द्विरष्टभागं पानीयमष्टभागावशेषितम्।
तेन चाष्टावशेषेण पचेल्लोहाभ्रगुग्गुलुम्॥ ८५॥
घृततुल्यं शतावर्या रसं दत्त्वा तथा शुभम्।
प्रस्थं प्रस्थश्च दुग्धस्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत्॥ ८६॥
लौहमय्या पचेद्दर्व्या पात्रे चायसि मृण्मये।
ततः पाकविधिज्ञस्तु पाकसिद्धौ विनिःक्षिपेत्॥८७॥
विडङ्गं नागरं धान्यं गुडूचीसत्त्वजीरकम्।
पञ्चकोलं त्रिवृद्दन्ती त्रिफलैला च मुस्तकम्॥ ८८॥
सुचूर्णितञ्च प्रत्येकमेषामर्द्धपलं क्षिपेत्।
रसस्य कज्जलीं कृत्वा ईषदुष्णे विमर्दयेत्॥ ८९॥
उत्तार्य स्थापयेद्भाण्डे स्निग्धे चापि सुरक्षितम्।
घृतेन मधुना पश्चान्मर्दयित्वानुपानतः॥ ९०॥
गुडूचीनागरैरण्डं क्राथयित्वा जलं पिबेत्।
भक्षयेच्छुद्धदेहस्तु शुभेऽहनि सुरार्चकः॥ ९१॥
आमवातमहाव्याधिविनाशायेष्टदेवता।
सन्धिवातं कटीशूलं कुक्षिशूलं सुदारुणम्॥ ९२॥

जङ्घापादाङ्गुली शूलं गृध्रसीं हन्ति पङ्गुताम् ।
गुल्मशोथं पाण्डुरोगं सन्धिवातञ्च दुस्सहम् ॥
आमवातगजेन्द्रस्य केशरी विधिनिर्मितः ॥ ९३ ॥

जारित और पुटित लोहेकी भस्म ५ पल, गूगल ५ पल, अभ्रकभस्म २॥ पल, शुद्धपारा २॥ पल और शुद्धगन्धक २॥ पल लेवे । काथके लिये त्रिफलेकी प्रत्येक ओषधि पन्द्रह पन्द्रह पल लेकर सोलह गुने जलमें पकावे । पकते पकते जब आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस काथके साथ लोहचूर्ण, गूगल, अभ्रक एवं घृत १ प्रस्थ, शतावरका रस एक प्रस्थ और गोदुग्ध १ प्रस्थ मिलाकर लोहे अथवा मिट्टीके पात्रमें करके मन्दमन्द अग्निके द्वारा शनैःशनैः पकावे और लोहेकी करछीसे चलाता जाय । फिर पाककी विधिको जाननेवाला वैद्य, पाकके उत्तम प्रकारसे सिद्ध होजानेपर वायविडङ्ग, सोंठ, धनियाँ, गिलोयका सत्त्व, जीरा, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड, सोंठ, निसोत, दन्ती, त्रिफला, इलायची और नागरमोथा इन ओषधियोंके दो दो तोले चूर्णको और पारे, गन्धककी कज्जली करके पाकके कुछ कुछ गरम रहनेपर डालदेवे और करछीसे चलाकर सबको एकम एक कर लेवे । फिर उसको उतारकर चिकने बर्तनमें भरकर रखदेवे । फिर इस लोहको शुभदिनमें शुद्ध होकर रोगी आमवातरोगको नष्ट करनेके लिये अपने इष्टदेव तथा अन्यान्य देवताओंका पूजन करके घृत और शहदके साथ मिलाकर भक्षण करे, ऊपरसे गिलोय, सोंठ और अण्डकी जडका काथ बनाकर पानकरे । यह पञ्चानन रस आमवातरूपी दारुणरोगको नष्ट करनेके लिये मनोवांछित फल देनेवाले इष्टदेवकी समानहै। यह सन्धिगतवात, कटिशूल, कुक्षिशूल एवं जंघा, पाँव और अँगुलियोंमें स्थित वातकी पीडा, गृध्रसी, पंगुता, गुल्म, शोथ, पाण्डुरोग और दुस्सह सन्धिवातको नष्ट करताहै । इस पञ्चाननरूपी सिंहको आमवातरूपी गजेन्द्रको नष्ट करनेके लिये ब्रह्माजीने निर्माण कियाहै।।८३-९३

अजमोदादि वटक ।

अजमोदा मरिचपिप्पली विडङ्गसुरदारुचित्रकशताह्वाः ।
सैन्धवपिप्पलीमूलं भागा नवकस्य पालिकाः स्युः ॥९४॥
शुण्ठी दशपलिका स्यात्पलानि तावन्ति वृद्धदारस्य ।
पथ्या पञ्चपलानि च सर्वाण्येकत्र सञ्चूर्ण्य ॥ ९५ ॥
समगुडवटकाः खादेतच्चूर्णं वाप्युष्णवारिणा पिबतः ।
नश्यन्त्यामानिलजाः सर्वे रोगाः स्युः कष्टाश्च ॥९६॥

विषूचिका प्रतितूनी हृद्रोगागृध्रसी चोग्रा।
कटिवस्तिगुदस्फुटनं चैवास्थिजंघयोस्तीव्रम् ॥ ९७ ॥
श्वयथुस्तथाङ्गसन्धिषु ये चान्येऽप्यामवातसम्भूताः।
सर्वे प्रयान्ति नाशं तम इव सूर्यांशुविध्वस्तम् ॥ ९८ ॥

अजमोद, कालीमिरच, पीपल, वायविडङ्ग, देवदारु, चीता, शतावर, सैंधानमक और पीपलामूल ये प्रत्येक चार चार तोले, सोंठ १० पल, विधारेके बीज १० पल, और हरड ५ पल इन सबको एकत्र चूर्ण करके और सब चूर्णकी बराबर गुड मिला कर मोदक बनानेकी समान पाक करके वटक (बडे) बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन एकएक वटक अथवा केवल चूर्णको छः मासे परिमाण लेकर गरम जलके साथ सेवन करनेसे सम्पूर्ण पीडाओं सहित आमवात रोग, एवं विषूचिका, तूनी, हृदयरोग, गृध्रसीवात, कमर, वस्ति, गुदा, अस्थि (हड्डी) और जंघाओंकी तीव्र वेदना, सूजन तथा अङ्गों और सन्धिस्थानोंमें स्थित सूजन एवं अन्यान्य आमवातजन्य समस्तरोग इस प्रकार नाश होते हैं जैसे सूर्यकी किरणोंसे अन्धकार दूर होजाता है ॥ ९४-९८ ॥

आमवातगजसिंह मोदक।

शुण्ठीचूर्णस्य प्रस्थैकं यमान्याश्च पलाष्टकम्।
जीरकस्य पलद्वन्द्वं धान्यकस्य पलद्वयम् ॥ ९९ ॥
पलैकं शतपुष्पाया लवङ्गस्य पलं तथा।
टङ्कणस्य पलं ग्राह्यं मरिचस्य पलं भवेत् ॥ १०० ॥
त्रिवृता त्रिफलाक्षारं पिप्पलीनां पलं पलम्।
एतेषां सर्वचूर्णानां खण्डं दद्याद्गुणत्रयम् ॥ १०१ ॥
घृतेन गुडकीकृत्य मोदको मधुना कृतः।
शट्येलातेजपत्राणां कर्षं दद्याद्गुडत्वचः ॥ १०२ ॥
चतुर्भिरधिवासोऽस्य तोलैकं खादयेद्बुधः।
शरीरं वीक्ष्य मात्रास्य युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम् ॥ १०३ ॥
आमवातप्रशमनः कटिग्रहविनाशनः।
शूलघ्नो रक्तपित्तघ्नश्चाम्लपित्तविनाशनः ॥ १०४ ॥
श्रीमता चन्द्रनाथेन गुरुणा भाषितं मयि।
श्रीमद्गहननाथोऽहं कृतवान् मोदकं शुभम् ॥ १०५ ॥

गर्जित्वामगजेन्द्रोऽथमजीर्णबलमागतः ।
यथा सिंहो वने हन्ति दन्तिनं बलिनं शुभम् ॥
तथामवातकारिणं निहन्त्येव न संशयः ॥ १०६ ॥

सोंठका चूर्ण ६४ तोले, अजवायन ३२ तोले, जीरा ८ तोले, धनियाँ ८ तोले, सोया ४ तोले, लौंग ४ तोले, सुहागा ४ तोले, कालीमिरच ४ तोले, निसोत ४ तोले, त्रिफला ४ तोले, जवाखार ४ तोले और पीपल ४ तोले इन सबको एकत्रकर बारीक पीसलेवे और सब ओषधियोंके चूर्णसे तिगुनी खाँड मिलालेवे । प्रथम जलके साथ खाँडकी चासनी बनाकर उसमें उपर्युक्त चूर्ण और कचूर, इलायची, तेजपात, दारचीनी इन प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला डालकर घृत और मधुके योगसे मोदक बनालेवे । इसमेंसे प्रतिदिन एक एक तोला परिमाण अथवा शरीरके बलाबलको विचारकर इसकी मात्राको युक्तिपूर्वक न्यूनाधिक करके सेवन करे । ये मोदक आमवातको नष्ट करनेवाले, कमरकी पीडाको दूर करनेवाले, शूल, रक्तपित्त और अम्लपित्तको विनाश करनेवाले हैं । श्रीमान् गुरु चन्द्रनाथजीने मुझसे कहा, तब(मैंने) गहननाथने इस उत्तम मोदकोंके प्रयोगको बनाया है । जिस प्रकार वनमें विचरतेहुए बलवान् हाथीको गर्जकर सिंह मारदेता है; उसी प्रकार अजीर्णरूपी बलको प्राप्तकर मनुष्यशरीररूपी वनमें विचरतेहुए आमवातरूपी गजेन्द्रको यह आमवातगजसिंहमोदक नष्ट करताहै; इसमें सन्देह नहीं ॥ ९९-१०६ ॥

रसोनपिण्ड ।

रसोनस्य पलशतं तिलस्य कुडवं तथा ।
हिङ्गुत्रिकटुकं क्षारौ द्वौ पञ्च लवणानि च ॥ १०७ ॥
शतपुष्पा तथा कुष्ठं पिप्पलीमूलचित्रकौ ।
अजमोदा यमानी च धान्यकश्चापि बुद्धिमान् ॥१०८॥
प्रत्येकन्तु पलश्चैषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥
घृतभाण्डे दृढे चैतत् स्थापयेद्दिनषोडश ॥ १०९ ॥
प्रक्षिप्य तैलमानीश्च प्रस्थार्द्धं काञ्जिकस्य च ।
खादेत्कर्षप्रमाणन्तु तोयं मद्यं पिबेदनु ॥ ११० ॥
आमवाते तथा वाते सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रये ।

अपस्मारेऽनले मन्दे कासश्वासगरेषु च ॥
उन्मादे वातभग्ने च शूले जन्तोः प्रशस्यते ॥ १११ ॥

छिलके रहित लहसन सौ पल और भूसीरहित तिल १६ तोले लेकर एकत्र पीसलेवे। फिर हींग, त्रिकुटा, जवाखार, सज्जी, पाँचों नमक, सोया, कूठ, पीपलामूल, चीता, अजमोद, अजवायन और धनियाँ इन प्रत्येकको चार चार तोले लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। एवं तिलका तेल एक सेर और काँजी ३२ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर मजबूत और घीके चिकने बर्त्तनमें भरकर और उसका मुख बन्द करके सोलह दिनतक रखा रहनेदेवे। फिर निकालकर उसमेंसे प्रतिदिन एक एक तोला सेवन करे और ऊपरसे शीतलजल या मद्य पान करे। इस रसोनपिण्डको आमवात, वातरोग, सर्वाङ्गगतवात तथा एकाङ्गगतवात, अपस्मार, मन्दाग्नि, खाँसी, श्वास, विषविकार, उन्माद, वातभग्न, शूल और कृमिरोगमें प्रयोग करना चाहिये ॥ १०७-१११ ॥

महारसोनपिण्ड।

रसोनस्य पलशतं तदर्द्धं निस्तुषात्तिलात्।
पात्रं गव्यस्य तक्रस्य पिष्ट्वा चैतानि संक्षिपेत् ॥ १२ ॥
त्रिकटु धान्यकं चव्यं चित्रकं गजपिप्पली।
अजमोदा त्वगेला च ग्रन्थिकश्च पलांशिकम् ॥ १३ ॥
शर्करायाः पलान्यष्टौ पलांशं मरिचस्य च।
कुष्ठाजाज्योश्च चत्वारि मधुनः कुडवं तथा ॥ १४ ॥
आर्द्रकस्य च चत्वारि सर्पिषोऽष्टौ पलानि च।
तिलतैलस्य चत्वारि शुक्तकस्यापि विंशतिः ॥१५॥
सिद्धार्थकस्य चत्वारि राजिकायास्तथैव च।
कर्षप्रमाणं दातव्यं हिङ्गु लवणपञ्चकम् ॥ १६ ॥
एकीकृत्य दृढे कुम्भे धान्यराशौ निधापयेत्।
द्वादशाहात्समुद्धृत्य प्रातः खाद्यं यथाबलम् ॥ १७ ॥
सुरा सौवीरकं सीधु क्षीरञ्चानु पिबेन्नरः।
जीर्णे यथेप्सितं भोज्यं दधि पिष्टान्नवर्जितम् ॥ १८ ॥
एकमासप्रयोगेण सर्वान्व्याधीन्व्यपोहति।
अशीतिं वातजान्रोगाँश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ १९ ॥

विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव प्रमेहानपि विंशतिम् ।
अर्शांसि षट्प्रकाराणि गुल्मं पञ्चविधं तथा ॥ १२० ॥
अष्टादशविधं कुष्ठमेकादशविधं क्षयम् ।
श्वयथुं योनिशूलञ्च सर्वमाशु विनाशयेत् ॥ २१ ॥
शतसन्ध्यस्थिभग्नानां सन्धानकरणः परः ।
दृष्टेर्बलकरो हृद्यो आयुष्यो बलवर्द्धनः ॥
महारसोनपिण्डोऽयमामवातकुलान्तकः ॥ १२२ ॥

छिल्के रहित लहसन १०० पल, भूसी रहित तिल ५० पल और गायका मट्ठा ८ सेर लेकर सबको एकत्र करके पीसलेवे । फिर सोंठ, मिरच, पीपल, धनियाँ, चव्य, चीता, गजपीपल, अजमोद, दारचीनी, इलायची और पीपलामूल ये प्रत्येक एक एक तोला, एवं मिश्री ८ पल, मिरच १ तोला, कूठ १६-तोले, कालाजीरा १६ तोले, शहद १६ तोले, अदरख १६ तोले, गोघृत ३२-तोले, तिलका तेल १६ तोले, काँजी ८० तोले, सफेद सरसों १६ तोले, राई १६ तोले, हींग २ तोले और पाँचोंनमक प्रत्येक दो दो तोले इन सबको एकत्र पीसकर उक्त गोतक्रमें मिलादेवे । फिर धूपमें सुखाकर मजबूत और घीके चिकने वर्त्तनमें भरकर और उसका मुख बन्दकरके धानोंकी राशिमें गाडदेवे । बारह दिनके बाद निकालकर इसको प्रतिदिन प्रातःकाल जठराग्निके बलाबलके अनुसार यथोचितमात्रासे सेवन करे और ऊपरसे मद्य, सौवीरकनामके काँजी, सीधु (सिर्का) अथवा गोदुग्ध पान करे । ओषधिके जीर्ण (हज्म) होजानेपर यथेच्छरूपसे भोजन करे और दही, पिष्टान्न (पिठ्ठी आदिके बनेहुए) पदार्थोंको त्यागदेवे । इस औषधको एक महीनेतक सेवन करनेसे यह सम्पूर्ण व्याधियोंको दूर करती है । एवं अस्सी प्रकारके वातजरोग, चालीस प्रकारके पित्तज और बीस प्रकारके कफजन्यरोग, बीसों प्रकारके प्रमेह, छः प्रकारके अर्श, पाँच प्रकारके गुल्म १८ प्रकारके कुष्ठ, ११ प्रकारके क्षयरोग, शोथ और योनिशूल इन सब रोगोंको शीघ्र नष्ट करती है। एवं क्षत (घाव) और सन्धिस्थानकी पीडाको दूर करती तथा टूटीहुई हड्डीको जोड देती है । दृष्टिशक्तिको प्रबल करती, हृदयको हितकारी, आयु बलकी वृद्धि करनेवाली है । यह महारसोनपिण्ड आमवातरोगको तो समूल नष्ट कर देताहै॥११२-१२२॥

वातारिगुग्गुलु ।

वातारितैलसंयुक्तं गन्धकं पुरसंयुतम् ।
फलत्रययुतं कृत्वा पिष्टयित्वा चिरं रुजी ॥ २३ ॥

भक्षयेत्प्रत्यहं प्रातरुष्णतोयानुपानतः।
दिनेदिने यथोक्तञ्च मासमेकं निरन्तरम् ॥ २४ ॥
सामवातं कटीशूलं गृध्रसीं खञ्जपङ्गुताम्।
वातरक्तं सशोथश्च सदाहं क्रोष्टुशीर्षकम् ॥
शमयेद्बहुशो दृष्टमपि वैद्यविवर्जितम् ॥ २५ ॥

शुद्धगन्धक, गूगल, हरड, बहेडा और आमला प्रत्येक ओषधिको समान भाग लेकर खूब बारीक चूर्णकरके अण्डीके तेलमें खरल करलेवे। इसको नित्य प्रति प्रातःकाल छः २ मासे परिमाण सेवनकर ऊपरसे उष्णजल पान करे। इसको निरन्तर एक महीने तक सेवन करनेसे आमवात, कटिशूल, गृध्रसी॰ वात, खञ्ज, पंगुता, वातरक्त, सूजन, दाह, क्रोष्टुशीर्षकरोग और ऐसे अनेकों रोग जिनको देखकर वैद्योंने त्यागदिया हो वे भी शीघ्र शमन होतेहैं २३–२५

योगराजगुग्गुलु।

चित्रकं पिप्पलीमूलं यमानी कारवी तथा।
विडङ्गान्यजमोदा च जीरकं सुरदारु च ॥ २६ ॥
चव्यैला सैन्धवं कुष्ठं रास्ना गोक्षुरधान्यकम्।
त्रिफलां मुस्तकं व्योषं त्वगुशीरं यवाग्रजम् ॥ २७ ॥
तालीशपत्रं पत्रञ्च श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रन्तु गुग्गुलुम् ॥२८॥
सम्मर्द्य सर्पिषा गाढं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत्।
अतो मात्रां प्रयुञ्जीत यथेष्टाहारवानपि ॥ २९ ॥
योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः।
आमवाताढ्यवातादीन् कृमिदुष्टव्रणानि च ॥ ३० ॥
प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत्।
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिं बलं तथा ॥
वातरोगान् जयत्येष सन्धिमज्जगतानपि ॥ ३१ ॥

चीतेकी जड, पीपलामूल, अजवायन, कालाजीरा, वायविडङ्ग, अजमोद, जीरा, देवदारु, चव्य, छोटी इलायची, सैंधानमक, कूठ, रास्ना, गोखुरू, धनियाँ, त्रिफला, नागरमोथा, त्रिकुटा, दारचीनी, खस, जवाखार, तालीस-पत्र और तेजपात इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर

समस्त चूर्णकी बराबर शुद्ध गूगल मिलाकर सबको एकत्र पीसलेवे और गोघृतके साथ उत्तमप्रकारसे खरलकरके चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे । इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल यथोचित मात्रासे सेवन करे और इसके जीर्णहोनेपर यथेच्छ भोजन करे । यह योगराज नामक प्रसिद्धयोग अमृतकी समान उपकारी है । यह ओषधि आमवात, आढ्यवात, कृमिरोग, दुष्टव्रण, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, अफारा और बवासीर इन समस्त व्याधियोंको नष्ट करती है । एवं सन्धि और मज्जागत वातरोगोंकोभी दूर करती है । जठराग्निको दीपन करती तथा बल और तेजकी वृद्धि करती है ॥ २६-१३१ ॥

बृहद्योगराजगुग्गुलु ।

त्रिकटु त्रिफला पाठा शताह्वा रजनीद्वयम् ।
अजमोदा वचा हिङ्गु हबुषा हस्तिपिप्पली ॥ ३२ ॥
उपकुञ्ची शठी धान्यं विडं सौवर्चलं तथा ।
सैन्धवं पिप्पलीमूलं त्वगेला पत्रकेशरम् ॥ ३३ ॥
फणिज्झकश्च लौहश्च सर्जकश्च त्रिकण्टकम् ।
रास्ना चातिविषा शुण्ठी यवक्षाराम्लवेतसम् ॥३४॥
चित्रकं पुष्करं चव्यं वृक्षाम्लं दाडिमं रुबु ।
अश्वगन्धा त्रिवृद्दन्ती बदरं देवदारु च ॥ ३५ ॥
हरिद्रा कटुका मूर्वा त्रायमाणा दुरालभा ।
विडङ्गं मृतवङ्गश्च यमानी वासकाभ्रकम् ॥ ३६ ॥
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत ।
शोधितं गुग्गुलुश्चैव सर्वचूर्णसमं नयेत् ॥ ३७ ॥
घृतेन पिष्टयित्वा च स्निग्धभाण्डे निधापयेत् ।
रसघातेन ये भग्नाः कटिभग्नाश्च ये जनाः ॥ ३८ ॥
एकाङ्गं शुष्यते येषां कुष्ठं वापि क्षतोत्तरम् ।
पादौ विस्तारितौ येषां येषां वा गृध्रसीग्रहः ॥ ३९ ॥
सन्धिपातं क्रोष्टुशीर्षं वातं सर्वशरीरगम् ।
अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान्॥१४०
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव हन्त्यवश्यं न संशयः ।
अयं वृहद्योगराजगुग्गुलुः सर्ववातहा ॥ ४१ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, आमला, हरड, बहेडा, पाढ, सोया, हल्दी, दारुहल्दी, अजमोद, वच, हींग, हाऊबेर, गजपीपल, छोटीइलायची, कचूर, धनियाँ, विडनमक, कालानमक, सैंधानमक, पीपलामूल, दारचीनी, बडी इलायची, तेजपात, नागकेशर, छोटे पत्तोंकी तुलसी, लोहभस्म, राल, गोखुरु, रायसन, अतीस, सोंठ, जवाखार, अमलवेंत, चीता, पोहकरमूल, चव्य, विषांविल, अनार, अण्डकी जड, असगन्ध, निसोत, दन्ती, बेरकी गुठली, मींग, देवदारु, हल्दी, कुटकी, मूर्वा, त्रायमाणा, धमासा, वायाविडङ्ग, वङ्गभस्म, अजवायन, अडूसा और अभ्रकभस्म इन सब ओषधियोंको समानभाग लेकर एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे। फिर समस्त चूर्णकी बराबर शुद्ध गूगल लेकर सबको एकत्र मिलाकर घृतके साथ खरल करके चिकने बासनमें भरकर रखदेवे। इसको नित्यप्रति प्रातः-सायंकाल छः छः मासेकी मात्रासे सेवन करे। यह बृहद्योगराजगूगल पारेके विकारसे जिनके शरीर नष्ट होगये हैं, एवं जिनकी कमर टूट गई है, जिनका एक अंग सूख गया है, जिनके कुष्ठ और क्षत अत्यन्त बढते जाते हों, पैर फटगये हों, जिनको गृध्रसीवातने जकड लिया हो एवं सन्धिगतवात, क्रोष्टुशीर्षवात और सर्वशरीरगत तथा अस्सी प्रकारके वातरोग, चालीस प्रकारके पैत्तिक और बीसप्रकारके कफजनित रोगोंको निस्सन्देह नष्ट करता है। यह बृहद्योगराजगूगल सर्वप्रकारकी वातव्याधिको नष्ट करनेवाली परमोत्कृष्ट औषध है॥ ३२-१४१॥

व्याधिशार्दूल गुग्गुलु।

त्रिफलायाः पलान्यष्टौ प्रत्येकं द्विपलं पुनः।
कटुतैलं पलद्वन्द्वं दोलाशोधितगुग्गुलुम्॥ ४२॥
सार्द्धाढकजले पक्त्वा पादशेषं पुनः पचेत्।
चूर्णीकृत्य क्षिपेत्सिद्धे पृथक् कर्षार्द्धसम्मितम्॥ ४३॥
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गामलकानि च।
गुडूच्यग्निस्त्रिवृद्दन्ती चवी शूरणमानकम्॥ ४४॥
सार्द्धं शतद्वयं दद्याच्चूर्णितं कानकं फलम्।
रसगन्धकलौहाभ्रं प्रत्येकं कर्षसम्मितम्॥ ४५॥
ततो माषद्वयं जग्ध्वा प्रातरुष्णोदकं पिबेत्।
अग्निं च कुरुते दीप्तं वयोबलविवर्द्धनम्॥ ४६॥

अर्शोऽश्मरीमूत्रकृच्छ्रं शिरोवाताम्लपित्तनुत् ॥
कासं पञ्चविधं श्वासं दाहोदरभगन्दरम् ॥ ४७ ॥
शोथान्त्रवृद्धितिमिरं श्लीपदं प्लीहकामलम् ।
शूलगुल्मक्षयं कुष्ठं सपाण्डुविषमज्वरम् ॥ ४८ ॥
जानुजङ्घास्थितपादगतं वातं कटीग्रहम् ।
हन्ति चान्यान्कफोत्थांश्च आमवातं विशेषतः ॥
व्याधिशार्दूलको नाम्ना गुग्गुलुः परिकीर्त्तितः १४९॥

हरड, बहेडा और आमला प्रत्येकको आठ आठ पल लेकर डेढ आढक जलमें पकावे । जब चौथाईभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर कडुवा तेल दो पल और दोलायन्त्रके द्वारा शुद्ध कीहुई गूगल दो पल इनको एकत्र मर्दन करके पूर्वोक्त क्वाथमें मिलाकर पकावे । जब पाक उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तव उतारकर उसमें त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, आमले, गिलोय, चीतेकी जड, निसोत, दन्ती, चव्य, जिमीकन्द और मानकन्द प्रत्येक ओषधि एक एक तोला, शुद्ध जमालगोटेके बीज २५० एवं शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म और अभ्रक भस्म ये प्रत्येक एक एक कर्ष इन सबको एकत्र चूर्ण करके डालदेवे । फिर सबको एकमएक करके चिकने बासनमें भरकर रखदेवे । इसमेंसे नित्यप्रति प्रातःसमय दो २ मासे खाकर ऊपरसे उष्ण जल पानकरे यह गूगल जठराग्निको दीपन करताहै, आयु और बलको बढाता है।एवं अर्श,पथरी,मूत्रकृच्छ्र,शिरोरोग, वातविकार, अम्लपित्त, पाँचोंप्रकारकी खाँसी, श्वास, दाह,उदरपीडा, भगन्दर, शोथ, अन्त्रवृद्धि, तिमिररोग, श्लीपद, प्लीहा, कामला, शूल, गुल्म, क्षय, कोढ, पाण्डुयुक्त विषमज्वर, जानु, जङ्घा और पादस्थितवातपीडा, कटिग्रह, एवं अन्यान्य कफोत्पन्न रोगोंको और विशेषकर आमवातरोगको शीघ्र नष्ट करता है । यह गूगल व्याधिशार्दूलनामसे प्रसिद्ध है ॥ ४२–४९ ॥

बृहत्सिंहनाद–गुग्गुलु ।

पिष्टितां गुग्गुलोर्मानीं कटुतैलपलाष्टके ।
प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थौ सार्द्धद्रोणे जले पचेत् ॥ १५० ॥
पादशेषश्च पूतश्च पुनरेताद्विमिश्रयेत् ।
त्रिकटु त्रिफला मुस्ताविडङ्गामरदारु च ॥ ५१ ॥

गुडूच्यग्निस्त्रिवृद्दन्ती चवी शूरणमानकम् ।
पारदं गन्धकश्चैव प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ॥ ५२ ॥
सहस्रं कानकफलं सिद्धे सञ्चूर्ण्य निःक्षिपेत् ।
ततो माषद्वयं जग्ध्वा पिबेत्तप्तजलादिकम् ॥ ५३ ॥
अग्निश्च कुरुते दीप्तं वाडवानलसन्निभम् ।
धातुवृद्धिं वयोवृद्धिं बलं सुविपुलं तथा ॥ ५४ ॥
आमवातं शिरोवातं सान्धिवातं सुदारुणम् ।
जानुजङ्घाश्रितं वातं सकटीग्रहमेव च ॥ ५५ ॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च भगञ्च तिमिरोदरे ।
अम्लपित्तं तथा कुष्ठं प्रमेहं गुदनिर्गमम् ॥ ५६ ॥
कासं पञ्चविधं श्वासं क्षयञ्च विषमज्वरम् ।
प्लीहानं श्लीपदं गुल्मं पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ ५७ ॥
शोथान्त्रवृद्धिशूलानि गुदजानि विनाशयेत् ।
मेदःकफमसंघातं व्याधिवारणदर्पहा ॥
सिंहनाद इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ ५८ ॥

कुटाहुआ और पोटलीमें बाँधकर शुद्ध किया हुआ गूगल १६ पल, सरसोंका तेल ८ पल लेवे । प्रथम त्रिफलेकी प्रत्येक ओषधि दो दो प्रस्थ लेकर डेढ द्रोण जलमें पकावे । पकते २ जब चौथाईभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस क्वाथमें उक्त पदार्थोंको मिलाकर पकावे । जब पाक पककर गाढा होजाय तब उसमें त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, देवदारु, गिलोय, चीता, निसोत, दन्ती, चव्य, जिमीकन्द, मानकन्द शोधित पारा और गन्धक ये प्रत्येक दो दो तोले और शुद्ध कियेहुए जमालगोटेके १००० बीजोंकी मींग इन सबको बारीक पीसकर डालदेवे और करछीसे सबको एकमएक करके शुद्धपात्रमें भरकर रखदेवे । इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल दो दो माशे खाकर ऊपरसे गरम जल पानकरे । यह रस बडवानलकी समान अग्निको दीपन करता है । एवं धातु, आयु और बलकी अत्यन्त वृद्धि करता है तथा आमवात, शिरोवात, सान्धिगतवात, जानू और जंघागतवात, कमरकी पीडा, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, भगन्दर, तिमिर, उदररोग, अम्लपित्त, कुष्ठ, प्रमेह, गुदाके रोग, पाँचों प्रकारकी खाँसी, श्वास, क्षय, विषम-

ज्वर, प्लीहा, श्लीपद, गुल्म, पाण्डुरोग, कामला, सूजन, अन्त्रवृद्धि, शूल और बवासीर इत्यादि रोगोंको नष्ट करताहै। एवं मेद, कफ, आम इन रोगोंको और व्याधिरूपी गजेन्द्रके मदको दूर करताहै। यह बृहत्सिंहनाद नामकगूगल अमृतकी समान गुणकारी है॥ १५०-५८॥

शुण्ठीघृत।

नागरक्वाथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
चतुर्गुणेन तेनाथ केवलेनोदकेन वा॥ ५९॥
वातश्लेष्मप्रशमनमग्निसन्दीपनं परम्।
नागरं घृतमित्युक्तं कट्यामशूलनाशनम्॥ १६०॥

सोंठके क्वाथ और कल्कके द्वारा १ प्रस्थ घृतको पकावे अथवा किसी किसीके मतसे सोंठके क्वाथके बदले केवल घृतसे चौगुने जलके साथ घृतको पकावे इस घृतको यथाविधि पान करनेसे वातकफजन्यरोग, कमरकी पीडा, आमवात और शूलरोग नष्ट होते हैं। यह जठराग्निको अत्यन्त दीपन करता है। इसको शुण्ठीघृत कहते हैं॥ ५९॥१६०॥

शृङ्गवेराद्यघृत।

शृङ्गवेरयवक्षारपिप्पलीमूलपिप्पलीः।
पिष्ट्वा विपाचयेत्सर्पिरारनालं चतुर्गुणम्॥ ६१॥
शूलं विबन्धमानाहमामवातं कटीग्रहम्।
नाशयेद्ग्रहणीदोषमग्निसन्दीपनं परम्॥ ६२॥

सोंठ, जवाखार, पीपलामूल और पीपल इन ओषधियोंको समान भाग लेकर बारीक पीसकर इनके कल्क और घृतसे चौगुनी काँजीके साथ एक प्रस्थ घृतको पकावे। यह घृत शूल, विबन्ध, आनाह, आमवात, कटीग्रह और संग्रहणी इन सबको नाश करताहै और अग्निको अत्यन्त दीपन करताहै॥ ६१॥६२॥

प्रसारणीतैल।

प्रसारण्या रससिद्धं तैलमेरण्डजं पिबेत्।
सर्वदोषहरं चैव आमवातहरं परम्॥ ६३॥

प्रसारणीके क्वाथके साथ अण्डीके तेलको यथाविधि पकाकर पान और मर्दन करनेसे सम्पूर्ण दोष और आमवातरोग नष्ट होते हैं॥ ६३॥

सैन्धवाद्य तैल ।

सैन्धवं देवकाष्ठञ्च वचा शुण्ठी च कट्फलम् ।
शताह्वा मुस्तकं चव्यं मेदे मलहरं त्रिवृत् ॥ ६४ ॥
हिज्जलस्य त्वचं बालं चित्रकं ब्रह्मयष्टिका ।
शठी विडङ्गमधुकं रेणुकातिविषा रुबु ॥ ६५ ॥
अम्बष्ठी नीलिनी दन्तीमूलं मरिचमेव च ।
अजमोदा पिप्पली च कुष्ठं रास्ना च ग्रन्थिकम् ॥ ६६ ॥
एषां कर्षमितैः कल्कैः शनैर्मृद्वाग्निना पचेत् ।
प्रस्थञ्च कटुतैलस्य मूर्च्छितस्य यथाविधि ॥ ६७ ॥
एतत्तैलवरं श्रेष्ठमभ्यङ्गात्सर्ववातनुत ।
विशेषेणामवातेषु कटीजानूरुसन्धिषु ॥ ६८ ॥
हृत्पार्श्वसर्वगात्रेषु शूलञ्चैव विनाशयेत् ।
वातश्लेष्माणि बाह्यामन्त्रवृद्धौ भगन्दरे ॥ ६९ ॥
शस्तं नाडीव्रणान्सर्वान्नाशयत्यथ देहिनाम् ।
अन्यांश्च विविधान् रोगान् वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥
सैन्धवाद्यमिदं तैलं सर्वामयनिषूदनम् ॥ १७० ॥

सैंधानमक देवदारु बच सोंठ कायफल सोया नागरमोथा चव्य मेदा महामेदा जमालगोटेकी छाल निसोत, हिज्जल (जलबेंत) वृक्षकी छाल दारचीनी सुगन्धवाला चीतेकी जड भारङ्गी कचूर वायविडंग मुलैठी रेणुका अतीस अण्डकी जड पाठ नीलके वृक्षकी जड दन्तीकी जड मिरच अजमोद पीपल कूठ रायसन और पीपलामूल इन प्रत्येक ओषधिके दो दो तोले कल्क और अठगुने जलके साथ एक प्रस्थ सरसोंके तैलको विधिपूर्वक शनैः शनैः मन्दमन्द अग्निके द्वारा पकावे । जब उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर छान लेवे । यह सब तैलोंमें उत्तम तैल है । इसकी मालिश करनेसे समस्त वातविकार नष्ट होते हैं । इसको विशेषकर आमवात कटिग्रह जानु, जङ्घा और संधिस्थानोंमें स्थितवात हृदय पार्श्व और सर्वशरीरगतवात एवं वातकफजन्य विकार बाह्य आम अन्त्रवृद्धि और भगन्दर इन रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये । यह सैन्धवाद्यतैल सर्व प्रकारके नाडीव्रण शूल समस्त दोषजन्यरोग और अन्यान्य नानाप्रकारकी व्याधियोंको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे वज्रपात वृक्षको नाश करदेता है ॥ ६४-७० ॥

बृहत्सैन्धवाद्यतैल।

सैन्धवं श्रेयसी रास्ना शतपुष्पा यमानिका।
सर्ज्जिका मरिचं कुष्ठं शुण्ठी सौवर्चलं विडम्॥ ७१॥
वचाजमोदा मधुकं जीरकं पौष्करं कणा।
एतान्यर्धपलांशानि श्लक्ष्णपिष्टानि कारयेत्॥ ७२॥
प्रस्थमेरण्डतैलस्य प्रस्थाम्बु शतपुष्पजम्।
काञ्जिकं द्विगुणं दत्वा तथा मस्तु शनैः पचेत्॥ ७३॥
सिद्धमेतत्प्रयोक्तव्यमामवातहरं परम्।
पानाभ्यञ्जनवस्तौ च कुरुतेऽग्निबलं भृशम्॥ ७४॥
वातार्त्तवङ्क्षणे शस्तं कटीजानूरुसन्धिजे।
शूले हृत्पार्श्वपृष्ठेषु कृच्छ्रेऽश्मरिनिपीडिते॥ ७५॥
बाह्यायामार्दितानाहे अन्त्रवृद्धिनिपीडिते।
अन्याँश्चानिलजान् रोगान् नाशयत्याशु देहिनाम्॥७६॥

सैंधानमक, गजपीपल, रायसन, सोया, अजवायन, सज्जी, कालीमिरच, कूठ, सोंठ, कालानमक, विड्नमक, बच, अजमोद, मुलैठी, जीरा, पोहकर-मूल और पीपल इन प्रत्येक ओषधिको दो दो तोले लेकर एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर यह चूर्ण, अण्डीका तेल १ प्रस्थ, सोयेका क्वाथ १ प्रस्थ, काँजी दो प्रस्थ और दहीका तोड दो प्रस्थ लेकर सबको एकत्र मिश्रित करके मन्द २ अग्निके द्वारा शनैः शनैः तेलको पकावे। जब उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब इसको पान, मर्दन और वस्तिक्रियाद्वारा प्रयोग करे। यह बृहत्सैन्धवाद्यतैल आमवातको नष्टकरनेके लिये परमश्रेष्ठ औषध है। और जठराग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाला है इसको वातपीडा, वंक्षणसन्धि-गत वात, एवं कमर, जानु, जंघा और सन्धिगतवात, हृदय पार्श्व और पृष्ठदेशस्थित शूलरोगमें तथा मूत्रकृच्छ्र, पथरी, बाह्यायाम, अर्दित, आनाह और अन्त्रवृद्धिकी पीडा इन रोगोंमें प्रयोग करे। यह तैल मनुष्योंकी अन्य सब प्रकारकी वातव्याधियोंको तत्काल नाश करता है॥ ७१-७६॥

विजयभैरवतैल।

रसगन्धशिलातालं सर्वं कुर्यात्समांशकम्।
चूर्णयित्वा ततः सूक्ष्ममारनालेन पेषयेत्॥ ७७॥

तैलकल्केन संलिप्य सूक्ष्मवस्त्रं ततः परम्।
तैलाक्तां कारयेद्वर्त्तिमूर्द्धभागे च दीपयेत्॥ ७८॥
वर्त्त्यधःस्थापिते भाण्डे तैलं पतति शोभनम्।
लेपयेत्तेन गात्राणि भक्षणाय च दापयेत्॥ ७९॥
नाशयेत्सूततैलं तद्वातरोगानशेषतः।
बाहुकम्पं शिरःकम्पं जङ्घाकम्पं ततः परम्।
एकाङ्गञ्च तथा वातं हन्ति लेपान्न संशयः॥ १८०॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, मैनशिल और हरताल सबको समानभाग (अर्थात् एक एक तोला) लेकर एकत्र बारीक चूर्ण करके काँजीके साथ खरल करे फिर उसका बारीक (मलमलआदि) कपडेके टुकडेपर लेप करके उसको सुखाकर बत्ती बनालेव। पश्चात् उस बत्तीको तिलके तेल अथवा अण्डीके तेलमें भिगोकर दीपककी लोयपर जलावे और उसके नीचे एक बर्त्तन रखदेवे। बत्तीके जलनेपर जो एकएक बूंद तैल उस बर्त्तनमें टपकेगा उसको लेकर शीशीमें भरकर रखलेवे। इस तैलको शरीरपर उत्तम प्रकारसे मर्दन (मालिश) करनेसे और पान करानेसे यह विजयभैरवतैल सम्पूर्ण वातरोगोंको नष्ट करता है। इसका प्रलेप करनेसे बाहुकम्प, शिरःकम्प, जंघाकम्प और एकांगगतवातकी पीडा ये सब रोग निश्चय दूर होते हैं॥ ७७-१८०॥

महाविजय-भैरवतैल।

फणिफेनयुतञ्चैतन्महद्विजयभैरवम्॥ ८१॥

इस उपर्युक्त तैलके साथ अफीम मिलादेनेसे यहही "महाविजय-भैरव तैल" कहाजाता है। यह आमवातरोगकी अत्युत्कृष्ट औषध है॥ ८१॥

आमवातमें पथ्य।

रूक्षः स्वेदो लंघनं स्नेहपानं बस्तिर्लेपो रेचनं पायुवर्त्तिः।
अब्दोत्पन्नाःशालयो ये कुलत्था जीर्णं मद्यं जाङ्गलानांरसाश्च
वातश्लेष्माणि सर्वाणि तक्रं वर्षाभूश्चैरण्डतैलं रसोनम्।
पटोलपत्तूरककारवेल्लं वार्त्ताकुशिग्रूणि च तप्तनीरम्॥ ८३॥
मन्दारगोकण्टकवृद्धदारं भल्लातकं गोजलमार्द्रकञ्च।
कटूनि तिक्तानि च दीपनानि स्युरामवातामयिने हितानि॥

रूक्ष स्वेद देना, लंघन कराना, स्नेहद्रव्योंका पान, वस्तिक्रिया (पिचकारी लगाना), लेपकरना, दस्त कराना, गुदामें वस्ति लगाना, एक वर्षके पुराने शालिधानोंके चावल और कुलथीका भोजन, पुरानी मद्य, जङ्गली पशु-पक्षियोंका मांसरस, वायु और कफनाशकसमस्तद्रव्योंका सेवन, मट्ठा, श्वेत पुनर्नवा, अण्डीका तेल, लहसन, परवल, शालिञ्चशाक, करेला, बैंगन, सहिंजनेकी फली, गरम जल, फरहद, गोखुरू, विधारा, भिलावा, गोमूत्र, अदरख एवं चरपरे कडवे और अग्निवर्द्धकपदार्थआमवातरोगीके लिये हितकारीहैं८२-८४

आमवातमें अपथ्य ।

दधिमत्स्यगुडक्षीरपोतकीमाषपिष्टकान् ।
वर्जयेदामवातार्त्तो मांसञ्चानूपसम्भवम् ॥ ८५ ॥
अभिष्यन्दिकरा ये च ये चान्ये गुरुपिच्छिलाः ।
वर्जनीयाः प्रयत्नेन आमवातार्दितैर्नरैः ॥ ८६ ॥

दही, मछली, गुड, दूध, पोईका शाक, उडद,पिट्ठीके बने पदार्थ,अनूपदेशजन्य जीवोंका मांस, एवं जो कफकारक, भारी और पिच्छिल (मलाईकी समान गिलागिला और चिकना) हों ये सब पदार्थ आमवात रोगियोंको यत्नपूर्वक त्यागदेने चाहिये ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां आमवातचिकित्सा ।

शूलरोगकी चिकित्सा ।

वमनं लङ्घनं स्वेदः पाचनं फलवर्त्तयः ।
क्षारचूर्णानि गुडिकाः शस्यन्ते शूलशान्तये ॥ १ ॥

शूलरोगमें कफकी प्रधानता होनेपर वमन, आमको पचानेके लिये लंघन, पित्तको छोडकर वात और कफके शूलमें स्वेदक्रिया, पाचनक्रिया, फलवर्त्ति, क्षारवर्त्ति वा क्षारप्रयोग एवं चूर्ण और गोलियाँ (जिनको आगे कहेंगे) ये सब शूलरोगको शान्त करनेके लिये उपयोगी कहेगये हैं ॥ १ ॥

पुंसः शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः ।
पायसैः कृशरैः पिष्टैः स्निग्धैर्वा पिशितोत्करैः ॥ २ ॥

शूलरोगयुक्त रोगीको खीर, खिचडी, पिट्ठी, स्निग्ध पदार्थ अथवा मेंडक आदिके मांसद्वारा स्वेद देनाही हितकारी है ॥ २ ॥

वातिकशूलचिकित्सा।

वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं स्नेहेन युक्तस्तु कुलत्थयूषः।
ससैन्धवो व्योषयुतः सलावः सहिङ्गुसौवर्चलदाडिमाढ्यः ३

कुलथी और लवेके मांसको समान भाग लेकर दोनोंका एकत्र काथ करके यूष सिद्ध करलेवे। फिर उसको हींग और घृतके साथ तलकर उसमें सैंधानमक, त्रिकुटा, कालानमक इनका चूर्ण और अनारका रस यथोचित मात्रामें मिलाकर सेवन करनेसे वातज शूल शीघ्र नष्ट होताहै ॥ ३ ॥

बलापुनर्नवैरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरैः।
सहिङ्गुलवणोपेतं सद्यो वातरुजापहम् ॥ ४ ॥

खिरैंटी, पुनर्नवा, अण्डकी जड, बडीकटेरी, कटेरी और गोखुरू इनके काथमें हींग और सैंधानमक मिलाकर सेवन करनेसे वातजशूल दूर होताहै॥४

शूली निरन्नकोष्ठोऽद्भिरुष्णाभिश्चूर्णिताः पिबेत्।
हिङ्गुप्रतिविषाव्योषवचासौवर्चलाभयाः ॥ ५ ॥

हींग, अतीस, त्रिकुटा, वच, कालानमक और हरड इनका चूर्ण बनाकर विना भोजनकिये शूलरोगी प्रातःकालके समय उष्ण जलके साथ पान करे॥५

तुम्बुरूण्यभया हिङ्गु पौष्करं लवणत्रयम्।
पिबेद्यवाम्बुना वातशूलगुल्मापतन्त्रकी ॥ ६ ॥

तुम्बुरु, हरड, हींग, पोहकरमूल, सेंधानमक कालानमक और विड्नमक इनको एकत्र पीसकर जौके काथके साथ पान करनेसे वातशूल, गुल्म और अपतन्त्रकरोग दूर होतेहैं ॥ ६ ॥

यमानीहिङ्गुसिन्धूत्थक्षारसौवर्चलाभयाः।
सुरामण्डेन पातव्या वातशूलनिषूदनः ॥ ७ ॥

अजवायन, हींग, सैंधानमक, जवाखार, कालानमक और हरड इनके समानभाग चूर्णको एकत्र मिश्रित करके सुराके मण्डके साथ पानकरानेसे वातजन्यशूल दूर होता है ॥ ७ ॥

विश्वमेरण्डजं मूलं क्राथयित्वा जलं पिबेत्।
हिङ्गु सौवर्चलोपेतं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ८ ॥

सोंठ १ भाग और अण्डकी जड ३ भाग इनका यथाविधि काथ बनाकर उसमें हींग और कालानमक मिलाकर पीनेसे सूलरोग तत्काल नष्ट होताहै ॥८

हिंगुपुष्करमूलाभ्यां हिङ्गुसौवर्चलेन वा ।
विश्वैरण्डयवक्काथः सद्यः शूलनिवारणः ॥ ९ ॥

सोंठ, अण्डकी जड और जौ इनके क्काथमें हींग और पोहकरमूलका चूर्ण हींग कालानमक मिलाकर पानकरनेसे शूलरोग शीघ्रं शमनहोताहै ॥ ९ ॥

तद्वद्रुबुयवक्काथो हिङ्गुसौवर्चलान्वितः ॥ १० ॥

एवं अण्डकी जड और जौके क्काथमें हींग और कालानमक डालकर पान करनेसे शूलरोग दूर होता है ॥ १० ॥

सौवर्चलाम्लिकाजाजीमरिचैर्द्विगुणोत्तरैः ।
मातुलुङ्गरसैः पिष्ट्वा गुडिका वातशूलनुत् ॥ ११ ॥

कालानमक १ तोला, इमली २ तोले, कालाजीरा ४ तोले और कालीमिरच ८ तोले इनके चूर्णको एकत्र बिजौरेनींबूके रसमें खरल करके ३–३ मासेकी गोलियाँ बनालेवे। ये गोलियाँ प्रतिदिन प्रातःकाल उष्णजलके साथ खानेसे बातशूलको नष्ट करती हैं ॥ ११ ॥

बीजपूरकमूलञ्च घृतेन सह पाययेत् ।
जयेद्वातभवं शूलं कर्षमेकं प्रमाणतः ॥ १२ ॥

बिजौरेनीम्बूकी जडको पीसकर दो तोले परिमाण लेकर घृतके साथ पान करानेसे वातजन्यशूल दूर होता है ॥ १२ ॥

हिंग्वाम्लवेतसव्योषयमानीलवणात्रिकैः ।
बीजपूररसोपेतैर्गुटिका वातशूलनुत् ॥ १३ ॥

हींग, अमलबेंत, सोंठ, पीपल, मिरच, अजवायन, सैंधानमक, कालानमक और विडनमक इनको समानभाग लेकर चूर्ण करलेवे। फिर सबको एकत्र करकें बिजौरेनीम्बूके रसमें खरल करके तीन तीन मासेकी गोलियाँ उष्णजलके साथ सेवन करनेसे वातजशूलको नष्ट करती हैं ॥ १३ ॥

बिल्वमूलतिलैरण्डं पिष्ट्वा चाम्लतुषाम्भसा ।
गुडिकां भ्रामयेदुष्णां वातशूलविनाशिनीम् ॥ १४ ॥

बेलकी जड, तिल और अण्डकी जड इनको एकत्र काँजीके साथ खरल करके गोली बनालेवे । इस गोलीको गरम करके पीडास्थानपर लेप (भ्रमण) करनेसे वातजशूल नष्ट होता है ॥ १४ ॥

तिलैश्च गुडिकां कृत्वा भ्रामयेज्जठरोपरि ।
गुडिका शमयत्येषा शूलञ्चैवातिदुस्तरम् ॥ १५ ॥

तिलोंको खट्टीकाँजीमें पीसकर गोली बनावे । फिर उसको गरम करके पेटके ऊपर लेपकरे । यह गोली दारुण वातशूलकोभी दूर करदेतीहै ॥ १५ ॥

नाभिलेपाज्जयेच्छूलं मदनः काञ्जिकान्वितः ।
जीवन्तीमूलकल्को वा सतैलं पार्श्वशूलनुत ॥ १६ ॥

मैनफलको काँजीमें पीसकर नाभिके ऊपर लेपकरनेसे वातशूल दूर होता है और जीवन्तीकी जडको पीसकर तिलके तेलमें मिलाकर लेपकरनेसे पार्श्वशूल नष्ट होता है ॥ १६ ॥

पैत्तिकशूल चिकित्सा ।

गुडशालियवाः क्षीरं सर्पिष्पानं विरेचनम ।
जाङ्गलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनाम् ॥१७॥

गुड, शालिधानोंके चावल, जौ, दूध, घृतपान, विरेचन और जङ्गली जीवोंका मांस ये सब ओषधियाँ पित्तके शूलवाले रोगियोंको हितकर हैं ॥१७॥

पैत्ते तु शूले वमनं पयोऽम्बुरसैस्तथेक्षोः सपटोलनिम्बैः।
शीतावगाहाः सरिताश्च वाताः कांस्यादिपात्राणि जलप्लुतानि ॥ १८ ॥

पित्तजशूलमें गरमजल, दुग्ध वा ईखके रसके साथ परवल और नीमकी छालका रस रोगीको पानकराकर वमन करावे । एवं शीतलजलमें गोतालगाकर स्नान करना, नदीके किनारेकी शीतल वायुका सेवन करना, शीतल जलसे भरेहुए काँसीके पात्रको पेटपर रखना ये सब उपचार पित्तज शूलवाले रोगियोंको हितकारी हैं ॥ १८ ॥

विरेचनं पित्तहरञ्च शस्तं रसाश्च शस्ताः शशलावकानाम् ।
सन्तर्पणं लाजमधूपपन्नं योगाः सुशीता मधुसंप्रयुक्ताः ॥१९॥

पित्तशूलमें पित्तनाशक द्रव्योंके द्वारा विरेचन, खरगोश और लवा आदिके मांसका यूष, सन्तर्पण (खीलोंको जलमें भिजोकर उसमें शहद मिलाकर तृप्तिके लिये पान करना) और अन्यान्य शीतल ओषधियोंमें शहद मिलाकर सेवन करना ये सब प्रयोग उपयोगी कहेगये हैं ॥ १९ ॥

छर्द्यां ज्वरे पित्तभवेऽथ शूले घोरे विदाहे त्वतिकर्षिते च ।
यवस्य पेयां मधुना विमिश्रां पिबेत्सुशीतां मनुजः सुखार्थी॥

सुखकी इच्छाकरनेवाला मनुष्य वमन, ज्वर, पित्तशूल, घोर दाह और अत्यन्त कृशताके होनेपर जौकी पेया बनाकर उसको शहद मिलाकर शीतल करके पान करे ॥ २० ॥

धात्र्या रसं विदार्या वा त्रायन्ती गोस्तनाम्बु वा ।
पिबेत्सशर्करं सद्यः पित्तशूलनिषूदनम् ॥ २१ ॥

आमलोंका रस वा विदारीकन्दका रस अथवा त्रायमाणाका रस या दाखोंका काथ मिश्री मिलाकर पान करनेसे पित्तशूल तत्काल नष्ट होताहै ॥ २१ ॥

शतावरीरसं क्षौद्रयुतं प्रातः पिबेन्नरः ।
दाहशूलोपशान्त्यर्थं सर्वपित्तामयापहम् ॥ २२ ॥

शतावरके रसको शहद मिलाकर प्रातःसमय सेवनकरनेसे दाह, शूल एवं सर्वप्रकारके पित्तजरोग दूर होते हैं ॥ २२ ॥

शतावरीसयष्ट्याह्ववाट्यालकुशगोक्षुरैः ।
शृतशीतं पिबेत्तोयं सगुडक्षौद्रशर्करम् ॥
पित्तासृग्दाहशूलघ्नं सद्यो दाहज्वरापहम् ॥ २३ ॥

शतावर, मुलैठी, खिरैंटी, कुशा और गोखुरू इनका काथ बनाकर उसको शीतलकरके गुड, शहद और मिश्री मिलाकर पानकरनेसे पित्तशूल, रक्तपित्त, दाह, शूल और दाहयुक्त ज्वर ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ २३ ॥

तैलमेरण्डजं वापि मधुकक्काथसंयुतम् ।
शूलं पित्तोद्भवं हन्ति गुल्मं पैत्तिकमेव च ॥ २४ ॥

मुलैठीके काथको अण्डीका तेल मिलाकर पानकरनेसे पित्तजन्यशूल और पित्तजगुल्म दूर होते हैं ॥ २४ ॥

प्रलिह्यात्पित्तशूलघ्नं धात्रीचूर्णं समाक्षिकम् ॥ २५ ॥

आमलोंके चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवनकरनेसे पित्तजशूल नष्ट होता है २५

श्लैष्मिकशूलचिकित्सा ।

श्लेष्मात्मके छर्दनलङ्घनानि शिरोविरेकं मधुसीधुपानम् ।
मधूनि गोधूमयवानरिष्टान् सेवेत रूक्षान्कटुकांश्च सर्वान् २६

कफजन्यशूलमें वमन, लङ्घन और नस्य देना, मधुके द्वारा बनाईहुई सीधु (मद्यविशेष), शहद, गेहूँ, जौ, अरिष्टकारक, रूखे और कटुरसवाले पदार्थोंको सेवनकरना चाहिये ॥ २६ ॥

लवणत्रयसंयुक्तं पञ्चकोलं सरामठम्।
सुखोष्णेनाम्बुना पीतं कफशूलनिवारणम् ॥ २७ ॥

सैंधानमक, विडनमक, कालानमक, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, और हींग इनके समानभाग मिश्रित चूर्णको सुखोष्णजलके साथ पानकरनेसे कफजन्यशूल दूर होता है ॥ २७ ॥

बिल्वमूलमथैरण्डं चित्रकं विश्वभेषजम्।
हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ २८ ॥

बेलकी जड, अण्डकी जड, चीतेकी जड और सोंठ इनके काथमें हींग और सैंधानमक डालकर पीनेसे कफशूल शीघ्र निवृत्त होताहै ॥ २८ ॥

आमशूल चिकित्सा।

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलविनाशिनी।
सेव्यमामहरं सर्वं यदग्निबलवर्द्धनम् ॥ २९ ॥

आमके शूलमें कफशूलनाशक समस्त क्रिया करनी एवं जो ओषधियाँ अग्नि-बलको बढानेवाली हों व आमनाशक हों वे सब सेवन करनी चाहिये ॥ २९ ॥

दीप्यकं सैन्धवं पथ्या नागरश्च चतुःसमम्।
चूर्णं शूलं जयत्याशु मन्दस्याग्नेश्च दीपनम् ॥ ३० ॥

अजवायन, सैंधानमक, हरड और सोंठ इनके समानभागचूर्णको उष्णजलके साथ सेवन करनेसे आमशूल शीघ्र दूर होताहै और जठराग्नि दीपन होतीहै ॥ ३० ॥

वातपैत्तिक-शूलचिकित्सा।

समाक्षिकं बृहत्यादि पिबेत्पित्तानिलात्मके।
व्यामिश्रं वा विधिं कुर्याच्छूले पित्तानिलात्मके ॥ ३१

वातपित्तजन्य शूलमें बडी कटेरी, गोखुरू, कटेरी, अण्डकी जड, कुशा, काँस इनका क्वाथ बनाकर उसमें शहद डालकर पानकरे वा मिश्रितक्रियाकरे ॥ ३१ ॥

पित्तश्लैष्मिकशूलचिकित्सा।

पित्तजे कफजे चापि क्रिया या कथिता पृथक्।
एकीकृत्य प्रयुञ्जीत तां क्रियां कफपित्तजे ॥ ३२ ॥

पित्तके शूल और कफके शूलमें जो पृथक् पृथक् चिकित्सा कही गई है उन दोनोंको एकत्र मिश्रित करके पित्त कफजन्यशूलमें प्रयोग करे ॥ ३२ ॥

वातश्लैष्मिक शूलचिकित्सा ।

रसोनं मधुसंमिश्रं पिबेत्प्रातः प्रकांक्षितः ।
वातश्लेष्मभवं शूलं निहन्ति वह्निदीपनम् ॥ ३३ ॥

प्रातःकालमें लहसनको शहदमें मिलाकर यथेच्छरूपसे सेवन करनेसे वात-कफजन्य शूल दूर होताहै और अग्नि दीपन होतीहै ॥ ३३ ॥

त्रिदोषजशूलचिकित्सा ।

शङ्खचूर्णं सलवणं सहिङ्गु व्योषसंयुतम् ।
उष्णोदकेन तत्पीतं शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ ३४ ॥

शंखका चूर्ण, सैंधानमक, हींग और त्रिकुटा इनको एकत्र पीसकर गरम जलके साथ पान करनेसे त्रिदोषजन्यशूल नष्ट होताहै ॥ ३४ ॥

हिङ्गु सौवर्चलं शुण्ठी पथ्या च द्विगुणोत्तरा ।
एतच्चूर्णं कटीकुक्षिपार्श्वहृद्वस्तिशूलनुत् ॥ ३५ ॥

हींग १ तोला, कालानमक २ तोले, सोंठ ४ तोले और हरड ८ तोले इनके चूर्णको एकत्र पीसकर सेवन करनेसे कमर, कुक्षि, पसली, हृदय और वस्तिगतशूल नष्ट होता है ॥ ३५ ॥

गोमूत्रशुद्धं मण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् ।
विलिहन् मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥३६॥

गोमूत्रद्वारा शुद्धकीहुई मण्डूरभस्म १ तोला और त्रिफलेका चूर्ण समान भाग मिश्रित १ तोला सबको घृत और मधुके साथ मिलाकर सेवन करनेसे त्रिदोषजन्य शूल दूर होता है ॥ ३६ ॥

दग्धमनिर्गतधूमं मृगशृङ्गं गोघृतेन सह पीतम् ।
हृदयनितम्बजशूलं हरति शिखी दारुनिवहमिव ३७

अनिर्गतधूम (जिसका धुआँ बाहर न निकलसके ऐसी) अग्निके द्वारा हिरनके सींगको भस्म करके गोघृतके साथ पान करनेसे हृदय और नितम्बगत शूलरोग नष्ट होता है ॥ ३७ ॥

परिणामशूलचिकित्सा ।

वमनं तिक्तमधुरैर्विरेकश्चात्र शस्यते ।
वस्तयश्च हिताः शूले परिणामसमुद्भवे ॥ ३८ ॥

परिणामशूलरोगमें कडवी और मधुर ओषधियोंके द्वारा वमन, विरेचन और बस्तिक्रिया प्रयोग करना हितकारी है ॥ ३८ ॥

नागरतिलगुडकल्कं पयसा संसाध्य यः पुमानद्यात्।
उग्रं परिणतिशूलं तस्यापैति सप्तरात्रेण ॥ ३९ ॥

सोंठ २ तोले, गुड २ तोले और तिलोंका कल्क ८ तोले सबको दूधमें पकाकर सेवन करनेसे सात दिनमेंही अत्युत्कट परिणामशूल नष्ट होता है ॥३९॥

शम्बूकजं भस्म पीतं जलेनोष्णेन तत्क्षणात्।
पंक्तिजं विनिहन्त्येतच्छूलं विष्णुरिवासुरान् ॥ ४० ॥

घोंघेकी भस्मको उष्णजलके साथ पानकरनेसे परिणामशूल इस प्रकार तत्काल नष्ट होजाता है, जैसे विष्णुभगवान् सुदर्शनचक्रके द्वारा असुरोंको शीघ्र नष्ट करदेते हैं। इस ओषधिको सेवनकरनेसे पहले मुखमें घृत लगालेवे, ऐसा न करनेसे मुख और जिह्वामें छाले पडजाते हैं ॥ ४० ॥

दध्नाऽलूनसरेणाद्यात् सतीनयवसक्तुकान्।
अचिरान्मुच्यते शूलान्नरोऽन्नपरिवर्जनात् ॥ ४१ ॥

अन्नको परित्याग करके शूलरोगी मलाईसहित दहीके साथ मटर और जौके सत्तुओंको सेवन करनेसे शूलरोगसे बहुत शीघ्र मुक्त होजावा है ॥ ४१ ॥

तिलनागरपथ्यानां भागं शम्बूकभस्मनाम् ॥ ४२ ॥
द्विभागगुडसंयुक्तां गुटीं कृत्वाक्षभागिकाम्।
शीताम्बुपानात्पूर्वाह्णे भक्षयेत्क्षीरभोजनः ॥ ४३ ॥
सायाह्ने रसकं पीत्वा नरो मुच्येत दुर्जयात्।
परिणामसमुत्थाच्च शूलाच्चिरभवादपि ॥ ४४ ॥

तिल, सोंठ, हरड और शम्बूकभस्म ये प्रत्येक ओषधि एक एक तोला और गुड ८ तोले इन सबको एकत्र कूट पीसकर दो दो तोलेकी गोलियाँ बनाकर इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली शीतल जलके साथ सेवन करे। इस ओषधिको सेवन करनेपर प्रातःसमय दुग्धपान करने और सायंकालमें मांसका यूष सेवनकरनेसे शूलरोगी अतिदुस्तर और चिरकालीन परिणामशूलसे भी मुक्त होजाताहै ॥ ४२-४४ ॥

यः पिबति सप्तरात्रं सक्तूनेकान्कलाययूषेण।
स जयति परिणामजं शूलं चिरजमपि किमुत नूतनजम्

जो रोगी केवल जौके सत्तुओंको मटरके यूषके साथ ७ दिनतक पान करे तो उसका बहुत पुराना परिणामशूलभी नष्ट होजाताहै। नयेका तो कहनाही क्या है॥

लोहचूर्णं वरायुक्तं विलीढं मधुसर्पिषा ।
परिणामशूलं हन्ति तन्मलं वा प्रयोजितम् ॥ ४६ ॥

लोहभस्म अथवा मण्डूरभस्म ३ तोले और हरड, बहेडा, आमला इनका चूर्ण एक एक तोला लेकर सबको एकत्र मिश्रित करके घृत और मधुके साथ सेवन करनेसे परिणामशूल नाश होता है ॥ ४६ ॥

नारिकेलक्षार ।

नारिकेलं सतोयञ्च लवणेन प्रपूरितम् ।
मृदावबेष्टितं शुष्कं पक्कगोमयवह्निना ॥ ४७ ॥
पिप्पल्या भक्षितं हन्ति शूलञ्च परिणामजम् ।
वातिकं पैत्तिकञ्चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥४८॥

जलयुक्त और उत्तम प्रकारसे पकेहुए नारियलमें सैंधेनमकका चूर्ण भरकर उसके ऊपर मिट्टीका लेप करके सुखालेवे । फिर उसकी पुटपाक विधिके अनुसार आरने उपलोंका अग्निमें भस्म करके उसके भीतरके द्रव्यको निकाल लेवे । पश्चात् उसको पीपलके चूर्णके साथ प्रतिदिन सेवनकरनेसे वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषज परिणामशूल दूर होताहै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

शंखादिचूर्ण ।

शङ्खचूर्णस्य च पलं पञ्चैव लवणानि च ।
क्षारं टङ्गणकं जाती शतपुष्पा यमानिका ॥ ४९ ॥
हिङ्गुत्रिकटुकञ्चैव सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।
आमवातं यकृच्छूलं परिणामसमुद्भवम् ॥ ५० ॥
अन्नद्रवकृतं शूलं शूलञ्चैव त्रिदोषजम् ॥ ५१ ॥

शंखकी भस्म एवं पाँचों नमक, जवाखार,सुहागा, जायफल, सोया, अजवायन, हींग और त्रिकुटा प्रत्येकको चार चार तोले लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको प्रतिदिन तीन तीन माशेकी उष्णजलके साथ सेवनकरनेसे आमवात, यकृच्छूल, परिणामशूल, अन्नद्रवनामकशूल और त्रिदोषजन्यशूल शीघ्र नष्ट होताहै ॥ ४९ ॥ ५१ ॥

सामुद्राद्यचूर्ण ।

सामुद्रं सैन्धवं क्षारो रुचकं रोमकं विडम् ।
दन्ती लौहरजः किट्टं त्रिवृच्छूरणकं समम् ॥ ५२ ॥

दधिगोमूत्रपयसा मन्दपावकपाचितम् ।
तद्यथाग्निबलं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ५३ ॥
जीर्णेऽजीर्णे तु भुञ्जीत मांसादि घृतसाधितम् ।
नाभिशूलं प्लीहशूलं यकृद्गुल्मकृतञ्च यत् ॥ ५४ ॥
विद्रध्यष्ठीलिकां हन्ति कफवातोद्भवं तथा ।
शूलानामपि सर्वेषामौषधं नास्ति तत्परम् ।
परिणामसमुत्थस्य विशेषेणान्तकृन्मतम् ॥ ५५ ॥

सामुद्रनमक, सेंधानमक, जवाखार, सज्जी, कालानमक, सांभरनमक, विरि-थासञ्चर नमक, दन्ती, लोहेकी भस्म, मण्डूरभस्म, निसोत और जिमीकन्द सबको समानभाग लेकर चूर्णकरके चूर्णसे चौगुने दही,गोमूत्र और दूधके साथ मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे । जब उत्तमप्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब उस चूर्णको अग्निके बलाबलके अनुसार यथोचितमात्रासे गरम जलके साथ सेवनकरे । इस चूर्णके जीर्ण होनेपर अथवा न होनेपर घृतके द्वारा सिद्ध कियेहुए मांसके यूषको भोजन करे । यह चूर्ण नाभिशूल,प्लीहाशूल, यकृत् शूल, गुल्मशूल, विद्रधि, अष्ठीला, कफ वातजन्यशूल विशेषकर परिणामशूल और अन्य सर्वप्रकारके शूलरोगोंको दूर करता है । सर्वप्रकारके शूलरोगोंकी इससे बढकर अन्य औषध नहीं है ॥ ५२–५५ ॥

शम्बूकादिगुडिका ।

शम्बूकं त्र्यूषणञ्चैव पञ्चैव लवणानि च ।
समांशा गुडिकाः कार्याः कलम्बकरसेन च ५६ ॥
प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेत्तद्यथाबलम् ।
शूलाद्विमुच्यते जन्तुः सहसा परिणामजात् ॥ ५७ ॥

घोंघेकी भस्म, सोंठ, मिरच, पीपल और पाँचों नमक प्रत्येकको एकएक तोला लेकर एकत्र चूर्णकरके नाडीके शाकके रसमें खरलकर गोलियाँ बना-लेवे । इसको प्रातःकाल अथवा भोजनसे पहले अग्निके बलाबलके अनुसार लेकर मन्दोष्णजलके साथ सेवन करे । इसके सेवनसे परिणामशूल तत्काल शमन होताहै ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

शङ्खरसगुडिका ।

पलानि चिञ्चाक्षारस्य पञ्चपञ्च पलानि च ।
लवणानां क्षिपेत्प्रस्थद्वयं जम्बीरवारिणा ॥ ५८ ॥

पल द्वादश शङ्खस्य भस्मीभूतं क्षिपेत्पुनः ।
पूर्वत्रयेण सम्मर्द्य हिङ्गुव्योषचतुःपलम् ॥ ५९ ॥
रसामृतसुगन्धानां पलार्द्धं च पृथक्पृथक् ।
दद्यात्समस्तं सम्मर्द्य जम्बीराम्ले दिनत्रयम् ॥ ६० ॥
बदरास्थिप्रमाणेन गुटिकां कारयेद्भिषक् ।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय तोयमुष्णं पिबेदनु ॥ ६१ ॥
शूलञ्च सर्वगुल्मञ्च अजीर्णं परिणामजम् ।
अन्त्रशूलं पङ्क्तिशूलं हृच्छूलञ्च विशेषतः ॥ ६२ ॥
कुक्षिशूलं पार्श्वशूलं पृथग्वातादिसम्भवम् ।
आमशूलमुदावर्त्तं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ६३ ॥

इमलीका क्षार ५ पल, पाँचों नमक प्रत्येक ५-५ पल, जम्बीरी नींबूका रस दो प्रस्थ सबको एकत्र मर्दन करके मन्दमन्द अग्निद्वारा पकावे । फिर शंखकी भस्म १२ पल एवं हींग, सोंठ, मिरच, पीपल ये प्रत्येक चार चार तोले, शुद्ध पारा, शुद्ध मीठा तेलिया और शुद्धगन्धक ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर सबको एकत्र मिश्रित करके जम्बीरीनींबूके रसमें तीन दिनतक खरल करके बेरकी गुठलीकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इस औषधको प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करके ऊपरसे गरम जल पान करनेसे सर्व प्रकारके शूल, गुल्म, अजीर्णशूल, परिणामशूल, अन्त्रशूल, पंक्तिशूल, हृदयशूल, विशेषकर कुक्षिशूल, पार्श्वशूल, एवं वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंसे पृथक् पृथक् उत्पन्नहुए शूल, आमशूल और उदावर्त्त ये सब रोग निस्सन्देह नाश होते हैं ॥ ५८–६३ ॥

शूलहरणयोग ।

हरीतकी त्रिकटुकं कुचिला हिङ्गुसैन्धवम् ।
गन्धकञ्च समं सर्वं वटीं कुर्यात्सुखावहाम् ॥ ६४ ॥
लघुकोलप्रमाणं तु शस्यते प्रातरेव हि ।
एकैका वटिका ग्राह्या गुल्मशूलविनाशिनी ॥ ६५ ॥
ग्रहण्यामतिसारे च साजीर्णे मन्दपावके ।
योजयेदुष्णपयसा सुखमाप्नोति निश्चितम् ॥
सुवर्णश्च भवेद्देहं सदोत्साहयुतं नृणाम् ॥ ६६ ॥

हरड, सोंठ, मिरच, पीपल, कुचला, हींग, सैंधानमक और शुद्धगन्धक सबको समानभाग लेकर एकत्र उत्तम प्रकारसे खरल करके छोटे बेरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक गोली उष्णजलके साथ सेवन करे । यह औषध गुल्म और शूलरोगनाशक है । इसको संग्रहणी, अतिसार, अजीर्ण, मन्दाग्नि आदिरोगोंमें प्रयोग करनेसे अवश्य आरोग्य लाभ होता है । इसके सेवन करनेसे मनुष्योंका शरीर उत्साही और सुवर्णकी समान कान्तिमान् होता है ॥ ६४-६६ ॥

शूलगजकेसरी ।

शुद्धसूतं द्विधागन्धं यामैकं मर्दयेद्दृढम् ।
द्वयोस्तुल्यं शुद्धताम्रं संपुटं तं निरोधयेत् ॥
ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा मृद्भाण्डे स्थापयेद्बुधः ॥ ६७ ॥
रुद्ध्वा गजपुटं दत्त्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
सम्पुटं चूर्णयेत्श्लक्ष्णं पर्णखण्डे द्विगुञ्जकम् ॥
भक्षयेत्सर्वशूलार्त्तो हिङ्गुशुण्ठीसजीरकाम् ॥ ६८ ॥
वचा मरिचजं चूर्णं कर्षमुष्णजलैः पिबेत् ।
असाध्यं साधयेच्छूलं श्रीशूलगजकेसरी ॥ ६९ ॥

शुद्धपारा १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग इन दोनोंको एकत्रकर उत्तम प्रकारसे एक प्रहरतक खरल करे । फिर उसमें शुद्ध ताम्रभस्म ३ भाग मिलाकर ताँबेके एक मूषायन्त्रमें उसको भरदेवे । (मूषापर लेप करनेकी आवश्यकता नहीं है) फिर एक मिट्टीकी हाँडीमें ८ तोले नमक डालकर उक्त मूषाको उसमें रखकर उसके ऊपर फिर ८ तोले नमक डालदेवे उस हाँडीका मुख बन्दकरके गजपुटमें पकावे । जब उत्तम प्रकारसे पककर स्वांगशीतल होजाय तब ओषधि निकालकर उसका बारीक चूर्णकर लेवे । इस औषधको २ रत्ती प्रमाण लेकर पानमें रखकर सेवन करे ऊपरसे हींग, सोंठ, जीरा, बच और कालीमिरच इन प्रत्येकके १ कर्ष चूर्णको उष्ण जलके साथ पान करे । श्रीशूलगजकेसरीरस सर्वप्रकारके शूलरोग एवं असाध्यशूलको नष्ट करताहै॥६७-६९॥

शूलवज्रिणीवटी ।

रसगन्धकलौहानां पलार्द्धेन समन्वितम् ।
टङ्कणं रामठं शुण्ठी त्रिकटु त्रिफला शठी ॥ ७० ॥

त्वगेला पत्रतालीशं जातीफललवङ्गकम् ।
यमानी जीरकं धान्यं प्रत्येकं तोलकं शुभम् ॥ ७१ ॥
माषैका वटिका कार्या छागीदुग्धेन पेषिता ।
गणेशं योगिनीं शम्भुं हरिं सूर्यं प्रपूज्य च ॥ ७२ ॥
शीततोयानुपानेन छागीदुग्धेन वा पुनः ।
एकैका भक्षिता चेयं वटिका शूलवज्रिणी ॥ ७३ ॥
शूलमष्टविधं हन्ति प्लीहगुल्मोदरज्वरम् ।
अष्ठीलानाहमेहांश्च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ ७४ ॥
अम्लपित्तामवातांश्च कामलां पाण्डुरोगकम् ।
गुरुणा चन्द्रनाथेन वटिकैषा प्रकीर्तिता ॥
संसारलोकरक्षार्थं विचिन्त्य परिनिर्मिता ॥ ७५ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक और लोहभस्म ये प्रत्येक दो दो तोले एवं सुहागा, हींग, सोंठ, त्रिकुटा, त्रिफला, कचूर, दारचीनी, इलायची, पत्रज, तालीसपत्र, जायफल, लौंग, अजवायन, जीरा और धनियाँ इन प्रत्येकको एकएक तोला लेकर चूर्ण करलेवे । फिर सबको एकत्र बकरीके दूधमें अच्छे प्रकारसे खरल करके एकएक माशेकी गोलियाँ बनालेवे । फिर प्रतिदिन प्रातः-काल गणेश, योगिनी, शिवजी, विष्णु और सूर्य इन देवताओंका पूजन करके इस शूलवज्रिणीवटीरसकी एकएक गोली शीतलजल या बकरीके दूधके साथ सेवनकरे । यह वटी आठों प्रकारके शूल, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, ज्वर, अष्ठी-लावात, अफारा, प्रमेह, मन्दाग्नि, अरुचि, अम्लपित्त, कामला, पाण्डु आदि समस्तव्याधियोंको नष्ट करती है। श्रीगुरुचन्द्रनाथजीने सांसारिकजीवोंकी रक्षाके लिये विशेषरूपसे विवेचनाकर इस वटीको निर्माण कियाहै।।७०-७५।।

शूलान्तकरस ।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं त्रिवृता चित्रकं तथा ।
एकैकशः समो भागस्तदर्द्धं रसगन्धयोः ॥
लौहाभ्रकाविडङ्गानां भागस्ताद्द्विगुणो भवेत् ॥ ७६ ॥
एतत्सर्वं समादाय चूर्णयित्वा विचक्षणः ।
त्रिफलायाः कषायेण गुडिकाः कारयेद्भिषक् ॥
तदेकां भक्षयेत्प्रातर्भक्तवारि पिबेदनु ॥ ७७ ॥

निहन्ति परिणामोत्थमम्लपित्तं वमिं तथा ।
अन्नद्रवभवं शूलं सन्निपातसमुद्भवम् ॥
सर्वशूलं निहन्त्याशु शुष्कदार्वनलो यथा ॥ ७८ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, निसोत और चीता ये प्रत्येक एकएक तोला, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक छःछः मासे, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और वायविडङ्ग ये प्रत्येक दो दो तोले लेवे। इन सबको एकत्र बारीक चूर्ण करके त्रिफलेके काथमें खरलकर चारचार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक गोली सेवन करके ऊपरसे काँजी पानकरे। यह शूलान्तकरस परिणामशूल, अम्लपित्त, वमन, अन्नद्रवजन्यशूल, सन्निपातजन्यशूल और अन्य सर्वप्रकारके शूलरोगोंको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूखे काष्ठको अग्नि तत्काल भस्म करदेता है ॥ ७७-७८ ॥

त्रिगुणाख्यरस ।

टङ्कणं हारिणं शृङ्गं स्वर्णं गन्धं मृतं रसम् ।
दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्यं रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥ ७९ ॥
त्रिगुणाख्यो रसो ह्यस्य माषैकं मधुसर्पिषा ।
सैन्धवं जीरकं हिङ्गु मध्वाज्याभ्यां लिहेदनु ॥
पंक्तिशूलहरः ख्यातो याममात्रान्न संशयः ॥ ८० ॥

सुहागा, हिरनके सींगकी भस्म, स्वर्णभस्म, शुद्धगन्धक और पारेकी भस्म, सबको समान भाग लेकर अदरखके रसमें एक दिनतक खरल करके सम्पुटमें रखकर गजपुटमें पकावे। जब स्वाङ्ग शीतल होजाय तब ओषधि निकालकर चूर्ण करलेवे। इस त्रिगुणाख्यरसको प्रातिदिन प्रातःकाल एकएक मासेकी मात्रासे घृत और शहदमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे सैंधानमक, जीरा, हींग इनके समानभाग चूर्णको घृत और शहदके साथ मिलाकर सेवन करे। यह रस एक प्रहरमेंही परिणामशूलको निश्चय नष्ट करदेता है ॥७९ ॥ ८० ॥

श्रीविद्याधराभ्र ।

विडङ्गमुस्तात्रिफलागुडूचीदन्तीत्रिवृद्ब्राह्मिकटुत्रिकश्च ।
प्रत्येकमेषां पिचुभागचूर्णं पलानि चत्वार्ययसो मलस्य ॥ ८१
गोमूत्रशुद्धस्य पुरातनस्य यद्वायसो वापि शिवाटिकायाः।
कृष्णाभ्रकाच्चूर्णपलं विशुद्धं निश्चन्द्रकं श्लक्ष्णमतीवसूतात् ८२

पादोनकर्षं स्वरसेन खल्ले शिलातलेऽगस्त्यमुनीदलस्य।
संमर्द्य यत्नादतिशुद्धगन्धपाषाणचूर्णेन पिचून्मितेन॥ ८३॥
युक्त्या ततः पूर्वरजांसि दत्त्वा सर्पिर्मधुभ्यामवमर्द्य पश्चात्।
संस्थापयेत्स्निग्धविशुद्धभाण्डे ततः प्रयोज्यास्य रसायनस्य
प्राङ्माषकौद्वावथवा त्रयो वा गवांपयो वा शिशिरं जलं वा।
पिबेदयं योगवरः प्रभूतकालप्रनष्टानलदीपकश्च॥ ८५॥
रोगं निहन्यात्परिणामशूलं शूलं तथान्नद्रवसंज्ञकञ्च।
यक्ष्माम्लपित्तं ग्रहणीं प्रदुष्टां जीर्णज्वरं लोहितपित्तमुग्रम्८६
न संति ते यान्विनिहंति रोगान्योगोत्तमः सम्यगुपास्यमानः

वायविडङ्ग, नागरमोथा, त्रिफला, गिलोय, दन्ती, निसोत, चीता और त्रिकुटा इन ओषधियोंका चूर्ण दो दो तोले, गोमूत्रमें भावना देकर शुद्ध कियेहुए पुराने मण्डूरकी भस्म या लोहभस्म अथवा लोहेके पत्थरकी भस्म १६ तोले, शुद्ध काली अभ्रककी भस्म ४ तोले, अगस्तियाके स्वरसके साथ पत्थरके खरलमें उत्तम प्रकारसे शुद्ध कियाहुआ पारा १ तोला और शुद्धगन्धकका चूर्ण दो तोले इन सबको लोहेके पात्रमें एकत्रित करके घृत और मधुके साथ लोहेके दण्डेके द्वारा खरलकर स्निग्ध और स्वच्छपात्रमें भरकर रखदेवे। इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल दो मासे अथवा तीन मासे परिणाम लेकर सेवन करे और गोदुग्ध या शीवलजलका अनुपान करे। यह प्रयोग चिरकालसे मन्दहुई अग्निको अत्यन्त दीपन करता है एवं परिणामशूल, अन्नद्रवशूल, राजयक्ष्मा, अम्लपित्त, दुस्तर संग्रहणी, जीर्णज्वर और अत्युग्र रक्तपित्त इन सब रोगोंको नष्ट करता है। यथाविधि सेवन कियाहुआ यह प्रयोग ऐसा कोई रोग नहीं है, जिनको दूर न करता हो॥ ८१–८७॥

बृहद्विद्याधराभ्र।

शुद्धसूतं तथा गन्धं फलत्रयकटुत्रयम्।
विडङ्गं मुस्तकञ्चैव त्रिवृतादन्तिचित्रकम्॥ ८८॥
आखुपर्णी ग्रन्थिकञ्च प्रत्येकं कर्षसम्मितम्।
पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य मृतायश्च चतुर्गुणम्॥ ८९॥
घृतेन मधुना पिष्ट्वा वटिकां कोलसम्मिताम्।
एकैकां वटिकां खादेत्प्रातरुत्थाय नित्यशः॥ ९०॥

अनुपानं गवां क्षीरं नीरं वा नारिकेलजम् ।
सर्वशूलं निहन्त्याशु वातपित्तभवं तथा ॥ ९१ ॥
एकजं द्वन्द्वजश्चैव तथैव सान्निपातिकम् ।
परिणामोद्भवं शूलमामवातोद्भवन्तथा ॥ ९२ ॥
कार्श्यं वैवर्ण्यमालस्यं तन्द्रारुचिविनाशनम् ।
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥९३॥

शुद्धपारा और शुद्ध गन्धक, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडङ्ग, नागरमोथा, निसोत, दन्ती, चीता, मूसाकानी और पीपलामूल ये प्रत्येक दो दो तोले, काली अभ्रककी भस्म ४ तोले और लोहेकी भस्म १६ तोले इन सबको एकत्र कूट पीसकर घृत और शहदके साथ खरल करके एक एक तोलेकी गोलियाँ बनालेवे। फिर प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली सेवनकर ऊप-रसे गौका दूध अथवा नारियलका जल पान करनेसे यह बृहद्विद्याधराभ्ररस सर्वप्रकारके शूल, वातपित्तजन्यशूल, एक दोषज, द्विदोषज, व त्रिदोषजशूल, परिणामशूल, आमवातजातशूल, कृशता, विवर्णता, आलस्य, तन्द्रा, अरुचि और अन्य साध्य व असाध्य सभी व्याधियोंको इस प्रकार शीघ्र नष्ट करताहै जैसे सूर्य अन्धकारको तत्काल नाश करदेताहै ॥ ८८-९३ ॥

त्रिफलालोह ।

तीक्ष्णायश्चूर्णसंयुक्तं त्रिफलाचूर्णमुत्तमम् ।
क्षीरेण पाययेद्धीमान् सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ९४ ॥

हरड, बहेडा और आमला इनका समानभाग मिश्रित बारीक पिसाहुआ चूर्ण १ भाग और लोहभस्म २ भाग लेकर एकत्र खरलकर लेवे। इस चूर्णको तीन तीन रत्तीकी मात्रासे दुग्धके साथ सेवन करानेसे शूलरोग तत्काल शमन होय ॥

शर्करायलौह ।

त्रिफलायास्तथा धात्र्याश्चूर्णं वा काललौहजम् ।
शर्कराचूर्णसंयुक्तं सर्वशूलेषु योजयेत् ॥ ९५ ॥

त्रिफला और आमले इनके समान भाग मिश्रित चूर्णकी बराबर लोहभस्म और सबकी बराबर शुद्ध खाँड मिलाकर इसको सर्वप्रकारके शूलरोगोंमें प्रयोग करना उपयोगी है ॥ ९५ ॥

सप्तामृतलौह ।

मधुकं त्रिफलाचूर्णमयोरजःसमं लिहन् ।

मधुसर्पिर्युतं सम्यग्गव्यं क्षीरं पिबेदनु।
छर्दिं सतिमिरं शूलमम्लपित्तं ज्वरं क्लमम्।
आनाहं मूत्रसंङ्गञ्च शोथञ्चैव निहन्ति तत् ॥ ९६ ॥

मुलैठी, हरड, बहेडा और आमला इन प्रत्येकका चूर्ण एक तोला और लोहभस्म ४ तोले इन सबको एकत्र खरल करके तीन तीन रत्तीकीमात्रासे घृत और मधुके साथ मिलाकर सेवनकरे और पीछेसे गोदुग्ध पान करे तो वमन, तिमिररोग, शूल, अम्लपित्त, ज्वर, क्लम, आनाह, मूत्रकृच्छ्र और शोथ आदिरोग नष्ट होते हैं ॥ ९६ ॥

शूलराजलौह।

कर्षैकं कान्तलौहस्य शुद्धमभ्रं पलं तथा।
सितायाश्च पलञ्चैकं मधु सर्पिस्तथैव च ॥ ९७ ॥
सर्वमेकीकृतं पात्रे लौहदण्डेन मर्दयेत्।
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकम् ॥ ९८ ॥
प्रत्येकं तोलकं मानं चूर्णितं तत्र दापयेत्।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय शिशिराम्ब्वनुपानतः ॥ ९९ ॥
सर्वदोषभवं शूलं कुक्षिशूलञ्च यद्भवेत्।
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च अम्लपित्तञ्च नाशयेत् ॥ १०० ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषं प्रमेहांश्च विषूचिकाम्।
शूलराजमिदं लौहं हरेण परिनिर्मितम् ॥ १०१ ॥

कान्तलोह २ तोले, शुद्धअभ्रक ४ तोले, मिश्री ४ तोले, शहद ४ तोले और घृत ४ तोले इन सबको लोहेके पात्रमें एकात्रित करके लोहेकी मूसलीसे खरल करे। पश्चात् उसमें त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडङ्ग, चव्य और चीता इन प्रत्येकके चूर्णको एक एक तोला मिलाकर उत्तमप्रकारसे खरल करे। इस औषधको प्रतिदिन प्रातःकाल चार चार रत्ती प्रमाण लेकर शीतल जलके अनुपानके साथ सेवन करे। यह औषध सर्वप्रकारके दोषोंसे उत्पन्न हुआ शूल, कुक्षिगतशूल, हृदयशूल, पार्श्वशूल, अम्लपित्त, अर्श, संग्रहणी, प्रमेह, विषूचिका आदि रोगोंको नष्ट करती है। इस शूलराजलोहको महादेवजीने निर्माण किया है ॥ ९७-१०१ ॥

वैश्वानरलोह।

द्विपलं तिन्तिडीक्षारं तथापामार्गसम्भवम्।
शम्बूकभस्मसंयुक्तं लवणश्च समं तथा॥
चतुर्णां समभागाः स्युस्तुल्यश्च लौहचूर्णकम्॥ १०२॥
चूर्णं संपिष्य खल्लादौ कारयेदेकतां भिषक्।
शूलस्यागमवेलायां खादेन्माषद्वयं नरः।
शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः॥ १०३॥

इमलीका खार २ पल, चिरचिटेका खार २ पल, घोंघेकी भस्म २ पल, सेंधानमक २ पल और लोहेकी भस्म ८ पल इन सबको खरलमें एकत्र करके उत्तम प्रकारसे मर्दन करे। फिर इस औषधको शूलकी पीडा होनेके समय दो मासे परिमाण सेवनकर ऊपरसे शीतल जल पान करे। इसके सेवनसे साध्य व असाध्य आठों प्रकारके शूलरोग निस्सन्देह नष्ट होते हैं॥ १०२॥१०३॥

चतुःसमलोह।

अभ्रं गन्धं रसं लोहं प्रत्येकं संस्कृतं पलम्।
सर्वमेतत्समाहृत्य यत्नतः कुशलो भिषक्॥ १०४॥
आज्ये पलद्वादशके दुग्धे वत्सरसंख्यके।
पक्त्वा क्षिपेत्तत्र चूर्णं सुपूतं घनवाससा॥ १०५॥
विडङ्गत्रिफलावह्नित्रिकटूनां तथैव च।
पिष्ट्वा पलोन्मितानेतान् तथा संमिश्रितान्नयेत् १०६॥
तत्तु पिष्टं शुभे भाण्डे स्थापयेत्तु विचक्षणः।
आत्मनः शोभने चाह्नि पूजयित्वा रविं गुरुम्॥१०७॥
घृतेन मधुना मर्द्य भक्षयेन्माषकावधि।
क्रमेण वर्द्धयेत्तच्च समाहितमनाः सदा॥ १०८॥
अनुपानञ्च दुग्धेन नारिकेलोदकेन वा।
जीर्णान्ने हितशाल्यन्नमुद्गमांसरसादिभिः॥ १०९॥
रसायनाविरुद्धानि चान्यान्यपि च कारयेत्।
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्चाप्यामवातं कटिग्रहम्॥ ११०॥
गुल्मशूलं नाभिशूलं यकृत्प्लीहानमेव च।

अग्निमान्द्यं क्षयं कुष्ठं कासं श्वासं विचर्चिकाम् ।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च योगेनानेन साधयेत् ॥ ११ ॥

अभ्रक, शुद्धगन्धक, शुद्धपारा और लोहभस्म प्रत्येकको चार चार तोले लेकर १२ पल घृत और १२ पल दूधमें उत्तम प्रकारसे पकाकर मोटे कपडेमें छान लेवे । फिर उसमें वायविडङ्ग, त्रिफला, चीता, सोंठ, मिरच और पीपल इन ओषधियोंको चार चार तोले सूक्ष्मचूर्णको वस्त्रमें छानकर मिलादेवे । फिर उसको घीके चिकने और उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे । इस ओषधिको शुभ-मुहूर्त्तमें अपने गुरु और सूर्यभगवान्का पूजन करके प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक माशा परिमाण लेकर घृत और मधुके साथ मिश्रित करके सेवन करे। फिर क्रमसे इसकी मात्रा बढाताजाय । एवं दूध अथवा नारियलके जलका अनुपान करे । इस ओषधिके जीर्ण होजानेपर पुराने शालिधानोंके चावल, मूँग और मांसरसादिपदार्थ सेवन करने हितकारी हैं । एवं रासायनिक और अन्य सर्व प्रकारके स्वभावानुकूल पदार्थोंको सेवन करना चाहिये । इस ओषधिके सेवनसे हृदयशूल, पार्श्वशूल, आमवात, कटीग्रह, गुल्मशूल, नाभिशूल, यकृत्-विकार, प्लीहा, मन्दाग्नि, क्षय, कुष्ठ, खाँसी, श्वास, विचर्चिका, पथरी, मूत्र-कृच्छ्र आदि समस्त रोग दूर होते हैं ॥ १०४-१११ ॥

धात्रीलोह ।

धात्रीचूर्णस्याष्टौ पलानि चत्वारि लौहचूर्णस्य ।
यष्टीमधुकरजश्च द्विपलं दद्यात्खल्ले घृष्टम् ॥ १२ ॥
अमृताक्काथेनैतच्चूर्णं भाव्यश्च सप्ताहम् ।
चण्डातपेषु शुष्कं भूयः पिष्ट्वा नवे घटे स्थाप्यम् ॥१३
घृतमधुना सह युक्तं भक्तादौ मध्यतोऽन्ते च ।
त्रीनपि वारान्खादेत् पथ्यं दोषानुबन्धेन ॥ १४ ॥
भक्तस्यादौ नाशयति रोगान् पित्तानिलोद्भवान् ।
मध्येऽन्नविष्टम्भं जयति नृणां विदह्यते नान्नम् ॥ १५ ॥
पानान्नकृतान् दोषान् भुक्तान्ते शीलितो जयति ।
एवं जीर्यति चान्ने शूलं नृणां सुकष्टमपि ॥ १६ ॥
हरति सहसा युक्तो योगश्चायं जरत्पित्तम् ।
चाक्षुष्यं पलितघ्नं कफपित्तसमुद्भवाञ्जयेद्रोगान् ॥१७॥

आमलोंका चूर्ण ८ पल, लोहचूर्ण ४ पल और मुलैठीका चूर्ण २ पल इन सबको खरलमें एकत्र कर आमलोंके काथके साथ सातदिन तक ७ बार भावना देवे। फिर प्रचण्डधूपमें सुखाकर और बारीक चूर्ण करके इस औषधको नवीन पात्रमें भरकर रखदेवे। उसमेंसे प्रतिदिन एकएक मासे परिमाण लेकर घृत और शहदके साथ मिलाकर भोजनके पहले, मध्यमें और अन्तमें इस प्रकार तीन बार सेवन करे और यथादोषानुसार पथ्य करे। यह लोह भोजनकी आदिमें खानेसे वातपित्तजन्य रोगोंको, मध्यमें खानेसे अन्नविष्टम्भ (अन्नके न पचनेसे उत्पन्नहुआ अफारा) और अन्नकी दाहको, एवं अन्तमें सेवन करनेसे अन्नपानसे उत्पन्नहुए विकार और अन्नके जीर्ण होजानेपर उत्पन्नहुए प्रबल शूलको शीघ्र नष्ट करता है। युक्तिपूर्वक सेवन करनेसे जरत्पित्तरोगको दूर करता है। एवं नेत्रोंको हितकारी, पलित और कफ पित्तजन्यरोगनाशक है॥ १२-१७॥

बृहद्धात्रीलोह।

षट्पलं शुद्धमण्डूरं यवस्य कुडवं तथा।
पाकाय नीरप्रस्थार्द्धं दद्यात्पादावशेषितम्॥ १८॥
शतमूलीरसस्याष्टावामलक्या रसस्तथा।
तथा दधिपयोभूमिकूष्माण्डस्य चतुःपलम्॥ ११९॥
चतुःपलं सर्पिरिक्षुरसं दद्याद्विचक्षणः।
प्रक्षिपेज्जीरधान्याकं त्रिजातं करिपिप्पली॥ १२०॥
मुस्तं हरीतकी चैव लौहमभ्रं कटुत्रिकम्।
रेणुकं त्रिफला चैव तालीशं नागकेशरम्॥ २१॥
एतेषां कार्षिकैर्भागैश्चूर्णयित्वा विनिःक्षिपेत्।
भोजनाद्यवसाने च मध्ये चैव समाहितः॥ २२॥
तोलैकं भक्षयेच्चानु पेयं नित्यं पयस्तथा।
शूलमष्टाविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा॥ २३॥
वातिकं पैत्तिकश्चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्।
परिणामभवं शूलमन्नद्रवभवं तथा॥ २४॥
द्वन्द्वजानपि शूलांश्च अम्लपित्तं सुदारुणम्।
सर्वशूलहरं श्रेष्ठं धात्रीलौहमिदं शुभम्॥ २५॥

कुटेहुए जौको १६ तोले लेकर ३२ तोले जलमें पकावे। जब पकते पकते

चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर शतावरका रस आमलोंका रस, दही, दूध ये प्रत्येक आठ आठ पल एवं विदारीकन्दका रस, घृत और ईखका रस ये प्रत्येक चार चार पल और गोमूत्र द्वारा शुद्ध किया हुआ मण्डूर २४ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर उत्तम प्रकारसे पकावे। जब पाक अच्छे प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर उसमें जीरा, धनियाँ, दारचीनी, इलायची, तेजपात, गजपीपल, नागरमोथा, हरड, लोहा, अभ्रक, त्रिकुटा, रेणुका, त्रिफला, तालीसपत्र और नागकेशर इन औषधियोंको दो दो तोले लेकर बारीक चूर्ण करके मिलादेवे। इस औषधिको प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें भोजन करनेसे पहले एक एक तोला परिमाण सेवन करे और ऊपरसे दुग्धपान करे। यह बृहद्धात्रीलोह आठों प्रकारके साध्य व असाध्य शूलरोग, एवं वातज, पित्तज, श्लैष्मिक व त्रिदोषजशूल, परिणामशूल, अन्नद्रवशूल, द्वन्द्वजशूल और दारुण अम्लपित्त इन सब रोगोंको नष्ट करताहै और सर्व शूलरोगको हरनेके लिये परमोत्कृष्ट औषधहै॥१८-२५॥

क्षीरमण्डूर।

लौहकिट्टपलान्यष्टौ गोमूत्राद्धाढके पचेत्।
क्षीरप्रस्थेन तत्सिद्धं पङ्क्तिशूलहरं परम्॥ २६॥

मण्डूर भस्मको ८ पल लेकर अर्द्ध आढक गोमूत्र और एक प्रस्थ गोदुग्धके साथ मिलाकर यथाविधि पकावे। इसको सेवन करनेसे पंक्तिशूल नष्ट हो॥२६

रसमण्डूर।

कुडवं पथ्याचूर्णं द्विपलं गन्धाश्मलोहकिट्टञ्च।
शुद्धरसस्यार्द्धं भृङ्गस्य रसश्च केशराजस्य॥ २७॥
प्रस्थोन्मितश्च दत्त्वा पात्रे लौहेऽथ दण्डसंघृष्टम्।
शुष्कं मधुघृतयुक्तं मृदितं स्थाप्यश्च भाजने स्निग्धे२८
उपयुक्तमेतदचिरान्निहन्ति कफजान्।
शूलं तथाम्लपित्तं ग्रहणीञ्च कामलामुग्राम्॥ २९॥

हरडका चूर्ण १६ तोले, शुद्धगन्धक ८ तोले, शुद्धमण्डूर ८ तोले और शुद्ध पारा २ तोले इन सब औषधियोंको एकत्र बारीक चूर्णकर भाँगरेके और केशराजके एकएक प्रस्थ स्वरसके साथ लोहेके पात्रमें लोहेके दण्डद्वारा उत्तमप्रकारसे खरलकरके धूपमें सुखालेवे और मिट्टीके चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे। फिर इसको प्रतिदिन दो दो रत्ती प्रमाण लेकर घृत और मधुके साथ मिलाकर

सेवन करे। इसकी प्रतिदिन २ रत्तीसे लेकर ३ माशेतक मात्रा वृद्धि करे। यह प्रयोग कफजन्यरोग, शूल, अम्लपित्त, संग्रहणी और प्रबल कामला रोगको बहुत जल्द नष्ट करताहै ॥ २७-२९ ॥

कोलादिमण्डूर।

कोलाग्रन्थिकशृङ्गवेरचपलाक्षारैः समं चूर्णितं
मण्डूरं सुरभीजलेऽष्टगुणिते पक्त्वाऽथ सान्द्रीकृतम्।
तत्खादेद्दशनादिमध्यविरतौ प्रायेण दुग्धान्नभुक्
जेतुं वातकफामयान् परिणतौ शूलान्यशूलानि च॥३०॥

चव्य, पीपलामूल, सोंठ, पीपल और जवाखार ये सब समान भाग और सबकी बराबर शुद्ध मण्डूर लेकर सबका एकत्र चूर्ण करके उसको अठगुने गोमूत्रमें पकावे। जब वह पकते २ अवलेहकी समान गाढा होजाय तब उतार लेवे। फिर इसको भोजनकरनेसे पूर्व, मध्यमें और अन्तमें सेवन करनेसे और प्रायः दूध-भातका भोजन करनेसे यह मण्डूर वात कफोत्पन्न रोग, परिणामशूल और अन्य सर्व प्रकारके शूलोंको नष्ट करता है ॥ १३० ॥

चतुःसममण्डूर।

सद्यो लौहमलाज्यमाक्षिकसिताभागाः समा मानतः
पात्रे ताम्रमये दिनान्तमथितं संस्थापयेदातपे।
पश्चात्तद्घनतां प्रणीय रजनीमेकां बहिः स्थापयेत्
पात्रे ताम्रमये निधेयमथवा पात्रे हविर्भाविते॥ ३१ ॥
पश्चान्माषचतुष्टयं प्रतिदिनं जग्ध्वा जलं शीतलं
पेयं भोजनपूर्वमध्यविरतौ स्वच्छन्दभोज्यैर्नरैः।
जेतुं शूलहुताशमांद्यकसनश्वासाम्लपित्तज्वरो-
न्मादापस्मृतिमेहसर्वजठराजीर्णादिसर्वा रुजः॥३२॥

शुद्धमण्डूर, घृत, शहद और मिश्री इनको एक एक पल लेकर ताँबेके पात्रमें रख लोहेके दण्डेसे एक दिनतक खरल करके १ दिनतक धूपमें सुखावे, फिर उसको गाढा करके एक रात्रितक ओसमें रक्खे। पश्चात् इस ओषधिको ताँबेके अथवा घीसे चिकने मिट्टीके बर्त्तनमें भरकर रखदेवे। उसमेंसे प्रतिदिन चार माशे परिमाण खाकर ऊपरसे शीतल जल पान करे। इसको भोजनके पूर्व, मध्य और अन्तमें सेवन करना एवं इसके सेवन करनेपर यथेच्छ भोजन करना

चाहिये । इसके सेवनसे सर्वप्रकारके शूल, मन्दाग्नि, खाँसी, श्वास, अम्लपित्त, ज्वर, उन्माद, मृगी, समस्त प्रमेह, उदररोग, अजीर्णादिरोग दूर होतेहैं ३१॥३२

भीमवटकमण्डूर ।

कोलाग्रन्थिकसहितैर्विश्वौषधमागधीयवक्षारैः ।
प्रस्थमयोमलरजसः पलिकांशैश्चूर्णितैर्मिश्रैः ॥ ३३ ॥
अष्टगुणमूत्रयुक्तं क्रमे पाकात्पिण्डतां नयेत्सर्वम् ।
कोलप्रमाणवटिकास्तिस्रो भोज्यादिमध्यावरितो च ॥
रससर्पिर्यूषपयोमांसैरश्नन्नरो निवारयाति ।
अन्नविवर्त्तनशूलं गुल्मं प्लीहाग्निसादांश्च ॥ ३५ ॥

चव्य, पीपलामूल, सोंठ, पीपल और जवाखार इन प्रत्येक ओषधिका चूर्ण चार चार तोले और शुद्धमण्डूर १ प्रस्थ लेवे । प्रथम मण्डूरको अठगुने गोमूत्रके साथ मन्द मन्द अग्निसे पकावे । जब वह उत्तम प्रकारसे पककर गाढा होजाय तब नीचे उतारकर उसमें उक्त ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर बेरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । उनमेंसे प्रतिदिन तीन तीन गोली प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्याके समय भोजनसे पहले सेवन करे । एवं घृत, दुग्ध, मूँग आदिका यूष और मांसरस इनका पथ्य करे । इसके सेवनसे अजीर्ण, विबन्ध, शूल, गुल्म, प्लीहा और मन्दाग्नि आदि विकार निवृत्त होतेहैं ॥ १३३–३५ ॥

तारामण्डूरगुड ।

विडङ्गं चित्रकं चव्यं त्रिफला त्र्यूषणानि च ।
नव भागानि चैतानि लौहकिट्टसमानि च ॥ ३६ ॥
गोमूत्रं द्विगुणं दत्त्वा मूत्रार्द्धिकगुडान्वितम् ।
शनैर्मृद्वग्निना पक्का सुसिद्धं पिण्डमागतम् ॥ ३७ ॥
स्निग्धभाण्डे विनिःक्षिप्य भक्षयेत्कोलमात्रया ।
प्राङ्मध्यान्तक्रमेणैव भोजनस्य प्रयोजितः ॥ ३८ ॥
योगोऽयं शमयत्याशु पंक्तिशूलं सुदारुणम् ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं मन्दाग्नितामपि ॥ ३९ ॥
अर्शांसि ग्रहणीरोगं कृमिगुल्मोदराणि च ।
नाशयेदम्लपित्तञ्च स्थौल्यञ्चापि नियच्छाति ॥ ४० ॥

वर्जयेच्छुष्कशाकानि विदाह्यम्लकटूनि च।
पंक्तिशूलान्तको ह्येष गुडो मण्डूरसंज्ञितः॥ ४१॥
शूलार्त्तानां कृपाहेतोस्तारया परिकीर्त्तितः॥ ४२॥

वायविडङ्ग, चीता, चव्य, त्रिफला, सोंठ, मिरच और पीपल ये प्रत्येक ओषधि एकएक भाग, शुद्ध लोहमण्डूर नौ भाग, गोमूत्र सबसे दुगुना और पुराना गुड गोमूत्रसे आधा भाग लेवे। प्रथम गोमूत्रमें मण्डूर और गुडको मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब वह उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर उसमें पूर्वोक्त ओषधियोंका चूर्ण डालकर सबको एकसएक करलेवे और एक घीके चिकने बासनमें भरकर रखदेवे। इसमेंसे प्रतिदिन एकएक तोला परिमाण लेकर भोजन करनेसे पहले प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्याके समय सेवन करे। यह औषध दारुण परिणामशूल, कामला, पाण्डु, सूजन, मन्दाग्नि, बवासीर, संग्रहणी, कृमि, गुल्म, उदररोग और अम्लपित्त इन सब व्याधियोंको शीघ्र नष्ट करती है और स्थूलताको दूर करती है। इसपर सूखे शाक, दाहकारक, खट्टे और कटु (चरपरे) रसवाले पदार्थ त्याग देने चाहिये। यह तारामण्डूरनामक गुण परिणाम शूलको निश्चय नाश करता है। शूलरोगियोंके ऊपर कृपा करनेकी इच्छासे तारादेवीने इसको निर्म्माण की है॥

शतावरीमण्डूर।

संशोध्य चूर्णितं कृत्वा मण्डूरस्य पलाष्टकम्।
शतावरीरसस्याष्टौ दध्नश्च पयसस्तथा॥ ४३॥
पलान्यादाय चत्वारि तथा गव्यस्य सर्पिषः।
विपचेत्सर्वमेकत्र यावत्पिण्डत्वमागतम्॥ ४४॥
सिद्धन्तु भक्षयेन्मध्ये भोजनस्याग्रतोऽपि वा।
वातात्मकं पित्तभवं शूलञ्च परिणामजम्॥
निहन्त्येव नियोगोऽयं मण्डूरस्य न संशयः॥ ४५॥

शुद्ध मण्डूरका चूर्ण ८ पल, शतावरका रस ८ पल, दही ८ पल, दूध ८ पल और गौका घी ४ पल लेकर सबको एकत्र करके मन्दमन्द अग्निकेद्वारा उत्तम प्रकारसे पकावे। जब वह पककर अवलेहकी समान गाढा होजाय तब उतारकर शुद्धपात्रमें भरकर रखदेवे। इस शतावरीमण्डूरको यथोचित मात्रासे प्रतिदिन भोजनके पहले और मध्यमें सेवन करनेसे वातज, पित्तजशूल और परिणामशूल निस्सन्देह नष्ट होते हैं॥ १४३–४५॥

बृहच्छतावरीमण्डूर ।

मण्डूरस्यातितप्तस्य वराक्काथप्लुतस्य च ।
चूर्णीकृत्य पलान्यष्टौ शतावरिरसस्य च ॥ ४६ ॥
दध्नश्च पयसश्चाष्टावामलक्या रसस्य च ।
चतुष्पलं घृतस्यापि शाणमात्रं विनिःक्षिपेत् ॥ ४७ ॥
सिद्धे प्रत्येकमेतेषामजाजीधान्यमुस्तकम् ।
त्रिजातककणापथ्या उपयुक्तं निहन्ति च ॥ ४८ ॥
शूलं दोषत्रयोद्भूतमम्लपित्तञ्च दारुणम् ।
अरुचिञ्च वमिञ्चैव कासं श्वासञ्च नाशयेत ॥ ४९ ॥

भस्म कियाहुआ और त्रिफलेके क्काथमें शुद्ध कियाहुआ मण्डूरका चूर्ण ८ पल, शतावरका रस ८ पल, दही ८ पल, दूध ८पल, आमलोंका रस ८पल और घृत ४ पल लेवे । फिर सबको एकत्रकर उत्तमप्रकारसे पकावे जब पकते२ पाक गाढा होजाय तब उतारकर उसमें काला जीरा, धनियाँ, नागरमोथा, दारचीनी, तेजपात, इलायची, पीपल और हरड इन ओषधियोंके चार २ माशे चूर्णको डालकर सबको मिलादेवे । यह मण्डूर प्रतिदिन उपयुक्त परिमाणमें सेवन करनेसे वात, पित्त, कफादि तीनों दोषोंसे उत्पन्नहुए शूल, दारुण अम्लपित्त अरुचि, वमन, खाँसी और श्वासादि रोगोंको शमन करताहै॥१४९

द्वितीय बृहच्छतावरी मण्डूर ।

शतावरीरसप्रस्थे प्रस्थे च सुरभीजले ।
अजायाः पयसः प्रस्थे प्रस्थे धात्रीरसस्य च ॥ १५० ॥
लौहमलपलान्यष्टौ शर्करापलषोडशे ।
दत्त्वाज्यकुडवं तत्र शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ५१ ॥
सिद्धशीते घनीभूते द्रव्याणीमानि दापयेत् ।
विडङ्गत्रिफलाव्योषयमानी गजापिप्पली ॥ ५२ ॥
द्विजीरकं घनं लौहमभ्रं कर्षद्वयं पृथक् ।
खादेदग्निबलापेक्षी भोजनादौ विचक्षणः ॥ ५३ ॥
शूलं सर्वभवं हन्ति पित्तशूलं विशेषतः ।
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कुक्षिबस्तिगुदेरुजम् ॥ ५४ ॥

कासं श्वासं तथा शोथं ग्रहणीदोषमेव च ।
यकृत्प्लीहोदरानाहराजयक्ष्मविनाशनम् ॥ ५५ ॥
विष्टम्भमामं दौर्बल्यमग्निमान्द्यञ्च यद्भवेत् ।
एतान् रोगान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥५६॥

शतावरका रस १ प्रस्थ (६४ तोले), गोमूत्र १ प्रस्थ, बकरीका दूध १ प्रस्थ, आमलोंका रस १ प्रस्थ, लोहमण्डूर ८ पल, मिश्री १६ पल और घी १६ तोले लेकर इन सबको एकत्र मिश्रित करके मन्द मन्द अग्निके द्वारा शनैः २ पकावे । जब वह उत्तमप्रकारसे पककर गाढा होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होनेपर उसमें वायविडङ्ग, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, अजवायन, गजपीपल, जीरा, काला जीरा, नागरमोथा, लोहा और अभ्रक इन प्रत्येक ओषधिके बारीक चूर्णको दो दो तोले परिमाण डालकर सबको एकमएक करलेवे । फिर इसको प्रतिदिन भोजन करनेसेपहले जठराग्निके बलाबलके अनुसार उपयुक्त मात्रासे सेवन करे । यह मण्डूर सर्वप्रकारके शूल, विशेषकर पित्तशूल, हृदयशूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, बस्तिगतशूल,गुदारोग, खाँसी, श्वास, सूजन, संग्रहणी, यकृत्, प्लीहा, उदरविकार, अफारा, राजयक्ष्मा, विष्टम्भ, आमवात, दुर्बलता और अग्निकी मन्दता इन समस्त व्याधियोंको इसप्रकार शीघ्र नष्ट करदेताहै, जैसे सूर्यके प्रकाशसे अन्धकार तत्काल दूर होजाता है ॥ १५०-५६ ॥

हरीतकी खण्ड ।

चतुःपलं हरीतक्यास्त्रिवृतायाश्चतुः पलम् ।
चातुर्जातं समुस्तं च तालीशं जीरकं कणा ॥ ५७ ॥
जातीकोषं लवङ्गञ्च लौहमभ्रञ्च टङ्कणम् ।
प्रत्येकं कर्षमानेन श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ५८ ॥
प्रस्थेन गव्यदुग्धस्य पचेन्मृद्वग्निना भिषक् ।
शर्कराया दशपलं पाकसिद्धिविधानवित् ॥ ५९ ॥
दर्वीप्रलेपावस्थायां क्षिपेच्चूर्णं विचक्षणः ।
पूजयेद्भास्करं शम्भुं द्विजातीनभिवादयेत् ॥ १६० ॥
शूलमष्टविधं हन्ति अम्लपित्तं सुदुर्जयम् ।
अन्नद्रवभवं शूलं कासं श्वासं तथा वमिम् ॥ ६१ ॥

कान्तिपुष्टिकरो हृद्यो बलमेधाग्निवर्द्धनः।
ख्यातो हरीतकीखण्डः सर्वशूलनिकृन्तनः ॥ ६२ ॥

हरड १६ तोले, निसोत १६ तोले एवं दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, नागरमोथा, तालीसपत्र, जीरा, पीपल, जावित्री, लौंग, लोहा, अभ्रक और सुहागा। इन ओषधियोंको एकएक कर्ष लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर एक प्रस्थ गौके दूध और दस पल खाँडको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक पकावे। जब वह उत्तमप्रकारसे पककर गाढा होजाय और करछीसे लगने लगे तब नीचे उतारकर उसमें पूर्वोक्त ओषधियोंका चूर्ण डालकर सबको मिलादेवे। इसको प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्य और महादेवजीका पूजनकर एवं ब्राह्मणोंको अभिवादन करके यथोचित मात्रासे सेवन करनेसे आठों प्रकारके शूल, दुस्तर अम्लपित्त, अन्नद्रवजन्य शूल, श्वास, खाँसी वमन आदि रोग नष्ट होते हैं। यह हरीतकी नामक खण्ड कान्ति और पुष्टिको करनेवाला, हृदयको हितकारी, बल, मेधा और जठराग्निकी वृद्धिकरनेवाला है। एवं सर्वप्रकारके शूल रोगोंको शमन करताहै॥ १५७–६२ ॥

पूगखण्ड।

छिन्नं पूगफलं दृढं परिणतं पक्वा च दुग्धाम्बुभिः
प्रक्षाल्यातपशोषितं वसुपलं ग्राह्यं ततश्चूर्णितात्।
तत्सर्पिः कुडवे विपाच्य हि वरीधात्रीरसौ द्व्यञ्जली
द्वे प्रस्थे पयसः प्रदाय विपचेन्मदं तुलार्द्धां सिताम्॥६३॥
हेमाम्भोधरचन्दनं त्रिकटुकं धात्रीपियालास्थिजो
मज्जानौ त्रिसुगन्धिजीरकयुगं शृङ्गाटकं वंशजा।
जातीकोषफले लवङ्गमपरं धन्याककक्कोलकं
नाकूलीतगराम्बुवीरणशिफाभृङ्गाश्वगन्धे तथा ॥ ६४ ॥
सर्वं द्व्यक्षमितं विचूर्ण्य विधिना पाके तु मन्दे ततः
प्रक्षिप्याथ विघट्टयन् मुहुरिदं दर्व्यावतार्य क्षणात्।
सिद्धं वीक्ष्य विधारयेदवहितः स्निग्धेऽथ मृद्भाजने
खादेत्प्रातरिदं ज्वरामयहरं वृष्यं बुधः कार्षिकम् ॥ ६५॥
शूलाजीर्णगुदप्रवाहरुधिरं दुष्टाम्लपित्तं जयेद्
यक्ष्मक्षीणहितं महाग्निजननं तृट्छर्दिमूर्च्छापहम्।

पाण्डुघ्नं बलवर्णदृष्टिकरणं गर्भप्रदं योषिता-
मेतत्पूगरसायनं प्रदरनुद्विण्मूत्रसंज्ञापहम् ॥ ६६ ॥

उत्तम प्रकारसे पकेहुए और छिल्के रहित सुपारीके टुकडोंको दूध और जलके साथ पकाकर एवं धोकर धूपमें सुखालेवे, फिर उनका बारीक चूर्ण कर लेवे। इस प्रकार प्रस्तुत कियाहुआ चूर्ण ८ पल, घी १ कुडव (३२ तोले) दोनोंको एकत्र पकाकर उसमें शतावरका रस ८ पल, आमलोंका रस ८ पल दूध २ प्रस्थ और मिश्री ५० पल डालकर फिर मन्दमन्द अग्निद्वारा पकावे। जब वह उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर नागकेशर, नागरमोथा, लालचन्दन, सोंठ, मिरच, पीपल, आमले, चिरौंजी, दारचीनी, तेजपात, इलायची, जीरा, कालाजीरा, सिंघाडे, वंशलोचन, जावित्री, जायफल, लौंग, धनियाँ, शीतलचीनी, रास्ना, तगर, सुगन्धवाला, खसकी जड, बालछड, भाँगरा और असगन्ध इन सबको दो दो तोले लेकर बारीक चूर्ण करके उसमें डालदेवे और लोहेकी करछीसे अच्छीतरह घोटकर चिकने मिट्टीके पात्रमें भरकर रखदेवे। इस औषधको प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक तोला परिमाण लेकर सेवन करे। पूगखण्डनामकरसायन ज्वरनाशक, अत्यन्तवृष्य (वीर्यवर्द्धक) एवं शूलरोग, अजीर्ण, गुदाके द्वारा रक्तस्राव होना, दुस्तर अम्लपित्त, राजयक्ष्मा, तृषा, वमन, मूर्च्छा, पाण्डुरोग, प्रदररोग और मलमूत्र विकार इन सब व्याधियोंको नष्ट करनेवाली है। तथा अत्यन्त अग्निप्रदीपक, बल, वर्ण और दृष्टिशक्तिको बढानेवाली और स्त्रियोंको गर्भप्रदान करनेवालीहै॥

द्वितीय-पूगखण्ड।

प्रस्थैकं पूगचूर्णस्य पयसश्चाढकं क्षिपेत्।
शर्करायाः पलशतं घृतस्य कुडवद्वयम् ॥ ६७ ॥
चातुर्जातं त्रिकटुकं देवपुष्पं सचन्दनम्।
मांसी तालीशपत्रञ्च बीजं कमलसंभवम् ॥ ६८ ॥
नीलोत्पलं तथा वांशी शृङ्गाटं जीरकं तथा।
विदारीकन्दजं चैव रजो गोक्षुरसम्भवम् ॥ ६९ ॥
शतमूलीरजश्चैव मालतीकुसुमं तथा।
धात्रीचूर्णं समं कर्षं कर्पूरं शुक्तिमानतः ॥ १७० ॥
मन्देऽग्नौ विपचेद्वैद्यः स्निग्धे भाण्डे निधापयेत्।
खादेच्च प्रातरुत्थाय कर्षमेकं प्रमाणतः ॥ ७१ ॥

छर्द्यम्लपित्तहृद्दाहभ्रमिमूर्च्छापहं नृणाम् ।
सर्वशूलहरं श्रेष्ठमामवातविनाशनम् ॥ ७२ ॥
मेहमेदोविकारघ्नं प्लीहपाण्डुगदापहम् ।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च गुदजं रुधिरं जयेत् ॥ ७३ ॥
रेतोवृद्धिकरं हृद्यं पुष्टिदं कामदं तथा ।
वन्ध्यापि लभते पुत्रं वृद्धोऽपि तरुणायते ॥
नातः परतरं श्रेष्ठं विद्यते वाजिकर्मसु ॥ ७४ ॥

पूर्वोक्त विधिसे प्रस्तुत कियाहुआ सुपारीका चूर्ण १प्रस्थ, दूध १आढक,खाँड १००पल, घी २ कुडव (६४ तोले), एवं दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, सोंठ,मिरच, पीपल, लौंग, लालचन्दन, जटामांसी, तालीस पत्र, कमलगट्टा, नीलाकमल, वंशलोचन, सिंघाडे, जीरा, विदारीकन्द, गोखुरू, शतावर, चमेलीके फूल और आमले इन प्रत्येकका चूर्ण एकएक कर्ष और कर्पूर दो कर्ष लेवें । प्रथम घृतके साथ सुपारीके चूर्णको भूनकर फिर दूध और खांडके साथ मिलाकर मन्दमन्द अग्निके द्वारा पकावे । जब पाक उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर उसमें उक्त ओषधियोंका चूर्ण मिलाकर शीतल होनेपर एक मिट्टीके चिकने बासनमें रखदेवे । फिर इसको प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक तोलेकी मात्रासे सेवन करे। यह ओषधि वमन,अम्लपित्त, हृदयरोग, दाह, भ्रम, मूर्च्छा, सर्वप्रकारके शूल, आमवात, प्रमेह, मेदरोग, प्लीहा, पाण्डुरोग, पथरी, मूत्रकृच्छ्र,गुदासे रुधिरका स्राव होना और अन्य सर्व प्रकारके रोगोंको नष्टकरनेकेलिये अत्यन्त श्रेष्ठहै। एवं वीर्यकी वृद्धि करनेवाली, हृदयको हितकारी, पुष्टिकारक और कामोत्पादक है । इसके सेवनसे वन्ध्या स्त्रीभी पुत्रको प्राप्त करती है और वृद्ध पुरुषभी तरुण होजाता है । वाजीकर्ममें इससे बढकर अन्य कोई श्रेष्ठ ओषधि नहीं है ॥ १६७–७४ ॥

खण्डामलकी ।

स्विन्नपीडितकूष्माण्डात्तुलार्द्धं भृष्टमाज्यतः ।
प्रस्थार्द्धे खण्डतुलां तु पचेदामलकीरसात् ॥ ७५ ॥
प्रस्थे सुस्विन्नकूष्माण्डरसप्रस्थे विघट्टयन् ।
दर्व्या पाकं गते तस्मिंश्चूर्णीकृत्य विनिःक्षिपेत् ॥७६॥
द्वे द्वे पले कणाजाजीशुण्ठ्यानां मरिचस्य च ।
पलं तालीशधन्याकचातुर्जातकमुस्तकम् ॥ ७७ ॥

कर्षप्रमाणं प्रत्येकं प्रस्थार्द्धं माक्षिकस्य च ।
पंक्तिशूलं निहन्त्येतद्दोषत्रयकृतञ्च यत् ॥ ७८ ॥
छर्द्यम्लपित्तमूर्च्छांश्च श्वासं कासमरोचकम् ।
हृच्छूलं पृष्ठशूलञ्च रक्तपित्तञ्च नाशयेत् ॥
रसायनमिदं श्रेष्ठं खण्डामलकसंज्ञितम् ॥ ७९ ॥

उत्तम प्रकारसे पकेहुए पुराने पेठेको उबालकर और वस्त्रमें निचोडकर प्रस्तुत कियेहुए गूदेको ५० पल लेकर आधे प्रस्थ घृतके साथ अच्छे प्रकारसे भून लेवे । फिर उस पेठेको, आमलोंके १प्रस्थ रस और उबालकर निकालेहुए पेठेके एक प्रस्थ रस एवं ५० पल खाँडके साथ मिलाकर मन्दमन्द अग्निद्वारा पकावे और करछीसे चलाता जाय । जब पाक उत्तमप्रकारसे सिद्ध होजाय तब उतारकर उसमें पीपल, कालाजीरा और सोंठ ये प्रत्येक दो दो पल, कालीमिरच एकपल एवं तालीशपत्र, धनियाँ, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर और नागरमोथा इन प्रत्येकको दो दो तोले लेकर सबका एकत्र चूर्णकरके डालदेवे और शीतल होनेपर आधा प्रस्थ शहद मिलाकर सबको अच्छे प्रकारसे एकमएक करके चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे । पश्चात् इसको प्रति दिन प्रातःकाल एकएक तोला परिमाण लेकर सेवन करे । तीनों दोषोंसे उत्पन्नहुए परिणामशूल, वमन, अम्लपित्त, मूर्च्छा, श्वास, खाँसी, अरुचि, हृदयशूल, पृष्ठशूल और रक्तपित्त इन सब रोगोंको नष्ट करनेवाली यह खण्डामलकी नामक औषध अत्युत्तम रसायनहै ॥ ७५-७९ ॥

नारिकेलखण्ड ।

कुडवमितमिह स्यान्नारिकेलं सुपिष्टं
पलपरिमितसर्पिः पाचितं खण्डतुल्यम् ।
निजपयसि तदेतत् प्रस्थमात्रे विपक्वं
गुडवदथ सुशीते शाणभागान्क्षिपेच्च ॥ १८० ॥
धन्याकपिप्पलिपयोदतुगाद्विजीरान्
शाणं त्रिजातमिभकेशरवह्निचूर्ण्य ।
हन्त्यम्लपित्तमरुचिं क्षयमस्रपित्तं
शूलं वमिं सकलपौरुषकारि हारि ॥ ८१ ॥

सुपक्व नारियलकी गिरीको, पत्थरपर पीसकर और वस्त्रमें निचोडकर १ कुडव (१६ तोले) लेकर एक पल गोघृतके साथ उत्तमप्रकारसे भूनलेवे । फिर नारियलके एकप्रस्थ जल और १६ तोले खाँडको एकत्र मिश्रितकरके वस्त्रमें छानकर उसके साथ उक्त भुनीहुई गिरीको मिलाकर अच्छेप्रकारसे पकावे । जब वह पकते २ गुडकी समान गाढा होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें धनियाँ, पीपल, नागर मोथा, वंशलोचन, जीरा, काला-जीरा, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेशर इन सब ओष-धियोंको चार २ माशे लेकर बारीक चूर्णकरके मिलादेवे और किसी स्वच्छ-पात्रमें भरकर रखदेवे । इसके सेवनसे अम्लपित्त, अरुचि, क्षय, रक्तपित्त, समस्त शूल और वमन ये सब रोग नाश होतेहैं । एवं सबप्रकारकी शारीरिक शक्तिकी वृद्धि होतीहै ॥ १८०-८१ ॥

बृहन्नारिकेलखण्ड ।

नारिकेलपलान्यष्टौ शर्करा प्रस्थसम्मिता ।
तज्जलं पात्रमेकन्तु सर्पिः पञ्चपलानि च ॥ ८२ ॥
शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं प्रस्थार्द्धं क्षीरमेव च ।
सर्वमेकीकृतं पात्रे शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ८३ ॥
तुगा त्रिकटुकं मुस्तं चातुर्जातं सधान्यकम् ।
द्विकणाजीरकञ्चैव कर्षयुग्मं पृथक् पृथक् ॥ ८४ ॥
श्लक्ष्णचूर्णं विनिःक्षिप्य स्थापयेद्भाजने मृदः ।
खादेत्प्रतिदिनं शाणं यथेष्टाहारवानपि ॥ ८५ ॥
सर्वदोषभवं शूलमेकजं द्वन्द्वजं तथा ।
परिणामभवं शूलमम्लपित्तञ्च नाशयेत् ॥ ८६ ॥
बलपुष्टिकरं हृद्यं वाजीकरणमुत्तमम् ।
रक्तपित्तहरं श्रेष्ठं छर्दिहृद्रोगनाशनम् ॥८७ ॥
धन्वन्तरिकृतश्चैतन्नारिकेलरसायनम् ॥ ८८ ॥

शिलापर पीसकर वस्त्रमें निचोडीहुई नारियलकी गिरी ८ पल शुद्धखाँड १ प्रस्थ, नारियलका जल ८ सेर, घी ५ पल एवं सोंठका चूर्ण १६ तोले और दूध ३२ तोले लेवे । प्रथम नारियलकी गिरीको घीमें भूनकर उक्त ओष-धियोंके साथ मिश्रितकर मन्दमन्द अग्निके द्वारा पकावे। जब पाक उत्तम प्रका-

रसे पककर सिद्ध होजाय तब वंशलोचन, सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, धनियाँ, पीपल, गजपीपल और जीरा इन प्रत्येक ओषधिको दो दो कर्ष बारीक पीसकर उसमें डालदेवे और करछीसे सबको एकमएक करके मिट्टीके स्वच्छपात्रमें भरकर रखदेवे। इसको प्रतिदिन चार चार माशे सेवन करे और इसपर यथेच्छ भोजन करे। यह ओषधि सर्वदोषजन्यशूल, एकदोषज, व द्विदोषज परिणामशूल और अम्लपित्तरोगको नष्ट करती है। एवं बलकारक और पुष्टिकारक, हृदयको हितकारी, अत्यन्त वाजीकरण तथा रक्तपित्त, हृदयरोग और वमन इनको नाश करनेकें लिये परमश्रेष्ठहै। इस बृहन्नारिकेलरसायनको महाराज धन्वन्तरिने निर्माण कियाहै ॥ ८२-८८ ॥

नारिकेलामृत।

नारिकेलफलप्रस्थं सुपिष्टं भर्जितं घृते।
प्रस्थे प्रस्थं समादाय शुण्ठीचूर्णन्तु तत्समम् ॥ ८९ ॥
द्विपात्रं नारिकेलाम्बु तत्समं क्षीरमेव च।
धात्र्याश्च स्वरसप्रस्थं खण्डस्यापि तुलां न्यसेत्॥१९०
एकीकृत्य पचेत्सर्वं शनैर्मृद्वग्निना भिषक् ॥ ९१ ॥
सिद्धशीते प्रदातव्यं चूर्णमेषां सुशोभनम् ॥ ९२ ॥
कटुत्रयं चतुर्जातं प्रत्येकन्तु पलोन्मितम्।
धात्रीजीरकयुग्मश्च धन्याकं ग्रन्थिपर्णकम् ॥ ९३ ॥
तुगापयोदचूर्णानि त्रिकर्षाणि पृथक्पृथक्।
चतुःपलानि मधुनः स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ ९४॥
शिवं प्रणम्य सगणं धन्वन्तरिमथापरम्।
कर्षप्रमाणं कर्त्तव्यं मुद्गयूषं पिबेदनु ॥ ९५ ॥
अम्लपित्तं निहन्त्युग्रं शूलञ्चैव सुदारुणम्।
परिणामभवं शूलं पृष्ठशूलञ्च नाशयेत् ॥ ९६ ॥
अन्नद्रवभवं शूलं पार्श्वशूलञ्च दुस्तरम्।
अग्निसन्दीपनकरं रसायनमिदं शुभम् ॥ ९७ ॥
मूत्राघातानशेषांश्च रक्तपित्तं विशेषतः।
पीनसञ्च प्रतिश्यायं नाशयेन्नित्यसेवनात् ॥ ९८ ॥

रोगानीकविनाशाय लोकानुग्रहहेतवे ।
अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं नारिकेलामृतं शुभम् ॥ ९९ ॥

उत्तम पकेहुए नारियलकी गिरीको १ प्रस्थ (६४ तोले) लेकर शिलपर पीसकर और वस्त्रमें निचोडकर गौके १ प्रस्थ घृतमें भूनलेवे । फिर सोंठका चूर्ण १ प्रस्थ, नारियलका जल १६ सेर, गौका दूध १६ सेर, आमलोंका रस १ प्रस्थ और खाँड १०० पल इन सबको और उक्त गिरीको एकत्र मिलाकर मन्दमन्द अग्निके द्वारा शनैःशनैः पकावे।जब पाक उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें सोंठ, मिरच, पीपल,दारचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर ये प्रत्येक चार चार तोले, आमले, जीरा, कालाजीरा, धनियाँ, गठिवन, वंशलोचन और नागरमोथा इन प्रत्येक ओषधिके छः छः तोले परिमाण चूर्णको डालदेवे । एवं चार पल शहद डालकर सबको करछीसे अच्छीतरह मिलाकर मृत्तिकाके चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे । फिर प्रतिदिन प्रातःकाल गणोंसहित शिवजीको और फिर धन्वन्तरि भगवान्‌को प्रणाम करके यह औषध एकएक तोला परिमाण सेवन करनी चाहिये और ऊपरसे मूँगका यूष पान करना चाहिये । इसके सेवन करनेसे अत्यन्त प्रबल अम्लपित्त, दारुणशूल, परिणाम शूल, पृष्ठशूल, अन्नद्रवशूल और दुस्तर पार्श्वशूलरोग नाश होते हैं । यह अग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाली और अत्युत्तम रसायन है । यह नित्य सेवन करनेसे सर्वप्रकारके मूत्राघात विशेषकर रक्तपित्त,पीनस और प्रतिश्यायरोगको नष्ट करतीहै । सर्वप्रकारके रोगसमूहको नाशकरनेकेलिये और सांसारिक मनुष्योंके ऊपर अनुग्रहकरनेकी इच्छासे अश्विनीकुमारोंने इस नारिकेलामृत औषधको निर्माण कियाहै ८९-९९

गुडपिप्पली घृत।

सपिप्पलीगुडं सर्पिः पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे ।
विनिहन्त्यम्लपित्तञ्च शूलञ्च परिणामजम् ॥ २०० ॥

पीपलका चूर्ण, गुड और घी इनको समानभाग लेकर चौगुने दूधमें घृतको पकावे । इसको पानकरनेसे अम्लपित्त परिणामजन्यशूल दूर होता है॥२००॥

पिप्पलीघृत ।

क्वाथेन कल्केन च पिप्पलीनां सिद्धं घृतं माक्षिकसंप्रयुक्तम्।
क्षीरानुपानस्य निहन्त्यवश्यं शूलं प्रवृद्धं परिणामसंज्ञकम् १॥

पीपलके क्काथ और कल्कके साथ विधिपूर्वक सिद्धकियेहुए घृतको शहदमें मिलाकर सेवन करके उष्णदुग्ध पान करनेसे अत्यन्त प्रबल परिणामशूल अवश्य नष्ट होता है ॥ २०१ ॥

बीजपूराद्यघृत।

बीजपूरकमेरण्डं रास्नां गोक्षुरकं बलाम्।
पृथक् पञ्चपलान्भागान् यवप्रस्थसमायुतान् ॥ २ ॥
वारिद्रोणेन संसाध्य यावत्पादावशेषितम्।
घृतप्रस्थं पचेत्तेन कल्कं दत्त्वाक्षसम्मितम् ॥ ३ ॥
तुम्बुरूण्यभया व्योषं हिङ्गुं सौवर्चलं विडम्।
सैन्धवं यावशूकञ्च सर्जिकामम्लवेतसम् ॥ ४ ॥
पुष्करं दाडिमञ्चैव वृक्षाम्लं जीरकद्वयम्।
मस्तु प्रस्थद्वयं दत्त्वा सर्वं मृद्वग्निना पचेत् ॥ ५ ॥
घृतमेतत्प्रशंसन्ति शूलं हन्ति त्रिदोषजम्।
वातशूलं यकृच्छूलं गुल्मं प्लीहाहरं परम् ॥ ६ ॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च अङ्गशूलञ्च नाशयेत्।
बलवर्णकरं हृद्यमग्निसन्दीपनं परम् ॥ ७ ॥

बिजौरानींबूकी जड, अण्डकी जड, रायसन, गोखुरू और खिरैंटी ये प्रत्येक ओषधि बीस बीस तोले और भूसीरहित जौ १ प्रस्थ लेकर सबको एकत्र करके १ द्रोण जलमें पकावे। पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह-जाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें गोघृत १ प्रस्थ, दहीका तोड दो प्रस्थ, एवं कल्कके लिये तुम्बुरु, हरड, त्रिकुटा, हींग, कालानमक, विरिया-सञ्चरनमक, सैंधानमक, जवाखार, सज्जी, अम्लवेत, पोहकरमूल, अनार, विषांविल, जीरा और कालाजीरा इन सबको दो दो तोले परिमाण डालकर मन्दमन्द अग्निद्वारा उत्तम प्रकारसे घृतको पकावे। यह घृत तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए शूल, वातजशूल, यकृत्शूल, गुल्मरोग, प्लीहा, हृदयशूल, पार्श्व-शूल और अङ्गशूल इन सर्वप्रकारके शूलरोगोंको नाश करताहै। एवं बल, वर्णकी वृद्धिकरनेवाला, हृदयको हितकारी अत्यन्त अग्निको दीपन करनेवालाहै २-७॥

शूलगजेन्द्रतैल।

एरण्डं दशमूलञ्च प्रत्येकं पलपञ्चकम्।

जले चाष्टगुणे पक्त्वा तैलस्याढ्काढकं पचेत् ॥ ८ ॥
विश्वं जीरं यमानीश्च धान्यकं पिप्पलीं वचाम्।
सैन्धवं बदरीपत्रं प्रत्येकञ्च पलद्वयम् ॥ ९ ॥
यवक्काथः पयश्चैव तैलाद्देयं गुणद्वयम्।
तैलमेतन्महातेजो नाम्ना शूलगजेन्द्रकम् ॥ २१० ॥
निहन्त्यष्टविधं शूलमुपद्रवसमन्वितम्।
अग्निप्रदं वमिहरं श्वासकासारुचीर्जयेत् ॥ ११ ॥
ज्वरघ्नं रक्तपित्तघ्नं प्लीहगुल्मविनाशनम्।
श्रीमद्गहननाथेन निर्मितं विश्वसम्पदे ॥ २१२ ॥

अण्डकी जड ५ पल और दशमूलकी प्रत्येक ओषधि पाँच पाँच पल लेकर अठगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें तिलका तेल चारसेर, जौका काथ ८ सेर, दूध ८ सेर एवं कल्कके लिये सोंठ, जीरा, अजवायन, धनियाँ, पीपल, वच, सेंधानमक और बेरीके पत्ते इन प्रत्येकका चूर्ण दो दो पल डालकर उत्तम प्रकारसे तैलको पकावे। यह शूलगजेन्द्रनामकतैल अत्यन्त तेजवान् है। इसको मर्दन करनेसे सम्पूर्ण उपद्रवों सहित आठों प्रकारके शूलरोग, वमन, श्वास,कास, अरुचि आदिरोग नष्ट होतेहैं। यह तैल अग्निवर्द्धक एवं ज्वर, रक्तपित्त, प्लीहा और गुल्म इन सब रोगोंको नाश करनेवाला है। संसारके हितके लिये श्रीमान् गहननाथजीने इस तैलको निर्माण कियाहै ॥ २०८-२१२ ॥

शूलरोगमें पथ्य।

छर्दिः स्वेदो लङ्घनं पायुवर्त्तिर्वस्तिर्निद्रा रेचनं पाचनञ्च। अब्दोत्पन्नाः शालयो वाट्यमण्डस्तप्तक्षीरं जाङ्गलानां रसाश्च ॥ १३ ॥ पटोलशोभाञ्जनकारवेल्लवार्त्ताकुराम्राणि पचेलिमानि। द्राक्षा कपित्थं रुचकं पियालशालिञ्चपत्राणि च वास्तुकानि ॥१४॥ सामुद्रसौवर्चलहिङ्गुविश्वं विडं शताह्वालशुनं लवङ्गम्। एरण्डतैलं सुरभीजलञ्च तप्ताम्बुजम्बीररसोऽपि कुष्ठम ॥ लघूनि च क्षाररजांसि चेति वर्गो हितःशूलगदार्दितेभ्यः ॥ १५ ॥

वमन कराना, स्वेद देना, लंघन कराना, गुदामें बत्ती लगाना, वस्तिकर्म, निद्रा, विरेचन (जुल्लाव), पाचक ओषधियाँ, एक वर्षके पुराने शालिधान, भुनेहुए जौका माँड, गरमदूध, जङ्गली पशुपक्षियोंका मांसरस एवं परवल, सहिं-जना, करेला, बगन, पकेआम, दाख, कैथ, कालानमक, चिरौंजी, शालिञ्च-शाक, बथुयेका शाक, समुद्रलवण, कालानमक, हींग, सोंठ, विरियासंचर-नमक, सोया, लहसन, लौंग, अण्डीका तेल,गोमूत्र, उष्णजल, जम्बीरीनींबूका रस, कूठ, लघुपाकी द्रव्य, जवाखार आदि क्षार ये समस्त पदार्थ और क्रियायें शूलरोगियोंके लिये उपयोगी हैं ॥ १३–१५ ॥

शूलरोगमें अपथ्य।

विरुद्धान्यन्नपानानि जागरं विषमाशनम्।
रूक्षतिक्तकषायाणि शीतलानि गुरूणि च ॥ १६ ॥
व्यायामं मैथुनं मद्यं द्वैदलं लवणं तिलान्।
वेगरोधं शोकक्रोधं वर्जयेच्छूलवान्नरः ॥ २१७ ॥

विरुद्ध अन्न-पान, रात्रिजागरण, विषम भोजन, रूक्ष, कडवे, कषैले, शीतल और गुरुपाकी (भारी) पदार्थ, व्यायाम, स्त्रीप्रसङ्ग, मदिरा, दो दलवाले अन्न (दाल), नमक, तिल, मल मूत्रादिके वेगोंको रोकना, शोक और क्रोध इन सबको शूलरोगी तत्काल त्यागदेवे ॥ २१६॥२१७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शूलरोगचिकित्सा।

उदावर्त्त और आनाहकी चिकित्सा।

त्रिवृत्सुधापत्रातिलादिशाकग्राम्यौदकानूपरसैर्यवान्नम्।
अन्यैश्च सृष्टानिलमूत्रविड्भिरद्यात्प्रसन्नागुडसीधुपायी ॥१॥

निसोत, थूहरके पत्ते, तिलादिका शाक, ग्राम्य जलीय और अनूप देशके जीवोंका मांसरस एवं वायुनाशक विरेचक और मूत्रकारक द्रव्योंके साथ यवान्न भक्षण करना, सुरामण्ड और गुडसे बनाईहुई सीधुनामक मदिरा ये सब पदार्थ उदावर्त्तरोगमें सेवन करने चाहिये ॥ १ ॥

आस्थापनं मारुतजे स्निग्धस्विन्नस्य शस्यते।
पुरीषजे तु कर्त्तव्यो विधिरानाहिकस्तु यः ॥ २ ॥

अपानवायुके वेगको रोकनेसे जो उदावर्त्तरोग उत्पन्नहुआ हो तो उसमें स्निग्धद्रव्योंके द्वारा स्वेद देकर आस्थापन (वस्तिक्रिया) करे। और मलके

वेगको रोकनेसे उत्पन्नहुए उदावर्त्तमें आनाहाधिकारमें कहीहुई फलवर्ति आदि प्रयोग करनी चाहिये ॥ २ ॥

नेत्रनीरावरोधोत्थे मुञ्चेद्वापि दृशोर्जलम् ।
सुप्यात्सुखञ्च तस्याग्रे कथयेच्च कथाः प्रियाः ॥ ३ ॥

आँसुओंके वेगको रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तमें तीक्ष्ण अञ्जन लगाकर नेत्रोंसे अश्रुपात करके रोगीको सुखपूर्वक शयन करना चाहिये और उस रोगीके सामने मीठी प्यारी बातें कहनी चाहिये ॥ ३ ॥

क्षुतो निरोधजे तीक्ष्णघ्राणनस्यार्कदर्शनैः ।
प्रवर्त्तयेत्क्षुतं सक्तं स्नेहस्वेदौ च शीलयेत् ॥ ४ ॥

छींकको रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तमें तीक्ष्ण द्रव्योंके द्वारा नस्य लेकर अथवा सूर्यकी ओर देखकर छींकें लेवें । फिर स्नेह और स्वेदक्रिया करे ॥४ ॥

उद्गारस्यावरोधे तु स्नैहिकं धूममाचरेत् ॥ ५ ॥

डकारके रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तमें स्नेहद्रव्योंका धूम्रपान करे अर्थात् स्निग्धपदार्थोंको अग्निपर डालकर उसका धूम्रपान करे ॥ ५ ॥

छर्दिनिग्रहसञ्जाते वमनं लङ्घनं हितम् ।
विरेचनञ्चात्र मतं तैलेनाभ्यञ्जनं तथा ॥ ६ ॥

वमनके वेगको रोकनेसे उत्पन्न हुये उदावर्त्तमें वमन लंघन और विरेचन कराना एवं तेलकी मालिश करना हितकारी है ॥ ६ ॥

क्षुद्विघातसमुद्भूते स्निग्धमुष्णं तथा लघु ।
रुच्यमल्पं हितं भक्ष्यं पुष्पं सेव्यं सुगन्धि यत् ॥ ७ ॥

भूँखके वेगको रोकनेके कारण उत्पन्नहुए उदावर्त्तमें स्निग्ध, उष्ण, लघुपाकी, रुचिकर और हितकर पदार्थ अल्पमात्रामें सेवन करने चाहिये और सुगन्धित पुष्प सूँघने चाहिये ॥ ७ ॥

निद्रावेगविघातोत्थे पिबेत्क्षीरं सितायुतम् ।
संवाहनं सुशय्यात्र हितः स्वप्नः प्रियाः कथाः ॥ ८ ॥

निद्राके वेगको रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तमें मिश्री मिलाहुआ दुग्धपान, शारीरिक सञ्चालन, सुखप्रद शय्यापर शयन करना और प्रियकथायें सुनना ये सब क्रियायें हितकर हैं ॥ ८ ॥

अधोवातनिरोधोत्थे ह्युदावर्त्ते हितं मतम् ।
स्नेहपानं तथा स्वेदो वर्त्तिर्वस्तिर्हितो मतः ॥ ९ ॥

अपानवायुको रोकनेके कारण उत्पन्नहुए उदावर्त्तमें स्नेहपान, स्वेददेना, वर्त्तिप्रयोग (गुदामें वत्ती चढाना) और वस्तिक्रिया (पिचकारी लगाना) करना उपयोगी है ॥ ९ ॥

विड्विघातसमुत्थे च विड्भेद्यन्नं तथौषधम् ।
वर्त्त्यभ्यङ्गावगाहांश्च स्वेदो वस्तिर्हितो मतः ॥ १० ॥

मलके वेगको रोकनेसे उत्पन्नहुए उदावर्त्त रोगमें विरेचक ओषधि, अन्न, फलवर्त्ति, अभ्यङ्ग (तैलादिकी मालिश), जलमें गोतालगाकर स्नान, स्वेद प्रदान और वस्तिक्रिया करनी चाहिये ॥ १० ॥

मूत्रावरोधजानिते क्षीरवारिवचाः पिबेत् ।
दुस्पर्शास्वरसं वापि कषायं ककुभस्य च ॥ ११ ॥
एर्वारुबीजं तोयेन पिबेद्वा लवणीकृतम् ।
सितामिक्षुरसं क्षीरं द्राक्षारसमथापि वा ॥
सर्वथैव प्रयुञ्जीत मूत्रकृच्छ्राश्मरीविधिम् ॥ १२ ॥

मूत्रके वेगको रोकनेसे उत्पन्नहुए उदावर्त्तमें दूध या जलके साथ वचका चूर्ण पान करे । अथवा धमासेका स्वरस, अर्जुनवृक्षकी छालका काथ, जल और सैन्धेनमकके साथ ककडीके बीजोंका चूर्ण, वा मिश्री, ईखका रस, दूध और दाखका रस इनमेंसे किसी एक पदार्थको सेवन करे। एवं मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीरोगाधिकारमें कहीहुई समस्तक्रियायें करनी चाहिये ॥ ११ ॥ १२ ॥

जृम्भाभिघातजे स्नेहं स्वेदं वापि प्रयोजयेत् ।
अन्यानपि प्रयुञ्जीत समीरणहरान् विधीन् ॥ १३ ॥

जम्भाईके वेगको रोकनेसे उत्पन्नहुए उदावर्त्तमेंस्नेहपान स्वेदक्रिया और अन्यान्य वातनाशक क्रियायें करनी चाहिये ॥ १३ ॥

वस्तिशुद्धिकरैः सिद्धं चतुर्गुण जलंपयः ।
आवारिनाशात्कथितं पतिवन्तं प्रकामतः ॥ १४ ॥
रमयेयुः प्रिया नार्यः शुक्रोदावर्तिनं नरम् ।
अत्राभ्यङ्गावगहाश्च मदिराश्चरणायुधाः ।
शालिः पयोनिरूहाश्च हितं मैथुनमेव च ॥ १५ ॥

वीर्यके वेगको रोकनेसे उत्पन्नहुए उदावर्त्तरोगमें चौगुने जलके साथ दूधको पकाकर (जब जल सब जलजाय दूधमात्र शेष रहजाय तब) उसके साथ

मूत्राशयको शुद्ध करनेवाले तृणपञ्चमूलके कल्कको मिलाकर रोगीको पानकरावे और प्रिय स्त्रियोंके साथ यथेच्छरूपसे रमण करावे। इस रोगमें तेलादिकी मालिश, अवगाहन (जलमें गोता लगाकर स्नानकरना), मद्यपान, मुर्गेका मांस, शालिचावल, दूधकी निरूहवस्ति, मैथुन करना ये सब हितकारी हैं १४-१५

त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विचतुःपञ्चभागिकाः।
गुडिका गुडतुल्यास्ता विड्विबन्धगदापहाः॥ ॥१६॥

निसोतका चूर्ण २ तोले, पीपलका चूर्ण ४ तोले, हरडका चूर्ण ५ तोले और सब चूर्णकी बराबर पुराना गुड, सबको एकत्र मिलाकर गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंके सेवन करनेसे मलावरोध और उदावर्त्तरोग नष्ट होता है॥१६॥

हिङ्गुकुष्ठवचासर्ज्जिविडश्चेति द्विरुत्तरम्।
पीतं मद्येन तच्चूर्णमुदावर्त्तविनाशनम्॥ १७॥

हींग १ भाग, कूठ २ भाग, वच ४ भाग, सज्जी ८ भाग विड्नमक १६-भाग सबको एकत्र बारीक चूर्ण करके मद्यके साथ पीनेसे उदावर्त्त जाय॥१७

हरीतकी यवक्षारं पीलूनि त्रिवृता तथा।
घृतैश्चूर्णमिदं पेयमुदावर्त्तविनाशनम्॥ १८॥

हरड, जवाखार मूवाकी जड और निसोत इनको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करके घृतके साथ मिलाकर सेवन करनेसे उदावर्त्तरोग नष्ट होताहै १८

रसोनं मद्यसम्मिश्रं पिबेत्प्रातः प्रकाङ्क्षितः।
गुल्मोदावर्त्तशूलघ्नं दीपनं बलवर्द्धनम्॥ १९॥

प्रातःकाल, लहसुनको मद्यके साथ मिलाकर सेवन करनेसे गुल्म, उदावर्त्त, शूलरोग नष्ट होता है तथा अग्निदीपन और बलकी वृद्धि होती है॥ १९॥

हिङ्गुमाक्षिकसिन्धूत्थैः पिष्टैर्वर्त्तिं सुनिर्म्मिताम्।
घृताभ्यक्तां गुदे दद्यादुदावर्त्तविनाशिनीम्॥ २०॥

हींग, शहद और सैंधानमक इनको एकत्र खरल करके बत्ती बनालेवे। उस बत्तीको घीमें सानकर गुदामें चढानेसे उदावर्त्त दूर होता है॥ २०॥

त्रिवृद्धरीतकीश्यामाः स्नुहीक्षीरेण भावयेत्।
स्नुहीमूलस्य चूर्णं वा पिबेदुष्णेन वारिणा॥ २१॥

निसोत, हरड और सारिवा सबके चूर्णको समानभाग लेकर थूहरके दूधमें खरलकरके गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंको गोमूत्रके साथ सेवन

करनेसे दस्त होकर आनाहरोग दूर होताहै । एवं थूहरकी जडके चूर्णको उष्ण जलके साथ सेवन करनेसेभी आनाहरोग नष्ट होताहै ॥ २१ ॥

द्विरुत्तरा हिङ्गुवचा सकुष्ठा सुवर्चिका चेति विडश्च चूर्णम्।
सुखाम्बुनानाहविषूचिकार्त्तिहृद्रोगगुल्मोर्द्ध्वसमीरणघ्नम् २२॥

हींग १ भाग, वच २ भाग, कूठ ४ भाग, सज्जी ८ भाग और विडनमक १६ भाग सबको एकत्र पीसकर, मन्दोष्णजलके साथ पानकरनेसे आनाह, विषूचिका, हृदयरोग, गुल्म और ऊर्ध्ववातरोग नष्ट होताहै ॥ २२ ॥

वचाभयाचित्रकयावशूकान् सपिप्पिलीकातिविषा-
न्सकुष्ठान् । उष्णाम्बुनानाहविमूढवातान्पीत्वा जये-
दाशु हितौदनाशी ॥ २३ ॥

वच, हरड, चीता, जवाखार, पीपल, अतीस और कूठ सबको समान-भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको मन्दोष्णजलके साथ सेवन करनेसे आनाह और मूढवातरोग शीघ्र दूर होते हैं । इसपर भातका भोजन करना चाहिये ॥ २३॥

नाराचचूर्ण ।

खण्डपलं त्रिवृतासममुपकुल्याकर्षचूर्णितं श्लक्ष्णम् ।
प्राग्भोजने समधु विडालपदकं लिहेत्प्राज्ञः ॥ २४ ॥
एतद्गाढपुरीषे पित्ते कफे च विनियोज्यम् ।
मधुरं नरपतियोग्यं चूर्णं नाराचकं नाम्ना ॥ २५ ॥

शुद्ध खाँड ४ तोले, निसोतका चूर्ण ४ तोले और पीपलका चूर्ण २ तोले लेकर सबको एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको प्रतिदिन भोजनसे पहले एक एक तोला परिमाण शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे मलकी विबन्धता, पित्त और कफ दूर होते हैं । यह नाराचचूर्ण स्वादिष्ट और राजाओंके सेवन करने योग्य है ॥ २४ ॥ २५ ॥

फलवर्त्ति ।

मदनं पिप्पलीकुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः ।
गुडक्षीरसमायुक्ता फलवर्त्तिरिहोच्यते ॥ २६ ॥

मैनफल, पीपल, कूठ, वच और सफेद सरसों प्रत्येकका चूर्ण समानभाग और सब चूर्णकी बराबर गुड सबको एकत्र मिलाकर यथोचित दूधके साथ

पकाकर बत्ती बनालेवे । उस बत्तीको गुदामें लगानेसे दस्त होकर उदावर्त्त और आनाहरोग शमन होवे हैं ॥ २६ ॥

त्रिकट्वादिवर्ति ।

वर्त्तिस्त्रिकटुसैन्धवसर्षपगृहधूमकुष्ठमदनफलैः ।
मधुनि गुडे वा पक्वैर्विहिता साङ्गुष्ठपरिमाणा ॥ २७ ॥
वर्त्तिरियं दृष्टफला शनैः शनैः प्रणिहिता घृताभ्यक्ता ॥
आनाहोदावर्त्तप्रशमनी जठरगुल्मविनाशिनी च ॥२८॥

सोंठ, मिरच, पीपल, सैन्धानमक, श्वेतसरसों, घरका धुआँसा और कूठ ये सब समानभाग और मैनफल १ सबको एकत्र चूर्णकरके शहद या गुडमें पकाकर अँगूठेकी बराबर बत्ती बनालेवे । इस बत्तीको घीमें सानकर धीरे धीरे गुदामें लगानेसे दस्त होकर कोठा साफ होजानेपर आनाह, उदावर्त्त और गुल्मरोग शीघ्र नष्ट होते हैं । यह बत्ती तत्काल अपना फल दिखाती है॥२८॥

नाराचरस ।

सूतगन्धकतुल्यांशं मरिचं सूततुल्यकम् ।
टङ्कणं पिप्पलीशुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विमिश्रयेत्॥२९॥
सर्वतुल्यानि बीजानि दन्तीनां निस्तुषाणि च ।
स्नुहक्षीरेण संयुक्तं मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥ ३० ॥
नारिकेलोदरे स्थाप्यं महागाढाग्निना ततः ।
तत्कल्कं पाचयेत्क्षिप्रं खल्लयित्वा निधापयेत् ॥ ३१ ॥
तन्मध्यनाभिलेपेन राजयोग्यं विरेचनम् ।
वटिकालेपमात्रेण दशवारं विरेचयेत् ॥
तद्गन्धघ्राणमात्रेण विरेको जायते ध्रुवम् ॥ ३२ ॥

शुद्धपारा और शुद्धगन्धक २ तोले, कालीमिरच १ तोला, सुहागा, पीपल और सोंठ ये प्रत्येक दो दो तोले एवं सबकी बराबर छिलके रहित जमालगोटे इन सबको एकत्र थूहरके दूधमें तीन दिनतक खरल करके नारियलके खोपडेमें भरकर तीक्ष्ण अग्निके द्वारा पकावे । जब वह शीतल होजाय तब निकालकर खरल करके गोलियाँ बनालेवे । इस गोलीको जलमें घिसकर नाभिके ऊपर लेप करनेसे १० बार दस्त होते हैं । इसको सूँघनेसे भी निश्चय दस्त होते हैं । यह रस राजाओंके विरेचन योग्यहै ॥ २९-३२ ॥

वैद्यनाथवटी ।

पथ्या त्रिकटु सूतश्च द्विगुणं कानकं तथा ।
भेकपर्णीरसैरम्ललोणिकाया रसैः कृता ॥ ३३ ॥
गुडिकोदरगुल्मादिपाण्ड्वामयविनाशिनी ।
कृमिकुष्ठगात्रकण्डूपिडकाश्च निहन्ति च ।
गुडी सिद्धफला चेयं वैद्यनाथेन भाषिता ॥ ३४ ॥

हरड, त्रिकुटा और शुद्धपारा ये प्रत्येक ओषधि एक एक भाग और शुद्ध जमालगोटे २ भाग लेकर सबको एकत्रित करके मण्डूकपर्णीके रस और अम्ललोनिया (चाङ्गेरी) के रसमें क्रमसे खरल करके गोलियाँ बनालेवे । इस वटीको सेवन करनेसे उदररोग, गुल्म, पाण्डुरोग, कृमि, कुष्ठ, खुजली और पिडका ये सब रोग शीघ्र नष्ट होते हैं । इस वटीको महाराज वैद्यनाथजीने वर्णन कियाहै । यह निश्चयही अपना फल दिखाती है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

बृहदिच्छाभेदीरस ।

शुद्धं पारदटङ्कणं समरिचं गन्धाश्मतुल्यं त्रिवृ-
द्विश्वा च द्विगुणा ततो नवगुणं जैपालचूर्णं क्षिपेत् ।
खल्ले दण्डयुगं विमर्द्य विधिना चार्कस्य पत्रे ततः
स्वेदं गोमयवह्निना च मृदुना स्वेच्छावशाद्भेदकः ॥ ३५ ॥
गुञ्जैकप्रतिमो रसो हिमजलैः संसेवितो रेचये-
द्यावन्नोष्णजलं पिबेदपि वरं पथ्यं च दध्योदनम् ।
आमं सर्वभवं सुजीर्णमुदरं गुल्मं विशालं हरे-
द्वह्नेर्दीप्तिकरो बलासहरणः सर्वामयध्वंसनः ॥ ३६ ॥

शुद्धपारा, सुहागा, काली मिरच और शुद्धगन्धक ये सब समानभाग, निसोत और सोंठ सबसे दुगुनी एवं जमालगोटे नौ गुने लेकर सबको एकत्र चूर्ण करलेवे । फिर उस चूर्णको आकके पत्तोंके रसमें ४ घडीतक उत्तम प्रकारसे खरल करके आकके पत्तेमें रखकर आरने उपलोंकी मन्दमन्द अग्निके द्वारा पुटपाक करे । इसको एकरत्तीपरिमाण शीतलजलके साथ सेवनकरे । इसमें जबतक गरम जल नहीं पीवे तबतक बराबर दस्त होते रहेंगे । इसपर दही और भात पथ्य है । यह सर्वप्रकारकी आमवात, उदरके सबविकार, गुल्म, कफके रोग एवं अन्यान्य सर्वरोगोंको हरण करती है और अग्निको दीपन करती है ॥

गुडाष्टक ।

सव्योषपिप्पलीमूलं त्रिवृद्दन्ती च चित्रकम् ।
तच्चूर्णं गुडसम्मिश्रं भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ ३७ ॥
एतद्गुडाष्टकं नाम्ना बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ।
उदावर्त्तप्लीहगुल्मशोथपाण्ड्वामयापहम् ॥ ३८ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, निसोत, दन्ती और चीता इनका समान भाग मिश्रित चूर्ण और सब चूर्णकी बराबर पुराना गुड लेकर एक जगह मिलालेवे । प्रातःकाल उठकर इसको उचितमात्रासे भक्षण करे । यह गुडाष्टक बल, वर्ण और अग्निको वढाता है तथा उदावर्त्त, प्लीहा, गुल्म, सूजन और पाण्डुरोगको दूर करता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

शुष्कमूलाद्यघृत ।

मूलकं शुष्कमार्द्रं च वर्षाभूमूलपञ्चकम् ।
आरेवतफलञ्चापि पिष्ट्वा तेन पचेद्घृतम् ॥
तत्पीतमात्रं शमयेदुदावर्त्तमसंशयम् ॥ ३९ ॥

गौका घी १ सेर, तथा सूखी मूली, अदरख, पुनर्नवा, लघु पञ्चमूल और अमलतासका गूदा इन औषधियोंको समानभाग लेवे । सबको एकत्र पीसकर ४ सेर जलमें पकावे । जब एक सेर जल बाकी रहे तब उतारकर छानलेवे । फिर काथके साथ घृतको सिद्धकरे इस घृतको पीतेही उदावर्त्त रोग निस्सन्देह नाश होता है ॥ ३९ ॥

स्थिराद्यघृत ।

स्थिरादिवर्गस्य पुनर्नवायाः शम्याकपूतीककरञ्जयोश्च ।
सिद्धः कषायोद्विपलांशिकानांप्रस्थोघृतात्स्यात्प्रतिरुद्धवाते

गौका घृत १ प्रस्थ, काथके लिये शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कटाई, कटेरी, गोखुरू, पुनर्नवा, अमलतास, दुर्गन्धकरञ्ज और करञ्ज ये प्रत्येक आठ आठ तोले पाकके लिये जल ३२ सेर लेवे और ८ सेर जल शेष रखे । उस काथको छानकर घृतको सिद्धकरे घृतसे वायुकी रुद्धता दूर होती है ॥ ४० ॥

उदावर्त्तमें पथ्य ।

स्नेहस्वेदविरेकाश्च वस्तयः फलवर्त्तयः ।
अभ्यङ्गाश्च यवाः सर्वे सृष्टविण्मूत्रमारुतम् ॥ ४१ ॥

आम्योदकानूपरसा रुबुतैलश्च वारुणी ।
बालमूलकशम्याकत्रिवृत्तिलसुधादलम् ॥ ४२ ॥
शृङ्गवेरं मातुलुङ्गं यवक्षारो हरीतकी ।
लवङ्गं रामठं द्राक्षा गोमूत्रं लवणानि च ॥ ४३ ॥

स्नेह द्रव्योंका पान, स्वेददेना, विरेचन, वस्तिक्रिया, फलवर्त्तिप्रयोग, तेलकी मालिश, जौ एवं विरेचक, मूत्रकारक और वायुको अनुलोमन करनेवाले पदार्थ तथा घरके पालतू जलके और अनूपदेशवाले जीवोंके मांसका रस, अण्डीका तेल, मदिरा, कच्चीमूली, अमलतास, निसोत, तिल, थूहरके पत्ते, अदरख, हींग, बिजौरानींबू, जवाखार, हरड, लौंग, दाख गोमूत्र और सैन्धवादिलवण ये सब उदावर्त्तरोगमें हितकारी हैं ॥ ४१-४३ ॥

उदावर्त्तमें अपथ्य ।

वमनं वेगरोधश्च शमीधान्यानि कोद्रवम् ।
नालीतशाकं शालूकं जाम्बवं कर्कटी फलम् ॥ ४४ ॥
पिण्याकमालुकं सर्वं करीरं पिष्टवैकृतम् ।
विष्टम्भीनि विरुद्धानि कषायाणि गुरूणि च ॥
उदावर्त्ती प्रयत्नेन वर्जयेत्सततं नरः ॥ ४५ ॥

वमन, मल और मूत्रके वेगको रोकना, समेके चावल, कोदों, नाडीका शाक, भसींडा, जामुन, ककडी, तिलोंका कल्क, आलू, बाँसके कल्ले, सर्वप्रकारके पिठ्ठीके पदार्थ, मलरोधक, विरुद्ध, कषैले और दुष्पाच्यद्रव्य ये सब उदावर्त्तमें अहितकर हैं, अतः इनको शीघ्रही त्यागदेवे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

आनाहमें पथ्य और अपथ्य ।

उदावर्त्तहितं सर्वं पाचनं लङ्घनं तथा ।
आनाहे तु यथायोग्यं योजयेन्मतिमान् भिषक् ॥ ४६ ॥
अपथ्यानि प्रदिष्टानि यान्युदावर्त्तिनां पुरा ।
आनाही तु परिहरेत्तानि सर्वाणि यत्नतः ॥ ४७ ॥

आनाहरोगमें उदावर्त्तमें कहीहुई पाचन, लंघनादि सब प्रकारकी हितकर क्रियायें प्रयोगकरें । उदावर्त्तरोगमें जो अपथ्यवस्तुयें बतलाई हैं, उनको आनाहरोगी तत्काल छोडदे । क्योंकि वे इस रोगमें भी अहितकर हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां उदावर्तानाहचिकित्सा ॥

गुल्मरोगकी चिकित्सा।

लघ्वन्नं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम्।
बृंहणं यद्भवेत्सर्वं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम्॥ १॥

गुल्मरोगमें हल्के, अग्निवर्द्धक, स्निग्ध, गरम, वायुको अनुलोमन करनेवाले और बलकारकपदार्थ अल्पमात्रासे सेवन करनेसे विशेष हित होता है॥ १॥

वल्लूरं मूलकं मत्स्याञ्छुष्कशाकानि वैदलम्।
न खादेच्चालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च॥ २॥

सूखामांस, कच्चीमूली, मछली, सूखेशाक, दो दलवाले अन्न, आलू (काँदू, रतालू आदि कन्द शाक) और मीठे फल इत्यादि पदार्थ गुल्मरोगीको त्याग-देने चाहिये अर्थात् इन द्रव्योंका कभी सेवन न करे॥ २॥

सिद्धमेकादशविधं शृणु मे गुल्मभेषजम्।
स्नेहनं स्वेदनञ्चैव निरूहमनुवासनम्॥ ३॥
विरेकवमने चोभे लङ्घनं बृंहणं तथा।
शमनञ्चावसेकञ्च शोणितस्याग्निकर्म्म च॥
कारयेदिति गुल्मिनां यथारम्भे चिकित्सितम्॥ ४॥

स्नेह, स्वेद, निरूहवस्ति, अनुवासन (स्नेहद्रव्योंकी वस्ति), जुल्लाब, वमन, लंघन, पुष्टिकर, एवं वायुनाशक औषध रक्तमोक्षण (फस्तखुलवाना) और अग्निकर्म (लोहेकी शलाकाको गरम कर दाग देना या सेंकना) ये ग्यारह प्रकारकी क्रियायें गुल्मरोगीको रोगके प्रारम्भमें ही करनी चाहिये३॥४

गुल्मिनामनिलशान्तिरुपायैः सर्वशो विधिवदाचरितव्या।
मारुते ह्यवजितेऽन्यमुदीर्णं दोषमल्पमपि कर्म निहन्यात्॥५॥

गुल्मरोगीको सबसे पहले वायुको शमन करनेका उपाय यत्नपूर्वक करना चाहिये। क्योंकि वायुके शान्त होजानेपर अन्यान्य दोष थोडेही यत्न करनेसे नष्ट होजाते हैं॥ ५॥

स्निग्धस्य भिषजा स्वेदः कर्त्तव्यो गुल्मशान्तये।
स्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुल्बणम्॥
भित्वा विबन्धं स्निग्धस्य स्वेदो गुल्मान्व्यपोहति॥६॥

गुल्मरोगकी शान्तिके लिये रोगीको घृत तेलादि स्निग्धद्रव्य पान कराकर

अथवा लक्ष्मीविलासादि तेल मलकर पीडास्थानमें स्वेद देवे। यह स्निग्ध पदार्थोंका स्वेद शरीरके सम्पूर्ण स्रोतोंको साफ करके प्रबल वायुको शान्त और मल मूत्रादिके अवरोध दूरकर गुल्मरोगको नष्ट करता है ॥ ६ ॥

कुम्भीपिण्डेष्टकास्वेदान् कारयेत्कुशलो भिषक् ।
उपनाहाश्च कर्त्तव्याः सुखोष्णाः शाल्वणादयः ॥ ७ ॥

वायुनाशक औषधियोंका काथ या काँजी आदिसे घडेको भरकर उसमें स्वेददेवे । इसको 'कुम्भीस्वेद' कहते हैं। पकायेहुए मांसादिके पिण्डसे जो स्वेद दिया जाताहै उसको 'पिण्डस्वेद' कहते हैं। ईंटके चूर्णको गरम करके काँजीमें डुबोकर स्वेद देनेको 'इष्टिकास्वेद' कहते हैं। इन तीनों प्रकारसे स्वेद, मन्दोष्ण लेप और वेसवार आदिका स्वेद देकर गुल्मरोगको नष्ट करना चाहिये ॥ ७ ॥

स्थानावसेको रक्तस्य बाहुमध्ये शिराव्यधः ।
स्वेदोऽनुलोमनश्चैव प्रशस्तं सर्वगुल्मिनाम् ॥ ८ ॥

गुल्मकी पीडावाले स्थानमें या जिस पार्श्वमें गुल्म उत्पन्न हुआहो उस पार्श्वकी बाहुकी सन्धिकी अधःस्थितशिरामेंसे रक्त निकलवावे। एवं स्वेद और वायुको अनुलोमन करनेवाली क्रियाकरके सर्वप्रकारके गुल्मरोगोंको दूर करे ८

पेया वातहरैः सिद्धा कौलत्था धन्वजा रसाः ।
खडाः सपञ्चमूलाश्च गुल्मिनां भोजने हिताः ॥ ९ ॥

वातनाशक औषधियोंसे बनाईहुई पेया, कुलथीका यूष, धन्वदेशजन्य प्राणियोंका मांसरस और बृहत्पञ्चमूलके द्वारा सिद्ध कियाहुआ खडयूषादि पदार्थ, गुल्मरोगीको हितकारी हैं, अतः ये सब भोजन करे ॥ ९ ॥

वातगुल्मचिकित्सा ।

मातुलुङ्गरसो हिङ्गु दाडिमं विडसैन्धवम् ।
सुरामण्डेन पातव्यं वातगुल्मरुजापहम् ॥ १० ॥

बिजौरेनीम्बूका रस, हींग, अनार, विरियासञ्चर और सैंधानमक इन सबोंको एकत्र पीसकर सुराके मण्डके साथ पीवे तो वातजगुल्मरोग शीघ्र जाय॥

नागरार्द्धपलं पिष्टं द्वे पले लुञ्चितस्य च ।
तिलस्यैकं गुडपलं क्षीरेणोष्णेन पाययेत् ॥
वातगुल्ममुदावर्त्तं योनिशूलञ्च नाशयेत् ॥ ११ ॥

सोंठ २ तोले, भूसीरहित तिल ८ तोले और गुड ४ तोले इनको एकत्र पीसकर गरम दूधके साथ सेवन करनेसे वातोत्पन्न गुल्म, उदावर्त्त और योनिशूलरोग नाश होते हैं ॥ ११ ॥

पिबेदेरण्डतैलं वा वारुणीमण्डमिश्रितम् ।
तदेव तैलं पयसा वातगुल्मी पीबेन्नरः ॥ १२ ॥

गरमदूध, या वारुणी मदिराके मण्डमें अण्डीका तेल डालकर पान करे अथवा अण्डीके तेलको दूधके साथ पीवे तो वातका गुल्म दूर होता है ॥१२॥

साधयेच्छुद्धशुष्कस्य लशुनस्य चतुःपलम् ।
क्षीरोदकेऽष्टगुणिते क्षीरशेषञ्च पाययेत् ॥ १३ ॥
वातगुल्ममुदावर्त्तं गृध्रसीं विषमज्वरम् ।
हृद्रोगं विद्रधिं शोथं नाशयत्याशु तत्परः ॥
एवं तु साधिते क्षीरे स्तोकमप्यत्र दीयते ॥ १४ ॥

छिल्के रहित सूखाहुआ लहसुन ४ पल, दूध २ सेर और जल ८ सेर लेवे । सबको एकत्र पकावे । जब केवल दूधमात्र शेष रहे तब उतारकर थोडा थोडा पींवे । इससे वातजन्यगुल्म, उदावर्त्त, गृध्रसीवात, विषमज्वर, हृदयरोग, विद्रधि, सूजन आदि विकार जल्द आराम होते हैं ॥ १३॥ १४ ॥

सर्ज्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकजोऽपि वा ।
तैलेन पीतः शमयेद्गुल्मं पवनसम्भवम् ॥ १५ ॥

सज्जी, कूठ अथवा केतकीका खार तिलके तेलके साथ मिलाकर पान करनेसे वातसे उत्पन्न हुआ गुल्मरोग शीघ्र शमन होताहै ॥ १५ ॥

वातगुल्मे कफे वृद्धे वान्तिश्चूर्णादिरिष्यते ।

वातभवगुल्मरोगमें जो कफकी अधिकता जानपडे तो वमनकारक ओषधियोंका चूर्ण सेवन करे ॥

पित्तगुल्मचिकित्सा ।

पित्ते विरेचनं स्निग्धं रक्ते रक्तस्य मोक्षणम् ॥ १६ ॥

पित्तके गुल्ममें स्निग्ध विरेचन (दस्त) और रक्तज गुल्मरोगमें रक्तमोक्षण करावे ॥ १६ ॥

स्निग्धोष्णेनोदिते गुल्मे पैत्तिके स्रंसनं हितम् ।
रूक्षोष्णेन तु सम्भूते सर्पिः प्रशमनं परम् ॥ १७ ॥

स्निग्ध और उष्णद्रव्योंद्वारा चिकित्सा करनेसे उत्पन्नहुए पित्तके गुल्ममें दस्त कराना और रूक्ष या उष्णक्रिया करनेसे उत्पन्न गुल्ममें घृत पान करना अत्यन्त हितकारी है ॥ १७ ॥

काकोल्यादिमहातिक्तवासाद्यैः पित्तगुल्मिनम् ।
स्नेहितं स्रंसयेत्पश्चाद्योजयेद्बस्तिकर्मणा ॥ १८ ॥

काकोल्यादि गणकी औषधियोंसे बनायेहुए घृत, महातिक्त घृत और वासादि औषधियोंसे सिद्ध कियेहुए घृत, पित्तके गुल्म रोगीको पान कराकर दस्त करावे। पश्चात् वस्तिक्रिया करे ॥ १८ ॥

स्निग्धोष्णजे पित्तगुल्मे काम्पिल्लं मधुना लिहेत ।
रेचनार्थी रसं वापि द्राक्षायाः सगुडं पिबेत ॥ १९ ॥

स्निग्ध और उष्णक्रियाके करनेसे उत्पन्नहुए पित्तजगुल्ममें विरेचनके लिये कबीलेको शहदमें मिलाकर चाटे अथवा दाखोंका क्वाथ गुड डालकर पानकरे। इससे दस्त होकर उक्तरोग दूर होताहै ॥ १९ ॥

दाहशूलानिलक्षोभस्वप्ननाशारुचिज्वरैः ।
विदह्यमानं जानीयाद्गुल्मं तमुपनाहयेत् ॥ २० ॥

गुल्मरोगमें दाह, शूल, वायुका प्रकोप, निद्राका नाश, अरुचि और ज्वर आदि लक्षण उत्पन्न हों तो गुल्म पकता है ऐसा जानना चाहिये। उस समय गुल्म शीघ्र पकजाय ऐसे व्रणशोथमें कहे हुए पाचक द्रव्योंको पीसकर गुल्म-स्थानपर लेप करे ॥ २० ॥

पक्के तु व्रणवत्कार्यं व्यधशोधनरोपणम् ।
स्वयमूर्द्धमधोवापि स चेद्दोषः प्रवर्त्तते ॥ २१ ॥
द्वादशाहमुपेक्षेत रक्षन्नन्यानुपद्रवान् ।
परन्तु शोधनं सर्पिःशुद्धे समधुतिक्तकम् ॥ २२ ॥

जब गुल्म पकजाय और उसमेंसे राध निकलने लगे तब गुल्मस्थानको व्रणकी समान वेधदेवे (चीरदेवे)। फिर शोधन (व्रणसे दूषित रक्तको निकालना) और रोपण (व्रणको सुखाना) आदि क्रिया करे। यदि गुल्म-स्थान स्वयं विदीर्ण होकर उसमेंसे ऊपर या नीचेसे राध निकलने लगे तो बारहदिन पर्यन्त शोधन और रोपणकर्म नहीं करे। किन्तु इसमें जो अन्य ज्वरादि उपद्रव प्राप्त होजायँ तो उनको विधिपूर्वक शान्तकरे। १२ दिन बीत-नेके बाद शोधक द्रव्योंको मिलाकर घृतपान करे। जब इस घृतको पानकर-

नेसे शरीर शुद्ध होजाय तब व्रण सुखानेके लिये शहद और तिक्तद्रव्योंको मिलाकर घृत पानकरे ॥ २१ ॥ २२ ॥

कफगुल्मचिकित्सा ।

लङ्घनोल्लेखने स्वेदे कृतेऽग्नौ संप्रधुक्षिते ।
घृतं सक्षारकटुकं पातव्यं कफगुल्मिनाम् ॥ २३ ॥

कफजनित गुल्मरोगमें लंघन, लेखन और स्वेदक्रियाद्वारा अग्निको दीपन करके सोंठ, मिरच, पीपल और जवाखार इनके कल्कको डालकर सिद्ध किये-हुए घृतको पीवे ॥ २३ ॥

मन्देऽग्निर्वेदना मन्दा गुरुस्तिमितकोष्ठता ।
सोत्क्लेशतारुचिर्यस्य स गुल्मी वमनोपगः ॥ २४ ॥

जिस गुल्मरोगीके मन्दाग्नि, अल्प पीडा, पेटमें भारीपन, देहमें आर्द्रता, कोष्ठबद्धता, वमनकी इच्छा होना और अरुचि आदि उपद्रव हो तो उसको वमन करानी चाहिये ॥ २४ ॥

मन्देऽग्नावनिले मूढे ज्ञात्वा सस्नेहमाशयम् ।
गुडिकाचूर्णनिर्यूहाः प्रयोज्याः कफगुल्मिनाम् ॥ २५ ॥

कफोत्पन्न गुल्मरोगमें अग्निकी मन्दता, वायुकी प्रबलता और आमाशयमें कफकी अधिकता होनेपर गोली, चूर्ण और काथादि सेवन करने चाहिये २५

तिलैरण्डातसीबीजसर्षपैः परिलिप्य च ।
श्लेष्मगुल्ममयःपात्रैः सुखोष्णैः स्वेदयेद्भिषक् ॥ २६ ॥

कफके गुल्ममें तिल, अण्डीके बीज, अलसी और सरसों इनको समान भाग लेकर खूब बारीक पीसकर पीडास्थानपर लेपकरे । फिर मन्दोष्ण लोहेके पात्रसे स्वेद देवे ॥ २६ ॥

यमानी चूर्णितं तक्रं विडेन लवणीकृतम् ।
पिबेत्सान्दीपनं वातमूत्रवर्चोऽनुलोमनम् ॥ २७ ॥

अजवायनका चूर्ण मट्ठेमें घोलकर और उसमें विरियासञ्चर नमक डालकर पीवे । इससे अग्नि दीपन होती है तथा वायु, मूत्र और मलको अनुलोमन करती है ॥ २७ ॥

द्वन्द्वज गुल्म-चिकित्सा ।

व्यामिश्रदोषे व्यामिश्रः सर्व एव क्रियाक्रमः ॥ २८ ॥

द्विदोषज (वातपित्त, कफ पित्त और वातश्लेष्म) गुल्ममें, दोनों दोषोंको नाश करनेवाली पूर्वोक्त औषधि सेवन करे। अर्थात् वातपित्तके गुल्ममें वातगुल्म और पित्तगुल्मकी, तथा पित्तश्लेष्म गुल्ममें, पित्तगुल्म और श्लैष्मिकगुल्मकी एवं वातश्लेष्मजन्य गुल्ममें, वातगुल्म और श्लैष्मिक गुल्मकी औषधि प्रयोग करनी चाहिये ॥ २८ ॥

सान्निपातिक गुल्म-चिकित्सा।

सन्निपातोद्भवे गुल्मे त्रिदोषघ्नो विधिर्हितः ॥ २९ ॥

तीनों प्रकारके दोषोंसे उत्पन्नहुए गुल्ममें, वात, पित्त और कफ गुल्मकी मिलीहुई औषधियों द्वारा त्रिदोषनाशक चिकित्सा करे ॥ २९ ॥

वचाविडाभयाशुण्ठीहिङ्गुकुष्ठाग्निदीप्यकाः।
द्वित्रिषट्चतुरेकाष्टसप्तपञ्चांशिकाः क्रमात् ॥ ३० ॥
चूर्णं मद्यादिभिः पीतं गुल्मानाहोदरापहम्।
शूलार्शःश्वासकासघ्नं ग्रहणीदीपनं परम् ॥ ३१ ॥

बच दो भाग, विरियासञ्चरनौन ३ भाग, हरड ६ भाग, सोंठ४भाग, हींग १ भाग, कूठ ८ भाग और चीतेकी जड ७ भाग एवं अजवायन ५ भाग लेवे। इन सबका एकत्र बारीक चूर्णकर मद्यके साथ सेवन करनेसे गुल्म, आनाह, उदररोग, शूल, बबासीर, श्वास, खाँसी और संग्रहणी आदिरोग दूर होते हैं और अग्नि दीपन होती है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

यमानीहिङ्गुसिन्धूत्थक्षारसौवर्चलाभयाः।
सुरामण्डेन पातव्यो गुल्मशूलनिषूदनः ॥ ३२ ॥

अजवायन, हींग, सैंधानमक, जवाखार, कालानमक और हरड ये प्रत्येक औषधि बराबर २ लेकर एकत्र पीसलेवे। इस चूर्णको नित्यप्रति सुरामण्डके साथ पान करनेसे गुल्म और शूलरोग नष्ट होते हैं ॥ ३२ ॥

हिङ्गुपुष्करमूलानि तुम्बुरूणि हरीतकी।
श्यामा विडं सैन्धवञ्च यवक्षारं महौषधम् ॥ ३३ ॥
यवक्काथोदकेनैतद्घृतभृष्टन्तु पाययेत्।
तेनास्य भिद्यते गुल्मः सशूलः सपरिग्रहः ॥ ३४ ॥

हींग, पोहकरमूल, धनियाँ, हर्र, काली निसोत, विडनौन, सैंधानोन, जवाखार और सोंठ इन सबको समानभाग मिश्रितकर चूर्ण करे। इस चूर्णको घीमें भूनकर जौके काथके साथ पान करे तो शूलसहितगुल्म समूल नष्टभ्रष्ट होताहै

रक्तगुल्मचिकित्सा ।

रौधिरस्य तु गुल्मस्य गर्भकालव्यतिक्रमे ।
स्निग्धस्विन्नशरीरायै दद्यात्स्निग्धं विरेचनम् ॥३५॥

रक्तजगुल्मरोगवाली स्त्रीके याद गर्भ होय तो जब गर्भका समय बीत जाय तब अर्थात् दस महीने पीछे रोगिणीको स्नेह (घृतादि) द्रव्य पान कराकर विधिपूर्वक स्वेद देवे फिर स्निग्ध, दस्तावर औषधिद्वारा विरेचन कराकर शरीरका संशोधन करे ॥ ३५ ॥

शताह्वाचिरबिल्वत्वग्दारुभार्गीकणोद्भवः ।
कल्कः पीतो हरेद्गुल्मं तिलक्काथेन रक्तजम् ॥ ३६ ॥

सोया, बडी करञ्जकी छाल, देवदारु, भारङ्गी और पीपल इनको समान भाग लेवे और कल्क बनाकर तिलोंके काथके साथ पीवे । इससे रक्तगुल्म शीघ्र नष्ट होता है ॥ ३६ ॥

तिलक्काथो गुडव्योषहिङ्गुभार्गीयुतो भवेत् ।
पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषिताम् ॥ ३७ ॥
सक्षारं त्र्यूषणं मद्यं प्रपिबेदस्रगुल्मिनी ॥ ३८ ॥

पुराना गुड, सोंठ, मिरच, पीपल, हींग और भारङ्गी इनको समानभाग लेकर पीसलेवे । यह चूर्ण तिलोंके काथमें मिलाकर रक्तगुल्मवाली स्त्रीको सेवन करना चाहिये । रजोधर्मके नष्ट होनेपर स्त्रियोंको जवाखार और त्रिकुटेका चूर्ण मदिराके साथ पानकरना चाहिये । इससे रक्तगुल्म नष्ट होता है तथा नष्ट पुष्प पुनः प्रकाशित होता है ॥ ३८ ॥

पलाशक्षारतोयेन सिद्धं सर्पिः पिबेच्च सा ।
उष्णैर्वा भेदयेद्भिन्ने विधिरसृग्दरो हितः ॥ ३९ ॥
न प्रभिद्येत यद्येवं दद्याद्योनिविशोधनम् ।
क्षारेण युक्तं पललं सुराक्षीरेण वा पुनः ॥
रुधिरेऽतिप्रवृत्ते तु रक्तपित्तहरीः क्रियाः ॥ ४० ॥

रक्तगुल्मवाली स्त्री पलाशके खारके जलसे सिद्ध कियेहुए घृतको पानकरे। अथवा रक्तगुल्मको उष्ण औषधि, सुरामण्ड या दन्तीगुडादिके द्वारा भेदन करे । जब भेदित होजाय तब प्रदरनाशकी विधि करनी चाहिये । यदि उक्त चिकित्साद्वारा गुल्म भेदित न हो और न रक्तस्राव हो तब तिलकुट और

पलाशका खार इनको जलमें या थूहरके दूधमें खरल करके बत्ती बनाकर योनिमें प्रवेश करे इससे रक्तस्राव होकर रक्तगुल्म नष्ट होताहै । एकबारमें अत्यन्त रुधिरस्राव होनेलगे तो तत्काल रक्तपित्तनाशक क्रिया करे॥३९॥४०॥

१–हिंग्वादिचूर्ण।

हिंगूग्रगन्धा विडशुण्ठ्यजाजी हरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम्।
भागोत्तरं चूर्णितमेतदिष्टं गुल्मोदराजीर्णविषूचिकासु॥४१॥

हींग १ भाग, वच २ भाग, विरियासञ्चरनमक ३ भाग, सोंठ ४ भाग, काला जीरा ५ भाग, हरड ६ भाग, पोहकरमूल ७ भाग और कूठ ८ भाग इन ओषधियोंको एकत्रकर बारीक चूर्ण करलेवे । यह चूर्ण उष्णजलके साथ सेवन करनेसे गुल्म, उदररोग, अजीर्ण और विषूचिकारोगको दूरकरता है ४१

२–हिंग्वादिचूर्ण।

हिङ्गु त्रिकटुकं पाठां हबुषामभयां शठीम्।
अजमोदाजगन्धे च तिन्तिडीकाम्लवेतसौ॥ ४२॥
दाडिमं पौष्करं धान्यमजाजीं चित्रकं वचाम्।
द्वौ क्षारौ लवणे द्वे च चव्यश्चैकत्र चूर्णयेत्॥ ४३॥
चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमनुपानेष्वनत्ययम्।
प्राग्भुक्तमथवा पेयं मद्येनोष्णोदकेन वा॥ ४४॥
पार्श्वहृद्वस्तिशूलेषु गुल्मे वातकफात्मके।
आनाहे मूत्रकृच्छ्रेषु गुदयोनिरुजासु च॥ ४५॥
ग्रहण्यर्शोविकारेषु प्लीहपाण्ड्वामयेऽरुचौ।
उरोविबन्धे हिक्कायां श्वासे कासे गलग्रहे॥ ४६॥
भावितं मातुलुङ्गस्य चूर्णमेतद्रसेन वा।
बहुशो गुटिकाःकार्याः कार्षिकाः स्युस्ततोऽधिकाः ४७

हींग, त्रिकुटा, पाढ, हाऊबेर, हरड, कचूर, अजमोद, अजवायन, इमली, अमलबेंत, अनार, पोहकरमूल, धनियाँ, कालाजीरा, चीता, वच, जवाखार, सज्जी, सैंधानमक, विडलवण और चव्य इन सबको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण कर लेवे । इस चूर्णको नित्यप्रति भोजनसे पूर्व, मदिरा या गरम जलके साथ सेवन करे । यह चूर्ण, वातकफजन्य गुल्म, पार्श्वशूल, हृदयशूल, वस्तिशूल, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, गुदाके रोग, योनिरोग, संग्रहणी, अर्श, प्लीहा, पाण्डु, अरुचि,

उरोग्रह, विबन्ध, हिचकी, श्वास, खाँसी और गलग्रहादिरोगोंको शीघ्र दूर करता है । इस चूर्णकी यदि गोली बनानी हों तो विजौरेनीम्बूके रसमें एक सप्ताह पर्यन्त खरल करके दो दो तोलेके गोलियाँ बनालेवे । चूर्णकी अपेक्षा यह गोली अधिक फलप्रद है ॥ ४२-४७ ॥

वचादिचूर्ण ।

वचा हरीतकी हिङ्गु सैन्धवं चाम्लवेतसम् ।
यवक्षारं यमानीश्च पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ४८ ॥
एतद्धि गुल्मनिचयं सशूलं सपरिग्रहम् ।
भिनत्ति सप्तरात्रेण वह्नेर्वृद्धिं करोति च ॥ ४९ ॥

वच, हर्र, हींग, सैंधानमक, अमलवेत, जवाखार, अजवायन इनके समान भाग चूर्णको लेकर गरम जलके साथ पीवे । यह चूर्ण शूलसहित सम्पूर्ण गुल्मोंको सात दिनमेंही समूल छिन्नभिन्न करता है और अग्निको बढाता है ॥

लवंगादि चूर्ण ।

लवङ्गदन्ती त्रिवृता यमानी शुण्ठी वचा धान्यकचित्रकाणि । फलत्रयं मागधिका च कट्वी द्राक्षा चवी गोक्षुरयावशूकम् ॥ ५० ॥ एलाजमोदा कुटजस्य बीजं विधाय चूर्णानि समान्यमीषाम् । खादेत्ततः पाणितलं हिताशी कोष्णं जलं चानुपिबेत्प्रयत्नात् ॥ ५१ ॥ निहन्ति गुल्मं सरुजं सदाहमर्शांसि शोथांश्च तथामवातान् । सर्वोदराण्येव चिरोत्थितानि चूर्णं लवङ्गादिकमाशु हन्ति ॥ ५२ ॥

लौंग, दन्ती, निसोत, अजवायन, सोंठ, वच, धनियाँ, चीता, त्रिफला, पीपल, कुटकी, दाख, चव्य, गोखुरू, जवाखार, छोटी इलायची, अजमोद और कुडेके बीज (इन्द्रजौ) इन सब ओषधियोंको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । प्रतिदिन इस चूर्णको दो तोले प्रमाण खाय और पछिसे मंदोष्ण जल पीवे । इसपर हितप्रद भोजन करे । यह चूर्ण उपद्रवयुक्त और दाहसहित गुल्म, बवासीर, सूजन, आमवात एवं बहुत पुराने सर्वप्रकार उदरविकारोंको तत्काल नष्ट करता है ॥ ५०-५२ ॥

कांकायनगुडिका ।

शठीं पुष्करमूलञ्च दन्तीं चित्रकमाढकीम् ।
शृङ्गबेरं वचाश्चैव पलिकानि समाहरेत् ॥ ५३ ॥
त्रिवृतायाः पलञ्चैकं कुर्यात्रीणि च हिङ्गुनः ।
यवक्षारपले द्वे तु द्वे पले चाम्लवेतसात् ॥ ५४ ॥
यमान्यजाजी मरिचं धन्याकञ्चेति कार्षिकम् ।
उपकुञ्च्यजमोदाभ्यां तथा चाष्टमिकामपि ॥ ५५ ॥
मातुलुङ्गरसे चैता गुडिकाः कारयेद्भिषक् ।
आसाञ्चैकां पिबेद्द्वे वा तिस्रो वातसुखाम्बुना ॥५६॥
आम्लैर्मद्यैश्च यूषैश्च घृतेन पयसाऽथवा ।
एषा काङ्कायनेनोक्ता गुडिका गुल्मनाशिनी ॥५७॥
अर्शोहृद्रोगशमनी कृमीणाञ्च विनाशिनी ।
गोमूत्रयुक्तं शमयेत्कफगुल्मं चिरोत्थितम् ॥ ५८ ॥
क्षीरेण पित्तगुल्मञ्च मद्यैरम्लैश्च वातिकम् ।
त्रिफलारसमूत्रैश्च नियच्छेत्सान्निपातिकम् ॥
रक्तगुल्मञ्च नारीणामुष्ट्रीक्षीरेण पाययेत् ॥ ५९ ॥

कचूर, पोहकरमूल, दन्ती, चीता, अडहर, सोंठ, वच और निसोत ये प्रत्येक एक एक पल और हींग ३ पल, जवाखार २ पल, अमलबेत २ पल तथा अजवायन, जीरा, कालीमिरच और धनियाँ ये प्रत्येक एक एक कर्ष, कालाजीरा और अजमोद ये प्रत्येक दो दो तोले लेवे। सबको एकत्र कूटपीसकर बिजोरेनीम्बूके रसमें यथाविधि खरल करके गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे एक या दो अथवा तीन गोली नित्यप्रति प्रातःसमय कुछ गरमजल, काँजी, मदिरा, मांसका यूष, घृत अथवा दूधके साथ भक्षण करे। कांकायन ऋषिकी कहीहुई यह गुडिका गुल्म, अर्श, हृदयरोग और कृमिरोगोंको नष्ट करनेवाली है। यह वटी गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे बहुत पुराने कफगुलमको, दूधके साथ पित्तके गुलमको एवं मदिरा या काँजीके साथ वातजन्यगुलमको, त्रिफलेके क्वाथ या गोमूत्रके साथ सन्निपातजनितगुलमको और ऊँटनीके दूधके साथ सेवन करनेसे स्त्रियोंके रक्तगुल्मरोगको शमन करती है ॥ ५३–५९ ॥

पञ्चाननरस।

पारदं शिखितुत्थञ्च गन्धं जैपालपिप्पली।
आरग्वधफलान्मज्जा वज्रीक्षीरेण भावयेत् ॥ ६० ॥
धात्रीरसयुतं खादेद्रक्तगुल्मप्रशान्तये।
चिञ्चादलरसञ्चानु पथ्यं दध्योदनं हितम् ॥ ६१ ॥

पारा, नीलाथोथा, शुद्धगन्धक, जमालगोटा, पीपल और अमलतासका गूदा ये सब द्रव्य समानभाग लेकर थूहरके दूधमें खरल करे। इसको प्रतिदिन दो दो रत्तीकी मात्रासे आमलोंके रसमें मिलाकर सेवनकरे और ऊपरसे इमलीके पत्तोंका स्वरस पान करे। इसपर दही और भात मिलाकर भक्षणकरे। इस रसके सेवन करनेसे स्त्रियोंका रक्तगुल्म शीघ्र नष्ट होता है ॥६०॥६१॥

शिखिवाडवरस।

मारितं ताम्रसूताभ्रं गन्धकं माक्षिकं समम्।
मर्दयेच्चित्रकद्रावैर्यवक्षारयुतं दिनम् ॥ ६२ ॥
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं नागवल्लीदलेन च।
वातगुल्महरः ख्यातो रसोऽयं शिखिवाडवः ॥ ६३ ॥

ताम्रभस्म, पारदभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक, सोनामाखी और जवाखार ये सब समानभाग लेवे। फिर सबको चीतेके रसमें एक दिनतक खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। नित्यप्रति एक गोली पानके रसके साथ सेवन करे। यह शिखिवाडवनामवाला रस वातजगुल्मरोगको बहुत जल्द खो देता है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

नागेश्वररस।

शुद्धसूतस्तथा गन्धो नागवङ्गौ मनःशिला।
निशादलञ्च त्रिक्षारं लौहं शुल्वं तथाभ्रकम् ॥ ६४ ॥
एतानि समभागानि स्नुहीक्षीरेण मर्दयेत्।
चित्रको वासको दन्ती क्वाथेनैकेन मर्दयेत् ॥ ६५ ॥
दिनैकन्तु प्रयत्नेन रसो नागेश्वरो मतः।
गुल्मप्लीहपाण्डुशोथमाध्मानञ्च विनाशयेत् ॥
भक्षयेन्माषमेकन्तु पर्णखण्डेन गुल्मवान् ॥ ६६ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, शीशा, वङ्ग, मैनसिल, हल्दीके पत्ते, जवाखार, सज्जी, सुहागा, लोहभस्म, ताँबा और अभ्रकभस्म इन सबको बराबर २ लेकर थूहरके दूधमें खरलकरे। फिर चीता, अडूसा और दन्ती इनमेंसे किसी एकके क्राथमें एक दिनतक अच्छेप्रकार खरल करे। इस नागेश्वररसको प्रतिदिन एकएक माशा प्रमाण पानके रसके साथ भक्षणकरे। इससे गुल्म, प्लीहा, पाण्डु, सूजन, अफारादिरोग दूर होते हैं ॥ ६४-६६ ॥

गुल्मकालानलरस।

पारदं गन्धकं तालं ताम्रकं टङ्कणं समम्।
तोलद्वयमितं भागं यवक्षारञ्च तत्समम् ॥ ६७ ॥
मुस्तकं पिप्पलीशुण्ठी मरिचं गजपिप्पली।
हरीतकी वचा कुष्ठं तोलैकं चूर्णयेत्सुधीः ॥ ६८ ॥
सर्वमेकीकृतं पात्रे भावना क्रियते ततः।
पर्पटं मुस्तकं शुण्ठ्यपामार्गं पापचेलिकम् ॥ ६९ ॥
तत्पुनश्चूर्णयेत्पश्चात्सर्वगुल्मनिवारणम्।
गुञ्जाचतुष्टयं खादेद्धरीतक्यनुपानतः ॥ ७० ॥
वातिकं पैत्तिकं गुल्मं श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्।
द्वन्द्वजं विनिहन्त्याशु वातगुल्मं विशेषतः ॥
श्रीमद्गहननाथेन निर्मितो विश्वसम्पदे ॥ ७१ ॥

पारा, गन्धक, हरताल, ताँबा, सुहागा और जवाखार ये प्रत्येक दो दो तोले, नागरमोथा, पीपल, सोंठ, मिरच, गजपीपल, हरड, बच और कूठ ये प्रत्येक ओषधि एक एक तोला लेवे। इन सबको एकत्र कूट पीसकर पित्त-पापडा, नागरमोथा, सोंठ, चिरचिटा और पाढ इनके क्राथमें भावना देवे। फिर धूपमें सुखाकर चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको नित्यप्रति चार चार रत्ती, हरडके साथ सेवन करे। यह गुल्मकालानलरस वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातज, द्विदोषज और विशेषकर वातगुल्मको तत्काल नष्ट करताहै। संसारकी भलाईके लिये श्रीमान् गहनानन्दनाथने इसको बनायाहै ॥ ६७-७१ ॥

बृहद्गुल्मकालानलरस।

अभ्रं लौहं रसं गन्धं टङ्कणं कटुकं वचाम्।
द्विक्षारं सैन्धवं कुष्ठं त्र्यूषणं सुरदारु च ॥ ७२ ॥

पत्रमेलां त्वचं नागं खादिरं सारमेव च ।
गृहीत्वा समभागेन श्लक्ष्णचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ७३ ॥
जयन्तीचित्रकोन्मत्तकेशराजदलं तथा ।
निष्पीड्य स्वरसं दत्त्वा भावयेत्कुशलो भिषक् ॥७४॥
चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेत्ततः ।
उत्थाय भक्षयेत्प्रातरनुपानं जलं पयः ॥ ७५ ॥
गुल्मं पञ्चविधं हन्ति यकृत्प्लीहोदराणि च ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथञ्चैव सुदारुणम् ॥ ७६ ॥
हलीमकं रक्तपित्तं मन्दाग्निमरुचिं तथा ।
ग्रहणीमार्द्रवं कार्श्यं जीर्णञ्च विषमज्वरम् ॥ ७७ ॥

अभ्रक, लोहा, पारा, गन्धक, सुहागा, कुटकी, वच, जवाखार, सज्जी, सैंधानमक, कूठ, सोंठ, मिरच, पीपल, देवदारु, तेजपात, इलायची, दारचीनी, नागकेशर और खैरसार इनको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर जयन्ती (जैतीघास), चीता, धतूरा और भाङ्गरा इनके पत्तोंके रसमें क्रमशः खरल करके चार २ रत्तीकी गोलियाँ बनावे । प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर इस रसकी एकएक गोली जल या दूधके साथ भक्षण करे । यह पाँचों प्रकारके गुल्म, यकृत्, तिल्ली, उदररोग, कामला, पाण्डुरोग, दारुणशोथ, हलीमक, रक्तपित्त, मन्दाग्नि, अरुचि, संग्रहणी, आर्द्रव, कृशता, जीर्णता और विषमज्वर इत्यादिरोगोंको दूर करता है ॥ ७२–७७ ॥

महागुल्मकालानलरस ।

गन्धकं तालकं ताम्रं तथैव तीक्ष्णलौहकम् ।
समांशं मर्दयेद्गाढं कन्यानीरेण यत्नतः ॥ ७८ ॥
संपुटं कारयेत्पश्चात् सन्धिलेपञ्च कारयेत् ।
ततो गजपुटं दत्त्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ ७९ ॥
द्विगुञ्जं भक्षयेद्गुल्मं शृङ्गवेरानुपानतः ।
सर्वगुल्मं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ८० ॥

शुद्धगन्धक, हरताल, ताम्रभस्म और तीक्ष्णलोह इनको समभाग लेकर घीग्वारके रसमें विधिपूर्वक खरलकरे । फिर इसको सम्पुटमें रख सन्धिस्थानोंको बन्दकरके गजपुटमें पकावे । जब स्वांगशीतल होजाय तब निकालकर

चूर्ण करलेवे। इसको प्रतिदिन दो दो रत्ती प्रमाण अदरखके रसके साथ खाय। जैसे सूर्य अन्धकारको हरताहै वैसेही यह रस सर्वप्रकारके गुल्मोंको अल्पकालमें ही नष्ट करता है ॥ ७८-८० ॥

गुल्मशार्दूलरस।

रसं गन्धं शुद्धलौहं गुग्गुलुः पिप्पलः पलम्।
त्रिवृता पिप्पली शुण्ठी शठी धान्यकजीरकम् ॥ ८१ ॥
प्रत्येकं पालिकं ग्राह्यं पलार्द्धं कानकं फलम्।
सञ्चूर्ण्य वटिका कार्या घृतेन वल्लमानतः ॥ ८२ ॥
वटीद्वयं भक्षयेच्चार्द्रकोष्णाम्बु पिबेदनु।
हन्ति प्लीहयकृद्गुल्मकामलोदरशोथकम् ॥ ८३ ॥
वातिकं पैत्तिकं गुल्मं श्लैष्मिकं रौधिरं तथा।
गहनानन्दनाथोक्तरसोऽयं गुल्मशार्दुलः ॥ ८४ ॥

शुद्धपारा, गन्धक, लोहा, गूगल, पीपलके वृक्षकी छाल, निसोत, पीपल, सोंठ, कचूर, धनियाँ और जीरा ये प्रत्येक एकएक पल तथा जमालगोटे दो तोले लेवे सबको एकत्र घृतमें खरलकरके तीन तीन रत्तीकी गोलियाँ प्रस्तुत कर नित्यप्रति दो गोली अदरखके रसके साथ खाय और ऊपरसे गरमजल पीवे। इससे प्लीहा, यकृत्, गुल्म, कामला, पेटकी पीडा, सूजन, वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक तथा रक्तजगुल्म नष्ट होते हैं। श्रीमान् गहनानन्दनाथ महाराजने इस गुल्म शार्दूलनामक रसको निर्मित किया है ॥ ८१-८४ ॥

सर्वेश्वररस।

ताम्रं दशगुणं स्वर्णात्स्वर्णपादं कटुत्रिकम्।
त्रिकटु त्रिफला तुल्या त्रिफलार्द्धमयोरजः ॥ ८५ ॥
अयसोऽर्द्धं विषञ्चैव सर्वं सम्मर्द्य यत्नतः।
सर्वेश्वरो रसो नाम गुल्मरौधिरनाशनः ॥ ८६ ॥

ताँवेकी भस्म १० तोले, सुवर्णभस्म एक तोला, त्रिकुटा ३ मासे त्रिफला ३ मासे, लोहभस्म १॥ मासा और विष पौन मासा लेवे। सबको एकत्र खरल कर गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन दो रत्तीभर खाय। इससे स्त्रियोंका रक्तगुल्म शीघ्र नष्ट होता है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

गुल्मवज्रिणीवाटिका।

रसगन्धकताम्रञ्च कांस्यं टङ्कणतालकम्।
प्रत्येकं पलिकं ग्राह्यं मर्दयेदतियत्नतः॥ ८७॥
तद्यथाग्निबलं खादेद्रक्तगुल्मप्रशान्तये।
निर्मिता नित्यनाथेन वटिका गुल्मवज्रिणी॥
कामलापाण्डुरोगघ्नी ज्वरशूलविनाशिनी॥ ८८॥

शुद्ध पारा, गन्धक, ताँबा, काँसा, सुहागा और हरताल ये प्रत्येक एकएक पल लेकर उत्तम रीतिसे खरल करे। फिर तीन तीन रत्तीकी गोलियाँ बनाले। अपनी अग्निका बलाबल विचार कर इन गोलियोंको सेवनकरे। श्रीमान् नित्यनाथने इस गुल्मवज्रिणीवटीको बनाया है। यह कामला, पाण्डु, ज्वर और शूलरोगको नष्ट करनेवाली है॥ ८७॥८८॥

रसायनामृतलौह।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं जीरकद्वयम्।
यमानीद्वयभूनिम्बं त्रिवृद्दन्ती च निम्बकम्॥ ८९॥
सर्वेषां कार्षिकं भागं सैन्धवं कर्षमभ्रकम्।
खण्डस्य षोडशपलं प्रस्थञ्च त्रिफलाजलम्॥ ९०॥
जम्बीराणां रसं दद्यात्पलषोडशकं तथा।
पाच्यं सर्वं प्रयत्नेन लौहं दत्त्वा पलद्वयम्॥ ९१॥
सिद्धे पाके पुनर्देयं घृतं पलचतुष्टयम्।
सर्वरोगेषु संयोज्य महामृतरसायनम्॥ ९२॥
गुल्मं पञ्चविधं हन्ति यकृत्प्लीहोदराणि च।
कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं जीर्णज्वरं तथा॥
रोगान्सर्वान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा॥ ९३॥

त्रिफलेका क्काथ १ प्रस्थ, जम्बीरीनींबूका रस १६ पल और खाँड १६ पल इन सबको एकत्र मिलाकर पकावे। पकते पकते जब गाढा होजाय तब इसमें त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडङ्ग, जीरा, कालाजीरा, अजवायन, अजमोद, चिरायता, निसोत, दन्ती, नीमकी छाल, सैंधानमक और अभ्रकभस्म इन सब ओषधियोंको दो दो तोले कुटापिसा चूर्ण तथा लोहभस्म ८ तोले और घृत १६ तोले डालकर यथाविधि पकावे। इस रसायनामृत लोहको

सब रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये । सूर्यनारायण जैसे अन्धकारके समूहको नष्ट करते हैं वैसेही यह औषधि पाँच प्रकारके गुल्म, जिगर, तिल्ली उदररोग, कमलवाय, पाण्डु, शोथ, जीर्णज्वर और अन्यान्य सर्वप्रकारके रोगोंको शीघ्र नाश करती है ॥ ८९-९३ ॥

दन्तीहरीतकी ।

जलद्रोणे विपक्तव्या विंशतिः पञ्च चाभयाः ।
दन्त्याः पलानि तावन्ति चित्रकस्य तथैव च ॥ ९४ ॥
तेनाष्टभागशेषेण पचेद्दन्तीसमं गुडम् ।
ताश्चाभयास्त्रिवृच्चूर्णात्तैलाच्चापि चतुःपलम् ॥ ९५ ॥
पलमेकं कणाशुण्ठ्योः सिद्धे लेहे च शीतलम् ।
क्षौद्रं तैलसमं दद्याच्चातुर्जातपलं तथा ॥ ९६ ॥
ततो लेहपलं लीढ्वा जग्ध्वा चैकां हरीतकीम् ।
सुखं विरिच्यते स्निग्धो दोषप्रस्थमनामयः ॥ ९७ ॥
प्लीहश्वयथुगुल्मार्शोहृत्पाण्डुग्रहणीगदाः ।
शाम्यन्त्युत्क्लेशविषमज्वरकुष्ठान्यरोचकाः ॥ ९८ ॥

पोटलीमें बँधीहुई हरड २५ पल, दन्तीकी जड २५ पल और चीतेकी जड २५ पल लेवे । सबको एकत्र ३२ सेर जलमें पकावे । जब पकते पकते ४ सेर जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे और पोटलीमेंसे हरडोंको निकालकर गुठली निकाल डाले । तदनन्तर गुड २५ पल, काढेमेंसे निकालीहुई सब हरड, निसोतका चूर्ण १६ तोले, तिलका तेल १६ तोले, पीपल और सोंठ चार चार तोले इन सबको पूर्वोक्त क्काथमें डालकर अच्छे प्रकार पकावे । जब पककर अवलेहकी समान गाढा होजाय तब उतारले शीतल होजानेपर उसमें शहद १६ तोले और चातुर्जातका चूर्ण चार चार तोले मिलादेवे । इसमेंसे प्रतिदिन चार तोले अवलेह और एक हरड सेवन करे तो इससे कोठा स्निग्ध होकर सुखपूर्वक दस्त होनेलगते हैं तथा प्लीहा, सूजन, गुल्म, बवासीर, हृदयरोग, पाण्डु, संग्रहणी, वमन, विषमज्वर, कुष्ठ और अरुचि आदिरोग शमन होते हैं ॥ ९४-९८ ॥

पञ्चपलकघृत ।

पिप्पल्याः पिचुरर्द्धार्द्धो दाडिमाद्द्विपलं पलम् ।
धान्यात्पञ्च घृताच्छुण्ठ्याः कर्षं क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ९९ ॥

सिद्धमेतद्घृतं सद्यो वातगुल्मं चिकित्सति ।
योनिशूलं शिरःशूलमर्शांसि विषमज्वरम् ॥ १०० ॥

पीपल ३ तोले, अनारके बीज ८ तोले, धनियाँ ४ तोले, घृत २० तोले, सोंठ २ तोले और दूध चौगुना लेवे । सबको एकत्रकर अच्छेप्रकार घृतको सिद्ध करे । यह घृत वातगुल्म, योनिशूल, शिरःशूल, अर्श और विषमज्वर इन रोगोंको शीघ्र दूर करता है ॥ ९९ ॥ १०० ॥

भल्लातकाद्यघृत ।

भल्लातकात्कल्ककषायपक्वं सर्पिः पिबेच्छर्करयाविमिश्रम् ।
तद्रक्तगुल्मं विनिहन्ति पीतं बलासगुल्मं मधुना समेतम् १०१

भिलावोंके कल्क और काथके द्वारा घृतको पकावे । जब पककर शीतल होजाय तब मिश्री डालकर पान करे । इससे रक्तगुलम तत्काल दूर होता है । और शहदके साथ पान करनेसे कफजन्य गुल्मरोग नष्ट होता है ॥ १०१ ॥

त्रायमाणाद्यघृत ।

जले दशगुणे साध्यं त्रायमाणा चतुःपलम् ।
पञ्चभागस्थितं पूतं कल्कैः संयोज्य कार्षिकैः ॥१०२॥
रोहिणीकटुकामुस्तत्रायमाणादुरालभाः ।
कल्कास्त्वामलकीवीराजीवन्तीचन्दनोत्पलैः ॥१०३॥
रसस्यामलकानाञ्च क्षीरस्य च घृतस्य च ।
पलानि पृथगष्टाष्टौ दत्त्वा सम्यग्विपाचयेत ॥१०४॥
पित्तगुल्मं रक्तगुल्मं विसर्पं पैत्तिकज्वरम् ।
हृद्रोगं कामलां कुष्ठं हन्यादेतद्घृतोत्तमम् ॥ १०५ ॥
"पलोल्लेखागते माने न द्वैगुण्यभिहेष्यते ।
चत्वारिंशत्पलन्तेन तोयं दशगुणं भवेत्॥"

त्रायमाणाको १६ तोले लेकर दसगुने जलमें पकावे । पकते पकते जब आधा जल बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर इन काथमें हरड, कुटकी, नागरमोथा, त्रायमाणा, धमासा, भुईआमला, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, चन्दन और नीलकमल इन प्रत्येक ओषधियोंका कल्क दो दो तोले एवं आमलोंका रस, दूध और घृत ये प्रत्येक आठ आठ पल डालकर अच्छे प्रकार पकावे। उत्तम प्रकारसे सिद्धहुए इस घृतको सेवन करनेसे पित्तगुलम, रक्तगुलम, विसर्प, पित्तका ज्वर, हृदयरोग, कामला, कुष्ठप्रभृतिरोग शीघ्र दमन होते हैं २-१०५

नाराचघृत ।

चित्रकं त्रिफला दन्ती त्रिवृता कण्टकारिका ।
स्नुहीक्षीरं विडङ्गानि घृतं दशममुच्यते ॥ १०६ ॥
एकैकस्य च कर्षेण घृतस्य कुडवं पचेत् ।
अस्य मात्रां पिबेत्काले पलार्द्धेन च सम्मिताम् ॥१०७
उदकमनुपिबेदुष्णं विरेकार्थं पिबेन्नरः ।
पिबेत्सार्पिर्यवागूं हि पेयां वा क्षीरसाधिताम् ॥१०८॥
रसेन जाङ्गलानां वा भोजयेन्मतिमान् भिषक् ।
वातगुल्ममुदावर्त्तं प्लीहार्शोब्रध्नकुण्डलम् ॥ १०९ ॥
ग्रहणीं दीपयेन्मन्दां कोष्ठदोषांश्च नाशयेत् ।
नाराचकमिदं सर्पिः ख्यातं नाराचसन्निभम् ॥११०॥

चीतेकी जड, त्रिफला, दन्ती, निसोत, कटेरी, थूहरका दूध और वायविडङ्ग इन ओषधियोंको एकएक कर्ष लेकर कल्क बनावे । फिर इस कल्कके द्वारा १६ तोले घृतको दो सेर जलमें विधिपूर्वक पकावे । नित्यप्रति प्रातःकाल इस घृतको दो तोलेकी मात्रासे गरमजलके साथ दस्त होनेके लिये सेवनकरे । इसपर घृतमिश्रितयवागू या दूधमें सिद्ध कीहुई पेया अथवा जांगलदेशके जीवोंके मांसरसके साथ भोजनकरे । यह नाराच घृत वातगुल्म, उदावर्त्त, प्लीहा, अर्श, ब्रध्नकुण्डलरोग, संग्रहणी, मन्दाग्नि और कोठेके सम्पूर्ण दोषोंको नाराच (बाण) के समान तत्क्षण नाश करता है ॥ १०६–११० ॥

हबुषाद्यघृत ।

हबुषाव्योषपृथ्वीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः ।
साजाजीपिप्पलीमूलदीप्यकैः पाचयेद्घृतम् ॥ ११ ॥
सकोलमूलकरसं सक्षीरदधिदाडिमम् ।
तत्परं वातगुल्मघ्नं शूलानाहविबन्धनुत ॥ १२ ॥
योन्यर्शोग्रहणीदोषश्वासकासारुचिज्वरान् ।
पार्श्वहृद्वस्तिशूलञ्च घृतमेतद्व्यपोहति ॥ १३ ॥

घृत दो सेर, सूखेबेरोंका क्वाथ दो सेर, सूखीमूलीका क्वाथ दो सेर, दूध दो सेर, दही दो सेर और अनारका क्वाथ दो सेर । एवं कल्कके लिये हाऊबेर, सोंठ, मिरच, पीपल, इलायची, चव्य, चीता, सैंधानोन, कालाजीरा, पीप-

लामूल और अजवायन इन ओषधियोंका चूर्ण आधसेर लेवे। फिर सबको एकत्रकर भलीभाँति घृतको सिद्धकरे। इस घृतको गरम दूधके साथ पानकरे। वातगुल्म, शूल, आनाह, विबन्ध, योनिरोग, बवासीर, संग्रहणी, श्वास, खाँसी, अरुचि, ज्वर, पार्श्व, हृदय और बस्ति इनके शूलको यह घृत नष्ट करताहै॥

क्षीरषट्पलकघृत।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः।
पालिकैः सयवक्षारैः सर्पिःप्रस्थं विपाचयेत्॥ १४॥
क्षीरप्रस्थेन तत्सर्पिर्हन्ति गुल्मं कफात्मकम्।
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम्॥ १५॥

घी १ प्रस्थ, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार इन ओषधियोंका कल्क चारचार तोले और दूध १ प्रस्थ लेवे। सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक घृतको पकावे। यह घृतको नियमानुसार सेवन करनेसे कफजन्यगुल्म, संग्रहणी, पाण्डु, प्लीहा, खाँसी ज्वरादि उपद्रव नष्ट होते हैं१४॥१५

धात्रीषट्पलकघृत।

धात्रीफलानां स्वरसैः षडङ्गं पाचयेद्घृतम्।
शर्करासैन्धवोपेतं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम्॥ १६॥

घृत १ प्रस्थ, आमलोंका रस ४ सेर एवं पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार इनका कल्क चार चार तोले लेवे। सबको ४ सेर जलमें मिलाकर यथाविधि घृतको सिद्ध करे। गुल्मरोगीको यह घृत शर्करा और सैंधानमक डालकर पान करनेसे विशेष उपकार करता है॥ १६॥

द्राक्षाद्यघृत।

द्राक्षामधुकखर्जूरं विदारीं सशतावरीम्।
परूषकाणि त्रिफलां साधयेत्पलसम्मिताम्॥ १७॥
जलाढके पादशेषे रसमामलकस्य च।
घृतमिक्षुरसं क्षीरमभयाकल्कपादिकम्॥ १८॥
साधयेत्तु घृतं सिद्धं शर्कराक्षौद्रपादिकम्।
प्रयोगात्पित्तगुल्मघ्नं सर्वपित्तविकारनुत॥ १९॥
"साहचर्यादिह पृथक् घृतादेः क्राथतुल्यता॥"

दाख, महुआ, खजूर, विदारीकन्द, शतावर, फालसे और त्रिफला, ये प्रत्येक चार चार तोले लेकर आठ सेर जलमें पकावे। जब पकते पकते दो

सेर जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इस क्वाथमें आमलोंका रस २ सेर, घृत २ सेर, ईखका रस २ सेर, दूध २ सेर और हरडका कल्क आधा सेर लेकर डालदेवे। सबोंको अच्छे प्रकार मिलाकर घृतको सिद्धकरे। जब सिद्ध होकर शीतल होजाय तब खाँड और शहद आध आध सेर मिला-देवे। इस घृतको सेवन करनेसे पित्तोत्पन्नगुल्म एवं अन्यान्य प्रकारके पित्तके सब विकार नाश होते हैं॥ १७-१९॥

गुल्मरोगमें पथ्य।

स्नेहः स्वेदो विरेकश्च वस्तिर्बाहुशिराव्यधः।
लङ्घनं वर्त्तिरभ्यङ्गः स्नेहः पक्के तु पाटनम्॥ १२०॥
संवत्सरसमुत्पन्नाः कलायारक्तशालयः।
खडः कुलत्थयूषश्च धन्वमांसरसं सुरा॥ २१॥
गवामजायाश्च पयो मृद्वीका च परूषकम्।
खर्जूरं दाडिमं धात्री नागरङ्गाम्लवेतसम्॥ २२॥
तक्रमेरण्डतैलञ्च लशुनं बालमुस्तकम्।
पत्तुरो वास्तुकं शिग्रु यवक्षारो हरीतकी॥ २३॥
रामठं मातुलुङ्गश्च त्र्यूषणं सुरभीजलम्।
यदन्नं स्निग्धमुष्णञ्च बृंहणं लघु दीपनम्॥
वातानुलोमनञ्चैव पथ्यं गुल्मे नृणां भवेत्॥ २४॥

स्नेह (घृत तैलादि) पान, स्वेददेना, विरेचन (जुल्लाब), पिचकारी लगाना, बाहोंकी अधःस्थ शिराको वेधना, लंघन, गुदामें बत्ती चढाना, तेलकी मालिश, स्निग्ध द्रव्योंका प्रयोग, पाटन (पकनेपर नस्तरसे चीरना), पुरानी मटर, शालिके चावल,खडयूष, कुलथीका यूष, धन्वदेशके जीवोंका मांसरस, मदिरा, गौका व बकरीका दूध, दाख,फालसे, खजूर, अनार, आमले, नारङ्गी, असलबेंत, मठ्ठा, अण्डीका तेल, लहसन, कच्चीमूली, शान्तिशाक, बथुआ, सेंहजनेकी फली, जवाखार, हरड, हींग, बिजौरानींबू, सोंठ, मिरच, पीपल, गोमूत्र एवं स्निग्ध, गरम, पुष्टिकर, हल्का, अग्निवर्द्धक और वायुको अनुलोमन करनेवाला भोजन ये सब पदार्थ गुल्मरोगीको हितकारी हैं॥ १२०-१२४॥

गुल्मरोगमें अपथ्य।

वातकारीणि सर्वाणि विरुद्धान्यशनानि च।
वल्लूरं मूलकं मत्स्यान्मधुराणि फलानि च॥ १२५॥

शुष्कशाकं शमीधान्यं विष्टम्भीनि गुरूणि च ।
अधोवातशकृन्मूत्रश्रमश्वासाश्रुधारणम् ॥
वमनं जलपानञ्च गुल्मरोगी परित्यजेत् ॥ १२६ ॥

गुल्मरोगी वायुवर्द्धक समस्त पदार्थ, विरुद्ध भोजन, सूखामांस, मूली, मछली, मीठे फल, सूखे शाक, समेके चावल, विष्टम्भकारक, भारी पदार्थ, तथा अपानवायु, मलमूत्र, परिश्रम, श्वास और आँसू इनके वेगको रोकना, वमन और जलपान करना इन सबको त्याग देवे, क्योंकि ये सब गुल्म-रोगमें अपथ्य हैं ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां गुल्मरोगचिकित्सा ॥

हृद्रोगकी चिकित्सा ।

वातोपसृष्टे हृदये वामयेत्स्निग्धमातुरम् ।
द्विपञ्चमूलीक्वाथेन सस्नेहलवणेन च ॥ १ ॥

वातजन्य हृदयरोगमें घृत-तैलादिके द्वारा स्निग्धशरीरवाले रोगीको दश मूलके क्वाथमें घृत, लवण और मैनफलका चूर्ण डालकर वमन करावे ॥ १ ॥

पिप्पल्येला वचा हिङ्गु यवक्षारोऽथ सैन्धवम् ।
सौवर्चलमथो शुण्ठी अजमोदा च चूर्णितम् ॥ २ ॥
फलधान्याम्लकौलत्थदधिमद्यासवादिभिः ।
पाययेच्छुद्धदेहञ्च स्नेहेनान्यतमेन वा ॥ ३ ॥

वमन विरेचनादिके द्वारा शुद्धहुए रोगीको पीपल, इलायची, वच, हींग, जवाखार, सैंधानमक, कालानमक, सोंठ और अजमोद इन औषधियोंके समान भाग चूर्णको एकत्र करके बिजौरेनीम्बूके रस, काँजी, कुलथीके यूष, दही, मद्य, आसव या अन्य घृतादिस्निग्धपदार्थोंके साथ मिश्रितकर पान करावे ॥२

नागरं वा पिबेदुष्णं कषायञ्चाग्निवर्द्धनम् ।
कासश्वासानिलहरं शूलहृद्रोगनाशनम् ॥ ४ ॥

सोंठके मन्दोष्ण क्वाथको पान करनेसे अग्नि बढती है तथा खाँसी, श्वास, वायुविकार, शूल और हृदयरोग दूर होताहै ॥ ४ ॥

श्रीपर्णीमधुकक्षौद्रसितागुडजलैर्वमेत ।
पित्तोपसृष्टे हृदये सेवेत मधुरैः शृतम् ॥
घृतं कषायांश्चोद्दिष्टान् पित्तज्वरविनाशनान् ॥ ५ ॥

पित्तोत्पन्न हृदयरोगमें कुम्भेरके फल मुलैठी इनके अर्द्धपक काथमें शहद, मिश्री और गुड मिलायकर रोगीको पानकराकर वमन करावे। एवं मधुर पदार्थोंके साथ सिद्धकियाहुआ घी और पित्तज्वरनाशक काथ सेवन करे॥५॥

शीताः प्रदेहाः परिसेचनानि तथा विरेको हृदि पित्त-दुष्टे। द्राक्षासिताक्षौद्रपरूषकैः स्याच्छुद्धे च पित्ताप-हमन्नपानम्॥ पिष्ट्वा पिबेद्वापि सिताजलेन यष्ट्याह्वयं तिक्तकरोहिणीञ्च॥ ६॥

पित्तज हृदयरोगमें चन्दनादि शीतल पदार्थोंका प्रलेप, शीतलजलका सेंचन और विरेचनादि क्रिया करे। एवं वमन विरेचनादिसे शरीरकी शुद्धि होजा-नेपर, दाख, मिश्री, शहद और फालसे इत्यादि द्रव्योंके साथ पित्तनाशक अन्न तथा पान सेवनकरे। मुलैठी और कुटकीको जलमें पीसकर मिश्री डालकर पान करे तो पित्तका हृद्रोग दूर होताहै॥ ६॥

अर्जुनस्य त्वचा सिद्धं क्षीरं योज्यं हृदामये।
सितया पञ्चमूल्या वा बलया मधुकेन वा॥ ७॥

अर्जुनवृक्षकी छाल २ तोले, दूध ८ तोले और जल ३२ तोले, सबको एकत्र कर पकावे। जब ८ तोले जल शेष रह जाय तब शीतल होजानेपर उस दूधको मिश्री मिलाकर पीवे। इसी प्रकार पञ्चमूल, खिरैंटी या मुलैठीके काथसे सिद्ध कियेहुए दूधको चीनी डालकर पीवे तो पित्तज हृदयरोग दूरहोय॥

घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा पिबन्ति चूर्णं ककुभत्वचो ये।
हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते॥ ८॥

जो हृदयरोगी घृत, दुग्ध अथवा गुडके शर्बतके साथ अर्जुनकी छालका चूर्ण सेवन करे तो वह हृदयरोग, जीर्णज्वर और रक्तपित्तरोगको नष्ट करके दीर्घजीवी होता है॥ ८॥

वचानिम्बकषायाभ्यां वान्तं हृदि कफोत्थिते।
वातहृद्रोगनुच्चूर्णं पिप्पल्यादिश्च पाययेत्॥ ९॥

कफजन्य हृदयरोगमें बच और नीमकी छालका काथ पान कराकर वमन करावे। फिर वातजहृदयरोगको नष्टकरनेवाला पिप्पल्यादिगणका चूर्ण सेवनकरे॥

त्रिदोषजे लङ्घनमादितः स्यादन्नञ्च सर्वेषु हितं विधेयम्।
हीनातिमध्यत्वमवेक्ष्य चैव कार्यं त्रयाणामपि कर्म शस्तम्॥

त्रिदोषजहृदयरोगमें पहले लंघन करावे, फिर त्रिदोषनाशक तथा हितकारी अन्न-पान देवे। इसमें तीनों दोषोंकी प्रबलता, समता अथवा हीनताको अच्छे प्रकार विचारकर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १० ॥

चूर्णं पुष्करजं लिह्यान्माक्षिकेन समायुतम् ।
हृच्छूलश्वासकासघ्नं क्षयहिक्कानिवारणम् ॥ ११ ॥

पोहकरमूलके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे तो हृदयशूल, श्वास, खाँसी, क्षय और हिचकी आदि रोग दूर होते हैं ॥ ११ ॥

तैलाज्यगुडाविपक्वं चूर्णं गोधूमं पार्थजं वापि ।
पिबति पयोऽनु च यः स भवेज्जितसकलहृदामयःपुरुषः १२

गेहूँ और अर्जुनकी छालके चूर्णको तेल, घी और गुडके द्वारा पकाकर दूधके साथ पीवे । इससे सर्वप्रकारका हृदयरोग नष्ट होता है ॥ १२ ॥

मूलं नागबलायास्तु चूर्णं दुग्धेन पाययेत् ।
हृद्रोगश्वासकासघ्नं ककुभस्य च वल्कलम् ॥ १३ ॥
रसायनं परं बल्यं वातजिन्मासयोजितम् ।
सम्वत्सरप्रयोगेण जीवेद्वर्षशतं ध्रुवम् ॥ १४ ॥

गंगेरनकी जडके चूर्णको दूधके साथ पान करे तो हृदयरोग, श्वास और खाँसी नष्ट होते हैं। एवं अर्जुनकी छालके चूर्णको यदि एक महिने तक सेवन करे तो अत्यन्त बल बढता है और वायुका प्रकोप शमन होताहै । यदि इस उत्तम रसायनको एक वर्षतक सेवन करे तो सौ वर्ष पर्यन्त जीवे ॥१४॥

हिंगूग्रगन्धा विडविश्वकृष्णा कुष्ठाभया चित्रकयावशूकम् ।
पिबेत्ससौवर्चलपुष्कराढ्यं यवाम्भसा शूलहृदामयघ्नम् ॥१५

हींग, वच, विडनमक, सोंठ, पीपल, कूठ, हरड, चीता, जवाखार, कालानमक और पोहकरमूल इन सबको समानभाग लेकर चूर्ण बनालेवे। प्रतिदिन इस चूर्णको जौके क्वाथके साथ सेवन करनेसे शूल और हृदयरोग नष्ट होताहै॥

दशमूलकषायस्तु लवणक्षारयोजितः ।
कासं श्वासञ्च हृद्रोगं गुल्मशूलञ्चनाशयेत् ॥ १६ ॥

दशमूलके काढेको, सेंधानमक और जवाखारके चूर्णके साथ सेवन करे तो खाँसी, श्वास, हृदयरोग, गुल्म तथा शूलरोग नष्ट होते हैं ॥ १६ ॥

पाठां वचां यवक्षारमभयां चाम्लवेतसम्।
दुरालभां चित्रकञ्च त्र्यूषणञ्च फलत्रयम्॥ १७॥
शठीं पुष्करमूलञ्च तिन्तिडीकं सदाडिमम्।
मातुलुङ्गस्य मूलानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥ १८॥
सुखोदकेन मद्यैर्वा प्लुतान्येतानि पाययेत्।
अर्शःशूलञ्च हृद्रोगं गुल्मञ्चाशु नियच्छति॥ १९॥

पाढ, वच, जवाखार, हरड, अमलवेत, धमासा, चीता, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, कचूर, पोहकरमूल, इमली, अनार और बिजौरे-नींबूकी जड ये सब समानभाग ले एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे। यह चूर्ण, कुछ गरमजल या मदिराके साथ पान करे तो बवासीर, शूल, हृद-यरोग और गुल्मरोगको तत्काल नष्ट करता है॥ १७-१९॥

पुटदग्धमश्मपिष्टं हरिणविषाणं सर्पिषा पिबतः।
हृत्पृष्ठशूलमुपशममुपयात्यचिरेण कष्टमपि॥ २०॥

हिरनके सींगको पुटपाककी विधिसे भस्मकर पत्थरके खरलमें पीसलेवे। फिर इस भस्मको घीमें मिलाकर सेवन करनेसे अत्यन्त पुराने और कष्टसाध्य हृदयरोग तथा पृष्ठशूल शीघ्र शमन होते हैं॥ २०॥

कृमिहृद्रोगिणं स्निग्धं भोजयेत्पिशितौदनम्।
दध्ना च पललोपेतं त्र्यहं पश्चाद्विरेचयेत्॥ २१॥
सुगन्धिभिः सलवणैर्योगैः साजाजिशर्करैः।
विडङ्गगाढं धान्याम्लं पाययेद्धितमुत्तमम्॥ २२॥

कृमिजानितहृदयरोगमें प्रथम रोगीको स्निग्ध करके मांसके साथ तीन दिनतक भात भक्षण करावे। फिर दहीके और तिलकुटके साथ तीन दिनतक मांसरस और भात भक्षण कराकर पश्चात् विरेचन देवे। तदनन्तर दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, सैंधानमक, जीरा और मिश्री इन ओषधियोंके समानभाग चूर्णके साथ वायविडङ्गका चूर्ण मिलीहुई धानोंकी काँजीको पान करे२१॥२२

कृमिजे च पिबेन्मूत्रं विडङ्गमयसंयुतम्।
हृदि स्थिताः पतन्त्येवमधस्तात्क्रिमयो नृणाम्॥
यवान्नं वितरेच्चास्मै सविडङ्गमतः परम्॥ २३॥

वायविडङ्गके चूर्णको और कूठके चूर्णको गोमूत्रमें मिलाकर पानकरनेसे हृदयमें स्थित कृमि स्वस्थानसे गिरकर मलके द्वारा निकल जाते हैं। इस प्रकार कृमि पतित होजानेपर रोगीको भोजनके लिये वायविडङ्गका चूर्ण डालकर जौका बना अन्न भक्षण करावे ॥ २३ ॥

रसायन।

रसगन्धाभ्रभस्मानि पार्थवृक्षत्वगम्बुना।
एकविंशतिधा घर्म्मे भावितानि विधानतः ॥ २४ ॥
माषमात्रमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत्।
वातजं पित्तजं श्लेष्मसम्भूतं वा त्रिदोषजम् ॥
कृमिजश्चापि हृद्रोगं निहन्त्येव न संशयः ॥ २५ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक और अभ्रकभस्म इनको समानभाग लेवे और सबको एकत्रकर अर्जुनवृक्षकी छालके काथमें २१ वार भावना देवे। फिर धूपमें सुखाकर सबको बारीक पीसलेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल १ मासे चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे तो वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और कृमिजनित हृदयरोग निस्सन्देह नष्ट होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

नागार्जुनाभ्र।

सहस्रपुटनैः शुद्धं वज्राभ्रमर्जुनत्वचः।
सत्त्वैर्विमर्दितं सप्तदिनं खल्ले विशोषितम् ॥ २६ ॥
छायाशुष्का वटी कार्या नाम्नेदमर्जुनाह्वयम्।
हृद्रोगं सर्वशूलार्शोहृल्लासच्छर्द्यरोचकान् ॥ २७ ॥
अतीसारमग्निमान्द्यं रक्तपित्तं क्षतक्षयम्।
शोथोदराम्लपित्तञ्च विषमज्वरमेव च ॥
हन्त्यन्यानपि रोगांश्च बल्यं वृष्यं रसायनम् ॥ २८ ॥

हजार पुटों द्वारा शुद्ध कीहुई वज्राभ्रकभस्मको अर्जुनवृक्षकी छालके काथमें सात दिनतक उत्तम प्रकारसे खरल करके छायामें सुखाकर गोलियाँ बनालेवे। यह नागार्जुन नामकी अभ्रक हृदयरोग, सर्वप्रकारके शूल, अर्श, हृल्लास, वमन, अरुचि एवं अन्य नानाप्रकारकी व्याधियोंको शीघ्र नष्ट करती है तथा बल्य, पुष्टिकर और रसायन है ॥ २६–२८ ॥

हृदयार्णवरस।

सूतार्कगन्धकं क्वाथे वराया मर्दयेद्दिनम्।

काकमाच्या वटीं कृत्वा चणमात्राश्च भक्षयेत ॥
हृदयार्णवनामायं हृद्रोगदलनो रसः ॥ २९ ॥

शुद्धपारा, ताँवा और शुद्ध गन्धक इनको समानभाग लेकर त्रिफलेके काथ और मकोयके रसमें एक दिनतक विधिपूर्वक खरल करके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। नित्यप्रति एक एक गोली सेवन करनेसे हृदयार्णवनामवाला यह रस हृदयरोगको नष्ट करताहै ॥ २९ ॥

पञ्चाननरस।

सूतगन्धौ द्रवैर्धात्र्या मर्दयेद्द्रोस्तनीद्रवैः।
यष्टिखर्ज्जूरसलिलैर्दिनश्च परिमर्दयेत ॥
धात्रीचूर्ण सिताश्चानु पिबेद्धृद्रोगशान्तये ॥ ३० ॥

पारे और गन्धकको बराबर बराबर लेकर आमलोंके रसमें खरल करके दाख, मुलैठी और खजूरके काथमें एक दिनतक यथाविधि खरल करे। इस रसको प्रतिदिन दो दो रत्तीभर, आमलोंके चूर्ण और मिश्रीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे हृदयरोग शान्त होताहै ॥ ३० ॥

प्रभाकरवटी।

माक्षिकं लौहमभ्रञ्च तुगाक्षीरं शिलाजतु।
क्षिप्त्वा खल्लोदरे पश्चाद्भावयेत्पार्थवारिणा ॥ ३१ ॥
वल्लद्वयमितां कुर्याद्वटीं छायाविशोषिताम्।
प्रभाकरवटी सेयं हृद्रोगान्निखिलाञ्जयेत् ॥ ३२ ॥

सोनामाखी, लोहेकी भस्म, अभ्रकभस्म, वंशलोचन और शिलाजीत ये सब औषधि समानभाग लेवे। सबको खरलमें रख अर्जुनवृक्षकी छालके काथको डालकर अच्छे प्रकार खरलकरे। फिर छायामें सुखाकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह प्रभाकरवटी यथानियम सेवन करनेसे समस्त हृदयसम्बन्धी रोगोंकी दूर करती है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

चिन्तामणिरस।

पारदं गन्धकश्चाभ्रं लौहं वङ्गं शिलाजतु।
समंसमं गृहीत्वा च स्वर्ण सुताङ्घ्रिसम्मितम् ॥ ३३ ॥
स्वर्णस्य द्विगुणं रौप्यं सर्वमेकत्र मर्दयेत्।
चित्रकस्य द्रवेणापि भृङ्गराजाम्भसा ततः ॥ ३४ ॥

पार्थस्याथ कषायेण सप्तकृत्वो विभावयेत् ।
ततो गुञ्जामिताः कुर्याद्वटीश्छायाप्रशोषिताः ॥३५॥
एकैकां दापयेदासां गोधूमक्वाथवारिणा ।
हृद्रोगान्निखिलान्हन्ति व्याधीन्फुस्फुसजानपि ॥३६॥
प्रमेहान्विंशतीन्श्वासान्कासानपि सुदुस्तरान् ।
बलपुष्टिकरो हृद्यो रसश्चिन्तामणिः स्मृतः ॥ ३७ ॥

शुद्धपारा, गन्धक, अभ्रक, लोहा, वङ्ग और शिलाजीत ये प्रत्येक एक एक तोला एवं सुवर्णभस्म तीन मासे चाँदीके भस्म ६ मासे लेवे सबको एकत्रकर चीता, भाँगरा और अर्जुनवृक्षकी छालके काथमें ७ बार खरल करके छायामें सुखाकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इसमेंसे प्रतिदिन प्रातः-समय एक एक गोली, गेहूँके काथके साथ सेवन करे । यह चिन्तामणि रस सम्पूर्ण हृदयरोग, फुस्फुसजन्यरोग बीस प्रकारके प्रमेह, श्वास, दुस्तर खाँसी अन्य सर्वप्रकारके रोगोंको तत्काल नष्ट करताहै एवं बल और पुष्टिकारक तथा हृदयको अत्यन्त हितकारी है ॥ ३३–३७ ॥

विश्वेश्वररस ।

स्वर्णाभ्रलोहवङ्गानां रसगन्धकयोरपि ।
वैक्रान्तस्य च संगृह्य भागांस्तोलकसम्मितान् ॥३८॥
कर्पूरसलिलेनाथ भावयित्वा यथाविधि ।
रक्तिकैकप्रमाणेन विदध्याद्वटिकास्ततः ॥ ३९ ॥
अयं विश्वेश्वरो नाम रसः फुस्फुसजान्गदान् ।
हृद्रोगांश्च जयेत्सर्वान् संशयोऽत्र न विद्यते ॥ ४० ॥

सोना, अभ्रक, लोहा, वङ्ग, शुद्धपारा, शुद्धगन्धक और वैक्रान्तमणि इन सब द्रव्योंकी भस्मको एक एक तोला लेकर कपूरके जलमें विधिपूर्वक खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । प्रतिदिन नियमानुसार सेवन करनेसे यह विश्वेश्वरनामक रस फुस्फुससे उत्पन्नहुए रोगों और समस्त हृदयरोगोंको शीघ्र जीतता है इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ३८–४० ॥

शङ्करवटी ।

रसस्य भागाश्चत्वारो बलेरष्टौ तथ मताः ।
त्रयो लौहस्य नागस्य द्वावित्येकत्र मर्दयेत् ॥ ४१ ॥

भावयेत्काकमाच्याश्च चित्रकस्यार्द्रकस्य च।
स्वरसेन जयन्त्याश्च वासाया बिल्वपार्थयोः॥ ४२॥
ततो गुञ्जाद्वयमितां विदध्याद्वटिकां भिषक्।
एकैकां दापयेदासामीषदुष्णेन वारिणा॥ ४३॥
जयेदियं फुप्फुसजान् रोगान्हृदयसम्भवान्।
जीर्णज्वरं तथा घोरं प्रमेहानपि विंशतिम्॥ ४४॥
कासश्वासामवातांश्च ग्रहणीमपि दुस्तराम्।
वटी श्रीशङ्करप्रोक्ता बलपुष्टिविवर्द्धिनी॥ ४५॥

शुद्धपारा ४ तोले, शुद्धगन्धक ८ तोले, लोहा ३ तोले और शीशा दो तोले इन सबको एकत्रितकर मकोय, चीता, अदरख, जयन्ती, अडूसा, बेलकी छाल और अर्जुनवृक्षकी छालके काथमें यथाक्रम भावना देकर अच्छी तरह खरल करे। फिर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे हररोज एकएक गोली सुखोष्णजलके साथ सेवन करे। यह वटी फुस्फुसजन्यरोग, हृदयगतरोग, पुराना ज्वर, वीसों प्रमेह, खाँसी, श्वास, आमवात और दुस्तर संग्रहणी आदि रोगोंको तत्काल नष्ट करती है। यह वटी श्रीशङ्कर भगवान्‌ने की है। यह अतिबलकारक और पुष्टिकर है॥ ४१-४५॥

कल्याणसुन्दररस।

सिन्दूरमभ्रतारञ्च ताम्रं हेमं च हिङ्गुलम्।
सर्वं खल्लतले क्षिप्त्वा मर्दयेद्वह्निवारिणा॥ ४६॥
हस्तिशुण्डाम्भसा पश्चाद्भावयित्वा च सप्तधा।
गुञ्जामात्रां वटीं कृत्वा कोष्णतोयेन दापयेत्॥ ४७॥
उरस्तोयञ्च हृद्रोगं वक्षोवातमुरोऽस्रकम्।
फौप्फुसान्हन्ति रोगांश्च रसः कल्याणसुन्दरः॥ ४८॥

रससिन्दूर, अभ्रक, चाँदी, ताँबा, सोना और हिंगुल इन सबको समान भाग लेकर खरलमें रक्खे, फिर उसमें चीतेका काथ डालकर घोटे पश्चात् हाथीशुण्डाके काथकी सात वार भावना देकर उत्तमप्रकारसे घोटे तदनन्तर एक एक रत्तीकी गोली बनाकर रखले। प्रतिदिन मन्दोष्ण जलके साथ एकएक गोली भक्षण करे तो उरस्तोय, हृदयरोग, वक्षःस्थलकी वात, उरोरक्तस्राव तथा फुफ्फुससम्बन्धी अनेक प्रकारके रोग नष्ट होते हैं॥ ४६-४८॥

वल्लभघृत ।

मुख्यं शतार्द्धञ्च हरीतकीनां सौवर्चलस्यापि पलद्वयञ्च ।
पक्वं घृतं वल्लभकेति नाम्ना हृद्रोगशूलोदरमारुतघ्नम् ॥४९॥

बीजरहित उत्तम हरड ५० और कालानमक ८ तोले इन दोनोंके साथ पकायेहुए घृतको पान करनेसे हृदयरोग, शूल, उदररोग और वातरोग दूर होते हैं । यह घृत वल्लभनामसे प्रसिद्ध है ॥ ४९ ॥

श्वदंष्ट्राद्यघृत ।

श्वदंष्ट्रोशीरमञ्जिष्ठा बला काश्मर्यकत्तृणम् ।
दर्भमूलं पृथक्पर्णी पलाशर्षभकौ स्थिरा ॥ ५० ॥
पलिकान्साधयेत्तेषां रसे क्षीरे चतुर्गुणे ।
कल्कैः स्वगुप्तर्षभकमेदाजीवीन्तजीवकैः ॥ ५१ ॥
शतावर्यृद्धिमृद्वीकाशर्कराश्रावणीबिसैः ।
प्रस्थं सिद्धो घृताद्वातपित्तहृद्रोगशूलनत ॥ ५२ ॥
मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शःश्वासकासक्षयापहः ।
धनुःस्त्रीमद्यभाराध्वखिन्नानां बलमांसदः ॥ ५३ ॥

गोखुरू, खस, मंजीठ, खिरैंटी, कुम्भेर, सुगन्धित तृण, कुशाकी मूल, पृश्निपर्णी, ढाककी छाल, ऋषभक और शालपर्णी इनको पृथक् पृथक् चार चार तोले लेकर सबसे चौगुने जलमें पकावे । पकते पकते जब चतुर्थांश जल रहे तब उतारकर छानलेवे । फिर इस क्वाथमें रससे चौगुना दूध एवं कौंछके बीज, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, जीवक, शतावर, ऋद्धि, दाख, खांड, गोरखमुण्डी और कमलकन्द इन सब औषधियोंका मिलाहुआ चूर्ण एक सेर तथा घृत चार सेर डालकर उत्तमप्रकारसे घृतको सिद्धकरे। यह घृत वातज-पित्तज-हृदयरोग, शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, बवासीर, श्वास, खाँसी और क्षय इत्यादि विकारोंको दूर करताहै और धनुषके भारसे अधिक स्त्रीप्रसङ्गसे अथवा अधिक मद्यपानके करने किंवा बोझ उठानेसे और अधिकरास्ता चलनेसे क्षीणहुए पुरुषोंके शरीरमें बल तथा मांसको बढाता है ॥ ५०-५३ ॥

बलाद्यघृत ।

घृतं बलानागबलार्जुनाम्बु सिद्धं सयष्टीमधुकल्कपादम् ।
हृद्रोगशूलक्षतरक्तपित्तकासानिलासृक् शमयत्युदीर्णम् ५४॥

खिरैंटी, गंगेरन और अर्जुनकी छालके काथ एवं मुलैठीके कल्कके द्वारा घृतको सिद्धकरे । इस घृतको पान करनेसे हृदयरोग, शूल, क्षत, रक्तपित्त, खाँसी और दारुण वातरक्तरोग नष्ट होताहै ॥ ५४ ॥

अर्जुनघृत ।

पार्थस्य कल्कस्वरसेन सिद्धं शस्तं घृतं सर्वहृदामयेषु ॥

अर्जुनवृक्षकी छालके कल्क और काथके द्वारा सिद्ध कियेहुए घृतको सेवन करनेसे सर्वप्रकारके हृदयरोग नष्ट होते हैं ॥

हृदयरोगमें पथ्य ।

स्वेदो विरेको वमनञ्च लंघनं वास्तिर्विलेपी चिररक्तशालयः । मृगाद्विजा जाङ्गलसंज्ञयान्विता यूषा रसा मुद्गकुलत्थसम्भवाः ॥ ५५ ॥ रागाः खडाः काम्बालिकाश्च खाडवा भव्यं पटोलं कदलीफलान्यपि । पुराणकूष्माण्डरसालदाडिमं शम्याकशाकं नवमूलकान्यपि ॥ ५६ ॥ एरण्डतैलं गगनाम्बु सैन्धवं द्राक्षापि तक्रञ्च पुरातनो गुडः। शुण्ठी यमानी लशुनं हरीतकी कुष्ठञ्च कुस्तुम्बुरु कृष्णमार्द्रकम् ॥ ५७ ॥ सौवीरशुक्तं मधु वारुणीरसः कस्तूरिका चन्दनकं प्रपाणकम् । ताम्बूलमप्येष गणः सखाभवं मर्त्यस्य हृद्रोगनिपीडितस्य ॥५८॥

स्वेदक्रिया, विरेचन, वमन, लङ्घन, वस्तिप्रयोग और प्रलेप करना, पुराने शालिके चावल, जङ्गली मृगोंके मांसका रस, मूँग और कुलथीका यूष, अनार, दाखयुक्त मूँगका यूष, खडयूष, काम्वलिक (काँजी विशेष), खाडव (सुगन्धित द्रव्योंसे सिद्ध खाद्यविशेष), कमरख, परवल, केला, पुरानापेठा, पकाआम, अनार, अमलतासका शाक और कच्ची मूली इनका भोजन, अण्डीका तेल, वर्षाका जल, सैंधानमक, दाख, मट्ठा, पुरानागुड, सोंठ, अजवायन, लहसुन, हरड, कूठ, धनियाँ, कालीमिरच, अदरख,सौवीरनामक काँजी,शहद, वारुणीमदिरा, कस्तूरी, चन्दन, शर्वत और ताम्बूल ये सब वस्तुयें हृदयरोगसे पीडित मनुष्यके लिये अत्यन्त हितकारी है ॥ ५५-५८ ॥

हृदयरोगमें अपथ्य ।

तृट्छर्दिमूत्रानिलशुक्रकासोद्गारश्रमश्वासविडस्रुवेगान् । सह्याद्रिविन्ध्याद्रिनदीजलानि मेषीपयो दुष्टजलंकषायम५९

विरुद्धमुष्णं गुरुतिक्तमम्लं पत्रोत्थशाकानि चिरन्तनानि ।
क्षारं मधूकानि च दन्तकाष्ठं रक्तस्रुतिं हृद्गदवांस्त्यजेच्च ॥६०

तृषा, वमन, मूत्र, अपानवायु, वीर्य, खाँसी, डकार, श्रमजन्य श्वास, मल और आसूँ इनके वेगको रोकना, एवं सह्यपर्वत और विन्ध्याचलसे निकली नदियोंके जलका सेवन, भेडका दूध, दूषित जल, कषैले, विरुद्ध, गरम, भारी, कडुवे और खट्टे पदार्थ, बहुत पुराने पत्रशाक, खारपदार्थ, महुआ, दन्तधावन तथा रक्तमोक्षण (फस्त खुलवाना) इन सबको हृदयरोगी शीघ्र त्याग देवे ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां हृद्रोगचिकित्सा ॥

मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहवस्तिस्वेदोपनाहोत्तरवस्तिसेकान् ।
स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान्दद्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥ १

वायुसे उत्पन्नहुए मूत्रकृच्छ्रमें रोगीको वायुनाशक तैलादिकी मालिस, स्नेहद्रव्योंका पान, निरूहवस्ति, स्वेदप्रदान, प्रलेप, उत्तरवस्ति और सेंक करे, एवं वातनाशक शालपर्णी आदि औषधियोंसे पकायेहुए मांस रस देवे ॥ १ ॥

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा ग्रैष्मो विधिर्वस्तिपयोविरेकः
द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्घृतैश्च कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कार्याः ॥ २ ॥

पित्तजनितमूत्रकृच्छ्रमें रोगीके शरीरपर जल छिडकना, शीतलजलमें घुसकर स्नान करना, चन्दन, खसादि शीतल पदार्थोंका प्रलेप, ग्रीष्मकालके अनुसार शीतल उपचार करना, पिचकारी लगाना, दुग्धपान, विरेचन (जुल्लाब) देना और दाख, विदारीकन्द तथा ईखके रसके साथ घृतपान करना इत्यादि सब कृत्य करने चाहिये ॥ २ ॥

क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानं स्वेदो यवान्नं वमनं निरूहाः ।
तक्रं सतिक्तौषधसिद्धतैलमभ्यङ्गपानं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ३ ॥

कफजन्यमूत्रकृच्छ्रमें क्षार, गरम तथा तीक्ष्ण औषधि, अन्नपान, पसीना निकलवाना, जौके आटेका बना भोजन, वमन, निरूहवस्ति, मट्ठा, कडुवी और उष्ण औषधियोंसे पकायेहुए तेलको मालिश अथवा पान करावे ॥ ३ ॥

सर्वं त्रिदोषप्रभवे च वायोः स्थानानुपूर्व्या प्रसमीक्ष्य
कार्यम् । त्रिभ्योऽधिके प्राग्वमनं कफे स्यात्पित्ते विरेकः
पवने च वस्तिः ॥ ४ ॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्न मूत्रकृच्छ्रमें वायुके स्थानसे लेकर कफपर्यन्त जो विधि कही हैं उन सबोंको मिलाकर इसमें चिकित्सा करे। विशेष करके दोषोंकी अवस्थाको देखकर मिश्रित उपचार करे। त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्रमें कफकी अधिकता होनेपर वमन, पित्ताधिक्यमें विरेचन वातकी आधिक्यमें वस्ति देवे॥४॥

तथाभिघातजे कुर्य्यात्सद्यो व्रणचिकित्सितम्।
मूत्रकृच्छ्रे सदा कार्या वातरोगहरी क्रिया॥
स्वेदचूर्णक्रियाभ्यङ्गवस्तयः स्युः पुरीषजे॥ ५॥

चोट आदिके लगनेसे प्रकटहुए मूत्रकृच्छ्रमें शीघ्रही व्रणरोगकी समान समस्त वातजमूत्रकृच्छ्रनाशक चिकित्सा करे। मलके रोकनेसे जो मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न हुआ होय तो स्वेदप्रयोग, या विरेचन औषधियोंका चूर्ण नलीमें भरकर गुदामें प्रवेशकरना, तैलादिकी मालिश अथवा वस्तिकर्म करे॥ ५॥

क्रिया हिता त्वश्मरिशर्करायां या मूत्रकृच्छ्रे कफमारुतोत्थे।

वायु और कफसे जो मूत्रकृच्छ्र हुआ हो तो अश्मरी तथा शर्करारोगमें कहीहुई विधिके अनुसार चिकित्सा करे॥

लेह्यं शुक्रविबन्धोत्थे शिलाजतु समाक्षिकम्।
वृष्यैर्बृंहितधातोश्च विधेया प्रमदोत्तमा॥ ६॥

वीर्यके रोकनेसे प्रादुर्भूत मूत्रकृच्छ्रमें शिलाजीतको शहदके साथ मिलाकर चाटे। अथवा पुष्टिकारक औषधियोंको सेवन करनेसे वीर्यके बढनेके कारण उत्पन्नहुए मूत्रकृच्छ्रमें सुन्दर स्त्रीके साथ प्रसंग करे॥ ६॥

यन्मूत्रकृच्छ्रे विहितञ्च पैत्ते तत्कारयेच्छोणितमूत्रकृच्छ्रे॥

रुधिरसहित मूत्रआनेवाले मूत्रकृच्छ्रमें पित्तजमूत्रकृच्छ्रमें कही हुई विधिके अनुसार चिकित्सा करे।

कूष्माण्डकरसं पीत्वा सयवक्षारशर्करम्।
मूत्रकृच्छ्राद्विमुच्येत शीघ्रञ्च लभते सुखम्॥ ७॥

पेठेके रसको जवाखार और मिश्री मिलाकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग शीघ्र दूर होकर आनन्द प्राप्त होता है॥ ७॥

गुडेनामलकं वृष्यं श्रमघ्नं तर्पणं परम्।
पित्तासृग्दाहशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम्॥ ८॥

गुडके साथ आमलोंका चूर्ण सेवन करनेसे वीर्यकी वृद्धि, श्रमनाश, अत्यन्त तृप्ति एवं रक्तपित्त, दाह, शूल और मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है॥ ८॥

एर्वारुबीजं मधुकञ्च दार्वीं पैत्ते पिबेत्तण्डुलधावनेन ।
दार्वीं तथैवामलकीरसेन समाक्षिकां पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रे॥९

पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रमें ककडीके बीज, मुलैठी और दारुहल्दी इनके चूर्णको चावलोंके जलके साथ पान करे । अथवा आमलोंके रसमें दारुहल्दीका चूर्ण और शहद डालकर पीनेसे पित्तज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ ९ ॥

सितातुल्यो यवक्षारः सर्वकृच्छ्रविनाशनः ।

जवाखार और मिश्री समान भाग मिलाकर सेवन करनेसे सर्वप्रकारके मूत्रकृच्छ्र नाश होते हैं ।

सूर्यावर्त्तभवं बीजं श्लक्ष्णं दृषदि पेषितम् ।
व्युषितोदकसंपीतं कृच्छ्रं हन्ति सुदारुणम् ॥ १० ॥

हुलहुलके बीजोंको शिलापर खूब बारीक पीसकर बासी जलके साथ पीनेसे दारुण मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै ॥ १० ॥

मधुना च यवक्षारं मूत्रकृच्छ्राश्मरीहरम् ।

शहद जवाखार एकत्र मिलाकरसेवनकरे तो मूत्रकृच्छ्र एवं अश्मरी जाय ॥

सगन्धकं यवक्षारं शर्करातक्रतः पिबेत् ।
मूत्रकृच्छ्राद्विमुच्येत साध्यासाध्यान्न संशयः ॥ ११ ॥

शुद्धगन्धक, जवाखार और चीनी इनको समानभाग ले मठ्ठेमें मिलाकर पीवे तो साध्य व असाध्य सर्वप्रकारका मूत्रकृच्छ्र निश्चय दूर होताहै ॥११॥

नारिकेलोद्भवं पुष्पं तण्डुलोदकसंयुतम् ।
सरक्तं मूत्रकृच्छ्रं हि पीतं हन्ति न संशयः ॥ १२ ॥

नारियलके फूलोंको चावलोंके जलके साथ पीसकर सेवन करनेसे रक्तसहित होनेवाला मूत्रकृच्छ्र निस्संदेह दूर होताहै ॥ १२ ॥

क्वाथं गोक्षुरबीजस्य यवक्षारयुतं पिबेत् ।
मूत्रकृच्छ्रं तथा रक्तं पीतं शीघ्रं निवारयेत् ॥ १३ ॥

गोखुरूके बीजोंके क्वाथमें जवाखारका चूर्ण मिश्रितकर पीवे तो मूत्रकृच्छ्र और रक्तस्राव तत्काल नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

विदारी गोक्षुरं यष्टी केशरञ्च समं पचेत् ।
तत्कषायं पिबेत्क्षौद्ररसभस्मयुतं पुनः ॥
मूत्रकृच्छ्रं हरेत्सर्वं सप्ताहात्पित्तसम्भवम् ॥ १४ ॥

विदारीकन्द, गोखुरू, मुलैठी और नागकेशर इनको समानभागसे मिश्रित कर पकावे। फिर उस काथमें शहद तथा पारदभस्म डालकर पानकरे तो सात दिनमेंही पित्तजन्य मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ १४ ॥

तृणपञ्चमूल ।

कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम् ।
पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं वस्तिविशोधनम् ॥ १५ ॥

तृण पञ्चमूल (कुशा, कांस, रामशर, डाभ और ईख) की जडको औटाकर पान करनेसे पित्तजमूत्रकृच्छ्र दूर होता है तथा वस्ति शुद्ध होती है॥१५॥

पञ्चतृणक्षीर ।

एतात्सिद्धं पयः पीतं मेढ्रगं हन्ति शोणितम् ।

तृणपञ्चमूलके काथसे सिद्ध कियेहुए दूधको पीनेसे लिंगद्वारा रक्तस्रावहोना बन्द होता है ॥

त्रिकण्टकादि ।

त्रिकण्टकारग्वधदर्भकाशदुरालभापस्तरभेदपथ्याः ।
निघ्नन्ति पीडां मधुनाश्मरीञ्च सम्प्राप्तमृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम्

गोखुरू, अमलतास, डाभ, काँस, धमासा, पाषाणभेद और हरड इनको समान भाग लेकँर कूट पीसकर चूर्णको शहदमें मिलकार सेवन करे तो अश्मरी और मृत्युके समान प्राप्तहुई मूत्रकृच्छ्रकी पीडा नष्ट होती है ॥ १६ ॥

धात्र्यादि ।

धात्री द्राक्षा विदारी च यष्ट्याह्वं गोक्षुरं तथा ।
एभिः कषायं विपचेत्पिबेच्छीतं सशर्करम् ॥
अपि योगशतासाध्यं मूत्रकृच्छ्रं जयेल्लघु ॥ १७ ॥

आमला, दाख, विदारीकन्द, मुलैठी और गोखुरू इनका काढा बनाकर शीतल होजाय तब मिश्री डालकर पीवे। जो सैकडों योगोंसेभी असाध्य हो ऐसे मूत्रकृच्छ्रको यह छोटासा प्रयोग नष्ट करदेता है ॥ १७ ॥

बृहद्धात्र्यादि ।

धात्री द्राक्षा च यष्ट्याह्वं विदारी सत्रिकण्टका ।
दर्भेक्षुमूलमभया क्राथयित्वा जलं पिबेत् ॥
ससितं मूत्रकृच्छ्रघ्नं रुजं दाहहरं परम् ॥ १८ ॥

आमला, दाख, मुलैठी, विदारीकन्द, गोखुरू, डाभ, ईखकी मूल और हरड इनका यथाविधि काथ बनाकर मिश्री डालकर पीनेसे अत्यन्त दाहयुक्त मूत्रकृच्छ्ररोग शमन होता है ॥ १८ ॥

अमृतादि।

अमृता नागरं धात्री वाजिगन्धा त्रिकण्टकम्।
प्रपिबेद्वातरोगार्त्तः सशूलो मूत्रकृच्छ्रवान् ॥ १९ ॥

गिलोय, सोंठ, आमले, असगन्ध और गोखुरू इनके काथको पान करनेसे शूलसहित मूत्रकृच्छ्ररोग व वातरोग शान्त होताहै ॥ १९ ॥

शतावर्यादि।

शतावरी काशकुशश्वदंष्ट्राविदारिशालीक्षुकशेरुकाणाम्।
क्वाथं सुशीतं मधुशर्करात्कं पिबञ्जयेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रम्॥२०॥

शतावर, काँस, कुशा, गोखुरू, विदारीकन्द, शालिके चावल, ईखकी जड और कसेरू इनके काथको विधिपूर्वक बनावे। जब शीतल होजाय तब शहद और चीनी मिलाकर पीवे। इससे पित्तसे हुआ मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै ॥२०॥

हरीतक्यादि।

हरीतकीगोक्षुरराजवृक्षपाषाणभिद्बिल्वयवासकानाम्।
क्वाथं पिबेन्माक्षिकसंप्रयुक्तं कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे॥२१

हरड, गोखुरू, अमलतास, पाषाणभेद, बेलगिरी और धमासा इनके काथमें शहद मिलाकर सेवन करे तो दाहयुक्त मूत्रकृच्छ्र और विबन्धरोग नष्ट होताहै॥

तारकेश्वररस।

शुद्धसूतं समं गन्धं लौहं वङ्गं मृताभ्रकम्।
दुरालभां यवक्षारं बीजं गोक्षुरजं शिवाम् ॥ २२ ॥
समांशं कारयेत्सर्वं कूष्माण्डफलवारिणा।
पञ्चतृणभवक्काथे रसे गोक्षुरजे तथा ॥ २३ ॥
संपिष्य वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः।
मधुना मर्द्य विलिहन्मूत्रकृच्छ्रविनाशनः ॥ २४ ॥
उदुम्बरफलं पक्वं चूर्णितं कर्षमात्रकम्।

लेहयेन्मधुना सार्द्धमनुपानं सुखावहम् ॥
अजाक्षीरं भवेत्पथ्यं शर्करेक्षुरसो हितः ॥ २९ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहा, वङ्ग और अभ्रक इनकी भस्म, धमासा, जवाखार, गोखुरूके बीज और हरड ये प्रत्येक ओषधि समान भाग लेकर एकत्र कूट पीसले फिर इस चूर्णको पेठेके रस, तृणपञ्चमूलके काथ और गोखुरूके काथमें क्रमपूर्वक खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक गोली शहदमें मिलाकर सेवन करे। अथवा पकेहुए गूलरके फलोंके दो तोले चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होताहै।इसपर बकरीका दूध,चीनी और ईखका रस पथ्यहै ॥ २२-२७ ॥

त्रिनेत्राख्यरस।

वङ्गं सूतं गन्धकं भावयित्वा लौहे पात्रे मर्दयेदेकघस्रम्। दूर्वायष्टीगोक्षुरशाल्मलीभिर्मूषामध्ये भूधरे पाचयित्वा ॥ २६ ॥ तत्तद्द्रावैर्भावयित्वास्य वल्लं दद्याच्छीतं पायसं वक्ष्यमाणम्। दूर्वायष्टीशाल्मलीतोयदुग्धैस्तुल्यैः कुर्यात्पायसं तद्ददीत ॥ प्रातःकाले शीतपानीयपानात्सञ्जातमूत्रं सुखिनं करोति ॥ २७ ॥

वङ्ग, पारा और गन्धक इनको समानभाग लेकर लोहेके पात्रमें रख दूर्वा, मुलैठी, गोखुरू और शेमलकी जड इनके काथसे अच्छे प्रकार खरल करे। फिर मूषायन्त्रमें रखकर भूधरयन्त्रमें पकावे। शीतल होजाय तब इसको निकालकर उपर्युक्त औषधियोंके काथमें भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। तदनन्तर दूब, मुलैठी और शेमलकी जडका काथ एवं दूध ये सब बराबर बराबर लेकर खीर बनावे। नित्यप्रति एक एक गोली इसी खीरके साथ खाय। प्रातःसमय औषधि सेवन करके शीतल जल पीनेसे जब पेशाब होगा तब रोगी सुखी होगा।यह मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करनेके लिये उत्तमहै२६॥२७

मूत्रकृच्छ्रान्तकरस।

शतावरीरसैः पिष्ट्वा मृतसूतञ्च तालकम्।
शिखितुत्थञ्च तुल्यांशं दिनैकं मर्दयेद्दृढम् ॥ २८ ॥
तद्गोलं सार्षपे तैले पाच्य यामञ्च चूर्णयेत्।
मूत्रकृच्छ्रान्तकश्चास्य क्षौद्रैर्गुञ्जाचतुष्टयम् ॥ २९ ॥

भक्षणान्नात्र सन्देहो मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्यलम् ।
तुलसी तिलपिण्याकं बिल्वमूलं तुषाम्बुना ॥
कर्षैकं वानुपानेन सुरया वा सुवर्चलैः ॥ ३० ॥

पारेकी भस्म, हरताल और शुद्ध नीलाथोथा इनको समान भाग लेवे। फिर सबको शतावरके रसमें एक दिनतक उत्तम प्रकार खरल करके गोलासा बनालेवे । इस गोलेको सरसोंके तेलमें एक प्रहरतक पकावे और शीतल होजानेपर चूर्ण करलेवे । इस प्रकार यह मूत्रकृच्छ्रान्तक रस सिद्ध होता है । इसको नित्यप्रति प्रातःकाल चार चार रत्ती प्रमाण शहदमें मिलाकर खानेसे निस्सन्देह समस्त मूत्रकृच्छ्र नष्ट होते हैं । अनुपान तुलसीका रस, तिलकी खल और बेलकी जडके काथको तुषाम्बुनामवाली काँजीमें अथवा मदिरामें हुलहुलका रस मिलाकर एकएक कर्षकी मात्रासे पान करे ॥ २८-३० ॥

मूत्रकृच्छ्रान्तक ।

सूतं स्वर्णञ्च वैक्रान्तं गन्धतुल्यं विमर्दयेत् ।
चण्डाली-राक्षसीद्रावैर्द्वियामान्ते तु गोलकम् ॥ ३१ ॥
शुष्कं बद्धा पुटेच्चाहः करीषाग्नौ महापुटे ।
माषमात्र लिहेत्क्षौद्रैर्मूत्रकृच्छ्रप्रशान्तये ॥ ३२ ॥

शुद्धपारा, गन्धक, सुवर्ण और वैक्रान्तमणि सबको बराबर २ लेकर लिंगिनीलता और चोरनामक गन्धद्रव्य (भटेउर) के रसमें दो प्रहरतक विधिपूर्वक खरल करके गोलासा बनालेवे । फिर इस गोलेको सुखालेवे और महापुटमें स्थापनकर सन्धिस्थानोंको बन्द करके उपलोंकी अग्निमें एक दिनतक पुटदेवे । जब शीतल होजाय तब निकालकर चूर्ण करलेवे । इसमेंसे प्रतिदिन एकएक मासा, शहदमें मिलाकर चाटे तो मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

शतावरीघृत और क्षीर ।

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्राविदारिकेक्ष्वामलकेषु सिद्धम् ।
सर्पिःपयोवासितयाविमिश्रं कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु योज्यम् ३३

शतावर, काँस, कुश, गोखुरू, विदारीकन्द, ईख और आमले इनके काथमें सिद्ध कियाहुआ घृत अथवा दूध मिश्री डालकर पान करे तो पित्तज मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ ३३ ॥

त्रिकण्टकाद्य घृत ।

त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीरुकर्कारुकेक्षुस्वरसेन सिद्धम् ।
सर्पिर्गुडार्द्धांशयुतं प्रपेयं कृच्छ्राश्मरीमूत्रविघातहेतोः ॥ ३४॥

गोखुरू, अण्डकी जड, कुशादि पञ्चमूल, शतावर, पेठा और ईख इनके स्वरस (अभावमें काथ) से सिद्ध कियाहुआ घी और घीसे आधा भाग गुड मिलाकर पीवे । इस घृतके सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र, पथरी और मूत्राघात रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ३४ ॥

मूत्रकृच्छ्रमें पथ्य ।

पुरातना लोहितशालयश्च क्षारो यवान्नानि च तीक्ष्ण-
मुष्णम् । तक्रं पयो दध्यपि गोप्रसूतं धन्वामिषं मुद्ग-
रसाः सिता च ॥ ३५ ॥ पुराणकूष्माण्डफलं पटोलं
महार्द्रकं गोक्षुरकं कुमारी । गुवाकखर्जूरकनारिकेल-
तालद्रुमाणाञ्च शिरांसि पथ्या ॥ ३६॥ तालास्थिमज्जा-
त्रपुषं त्रुटिश्च शीतानि पानान्यशनानिचापि । प्रणी-
रनीरं हिमवालुका च मूत्रं नृणां स्यात्सति मूत्रकृच्छ्रे ॥ ३७

पुराने लाल शालिके चावल, जवाखार आदि खार द्रव्य, जौका भोजन, तीक्ष्ण और गरम पदार्थ, मठा, गौका दूध, दही, मरुदेशके जीवोंका मांस-रस, मूँगका यूष, मिश्री, पुराना पेठा, परवल, वन अदरख, गोखुरू, घीग्वार, सुपारी, खजूर, नारियल, ताडके वृक्षोंकी गिरी, हरड, ताडके फलोंका गूदा, खीरा, छोटी इलायची, शीतल अन्न पान, शीतल जल और कपूर ये सब वस्तुयें मूत्रकृच्छ्ररोगमें हितकारी हैं ॥ ३५--३७ ॥

मूत्रकृच्छ्रमें अपथ्य ।

मद्यं श्रमं निधुवनं गजवाजियानं सर्वं विरुद्धमशनं
विषमाशनञ्च।ताम्बूलमत्स्यलवणार्द्रकतैलभृष्टंपिण्या-
कहिङ्गुतिलसर्षपवेगरोधान् ॥ माषान्करीरमतितीक्ष्ण-
विदाहिरूक्षमम्लन्तु मुञ्चतु जनः सति मूत्रकृच्छ्रे ॥३८॥

मूत्रकृच्छ्ररोग होनेपर रोगी मद्यपान, परिश्रम, मैथुन, हाथी या घोडेकी सवारी, सर्वप्रकारके विरुद्ध भोजन, विषम भोजन, ताम्बूलचर्वण, मछली, लवण, अदरख, तेलके भुने द्रव्योंका भक्षण, खल, हींग, तिल, सरसोंका

सेवन, मल मूत्रादिके वेगको रोकना, उडद, बाँसके कल्ले, अत्यन्त तीक्ष्ण दाहकारी, रूखे और अम्लरसयुक्त पदार्थोंको तत्काल त्याग देवे ॥ ३८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ॥

मूत्राघातकी चिकित्सा ।

मूत्राघातान्यथादोषं मूत्रकृच्छ्रहरैर्जयेत् ।
वस्तिमुत्तरवस्तिश्च दद्यात्स्निग्धविरेचनम् ॥ १ ॥

मूत्राघातमें वातादिदोषोंको विचारकर, मूत्रकृच्छ्रनाशक औषधियोंसे विधिपूर्वक चिकित्सा करे । एवं वस्ति और उत्तरवस्तिका प्रयोग तथा रोगीको स्निग्ध कर विरेचन देवे ॥ १ ॥

कल्कमेर्वारुबीजानामक्षमात्रं ससैन्धवम् ।
धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्राघाताद्विमुच्यते ॥ २ ॥

ककडीके बीजोंके २ तोले कल्क और सेंधेनमकको काँजीमें मिलाकर पीते ही मूत्राघातरोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

यवक्षारं गुडोन्मिश्रं पिबेत्पुष्पफलोद्भवम् ।
रसं मूत्रविबन्धघ्नं शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ ३ ॥

पेठेके स्वरसमें जवाखार और पुराना गुड मिलाकर सेवन करनेसे मूत्राघात, शर्करा और अश्मरीरोग नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

सपत्रफलमूलस्य क्वाथं गोक्षुरकस्य च ।
पिबेन्मधुसितायुक्तं मूत्राघातादिरोगनुत् ॥ ४ ॥

पत्र, फल और जडसहित गोखुरूके काथको बनाकर शहद और मिश्री मिलाकर पीवे तो मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीरोग दूर होते हैं ॥ ४ ॥

नलकुशकाशेक्षुशिफां क्वथितां प्रातः सुशीतलांससिताम् ।
पिबतः प्रयाति नियतं मूत्रग्रह इत्युवाच कचः ॥ ५ ॥

नल, कुश, काँस और ईखकी जड इनका काथ बनालेवे । शीतल होनेपर इसको मिश्री डालकर प्रातःकाल पीनेसे मूत्राघात निश्चय दूर होता है, ऐसा कचऋषिने कहा है ॥ ५ ॥

बिम्बीमूलञ्च संपिष्टं काञ्जिकेन समन्वितम् ।
नाभिलेपनमात्रेण मूत्ररोधं निहन्ति च ॥ ६ ॥

कन्दूरीकी जडको काँजीमें पीसकर नाभिके ऊपर लेप करनेसे मूत्राघात रोग दूर होता है ॥ ६ ॥

मूत्रे विबन्धे कर्पूरचूर्णं लिंगे प्रवेशयेत् ।
कूष्माण्डकरसो वापि पेयः सक्षारशर्करः ॥ ७ ॥

मूत्राघात होनेपर कपूरके बारीक पिसे चूर्णको लिङ्गके छिद्रमें प्रवेश करे । अथवा पेठेके रसको जवाखार और खांड डालकर पीवे तो इससे पेशाब खुल-कर आता है ॥ ७ ॥

जलेन खदिरीवीजं मूत्राघाताश्मरीहरम् ।
मूलं रुद्रजटायाश्च तक्रपीतं तदर्थकृत् ॥ ८ ॥

खैरीशाकके बीजोंको जलमें पीसकर एवं रुद्रजटाकी जडको मट्ठेके साथ पीसकर पान करे तो मूत्राघात और अश्मरीरोग दूर होते हैं ॥ ८ ॥

शृतशीतपयोऽन्नाशी चन्दनं तण्डुलाम्बुना ।
पिबेत्सशर्करं श्रेष्ठमुष्णवातविनाशनम् ॥ ९ ॥

लालचन्दनको चावलोंके जलमें घिसकर उसमें मिश्री डालकर पीवे । पश्चात् औटाकर शीतल कियेहुए दूधके साथ भोजन करे तो उष्णवात (मूत्राघात विशेष) रोग नष्ट होता है ॥ ९ ॥

गोधावत्या मूलं क्वथितं घृततैलगोरसोन्मिश्रम् ।
पीतं निरुद्धमचिराद्भिनत्ति मूत्रस्य संरोधम् ॥ १० ॥

गोधापदी (कालीमुसली) जडका क्वाथ बनाकर उसमें घृत, तेल और गौका दूध डालकर पीनेसे बहुत पुराना मूत्राघातरोग शीघ्र नष्ट भ्रष्ट होता है॥१०॥

धान्याम्ललवणोपेतं सूतं यश्च पिबेन्नरः ।
तस्य नश्यन्ति वेगेन मूत्राघातास्त्रयोदश ॥ ११ ॥

काँजी और सैंधेनमकमें शुद्ध पारेको मिलाकर पीवे तो तेरह प्रकारके मूत्रा-घातरोग तत्काल नष्ट होता है ॥ ११ ॥

धान्यगोक्षुरक घृत ।

धान्यगोक्षुरकक्वाथकल्कयुक्तं घृतं हितम् ।
मूत्राघाते मूत्रदोषे शुक्रदोषे च दारुणे ॥ १२ ॥

धनियाँ दो सेर और गोखुरू दो सेर इन दोनोंको १६ सेर जलमें औटावे । जब पकते पकते चार सेर जल बाकी रहे तब उतारकर छानलेवे । फिर इस

क्काथमें घृत २ सेर और धनियां तथा गोखुरूका कल्क सोलह सोलह सेर डालकर यथाविधि घृतको सिद्ध करे। यह घृत मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र और दारुण वीर्यदोषमें विशेष हितकर है ॥ १२ ॥

मूत्रघातमें पथ्य ।

अभ्यञ्जनस्नेहविरेकवस्तिस्वेदावगाहोत्तरवस्तयश्च ।
पुरातना लोहितशालयश्च मांसानि धन्वप्रभवाणि मद्यम् १३
तक्रं पयोदध्यपि माषयूषः पुराणकूष्माण्डफलं पटोलम् ।
महार्द्रकं तालफलास्थिमज्जा हरीतकी कोमलनारिकेलम् १४
गुवाकखर्ज्जूरकनारिकेलतालद्रुमाणामपि मस्तकानि ।
यथामलं सर्वमिदञ्च मूत्राघातातुराणां हितमावहन्ति ॥१५॥

मूत्राघातवाले रोगियोंको तेलमलना, स्नेह (घृतादि) का पान, विरेचन और वास्तिक्रिया, स्वेददेना, शीतल जलमें घुसकर स्नान, उत्तरवास्ति प्रयोग, पुराने लाल शालिके चावल, धन्वदेशोत्पन्न पशु पक्षियोंके मांसका रस, उडदका यूष, मदिरा, मट्ठा, गौका दूध, दही, पुराना पेठा, परवल, वन अदरख, ताडके फलोंकी गुठलीकी मींग, हरड, कच्चा नारियल, सुपारी, खजूर, नारियल और ताडके वृक्षोंके अंकुर ये सब पदार्थ हितकारी हैं ॥ १३-१५ ॥

मूत्राघातमें अपथ्य ।

विरुद्धानि च सर्वाणि व्यायामं मार्गशीलनम् ।
रूक्षं विदाहि विष्टम्भि व्यवायं वेगधारणम् ॥
करीरं वमनञ्चापि मूत्राघाती विवर्जयेत् ॥ १६ ॥

सर्वप्रकारके विरुद्ध भोजन, व्यायाम (कसरत आदि) रास्ता चलना, रूखे, दाहकारक और विष्टम्भकारक द्रव्योंका सेवन, स्त्रीप्रसङ्ग, मल-मूत्रादिके वेगका धारण करना, बाँसके अंकुरोंको भक्षण करना और वमन करना इन समस्त पदार्थों व क्रियाओंको मूत्राघातवाला रोगी शीघ्र छोडदेवे ॥ १६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मूत्राघातचिकित्सा ॥

अश्मरीकी चिकित्सा ।

सगुडो वरुणक्काथस्तत्कल्केनाथवान्वितः ।
शिग्रूक्काथोऽथवात्युष्णो हन्त्याशु सरुगश्मरीम् ॥ १ ॥

वरनाकी छालके काथ या कल्कके साथ गुड मिलाकर सेवन करे। अथवा सहिंजनेकी जडका गरम गरम काथ पान करे तो पीडासहित अश्मरीरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम्।
अजाक्षीरेण सप्ताहं पेयमश्मरिभेदनम् ॥ २ ॥

गोखुरूके बीजोंके चूर्णको शहद और बकरीके दूधके साथ मिलाकर एक सप्ताह पर्यन्त सेवन करनेसे पथरी नष्ट होती है ॥ २ ॥

प्रपिबेत्तालमूल्या वा कल्कं व्युषितवारिणा।
तेनैवाथ गवाक्ष्या वा त्र्यहान्नश्मरिपातनम् ॥ ३ ॥

मुसली अथवा इन्द्रायनकी जडके चूर्णको बासी जलमें पीसकर पीवे तो तीन दिनमें पथरी गलकर निकल पडती है ॥ ३ ॥

यो नारिकेलकुसुमं सक्षारं वारिणा पिष्ट्वा।
पिबति हि तस्य दिनैकान्निपतति घोराश्मरी नूनम् ॥ ४ ॥

यदि नारियलके पुष्प और जवाखारको जलमें पीसकर पीवे तो दारुण पथरी एक दिनमेंही निश्चय छिन्नभिन्न होकर निकलजाती है ॥ ४ ॥

वरुणादि।

वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठं शुण्ठी गोक्षुरसंयुतम्।
यवक्षारं गुडं दत्त्वा क्काथयित्वा जलं पिबेत् ॥
ह्यश्मरीं वातजां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ ५ ॥

उत्तम वरनाकी छाल, सोंठ, गोखरूके बीज इनका काथ बनाकर उसमें जवाखार व गुड डालकर पान करे। इससे वातजन्य बहुत पुरानी पथरी दूर होतीहै ॥ ५

बृहद्वरुणादि।

वारुणं वल्कलं शुण्ठी बीजं गोक्षुरसम्भवम्।
तालमूली कुलत्थश्च कुशादिपञ्चमूलकम् ॥ ६ ॥
शर्कराक्षारसंयुक्तं क्काथयित्वा जलं पिबेत्।
अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं वस्तिमेहनशूलनुत् ॥ ७ ॥

वरनाकी छाल, सोंठ, गोखुरूके बीज, मुसली, कुलथी और कुशादि तृणपञ्चमूल इनके यथाविधि काथको बनाकर चीनी और जवाखार मिश्रित करके पान करनेसे पथरी, मूत्रकृच्छ्र, वस्तिशूल और लिंगशूल नाश होता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

शुंठ्यादि ।

शुण्ठ्यग्निमन्थपाषाणशिग्रुवरुणगोक्षुरैः ।
काश्मर्यारग्वधफलैः क्वाथं कृत्वा विचक्षणः ॥ ८ ॥
रामठक्षारलवणचूर्णं दत्त्वा पिबेन्नरः ।
अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं दीपनं पाचनं परम् ॥ ९ ॥

सोंठ, अरणी, पाषाणभेद, सहिंजनेकी छाल, वरुनाछाल, गोखुरू, कुम्भेरछाल और अमलतास इनको समानभाग लेकर काथ बनालेवे । फिर इस काथमें हींग, जवाखार और सैंधेनमकका चूर्ण डालकर पीवे तो अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र और समस्त वातविकार दूर होते हैं एवं जठराग्नि दीप्त होती है और पाचन होती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

एलादि ।

एलोपकुल्यामधुकाश्मभेदकौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोरुबूकैः ।
शृतं पिबेदश्मजतु प्रगाढं सशर्करे चाश्मरि मूत्रकृच्छ्रे ॥ १० ॥

इलायची, पीपल, मुलैठी, पाषाणभेद, रेणुका, गोखुरू, अडूसेकी छाल और अण्डकी जड इनके काथको विधिपूर्वक प्रस्तुत करके शिलाजीत डालकर पीनेसे शर्करा, अश्मरी और मूत्रकृच्छ्ररोगमें शीघ्रलाभ होता है ॥ १० ॥

वीरतर्वादिगण ।

वीरतरुसहचरद्वयदर्भवृक्षादनी-
गुन्द्रानलकुशकाशाश्मभेदकाग्निमन्थः ।
मोरटवसुकवसिरभल्लूककुरुण्ट-
केन्दीवरकपोतवङ्काः श्वदंष्ट्रा चेति ॥ ११ ॥
वीरतर्वादिरित्येष गणो वातविकारनुत् ।
अश्मरीशर्कराकृच्छ्रमूत्राघातरुजापहः ॥ १२ ॥

वीरवृक्ष, नीलीकटसरैया, लालकटसरैया, दर्भ, बाँदा, गुन्द्रा (तृणविशेष,) नलसर, कुश, काँस, पाषाणभेद, अरणी, ईखकी जड, आककी जड, गजपीपल, सोनापाठेकी छाल, पीला पियाबाँसा, नीलकमल, ब्राह्मी और गोखुरू ये वीरतर्वादिगणकी समस्त औषधियें समानभाग लेकर काथ बनालेवे। इस काथको प्रतिदिन सेवन करनेसे वातजन्यविकार, पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघातरोग दूर होते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

आनन्दयोग।

तिलापामार्गकदलीपलाशामलकाण्डकान्।
दग्ध्वा तद्भस्मतोयन्तु वस्त्रपूतञ्च कारयेत् ॥ १३ ॥
तत्पचेत्तोयशेषन्तु ततश्चूर्णं द्विगुञ्जकम्।
पाययेदविमूत्रेण शर्कराश्मरिजिद्भवेत् ॥ १४ ॥

तिल, चिरचिटा, केला, ढाक और आमले इनके वृक्षोंके गुद्दोंको लेकर भस्म करलेवे। फिर इन सबकी समानांश मिश्रितभस्म दो सेर और जल ३२ सेर एकत्रकर पकावे। जब पकते २ जल ८ सेर शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। तदनन्तर इस क्षारजलको दूसरी बार पकावे। जब पानी सब जलजाय तब उतारकर पात्रमेंसे खारको खुरचलेवे। इस खारको नित्यप्रति प्रातःकाल दो रत्ती प्रमाण लेकर भेंडके या बकरीके मूत्रमें मिलाकर सेवन करे तो शर्करा और पथरीरोग नष्ट होताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

बृहद्गोक्षुराद्यवलेह।

गोक्षुरकं पलशत दशमूलं तथैव च।
पाषाणभेदोऽष्टपलं गुडूची पलपञ्चकम् ॥ १५ ॥
एरण्डाभीरोरष्टौ च पलान्येव दश पृथक्।
पञ्चमूलश्चाश्वगन्धा प्रत्येकं पलविंशतिः ॥ १६ ॥
सर्वमेकत्र संकुट्य जलद्रोणे विपाचयेत्।
पादशेषं तु संगृह्य वस्त्रपूतं समाक्षिपेत् ॥ १७ ॥
गव्याजं प्रस्थमेकन्तु शिलाजञ्च तथा स्मृतम्।
घनीभूते तु सञ्जाते द्रव्याणीमानि दापयेत् ॥ १८ ॥
तालमूली शताह्वा च त्रिकटु त्रिफला तथा।
सूक्ष्मैला भूतकेशी च ह्रीवेरं नागकेशरम् ॥ १९ ॥
पद्मकं जातिपत्रत्वग्मधुयष्टी सरोचना।
जातीफलमुशीरञ्च त्रिवृता रक्तचन्दनम् ॥ २० ॥
धान्यकं कटुका क्षारौ नागवल्ली च शृङ्गिका।
पुष्कराह्वं शठी दारु सीसं लौहञ्च वङ्गकम् ॥ २१ ॥
द्रव्याणीमानि संगृह्य प्रत्येकं पलमात्रकम्।
खादेद्बलाग्निं संप्रेक्ष्य पथ्यं सेवेत मानवः ॥ २२ ॥

स्निग्धभाण्डे निधायाथ नित्यं लिह्यात्पलोन्मितम् ।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च मूत्राघातो विबन्धता ॥ २३ ॥
प्रमेहं विंशतिश्चैव शुक्रदोषस्तथैव च ।
धातुक्षयश्चोष्णवातो वातकुण्डलिकादयः ॥ २४ ॥
ते सर्वे प्रशमं यान्ति भास्करेण तमो यथा ।
नातः परतरं किञ्चित्कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥ २५ ॥

गोखुरू १०० पल, दशमूलकी औषधियाँ १०० पल, पाषाणभेद ८ पल, गिलोय ५ पल, अण्डकी जड ८ पल, शतावर १० पल, पद्ममूल (भसींडा) २० पल और असगन्ध २० पल इन सबको एकत्र कूटकर ३२ सेर जलमें पकावे । जब ८ सेर जल शेष रहे तब उतारकर कपडेमें छानलेवे । फिर इस काथमें गौका घी एक प्रस्थ (६४ तोले) और शिलाजीत एक प्रस्थ डालकर यथाविधि पाक करे । पकते पकते जब अवलेहकी समान गाढा होजाय तब उसमें मुसली, सोंफ, त्रिकुटा, त्रिफला, छोटी इलायची, भूतकेशीकी जड, सुगन्धवाला, नागकेशर, पद्माख, जावित्री,दारचीनी, मुलैठी,गोरोचन, जायफल, खस, निसोत, लालचन्दन, धनियाँ, कुटकी, जवाखार, सज्जी, पान, काकडासिंगी,पोहकरमूल,कचूर,देवदारु, शीसा,लोहा और वंगभस्म इन औषधियोंको चारचार तोले लेकर बारीक चूर्ण करके घीके चिकने बासनमें भरकररखदेवे । तदनन्तर नित्य प्रति प्रातःकाल उठकर ईश्वरस्मरण करके इसमेंसे चारचार तोले परिमाण अथवा अपनी अग्निके बलाबलको विचारकर भक्षण करे । इसपर हल्का और हितकारी भोजन करे । इसके सेवन करनेसे पथरी, मूत्रकृच्छ्र,मूत्राघात, विबन्ध, वीस प्रकारके प्रमेह,वीर्यदोष,धातुक्षीणता, उष्णवात और वातकुण्डलिकाप्रभृति सम्पूर्णरोग इसप्रकार नाश होतेहैं, जैसे सूर्यकी प्रभासे अन्धकार तत्काल नष्ट होजाताहै । उक्त रोगोंको नष्ट करनेके लिये इससे श्रेष्ठ और कोई औषधि नहीं है।इसको कृष्णात्रेय मुनिने निर्माण कियाहै।।१५-२५

पाषाणभिन्न ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं शिलाजतु रसात्पलम् ।
श्वेतपुनर्नवावासारसैः श्वेतापराजितैः ॥ २६ ॥
प्रतिदिनं त्र्यहं मर्द्यं शुष्कं तद्भाण्डसम्पुटे ।
स्वेदयेद्दोलिकायन्त्रे संशुष्कं तं विचूर्णयेत् ॥ २७ ॥

रसः पाषाणभिन्नः स्याद्द्विगुञ्जश्चाश्मरीं हरेत्।
भूधात्रीफलविशालां पिष्ट्वा दुग्धेन पाययेत्॥
कुलत्थक्काथसंपीतमनुपानं सुखावहम्॥ २८॥

शुद्धपारा ४ तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले और शिलाजीत ४ तोले इनको एकत्रकर सफेद पुनर्नवा, अडूसेके पत्तों और सफेद अपराजिताके पत्तोंके रसमें एक एक दिन अच्छे प्रकार खरल करके सुखालेवे। फिर मिट्टीके चिकने वर्त्तनमें रख मुखबन्दकरके दोलायन्त्रसे स्वेद देवे। पश्चात् उसको निकालकर उत्तम प्रकारसे सुखाकर खूब बारीक पीसलेवे। इस प्रकार यह पाषाणभिन्न नामक रस सिद्ध होताहै। इसकी प्रतिदिन प्रातःसमय दो दो रत्ती मात्राको भुईआमला और इन्द्रायणके फलोंको दूधमें पीसकर इसमें मिलालेवे अथवा कुलथीके काथमें मिलाकर सेवन करनेसे अश्मरीरोग शीघ्र नष्ट होता है और रोगी आनन्द होजाता है॥ २६-२८॥

पाषाणवज्ररस।

शुद्धसूतं द्विधागन्धं रसैः श्वेतपुनर्नवैः।
मर्दयित्वा दिनं खल्ले रुद्ध्वा तद्भूधरे पचेत्॥ २९॥
दिनान्ते तत्समुद्धृत्य मर्दयेद्गुडसंयुतम्।
अश्मरीं वास्तिशूलञ्च हन्ति पाषाणवज्रकः॥ ३०॥
गोरक्षकर्कटीमूलं क्वाथं कौलत्थकं तथा।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं बुद्ध्वा दोषबलाबलम्॥ ३१॥

शुद्धपारा एक भाग और गन्धक दो भाग इन दोनोंको सफेद पुनर्नवेके रसमें एकदिन खरलकर सम्पुटमें स्थापन करके भूधरयन्त्रमें पकावे। जब अच्छे प्रकार पककर शीतल होजाय तब सायंकालमें इसको निकालकर गुड मिलाकर पुनः खरलकर लेवे। इस प्रकार सिद्ध कियाहुआ यह पाषाणवज्र नामवाला रस गोरखककडीकी जडके और कुलथीके काथके साथ मिलाकर तथा वातादि दोषोंके बलाबलको विचारकर सेवन करनेसे पथरी और वास्तिशूल रोगको नष्ट करताहै॥ २९-३१॥

वरुणाद्यलौह।

द्विपलं वरुणं धात्र्यास्तदर्द्धं धात्रिपुष्पकम्।
हरीतक्याः पलार्द्धञ्च पृश्निपर्णं तदर्द्धकम्॥ ३२॥

कर्षमानञ्च लौहाभ्रं चूर्णमेकत्र कारयेत्।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय शाणमानं विधानवित्॥ ३३॥
मूत्राघातं तथा घोरं मूत्रकृच्छ्रञ्च दारुणम्।
अश्मरीं विनिहन्त्याशु प्रमेहं विषमज्वरम्॥ ३४॥
बलपुष्टिकरञ्चैव वृष्यमायुष्यमेव च।
वरुणाद्यमिदं लौहं चरकेण विनिर्म्मितम्॥ ३५॥

बरनाकी सींग ८ तोले, आमले ८ तोले, धायके फूल ४ तोले, हरड दो तोले, पृश्निपर्णी एक तोला, लोहे और अभ्रककी भस्म एक एक कर्ष लेवे। सबको एकत्र कूटपीसकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको प्रतिदिन प्रातःकाल ऊठकर चार चार माशेकी मात्रासे सेवन करे। इसके सेवनसे घोर मूत्राघात, दारुण मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रमेह और विषमज्वर इत्यादि विकार अल्पकालमें शमन होते हैं। तथा बल, वीर्य और आयु बढती है एवं शरीरकी पुष्टि होवीहै इस वरुणाद्य लोहको चरकमहाराजने निर्माण कियाहै॥ ३२-३५॥

कुलत्थाद्यघृत।

कुलत्थसिन्धूत्थविडङ्गसारसं सशर्करं शीतलि यावशूकम्।
बीजानि कूष्माण्डकगोक्षुराणां घृतं पचेत्तद्वरुणस्य तोये ३६
दुःसाध्यसर्वाश्मरिमूत्रकृच्छ्रं मूत्राभिघातञ्च समूत्रबन्धम्।
एतानि सर्वाणि निहन्ति शीघ्रं प्ररूढवृक्षानिव वज्रपातः ३७

कुलथी, सैंधानमक, वायविडङ्गके चावल, खाँड, शीतलि (शीतलीलता) जवाखार, पेठेके और गोखुरूके बीज ये प्रत्येक चार चार तोले लेवे और सबको एकत्र कूट पीसकर कल्क बनालेवे। फिर चतुर्भागावशिष्ट बनायेहुए वरनाके काथमें इस कल्कको और गौके घृतको डालकर उत्तम रीतिसे पकावे। इस घृतको नियमबद्ध हो सेवन करनेसे दुःसाध्य पथरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, और मूत्रावरोधादि सर्वप्रकारके मूत्ररोग इस प्रकार नष्ट होतेहैं जैसे कि अत्यन्त मजबूत जडवाले वृक्षोंको वज्र तत्काल नष्ट करदेता है॥ ३६॥ ३७॥

वरुणघृत।

वरुणस्य तुलां क्षुण्णां जलद्रोणे विपाचयेत्।
पादशेषं परिस्राव्य घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ ३८॥
वरुणं कदली बिल्वं तृणजं पञ्चमूलकम्।
अमृता चाश्मजं देयं बीजञ्च त्रपुषोद्भवम्॥ ३९॥

शतपर्वा तिलक्षारं पलाशक्षारमेव च।
यूथिकायाश्च मूलानि कार्षिकाणि समावपेत्॥ ४०॥
अस्य मात्रां विपज्जन्तुर्देशकालाद्यपेक्षया।
जीर्णे तस्मिन्पिबेत्पूर्वं गुडजीर्णन्तु मस्तुना॥
अश्मरीं शर्कराञ्चैव मूत्रकृच्छ्रं विनाशयेत॥ ४१॥

वरनाकी छाल १०० पल लेकर कूटले, फिर उसको ३२ सेर जलमें पकावे पकते २ जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छानलेवे। इस काथमें गौका घी १ प्रस्थ एवं वरनाकी छाल, केलेकी जड, बेलकी छाल, तृणपञ्चमूल, गिलोय, शुद्ध शिलाजीत, खीरेके बीज, ईखकी जड, तिलोंका खार, ढाकका क्षार, और जुहीकी जड; ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले बारीक पीसकर डालदेवे और मन्दमन्द अग्निके द्वारा शनैः शनैः घृतको सिद्धकरे। पश्चात् देश तथा कालको विचारकर इसकी मात्राका निरूपण करके सेवन करना चाहिये जिस समय घृत पचजाय तब पुराने गुडको दहीके तोडके साथ मिलाकर पानकरे। इससे पथरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्र प्रभृति अनेकों रोग दूर होते हैं॥ ३८–४१॥

पाषाणाद्यघृत।

पाषाणभेदो वसुको वसिरोऽश्मन्तकस्तथा।
शतावरी श्वदंष्ट्रा च बृहती कण्टकारिका॥ ४२॥
कपोतवङ्कार्त्तगलकाञ्चनोशीरगुल्मकाः।
वृक्षादनी भल्लूकश्च वरुणः शाकजं फलम्॥ ४३॥
यवाः कुलत्थाः कोलानि कतकस्य फलानि च।
उषकादिप्रतीवापमेषां क्काथे शृतं घृतम्॥ ४४॥
भिनत्ति वातसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु।
क्षारान्यवागुपेयांश्च कषायाणि पयांसि च॥
भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन्वातनाशने॥ ४५॥

पाषाणभेद, आककी जड, गजपीपल, अश्मन्तक (अम्लोद), शतावर, गोखुरू, बडी कटेरी, कटेरी, ब्राह्मी, नीले फूलकी कटसरैया, कचनारकी छाल, खस, गुलमक (लाल करवीरवृक्ष), बन्दा, सोनापाठेकी छाल, वरनाकी छाल,

सागौनके फल, जौ, कुलथी, बेर और निर्मलीके फल ये सब ओषधें समान भागसे मिलीहुई चार सेर लेवे । पुनः सबको ३२ सेर जलमें पकाकर चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारले । पश्चात् वस्त्रमें छानकर इस काथमें ऊषकादिगण (खारी मिट्टी, सैंधानमक, हींग, पुष्पकसीस, धातुकसीस, गूगल, शिलाजीत और नीलाथोथा) की ओषधियोंको समभाग मिश्रित चूर्ण एक सेर और गोघृत ४ सेर डालकर उत्तम विधिसे पकावे। जब अच्छी तरह पककर घृतमात्र शेष रहजाय तब उतारकर चिकने बासनमें भरकर रखदेवे । इसके सेवनसे वातोत्पन्न पथरी तत्क्षण नष्ट भ्रष्ट होती है। इस घृतको सेवन करते समय क्षार, यवागू, पेया, काथ, दूध और वातनाशक द्रव्योंका भोजन करे॥

भद्रावहघृत ।

अम्बष्ठा पाटला चैव वर्षाभूद्वयमेव च ।
काशो विदारीकन्दश्च कुशमोरटगोक्षुराः ॥४६॥
पाषाणभेदी वाराही शालिमूलं शरस्तथा ।
भल्लातकं शिरीषस्य मूलमेषामथाहरेत् ॥ ४७ ॥
समभागानि सर्वाणि काथयित्वा विचक्षणः ।
पादशेषकषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४८ ॥
कल्कं दत्त्वाथ मतिमान् गिरिजं मधुकं तथा ।
नीलोत्पलञ्च काकोलीबीजं त्रपुषमेव च ॥ ४९ ॥
कूष्माण्डञ्च तथैर्वारुसम्भवञ्च समं भवेत् ।
उष्णवातं निहन्त्येद्घृतं भद्रावहं शुभम् ॥
मूत्राघाताश्मरीमेहान्भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ५० ॥

पाढ, पाढल, श्वेत पुनर्नवा, लालपुनर्नवा, काँस, विदारीकन्द, कुशा, ईखकी जड, गोखुरू, पाषाणभेद, वाराहीकन्द, शालिके चावलोंकी जड, रामसर, भिलावे और शिरीषकी जड इन सबको समानभाग लेकर चौगुने जलमें पकावे । चतुर्भागावशिष्ट काथको ग्रहणकर उसमें गोघृत १ प्रस्थ एवं भूरिछरीला, मुलैठी, नीलकमल, काकोली, खीरेके बीज, पेठेके और ककडीके बीज इनके समानभाग कल्कको डालकर उत्तम प्रकार घृतको सिद्ध करे। यह भद्रावहनामवाला उत्तम घृत उष्णवात (सोजाक), मूत्राघात, पथरी और प्रमेहादि व्याधियोंको शीघ्र नाश करताहै । जैसे सूर्य अन्धकारको भेद देताहै ॥

विदारीघृत।

विदारी वृषको यूथी मातुलुङ्गी च भूस्तृणम्।
पाषाणभेदं कस्तूरी वसुको वसिरोऽनिलः॥ ५१॥
पुनर्नवा वचा रास्ना बला चातिबला तथा।
कशेरुविश्वशृङ्गाटतामलक्याः स्थिराद्यः॥ ५२॥
शरेक्षुदर्भमूलञ्च कुशः काशस्तथैव च।
पलद्वयन्तु संहृत्य जलद्रोणे विपाचयेत्॥ ५३॥
पादशेषे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
शतावर्यास्तथा धात्र्याः स्वरसो घृतसम्मितः॥५४॥
षट्पलं शर्करायाश्च कार्षिकाण्यपराणि च।
यष्ट्याह्वं पिप्पली द्राक्षा काश्मर्यं सपरूषकम्॥ ५५॥
एला दुरालभा कौन्ती कुङ्कुमं नागकेशरम्।
जीवनीयानि चाष्टौ च दत्त्वा च द्विगुणं पयः॥५६॥
एतत्सार्पिर्विपक्तव्यं शनैर्मृद्वग्निना बुधैः।
मूत्राघातेषु सर्वेषु विशेषात्पित्तजेषु च॥ ५७॥
कासश्वासक्षतोरस्के धनुःस्त्रीभारकर्षिते।
तृष्णाछर्दिमनःकम्पे शोणितच्छर्दने तथा॥ ५८॥
रक्ते यक्ष्मण्यपस्मारे तथोन्मादे शिरोग्रहे।
योनिदोषे रजोदोषे शुक्रदोषे सुरामये॥ ५९॥
एतत्स्मृतिकरं वृष्यं वाजीकरणमुत्तमम्।
पुत्रदं बलवर्णाढ्यं विशेषाद्वातनाशनम्॥ ६०॥
पानभोजननस्येषु न क्वचित्प्रतिहन्यते।
विदारीघृतमित्युक्तं रसायनमनुत्तमम्॥ ६१॥

विदारीकन्द, अडूसेका छाल, जुही, बिजौरानींबू, गन्धतृण, पाषाणभेद, कस्तूरी, आकको जड, गजपीपल, चीतेकी जड, विषखपरा, वच, रायसन, खिरैंटी, कङ्घी, कसेरू, भसींडे, सिंघाडे, भुईआमला, शालपर्णी आदि स्थिरादिगणकी समस्त ओषधियाँ, रामसर, ईखकी जड, डाभकी जड, कुशा और कास इन सबको आठ २ तोले लेकर कूटकर एक द्रोण (३२ सेर) जलमें

औटावे । जलते २ जब चौथाई भाग जल शेष रहे तब उतारकर वस्त्रमें छान लेवे । पुनः उस क्वाथमें गौका घी एक प्रस्थ, शतावरका रस एक प्रस्थ, आमलोंका रस एक प्रस्थ, सफेदबूरा या मिश्री २४ तोले एवं मुलैठी, पीपल, दाख, कुम्भेर, फालसे, इलायची, धमासा, रेणुका, केशर, नागकेशर और जीवनीयगण (ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक और ऋषभक) ये सब औषधें दो दो तोले लेकर बारीक कूट पीसकर डाल-देवे और गौका दूध दो प्रस्थ डालकर मन्दमन्द अग्निद्वारा यथाविधि शनैः शनैः घृतको पकावे । इस प्रकार घृतको सिद्धकरके उत्तम पात्रमें भरकर रख देवे । यह घृत सम्पूर्ण मूत्राघात विशेषकर पित्तजमूत्ररोग, खाँसी, श्वास, क्षत, उरःक्षत, धनुषके चढानेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे या अत्यन्त बोझ उठानेसे उत्पन्नहुई कृशता, प्यास, वमन, मनोव्याधि, कम्प, रुधिरकी वमन, रक्तस्राव, राजयक्ष्मा, मृगी, उन्माद, शिरोरोग, योनिदोष, रजोदोष, वीर्य-दोष और स्वरभङ्गप्रभृति रोगोंमें शीघ्र उपकार करता है । स्मरणशक्ति और वीर्यको बढाताहै । तथा अत्यन्त वाजीकरण, पुत्रदायक, बल वर्णवर्द्धक एवं विशेषकर वायुके विकारोंको नष्ट करनेवाला है । इस घृतको पान, भोजन और नस्यमें व्यवहार करना चाहिये । यह अत्युत्तम रसायन विदारीघृतनामसे प्रसिद्ध है ॥ ५१–६१ ॥

वरुणाद्य तैल ।

त्वक्पत्रपुष्पमूलस्य वरुणात्सत्रिकण्टकात् ।
कषायेण पचेत्तैलं वस्तिना स्थापनेन च ॥
शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ॥ ६२ ॥

छाल, पत्ते, फूल और जडसहित वरना और गोखुरूके बीज इनको समान भाग लेकर क्राथ बनालेवे । फिर इस क्राथके साथ तिलके तेलको सिद्धकरके स्थापनवस्ति देवे तो शर्करा, पथरी, शूल और मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होते हैं ॥ ६२ ॥

शिलोद्भिदादितैल ।

शिलोद्भिदैरण्डसमास्थिराभिः पुनर्नवाभीरुरसेषु सिद्धम् ।
तैलं घृतं क्षीरमथानुपानं कालेषु कृच्छ्रादिषु संप्रयोज्यम् ६३

पुनर्नवा और शतावरके रसमें पाषाणभेद, अण्डकी जड और शालपर्णी इनका समानभाग मिश्रित चूर्ण डालकर तिलके तेल अथवा घृतको पकावे । इस तेलको दूधके साथ मिलाकर बहुत पुराने मूत्रकृच्छ्ररोगमें पानकराना चाहिये । इससे उक्तरोग जल्द आराम होताहै ॥ ६३ ॥

उशीराद्य तैल।

उशीरं तगरं कुष्ठं यष्टीमधुकचन्दनम्।
विभीतकाभयाभीरु पद्ममुत्पलशारिवे ॥ ६४ ॥
बला तुरगगन्धा च दशमूलं शतावरी।
विदारी चैव काकोली गुडूच्यतिबला तथा ॥ ६५ ॥
श्वदंष्ट्रा शतपुष्पा च वाट्यालकमधूरिके।
एतैः कर्षमितैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ६६ ॥
सपत्रफलमूलस्य गोक्षुरस्य पलं शतम्।
जलद्रोणे विपक्तव्यं पादांशेनावतारयेत् ॥ ६७ ॥
तक्रं तैलसमं देयं वीरणक्वाथमाढकम्।
मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रमश्मरीं हन्ति दारुणम् ॥ ६८ ॥
बलवर्णकरं वृष्यं वातपित्तनिषूदनम्।
उशीराद्यमिदं तैलं काशिराजेन निर्मितम् ॥ ६९ ॥

पत्र, फल और मूलसहित गोखुरू १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। पकते पकते जब चतुर्थांश जल बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इस क्वाथमें खस, तगर, कूठ, मुलैठी, लालचन्दन, बहेडा, हरड, कटेरी, कमल, नीलकमल, अनन्तमूल, श्यामालता, खिरैंटी, असगन्ध, दशमूल, शतावर, विदारीकन्द, काकोली, गिलोय, कंघी, गोखुरू, सोया, पीली खिरैंटी और सोंफ इन औषधियोंका कल्क दो दो तोले, एवं तिलका तेल १ प्रस्थ, गौका मट्ठा १ प्रस्थ और पूर्वोक्त विधिके अनुसार बनायाहुआ खसका क्वाथ १ आढक (८ सेर) मिलाकर उत्तम प्रकार घृतको सिद्ध करे। यह उशीराद्यनामक तेल मूत्राघात मूत्रकृच्छ्र और दारुण अश्मरीरोग तथा वात पित्तजन्यरोगोंको नाश करता है। बल, वीर्यवर्द्धक तथा शरीरको कान्तियुक्त बनानेवाला है। इसको श्रीमान् महाराजा काशिराजाने बनाया है ॥ ६४-६९ ॥

अश्मरीरोगमें पथ्य।

वस्तिर्विरेको वमनञ्च लङ्घनं स्वेदोऽवगाहोऽपि च वारिसेचनम्। यवाः कुलत्थाः प्रपुराणशालयो मद्यानि धन्वाण्डजसम्भवा रसाः ॥ ७० ॥ पुराणकूष्माण्डफलञ्च तल्लता गोकण्टको वारुणशाकमार्द्रकम्। पाषाण-

भेदी यवशूकवेणवः स्थिरा समाकर्षणमत्रनामपि ।
एतानि सर्वाणि भवन्ति सर्वदा मुदेऽश्मरीरोगनि-
पीडितानाम् ॥ ७१ ॥

पिचकारी, विरेचन, वमन, लंघन, पसीना निकालना, शीतलजलमें घुसकर स्नानकरना, जलसिञ्चन, जौ, कुलथी, पुराने शालिके चावल, मदिरा, मरुदेशके और अण्डज प्राणियोंके मांसका रस, पुराना पेठा, पेठेकी बेल, गोखुरू, बरनाके कोमलपत्रोंका शाक, अदरख, पाषाणभेद, जवाखार, बाँसीके चावल, शालपर्णी और पथरीको निकालनेवाले द्रव्य, ये सब वस्तुयें अश्मरी, रोगसे पीडितजनोंको सर्वदा सर्वकालमें हितकारी हैं ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अश्मरीरोगमें अपथ्य ।

मूत्रस्य शुक्रस्य च वेगमम्लं विष्टम्भि रूक्षं गुरु चान्नपानम् ।
विरुद्धपानाशनमश्मरीमान् विवर्जयेत्सन्ततमप्रमत्तः ॥७२॥

मूत्र और शुक्रके अवरोध, खट्टेरस, विष्टम्भकारक, रूखे और पचनेमें भारी ऐसे अन्न तथा पान, एवं प्रकृतिविरुद्ध अन्नपान करना पथरीवाले रोगीको तत्काल छोडदेने चाहिये । क्योंकि ये सब इस रोगमें अपथ्य हैं ॥ ७२ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां अश्मरीचिकित्सा ॥

प्रमेहकी चिकित्सा ।

स्थूलः प्रमेही बलवानिहैकः कृशस्तथान्यः परिदुर्बलश्च ।
संबृंहणं तत्र कृशस्य कार्यं संशोधनं दोषबलाधिकस्य ॥१॥

प्रमेहरोगी दो प्रकारके होते हैं । जैसे कोई स्थूल और बलवान्, कोई कृश तथा दुर्बल । इनमें कृशपुरुषोंको बृंहण (मांस और बलवर्द्धक) औषधियोंसे एवं बलवान् पुरुषोंको दोषोंकी अधिकताहोनेपर वमन, विरेचनादिसे शुद्ध करे ॥१॥

ऊर्ध्वं तथाधश्च मलेऽपनीते मेहेषु सन्तर्पणमेव कार्यम् ।
संशोधनं नार्हति यः प्रमेही तस्य क्रिया संशमनी विधेया २

प्रमेहरोगमें वमन और विरेचनादिद्वारा सम्पूर्णदोष ऊपर तथा नीचे मार्गसे निकल जायँ तब सन्तर्पण क्रिया करे । किन्तु जो प्रमेहरोगी संशोधन करने योग्य नहीं हों उनकी रोगको नष्ट करनेवाली औषधियोंसे चिकित्साकरे ॥२॥

ये विष्किरा ये प्रतुदा विहङ्गास्तेषां रसैर्जाङ्गलजैर्मनोज्ञैः।
मन्दाः कषाया रसचूर्णलेहा मसूरमुद्गा लघवश्च भक्ष्याः ३॥

प्रमेहरोगीको विष्किर (मुरगा, कबूतर, हंस, मोर, तीतर) और प्रतुद (गिद्ध, बाज, काकादि) पक्षियोंका मांस एवं बकरी आदि जंगलीपशुओंका मांसरस, तथा कषैलेरसवाले पदार्थ व अल्प परिमाण क्वाथ, रस, चूर्ण, अवलेह, मसूर और मूँग आदि हल्के पदार्थ भोजन करने चाहिये ॥ ३ ॥

श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमचणकाढकी।
कुलत्थाश्च हिता भोज्या पुराणा मेहिनां सदा ॥
जाङ्गलं तिक्तशाकञ्च यवान्नञ्चंक्रमो मधु ॥ ४ ॥

बहुत पुराने समेके चावल, कोदों, वनकोदों, गेंहू, चने, अरहर और कुलथी ये सब अन्न प्रमेहरोगियोंको खाने चाहिये। एवं जङ्गलीपशु-पक्षियोंका मांसरस, कडुवे शाक, जौके बने अन्न और शहद इनका सेवन तथा परिभ्रमण करना इस रोगमें विशेष हितप्रद हैं ॥ ४ ॥

रूक्षमुद्वर्त्तनं गाढं व्यायामो निशिजागरः।
यच्चान्यच्छ्लेष्मपित्तघ्नं बहिरन्तश्च तद्धितम् ॥ ५ ॥

रूखे (बेसनआदि) पदार्थोंकी शरीरपर खूब जोरसे मालिश करना, दण्ड कसरत, भ्रमण रातमें जागना और शारीरिक अथवा मानसिक क्रियाद्वारा जो कफ पित्तको नष्टकरे ऐसे पदार्थ प्रमेहरोगियोंको हितकारी हैं ॥ ५ ॥

सर्वमेहहरो धात्र्या रसः क्षौद्रनिशायुतः।
कषायस्त्रिफलादारुमुस्तकैरथवा कृतः ॥
त्रिफलादारुदार्व्यब्दक्काथः क्षौद्रेण मेहहा ॥ ६ ॥

आमलोंके रसमें शहद और हल्दीका चूर्ण मिलाकर सेवन करे तो सर्वप्रकारका प्रमेह नष्ट होता है। अथवा त्रिफला, देवदारु और नागरमोथा इनके क्काथमें शहद और हल्दीका चूर्ण डालकर पान करे। किंवा हरड, बहेडा, आमला, देवदारु, दारुहल्दी और नागरमोथा इनके क्काथको मधु मिश्रितकर भक्षण करनेसे प्रमेह दूर होताहै ॥ ६ ॥

त्रिफलालोहशिलाजतुपथ्याचूर्णञ्च लीढमेकैकम्।
मधुनामरास्वरस इव सर्वान्मेहान्निवारयति ॥
पीतः सारो गुडूच्यास्तु मधुना तत्प्रमेहनुत ॥ ७ ॥

त्रिफलेका चूर्ण, लोहभस्म, शिलाजीत और हरडोंका चूर्ण इनमेंसे किसी एकको शहदमें मिलाकर चाटे। अथवा केवल गिलोयका रस और मधु एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे सर्वप्रकारके प्रमेहरोग निवृत्त होते हैं। गिलोयके सार (गूदा) को शहदमें मिलाकर पीतेही प्रमेह नष्ट होता है ॥ ७ ॥

शतावर्या रसं पीत्वा क्षीरेण सह यः पिबेत्।
प्रमेहा विंशतिस्तस्य क्षयं यान्ति न संशयः ॥ ८ ॥

शतावरके रस और दूधको एकत्र मिलाकर पान करे तो बीसों प्रकारके प्रमेह तत्काल नाश होते हैं। इसमें किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं ॥ ८ ॥

आमदुग्धं समजलं यः पिबेत्प्रातरुत्थितः।
निस्संशयं शुक्रमेहः पुराणस्तस्य नश्यति ॥ ९ ॥

नित्यप्रति प्रातःकाल उठकर कच्चा दूध और शीतलजल समानभाग मिलाकर पानकरनेसे पुराना शुक्रप्रमेहरोग निश्चय नष्ट होताहै ॥ ९ ॥

पलाशपुष्पतोलैकं सितायाश्चार्द्धतोलकम्।
पिष्टं शीताम्भसा पीतं मेहं हन्ति न संशयः ॥ १० ॥

टेसूके फूल एक तोला और मिश्री ६माशे इन दोनोंको शीवल जलमें पीसकर पीवे तो प्रमेह दूर होता है ॥ १० ॥

स्फाटिकं चूर्णमादाय नारिकेलोदरे क्षिपेत्।
तत्फलं पङ्कमध्ये तु स्थापयेदेकरात्रकम् ॥ ११ ॥
प्रातरानीय सजलं चूर्णं पेयं प्रयत्नतः।
अनेन चिरकालीनो मेहो नश्यति निश्चितम् ॥ १२ ॥

फिटाकिरीके चूर्णको नारियलमें भरकर कीचडमें गाड देवे और एक रात्रितक गडा रहनेदेवे। फिर प्रातःसमय निकालकर उसमेंसे फिटकिरीके चूर्णको ले जलमें पीसकर पान करे। इससे बहुत पुराना प्रमेहरोग निश्चय नाशहो ॥

व्यायामजातमखिलं भजन्मेहान् व्यपोहति।
पादत्रच्छत्ररहितो भिक्षाशी मुनिवद्यतः ॥ १३ ॥
योजनानां शतं गच्छेदाधिकं वा निरन्तरम्।
मेहाञ्जेतुं वने वापि नीवारामलकाशनः ॥ १४ ॥

व्यायाम (दण्ड, कसरत अथवा किसी प्रकारका परिश्रम) करनेसे सब प्रमेह दूर होते हैं। जूता, खड़ाऊँ और छतरीको त्याग (अर्थात् नंगे पाँव,

नंगे शिर) मुनियोंके समान संयतेन्द्रिय होकर भिक्षामाँगकर भोजन करे । और ४००कोसतक अथवा इससे भी अधिक दूरतक निरन्तर भ्रमणकरे । एवं वनवासी होकर नीवार व आमलोंका भोजनकर निर्वाह करताहुआ प्रमेहोंको जीते अर्थात् इस प्रकारके कृत्य करनेसे प्रमेह शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १३॥१४ ॥

माक्षिकं धातुमप्येवं युञ्ज्यादस्याप्ययं गुणः ॥ १५ ॥

पूर्वोल्लिखित शिलाजीतके प्रयोगके नियमानुसारही शुद्ध की हुई सोना-माखीके चूर्णको सेवन करनेसे प्रमेहरोग शमन होता है । यह धातु भी शिला-जीतके समान गुणोंवाली है ॥ १५ ॥

फलत्रिकादि ।

फलत्रिकं दारुनिशाविशालां मुस्तां च निःकाथ्य निशांशकल्कम् । पिबेत्कषायं मधुसंप्रयुक्तं सर्वप्रमेहेषु समुद्धतेषु ॥ १६ ॥

हरड, बहेडा, आमला, दारुहल्दी, इन्द्रायन और नागरमोथा इनका यथा-विधि क्वाथ बनालेवे । उसमें हल्दीका चूर्ण और शहद डालकर पीवे तो दारुण सर्व प्रमेहरोगोंमें शीघ्र लाभ होता है ॥ १६ ॥

विडङ्गादि ।

विडङ्गसर्जार्जुनकट्फलानां कदम्बलोध्राशनवृक्षकाणाम् । जलेन क्वाथश्च हितो नराणां कफप्रमेहं विनिहन्ति तेषाम् १७

वायविडङ्ग, शालवृक्षकी छाल, अर्जुनवृक्षकी छाल, कायफल, कदम्ब-वृक्षकी छाल, लोध और पीतशाल इनका एकत्र क्वाथ बनाकर पीनेसे कफो-त्पन्न प्रमेहरोग नष्ट होता है ॥ १७ ॥

मुस्तकादि ।

मुस्ताफलत्रिकनिशा सुरदारु मूर्वा इन्द्रासलोध्रसलिलेन कृतः कषायः । पाने हितः सकलमेहभवे गदे च मूत्रग्रहेषु सकलेषु नियोजनीयः ॥ १८ ॥

नागरमोथा, त्रिफला, हल्दी, देवदारु, मूर्वा, इन्द्रवारुणी और लोध इनको समानभाग लेकर यथानियम क्वाथ बनावे । इस क्वाथको सेवनकरनेसे समस्त प्रमेह व सर्वप्रकारके मूत्रजनित विकार नाश होते हैं ॥ १८ ॥

शिलाजतुप्रयोग ।

शालसारादितोयेन भावितं यच्छिलाजतु ।

पिबेत्तेनैव संशुद्धदेहः पिष्टं यथाबलम् ॥ १९ ॥
जाङ्गलानां रसैः सार्द्धं तस्मिञ्जीर्णे च भोजनम् ।
कुर्यादेवं तुलां यावदुपयुञ्जीत मानवः ॥ २० ॥
मधुमेहं विहायादौ शर्करामश्मरीं तथा ।
वपुर्वर्णबलोपेतः शतं जीवत्यनामयः ॥ २१ ॥

शालसारादिगणकी औषधियोंके काथसे शिलाजीतको भावना देवे, फिर धूपमें सुखाकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको वमन विरेचनादिसे शुद्ध शरीरवाला रोगी अपनी अग्निके बलाबलको विचारकर उक्त शालसारादिगणके काथमें मिलाकर सेवन करे । जब यह औषधि जीर्ण (हज्म) होजाय तब जङ्गली-पशुपक्षियोंके मांसरसके साथ भोजन करे । इसको प्रतिदिन प्रातःसमय एक एक तोला सेवन करे और जब सौ पल परिमाण औषधि भक्षण करचुके तब छोडदेवे । यह औषधि मधुमेहको छोडकर अन्य सर्वप्रकारके प्रमेहरोग शर्करा और पथरीरोगको नष्ट करतीहै । इसका सेवनकरनेवाला रोगी आरोग्य होकर और आयु, बल,वर्ण करके युक्त सौ वर्ष पर्यन्त जीताहै॥

कुशावलेह ।

कुशः काशो वीरणश्च कृष्णेक्षुः खगडस्तथा ।
एषां दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २२ ॥
अष्टभागावशेषं तु कषायमवतारयेत् ।
खण्डप्रस्थं समादाय लेहवत्साधु साधयेत् ॥ २३ ॥
अवतार्य ततः पश्चाच्चूर्णानिमानि दापयेत् ।
मधुकं कर्कटीबीजं कर्कारु त्रपुषं तथा ॥ २४ ॥
शुभामलकपत्राणि त्वगेला नागकेशरम् ।
वरुणामृता प्रियंगू प्रत्येकमक्षसम्मितम् ॥ २५ ॥
प्रमेहान्विंशतिं हन्ति मूत्राघातांस्तथाश्मरीम् ।
वातिकान्पैत्तिकांश्चापि श्लैष्मिकान्सान्निपातिकान् ॥
हन्त्यरोचकमत्युग्रं बलपुष्टिकरं परम् ॥ २६ ॥

कुशा, काँस, खस, कालीईख और खगड (तृण विशेष) इन सबकी मूलको चालीस चालीस तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । पकते पकते जब आठवाँ भाग जल शेष रहे तब उतारकर छानलेवे । फिर इस काथमें एक

प्रस्थ उत्तम खाँड डालकर विधिपूर्वक पाककरे जब अवलेहकी समान होजाय तब चूल्हेपरसे उतारकर उसमें मुलैठी, ककडीके बीज, पेठेके बीज, खीरेके बीज, वंशलोचन, आमले, तेजपात, दारचीनी, इलायची, नागकेशर, वरनाकी छाल, गिलोय और फूलप्रियंगू ये प्रत्येक दो दो तोले चूर्ण करके डालदेवे। सबको एकत्र मिलाकर उत्तम चिकने पात्रमें भरकर रखदेवे। यह अवलेह, नित्यप्रति उचितमात्रासे सेवन करनेसे बीसों प्रकारके प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी, वातज, पित्तज, कफात्मक और सन्निपातज विकार और अत्युग्र अरुचिको शीघ्र नष्ट करता है। एवं शरीरमें अत्यन्त बलकी वृद्धि पुष्टि करताहै॥२२-२६

शालसारादिलेह।

शालसारादिवर्गस्य क्वाथे तु घनतां गते।
दन्तीलोध्रशिवाकान्तलौहताम्ररजः क्षिपेत्॥
घनीभूतमदग्धं च प्राश्य मेहान्व्यपोहति॥ २७॥

शालसारादिगणकी समस्त औषधियोंको चौगुने जलमें पकावे और चतुर्भाग जल अवशिष्ट रहनेपर उतारकर छानलेवे। फिर दोबारा इस काथको पकावे और पकते २ जब अवलेहकी भाँति गाढा पडजाय तब चूल्हेसे नीचे उतारकर उसमें दन्तीमूल, लोध, हरड, कान्तलोहभस्म और अभ्रकभस्म इन औषधियोंका एकत्र मिलाहुआ चूर्ण शालसारादिवर्गकी औषधियोंके चतुर्थांशकी बराबर लेकर डालदेवे। जब अच्छे प्रकार पककर शीतल होजाय तब नियमानुसार इसका सेवनकरे। इससे सर्वप्रकारके प्रमेह दूर होते हैं॥२७

वंगावलेह।

वङ्गभस्म द्विपलश्च लेहयेन्मधुना सह।
ततो गुडसमं गन्धं भक्षयेत्कर्षमात्रकम्॥ २८॥
गुडूची सत्त्वमथवा शर्करासहितं तथा।
सर्वमेहहरो ज्ञेयो वङ्गावलेह उत्तमः॥ २९॥

वंगभस्म ८ तोले लेकर शहदमें मिलाकर चाटे। पश्चात् शुद्धगन्धक और गुड एक एक तोला परिमाण एकत्र मिश्रितकर सेवनकरे। अथवा गिलोयके सत्त्वको खांडके साथ भक्षण करे तो यह वंगावलेह सर्वप्रकारके प्रमेहोंको नष्ट करता है॥ २८॥ २९॥

विडंगादि लौह।

विडङ्गत्रिफलामुस्तैः कणया नागरेण च।

जीरकाभ्यां युतो हन्ति प्रमेहानातिदारुणान्।
लौहो मूत्रविकारांश्च सर्वाण्येव विनाशयेत्॥ ३०॥

वायविडंग, त्रिफला, नागरमोथा, पीपल, सोंठ, जीरा और कालाजीरा इन सबको समानभाग ले एकत्र चूर्ण करलेवे और सब चूर्णकी बराबर भाग लोहभस्म मिलाकर खूब वारीक पीसलेवे। इसके सेवनसे समस्त दारुण प्रमेह और अन्यान्यसम्पूर्ण मूत्रविकार नाश होते हैं॥ ३०॥

मेहकालानलरस।

भस्मसूतं मृतं वङ्गं तुल्यं क्षौद्रेण मर्दयेत्।
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं मेहं हन्ति चिरोत्थितम्॥
गुञ्जामूलं पिबेच्चानु क्षीरैरेव प्रशाम्यति॥ ३१॥

शुद्धपारेकी भस्म और वङ्गभस्म पृथक् २ एक तोला लेकर शहदके साथ खरल करलेवे। इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल दो रत्तीभर भक्षणकरे और ऊपरसे गुञ्जा (लताविशेष) की जडको पीसकर दूधमें मिलाकर पीवे तो बहुत दिनोंका पुराना प्रमेह शमन होता है॥ ३१॥

पञ्चाननरस।

सूतं गन्धं मृतं लौहं मृतमभ्रं समांशिकम्।
सर्वेषां द्विगुणं वङ्गं मधुना मर्दयेद्दिनम्॥ ३२॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय शीततोयं पिबेदनु।
प्रमेहान्विंशतिं हन्ति मूत्राघातं तथाश्मरीम्॥
मूत्रकृच्छ्रं हरेदुग्रमयं पञ्चाननो रसः॥ ३३॥

शुद्ध पारा, गन्धक, लोहभस्म और अभ्रकभस्म ये सब समानभाग और सबसे दुगुनी वङ्गभस्म लेकर एकदिनतक शहदमें यथाविधि खरलकरे। फिर इसको नित्यप्रति प्रातःकाल उठकर दो दो रत्तीप्रमाण खाय और ऊपरसे शीतल जल पानकरे। यह पञ्चानन रस वीसों प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी और अत्युग्र मूत्रकृच्छ्ररोगको नष्ट करता है॥ ३२॥ ३३॥

चन्द्रकला।

सूताभ्रवङ्गायसभस्म सर्वमेतत्समानं परिभावयेत्तु।
गुडूचिकाशाल्मलिकाकषायैर्निष्कार्द्धमानां मधुना ततश्च॥
वद्धा गुडीं चन्द्रकलेतिसंज्ञां मेहेषु सर्वेषु नियोजयेच्च॥३४॥

रससिन्दूर, अभ्रक, वङ्ग और लोहभस्म इन सबको समान भाग लेकर गिलोय और सेमलकी जडके काथमें भावना देवे। पश्चात् मधुके सहयोगसे खरलकरके एक एक तोलेकी गोलियाँ बनालेवे । चन्द्रकलानामवाला यह रस सर्वप्रकारके प्रेमहोंमें प्रयोग करनेसे शीघ्र लाभ होता है ॥ ३४ ॥

मेहमुद्गरवटिका ।

रसाञ्जनं विडं दारु बिल्वगोक्षुरदाडिमम् ।
प्रत्येकं तोलकं देयं लौहचूर्णन्तु तत्समम् ॥ ३५ ॥
पलैकं गुग्गुलुं दत्त्वा घृतेन वटिकां कुरु ।
प्रमेहान्विंशतिं हन्ति साध्यासाध्यमथापिवा ॥३६॥
मूत्रकृच्छ्रं तथा पाण्डुं धातुस्थञ्च ज्वरं जयेत् ।
हलीमकं रक्तपित्तं वातपित्तकफोद्भवम् ॥ ३७ ॥
ग्रहणीमामदोषञ्च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
एतान्सर्वान्निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ३८ ॥

रसौत, विडनमक, देवदारु, वेलगिरी, गोखुरूके बीज और पकाहुआ अनार ये प्रत्येक एक एक तोला और इनके समस्त चूर्णकी बराबर लोहभस्म तथा गूगल ४ तोले लेवे । पुनः सबको एकत्र कूटपीसकर घृतके द्वारा खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ प्रस्तुतकरे । तदनन्तर प्रत्यह प्रातःसमय एक एक गोली भक्षण करे तो साध्य व असाध्य बीसों प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुगत ज्वर, हलीमक, रक्तपित्त, वातज, पित्तज, कफजन्यरोग, संग्रहणी, आमवात, मन्दाग्नि और अरुचि ये सब रोग तत्काल नाश होते हैं ॥ ३५-३८ ॥

शुक्रमातृकावटी ।

गोक्षूरबीजं त्रिफला पत्रमेला रसाञ्जनम् ।
धान्यकं चविका जीरं तालीशं टङ्कदाडिमौ ॥ ३९ ॥
प्रत्येकार्द्धपलं दत्त्वा गुग्गुलोः कर्षमेव च ।
रसाभ्रगन्धलौहानां प्रत्येकञ्च पलं क्षिपेत् ॥ ४० ॥
सर्वमेकीकृतं वैद्यो दण्डयोगेन मर्दयेत् ।
घृतभाण्डे तु संस्थाप्य माषमेकञ्च भक्षयेत् ॥ ४१ ॥
अनुपानं प्रदातव्यं जातिभेदात्पृथक् पृथक् ।
दाडिमस्य रसेनैव छागदुग्धेन वाम्भसा ॥ ४२ ॥

प्रमेहान्विंशतिं हन्ति वातपित्तकफोद्भवान् ।
द्वन्द्वजान्सन्निपातोत्थान् मूत्रकृच्छ्राश्मरीगदान् ॥
बलवर्णाग्निजननी ज्वरदोषनिषूदनी ॥ ४३ ॥

गोखुरूके बीज, त्रिफला, तेजपात, इलायची, रसौत, धनियाँ चव्य, जीरा, तालीसपत्र, सुहागा और अनारदाना ये हरएक औषधि दो दो तोले गूगल १ तोला, शुद्धपारा ४ तोले, अभ्रक ४ तोले, शुद्धगन्धक ४ तोले तथा लोह-भस्म ४ तोले लेवे । सबको एकत्र करके जल डालकर लोहेके दण्डेसे अच्छे प्रकार खरल करे। फिर घीके चिकने वासनमें भरकर रख देवे । इसमेंसे हर-रोज प्रातःकाल एक एक माशा खावे । इसपर अनारका रस, बकरीका दूध और शीतलजल इन अनुपानोंको प्रमेहके दोषानुसार पृथक् पृथक् विचारकर देवे । यह वटी वातके पित्तके और कफके रोग अथवा द्विदोषज और त्रिदो-षजन्य बीसों प्रकारके प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी आदि रोगोंको बहुत जल्द आराम करती है। तथा ज्वरको नष्टकर बल कान्ति और उदराग्निको बढातीहै॥

वेदविद्यावटी ।

पारदाभ्रककान्तानां नागभस्म समं समम् ।
दिनं ब्राह्मीरसैर्मर्द्य वालुकायन्त्रगं पुनः ॥ ४४ ॥
उद्धृत्य चूर्णयेच्छ्लक्ष्णं जारिताभ्रं शिलाजतु ।
ताप्यं मण्डूरवैक्रान्तं कासीसं तुल्यमेव च ॥ ४५ ॥
सर्वं सर्वसमं चूर्णं कल्पयेच्च ततः पुनः ।
मुस्तचन्दनपुन्नागनारिकेलस्य मूलकम् ॥ ४६ ॥
कपित्थरजनीदार्वीचूर्णं सर्वसमं भवेत् ।
जम्बीराणां द्रवैर्मर्द्य द्वियामं वटकीकृतम् ॥ ४७ ॥
वेदविद्यावटी नाम्ना भक्षणात्सर्वमेहजित् ।
मधु धात्रीरसश्चानु क्षौद्रैर्वापि गुडूचिका ॥ ४८ ॥

शुद्धपारा, अभ्रक, कान्तलोह और शीशा इनकी भस्मको बराबर २ लेवे। फिर सबको ब्राह्मीके रसमें एक दिनभर उत्तम विधिसे खरल करके वालुका-यन्त्रमें रखकर पकावे । जब पककर शीतल होजाय तब उसको निकालकर बारीक पीसलेवे। तदनन्तर इस चूर्णके साथ अभ्रकभस्म, शिलाजीत, सोना-माखी, मण्डूरभस्म, वैक्रान्तमणिभस्म और हीराकसीस इन सबको समान

भाग लेकर एकत्र पीसकर मिलावे । एवं नागरमोथा, लालचन्दन, पुन्नागवृक्षकी जड, नारियलकी जड, कैथ, हल्दी और दारुहल्दी इनके समानांशामिलित चूर्णको लेवे । पुनः सबको एकत्रकर जम्बीरीनींबूके स्वरसमें दो प्रहरतक उत्तम प्रकारसे खरलकर तीन २ मासेकी गोली बनालेवे । इस वेदविद्यानामवाली वटीको प्रतिदिन प्रातःकाल आमलोंके रस और शहद अथवा गिलोयके रस एवं शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे सर्वप्रकारके प्रमेह दूर होते हैं ॥

वंगाष्टक ।

रसं गन्धं मृतं लौहं मृतरूप्यञ्च खर्परम् ।
मृताभ्रकं मृतं ताम्रं सर्वतुल्यञ्च वङ्गकम् ॥ ४९ ॥
पुटेद्गजपुटे विद्वान् स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
रक्तिद्वयप्रमाणेन मधुना लेहयेन्नरम् ॥ ५० ॥
निशाचूर्णं क्षौद्रयुतं पिबेद्धात्रीरसं ह्यनु ।
वङ्गाष्टकमिदं ख्यातं महादेवप्रकाशितम् ॥ ५१ ॥
प्रमेहान्विंशतिं हन्ति आमदोषं विषूचिकाम् ।
विषमज्वरगुल्मार्शोमूत्रातीसारपित्तजित् ॥
वीर्यवृद्धिं करोत्याशु सोमरोगनिबर्हणम् ॥ ५२ ॥

शुद्धपारा, गन्धक, लोहभस्म, रजतभस्म, खपरिया धातु, अभ्रकभस्म और ताँबेकी भस्म ये प्रत्येक समानभाग एवं वङ्गभस्म सबकी बराबर लेवे । इन सबको एकत्र खरलकर गजपुटमें स्थापन करके पकावे । जब स्वाङ्गशीतल होजाय तब निकालकर बारीक पीसलेवे । इस रसको प्रतिदिन सुबहके समय दो रत्ती प्रमाण मधुमें मिलाकर चाटे अथवा हल्दीके चूर्ण और शहदके साथ मिलाकर खाय पीछेसे आमलोंके रसको पीवे । इस वङ्गाष्टकनामकरसको श्रीमहादेवजीने प्रकट कियाहै । यह बीसों प्रमेहोंको एवं आमवात, विषूचिका, विषमज्वर गुल्म, बवासीर, मूत्रविकार, अतिसार और पित्तजन्यरोगोंको शीघ्र जीतता है । इसी प्रकार अत्यन्त वीर्यकी वृद्धि करता है और स्त्रियोंके सोमरोगको नष्टकरता है ॥ ४९-५२ ॥

मेहवज्र ।

भस्म सूतं मृतं कान्तं लौहभस्म शिलाजतु ।
शुद्धताप्यं शिला व्योषं त्रिफला बिल्वजीरकम् ॥ ५३ ॥
कपित्थं रजनीचूर्णं भृङ्गराजेन भावयेत ।

त्रिंशद्वारं विशोष्याथ लिह्याच्च मधुना सह ॥ ५४ ॥
निष्कमात्रं हरेन्मेहान्मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम् ।
महानिम्बस्य बीजञ्च षड्निष्कं पेषितञ्च यत् ॥ ५५ ॥
पलतण्डुलतोयेन घृतनिष्कद्वयेन च ।
एकीकृत्य पिबेच्चानु हन्ति मेहं चिरोत्थितम् ॥ ५६ ॥

शुद्धपारेकी भस्म, कान्तलोहकी भस्म, शिलाजीत, सोनामाखी, मैनशिल, सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, बेलगिरी, जीरा, कैथ और हल्दी इन औषधियोंको समानभाग लेकर कूटपीसकर चूर्ण करलेवे । पश्चात् इस चूर्णको भाङ्गरेके रसमें तीस वार भावना देकर सुखा लेवे । तदनन्तर नित्यप्रति प्रातःकाल इस चूर्णको एक एक तोला परिमाण शहदमें मिलाकर सेवन करे। ऊपरसे बकायनके बीजोंका चूर्ण २४ माशे लेकर चार तोले चावलोंके धोवनमें पीसे । फिर उसमें ८ माशे गोघृत डालकर पानकरे तो यह मेहवज्ररस बहुत पुराने प्रमेहों तथा दारुण मूत्रकृच्छ्रादि रोगोंको अल्पकालमें दूर करता है ॥

चन्द्रप्रभागुडिका ।

वेल्लव्योषफलात्रिकं त्रिलवणं द्विक्षारचव्यानल-
श्यामापिप्पलिमूलमुस्तकशठीमाक्षिकधातुत्वचः ।
षड्ग्रन्थामरदारुवारणकणाभूनिम्बदन्तीनिशा-
पत्रैलातिविषाः पिचुप्रतिमिता लौहस्य कर्षाष्टकम् ५७
त्वक्क्षीरीपलिका पुराद्दशपलान्यष्टौ शिलाजन्मनो-
मानात्कर्षसमाकृतेति गुडिका संयोज्य सर्वं भिषक् ।
तत्रैव प्रतिवासरं सह घृतक्षौद्रेण लिह्यादिमां
तक्रं मस्तु च गोघृतं मधुरसं पश्चात्पिबेन्मात्रया ॥ ५८ ॥

वायविडङ्ग, सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, सेंधानमक, कालानमक, विडनमक, जवाखार, सज्जी, चव्य, चीता, कालीसर, पीपलामूल, नागरमोथा, कचूर, सोनामाखी, दारचीनी, वच, देवदारु, गजपीपल, चिरायता, दन्ती, हल्दी, पत्रज, इलायची और अतीस ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले और लोहभस्म १६ तोले, वँशलोचन ४ तोले, शुद्ध गूगल ४० तोले एवं शिलाजीत ३२ तोले लेवे । इन सबको एकत्र बारीक कूटपीसकर जलमें खरल करके दो दो तोलेकी गोलियाँ बनालेवे । वटीको प्रतिदिन प्रातःसमय घृत और

शहदमें मिलाकर सेवन करे । इसपर मट्ठा, दहीका तोड, गौका घी और मधु इनमेंसे किसी एकको उचित मात्रासे सेवन करे तो इससे प्रमेह और मूत्रकृच्छ्ररोग नष्ट होते हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

चन्द्रप्रभावटी ।

चन्द्रप्रभावचामुस्ताभूनिम्बसुरदारवः ।
हरिद्रातिविषा दार्वी पिप्पलीमूलचित्रकम् ॥ ५९ ॥
त्रिवृद्दन्ती पत्रकञ्च त्वगेला वंशलोचना ।
प्रत्येकं कर्षमानानि कुर्यादेतानि बुद्धिमान् ॥ ६० ॥
धान्यकं त्रिफला चव्यं विडङ्गं गजपिप्पली ।
सुवर्णमाक्षिकं व्योषं द्वौ क्षारौ लवणत्रयम् ॥ ६१ ॥
एतानि टंकमानानि संगृह्णीयात्पृथक् पृथक् ।
द्विकर्षं हतलौहं स्याच्चतुष्कर्षा सिता भवेत् ॥ ६२ ॥
शिलाजत्वष्टकर्षं स्यादष्टौ कर्षाश्च गुग्गुलोः ।
विधिना योजितैरेतैः कर्त्तव्या वटिका शुभा ॥ ६३ ॥
चन्द्रप्रभेति विख्याता सर्वरोगप्रणाशिनी ।
निहन्ति विंशतिं मेहान् कृच्छ्रमष्टविधं तथा ॥ ६४ ॥
चतस्रश्चाश्मरीस्तद्वन्मूत्राघातांस्त्रयोदश ।
अण्डवृद्धिं पाण्डुरोगं कामलाञ्च हलीमकम् ॥ ६५ ॥
कासं श्वासं तथा कुष्ठमग्निमान्द्यमरोचकम् ।
वातपित्तकफव्याधीन्बल्या वृष्या रसायनी ॥ ६६ ॥
समाराध्य शिवं तस्मात्प्रयत्नाद्वटिकामिमाम् ।
प्राप्तवांश्चन्द्रमा यस्मात्तस्माच्चन्द्रप्रभा स्मृता ॥ ६७ ॥

बावची, वच, नागरमोथा, चिरायता, देवदारु, हल्दी, अतीस, दारुहल्दी, पीपलामूल, चीता, निसोत, दन्ती, तेजपात, दारचीनी, इलायची और वंशलोचन ये प्रत्येक दो दो तोले एवं धनियाँ, त्रिफला, चव्य, वायविडंग, गजपीपल, शुद्ध स्वर्णमाक्षिक, त्रिकुटा, सज्जी, जवाखार, सैंधानमक, विरियासञ्चरनमक और विडनमक ये प्रत्येक चार २ मासे, लोहभस्म चार तोले, मिश्री ८ तोले, शिलाजीत १६ तोले और गूगल १६ तोले लेवे । इन सबको एकत्र कूट पीसकर अच्छे प्रकार खरल करके गोलियाँ बनालेवे । चन्द्रप्रभानामसे प्रसिद्ध यह वटी सम्पूर्ण रोगोंको नाश करनेवाली है । एवं बीसों-

प्रकारके प्रमेह, आठप्रकारके मूत्रकृच्छ्र, चार प्रकारकी पथरी, तेरह प्रकारके मूत्राघात, अण्डकोषवृद्धि, पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, खाँसी, श्वास, कोढ, मन्दाग्नि, अरुचि और वातज, पित्तज तथा कफजनित रोगोंको तत्काल नष्ट कर देती है । इसी प्रकार बलकारक, वीर्यवर्द्धक और अत्युत्तम रसायन है । इस वटीको शिवजीमहाराजकी आराधना करके चन्द्रमाने प्राप्त किया था इस कारण इसका चन्द्रप्रभा नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ५९–६७ ॥

स्वर्णवंग ।

प्रक्षिपेद्भाजने वङ्गमायसे चापि मृण्मये ।
विद्रुते वह्नितापेन तस्मिंस्तन्मानकं रसम् ॥ ६८ ॥
क्षिप्त्वा संचूर्णयेत्तत्र नरसारञ्च गन्धकम् ।
तरुवासो मृदा लिप्त्वा काचकुप्यां निधाय च ॥ ६९ ॥
तत्सर्वं सिकतायन्त्रे पचेद्यामचतुष्टयम् ।
पाकात्सञ्जायते चित्रं कीर्णं हेमकणैरिव ॥ ७० ॥
रमणीयतरं स्वर्णवङ्गं नाम रसायनम् ।
बल्यं मेहहरं कान्तिमेधावीर्याग्निवर्द्धनम् ॥ ७१ ॥

किसी लोहेके या मिट्टीके बर्त्तनमें वंग (राँग) को रखकर तीक्ष्ण अग्निमें गलावे । जब वह अच्छे प्रकार गलजाय तब निकालकर उसके बराबर शुद्ध पारा, पारेके बराबर शुद्धगन्धक और गन्धककी बराबर नौसादर मिलाकर बारीक चूर्ण करलेवे । तदनन्तर इस चूर्णको बोतलमें भरकर और उसके ऊपर कपरमिट्टी करके वालुकायन्त्रमें रख चार प्रहरतक पकावे । पककर जब बोतलके अन्दर सुवर्णके कणोंके समान बिखरजाय तब यह स्वर्णवंगनामवाली अत्युत्तम रसायन तैयार होती है । यह सर्वप्रकारके प्रमेहोंको दूर करती है एवं अत्यन्त बलकारक, कान्तिजनक, मेधा वीर्य और उदराग्निको बढातीहै ॥

मेहकेशरी ।

मृतं वङ्गं सुवर्णञ्च कान्तलौहञ्च पारदम् ।
मुक्ता गुडत्वचञ्चैव सूक्ष्मैला पत्रकेशरम् ॥ ७२ ॥
समभागं विचूर्ण्याथ कन्यानीरेण भावयेत् ।
द्विमाषां वटिकां खादेद्दुग्धान्नं प्रपिबेत्ततः ॥ ७३ ॥
प्रमेहं नाशयेदाशु केसरी करिणं यथा ।
शुक्रप्रवाहं शमयेत्त्रिरात्रान्नात्र संशयः ॥ ७४ ॥

वङ्गभस्म, सुवर्णभस्म, कान्तलोहभस्म, शुद्धपारदभस्म, मोतीभस्म, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेशर इनको समानभागलेकर एकत्र बारीक चूर्णकरके घीग्वारके रसमें यथाविधि खरल करे। फिर दो दो माशेकी गोलियाँ बानलेवे। इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक गोली खाय और इसपर दूध भात भक्षण करे। इसके सेवन करनेसे प्रमेह और वीर्यक्षीणतादिरोग तीनरातमें ही निस्सन्देह इस प्रकार नष्ट होजाते हैं, जैसे सिंह गजेन्द्रको नष्ट करदेता है ॥ ७२-७४ ॥

मेहान्तकरस ।

रसगन्धकलौहञ्च तारं वङ्गं त्रिभागिकम् ।
अभ्रकस्य त्रयो भागा भागार्द्धेन सुवर्णकम् ॥ ७५ ॥
सर्वचूर्णसमं दद्यात्तालमूलीसुचूर्णितम् ।
नानारोगहरं श्रेष्ठं वातपित्तभवं महत् ॥
कान्तिपुष्टिकरश्चैव रतिशक्तिविवर्द्धनम् ॥ ७६ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, लोहा, रूपा, वङ्ग और अभ्रक ये प्रत्येक तीन तीन तोले एवं स्वर्णभस्म ६ माशे और मुसलीका चूर्ण १८॥ तोले लेकर एकत्र पीसकर जलमें खरलकरके तीन २ माशेकी गोलियाँ बनालेवे। यह रस वात और पित्तसे हुए दुस्तर प्रमेहों तथा अनेक प्रकारकी उत्कट व्याधियोंको नाश करता है। इसी भाँति अत्यन्त पुष्टिकारक एवं कान्ति और रतिशक्तिकी वृद्धि करनेवाला है ॥ ७५-७६ ॥

सर्वेश्वररस ।

स्वर्णं रौप्यं मौक्तिकञ्च विशुद्धञ्च शिलाजतु ।
लौहमभ्रं तथा ताप्यं मधु यष्टी च पिप्पली ॥ ७७ ॥
मरिचं विश्वकश्चेति सर्वमेकत्र कारयेत् ।
विमर्द्य प्रहरं यत्नात्कज्जलाकृतिसन्निभम् ॥ ७८ ॥
केशराजभृङ्गराजशक्रासनरसे पृथक् ।
प्रमेहं विविधं हन्ति मधुमेहं सुदुर्जयम् ॥ ७९ ॥
वातपित्तसमुद्भूतं तथा कफसमुद्भवम् ।
सर्वेश्वरो रसो नाम्ना प्रमेहकुलनाशकः ॥ ८० ॥

सुवर्ण, चाँदी, मोती, शुद्ध शिलाजीत, लोहा अभ्रक, सोनामाखी, मुलैठी, पीपल, काली मिरच और सोंठ इन सबको समान भाग लेवे फिर एकत्र

पीसकर काले भाङ्गरे, सफेद भाङ्गरे और भाँगके रसमें क्रमानुसार पृथक् पृथक् एक एक पहरतक खूब खरल करे। जब घुटकर काजलकी समान वर्ण होजाय तब दो दो रत्तीकी गोलियाँ तैयार करलेवे। यह रस वातज, पित्तज, कफज एवं अन्यान्य दोषजात बीसों प्रकारके प्रमेह और दुर्जय मधुमेह रोगको मूल-सहित नष्ट करता है। इसको सर्वेश्वररस कहते हैं॥ ७७–८०॥

१–वङ्गेश्वर।

रसस्य भस्मना तुल्यं वङ्गभस्म प्रयोजयेत्।
अस्य माषद्वयं हन्ति मेहान्क्षौद्रसमन्वितम्॥ ८१॥

शुद्धपारेकी भस्म और वङ्गभस्म समानभाग लेकर एकत्र खरल करलेवे। नित्यप्रति प्रातःसमय इसमेंसे दो मासे प्रमाण लेके शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे सब प्रमेह नष्ट होते हैं॥ ८१॥

२–वङ्गेश्वररस।

वङ्गं कान्तञ्च गगनं हेमपुष्पं समं समम्।
कुमारीरसतो भाव्यं सप्तवारं भिषग्वरैः॥ ८२॥
एष वङ्गेश्वरो नाम प्रमेहान्विंशतिं जयेत्।
मूत्रकृच्छ्रं सोमरोगं पाण्डुरोगं महाश्मरीम्॥ ८३॥
रसायनमिदं श्रेष्ठं नागार्जुनविनिर्मितम्॥ ८४॥

वंग, कान्तसारलोह, अभ्रक और नागकेशर इन सबको एक एक तोला लेकर घीग्वारके रसमें सातवार भावना देवे।फिर अच्छे प्रकार घोटकर तीन २ मासेकी वटी प्रस्तुत करलेवे यह मूत्रकृच्छ्र सोमरोग पाण्डु और अश्मरी रोगको दूर करता है। इस सुन्दररसायनको नागार्जुनमुनिने निर्माण कियाहै॥

बृहद्वङ्गेश्वररस।

वङ्गभस्मरसं गन्धं रूप्यं कर्पूरमभ्रकम्।
कर्षं कर्षं मानमेषां सूताङ्घ्रिं हेममौक्तिकम्॥ ८५॥
केशराजरसैर्भाव्यं द्विगुञ्जाफलमानतः।
प्रमेहान्विंशतिं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः॥८६॥
मूत्रकृच्छ्रं तथा पाण्डुं धातुस्थञ्च ज्वरं जयेत्।
हलीमकं रक्तपित्तं वातापित्तकफोद्भवम्॥ ८७॥
ग्रहणीमामदोषञ्च मन्दाग्नित्वमरोचकम्।
एतान्सर्वान्निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा॥ ८८॥

वङ्गभस्म, शुद्ध पारेकी भस्म, शुद्ध गन्धक, रूपाभस्म, कपूर और अभ्रक ये प्रत्येक दोदो तोले, सुवर्णभस्म ६ माशे और मोतीभस्म ६ माशे लेवे । सबको एकत्रकर भाङ्गरेके रसमें खरल करके दोदो रत्तीकी गोलियाँ बनावे । यह रस साध्य व असाध्य २० प्रकारके प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र पाण्डु, धातुगत ज्वर, हलीमक, रक्तपित्त, वातके-पित्तके और कफके रोग, संग्रहणी, आमवात, अग्निमान्द्य और अरुचि आदि सम्पूर्ण विकारोंको शीघ्र दूर करता है ॥ ८५-८८ ॥

द्वितीय-बृहद्वङ्गेश्वररस ।

सूतं गन्धं मृतं लौहं मृतमभ्रं समांशिकम् ।
हेम वङ्गञ्च मुक्ता च ताप्यमेष समं समम् ॥ ८९ ॥
सर्वेषां चूर्णितं कृत्वा कन्यारसविमर्दितम् ।
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन वटिकां कुरु यत्नतः ॥ ९० ॥
बृहद्वङ्गेश्वरो ह्येष रक्तमूत्रे प्रशस्यते ।
श्वेतमूत्रं बहुमूत्रं मुत्रकृच्छ्रं तथैव च ॥ ९१ ॥
सर्वविधप्रमेहांस्तु नाशयेदाविकल्पतः ।
अग्निवृद्धिं वयोवृद्धिं कान्तिवृद्धिं करोति च ॥९२॥
क्षयरोगं निहन्त्याशु कासं पञ्चविधं तथा ।
कुष्ठमष्टादशविधं पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ ९३ ॥
शूलं श्वासं ज्वरं हिक्कां मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
क्रमेण शीलितो हन्ति वृक्षामिन्द्राशनिर्यथा ॥ ९४ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहा, अभ्रक, सुवर्ण, वङ्ग, मोती और सोनामाखी इन सबकी भस्म समानभाग लेकर एकत्र पीसकर घीग्वारके स्वरसमें यथाविधि खरल करे । तदनन्तर दो रत्ती प्रमाण गोलियाँ बनालेवे । यह बृहद्वङ्गेश्वर नामकरस रक्तगतमूत्रमें प्रयोग करनेसे विशेष लाभ होता है । एवं श्वेतमूत्रादि उपर्युल्लिखित सर्वप्रकारके मूत्रविकार तथा अन्याय रोगोंको ऐसे नष्ट करता है, जैसे कि इन्द्रका वज्र वृक्षोंके समूहको नष्ट करदेता है । इससे अग्निकी-वृद्धि, आयुकी वृद्धि और शरीरमें कान्ति उत्पन्न होती है॥८९-९४॥

हरिशङ्कररस ।

मृतं सूताभ्रकं तुल्यं धात्रीफलनिजद्रवैः ।
सप्ताहं भावयेत्खल्ले योगोऽयं हरिशङ्करः ॥
माषमात्रां वटीं खादेत्सर्वमेहप्रशान्तये ॥ ९५ ॥

रससिन्दूर और अभ्रकभस्म इन दोनोंको आमलोंके रसमें सातदिनतक भावना (खरल) देकर एकएक माशेकी गोलियाँ निर्माण करे। इस योगका नाम हरिशंकर है। इसके खानेसे सब प्रमेह शान्त होवे हैं ॥ ९५ ॥

बृहद्धरिशंकररस।

रसगन्धकलौहञ्च स्वर्णं वङ्गञ्च माक्षिकम्।
समभागं तु संपिष्य वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ९६ ॥
सप्ताहमामलद्रावैर्भावितोऽयं रसेश्वरः।
हरिशंकरनामाऽयं गहनानन्दभाषितः ॥
प्रमेहान्विंशतिं हन्ति सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ९७ ॥

शुद्धपारा, गन्धक, लोहा, सोना, वङ्ग और सोनामाखी इनकी भस्मको समानांश लेवे। सबको आमलोंके रसद्वारा एक सप्ताहपर्यन्त भावना देकर अच्छे प्रकार खरल करके एक एक माशा प्रमाण गोलियाँ बनालेवे। इस योगका हरिशंकरनाम है और यह सम्पूर्ण रसोंका ईश्वर है। इसको गहनानन्दनाथने प्रकाशित किया है। यह बीसों प्रकारके प्रमेहोंको सन्देहरहित नष्ट करदेता है। यह बिलकुल सत्य है ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

मेहकुञ्जरकेशरीरस।

रसगन्धायसाभ्राणि नागवङ्गौ सुवर्णकम्।
वज्रकं मौक्तिकं सर्वमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ॥ ९८ ॥
शतावरीरसेनैव गोलकं शुष्कमातपे।
बुद्ध्वा शुष्कं समुद्धृत्य शरावे सुदृढे क्षिपेत् ॥ ९९ ॥
सन्धिलेपं मृदा कुर्याद्गर्तायां गोमयाग्निना।
पुटेद्यामचतुः संख्यमुद्धृत्य स्वाङ्गशीतलम् ॥ १०० ॥
श्लक्ष्णखल्ले विनिःक्षिप्य गोलं तु मर्दयेद्दृढम्।
देवब्राह्मणपूजाञ्च कृत्वा धृत्वाथ कूपिके ॥ १०१ ॥
खादेद्वल्लद्वयं प्रातः शीतञ्चानु पिबेज्जलम्।
अष्टादश प्रमेहांश्च जयेन्मासोपयोगतः ॥ २ ॥
तुष्टिं तेजो बलं वर्णं शुक्रवृद्धिञ्च दारुणाम्।
अग्नेर्बलं वितनुते मेहकुञ्जरकेसरी ॥
दिव्यं रसायनं श्रेष्ठं नात्र कार्या विचारणा ॥ ३ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहा, अभ्रक, शीशा, वङ्ग, सुवर्ण, हीरा और मोती इन सबकी भस्म समानभाग लेकर एकत्र पीसलेवे । फिर शतावरके रसमें सबको विधिपूर्वक खरल करके गोलासा बनाकर धूपमें सुखालेवे । जब खूब सूख जाय तब उस गोलेको सुदृढ दो शरावोंमें स्थापन करे और मिट्टीसे शरावोंके छिद्रोंको लेसकर गड्ढेमें रख उपलोंकी अग्निद्वारा ४ प्रहरतक मृदु पुटपाक करे । जब पककर स्वाङ्गशीतल होजाय तब उक्त गोलेको निकालकर लोहेके खरलमें रखकर उत्तम विधिसे घोटलेवे । तदुपरान्त प्रतिदिन प्रातःकाल देवता, ब्राह्मणोंको पूजनकर और कुछ कुएँपर रखकर इस रसको दो दो रत्ती प्रमाण शीतल जलके साथ सेवन करे । एक महीनेतक नियमानुसार इसका सेवन करनेसे १८ प्रकारके प्रमेह दूर होते हैं । मनमें प्रसन्नता, तेज, बल, वर्ण और वीर्यकी अत्यन्त वृद्धि और जठराग्नि प्रबल होती है । यह दिव्य रसायन मेहरूपी हाथीको नष्ट करनेके लिये सिंहकी समान है ॥९८-१०३॥

अपूर्व मालिनिवसन्त ।

वैक्रान्तमभ्रं रविताप्यं रौप्यवङ्गं प्रवालं रसभस्म लौहम् ।
सटङ्कणं कम्बुकभस्म सर्वं समांशकं सेव्यवरीहरिद्राः॥१०४॥
द्रवैर्विभाव्यं मुनिसंख्यया च मृगाङ्कजाशीतकरेण पश्चात् ।
वल्लप्रमाणो मधुपिप्पलीभिर्जीर्णज्वरे धातुगते नियोज्यः ॥
गुडूचिकासत्त्वसितायुतश्च सर्वप्रमेहेषु नियोजनीयः ॥ ५ ॥
कृच्छ्राश्मरीं निहन्त्याशु मातुलुङ्गांघ्रिजैर्द्रवैः ।
रसो वसन्तनामायमपूर्वो मालिनीपदः ॥ १०६ ॥

वैक्रान्तमणि, अभ्रक, ताँवा, सोनामाखी, चाँदी, वङ्ग, मोती, रससिन्दूर, लोहा, सुहागा और शङ्खभस्म इन सबको बराबर भाग लेवे । फिर एकत्र करके खस, शतावर और हल्दी इनके रसोंसे क्रमपूर्वक ७ दिनतक खरल करे । पश्चात् कस्तूरी और कपूरके जलमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इसको धातुस्थित जीर्ण ज्वरमें शहद और पीपलके चूर्णमें, सर्वप्रकारके प्रमेहोंमें गिलोयके सत्त्व और मिश्रीके साथ एवं मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीरोगमें, बिजौरेनींबूकी जडके क्काथमें मिलाकर सेवन करे तो उक्तरोग और अन्यतर उत्कट व्याधियाँ तत्क्षण नष्ट होती हैं । यह अपूर्वमालिनीवसन्त नामवाला अत्युत्तम रस है ॥ १०४-१०६ ॥

बृहत्कामचूडामणिरस।

मौक्तिकं माक्षिकञ्चैव स्वर्णभस्म पृथक् पृथक्।
कर्पूरं जातिकोषञ्च जातीफललवङ्गकम्॥ १०७॥
वङ्गभस्म तथा ग्राह्यं रूप्यञ्चापि तथार्द्धकम्।
चातुर्जातञ्च संग्राह्यं सर्वमेकत्र चूर्णितम्॥ १०८॥
शतमूलीरसेनैव भावयेत्सप्तवारकम्।
ततो गुञ्जाप्रमाणेन वटिका भिषजा कृता॥ १०९॥
अनुपानविशेषेण रोगाकरविनाशिनी।
शीतं पयोऽनुपानञ्च कामिनीः कामयेच्छतम्॥११०॥
वीर्यहीनो भवेद्यस्तु यो वा स्यात्पतितध्वजः।
सोऽशीतिवार्षिको भूत्वा युवेव रमतेऽङ्गनाः॥ ११॥
भेषजैर्विविधैः किं स्याद्न्यैश्च शतसंख्यकैः।
फलं न किञ्चित्तत्रास्ति केवलं गौरवं मुहुः॥ १२॥
नातः परतरं किञ्चिदस्ति पुष्टिकरञ्च तत।
अतः सर्वप्रयत्नेन सेव्यो भूमिभुजा सदा॥ १३॥
विशेषाद्ध्वजभङ्गञ्च मन्दाग्निं श्वयथुं तथा।
रक्तोद्भवञ्च नारीणां पानाद्दोषो विनाश्यति।
प्रमेहं मूत्ररोगञ्च सप्ताहेन विनाशयेत्॥ ११४॥

मोती, स्वर्णमाक्षिक, सुवर्ण इनकीभस्म, कपूर, जावित्री, जायफल, लौंग, वङ्गभस्म ये प्रत्येक एकएक तोला एवं रूप्यभस्म, दारचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर ये प्रत्येक छः २ माशे लेवे। फिर सबको एकत्र पीसकर शतावरके रसमें सातबार भावना देकर एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे एक गोली प्रातिदिन प्रातःकाल अनुपानविशेषके साथ सेवन करनेसे समस्त रोगोंके समूह नष्ट होते हैं। शीतल दूधके साथ इसको भक्षण करे तो सैकडों स्त्रियोंमें गमन करसकता है। जो वीर्य्यहीन हैं या जिनकी ध्वजा भङ्ग होगई है वे पुरुष अस्सी वर्षके बूढे होकर भी इस रसके सेवनसे युवा पुरुषके समान असंख्य रमणियोंके साथ रमण करसकते हैं। अन्यान्य नानाप्रकारकी सैंकडों औषधियोंसे सिवा गुरुताके और नहीं होता। इससे

बढकर पुष्टिकरनेवाली उत्तम औषधि कोई नहीं है, इसलिये राजा, महाराजाओंको इसका सप्रयत्न सेवन करना चाहिये। यह रस विशेषकर ध्वजभङ्ग, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मन्दाग्नि, सूजन और स्त्रियोंके रक्तोत्पन्न दोषोंको एक सप्ताहमेंही नाश करता है ॥ १०७-११४ ॥

प्रमेहचिन्तामणि।

मृतसूताभ्रवङ्गञ्च स्वर्णं लौहं प्रकल्पयेत्।
मौक्तिकञ्च प्रवालन्तु माक्षिकं सममाहरेत् ॥ १५ ॥
कन्यानीरेण सम्मर्द्य द्विगुञ्जाफलमानतः।
छायाशुष्का वटी कार्या भक्षणीया प्रयत्नतः ॥ १६ ॥
प्रमेहान्विंशतिं हन्ति बहुमूत्रञ्च सोमकम्।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च मूत्राघातं सुदारुणम् ॥
वृष्यो बलकरो हृद्यः शुक्रवृद्धिकरः परः ॥ ११७ ॥

पारदभस्म, अभ्रक, वङ्ग, सोना, लोहा, मोती, मूँगा और सोनामाखी इन सबकी भस्मको समानभाग लेकर घीग्वारके रसमें उत्तमविधिसे खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनावे। फिर छायामें सुखाकर रखलेवे। इसको यथानियम सेवन करनेसे बीसों प्रकारके प्रमेह, बहमूत्र, सोमरोग, पथरी, मूत्रकृच्छ्र और दारुण मूत्राघातप्रभृतिरोग शमन होतेहैं। यह रस पुष्टिकारक, बलदायक हृदयको हितकारी व वीर्य्यकी अत्यन्तवृद्धि करनेवालाहै११५-११७

शाल्मलीघृत।

शाल्मलीद्रवसंयुक्तं सर्पिश्छागीपयोऽन्वितम्।
अश्वगन्धां वरीं रास्नां मुषलीं विश्वभेषजम् ॥ १८ ॥
अनन्तां मधुकं द्राक्षां दत्त्वा च पलमानतः।
पचेन्मन्दाग्निना वैद्यः पात्रे मृत्परिनिर्मिते ॥ १९ ॥
प्रमेहान्निखिलान्हन्ति शुक्रमेहं विशेषतः।
क्लैब्यं धातुक्षयं शोषं कासञ्चैतद्धरं घृतम् ॥ १२० ॥

सेमलकी मूसलीका रस दो सेर, बकरीका घी दो सेर, बकरीका दूध दो सेर एवं असगन्ध, शतावर, रायसन, मुसली, सोंठ, अनन्तमूल, मुलैठी और दाख इनके चार चार तोले चूर्णको लेवे। सबको ८ सेर जलमें मन्द मन्द अग्निसे पकावे। पककर जब घृतमात्र शेष रहजाय तब उतारकर स्वच्छ मिट्टीके

बर्त्तनमें भरकर रखदेवे। इस घृतको सेवन करनेसे सर्वप्रकारके प्रमेह विशेषकर शुक्रप्रमेह, नपुंसकता, धातुक्षीणता, शोष, खाँसी आदि विकार जाय॥

दाडिमाद्यघृत।

दाडिमस्य तु बीजानि कृमिघ्नस्य च तण्डुलाः।
रजनी चविकाजाजी त्रिफला नागरं कणा॥ १२१॥
त्रिकण्टकस्य बीजानि यमानी धान्यकं तथा।
वृक्षाम्लं चपला कोलं सिन्धूद्भवसमायुतम्॥ २२॥
कल्कैरक्षसमैरेभिः घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
पाने भोज्ये च दातव्यं सर्वर्त्तुषु च मात्रया॥ २३॥
प्रमेहान्विंशतिविधान् मूत्राघातांस्तथाश्मरीम्।
कृच्छ्रं सुदारुणञ्चैव हन्यादेतन्न संशयः॥ २४॥
विबन्धानाहशूलघ्नं कामलाज्वरनाशनम्।
दाडिमाद्यघृतं नाम्ना अश्विभ्यां निर्म्मितं पुरा॥१२५

अनारदाने, वायाविडङ्ग, हल्दी, चव्य, कालाजीरा, त्रिफला, सोंठ, पीपल, गोखुरूके बीज, अजवायन, धनियाँ, विषांबिल, पीपलामूल, बेर और सैन्धानमक इनका दो दो तोले कल्क एवं गोघृत १ प्रस्थ लेकर ८ सेर जलमें पकावे। जब अच्छे प्रकार पककर सिद्ध होजाय तब इस घृतको पान और भोजनमें उचित मात्रासे प्रदान करे। यह घृत सब ऋतुओंमें सेवन किया जाता है। यह बीसों प्रकारके प्रमेह, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, विबन्ध, आनाह, शूल, कामला और ज्वरादिरोगोंको निश्चय नाश करता है। इस दाडिमाद्यनामक घृतको अश्विनीकुमारोंने बनाया है॥ १२१-१२५॥

बृहद्दाडिमाद्यघृत।

चतुःषष्टिपलं पक्वदाडिमस्य सुकुट्टितम्।
चतुर्गुणं जलं दत्वा चतुर्भागावशेषितम्॥ २६॥
क्वाथेन वस्त्रपूतेन घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
दाडिमं चविकाजाजीकृमिघ्नं रजनीद्वयम्॥ २७॥
द्राक्षाखर्जूरमुञ्जातमुत्पलं गजपिप्पली।
अजमोदा महानिम्बं काकोली नागरं वचा॥ २८॥

देवाह्वा चविका कुष्ठं काश्मरी मधुयष्टिका।
श्यामेन्द्रवारुणी मूर्वा शुभा शृङ्गी धनीयकम् ॥ २९॥
कुलत्थं च महामेदा निम्बश्च बृहतीद्वयम्।
दण्डोत्पलं वरा वासा सतला सिन्धुवारकम् ॥१३०॥
कल्कश्चैषां युक्तियोगाद्ग्राह्यो हि परिभाषया।
प्रमेहं वातिकं हन्ति पैत्तिकं श्लैष्मिकं तथा ॥ ३१॥
हृच्छूलं वस्तिजं शूलं मूत्राघातास्त्रयोदश।
हिक्कां श्वासश्च कासश्च यक्ष्माणं सर्वरूपिणम् ॥ ३२॥
स्वरक्षयमुरोरोगं रक्तपित्तमरोचकम्।
ये च प्रमेहजा रोगास्तान्सर्वान्नाशयत्यपि ॥ ३३॥
दाडिमाद्यमिदं सर्वप्रमेहानां निषूदनम्।
अश्विभ्यां निर्मितं ह्येतत्प्रमेहकरिकेसरी ॥ १३४॥

उत्तम पकेहुए अनारके ६४ पल बीजोंको कूटकर २५६ पल जलमें पकावे। पकते२जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। पुनः इस क्वाथमें गोघृत ६४ तोले एवं अनारका छिल्का, चव्य, कालाजीरा, वायविडङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी, दाख, खजूर, ताडका माथा, नीलाकमल, गजपीपल, अजमोद, वकायन, काकोली, सोंठ, वच, देवदारु, चव्य,कूठ, कुम्भेर, मुलैठी, श्यामालता, इन्द्रवारुणी, मूर्वा, वंशलोचन, काकडासिंगी, धनियाँ, कुलथी, महामेदा, नीमकी छाल, कटाई, कटेरी, दण्डोत्पल, त्रिफला, अडूसा, सातला और निर्गुण्डीकी जड इन सब औषधियोंके कल्कको समानभाग मिलाकर एक सेर डालदेवे तथा पाकके लिये जल आठ सेर सबको एकत्रकर उत्तमविधिसे घृतको सिद्धकरे। यह दाडिमाद्यनामवाला घृत सर्वप्रकारके प्रमेहों और तज्जन्य उपद्रवों तथा उपर्युक्त सम्पूर्णरोगोंको शीघ्र नष्ट करता है। इसको अश्विनीकुमारोंने रचाहै, यह प्रमेहरूपी गजको हनन करनेके लिये सिंहके समान है ॥ २६-१३४ ॥

महादाडिमाद्यघृत।

दाडिमस्य फलप्रस्थं प्रस्थश्च यवतण्डुलम्।
कुलत्थप्रस्थमादाय घृतप्रस्थं विपाचयेत ॥ ३५॥
शतावरीरसप्रस्थं गव्यदुग्धश्च तत्समम्।
कल्कः सार्द्धपिचुर्द्राक्षा खर्जूरं त्रिफला तथा ॥ ३६॥

रेणुका चाष्टवर्गश्च देवदारु निशाद्वयम् ।
बिम्बी कुष्ठकमेला च विदार्यतिबला तथा ॥ ३७ ॥
शिला त्वचमुशीरञ्च शुद्धं कृष्णाभ्रचूर्णकम् ।
प्रमेहान्विंशतिं हन्ति मूत्राघातांस्त्रयोदश ॥ ३८ ॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च रक्तपित्तं सुदारुणम् ।
वातजं पित्तजञ्चैव श्लेष्मजं सान्निपातिकम् ॥ ३९ ॥
बृंहणञ्च विशेषेण सर्वमेहहरं परम् ।
आश्विभ्यां निर्मितं सिद्धं दाडिमाद्यमिदं महत् ॥१४०॥

अनारके दाने १ प्रस्थ, जौंके चावल १ प्रस्थ और कुलथी १ प्रस्थ लेवे। सबको अठगुने जलमें पृथक् पृथक् पकाकर चतुर्भागावशिष्ट काथको ग्रहण करे। उस काथके साथ घी १ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ, गौका दूध १ प्रस्थ एवं दाख, खजूर, त्रिफला, रेणुका, जीवकादि गणकी औषधियें, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, कन्दूरी, कूठ, इलायची, विदारीकन्द, कंघी, शिलाजीत, दारचीनी, खस और शोधित कृष्णाभ्रककी भस्म इनके श्लक्ष्णतर कल्कको एक एक तोला मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे अच्छे प्रकार घृतको पकावे। यह महादाडिमाद्य-घृत यथाविधि सिद्धकर सेवन करनेसे २० प्रमेह, १३ मूत्राघात, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, कठिनतर रक्तपित्त, वात पित्त कफ और सन्निपातसे उत्पन्न हुये अनेकों उपद्रव दूर होते हैं और वीर्यवृद्धि तथा पुष्टि होती है ॥ ३५-१४० ॥

मेहमिहिरतैल ।

पञ्चमूल्यमृताधात्रीदाडिमानां तुलां पचेत् ।
जलद्रोणे स्थिते पादे तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४१ ॥
क्षीरं तैलसमं कल्कान् निम्बभूनिम्बगोक्षुरम् ।
दाडिमं रेणुकं बिल्वं दारु दार्वी बलाहकम् ॥ ४२ ॥
त्रिफला तगरं द्राक्षा जम्ब्वाम्रवल्कलाभयम् ।
नाम्नेदं मेहमिहिरं सर्वमूत्रामयाञ्जयेत् ॥ ४३ ॥
हस्तपादशिरोदाहं दौर्बल्यं कृशतां तथा ।
क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्राः स्त्रीक्षीणाश्चापि ये नराः ॥
तेषां वृष्यश्च बल्यश्च वयःस्थापनमेव च ॥ ४४ ॥

पञ्चमूल, गिलोय, आमले और अनारदाना ये सब ओषधें सौ पल लेकर ३२ सेर जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाईभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छानलेवे। पश्चात् इस काथमें तिलका तेल एकप्रस्थ, दूध १ प्रस्थ तथा कल्कार्थ नीमकी छाल, चिरायता, गोखुरू, अनारका वकल, रेणुका, बेलका गूदा, देवदारु, दारुहल्दी, नागरमोथा, त्रिफला, तगर, दाख, जामुनकी छाल, आमकी छाल और खस ये सब समानभाग मिश्रित आधसेर मिलाकर विधिपूर्वक तैलको सिद्ध करे। यह प्रमेहमिहिरनामकतैल सर्वप्रकारके मूत्रजविकारोंको नष्ट करता है। एवं हाथ, पाँव और शिरमें जलन, दुर्बलता, कृशता, इन्द्रियोंकी क्षीणता और वीर्यहीनताको दूर करता है। जो पुरुष स्त्रियोंके साथ अधिक रमण करनेसे क्षीण होगये हैं उनके लिये यह तैल अत्यन्त वीर्यवर्द्धक, बलकारक, आयुको स्थापनकरनेवाला है ॥ ४४ ॥

प्रमेहमिहिरतैल ।

शतपुष्पा देवकाष्ठं मुस्तकञ्च निशाद्वयम् ।
मूर्वा कुष्ठं वाजिगन्धा चन्दनद्वयरेणुकम् ॥ ४५ ॥
कटुकी मधुकं रास्ना त्वगेला ब्रह्मयष्टिका ।
चविका धान्यकं वत्सं पूतिकागुरुपत्रकम् ॥ ४६ ॥
त्रिफला नलिका बाला बला चातिबला तथा ।
मञ्जिष्ठा सरलं पद्मं लोध्रं मधुरिका वचा ॥ ४७ ॥
अजाजी चोशिरं जाती वासा तगरपादुका ।
एतेषां कार्षिकैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत ॥ ४८ ॥
शतावर्या रसं तुल्यं लाक्षारसचतुर्गुणम् ।
मस्तु लाक्षारसैस्तुल्यं क्षीरं तुल्यं प्रदापयेत ॥ ४९ ॥
द्रव्यैरेतैः पचेत्तैलं गन्धं दत्वा यथाक्रमम् ।
एतत्तैलवरं श्रेष्ठमभ्यङ्गान्मारुतापहम् ॥ १५० ॥
विषमाख्याञ्ज्वरान्सर्वान्मेदोमज्जगतानपि ।
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ ५१ ॥
क्षीणेन्द्रिये तथा शस्तं ध्वजभङ्गे विशेषतः ।
दद्यात्तैलं विशेषेण फलमस्य च कथ्यते ॥ ५२ ॥
दाहं पित्तं पिपासां च छर्दिञ्च मुखशोषणम् ।

प्रमेहान् विंशतिश्चैव नाशयेदविकल्पतः ।
प्रमेहमिहिरं नाम्ना रतिनाथेन भाषितम् ॥ ५३ ॥

प्रथम सोया, देवदारु, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, कूठ, असगन्ध, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, रेणुका, कुटकी, मुलैठी, रास्ना, दारचीनी, इलायची, भारङ्गी, चव्य, धनियाँ, इन्द्रजौ, पूतिकरञ्ज, अगर, पत्रज, त्रिफला, नली, सुगन्धवाला, खिरैंटी, कङ्गी, मंजीठ, धूपसरल, पद्माख, लोध, सौंफ, वच, कालाजीरा, खस, जायफल, अडूसेकी छाल और तगर इन सब ओषधियोंको दोदो तोले लेवे और खूब बारीक कूट पीसकर चूर्ण बनाकर रखलेवे। पश्चात् लाखको ४ प्रस्थ लेकर चौगुने जलमें पकावे। जब पकते-पकते चौथाई हिस्सा जल बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे। इस रसके साथ तिलका तेल १ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ, दहीका तोड ४ प्रस्थ, दूध १ प्रस्थ और उपर्युक्त चूर्ण मिलाकर उत्तमरीतिसे तैलको सिद्ध करे। जब यथाविधि पककर सिद्ध होजाय तब पवित्र पात्रमें रखदेवे। इस सर्वश्रेष्ठ तेलकी मालिश करनेसे वायुजनित समस्त उत्कट व्याधियाँ दूर होती हैं। एवमेव वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषज, मेदोगत, मज्जागत सर्वप्रकारके विषम ज्वर नष्ट होते हैं। यह तेल नष्टेन्द्रिय और ध्वजभङ्ग रोगमें विशेषकर लाभदायक है। इसके सेवनसे दाह पित्तविकार, तृषा, वमनेच्छा, मुखमें शोष तथा बीसों प्रकारके प्रमेह निश्चय नाश होजाते हैं। इस प्रमेहमिहिरनामक तेलको कामदेवने प्रकाशित किया है॥ ४५-१५३ ॥

देवदार्व्याद्यरिष्ट ।

तुलार्द्धं देवदारु स्याद्वासायाः पलविंशतिः ।
माञ्जिष्ठेन्द्रयवा दन्ती तगरं रजनीद्वयम् ॥ ५४ ॥
रास्ना कृमिघ्नं मुस्तञ्च शिरीषं खदिरार्जुनम् ।
भागान्दशपलान्दद्याद्यमान्या वत्सकस्य च ॥ ५५ ॥
चन्दनस्य गुडूच्याश्च रोहिण्याश्चित्रकस्य च ।
भागानष्टपलानेतानष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ५६ ॥
द्रोणशेषे कषाये च शीतीभूते प्रदापयेत् ।
धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम् ॥ ५७ ॥
व्योषस्य द्विपलं दद्यात्त्रिजातकचतुःपलम् ।
चतुःपलं प्रियङ्गोश्च द्विपलं नागकेशरात् ॥ ५८ ॥

सर्वाण्येतानि सञ्चूर्ण्य घृतभाण्डे निधापयेत् ।
मासादूर्ध्वं पिबेदेनं प्रमेहं हन्ति दुर्जयम् ॥ ५९ ॥
वातरोगग्रहण्यर्शोमूत्रकृच्छाणि नाशयेत् ।
देवदार्वादिकोऽरिष्टो दद्रुकुष्ठविनाशनः ॥ १६० ॥

देवदारु ५० पल, बिसौंटेकी छाल २० पल, मंजीठ, इन्द्रजौ, दन्ती, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, वायविडङ्ग, नागरमोथा, शिरसकी छाल, खैर, अर्जुनवृक्षकी छाल ये प्रत्येक दस २ पल, अजवायन, कुडेकी छाल, लालचन्दन, गिलोय, कुटकी और चीतेकी जड ये प्रत्येक आठ २ पल लेवे । सबको एकत्र कर ८ द्रोण जलमें पकावे । जब एक द्रोण जल शेष रहे तब उतारकर छानलेवे । जब शीतल होजाय तब उस काथमें धायके फूल १६ पल, शहद ३०० पल, त्रिकुटा २ पल, त्रिजातकचूर्ण ४ पल, फूलप्रियंगु ४ पल और नागकेशर २ पल इनका खूब बारीक चूर्णकरके डालदेवे और एक उत्तम घीके चिकने बासनमें भरकर मुख बन्दकरके गाडदेवे । फिर सवा महीने पीछे उसको निकालकर प्रतिदिन प्रातःकाल शुद्ध होकर उचितमात्रासे सेवन करे । यह देवदार्व्याद्यरिष्ट दुर्जय प्रमेह, वातजरोग, संग्रहणी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, दाद और कुष्ठादिरोगोंको शीघ्र नष्ट करताहै ॥ ५४–१६० ॥

चन्दनासव ।

चन्दनं वालुकं मुस्तं गाम्भारीं नीलमुत्पलम् ।
प्रियङ्गुं पद्मकं लोध्रं मञ्जिष्ठां रक्तचन्दनम् ॥ ६१ ॥
पाठां किराततिक्तञ्च न्यग्रोधं पिप्पलं शठीम् ।
पर्पटं मधुकं रास्नां पटोलं काञ्चनारकम् ॥ ६२ ॥
आम्रत्वचं मोचरसं प्रत्येकं पलमात्रकम् ।
धातकीं षोडशपलां द्राक्षायाः पलविंशतिम् ॥ ६३ ॥
जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा शर्करायास्तुलं तथा ।
गुडस्यार्द्धतुलां चापि मासं भाण्डे निधापयेत् ॥ ६४ ॥
चन्दनासव इत्येष शुक्रमेहविनाशनः ।
बलपुष्टिकरो हृद्यो वह्निसन्दीपनः परः ॥ ६५ ॥

सफेदचन्दन, सुगन्धवाला, नागरमोथा, कुम्भेर, नीलकमल, फूलप्रियंगू, पद्माख, लोध, मंजीठ, लालचन्दन, पाढ, चिरायता, बडकी छाल, पीपलकी

छाल, कचूर, पित्तपापडा, मुलैठी, रायसन, परबल, कचनारकी छाल, आमकी छाल और मोचरस (सेमलका गोंद) ये प्रत्येक चार २ तोले एवं धायके फूल १६ पल, दाख २० पल, शुद्ध खाँड १०० पल और गुड ५० पल लेवे। इन सबको दो द्रोण जलसे परिपूर्ण एक उत्तम पात्रमें भरदेवे और उसका मुँह बन्दकरके गाडदेवे। इस प्रकार एक महीनेतक रखा रहनेदेवे। पश्चात् उसको निकालकर छानलेवे। इसको चन्दनासव कहते हैं। यह शुक्रप्रमेहको नाश करता है। बल-पुष्टिकारक हृदयको हितकारी व अग्निदीपक है ॥६१-६५॥

प्रमेहमें पथ्य ।

प्राग्लङ्घनानि वमनानि विरेचनानि प्रोद्वर्त्तनानि शमनानि च दीपनानि। नीवारकङ्गुयववैणवकोरदूष-श्यामाकजीर्णकुरुविन्दमुकुन्दकाश्च ॥ ६६ ॥ गोधूम-शालिकलमाश्चिरजाः कुलत्था मुद्गाढकीचणकयूषर-सास्तिलाश्च । लाजाः पुरातनसुरा मधुवाट्यमण्डस्त-क्रश्च रासभजलं महिषीजलश्च ॥६७॥ लट्वाकपोतश-शतित्तिरिलावबर्हिभृङ्गैणवर्तकशुकादिकजाङ्गलाश्च। शोभाञ्जनानि कुलकानि कठिल्लकानि कर्कोटकानि (?)तालकानि च बार्हतानि ॥६८॥ औदुम्बराणि लशु-नानि नवीनमोचं पत्तूरगोक्षुरकमूषिकपर्णिशाकम् । मन्दारपत्रममृता त्रिफला कपित्थं जम्बूकशेरुकमलो-त्पलकन्दबीजम् ॥ ६९ ॥ खर्जूरलाङ्गलिकतालतरूत्त-माङ्गं व्योषश्च तिन्दुकफलं खदिरः कलिङ्गः। तिक्तानि चापि सकलानि कषायकाणि हस्त्यश्ववाहनमतिभ्र-मणं रविवित्विट् ॥ व्यायाम इत्यपि गणो भवति प्रकामं मित्रं प्रमेहगदपीडितमानवानाम् ॥ १७० ॥

प्रमेहरोगमें प्रथम लङ्घन, वमन, विरेचन और उबटन करावे । पश्चात् रोगको शमन करनेवाली और अग्निको बढानेवाली औषधियाँ देवे । एवं नीवारधान्य, कंगुनीके चावल, जौ, बाँसीके चावल, कोदों, सामाधान्य, पुराने उडद-सांठीके चावल, गेहूँ, शालिधान, कलमीधान, पुरानी कुलथी, मूँग, अरहर और चनोंका यूष इनका भोजन, तिल, खीलें, पुरानी मदिरा, शहद, भुने

जौका मांड, मट्ठा, गर्दभमूत्र, भैंसका मूत्र, गाँवकी चिडियें, कबूतर, खरगोश, तीतर, लवा, मोर, भौंरा, काला हिरन, बत्तक और तोता आदि जङ्गली जीवोंका मांसरस, सहिंजना, परवल, करेला, ककोडा, ताडके फल, बृहतीके फल, गूलर, लहसन, नवीन केलेकी फली, पतङ्गके पत्तोंका शाक, गोखुरू, मूषाकानीका शाक, फरहदके पत्ते, गिलोय, त्रिफला, कैथ, जामुन, कसेरू, कमल और नीलकमलका कन्द (भसींडा), कमलगट्टा, खजूर, कलिहारी, ताडका माथा, त्रिकुटा, तेन्दुके फल, खैर, इन्द्रजौ एवं सम्पूर्ण कडुवे और कषैले रसवाले पदार्थ, हाथी और घोडेपर सवार होकर भ्रमण करना, धूपका सेवन और व्यायाम (दण्ड, कसरत आदि परिश्रम) करना ये सब खाद्य, औषधें तथा क्रियायें प्रमेहरोगियोंके विशेष हितकारी हैं ॥ ६६-१७०॥

प्रमेहमें अपथ्य ।

मूत्रवेगं धूमपानं स्वेदं शोणितमोक्षणम् ।
सदासनं दिवानिद्रां नवान्नानि दधीनि च ॥ ७१ ॥
आनूपमांसं निष्पावं पिष्टान्नानि च मैथुनम् ।
सौवीरकं सुरां शुक्तं तैलं क्षीरं घृतं गुडम् ॥ ७२ ॥
तुम्बीं तालास्थिमज्जानं विरुद्धान्यशनानि च ।
कूष्माण्डमिक्षुं दुष्टाम्बु स्वाद्वम्ललवणानि च ।
अभिष्यन्दी च यत्नेन प्रमेही परिवर्जयेत ॥ ७३ ॥

मूत्रके वेगको रोकना, धूमपान, स्वेदप्रदान, रुधिर निकलवाना, हरवक्त बैठे रहना, दिनमें शयन करना, नये अन्न, दही, अनूपदेशके प्राणियोंका मांस-रस, सेमकी फली, पिट्ठीके पदार्थ, मैथुन करना, सौवीरनामक काँजी, मद्य, सिरका, तेल, दूध, घी, गुड, लौकी, ताडकी गिरी, प्रकृति विरुद्ध भोजन, पेठा ईखका रस, दूषित जल, एवं मधुर, खट्टे, नमकीन और कफको बढानेवाले इत्यादि समस्त पदार्थोंको प्रमेहरोगी सप्रयत्न तत्काल त्यागदेवे। क्योंकि ये सब अत्यन्त हानिकरहैं ॥ ७१-७३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां प्रमेहचिकित्सा ॥

सोमरोगकी चिकित्सा ।

स्त्रीणामतिप्रसङ्गाद्वा शोकाद्वापि श्रमादपि ।
आभिचारिकदोषाच्च गरदोषात्तथैव च ॥ १ ॥

आपः सर्वशरीरेभ्यः क्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च ।
तस्मात्ताः प्रच्युताः स्थानान्मूत्रमार्गं व्रजन्ति च ॥२॥
प्रसन्ना विमलाः शीता निर्गन्धा नीरुजः सिताः ।
स्रवन्ति चातिमात्रं तु दौर्बल्यं गतिहीनता ॥ ३ ॥
शिरसः शिथिलत्वञ्च मुखतालुविशोषणम् ॥
सोमरोग इति ज्ञेयो देहे सोमक्षयान्नृणाम् ॥ ४ ॥
सोऽतिक्रान्तः क्रमेणैव स्रवेन्मूत्रमभीक्ष्णम् ॥
मूत्रातीसारमप्येवं तमाहुर्बलनाशनम् ।
तेन तृष्णाभिभूतोऽसौ जलं पिबति चाधिकम् ॥ ५॥

अत्यन्त मैथुन, शोथ, अधिक परिश्रम, आभिचारिक (उच्चाटनादि) और विषदोषादि कारणोंसे स्त्रियोंके सब शरीरमें स्थित जल क्षोभित होकर गिरते हैं और वे जल अपने स्थानसे हटकर मूत्रमार्गसे निकलते हैं । ये जल प्रसन्न, विमल, शीतल, गन्धरहित, वेदनारहित और सफेद वर्णके होते हैं। अधिक परिमाणमें जलस्राव होनेपर दुर्बलता, शक्तिक्षीणता, शिरमें शिथिलता, मुख और तालुमें शोष उत्पन्न होता है। सोमके क्षय होजानेसे स्त्रियोंके शरीरमें यह सोमरोग होता है। सोमरोगकी अधिकता होनेपर बारबार मूत्र आता है। इसको मूत्रातिसार भी कहते हैं। इस रोगमें बलनाश होजानेके कारण तृषा अधिक लगनेसे जल बहुत पियाजाता है ॥ १–५ ॥

कदलीनां फलं पक्वं धात्रीफलरसो मधु ।
शर्करापयसा पीतमपां धारणमुत्तमम् ॥ ६ ॥

केलेकी पकी फली, आमलोंका रस, शहद, खाँड और दूध इन सबोंको समभाग एकत्र मिलाकर सेवन करे तो सोमधातुका निकलना बन्द होजाताहै ॥६

कदलीनां फलं पक्वं विदारीञ्च शतावरीम् ।
क्षीरेण पाययेत्प्रातरपां धारणमुत्तमम् ॥ ७ ॥

केलेकी पकी फली, विदारीकन्द और शतावर इनके चूर्णको समानभाग लेकर दूधके साथ पीवे तो स्त्रियोंका बहुमूत्ररोग नष्ट होजाता है ॥ ७ ॥

धात्रीफलस्य रसकं मधुना च पिबेत्सदा ।
बहुमूत्रक्षयं कुर्यात्क्षारेण वासकस्य च ॥ ८ ॥

आमलोंके रसको शहदमें मिलाकर अथवा अडूसेके रसको जवाखारके साथ मिलाकर सेवनकरनेसे बहुमूत्ररोग नाश होता है ॥ ८ ॥

तालकन्दश्च तरुणं खर्जूरं कदलीफलम् ।
पयसा पाययेत्प्रातर्मूत्रातीसारनाशनम् ॥ ९ ॥

कच्चे ताडकी जड, खजूरकी जड और केलेकी पकी फली इनको बराबर २ लेकर दूधके साथ प्रतिदिन प्रातःकाल पान करे तो मूत्रातीसार दूर होय ॥९॥

माषचूर्णं समधुकं विदारी शर्करा मधु ।
पयसा पाययेत्प्रातः सोमरोगविनाशनम् ॥ १० ॥

उडदोंका चूर्ण, मुलैठीका चूर्ण, विदारीकन्दका चूर्ण, चीनी और शहद ये सब समानांश लेकर दूधके साथ प्रातःसमय पानकरे तो सोमरोग शमन होताहै॥

बहुमूत्रं तथा चान्यान् रोगांश्चैव तदुद्भवान् ।
तृष्णाधिके प्रदातव्यं शृतशीतमिदं शुभम् ॥ ११ ॥
सारिवा मधुकं द्राक्षा दर्भः सरलचन्दने ।
पथ्या मधुकपुष्पश्च सर्वश्च समभागकम् ॥ १२ ॥
जले संस्थाप्य रजनीं प्राहे वस्त्रगालिताम् ।
प्रोक्तं गहननाथेन सद्यस्तृष्णाहरं परम् ॥ १३ ॥

बहुमूत्ररोगमें अन्यान्य उपद्रवोंके उत्पन्न होनेपर तृषा अधिक लगे तो सारिवा, मुलैठी, दाख, कुशा, धूपसरल, लालचन्दन, हरड और महुएके फूल इन सबको समानभाग मिश्रित दो तोले लेवे और रात्रिके समय मिट्टीके स्वच्छ पात्रमें कुछ थोडासा जल डालकर भिगो देवे । फिर अगले दिन प्रातः-काल वस्त्रमें छानकर इस शीतल जलको पीनेसे तृषाका वेग शीघ्र शान्त होता है । श्रीगहनानन्दनाथने ऐसा कहा है ॥ ११-१३ ॥

तारकेश्वररस ।

मृतं सूतं मृतं लोहं मृतं वङ्गाभ्रकं समम् ।
मर्दयेन्मधुना चैव रसोऽयं तारकेश्वरः ॥ १४ ॥
माषमात्रं लिहेत्क्षौद्रैर्बहुमूत्रप्रशान्तये ।
औदुम्बरं फलं पक्वं चूर्णितं मधुना लिहेत ॥ १५ ॥

शुद्धपारेकी भस्म, लोहभस्म, वंगभस्म और अभ्रकभस्म इनको समानभाग लेकर शहदमें खरलकर लेवे । इस प्रकार यह तारकेश्वररसको सिद्ध कर

इसको एक एक माशा नित्यप्रति प्रातःसमय शहदमें मिलाकर सेवन करे और पीछेसे गूलरके पके फलोंके १ तोला चूर्णको शहदके साथ मिश्रितकर चाटे तो बहुमूत्ररोग नष्ट होता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

गगनादिलौह ।

गगनं त्रिफला लौहं कुटजं कटुकत्रयम् ।
पारदं गन्धकश्चैव विषटङ्कणसर्जिकाः ॥ १६ ॥
त्वगेला तेजपत्रञ्च वङ्गं जीरकयुग्मकम् ।
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ १७ ॥
तदर्द्धं चित्रकं चूर्णं कार्षिकं मधुना लिहेत् ।
अवश्यं विनिहन्त्याशु मूत्रातीसारसोमकम् ॥ १८ ॥

अभ्रकभस्म, त्रिफला, लोहभस्म, कुडेकी छाल, सोंठ, मिरच, पीपल, शुद्ध पारेकी भस्म, शुद्धगन्धक, शुद्ध मीठा तालिया, सुहागा, सज्जी, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, वंगभस्म, जीरा और कालाजीरा ये प्रत्येक एक एक तोला लेकर एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे और सब चूर्णसे आधा चीतेकी जडका चूर्ण मिलालेवे । प्रतिदिन इस चूर्णको एक कर्ष परिमाण शहदमें मिलाकर चाटे तो मूत्रातीसार और सोमरोग अवश्यमेव दूर होताहै ॥ १६–१८ ॥

सोमनाथरस ।

कर्षं जारितलौहञ्च तदर्द्धं रसगन्धकम् ।
एलापत्रं निशायुग्मं जम्बु वीरणगोक्षुरम् ॥ १९ ॥
विडङ्गं जीरकं पाठा धात्री दाडिमटङ्कणम् ।
चन्दनं गुग्गुलुर्लोध्रं शालार्जुनरसाञ्जनम् ॥ २० ॥
छागीदुग्धेन वटिकां कारयेद्दशरात्तिकाम् ।
निर्मितो नित्यनाथेन सोमनाथरसस्त्वयम् ॥ २१ ॥
सोमरोगं बहुविधं प्रदरं हन्ति दुर्जयम् ।
योनिशूलं मेढ्रशूलं सर्वजं चिरकालजम् ॥
बहुमूत्रं विशेषेण दुर्जयं हन्त्यसंशयम् ॥ २२ ॥

लोहेकी भस्म २ तोले, शुद्धपारा और शुद्धगन्धक एक एक तोला एवं छोटी इलायची, तेजपात, हल्दी, दारुहल्दी, जामुनकी छाल, खसकी मूल, गोखुरू, वायविडंग, जीरा, पाढ, आमले, अनारदाना, सुहागा, चन्दन, गूगल,

लोथ, राल, अर्जुनछाल और रसौत इन औषधियोंके चूर्णको समानभाग लेकर बकरीके दूधमें यथाविधि खरल करके दस २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस सोमनाथरसको महाराज नित्यनाथने निर्माण कियाहै। यह रस अनेक प्रकारके सोमरोग, दुर्जय प्रदर, योनिगतशूल, लिङ्गशूल तथा अन्यसर्वप्रकारके शूल विशेषकर बहुत पुराने और दुस्तर बहुमूत्ररोगको शीघ्र नष्ट करताहै॥१९-२२

बृहत्सोमनाथरस।

हिङ्गुलसम्भवं सूतं पालिधारसमर्दितम्।
रण्डाशोधितगन्धञ्च तेनैव कज्जलीकृतम्॥ २३॥
तद्द्वयोर्द्विगुणं लौहं कन्यारसविमर्दितम्।
अभ्रकं वङ्गकं रौप्यं खर्परं माक्षिकं तथा॥ २४॥
सुवर्णञ्च समं सर्वं प्रत्येकञ्च रसार्द्धकम्।
तत्सर्वं कन्यकाद्रावैर्मर्दयेद्भावयेत्ततः॥ २५॥
भेकपर्णीरसेनैव गुञ्जाद्वयवटीं ततः।
मधुना भक्षयेच्चापि सोमरोगनिवृत्तये॥ २६॥
प्रमेहान्विंशतिं हन्ति बहुमूत्रञ्च सोमकम्।
मूत्रातिसारं कृच्छ्रञ्च मूत्राघातं सुदारुणम्॥ २७॥
बहुदोषं बहुविधं प्रमेहं मधुसंज्ञकम्।
हन्ति मेहमिक्षुमेहं लालामेहं विनाशयेत्॥ २८॥
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सोमसंज्ञकम्।
नाशयेद्बहुमूत्रञ्च प्रमेहमाविकल्पतः॥ २९॥

हिंगुलसे निकालेहुए पारेको फरहदके पत्तोंके स्वरसमें खरलकरे और शुद्ध-गन्धकको मूषाकानीके रसमें खरल करे। इन दोनोंको एक एक तोला लेकर कज्जली बनावे। तदनन्तर कज्जलीसे दुगुनी लोहभस्म ४ तोले मिलाकर घीग्वारके रससे घोटे। फिर इसमें अभ्रक, वंग, रूपा, खपरिया, सोनामाखी और सुवर्ण इन सबकी भस्म पारेसे आधी २ भाग मिलाकर घीग्वारके रससे खरलकर मण्डूकपर्णीके रसमें अच्छे प्रकार खरल करके दो दो रत्तीकी गोलिया बनालेवे। प्रतिदिन एकगोली शहदमें मिलाकर खाय तो सोमरोग शान्त होता है। यह रस बीसों प्रमेह, बहुमूत्र, सोमरोग, मूत्रातीसार, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अनेक उपद्रवोंसे युक्त नानाप्रकारके प्रमेह, मधुमेह, शर्करामेह, लालामेह, वातज पित्तज और कफजन्य सोमरोग निस्सन्देह नाश होते हैं॥ २३-२९॥

सोमेश्वररस।

शालार्जुनकलोध्रश्च कदम्बागुरु चन्दनम्।
अग्निमन्थं निशायुग्मं धात्रीदाडिमगोक्षुरम् ॥ ३० ॥
जम्बूवीरणमूलञ्च भागमेषां पलार्द्धकम्।
रसगन्धकधान्याब्दमेलापत्रं तथाभ्रकम् ॥ ३१ ॥
लौहं रसाञ्जनं पाठा विडङ्गं टङ्गजीरकम्।
प्रत्येकं शाणकं ग्राह्यं पलार्द्धं गुग्गुलोरपि ॥ ३२ ॥
घृतेन वटिकां कृत्वा खादेत्षोडशरक्तिकाम्।
गहनानन्दनाथेन रसो यत्नेन निर्मितः॥ ३३ ॥
सोमेश्वरो महातेजा सोमरोगं निहन्त्यलम्।
एकजं द्वन्द्वजं चोग्रं सन्निपातसमुद्भवम् ॥ ३४ ॥
उपद्रवसमायुक्तं चिरकालसमुद्भवम्।
मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं कामलाञ्च हलीमकम् ॥ ३५ ॥
भगन्दरोपदंशौ च विविधान्पीडकान्व्रणान्।
विस्फोटार्बुदकण्डूश्च सर्वमेहं विनाशयेत् ॥ ३६ ॥
यकृत्प्लीहोदरं गुल्मशूलार्शःकासविद्रधिम्।
सोमरोगं निहन्त्याशु चिरकालानुबन्धिनम् ॥ ३७ ॥
बलवर्णाग्निजननो ग्रहवैगुण्यनाशनः।
छागीदुग्धानुपानेन नारिकेलोदकेन वा ॥ ३८ ॥
शीतेन पाकतैलेन यवयूषादियोगतः।
युक्त्या प्रयोज्या भिषजा रसो दोषविदाश्रयम् ॥३९॥

साल, कोहकी छाल, लोध, कदमकी छाल, अगर, रक्तचन्दन, अरणी, हलदी, दारुहलदी, आमले, अनारके छिल्के, गोखुरू, जामुनकी छाल और खसकी मूल ये प्रत्येक दो दो तोले एवं शुद्धपारा, गन्धक, धनियाँ, नागरमोथा, इलायची, तेजपात, अभ्रक, लोहा, रसौत, पाढ, बायविडङ्ग, सुहागा और जीरा ये प्रत्येक चार २ माशे और गूगल दो तोले लेवे। इन सबको एकत्र कूट पीसकर घृतमें खरल करके सोलह २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। नित्यप्रति सुबहँको एक गोली खाय। श्रीमान् गहनानन्दनाथने इस रसको विस्तृत कियाहै।

अत्यन्त तेजवान् यह सोमेश्वररस सोमरोग, एकदोषज, द्विदोषज, अत्युग्र सान्निपातिक और अनेक उपद्रवोंसे युक्त, बहुत पुराना मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, कामला, हलीमक, भगन्दर, उपदंश, नानाप्रकारकी पीडाजनकव्रण, फोडे, अर्बुदरोग, कण्डू (खुजली) सर्वप्रकारके प्रमेह, यकृत्, प्लीहा, उदररोग, गुल्म, शूल, अर्श, खाँसी, विद्रधि और चिरकालोत्पन्न सोमरोगादि कष्टोंको तत्क्षण नष्ट करता है। तथा बल, कान्ति और जठराग्निको उत्पन्न करताहै और इससे ग्रहपीडा भी दूर होतीहै। इसमें बकरीका दूध, नारियलका जल, पकायाहुआ शीतल तेल और जौका यूष प्रभृति अनुपनोंको दोषानुसार प्रयोग करे। यह रस सब दोषोंको नष्ट करनेवालाहै ॥ ३०-३९ ॥

१-बहुमूत्रान्तकरस।

रसश्च शाल्मलीमूलचूर्णं कदलिमूलजम्।
उदुम्बरबीजचूर्णं लौहं वङ्गश्च विद्रुमम् ॥ ४० ॥
मुक्ताहिफेनसारौ च प्रत्येकं समभागिकम्।
मर्दयेन्मालतीपुष्परसेन कुशलो भिषक् ॥ ४१ ॥
रक्तिद्वयमितां कुर्याद्वटिकामतिशोभनाम्।
बहुमूत्रान्तको नाम रसः परमशोभनः ॥
मधुमेहं सोमरोगं हन्ति भास्वान्यथा तमः ॥ ४२ ॥

रससिन्दूर, सेमलकी मुसलीका चूर्ण, केलेकी मूलका चूर्ण, गूलरके बीजोंका चूर्ण, लोहा, वङ्ग, मूँगा, मोती और अफीम ये प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेवे। सबको एकत्र मालतीके फूलोंके स्वरसमें अच्छे प्रकार खरल करके दो दो रत्तीकी उत्तम गोलियाँ तैयार करलेवे। यह अत्यन्त सुन्दर बहुमूत्रान्तकनामवाला रस मधुमेह और सोमरोगको इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार सूर्य अपनी प्रखरकिरणोंसे अन्धेरेको दूर करदेताहै ॥ ४०-४२ ॥

२-बहुमूत्रान्तकरस।

सिन्दूरञ्च तथा लौहं वङ्गाहिफेनसारकौ।
उदूम्बरभवं बीजं बिल्वमूलं सुरप्रिया ॥ ४३ ॥
सर्वं समं जन्तुफलरसैः सम्मर्दितं भवेत्।
रक्तिद्वयमितां खादेद्वटिकामनुपानतः ॥ ४४ ॥
दद्यादौदुम्बरफलरसं पथ्याविधिं शृणु।

मांसप्रधानं भक्ष्यञ्च तथा गोधूमपिष्टकम् ॥
बहुमूत्रान्तकरसो नाशयेदविकल्पतः ॥ ४५ ॥

रससिन्दूर, लोहभस्म, वङ्गभस्म, अफीम, गूलरके बीज, बेलमूलकी छाल, और कबाबचीनी इन सबको समान भाग लेकर और एकत्र पीसकर गूलरोंके रसमें विधिपूर्वक खरल करे, फिर दो दो रत्तीकी वटी प्रस्तुत करे नित्यप्राति प्रातःकाल एक गोली खाय और ऊपरसे गूलरोंका रस तथा मधु एकत्र मिलाकर सेवन करे । इसपर मांसके साथ गेहूँकी रोटी भक्षण करे । यह रस सोमरोगको निश्चय दूर करता है ॥ ४३-४५ ॥

हेमनाथरस ।

सूतं गन्धं हेम ताप्यं प्रत्येकं कोलसम्मितम् ।
अयश्चन्द्रं प्रबालञ्च वङ्गञ्चार्द्धं विनिःक्षिपेत् ॥ ४६ ॥
फणिफेनस्य तोयेन कदलीकुसुमेन च ।
उदुम्बररसेनापि सप्तधा परिमर्दयेत् ॥ ४७ ॥
वल्लमात्रां वटीं खादेद्यथाव्याध्यनुपानतः ।
प्रमेहान्विंशतिं हन्ति बहुमूत्रं सुदारुणम् ॥ ४८ ॥
सोमरोगं क्षयञ्चैव श्वासं कासमुरःक्षतम् ।
हेमनाथरसो नाम्ना कृष्णात्रेयेण भाषितः ॥ ४९ ॥
"रसगन्धकयोः स्थाने षड्गुणबलिजारितः ।
प्रयोजिता भवेन्नॄणां विशेषफलदायकः ॥"

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, सुवर्ण, सोनामाखी प्रत्येक एक एक तोला, लोहभस्म, कपूर, मूँगा और वङ्गभस्म ये प्रत्येक छः छः मासे लेवे । सबको एकत्र पीसकर अफीमके, केले और गूलरके रसमें सातवार यथाक्रम खरल करे । पश्चात् दो रत्ती प्रमाण गोलियां बनावे । वातादिदोषोंके अनुसार अनुपान भेदसे प्रतिदिन एकएक गोली सेवन करे । यह बीसों प्रमेह, दारुण बहुमूत्र, सोमरोग, क्षय, खाँसी, श्वास और उरःक्षत इत्यादि सब रोगोंको नष्ट करताहै । इस हेमनाथरसको कृष्णात्रेयमुनिने कहा है। "इसमें पारे और गन्धककी अपेक्षा यदि रससिन्दूर १ तोला डालदियाजाय तो विशेष लाभ होताहै ॥४६-४९॥

मालतीकुसुमाकर ।

चन्द्रभागाः सुवर्णस्य कर्पूरं युग्मभागिकम् ।
वङ्गशीशकलौहानां भागत्रयमुदाहृतम् ॥ ५० ॥

अभ्रप्रवालमुक्तानां भागाश्चत्वार ईरिताः।
गव्येन पयसा चैव कदलीपुष्पजे रसैः॥ ५१॥
रसेनेक्षुसमुत्थेन तथा पद्मरसेन च।
उदुम्बररसेनैव भावयेत्सप्तधा पृथक्॥ ५२॥
रक्तिद्वयमितो हन्ति मालतीकुसुमाकरः।
रसः सर्वप्रमेहांश्च बहुमूत्रादिकं तथा॥
सोमरोगांश्च संहन्ति भास्करास्तिमिरं यथा॥ ५३॥

सुवर्णभस्म 1 तोला, कपूर 2 तोले, वंग, शीशा और लोहभस्म तीन तीन तोले, अभ्रक, मूँगा और मोतीकी भस्म चार चार तोले लेकर सबको एकत्र पीसलेवे। फिर गौदुग्ध, केलेका मोचा, ईखका रस, कमलका रस और गूलरोंका रस इन रसोंमें अलग अलग क्रमपूर्वक सातबार खरल करे। यह मालती कुसुमाकर नामवाला रस दो रत्ती प्रमाण खानेसे सर्वप्रमेह, बहुमूत्ररोग और सोमरोगको दूर करता है॥ ५०-५३॥

वसन्तकुसुमाकररस।

वैक्रान्तस्य च भागैकं द्विभागं हेमभस्मनः।
अभ्रकस्य च भागौ द्वौ मुक्ताविद्रुमयोस्तथा॥ ५४॥
वङ्गभस्म त्रिभागं स्याद्रसस्य भस्मनस्तथा।
चत्वारोऽस्य च भागाश्च सर्वमेकत्र मर्दितम्॥ ५५॥
जम्बीराद्भिश्च गोदुग्धैरुशीरो नववारिभिः।
वृषद्रवैरिक्षुनीरैः सप्तधा भावयेत्पृथक्॥ ५६॥
भावितो रसराजः स्याद्वसन्तकुसुमाकरः।
वल्लोऽस्य मधुना लीढः सोमरोगं क्षयं नयेत्॥ ५७॥
ध्वजभङ्गं शुक्रमेहं मेहांश्च बहुमूत्रकम्।
तृष्णां दाहं तालुशोषं नाशयेन्नात्र संशयः॥ ५८॥
बल्यः पुष्टिकरो वृष्यः सर्वरोगनिबर्हणः।
हन्ति जीर्णज्वरं श्वासं क्षयरोगं कृशाङ्गताम्॥
नातः परतरं किञ्चिद्रसायनमिहेष्यते॥ ५९॥

वैक्रान्तमणिकी भस्म 1 तोला, सुवर्णभस्म, अभ्रक, मोती और मूँगाभस्म प्रत्येक दो दो तोले, वंगभस्म तीन तोले और पारेकी भस्म चार तोले लेवे। फिर

सबको एकत्रकर जम्बीरीनीम्बूके रस, गौके दूध, खसकी मूलके रस, सोंठके स्वरस, अडूसेके पत्तोंके रस और ईखके रसमें क्रमशः सातबार भावना देवे। तदनन्तर रसौतके रसमें भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ निर्माण करे। इस प्रकार सिद्ध कियेहुए इस वसन्तकुसुमाकर नामक रसकी एक गोली प्रतिदिन प्रातःकाल शहदके साथ सेवन करे तो सोमरोग, ध्वजभंग, शुक्रप्रमेह, अन्यान्यप्रमेह, बहुमूत्र, तृषा, दाह, तालुका सूखना, पुराना ज्वर, श्वास, क्षयरोग और शरीरकी कृशताप्रभृति समस्त विकार नष्ट होते हैं। एवं बलदायक, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक और व्याधियोंको क्षय करनेके लिये यह अत्युत्तम रसायनहै॥

कस्तूरीमोदक।

कस्तूरी वनिता क्षुद्रा त्रिफला जीरकद्वयम्।
एलाबीजं त्वचं यष्टिमधुकं मिषिबालकम्॥ ६०॥
शतपुष्पोत्पलं धात्री मुस्तकं भद्रसंज्ञकम्।
कदलीनां फलं पक्वं खर्जूरं कृष्णकं तिलम्॥ ६१॥
कोकिलाक्षस्य बीजञ्च माषमात्रं समं समम्।
यावन्त्येतानि चूर्णानि द्विगुणा सितशर्करा॥ ६२॥
धात्रीरसेन पयसा कूष्माण्डस्वरसेन च।
विपचेत्पाकविद्वैद्यो मन्दमन्देन वह्निना॥ ६३॥
अवतार्य सुशीते च यथालाभं विनिःक्षिपेत्।
अक्षमात्रां प्रयुञ्जीत सर्वमेहप्रशान्तये॥६४॥
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्।
सोमरोगं बहुविधं मूत्रातीसारमुल्बणम्॥ ६५॥
मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्याशु मूत्राघातं तथाऽश्मरीम्।
ग्रहणीं पाण्डुरोगञ्च कामलां कुम्भकामलाम्॥ ६६॥
वृष्यो बलकरो हृद्यो शुक्रवृद्धिकरः परः।
कस्तूरीमोदकश्चायं चरकेण च भाषितः॥ ६७॥

कस्तूरी, फूलप्रियंगु, कटेरी, त्रिफला, जीरा, कालाजीरा, छोटी इलायचीके दाने, दारचीनी, मुलैठी, सौंफ, सुगन्धवाला, सोआ, नीलकमल, धायके फूल, नागरमोथा, केलेकी पकी फली, खजूर, काले तिल और तालमखाने इन सबको अलहिदा अलहिदा एक एक माशा लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर सब चूर्णसे

दुगुनी अत्युज्वल मिश्री तथा आमलोंका रस, दूध और पेठेका रस ये तीनों सबसे चौगुने लेवे। इन सब औषधियोंका एकत्रकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब अच्छे प्रकार पाक समाप्त होजाय तब उतारकर शीतल होजानेपर एक एक तोलेके लड्डू बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक लड्डू खावे तो सर्वप्रकारके प्रमेह शान्त होते हैं। एवं वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषज सोमरोग, अनेक प्रकारका मूत्रातीसार, दारुण मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पथरी, संग्रहणी, पाण्डु, कामला और कुम्भकामलादिविकार शीघ्र नष्ट होते हैं। यह मोदक बलकारी, हृदयको हितकारी, अत्यन्त वीर्यवृद्धिकारी और विशेष पुष्टि-कर है। यह कस्तूरीमोदकयोग चरकमहाराजने कहा है॥ ६०-६७॥

धात्रीघृत।

विना कल्कं स्वल्पधात्रीघृतमेतन्निगद्यते।
सर्वतुल्यं गुणैरेव पथ्यापथ्यं तदेव हि॥ ६८॥

घृत, आमलोंका रस, पेठेका रस, शतावरका रस, तृणपञ्चमूलका काथ और गोदुग्ध इनको समानभाग लेकर उत्तम प्रकार घृतको सिद्ध करे। यह विना कल्कका घृत है, इसको स्वल्पधात्रीघृत कहते हैं, किन्तु गुणोंमे बृहद्धात्री घृतके समान है। इसपर पथ्य व अपथ्य सब वस्तुयें हितकारी हैं॥ ६८॥

बृहद्धात्रीघृत।

धात्रीफलरसप्रस्थं विदारीस्वरसं तथा।
क्षीरस्यापि शतावर्याः प्रस्थं प्रस्थं रसस्य च॥ ६९॥
तृणपञ्चरसप्रस्थं दत्त्वा प्रस्थं रसस्य च।
पचेन्मृद्वग्निना वैद्यः पाकं ज्ञात्वा विधानतः॥ ७०॥
एलालवङ्गत्रिफलाकपित्थफलमेव च।
सजलं सरसं मांसी कदलीकन्दमेव च॥ ७१॥
उत्पलस्य च कन्दानि कल्कं दत्त्वा विचक्षणः।
ततः कल्कं परित्याज्य चूर्णं दद्यात्पलं पलम्॥ ७२॥
मधुकं त्रिवृतौ चैव क्षारकं वृद्धदारकम्।
शर्करायाः पलान्यष्टौ मधुनश्च पलाष्टकम्॥ ७३॥
चूर्णं दत्त्वा सुमाथितं स्निग्धभाण्डे निधापयेत्।
सोमरोगं निहन्त्याशु तृष्णां दाहमरोचकम्॥ ७४॥

मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं नाशयेद्बहुमूत्रकम् ।
पित्तजान्विविधान्व्याधीन्वातजांश्च सुदारुणान् ॥७५
करोति शुक्रोपचयं बलवर्णकरं परम् ।
नानारूपविकारघ्नं विशेषाद्बहुमूत्रनुत ॥ ७६ ॥

आमलोंका रस १ प्रस्थ (६४ तोले), विदारीकन्दका रस १ प्रस्थ, दूध १ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ, तृणपञ्चमूलका रस १ प्रस्थ और गोघृत १ प्रस्थ लेवे । इन सबको एकत्र मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे । जब पकतेपकते पाक गाढा पडजाय तब उसमें इलायची, लौङ्ग, त्रिफला, कैथ, सुगन्धवाला, धूपसरल, बालछड, पकीकेलेकी फली और नीलकमलकी जड इन सब औषधियोंके समानभागामिश्रित १ सेर कल्कको छानकर डाले और फिर पाक करे । जब उत्तमप्रकार पककर सिद्ध होजाय तव मुलैठी, निसोत, जवाखार, विधारा प्रत्येकका चूर्ण चार २ तोले, खाँड ८ पल तथा शहद ८ पल डालकर करछीसे चलाकर सबको एकमएक करलेवे । फिर घृतसे चिकने मिट्टीके वासनमें रखदेवे । यह धात्रीघृत सोमरोग,तृषा, दाह, अरुचि, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, वहुमूत्र, पित्तजन्य अनेकरोग दारुण वातसम्बन्धी विकार अन्यान्य सर्वप्रकारके रोग विशेषकर बहुमूत्ररोगको तत्काल विध्वंस करता है । वीर्य्यकी वृद्धि, बल कान्तिको उत्पन्न करता है ॥ ६९-७६ ॥

कदल्यादिघृत ।

कदलीकन्दनिर्यासे तत्प्रसूनतुलां पचेत् ।
चतुर्भागावशेषेऽस्मिन्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७७ ॥
चन्दनं सरलं मांसी कदलीमूलकं तथा ।
एला लवङ्गत्रिफलाकपित्थफलमेव च ॥ ७८ ॥
औदकानि च कन्दानि न्यग्रोधादिगणस्तथा ।
कल्केनानेन संसिद्धं सोमरोगनिवारणम् ॥ ७९ ॥
मूत्ररोगानशेषांश्च प्रभूतान शुक्रपिच्छिलान ।
प्रमेहान्विंशतिश्चैव मूत्राघातांस्त्रयोदश ॥ ८० ॥

न्यग्रोधादिगणो यथा-
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपियालप्लक्षवेतसम् ।
आम्रो जम्बूद्वयं कोलं मधुकं तिन्दुकोऽर्ज्जुनः ॥
तिलकः कडुको नीपो गर्दभाण्डोऽथ किंशुकाः ॥

बहुमूत्रं विशेषेण मूत्रकृच्छ्रं तथाश्मरीम् ।
पीतं घृतं निहन्त्याशु विष्णुचक्रमिवासुरान् ॥
कदल्यादिघृतं नाम विष्णुना परिकीर्तितम् ॥ ८१ ॥

केलेके १०० पल फूलोंको केलेके ६४ सेर रसमें पकावे । पकते पकते जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर गौका घी एक प्रस्थ, चन्दन, धूपसरल, बालछड, केलेकी जड, इलायची, लौंग, त्रिफला, कैथ, जलोत्पन्न कन्द (कमलकन्द, कसेरू, नीलकमलकी जड, सिंघाडे, सालग आदि) और न्यग्रोधादिगणकी समस्त औषधियाँ-(वड, गूलर, पीपल. चिरौंजीका वृक्ष, पाखर, बेंत, आम, दोनों जामुन, बेर, महुआ, तेन्दु, अर्जुन वृक्ष, मकआ-वृक्ष, कुटकी, कदम, सिरस और ढाक)-लेवे । इन सबको दो दो तोले कूट पीसकर पूर्वोक्त क्वाथमें डालदेवे और शनैः शनैः मृदु अग्नि द्वारा यथाविधि घृतको सिद्ध करे । इस घृतको प्रतिदिन नियमानुकूल सेवन करनेसे सोमरोग, सर्वप्रकारके मूत्रविकार, वीर्यकी पिच्छिलता, २०प्रमेह, १३ मूत्राघात, विशेष-कर बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीआदिरोग तत्काल इस प्रकार नष्ट होते हैं जिसप्रकार विष्णुभगवान्का सुदर्शनचक्र असुरदलको नाश करदेता है । यह कदल्यादि नामक घृत विष्णुनारायणने प्रकाशित किया है ॥ ७७-८१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां सोमरोगचिकित्सा ॥

मेदोरोगकी चिकित्सा ।

श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः ।
हन्त्यवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनैः ॥ १ ॥
अस्वप्नश्च व्यवायश्च व्यायामं चिन्तनानि च ।
स्थौल्यमिच्छन्परित्यक्तं क्रमेणातिप्रवर्द्धयेत् ॥ २ ॥

परिश्रम, चिन्ता, स्त्रीसम्भोग, रास्ताचलना, शहदको पीना, रात्रिमें जागना, जौ और सामा अन्नका भोजन इन सब कृत्योंके करनेसे शरीरकी स्थूलता नष्ट होती है । जो मनुष्य स्थूलताको नष्ट करना चाहते हैं वे रात्रिमें जागना, मैथुन करना, व्यायाम (दंड, कसरत आदि) चिन्ता इनको दिन प्रतिदिन बढानेकी चेष्टा करे ॥ १ ॥ २ ॥

प्रातर्मधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम् ।
उष्णमन्नस्य मण्डं वा पिबन्कृशतनुर्भवेत् ॥ ३ ॥

प्रतिदिन प्रातःसमय शहदको जलमें मिलाकर पान करे तो स्थूलता क्षीण होती है अथवा उष्ण अन्नका माँड पीवे तो स्थूलता दूर होजाती है ॥ ३ ॥

सचव्यजीरकव्योषहिङ्गुसौवर्चलानलाः ।
मस्तुना सक्तवः पीता मेदोघ्ना वह्निदीपनाः ॥ ४ ॥

चव्य, जीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, हींग, कालानमक और चीतेकी जड इनको समानभाग लेकर एकत्र पीस लेवे फिर इस चूर्णको १६ गुना जौके चूर्णमें मिलाकर दहीके तोडके साथ पान करनेसे स्थूलता नष्ट होती है और अग्नि प्रवृद्ध होती है ॥ ४ ॥

विडङ्गनागरक्षारकान्तलोहरजो मधु ।
यवामलकचूर्णन्तु प्रयोगः स्थौल्यनाशनः ॥ ५ ॥

बायविडङ्ग, सोंठ, जवाखार, कान्तलोहभस्म, जौ और आमले इन सब औषधियोंके चूर्णको एक एक तोला, किन्तु भस्म सबसे दुगुनी लेवे । फिर सबको एकत्र मधुके साथ मिलाकर चाटनेसे स्थूलता दूर होती है ॥ ५ ॥

बदरीपत्रकल्केन पेया काञ्जिकसाधिता ।
स्थौल्यनुत्स्यात्साग्निमन्थरसं वापि शिलाजतु ॥ ६ ॥

बेरीके पत्तोंको पीसकर काँजीमें पकाकर पेया बनावे । इसको पीनेसे स्थूलता नष्ट होती है । एवं शिलाजीतको अरणीके रसमें मिलाकर पीनेसे स्थूलपन दूर होता है ॥ ६ ॥

शिरीषलामज्जकहेमलोध्रैस्त्वग्दोषसंस्वेदहरः प्रघर्षः ।
पत्राम्बुलोहाभयचन्दनानि शरीरदौर्गन्ध्यहरः प्रदेहः ७

शिरसकी छाल, खस, नागकेशर और लोध; इनके समानभाग मिले हुए चूर्णको शरीरपर मालिश करे तो त्वचाके दोष और अधिक पसीना निकलना बन्द होता है । तेजपात, सुगन्धवाला, अगर, खस और चन्दन इनको समान भाग लेकर एकत्र खूबबारीक पीसकर मालिशकरनेसे शरीरकी दुर्गन्ध दूरहोय॥

वासादलरसो लेपाच्छङ्खचूर्णेन संयुतः ।
बिल्वपत्ररसो वापि गात्रदौर्गन्ध्यनाशनः ॥ ८ ॥

अडूसेके पत्तोंके रस अथवा बेलपत्रीके रसमें शंखभस्म मिलाकर शरीरपर लेप करनेसे देहकी दुर्गन्ध नष्ट होती है ॥ ८ ॥

हरीतकी लोध्रमरिष्टपत्रं चूतत्वचो दाडिमवल्कलञ्च।
एषोऽङ्गरागःकथितोऽङ्गनानांजङ्घाकषायश्च नराधिपानाम्॥९

हरड, लोध, नीमके पत्ते, आमकी छाल और अनारकी छाल इन सबको समानभाग लेकर दूधमें पीसलेवे। फिर इसका उबटन करे तो स्त्री और पुरुषोंके मेदजन्य दुर्गन्ध दूर होकर शरीर अत्यन्त कान्तिमान् होता है॥ ९ ॥

गोमूत्रपिष्टं विनिहन्ति कुष्ठं वर्णोज्ज्वलं गोपयसा च युक्तम्।
कक्षादिदौर्गन्ध्यहरं पयोभिः शस्तं वशीकृद्रजनीद्वयेन॥१०

हरितालको गोमूत्रमें पीसकर प्रलेप करनेसे कुष्ठरोग नष्ट हो, एवं गोदुग्धमें हरितालको पीसकर लेप करनेसे शरीरका वर्ण शोभायमान होता है। और कोखआदि स्थानोंकी दुर्गन्ध दूर होती है। यदि गोदुग्धके साथ हरिताल और दारुहल्दी एकत्र घिसकर मस्तकपर तिलक लगावे तो स्त्री वशीभूत हो॥१०॥

चिञ्चापत्रस्वरसं म्रक्षितकक्षादियोजितं जयति।
पुटदग्धहरिद्रोद्वर्तनमचिराद्देहस्य दौर्गन्ध्यम्॥ ११ ॥

इमलीके पत्तोंका रस शरीरपर मालिश करके पश्चात् पुटद्वारा भस्म कीहुई हल्दीको उद्वर्त्तन करनेसे बगल, कुक्षि आदिकी स्थानोंकी बहुत पुरानी दुर्गन्ध शीघ्र नष्ट होती है॥ ११ ॥

दलजलजलघुमलयाभयाविलेपो हराति देहदौर्गन्ध्यम्।
विमलारनालसहितं पीतमिवालम्बुषाचूर्णम्॥ १२ ॥

तेजपात, सुगन्धवाला, अगर, श्वेत चन्दन और खस इनको समानभाग लेकर जलमें पीसकर लेप करे। अथवा गोरखमुण्डीके चूर्णको निर्मल काँजीके साथ पान करे तो शरीरकी दुर्गन्ध दूर होती है॥ १२ ॥

व्योषाद्य सक्तुप्रयोग।

व्योषं विडङ्गशिग्रूणि त्रिफलां कटुरोहिणीम्।
बृहत्यौ द्वे हरिद्रे द्वे पाठामतिविषां स्थिराम्॥ १३ ॥
हिङ्गुकेबूकमूलानि यमानी धान्यचित्रकम्।
सौवर्चलमजाजीञ्च हबुषाञ्चेति चूर्णयेत्॥ १४ ॥
चूर्णतैलघृतक्षौद्रभागाः स्युर्मानतः समाः।
सक्तूनां षोडशगुणो भागः सन्तर्पणं पिबेत्॥ १५ ॥

प्रयोगात्तस्य शाम्यन्ति रोगाः सन्तर्पणोत्थिताः ।
प्रमेहा मूढवाताश्च कुष्ठान्यर्शांसि कामलाः ॥ १६ ॥
प्लीहा पाण्ड्वामयः शोथो मूत्रकृच्छ्रमरोचकः ।
हृद्रोगा राजयक्ष्मा च कासः श्वासो गलग्रहः ॥ १७ ॥
कृमयो ग्रहणीदोषः श्वैत्रः स्थौल्यमतीव च ।
नराणां दीप्यते चाग्निः स्मृतिर्बुद्धिश्च वर्द्धते ॥ १८ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, सहिंजनेकी जड, त्रिफला, कुटकी, कटाई, कटेरी, हल्दी, दारुहल्दी, पाढ, अतीस, शालपर्णी, हींग, केउंआकी जड, अजवायन, धनियाँ, चीता, कालानमक, कालाजीरा और हाऊबेर ये सब समान भाग लेकर एकत्र कूट पीसकर चूर्ण करलेवे। फिर तिलका तेल, घृत और शहद ये प्रत्येक समस्त चूर्णकी बराबर भाग और जौके सत्तू चूर्णसे १६ गुने लेवे। सबको एकत्र शीतल जलके साथ मिलाकर पानकरे। इसके सेवनसे बीसों प्रमेह, मूढवातरोग, कोढ, बवासीर, कामला, तिल्ली, पाण्डुरोग, सूजन, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, हृदयरोग, राजयक्ष्मा, खाँसी, श्वास, गलेकी पीडा, कृमिरोग, संग्रहणी, सफेद कुष्ठ और स्थूलतादिरोग शीघ्र नष्ट होते हैं। तथा अग्निदीपन, स्मरणशक्ति और वुद्धि बढती है एवं अत्यन्त तृप्ति होतीहै ॥ १३-१८ ॥

विडङ्गाद्यलौह ।

विडङ्गत्रिफलामुस्तैः कणा नागरकेन च ।
बिल्वचन्दनह्रीबेरं पाठोशीरं तथा बला ॥ १९ ॥
एषां सर्वसमं लौहं जलेन वटिका शुभा ।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं लौहमष्टगुणं पयः ॥ २० ॥
सर्वमेदोहरं बल्यं कान्त्यायुर्बलवर्द्धनम् ।
अग्निसन्दीपनकरं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ २१ ॥
सोमरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ।
विडङ्गाद्यमिदं लौहं सर्वरोगनिषूदनम् ॥ २२ ॥

वायविडंग, हरड, वहेडा, आमला, नागरमोथा, पीपल, सोंठ, बेलगिरी, चन्दन, सुगन्धवाला, पाढ, खस और खिरैंटी इनके चूर्णको एक एक तोला और सब चूर्णकी बराबरा लोहभस्म लेवे। पश्चात् सबको एकत्र जलके साथ खरल करके दस दस रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली

खाय और ऊपरसे लोहभस्म एक तोला एवं दूध आठ तोले मिलाकर पीवे। इससे सर्वप्रकारके मेदरोग दूर होते हैं। यह विडंगाद्यलोह बल, अवस्था और कान्तिको बढानेवाला, अग्निको दीपनकरनेवाला एवं अत्युत्तम वाजीकरण है। यह सोमरोग और अन्यान्य सर्वप्रकारके विकारोंको इस प्रकार नष्ट करदेता है जिसप्रकार सूर्य अन्धकारके पुञ्जको छिन्नभिन्न करदेताहै ॥ १९-२२ ॥

त्र्यूषणादिलौह ।

त्र्यूषणं विजया चव्यं चित्रकं विडमौद्भिदम् ।
वाग्रुजी सैन्धवश्चैव सौवर्चलसमन्वितम् ॥ २३ ॥
अयश्चूर्णेन संयुक्तं भक्षयेन्मधु सर्पिषा ।
स्थौल्यापकर्षणं श्रेष्ठं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ २४ ॥
मेहघ्नं कुष्ठशमनं सर्वव्याधिहरं परम् ।
नाहारे यन्त्रणा कार्य्या न विहारे तथैव च ॥
त्र्यूषणाद्यमिदं लौहं रसायनवरोत्तमम् ॥ २५ ॥

सौंठ, पीपल, मिरच, भाँग, चव्य, चीता, विरियासञ्चरनोन, साँभरनोन, बावची, सैंधानमक और कालानमक इन सबोंका चूर्ण समानभाग एवं समस्त चूर्णकी बराबर लोहभस्म मिलाकर एकत्र पीसलेवे। फिर इसको तीन रत्ती प्रमाण लेके शहद और घीमें मिलाकर भक्षण करे तो स्थूलताका ह्रास होताहै। तथा बल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि होती है। प्रमेह, कुष्ठ एवं अन्यान्य अनेक प्रकारके विकार दूर होते हैं। इसके सेवन करनेपर आहार विहारका कुछ परहेज नहीं करे। यह त्र्यूषणाद्यलोह सर्वोत्तम रसायन है॥ २३-२५ ॥

लौहरसायन ।

गुग्गुलुस्तालमूली च त्रिफला खदिरं वृषम् ।
त्रिवृतालम्बुषा स्नुक् च निर्गुण्डी चित्रकं शठी॥२६॥
एषां दशपलान्भागांस्तोये पञ्चाढके पचेत् ।
पादशेषं ततः कृत्वा कषायमवतारयेत् ॥ २७ ॥
पलं द्वादशकं देयं तीक्ष्णलौहस्य चूर्णितम् ।
पुराणसर्पिषा प्रस्थं शर्कराष्टपलानि च ॥ २८॥
पचेत्ताम्रमये पात्रे सुशीते चावतारिते ।
प्रस्थार्द्धं माक्षिकं देयं शिलाजतु पलद्वयम् ॥ २९ ॥

एलात्वचोः पलार्द्धञ्च विडङ्गानां पलद्वयम् ।
मरिचञ्चाञ्जनं कृष्णा द्विपलं त्रिफलान्वितम् ॥ ३० ॥
पलद्वयन्तु कासीसं श्लक्ष्णचूर्णीकृतं बुधैः ।
चूर्णं कृत्वाथ मथितं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ ३१॥
ततः संशुद्धदेहस्तु भक्षयेदक्षमात्रकम् ।
अनुपानं पिबेत्क्षीरं जाङ्गलानां रसं तथा ॥ ३२ ॥
वातश्लेष्महरं श्रेष्ठं कुष्ठं मेहज्वरापहम् ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च श्वयथुं सभगन्दरम् ॥ ३३ ॥
मूर्च्छामोहविषोन्मादं गराणि विविधानि च ।
स्थूलानां कर्षणं श्रेष्ठं मेदुरे परमौषधम् ॥ ३४ ॥
कर्षयेच्चातिमात्रेण कुक्षिं पातालसन्निभम् ।
बल्यं रसायनं मेध्यं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ३५ ॥
श्रीकरं पुत्रजननं वलीपलितनाशनम् ।
नाश्नीयात्कदलीकन्दं काञ्जिकं करमर्दकम् ॥
करीरं कारवेल्लञ्च षट्ककाराणि वर्जयेत् ॥ ३६ ॥

पोटलीमें बँधीहुई गूगल, मुसली, त्रिफला, खैर, अडूसा, निसोत, गोरखमुण्डी, थूहरकी जड, निर्गुण्डी, चीता और कचूर इन औषधियोंको दस दस पल लेकर ४० सेर जलमें पकावे। पकते २ जब १० सेर जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे फिर इस काथमें अच्छेप्रकार पीसीहुई कान्तलोहकी भस्म ४८ तोले, पुराना घी ६४ तोले और चीनी ३२ तोले डालकर तांबेके पात्रमें यथाविधि पाक करे। जब पककर शीतल होजाय तब उतारकर उसमें शहद ३२ तोले, शिलाजीत ८ तोले, इलायची २ तोले, दारचीनी २ तोले, वायविडङ्ग ८ तोले, मिरच, रसौत, पीपल, हरड, बहेडा आमला और कसीस ये प्रत्येक औषधि आठ २ तोले लेकर खूब बारीक कूट पीसकर डालदेवे। फिर करछीसे चलाकर सबको एकमएक करके स्वच्छ घीके चिकने बर्तनमें भरकर रखदेवे। प्रथम वमन, विरेचनादिसे शरीरको शुद्ध करलेवे पश्चात् इसको नित्यप्रति प्रातःकाल दो दो तोलेकी मात्रासे भक्षण करे। इसपर दूध और जङ्गली जीवोंके मांसका रस अनुपान करे। यह लौहरसायन वात-कफ नाशक, कुष्ठ, प्रमेह और ज्वरको नाशकरनेके लिये अत्युत्तमहै। एवं कामला, पाण्डु, सूजन, भगन्दर, मूर्च्छा, मोह, विष, उन्माद और नानाप्रकारके विष-

दोषोंको हरता है । स्थूलपुरुषोंका स्थूलताको कृश करनेवाली, मेदरोगकी परमोत्कृष्ट औषधि एवं उदरको अत्यन्त पतला करनेवाली है । अत्यन्त बलकारक, रसायन मेधाजनक, उत्तम वाजीकरण, लक्ष्मीजनक, पुत्रको उत्पन्न करनेवाली, वली (शरीरमें झुर्रियोंका पडना) और पलित (असमय बालोंका सफेद होना) इत्यादि रोगोंको नाश करती है । इस औषधिके सेवन करनेपर केला, कन्द (आलू, काँदू आदि) काँजी, करौंदा करीर (बाँसके अंकुर) और करेला इन छः ककारवाले पदार्थोंको त्याग देवे ॥ २६-३६ ॥

नवकगुग्गुलु ।

व्योषाग्नित्रिफलामुस्तविडङ्गैर्गुग्गुलुः समम् ।
खादन्सर्वाञ्जयेद्व्याधीन्मेदः श्लेष्मामवातजान् ॥ ३७ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, चीता, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा और वायविडङ्ग ये सब समानभाग और इन सबकी बराबर शुद्ध गूगल लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको सेवन करनेसे मेदरोग, कफ और आमवातजन्य सर्वप्रकारके रोग दूर होते हैं ॥ ३७ ॥

अमृताद्यगुग्गुलु ।

अमृतात्रुटिवेल्लवत्सकं कलिङ्गपथ्यामलकानि गुग्गुलुः ।
क्रमवृद्धिमिदं मधुप्लुतं पीडिकास्थौल्यभगन्दरं जयेत् ॥३८॥

गिलोय १ तोला, छोटी इलायची २ तोले, वायविडङ्ग ३ तोले, कुडेकी छाल ४ तोले, इन्द्रजौ ५ तोले, हरड ६ तोले, आमले ७ तोले, और शुद्ध गूगल ८ तोले इन सबको कूट पीसकर शहदमें मिलाकर चाटनेसे पिडिका, स्थूलता और भगन्दररोग नष्ट होते हैं ॥ ३८ ॥

त्रिफलाद्यतैल ।

त्रिफलातिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः ।
निम्बारग्वधषड्ग्रन्थासप्तपर्णनिशाद्वयैः ॥ ३९ ॥
गुडूचीन्द्रसुरीकृष्णाकुष्ठसर्षपनागरैः ।
तैलमेभिः शनैः पक्वं सुरसादिरसाप्लुतम् ॥ ४० ॥
पानाभ्यञ्जनगण्डूषनस्यवस्तिषु योजयेत् ।
स्थूलतालस्यकण्ड्वादीन् जयेत्कफकृतान् गदान् ॥४१॥

त्रिफला, अतीस, मूर्वा, निसोत, चीता, अडूसा, नीमकी छाल, अमलतासकी छाल, वच, सतवन, हल्दी, दारुहल्दी, गिलोय, निर्गुण्डी, पीपल, कूठ, सरसों

और सोंठ इनके समानभाग मिले एक सेर कल्कके द्वारा सुरसादिगणकी ओषधियोंके काथमें तिलके तेलको यथाविधि धीरे धीरे सिद्ध करे । इस तेलको पान, अभ्यंग, गण्डूष नस्य और वस्तिकर्ममें प्रयोग करना चाहिये । यह स्थूलता, आलस्य, खुजली आदिरोग एवं कफजनितसम्पूर्णरोगोंको रहता है ॥

मेदोरोगमें पथ्य ।

चिन्ता श्रमो जागरणं व्यवायः प्रोद्वर्त्तनं लङ्घनमातपश्च । हस्त्यश्वयानं भ्रमणं विरेकः प्रच्छर्दनञ्चाप्यपतर्पणानि ॥ ४२॥ पुरातना वेणवकोरदूषश्यामाकनीवारप्रियङ्गवश्च । यवाः कुलत्थाश्चणका मसूरा मुद्गस्तुवर्योऽपि मधूनि लाजाः ॥४३॥ कटूनि तिक्तानि कषायकाणि तक्रं सुरा चिङ्गटमत्स्य एव। दग्धानि वार्ताकुफलानि चापि फलत्रयं गुग्गुलुवायसश्च॥४४॥कटुत्रयं सार्षपतैलमेला रूक्षाणि सर्वाणि च मुख्यतैलम्।पत्रोत्थशाकोऽगुरुलेपनानि प्रतप्तनीराणि शिलाजतूनि॥ प्राग्भोजनस्यापि च वारिपानं मेदोगदं पथ्यमिदं निहन्ति

चिन्ता, अत्यन्त परिश्रम, रात्रिमें जागना, मैथुन, शरीरपर जोरसे, उबटन करना, लङ्घन धूपका सेवन, हाथी और घोडे आदिकी सवारीपर चढना, भ्रमण करना, जुल्लाब लेना, वमन और अपतर्पण करना, पुराने बाँसीके चावल, कोदों, सामा नीवार और कंगुनीके चावल, जौ, कुलथी, चने, मसूर, मूँग, अरहर, शहद, खीलें, चरपरे, कडवे और कषायरसवाले पदार्थोंका भोजन, मट्ठा, मदिरा, चिङ्गटमत्स्य (मछली विशेष), बैंगनोंका भुर्त्ता, त्रिफला, गूगल, राल, त्रिकुटा, सरसोंका तेल, इलायची, सम्पूर्ण रूक्ष पदार्थ, तिलका तेल, पत्रशाक, अगरका लेप, उष्णजलसे स्नान, पान शिलाजीत सेवन और भोजनकरनेसे पूर्व जलका पीना ये सब मेदरोगमें हितकारक पदार्थ हैं। इनके सेवन करनेसे उक्त रोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ४२-४५ ॥

मेदोरोगमें अपथ्य ।

स्नानं रसायनं शालीन्गोधूमान्सुखशीलताम् ।
क्षीरेक्षुविकृतीर्माषांल्लौहित्यं स्नेहनानि च ॥ ४६ ॥
मत्स्यं मांसं दिवानिद्रां स्रग्गन्धौ मधुराणि च ।
भोजनस्य समग्रस्य पश्चात्पानं जलस्य च ॥ ४७ ॥

अतिमात्रं तूपचितो विशेषाद्वमनाक्रियाम् ।
स्वभावस्थत्वमन्विच्छन् मेदस्वी परिवर्जयेत ॥ ४८ ॥

स्नान करना, रासायनिक औषधियोंका सेवन, शालिके चावल, गेहूँ, सुखपूर्वक उपभोग, दूधकी खीर, ईखके रसकी खीर, उडद, लोहित्य (मसूर, सांठी आदिके चावल) द्रव्योंका आहार, स्नेह (घृत, तैलादिका पान अभ्यंग आदि) क्रिया, मछली, मांसभक्षण, दिनमें सोना, मालाधारण करना, सुबन्धित द्रव्योंका सेवन, मधुर रसयुक्त पदार्थोंका भक्षण और समस्त भोजन करलेनेके बाद जलको पीना, अत्यन्त बढेहुए मेदमें विशेषकर वमनक्रिया, स्वभावजन्य इच्छाशक्तिको पूर्ण न करना, इन सब द्रव्योंको मेदरोगी त्यागदेवे । क्योंकि ये सब उक्त रोगमें अपथ्य हैं ॥ ४६-४८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मेदोरोगचिकित्सा ॥

उदररोगकी चिकित्सा ।

सर्वमेवोदरं प्रायो दोषसंघातजं यतः ।
अतो वातादिशमनी क्रिया सर्वत्र शस्यते ॥ १ ॥

प्रायः वात, पित्त और कफादिदोषोंके संग्रह होनेसे सर्वप्रकारके उदररोग उत्पन्न होते हैं, अतः सम्पूर्ण उदरविकारोंमें वातादि तीनों दोषोंको शमन करनेवाली क्रिया करनी चाहिये ॥ १ ॥

उदरे दोषसम्पूर्णे कुक्षौ मन्दो यतोऽनलः ।
तस्माद्भोज्यानि योज्यानि दीपनानि लघूनि च ॥ २ ॥

उदररोगमें वातादिदोष रोगीकी कुक्षिमें प्राप्त होकर अग्निको मन्द करते हैं । इस कारण रोगीको अग्निप्रदीपक और हलके पदार्थ भोजन करनेके लियेदेवे ॥ २ ॥

रक्तशालीन्यवान्मुद्गान् जाङ्गलांश्च मृगाद्विजान् ।
पयोमूत्रासवारिष्टमधु सीधु च शीलयेत् ॥ ३ ॥

लालशालिके चावल, जौ, मूँगआदि अन्न, मृग और जंगली पशुपक्षियोंके मांसरस, दूध, गोमूत्र, आसव, अरिष्ट, मधु और सीधुनामक मद्यप्रभृति पदार्थ उदररोगीको भोजन करने चाहिये ॥ ३ ॥

दोषातिमात्रोपचयात स्रोतोमार्गनिरोधनात ।
सम्भवत्युदरं तस्मान्नित्यमेनं विरेचयेत् ॥
पाययेत्तैलमेरण्डं समूत्रं सपयोऽपि वा ॥ ४ ॥

वातादिदोषोंके अधिक सञ्चयहोनेसे रक्तको बहानेवाले स्रोत बन्द होजाते हैं इस कारण उदररोग उत्पन्न होते हैं। अतः रोगीको नित्यप्रति गोमूत्र अथवा दूध मिलाहुआ अण्डीका तेल उचित मात्रासे पान कराकर दस्त करावे ॥४॥

वातोदरं बलवतः स्नेहस्वेदैरुपाचरेत् ।
स्निग्धाय स्वेदिताङ्गाय दद्यात्स्निग्धं विरेचनम् ॥ ५॥
हृते दोषे परिम्लानं वेष्टयेद्वाससोदरम् ।
यथास्यानवकाशत्वाद्वायुर्नाध्मापयेत्पुनः ॥ ६ ॥

वातजनित उदररोगमें यदि रोगी बलवान् हो तो प्रथम उसको स्नेह (घृतादि) द्रव्य पान कराकर स्निग्धकरे। पश्चात् स्वेदक्रिया करके स्निग्ध (अण्डीका तेल आदि) विरेचन देवे। इस प्रकार करनेसे दोषोंके नष्ट होजानेपर जब पेट मुरझाजायतब उसको वस्त्रसे लपेट देवे। अच्छे प्रकार बाँधनेसे उदर वायुद्वारा फिर नहीं फूल सकता ॥ ५ ॥ ६ ॥

विरिक्ते च यथादोषहरैः पेया शृता हिता ॥

विरेचन देनेके पश्चात् रोगीको वातादिदोषनाशक द्रव्योंके द्वारा पेया बनाकर देनेसे विशेष हित होताहै ॥

वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम् ।
शर्करामरिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ॥ ७ ॥
यमानी सैन्धवाजाजी व्योषयुक्तं कफोदरी ।
त्र्यूषणक्षारलवणैर्युक्तन्तु निचयोदरी ॥ ८ ॥

वातजन्य उदररोगमें पीपल और सैंधानमकका चूर्ण मिलाकर तक्र पान करे। मिश्री और कालीमिरचके चूर्णसे युक्त मधुर तक्रको पित्तोदररोगी पीवे कफोदरवाला रोगी अजवायन, सैंधानमक, कालाजीरा, सोंठ, मिरच और पीपल इनके चूर्णको मिलाकर तक्र पानकरे और त्रिदोषोत्पन्न उदररोगमें त्रिकुटा जवाखार तथा सैंधानोन इनका चूर्ण डालकर तक्र पान करावे ॥ ७ ॥ ८ ॥

गौरवारोचकार्तानां समन्दाग्न्यतिसारिणाम् ।
तक्रं वातकफार्त्तानाममृतत्वाय कल्प्यते ॥ ९ ॥
वातोदरे पयोऽभ्यासो निरूहो दाशमूलिकः ।
सोदावर्त्ते वातघ्नाम्लशृतैरण्डानुवासनः ॥ १० ॥

शरीरमें भारीपन, अरुचि, मन्दाग्नि और अतीसार आदि लक्षणोंसे आक्रान्त और वातकफसे पीडित रोगीको तक्रपान कराना अमृतके समान उपकारी है।

वातसे उत्पन्न उदररोगमें बल बढनेके लिये रोगीको दूध अधिक सेवन करावे। जब शरीर सबल होजाय तब दशमूलकी औषधियोंके काथद्वारा निरूहवस्ति प्रयोगकरे। उदावर्त्तयुक्त वातोदरमें वातनाशक और काँजी आदि अम्लद्रव्योंसे पकायेहुए अण्डीके तेलकी अनुवासनवस्ति प्रदान करे ॥ ९ ॥ १० ॥

स्नुक्पयसा सुभाविततण्डुलचूर्णविनिर्मितः पूर्वः ।
उदरमुदारं हिंस्याद्योगोऽयं सप्तरात्रेण ॥ ११ ॥

थूहरके दूधमें चावलोंके चूर्णको पकाकर मालपुये बनावे। इन पुओंको सेवन करनेसे सातदिनमें ही अत्यन्त प्रबल उदररोग दूर होता है ॥ ११ ॥

सक्षीरं माहिषं मूत्रं निराहारः पिबेन्नरः ।
शाम्यत्यनेन जठरं सप्ताहादिति निश्चयः ॥ १२ ॥

प्रतिदिन प्रातःकाल समस्त अन्नजलादिका परित्याग करके भैंसके मूत्रको दूधमें मिलाकर पान करनेसे उदररोग एक सप्ताहमें निश्चय नाश होता है ॥ १२ ॥

मानमण्ड ।

पुराणं मानकं पिष्ट्वा द्विगुणीकृततण्डुलम् ।
साधितं क्षीरतोयाभ्यामभ्यसेत्पायसन्तु तत् ॥ १३ ॥
हन्ति वातोदरं शोथं ग्रहणीं पाण्डुतामपि ।
सिद्धो भिषग्भिराख्यातः प्रयोगोऽयं निरत्ययः॥१४॥

पुराने मानकन्दका चूर्ण एक भाग और चावल दो भाग लेवे। दोनोंको एकत्र पीसकर समानभाग दूध और जलके द्वारा पकावे। इस प्रकार सिद्ध कीहुई खीरको सेवनेसे वातजउदररोग, सूजन, संग्रहणी, पाण्डु आदि रोग नष्ट होते हैं। इस खीरके सेवनमें अन्य सर्वप्रकारके भोजन त्याग देवे॥१३॥१४॥

सामुद्राद्यचूर्ण ।

सामुद्रसौवर्चलसैन्धवानि क्षारं यमानीमजमोदकञ्च ।
सपिप्पलीचित्रकशृङ्गवेरं हिङ्गुं विडञ्चेति समानि कुर्यात् १५
एतानि चूर्णानि घृतप्लुतानि भुञ्जीत पूर्वं कवले प्रशस्तम्।
वातोदरं गुल्ममजीर्णभक्तं वातास्रकोपं ग्रहणीं प्रदुष्टम् ॥१६॥
अर्शांसि दुष्टानि च पाण्डुरोगं भगन्दरं चापि निहन्ति सद्यः

समुद्रनमक, कालानमक, सैंधानमक, जवाखार, अजवायन, अजमोद, पीपल, चीता, सोंठ, हींग और विरियासञ्चरनमक इन सबको समानभाग

लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको घृतमें मिलाकर भोजनके पहलेग्रासमें खावे। यह चूर्ण वातोदर, गुल्म, अजीर्ण, वातरक्तका कोप, संग्रहणी, दुष्ट बवासीर, पाण्डु और भगन्दरप्रभृतिरोगोंको तत्काल दूर करताहै ॥१५॥१६॥

इच्छाभेदीरस।

शुण्ठीमरिचसंयुक्तं रसगन्धकटङ्कणम्।
जैपालाख्त्रिगुणाः प्रोक्ताः सर्वमेकत्र पेषयेत् ॥ १७ ॥
इच्छाभेदी द्विगुञ्जा स्यात्सितया सह पाययेत्।
पिबेत्तु चुल्लकं यावत्तावद्वारान्विरेचयेत् ॥
तक्रौदनञ्च दातव्यमिच्छाभेदी यथेच्छया ॥ १८ ॥

सोंठ, मिरच, शुद्धपारा, शुद्धगन्धक और सुहागा ये प्रत्येक एकएक तोला एवं शुद्ध जमालगोटा ३ तोले लेवे। फिर सबको एकत्र जलमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस रसकी एक गोली मिश्रीके साथ सेवन करे और ऊपरसे शीतल जल पीवे। इसपर जितने घूंट जल पीवेगा उतनी ही बार दस्त होंगे। जब उत्तम रूपसे दस्त होजाय तब यथारुचि मट्ठा मिलाहुआ अन्न भोजन करे ॥ १७ ॥ १८ ॥

द्वितीय-इच्छाभेदीरस।

सूतं गन्धञ्च मरिचं टङ्कणं नागराभये।
जैपालबीजसंयुक्तं क्रमोत्तरगुणं भवेत् ॥ १९ ॥
सर्वतुल्यो गुडो देय इच्छाभेदी त्वयं रसः।
द्वित्रिगुञ्जापरिमिता वटी कार्या विचक्षणैः ॥ २० ॥

शुद्धपारा एक तोला, शुद्धगन्धक दो तोले, काली मिरच ३ तोले, सुहागा ४ तोले, सोंठ ५ तोले, हरड ६ तोले और जमालगोटा ७ तोले लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। इस समस्त चूर्णकी बराबरभाग पुराना गुड मिलाके अच्छे प्रकार घोटकर दो या तीन रत्ती प्रमाण गोलियाँ बनालेवे। यह इच्छाभेदी रस है। यह भी पूर्वोक्तरसके समान गुणोंवाला है ॥ १९ ॥ २० ॥

अन्य इच्छाभेदी रस।

शुद्धसूतस्य भागैकं गन्धकान्माषकत्रयम्।
विभीतकस्य माषैकं धात्र्याश्चैव तु माषकम् ॥ २१ ॥
माषद्वयञ्च पिप्पल्याः शुण्ठीनां माषकत्रयम्।
जैपालबीजमज्जाया गुडकं विंशतिं तथा ॥ २२ ॥

अम्ललोणीरसैः पिष्ट्वा वटिकां कारयेद्भिषक् ।
कलायपरिमाणान्तु भक्षयेद्रेचनार्थकम् ॥ २३ ॥
अम्ललोणीरसैः सार्द्धं तोयमुष्णं पिबेदनु ।
तावद्विरिच्यते वेगान् यावच्छीतं न सेवते ॥ २४ ॥

शुद्धपारा एक माशा, शुद्धगन्धक ३ मासे, बहेडा एक मासा, आमले एक मासा, पीपल दो मासे, सोंठ ३ मासे, जमालगोटेकी मींग और पुराना गुड बीस बीस मासे लेवे । इन सबको एकत्र नोनियाके रसमें खरल करके मटरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे एक गोली खाय और ऊपरसे नोनियाके रसके साथ उष्ण जल पानकरे । इसपर जबतक शीतल जल न पिया जायगा तबतक बराबर दस्त होते रहेंगे ॥ २१-२४ ॥

भेदिनीवटी ।

त्रिकण्टकस्नुक्पयसा पिप्पल्या वटिका कृता ।
भेदनीया सिद्धिमता महागदनिषूदनी ॥ २५ ॥

गोखुरू और पीपल इनको समानभाग लेकर थूहरके दूधमें यथाविधि खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनावे । इसके सेवन करनेसे विरेचन होकर अतिप्रबल उदरादिरोग नष्ट होते हैं ॥ २५ ॥

नाराचरस ।

सूतं टङ्कणतुल्यांशं मरिचं सूततुल्यकम् ।
गन्धकं पिप्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत्॥२६॥
सर्वतुल्यं क्षिपेद्दन्तीबीजं निस्तुषमेव च ।
द्विगुञ्जो रेचने सिद्धो नाराचोऽयं महारसः ।
गुल्मप्लीहोदरं हन्ति पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ २७ ॥

शुद्धपारा, सुहागा और कालीमिरच ये प्रत्येक एक एक भाग, शुद्धगन्धक, पीपल और सोंठ ये प्रत्येक दो दो भाग तथा सबकी बराबर भूसीरहित जमालगोटा लेवे । फिर सबको एकत्र जलमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इसकी एक गोली चावलोंके धोवनके साथ सेवन करे तो उससे दस्त होकर गुल्म, प्लीहा और उदररोग दूर होते हैं । यह महानाराचरस विरेचनमें बाणकी समान तीक्ष्णहै ॥ २६ ॥ २७ ॥

जलोदरारिरस।

पिप्पली मरिचं ताम्रं रजनीचूर्णसंयुतम्।
स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्यं तुल्यं जैपालबीजकम् ॥ २८ ॥
निष्कं खादेद्विरेकः स्यात्सद्यो हन्ति जलोदरम्।
रेचनानाञ्च सर्वेषां दध्यन्नं स्तम्भने हितम् ॥
दिनान्ते च प्रदातव्यमन्नं वा मुद्गयूषकम् ॥ २९ ॥

पीपल, कालीमिरच, ताम्रभस्म और हल्दीका चूर्ण इन सबोंको समानभाग लेकर थूहरके दूधमें एक दिनतक अच्छे प्रकार खरल करे। फिर सबकी बराबर जमालगोटा मिलाकर पीसलेवे। इस रसको चार माशे प्रमाण खाय तो दस्त होकर जलोदररोग शीघ्र नष्ट होताहै। यदि दस्तोंको बन्द करना हो तो दही और भातका भोजन करे। अर्थात् इस औषधिको सेवन करनेपर जब उत्तम प्रकारसे दस्त होजायँ तब सन्ध्याकालमें दही और भात अथवा मूँगके यूष और भातको भक्षण करे ॥ २८ ॥ २९ ॥

वह्निरस।

सूतस्य गन्धकस्याष्टौ रजनीत्रिफलाशिलाः।
प्रत्येकञ्च द्विभागं स्यात्त्रिवृज्जैपालचित्रकम् ॥ ३० ॥
प्रत्येकं स्यात्त्रिभागञ्च व्योषं दन्तिकजीरकम्।
प्रत्येकं सप्तभागं स्यादेकीकृत्य विचूर्णयेत् ॥ ३१ ॥
जयन्तीस्नुक्पयोभृङ्गवह्निवातारितैलकैः।
प्रत्येकेन क्रमाद्भाव्यं सप्तवारं पृथक् पृथक् ॥ ३२ ॥
महावह्निरसो नाम्ना निष्कमुष्णजलैः पिबेत्।
विरेचनं भवेत्तेन तक्रयुक्तं ससैन्धवम् ॥ ३३ ॥
दिनान्ते दापयेत्पथ्यं वर्जयेच्छीतलं जलम्।
सर्वोदरहरः प्रोक्तः श्लेष्मवातहरः परः ॥ ३४ ॥

शुद्धपारा तथा गन्धक प्रत्येक आठ आठ भाग, हल्दी, त्रिफला और मैनसिल प्रत्येक दो दो भाग, निसोत, जमालगोटा एवं चीता तीन तीन भाग, त्रिकुटा, दन्ती और जीरा ये प्रत्येक सात सात भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर इस चूर्णको जयन्तीके पत्तोंके रस, थूहरके दूध, भाङ्गरेके रस, चीतेकी जडके रस और अण्डीके तेलमें अलग अलग क्रमानुसार सातबार सात सात

भावना देवे। तदनन्तर इसको चारमाशे प्रमाण गरम जलके साथ सेवन करे। इसके सेवनसे जब अच्छे प्रकार दस्त होजायँ तब शामके वक्त सैंधेनमकसे युक्त मट्ठे और भातका पथ्य देवे। इसपर शीतल जल पान न करे। यह रस सर्वप्रकारके उदररोग और कफ वातजन्य रोगोंको दूर करता है ॥३०-३४॥

चुलिकावटी।

रसो गन्धो विषं तालं त्रिकटु त्रिफला तथा।
टङ्कणं समभागश्च जयपालं चतुर्गुणम् ॥ ३५ ॥
भृङ्गराजरसेनाथ केशराजरसेन वा।
मधुना वटिका कार्य्या पञ्चगुञ्जामिता शुभा ॥ ३६ ॥
चुलिकाख्या वटी ख्याता शोथोदरविनाशिनी।
कामलां पाण्डुरोगञ्च आमवातं हलीमकम् ॥
हन्याद्भगन्दरं कुष्ठं प्लीहानं गुल्ममेव च ॥ ३७ ॥

शुद्धपारा, गन्धक, शुद्धमीठातेलिया, हरिताल, त्रिकुटा, त्रिफला और सुहागा ये प्रत्येक समभाग और शुद्ध जमालगोटा सब द्रव्योंसे चौगुना लेवे। सबको एकत्रितकर भाङ्गरेके रस और शहदके साथ अथवा केशराज (काले भाँगरे) के रस और शहदके साथ उत्तम रीतिसे खरल करके पाँच पाँच रत्तीकी गोलियाँ तैयार करलेवे। इसका चुलिकावटी नाम है। यह सूजन, उदररोग, कामला, पाण्डु, आमवात, हलीमक, भगन्दर, कोढ, प्लीहा और गुल्म इत्यादि रोगोंको नष्ट करती है ॥ ३५-३७ ॥

श्रीवैद्यनाथादेशवटिका।

त्रिकटुकपारदपथ्यासमभागं कानकफलं द्विगुणम्।
माषप्रमाणा वटिका कार्या स्वरसेनाम्ललोणिकायाः ३८
प्रबलजलोदरगुल्मज्वरपाण्ड्वामयनाशिनी प्रोक्ता।
तिमिराणि पटलविद्रधिप्रबलोदावर्त्तशूलहरी ॥ ३९ ॥
कृमिकोठकुष्ठकण्डूपिडकाश्च निहन्ति रोगचयम्।
सिद्धगुडी प्रथिता भुवने श्रीवैद्यनाथपादाज्ञा ॥४० ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, रससिन्दूर और हरड ये प्रत्येक समानभाग और दुगुना जमालगोटा लेवे। फिर सबको एकत्र चूर्णकर लोनियाके रसमें विधिपूर्वक खरल करके एकएक मासेकी गोलियाँ बनावे। यह वटी प्रबलतर जलो-

दर, गुल्म, ज्वर, पाण्डु, तिमिर, पटल, विद्रधि, दुस्तरउदावर्त्त और शूलादि रोग एवं कृमिरोग, उदररोग, कुष्ठ, खुजली, पिडका प्रभृति समस्त रोगोंके समूहको शीघ्र नष्ट करती है। इसके सेवन करनेसे यदि ज्यादा दस्त होवें तो रोगीके हाथ पैर धुलाकर उसको दही और भातका थोडा भोजन करावे। यह श्रीवैद्यनाथ महाराजकी आज्ञासे निर्माण कीगई है, इसलिये इसको श्रीवैद्यनाथादेश वटिका कहते हैं ॥ ३८-४० ॥

अभयावटी ।

अभया मरिचं कृष्णा टङ्कणञ्च समांशिकम् ।
सर्वचूर्णसमं भागं दद्यात्कानकजं फलम् ॥ ४१ ॥
स्नुहीक्षीरेण संकुर्याद्वटीं स्विन्नकलायवत् ।
वटीद्वयं शिवामेकां पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ॥ ४२ ॥
उष्णाद्भिर्रेचयेदेषा शीते स्वास्थ्यमुपैति च ।
जीर्णज्वरं प्लीहरोगं हन्त्यष्टावुदराणि च ॥ ४३ ॥
वातोदरे प्रशस्तेयं सर्वाजीर्णं व्यपोहति ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च तथैव कुम्भकामलाम् ॥ ४४ ॥

हरड, कालीमिरच पीपल और सुहागा ये सब समानभाग और सबके समान शुद्ध जमालगोटा एकत्र मिलाकर पीसलेवे। फिर सबको थूहरके दूधमें अच्छे प्रकार खरल करके मटरकी बराबर गोलियाँ प्रस्तुत करे। इनमेंसे दो गोली और एक हरडको चावलोंके जलमें पीसकर खाय और ऊपरसे गरमजल पीवे तो इससे दस्त होते हैं। इसपर शीतलजल पीनेसे दस्त बन्द होजाते हैं। यह गोली पुराने ज्वर, तिल्ली, ८ प्रकारके उदररोग, वातोदर, सर्व प्रकारकी अजीर्णता, कामला, पाण्डु, कुम्भकामलादि रोगोंको दूर करती है॥४१-४४॥

शोथोदरारिलौह ।

पुनर्नवामृतावह्निगवाक्षीमानशिग्रवः ।
सूर्यावर्त्तार्कमूलञ्च पृथगष्टपलं जले ॥ ४५ ॥
पादशेषे शृतं द्रोणे सुपूते वस्त्रगालिते ।
लौहचूर्णाष्टपलकं पचेदाज्यसमं भिषक् ॥ ४६ ॥
अर्कस्य द्विपलं क्षीरं स्नुहीक्षीरं चतुःपलम् ।
पलद्वयं कौशिकस्य गन्धकस्य पलन्तथा ॥ ४७ ॥

पलार्द्धं पारदं सिद्धे वक्ष्यमाणन्तु निःक्षिपेत् ।
जयपालं ताम्रमभ्रं शुद्धमत्र प्रदापयेत् ॥ ४८ ॥
कंकुष्ठवह्निकन्दानां शराख्याद्धण्टकर्णकात् ।
पलाशस्य च बीजानि कञ्चुकी तालमूलिका ॥४९॥
त्रिफलायाः कृमिरिपोस्त्रिवृद्दन्तीभवं तथा ।
सूर्यावर्त्तगवाक्ष्योश्च वर्षाभूर्वज्रवल्लिका ॥ ५० ॥
एषां लौहसमां मात्रां स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ।
अतोऽस्य भक्षयेन्मात्रामनुपानञ्च युक्तितः ॥ ५१ ॥
हन्ति सर्वोदरं शीघ्रं नात्र कार्या विचारणा ।
ये च शोथा सुदुर्वाराश्चिरकालानुबन्धिनः ॥ ५२ ॥
तान्सर्वान्नाशयत्याशु तमः सूर्योदये यथा ।
नातःपरतरं किञ्चिच्छोथोदराविनाशनम् ॥ ५३ ॥
उदराणि पाण्डुरोगं कामलाञ्च हलीमकम् ।
अर्शो भगन्दरं कुष्ठं ज्वरं गुल्मञ्च नाशयेत ॥ ५४ ॥

पुनर्नवा, गिलोय, चीता, इन्द्रायण, मानकन्द, सहिंजना, हुलहुलकी जड और आककी जड इन औषधियोंको अलग २ आठआठ पल लेकर एकद्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस क्वाथमें लोहेकी भस्म ८ पल, गौका घी ८ पल, आकका दूध २ पल, थूहरका दूध ४ पल, शुद्धगूगल ८ तोले, शुद्धगन्धक ४ तोले और यथाविधि शोधित पारा २ तोले डालकर ताँबेके पात्रमें उत्तमरूपसे पाककरे। जब पाक भलीभाँति पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर शीतल होजानेपर उसमें निम्नोक्त औषधियोंके चूर्णको डालदेवे। यथा—जमालगोटा, शुद्ध ताँबे और अभ्रककी भस्म, मुरदाशंख, चीतेकी जड, जिमीकन्द, शरपवा, मोखा-वृक्ष, ढाकके बीज, क्षीरकञ्चुकी, मुसली, त्रिफला, वायविडङ्ग, निसोत, दन्तीकी जड, हुलहुल, इन्द्रायणकी जड, पुनर्नवा और हडसंकरी ये प्रत्येक औषधि लोहेकी समानभाग लेकर बारीक कूट पीसकर अच्छेप्रकार मिलादेवे। फिर एक उत्तम घृतसे चिकनेपात्रमें भरकर रखदेवे। पश्चात् प्रतिदिन प्रातः-काल उपयुक्तमात्रासे सेवन करे और देश, काल तथा दोषोंके बलाबलको विचारकर अनुपानकी कल्पना करे। यह सब उदररोगोंको तत्क्षण नाश

करताहै जो बहुत पुराने और दुर्निवार्य्य शोथ हैं उन सबको यह औषधि इस प्रकार नष्ट करती है जिस प्रकार सूर्य्यकी प्रखरतम किरणोंके उदय होनेपर अन्धकार नष्ट होजाता है । शोथ और उदररोगकी इससे उत्तम अन्य औषधि नहीं है । इससे पाण्डु, कामला, हलीमक, अर्श, भगन्दर, कुष्ठ, ज्वर और गुल्मादि सब विकार दूर होते हैं ॥ ४५–५४ ॥

वज्रक्षार ।

सामुद्रं सैन्धवं काचं यवक्षारं सुवर्चलम् ।
टङ्कणं स्वर्जिकाक्षारस्तुल्यं सर्वं विचूर्णयेत् ॥ ९५ ॥
अर्कक्षीरैः स्नुहीक्षीरैरातपे भावयेत्त्र्यहम् ।
तेन लिप्तार्कपत्रञ्च रुद्ध्वा चान्तःपुटे पचेत् ॥ ९६ ॥
तत्क्षारं चूर्णयेत्पश्चात् त्र्यूषणं त्रिफलारजः ।
जरिकं रजनीवह्निर्नवभागं समं समम् ॥ ५७ ॥
क्षारार्द्धमेव सर्वञ्च एकीकृत्य प्रयोजयेत् ।
वज्रक्षारमिदं सिद्धं स्वयं प्रोक्तं पिनाकिना ॥ ५८ ॥
सर्वोदरेषु गुल्मेषु शूलदोषेषु योजयेत् ।
अग्निमान्द्येऽप्यजीर्णे च भक्ष्यं निष्कद्वयं द्वयम् ॥५९॥
वाताधिके जलं कोष्णं घृतं वा पैत्तिके हितम् ।
कफे गोमूत्रसंयुक्तमारनालं त्रिदोषजे ॥ ६० ॥

समुद्रनोन, सेंधानोन, काचियानोन, जवाखार, कालानमक, सुहागा, और सज्जी इन सबको समानभाग लेकर बारीक पीस लेवे । फिर इस चूर्णको धूपमें रखकर आकके दूध और थूहरके दूधमें तीन दिनतक भावना देवे । तदनन्तर गोलासा बनालेवे और उसको आकके पत्तोंसे लपेट हांडीमें रखकर मुँह बन्दकरदेवे और अन्तःपुटमें स्थापनकर उत्तमरूपसे पकावे । जब यथाविधि पककर शीतल होजाय तब उक्त गोलेको निकालकर चूर्ण करलेवे फिर उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, जीरा, हल्दी और चीता इनका समान भाग मिश्रित चूर्ण सब खारसे आधाभाग लेकर एकत्र मिला देवे । इस प्रकार वज्रक्षार सिद्ध होता है । इसको शिवजी महाराजने कहा है । इसको समस्त उदररोग, गुल्म, शूल, मन्दाग्नि और अजीर्णादि रोगोंमें चार २ माशेकी मात्रासे सेवनकरे तो उक्त सब विकार नष्ट होते हैं । अनुपान–वाताधिक्यमें गरमजल, पित्तकी अधिकतामें घृत, कफाधिक्यमें गोमूत्र और त्रिदोषमें काँजीके साथ देवे॥

बिन्दुघृत।

अर्कक्षीरपले द्वे च स्नुहीक्षीरपलानि षट्।
पथ्या काम्पिल्लकं श्यामा शम्याकं गिरिकर्णिका॥६१
नीलिनी त्रिवृता दन्ती शंखिनी चित्रकं तथा।
एतेषां पलिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ ६२॥
अथास्य मलिने कोष्ठे बिन्दुमात्रं प्रदापयेत्।
यावतोऽस्य पिबेद्विन्दूंस्तावद्वारान विरिच्यते॥६३॥
कुष्ठगुल्ममुदावर्त्तं श्वयथुं सभगन्दरम्।
शमयत्युदराण्यष्टौ वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा॥
एतद्बिन्दुघृतं नाम येनाभ्यक्तो विरिच्यते॥ ६४॥

आकका दूध ८ तोले, थूहरका दूध २४ तोले, हरड, कबीला, श्यामालता, अमलतास, सफेद अपराजिताकी जड, नीली, निसोत, दन्ती, शंखपुष्पी और चीता ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेवे। इनके कल्कद्वारा गौके १ प्रस्थ घृतको अच्छे प्रकार पकावे। इसकी केवल एक बूँद लेकर मलिन कोष्ठवाले रोगीको देवे। इस घृतकी जितनी बूँदें पीवे उतनीही बार दस्त होंगे। यह बिन्दुघृत कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त्त, सूजन, भगन्दर आठों प्रकारके उदररोगोंको शीघ्र शमन करता है। इस घृतको शरीरपर मालिश करनेसे भी दस्त हों॥

महाबिन्दुघृत।

स्नुहीक्षीरपले कल्के प्रस्थार्द्धञ्चैव सर्पिषः।
काम्पिल्लकं पलञ्चैकं पलार्द्धं सैन्धवस्य च॥ ६५॥
त्रिवृतायाः पलञ्चैकं कुडवं धात्रिकारसात्।
तोयप्रस्थेन विपचेच्छनैर्मृद्वग्निना भिषक्॥ ६६॥
कर्षप्रमाणं दातव्यं जठरे प्लीहगुल्मयोः।
तथा कच्छपरोगेषु युञ्जीत मतिमान् भिषक्॥ ६७॥
एतद्गुल्मान्सन्निचयान् समूलान्सपरिग्रहान्।
निहन्त्येष प्रयोगो हि वायुर्जलधरानिव॥ ६८॥
पञ्चगुल्मवधार्थाय वज्रमुक्तः स्वयम्भुवा।
महाबिन्दुघृतं नाम सिद्धं सिद्धैश्च पूजितम्॥ ६९॥

गौका घी ३२ तोले एवं थूहरका दूध ८ तोले, थूहरका कल्क ८ तोले, कबीला ४ तोले, सैंधानमक २ तोले, निसोत ४ तोले, आमलोंका रस १ कुडव (१६ तोले) और पाकके लिये जल १ प्रस्थ लेवे। फिर सबको एकत्रकर मन्दमन्द अग्निद्वारा यथाविधि घृतको सिद्ध करे। इस घृतमेंसे उदररोग, तिल्ली, गुल्म और कच्छपरोगवाले मनुष्योंको दो दो तोले प्रमाण देवे। यह घृत संपूर्ण उपद्रवोंसहित सर्वप्रकारके गुल्मोंको इस प्रकार समूल नष्ट करता है जिस प्रकार वायु मेघोंके समूहको छिन्न भिन्न करदेता है। पाँचों प्रकारके गुल्मोंको नाश करनेकेलिये यह वज्रकी समान है ऐसा ब्रह्माजीने कहा है। यह महाबिंदु नामक घृत सिद्धजनोंसे पूजनीय है॥ ६५–६९ ॥

नाराचघत।

स्नुक्क्षीरदन्तीत्रिफलाविडङ्गसिंहीत्रिवृच्चित्रककल्कयुक्तम्। घृतं विपक्वं कुडवप्रमाणं तोयेन तस्याक्षमथार्द्धमक्षम् ॥ ७० ॥ पीत्वोष्णमम्भोऽनु पिबेद्विरिक्तः पेयां सुखोष्णां प्रपिबेद्विधिज्ञः । नाराचमेतज्जठरामयानां युक्त्योपयुक्तं शमनं प्रदिष्टम् ॥ ७१ ॥

थूहरका दूध, दन्तीमूल, त्रिफला, वायविडङ्ग, कटेरी, निसोत और चीतेकी जड इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर कल्क बनालेवे। फिर इस कल्कके द्वारा १६ तोले घृतको पकावे। इस नाराचघृतको जलके साथ एक तोला अथवा दो तोले प्रमाण सेवन करे और ऊपरसे गरम जल पीवे जब अच्छेप्रकार दस्त होजायँ तब बुद्धिमान् पुरुष मन्दोष्ण पेयाको पान करे। युक्तिसे प्रयोग कियाहुआ यह नाराचघृत उदरके सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करदेता है॥७०॥७१॥

बृहन्नाराचघृत।

लोध्रचित्रकचव्यानि विडङ्गं त्रिफला त्रिवृत्।
शङ्खिन्यतिविषा व्योषमजमोदा निशाद्वयम् ॥ ७२ ॥
दन्ती च कार्षिकं सर्वं गोमूत्रस्य पलाष्टकम्।
चतुःपलं स्नुहीक्षीरं राजवृक्षफलं तथा ॥ ७३ ॥
एतैश्चतुर्गुणे तोये घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
उदरश्वोष्णवातश्च गुल्मप्लीहभगन्दरान् ॥ ७४ ॥
निहन्त्यचिरयोगेन गृध्रसीं स्तम्भमूरुजम्।
बृहन्नाराचकं नाम घृतमेतद्यथामृतम् ॥ ७५ ॥

लोध, चीता, चव्य, वायविडङ्ग, त्रिफला, निसोत, चोरपुष्पी, अतीस, त्रिकुटा, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी और दन्ती ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर एकत्र कूट पीसकर कल्क बनालेवे। फिर यह कल्क एवं गोमूत्र ८पल, थूहरका दूध ४ पल और अमलतासका गूदा ४ पल चौगुने जलमें डालकर एक प्रस्थ घृतको उत्तमविधिसे पकावे। इसके सेवन करनेसे उदररोग, उष्णवात, गुल्म, प्लीहा, भगन्दर, गृध्रसी और ऊरुस्तम्भादिरोग अल्पसमयमें ही दूर होते हैं। यह बृहन्नाराचनामवाला घृत अमृतके समान गुणकारी है॥ ७२-७५॥

उदररोगमें पथ्य।

विरेचनं लंघनमब्दसम्भवाः कुलत्थमुद्गारुणशालयो यवाः। मृगाद्विजाजाङ्गलसंज्ञयान्विताः पेयाः सुरामाक्षिकसीधुमाधवाः॥७६॥तक्रं रसोनो रुबुतैलमार्द्रकं शालिञ्चशाकं कुलकं कठिल्लकम्। पुनर्नवा शिग्रुफलं हरीतकी ताम्बूलमेला यवशूकमायसम्॥ ७७॥ अजागवोष्ट्रीमहिषीपयो जलं लघूनि तिक्तानि च दीपनान्यपि। वस्त्रेण संवेष्टनमग्निकर्मतो विषप्रयोगोऽनुयुतो यथायथम्॥ ७८॥

विरेचन, लङ्घन, पुरानी कुलथी, मूँग, लालशालिके चावल, जौ एवं जङ्गली पशु पक्षियोंका मांसरस, पेया, मदिरा, शहद, सीधु, माधव (मद्यविशेष), मठ्ठा, लहसन, अण्डीका तेल, अदरख, शालिञ्चशाक, परवल, करेला, पुनर्नवा, सहिंजनेकी फली, हरड, पान, इलायची, जवाखार, लोहा, बकरी-गौ ऊँटनी और भैंसका दूध एवं इन सबका मूत्र, हलके, कडुवे और पाचकद्रव्य, वस्त्रसे उदरको लपेटना, अग्निद्वारा सेंकना और विषप्रयोग इत्यादि क्रिया, आहार तथा औषधियाँ उदररोगमें दोषानुसार व्यवहारकरनेसे विशेष उपकार होय॥

उदररोगमें अपथ्य।

सस्नेहनं धूमपानं जलपानं सिराव्यधः।
छर्दियानं दिवानिद्रां व्यायामं पिष्टवैकृतम्॥ ७९॥
उदकानूपमांसानि पत्रशाकांस्तिलानपि।
उष्णानि च विदाहीनि लवणान्यशनानि च॥८०॥
शिम्बीधान्यं विरुद्धान्नं दुष्टनीरं गुरूणि च।
महेन्द्रगिरिजातानां सरितां सलिलानि च॥ ८१॥

विष्टम्भीनि विशेषात्तु स्वेदं छिद्रसमुद्भवे ।
वर्जयेदुदरव्याधौ वैद्यो रक्षन् निजं यशः ॥ ८२ ॥

स्नेहद्रव्योंका पान, धूमपान, अधिक जलपान, शिरावेध (फस्तखुलवाना) वमन करना, हाथी, घोडे आदिपर चढना, दिनमें शयन, कसरत करना, पिट्ठीके बने द्रव्य, जलमें रहनेवाले और अनूपदेशके जीवोंका मांस, पत्रवाले शाक, तिल, गरम, दाहकारक द्रव्य, नमक, शिम्बीधान्य (अडहर, मोठादि), प्रकृतिविरुद्ध और पचनेमें भारी पदार्थोंका भोजन, दूषितजल, हिमालयसे निकलीहुई नदियोंका जल, अजीर्णकारक द्रव्य, (और विशेषकर छिद्र होजानेवाले उदररोगमें स्वेदक्रिया करना) इत्यादि सम्पूर्ण कृत्य, आहारादिकोंको त्याग देवे ॥ ७९-८२ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामुदररोगचिकित्सा ॥

प्लीहा और यकृत्की चिकित्सा ।

तालपुष्पोद्भवः क्षारः सगुडः प्लीहनाशनः ॥ १ ॥

ताडके फूलोंके खारको पुराने गुडमें मिलाकर भक्षण करनेसे प्लीहा (तिल्ली) रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

मूलं पिष्ट्वा चित्रकस्य कृत्वा तु वटिकात्रयम् ।
कदलीपक्वमध्येन भक्षणात्प्लीहनाशनम् ॥ २ ॥

चीतेकी छः मासे जडको जलमें पीसकर तीन गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे एक एक गोली पकीहुई केलेकी फलीमें रखकर तीन दिनतक सेवन करनेसे प्लीहा नाश होती है ॥ २ ॥

गुडैश्चित्रकमूलं वा रजन्यर्कदलं तथा ।
धातकीपुष्पचूर्णं वा प्रत्येकं प्लीहनाशनम् ॥ ३ ॥

चीतेकी जड, हल्दी, आकके पत्ते, अथवा धायके फूलोंका चूर्ण इनमेंसे किसी एकको गुडके साथ खावे तो प्लीहा दूर होती है ॥ ३ ॥

रसेन जम्बीरफलस्य शङ्खनाभीरजः पीतमशेषमेव ।
कर्षप्रमाणं शमयेत्सशूलं प्लीहामयं कूर्मसमानमाशु ॥ ४ ॥

शंखनाभिके चूर्णको एक तोला प्रमाण लेकर जम्बीरी नींबूके रसके साथ पीनेसे शूलसहित कूर्मके समानवाली सर्वप्रकारकी प्लीहा शीघ्र नष्टहोय ॥ ४ ॥

प्लीहोद्दिष्टां क्रियां सर्वां यकृन्नाशाय योजयेत् ।
दध्ना भुक्तवतो वामबाहुमध्ये शिरां भिषक् ॥ ५ ॥
विध्येत्प्लीहविनाशाय यकृन्नाशाय दक्षिणे ।
प्लीहानं मर्दयेद्गाढं दुष्टरक्तं प्रवर्त्तयेत ॥ ६ ॥

यकृत् (जिगर) रोगमें प्लीहारोगोक्त विधिके अनुसार चिकित्सा करे । प्लीहाको नष्ट करनेके लिये प्रथम रोगीको दहीसहित अन्न भक्षण करावे । पश्चात् बाँये हाथकी कूर्परसन्धिके बीचकी शिराको वेधे और यकृत्को दूर करनेके लिये दहिने हाथकी शिराको वेधे । शिरावेध करके दूषित रक्तको निकालनेके लिये प्लीहा और यकृत् स्थानको जोरसे दबावे ॥ ५ ॥ ६ ॥

लशुनं पिप्पलीमूलमभयाश्चैव भक्षयेत ।
पिबेद्गोमूत्रगण्डूषं प्लीहरोगनिवृत्तये ॥ ७ ॥

प्लीहारोगको निवारण करनेके लिये लहसन, पीपलामूल और हरड इनको समानभाग लेकर एकत्र पीसकर गोमूत्रके साथ पानकरे ॥ ७ ॥

प्लीहजिच्छंखपुष्पायाः कल्कस्तक्रेण सेवितः ॥ ८ ॥

शंखपुष्पीकी जडको जलमें पीसकर मट्ठेमें मिलाकर पीवे प्लीहा दूर होय ॥

यमानिकादिचूर्ण ।

यमानिका चित्रकयावशूकषड्ग्रन्थिदन्तीमगधोद्भवानाम् ।
प्लीहानमेतद्विनिहन्ति चूर्णमुष्णाम्बुना मस्तुसुरासवैर्वा ॥ ९ ॥

अजवायन, चीतेकी जड, जवाखार, पीपलामूल, दन्ती और पीपल इन औषधियोंके समानभाग चूर्णको गरमजल, दहीका तोड, मदिरा अथवा आसवके साथ सेवन करनेसे प्लीहारोग नष्ट होता है ॥ ९ ॥

गुडूच्यादिचूर्ण ।

गुडूच्यतिविषा शुण्ठी भूनिम्बयवतिक्तकम् ।
मुस्ता कणा यवक्षारः कासीसं भ्रमरातिथिः ॥ १० ॥
एतेषां समभागेन चूर्णमेव विनिर्दिशेत् ।
यकृत्प्लीहपाण्डुरोगमग्निमान्द्यमरोचकम् ॥ ११ ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापिवा ।
नानादोषोद्भवं चैव वारिदोषभवं तथा ।
विरुद्धभेषजभवं ज्वरमाशु व्यपोहति ॥ १२ ॥

गिलोय, अतीस, सोंठ, चिरायता, महातिक्तक, नागरमोथा, पीपल, जवाखार, कसीस और चम्पावृक्षकी छाल इन सबको समानभाग ग्रहण करके एकत्र कूट पीसकर चूर्ण बनालेवे। इस चूर्णको उपयुक्त मात्रासे सेवन करनेपर यकृत्, प्लीहा, पाण्डु, मन्दाग्नि, अरुचि, आठोंप्रकारके ज्वर, साध्य व असाध्य अनेक दोषोंसे उत्पन्नहुए ज्वर, जलके दोषसे अथवा प्रकृतिविरुद्ध औषधि सेवन करनेसे उत्पन्नहुए ज्वरादिरोग तत्काल नाश होते हैं॥ १०-१२॥

रोहीतकाद्यचूर्ण।

रोहीतकं यवक्षारो भूनिम्बं कटुरोहिणी।
मुस्तकं नरसारञ्च वीरा विश्वं सुचूर्णितम्॥ १३॥
माषमात्रं ततः खादेच्छीततोयानुपानतः।
यकृद्रोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा॥ १४॥

रोहेडा वृक्षकी छाल, जवाखार, चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, नौसादर, अतीस और सोंठ इनको समानांश लेकर उत्तम चूर्ण बनालेवे। फिर प्रतिदिन प्रातःकाल इस चूर्णको एक एक मासा शीतल जलके साथ खाय।यह चूर्ण यकृत्-रोगको एकदम इस भाँति नष्ट करदेता है जिस प्रकार सूर्य तमको॥१३-१४

मानकादिगुडिका।

मानमार्गामृता वासा स्थिरा सैन्धवचित्रकम्।
नागरं तालपुष्पञ्च प्रत्येकञ्च त्रिकार्षिकम्॥ १५॥
विडसौवर्चलक्षारपिप्पल्यश्चापि कार्षिकाः।
एतच्चूर्णीकृतं सर्वं गोमूत्रस्याढके पचेत्॥ १६॥
सान्द्रीभूते गुडीः कुर्याद्दत्त्वा त्रिपलमाक्षिकम्।
यकृत्प्लीहोदरहरो गुल्मार्शोग्रहणीहरः॥
योगः परिकरो नाम्ना ह्यग्निसन्दीपनः परः॥ १७॥

मानकन्द, चिरचिरेकी जडकी भस्म, गिलोय, अडूसेकी छाल, शालपर्णी, सेंधानमक, चीता, सोंठ और ताडके फूलोंका खार ये प्रत्येक तीन २ तोले, विडनमक, कालानमक, जवाखार और पीपल ये प्रत्येक औषधि एकएक तोला लेवे। सबको एकत्र चूर्णकरके ८ सेर गोमूत्रमें पकावे। पकते २ जब गाढा होजाय तब उतारलेवे और शीतल होजानेपर १२ तोले शहद डालकर गोलियाँ बनालेवे। यह गुटिका यकृत, प्लीहा, उदररोग, गुल्म, अर्श और संग्रहणी आदिरोगोंको नाश करती है एवं अग्निको दीपन करती है॥१५-१७

बृहन्मानादिगुडिका।

मानमार्गास्थिरावह्निस्नुही नागरसैन्धवम्।
तालरण्डं कृमिघ्नश्च हबुषं चविका वचा ॥ १८ ॥
बिडसौवर्चलक्षारपिप्पलीशरपुङ्खकम्।
जीरकं पारिभद्रश्च प्रत्येकं कर्षकद्वयम् ॥ १९ ॥
सार्द्धाढके गवां मूत्रे पचेत्सर्वं सुचूर्णितम्।
सान्द्रीभूते क्षिपेदेषां चूर्णकं कर्षसंमितम् ॥ २० ॥
अजाजी त्र्यूषणं हिङ्गु यमानी पुष्करं शठी।
त्रिवृद्दन्ती विशाला च दत्त्वा त्रिपलमाक्षिकम् ॥ २१ ॥
खादेदग्निबलापेक्षी बुद्ध्वा चानु पिबेन्नरः।
यकृत्प्लीहोदरानाहगुल्मं पाण्डुं सकामलम् ॥ २२ ॥
कुक्षिशूलश्च हृच्छूलं पार्श्वशूलमरोचकम्।
शोथश्च श्लीपदं हन्ति जीर्णश्च विषमज्वरम् ॥ २३ ॥

पुराना मानकन्द, चिराचिरा, शालपर्णी, चीता, थूहरकी जड, सोंठ, सेंधानमक, ताडकी जटाओंकी भस्म, वायविडङ्ग, हाऊवेर, चव्य, वच, विडनमक, कालानमक, जवाखार, पीपल, शरफोंका, जीरा और फरहद इन औषधियोंके दो दो कर्ष बारीक पिसेहुए चूर्णको डेढ आढक गोमूत्रमें पकावे। पकते २ जब गाढा पडजाय तब निम्नलिखित औषधियोंके उत्तम प्रकारसे पीसे हुए एक एक कर्ष परिमाण चूर्णको डालदेवे। कालाजीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, हींग, अजवायन, पोहकरमूल, कचूर, निसोत, दन्ती और इन्द्रायणकी जड इनके चूर्णको डालकर उतार लेवे। पुनः शीतल होजानेपर १२ तोले शहद मिलादेवे। तदनंतर इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःसमय अपनी अग्निका बलाबल विचारकर उपयुक्त परिमाणमें सेवनकरे और दोषानुसार अनुपान प्रयोगकरे। इससे यकृत्, प्लीहा, उदररोग, अफारा, गुल्म, पाण्डु, कामला, कुक्षिशूल, हृदयशूल, पार्श्वशूल, अरुचि, सूजन, श्लीपद, जीर्णज्वर और विषमज्वरादि विकार शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १८-२३ ॥

अर्कलवण।

अर्कपत्रं सलवणमन्तर्धूमं दहेन्नरः।
मस्तुना तत्पिबेत्क्षारं प्लीहगुल्मोदरापहम् ॥ २४ ॥

आकके पत्ते और सैंधानमक इनको समानभाग लेकर अन्तर्धूम (जिसमें धुआँ न निकले) पात्रमें दग्ध करे । फिर इस खारको दहीके तोडके साथ पान करे तो प्लीहा, गुल्म और उदररोग दूर होते हैं ॥ २४ ॥

अभयालवण ।

पारिभद्रपलाशार्कस्नुह्यपामार्गचित्रकान् ।
वरुणाग्निमन्थवस्तुश्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ॥ २५ ॥
पूतिकास्फोतकुटजकोषातक्यः पुनर्नवा ।
समूलपत्रशाखाश्च क्षोदयित्वा उदूखले ॥ २६ ॥
तिलनालप्रदीप्ताग्निसुदग्धं भस्म शीतलम् ।
क्षारप्रस्थं गृहीत्वा तु न्यसेत्पात्रे दृढे नवे ॥ २७ ॥
जलद्रोणे विपक्तव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ।
पूर्ववत्क्षारकल्केन स्रावयित्वा विचक्षणः ॥ २८ ॥
प्रस्थमेकञ्च लवणं तदर्द्धाञ्च हरीतकीम् ।
तुल्याम्बुभागं गोमूत्रं साधयेन्मृदुनाग्निना ॥ २९ ॥
किञ्चित्सबाष्पसान्द्रे च सम्यक्सिद्धेऽवतारिते ।
अजाजी त्र्यूषणं हिङ्गु यमानी पोष्करं शठी॥ ३० ॥
एतैरर्द्धपलैर्भागैश्चूर्णं कृत्वा प्रदापयेत् ।
अभयालवणं नाम भक्षयेच्च यथाबलम् ॥ ३१ ॥
व्याधिं संवीक्ष्य मतिमानअनुपानं यथाहितम् ।
ये च कोष्ठगता रोगास्तान्निहन्ति न संशयः ॥ ३२ ॥
यकृत्प्लीहोदरानाहगुल्मष्ठीलाग्निमान्द्यजित ।
हन्याच्छिरोऽर्त्तिहृद्रोगं शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ ३३ ॥

फरहदकी छाल, ढाककी छाल, आक, थूहर, चिरचिटा, चीतेकी जड, वरनाकी छाल, अरणी, बकवृक्षकी छाल, गोखुरू, कटाई, कटेरी, दुर्गन्धकरञ्ज, आस्फोतलता (कोरल इति महाराष्ट्रभाषा) कुडेकी छाल, कडवी तोरई और पुनर्नवा इन सबको पञ्चाङ्गसहित समानभाग लेकर ओखलीमें कूटलेवे । फिर एक हाँडीमें रख उसका मुँह बन्दकरके तिलोंकी लकडियोंके द्वारा भस्म करलेवे। जब शीतल होजाय तब उसमेंसे नितारकर १प्रस्थ खारको ग्रहणकर एक द्रोण (३२सेर) जलमें सुदृढ और नवीन पात्रमें भरकर पकावे। पकते पकते

जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर पूर्वोक्त क्षार पाककी विधिके अनुसार इस जलको पकावे और इसमें सैंधानमक एक प्रस्थ, हरड ३२ तोले और गोमूत्र ८सेर डालकर मन्दमन्द अग्निद्वारा अच्छे प्रकारसे पकावे। जब पाक यथाविधि पककर तैयार होजाय तब उतार लेवे और भांप उठतेहुए पाकमें कालाजीरा, त्रिकुटा, हींग, अजवायन, पोहकरमूल तथा कचूर इनके दो दो तोले चूर्णको खूब बारीक पीसकर मिलादेवे। रोगीके बलानुसार इस अभयालवणको भक्षण कराना चाहिये। एवं बुद्धिमान् वैद्य रोगको भलीभाँति विचारकर हितप्रद अनुपानकी कल्पना करे। यह अभयालवण कोष्ठस्थित रोगों तथा यकृत्, प्लीहा, उदररोग, आनाह, गुल्म, अष्ठीला, मन्दाग्नि, वमन, शिरोरोग, हृदयरोग, शर्करायुक्त प्रमेह और अश्मरी प्रभृति रोगोंको निस्सन्देह नष्ट करता है ॥ २५-३३ ॥

पिप्पलीवर्द्धमानानि।

क्रमवृद्ध्या दशाहानि दशपिप्पलकं दिनम्।
वर्द्धयेत्पयसा सार्द्धं तथैवापनयेत्पुनः ॥ ३४ ॥
जीर्णेऽजीर्णे च भुञ्जीत षष्टिकं क्षीरसर्पिषा।
पिप्पलीनां सहस्रस्य प्रयोगोऽयं रसायनः ॥ ३५ ॥
दशपैप्पलिकः श्रेष्ठो मध्यमः षट्प्रकीर्त्तिताः।
यस्त्रिपिप्पलिपर्यन्तः प्रयोगः सोऽवरः स्मृतः ॥ ३६ ॥
बृंहणं वृष्यमायुष्यं प्लीहोदरविनाशनम्।
वयसः स्थापनं मेध्यं पिप्पलीनां रसायनम् ॥
पञ्च पिप्पलिकश्चापि दृश्यते वर्द्धमानकः ॥ ३७ ॥
"पिष्ट्वा च बलिभिः पेया शृता मध्यबलैर्नरैः ॥
शीतीकृत्य ह्रस्वबलैर्देहदोषामयान्युति ॥"

पहले दिन १० पीपल और दूसरे दिन २० इस क्रमसे दूधके साथ सेवन करताहुआ दस दिनतक दस दस पीपलोंकी मात्रा बढाकर सौतक करलेवे। फिर इसी प्रकार प्रतिदिन दसदस पीपल घटाता जावे। एवं पूर्वोक्त नियमानुसार दूसरीवार प्रतिदिन दसदस पीपलोंकी वृद्धि करे। इसतरह न्यूनाधिकता करते करते एक हजारकी संख्या तक पीपलोंकी सेवन करे। पीपल सेवन करनेकी विधि तीन प्रकारकी हैं। जैसे–प्रतिदिन १० पीपल सेवन करना उत्तम,

प्रतिदिन छः पीपल सेवन करना मध्यम और प्रतिदिन तीन पीपल सेवन करना कनिष्ठ मात्राविधि है। यह प्रयोग रसायन, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, आयुको स्थापन करनेवाला, मेधाजनक तथा प्लीहा और उदररोगको नष्ट करनेवालाहै। किसी किसी आयुर्वेदिक ग्रंथोंमें प्रतिदिन पांच २ पीपलोंको वृद्धिकरनेका नियम वर्णन किया है। बलवान् रोगीको पीपलका चूर्ण, मध्यम अवस्थावाले रोगीको पीपलका क्काथ और दुर्बल रोगीको पीपलका क्काथ शीतलकरके सेवन करावे। इसपर औषधिके जीर्ण होनेपर सांठीके चावल, दूध और घृतके साथ भक्षण करे। इसप्रकार वर्णन कियेहुए पीपलके प्रयोगको सेवन करनेकी प्रथा वर्त्तमानकालमें नहीं है, इसलिये एक रत्तीसे लेकर दो, तीन, चार, पाँच अथवा छःरत्ती परिमाण तक प्रतिदिन बढाकर दसदिनतक बढावे। फिर इसी क्रमसे घटाताजावे। इस तरह सेवन करनेसे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है॥३४-३७॥

गुडपिप्पली।

तुलैकं गुडमादाय पिप्पलीश्च तथैव च।
हिङ्गु त्रिकटुकं मानं सैन्धवानां द्विकार्षिकम् ॥ ३८ ॥
चित्रकश्च विडश्चैव द्वौ क्षारौ शिखरी तथा।
तालपुष्पं कोकिलाक्षं चिञ्चाक्षारं सफेनकम् ॥
स्नुहीक्षीरसमायुक्तं प्लीहज्वरविनाशनम् ॥ ३९ ॥

गुड १०० पल, पीपलका चूर्ण १०० पल, हींग, त्रिकुटा, मानकन्द, सेंधा- नमक प्रत्येक दो दो कर्ष, चीता, विडनमक, जवाखार, सज्जी, चिरचिटेकी मूलकी भस्म, ताडके फूलोंकी भस्म, तालमखाना, इमलीका खार, समुद्रफेन और थूहरका दूध इन सबको दो दो कर्ष परिमाण लेकर कूटपीसकर पाँच पाँच रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इसको सेवन करनेसे प्लीहा और ज्वर दूर होताहै॥

वृहद्गुडपिप्पली।

विडङ्गं त्र्यूषणं कुष्ठं हिङ्गु लवणपञ्चकम्।
त्रिक्षारं फेनकं वह्निं श्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥ ४० ॥
तालपुष्पोद्भवं क्षारं नाडचः कूष्माण्डकस्य च।
अपामार्गस्य चिञ्चायाश्चूर्णानि चिक्कणानि च ॥४१॥
सर्वचूर्णसमं देयं चूर्णमत्र कणोद्भवम्।
एतस्माद्द्विगुणाच्चूर्णात्पुराणो द्विगुणो गुडः ॥ ४२॥

मर्दयित्वा दृढे पात्रे मोदकानुपकल्पयेत् ।
भक्षयेदुष्णतोयेन प्लीहानं हन्ति दुस्तरम् ॥ ४३ ॥
यकृतं पञ्च गुल्मञ्च उदरं सर्वरूपकम् ।
जीर्णज्वरं तथा शोथं कासं पञ्चविधं तथा ॥
अश्विभ्यां निर्मिता श्रेष्ठा बालानां गुडपिप्पली॥४४॥

वायविडङ्ग, त्रिकुटा, कूठ, हींग, पाँचोंनमक, जवाखार, सज्जी, सुहागा, समुद्रफेन, चीतेकी जड, गजपीपल, कालाजीरा, ताडके फूलोंकी भस्म, पेठेकी डंडी, चिरचिटेकी जडकी भस्म और इमलीकी छालकी भस्म इन सब औषधियोंका चूर्ण समानभाग और समस्तचूर्णके समानभाग पीपलका चूर्ण एवं सब चूर्णसे दुगुना पुराना गुड मिलाकर एकत्र दृढपात्रमें उत्तमप्रकारसे खरल करके १ आनाभरके लड्डू बनालेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल गरम जलके साथ एक मोदक सेवनकरे तो यह मोदक दुस्तर प्लीहा, यकृत्, पाँचोंप्रकारके गुल्म, सर्वप्रकारके उदरविकार, जीर्णज्वर, शोथ और पाँचोंप्रकारकी खाँसी इत्यादि रोगोंको शीघ्र नष्ट करती है । यह गुडपिप्पली बालकोंके लिये अत्यन्त हितकारी है । इसको अश्विनी कुमारोंने निर्म्माण किया है ॥ ४०-४४ ॥

रसराज ।

गन्धकेन मृतं ताम्रं शुद्धगन्धकतुल्यकम् ।
द्वयोः पादं शुद्धरसं मर्दयेच्छूरणद्रवैः ॥ ४५ ॥
पुटेद्गजपुटे विद्वान् स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
गुञ्जाद्वयं लिहेत्क्षौद्रैः प्लीहगुल्मविनाशनम् ॥ ४६ ॥
यकृच्छूलं ज्वरं हन्ति कान्तिपुष्टिविवर्द्धनः ।
रसराज इति ख्यातो रोगवारणकेसरी ॥ ४७ ॥

गन्धकद्वारा भस्म किया ताँबा १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला और शुद्ध पारा ६ माशे इन सबोंको जिमीकन्दके रसमें खरलकरके गजपुटमें रख पुटपाक करे । जब पककर स्वाङ्ग शीतल होजाय तब निकालकर चूर्ण करलेवे । इसको दो रत्तीभर शहदमें मिलाकर चाटे तो प्लीहा, गुल्म, यकृत्रोग, शूल, ज्वरादि विकार नष्ट होतेहैं । यह रसराज नामक रोगरूपी हाथीको नाश करनेके लिये सिंहके समान है । तथा कान्तिवर्द्धक और पुष्टि कारक है ॥ ४५-४७ ॥

प्लीहान्तकरस ।

हतशुल्वञ्च तारञ्च गगनायससौक्तिका: ।

दरदं पुष्पकं सूतं गन्धकं नवमं तथा ॥ ४८ ॥
गुग्गुलुस्त्रिकटू रास्ना तथा जैपालबीजकम् ।
त्रिफला कटुका दन्ती देवदाली तु सैन्धवम् ॥ ४९ ॥
त्रिवृता तु यवक्षारो वातारितैलमर्दितम् ।
अष्टोदराणि पाण्डुत्वमानाहं विषमज्वरम् ॥ ५० ॥
अजीर्णं कफमामञ्च क्षयञ्च सर्वशूलकम् ।
कासं श्वासञ्च शोथञ्च सर्वमाशु व्यपोहति ॥
प्लीहान्तको रसो नाम प्लीहोदरविनाशनः ॥ ५१ ॥

ताँबेकी भस्म, चाँदीकी भस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, मोतीकी भस्म, सिंगरफ, काँसीकी भस्म, शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, शुद्धगूगल, त्रिकुटा, रायसन, जमालगोटा त्रिफला, कुटकी, दन्ती, कडवी तोरई, सैंधानोन, निसोत और जवाखार, इन औषधियोंको समानभाग लेकर एकत्र कूट पीसकर अण्डीके तेलमें अच्छेप्रकार खरलकरे। इस रसको प्रतिदिन दो रत्तीकी मात्रासे सेवन करे तो यह आठों प्रकारके उदररोग, पाण्डुरोग, अफारा, विषमज्वर, अजीर्ण, कफरोग, आमवात, क्षय, सब शूलरोग, खाँसी, श्वास, सूजन, प्लीहोदर एवं सर्वप्रकारके रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है। इसका नाम प्लीहान्तक रस है ॥

वासुकीभूषणरस ।

सूतेन वङ्गस्तु समं नियोज्य तत्तुल्यशुल्वेन च गन्धकेन ।
विमर्दयेदर्करसेन यामं मृदा च संलिप्य पुटं ददीत ॥ ५२ ॥
वासारसैस्तं परिभावयेच्च रसो भवेद्वासुकिभूषणोऽयम् ।
प्लीह्नश्च गुल्मस्य च शान्तयेऽस्य वल्लस्यदद्याद्रसुचूर्णयुक्तम् ५३

शुद्धपारा, वङ्गभस्म, ताम्रभस्म और शुद्धगन्धक इन द्रव्योंको समानभाग लेकर आकके पत्तोंके रसमें एक प्रहरतक यथाविधि खरलकरे। फिर गोलासा बनाकर मूषायन्त्रमें रखे और मृत्तिकासे लेसकर पुटपाक करे। जब शीतल होजाय तब निकालकर अडूसेके रसमें भावना देवे। इस प्रकार यह वासुकिभूषण नामवाला रस तैयार होता है। प्लीहा और गुलमरोगको निवारण करनेकेलिये इस रसकी दो रत्ती मात्राको सैंधेनमकमें मिलाकर सेवन करावे ॥

विद्याधररस ।

गन्धकं तालकं ताप्यं मृतं ताम्रं मनःशिला ।
शुद्धसूतश्च तुल्यांशं मर्दयेद्भावयेद्दिनम् ॥ ५४ ॥

पिप्पल्याश्च कषायेण वज्रीक्षीरेण भावयेत्।
वल्लश्च भक्षयेत्क्षौद्रैर्गुल्मप्लीहादिकं जयेत्॥
रसो विद्याधरो नाम गोदुग्धश्च पिबेदनु॥ ९५॥

शुद्धगन्धक, हरिताल, सोनामाखी, ताँबेकी भस्म, मैनसिल और शुद्धपारा ये सब औषधियाँ बरावर बराबर लेकर एकत्र खरलकरे। फिर पीपलके काथ और थूहरके दूधमें अलग अलग एकएक दिन भावना देवे। इस रसको दो रत्ती प्रमाण शहदके साथ मिलाकर भक्षण करे तो इससे गुल्म प्लीहादि दूरहोतेहैं। इसका नाम विद्याधर रस है। इसके सेवन करनेपर गोदुग्ध पान करे ५४॥५५

लोकनाथरस।

पारदं गन्धकञ्चैव समभागं विमर्दयेत।
मृताभ्रं रसतुल्यञ्च पुनस्तत्रैव मर्दयेत॥ ५६॥
रसात्रिगुणलौहञ्च लौहतुल्यञ्च ताम्रकम्।
वराटिकाया भस्माथ पारदात्रिगुणं कुरु॥ ५७॥
नागवल्लीरसेनैव मर्दयेद्यत्नतो भिषक्।
पुटेद्गजपुटे विद्वान् स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत॥ ५८॥
मधुना पिप्पलीचूर्णं सगुडां वा हरीतकीम्।
अजाजीं वा गुडेनैव भक्षयेदनुपानतः॥ ५९॥
यकृद्गुल्मोदरहरः प्लीहाश्वयथुनाशनः।
जीर्णज्वरं तथा पाण्डुं कामलाश्च विनाशयेत्॥
अग्निमान्द्यश्च शमयेल्लोकनाथो रसोत्तमः॥ ६०॥

शुद्धपारा, गन्धक और ताँबेकी भस्म ये सब समान भाग लेकर खरल कर लेवे। फिर इसमें पारेसे तिगुनी लोहेकी भस्म, ताम्रभस्म और कौडीकी भस्म एकत्र मिलाकर पानके रसमें खरल करके गजपुटमें रखकर फूँकदेवे। जब स्वाङ्गशीतल होजाय तब निकालकर पीसलेवे। इसको प्रतिदिन दो रत्ती प्रमाण खाय और ऊपरसे पीपलका चूर्ण, मधुके साथ या पुराना गुड और हरडका चूर्ण अथवा कालेजीरेका चूर्ण गुडके साथ मिलाकर सेवन करे। यह रस यकृत, गुल्म, उदर, प्लीहा, सूजन, पुराना बुखार, पाण्डु कामला मन्दाग्नि आदि विकारोंको नष्ट करता है। यह लोकनाथनामवाला रस सर्वोत्तमहै ५६-६०

अन्य लोकनाथरस।

रसगन्धौ समौ कृत्वा मर्दयेदर्द्धयामकम्।

रसतुल्यं मृतश्चाभ्रं द्विगुणं लौहताम्रकम् ॥ ६१ ॥
ताम्रस्य द्विगुणं भस्म कपर्दकसमुद्भवम् ।
नागवल्लीरसैर्यामं मर्दयेदतिनिर्जने ॥ ६२ ॥
ततो लघुपुटं दत्त्वा सुशीतं ग्राहयेत्तथा ।
द्विगुञ्जमार्द्रकद्रावैः खदिरत्वग्रसं पिबेत् ॥ ६३ ॥
यकृत्प्लीहोदरं शोथमग्निमान्द्यादिकं जयेत् ।
लोकनाथो रसो नाम सर्वज्वरविनाशनः ॥ ६४ ॥

शुद्धपारा और शुद्धगन्धक दोनोंको समानभाग लेकर अर्द्धप्रहरतक खरल करे। फिर इसमें पारेकी बराबर अभ्रकभस्म एवं लोहे और ताँबेकी भस्म पारेसे दुगुनी और ताँबेकी भस्मसे दुगुणी कौडीकी भस्म मिलाकर पानोंके रसमें एक पहरतक खरल करके लघुपुटमें पकावे । जब स्वयं शीतल हो तब निकालकर चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको दो रत्तीभर लेकर अदरखके रसमें मिलाकर खावे और पीछेसे खैरके रसको पीवे तो यकृत् विकार, प्लीहोदर, शोथ, मन्दाग्नि सर्वप्रकारके ज्वर नाश होते हैं । इसका नाम लोकनाथ रस है ॥ ६१-६४ ॥

बृहल्लोकनाथरस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं खल्ले कुर्याच्च कज्जलम् ।
सूततुल्यं जारिताभ्रं मर्दयेत्कन्यकाम्बुना ॥ ६५ ॥
ततो द्विगुणितं दद्यात्ताम्रं लौहं प्रयत्नतः ।
सूतान्नवगुणं देयं वराटीसम्भवं रजः ॥ ६६ ॥
काकमाचीरसेनैव सर्वं तद्गोलकीकृतम् ।
ततो गजपुटे पाच्यं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ ६७ ॥
शिवं सम्पूज्य यत्नेन द्विजातीन्परितोष्य च ।
भक्षयेदस्य चूर्णस्य द्विगुञ्जं मधुना सह ॥ ६८ ॥
प्लीहानमुग्रमामञ्च यकृतं सर्वरूपिणम् ।
जीर्णज्वरं तथा गुल्मं कामलां हन्ति दारुणाम् ॥ ६९ ॥

शुद्धपारा १ तोला और शुद्धगन्धक २ तोले दोनोंको एकत्रकर कज्जली बनावे । फिर उसमें अभ्रकभस्म १ तोला मिलाकर घीग्वारके रससे खरल करे । तदनन्तर ताँबे और लोहेकी भस्म दो दो तोले एवं कौडीकी भस्म ९ तोले मिलावे । सबोंको मकोयके रसमें उत्तमप्रकार खरलकरके गोला बनालेवे ।

पुनः इस गोलेको गजपुटमें स्थापनकर पकावे । जब पककर स्वाङ्ग शीतल होजावे तब निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे। इसके उपरान्त प्रतिदिन प्रातःकाल शिवजी महाराजका पूजनकर और ब्राह्मणोंको दान मानादिसे प्रसन्नकर इस चूर्णको दो रत्तीप्रमाण शहदमें मिलाकर सेवनकरे तो यह बृहल्लोकनाथरस प्लीहा, अत्युग्र आमवात, सर्वप्रकारके यकृद्रोग, जीर्णज्वर, गुल्म और दारुण कामलादि रोगोंको दूर करता है ॥ ६५-६९ ॥

प्लीहारिरस ।

पारदं गन्धकं टङ्कं विषं व्योषं फलत्रयम् ।
तोलकस्य समोपेतं जैपालञ्च तदर्द्धकम् ॥ ७० ॥
किंशुकस्य रसेनैव माषमात्रन्तु मर्दयेत् ।
गुञ्जामात्रां वटीं कृत्वा छायायां शोषयेत्ततः ॥ ७१ ॥
वटिकैका प्रदातव्या शृङ्गवेररसेन च ।
गुदाङ्कुरे गुल्मशूले प्लीहशोथे कफात्मके ॥ ७२ ॥
उदावर्ते वातशूले श्वासकासज्वरेषु च ।
रसः प्लीहारिनामायं कोष्ठामयविनाशनः ॥
आमवातगदच्छेदी श्लेष्मामयविनाशनः ॥ ७३ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, सुहागा, शुद्ध मीठातेलिया, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा और आमला ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला एवं शुद्ध जमालगोटा सबसे आधाभाग लेवे । फिर सबको एकत्र पीसकर ढाकके रसमें एकमासपर्य्यन्त खरलकरे और एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे । इस रसकी प्रतिदिन एक २ गोली अदरखके रसके साथ सेवन करनेसे गुदाकुंर, गुल्मशूल, प्लीहा, शोथ, कफजन्य उदावर्त्त, वातशूल, श्वास, खाँसी और ज्वरादिरोगोंमें शीघ्र आरोग्यता प्राप्त होती है । यह प्लीहारिनामकरस कोष्ठस्थित विकार, आमवात और कफोत्पन्न समस्तरोगोंको नष्ट करता है ॥

लौहमृत्युञ्जयरस ।

रसगन्धकलौहाभ्रं कुनटी मृतताम्रकम् ।
विषमुष्टिवराटं च तुत्थं शङ्खो रसाञ्जनम् ॥ ७४ ॥
जातीफलञ्च कटुकी द्विक्षारं कानकं तथा ।
हिङ्गु व्योषं सैन्धवञ्च प्रत्येकं सूततुल्यकम् ॥ ७५ ॥

श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वमेकत्र भावयेत्ततः ।
सूर्यावर्त्तरसेनैव बिल्वपत्ररसेन च ॥ ७६ ॥
सूर्यावर्त्तेन मतिमान् वटिकां कारयेत्ततः ।
प्लीहानं यकृतं गुल्ममष्ठीलाञ्च विनाशयेत् ॥ ७७ ॥
अग्रमांसं तथा शोथं तथा सर्वोदराणि च ।
वातरक्तञ्च जठरश्चान्तर्विद्रधिमेव च ॥ ७८ ॥

शुद्धपारा, गन्धक, लोहा, अभ्रक, मैनासिल, ताँबेकी भस्म, कुचला, कौडीकी भस्म, नीला थोथा, शंखभस्म, रसौत, जायफल, कुटकी, जवाखार, सज्जी, जमालगोटा, त्रिकुटा, हींग और सैंधानमक ये प्रत्येक एकएक तोला लेकर एकत्र कूट पीसलेवे। पश्चात् इस चूर्णको हुलहुल और बेलके पत्तोंके रसमें भावना देवे । फिर हुलहुलके रस द्वारा यथाविधि खरलकरके दो दो रत्तीकी गोलियाँ तैयार करलेवे । यह रस यथाविधि सेवन करनेपर प्लीहा, यकृत, गुल्म, अष्ठीला, अग्रमांस, सूजन, सर्व प्रकारके उदरसम्बन्धी रोग, वातरक्त, जठराग्नि और अन्तर्विद्रधि रोगको दूर करता है ॥ ७४–७८ ॥

रोहीतकलोह ।

रोहीतकसमायुक्तं त्रिकत्रययुतन्त्वयः ।
प्लीहानमग्रमांसञ्च शोथं हन्ति न संशयः ॥ ७९ ॥

रोहेडेकी छाल, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, वायविडङ्ग, नागरमोथा और चीतेकी जड इन सबको समानभाग और सबकी बराबर लोहभस्म मिलाकर शहदके साथ लोहेके पात्रमें खरलकर लेवे । यह लोह प्लीहा (तिल्ली), अग्रमांस तथा सूजनको सन्देह रहित नष्ट करता है॥७९॥

चित्रकादिलौह ।

चित्रकं नागरं वासा गुडूची शालपर्णिका ।
तालपुष्पमपामार्गो मानकं कार्षिकत्रयम् ॥ ८० ॥
लौहमभ्रकणाताम्रं क्षारको लवणानि च ।
पृथक् कर्षांशमेतेषां चूर्णमेकत्र चिक्कणम् ॥ ८१ ॥
चतुःप्रस्थे गवां मूत्रे पचेन्मन्देन वह्निना ।
सिद्धशीतं समुद्धृत्य माक्षिकं द्विपलं क्षिपेत् ॥ ८२ ॥
चित्रकादिरयं लौहो गुल्मप्लीहोदरामयम् ।

यकृतं ग्रहणीं हन्ति शोथं मन्दानलं ज्वरम् ॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च गुदभ्रंशं प्रवाहिकाम् ॥ ८३ ॥

चीतेकी जड, सोंठ, अडूसा, गिलोय, शालपर्णी, ताडके फूल, चिरचिटा और मानकन्द ये प्रत्येक तीन तीन कर्ष, लोहा, अभ्रकभस्म, पीपल, ताम्रभस्म, जवाखार और पाँचोंनमक इनको पृथक् पृथक् एकएक कर्ष लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको चार प्रस्थ (२५६ तोले) गोमूत्रमें मन्द मन्द अग्निद्वारा पकावे। जब अच्छे प्रकार पककर सिद्ध होजाय तब उतारले और शीतल होजानेपर उसमें ८ तोले उत्तम शहद मिलादेवे। इसका नाम चित्रकादि लोह है। यह गुल्म, प्लीहा, उदरविकार, यकृत्, संग्रहणी, सूजन, अग्निकी मन्दता, ज्वर, कामला, पाण्डुरोग, गुदभ्रंश,प्रवाहिका इत्यादि व्याधियोंको नाशता है॥

यकृत्प्लीहारिलोह।

हिङ्गुलसम्भवं सूतं गन्धकं लौहमभ्रकम्।
तुल्यं द्विगुणताम्रन्तु शिला च रजनी तथा ॥ ८४ ॥
जयपालं टङ्कणञ्च शिलाजतु समं रसात्।
एतत्सर्वं समाहृत्य चूर्णीकृत्य विमिश्रयेत ॥ ८५ ॥
दन्ती त्रिवृच्चित्रकश्च निर्गुण्डी त्र्यूषणं तथा।
आर्द्रकं भृङ्गराजश्च रसैरेषां पृथक् पृथक् ॥ ८६ ॥
भावयित्वा वटीं कुर्याद्बदरास्थिमितां भिषक्।
प्लीहानं यकृतश्चैव चिरकालानुबन्धिनम् ॥ ८७ ॥
एकजं द्वन्द्वजञ्चैव सर्वदोषभवं तथा।
हन्यादष्टोदरानाहज्वरं पाण्डुञ्च कामलाम् ॥ ८८ ॥
शोथं हलीमकं हन्ति मन्दाग्नित्वमरोचकम्।
यकृत्प्लीहारिनामेदं लौहं जगति दुर्लभम् ॥ ८९ ॥

सिंगरफसे निकालाहुआ पारा, शुद्धगन्धक, लोहा, अभ्रक ये प्रत्येक एक एक तोला, ताँबा, मैनसिल और हल्दी ये प्रत्येक दो दो तोले, शुद्ध जमालगोटा, सुहागा और शिलाजीत ये प्रत्येक एक एक तोला लेवे। इन सबोंको एकत्रितकर बारीक चूर्ण करलेवे। अनन्तर इस चूर्णको दन्ती, निसोत, चीता, निर्गुण्डी, त्रिकुटा, अदरख और भाङ्गरा इनके रसमें अलग अलग भावना देकर बेरकी गुठलीकी समान गोलियाँ बनालेवे। इसकी प्रतिदिन एक एक

गोली सेवन करे तो यह प्लीहा, यकृद्रोग, बहुत पुरानी प्लीहा, एकदोषजन्य, द्विदोषजन्य, या त्रिदोषोत्पन्न आठों प्रकारके उदररोग, अफारा, ज्वर, पाण्डु, कमलवाय, हलीमक, सूजन, मन्दाग्नि, अरुचि आदि रोगोंका विनाशकर्त्ताहै। यह यकृत्प्लीहारिनामक लौह संसारमें दुर्लभ है ॥ ८४-८९ ॥

यकृदरिलौह ।

द्विकर्ष लौहचूर्णस्य गगनस्य पलार्द्धकम् ।
कर्ष शुद्धं मृतं ताम्रं लिम्पाकाङ्घ्रित्वचः फलम् ॥ ९० ॥
मृगाजिनभस्मपलं सर्वमेकत्र कारयेत् ।
नवगुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ९१ ॥
यकृत्प्लीहोदरश्चैव कामलाश्च हलीमकम् ।
कासं श्वासं ज्वरं हन्ति बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥
यकृदरिनाम लौहं सर्वव्याधिनिषूदनम् ॥ ९२ ॥

लोहभस्म दो कर्ष, अभ्रकभस्म दो तोले, ताँबेकी भस्म एक कर्ष, विहारी नीम्बूकी जडकी छाल ४ तोले और मृगछालाकी भस्म ४ तोले, इन सबको एकत्र जलमें खरल करके नौ नौ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह यकृदरिनामक लोह यकृत, प्लीहा और उदरके रोग, एवं कामला, हलीमक, खाँसी, श्वास, ज्वर तथा अन्य सर्वप्रकारकी दुस्तर व्याधियोंको नष्ट करनेवाला और बल, वर्ण एवं जठराग्निको बढानेवाला है ॥ ९०-९२ ॥

महामृत्युञ्जयलौह ।

शुद्धं सूतं समं गन्धं जारिताभ्रं समं तथा ।
गन्धस्य द्विगुणं लौहं मृतताम्रं चतुर्गुणम् ॥ ९३ ॥
द्विक्षारं सैन्धवविडं वराटीशंखभस्मकम् ।
चित्रकं कुनटी तालं रामठं कटुकं तथा ॥ ९४ ॥
रोहीतं त्रिवृता चिञ्चा विशाली धवलाङ्कुठः ।
अपामार्गं तालरण्डमम्लिका च निशाद्वयम् ॥ ९५ ॥
प्रियंग्विन्द्रयवं पथ्या चाजमोदा यमानिका ।
तुत्थकं शरपुङ्खा च यकृन्मर्दो रसाञ्जनम् ॥ ९६ ॥
प्रत्येकं शाणमानेन भावयेदार्द्रकै रसैः ।
गुडूच्याः स्वरसेनापि मधुनः कुडवार्द्धकम् ॥ ९७ ॥

वटिकां कारयेद्वैद्यो गुञ्जाष्टप्रमितां पुनः ।
अनुपानं प्रदातव्यं बुद्धा दोषानुसारतः ॥ ९८ ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय सर्वरोगकुलान्तकम् ।
प्लीहानं ज्वरमुग्रञ्च कासञ्च विषमज्वरम् ॥ ९९ ॥
आमवातं यकृच्छूलं श्वासमर्शो शिरोरुजम् ।
गुल्मशोथोदरानाहमग्रमांसं यकृत्क्षयम् ॥ १०० ॥
सकामलं पाण्डुरोगमुदरञ्च सुदारुणम् ।
रोगानीकविनाशाय केसरी करिणो यथा ॥ १०१ ॥
मृत्युञ्जयो महालौहः प्लीहगुल्मविनाशनः ।
प्राणिनान्तु हितार्थाय शम्भुना परिकीर्त्तितः ॥१०२॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक और अभ्रकभस्म ये प्रत्येक औषधि एकएक भाग, लोहभस्म दो भाग, ताम्रभस्म ४ भाग एवं जवाखार, सज्जी, सैंधानमक, विड- नमक, कौडीकी भस्म, शंखकी भस्म, चीता, मैनसिल, हरिताल, हींग, कुटकी, रोहिडावृक्षकी छाल, निसोत, इमलीकी भस्म, इन्द्रायनकी जड, सफेद ढेरा वृक्षकी छाल, चिरचिटेका खार, ताडकी जडका खार, अमलबेंत, हल्दी दारु, हल्दी, फूलप्रियंगु, इन्द्रजौ, हरड, अजमोद, अजवायन, तूतिया, शरफोंका रोहेडेकी छाल और रसौत ये प्रत्येक चार चार माशे लेवे। फिर सबको एकत्र चूर्ण करके अदरख और गिलोयके रसमें उत्तम प्रकार खरल करे। तदनन्तर ८ तोले शहदमें खरलकर आठ आठ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल इसमेंसे एक गोली खाय और पीछेसे दोषोंके बलाबलको विचार- कर अनुपान सेवन करे। यह सम्पूर्ण रोगोंके समूहको नष्ट करता है। एवं प्लीहा, अत्युग्रज्वर, खाँसी, विषमज्वर, आमवात, यकृत्का शूल, श्वास, बवा- सीर, शिरःपीडा, गुल्म, शोथ, दारुण उदररोग, अफारा, हृदयरोग, यकृत्, क्षय, कामला, पाण्डु और नानाप्रकारके उत्कट रोगसमूहरूपी हस्तीको नाश करनेके लिये मृगेन्द्रकी समान है। यह प्लीहा तथा मृत्युको महालोह जीतने- वाला और गुल्मको शीघ्र नष्ट करनेवाला महालोह है। समस्त प्राणियोंके सुखके लिये शिवजी महाराजने इस योगको कथन कियाहै ॥ ९२-१०२ ॥

सर्वेश्वरलौह ।

शुद्धसूतं पलं गन्धं द्विपलन्तु मृताभ्रकम् ।
त्रिपलं मृतताम्रञ्च पलार्द्धं स्वर्णमाक्षिकम् ॥ १०३ ॥

जैपालं चित्रकं मानं शूरणं घण्टकर्णकम् ।
ग्रन्थिकं त्रिफला व्योषं त्रिवृता खरमञ्जरी ॥ १०४ ॥
दण्डोत्पला वृश्चिकाली कुलिशं नागदन्तिका ।
सूर्यावर्त्तश्च सञ्चूर्ण्य कर्षमात्रं विमर्दयेत ॥ १०५ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव चूर्णयित्वा पुनः क्षिपेत ।
त्रिपलं लोहचूर्णस्य ततः खादेच्छुभेऽहनि ॥ १०६ ॥
सम्पूज्य भास्करं विष्णुं गणनाथं द्विजोत्तमम् ।
माषमात्रञ्च मधुना कृत्वा शीतजलं पिबेत् ॥ १०७ ॥
चूर्णं सर्वेश्वरं नाम सर्वरोगहरं पिबेत् ।
कठोरप्लीहनाशाय गुल्मोदरहरं तथा ॥ १०८ ॥
कामलां पाण्डुमानाहं यकृत्कृमिकृतामयान् ।
विचर्चीमम्लपित्तञ्च कण्डूं कुष्ठं विनाशयेत् ॥ १०९ ॥
प्लीहानमस्रपित्तञ्चाप्यग्निमान्द्यं सुदुस्तरम् ।
श्रीकरं कान्तिजननं शुक्रायुर्बलवर्द्धनम् ॥ ११० ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक और अभ्रकभस्म प्रत्येक चार चार तोले, ताम्रभस्म १२ तोले, सोनामाखी २ तोले, एवं जमालगोटा, चीता, मानकन्द, जिमीकन्द, घंटाकर्णक (क्षुद्रक्षुपविशेष), पीपलामूल, त्रिफला, त्रिकुटा, निसोत, चिरचिटा, श्वेतदण्डोत्पल, बिछूटीवृक्षकी जड, हडशंकरी, हाथीसुँडा और हुलहुल ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे । प्रथम इस चूर्णको अदरखके रसमें अच्छेप्रकार खरलकरले पश्चात् इसमें १२ तोले लोहेकी भस्म डालकर फिर खरलकरे । तदनन्तर प्रतिदिन प्रातःकाल पवित्र होकर गणेश, सूर्य और विष्णुभगवान्को पूजकर तथा ब्राह्मणोंको प्रसन्नकर इस लोहकी एक मासाप्रमाण मात्राको शहदमें मिलाकर सेवन करे और ऊपर शीतलजल पान करे । यह सर्वेश्वर नामक लोह सर्वप्रकारके रोग कठिनतर तिल्ली, गुल्म, उदरविकार, कामला, पाण्डु, आनाह, यकृत्, कृमिरोग, विचर्चिका, अम्लपित्त, खुजली, कुष्ठ, प्लीहा, रक्तपित्त और दुस्तर मन्दाग्नि आदि व्याधियोंको नष्ट करनेवाला तथा शोभावर्द्धक, कान्त्युपादक, बल, वीर्य और आयुकी उन्नति करनेवाला है ॥ १०३–११० ॥

यकृत्प्लीहोदरहरलौह।

लौहार्द्धमभ्रकं शुद्धं सूतमभ्यर्द्धभागिकम्।
त्रिगुणामयसश्चूर्णात् त्रिफलामभ्रकात्तथा ॥ ११ ॥
द्विरष्टं वारिणो भागमवशिष्टन्तु कारयेत्।
तेन चाष्टावशिष्टेन समेनाज्येन यत्नतः ॥ १२ ॥
रसेन बहुपुत्राया द्विगुणक्षीरसंयुतम्।
लौहमय्या पचेद्दर्व्या पात्रे चायासि मृण्मये ॥१३॥
अभ्रकं निहितं शुद्धं पारदञ्च सुमूर्च्छितम्।
अयसोऽर्द्धमितं चूर्णमादौ पाके विनिःक्षिपेत् ॥ १४ ॥
कन्दं कपालिकां चव्यं विडङ्गं सबृहद्दलम्।
शरपुङ्खा च पाठा च चित्रकं समहौषधम् ॥ १५ ॥
लवणानि च सर्वाणि सक्षारं वृद्धदारकम्।
दीप्यकञ्च तथा स्नूहीं लौहाभ्रकसमां क्षिपेत् ॥ १६ ॥
प्लीहोदरयकृद्गुल्मान् हन्ति शस्त्राग्निभिर्विना।
प्रयोज्योऽयं महावीर्यो लौहो लौहविदाम्वरैः ॥
प्लीहोदरविनाशाय दद्याद् द्वे द्वे पुटे पृथक् ॥ १७ ॥

लोहा एक तोला, अभ्रक भस्म आधा तोला, शुद्धरससिन्दूर अभ्रकसे आधा भाग और लोहेके चूर्ण तथा अभ्रकसे तिगुना त्रिफला लेवे। इन सबको एकत्र कर १६ गुने जलमें पकावे। पकते पकते जब अष्टमभाग रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इस काथके साथ समान भाग गौका घी, शतावरका रस घीके बराबर और रससे दुगुना दूध मिलाकर विधिपूर्वक लोहेके या मिट्टीके पात्रमें करके मन्दमन्द अग्निसे पाककरे और लोहेकी करछीसे चलाता जाय। फिर इसमें जिमीकन्द, कपालिका (कन्दविशेष), चव्य, वायविडङ्ग, लोध, शरफोंका, पाढ, चीता, सोंठ, पाँचोंनमक, जवाखार, विधारा, अजवायन और थूहरकी जड इन सब औषधियोंको अलग अलग, लोहे और अभ्रककी बराबर लेकर एकत्र मर्दन करके उपर्युक्त पाकमें डालकर उत्तम प्रकारसे पाककरे इस प्रकार सिद्ध कियाहुआ यह यकृत्प्लीहोदरहरनामक लोह सर्व प्रकारकी प्लीहा, उदररोग, यकृत्रोग और गुल्मादिरोगोंको विना शस्त्र व अग्निके नष्ट करता है। यह प्रयोग अत्यन्त वीर्यवान् और सर्व लोहोंमें उत्तमलोह है।

इसमें औषधि सिद्ध होनेपर दो बार पुटपाक करलेवे तो प्लीहा और उदरविकार अवश्य शमन होते हैं ॥ ११-१७ ॥

शङ्खद्रावरस ।

योगिनीभैरवाभ्याञ्च बलिमादौ प्रदापयेत् ।
पश्चाद्यन्त्रञ्च कर्त्तव्यमेवाह परमेश्वरी ॥ १८ ॥
रसः शङ्खद्रवो नाम शम्भुदेवेन भाषितः ।
गुह्याद्गुह्यतमं गुह्यमिदानीं कथ्यते मया ॥ १९ ॥
शङ्खचूर्णं यवक्षारं सर्जिकाक्षारटङ्कणम् ।
समञ्च पञ्चलवणं स्फटिकारिनिशादलः ॥ २० ॥
काचकुप्यां ततः क्षिप्त्वा वारुणीयन्त्रमुद्धरेत् ।
यामार्द्धं द्रावयत्येव शङ्खशुक्तिवराटिकान् ॥ २१ ॥
अर्शांसि नाशयेत्षट् च मूत्रकृच्छ्राश्मरीस्तथा ।
उदराष्टविधं हन्ति गुल्मप्लीहोदराणि च ॥ २२ ॥
अजीर्णं नाशयेच्छीघ्रं ग्रहणीञ्च विषूचिकाम् ।
भुक्तशेषे च भोक्तव्यो माषमात्रो रसोत्तमः ॥ २३ ॥
क्षणमात्राद्भवेद्भस्म पुनर्भोजनमिच्छति ।
प्रत्यहं भोजनान्ते च संसेव्योऽयं रसोत्तमः ॥ २४ ॥
न रुजायां भयं क्वापि सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।
न देयं यस्य कस्यापि सदा गोप्यञ्च कारयेत् ॥
रसः शङ्खद्रवो नाम वैद्यानामुपकारकः ॥ २५ ॥

इसको बनानेसे प्रथम योगिनी और भैरवोंको बलिदान देवे पश्चात् यन्त्र बनावे, ऐसा महाराणी पार्वतीने कहा है। यह शंखद्रावरस शिवजी महाराजका प्रकट कियाहुआ है। यह रस गोप्य वस्तुओंमें भी अत्यन्त गोप्य है, अतः इसको गुप्त रखना चाहिये। अब मैं इस गुप्त रसका वर्णन करता हूँ। शंखका चूर्ण, जवाखार, सज्जी, सुहागा, पाँचोंनमक, फटकरी और नौसादर इन सबोंको समानभाग लेवे। फिर एकत्र कूट पीसकर इस चूर्णको काँचकी शीशीमें भरकर वारुणीयन्त्रमें द्रवीभूत करे। यह शंख, सीपी और कौडीको आधे प्रहरमें ही गलादेता है। इसको भोजनके पश्चात् एक मासा प्रमाण सेवन करे तो तत्क्षण भोजन भस्म होजाता है। और फिर भोजन करनेकी इच्छा

उत्पन्न होती है। इससे छःप्रकारके अर्श, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, ८ प्रकारके उदर-रोग,गुल्म, प्लीहोदर, अजीर्ण, संग्रहणी और विषूचिका आदि रोग बहुत जल्द नष्ट होते हैं। इस उत्तम रसायनको प्रतिदिन प्रातःकाल और भोजनके पश्चात् सेवन करे। इसको सेवन करनेवाले मनुष्यको फिर कभी रोग आक्रमण नहीं करते। मैं बिल्कुल सत्य कहताहूँ। इसलिये यह रस हर किसीको नहीं देवे, सदैव गुप्त रखे। शंखद्राव नामवाला यह रस वैद्योंको अत्यन्त उपकारक है॥

शंखद्रावक।

अर्कः स्नुही तथा चिञ्चा तिलारग्वधचित्रकम्।
अपामार्गभस्म समं वस्त्रपूतं जलं हरेत्॥ २६॥
मृद्वग्निना पचेत्तत्तु तावल्लवणतां गतम्।
लवणेन समौ ग्राह्यौ द्वौ क्षारौ टङ्कणं तथा॥ २७॥
समुद्रफेनं गोदन्तं कासीसं सोरका तथा।
द्विगुणं पञ्चलवणं मातुलुङ्गरसेन च॥ २८॥
काचकुप्यान्तु सप्ताहं वासयेदम्लयोगतः।
शङ्खचूर्णपलं दत्त्वा वारुणीयन्त्रमुद्धरेत॥ २९॥
सर्वधातून हरेच्छीघ्रं वराटीशङ्खकादिकान्।
रोगानामुदरादीनां सद्यो नाशकरः परः॥ ३०॥

आक, थूहर और इमलीकी छाल, तिल, अमलतास, चीतेकी जड और चिरचिटा इन सबकी भस्मको समान भाग लेकर जलमें घोललेवे। फिर वस्त्रमें छानकर जलको ग्रहण करे। पश्चात् इस जलको मन्द मन्द अग्निद्वारा पकावे। जब पकते पकते खारीपन आजाय तब जवाखार, सज्जी, सुहागा, समुद्रफेन, गोदन्ती, हरिताल, कसीस और सोरा ये सब समानभाग और पञ्च लवण सबसे दुगुने लेकर एकत्र कूट पीसकर काँचकी शीशीमें भरदेवे और ऊपरसे बिजौरेनींबूका रस डालदेवे इस प्रकार खट्टे रसको मिश्रित करके एक सप्ताहतक रखा रहनेदेवे। फिर उसमें ४ तोले शंखका चूर्ण डालकर वारुणी यन्त्रके द्वारा अर्क खींचे। यह रस धातुगत सर्वदोष, उदरादि रोगोंको तत्काल नष्ट करता है। और यह द्राव, शंख अथवा कोडी, सीपी आदिको शीघ्र द्रवीभूत करता है॥ १२६-१३०॥

महाशंखद्रावक।

चिञ्चाश्वत्थः स्नूही ह्यर्कोऽपामार्गश्च हि पञ्चमः।

पृथक् भस्मजलं कृत्वा तूद्धृत्य लवणानि च ॥ ३१ ॥
टङ्कणञ्च यवक्षारं सर्ज्जं लवणपञ्चकम् ।
रामठं तालकञ्चैव लवङ्गं नरसारकः ॥ ३२ ॥
जातीफलञ्च गोदन्तं ताप्यं गन्धरसं तथा ।
विषं समुद्रफेनञ्च सोरकास्फटिकारिका ॥ ३३ ॥
शंखचूर्णं शंखनाभिचूर्णं पाषाणसम्भवम् ।
मनःशिला च कासीसं समभागञ्च कारयेत् ॥ ३४ ॥
भावयेद्धृतसरसैः काचकुप्यां क्षिपेत्ततः ।
अत्र द्रवञ्च तद्दत्वा चोष्णस्थाने च धारयेत् ॥ ३५ ॥
वस्त्रेणाच्छादितस्तावद्यावत्स्यात्सप्तवासरम् ।
पश्चान्मन्दाग्निना देयं वारुणीयन्त्रमुद्धरेत् ॥ ३६ ॥
काचकुप्यां जलं दत्त्वा रक्षयेद्यततः सुधीः ।
गुञ्जैकं पर्णखण्डेन प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ ३७ ॥
कासं श्वासं क्षयं प्लीहमजीर्णं ग्रहणीगदम् ।
रक्तपित्तं क्षतं गुल्ममर्शांसि च विनाशयेत् ॥ ३८ ॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च शूलमष्टविधं तथा ।
आमवातं वातरक्तं खञ्जवातं धनुस्तथा ॥ ३९ ॥
उदरामयमामञ्च स्थूलतां कृमिकोष्ठताम् ।
वातपित्तकफान्सर्वान्नाशयेन्नात्र संशयः ॥ १४० ॥
भुक्त्वा च कण्ठपर्यन्तं गुञ्जैकञ्च रसं लिहेत् ।
तत्क्षणात्कारयेद्भस्म तृणराशिमिवानिलः ॥ ४१ ॥
यामार्द्धं द्रावयेत्सर्वं शंखशुक्तिवराटकान् ।
पूर्वोक्तविधिना तत्र दद्यान्निशि चतुष्पथे ॥ ४२ ॥
योगिनीभैरवाभ्याञ्च बलिं माषतिलानथ ।
महाशंखद्रवो नाम्ना शम्भुदेवेन भाषितः ॥ ४३ ॥
गुह्याद्गुह्यतमं गोप्यं पुत्रस्यापि न कथ्यते ।
लोकानां कौतुकात्कर्त्ता प्रकाश्यो राजसन्निधौ ४४॥

इमली, पीपलवृक्ष, थूहर, आक और चिरचिटा इन पाँचोंकी छालकी भस्मोंको समानभाग लेकर पानीमें अलग २ घोलकर छान लेवे । फिर इन क्षार जलोंको मन्द मन्द अग्निसे पकावे । पकते पकते जब खारद्रव्य बाकी रहजाय तब उतारलेवे । पश्चात् यह खार एवं पाँचों नमक, सुहागा, जवाखार, सज्जी, हींग, हरिताल, लौंग, नौसादर, जायफल, गोदन्ती, हरिताल, सोनामाखी, बोल, शुद्ध मीठा तेलिया, समुद्रफेन, सोरा, फटकरी, शंखचूर्ण, शंखनाभिचूर्ण, पाषाणभेदका चूर्ण, मैनसिल और हीराकसीस इन सबको समानभाग लेकर एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे और फिर समस्त चूर्णको अम्लवेतके रसमें भावना देकर कपरौटी कीहुई काँचकी शीशीमें भरकर उष्णस्थानमें रखदेवे । और उसके मुखको अच्छेप्रकार वस्त्रसे ढककर ७ दिनतक रखा रहनेदेवे । तदनन्तर वारुणी यन्त्रमें स्थापनकर धीरे धीरे मन्द मन्द अग्निद्वारा पाककर द्रवीभूत करे अर्थात् अर्क खींचे । जब शीतल होजाय तब उस जलको काँचकी शीशीमें भरकर यत्न-पूर्वक रक्खे । फिर प्रतिदिन प्रातःकाल इसकी रत्तीभरमात्राको पानमें लगा-कर सेवन करे । यह खाँसी, श्वास, क्षय, प्लीहा, अजीर्ण, संग्रहणी, रक्तपित्त, क्षत, गुल्म, बवासीर, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, आठों प्रकारके शूल, आमवात, वातरक्त, खञ्जवात, धनुस्तम्भ, उदररोग, स्थूलता, कृमिरोग, कोष्ठबद्धता, वात-पित्त और कफजन्य रोग तथा अन्यान्य सर्वप्रकारके रोगोंको संशयरहित तत्काल नाश करता है । कण्ठपर्यन्त भोजनकरके रत्तीभर इस रसको चाट-लेवे तो उसीक्षण कियाहुआ भोजन इस प्रकार भस्म होजाताहै जिसप्रकार तृणोंके समूहको अग्निकण भस्म कर देता है। यह रस शंख, शुक्ति और कौडि-योंको अर्द्धप्रहरमें ही गलादेता है । इसको सेवन करनेसे पहले पूर्वोक्त विधिके अनुसार अर्द्धरात्रिमें चौराहेपर योगिनी और भैरवोंके लिये उडद और तिलोंकी बलि देवे । इस महाशङ्खद्रावनामक रसको श्रीशिवजीमहाराजने निर्म्मित किया है । यह गुप्तवस्तुसेभी अत्यन्त गुप्त है इसको पुत्रसेभी नहीं कहना चाहिये । सांसारिक जीवोंको आश्चर्य्य चकित करनेके लिये केवल राजाओंके सामने प्रकाशित करे ॥ ३१-४४ ॥

१-महाद्रावक ।

यवक्षारस्य भागौ द्वौ स्फटिकारित्रयो मताः ।
एकीकृत्य प्रपिष्यापि मूत्रैर्वत्सतरीभवैः ॥ ४५ ॥
शुष्कं कृत्वा क्षिपेत्पात्रे सैसके वस्त्रलेपिते ।
अन्यसीसकपात्रन्तु द्विमुखं मेलयेद्बुधः ॥ ४६ ॥

वृद्धवैद्योपदेशेन पचेत्पात्रस्थमौषधम्।
ततः सान्निध्यसंस्थाप्यं पात्रान्यं लभते रसः॥ ४७॥
ततो रसं विनिष्कृष्य स्थापयेत्स्निग्धभाजने।
लवङ्गेन सह खादेदथवा मृतताम्रकैः॥ ४८॥
प्लीहादिस्थूलरोगेषु दापयेद्रक्तिकां भिषक्।
दूरीकरोति रोगश्च महाद्रावकसंज्ञकः॥ ४९॥
श्वित्रे च दद्रुरोगे च प्रलेपं द्रावकस्य च।
वह्निवज्ज्वलनं तस्य दधि दत्वा प्रलेपयेत्॥ ५०॥

जवाखार २ भाग, और फटकरी ३ भाग इन दोनोंको एकत्र बछियाके मूत्रमें पीसकर धूपमें सुखालेवे। फिर इस कल्कको कपरौटी कियेहुए शीशेके बर्त्तनमें भरदेवे और ऊपरसे दूसरा शीशेका ढकना ढककर दोनोंके मुखको मिलाकर सन्धिस्थानोंको अच्छे प्रकार बन्द करदेवे। पश्चात् नीचेके सीसेमें एक छिद्र करदेवे, फिर एक गढा खोदकर उसमें एक स्वच्छ पात्रको रक्खे। उस पात्रके ऊपर उक्त दोनों शीशेके पात्रोंको स्थापनकरे और ऊपरसे आग जला देवे। तदनन्तर जब अग्निके सन्तापसे सीसेके पात्रके द्रव्य पिघलकर नीचेके पात्रमें चले जायँ तब उस रसको निकालकर चिकने बासनमें भरकर रखदेवे इस रसकी प्रतिदिन प्रातःकाल एकरत्ती मात्राको लौङ्गके चूर्ण अथवा ताँबेकी भस्मके साथ सेवन करे तो इससे प्लीहा, स्थूलतादि दारुण रोग अल्पकालमेंही द्रव अर्थात् गलकर नष्ट होजाते हैं। यह रस अत्यन्त कठिनतम रोगोंको द्रवीभूत करता है। इसलिये इसको महाद्रावक कहते हैं। श्वेतकुष्ठ और दादपर इसका लेप करनेसे उक्तरोग तत्काल नष्ट होते हैं। यदि लेप करनेपर जलन मालूम हो तो पहले दही मललेवे बादमें इसको लगावे॥ १४५–५०॥

२–महाद्रावक।

वृषाश्वित्रमपामार्गाश्वित्राकूष्माण्डनाडिका।
स्नुही तालस्य पुष्पश्च वर्षाभूर्वेतसं तथा॥ ५१॥
एतेषां क्षारमाहृत्य निम्पाकस्वरसेन च।
क्षालयित्वा क्षारतोयं वस्त्रपूतश्च कारयेत्॥ ५२॥
चण्डातपेन संशोष्य ग्राह्यं तद्द्रवणोचितम्।
एतस्य द्विपलं ग्राह्यं यवक्षारपलद्वयम्॥ ५३॥

स्फटिकारिपलश्चैव नवसारपलं तथा।
पलार्द्धं सैन्धवं ग्राह्यं टङ्कणं तोलकद्वयम् ॥ ५४ ॥
कासीसं तोलकश्चैव मुद्राशंखश्च तोलकम्।
दारुमोचं कर्षकञ्च तोलं सामुद्रफेनकम् ॥ ५५ ॥
सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य बकयन्त्रेण साधयेत्।
महाद्रावकमेतद्धि योज्यञ्च रसजारणे ॥ ५६ ॥
हन्ति गुल्मादिकान्रोगान् यकृत्प्लीहोदराणि च ॥५७

अडूसा, चीतेकी जड, चिरचिटा,इमली, पेठेकी डण्डी, थूहर, ताडके फूल, पुनर्नवा और बेंत इन सबकी भस्मको बराबर २ भाग लेकर जम्बीरीनींबूके रसमें घोलकर कपडेमें छानकर क्षारयुक्त जलको ग्रहण करे। फिर इस जलको तीक्ष्णधूपमें सुखाकर इसके ८ तोले खारको लेवे। एवं जवाखार ८ तोले,फट-करी ४ तोले, नौसादर ४ तोले, सैंधानमक २ तोले, सुहागेकी खीलें २ तोले, कसीस १ तोला, मुद्राशंख (अरघा) १ तोला, दारुमोच विष १ कर्ष और समुद्रफेन १तोला लेवे। सबको एकत्र चूर्ण द्वारा करके बकयन्त्र चुवाकर अर्क ग्रहण करे। इस महाद्रावकको रसादिके जारणमें प्रयोगकरे। यह गुल्म, यकृत प्लीहा और उदरप्रभृति सम्पूर्ण विकारोंको नष्ट करता है ॥ १५१-५७ ॥

३–महाद्रावकरस।

शुद्धं कांचनमाक्षिकं मृदुतरं कांस्याभिधं तत्तथा
सिन्धूत्थं विमलं रसाञ्जनवरं फेनः स्रवन्तीपतेः।
क्षारौ सर्ज्जिकसाम्भलौ सुविमलौ भागास्त्वमीषां समाः
सप्तानां सदृशं तु टङ्कणमिहास्याद्धौ नृसारः सितः ॥५८॥
तत्तुल्या स्फटिकारिका त्रिसदृशः शुक्लो यवस्याग्रजः
कासीसत्रितयं यवाग्रजसमं सञ्चूर्ण्य सर्वं न्यसेत्।
पात्रे काचमये मृदम्बरवृते यन्त्रे बकाख्ये भिषक्
ज्वालेन क्रमवर्द्धिनान्यवहितोऽमीषां रसं पातयेत् ॥५९॥
यो द्राग्भस्मवराटिकां प्रकुरुतेऽसोऽयं महाद्रावकः
को वक्तुं प्रभवेदमुष्य नितरां सम्यग्गुणान्भूतले।
एतद्वल्लचतुष्टयं सह गिलेच्छुण्ठ्या लवङ्गेन वा
तत्पश्चात्परिभावितं बहुगुणं ताम्बूलकं भक्षयेत ॥ ६० ॥

प्रासङ्गचात्कथयामि ताञ्छृणु गुणानस्यैव कांश्चित्परान्
निःशेषं विनिहन्त्यसौ चिरभवान्यष्टोदराणि ध्रुवम्।
गुल्मं पाण्डु हलीमकं सुकठिनामष्ठीलिकां कामलां
मन्दाग्निं विषमाग्नितां बहुविधान् शोथांश्च शूलानपि६१
सर्वार्शांसि भगन्दरान्कृमिगदान्पञ्चैव कासांस्तथा
हिक्काश्लीपदकोषवृद्धिमरुचिंव्याधिं महादारुणम्।
नव्यं वा चिरजं ज्वरं बहुविधं छर्दिं कृमीन्विंशतिं
यक्ष्माणं चिरजामवातपिडिकातीसारविस्फोटकम्॥६२॥
उन्मादं स्वरभेदमर्बुदमपि स्वेदं च हत्पाणिजं
जिह्वास्तम्भगलग्रहं चिरभवं ग्रीवारुजामुल्बणाम्।
नासाकर्णशिरोऽक्षिवक्त्रजगदान्क्षुद्रामयांश्चापरान्
हन्यादेव चिरोत्थितान्बहुविधानन्यांश्च रोगानपि॥६३॥
एकः स्यादपरो हि टङ्कणमुखैर्द्रव्यैः परैः सप्तकैः
अन्यस्तु स्फटिकारिटङ्कणयवक्षाराभ्रकासीसकैः।
जानीयाद्गुरुतो विभागमनयोर्यन्त्रादिकं चापरं
निर्दिष्टास्त्रय एव भेषजवराः स्वल्पो महान्मध्यमः॥६४॥

स्फटिकार्यादिकासीसान्तचतुर्द्रव्यैः स्वल्पः।
स्वर्णमाक्षिकादिकासीसत्रितयान्तैर्महान्॥
टङ्कणादिकासीसान्तैः सप्तभिर्द्रव्यैर्मध्यमः॥

शुद्ध सोनामाखी, कांस्यमाखी, सैंधानमक, रसौत, समुद्रफेन, सज्जी और साँभलखार इन सातोंको समानभाग और सबके बराबर भाग सुहागा एवं सुहागेसे आधाभाग नौसादर और इतनी ही फिटाकिरी लेवे। फिर शुभ्रवर्णका जवाखार पूर्वोक्त तीनों वस्तुओंके समान तीनों कसीस जवाखारके चूर्णके समानभाग लेवे। फिर सबोंको एकत्र अच्छेप्रकार कूटपीसकर चूर्ण बनालेवे। इस चूर्णको कपडमिट्टी की हुई काँचकी शीशीमें भरकर बकयन्त्रमें स्थापनकरके अग्निके सन्तापसे द्रावको निकाले अर्थात् उक्त औषधोंका अर्क खींचे। यह महाद्रावक रस कौडियोंको बहुत शीघ्र भस्म करदेता है। संसारमें इसके संपूर्ण गुणोंका वर्णन करनेको कोई भी समर्थ नहीं है। इसकी ८ माशे परिमाण मात्राको सोंठके चूर्ण अथवा लौंगके चूर्णके साथ मिलाकर सेवन करे। पश्चात्

सुगन्धित द्रव्योंसे सुवासित नागरपान भक्षण करे । प्रसङ्गसे इसके कुछ थोडेसे श्रेष्ठ गुणोंको कहता हूँ उनको सुनो । यह रस बहुत पुराने आठों प्रकारके उदररोग, गुल्म, पाण्डु, हलीमक, कठिनतम अष्ठीला, कामला, मन्दाग्नि, विषमाग्नि, सर्वप्रकारके शोथ, शूल, बवासीर, भगन्दर, कृमिरोग, खाँसी, हिचकी, प्लीहा, श्लीपद, अण्डकोषवृद्धि, अरुचि, नया अथवा पुराना सर्व प्रकारका ज्वर, वमन, राजयक्ष्मा, आमवात, पिडिका, विसर्प, विस्फोटक, उन्माद, स्वरक्षय, अर्बुद, हृदय और हाथोंसे उत्पन्नहुआ स्वेदरोग, जीभका जकडना, गलग्रह, दारुण ग्रीवापीडा, नाक, कान, शिर, नेत्र और मुखके रोग, अन्य क्षुद्ररोग एवं नानाप्रकारके नये और पुराने सम्पूर्ण उत्कट विकारोंको तत्काल नष्ट करदेता है । सोनामाखीसे लेकर कसीसतक औषधियोंका द्रव निकालना उत्तम महाद्राव कहलाता है । एवं सुहागेसे लेकर कसीसतक औषधोंका द्रव निकालना मध्यमद्राव और फटकरीसे लेकर कसीसपर्यन्त चार औषधोंका द्रवनिकालना अल्पद्राव कहाजाता है ॥ १५८-६४ ॥

चित्रकघृत ।

चित्रकस्य तुलाक्वाथे घृतप्रस्थं विपाचयेत ।
आरनालं तद्द्विगुणं दधिमण्डं चतुर्गुणम् ॥ ६५ ॥
पञ्चकोलकतालीशक्षारैर्लवणसंयुतैः ।
द्विजीरकनिशायुग्मैर्मरिचं तत्र दापयेत ॥ ६६ ॥
प्लीहगुल्मोदराध्मानपाण्डुरोगारुचिज्वरान् ।
वस्तिहृत्पार्श्वकट्यूरुशूलोदावर्त्तपीनसान् ॥ ६७ ॥
हन्यात्पीतं तदर्शोघ्नं शोथघ्नं वह्निदीपनम् ।
बलवर्णकरश्चापि भस्मकं च नियच्छति ॥ ६८ ॥

सौ पल चीतेके क्वाथमें ६४ तोले घृतको पकावे । फिर काँजी १२८ तोले, दहीका तोड २५६ तोले एवं पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, तालीशपत्र, जवाखार, सैन्धानमक, जीरा, कालाजीरा, हल्दी, दारुहल्दी और मिरच इनके चूर्णको समानभाग लेकर उसमें डालदेवे और उत्तम प्रकार घृतको सिद्ध करे । यह घृत यथाविधि सेवन करनेपर तिल्ली, गुल्म, उदररोग, अफारा, पाण्डु, अरुचि, ज्वर, बस्ति, हृदय, पसली, कमर और जंघाका शूल, उदावर्त्त, पीनस, बवासीर, सूजन और भस्मकादि रोगोंको शीघ्र दूर करता है । तथा अग्निको बढाता और बलवर्णको उत्पन्न करता है ॥ १६५-६८ ॥

पिप्पलीघृत ।

पिप्पलीकल्कसंयुक्तं घृतं क्षीरं चतुर्गुणम् ।
पचेत्प्लीहाग्निसादादि यकृद्रोगहरं परम् ॥ ६९ ॥

पीपलका कल्क एक सेर, घृत एक सेर और दूध४सेर इनको एकत्र मिलाकर घृतको सिद्ध करे । यह प्लीहा, मन्दाग्नि,यकृत् रोगको नाशकरताहै॥६९॥

चित्रकपिप्पली घृत ।

पिप्पलीचित्रकान्मूलं पिष्ट्वा सम्यग्विपाचयेत ।
घृतं चतुर्गुणं क्षीरं यकृत्प्लीहोदरापहम् ॥ १७० ॥

पीपल और चीतेकी जड समानभाग मिश्रित इनका चूर्ण एक सेर, घृत एक सेर और दूध ४ सेर लेवे । फिर सबको एकत्रकर उक्तप्रकार घृतको पकावे । यह घृत यकृत्, प्लीहा और उदरविकारको दूर करता है ॥ १७० ॥

रोहीतकघृत ।

रोहीतकत्वचः श्रेष्ठाः पलानां पञ्चविंशतिः ।
कोलद्विप्रस्थसंयुक्तं कषायमुपकल्पयेत् ॥ ७१ ॥
पलिकैः पञ्चकोलैश्च तैः सर्वैश्चापि तुल्यया ।
रोहीतकत्वचापिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७२ ॥
प्लीहाभिवृद्धिं शमयेदेतदाशु प्रयोजितम् ।
तथा गुल्मज्वरश्वासकृमिपाण्डुत्वकामलाः ॥७३ ॥

रोहेडा वृक्षकी छाल २५ पल और बडीबेरीकी छाल २ प्रस्थ (१२८-तोले) लेकर चौगुने जलमें पकावे । चतुर्भागावशिष्ट जल रहनेपर उतारकर छान लेवे । फिर इस काढेमें पीपला, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनमेंसे प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले, रोहेडेकी छालका चूर्ण २० तोले और घृत ६४ तोले डालकर पकावे।यह रोहीतकघृत बढीहुई तिल्ली, गुल्म, ज्वर, श्वास, कृमि,पाण्डु और कामलाप्रभृतिव्याधियोंको तत्काल शमन करताहै॥७१-७३॥

महारोहीतकघृत ।

रोहीतकात्पलशतं क्षोदयेद्बदराढकम् ।
साधयित्वा जलद्रोणे चतुर्भागावशेषितम् ॥ ७४ ॥
घृतप्रस्थं समावाप्य छागक्षीरं चतुर्गुणम् ।
तस्मिन्दद्यादिमान्कल्कान्सर्वांस्तानक्षसंमितान॥७५॥

व्योषं फलत्रिकं हिङ्गु यमानीतुम्बुरूविडम्।
अजाजी कृष्णलवणं दाडिमं देवदारु च ॥ ७६ ॥
पुनर्नवा विशाला च यवक्षारन्तु पौष्करम्।
विडङ्गं चित्रकञ्चैव हवुषा चविका वचा ॥ ७७ ॥
एभिर्घृतं विपक्वन्तु स्थापयेद्भाजने शुभे।
पाययेत्त्रिपलां मात्रां व्याधिं बलमवेक्ष्य च ॥ ७८ ॥
रसकेनाथ यूषेण पयसा वापि भोजयेत्।
उपयुक्तघृते तस्मिन् व्याधीन्हन्यादिमान्बहून् ॥ ७९ ॥
यकृत्प्लीहोदरश्चैव प्लीहशूलं यकृत्तथा।
कुक्षिशूलश्च हृच्छूलं पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ १८० ॥
विबद्धशूलं शमयेत्पाण्डुरोगं सकामलम्।
हृद्यतीसारशूलघ्नं तन्द्राज्वरविनाशनम्।
महारोहीतकं नाम प्लीहानं हन्ति दारुणम् ॥ ८१ ॥

रोहेडेकी छाल १०० पल, बडीबेरीकी छाल ४ सेर इन दोनोंको कुचल कर ३२ सेर जलमें पकावे। जब चौथाईभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इसमें गोघृत ६४ तोले, बकरीका दूध २५६ तोले, कल्कके लिये त्रिकुटा, त्रिफला, हींग, अजवायन, धनियाँ, विडनमक, कालाजीरा, कालानमक, अनार, देवदारु, पुनर्नवा, इन्द्रायण, जवाखार, पोहकरमूल वायविडङ्ग, चीता, हाऊबेर, चव्य और वच इन औषधियोंको दो दो तोले लेकर एकत्र चूर्ण करके डालदेवे फिर यथाविधि घृतको सिद्धकर उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे। इस घृतकी १२ तोले मात्राको सेवन करनेका ऋषियोंने निर्देश किया है, किन्तु वातादि दोषोंकी उल्बणता और रोगीके बलाबलको विचारकर इसकी उपयुक्त मात्राको सेवन करावे और रसवाले यूष अथवा दूधके साथ भोजन करावे। नियमपूर्वक इसका सेवन करे तो यह महारोहीतकनामवाला घृत यकृद्विकार, प्लीहोदर, प्लीहाशूल, यकृत्शूल, कुक्षिशूल, हृदयशूल, पार्श्वशूल, अरुचि, विबद्धशूल, पाण्डुरोग, कामला, हृदयरोग, अतीसार, शूल, तन्द्रा, ज्वर विशेषकर दारुण प्लीहा और अन्यान्य सर्व प्रकारके रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ७४-८१ ॥

रोहीतकारिष्ट।

रोहीतकतुलामेकां चतुर्द्रोणे जले पचेत्।
पादशेषे रसे पूते शीते पलशतद्वयम् ॥ ८२ ॥
दद्याद्गुडस्य धातक्याः पलषोडशिका मता।
पञ्चकोलं त्रिजातं च त्रिफलाञ्च विनिःक्षिपेत् ॥ ८३ ॥
चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत्।
मासादूर्द्ध्वं च पिबतां सर्वोदररुजां जयेत् ॥८४॥
प्लीहगुल्मोदराष्ठीलां ग्रहण्यर्शांसि कामलाम्।
कुष्ठशोथारुचिहरो रोहीतारिष्टसंज्ञकः ॥ १८५ ॥

रोहेडावृक्षकी १०० पल छालको लेकर चार द्रोण (१२८ सेर) जलमें पकावे। पकते पकते जब चौथाई भाग अर्थात् ३२ सेर जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर शीतल होजानेपर इस काथमें गुड २०० पल, धायके फूल १६ पल, एवं पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, दारचीनी, इलायची, तेजपात, हरड, वहेडा और आमला इन सब औषधियोंको चार चार तोले लेकर बारीक चूर्ण करके डालदेवे। पुनः इन सब द्रव्योंको एक उत्तम एवं नविन पात्रमें भरदेवे और उस पात्रका मुख बन्द करके गाड देवे इसको एक महीनेके बाद निकालकर उचित मात्रासे सेवन करे तो यह अरिष्ट उदरके सब रोग, तिल्ली, गुल्मोदर, अष्ठीला, संग्रहणी, बवासीर, कामला, कोढ, सूजन और अरुचिप्रभृति रोगोंको दूर करता है। इसका नाम रोहितारिष्ट है। उदररोगके समानही प्लीहा, यकृद्रोगका पथ्य वा अपथ्य जानना ॥८२-१८५॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां प्लीह-यकृच्चिकित्सा ॥

शोथकी चिकित्सा।

लङ्घनं पाचनं शोथे शिरःकायविरेचनम्।
वमनञ्च यथासन्नं यथादोषं प्रकल्पयेत् ॥ १ ॥
स्नेहोऽथ वातिके शोथे बद्धविट्के निरूहणम्।
पयो घृतं पैत्तिके तु कफजे रूक्षणः क्रमः ॥ २ ॥

शोथरोगमें प्रथम लंघन, पाचन, नस्य, विरेचन और वमनादि क्रियाओंको वात, पित्तादि दोषोंका बलाबल विचारकर प्रयोग करे। जैसे वातोत्पन्न शोथमें

स्निग्धक्रिया, मलबद्ध रोगमें निरूहणवस्ति, पित्तजन्य शोथमें दूध और घृतपान एवं कफजनित शोथरोगमें रूक्षकर्म प्रयोग करने चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

अथामजं लंघनपाचनक्रमैर्विशोधनैरुल्बणदोषमादितः।
शिरोगतं शीर्षविरेचनैरधो विरेचनैरूर्द्धहरैस्तथोर्द्धकम् ॥
उपाचरेत्स्नेहभवं विरूक्षणैः प्रकल्पयेत्स्नेहविधिश्च रक्षिते ३

आमजनित शोथमें लंघन और पाचन क्रिया करे। किन्तु दोषोंकी अधिकता होनेपर संशोधकद्रव्य प्रयोग करे। शिरोगतशोथमें नस्य प्रदान करे, शरीरके अधोभागस्थित शोथमें विरेचन और ऊर्ध्वभाग स्थितशोथमें वमनक्रिया करे। तेल और घृतादि स्नेहद्रव्योंके सेवन करनेसे उत्पन्नहुए शोथमें रूक्षक्रिया करे। एवं रूक्षक्रिया द्वारा उत्पन्न शोथमें स्निग्धक्रिया प्रयोग करे ॥ ३ ॥

दशमूलं सदा शस्तं वातशोथे विशेषतः।
वातजे तैलमेरण्डं विड्ग्रहे पयसा पिबेत् ॥ ४ ॥

वातजशोथमें दशमूलका काढा पीवे। विशेषकर उक्तरोगमें मलबद्धता होनेपर अण्डीके तेलको दूधमें डालकर पीवे ॥ ४ ॥

गोमूत्रस्य प्रयोगो वा शीघ्रं श्वयथुनाशनः।
यवागुर्मानकन्दस्य प्रायशश्चातिशोथजित् ॥ ५ ॥

गोमूत्रको सूजनवाले स्थानपर मलनेसे अथवा पान करनेसे सूजन तत्काल दूर होती है। एवं पुराने मानकन्दकी यवागु सेवन करनेसे अत्यन्त प्रवृद्ध सूजन दूर होती है ॥ ५ ॥

बिल्वपत्ररसं पातुं शोषणं श्वयथौ त्रिजे।
विट्संगे चैव दुर्नाम्नि विदध्यात्कामलासु च ॥ ६ ॥

बेलपत्रीके रसमें मिरचोंका चूर्ण डालकर पान करे तो त्रिदोषजन्य सूजन, कोष्ठबद्धता, बवासीर और कामलारोग नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

भूनिम्बविश्वकल्कं जग्ध्वा पेयः पुनर्नवाक्काथः।
अपहरति नियतमाशु शोथं सर्वाङ्गिकं नृणाम् ॥ ७ ॥

चिरायता और सोंठ इनके कल्कको भक्षणकर ऊपरसे पुनर्नवेका काथ पान करे। इससे सर्वशरीरगतशोथ शीघ्र दूर होता है ॥ ७ ॥

शोथनुत्कोकिलाक्षस्य भस्म मूत्रेण वाम्भसा।

तालमखानेकी भस्मको, कफजन्यशोथमें गोमूत्रके साथ एवं पैत्तिकशोथमें जलके साथ पानकरनेसे शोथरोग नष्ट होता है ॥

स्थलपद्ममयं कल्कं पयसालोड्य पाययेत् ।
प्लीहामयहरश्चैव सर्वाङ्गैकाङ्गशोथजित् ॥ ८ ॥

स्थलकमल अथवा पुराने मानकन्दके कल्कको दूधमें मिलाकर पानकरानेसे प्लीहारोग, सर्वाङ्गगत शोथ और एकाङ्गगत शोथ दूर होता है ॥ ८ ॥

सिंहास्यादि ।

सिंहास्यमृतभण्टाकीक्काथं कृत्वा समाक्षिकम् ।
पीत्वा शोथं जयेज्जन्तुः श्वासं कासं ज्वरं वमिम् ॥९॥

अडूसेकी छाल, गिलोय और कटेरी इनके काथको बनाकर मधुके साथ पान करनेसे श्वास, खाँसी, ज्वर, वमन और सूजन दूर होती है ॥ ९ ॥

पटोलादि ।

पटोलत्रिफलारिष्टदार्वीक्काथः सगुग्गुलुः ।
तद्वत्पित्तकृतं शोथं हन्ति श्लेष्मोद्भवं तथा ॥ १० ॥

परवल, त्रिफला, नीमकी छाल और दारुहल्दी इनके काथमें गूगल डालकर पान करानेसे पित्तज और कफज सूजन नाश होती है ॥ १० ॥

त्रिफलादि ।

फलत्रिकोद्भवं क्काथं गोमूत्रेणैव साधितम् ।
वातश्लेष्मोद्भवं शोथं हन्याद्वृषणसम्भवम् ॥ ११ ॥

हरड, बहेडा और आमला इनके काथको गोमूत्रमें सिद्धकरके पीनेसे वातकफजन्यशोथ और अण्डकोषजन्य शोथरोग नष्ट होता है ॥ ११ ॥

पथ्यादि ।

पथ्यानिशाभार्ग्यमृताग्निदार्वीपुनर्नवादारुमहौषधानाम् ।
क्काथः प्रसह्योदरपाणिपादमुखाश्रितं हन्त्यचिरेण शोथम् १२

हरड, हल्दी, भारङ्गी, गिलोय, चीता, दारुहल्दी, पुनर्नवा, देवदारु और सोंठ इन औषधियोंका काथ बनाकर पान करले तो उदर, हाथ, पैर और मुखस्थित सूजन अल्पकालमें नष्ट होजाती है ॥ १२ ॥

पुनर्नवाष्टक ।

पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठीतिक्तामृतादार्व्यभयाकषायः ।
सर्वाङ्गशोथोदरपार्श्वशूलश्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति १३

श्वेत पुनर्नवा, नीमकी छाल, परवल, सोंठ, कुटकी, गिलोय, दारुहल्दी और

हरड इनके काथको यथाविधि बनाकर सेवन करनेसे सर्वशरीरगत शोथ, उदररोग, पार्श्वशूल, श्वास, कास और पाण्डुरोग नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

शुण्ठी-पुनर्नवादि ।

शुण्ठी पुनर्नवैरण्डपञ्चमूलीशृतं जलम् ।
वातिके श्वयथौ शस्तं पानाहारपरिग्रहे ॥ १४ ॥

सोंठ, सफेद पुनर्नवा, अण्डकी जड, बेलकी छाल, शोनापाठा, कम्भारी, पाढर और अरणी इनका काढा बनाकर पीवे अथवा इन औषधियोंके अर्द्धभागावशिष्टजलमें पेया आदि भोज्यपदार्थ सिद्धकर भक्षण करनेसे वातज शोथ दूर होता है ॥ १४ ॥

पुनर्नवा-दशक ।

पुनर्नवा मागधजा कटुत्रयं निम्बाभया च कटुका
च पटोलदार्वी । काथः सुखोष्णः कथितो निपाकैः
शोथो जहाति जठरश्च नरस्य शीघ्रम् ॥ १५ ॥

पुनर्नवा, पीपल, त्रिकुटा, नीमछाल, हरड, कुटकी, परबल और दारुहल्दी, इन औषधियोंके मन्दोष्ण काथको पान करनेसे सूजन, उदररोग दूर होते हैं॥

पुनर्नवापुटस्वेद ।

पुनर्नवा निम्बपत्रं निष्पावपारिभद्रके ।
एतैश्च पुटसंस्वेदः शोथं हन्ति सुदारुणम् ॥ १६ ॥
अपामार्गः कोकिलाक्षो निर्गुण्डी विजया तथा ।
एतैरपि पुटस्वेदः शोथं हन्ति सुदारुणम् ॥ १७ ॥

पुनर्नवा, नीमके पत्ते, सेमके पत्ते और फरहदकी छाल इन सबको एकत्र कूटकर गरम करके पसीना देनेसे दारुण शोथ दूर होताहै । एवं चिरचिटा, तालमखाना, सिह्मालू और भाँग इनको कुचलकर पोटलीमें बाँधले, फिर अग्निपर गरम करके स्वेदप्रदान करनेसे दुस्तर सूजन नष्ट होती है ॥ १६ ॥ १७ ॥

पुनर्नवादिचूर्ण ।

पुनर्नवा दार्वभया पाठा बिल्वं श्वदंष्ट्रिका ।
बृहत्यौ द्वे रजन्यौ द्वे पिप्पल्यौ चित्रकं वृषम् ॥ १८ ॥
समभागानि सञ्चूर्ण्य गवां मूत्रेण वा पिबेत् ।

बहुप्रकारं श्वयथुं सर्वगात्रविसारिणम् ॥
हन्ति शोथोदराण्यष्टौ व्रणांश्चैवोद्धतानपि ॥ १९ ॥

पुनर्नवा, देवदारु, हरड, पाढ, बेलकी जड, गोखुरू, कटाई, कटेरी, हल्दी, दारुहल्दी, पीपल, गजपीपल, चीता और अडूसा इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके गोमूत्रके साथ पान करे तो यह चूर्ण सब शरीरमें फैलीहुई एवं अन्यान्य अनेक प्रकारकी सूजन, आठ प्रकारके उदररोग और अत्युत्कट व्रणोंको नष्ट करता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

शोथारिचूर्ण ।

शुष्कमूलमपामार्गस्त्रिकटुस्त्रिफला तथा ।
दन्ती च त्रिमदश्चैव प्रत्येकञ्च समं समम् ॥ २० ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय बिल्वपत्ररसेन च ।
पाण्डुरोगं निहन्त्याशु शोथश्चैव सुदारुणम् ॥ २१ ॥

सूखी मूली, चिरचिटा, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, दन्तीकी जड, वायविडङ्ग, चीतेकी जड और नागरमोथा ये प्रत्येक औषधि समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण करे। फिर प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर इस चूर्णको बेलपत्रीके रसमें मिलाकर सेवन करनेसे पाण्डुरोग दुस्तर सूजन दूरहोती है ॥२०॥२१॥

पुनर्नवादिलेह ।

पुनर्नवामृतादारुदशमूलरसाढके ।
आर्द्रकस्वरसप्रस्थे गुडस्य च तुलां पचेत् ॥ २२ ॥
तत्सिद्धं व्योषपत्रैला त्वक्चव्यैः कार्षिकैः पृथक् ।
चूर्णीकृतैः क्षिपेच्छीते मधुनः कुडवं लिहेत् ॥
लेहः पुनर्नवा नाम शोथशूलनिषूदनः ।
कासश्वासारुचिहरो बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ २३ ॥

पुनर्नवा, गिलोय, देवदारु और दशमूलकी समस्त औषधियोंका रस क्वाथ ८ सेर, अदरखका स्वरस १ प्रस्थ और पुराना गुड १०० पल लेवे । सबोंको एकत्रकर यथानियम पाक करे। पकते २ जब गाढा पडजाय तब उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, तेजपात, इलायची, दारचीनी और चव्य इन सबोंको दो दो तोले चूर्ण करके डालदेवे एवं शीतल होजानेपर १६तोले शहद डालकर मिला- देवे । यह पुनर्नवानामक अवलेह सूजन, शूल, खाँसी, श्वास और अरुचिको हरताहै तथा बल, वर्ण और जठराग्निको बढाता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

त्रिनेत्राख्यरस ।

टङ्कणं शोधितं गन्धं मृतशुल्बायसं रसम् ।
दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्यं लघुपुटे पचेत् ॥ २४ ॥
त्रिनेत्राख्यो रसो नाम चासाध्यं श्वयथुं जयेत् ।
माषमात्रं पिबेच्चानु एरण्डशिखरीरसम् ॥ २५ ॥

सुहागा, शुद्धगन्धक, ताँबे और लोहेकी भस्म एवं पारा इन सबको समान भाग लेकर अदरखके रससे एक दिन तक उत्तम प्रकार खरलकरे फिर लघुपुटमें रखकर पकावे । यह त्रिनेत्राख्यनामवाला रस असाध्य सूजनको भी दूर करता है । इसको प्रतिदिन एकएक माशा भक्षण करे और ऊपरसे अण्डकी जडका रस या काथ अथवा चिरचिटेका रस पान करे ॥ २४-२५ ॥

त्रिकट्वादिलौह ।

त्रिकटु त्रिफला दन्ती विडङ्गं कटुका तथा ।
चित्रको देवकाष्ठञ्च त्रिवृद्धारणपिप्पली ॥ २६ ॥
चूर्णान्येतानि तुल्यानि द्विगुणं स्यादयोरजः ।
क्षीरेण पीतमेतच्च परं श्वयथुनाशनम् ॥ २७ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल,हरड, बहेडा, आमला, दन्तीमूल, वायविडङ्ग, कुटकी, चीता, देवदारु, निसोत और गजपीपल इन औषधियोंके चूर्णोंको समानभाग चूर्णसे दुगुना लोहचूर्ण लेवे सबको एकत्र मिलाकर पीसलेवे । इसको तीन रत्ती प्रमाण लेकर दूधके साथ पान करनेसे अतिप्रबल सूजन शीघ्र दूर होय॥

शोथारिलौह ।

अयोरजस्त्र्यूषणयावशूकं चूर्णञ्च पीतं त्रिफलारसेन ।
शोथं निहन्यात्सहसा नरस्य यथाशनिर्वृक्षमुदग्रवेगः२८

लोहेका चूर्ण, सोंठ, मिरच, पीपल और जवाखार ये प्रत्येक औषधि समान भाग किन्तु लोहचूर्ण सब चूर्णके बराबर भाग लेकर एकत्र पीसलेवे । फिर इस चूर्णको ३ रत्ती प्रमाण लेकर त्रिफलेके रसके साथ पान करे तो अत्युग्र सूजन बहुत शीघ्र नष्ट होतीहै।जैसे अत्यन्त वेगवान् वज्रसे वृक्षोंका नाश होताहै।।२८

शोथांकुशरस ।

रसेन्द्रगन्धं मृतलोहताम्रं नागं तथाभ्रं समसंख्यकञ्च ।
निर्गुण्डिकास्फोतकपित्थचिञ्चाः पुनर्नवाश्रीफलकेश-

राजम् ॥ २९ ॥ एषां रसैर्भावितमेकशश्च कोलप्रमाणा वटिका विधेया । शोथज्वरारोचकपाण्डुरोगं सर्वाङ्गशोथं त्रिनिवारयेच्च ॥ पित्तान्वितान्वातभवान्कफोत्थाञ्शोथाङ्कुशो नाम निहन्ति रोगान् ॥ ३० ॥

शुद्धपारा, गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, सीसाभस्म और अभ्रकभस्म ये सब समानभाग लेवे । फिर सबोंको एकत्रितकर सिह्मालू, लाल आकके वृक्ष, कैथ, इमलीकी छाल, पुनर्नवा, बेलकी छाल और काला भाँगरा इनके रसोंमें एक एक बार भावना देकर बेरकी गुठलीके बराबर गोलियाँ बनालेवे । यह शोथांकुशनामकरस सब प्रकारकी सूजन, ज्वर, अरुचि, पाण्डुरोग, सर्व शरीरस्थित शोथ एवं वात, पित्त और कफोत्पन्न रोगोंको शीघ्र नष्ट करताहै २९॥३०

पञ्चामृतरस ।

शुद्धसूतं समादाय गन्धकं भागतः समम् ।
त्रिभागं टङ्कणं देयं विषभागत्रयं तथा ॥ ३१ ॥
भागत्रयं तथा देयं मरिचस्य प्रयत्नतः ।
चूर्णीकृतं जलेनापि पिष्ट्वा रक्तिमितां वटीम् ॥ ३२ ॥
शृङ्गवेररसेनैव भक्षयेद्वटिकामिमाम् ।
जलदोषोद्भवे शोथे घोरेऽत्युग्रे जलोदरे ॥ ३३ ॥
सन्निपातेषु घोरेषु विंशतिश्लैष्मिके गदे ।
ज्वरातीसारसंयुक्ते शोथे चैव गलग्रहे ॥ ३४ ॥
शिरःशूलगदे घोरे नासारोगे सपीनसे ।
पञ्चामृतरसो ह्येष सर्वरोगोपशान्तिकृत् ॥ ३५ ॥

शुद्धपारा और शुद्धगन्धक ये दोनों एक एक भाग एवं सुहागा ३ भाग, शुद्ध मीठातेलिया ३ भाग और मिरच ३ भाग इन सबको एकत्र चूर्णकर जलके साथ खरल करके रत्ती रत्तीभरकी गोलियाँ तैयार करलेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल एक वटी अदरखके रसके साथ भक्षणकरे । यह पञ्चामृतनामवाला रस जलके दोषसे उत्पन्नहुए घोरतर शोथ, अत्युग्र जलोदर, दारुण सन्निपात, बीस प्रकारके कफजन्यरोग, ज्वर, अतीसारयुक्त शोथ, गलेके रोग, शिरःशूल, नासारोग, पीनसप्रभृतिरोगोंमें शीघ्र उपकार करता है । एवं अन्य सर्वप्रकारके रोगोंको शान्त करनेवाला है ॥ ३१–३५ ॥

शोथकालानलरस।

चित्रजं कुटबीजञ्च श्रेयसी सैन्धवं तथा।
पिप्पली देवपुष्पञ्च सजातीफलटङ्कणम् ॥ ३६ ॥
लौहमभ्रं तथा गन्धं पारदेनैव मिश्रितम्।
एतेषां कर्षमात्रेण वटीं गुञ्जामितां शुभाम् ॥ ३७ ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय कोकिलाक्षरसेन तु।
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा॥ ३८ ॥
कासं श्वासं तथा शोथं प्लीहान हन्ति दुस्तरम्।
मेहं मन्दानलं शूलं संग्रहग्रहणीं तथा ॥ ३९ ॥
अवश्यं नाशयेच्छोथं कर्दमं भास्करो यथा।
शोथकालानलो नाम रोगानीकविनाशनः ॥ ४० ॥

चीतेकी जड, इन्द्रजौ, गजपीपल, सेंधानमक, पीपल लौंग, जायफल, सुहागा, लोहा, अभ्रक, शुद्धगन्धक और शुद्धपारा इनको अलग२ दोदो तोले लेवे। फिर सबको एकजगह कूटपीसकर जलके योगसे उत्तमप्रकार खरलकरके एक एक रत्तीकी सुन्दर गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःसमय एकएक गोली तालमखानेके रसके साथ खावे। इससे आठोंप्रकार साध्य व असाध्य ज्वर, खाँसी, सूजन, तिल्ली, दुस्तर प्रमेह, मन्दाग्नि, शूलरोग, संग्रहणी, विशेषकर सूजन एवं अन्यान्य सम्पूर्णरोगोंके समूह निश्चय नाश होते हैं। जिस प्रकार सूर्य्य अपनी तीक्ष्णतर किरणोंके अग्रभागसे कीचको एकदम सुखादेता है। इसका नाम शोथकालानल रस है ॥ ३६-४० ॥

क्षेत्रपालरस।

हिङ्गुलं च विषं ताम्रं लौहं तालकटङ्कणम्।
जीरकं चाहिफेनञ्च समभागं विमर्दयेत् ॥ ४१ ॥
यवार्द्धा वटिका कार्या पथ्यं दुग्धौदनं हितम्।
वारिहीनं ह्यलवणं दातव्यं भिपजां वरैः ॥ ४२ ॥
गुरुशोथमग्निमान्द्यं ग्रहणीमतिदुस्तराम्।
ज्वरं च विषमं जीर्णं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ४३ ॥

सिंगरफका पारा, शुद्ध मीठातेलिया, ताम्रभस्म, लोहभस्म, हरताल, सुहागा, जीरा और अफीम इन सबको समानभाग लेकर एकत्र जलसे खरल करलेवे।

फिर आधे जौकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । तदुपरान्त नित्यप्रति प्रातःकाल एक एक गोली दूधके साथ सेवनकरे । इसके सेवन करनेपर रोगी जबतक आरोग्य न हो तबतक वैद्योंको नमक और जलका त्याग करके प्यास लगनेपर दूध और क्षुधा लगनेपर दूध भातका पथ्य देना चाहिये । यह रस भारी, सूजन, मन्दाग्नि, दुस्तर संग्रहणी, पुराने और विषम ज्वरको बहुत शीघ्र नष्ट करताहै । इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ४१-४२ ॥

कल्पलतावटी ।

अमृतं हिङ्गुलं धूर्त्तबीजं द्वादशरक्तिकम् ।
प्रत्येकमहिफेनञ्च षट्त्रिंशद्रक्तिकं नयेत् ॥ ४४ ॥
पिष्ट्वा दुग्धेन गुञ्जैकां वटीं दुग्धेन पाययेत् ।
दुग्धं पाने भोजने च न देयं लवणं जलम् ॥ ४५ ॥
ग्रहणीं चिरकालीनां हन्ति शोथं सुदुर्जयम् ।
चिरज्वरं पाण्डुरोगं नाम्ना कल्पलता वटी ॥ ४६ ॥

शुद्ध मीठातेलिया, सिंगरफ और धतूरेके बीज ये प्रत्येक बारह बारह रत्ती एवं अफीम ३६ रत्ती लेवे । इन सबको दूधके साथ खूब बारीक पीसकर एक एक रत्तीकी गोलियाँ तैयार करलेवे । फिर प्रतिदिन प्रातःसमय एक गोली दूधके साथ भक्षण करे । इसपर भोजन करनेके लिये दूध, भात और पीनेके लिये दूध देवे । तथा लवण व लवणयुक्त पदार्थ और जल बिल्कुल न देवे । यह कल्पलतानामवाली वटी बहुत पुरानी संग्रहणी, दुर्जय शोथ, जीर्णज्वर और पाण्डुरोगको तत्काल नष्ट करतीहै ॥ ४४-४६ ॥

दुग्धवटी ।

अमृतं सूर्यगुञ्जं स्यादहिफेनं तथैव च ।
पञ्चरक्तिकलौहञ्च षष्टिरक्तिकमभ्रकम् ॥ ४७ ॥
दुग्धैर्गुञ्जाद्वयमिता वटी कार्य्या भिषग्विदा ।
दुग्धानुपानं दुग्धैश्च भोजनं सर्वथा हितम् ॥ ४८ ॥
शोथं नानाविधं हन्ति ग्रहणीं विषमज्वरम् ।
मन्दाग्निं पाण्डुरोगञ्च नाम्ना दुग्धवटी परा ॥
वर्जयेल्लवणं वारि व्याधिनिःशेषतावधि ॥ ४९ ॥

शुद्ध मीठातेलिया १२ रत्ती, अफीम १२ रत्ती, लोहभस्म ५ रत्ती और अभ्रकभस्म ६० रत्ती; इनको दूधके योगसे उत्तम प्रकार खरल करके दो दो

रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह वटी दूधके साथ सेवन करे । इस औषधिके सेवन करते समय दूधके साथ भोजन करना हितकरहै । यह दुग्धवटी अनेक प्रकारकी सूजन, संग्रहणी, विषमज्वर, मन्दाग्नि और पाण्डुरोगादि व्याधियोंको शीघ्र दूर करतीहै । जबतक रोग अच्छे प्रकारसे नष्ट न होजाय तबतक नमक और जलका सर्वथा त्याग करदेना चाहिये ॥ ४७-४९ ॥

अन्यदुग्धवटी ।

अमृतं धूर्त्तबीजञ्च हिङ्गुलं च समं समम् ।
धूर्त्तपत्ररसेनैव मर्दयेद्याममात्रकम् ॥ ५० ॥
मुद्गोपमां वटीं कृत्वा दुग्धेन सह पाययेत् ।
दुग्धेन भोजयेदन्नं वर्जयेल्लवणं जलम् ॥ ५१ ॥
शोथं नानाविधं हन्ति पाण्डुरोगं सकामलम् ।
सेयं दुग्धवटी नाम्ना गोपनीया प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

शुद्ध मीठातेलिया, धतूरेके बीज और हिंगुलोत्पन्न पारा इनको समानांश लेकर धतूरेके पत्तोंके रसमें एक पहरतक अच्छेप्रकार खरल करे । फिर मूंगकी बराबर गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन एक एक वटी दूधक साथ पानकरे । इसपर केवल दूधके साथ अन्न भक्षण करे । नमक, जल और अन्य सर्वप्रकारके अहितकर पदार्थ त्यागदेवे । इससे विविध भाँतिके शोथ, पाण्डु और कामलारोग नाश होते हैं । यह दुग्धवटी सप्रयत्न गुप्तरखने योग्य है ॥ ५०-५२ ॥

क्षीरवटी ।

गृहीत्वा दरदात्कर्षं तदर्द्धं देवपुष्पकम् ।
फणिफेनं विषं जातीफलं धुस्तूरबीजकम् ॥ ५३ ॥
संमर्द्य विजयाद्रावैर्मुद्गमात्रां वटीं चरेत् ।
अनुपानं प्रदातव्यं शोथे क्षीरं भिषग्वरैः ॥ ५४ ॥
ग्रहण्यां विजयाक्काथं पथ्यं दुग्धान्नमेव हि ।
जलं च लवणं चापि वर्जनीयं विशेषतः ॥ ५५ ॥
प्रबलायामुदन्यायां सलिलं नारिकेलजम् ।
पातव्या वटिका चैषा शोथं हन्ति न संशयः ॥
ग्रहणीमतिसारं च ज्वरं जीर्णं निहन्ति च ॥ ५६ ॥

सिंगरफ दो तोले, लौंग, अफीम, शुद्ध मीठा तेलिया, जायफल और धतूरेके बीज ये प्रत्येक एकएक तोला लेवे । इन सबको एकत्र पीसकर भाँगके रसमें उक्तसविधिसे खरल करे, फिर मूँग सरीखी गोलियाँ बनालेवे । सुवैद्य इस वटीको शोथरोगमें दूधके साथ और संग्रहणीमें भाँगके क्काथके साथ देवे । दूध, भात भोजन करना इसपर पथ्य है । जल और लवण सेवन करना बिल्कुल छोडदेवे । अधिक प्यास लगनेपर नारियलका जल पान करावे । यह वटी सूजन, संग्रहणी, अतीसार और जीर्णज्वरको निस्सन्देह नष्ट करती है५३-५६

तक्रवटी ।

रसस्य माषकं ग्राह्यं गन्धकस्य च माषकम् ।
द्विमाषकं रसस्यापि ताम्रं माषचतुष्टयम् ॥ ५७ ॥
तोलकं पिप्पलीचूर्णं मण्डूरस्य च तोलकम् ।
क्काथेन कृष्णजीरस्य भावयेत्सप्तवासरम् ॥ ५८ ॥
वल्लप्रमाणां वटिकां तक्रेण सह पाययेत् ।
तक्रेण भोजनं पानं लवणाम्भोविवर्जितम् ॥
निहन्ति शोथं ग्रहणीं मन्दाग्निं पाण्डुतामपि ॥ ५९ ॥

शुद्धपारा १ माशा, शुद्ध गन्धक १ माशा, शुद्ध मीठातेलिया २ माशे, ताँबेकी भस्म ४ माशे, पीपलका चूर्ण १ तोला और मण्डूरभस्म १ तोला लेवे । फिर सबको एकत्रकर काले जीरेके क्काथमें ७ दिनतक भावना देवे । पश्चात् दो दो रत्तीकी गोलियाँ प्रस्तुत करलेवे इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक बटी मट्ठेके साथ सेवन करावे । मट्ठेके साथ भोजन करे तथा प्यास लगने पर भी मठा ही पीवे । नमक और जलका आरोग्य लाभपर्य्यन्त कदापि सेवन न करे । यह वटी सूजन, संग्रहणी, मन्दाग्नि और पाण्डुरोगको दूर करती है ॥

दधिवटी ।

पक्केष्टकाहारिद्राभ्यामागारधूमकेन च ।
शोधितं सूतकं ग्राह्यं तोलकं तुलया घृतम् ॥ ६० ॥
भृङ्गराजरसैः शुद्धं गन्धकं सूततुल्यकम् ।
हरितालं विषं तुत्थमेलवालुकताम्रकम् ॥ ६१ ॥
खर्परं माक्षिकं कान्तं सर्वमेकत्र कारयेत ।
सर्वार्द्धा कज्जली ग्राह्या भावयेच्च पुनः पुनः ॥ ६२ ॥

सिन्दुवाररसे चैव ज्योतिष्मत्या रसे तथा ।
रसेऽपराजितायाश्च जयन्त्याः स्वरसे तथा ॥ ६३ ॥
रक्तचित्रकमूलोत्थरसे च परिभावयेत् ।
वटिकां सर्षपाकारां योजयेत्कुशलो भिषक् ॥ ६४ ॥
ततः सप्तवटीर्दद्यादुष्णने सह वारिणा ।
अनुपानञ्च कर्त्तव्यं कज्जल्याः कणया सह ॥ ६५ ॥
सन्निपातज्वरे चैव सशोथे ग्रहणीगदे ।
पाण्डुरोगेऽग्निमान्द्ये च विविधे विषमज्वरे ॥ ६६ ॥
शुक्रमज्जागते दद्यान्न तु कासे कदाचन ।
नित्यं दध्ना च भोक्तव्यं सिता नित्यं तथैव च ॥६७॥
स्नातव्यं ह्यभया नित्यं वयोदोषानुसारतः ।
अलवणं वारिहीनं दधि पथ्यं सदा भवेत् ॥ ६८ ॥

पकीहुई ईंट, हल्दी और घरका धुआँ इनसे शुद्ध किया हुआ पारा १ तोला, भाँगरेके रससे शोधित गन्धक १ तोला और घी १ तोला एवं हरताल, शुद्ध मीठातेलिया, तूतिया, एलुआ, ताम्रभस्म, खपरिया, सोनामाखी और कान्तलोह इनको एक एक तोला लेवे। फिर सबको एकत्रितकरके कज्जली बनालेवे। इसमेंसे आधी कज्जली अलग रखदेवे और आधीको सिम्हालु, मालकाँगनी, कोयल, अरणी और लालचीतेकी जड इनके रसोंमें क्रमशः पृथक् पृथक् भावना देवे। तदनन्तर सरसोंके दानेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे सात गोलियोंको गरमजलके साथ सेवनकरे और ऊपरसे रक्खीहुई कज्जलीमें पीपलका चूर्ण मिलाकर अनुपान करे। इस वटीको सन्निपातज्वर, शोथयुक्त संग्रहणी, पाण्डुरोग, मन्दाग्नि, विषमज्वर, वीर्य्य और मज्जागत ज्वरमें देवे। किन्तु खाँसीमें कदापि न देवे। इसपर प्रतिदिन दहीके साथ मिश्री मिलाकर भोजन करे और रोगीको अपनी अवस्था तथा वात-पित्तादि दोषोंकी अनुकूलताको विचारकर नित्य स्नान करना चाहिये। इस औषधिपर नमक और जल अपथ्य है तथा दही सर्वथा पथ्य है ॥ ६०-६८ ॥

शोथभस्मलोह ।

त्रिकटु त्रिफला द्राक्षा पौष्करं सजलं शठी ।
लौहं वचा लवङ्गञ्च शृङ्गी त्वक् शतपुष्पिका ॥ ६९ ॥

विभीतकं विडङ्गश्च धातकीपुष्पमेव च।
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ७० ॥
सर्वद्रव्यसमश्चात्र सुशुद्धं लौहकिट्टकम्।
कुटजस्य रसेनापि म्रक्षयेत्परियत्नतः ॥ ७१ ॥
वेष्टितं जम्बुपत्रेण पङ्केन परिलेपयेत्।
ततो गजपुटे पक्का स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ ७२ ॥
प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा भक्षयेच्छुक्तिमानतः।
निहन्ति सर्वजं शोथं ग्रहणीञ्च विशेषतः ॥ ७३ ॥
उदरेषु च सर्वेषु शोथेषु च विधानतः।
विविधा व्याधयश्चान्ये सेवनाद्यान्ति साध्यताम् ७४

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, दाख, पोहकरमूल, सुगन्धवाला, कचूर, लोहा, वच, लौंग, काकडासिंगी, दारचीनी, सौंफ, बहेडा, वायविडङ्ग और धायके फूल इन सबको समानभाग लेकर महीन चूर्ण करलेवे। फिर इस सब चूर्णके समानभाग शुद्ध लोहेके मैलको लेवे। और उसको प्रथम स्वच्छपात्रमें रखकर कूडेकी छालके रससे अच्छेप्रकार खरलकरके गोलासा बनालेवे। पश्चात् उक्त गोलेको जामुनके पत्तोंसे लपेटकर चिकनी मिट्टीका लेप करके गजपुटमें पकावे। जब पककर स्वाङ्ग शीतल होजाय तब निकालले और चूर्ण करके पूर्वोक्त चूर्णमें मिलादेवे। तदनन्तर प्रतिदिन प्रातःकाल शुद्ध होकर इसमेंसे दो दो तोले प्रमाण खाय। यह लोह सर्वप्रकारके शोथ और संग्रहणीको नष्ट करता है। विशेषकर सब उदररोग सर्व शोथ और अन्यान्य दुस्तर अनेकोंरोग इसका सेवन करतेही नाश होजाते हैं ॥ ६९-७४ ॥

सुधानिधि।

धान्यकं बालकं मुस्तं विश्वं सिन्धुं समांशकम्।
मण्डूरं द्विगुणं दत्त्वा भावयेत्तु चतुर्दश ॥ ७५ ॥
गोमूत्रं केशराजश्च शोथघ्नी भृङ्गराजकः।
निर्गुण्डी भेकपर्णी च रसैरेषां विभाव्य च ॥ ७६ ॥
निष्कं चूर्णं प्रयुञ्जीत तक्रेण सह बुद्धिमान्।
केशराजरसैर्वापि भोजनं लवणं विना ॥ ७७ ॥
तक्रेण भोजयेदन्नं पाने तक्रञ्च दापयेत्।

कामलाज्वरशोथघ्नो वह्निसन्दीपनः परः ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नः सर्वव्याधिविनाशनः ॥ ७८ ॥

धनियाँ, सुगन्धवाला, नागरमोथा, सोंठ और सेंधानमक ये प्रत्येक समान भाग और लोहमण्डूर सब औषधियोंसे दुगुना लेकर सबोंको एकत्र चूर्ण करलेवे । फिर इस चूर्णको गोमूत्र, कालाभाँगरा, पुनर्नवा, भाँगरा, निर्गुण्डी और मण्डूकपर्णी इनके रसमें यथाक्रम चौदहवार भावना देवे । पश्चात् धूपमें सुखाकर उत्तम प्रकार खरल करलेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल इस चूर्णको चार माशे परिमाण लेकर मठ्ठेके साथ अथवा भाँगरेके रसके साथ सेवन करे । इसपर नमक और जलका परित्यागकर तक्रके साथ भोजन करे और तृषा लगनेपर भी तक्रही पान करे । यह सुधानिधि रस कामला, ज्वर, सूजन, संग्रहणी, पाण्डुरोग और सर्वप्रकारके विकारोंको नष्ट करनेवाला एवं अग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाला है ॥ ७५-७८ ॥

अग्निमुखमण्डूर ।

पलद्वादशमण्डूरं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ।
पञ्च कोलं देवदारु मुस्तं व्योषं फलत्रयम् ॥ ७९ ॥
विडङ्गं पलमात्रन्तु पाकान्ते चूर्णितं क्षिपेत् ।
पाययेदक्षमात्रन्तु तक्रेण सह बुद्धिमान् ॥ ८० ॥
असाध्यं श्वयथुं हन्ति पाण्डुरोगं चिरोद्भवम् ।
स्वयमग्निमुखं नाम सर्पिःक्षौद्रेण पाययेत् ॥ ८१ ॥

लोहेके मण्डूर (मैल) को ४८ तोले लेकर अठगुने गोमूत्रमें पकावे । जब पकते पकते पाक गाढा होजाय तब उसमें पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, देवदारु, नागरमोथा, त्रिकुटा, त्रिफला और वायविडङ्ग इनके चार चार तोले चूर्णको डालकर अच्छे प्रकार मिलादेवे । इसमेंसे प्रतिदिन दो दो तोले लेकर घी और शहदमें मिलाकर चाटे और ऊपरसे तक्रपान करे । इसप्रकार नियम बद्ध होकर इसका सेवन करे तो यह अग्निमुखनामक मण्डूर असाध्य सूजन और चिरकालीन पाण्डुरोगको शीघ्र दूर करदेता है ॥ ७९-८१ ॥

शोथारिमण्डूर ।

गोमूत्रशुद्धमण्डूरं निर्गुण्डीरसभावितम् ।
मानकार्द्रककन्दानां रसेष्वपि च भावयेत् ॥ ८२ ॥

त्रिफला व्योषचव्यानां चूर्णं कर्षद्वयं पृथक् ।
चूर्णाद्द्विगुणमण्डूरं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥ ८३ ॥
सिद्धे चूर्णं क्षिपेत्पीते मधुनश्च पलद्वयम् ।
निहन्ति सर्वजं शोथं सर्वाङ्गोत्थं न संशयः ॥ ८४ ॥

गोमूत्रमें शुद्धकियेहुए मण्डूरको ५६ तोले लेकर पहले निर्गुण्डीके रसमें भावना देवे । फिर मानकन्द, अदरख और जिमीकन्द इनके रसोंमें क्रमशः भावना देकर अठगुने गोमूत्रमें पकावे । जब पाक पकते पकते गाढा होजाय तब उसमें त्रिफला, त्रिकुटा और चव्य इन औषधियोंके चार चार तोले चूर्णको डालदेवे एवं शीतल होनेपर ८ तोले शहद डालकर सबको एकसएक करलेवे । इसको प्रतिदिन उपयुक्तमात्रासे सेवन करे तो यह सर्वशरीरगत शोथ एवं अन्य सर्वप्रकारके शोथको सन्देह रहित दूर करता है ॥ ८२-८४ ॥

तक्रमण्डूर ।

पलार्द्धं विजयाचूर्णं पलार्द्धं शुद्धलौहजम् ।
वंशकालीयकारिष्टं विषताडकमूलकम् ॥ ८५ ॥
महासमुद्रजश्चैव प्रदेयं कार्षिकं तथा ।
तेजपत्रं लवङ्गैला शतपुष्पा मधूरिका ॥ ८६ ॥
मरिचश्चामृता यष्टी जातीनागरसिन्धुजम् ।
सर्वं तोलमितं दद्याद्व्याधिविद्भिषजाम्वरः ॥ ८७ ॥
वर्षाभूस्वरसेनैव बदरास्थिप्रमाणतः ।
केशराजानुपानेन तक्रेणैव च दापयेत् ॥ ८८ ॥
तक्रेण दापयेत्पथ्यं तक्रं भुक्तं निरन्तरम् ।
लवणेन विना तक्रं शोथघ्नं परमौषधम् ॥ ८९ ॥

भाँगका चूर्ण २ तोले, शुद्ध लोहमण्डूर २ तोले, एवं बाँसकी जड, काली अगर, नीमकी छाल, बीजताडककी जड और समुद्रफेन ये प्रत्येक दो दो तोले, तजपात, लौङ्ग, इलायची, सोया, सोंफ, मिरच, गिलोय, मुलैठी, जायफल, सोंठ और सैंधानमक ये सब एक एक तोला लेवे । तदनन्तर सुयोग्य चिकित्सक इन सब द्रव्योंको एकत्र कूटपीसकर चूर्ण करे और उस चूर्णको पुनर्नवेके रसमें अच्छेप्रकार खरल करके बेरकी गुठलीके बराबर गोलियाँ बनालेवे । इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःसमय एक वटी भाँगरेके रस अथवा मट्ठेके साथ पानकरे । इसका सेवन करनेपरः मट्ठेके साथ भोजन करे और खान पानमें निरन्तर

लवणरहित तक्रका सेवन करना विशेष हितकर है । शोथरोगको नष्टकरनेके लिये यह परमोत्कृष्ट औषधि है ॥ ८५-८९ ॥

रसाभ्रमण्डूर ।

गन्धकाम्बरसूतानां प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ।
संशोध्य चूर्णितं कृत्वा मण्डूरं मुष्टिकद्वयम् ॥ ९० ॥
प्रसृतञ्च हरीतक्याः पाषाणजतुनः पिचुम् ।
तोलकं कान्तलौहस्य सर्वं रौद्रे विभावयेत् ॥ ९१ ॥
भृङ्गराजरसप्रस्थे केशराजरसे तथा ।
निर्गुण्डीमानकन्दानामार्द्रकस्य रसेष्वपि ॥ ९२ ॥
त्रिकटुत्रिफलाचव्यमुस्तकानां पृथक् पृथक् ।
कर्षं कर्षं क्षिपेच्चूर्णं मर्दयेन्मधुसर्पिषा ॥ ९३ ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय मात्रया युक्तितः पुमान् ।
निहन्ति सर्वजं शोथं सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रयम् ॥ ९४ ॥
कासश्वासतृषादाहमोहच्छर्दियुतं तथा ।
अम्लपित्तं निहन्त्येव शूलमष्टाविधं जयेत् ॥ ९५ ॥
अग्निवृद्धिकरं वृष्यं हृद्यं वातानुलोमनम् ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च श्लेष्मकुष्ठारुचिज्वरम् ॥
प्लीहगुल्मोदरं हन्ति ग्रहणीं सप्रवाहिकाम् ॥ ९६ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक और अभ्रकभस्म इनको दो दो तोले लेकर पीसलेवे। फिर इसमें गोमूत्रमें शुद्धकिया लोहमण्डूर ८ तोले, हरड ८ तोले, शिलाजीत दो तोले और कान्तलोहकी भस्म एक तोला मिलाकर सबको एकत्र पीसलेवे। पुनः इस चूर्णको भाँगरेके एक प्रस्थ रस और केशराजके एक प्रस्थ रसमें भावन देकर धूपमें सुखालेवे। इसी क्रमसे द्वितीय बार निर्गुण्डी, मानकन्द, जिमीकन्द और अदरखके रसोंमें यथाक्रम भावना देकर धूपमें सुखावे । पश्चात् इसमें सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, चव्य और नागरमोथा इनके दो दो तोले चूर्णको डालकर सबोंको एकत्रित करके खूब बारीक पीसलेवे। तदुपरान्त नित्य-प्रति प्रातःसमय इसकी उपयोगीमात्राको शहद और घृतमें मिलाकर भक्षण करे। यह औषधि सब तरहके शोथ, सर्वशरीरमें अथवा एक अङ्गमें स्थित शोथ, खाँसी, श्वास, तृषा, दाह, मोह, वमनयुक्त, अम्लपित्त ८ प्रकारके शूल,

कामला, पाण्डुरोग, कफोत्पन्नरोग, कुष्ठ, अरुचि, ज्वर, तिल्ली गुल्म, उदर-रोग, संग्रहणी और प्रवाहिका प्रभृति सम्पूर्ण रोगोंको भस्मीभूत करती है। तथा जठराग्निकी वृद्धि करनेवाली, हृदयको हितकारी, वायुको अनुलोमन करनेवाली और अत्यन्त पुष्टिकारी है ॥ ९०-९६ ॥

पुनर्नवादि गुग्गुलु।

पुनर्नवां दार्वभयां गुडूचीं पिबेत्समूत्रां महिषाक्षयुक्ताम्।
त्वग्दोषशोथोदरपाण्डुरोगस्थौल्यप्रसेकोर्द्ध्वकफामयेषु ॥९७॥

पुनर्नवा, देवदारु, हरड और गिलोय ये प्रत्येक समानभाग और इन सबोंके बराबर भाग गूगल लेकर एकत्र सूक्ष्म चूर्ण करलेवें। फिर इस चूर्णको अण्डीके तेलमें खरलकरके गोमूत्रके साथ पान करे। यह गूगल त्वचासम्बन्धी रोग, सूजन, उदररोग, पाण्डुता, स्थूलता, प्रसेक और कफजनित समस्त विकारोंमें अधिकतर उपयोगी है ॥ ९७ ॥

दशमूलहरीतकी।

दशमूलकषायस्य कंसे पथ्या शतं पचेत्।
तुलां गुडाद्धने दद्यात व्योषक्षारं चतुष्पलम् ॥ ९८ ॥
त्रिसुगन्धं सुवर्णांशं प्रस्थार्द्धं मधुनो हिमे।
दशमूलहरीतक्याः शोथान्हन्युः सुदारुणान् ॥ ९९ ॥
ज्वरारोचकगुल्मार्शोमेहपाण्डूदरामयान्।
प्रत्येकमेव कर्षांशं त्रिसुगन्धे मितो भवेत् ॥ १०० ॥
कंसहरीतकी चैषा चरके पठ्यतेऽन्यथा।
एतन्मानेन तुल्यत्वं तेन तत्रापि वर्ण्यते ॥ १०१ ॥

दशमूलके एक आढक परिमाण क्काथमें १०० हरडोंको पोटलीमें बांधकर पकावे। पकते पकते जब चौथाई भाग शेष रहजाय तब उतारकर छानले और पोटलीमेंसे खोलकर हरडोंकी गुठली निकालडाले। फिर इस क्काथमें १०० पल पुराना गुड एवं पूर्वोक्त हरडें डालकर पकावे। पकनेपर जब पाक गाढा पडजाय तब उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार ये प्रत्येक आठ आठ तोले तथा दारचीनी, इलायची और तेजपात ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले परिमाण लेवे और सबको एकत्र कूट पीसकर डालदेवे और जब पाक शीतल हो जाय तब ३२ तोले शहद डालकर अच्छेप्रकार मिलादेवे। यह दशमूलहरीतकी कठिनतम शोथ, ज्वर, अरुचि, गुल्म, अर्श, प्रमेह, पाण्डु और उदरसम्बन्धी

सब विकारोंको नाश करनेवाली है। चरकमें इसका 'कंसहरीतकी' ऐसा पाठ है। वहाँभी इसी मानके समान औषधियाँ लेनी चाहियें ॥ ९८-१०१ ॥

शुण्ठीघृत।

विश्वौषधस्य कल्केन दशमूलजले श्रृतम्।
घृतं निहन्याच्छ्वयथुं ग्रहणीं पाण्डुतामयम् ॥ १०२ ॥

सोंठके कल्कद्वारा दशमूलके काथमें घीको सिद्धकर सेवन करनेसे सूजन, संग्रहणी और पाण्डुरोग दूर होते हैं ॥ १०२ ॥

स्वल्प-पुनर्नवाद्यघृत।

पुनर्नवाक्काथकल्कसिद्धं शोथहरं घृतम् ॥

पुनर्नवेके क्काथ और कल्कद्वारा सिद्ध किया हुआ घृत शोथको हरताहै ॥

पुनर्नवाद्यघृत।

पुनर्नवातुलां गृह्य जलद्रोणे विपाचयेत्।
चतुर्भागावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १०३ ॥
भूनिम्बविजयाशुण्ठीशोथघ्नामरदारुभिः।
कासं श्वासं ज्वरं हन्ति शोथञ्चापि सुदारुणम् ॥ १०४ ॥

सौपल विषखपरेको लेकर ३२ सेर जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रहजाय तब उतारकर छानले। फिर उससें १ प्रस्थ घृत एवं चिरायता, भाँग, सोंठ, पुनर्नवा और देवदारु इनके समान भागसे मिलेहुए आधसेर चूर्णको डालकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे। इस घृतका सेवन करनेसे खाँसी, श्वास, ज्वर और दारुण शोथ नष्ट होताहै ॥ १०३-१०४ ॥

द्वितीय-पुनर्नवाद्यघृत।

पुनर्नवाचित्रकदेवदारुपञ्चोषणक्षारहरीतकीनाम्।
कल्केन पक्कं दशमूलतोये घृतोत्तमं शोथनिषूदनञ्च ॥ ५ ॥

पुनर्नवा, चीतेकी जड, देवदारु, पञ्चोषण (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, और सोंठ), जवाखार, हरड इनके कल्कको समानभाग डालकर दशमूलके काढेमें गौके उत्तम घृतको पकावे। यह घृत शोथका नाश करनेवालाहै ॥५॥

माणकघृत।

माणकक्काथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
एकजं द्वन्द्वजं शोथं त्रिदोषजमपोहति ॥ ६ ॥

मानकन्दके क्काथ और कल्कके द्वारा १ प्रस्थ घृतको उत्तम रीतिसे पकावे। यह घृत एक दोषज,द्विदोषज और सान्निपातिक शोथको शीघ्र दूर करता है॥

चित्रकाद्यघृत ।

सचित्रका धान्ययमानिपाठाः सदीप्यकत्र्यूषणवेतसाम्लः। बिल्वात्फलं दाडिमयावशूकं सपिप्पलीमूलमथापि चव्यम् ॥ ७॥ पिष्टाक्षमात्राणि जलाढकेन पक्त्वा घृतप्रस्थमथोपयुक्तम्। शोथश्च गुल्मानि च मूत्रकृच्छ्रं निहन्ति वह्निश्च करोति दीप्तम् ॥ ८ ॥

चीतेकी जड, धनियाँ, अजवायन, पाढ, जीरा, सोंठ, पीपल, मिरच, अम्लबेंत, बेलगिरी, अनार, जवाखार, पीपलामूल और चव्य इनको दो दो तोले एवं घृत १ प्रस्थ लेवे। फिर सब औषधोंको एकत्र पीसकर एक आढक जलमें डालकर यथाविधि घृतको सिद्धकरे। इस घृतको उपयुक्त मात्रासे सेवन करे तो यह सूजन, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र एवं अन्यान्य विविधप्रकारके रोगोंको नाश करता है। तथा अग्निको अत्यन्त प्रदीप्त करता है॥ ७॥ ८॥

शुष्कमूलकाद्यतैल ।

शुष्कमूलकवर्षाभूदारुरास्नामहौषधैः ।
पक्कमभ्यञ्जनात्तैलं सशूलं श्वयथुं जयेत् ॥ ९ ॥

सूखीमूली, पुनर्नवा, देवदारु, रायसन और सोंठ इन औषधियोंके द्वारा तिलके तेलको पकाकर मालिश करनेसे शूलसहित सूजन दूर होतीहै ॥ ९ ॥

बृहच्छुष्कमूलकाद्यतैल ।

मूलकं दशमूलञ्च कणामूलं पुनर्नवा ।
प्रत्येकं प्रस्थमाहृत्य वारिण्यष्टगुणे पचेत् ॥ ११० ॥
तेन पादावशेषेण तैलस्याढ्राढकं पचेत् ।
दापयेत्तैलतुल्यञ्च गोमूत्रं कुशलो भिषक् ॥ ११ ॥
मूलकं चामृता शुण्ठी पटोलं चपला बला ।
पाठा पुनर्नवामूलं बालोशीरञ्च शिग्रुजम् ॥ १२ ॥
निर्गुण्डीन्द्राशनं श्यामा करञ्जं वासकं तथा ।
कणा हरीतकी चैव वचा पुष्करमूलकम् ॥ १३ ॥

रास्ना विडङ्गं चव्यञ्च द्वे हरिद्रे च धान्यकम्।
द्विक्षारं सैन्धवञ्चैव देवदारु सपद्मकम् ॥ १४ ॥
शुठी करिकणा बिल्वं मञ्जिष्ठा च ततः क्रमात्।
प्रत्येकार्द्धपलञ्चैषां पेषयित्वा विनिःक्षिपेत् ॥ १५ ॥
अभ्यङ्गेनास्य तैलस्य ये गुणास्तांस्ततः शृणु।
नानाशोथा विनश्यन्ति वातपित्तकफोद्भवाः ॥ १६ ॥
मलोद्भवाश्च ये केचिद्विशेषेण जलाश्रयाः।
अवश्यं निर्जरा देहा भविष्यन्ति न संशयः ॥ १७ ॥

सूखीमूली, दशमूल, पीपलामूल और पुनर्नवा ये प्रत्येक औषधि एक एक प्रस्थ (६४ तोले) लेकर अठगुने जलमें अलग २ पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस काथमें तिलका तेल १ आढक (८ सेर) गोमूत्र १ आढक एवं सूखीमूली, गिलोय, सोंठ, परबल, पीपलामूल, खिरैंटी, पाढ, पुनर्नवामूल, सुगन्धवाला, खस, सहिंजनके बीज, निर्गुण्डी, भाँग, सारिवा, करञ्जुआ, अडूसा, पीपल, हरड, बच, पोहकरमूल, रायसन, वायविडङ्ग, चव्य, हल्दी, दारुहल्दी, धनियाँ, जवाखार, सज्जी, सेंधानमक, देवदारु, पद्माख, कचूर, गजपीपल, बेलकी छाल, और मंजीठ इन औषधियोंके दो दो तोले भागको एकत्र बारीक पीस-कर डालदेवे और फिर उत्तमप्रकार तेलको सिद्धकरे। इस तेलके जो गुण हैं उनको कहता हूँ सुनो। शरीरपर इसकी मालिश करनेसे अथवा नस्य देनेसे अनेक प्रकारसे उत्पन्न हुए शोथ, जैसे कि वातज, पित्तज और कफजशोथ, मलोत्पन्नशोथ विशेषकर जलदोषोत्पन्नशोथ अवश्य नाश होते हैं। इसके प्रभावसे रोगीजन जरारहित अर्थात् देवसमान तरुणशरीरवाले होजाते हैं॥

अन्य-बृहच्छुष्कमूलाद्यतैल।

शुष्कमूलरसप्रस्थं शिग्रुधुस्तूरयोस्तथा।
सिन्दुवाररसप्रस्थं दशमूलरसं तथा ॥ १८ ॥
पारिभद्ररसप्रस्थं वर्षाभूप्रस्थमेव च।
करञ्जस्य रसप्रस्थं प्रस्थं वरुणकस्य च ॥ १९ ॥
तैलप्रस्थं समादाय भिषग्यत्नाद्विपाचयेत्।
कल्कैरर्द्धपलैरेतैः शुण्ठीमरिचसैन्धवैः ॥ १२० ॥

पुनर्नवाकाकमाचीशैलुत्वक्पिप्पलीयुगैः ।
कट्फलं पौष्करं शृङ्गी रास्ना यासश्च कारवी ॥ २१ ॥
हरिद्राद्वयपूतीकद्वयानन्तायुगैः पृथक् ।
तत्साधु सिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत् ॥२२॥
वातश्लेष्मकृतं दोषं सन्निपातभवं तथा ।
निहन्ति सर्वजं शोथमुदरश्वासनाशनम् ॥ २३ ॥
विरुद्धभेषजभवं शोथमाशु व्यपोहति ।
व्रणशोथाक्षिशूलघ्नं कामलापाण्डुनाशनम् ॥ २४ ॥
ये चान्ये व्याधयः सन्ति श्लेष्मजाः सन्निपातजाः ।
तान्सर्वान्नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः ॥ २५ ॥

सूखीमूलीका रस १ प्रस्थ (तोले६४), सहिंजनेका रस १ प्रस्थ, धतूरेका रस १ प्रस्थ, सिह्मालूका रस १ प्रस्थ, दशमूलकी सब औषधोंका काथ १ प्रस्थ, फरहदका रस १ प्रस्थ,पुनर्नवेका रस १ प्रस्थ,करञ्जुएकी छालका रस १ प्रस्थ, बरनाकी छालका रस १ प्रस्थ और तिलका तेल १ प्रस्थ लेवे । फिर सबको एकत्रकर विधिपूर्वक पकावे । पकते समय उसमें-सोंठ, मिरच, सैंधानमक, पुनर्नवा, मकोय, लसौडेकी छाल, पीपल, गजपीपल, कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी, रास्ना, जवासा, कालाजीरा, हल्दी, दारुहल्दी, करंजुआ, काँटाकरञ्ज, अनन्तमूल और सारिवा इन औषधियोंके दो दो तोले कल्कको डालकर तेलको सिद्धकरे। जब उत्तमप्रकारसे पककर तैयार होजाय तब किसी उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे । इस तेलको मर्दन करनेसे वात कफजन्य शोथ, सन्निपातजन्यशोथ और अन्य सर्व प्रकारके शोथ एवं उदररोग, श्वास और प्रकृतिविरुद्ध औषध व्यवहार करनेसे उत्पन्न हुआ शोथ तत्काल नाश होता है । तथा व्रणजन्यशोथ, नेत्रशूल, कामला पाण्डुरोग, कफोत्पन्नरोग, त्रिदोषजरोग एवं अन्यान्य अनेकोंप्रकारकी जो अतिदारुण व्याधियें हैं उन सबोंको यह तेल इस प्रकार नाश करदेता है, जिसप्रकार सूर्योदयके होतेही अन्धकारका समूह नष्ट होजाता है ॥ ११८-२५ ॥

शोथशार्दूलतैल ।

धुस्तूरो दशमूलश्च सिन्दुवारो जयन्तिका ।
पुनर्नवा करञ्जश्च षट्पलानि प्रगृह्य च ॥ २६ ॥

जलद्रोणे विपक्कव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ।
प्रस्थश्च कटुतैलस्य कल्कान्येतानि दापयेत् ॥ २७ ॥
रास्ना पुनर्नवा दारु मूलकं नागरं कणा ।
सिद्धं तैलवरं ह्येतन्नाशयत्यस्य सेवनात् ॥ २८ ॥
शोथं सुदारुणं घोरं वातपित्तकफोद्भवम् ।
असाध्यं सर्वदेहस्थं सन्निपातसमुद्भवम् ॥ २९ ॥
श्लीपदं च ज्वरं पाण्डुं कृमिदोषं विनाशयेत् ।
क्लिन्नव्रणप्रशमनं नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥
शोथशार्दूलकं तैलं बलवर्णप्रसादनम् ॥ १३० ॥

धतूरा, दशमूल, सिह्वाल्ल, जयन्ती, पुनर्नवा, करंजुआ इन सबको छः छः पल लेकर १ द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह-जाय तब उतारकर छान लेवे। फिर उस काथमें सरसोंका तेल १ प्रस्थ और कल्कके लिये रायसन, विषखपरा, देवदारु, सूखीमूली, सोंठ एवं पीपल इन औषधियोंको समान भाग मिश्रित आधसेर डालदेवे। पश्चात् यथाविधि तेलको सिद्ध करे। इस तेलको सेवन करनेसे वात, पित्त और कफोत्पन्न अतिदारुण तथा घोरतर शोथ, सर्वशरीरगत सन्निपातजन्य असाध्य शोथ, श्लीपदरोग, ज्वर, पाण्डु, कृमिरोग, तरलव्रण, नाडीगत दुष्टव्रण इत्यादि रोग शीघ्र नाश होते हैं। यह शोथशार्दूलनासक तेल बल-वर्णको उज्ज्वल बनाता है ॥२६-१३०

पुनर्नवाद्यतैल ।

पुनर्नवा पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
तेन पादावशेषेण तैलप्रस्थं पचेद्भिषक् ॥ ३१ ॥
त्रिकटु त्रिफला शृङ्गी धान्यकं कट्फलं तथा ।
शठी दार्वी प्रियङ्गुश्च पद्मकाष्ठं हरेणुकम् ॥ ३२ ॥
कुष्ठं पुनर्नवा चैव यमानी कारवी तथा ।
एला त्वचं सलोध्रश्च पत्रकं नागकेशरम् ॥ ३३ ॥
वचा ग्रन्थिकमूलञ्च चव्यं चित्रकमूलकम् ।
शतपुष्पाम्बु मञ्जिष्ठा रास्ना यासस्तथैव च ॥ ३४ ॥
एतेषां कार्षिकैर्भागैः पेषयित्वा विनिःक्षिपेत् ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च हलीमकमथारुचिम् ॥ ३५ ॥

रक्तपित्तं महाघोरं कासं श्वासं भगन्दरम् ।
प्लीहानमुदरञ्चैव जीर्णज्वरमपोहति ॥
तैलं पुनर्नवाख्यातं सर्वान्व्याधीन्व्यपोहति ॥ ३६ ॥

पुनर्नवा १०० पल लेकर ३२ सेर जलमें पकावे । जब चतुर्थांश जल शेष रहजाय तब उतारकर छानले । फिर उस काढेमें तिलका तेल ६४ तोले, एवं सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, काकडासिंगी, धनियाँ, कायफल, कचूर, दारुहल्दी, फूलप्रियंगु, पद्माख, मटर, कूठ, पुनर्नवा, अजवायन, काला-जीरा, इलायची, दारचीनी, लोध, तेजपात, नागकेशर, वच, पीपलामूल, चव्य, चीतेकी जड, सोया, सुगन्धवाला, मंजीठ, रास्ना और जवासा इनको अलग अलग दो दो तोले लेकर एकत्र चूर्ण करके डालदेवे । फिर मन्द मन्द अग्निद्वारा अच्छेप्रकार तेलको सिद्धकर उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे । यह तेल कामला, पाण्डु, हलीमक, अरुचि, रक्तपित्त, अत्यन्त घोर श्वास, खाँसी, भग-न्दर, प्लीहा, उदररोग, पुराना ज्वर एवं अन्य विविधभाँतिके समस्त विका-रोंको बहुत शीघ्र दूर करता है ॥ १३१--३६ ॥

शैलेयाद्यतैल ।

शैलेयकुष्ठागुरुदारुकौन्तीत्वक्पद्मकैलाम्बुपलाशमुस्तैः ।
प्रियङ्गुस्थौणेयकहेममांसीतालीशपत्रप्लवपत्रधान्यैः ॥ ३७ ॥
श्रीवेष्टकध्यामकपिप्पलीभिःपृक्कानखैर्वापि यथोपलाभम् ।
वातान्वितेऽभ्यङ्गमुशंति तैलं सिद्धं सुपिष्टैरपिचप्रदेहः॥३८॥

भूरिछरीला, कूठ, अगर, देवदारु, रेणुका, दारचीनी, पद्माख, इलायची, सुगन्धवाला, कचूर, नागरमोथा, फूलप्रियंगु, गठिवन, नागकेशर, बालछड, तालीशपत्र, केवटी मोथा, तेजपात, धनियाँ, धूपसरल, रोहिषतृण, पीपल, असवरग और नखीसुगन्धद्रव्य इन औषधियोंमेंसे जितनी प्राप्त होसके उन औषधोंके कल्कद्वारा यथाविधि तिलके तेलको सिद्धकरे।इत तेलको मर्दन करनेसे वा इन्हीं औषधियोंको तेलमें पीसकर शरीरपर लेप करनेसे वातजन्य सूजन नष्ट होय ॥

समुद्रशोषणतैल ।

निर्गुण्डी दशमूली च धुस्तूरककरञ्जकौ ।
शुष्कमूलजयाविश्वरास्नादारुपुनर्नवाः ॥ ३९ ॥
एषाञ्च प्रकृते क्वाथे क्वाथे शाखोटजे तथा ।
कटुतैलं पचेत्प्रस्थं सैन्धवं कल्कपादिकम् ॥ १४० ॥

सन्निपातोद्भवाः शोथा ये चान्ये श्लेष्मपित्तजाः ।
शिरःकर्णगता ये च श्लीपदानि तथैव च ॥ ४१ ॥
गलगण्डं ब्रध्नवृद्धिं शोथं सर्वाङ्गसम्भवम् ।
कर्णशोथं दन्तशोथं हनुमूलास्थिसम्भवम् ॥ ४२ ॥
एतान्सर्वान्निहन्त्याशु वाडवाग्निरिवाम्बुदम् ।
समुद्रशोषणं नाम तैलं केनापि कीर्त्तितम् ॥ ४३ ॥

निर्गुण्डी, दशमूलकी सब औषधें, धतूरा, करंजुआ, सूखीमूली, जयन्ती, सोंठ, रास्ना, देवदारु और पुनर्नवा इन औषाधियोंके ८ सेर क्राथमें और सहोरावृक्षकी छालके ८ सेर क्राथमें सरसोंका तेल एक प्रस्थ और सैंधानमक दो सेर डालकर उत्तमप्रकार तेलको सिद्धकरे । इस तेलकी मालिश करनेसे सन्निपातजन्य शोथ, एवं कफपित्तकी, सूजन, शिरकी सूजन, कर्णशोथ, श्लीपद, गलगण्ड, अण्डवृद्धि, सर्वशरीरजन्य शोथ, दन्तशोथ, ठोडीकी सूजन और अस्थिकी सूजन इत्यादि समस्त विकार इस प्रकार तत्काल नाश होते हैं जिस प्रकार वाडवाग्नि समुद्रके जलको सुखादेती है । इसका नाम समुद्रशोषणतेल है । ऐसा किसी ऋषिने कहा है ॥ ३९-४३ ॥

पुनर्नवाद्यरिष्ट ।

पुनर्नवे द्वे च बले सपाठे वासा गुडूची सह चित्रकेण । निदिग्धिका च त्रिपलानि पक्त्वा द्रोणावशेषे सलिले ततस्तु ॥ ४४ ॥ पूत्वा रसं द्वे च गुडात्पुराणात्तुले मधु प्रस्थयुतं सुशीतम् । मासं निदध्याद्धृतभाजनस्थं पर्णे यवानां परतश्च मासात् ॥ ४५ ॥ चूर्णीकृतैरर्द्धपलांशिकैस्तं हेमत्वगेलामरिचाम्बुपत्रैः । गन्धान्वितं क्षौद्रघृतप्रदिग्धं जीर्णे पिबेद्व्याधिबलं समीक्ष्य ॥ ४६ ॥ हृत्पाण्डुरोगं श्वयथुं प्रवृद्धं प्लीहज्वरारोचकमेहगुल्मान् । भगन्दरं षट् जठराणि कासं श्वासं ग्रहण्यामयकुष्ठकण्डूः ॥ ४७ ॥ शाखानिलं बद्धपुरीषताञ्च हिक्कां किलासञ्च हलीमकं च । क्षिप्रं जयेद्वर्णबलायुरोजस्तेजोऽन्वितो मांसरसान्नभोजी ॥ ४८ ॥

श्वेत पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, खिरैंटी, कंघी, पाढ, अडूसा, गिलोय, चीतेकी जड और कटेरी ये प्रत्येक औषधि बारह बारह तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब चौथाईभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस काथमें २०० पल पुराना गुड और एक प्रस्थ शहद डालकर मृत्तिकाके घृतसे चिकने बासनमें भरदेवे और उस बर्त्तनके मुखको अच्छेप्रकार बाँधकर जौकी राशिमें गाडदेवे। फिर एक महीनेके बाद उसको निकाले और उसमें नागकेशर, दारचीनी, इलायची, कालीमिरच, सुगन्धवाला, पत्रज इन औषधियोंके दो दो तोले चूर्णको बारीक पीसकर मिलावे एवं घृत और शहद एक एक प्रस्थ मिलादेवे। इस अरिष्टको भोजनके पचजानेपर रोगका बलाबल विचारकर उपयुक्तमात्रासे सेवन करे तो हृदयरोग, पाण्डुरोग, अत्यन्त बढीहुई सूजन, तिल्ली, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, छः प्रकारके उदररोग, खाँसी, श्वास, संग्रहणी, कोठ, खुजली, शाखाश्रित वायु, मलबद्धता, हिचकी, किलास रोग, हलीमक और अनेकों रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। तथा बल, रूप, आयु और ओजकी वृद्धि होती है एवं निर्मल कान्ति उत्पन्न होती है। इसपर मांसरसके साथ अन्न भोजन करना पथ्य है॥ ४४-४८॥

शोथमें पथ्य।

संशोधनं लङ्घनमस्रमोक्षः स्वेदः प्रलेपः परिषेचनञ्च। पुरातनाः शालियवाः कुलत्थाः मुद्गाश्च गोधापि च शल्लकोऽपि॥ ४९॥ भुजङ्गभुक् तित्तिरिताम्रचूडलावादयो जाङ्गलविष्किराश्च। कूर्म्मोऽपि शृङ्गी प्रपुराणसर्पिस्तक्रं सुरामाक्षिकमासवञ्च॥ १५०॥ निष्पावकारवेल्लकरक्तशिग्रुरसालकर्कोटकमाणमूलम्। सुवर्चला गृञ्जनकं पटोलं वेत्राग्रवार्ताकुनमूलकानि॥५१॥ पुनर्नवाचित्रकपारिभद्रश्रीपर्णनिम्बक्षुरपल्लवानि। एरण्डतैलं कटुका हरिद्रा हरीतकी क्षारनिषेवणञ्च॥५२॥ भल्लातकं गुग्गुलुवायसञ्च कटूनि तिक्तानि च दीपनानि। मूत्राणि गोऽजामहिषीभवानि कस्तूरिका चापि शिलाजतूनि॥५३॥ यत्पाण्डुरोगिष्वपि वह्निकर्म पुरा प्रदिष्टन्तु तदेव चापि। यथामलं पथ्यमिदं प्रदिष्टं शोथामयं सत्वरमुच्छिनत्ति॥ ५४॥

दोषोंका शमन करनेवाली औषधें लंघन, रक्तमोक्षण, स्वेदप्रदान, शरीर-पर लेप और सिञ्चनक्रिया करना, पुराने शालिके चावल, जौ, कुलथी और मूँगादि अन्नोंका भोजन, गोह, सेई, मोर, तीतर, मुर्गा, लवा एवं जंगली जीवोंका मांस और विष्किरजीवोंका मांस, कछुएका मांस, शृङ्गीमत्स्य, पुराना घी, मठ्ठा, मदिरा, शहद, आसव, सेमकी फली, करेला, लाल सहिँजना, आम, ककोडा, मानकन्दकी घुइयाँ, हुलहुलके पत्ते, गाजर, परवल, बेंतका अग्रभाग, बैंगन- मूली, पुनर्नवा, चीता, फरहद, अरणी, नीमके पत्ते, तालमखानेके पत्ते, अण्डीका तेल, कुटकी, हल्दी, हरड, खारवाले द्रव्य, भिलावा, गूगल, अगर तथा कडवे चरपरे और पाचक द्रव्य, गौ, बकरी और भैंसका मूत्र, कस्तूरी, शिलाजीत और पाण्डुरोगाधिकारमें कहाहुआ अग्निकर्म ये सम्पूर्ण वस्तुयें शोथरोगीको दोषानुसार विचारपूर्वक सेवन करानेसे शोथ-रोग शीघ्र छिन्न भिन्न होजाता है ॥ ४९-५४ ॥

शोथमें अपथ्य।

नित्यं दुष्टं पवनसलिलं वेगरोधाद्विरुद्धं
सर्वं पानं विषममशनं मृत्तिकाभक्षणञ्च।
ग्राम्यानूपं पिशितलवणं शुष्कशाकं नवान्नं
गौडं पिष्टं दधि सकृशरं निर्जलं मद्यमम्लम् ॥
धानावल्लूरं समशनमथो गुर्वसात्म्यं विदाहि
अस्वप्नरात्रौ श्वयथुगदवान्वर्जयेन्मैथुनञ्च ॥ १५५ ॥

प्रतिदिन दूषित वायुसेवन, दूषित जल पान करना, मल मूत्रादिके वेगको रोकना, सर्व प्रकारके विरुद्धपानीय द्रव्य विषमभोजन, मृत्तिका भक्षण, गाँवके और अनूपदेशीयजीवोंका मांस, नमक, सूखे शाक, नया नाज, गुडकी बनी-वस्तुयें, पिठ्ठीवाले अन्न, खिचडीके साथ दही, बिना जलकी मदिरा, खट्टे पदार्थ, खीलें, शुष्कमांस, भारी, अहितकर और दाहकारी पदार्थोंका भोजन, रात्रिमें जागना स्त्रीप्रसंग करना शोथयुक्त रोगी इन सबको त्यागदेवे ॥१५५॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शोथचिकित्सा ॥

वृद्धिरोगकी चिकित्सा।

गुग्गुलुं रुबुतैलं वा गोमूत्रेण पिबेन्नरः।
वातवृद्धिं निहन्त्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १ ॥

गूगुल और अण्डीके तेलको गोमूत्रके साथ पीवे तो बहुत वातजन्य अण्ड" वृद्धि तत्काल नष्ट होती है ॥ १ ॥

सक्षीरं वा पिबेत्तैलं मासमेरण्डसम्भवम् ।
पुनर्नवायास्तैलं वा तैलं नारायणं तथा ॥
पाने वस्तौ रुबोस्तैलं पेयं वा दशकाम्भसा ॥ २ ॥

दूध और अण्डीके तेलको एकत्र मिलाकर एक महीनेतक सेवन करे । अथवा पुनर्नवेके क्वाथ और कल्कद्वारा सिद्ध कियाहुआ सरसोंका तेल, तथा नारायण तेल पीनेमें और वस्तिकर्म्ममें प्रयोग करे । किम्वा दशमूलके काढेके साथ अण्डीके तेलको पीवे । इससे अण्डवृद्धिरोग दूर होता है ॥ २ ॥

चन्दनं मधुकं पद्ममुशीरं नीलमुत्पलम् ।
क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्याद्दाहशोथरुजापहः ॥ ३ ॥

रक्तचन्दन, मुलैठी, कमलकेशर, खस और नीलकमल इन औषधियोंको समानभाग लेकर दूधमें पीसकर वृद्धिस्थानपर लेप करनेसे दाह, सूजन और पीडा दूर होती है ॥ ३ ॥

पञ्चवल्कलकल्केन सघृतेन प्रलेपनम् ।
सर्वपित्तहरं कार्यं रक्तजे रक्तमोक्षणम् ॥ ४ ॥

बड, गूलर, पीपल, पाखर और बेंत इनकी छालको समानभाग ले एकत्र पीसकर घृतके साथ मिलाकर लेप करे और समस्त पित्तनाशकक्रिया करे तो पित्तज, अण्डवृद्धि दूर होती है । एवं रक्तजनित अण्डवृद्धिमें रक्तमोक्षण (फस्त खुलवाना) करावे ॥ ४ ॥

श्लेष्मवृद्धिस्तूष्णवीर्य्यैर्मूत्रपिष्टैः प्रलेपयेत् ।
पीतदारुकषायं च पिबेन्मूत्रेण संयुतम् ॥ ५ ॥

कफोत्पन्न अण्डवृद्धिरोगमें उष्णवीर्य्य अर्थात् गरम अजगन्धादि औषधियोंको गोमूत्रमें पीसकर लेपकरे । तथा देवदारुके गरम क्वाथको गोमूत्रके साथ पान करे तो उक्तविकार नष्ट होता है ॥ ५ ॥

स्विन्नं मेदःसमुत्थं च लेपयेत्सुरसादिना ।
शिरोविरेकद्रव्यैर्वा सुखोष्णैर्मूत्रसंयुतैः ॥ ६ ॥

मेदजन्य अण्डवृद्धिरोगमें कोषोंमें गरम गोवरसे स्वेद देकर निर्गुण्डी, तुलसी आदि सुरसादिगणकी औषधियोंका लेपकरे । अथवा पीपल और कालीमिरचादि शिरोविरेचक औषधियोंको मन्दोष्णगोमूत्रके साथ पीसकर नस्य देवे॥

तैलमेरण्डजं पीत्वा बलासिद्धपयोऽन्वितम् ।
आध्मानशूलाग्निमान्द्यमन्त्रवृद्धिं जयेन्नरः ॥ ७ ॥

खिरैंटी २ तोले, दूध ८ तोले और जल ३२ तोले इनको एकत्रकर पाक करे । जब पकते २ दुग्धमात्रशेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । इस दुग्धमें अण्डीका तेल डालकर पानकरनेसे अफारा, शूलरोग, मन्दाग्नि और अन्त्र-वृद्धि नष्ट होती है ॥ ७ ॥

निष्पिष्टमारनालेन रूपिकामूलवल्कलम् ।
लेपो वृद्ध्यामयं हन्ति बद्धमूलमपि दृढम् ॥ ८ ॥

सफेद आककी जडकी छालको काँजीमें पीसकर लेप करनेसे अत्यन्त प्रबल वृद्धिरोग भी नष्ट होता है ॥ ८ ॥

भृष्टो रुबुकतैलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः ।
कृष्णासैन्धवसंयुक्तो वृद्धिरोगहरः परः ॥ ९ ॥

हरडके कल्कको अण्डीके तेलमें भूनकर पीपल और सैंधेनमकके चूर्णके साथ सेवन करे । इससे अत्यन्त प्रवृद्ध वृद्धिरोग नाश होता है ॥ ९ ॥

लज्जागृध्रमलाभ्यां च लेपो वृद्धिहरः परः ।

छुइमुई और गिद्धकी विष्ठा इन दोनोंको एकत्र पीसकर अण्डकोषोंपर लेप करनेसे वृद्धिरोग शमन होता है ।

अत्यभिष्यन्दिगुर्वन्नसेवनान्निचयं गतः ।
करोति ग्रन्थिवच्छोथं दोषो वंक्षणसन्धिषु ॥
ज्वरशूलाङ्गदाहाढ्यं तं ब्रध्नमिति निर्दिशेत् ॥ १० ॥

अत्यन्त कफवर्द्धक, भारी, स्निग्ध और कच्चे अन्नादि पदार्थोंके खानेसे वातादि दोष कुपित होकर वंक्षणकी सन्धि अर्थात् वास्तिके नीचे एवं जंघाके उपरि भागमें सूजन उत्पन्न करते हैं । जिस सूजनमें ज्वर, पीडा और सम्पूर्ण शरीरके अवयवोंमें दाह होती है । उसको ब्रध्नरोग कहते हैं ॥ १० ॥

अजाक्षीरेण गोधूमकल्कं कुन्दुरुकस्य वा ।
प्रलेपनं सुखोष्णं स्याद्ब्रध्नशूलहरं परम् ॥ ११ ॥

गेहूँ अथवा कुन्दुरुको बकरीके दूधके साथ पीसकर मन्दोष्ण लेप करे । इससे ब्रध्नरोग और उसकी अतितीव्र पीडा नष्ट होती है ॥ ११ ॥

मृतमात्रे तु वै काके विशस्ते तु प्रवेशयेत् ।
ब्रध्नं मुहूर्त्तं मेधावी तत्क्षणादरुजं भवेत् ॥ १२ ॥

तत्काल मरेहुए कौएके हृदयके मांसको कुछ गरम करके वंक्षणकी सन्धि-पर लेपकरे तो ब्रध्नरोग और उसकी पीडा तत्क्षण दूर होती है ॥१२॥

अजाजी हबुषा कुष्ठं गोधूमं बदराणि च ।
काञ्जिकेन समं पिष्ट्वा कुर्याद्ब्रध्ने प्रलेपनम् ॥ १३ ॥

कालाजीरा, हाऊबेर,कूठ, गेहूँ और सूखे बेरोंको समभागले काँजीमें पीस-कर लेप करनेसे ब्रध्नरोग नष्ट होता है ॥ १३ ॥

गव्यं घृतं सैन्धवसंप्रयुक्तं शम्बूकभाण्डे निहितं तदेव ।
सप्ताहमादित्यकरैर्विपक्कं हन्यात्कुरण्डं चिरजं प्रवृद्धम् ॥१४॥

पुराने गोघृत और सैंधेनमकके चूर्णको शंखमें भरकर सातदिनतक धूपमें रक्खे । पश्चात् इस घृतको कोषोंपर लेप करे तो इससे बहुत पुराना वृद्धिरोग शीघ्र नाश होता है । इसमें सैंधानमक घृतसे चौथाई भाग लेवे ॥ १४ ॥

सैन्धवञ्च घृताभ्यक्तं ताम्रभाजनमातपे ।
प्रतप्तमूर्णयाघृष्टं तन्मलञ्च समाहरेत् ॥ १५ ॥
कुरण्डं म्रक्षयेत्तेन सानिर्विघ्नं दिवानिशम् ।
कुरण्डं तेन संलिप्तं नास्तीत्याह पुनर्वसुः ॥ १६ ॥

ताँबेके पात्रमें घी और सैंधेनोनको भरकर प्रचण्ड धूपमें तपावे । फिर भेंडके ऊनसे उक्तपात्रस्थ घृतको घिसे उससे जितना मल निकले उसको ब्रध्न-पर लेपकरे । एवं निर्विघ्नपूर्वक नित्यप्रति प्रातः और सायं समय अण्डकोषोंको धोवे और उक्त मलकी मालिश करे तो फिर अण्डकोषवृद्धि नहीं होती ऐसा पुनर्वसु ऋषिने कहाहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

गोमूत्रसिद्धां रुबुतैलभृष्टां हरीतकीं सैन्धवसंप्रयुक्ताम् ।
पिबेन्नरः कोष्णजलानुपानं निहन्ति वृद्धिं चिरजां प्रवृद्धाम् १७

गोमूत्रमें पकाईहुई हरडको अण्डीके तेलमें भूनलेवे । फिर उसमें सैंधेनम-कका चूर्ण मिलाकर मन्दोष्ण जलके साथ पानकरे । यह औषधि दीर्घकालसे उत्पन्नहुई अण्डवृद्धि तत्काल नष्ट करती है ॥ १७ ॥

ऐन्द्रीमूलभवं चूर्णं रुबुतैलेन मर्दितम् ।
त्र्यहाद्गोपयसा पीतं सर्ववृद्धिहरं परम् ॥
वचा सर्षपकल्केन लेपो वृद्धिविनाशनः ॥ १८ ॥

इन्द्रायनकी जडके चूर्णको अण्डीके तेलमें खरलकर उपयुक्त परिमाणमें गोदुग्धके साथ तीन दिनतक सेवन करे। इससे सब प्रकारका वृद्धिरोग नष्ट

होता है। अथवा वच और सरसोंको जलमें पीसकर लेप करे तो उक्तरोग शीघ्र दूर होता है ॥ १८ ॥

बहुवारस्य बीजञ्च पिष्ट्वा तच्चार्द्रकैः सह।
कुरण्डं नाशयेद्भद्रे लेपनान्नात्र संशयः ॥ १९ ॥

लहसौडेके बीजोंको अदरखके रसमें पीसकर लेप करनेसे कुरण्डरोग नाश होता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥

घृतैर्नीलोत्पलं मूलं पिष्ट्वा लिम्पेत्कुरण्डकम्।
अथवा लेपनं कुर्याद्गृहमण्डूकशोणितैः ॥ २० ॥

नीले कमलकी जडको घीमें पीसकर लेप करे। अथवा घरमें पैदाहुए मेंड-कके रुधिरका लेप करे तो अण्डवृद्धिरोग नष्ट होता है ॥ २० ॥

रास्नादि।

रास्नायष्ट्यमृतैरण्डबलागोक्षुरसाधितः।
क्वाथोऽन्त्रवृद्धिं हन्त्याशु रुबुतैलेन मिश्रितः ॥ २१ ॥

रायसन, मुलैठी, गिलोय, अण्डकी जड, खिरैंटी और गोखुरू इनके क्वाथको अण्डीके तेलके साथ मिलाकर पीनेसे अन्त्रवृद्धिरोग तत्काल नष्ट होता है॥२१

त्रिकट्वादि।

त्रिकटुत्रिफलाक्वाथं सक्षारलवणं पिबेत्।
विरेचनमिदं श्रेष्ठं कफवृद्धिविनाशनम् ॥ २२ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल,हरड,बहेडा,आमला इनके काढेमें जवाखार,सैंधानमक डालकर पीवे। इससे विरेचन होकर कफजन्य अन्त्रवृद्धि नाश होय ॥ २२ ॥

बिल्वादिचूर्ण।

मूलं बिल्वकपित्थयोररलुकस्याग्नेर्बृहत्योर्द्वयोः
श्यामापूतिकरञ्जशिग्रुकतरोर्विश्वौषधारुष्करम्।
कृष्णाग्रन्थिकचव्यपंचलवणक्षाराजमोदान्वितं
पीतं काञ्जिककोष्णतोयमथितं चूर्णीकृतं ब्रध्नजित् २३

बेल, कैथ, शोनापाठा, चीता, कटाई, कटेरी, विधारा, काँटा करञ्ज और सहिंजना इन सबकी जड, एवं सोंठ, भिलावा, पीपल, पीपलामूल, चव्य, पाँचों नमक, जवाखार और अजमोद इन सबको समानभाग लेकर एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णकी उपयुक्त मात्राको गरम काँजीमें मिलाकर पान करनेसे ब्रध्नरोग दूर होता है ॥ २३ ॥

भक्तोत्तरीय।

अभ्रकं गन्धकं चैव पिप्पली लवणानि च।
त्रिक्षारं त्रिफला चैव हरितालं मनःशिला ॥ २४ ॥
पारदं चाजमोदा च यमानी शतपुष्पिका।
जीरकं हिङ्गु मेथी च चित्रकं चविका वचा ॥ २५ ॥
दन्ती च त्रिवृता मुस्तं शिला च मृतलोहकम्।
अञ्जनं निम्बबीजानि पटोलं वृद्धदारकम् ॥ २६ ॥
सर्वाणि चाक्षमात्राणि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्।
शतं कानकबीजानि शोधितानि प्रयोजयेत् ॥ २७ ॥
एतदग्निविवृद्ध्यर्थमृषिभिः परिकीर्तितम्।
श्लीपदान्यन्त्रवृद्धिं च वातवृद्धिं च दारुणाम् ॥ २८ ॥
अरुचिं चामवातं च शूलं वातसमुद्भवम्।
गुल्मं चैवोदरान् व्याधीन्नाशयत्याशु तत्क्षणात्।
भक्तोत्तरमिदं चूर्णमश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥ २९ ॥

अभ्रकभस्म, शुद्धगन्धक, पीपल, पाँचोंनमक, जवाखार, सज्जी, सुहागा, हरड, बहेडा, आमला, हरताल, मैनसिल, शुद्धपारा, अजमोद, अजवायन, सौंफ, जीरा, हींग, मेथी, चीतेकी जड, चव्य, वच, दन्तीमूल, निसोत, नागरमोथा, शिलाजीत, लोहेकी भस्म, रसौत, नीमके बीज, परबल और विधारा ये सब औषधियाँ दो दो तोले लेकर एकत्र करके कूटपीस लेवे। फिर इसमें शोधित धतूरेके सौबीज मिलाकर बारीक चूर्ण तैयार करलेवे। इस चूर्णको अग्निकी वृद्धि करनेके लिये ऋषियोंने कहा है। यह श्लीपद, अन्त्रवृद्धि दारुण वातकी वृद्धि, अरुचि, आमवात, वातजशूल, गुल्म, उदररोग, एवं अन्यान्य नानाप्रकारकी व्याधियोंको तत्क्षण नाश करता है। इस भक्तोत्तरनामक चूर्णको अश्विनीकुमारोंनें बनाया है ॥ २४--२९ ॥

शशिशेखररस।

लौहमभ्रं च सिन्दूरं मर्दयेत्कन्यकाम्बुना।
अस्य रक्तिद्वयं दद्यादन्त्ररोगनिवृत्तये ॥ ३० ॥

लोहा, अभ्रक और रससिन्दूर इनको घीग्वारके रसमें खरल करे। फिर इसकी दोदो रत्ती मात्राका सेवन करनेसे अन्त्रवृद्धिरोग निवारण होता है ॥ ३० ॥

वातारि।

रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो मतः।
त्रिगुणा त्रिफला ग्राह्या चतुर्भागश्च चित्रकः॥ ३१॥
गुग्गुलुः पञ्चभागः स्यादेरण्डतैलमार्दितः।
क्षिप्त्वात्र पूर्वकं चूर्णं तेनैव सह मर्दयेत्॥ ३२॥
गुडिकां कर्षमानान्तु भक्षयेत्प्रातरेव हि।
नागरैरण्डमूलानां क्वाथं तदनु पाययेत्॥ ३३॥
अभ्यज्यैरण्डतैलेन स्वेदयेत्पृष्ठदेशकम्।
विरेके तेन सञ्जाते स्निग्धमुष्णञ्च भोजयेत्॥ ३४॥
वातारिसंज्ञको ह्येष रसो निर्वातसेवितः।
अन्त्रवृद्धिं निहन्त्येव ब्रह्मचर्यपुरःसरम्॥
अनुपानञ्च तिलजमार्द्रकद्रव्यसंयुतम्॥ ३५॥

शुद्धपारा १ भाग, गन्धक २ भाग, त्रिफला ३ भाग, चीता ४ भाग और अण्डीके तेलमें घोटीहुई गूगल ५ भाग लेवे। पूर्वोक्त औषधियोंके चूर्णको गूगलमें मिलाकर अण्डीके तेलके द्वारा उत्तम रूपसे खरल करे। फिर एक एक तोलेकी गोलियाँ बनाकर रखले उनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली भक्षण करे। पीछेसे सोंठ और अण्डकी जडके क्वाथको पानकरे। इसके सेवन करनेपर रोगीको पीठपर अण्डीके तेलकी मालिश करके स्वेद देवे। इससे दस्त होजानेपर स्निग्ध और गरमपदार्थ भक्षण करावे। इस वातारिनामवाले रसको वातरहितस्थानमें सेवन करे तो यह अन्तवृद्धि रोगको अवश्य नाश करता है। इसपर तिलके फूलोंमें अदरखका रस मिलाकर अनुपान करे और सदा ब्रह्मचर्यका पालन करता रहे॥ ३१-३५॥

वृद्धिबाधिकावटी।

शुद्धसूतं तथा गन्धं मृतान्येतानि योजयेत्।
लौहं वङ्गं तथा ताम्रं कांस्यञ्चाथ विशोधितम्॥ ३६॥
तालकं तुत्थकञ्चापि तथा शङ्खवराटिकम्।
त्रिकटु त्रिफला चव्यं विडङ्गं वृद्धदारकम्॥ ३७॥
कर्चूरं मागधीमूलं पाठां सहबुषां वचाम्।
एलाबीजं देवकाष्ठं तथा लवणपञ्चकम्॥ ३८॥

एतानि समभागानि चूर्णयेदथ कारयेत् ।
कषायेण हरीतक्या वटिकां टङ्कसम्मिताम् ॥ ३९ ॥
एकां तां वटिकां यस्तु निर्गिलेद्वारिणा सह ।
अन्त्रवृद्धिरसाध्यापि तस्य नश्यति सत्वरम् ॥ ४० ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहभस्म, वङ्गभस्म, ताम्रभस्म, कांस्यभस्म, हरताल, तूतिया, शङ्खभस्म, कौडीकी भस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड,आमला,बहेडा, चव्य, वायविडङ्ग, विधारा, कचूर, पीपलामूल, पाढ, हाऊबेर, बच, छोटी इलायचीके दाने, देवदारु और पाँचों नमक इन सबको समानभाग लेकर एकत्र करलेवे। अनन्तर हरडके काथमें खरल करके चारचार माशेकी गोलियाँ तैयार करलेवे। इसकी प्रतिदिन प्रातःसमय एकएक गोली जलके साथ निगलनेसे असाध्य भी अन्त्रवृद्धिरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ३६-४० ॥

रसराजेन्द्र ।

हिङ्गुलोत्थं रसं गन्धं केशराजाम्बुशोधितम् ।
रसार्द्धं हेमतारञ्च नागं हेमार्द्धकं तथा ॥ ४१ ॥
क्षिप्त्वा खल्लतले पश्चाद्वासाकाथेन भावयेत ।
काकमाच्याश्चित्रकस्य निर्गुण्ड्याः कुटजस्य च॥४२॥
स्थलपद्मस्योत्पलस्य सप्तकृत्वो द्रवैः पृथक् ।
ततो रक्तिमिताः कुर्याद्वटीश्चण्डांशुशोषिताः ॥ ४३ ॥
अन्त्रजान्निखिलान्रोगान्सर्वदोषोद्भवांस्तथा ।
हन्त्ययं रसराजेन्द्रो मृगराजो यथा मृगान् ॥ ४४ ॥

सिंगरफसे निकालाहुआ पारा एक तोला, भाँगरेके रसमें शुद्ध कीहुई गंधक एक तोला, सुवर्णभस्म ६ मासे, चाँदीकी भस्म ६ मासे और शीशेकी भस्म ३ मासे लेवे। सबको खरलमें रख अडूसेके काथद्वारा भावना देवे। तदनन्तर मकोय, चीता, निर्गुण्डी, कुडा, मानकन्द और कमल इनके रसोंसे यथाक्रम अलग अलग भावना देवे। फिर धूपमें सुखाकर एकएक रत्तीकी सुन्दर गोलियाँ बनालेवे। यह रसराजेन्द्रयोग यथाविधि सेवन करनेसे अन्त्रसम्बन्धी अनेक दोषोंसे उत्पन्नहुए सम्पूर्ण रोगोंको इस भाँति नष्ट करता है जिसतरह मृगेन्द्र मृगोंके समूहको तत्काल नष्ट करदेता है ॥ ४१-४४ ॥

शतपुष्पाद्यघृत ।

शतपुष्पामृतादारु चन्दनं रजनीद्वयम् ।

जीरके द्वे वचा नागत्रिफला गुग्गुलुत्वचम् ॥ ४५ ॥
मांसी सकुष्ठपत्रैला रास्ना शृङ्गी च चित्रकम् ।
कृमिघ्नमश्वगन्धा च शैलेयं कटुरोहिणी ॥ ४६ ॥
सैन्धवं तगरश्चैव कुष्ठं जातीबिसे समे ।
एतैश्च कार्षिकैः कल्कैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४७ ॥
वृषमुण्डितिकैरण्डबिल्वपत्रभवो रसः ।
कण्टकार्यास्तथा क्षीरं प्रस्थं प्रस्थं विनिःक्षिपेत् ॥४८॥
सिद्धमेतद्घृतं पीतमन्त्रवृद्धिं व्यपोहति ।
वातवृद्धिं पित्तवृद्धिं मेदोवृद्धिमथापि वा ॥ ४९ ॥
मुष्कवृद्धिं श्लीपदञ्च यकृत्प्लीहानमेव च ।
शतपुष्पाद्यमेतद्धि घृतं हन्ति न संशयः ॥ ५० ॥

सौंफ, गिलोय, देवदारु, लालचन्दन, हल्दी, दारुहल्दी, जीरा, कालाजीरा, वच, नागकेशर, त्रिफला, गूगल, दारचीनी, बालछड, कूठ, पत्रज, इलायची, रास्ना, काकडासिंगी, चीता, वायविडङ्ग, असगन्ध, शैलज, कुटकी, सैंधानमक, तगर, कूट, जावित्री, और भसींडा ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर कल्क बनालेवे। फिर अडूसा, गोरखमुण्डी, अण्डकी जड, बेलके पत्ते और कटेरी इनका रस एकएक प्रस्थ एवं गौका दूध और घी एकएक प्रस्थ लेवे। फिर सबको एकत्रकर उत्तम प्रकारसे घृतको पकावे। इस घृतको प्रतिदिन यथानियम सेवन करनेसे अन्त्रवृद्धि, वायुवृद्धि, पित्तवृद्धि, मेदवृद्धि और मूत्रवृद्धि दूर होती है। एवं श्लीपदरोग, यकृत् और तिल्ली आदिरोगोंको भी यह शतपुष्पाद्यघृत निस्सन्देह नष्ट करता है ॥ ४५–५० ॥

त्रिवृतादिघृत।

त्रिवृतामधुयष्टचम्बुपयोधरयमानिकाः ।
श्यामाविदारीनिश्रेयापिप्पलीगिरिमल्लिकाः ॥५१॥
घृतप्रस्थं पयःप्रस्थं दध्याढकसमान्वितम् ।
शतावरीरसप्रस्थं सर्वाण्येकत्र संपचेत् ॥ ५२ ॥
त्रिवृतादिघृतश्चैतदन्त्रजान् निखिलान्गदान् ।
प्रमेहान्विंशतिं श्वासान्कुष्ठान्यर्शांसिकामलाम् ॥५३॥

हलीमकं पाण्डुरोगं गलगण्डं तथार्बुदम् ।
विद्रधिं व्रणशोथञ्च हन्ति नास्त्यत्र संशयः ॥ ५४ ॥

निसोत, मुलैठी, सुगन्धवाला, नागरमोथा, अजवायन, श्यामालता, विदारीकन्द, सोंफ, पीपल और कुडेकी छाल इन सबका समानभाग मिलाहुआ कल्क आधसेर गोघृत और दुग्ध एकएक प्रस्थ, दही १ आढक और शतावरका रस १ प्रस्थ सबको एकत्रित करके विधिपूर्वक घृतको सिद्धकरे । यह त्रिवृतादिघृत अन्त्रजन्य सम्पूर्णरोग, बीसों प्रकारके प्रमेह, श्वास, कुष्ठ, बवासीर, कामला, हलीमक, पाण्डुरोग, गलगण्ड, अर्बुद, विद्रधि और व्रणशोथप्रभृतिविकारोंको तत्काल नाश करता है ।इसमें कुछ भी सन्देह नहीं५१–५४

बृहद्दन्तीघृत ।

जलद्रोणे पचेत्सम्यग्दन्त्याः पलशतं भिषक् ।
पादशिष्टं गृहीत्वेमं क्वाथं सर्पिः पयस्तथा ॥ ५५ ॥
दन्तीमूलं बलां द्राक्षां सहदेवीं शतावरीम् ।
सरलं शारिवां श्यामां प्रत्येकं कुडवोन्मितम् ॥ ५६ ॥
विदार्यास्तालमूल्याश्च शाल्मल्याः कुटजस्य च ।
रसाढकं परिक्षिप्य साधयेन्मृदुनाग्निना ॥ ५७ ॥
अन्त्रवृद्धिमन्त्ररोगमन्त्रदाहं सुदारुणम् ।
मुष्कवृद्धिं तथा ब्रध्नं व्रणशोथं भगन्दरम् ॥ ५८ ॥
आमवातं वातरक्तं मुखनासाशिरोरुजः ।
रेतःशोणितदोषांश्च हन्ति दन्तीघृतं महत् ॥ ५९ ॥

दन्तीकी जडको १०० पल लेकर ३२ सेर जलमें पकावे । जब पकते पकते चतुर्थभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर यह क्वाथ एवं घी, और दूध आठ आठ सेर तथा दन्तीमूल, खिरैंटी, दाख, सहदेई, शतावर, धूपसरल, अनन्तमूल और श्यामालता ये प्रत्येक १६–१६ तोले और विदारी कन्द, मुसली, सेमलकी मुसली तथा कुडेकी छालका रस आठ आठ सेर लेवे। पश्चात् सबोंको एकत्र मिश्रित कर मन्दमन्द अग्निद्वारा सम्यक् प्रकार घृतको सिद्ध करे । यह बृहद्दन्ती नामक घृत अन्त्रवृद्धि, अन्त्रसम्बन्धी रोग, अन्त्रदाह, दारुण अण्डकोषवृद्धि, ब्रध्नरोग, व्रणशोथ, भगन्दर, आमवात, वातरक्त, मुख, नासिका, शिरके रोग, शुक्र रक्तसम्बन्धीसमस्तरोगोंको नाशता है ॥५५–५९

गन्धर्वहस्ततैल ।

शतमेरण्डमूलस्य पलं शुण्ठ्या यवाढकम् ।
जलद्रोणे विपक्कव्यं यावत्पादावशेषितम् ॥ ६० ॥
तेन पादावशेषेण पयसा तत्समेन च ।
प्रस्थमेरण्डतैलस्य तन्मूलाच्च चतुष्पलम् ॥ ६१ ॥
त्रिपलं शृङ्गवेरश्च गर्भं दत्त्वा विपाचयेत् ।
तत्पिबेत्प्रयतः शुद्धो नरः क्षीरान्नभुक् सदा ॥
अन्त्रवृद्धिं जयत्याशु तैलं गन्धर्वहस्तकम् ॥ ६२ ॥

अण्डकी जड १०० पल, सोंठ १०० पल और जौ आठ सेर लेकर अलग अलग बत्तीस सेर जलमें पकावे। पकते पकते जब चौथाई भाग शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इस काथके साथ दूध ८ सेर, अण्डीका तेल ६४- तोले, एवं कल्कार्थ अण्डकी जड १६ तोले और अदरख १२ तोले मिलाकर यथारीति तेलको पकावे। जब उत्तम रूपसे पककर तैयार होजाय तब घीके चिकने बासनमें करके रखदेवे। पश्चात् नित्यप्रति प्रातःकाल शुद्ध होकर उप- युक्त परिमाणसे इस तेलको सेवन करे और इसपर दूध भात सर्वदा भक्षणकरे। यह गन्धर्वहस्तकनामवाला तेल अन्त्रवृद्धिरोगको बहुत शीघ्र नाश करता है ॥

वृद्धिरोगमें पथ्य ।

संशोधनं वस्तिरसृग्विमोक्षः स्वेदः प्रलेपोऽरुणशाल- यश्च। एरण्डतैलं सुरभीजलश्च धन्वामिषं शिग्रुफलं पटोलम् ॥ ६३ ॥ पुनर्नवागोक्षुरकोऽग्निमन्थस्ताम्बूल- पथ्या सरलं रसोनम्। वार्तिङ्गनो गृञ्जनकं मधूनि कौम्भं घृतं तप्तजलश्च तक्रम्॥ यथाश्रुतं शस्त्रविधिश्च वर्गः स्याद्ब्रध्नवृद्ध्यामयिनां सुखाय ॥ ६४ ॥

दोषशमनकारक ओषधि प्रयोग, पिचकारी लगाना, रक्त निकलवाना, पसीना देना, लेप करना, लालशालिके चावलोंका भोजन, अण्डीका तेल, गोमूत्र, मरुदेशके पशुपक्षियोंका मांस, सहिंजनेकी फली, परवल, पुनर्नवा, गोखुरू, अरणी, पान, हरड, धूप सरल, लहसुन, बैंगन, गाजर, शहद, १०वर्षका पुराना घी, गरमजल, मठ्ठा इनका सेवन और शास्त्रोक्त विधिके अनुसार शस्त्रक्रिया करना ये समस्त उपचार ब्रध्न और अण्डवृद्धिवाले रोगियोंके सुखके वास्ते है॥

वृद्धिरोगमें अपथ्य ।

विरुद्धपानान्नमसात्म्यसेवा संक्षोभणं हस्तिहयादियानम् ।
आनूपमांसानि दधीनि माषा दुग्धानि पिष्टान्नमपोदिका च ॥
गुरूणि शुक्रोत्थितवेगरोधः स्युर्ब्रध्नवृद्ध्यामयिनाममित्राः ६५

स्वभावके विरुद्ध और अहितकर अन्न पान सेवन करना, क्षोभकरना, हाथी या घोडेकी सवारी करना, अनूपदेशवाले जीवोंका मांस, दही, दूध, उडद, पिसेहुए अन्न, पोईका शाक, भारी पदार्थोंका सेवन करना तथा वीर्यके वेगको रोकना; ये सब ब्रध्न और वृद्धिवाले रोगियोंको अहितकर हैं ॥ ६५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वृद्धिरोगचिकित्सा ॥

गलगण्डकी चिकित्सा ।

यवमुद्गपटोलानि कटुरूक्षञ्च भोजनम् ।
छर्दिं सरक्तमुक्तिश्च गलगण्डे प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

गलगण्डरोगमें जौ, मूँग, परवल, चरपरे और रूखे द्रव्योंका भोजन एवं वमन और रक्तमोक्षणक्रिया करे ॥ १ ॥

तण्डुलोदकपिष्टेन मूलेन परिलेपितः ।
हस्तिकर्णपलाशस्य गलगण्डः प्रशाम्यति ॥ २ ॥

हस्तिकर्ण नामक ढाककी जडको चावलोंके जलमें पीसकर लेप करनेसे गलगण्डरोग शान्त होता है ॥ २ ॥

सर्षपान् शिग्रुबीजानि शणबीजातसीयवान् ।
मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पाययेत् ॥ ३ ॥
गलगण्डग्रन्थयश्च गण्डमालाः सुदारुणाः ।
प्रलेपात्तेन शाम्यन्ति विलयं यान्ति चाचिरात् ॥४॥

सरसों, सहिंजनेके बीज, सनके बीज, अलसी, जौ और मूलीके बीज इन सबको समानभाग लेवे और एकत्रित करके खट्टे मट्ठेके साथ पीसकर पान करावे और लेप करे तो इससे बहुत पुरानी गलगण्ड, ग्रन्थिरोग और दारुण गण्डमालादिरोग तत्काल नाश होते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

जीर्णकर्कारुकरसो विडसैन्धवसंयुतः ।
नस्येन हन्ति तरुणं गलगण्डं न संशयः ॥ ५ ॥

पुराने भेलियाकडूके रसमें विरियासञ्चरनमक और सैंधानमक मिलाकर नास देनेसे नवीन गलगण्डरोग निस्सन्देह दूर होता है ॥ ५ ॥

जलकुम्भीकजं भस्म पक्वं गोमूत्रगालितम् ।
पिबेत्कोद्रवभक्ताशी गलगण्डप्रशान्तये ॥ ६ ॥

जलकुम्भीकी भस्मको गोमूत्रमें पकाकर और वस्त्रमें छानकर पीवे और इसपर कोदों अन्नका भोजन करे तो गलगण्डको शीघ्र शान्त करता है ॥ ६ ॥

सूर्यावर्त्तरसोनाभ्यां गलगण्डापनाहनः ।
स्फोटास्रावैः शमं याति गलगण्डो न संशयः ॥ ७ ॥

हुलहुल और लहसुनको समानभाग लेकर पीसलेवे। फिर इनके रसको गलगण्डपर लेप करके स्वेद देवे। इससे फोडेके समान बहकर गलगण्डरोग निश्चय नष्ट होजाता है ॥ ७ ॥

तिक्तालाबुफले पक्वे सप्ताहमुषितं जलम् ।
मद्यं वा गलगण्डघ्नं पानात्पथ्यानुसेविनः ॥ ८ ॥

पकी और कडवी तोम्बीमें जल अथवा मदिरा भरकर ७ दिनतक रखा रहनेदेवे ७ दिनके पश्चात् उसको पानकरनेसे एवं हितकर पदार्थ भक्षण करनेसे गलगण्डरोग शीघ्र दूर होता है ॥ ८ ॥

कट्फलचूर्णान्तर्गलघर्षो गलगण्डामयं हन्ति ।
घृतविमिश्रं पीतमपि श्वेतगिरिकर्णिकामूलम् ॥ ९ ॥

कायफलके चूर्णको गलेपर मलनेसे अथवा सफेद किणहीवृक्षकी जडके चूर्णको घीमें मिलाकर खानेसे गलगण्डरोग नष्ट होता है ॥ ९ ॥

महिषीमूत्रमिश्रितं लौहमलं संस्थितं घटे मासम् ।
अन्तर्धूमविदग्धं लिह्यान्मधुनाथ गलगण्डे ॥ १० ॥

शुद्ध लोहेके मैलको भैंसके मूत्रमें मिलाकर घडेमें भरकर रखदेवे। फिर एकमहीनेके बाद निकालकर उसको अन्तर्धूममें भस्म कर शहदके साथ सेवन करे तो गलगण्डरोगमें शीघ्र उपकार होता है ॥ १० ॥

जिह्वायाः पार्श्वतोऽधस्ताच्छिरा द्वादश कीर्त्तिताः ।
तासां स्थूलशिरे कृष्णे छिन्द्यात्ते च शनैः शनैः॥११॥
बडिशेनैव संगृह्य कुशपत्रेण बुद्धिमान् ।
स्रुते रक्ते व्रणे तस्मिन्दद्यात्सगुडमार्द्रकम् ॥ १२ ॥

भोजनञ्चानभिष्यन्दि यूषः कौलत्थ इष्यते ॥
कर्णयुग्मबहिः सन्धिमध्याभ्याशे स्थितञ्च यत् ।
उपर्युपरि तच्छिन्द्याद्गलगण्डे शिरात्रयम् ॥ १३ ॥

जीभके दोनों तरफ नीचेके भागमें जो १२ शिरायें हैं, उनमेंकी स्थूल और कृष्णवर्णकी दो शिराओंको वडिश (सँडासी) यन्त्रसे खींचकर कुशपत्र नामक शस्त्रसे धीरे धीरे काटे । जब दूषितरक्त निकलजावे तब व्रणपर गुड और अदरख मिलाकर लेपकरे । तदनन्तर रोगीको कफनाशक द्रव्य और कुलथीका यूष, भोजन करनेके लिये देवे । एवं दोनों कानोंके बाहरकी सन्धिके समीप ऊपरके भागमें तीन शिरायें हैं, उनको शनैः शनैः छेदन करनेसे गलगण्डरोग शान्त होता है ॥ ११-१३ ॥

गण्डमालाकी चिकित्सा ।

माक्षिकाढ्यः सकृत्पीतः क्काथो वरुणमूलजः ।
गण्डमालां हरत्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १ ॥

वरनाकी जडके मन्दोष्ण क्काथको मधुमिश्रित कर पानकरे तो बहुत पुरानी गण्डमाला तत्काल दूर होती है ॥ १ ॥

पिष्ट्वा ज्येष्ठाम्बुना पीताः काञ्चनारत्वचः शुभाः ।
विश्वभेषजसंयुक्ता गण्डमालापहाः पराः ॥ २ ॥

कचनारकी छाल और सोंठ इनको चावलोंके माँडमें पीसकर पीनेसे गलगण्ड और गण्डमालारोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

आरग्वधशिफां क्षिप्रं पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।
सम्यङ्नस्यप्रलेपाभ्यां गण्डमालां समुद्धरेत् ॥ ३ ॥
गण्डमालामयार्त्तानां नस्यकर्मणि योजयेत् ।
निर्गुण्ड्यास्तु शिफां सम्यक् वारिणा परिपेषिताम् ॥४

अमलतासकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर नास देनेसे और लेप करनेसे गण्डमाला दूर होती है । अथवा निर्गुण्डीकी जडको जलमें अच्छे प्रकार पीसकर नस्य देनेसे उक्तरोग शमन होता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

कोषातकीनां स्वरसेन नस्यं तुम्ब्यास्तु वा पिप्पलिसंयुतेन ।
तैलेन वारिष्टभवेन कुर्याद्गजोपकुल्या सह माक्षिकेण ॥ ५ ॥

घिया तोरईके रस या तुम्बीके रस और पीपलके चूर्णको एकत्र मिलाकर अथवा नीमके तेलमें पीपलका चूर्ण डालकर किंवा गजपीपल और शहदको मिलाकर नास देनेसे गलगण्डरोगमें बहुत जल्द लाभ होता है ॥ ५ ॥

ऐन्द्या वा गिरिकर्ण्या वा मूलं गोमूत्रयोगतः ।
गण्डमालां हरेत्पीतं चिरकालोत्थितामपि ॥ ६ ॥

इन्द्रायणकी जड अथवा श्वेत अपराजिताकी जडको गोमूत्रमें पीसकर पीनेसे तत्क्षण बहुतदिनोंकी पुरानी गण्डमाला दूर होती है ॥ ६ ॥

अलम्बुषादलोद्भूतं स्वरसं द्विपलं पिबेत् ।
अपच्या गण्डमालायाः कामलायाश्च नाशनम् ॥७॥

गोरखमुण्डीके पत्तोंका स्वरस ८ तोले प्रमाण सेवन करे तो अपची गण्ड-माला और कामलारोगका नाश होता है ॥ ७ ॥

गलगण्डं गण्डमालां कुरण्डञ्च विनाशयेत् ।
पिष्टं ज्येष्ठाम्बुना लेपान्मूलं ब्राह्मणयष्टिजम् ॥ ८ ॥

भारङ्गीकी जडको चावलोंके पानीमें पीसकर लेप करनेसे यह औषधि-गलगण्ड, गण्डमाला और कुरण्डरोगको नष्ट करती है ॥

अपचीकी चिकित्सा।

वनकार्पासिकामूलं तण्डुलैः सह योजितम् ।
पक्त्वा पूपलिकाः खादेदपचीनाशनाय तु ॥ १ ॥

वनकपासकी १ तोला जडको चावलोंके ३ तोले चूर्णके साथ पीसकर पूये बनाकर खावे तो अपचीरोग दूर होताहै ॥ १ ॥

शोभाञ्जनं देवदारु काञ्जिकेन तु पेषितम् ।
कोष्णं प्रलेपतो हन्यादपचीमतिदुस्तराम् ॥ २ ॥

सहिंजनेकी जड और देवदारुको एकत्र काँजीमें पीसकर सुहातासुहाता लेप करनेसे अत्यन्त कठिन अपची नाश होती है ॥ २ ॥

सर्षपारिष्टपत्राणि दग्ध्वा भल्लातकैः सह ।
छागमूत्रेण संपिष्टमपचीघ्नं प्रलेपनम् ॥ ३ ॥

सरसों, नीमके पत्ते और भिलावोंको एक अन्तर्धूम उत्तमपात्रमें दग्धकर और बकरेके मुत्रमें पीसकर लेप करे तो अपची दूर होतीहै ॥ ३ ॥

अश्वत्थकाष्ठं निचुलं गवां दन्तञ्च दाहयेत् ।
वराहमज्जसंपृक्तं भस्म हन्त्यपचीव्रणान् ॥ ४ ॥

पीपलके वृक्षकी छाल, समुद्रफल और गोदन्तोंको एकत्र भस्म करलेवे। भस्ममें सूअरकी चर्बी मिलाकर प्रलेप करनेसे अपचीके व्रण शीघ्र भरजाते हैं॥४

पार्ष्णि प्रति द्वादश चाङ्गुलानि मित्वेन्द्रवस्तिं परिवर्ज्य सम्यक् । विदार्य मत्स्याण्डनिभानि वैद्यो निकृष्य जालान्यनलं विदध्यात् ॥ ५॥

एँडीसे लेकर १२ अंगुल परिमाण स्थानमें २ अँगुल परिमित इन्द्रवस्ति नामका मर्म स्थल है। उसको छोडकर शेष १० अंगुलवाले स्थानमें क्रियाकुशल वैद्य तीक्ष्ण शस्त्रसे छेदन करे। फिर मछलीके अण्डेकी समान आकृतिवाले चर्बीके जालको निकालकर व्रणस्थानको अग्निसे दग्ध करदेवे। इस प्रकार करनेसे अपचीरोग समूल नष्ट होजाताहै ॥ ५ ॥

मणिबन्धोपरिष्टाद्वा कुर्याद्रेखात्रयं भिषक् ।
अङ्गुलान्तरितं सम्यगपचीनां प्रशान्तये ॥ ६ ॥

बगल या कूर्परसन्धिगत अपचीरोगमें पहुँचेके ऊपरके भागमें एक एक अंगुलके अन्तरसे यथाक्रम तीन रेखा करे। इससे रुधिरका स्राव होकर अपची रोग दूर होता है ॥ ६ ॥

दण्डोत्पलभवं मूलं बद्धं पुष्येऽपचीं जयेत् ।
अपामार्गस्य वा छिन्द्याज्जिह्वातलगते शिरे ॥ ७ ॥

श्वेतदण्डोत्पलकी जडको पुष्यनक्षत्रमें लाकर देहमें बाँधे। अथवा उक्त विधिके अनुसार चिरचिटेकी जडको बाँधे। किंवा चिरचिटेकी जडसे जीभके नीचेके भागमें स्थित दोनों शिराओंको छेदन करे तो अपची नष्ट होती है७॥

ग्रन्थिकी चिकित्सा ।

ग्रन्थिष्वामेषु कुर्वीत भिषक् शोथप्रतिक्रियाम् ।
पक्वानुत्पाट्य संशोध्य रोपयेद्व्रणभेषजैः ॥ १ ॥

अपक्वग्रन्थिरोगमें वक्ष्यमाण व्रणशोथरोगकी समान चिकित्सा करे। और जब वह पकजाय तब छेदकर राध, पीव आदिको निकालकर घावको भरनेवाली औषधि भरदेवे ॥ १ ॥

हिंस्रा सरोहिण्यमृता च भार्गी श्योनाकबिल्वागुरुकृष्णगन्धाः । गोपित्तपिष्टाः सह तालपर्ण्या ग्रन्थौ विधेयोऽनिलजे प्रलेपः ॥ २ ॥

कटेरी, कुटकी, गिलोय, भारङ्गी, शोनापाठा, बेलकी छाल, अगर, सहिंजनेकी छाल और मुसली इन औषधियोंको समानभाग लेके गोपित्तमें पीसकर वातजन्य ग्रन्थिपर लेप करनेसे शीघ्र उपकार होताहै ॥ २ ॥

जलायुकाः पित्तकृते हितास्तु क्षीरोदकाभ्यां परिषेचनञ्च । काकोलिवर्गस्य तु शीतलानि पिबेत्कषायाणि सशर्कराणि द्राक्षारसेनेक्षुरसेन वापि चूर्णं पिबेद्वारि हरीतकीनाम् ॥३॥

पित्तजनित ग्रन्थिरोगमें जौंक लगवाकर रक्त निकलवावे और जलमिश्रित दूध पीवे । एवं कोकोल्यादिगणकी औषधियोंका शीतल काथ मिश्री मिलाकर पान करे । अथवा दाखके शीतल काथ किंवा ईखके रसमें हरडोंका चूर्ण डालकर पान करे ॥ ३ ॥

मधूकजम्ब्वर्जुनवेतसानां त्वग्भिः प्रदेहानवतारयेच्च । हतेषु दोषेषु यथानुपूर्व्या ग्रन्थौ भिषक् श्लेष्मसमुद्भवे तु ॥ स्विन्ने च विम्लापनमेव कुर्यादङ्गुष्ठवेणुद्दषदीसुतैश्च ॥ ४ ॥

कफजन्य ग्रन्थिपर महुआ, जामुन अर्जुन और बेंत इनकी समानभाग मिश्रित छालको अच्छे प्रकार एकत्र जलमें पीसकर लेप करनेसे कफजग्रन्थि दूर होती है । कफ ग्रन्थिमें वमनादि क्रिया और रक्तमोक्षणक्रिया करके आनुपूर्विका स्नेह तथा स्वेद प्रदानकरे और स्वेदित होनेपर अंगूठे, बाँस एवं पत्थरसे दबाकर विम्लापन क्रिया करे ॥ ४ ॥

विकङ्कतारग्वधकाकणन्ती काकादनीतापसवृक्षमूलैः । आलेपयेदेनमलाबुभार्गीकरञ्जकालामदनैश्च विद्वान् ॥५॥

कण्टाई, अमलतास, घुंघुची, काकादनीवृक्ष और हिङ्गोटवृक्ष इनकी जड अथवा कडवी तोंबी, भारङ्गी, करंजुआ और काला मैनफल इन सबोंकी लेप करनेसे ग्रन्थिरोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

दन्तीचित्रकमूलत्वक्सौधार्कपयसा गुडः । भल्लातकास्थि काशीशं लेपाच्छिन्द्याच्छिलामपि ॥ ६ ॥

दन्तीमूल, चीतेकी जडकी छाल, थूहरका दूध, आकका दूध, गुड, भिलावोंकी गिरी और हीराकसीस; इन सबोंको एकत्र पीसकर किया हुआ प्रलेप पत्थरको भी फोड देता है ॥ ६ ॥

ग्रन्थ्यर्बुदादिजिल्लेपो मातृवाहककीटजः।
सर्जिकामूलकक्षारः शङ्खचूर्णसमान्वितः॥
प्रलेपो विहितस्तीक्ष्णो हन्ति ग्रन्थ्यर्बुदादिकान् ॥७॥

पिद्देनामक कीटको पीसकर लेप करनेसे ग्रन्थि और अर्बुदरोग दूर होता है। एवं सज्जी, मूलीका खार और शङ्खभस्म इनको एकत्र मिलाकर कियाहुआ लेप तीक्ष्ण ग्रन्थि और अर्बुदादिरोगोंको शीघ्र नष्ट करता है॥ ७ ॥

ग्रन्थीनमर्म्मप्रभवानपक्वानुद्धृत्य चाग्निं विदधीत वैद्यः।
क्षारेण चैतान्प्रतिसारयेत्तु संलिख्य संलिख्य यथोपदेशम् ८

जो मर्म्मस्थानोंमें उत्पन्न नहीं हुई हैं और पकी नहीं हैं ऐसी ग्रन्थियोंको छेदकर उस व्रणमें अग्निसे दग्ध करे और फिर खारादि पदार्थोंका प्रलेप करे दग्धक्रिया वातज और वात-कफजन्य ग्रन्थिरोगमें ही करनी चाहिये। पित्तजनित ग्रन्थिमें अस्त्रद्वारा चीरकर क्षारादिका लेप करना उचित है ॥ ८ ॥

अर्बुदकी चिकित्सा।

ग्रन्थ्यर्बुदानां न यतो विशेषः प्रदेशहेत्वाकृतिदोषदूष्यैः।
ततश्चिकित्सेद्भिषगर्बुदानि विधानविद्ग्रन्थिचिकित्सितेन १

ग्रन्थि और अर्बुद (रसौली) के-निकलनेका स्थान, कारण, आकृति, वातादिदोष और दूष्य-ये सब लक्षण प्रायः समानरूपसे मिलते जुलते होते हैं। अत एव चतुर वैद्य, अधिक विशेषता न होनेके कारण केवल हेतु और आकृतिको विचारकर ग्रन्थिरोगके समान अर्बुदकी चिकित्सा करे ॥ १ ॥

वातार्बुदे चाप्युपनाहनानि स्निग्धैश्च मांसैरथ वेशवारैः।
स्वेदं विदध्यात्कुशलस्तु नाड्या शृङ्गेण रक्तं बहुशो हरेच्च २

वातजन्य अर्बुदरोगमें चिकने मांस और वेसवार मसाले आदिका लेप करके उपनाह (अर्थात् पिण्डी बन्धन) स्वेद देवे। फिर सींगी लगवाकर नाडियोंका दूषित रक्त निकलवावे॥ २ ॥

स्वेदोपनाहामृदवस्तु पथ्याः पित्तार्बुदे कायविरेचनञ्च ॥३॥

पित्तजनित रसौलीमें मृदुस्वेद, मृदु प्रलेप, मृदु और पित्तहर भोजन एवं मृदु विरेचक और मृदुवमनकारक औषधि देवे ॥ ३ ॥

विघृष्य चोडुम्बरशाकगोजीपत्रैर्भृशं क्षौद्रयुतैःप्रलिम्पेत् ।
श्लक्ष्णीकृतैः सर्जरसप्रियङ्गुपतङ्गलोध्रार्जुनयष्टिकाह्वैः ॥ ४ ॥

गूलर और गोजियाशाकके पत्तोंके कल्कको शहदमें अच्छे प्रकार मिलाकर रसौलीपर लेपकरे वा राल, फूलप्रियंगु, पतङ्ग, लोध, अर्जुन, मुलैठी ये सब समानभाग एकत्र बारीक पीसकर लेप करे तो अर्बुदरोग दूर होता है ॥ ४ ॥

लेपनं शङ्खचूर्णेन सह मूलकभस्मना ।
कफार्बुदापहं कुर्याद्ग्रन्थ्यादिषु विशेषतः ॥ ५ ॥

शंखका चूर्ण और मूलीकी भस्म एकत्र पीसकर लेप करनेसे कफसे उत्पन्न हुआ अर्बुद एवं कफकी ग्रन्थि नष्ट होती है ॥ ५ ॥

निष्पावपिण्याककुलत्थकल्कैर्मांसप्रगाढैर्दधिमर्दितैश्च ।
लेपं विदध्यात्कृमयो यथात्र मुञ्चन्त्यपत्यान्यथ मक्षिका वा ।
अल्पावशिष्टं कृमिभिः प्रजग्धं लिखेत्ततोऽग्निं विदधीत पश्चात्
यदल्पमूलं त्रपुताम्रसीसैः संवेष्टच पत्रैरथ वायसैर्वा ॥ ७ ॥

सफेद सेम, तिलोंकी खल और कुलथीका कल्क इनको मांस और दहीमें अच्छेप्रकार मर्दन करके रसोलीपर लेप करके तो कीडे और मक्खियाँ अपनी अपनी सन्तानोंको छोडकर रसौलीके अधिकांशभागको भक्षण करती हैं । फिर कृमिआदिकोंके खानेसे कुछेक बाकी बचेहुए अर्बुदको शस्त्रसे चीरकर अग्निद्वारा दग्धकरे । कदाचित् उक्तक्रिया करनेसे भी अर्बुदरोग समूल नष्ट न हों तो उसको राँग, ताँबा, सीसा अथवा लोहेके पत्रोंसे बाँधदेवे ॥ ६ ॥ ७ ॥

क्षाराग्निशस्त्राण्यवतारयेच्च मुहुर्मुहुः प्राणमवेक्ष्यमाणः ।
यदृच्छया चोपगतानि पाकं पाकक्रमेणोपचरेद्यथोक्तम् ॥ ८ ॥

तदनन्तर बारम्बार क्षार, अग्नि और शस्त्रक्रिया करे । किन्तु प्राणोंकी बारबार रक्षा करता रहे । यदि अर्बुद स्वयं पकजावें तो व्रणपाकोक्तविधिके अनुसार छेदन और संशोधनादि क्रिया करे ॥ ८ ॥

उपोदिकारसाभ्यक्तास्तत्पत्रपरिवेष्टिताः ।
प्रणश्यन्त्यचिरान्नृणां पीडकार्बुदजातयः ॥ ९ ॥

पोईके शाकका स्वरस निकालकर रसौलीपर लेपकरे, फिर पोईके पत्तोंको बाँधदेवे । इससे अर्बुदकी पिडिका तत्काल नष्ट होजाती हैं ॥ ९ ॥

उपोदिकाकाञ्जिकतक्रपिष्टा तक्रोपनाहो लवणेन मिश्रः ।
दृष्टोऽर्बुदानां प्रशमायकैश्चिद्दिने दिने रात्रिषु मर्मजानाम् १०

पोईशाकको काँजी और मठ्ठेमें पीसकर आर उसमें सैंधानमक डालकर दिनमें लेप करनेसे अर्बुदरोग एवं रात्रिमें लेप करनेसे मर्मस्थलमें उत्पन्नहुआ अर्बुदरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ १० ॥

लेपोऽर्बुदजिद्रम्भामोचकभस्मतुषशङ्खचूर्णकृतः ।
सरटरुधिरार्द्रगन्धकयवाग्रजाविडङ्गनागरैर्वाथ ॥ ११ ॥

केलेके मोचेकी भस्म, धानोंकी भूसी और शंखभस्म इनको एकत्र पीसकर लेप करे । अथवा गिरगटके लोहूमें गन्धक, जवाखार, वायविडङ्ग और सोंठ इनका चूर्ण मिलाकर लेपकरे तो अर्बुद (रसौली) रोग दूर होता है ॥११॥

स्नुहीगण्डीरिकास्वेदो नाशयेदर्बुदानि च ।
सीसकेनाथ लवणैः पिण्डारुकफलेन च ॥ १२ ॥

थूहरके डंडेको गरम करके स्वेददेनेसे अर्बुदरोग नाश होता है । अथवा सीसे और नमकका गरम लेप करके स्वेददेनेसे किंवा पिण्डार (सफेद रतालु) के फलोंको पोटलीमें बाँधकर सेंकनेसे अर्बुदरोग नष्ट होता है ॥ १२ ॥

हरिद्रालोध्रपत्तङ्गगृहधूममनःशिलाः ।
मधुप्रगाढो लेपोऽयं मेदोऽर्बुदहरः परः ॥ १३ ॥

हल्दी, लोध, पतङ्ग, घरका धुआँ और मैनसिल, इन सबोंको समानभाग लेवे । फिर एकत्र मधुमें उत्तम प्रकार खरल करके गाढा गाढा लेप करे तो मेदजनित अर्बुदरोग शान्त होता हैं ॥ १३ ॥

एतामेव क्रियां कुर्यादशेषां शर्करार्बुदे ॥ १४ ॥

शर्कराजन्य अर्बुदरोगमें पूर्वोक्त सम्पूर्ण क्रियाओंको ही करना चाहिये॥१४॥

रौद्ररस ।

शुद्धसूतं समं गन्धं मर्द्यं यामचतुष्टयम् ।
नागवल्लीदलयुतं मेघनादपुनर्नवा ॥ १५ ॥
गोमूत्रापिप्पलीयुक्तं मर्द्यं रुद्ध्वा पुटेल्लघु ।
लिहेत्क्षौद्रे रसो रौद्रो गुञ्जामात्रार्बुदं जयेत् ॥ १६ ॥

शुद्ध पारा और शुद्धगन्धक दोनोंको समानभाग लेकर एकत्र चार प्रहरतक खरल करे । फिर इनको पानोंके रस, चौलाईके रस, पुनर्नवेके रस, गोमूत्र

और पीपलके क्वाथमें अलग अलग सात सात बार उत्तमरूपसे खरल करके लघुपुटमें रखकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब शीतल होजाय तब निकालकर पीसलेवे। इसको प्रतिदिन एक रत्तीप्रमाण शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे अर्बुदरोग नष्ट होता है। इसको रौद्ररस कहते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

काञ्चनारगुटिका ।

त्रिफलायास्त्रयो भागा व्योषाच्च द्विगुणो मतः ।
तस्माच्च द्विगुणं ज्ञेयं काञ्चनारस्य वल्कलम् ॥ १७ ॥
एकीकृते तु चूर्णेऽस्मिन् समो देयोऽथ गुग्गुलुः ।
क्षौद्रं दशगुणं दद्यात्त्रिफलाचूर्णतो भिषक् ॥ १८ ॥
सर्वासु गण्डमालासु गलगण्डे तथैव च ।
नाडीव्रणेषु गण्डेषु गुडिकेयं प्रशस्यते ॥ १९ ॥

त्रिफला ३ तोले, त्रिकुटेकी प्रत्येक औषधि दो दो तोले और कचनारकी छाल १२ तोले लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर समस्तचूर्णके बराबर शुद्ध गूगल मिलाकर ३० तोले शहदमें उत्तम प्रकारसे खरल करे। इसको सर्वप्रकारकी गण्डमाला, गलगण्डरोग, नाडीव्रणादिरोगोंमें विधिपूर्वक सेवन करनेसे शीघ्र उपकार होता है ॥ १७–१९ ॥

काञ्चनारगुग्गुलु ।

काञ्चनारस्य गृह्णीयात्त्वचं पञ्च पलोन्मितम् ।
नागरस्य कणायाश्च मरिचस्य पलं पलम् ॥ २० ॥
पथ्याविभीतधात्रीणां पलमर्द्धं पृथक् पृथक् ।
वरुणस्याक्षमेकञ्च पत्रकैला त्वचं पुनः ॥ २१ ॥
टङ्कं टङ्कं समादाय सर्वानेकत्र चूर्णयेत् ।
यावच्चूर्णमिदं सर्वं तावानेवात्र गुग्गुलुः ॥ २२ ॥
संकुट्य सर्वमेकत्र पिण्डं कृत्वा विधारयेत् ।
गुटिकाः शाणिकाः कृत्वा प्रभाते भक्षयेन्नरः ॥ २३ ॥
गलगण्डं जयत्युग्रमपचीमर्बुदानि च ।
ग्रन्थीन्व्रणानि गुल्मांश्च कुष्ठानि च भगन्दरम् ॥२४॥
प्रदेयश्चानुपानार्थं क्वाथो मुण्डितिकाभवः ।
क्वाथः खदिरसारस्य क्वाथः कोष्णोऽभयाभवः ॥२५॥

कचनारकी छाल २० तोले, सोंठ, पीपल, मिरच ये प्रत्येक चार चार तोले, हरड, बहेडा, आमला प्रत्येक दो दो तोले, बरनाकी छाल दो तोले, तेजपात, छोटी इलायची और दारचीनी इनको चार चार माशे लेकर सबोंको एकत्र कूटपीस लेवे । फिर समस्त चूर्णके समानभाग शुद्धगूगल मिलाकर जलके योगसे खरल करके चार चार माशेकी गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली भक्षण करे और पीछेसे गोरखमुण्डी, खैरसार अथवा हरडका उष्ण क्काथ पान करे । यह औषधि गलगण्ड, अत्युग्रअपची, अर्बुद, ग्रन्थि, व्रणरोग, गुल्म, कुष्ठ और भगन्दरादिरोगोंको शीघ्र दूर करती है।।२०-२५

सिन्दूरादितैल ।

चक्रमर्दकमूलस्य कल्कं कृत्वा विपाचयेत् ।
केशराजरसे तैलं कटुकं मृदुनाग्निना ॥ २६ ॥
पाकशेषे विनिःक्षिप्य सिन्दूरमवतारयेत् ।
एतत्तैलं निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ २७ ॥

भाँगरेके रसमें चकवडकी जडके कल्क और कडवे तेलको डालकर मन्दमन्द अग्नि द्वारा पकावे । पकते पकते जब तेलमात्र शेष रहजाय तब उसमें सिन्दूर डालकर उतारलेवे। इस तेलको मलनेसे दारुण गण्डमाला दूर होती है२६।।२७

तुम्बीतैल ।

विडङ्गक्षारसिन्धूत्थरास्नाग्निव्योषदारुभिः ।
कटुतुम्बीफलरसैः कटुतैलं विपाचयेत् ।
चिरोत्थमपि नस्येन गलगण्डं विनाशयेत् ॥ २८ ॥

वायविडङ्ग, जवाखार, सैन्धानमक, रास्ना, चीता, त्रिकुटा और देवदारु इनके कल्क और कडवी तोम्बीके फलोंके रसद्वारा सरसोंके तेलको विधिपूर्वक पकावे । इस तेलकी नास देनेसे बहुत पुराना गलगण्डरोग नाश होता है।।२८

अमृतादितैल ।

तैलं पिबेच्चामृतवल्लिनिम्बहंसाह्वलावृक्षकपिप्पलीभिः ।
सिद्धं बलाभ्याञ्च सदेवदारु हिताय नित्यं गलगण्डरोगी२९

गिलोय, नीमकी छाल, हंसपदी, कुडेकी छाल, पीपल, खिरैंटी, कंघी और देवदारु इनके समानमिश्रित कल्कको आधसेर पाकके लिये जल ८ सेर और तिलका तेल दो सेर लेकर एकत्र पकावे । जब पकते पकते तेलमात्र शेष रहजाय तब उतारले । इस तेलको मर्दन करनेसे गलगण्डरोगी आरोग्य होय।।

छुछुन्दरीतैल।

अभ्यङ्गान्नाशयेत्क्षिप्रं गण्डमालां सुदारुणाम्।
छुछुन्दर्या विपक्वञ्च क्षणात्तैलवरं ध्रुवम्॥ ३०॥

छुछुन्दरके मांसमें तिलके तेलको पकाकर मालिश करनेसे अत्यन्त दारुण गण्डमालारोग तत्क्षण नाश होता है॥ ३०॥

शाखोटकतैल।

गण्डमालापहं तैलं सिद्धं शाखोटकत्वचः।

सहोरावृक्षकी छालके क्वाथ और कल्कद्वारा तिलके तेलको सिद्धकर मलनेसे गलगण्ड, गण्डमालादिरोग नष्ट होते हैं।

बिम्बादितैल।

बिम्बाश्वमारनिर्गुण्डीसाधितं वापि नावनम्॥ ३१॥

कन्दूरीकी जड, कनेरकी छाल और निर्गुण्डीकी जड इनके रसमें सिद्ध किये तेलकी नास लेनेसे गण्डमालादि विकार दूर होते हैं॥ ३१॥

निर्गुण्डी तैल।

निर्गुण्डीस्वरसे वाथ लाङ्गलीमूलकल्कितम्।
तैलं नस्यान्निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम्॥३२॥

निर्गुण्डीके रसमें कलिहारीकी जडका कल्क और तिलका तेल डालकर यथाविधि पकावे। इस तेलकी नस्य ग्रहण करनेसे दुस्तर गण्डमालादि रोग शीघ्र नाश होते हैं॥ ३२॥

व्योषाद्यतैल।

व्योषं विडङ्गं मधुकं सैन्धवं देवदारु च।
तैलमेभिः शृतं नस्यात्कृच्छ्रामप्यपचीं जयेत्॥ ३३॥

सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडङ्ग, मुलैठी, सैंधानमक और देवदारु इनके कल्कद्वारा सिद्ध कियेहुए तिलके तैलकी नस्य लेनेसे अत्यन्त कठिन अपचीरोग अल्पकालमें नष्ट होता है॥ ३३॥

चन्दनाद्यतैल।

चन्दनं साभया लाक्षा वचा कटुकरोहिणी।
एभिस्तैलं शृतं पीतं समूलामपचीं जयेत्॥ ३४॥

रक्तचन्दन, हरड, लाख, वच और कुटकी इनके द्वारा तिलके तेलको उत्तम प्रकारसे पकाकर पान करे तो आपचीरोग समूल नाश होता है॥ ३४॥

गुञ्जाद्यतैल ।

गुञ्जाहयारिश्यामार्कसर्षपैर्मूत्रसाधितम् ।
तैलन्तु दशधा पश्चात्कणालवणपञ्चकैः ॥ ३५ ॥
मरिचैश्चूर्णितैर्युक्तं सर्वावस्थागतां जयेत् ।
अभ्यङ्गाददपचीं नाडीं वल्मीकार्शोऽर्बुदव्रणान् ॥३६॥

चिरमिठी, कनेर, विधारेकी जड, आकका दूध और सफेद सरसों इन सबका कल्क समानभाग और गोमूत्र सबसे अठगुना लेकर इनसे दसबार तिलके तेलको उत्तमरूपसे पकावे । फिर उस तेलमें पीपल, पाँचोंनमक और मिरचोंका चूर्ण डालकर मालिश करनेसे सर्वप्रकारका अपचीरोग, नाडीव्रण-रोग, वल्मीकरोग, अर्शरोग, अर्बुद और व्रणरोग शीघ्र नष्ट होते हैं॥३५॥३६॥

गलगण्डादिरोगोंपर पथ्य ।

छर्दिर्विरेचनं नस्यं स्वेदो धूमः शिराव्यधः ।
अग्निकर्मक्षारयोगः प्रलेपो लङ्घनानि च ॥ ३७ ॥
पुराणघृतपानञ्च जीर्णलोहितशालयः ।
यवा मुद्गाः पटोलञ्च रक्तशिग्रु कठिल्लकम् ॥ ३८ ॥
शालिञ्चशाकं वेत्राग्रं रूक्षाणि च कटूनि च ।
दीपनानि च सर्वाणि गुग्गुलुश्च शिलाजतु ॥ ३९ ॥
गलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदातुरे ।
यथादोषं यथावस्थं पथ्यमेतत्प्रकीर्त्तितम् ॥ ४० ॥

वमन, विरेचन, नस्य, स्वेद, धूमपान, फस्तखुलवाना, दागदेना, क्षारप्र-योग, लेप और लङ्घनादिक्रिया करना, पुराने घीका पीना, पुराने लालशालिके चावल, जौ, मूँग, परबल, लाल सहेंजना, करेला, शान्तिशाक, बेंतकी कोंपल, रूखे, चरपरे और सर्वप्रकारके पाचकद्रव्योंका भोजन करना, गूगल और शिलाजीत औषधियोंका सेवन, ये सब पदार्थ गलगण्ड, गण्डमाला, अपची, ग्रन्थि और अर्बुदरोगमें दोष तथा अवस्थाके अनुसार हितकर कहे हैं॥

गलगण्डादिरोगोंपर अपथ्य ।

क्षीरेक्षुविकृतिः सर्वा मांसञ्चानूपसम्भवम् ।
पिष्टान्नमम्लं मधुरं गुर्वभिष्यन्दकारि च ॥ ४१ ॥

गलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदामयान्।
चिकित्सन्नगदंकारो यशोर्थी परिवर्जयेत् ॥ ४२ ॥

सबप्रकारकी दूधकी बनीहुई (दूध, दही, मट्ठा, खीरादि) वस्तुएँ तथा ईखके रसकी बनी (खीर, रस, गुड, चीनीआदि) चीजें, अनूपदेशके पशु-पाक्षियोंका मांस, पिसेहुए अन्न, खट्टे, मीठे, भारी और सर्वप्रकारके कफका-रक पदार्थ इन सबोंको गलगण्ड, गण्डमाला, अपची, ग्रन्थि और अर्बुदादि रोगोंकी चिकित्सा करताहुआ, यशको चाहनेवाला वैद्य तत्काल त्याग देवे४२

इति भैषज्यरत्नावल्यां गलगंडगंडमालापचीग्रन्थ्यर्बुदचिकित्सा ॥

श्लीपदरोगकी चिकित्सा।

लङ्घनालेपनस्वेदरेचनै रक्तमोक्षणैः।
प्रायः श्लेष्महरैरुष्णैः श्लीपदं समुपाचरेत् ॥ १ ॥

श्लीपदरोगमें लङ्घन, प्रलेप, स्वेद, विरेचन, फस्तखुलवाना और कफना-शक उष्णक्रियाद्वारा चिकित्सा करे ॥ १ ॥

धुस्तूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः।
प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ॥ २ ॥

धतूरा, अण्डकी जड, सह्मालू, पुनर्नवा सहेंजनेकी जडकी छाल और सफेद सरसों इनको समानभाग ले एकत्र जलमें पीसकर लेपकरनेसे बहुत पुराना अतिकठिन श्लीपदरोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

निष्पिष्टमारनालेन रूपिकामूलवल्कलम्।
प्रलेपाच्छ्लीपदं हन्ति बद्धमूलमपि स्थिरम् ॥ ३ ॥

सफेद आककी जडकी छालको काँजीमें बारीक पीसकर लेप करनेसे बद्ध-मूल और पुराना श्लीपदरोग नाश होता है ॥ ३ ॥

पिण्डारकतरुसम्भववन्दाकाशिफा जयति सर्पिषा पीता।
श्लीपदमुग्रं नियतं बद्धा सूत्रेण जङ्घायाम् ॥ ४ ॥

पिण्डारवृक्षपर उत्पन्न होनेवाले बंदेकी जडको पीसकर घृतके साथ पान करे और उक्त जडको लाल सूतसे जाँघमें बाँध देवे तो अतिप्रबल श्लीपदरोग दूर होता है ॥ ४ ॥

हितश्चालेपने नित्यं चित्रको देवदारु वा।
सिद्धार्थशिग्रुकल्को वा सुखोष्णो मूत्रपेषितः ॥५॥

चीतेकी जड और देवदारु अथवा सफेद सरसों और सहेंजनेकी छालको गोमूत्रमें पीसकर कुछ गरम करके लेप करे तो श्लीपदरोग नष्ट होता है ॥५॥

स्नेहस्वेदोपनाहांश्च श्लीपदेऽनिलजे भिषक् ।
कृत्वा गुल्फोपरि शिरां विध्यात्तच्चतुरङ्गुले ॥ ६ ॥

वातसे उत्पन्नहुए श्लीपदरोगमें स्निग्ध स्वेद और स्निग्धपदार्थोंका प्रलेप करके गुल्फ(पाँवकी गाँठ)के ऊपर४अंगुलवाली शिराको वेधकर रक्तमोक्षण करे ॥६॥

गुल्फस्याधःशिरां विध्याच्छ्लीपदे पित्तसम्भवे ।
पित्तघ्नीं च क्रियां कुर्य्यात्पित्तार्बुदविसर्पवत् ॥ ७ ॥

पित्तजनितश्लीपदमें गुल्फके नीचेकी शिराको वेधकर रुधिर निकाले।फिर पित्तजअर्बुद तथा पित्तजाविसर्परोगमें कहीहुई पित्तनाशक चिकित्साकरे ॥ ७ ॥

मञ्जिष्ठां मधुकं रास्नां सहिंस्रां सपुनर्नवाम् ।
पिष्ट्वारनालैर्लेपोऽयं पित्तश्लीपदशान्तये ॥ ८ ॥

पित्तजश्लीपदको दूर करनेके लिये मंजीठ, मुलैठी, रास्ना, कटेरी और पुनर्नवा इनको काँजीमें पीसकर लेप करे ॥ ८ ॥

शिरां सुविदितां विध्येदङ्गुष्ठे श्लेष्मश्लीपदे ।
मधुयुक्तानि वा तीक्ष्णकषायाणि पिबेन्नरः ॥ ९ ॥

पित्तजश्लीपद रोगमें पैरके अँगूठेकी शिराको वेधे और कफनाशक तीक्ष्ण-द्रव्योंके क्काथको शहद मिलाकर पीवे ॥ ९ ॥

पिबेत्सर्षपतैलेन श्लीपदानां निवृत्तये ।
पूतीकरञ्जच्छदजं रसं वापि यथाबलम् ॥
अनेनैव प्रकारेण पुत्रञ्जीवकजं रसम् ॥ १० ॥

पूतीकरञ्जके पत्तोंके रसको अथवा जियापोतेके पत्तोंके स्वरसको सरसोंके तेलके साथ अपनी अग्निक ाबल विचारकर पान करे तो श्लीपदरोग निवृत्त होता है ॥ १० ॥

काञ्जिकेन पिबेच्चूर्णं मूत्रैर्वा वृद्धदारजम् ।
रजनीं गुडसंयुक्तां गोमूत्रेण पिबेन्नरः ॥
वर्षोत्थं श्लीपदं हन्ति दद्रुकुष्ठं विशेषतः ॥ ११ ॥

विधारेके चूर्णको काँजी अथवा गोमूत्रके साथ पान करे। या हल्दी और गुडको गोमूत्रमें मिलाकर पान करे तो एक वर्षके पुराने श्लीपदरोगे, दाद और विशेषकर कुष्ठरोग नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

गन्धर्वतैलभृष्टां हरीतकीं गोजलेन यः पिबति।
श्लीपदबन्धनमुक्तो भवत्यसौ सप्तरात्रेण ॥ १२ ॥

हरडोंको अण्डीके तेलमें भूनकर गोमूत्रके साथ सात दिनतक सेवन करनेसे श्लीपदरोग दूर होता है ॥ १२ ॥

धान्याम्लं तैलसंयुक्तं कफवातविनाशनम्।
दीपनश्चामदोषघ्नमेतच्छ्लीपदनाशनम् ॥ १३ ॥

काँजी और कडवे तेलको एकत्र मिलाकर पीनेसे कफ-वातजन्यरोग, आमदोष विशेषकर श्लीपदरोग नष्ट होते हैं और अग्नि दीपन होती है ॥ १३ ॥

गोधावतीमूलयुक्तां खादेन्माषण्डरीं नरः।
जयेच्छ्लीपदकेनोत्थं ज्वरं सद्यो न संशयः ॥ १४ ॥

हंसपदीकी जडके १ तोला चूर्णको उडदोंकी इमरतीमें मिलाकर खानेसे श्लीपदसे उत्पन्न हुआ ज्वर शीघ्र नाश होता है ॥ १४ ॥

श्लीपदघ्नो रसोऽभ्यासाद्गुडूच्यास्तैलसंयुतः ॥ १५ ॥

गिलोयके स्वरसको कडवे तैलके साथ प्रतिदिन पान करनेसे श्लीपदरोग बहुत जल्द नष्ट होता है ॥ १५ ॥

वृद्धदारकचूर्ण।

त्रिकटु त्रिफला चव्यं दार्वी वरुणगोक्षुरम्।
अलम्बुषां गुडूचीं च समभागानि चूर्णयेत् ॥ १६ ॥
सर्वेषां चूर्णमाहृत्य वृद्धदारस्य तत्समम्।
काञ्जिकेन च तत्पेयमक्षमात्रां प्रमाणतः ॥ १७ ॥
जीर्णे च परिहारः स्याद्भोजनं सर्वकामिकम्।
नाशयेच्छ्लीपदं स्थौल्यमामवातश्च दारुणम् ॥ १८ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, चव्य, दारुहलदी, वरनाकी छाल, गोखुरू, गोरखमुण्डी और गिलोय ये सब औषधि समानभाग लेकर चूर्णकर लेवे। फिर समस्त चूर्णके बराबरभाग विधारेका चूर्ण मिलाकर सबको एकत्र पीस लेवे। इस चूर्णको दो तोले प्रमाण लेकर काँजीके साथ सेवन करे। औषधिके जीर्ण अर्थात् पचजानेपर इच्छानुसार भोजन करे। यह चूर्ण दारुण श्लीपद, स्थूलता और आमवातादि विकारोंको नष्ट करता है॥१६–१८

पिप्पल्याद्यचूर्ण ।

पिप्पली त्रिफला दारु नागरं सपुनर्नवम् ।
भागैर्द्विपलिकैरेषां तत्समं वृद्धदारुकम् ॥ १९ ॥
काञ्जिकेन पिबेच्चूर्णं कर्षमात्रं प्रमाणतः ।
जीर्णे च परिहारं स्याद्भोजनं सर्वकामिकम् ॥ २० ॥
श्लीपदं वातरोगांश्च हन्यात्प्लीहानमेव च ।
अग्निं च कुरुते घोरं भग्नकञ्च नियच्छति ॥ २१ ॥

पीपल, त्रिफला, देवदारु, सोंठ और पुनर्नवा ये प्रत्येक औषधि आठ आठ तोले और सबोंके बराबर भाग विधारा लेवे । फिर सबोंको एकत्र मिलाकर बारीक चूर्ण करलेवे । प्रतिदिन एक तोले चूर्णको काँजीके साथ पान करे । इसके जीर्ण (हज्म) होनेपर यथारुचि भोजन करे । यह चूर्ण श्लीपद, वातजरोग, तिल्ली भग्नकरोगको दूर करता तथा जठराग्निकी अत्यन्तवृद्धि करताहै॥

श्लीपदारि ।

निम्बं खदिरसारञ्च मधुना चाष्टमाषकम् ।
गवां मूत्रेण पिष्ट्वा तु पिबेच्छ्लीपदशान्तये ॥ २२ ॥

नीमकी छाल और कत्थेको आठ आठ माशे लेकर एकत्र गोमूत्रमें पीस लेवे। फिर शहदके साथ मिलाकर पान करे तो श्लीपदरोग शमन होता है ॥२२॥

श्लीपदगजकेशरी ।

व्योषामृतयमानी च सूतोऽग्निर्गन्धकं शिला ।
सौभाग्यं जयपालञ्च चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ २३ ॥
भृङ्गगोक्षुरजम्बीरार्द्रकतोयैर्विमर्दयेत ।
अस्य रक्तिद्वयं खादेदुष्णतोयानुपानतः ॥
श्लीपदं दुस्तरं हन्ति प्लीहानं हन्ति सेवितः ॥ २४ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, शुद्ध मीठातेलिया, अजवायन, शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, चीता, मैनसिल, सुहागा और जमालगोटा इन सबोंको समानभाग लेकर एकत्र चूर्णकरलेवे । पश्चात् इस चूर्णको भाङ्गरा, गोखुरू, जम्बीरीनींबू और अदरख इनके रसद्वारा उत्तम प्रकार खरल करलेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल इसकी दो रत्ती मात्राको उष्ण जलके साथ सेवन करे तो दुस्तर श्लीपद और प्लीहारोग नष्ट होते हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

नित्यानन्दरस ।

हिंगूलसम्भवं सूतं गन्धकं मृतताम्रकम् ।
कांस्यं वङ्गं हरीतालं तुत्थं शङ्खं वराटिका ॥ २५ ॥
त्रिकटु त्रिफला लौहं विडङ्गं पटुपञ्चकम् ।
चविका पिप्पलीमूलं हबुषा च वचा तथा ॥ २६ ॥
शठी पाठा देवदारु एला च वृद्धदारकम् ।
त्रिवृता चित्रकं दन्ती गृहीत्वा तु पृथक् पृथक् ॥२७॥
एतानि समभागानि सञ्चूर्ण्य गुडकीकृतम् ।
हरीतकीरसं दत्त्वा दशगुञ्जोन्मितं शुभम् ॥ २८ ॥
एकैकं भक्षयेन्नित्यं शीतञ्चानु पिबेज्जलम् ।
श्लीपदं कफवातोत्थं रक्तमांसाश्रितञ्च यत् ॥
मेदोगतं धातुगतं निहन्ति नात्र संशयः ॥ २९ ॥
अर्बुदं गण्डमालाञ्च वातरक्तं सुदारुणम् ॥
कफवातोद्भवं रोगमन्त्रवृद्धिं चिरन्तनीम् ।
वातरक्ते वातकफे गुदरोगे कृमौ तथा ॥ ३० ॥
अग्निवृद्धिं करोत्येष बलवर्णञ्च सुस्थताम् ।
श्रीमद्गहननाथेन निर्म्मितो विश्वसम्पदे ॥ ३१ ॥
नित्यानन्दरसश्चायं महाश्लीपदनाशनः ।
रक्तजे पित्तजे चापि श्लीपदे योजयेदमुम् ॥
नातः परतरं किञ्चिद्विद्यते श्लीपदामये ॥ ३२ ॥

सिंगरफसे निकालाहुआ पारा, शुद्धगन्धक, ताँबे, काँसे और वङ्गकी भस्म, हरताल, नीलाथोथा, शङ्खभस्म, कौडीकी भस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, लोहभस्म, वायविडङ्ग, पाँचोंनमक, चव्य, पीपलामूल, हाऊबेर, वच, कचूर, पाढ, देवदारु, छोटी इलायची, विधारा, निसोत, चीता और दन्तीकी जड इन सबऔषधियोंको समानभाग लेकर एकत्र कूटपीस कर चूर्ण करलेवे । फिर इस चूर्णको हरडोंके काथ और गुडमें अच्छेप्रकार खरल करके दस २ रत्तीकी सुन्दर गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली सेवन करे और ऊपरसे शीतल जल पीवे । यह औषधि कफ-

वातजन्य अथवा दूषितरक्त और मांससे उत्पन्न हुए श्लीपद, मेदोगत तथा धातुगतश्लीपद, अर्बुद, गण्डमाला, दारुण वातरक्त, कफ और वातसे होनेवाले रोग, अन्त्रवृद्धि, वातकफका वातरक्त, बवासीर और कृमिरोगको निश्चय नाश करती है। एवं अग्निकी वृद्धि, बल, वर्ण और आरोग्यताको उत्पन्न करती है। सांसारिकजीवोंके कल्याणके लिये श्रीमान् गहनानन्दनाथने इसको निर्माण किया है। यह नित्यानन्दरस अत्यन्त कठिन और पुराने श्लीपदको तत्काल नष्ट करता है। इसको रक्तज और पित्तज श्लीपद रोगमें भी प्रयोग करना चाहिये। श्लीपदरोगको नष्ट करनेके लिये इससे बढकर शक्तिशाली दूसरी औषधि नहीं है ॥ २५-३२ ॥

कृष्णाद्यमोदक।

कृष्णाचित्रकदन्तीनां कर्षमर्द्धपलं पलम्।
विंशतिश्च हरीतक्या गुडस्य तु पलद्वयम ॥
मधुना मोदकं खादेच्छ्लीपदं हन्ति दुस्तरम् ॥ ३३ ॥

पीपल १ तोला, लाल चीतेकी जडका चूर्ण दो तोले, दन्तीकी जडका चूर्ण ४ तोले, हरडें २० और पुराना गुड ८ तोले लेवे। सबोंको एकत्र कूट पीसकर लड्डू बनालेवे। प्रतिदिन एक लड्डू शहदके साथ खानेसे दुस्तर श्लीपद-रोग दूर होता है ॥ ३३ ॥

सौरेश्वरघृत।

सुरसा देवकाष्ठञ्च त्रिकटुत्रिफले तथा।
लवणान्यथ सर्वाणि विडङ्गान्यथ चित्रकम् ॥ ३४ ॥
चविका पिप्पलीमूलं गुग्गुलुर्हबुषा वचा।
जवाग्रजञ्च पाठा च शठ्येला वृद्धदारकम् ॥ ३५ ॥
कल्कैश्च कार्षिकैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
दशमूलकषायेण धान्याम्लेन द्रवेण च ॥ ३६ ॥
दधिमस्तुसमायुक्तं प्रस्थं प्रस्थं पृथक्पृथक्।
पक्कं स्यादुद्धृतं कल्कात्पिबेत्कर्षत्रयं हविः ॥ ३७ ॥
श्लीपदं कफवातोत्थं मांसरक्ताश्रितञ्च यत्।
मेदोश्रितञ्च वातोत्थं हन्यादेव न संशयः ॥ ३८ ॥
अपचीं गण्डमालाञ्च अन्त्रवृद्धिं तथार्बुदम्।

नाशयेद्ग्रहणीदोषं श्वयथुं गुदजानि च ॥
परमग्निकरं हृद्यं कोष्ठकृमिविनाशनम् ॥ ३९ ॥

काली तुलसी, देवदारु, त्रिकुटा, त्रिफला, पाँचोंनमक, वायविडंग, चीता, चव्य, पीपलामूल, गूगल, हाऊबेर, वच, जवाखार, पाढ, कचूर, छोटी इलायची और विधारा इन औषधियोंका कल्क दो दो तोले एवं दशमूलका काढा एक प्रस्थ, काँजी एक प्रस्थ और दहीका तोड एक प्रस्थ लेवे। फिर इन सबोंके द्वारा गौके एक प्रस्थ उत्तम घृतको अच्छेप्रकार पकावे। नित्यप्रति प्रातः समय इस घृतको तीन तीन तोलेकी मात्रासे सेवन करे। यह घृत कफवातजन्यश्लीपद, मांस और रक्तगतश्लीपद, मेदोश्रितश्लीपद, वातोत्पन्नश्लीपदरोग, अपची, गंडमाला, अन्त्रवृद्धि, अर्बुद, संग्रहणी, सूजन, बवासीरादिगुदाके रोग तथा कोष्ठस्थित कृमियोंको तत्क्षण नष्ट करता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं है। उदराग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाला और हृदयको परम हितकारी है ॥ ३४-३९ ॥

विडङ्गादितैल ।

विडङ्गमरिचार्केषु नागरे चित्रके तथा ।
भद्रदार्वेलकाह्वे च सर्वेषु लवणेषु च ॥
तैलं पक्वं पिबेद्वापि श्लीपदानां निवृत्तये ॥ ४० ॥

वायविडङ्ग, कालीमिरच, आककी जड, सोंठ, चीता, देवदारु, इलायची और सर्वप्रकारके लवण इनके समानभाग मिश्रित कल्कके द्वारा सरसोंके तेलको विधिपूर्वक पकावे। इस तेलको पान और मर्दन करनेसे श्लीपदरोग शीघ्र शमन होजाता है ॥ ४० ॥

श्लीपदरोगमें पथ्य ।

प्रच्छर्दनं लंघनमस्रमोक्षः स्वेदो विरेकः परिलेपनश्च ।
पुरातनाःषष्टिकशालयश्च यवाः कुलत्था लशुनं पटोलम् ४१
वार्त्ताकुशोभाञ्जनकारवेल्लपुनर्नवामूलकपूतिकाश्च ।
एरण्डतैलं सुरभीजलश्च कटूनि तिक्तानि च दीपनानि ४२॥

वमन, लंघन, रक्तमोक्षण, स्वेदप्रदान, जुल्लाब, प्रलेपादिक्रियायें करना, पुराने साठीं और शालिधानोंके चावल, जौ, कुलथी, लहसन, परबल, बैंगन, सहिंजनेकी फली, करेलादि पदार्थोंका भोजन, पुनर्नवा, मूली, पूतीकरञ्जके पत्ते, अण्डीका तेल, गोमूत्रादि औषधियें, कडवे चरपरे तथा सर्वप्रकारके पाचक पदार्थ, [illegible] ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

श्लीपदरोगमें अपथ्य ।

पिष्टान्नं दुग्धविकृतिं गुडमानूपमामिषम् ।
स्वादुरसं पारियात्रसह्यविन्ध्यनदीजलम् ॥
पिच्छिलं गुर्वभिष्यन्दि श्लीपदी परिवर्जयेत् ॥ ४३ ॥

पिसेहुए अन्न, दूधके बने (दही, मठाआदि) पदार्थ, गुड, अनूपदेशके प्राणियोंका मांस, मीठेरस एवं पारियात्र, सह्याचल और विन्ध्याचलसे निकली हुई नादियोंका जल, पिच्छिल (चिकने और चिपकते हुए) द्रव्य, भारी और कफकारक पदार्थ इन सबको श्लीपदरोगी त्यागदेवे ॥ ४३ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां श्लीपदरोगचिकित्सा ।

विद्रधिकी चिकित्सा ।

जलौकापातनं शस्तं सर्वस्मिन्नेव विद्रधौ ।
मृदुर्विरेको लघ्वन्नं स्वेदं पित्तोत्तरं विना ॥ १ ॥

सर्वप्रकारकी विद्रधिमें प्रथम जौंक लगवाकर दूषित रक्त निकलवावे । फिर मृदु विरेचन देकर हलके अन्नका भोजन और पित्तज विद्रधिको छोडकर स्वेद प्रदान करे ॥ १ ॥

वातघ्नमूलकल्कैस्तु वसातैलघृतान्वितैः ।
सुखोष्णो बहुशो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ॥ २ ॥

वातकी विद्रधिमें,वातनाशक दशमूलकी औषधियोंके कल्कसे वसा (चर्बि) तेल और घृतादिको सिद्ध करके बारम्बार सुहातासुहाता लेप करना चाहिये २

स्वेदोपनाहाः कर्त्तव्याः शिग्रुमूलसमान्वितः ॥ ३ ॥

सहिंजनेकी जडकी छालको वेसवार या काँजीमें पीसकर विद्रधिपर लेप और स्वेदक्रिया करे ॥ ३ ॥

यवगोधूममुद्गैश्च सिद्धपिष्टैः प्रलेपयेत् ।
विलीयते क्षणेनैवमपक्वश्चैव विद्रधिः ॥ ४ ॥

जौ, गेहूँ और मूँग इनको एकत्र पकाकर और पीसकर लेपकरे तो अपक्व विद्रधि क्षणमात्रमें ही नष्ट होजाती है ॥ ४ ॥

पुनर्नवादारुविश्वदशमूलभवाम्भसा ।
गुग्गुलुं रुबुतैलं वा पिबेन्मारुतविद्रधौ ॥ ५ ॥

पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ और दशमूल इनके काथमें गूगल अथवा अण्डीका तेल मिलाकर पीनेसे वातजनित विद्रधिरोगमें शीघ्र उपकार होता है ॥ ५ ॥

पैत्तिके शर्करालाजमधुकैः शारिवायुतैः ।
प्रदिह्यात्क्षीरपिष्टैर्वा पयसोशीरचन्दनैः ॥ ६ ॥

पित्तकी विद्रधिमें, खांड, खीलें, मुलैठी और सारिवा इनको एकत्र दूधमें पीसकर अथवा क्षीरकाकोली, खस और चन्दन इनको पीसकर लेपकरे तो पित्तज विद्रधि दूर होती है ॥ ६ ॥

पञ्चवल्कलकल्केन घृतमिश्रेण लेपनम् ।
यष्ट्याह्वशारिवादूर्वानलमूलैः सचन्दनैः ।
क्षीरपिष्टैः प्रलेपस्तु पित्तविद्रधिनाशनः ॥ ७ ॥

वड, पीपल, पाखर, गूलर और बेंत इनकी छालको पीसकर घीमें मिलाकर लेपकरे अथवा मुलैठी, गौरीसर, दूब, नलमूल और लालचन्दन इनको दूधमें पीसकर लेपकरे तो पित्तकी विद्रधि नष्ट होती है ॥ ७ ॥

इष्टकासिकतालोहगोशकृत्तुषपांसुभिः ।
मूत्रपिष्टैश्च सततं स्वेदयेच्छ्लेष्मविद्रधिम् ॥ ८ ॥

ईटका चूरा, रेता, लोहेका चूरा, गोबर, भूसी और धूल इन सबोंको गोमूत्रमें मिलाकर गरम करले फिर अण्डके पत्तेपर फैलाकर कफकी विद्रधिमें सुहाता २ निरन्तर स्वेददेवे ॥ ८ ॥

पित्तविद्रधिवत्सर्वां क्रियां निरवशेषतः ।
विद्रध्योः कुशलं कुर्याद्रक्तागन्तुनिमित्तयोः ॥ ९ ॥

रक्तज और आगन्तुक विद्रधिरोगोंमें, पित्तकी विद्रधिकी समान समस्त चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ९ ॥

शोभाञ्जनकनिर्यूहो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः ।
अचिराद्विद्रधिन्हन्ति प्रातः प्रातर्निषेवितः ॥ १० ॥

सहिंजनेकी छालके काथमें हींग और सैंधानमक मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करे तो बहुत शीघ्र विद्रधिरोग नष्ट होता है ॥ १० ॥

शिग्रुमूलं जले धौतं दरापिष्टं प्रगालयेत् ।
तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रधिं नरः ॥ ११ ॥

सहिंजनेकी जडको जलमें धोकर पत्थरपर पीसकर वस्त्रमें छानलेवे। फिर उस रसको शहदके साथ पान करे तो अन्तर्विद्रधिरोग नाश होता है॥ ११॥

श्वेतवर्षाभुवोर्मूलं मूलं वरुणकस्य च।
जलेन क्वथितं पीतमपक्वं विद्रधिं जयेत्॥ १२॥

सफेद पुनर्नवेकी जड और वरनावृक्षकी जडके काथको बनाकर पान करे तो अपक्व (बिनापकी) विद्रधि दूर होती है॥ १२॥

शमयति पाठामूलं क्षौद्रयुतं तण्डुलाम्भसा पीतम्।
अन्तर्भूतं विद्रधिमुद्धतमाश्वेव मनुजस्य॥ १३॥

पाढकी जडको चावलोंके जलके साथ पीसकर एवं शहदमें मिलाकर पीनेसे अन्तर्विद्रधिरोग शीघ्र शमन होता है॥ १३॥

अपक्वे त्वेतदुद्दिष्टं पक्वे तु व्रणवत् क्रिया॥ १४॥

ये सब उपर्युक्त उपचार अपक्वविद्रधिमें कहे हैं अतः उसी अवस्थामें प्रयोग-करे। किन्तु पक्वविद्रधिमें व्रणशोथके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये॥१४॥

स्रुतेऽप्यूर्ध्वमधश्चैव मैरेयाम्लसुरासवैः।
पेयो वरुणकादिस्तु मधुशिग्रुद्रुमोऽथवा॥ १५॥

अन्तर्विद्रधि विदीर्ण होकर उसमेंसे ऊपर अथवा नीचेको पीब, रक्तादि बहुत हो तो ईखके रसकी मदिरा, काँजी, मद्य और आसव इनको वरुणादि-गणकी औषधियोंके काथमें मिलाकर अथवा लाल सहिंजनके उष्ण काथके साथ पानकरे॥ १५॥

वरुणादिघृत।

सिद्धं वरुणादिगणैर्विधिना तत्कल्कपाचितं सर्पिः।
अन्तर्विद्रधिमुग्रं मस्तकशूलं हुताशमान्द्यञ्च॥ १६॥
गुल्मानपि पञ्चविधान्नाशयतीदं यथाम्बु वायुसखम्।
एतत्प्रातः प्रपिबेद्भोजनसमये निशास्येऽपि॥ १७॥

वरुणादिगणकी औषधियोंके काथ और कल्क द्वारा विधिपूर्वक घृतको पकावे। यह घृत यथानियम पान करनेसे अत्युग्र अन्तर्विद्रधि शिरःशूल, मन्दाग्नि और पाँचोंप्रकारके गुल्मादि रोगोंको इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार अग्नि जलको तत्क्षण सुखा देती है। इस घृतको प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्या समय भोजनके पश्चात् सेवन करे॥ १६॥ १७॥

विद्रधिरोगमें पथ्य।

आमावस्थे रेचनानि लेपः स्वेदोऽस्रमोक्षणम्।
जीर्णाः श्यामाककलमाः कुलत्थलशुनानि च॥ १८॥
रक्तशिग्रुश्च निष्पावः कारवेल्लं पुनर्नवा।
श्रीपर्णं चित्रकः क्षौद्रं शोथोक्तानि च सर्वशः॥ १९॥
पक्वावस्थे शस्त्रकर्म्म पुराणा रक्तशालयः।
घृतं तैलं मुद्गरसो विलेपी धन्वजा रसाः॥ २०॥
शालिञ्चशाकं कदलं पटोलं हिमवालुका।
चन्दनं तप्तशीताम्बु सर्वञ्चापि व्रणोदितम्॥ २१॥
नराणां विद्रधिव्याधौ यथावस्थं यथामलम्।
पथ्यान्येतानि सर्वाणि निर्दिष्टानि महर्षिभिः॥२२॥

विद्रधिकी अपक्वअवस्थामें जुल्लाब देना, प्रलेप, पसीना और रक्तनिकलवाना, पुराने समा धान और कलमीधानोंके चावल, कुलथी, लहसन, लालसहिंजना, सेमकी फली, करेला, पुनर्नवा, कुम्भेर, चीता, शहद और शोथरोगमें कहीहुई सम्पूर्ण औषधियें हितकारी हैं। एवं विद्रधिकी पक्व अवस्थामें शस्त्रक्रिया करना, पुराने लाल शालिके चावल, घी, तेल मूँगका यूष, विलेपी और मरुदेशके पशु-पक्षियोंका मांसरस, शालिञ्चशाक, केलेकी कच्ची फली, परबल, कपूर, चन्दन, गरम करके शीतल कियाहुआ जल और व्रणरोगके अधिकारमें कहेहुए सब पदार्थ दोषोंकी न्यूनाधिकता तथा अवस्थानुसार देवे। प्राचीन आयुर्वेदाचार्यमहर्षिगणने पूर्वलिखित सब पदार्थोंको हितकर विधान कियाहै॥ १८–२२॥

विद्रधिरोगमें अपथ्य।

शोथिनां यान्यपथ्यानि व्रणिनामहितानि च।
क्रमादामे च पक्वे च विद्रधौ वर्जयेन्नरः॥ २३॥

शोथाधिकारमें जो द्रव्य अपथ्य विधान कियेगये हैं उनको अपक्वविद्रधिमें और व्रणरोगमें जिनको अहितकर कहा है उन सब पदार्थोंको पक्व विद्रधिमें त्याग देवे॥ २३॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां विद्रधिचिकित्सा॥

व्रणशोथकी चिकित्सा।

आदौ विम्लापनं कुर्याद् द्वितीयमवसेचनम्।
तृतीयमुपनाहन्तु चतुर्थीं पाटनक्रियाम्॥ १॥
पञ्चमं शोधनं कुर्य्यात्षष्ठं रोपणमिष्यते।
एते क्रमा व्रणस्योक्ताः सप्तमो वैकृतापहः॥ २॥

व्रणशोथरोगमें प्रथम विम्लापन (अँगूठेसे तेल लगाकर रगडना) क्रिया करे, दूसरे रक्तमोक्षण, तीसरे उपनाह अर्थात् (पुलटिस बाँधना, प्रलेप, स्वेद और पकानेकी औषधि लगाना) चौथे व्रणको चीरना, पाँचवें दूषित रक्त, पीब आदिका शोधन, छठे रोपण (व्रणको भरनेवाली औषधि लगाना) और सातवें विकृतिनाश (अर्थात् व्रणके स्थानमें जो गूथ पडजाती है उसको शारीरिक त्वचाके वर्णमें मिलादेना) इस प्रकार व्रणकी चिकित्साकरनेकी ये सात क्रियायें कही हैं॥ १॥ २॥

व्रणे श्वयथुरायासात्स च रागश्च जागरात्।
तौ च रुक् च दिवास्वप्नात्ताश्च मृत्युश्च मैथुनात्॥ ३॥

व्रणरोगमें परिश्रम करनेसे तथा रात्रिमें जागनेसे सूजन और लाली अधिक उत्पन्न होती हैं। दिनमें सोनेसे सूजन, लाली और पीडा एवं स्त्रीप्रसङ्ग करनेसे सूजन, लाली और मृत्यु होती है॥ ३॥

धुस्तुरमूलं सलवणमुष्णं व्रणस्थित्यारम्भे।
दत्तं लेपान्नियतं व्रणशोथं हरति बहुदुष्टम्॥ ४॥

व्रणकी प्रथमावस्थामें धतूरेकी जड और सैंधानमकको एकत्र पीसकर गरम करके लेप करनेसे अत्यन्त बढीहुई व्रणकी सूजन निश्चय दूर होती है॥ ४॥

कल्कः काञ्जिकसंपिष्टः स्निग्धशाखोटकत्वचः।
सुपर्ण इव नागानां वातशोथविनाशनः॥ ५॥

सहोरावृक्षकी छालको काँजीमें पीसकर घीमें मिलाकर प्रलेप करनेसे जैसे गरुडजी सर्पोंको तत्काल नष्ट करदेतेहैं उसी प्रकार वातकी सूजन नष्ट होतीहै॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः।
ससर्पिष्कैः प्रलेपः स्याच्छोथनिर्वापणः परः॥ ६॥
" समभागपिष्टैर्घृतमिश्रैर्लेपः॥ "

बड, गूलर, पीपल, पाखर और बेंत इनकी छालको समानभाग लेकर एकत्र पीसलेवे। फिर उसको घृतमें मिलाकर लेपकरे तो अत्यन्त वृद्धिगत व्रणकी सूजन दूर होती है॥ ६॥

न रात्रौ लेपनं दद्याद्दत्तश्च पतितं तथा।
न च पर्युषितं शुष्यमाणं नैवावधारयेत॥ ७॥
शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदेहं पीडनं प्रति।
न चापि मुखमालिम्पेत्तेन दोषः प्रसिच्यते॥ ८॥

रात्रिमें लेप नहीं करे। यदि लेप कीहुई औषधि नीचे पृथ्वीपर गिरपडे तो फिर उसका लेप नहीं करे। एवं बासी और सूखी औषधिका भी लेप नहीं करे। सूखेहुए लेपको तत्काल छुडादेना चाहिये। क्योंकि सूखाहुआ लेप दाह और पीडा उत्पन्न करता है। व्रणके मुखपर लेप नहीं करे, क्योंकि उसके मुखके द्वाराही रस, रक्तादिदोष बाहर निकलते हैं। अतः व्रणके चारों तरफ लेप करना चाहिये॥ ७॥ ८॥

रक्तावसेचनं कुर्यादादावेव विचक्षणः।
शोथे महति संवृद्धे वेदनावति च व्रणे॥ ९॥
यो न याति शमं लेपः स्वेदः सेकापतर्पणैः।
सोऽपि नाशं व्रजत्याशु शोथः शोणितमोक्षणात १०
एकतश्च क्रियाः सर्वा रक्तमोक्षणमेकतः।
रक्तं हि व्यम्लतां याति तच्च नास्ति न चास्ति रुक्११

व्रणरोगमें अधिकतर बढीहुई सूजन और पीडा होनेपर प्रथम रुधिरका निकालना उचित है। क्योंकि जो सूजन लेप करनेसे स्वेद देनेसे सेकनेसे और अपतर्पणादिक्रियाओंके करनेसे भी दूर नहीं होती, वह एकमात्र रुधिर निकालनेसे तत्क्षण नष्ट होजाती है। व्रणशोथमें अन्यान्य सर्वप्रकारकी चिकित्साओंकी अपेक्षा केवल एकमात्र रुधिरका निकालना सर्वोत्तम चिकित्सा है। क्योंकि रुधिरके दूषित होनेसे फोडे, फुन्सी आदि रक्तविकार उत्पन्न होते हैं, अतः उस दुष्ट रुधिरके निकाल देनेसे तज्जन्यपीडा शीघ्र नष्ट होती है९-११

स चेदेवमुपक्रान्तः शोथो न प्रशमं व्रजेत्।
तस्योपनाहैः पक्वस्य साधनं हितमुच्यते॥ १२॥

यदि उपर्युक्त क्रियाओंके करनेसे भी सूजन दूर नहीं हो तो उसको प्रलेप, स्वेदादि द्वारा पकाकर छेदन और शोधन कर्म करना हितकारी है ॥ १२ ॥

बालवृद्धासहक्षीणभीरूणां योषितामपि ।
मर्मोपरि च जाते च पक्के भेदनलेपनम् ॥ १३ ॥

बालक, वृद्ध, असहनशील, क्षीण मनुष्य, डरपोक और स्त्रियोंके उत्पन्नहुए व्रणों एवं मर्मस्थानोंमें उत्पन्नहुए व्रणोंको पकनेपर विदीर्णकारक औषधियोंके लेपसे भेदन करे । शस्त्रद्वारा कदापि छेदन नहीं करे ॥ १३ ॥

गवां दन्तं जले घृष्टं बिन्दुमात्रं प्रलेपयेत् ।
अत्यन्तकाठिने वापि शोथे पाचनभेदनम् ॥ १४ ॥

गौके दाँतको जलमें घिसकर एक बूंद भर लगादेनेसे अत्यन्त कठिन सूजन तत्काल पककर फूट जाती है ॥ १४ ॥

कटुतैलान्वितैर्लेपात्सर्पनिर्मोकभस्मभिः ।
चयः शाम्यति गण्डस्य प्रकोपः स्फुटाति द्रुतम् ॥
कपोतकङ्कगृध्राणां पुरीषमपि दारुणम् ॥ १५ ॥

साँपकी कैंचलीको अन्तर्धूमवाले पात्रमें जलाकर भस्म करलेवे । उस भस्मको कडवे तेलमें मिलाकर लेप करनेसे अथवा कबूतर, कङ्क और गिद्ध इनमेंसे किसी एककी वीठका लेप करनेसे अत्यन्त दारुण गण्डका समूह नष्ट होताहै और व्रणकी गाँठ तत्काल पककर फूट जाती है ॥ १५ ॥

निम्बपत्रं तिलं दन्ती त्रिवृत्सैन्धवमाक्षिकम् ।
दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनकेशरी ॥ १६ ॥

नीमके पत्ते, काले तिल, दन्तीकी जड, निसोत और सैन्धानमक इन सबोंको समान भाग लेकर एकत्र पीस लेवे । फिर शहदमें मिलाकर लेप करे तो दुष्ट व्रण नष्ट होता है। व्रणकोशुद्धकरनेके लिये यह अत्युकट औषधिहै१६

एकं वा शारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम् ॥ १७ ॥

केवल एकमात्र सारिवाकी जडको जलमें पीसकर लेप करनेसे सर्वप्रकारके व्रणोंका संशोधन होता है ॥ १७ ॥

सप्तदलदुग्धकल्कः शमयति दुष्टव्रणं लेपात् ।
मधुयुक्ता शरपुङ्खा सर्वव्रणरोपिणी कथिता ॥ १८ ॥

सतौनेका दूध लगानेसे अथवा शरफोंकेकी जडको पीसकर शहदमें मिलाकर लेप करनेसे सर्वप्रकारके दुष्टव्रण शान्त होते हैं ॥ १८ ॥

मानुषशिरःकपालं तदस्थि वा लेपनं मूत्रेण।
रोपणमिदं क्षतानां योगशतैरप्यसाध्यानाम् ॥ १९ ॥

मनुष्यके शिरके कपालकी हड्डीको गोमूत्रमें अच्छे प्रकार घिसकर लेप करे। यह प्रयोग जो सैकडों उपायोंके करनेसे भी असाध्य होगये हैं ऐसे व्रणोंको तत्काल भर देताहै ॥ १९ ॥

सुषवीपत्रपत्तूरकर्णमोटकुठारके।
पृथगेते प्रलेपेन गम्भीरव्रणरोपणाः ॥ २० ॥

करेलेके पत्ते, शान्तिशाकके पत्ते, बबूरके पत्ते वनतुलसीके पत्ते इनमेंसे किसी एकको बारीक पीसकर लेपकरनेसे अत्यन्त गम्भीर व्रण शीघ्र भरतेहैं२०

लौहकुद्दालके घृष्ट्वा लिम्पाकफलवारिणा।
श्वेतार्कसम्भवं मूलं लेपं दद्यात्क्षतोपरि ॥
अपि योगशतासाध्यं क्षतं हन्ति न संशयः ॥ २१ ॥

सफेद आककी जडको लिम्पाकफल (एक प्रकारकानींबू) के रससे लोहेके हमामदस्तेमें खरलकरके व्रणपर लेपकरे। यह औषधि सैकडों प्रयोगोंके करनेसे भी सिद्ध न होनेवाले व्रणको निस्सन्देह दूर करती है ॥ २१ ॥

श्वेतकरवीरमूलस्वरसं द्विपलोन्मितम्।
पलाष्टकमिदं गव्यक्षीरमेकत्र मिश्रयेत् ॥ २२ ॥
दधि कृत्वा तदावर्त्य निर्मथ्य नवनीतकम्।
गृहीत्वा तेन लेपेन क्षतं हन्ति चिरोत्थितम् ॥ २३ ॥

सफेद कनेरकी जडका रस ८ तोले और गौका दूध ३२ तोले लेकर एकत्र मिलाकर दही जमादेवे। फिर उस दहीको मथकर नौनी घी निकाले। उस घृतका लेप करनेसे बहुत दिनोंका पुराना घाव शीघ्र नष्ट होता है॥२२॥२३॥

त्रिफला-गुग्गुलु।

ये क्लेदपाकस्रुतिगन्धवन्तो व्रणाश्चिरोत्थाः सरुजः सशोथाः।
प्रयान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन पीतेन शान्तिं त्रिफलारसेन २४

जो बहुत पुराने, पीडायुक्त, सूजनवाले व्रण हो और जिनमें पाक क्लेद-युक्त, (अर्थात् गीला) हो, स्राव होय तथा दुर्गन्ध आती हो ऐसे व्रण शुद्ध गूगल मिलेहुए त्रिफलेका रस पीनेसे शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ २४ ॥

तिलाष्टक ।

तिलकल्कः सलवणो द्वे हरिद्रे त्रिवृद्घृतम् ।
मधुकं निम्बपत्राणि लेपः स्याद्व्रणशोधनः ॥ २५ ॥

कालेतिल, सैन्धानमक, हल्दी, दारुहल्दी, निसोत, मुलैठी और नीमके पत्ते इन सबको समानभाग लेवे, फिर एकत्र बारीक पीसकर घृतमें मिलाकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध होता है ॥ २५ ॥

निर्वापनं घृतं क्षौद्रं तैलं मधुकचन्दनम् ।
लेपनं शोथरुग्दाहरक्तं निर्वापयेद्व्रणात् ॥ २६ ॥

घी, शहद, तेल, मुलैठी और चन्दन इन सबोंको एकत्र मिश्रणकर व्रणमें भरनेसे सूजन, पीडा, दाह और दूषितरक्त तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ २६ ॥

करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीरसो हन्याद्व्रणकृमीन् ।

करञ्ज,नीमके पत्ते,निर्गुंडी इनके रसका लेपकरे तो व्रणके कृमि नष्ट होय॥

सप्ताङ्ग-गुग्गुलु ।

विडङ्गत्रिफलाव्योषचूर्णं गुग्गुलुना समम् ।
सर्पिषा वटिकां कृत्वा खादेद्वा हितभोजनः ॥
दुष्टव्रणापचीमेहकुष्ठनाडीविशोधनम् ॥ २७ ॥

वायविडङ्ग, त्रिफला, सोंठ, मिरच और पीपल इनका चूर्ण एकएक तोला और शुद्ध गूगल ७ तोले लेवे । फिर सबोंको एकत्र घृतमें खरलकरके गोलियाँ बनालेवे । प्रतिदिन नियमानुसार इस औषधिका सेवन करे और इसपर हितकारी भोजन करे तो दुष्टव्रण, अपची, प्रमेह, कुष्ठ और नाडीव्रणादि सब विकार नष्ट होते हैं ॥ २७॥

जात्याद्यघृत और तैल ।

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादार्वीनिशाशारिवा-
मञ्जिष्ठाभयसिक्थतुत्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजैः समैः ।
सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्म्माश्रिताः स्राविणो
गम्भीराः सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुध्यन्ति रोहन्ति च २८
" एवं तैलमपि "

चमेली और नीमके पत्ते, परबल, तेजपात, कुटकी, दारुहल्दी, हल्दी, सारिवा, मंजीठ, हरड, मोम, नीलाथोथा, मुलैठी और करञ्जके बीज इनको समानभाग लेकर पीसलेवे । इस कल्कद्वारा एक सेर गोघृत अथवा तिलके

तेलको ८ सेर जलमें मन्दमन्द अग्निसे पकावे । फिर उस घृत या तेलको लगानेसे मर्म्मस्थानमें उत्पन्नहूए व्रण, झिरतेहुए, अत्यन्त पीडावाले, अत्यन्त वढेहुए व्रण शीघ्र सूखजाते हैं और अंकुर उगआते हैं ॥ २८ ॥

बृहज्जातीकाद्यतैल ।

जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः ।
सिक्थकं मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी ॥ २९ ॥
मञ्जिष्ठा पद्मकं लोध्रमभया पद्मकेशरम् ।
तुत्थकं शारिवा बीजं नक्तमालस्य दापयेत् ॥ ३० ॥
एतानि समभागानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ।
दद्रुवीसर्परोगेषु कीटरोगेषु सर्वशः ॥ ३१ ॥
विषव्रणे समुत्पन्ने कुष्ठरोगेषु सर्वशः ।
सद्यः शस्त्रप्रहारेषु दंष्ट्राविद्धेषु चैव हि ॥ ३२ ॥
नखदन्तक्षते देहे दुष्टमांसापकर्षणम् ।
म्रक्षणार्थमिदं तैलं हितं शोधनरोपणम् ॥ ३३ ॥

चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, परबल, करञ्जके पत्ते, मोम, मुलैठी, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मंजीठ, पद्माख, लोध, हरड, कमलकेशर, नीलाथोथा, अनन्तमूल और करञ्जके बीज इन सबोंको समानभाग लेकर एकत्र कूटपीस लेवे । फिर इस कल्क और एक सेर तिलके तेलको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक पकावे । इस तेलको दाद, विसर्प सर्वप्रकारके कृमिरोग, विषयुक्त व्रण, सम्पूर्ण कुष्ठरोग; तत्काल शस्त्रसे कियेहुए व्रण, दाढ, दाँत और नखोंसे विद्धहुए व्रण और भयङ्कर स्फोटकादिके व्रणोंमें लेप करे । यह बिगडेहुए मांसादि समस्त क्षतोंको शुद्ध करके शीघ्र भरदेता है ॥ २९-३३ ॥

गौराद्यघृत और तैल ।

गौरा हरिद्रा मञ्जिष्ठा मांसी मधुकमेव च ।
प्रपौण्डरीकं ह्रीबेरं भद्रमुस्तं सचन्दनम् ॥ ३४ ॥
जातीनिम्बपटोलञ्च करञ्जं कटुरोहिणी ।
मधूच्छिष्टं समधुकं महामेदा तथैव च ॥ ३५ ॥
पञ्चवल्कलतोयेन घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
एष गौरो महायोगः सर्वव्रणविशोधनः ॥ ३६ ॥

आगन्तुसहजाश्चैव सुचिरोत्थाश्च ये व्रणाः ।
विषमामपि नाडीन्तु शोधयेच्छीघ्रमेव च ॥ ३७ ॥
गौराद्यं जातिकाद्यञ्च तैलमेवं प्रसाधयति ।
तैलं सूक्ष्माननं दुष्टे व्रणे गम्भीर एव च ॥ ३८ ॥

बड, गूलर, पीपल, पिलखन और बेंत इन सबोंकी छालको समभाग लेकर ३२ सेर जलमें पकावे। पकते २ जब ८ सेर जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर इस क्वाथमें एक प्रस्थ घी अथवा तेल तथा हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ, जटामांसी, मुलैठी, पौंडा, सुगन्धवाला, नागरमोथा, लालचन्दन, चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, परबल, बडी करञ्जके बीज, कुटकी, मोम, महुआ और महामेदा इन औषधियोंके समानभाग मिलेहुए कल्कको डालकर यथा-विधि पाककरे । जब अच्छे प्रकार पकजाय तब उतारकर उत्तम पात्रमें रख-देवे । यह गौराद्यनामक घृत अथवा तेल सर्व प्रकारके व्रणोंको सुखानेवाला है। आगन्तुक, सहज और बहुत पुराने घाव और विषम नाडी व्रणको बहुत शीघ्र शुद्ध करता है । ये गौराद्य और जातिकाद्यतेल छोटे मुखवाले, अत्यन्त बिगडे-हुए और गम्भीर व्रणपर लगानेसे शीघ्र उपकार होता है ॥ ३४–३८ ॥

विपरीतमल्लतैल ।

सिन्दूरकुष्ठविषहिङ्गुरसोनचित्रबाणाङ्घ्रिलाङ्गलिककल्कविपक्वतैलम् ।प्रासादमन्त्रयुतफूत्कृतलूनफेनं क्लिन्नव्रणप्रशमने विपरीतमल्लः ॥ ३९ ॥ खङ्गाभिघातगुरुगण्डमहोपदंशनाडीव्रणक्षतविचर्चिककुष्ठपामाः।एतान्निहन्ति विपरीतकमल्लनाम तैलं यथेष्टशयनासनभोजनस्य ॥ ४० ॥

सिन्दूर, कूठ, शुद्ध मीठातेलिया, हींग, लहसन, लाल चीता, शरफोंकेकी जड और कलिहारीकी जड इन सब औषधियोंके समान भाग मिश्रित कल्कके साथ एक सेर तिलके तेलको ८ सेर जलमें पकावे । पकाते समय इस(ॐ ह्राँ ह्रीं ह्रैं ह्रौं शिवाय स्वाहा) मन्त्रको पढता जावे । यदि पकते हुए तेलमें झाग आवें तो उनको फूँकसे मिटादेवे । जब तेल यथाविधि पककर सिद्ध होजाय तब उत्तम पात्रमें करके रखदेवे । इस तेलको मलनेसे क्लिन्न (ग्लानि) युक्त व्रण शमन होता है । एवं तलवारका घाव, दारुण गण्डरोग, भयङ्कर उपदंश,

नाडीव्रण, क्षत, विचर्चिका, कोढ, खुजली आदि रोगोंको यह तेल शीघ्र नष्ट करता है। इसको विपरीतमल्लतेल कहते हैं। इस पर यथेच्छ खान पान और शयनादि कार्य करने चाहिये ॥ ३९ ॥ ४० ॥

व्रणराक्षसतैल।

सूतकं गन्धकं तालं सिन्दूरश्च मनःशिला।
रसोनश्च विषं ताम्रं प्रत्येकं कर्षमाहरेत ॥ ४१ ॥
कुडवं सार्षपं तैलं साधयेत्सूर्यतापतः।
नाडीव्रणश्च विस्फोटं मांसवृद्धिं विचर्चिकाम् ॥ ४२ ॥
दद्रुकुष्ठापचीकण्डूमण्डलानि व्रणांस्तथा।
व्रणराक्षसनामेदं तैलं हन्ति गदान्बहून् ॥ ४३ ॥

पारा, गन्धक, हरिताल, सिन्दूर, मैनासिल, लहसन, मीठातेलिया और ताँबेकी भस्म ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले और सरसोंका तेल १६ तोले लेवे। फिर इन सबोंको एकत्रकर धूपसें उक्त तेलको तपाकर सिद्ध करे। यह व्रणराक्षसनामवाला तेल नासूर, फाडे, फुन्सी, मांसकी वृद्धि, दाद, कोढ, अपची, खुजली, चकत्ते, सर्वप्रकारके व्रण एवं अन्यान्य अनेकों उत्कट व्याधियोंको नष्ट करता है ॥ ४१–४३ ॥

बृहद्व्रणराक्षसतैल।

कुडवं सार्षपं तैलं तदर्द्धं गोघृतस्य च।
एकीकृत्य पचेत्तत्तु सूर्यावर्त्तरसेन तु ॥ ४४ ॥
चित्रपत्रपलं कल्कं दत्त्वा तत्र विपाचयेत्।
तत्कल्कं स्रावयित्वा तु चूर्णमेषां विनिःक्षिपेत ॥४५॥
गन्धकं शुद्धसिन्दूरं हरितालं मनःशिला।
हरिद्रा गैरिकं राजी कर्षार्द्धं प्रतिभागिकम् ॥ ४६ ॥
भागार्द्धं पारदश्चापि कज्जलीकृत्य मिश्रयेत्।
सुतप्ते मिश्रयित्वा तु तप्तं कृत्वा प्रलेपयेत् ॥ ४७ ॥
कण्डूं विचर्चिकां पामां क्लेदं कुष्ठं सुदुस्तरम्।
वातरक्तं व्रणान्सर्वान्विषविस्फोटदद्रुकान् ॥
निहन्त्याशु महाश्वित्रं तैलन्तु व्रणराक्षसम् ॥ ४८ ॥

सरसोंका तेल १६ तोले और गौका घी ८ तोले और चीतेके पत्तोंका कल्क ४ तोले लेवे इन सबोंको एकत्र हुलहुलके रसमें यथाविधि पकावे । अच्छे प्रकार पकजानेपर तेलको वस्त्रमें छान लेवे । पश्चात् शुद्धगन्धक, सिन्दूर, हरिताल, मैनासिल, हल्दी, गेरू और राई इन औषधियोंका चूर्ण एक एक तोला एवं छः माशे पारेकी कज्जली बनाकर उक्त गरम तेलमें मिलादेवे । इस तेलको गरम करके लेपकरे । यह तेल खुजली, विचर्चिका, पामा, क्लेदयुक्त व्रण, कठिनतर कुष्ठ, वातरक्त, सर्वप्रकारके व्रण, बडे बडे फोडे, शीतलाके व्रण, दाद और अत्यन्त बढाहुआ सफेद कोढप्रभृतिरोगोंको तत्काल ध्वंस करताहै । इसका नाम बृहद्व्रणराक्षस तेल है ॥ ४४-४८ ॥

विडङ्गारिष्ट ।

विडङ्गं ग्रन्थिकं रास्ना कुटजत्वक् फलानि च ।
पाठैलाबालुकं धात्री भागान्पञ्चपलान्पृथक् ॥ ४९ ॥
अष्टद्रोणेऽम्भसः पक्त्वा कुर्याद्द्रोणावशेषितम् ।
पूते शीते क्षिपेत्तत्र क्षौद्रं पलशतत्रयम् ॥ ५० ॥
धातकीविंशतिपलं त्रिजातं द्विपलं तथा ।
प्रियङ्गुकाञ्चनाराणां सलोध्राणां पलं पलम् ॥ ५१ ॥
व्योषस्य च पलान्यष्टौ चूर्णीकृत्य प्रदापयेत् ।
घृतभाण्डे विनिःक्षिप्य मासमेकं विधारयेत् ॥ ५२ ॥
ततः पिबेद्यथार्हं तु जयेद्विद्रधिमुत्थितम् ।
ऊरुस्तम्भाश्मरीमेहान् प्रत्यष्ठीलाभगन्दरान् ॥
गण्डमालां हनुस्तम्भं विडङ्गारिष्टसंज्ञकः ॥ ५३ ॥

वायविडङ्ग, पीपलामूल, रास्ना, कुडेकी छाल और फूल, पाढ, एलुआ और आँवले ये प्रत्येक औषधि बीस तोले लेकर आठ द्रोण जलमें पकावे । पकते पकते जब एक द्रोण जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर शीतल होजानेपर उसमें शहद तीन सौ पल, धायके फूल २० पल, इलायची, तेजपात, दारचीनी इनका चूर्ण ८ तोले, फूलप्रियंगु, कचनार, लोध प्रत्येक चार चार तोले, सोंठ, मिरच और पीपल इनका चूर्ण ८ पल लेवे और सबोंको एकत्र बारीक कूटपीसकर डालदेवे । पश्चात् घीके चिकने उत्तम पात्रमें भरकर धानोंकी राशिमें गाडदेवे और एक महीनेतक इसी प्रकार रखा रहनेदेवे। मासानन्तर उसको निकालकर प्रतिदिन उचितमात्रासे सेवन करे तो यह विडङ्ग

नामक अरिष्ट विद्रधि, ऊरुस्तम्भ, पथरी, प्रमेह, प्रत्यष्ठीला, भगन्दर, गण्ड-माला व्रण और हनुस्तम्भादिविकारोंको शीघ्र दूर करता है ॥ ४९-५३ ॥

व्रणरोगमें पथ्य ।

यवषष्ठिकगोधूमा जाङ्गला मृगपक्षिणः ।
विलेपी लाजमण्डश्च कटुतैलं घृतं मधु ॥ ५४ ॥
तिलं मसूरतुवरी-मुद्गयूषाश्च शर्करा ।
आषाढफलवार्त्ताकु कर्कोटकपटोलकम् ॥ ५५ ॥
कारवेल्लं निम्बपत्रं वेत्राग्रं बालमूलकम् ।
सुनिषण्णकशालिश्च तण्डुलीयकवास्तुकम् ॥ ५६ ॥
त्रिफला घनसं मोचं दाडिमं कटुकीफलम् ।
जीवन्ती सैन्धवं द्राक्षा स्वादुतिक्तकषायकः ॥ ५७ ॥
समस्तमेतदन्नं तु स्निग्धमुष्णं द्रवोत्तरम् ।
एषणं शमनं दाहः स्वेदनं बन्धनक्रिया ॥ ५८ ॥
व्रणावचूर्णनं लेपो धूपनं पत्रधारणम् ।
उशीरबालव्यजनं चन्दनं तिललेपनम् ॥ ५९ ॥
एतत्पथ्यं नरैः सेव्यं यथावस्थं यथामलम् ।
व्रणशोथे व्रणे सद्योव्रणे नाडीव्रणेऽपि च ॥ ६० ॥

व्रणके शोथ, व्रण, सद्योव्रण और नाडीव्रणमें जौ, साठीके चावल, गेहूँ, जङ्गली पशु पक्षियोंका मांस, विलेपी, खीलोंका मांड, सरसोंका तेल, घी, शहद, तिल, मसूर, अरहर और मूँगका यूष इनका आहार, खाँड, ढाकके बीज, बैंगन, ककोडे, परबल, करेला, नीमके पत्ते, बेंतकी कोंपल, कच्चीमूली, शिरिआरी शाक, शालिञ्चशाक, चौलाई शाक, बथुआ, त्रिफला, कटहल, केलेका मोचा, अनार, कुटकी, जीवन्ती, सेंधानमक, दाख, मधुर, तीखे और कषैलेरसवाले पदार्थ, स्निग्ध, गरम और पतले बने अन्न, एषण (लोहेकी सलाईसे नाडीगति देखना), शमनकारक औषधि व्रणस्थानको अग्निसे दग्ध, स्वेदप्रदान, बन्धनक्रिया (व्रणपर वायु न लगे, इस प्रकार बाँधना), व्रणपर औषधियोंका चूर्ण, लेप, धूम और पत्तोंका लगाना, नवीन खसका बनाहुआ चँवर डुलाना, लाल चन्दन और तिलोंको पीसकर लेपकरना ये सब हितकर पदार्थ अवस्था तथा दोषानुसार मनुष्योंको व्रणशोथ, व्रणरोग, सद्योव्रण और नाडीव्रणादि (नासूर) रोगोंमें सेवन करने चाहिये ॥ ५४-६० ॥

व्रणरोगमें अपथ्य।

नवानि धान्यानि तिलान्कलायान्माषान्कुलत्थान्कृशरानहिमाम्भः। क्षीरेक्षुजातान्विविधान्विकारान्मद्यानि शाकानि च पत्रवन्ति ॥ ६१॥ अजाङ्गलं मांसमसात्म्यमन्नं विदाहि विष्टम्भि गुरूणि चापि। कट्वम्लशीतं लवणं व्यवायमायासमुच्चैः परिभाषणं च॥६२॥ प्रियासमालोकनमह्नि निद्रां प्रजागरं चंक्रमणं नितान्तम्। सदास्थितिं प्रागधिरोपणञ्च नस्यानि ताम्बूलमजीर्णतां च॥६३॥प्रचण्डवातातपधूमवृष्टिरजोभयक्रोधवमिप्रहर्षान्। शोकं विरुद्धाशनमम्बुपानं तीक्ष्णोष्णरूक्षाणि विघट्टनं च ॥ ६४ ॥ कण्डूयनं काष्ठनखादितोदं निरन्नभावं विषमोपचारम्। वैद्यश्चिकित्सन् व्रणशोथरोगं व्रणं च सद्योव्रणमामयं च। नाडीव्रणश्चापि यशोऽभिलाषी विवर्जयेत्सन्ततमप्रमत्तः ॥ ६५ ॥

सब प्रकारके नये अन्न, तिल, मटर, उडद, कुलथी, खिचडी, शीतलजल, भाँतिभाँतिके दूधके बने अथवा ईखके रसके बने पदार्थ, मदिरा, पत्तोंवाले शाक, जङ्गलभिन्न अन्यान्यदेशीय जीवोंका मांस, असात्म्य अन्न, दाहकारक, विष्टम्भकारक, गुरुपाकी, कडवे, खट्टे, शीतल और लवण (नमकीन, चरपरे) खाद्य पदार्थ, मैथुन, कसरत करना, जोरसे बोलना, सुन्दरी स्त्रियोंको देखना, दिनमें शयन, रात्रिमें जागरण और हर वक्त टहलना, फोडे फुन्सीको सर्वदा बैठालनेका प्रयत्न करना, व्रणको शुद्ध किये विना ही घावको भरनेवाली औषधि लगाना, नस्य लेना, पानखाना, अजीर्णकारक द्रव्योंका भक्षण, अत्यंत तीक्ष्ण वायु और तीव्र धूपका सेवन, धुम्रपान, वर्षाका जल, धूलि, भय, क्रोध, वमन, अत्यन्त हर्ष, शोक अपने स्वभावके प्रतिकूल खान पान, तीखे, गरम, रूखे और पिसेहुए द्रव्योंका सेवन, लकडीसे अथवा नाखूनोंसे खुजलाना, लंघन और वैषम्य चिकित्साकरना इन सब अहितकर पदार्थों व क्रियाओंको व्रणशोथ, व्रणरोग, सद्योव्रग और नाडीव्रणादिरोगोंकी चिकित्सा करताहुआ यशस्वी वैद्य तत्काल त्यागदेवे ॥ ६१–६५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां व्रणशोथचिकित्सा ॥

सद्योव्रणकी चिकित्सा।

सद्यः क्षतव्रणं वैद्यः सशूलं परिषेचयेत्।
यष्टीमधुकयुक्तेन किञ्चिदुष्णेन सर्पिषा ॥ १ ॥

सद्यःक्षत अर्थात् तत्कालके उत्पन्नहुए शूलसहित व्रणमें मुलैठीका चूर्ण मिलाकर मन्दोष्ण घृतसे सेचन करे ॥ १ ॥

अपामार्गस्य संसिक्तं पत्रोत्थेन रसेन तु।
सद्योव्रणेषु रक्तं तु प्रवृत्तं परितिष्ठति ॥ २ ॥

सद्योव्रणमें चिरचिटेके पत्तोंका रस सिंचन करनेसे लोहू बहना बन्द होताहै॥

कर्पूरपूरितं बद्धं सघृतं संप्ररोहति।
सद्यः शस्त्रक्षतं पुंसां व्यथापाकविवर्जितम् ॥ ३ ॥

तत्काल शस्त्रादिके लगनेसे उत्पन्नहुए व्रणमें सौवार धोयेहुए घृतके साथ कपूर मिलाकर भरदेवे और उसको बाँधदेवे तो इससे विशेष पीडा नहीं होती और घाव पकता नहीं है ॥ ३ ॥

शुनो जिह्वाकृतश्चूर्णः सद्यः क्षतविरोहणः ॥ ४ ॥

कुत्तेकी जीभको सुखाकर चूर्ण बनालेवे, उस चूर्णको भरनेसे सद्योव्रण भर जाता है ॥ ४ ॥

इति साप्ताहिकं कार्या सद्योव्रणहितो विधिः।
सप्ताहात्परतः कुर्याच्छारीरव्रणवत्क्रियाः ॥ ५ ॥

तत्कालजनित घावमें जो चिकित्साविधि कहीगई हैं वे सब एक सप्ताह पर्यन्त करे। तदनन्तर शारीरिकव्रणकी समान चिकित्सा करनी चाहिये॥५॥

अग्निदग्धव्रणकी चिकित्सा।

पित्तविद्रधिवीसर्पशमनं लेपनादिकम्।
अग्निदग्धव्रणे सम्यक् प्रयुञ्जीत चिकित्सकः ॥ ६ ॥

पित्तजविद्रधि और पित्तजाविसर्प रोगनाशक प्रलेपादिकोंको अग्निसे जलेहुए व्रणपर यथाविधि प्रयुक्त करे ॥ ६ ॥

तिलश्चैवाग्निना दग्धं यवभस्मसमन्वितम्।
अग्निदग्धव्रणं नश्येदनेनैवानुलेपनात् ॥ ७ ॥

तिलोंकी भस्म और जौकी भस्म, इन दोनोंको एकत्र मिलाकर लेप करनेसे अग्निद्वारा जलाहुआ व्रण सूख जाता है ॥ ७ ॥

तिलतैलैर्यवान्दग्ध्वा समं कृत्वा तु लेपयेत्।
तेनैव लेपनादाशु वह्निदग्धः सुखी भवेत् ॥ ८ ॥

जौकी भस्म और तिलका तेल इन दोनोंके समानभागको एकत्र मिलाकर प्रलेप करनेसे अग्निसे जलाहुआ व्यक्ति शीघ्र आरोग्य होता है ॥ ८ ॥

सद्योदग्धञ्च मधुना लेपं कृत्वा भिषग्वरः।
तत्पृष्ठे यवचूर्णेन लेपः स्याद्दाहशान्तये ॥ ९ ॥

जलेहुए व्रण तत्काल शहदका लेप करके ऊपरसे जौका चूर्ण बुरका देवे इससे व्रणकी जलन दूर होती है ॥ ९ ॥

महिषीनवनीतेन क्षीरेण पेषयेत्तिलम्।
तेन लेपेन दग्धाङ्गं सदाहं सुखमश्नुते ॥ १० ॥

तिलोंको भैंसके दूधमें पीसकर और भैंसके ही नैनीघीमें मिलाकर लेपकरनेसे जलेहुए अङ्गकी दाह दूर होकर रोगी शीघ्र सुखभोग करताहै ॥ १०॥

महाराष्ट्रीजटालेपाद्दग्धापिष्ठावचूर्णनम्।
जीर्णगेहतृणाच्चूर्णं दग्धव्रणहरं परम् ॥ ११ ॥

जलपीपलकी जडको अथवा जलपीपलकी भुनीहुई पिट्ठीके चूर्णको किम्वा घरके पुराने फूंसकी भस्मको पीसकर लगानेसे अग्निदग्धक्षत तत्काल भरजाताहै॥

कालीयफलताम्रास्थिहेमकालारसोत्तमैः।
लेपः सगोमयरसं सवर्णीकरणः परः ॥ १२ ॥
चतुष्पदां हि लोमत्वक्खुरशृङ्गास्थिभस्मना।
तैलाक्ता लेपिता भूमिर्भवेद्रोमवती पुनः ॥ १३ ॥

पीलाचन्दन, फूलप्रियंगु, आमकी गुठली, नागकेशर और मंजीठ इन औषधियोंके समानभाग मिश्रितरसोंमें गौके गोबरका रस मिलाकर लेप करनेसे घावके सूखजानेपर उसकी त्वचा समानवर्णवाली होजाती है। चौपायें जानवरोंके रोम, खाल,खुर, सींग और हड्डी इन सबोंकी भस्मोंको तिलके तेलमें मिलाकर मलनेसे शुष्कहुए व्रणके स्थानभें रोम उत्पन्न होते हैं। यदि इन पूर्वोक्त भस्मोंको यथाविधि लेपकरे तो भूमिमें भी रोम उत्पन्न होजाते हैं; फिर घावकी कौन कहे ॥ १२॥१३ ॥

अन्तर्दग्धकुठारको दहनजं लेपान्निहन्ति व्रणम्
अश्वत्थस्य विशुष्कवल्कलकृतं चूर्णं तथा गुण्डनात् ॥१४

सफेदवनतुलसीको अन्तर्धूमपात्रमें भस्म करके अग्निद्वारा जलेहुए व्रणपर लेपकरनेसे अथवा पीपलकी सूखी छालको उसविधिके अनुसार भस्म करके बारीक पीसकर लेपकरनेसे अग्निदग्धव्रण शीघ्र नष्ट होता है ॥ १४ ॥

अभ्यङ्गाद्विनिहन्ति तैलमखिलं गण्डूपदैः साधितं
पिष्ट्वा शाल्मलितूलकैर्जलगता लेपात्तथा वालुकाः १५॥

केंचुओंको और तिलोंके तेलको एकत्र विधिपूर्वक पकाकर मालिश करनेसे अथवा सेमलकी रुईको जलमें पीसकर या जलकी रेणुकाको पीसकर लेप करनेसे अग्निसे जलाहुआ घाव तत्काल शुष्क होता है ॥ १५ ॥

जीरकघृत ।

जीरकपक्कं पश्चात् सिक्थकसर्ज्जरसमिश्रितं हरति ।
घृतमभ्यङ्गात्पावकदग्धजदुःखं क्षणार्द्धेन ॥ १६ ॥

जीरेके कल्कको १ सेर लेकर ८ सेर जलमें पकावे । पकते पकते जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस काथमें मोम १६ तोले, राल १६ तोले और घृत दो सेर डालकर विधिपूर्वक पकावे । इस घृतको लगानेसे जलेहुए घावकी पीडा क्षणमात्रमें ही दूर होती है ॥ १६ ॥

पाटलीतैल ।

सिद्धं कल्ककषायाभ्यां पाटल्याः कटुतैलकम् ।
दग्धव्रणरुजास्रावदाहविस्फोटनाशनम् ॥ १७ ॥

पाडलके कल्क और काथद्वारा सिद्ध कियाहुआ कडवा तेल, दग्धव्रणकी वेदना, रक्तका निकलना, जलन और भयंकर फोडोंको नष्ट करताहै ॥ १७ ॥

मंजिष्ठाद्यतैल ।

मञ्जिष्ठां चन्दनं मूर्वां पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ।
सर्वेषामग्निदग्धानामेतद्रोपणमिष्यते ॥ १८ ॥

मंजीठ, लालचन्दन और मूर्वा इनको समान भाग मिश्रित एक सेर लेकर एकत्र पीसलेवे । फिर इस कल्कके द्वारा उपर्युक्त विधिके अनुसार दो सेर सरसोंके तेलको सिद्ध करे । यह तेल सर्वप्रकारके अग्निसे जलेहुए घावोंपर व्यवहार कियाजाता है । सद्योव्रणरोगमें पथ्य और अपथ्य व्रणशोथरोगकी भाँति करना चाहिये ॥ १८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां सद्योव्रणचिकित्सा ॥

भग्नकी चिकित्सा ।

आदौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतलाम्बुना ।
पङ्केनालेपनं कार्यं बन्धनं च कुशान्वितम् ॥
सुश्रुतोक्तं तु भग्नेषु वीक्ष्य बन्धनमाचरेत् ॥ १ ॥

सुश्रुतमें कहीहुई विधिके अनुसार भग्न (टूटे) स्थानको जानकर प्रथम उक्त स्थानमें शीतलजल सिञ्चन करे। पुनः कर्दमका लेपकर कुशादेसे बन्धन करे। अथवा उक्त ग्रन्थमें प्रतिपादित रीतिसे भग्नस्थानको भलेप्रकार देखकर बन्धन करना उचित है ॥ १ ॥

अवनामितमुन्नह्येदुन्नतञ्चावपीडयेत् ।
आञ्छेदतिक्षिप्तमधये गतं चोपरि वर्त्तयेत् ॥ २ ॥
आलेपनार्थं माञ्जिष्ठा मधुका चाम्लपेषितम् ।
शतधौतघृतोन्मिश्रं सौम्येष्वृतुषु मोक्षणम् ॥ ३ ॥
कर्त्तव्यं स्यात्त्रिरात्राच्च तत्राग्नेयेषु जानता ।
काले च समशीतोष्णे पञ्चरात्राद्विमोक्षयेत् ॥ ४ ॥

भग्नस्थानकी टूटीहुई हड्डीको नीचे दबजानेपर ऊँचा करे और अधिक ऊंची होनेपर तत्क्षण नीचेको दबा देवे। हड्डीके ऊपरको हठजानेपर नीचेको दबावे और नीचेको झुकजानेपर उसे धीरे धीरे दबाकर ऊपरको खींचे और शनैः शनैः मलकर यथास्थानमें करदेवे मञ्जीठ और मुलैठीको काँजीमें पीसकर अथवा शालिधानके चावलोंको पीसकर सौबार धुलेहुए घृतमें मिलाकर भग्नस्थानमें लेप करके बाँधदेवे। इस बन्धनको हेमन्त और शीतकालमें ७ दिनके बाद, ग्रीष्मकालमें ३ दिनके बाद, तथा वर्षा और शरत्कालमें ५ दिनके बाद खोले ॥ २-४ ॥

न्यग्रोधादिकषायं च सुशीतं परिषेचने ।
पञ्चमूलीविपक्वं तु क्षीरं दद्यात्सवेदने ॥ ५ ॥
सुखोष्णमवतार्यं वा तत्र तैलं विजानता ।
मांसं मांसरसः सर्पिः क्षीरं यूषं सतीनजः ॥ ६ ॥
बृंहणं चान्नपानं स्याद्देयं भग्नाय जानता ।
गृष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम् ॥ ७ ॥

शीतलं लाक्षया युक्तं प्रातर्भग्नः पिबेन्नरः ।
सघृतेनास्थिसंहारं लाक्षागोधूममर्ज्जुनम् ॥
सन्धियुक्तेऽस्थिभग्ने च पिबेत्क्षीरेण मानवः ॥ ८ ॥

न्यग्रोधादिगणकी औषधियोंके काथको शीतलकरके भग्नस्थानपर सेचन करे । भग्नस्थानमें पीडाहोनेपर पञ्चमूलके काढेमें दूधको पकाकर शीतल करके सेचनकरे और सुहाते सुहाते तेलकी मालिश कर सेंके । एवं मांस, मांसका रस, घी, दूध और मटरका यूष आदि बृंहण पदार्थ रोगीको भोजन करावे । भग्नरोगी काकोल्यादिगणोक्त औषधियोंके साथ एकबारकी व्याईहुई गौका दूध और घी मिलाकर सिद्ध कियाहुआ शीतल दूध अथवा लाखके चूर्णके साथ गौका घी मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल पान करे । यदि सन्धिस्थानकी हड्डी टूटगई हो तो हडसंहारी, लाख, गेहूँ और अर्जुनवृक्षकी छालको समान-भाग पीसकर घी और दूधमें मिलाकर पान करना चाहिये ॥ ५-८ ॥

रसोनमधुलाक्षाज्यसिताकल्कं समश्नुताम् ।
छिन्नभिन्नच्युतास्थ्नाञ्च सन्धानमचिराद्भवेत् ॥ ९ ॥

लहसन, शहद, लाख, घृत और मिश्री इनके समानभाग कल्कको एकत्र-कर भक्षण करनेसे कटी,टूटी व अपने स्थानसे हटीहुई हड्डियाँ जुड जातीहैं९

पीतवाराटिकाचूर्णं द्विगुञ्जं वा त्रिगुञ्जकम् ।
अपक्कक्षीरपीतं स्यादस्थिभग्नप्ररोहणम् ॥ १० ॥

पीलीकौडीकी भस्मके दो या तीन रत्ती चूर्णको कच्चे दूधके साथ मिलाकर पीनेसे टूटीहुई हड्डी जुडती है ॥ १० ॥

क्षीरं सलाक्षामधुकं ससर्पिः स्याज्जीवनीयं च सुखावहं च ।
भग्नः पिबेत्त्वक्पयसार्जुनस्य गोधूमचूर्णं सघृतेन वाथ ॥ ११ ॥

दूध, लाख, मुलैठी, घी और जीवनीयगणकी औषधियाँ इन सबोंको एकत्र पकाकर सुखोष्ण पान करनेसे अथवा अर्जुनवृक्षकी छालके चूर्णको दूधके साथ पीनेसे किम्वा गेहूँके आटेको घीमें मिलाकर सेवन करनेसे भग्नरोगी शीघ्र आरोग्य होता है ॥ ११ ॥

सव्रणस्य तु भग्नस्य व्रणं सर्पिर्मधूत्तरैः ।
प्रतिसार्य कषायैश्च शेषं भग्नवदाचरेत् ॥ १२ ॥
भग्नं नेति यथा पाकं प्रयतेत तथा भिषक् ।
वातव्याधिविनिर्दिष्टान् स्नेहानत्र प्रयोजयेत ॥ १३ ॥

भग्नस्थानमें यदि व्रण होगया हो तो न्यग्रोधादिगणकी औषधोंके काढे या कल्कमें घी और शहद मिलाकर लेपकरे, पश्चात् भग्नरोगकी समान चिकित्सा करे।टूटीहुई हड्डी जिसप्रकार पकने न पावे इसपर वैद्यको विशेष लक्ष्य रखना चाहिये । भग्नरोगमें वातव्याधिरोगोक्त स्नेहद्रव्य (घृत,तैलादि) प्रयोग करे॥

लाक्षागुग्गुल ।

लाक्षास्थिसंहृत्ककुभाश्वगन्धाश्चूर्णीकृता नागबलापुरश्च । सम्भग्नमुक्तास्थिरुजो निहन्यादङ्गानि कुर्यात्कुलिशोपमानि ॥ १४ ॥

लाख, हडसंहारी, अर्जुनकी छाल, असगन्ध, गंगेरन और शुद्ध गूगल इनको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको खानेसे टूटीहुई हड्डीकी पीडा दूर होती है । अस्थि जुडकर अङ्ग वज्रके समान दृढ होय॥१४

आभागुग्गुल ।

आभाफलत्रिकैर्व्योषैः सर्वैरेभिः समीकृतः ।
तुल्यो गुग्गुलुरायोज्या भग्नसन्धिप्रसाधकः ॥ १५ ॥

बबूलकी छाल, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच और पीपल इन सबोंको समानभाग और सब औषधियोंकी बराबरभाग शुद्ध गूगल लेकर एकत्र बारीक पीसकर चूर्ण करलेवे । यह चूर्ण नियमानुकूल सेवन करनेपर टूटेहुए सन्धिस्थानोंको जोड देता है ॥ १५ ॥

गन्धतैल ।

रात्रौ रात्रौ तिलान्कृष्णान् वासयेदस्थिरे जले ।
दिवा दिवैवं संशोष्य क्षीरेण परिभावयेत् ॥ १६ ॥
तृतीयं सप्तरात्रन्तु भावयेन्मधुकाम्बुना ।
ततः क्षीरं पुनः पीतान्छुष्कान्सूक्ष्मान्विचूर्णयेत् १७
काकोल्यादि श्वदंष्ट्राह्वं मञ्जिष्ठां सारिवां तथा ।
कुष्ठं सर्जरसं मांसीं सुरदारु सचन्दनम् ॥ १८ ॥
शतपुष्पाञ्च सञ्चूर्ण्य तिलचूर्णानि योजयेत् ।
पीडनार्थञ्च कर्त्तव्यं सर्वगन्धैः शृतं पयः ॥ १९ ॥
चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं पाचयेत्पुनः ।
एलामंशुमतीं पत्रं जीवन्तीं तुरगं तथा ॥ २० ॥

लोध्रं प्रपौण्डरीकञ्च तथा कालानुसारिवाम् ।
शैलेयकं क्षीरशुक्लामनन्तां समधूलिकाम् ॥ २१ ॥
पिष्ट्वा शृङ्गाटकञ्चैव प्रागुक्तान्यौषधानि च ।
एभिस्तद्विपचेत्तैलं शास्त्रविन्मृदुनाग्निना ॥ २२ ॥
एतत्तैलं सदा पथ्यं भग्नानां सर्वकर्मसु ।
आक्षेपके पक्षघाते तालुशोषे तथार्दिते ॥ २३ ॥
मन्यास्तम्भे शिरोरोगे कर्णशूले हनुग्रहे ।
बाधिर्ये तिमिरे चैव ये च स्त्रीषु क्षयं गताः ॥ २४ ॥
पथ्यं पाने तथाभ्यङ्गे नस्ये वस्तिषु भोजने ।
ग्रीवास्कन्धोरसां वृद्धिरनेनैवोपजायते ॥ २५ ॥
मुखञ्च पद्मप्रतिमं ससुगन्धिसमीरणम् ।
गन्धतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ॥ २६ ॥
राजार्हमेतत्कर्त्तव्यं राज्ञामेव विचक्षणैः ।
तिलचूर्णं समन्त्वत्र मिलितं चूर्णमिष्यते ॥ २७ ॥

काले तिलोंको एक स्वच्छ वस्त्रकी पोटलीमें बाँधकर प्रतिदिन रात्रिमें नदी आदिके बहतेहुए जलमें डुबोकर रक्खे और प्रतिदिन प्रातःकाल उनको जलमेंसे निकालकर धूपमें सुखाके गोदुग्धमें भावनादेवे। इसप्रकार सात दिन तक करै। पश्चात् मुलैठीके काथमें उक्त विधिके अनुसार तीन या सात दिन-तक भावना देवे। फिर पूर्वोक्त अवधितक दूधमें भावना देकर सुखालेवे फिर उनको खूब बारीक पीसकर चूर्ण करलेवे। इस चूर्णके साथ काकोल्यादि गणकी औषधियाँ, गोखुरू, मंजीठ, सारिवा, कूठ, सफेदराल, बालछड, देव-दारु, लालचन्दन और सोया इनको समानभाग लेकर चूर्ण करके मिलादेवे। तदनन्तर तेल निकालनेके लिये समस्त चूर्णको कोल्हूमें डालकर पेले और पेलते समय तेल निकालनेको जल न डाले, किन्तु सम्पूर्ण सुगन्धित पदार्थोंसे सिद्ध कियेहुए जलको डालकर तेल निकाले। फिर उस तेलको चौगुने दूध एवं छोटी इलायची, शालपर्णी, तेजपत्र, जीवन्ती, असगन्ध, लोध, पुण्डरीक, तगर, भूरिछरीला, श्वेतविदारीकन्द, अनन्तमूल, मूर्वा, सिंघाडे और पूर्वोक्त काकोल्यादि गणकी औषधियाँ, इन सबोंके कल्कके साथ शास्त्रविधिको जानने-वाला वैद्य मन्दमन्द अग्निसे पकावे। यह तेल अस्थिभग्नवाले रोगियोंको सर्वदा

पथ्य है। इसको सर्व प्रकारके कर्म्मोंमें प्रयोग करना चाहिये। तथा आक्षेपकवात, पक्षघात, तालुशोष, आर्दितवात, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, कर्णशूल, हनुग्रह, बधिरता, तिमिररोग और अत्यधिक स्त्रीप्रसङ्गकरनेसे उत्पन्नहुई क्षीणतामें यह तेल विशेष हितकारी है। पान, अभ्यङ्ग, नस्य, वस्तिकर्म्म और भोजनमें इसको सेवन करे। इससे गर्दन, कन्धे और छातीकी वृद्धि होती है, मुख कमलकी समान कान्तिमान् और सुगन्धित श्वास युक्त होजाता है। यह गन्धतेल सर्व प्रकारके वातविकारोंको नष्ट करता है। यह तेल राजाओंके योग्य है, अतः प्रतिभाशाली वैद्य इसको राजाओंके लिये ही बनावे। इसमें तिलोंके चूर्णके बराबर भाग सब चूर्ण लेनेचाहिये॥ १६-२७॥

भग्नरोगमें पथ्य।

शीताम्बुसेचनं पंकप्रदेहो बन्धनक्रिया।
शालिप्रियङ्गुगोधूमा यूषो मुद्गसतीनयोः॥ २८॥
नवनीतं घृतं क्षीरं तैलं माषरसो मधु।
पटोलं लशुनं शिग्रुं पत्तूरो बालमूलकम्॥ २९॥
द्राक्षा धात्री वज्रवल्ली लाक्षा पञ्चापि बृंहणम्।
तत्सर्वं भिषजा नित्यं देयं भग्नाय जानता॥ ३०॥

शीतल जल छिडकना, कीचका लेप, पट्टी बाँधना, शालिधानोंके चावल, मालकांगनी और गेहूँका भोजन, मूँग और मटरका यूष, नैनी घी, दूध, तेल, उडदोंका यूष, शहद, परबल, लहसन, सहिंजना, शान्तिशाक, कच्ची मूली, दाख, आँवले, हडसंहारीवेल, लाख और पुष्टिकर सब द्रव्योंको सुयोग्य वैद्य भङ्गअस्थिवाले रोगीके लिये प्रतिदिन विचारपूर्वक देवे। ये सब उक्तरोगमें विशेष हितप्रद हैं॥ २८-३०॥

भग्नरोगमें अपथ्य।

लवणं कटुकक्षारमम्लं मैथुनमातपम्।
व्यायामं च न सेवेत भग्नो रूक्षान्नमेव च॥ ३१॥

भग्नास्थिवाला रोगी नमक, कडवे, खारी और खट्टेरसवाले पदार्थ, स्त्रीसहवास, धूपका सेवन, कसरत एवं रूखेअन्नोंके भोजनको तत्काल त्याग देवे॥३१

इति भैषज्यरत्नावल्यां भग्नचिकित्सा।

नाडीव्रणकी चिकित्सा।

नाडीनां गतिमन्विष्य शस्त्रेणापाट्य कर्मवित्।
सर्वव्रणक्रमं कुर्याच्छोधनं रोपणादिकम्॥ १॥

नाडीव्रण (नासूर) की गतिको (अर्थात् राध कहाँतक फैली है) जानकर उस स्थानको शस्त्रसे चीरकर सम्पूर्ण राधआदिको निकाल देवे। फिर व्रणरोगमें कहीहुई विधिके अनुसार सब प्रकारकी रोपण, शोषण आदि चिकित्साकरे॥

नाडीं वातकृतां साधुपाटितां लेपयेद्भिषक्।
प्रत्यक्पुष्पीफलयुतैस्तिलैः पिष्टैः प्रलेपयेत॥ २॥
पैत्तिकीं तिलमाञ्जिष्ठानागदन्तीनिशायुगैः।
श्लैष्मिकीं तिलयष्ट्याह्वनिकुम्भारिष्टसैन्धवैः॥
शल्यजां तिलमध्वाज्यैर्लेपयेच्छिन्नशोधिताम्॥ ३॥

वातजन्यनाडीव्रणको प्रथम शस्त्रसे उत्तम प्रकार चीरकर लेखनक्रिया करे। पश्चात् श्वेत चिरचिटेके बीज और तिलोंको एकत्र पीसकर लेप करे। पित्तजनाडीव्रणमें तिल, मंजीठ, हाथीसुण्डा लता, हल्दी और दारुहल्दी इनको पीसकर लेप करे। कफजनित नाडीव्रणमें तिल, मुलैठी, जमालगोटेकी जड, नीमके पत्ते और सैंधानमक इनको पीसकर लेप करे। शल्य (काटाँ, शस्त्रादि) के विद्ध होनेसे उत्पन्नहुए नाडीव्रणको शस्त्रसे चीरकर शल्यको निकालकर व्रणके मार्गको शुद्ध करे। फिर तिल, शहद घी एकत्र पीसकर लेपकरे॥ २॥ ३॥

आरग्वधनिशाकालचूर्णाज्यक्षौद्रसंयुता।
सूत्रवर्त्तिर्व्रणे योज्या शोधिनी गतिनाशिनी॥ ४॥

अमलतासके पत्ते, हल्दी और काकादनीवृक्षकी छाल इन सबोंके १ तोला चूर्णमें घी दो तोले, शहद दो तोले और गोमूत्र ८ तोले डालकर एकत्र पकावे फिर इसमें सूतकी बत्तीको भिगोकर व्रणमें रक्खे। यह बत्ती व्रणको शुद्ध करनेवाली और राधकी गतिको नष्ट करनेवाली है॥ ४॥

घोण्टाफलत्वङ्मदनात्फलानि
पूगस्य च त्वग्लवणञ्च मुख्यम्।
स्नुह्यर्कदुग्धेन सहैव कल्को
वर्त्तीकृतो हन्त्यचिरेण नाडीम्॥ ५॥

वनबेरकी छाल, मैनफल, सुपारीकी छाल और सैंधानमक इनके समान

भाग चूर्णको थूहरके दूध और आकके दूधमें पीसकर कुछेक गरम करके बत्ती बनालेवे। यह बत्ती व्रणमें रखनेसे नासूरको बहुत शीघ्र नष्ट करती है ॥ ५ ॥

वर्त्तीकृतं माक्षिकसंप्रयुक्तं नाडीघ्नमुक्तं लवणोत्तमं वा।
दुष्टव्रणे यद्विहितं च तैलं तत्सेव्यमानं गतिमाशु हन्ति॥६॥

सैंधानोन और शहदको एकत्र अग्निमें पकाकर उससे सूतकी बत्ती बनाकर व्रणमें रखनेसे नाडीव्रण शुष्क होता है। दुष्टव्रणमें जो तेल कहे हैं उनको प्रयोग करनेसे राधकी गति शीघ्र नष्ट होती है ॥ ६ ॥

जात्यर्कशम्याककरञ्जदन्तीसिन्धूत्थसौवर्चलयावशूकैः।
वर्त्तिः कृता हन्त्यचिरेण नाडीं स्नुक्क्षीरपिष्टा सहमाक्षिकेण

चमेलीके पत्ते, आककी जड, अमलतासके पत्ते, करञ्ज, दन्तीकी जड, सैंधानोन, कालानोन और जवाखार इनको बराबर बराबर लेकर थूहरके दूध और शहदमें खरल करके बत्ती बनालेवे। इस बत्तीको व्रणमें प्रवेश करनेसे नासूररोग तत्काल नाश होता है ॥ ७ ॥

माहिषं दधि कोद्रवभक्तामिश्रितं हरति चिरविरूढाम्।
भक्तं कङ्गुनिकाभवमतिदारुणां नाडीं शमयेत् ॥ ८ ॥

भैंसको दही, कोदोंका चूर्ण और मालकाँगुनीकी जडका चूर्ण इनको सेवन करनेसे चिरकालोत्पन्न दारुण नाडीव्रणरोग शीघ्र शमन होता है ॥ ८ ॥

कृशदुर्बलभीरूणां गतिर्मर्माश्रिता च या।
क्षारसूत्रेण तां छिन्द्यान्न शस्त्रेण कदाचन ॥ ९ ॥

कृश, निर्बल और डरपोकरोगियोंके उत्पन्न हुए एवं मर्मस्थानोंमें उत्पन्नहुए नाडीव्रणको क्षारमें भींजे हुए डोरेसे फोडे, किन्तु शस्त्रसे कदापि नहीं चीरे९॥

एषण्या गतिमन्विष्य क्षारसूत्रानुसारिणीम्।
सूचीं विदध्याद्गत्यन्ते चोन्नाम्य चाशु निर्हरेत् ॥१०॥
सूत्रस्यान्तं समानीय गाढबन्धं समाचरेत्।
ततः क्षीणबलं वीक्ष्य सूत्रमन्यत्प्रवेशयेत् ॥ ११ ॥
क्षाराक्तं मतिमान्वैद्यो यावन्न छिद्यते गतिः।
भगन्दरेऽप्येष विधिः कार्या वैद्येन जानता॥ १२ ॥

एषणी (लोहेकी सलाई) से नाडीव्रणकी गतिको जानकर क्षारसूत्र पिरोई हुई सुईको व्रणकी गतिके अन्तमें छेद देवे। फिर सुईको भीतरतक प्रवेश करके बाहर निकाल लेवे और सुईमेंसे डोरेको अलग करके उसके दोनों

सिरोंको मिलाकर अच्छे प्रकार गाँठ देकर बाँध देवे। यदि इस क्षारसूत्रसे नाडीव्रणका मार्ग छिन्न न हो तो दूसरा क्षारसूत्र उल्लिखितविधिसे प्रवेश करे। जबतक नाडीकी गति छिन्नभिन्न न होवे तबतक इसी प्रकार बराबर क्षारसूत्र प्रविष्ट करता रहै। वैद्य इस विधिको भगन्दररोगमें भी करे ॥ १०–१२ ॥

अर्बुदादिषु चोत्क्षिप्य मूले सूत्रं निधापयेत्।
सूचीभिर्यववक्त्राभिराचितं वा समन्ततः॥
मूलं सूत्रेण बध्नीयाच्छिन्ने चोपचरेद् व्रणम्॥ १३ ॥

अर्बुदादिरोगोंमें ग्रन्थि रसौली आदिको ऊँचा करके उनकी जडमें क्षारसे भीगाहुआ डोरा बाँधे अथवा जौकी समान मुखवाली सुईसे चारों ओरको छेदकर उसकी मूलको क्षारसूत्रसे बाँध देवे। व्रणके छिदजानेपर व्रणरोगोक्त अन्यान्य चिकित्सा करे ॥ १३ ॥

गुणवतीवर्त्ति।

तुल्यं सर्जरसं लोध्रं सिन्दूरातिविषे निशा।
अक्षं कपित्थश्रीवासो गुग्गुलुर्घृततैलकैः॥ १४ ॥
तुल्यांशं पेषयेत्पिण्डं तत्तुल्यं सिक्थकं भवेत्।
वर्त्तिर्गुणवती नाम जुष्टा शीतजलान्विता॥ १५ ॥
दुःसाध्यव्रणगण्डेषु तथा नाडीव्रणेषु च।
शोधने रोपणे चैव स्वास्थ्यमुत्पादयत्यसौ॥ १६ ॥

राल, लोध, सिन्दूर, अतीस, हल्दी, तूतिया, कच्चा कैथ, तार्पीनका तेल और गूगल ये प्रत्येक एक एक तोला एवं मोम सब द्रव्योंके बराबरभाग लेवे। फिर इन सबोंको तेल और घृतके साथ कढाईमें डालकर पकाकर बत्ती बना-लेवे। यह गुणवतीनामवाली बत्ती दुःसाध्य व्रण और नासूरमें प्रलेप करनेसे व्रणको शुद्ध और शुष्ककर शीघ्र आरोग्यप्रदान करती है॥ १४–१६ ॥

सप्तांगगुग्गुलु।

गुग्गुलुस्त्रिफलाव्योषैः समांशैराज्ययोजितः।
नाडीदुष्टव्रणशूलभगन्दरविनाशनः॥ १७ ॥

हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल ये सब समानभाग और शोधित गूगल सब द्रव्योंके बराबर लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। पुनः इस चूर्णको घीमें खरल करके गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन एकएक गोलीको सेवन करनेसे नासूर, दुष्टव्रण, शूल, भगन्दर आदिरोग नष्ट होते हैं॥ १७ ॥

श्यामाघृत ।

श्यामात्रिभण्डीत्रिफलासुसिद्धं हरिद्रया तिल्वकवृक्षकेन ।
घृतं सदुग्धं व्रणतर्पणेन हन्याद्गतिं कोष्ठगतापि या स्यात् ॥

अनन्तमूल, निसोत, त्रिफला, हल्दी, लोध और कुडेकी छाल इनके समान भाग मिश्रित एक सेर कल्कके द्वारा दो सेर घृतको ८ सेर दूधमें पकावे । इस घृतसे नाडीव्रणको तृप्त करनेसे कोष्ठतक पहुँचीहुई राधकी गति नष्ट होकर व्रण शीघ्र सूख जाता है ॥ १८ ॥

स्वर्जिकाद्यतैल ।

स्वर्जिकासिन्धुदन्त्यग्निरूपिकानलनीलिकाः ।
खरमञ्जरिबीजानि तैलं गोमूत्रपाचितम् ॥
दुष्टव्रणप्रशमनं कफनाडीव्रणापहम् ॥ १९ ॥

सज्जी, सैंधानमक, दन्ती, चीता, सफेद आक, नलमूल, नीलवृक्षकी जड और चिरचिटेके बीज इन सबोंके कल्कद्वारा तिलके तेलको गोमूत्रमें पकावे । यह तेल दुष्टव्रण और कफजन्य नाडीव्रणको दूर करता है ॥ १९ ॥

कुम्भीकाद्यतैल ।

कुम्भीकखर्ज्जूरकपित्थबिल्ववनस्पतीनां च शलाटु-कल्कैः । कृत्वा कषायं विपचेत्तु तैलमावाप्य मुस्ता-सरलप्रियंगू ॥ २० ॥ सौगन्धिकामोचरसाहि-पुष्प-लोध्राग्नि दत्त्वा खलु धातकीं च । एतेन शल्यप्रभवा हि नाडी रोहेद्व्रणो वै सुखमाशु चैव ॥ २१ ॥

पुन्नागवृक्षकी लता, खजूर, कैथ, बेल, बड और गूलर इन सबोंके कच्चे फलोंके द्वारा यथाविधि क्वाथ बनावे । फिर इस क्वाथमें तिलका तेल तथा नागरमोथा, धूपसरल, फूलप्रियंगु, अनन्तमूल, मोचरस, नागकेशर, लोध, चीता और धायके फूल इन सबोंको कल्क डालकर यथानियम तेलको सिद्ध करे । इस तेलको लगानेसे शल्योत्पन्न नाडीव्रण और नानाप्रकारके व्रण भर-जाते हैं और रोगी शीघ्र सुखी होता है ॥ २० ॥ २१ ॥

भल्लातकाद्यतैल ।

भल्लातकार्कमरिचैर्लवणोत्तमेन सिद्धं विडङ्गरजनीद्वय-

चित्रकैश्च । स्यान्मार्कवस्य च रसेन निहन्ति तैलं नाडीं कफानिलकृतामपचीं व्रणांश्च ॥ २२ ॥

भिलावे, आककी जड, कालीमिरच, सैंधानोन, वायविडङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी और चीतेकी जड इनका समानभाग मिलाहुआ कल्क १ सेर, तिलका तेल ४ सेर और भाँगरेका रस १६ सेर लेवे । सबको एकत्रकर उत्तम रूपसे तेलको पकावे । यह तेल व्यवहार करनेसे कफज और वातजनाडीव्रण, अपचीरोग एवं सर्वप्रकारके व्रणोंको शीघ्र नष्ट करताहै ॥ २२ ॥

निर्गुण्डीतैल ।

समूलपत्रां निर्गुण्डीं पीडयित्वा रसेन तु ।
तेन सिद्धं समं तैलं नाडीव्रणविशोधनम् ॥ २३ ॥
हितं पामापचीनां तु पानाभ्यञ्जननावनैः ।
विविधेषु च रोगेषु तथा सर्वव्रणेषु च ॥ २४ ॥

जड और पत्तोंसहिव निसोतको कूटकर निकालाहुआ रस २ सेर और तिलका तेल २ सेर इन दोनोंको एकत्र पकाकर पान, मालिश अथवा नस्यग्रहण करनेसे सर्वप्रकारके नाडीव्रण (नासूर) खुजली, अपची, व्रणरोग और अन्यान्य विविध प्रकारके रोग तत्काल नाश होते हैं ॥ २३॥२४ ॥

हंसपदीतैल ।

हंसपद्यरिष्टपत्रं जातीपत्रं ततो रसैः ।
तत्कल्कैश्च पचेत्तैलं नाडीव्रणविरोहणम् ॥ २५ ॥

हंसपदीके पत्ते, नीमके पत्ते और चमेलीके पत्ते इनका समानभाग मिश्रित काथ १६ सेर एवं इन्हींका कल्क १ सेरलेवे । इनके द्वारा ४ सेर तिलके तेलको विधिपूर्वक सिद्ध करोयह तेल नाडीव्रणको तत्काल सुखा देताहै ॥२५॥

नरास्थितैल ।

नरास्थितैललेपेन स्फुटितः शुष्यति व्रणः ॥ २६ ॥

मनुष्यके शिरकी हड्डीको पीसकर उसके द्वारा सिद्धकियेहुए तेलको लगानेसे फूटा हुआ व्रण शीघ्र सूखता है । नाडीव्रणमें पथ्य और अपथ्य व्रणशोथकी समान करना चाहिये ॥ २६ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां नाडीव्रणचिकित्सा ।

भगन्दरकी चिकित्सा ।

गुदस्य श्वयथुं दृष्ट्वा विशोष्य शोधयेत्ततः ।
रक्तावसेचनं कार्यं यथा पाकं न गच्छति ॥ १ ॥

गुदाकी सूजनको देखकर तत्काल रोगीको लङ्घन कराकर सुखावे और दस्त कराकर शुद्ध करे । यदि इस प्रकार करनेसे सूजन कम न हो तो शोथ-स्थानमें जौंक लगवाकर रुधिरको निकलवावे । इस प्रकार करनेसे शोथ पकता नहीं है ॥ १ ॥

वटपत्रेष्टकाशुण्ठीगुडूच्यः सपुनर्नवाः ।
सुपिष्टाः पिडिकान्ते च लेपः शस्तो भगन्दरे ॥ २ ॥

बडके पत्ते, ईंट, सोंठ, गिलोय और पुनर्नवा इन सबोंको समान भाग लेके एकत्र पीसकर भगन्दरकी गूमडियें जहाँ तक फैलीहो वहाँ तक लेप करना॥२

स्नुह्यर्कदुग्धदार्वीभिर्वर्तिं कृत्वा विचक्षणः ।
भगन्दरगतिं ज्ञात्वा पूरयेत्तां प्रयत्नतः ॥
एषा सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यान्न संशयः ॥ ३ ॥

थूहरका दूध, आकका दूध, और दारुहल्दी इनको एकत्र पीसकर बत्ती बनाकर बहते हुए भगन्दरमें सप्रयत्न प्रवेश करे । यह बत्ती शरीरकी सम्पूर्ण नाडियोंके विकारोंको दूर करती है ॥ ३ ॥

तिलाभयाकुष्ठमरिष्टपत्रं निशे वचा लोध्रमगारधूमः ।
भगन्दरे नाड्युपदंशयोश्च दुष्टव्रणेशोधनरोपणोऽयम् ॥ ४ ॥

तिल, हरड, कूठ, नीमके पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी, वच, लोध और गृहधूम इन सबको समानभाग लेकर एकत्र पीसलेवे । फिर इस चूर्णको भगन्दर, नाडी-व्रण और उपदंशके दुष्ट व्रणोंपर लेप करनेसे उक्तव्रण शुद्ध होकर भरतेहैं॥४॥

त्रिफलारससंपिष्टबिडालास्थिप्रलेपनम् ।
भगन्दरं निहन्त्याशु दुष्टव्रणहरं परम् ॥ ५ ॥

त्रिफलाके काथमें बिलावकी हड्डीको घिसकर लेपकरनेसे भगन्दरका दुष्टव्रण अल्पकालमें नष्ट होता है ॥ ५ ॥

भगन्दरं प्रत्यहन्तु सुधौतं त्रिफलाम्बुना ॥ ६ ॥

प्रतिदिन त्रिफलेके काथसे भगन्दरको धोना चाहिये ॥ ६ ॥

खराश्रपक्वभूनागचूर्णलेपो भगन्दरम् ।
हन्ति दन्त्यग्न्यतिविषालेपस्तद्वच्छुनोऽस्थि वा ॥७॥

गधेके खूनमें कैंचुओंके चूर्णको पकाकर लेप करनेसे भगन्दर रोग नष्ट होता है । अथवा दन्तीकी जड, आककी जड और अतीस इनको एकत्र पीसकर लेप करे किम्वा कुत्तेकी हड्डीको त्रिफलेके काथमें घिसकर प्रलेपकरे तो भगन्दर दूर होता है ॥ ७ ॥

शम्बूकस्य च मांसानि भक्षयेद्व्यञ्जनादिभिः ।
अजीर्णवर्जी मासेन मुच्यते स भगन्दरात् ॥ ८ ॥

जो अजीर्णकारक द्रव्योंको छोडकर अनेक प्रकारके व्यञ्जन और आहारके साथ शम्बूक (घोघा) के मांसको एक महीने तक भक्षण करे तो वह भगन्दररोगी भगन्दररोगसे मुक्त होता है ॥ ८ ॥

नारायणरस ।

दरदं पार्वतीपुष्पं कुनटी पुरुषो रसः ।
शोणितं गन्धको दैत्यः सैन्धवातिविषा चवी ॥ ९ ॥
शरपुङ्खा विडङ्गश्च यमानी गजपिप्पली ।
मरिचार्कौ च वरुणो धूनकश्च हरीतकी ॥ १० ॥
सम्मर्द्य कटुतैलेन गुडिकां कारयेद्भिषक् ।
नाडीव्रणं प्रदुष्टश्च गण्डमालां विचर्चिकाम् ॥ ११ ॥
चिरदुष्टव्रणं दद्रुं पूतिकर्णं शिरोगदम् ।
हस्तपादपरिस्फोटं दुःसाध्यश्च भगन्दरम् ॥
एतान्रोगान्निहन्त्याशु गजेन्द्रमिव केसरी ॥ १२ ॥

सिंगरफ, गोपीचन्दन, रसौत, मैनसिल, सुवर्ण, शुद्धपारा, ताँबा, शुद्धगन्धक, लोहा, सैन्धानमक, अतीस, चव्य, शरफोंका, वायविडङ्ग, अजवायन, गजपीपल, कालीमिरच, आककी मूल, वरुणकी जड, सफेद राल और हरड इन सब द्रव्योंको एक एक तोला लेकर सरसोंके तेलमें खरलकरके गोलियाँ बनालेवे । यह औषधि नासूर, गण्डमाला, विचर्चिका, बहुत पुराना दुष्टव्रण, दाद, पूतिकर्ण, शिरोरोग, हाथ पैरके फोडे और दुःसाध्य भगन्दर इत्यादि रोगोंको तत्क्षण इस प्रकार नष्ट करती है जिस प्रकार मृगेन्द्र गजेन्द्रको नष्ट करदेता है ॥ ९-१२ ॥

चित्रविभाण्डक रस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं कुमारीरसमर्दितम् ।
त्र्यहान्ते गोलकं कृत्वा ताम्रं तेन प्रलेपयेत् ॥ १३ ॥
द्वयोः समं भस्मपूर्णभाण्डे रुद्ध्वा विपाचयेत् ।
द्वियामान्ते समुद्धृत्य स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत् ॥ १४ ॥
जम्बीरस्य द्रवैः पिष्ट्वा रुध्वा सप्तपुटे पचेत् ।
गुञ्जैकं मधुनाज्येन लिह्याद्धन्ति भगन्दरम् ॥ १५ ॥
मुषलीलवणं चानु चारनालयुतं पिबेत् ।
कर्त्तव्यो मधुराहारो दिवास्वप्नश्च मैथुनम् ॥
वर्जयेच्छीतलाहारं रसे चित्रविभाण्डके ॥ १६ ॥

शुद्धपारा एक तोला और शुद्धगन्धक दो तोले, इनको घीग्वारके रसमें तीन दिन तक खरल करके गोलासा बनाले, फिर उस गोलेसे तीन तोले शुद्ध ताँबेके पत्रको लीपे और इन दोनोंके बराबर भाग उपलोंकी राखको एक हाँडीमें भरकर ऊपरसे उक्त पत्रको रक्खे और उसके ऊपर फिर राख भरकर हाँडीके मुखको अच्छेप्रकार बन्द करके दो प्रहरतक तीव्र अग्निमें पकावे । जब पक कर स्वाङ्गशीतल होजाय तब निकालकर चूर्ण करलेवे। पश्चात् इस चूर्णको जम्बीरीनीम्बूके रसमें पीसकर मूषायन्त्रमें रखकर सातबार पुटपाक करे। इसकी एक एक रत्ती मात्राको मधु और घृतसे मिलाकर चाटनेसे भगन्दररोग नष्ट होताहै औषधि सेवनकरनेके पीछे मुसली और सैंधानमकको काँजीमें पीसकर पान करे। इसपर मधुर पदार्थोंका भोजन करे। किन्तु दिनमें सोना, मैथुन करना और शीतलद्रव्योंका आहार करना त्यागदेवे ॥१३-१६॥

ताम्रप्रयोग ।

ताम्रपत्रं रविक्षीरे निर्गुण्डीस्वरसे तथा ।
त्रिकण्टजे स्नुहिरसे ताम्रं दग्ध्वा क्षिपेत्त्रिधा ॥ १७ ॥
रसस्यार्द्धपलं शुद्धं गन्धकस्य पलं तथा ।
कज्जल्यार्द्धेन जम्बीरप्लुतेन ताम्रतः पलम् ॥ १८ ॥
परिलिप्यान्धमूषायां दद्यात्पञ्च पुटाँल्लघून् ।
सम्मर्द्य मधुसर्पिर्भ्यां ततो रक्तिद्वयं लिहेत् ॥
भगन्दरे सर्वभवे कार्यं सर्वव्रणेषु च ॥ १९ ॥

चार तोले ताँबेके पत्रको आकके दूध, निर्गुण्डीके स्वरस, गोखुरूके काथ और थूहरके दूधमें यथाक्रम तीन तीन बार भावना देकर तीन तीन बार अग्निमें भस्म करे । पश्चात् शुद्ध पारा दो तोले और शुद्धगन्धक चार तोले लेकर कज्जली बनाकर तीन तोले जम्बीरीनींबूके रसमें खरल करलेवे । फिर पूर्वोक्त ताम्रपत्रको इस कज्जलीसे लिप्त करके अन्धमूषायन्त्रमें रख हल्के हल्के पाँच बार पुटदेवे । तदनन्तर उसको निकालकर शहद और घृतमें खरल करके प्रतिदिन प्रातःकाल दो रत्ती भर सेवन करे । इस प्रयोगको भगन्दर और सर्वप्रकारके व्रणोंमें सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है ॥ १७–१९ ॥

नवकार्षिक गुग्गुलु ।

त्रिफलापूरकृष्णानां त्रिपञ्चैकांशयोजिता ।
गुडिका शोथगुल्मार्शोभगन्दरवतां हिता ॥ २० ॥

हरड, बहेडा और आमला ये प्रत्येक तीन तीन तोले, गूगल पाँच तोले और पीपल एक तोला लेवे । पुनः सबको एकत्र खरल करके गोलियाँ बनालेवे । यह गोली सूजन, गुल्म, अर्श और भगन्दररोगवाले रोगियोंके लिये विशेष हितकारी है ॥ २० ॥

सप्तविंशतिकगुग्गुलु ।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तविडङ्गामृतचित्रकम् ।
शठ्येला पिप्पलीमूलं हबुषा सुरदारु च ॥ २१ ॥
तुम्बुर्वरुष्करं चव्यं विशाला रजनीद्वयम् ।
विडसौवर्चलौ क्षारौ सैन्धवं गजपिप्पली ॥ २२ ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावद्द्विगुणगुग्गुलुः ।
कोलप्रमाणां गुटिकां भक्षयेन्मधुना सह ॥ २३ ॥
कासं श्वासं तथा शोथमर्शांसि च भगन्दरम् ।
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कुक्षिवस्तिगुदे रुजम् ॥ २४ ॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च अन्त्रवृद्धिं तथा कृमिम् ।
चिरज्वरोपसृष्टानां क्षयोपहतचेतसाम् ॥ २५ ॥
आनाहञ्च तथोन्मादं कुष्ठानि चोदराणि च ।
नाडीं दुष्टव्रणान्सर्वान् प्रमेहं श्लीपदं तथा ॥
सप्तविंशतिको हन्ति सर्वरोगनिषूदनः ॥ २६ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडङ्ग, गिलोय, चीता, कचूर, छोटी इलायची, पीपलामूल, हाऊबेर (अभावमें धनियाँ), देवदारु, धनियाँ, भिलावेका फल, चव्य, इन्द्रायणकी जड, हल्दी, दारुहल्दी, विरिया-सञ्चरनसक, कालानमक, जवाखार, सज्जी, सैंधानमक और गजपीपल इन सम्पूर्ण औषधियोंका चूर्ण एक एक तोला और समस्त चूर्णसे दुगुनी गूगल लेवे । फिर सबोंको एकत्र उत्तम प्रकार खरल करके बेरकी बराबर गोलियाँ तैयार करलेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली मधुके साथ सेवन करे तो खाँसी, श्वास, सूजन, बवासीर, भगन्दर, हृदयका शूल, पसलीका शूल, कुक्षि, वस्ति और गुदाके रोग, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्त्रवृद्धि, कृमिरोग, एवं बहुतपुराने ज्वर, क्षयसे पीडित मनुष्योंके आनाह, उन्माद, कुष्ठ, उदररोग, नाडीव्रण, दुष्टव्रण, प्रमेह, श्लीपद तथा अन्यान्य सर्वप्रकारके विकारोंको यह सप्तविंशतिक नामका गूगल तत्काल नष्ट करता है ॥ २१-२६ ॥

विष्यन्दनतैल ।

चित्रकार्कत्रिवृत्पाठे मलपूहयमारकौ ।
सुधां वचां लाङ्गलिकीं हरितालं सुवर्चिकाम् ॥ २७ ॥
ज्योतिष्मतीञ्च संहृत्य तैलं धीरो विपाचयेत् ।
एतद्विष्यन्दनं नाम तैलं दद्याद्भगन्दरे ॥
शोधनं रोपणञ्चैव सवर्णकरणं परम् ॥ २८ ॥

चीता, आक, निसोत इनकी जड, पाढ, गूलरकी जड, कनेरकी जड, थूहरकी जड, बच, कलिहारी, हरताल सज्जी और मालकाङ्गनी इन सबोंको समान भाग लेकर कल्क बनावे और इसी कल्कके द्वारा चौगुने जलमें यथा-विधि तिलके तेलको सिद्ध करे । इस विष्यन्दननामवाले तेलको भगन्दर रोगमें व्यवहार करनेसे व्रण शुद्ध होकर शीघ्र भरजाता है और त्वचाका वर्ण अत्युत्तम होजाताहै ॥ २७ ॥ २८ ॥

करवीराद्यतैल ।

करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणाग्निभिः ।
मातुलुङ्गार्कवत्साह्वे पचेत्तैलं भगन्दरे ॥ २९ ॥

कनेरकी जड, हल्दी, दन्तीकी जड, कलिहारी, सैंधानमक, चीता, बिजौरे नींबूकी जड, आककी जड और कुडेकी छाल इनके समान भाग मिश्रित कल्कके साथ तेलको पकाकर लगानेसे भगन्दररोगमें अत्यन्त लाभ होता है२९

निशाद्यतैल ।

निशार्कक्षीरसिन्धवाग्निपुराश्वहनवत्सकैः ।
सिद्धमभ्यञ्जने तैलं भगन्दरविनाशनम् ॥ २९ ॥

हल्दी, आकका दूध, सैंधानोंन, चीता, गूगल, कनेरकी जड और कुडेकी छाल इन सबोंका कल्क समानरूपसे मिलाहुआ एक सेर, जल आठ सेर और तिलका तेल दो सेर लेकर सबको एकत्रकर विधिपूर्वक पकावे । इस तेलको लगानेसे भगन्दररोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ २९ ॥

सैन्धवाद्यतैल ।

सैन्धवं चित्रकं दन्ती पलाशश्चेन्द्रवारुणी ।
गोमूत्रेऽष्टगुणे पक्त्वा ग्राह्यमष्टावशेषितम् ॥ ३० ॥
क्वाथपादं पचेत्तैलं कल्कः कृष्णायसं मृतम् ।
पचेत्तैलावशेषश्च तेन लेप्यं भगन्दरम् ॥
असाध्यं साधयत्याशु पक्वं कृमिकुलान्वितम् ॥ ३१ ॥

सैंधानमक, चीता, दन्तीकी जड, ढाक और इन्द्रायणकी जड इनको समान भाग लेकर अठगुने गोमूत्रमें पकावे । जब पकते पकते आठवाँ भाग शेष रह-जाय तब उतारकर छानलेवे । फिर इसमें काथसे चौथाई भाग तिलका तेल और कल्ककेलिये कृष्णलोहकी भस्म८तोले मिलाकर तेलको पकावे।जब तेलमात्र शेष रहजाय तब उतारलेवे । इस तेलको लगानेसे कृमियुक्त और असाध्य भगन्दररोगका तत्काल नाश होताहै ॥ ३० ॥ ३१ ॥

भगन्दररोगमें पथ्य ।

आमे संशोधनं लेपो लंघनं रक्तमोक्षणम् ।
पक्वे पुनः शस्त्रवह्निक्षारकर्म यथाविधि ॥ ३२ ॥
सर्वेऽपि शालयो मुद्गा विलेपी जाङ्गलो रसः ।
पटोलं शिग्रुवेत्राग्रं पत्तुरो बालमूलकम् ॥ ३३ ॥
तिलसर्षपयोस्तैलं तिक्तवर्गो घृतं मधु ।
एतत्पथ्यं यथादोषं नरैः सेव्यं भगन्दरे ॥ ३४ ॥

भगन्दररोगकी अपक्व (कच्ची) अवस्थामें संशोधन, औषधियोंका लेप, लङ्घन और रुधिरका निकलवाना आदि कर्म हितकर हैं। और भगन्दरके पक-जानेपर शस्त्र क्रिया, अग्निदग्ध एवं क्षारादिकर्म विधिपूर्वक करे । पक्व और अपक्व दोनों अवस्थाओंमें शालिधानके चावल, मूंग, विलेपी, जंगली पशु पक्षि-

योंका मांसरस, परबल, सहिंजना, बेतकी कोंपल, शान्तिशाक, कच्चीमूली, तिल और सरसोंका तेल, तिक्तवर्ग, घृत और शहद इन सब पथ्य वस्तुओंको दोषानुसार सेवन करना चाहिये ॥ ३२-३४ ॥

भगन्दररोगमें अपथ्य ।

विरुद्धान्यन्नपानानि विषमाशनमातपम् ।
व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरूणि च ॥
संवत्सरं परिहरेदपि रूढव्रणो नरः ॥ ३५ ॥

स्वभावविरुद्ध अन्नपान और विषम भोजन, धूपका सेवन, कसरत, मैथुन, युद्ध, घोडे, ऊँट, हाथी आदिकी सवारी करना, बोझ उठाना और गुरुपाकी द्रव्योंका सेवन इन सबोंको, भगन्दर रोगी व्रणके भरजानेपर भी एक वर्षतक सेवन नहीं करे ॥ ३५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां भगन्दररोगकी चिकित्सा ॥

उपदंशकी चिकित्सा ।

स्निग्धस्विन्नशरीरस्य ध्वजमध्ये शिराव्यधः ।
जलौकापातनं वा स्यादूर्द्ध्वाधःशोधनं तथा ॥ १ ॥
सद्यो निर्जितदोषस्य रुक्शोथावुपशाम्यतः ।
पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरो हि सः ॥ २ ॥

उपदंश (गरमी) रोगमें प्रथम रोगीको स्निग्ध द्रव्य पान कराकर स्वेदित करे । पश्चात् लिंगकी बीचकी शिराको वेधे अथवा जौंक लगवाकर रक्तमोक्षण करावे फिर वमन कराकर ऊपरसे और दस्त करवाकर नीचेसे शरीरकी शुद्धि करे । इस प्रकार करनेसे दोषोंकी शान्ति होजानेपर रोगीकी पीडा और सूजन तत्काल नष्ट होती है। लिङ्गकी सूजन जिस प्रकार पकें नहीं इसका विशेष यत्न करना चाहिये क्योंकि पकजानेपर लिङ्गेन्द्रियका नाश होजाताहै२

त्रिफलायाः कषायेण भृङ्गराजरसेन वा ।
व्रणप्रक्षालनं कुर्यादुपदंशप्रशान्तये ॥ ३ ॥

त्रिफलेके काढेसे अथवा भाँगरेके रससे प्रतिदिन उपदंशके व्रणोंको धोवे तो उपदंशरोग शमन होता है ॥ ३ ॥

दहेत्कटाहे त्रिफलां समां समधुसंयुताम् ।
उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयाति व्रणम् ॥ ४ ॥

लोहेकी कडाईमें समान भागसे मिलेहुए त्रिफलेको भूनलेवे, फिर शहदमें पीसकर उपदंशपर लेप करे तो शीघ्र व्रण भरजाते हैं । किसी ऋषिका ऐसा मत है कि, समानभाग त्रिफलेको नवीन हाँडीमें रखकर सकोरेसे उसके मुखको अच्छे प्रकार बन्दकरके मिश्रितकरके अग्निमें भस्म करलेवे । पश्चात् उस भस्मको शहदमें मिलाकर उपदंशपर लेप करे तो तत्काल व्रण शुष्क होतेहैं॥

रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया वा समन्वितम् ।
सक्षौद्रं वा प्रलेपोऽयं सर्वलिङ्गगदापहः ॥ ५ ॥

रसौतको सिरसकी छाल अथवा हरडके साथ शहदमें पीसकर व्रणपर लेप करे । किंवा रसौतको शहदमें मिलाकर प्रलेप करे तो सर्वप्रकारके उपदंशविकार दूर होते हैं ॥ ५ ॥

बब्बोलदलचूर्णेन उपदंशहरं परम् ।
गुण्डनं त्वस्थिचूर्णेन दाडिमत्वग्भवेन वा ॥ ६ ॥
लेपः पूगफलेनाश्वमारमूलेन वा तथा ।
सेवेन्नित्यं यवान्नञ्च पानीयं कौपमेव च ॥ ७ ॥

बबूरके पत्तोंका चूर्ण अथवा अनारकी छालका चूर्ण किंवा मनुष्यकी हड्डीका चूर्ण व्रणपर लगानेसे उपदंशरोग शीघ्र नष्ट होताहै । सुपारीको जलमें घिसकर अथवा कनेरकी छालको पीसकर लेप करे तो उपदंशके व्रण शुष्क होते हैं । उपदंशरोगीको प्रतिदिन जौका भोजन और कुएँका जल सेवन करना चाहिये इससे उक्तरोग शीघ्र शान्त होताहै ॥ ६ ॥ ७ ॥

जयाजात्यश्वमारार्कशम्याकानां दलैः पृथक् ।
कृतं प्रक्षालने क्वाथं मेढ्रपाके प्रयोजयेत् ॥ ८ ॥

उपदंशमें लिङ्गके पकजानेपर जयन्ती, चमेली, कनेर, आक और अमलतास इनके पत्तोंका अलग अलग क्वाथ बनाकर व्रणोंको धोवे ॥ ८ ॥

धूप ।

बदरार्कमपामार्गस्तथा ब्राह्मणयष्टिका ।
हिङ्गुलञ्च समं चैषां भागं कृत्वा तु धूपनम् ॥
दोषजं कर्मजं हन्यादुपदंशादिकं व्रणम् ॥ ९ ॥

बडीबेरीकी छाल, आक, चिरचिटा, भारङ्गी और सिंगरफ इन सबोंको समानभाग लेकर एकत्र पीसकर धूनी देवे । इससे दोषज और कर्मज दोनों प्रकारके उपदंशोंके व्रण नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

धूम ।

रसं वङ्गश्च खदिरं हरीतक्याश्च भस्मकम् ।
कोमलं कदलीभस्म गुवाकफलभस्म च ॥ १० ॥
एतत्तोलकमानं स्याद्धिङ्गुलं हरितालकम् ।
गन्धकं तुत्थकञ्चापि पद्मकं सरलं तथा ॥ ११ ॥
द्वे चन्दने देवदारु वकमं काष्ठमेव च ।
तथा केशरकाष्ठञ्च माषमानं प्रकल्पयेत् ॥ १२ ॥
एकीकृत्य चूर्णयित्वा सर्वं चाङ्गेरिकाद्रवैः ।
तुलसीपत्रजरसैः पुरातनगुडेन च ॥ १३ ॥
घृतेन सह षट् कार्या वटिका मन्त्ररक्षिताः ।
वेदनायामुत्कटायां चतस्रः शुक्लवाससा ॥ १४ ॥
वेष्टयित्वा च निर्द्धूमाङ्गारोपरि च दापयेत् ।
तं धूमं परिगृह्णीयान्नरो वस्त्रादिवेष्टितः ॥ १५ ॥
मुखनासाकर्णबहिर्निश्वासस्य निरोधतः ।
स्वेदे जातेऽस्य नैरुज्यं सायं प्रातर्दिनत्रयम् ॥
मासमात्रन्तु पथ्याशी शाकाम्लदधिवर्ज्जनम् ॥ १६ ॥
गुर्वन्नपायसादीनि अपथ्यानि विवर्ज्जयेत् ।
दिनत्रये व्यतीते तु स्नानमुष्णाम्बुना चरेत् ॥
एवं धूमे कृते शान्तिव्रणाश्च पिडका अपि ॥ १७ ॥
तथा शोथश्चामवातः खञ्जता पङ्गुतापि च ।
कुष्ठोपदंशशान्त्यर्थं भैरवेण प्रकीर्त्तितः ॥ १८ ॥

शुद्धपारा, वङ्ग, सफेद खैर, हरडकी भस्म, कोमल केलेकी भस्म और सुपारीकी भस्म ये प्रत्येक एक एक तोला, सिंगरफ, हरिताल, शुद्धगन्धक, तूतिया, पद्माख, धूपसरल, लालचन्दन, सफेद चन्दन, देवदारु, अगस्तिया, और नागकेशर ये प्रत्येक एक एक माशा लेवे। फिर सबोंको एकत्र पीसकर लोहेके पात्रमें नोनियाघासके रस और तुलसीके रसको डालकर लोहेके डंडेसे खरल कर पुराने गुड और घृतमें मर्दन करके छः गोलियाँ बनालेवे। तदनन्तर उपदंशमें दारुण पीडा होनेपर रोगी चारोंओरसे सफेद कपडेसे शरीरको ढक-

कर तथा वस्त्रके मध्य सिकोरे आदिमें धूमरहित अग्निके अँगारेको रख उसमें एक गोली डालकर धूमपान करे। किन्तु रोगीको मुख, नासिका और कान वस्त्रसे खुले रखने चाहिये। यदि रोगकी अधिक प्रबलता हो तो दो अथवा चार गोलियोंको डालकर धूमपान करे। इस प्रकार प्रातः और सन्ध्यासमय तीन दिनतक धूम पान करे। धूमग्रहण करनेपर जो पसीना निकले उसको सूखे कपडेसे भीतरही भीतर पोंछलेवे। इसपर एक महीनेतक पथ्यद्रव्योंका भोजन करे और शाक, खटाई, दही, गुरुपाकी अन्न और खीर आदि अपथ्य पदार्थोंको त्यागदेवे। तीन दिनके पश्चात् गरमजलसे स्नान करे। इस भाँति धूमपान करनेसे उपदंशके व्रण, पिडिका, सूजन, आमवात, खञ्जता, पंगुता, कुष्ठ और उपदंश प्रभृति सम्पूर्ण विकार बहुत शीघ्र नष्ट होतेहैं। इस योगको भैरवाचार्यने निर्माण कियाहै ॥ १०-१८ ॥

लेप।

विषतिन्दुं लौहपात्रे मलाक्ते निम्बुकद्रवैः।
घर्षेत्कृष्णस्नुधामूलं प्रत्येकं माक्षिकं दृढम् ॥ १९ ॥
तुत्थं तदनु सूतञ्च लौहदण्डेन तद्युतम्।
सर्वं तदेकतां यातं तेन लिङ्गं प्रलेपयेत् ॥ २० ॥
लेपे शुष्के पुनर्लेपं दद्याच्छुष्के पुनस्तथा।
शुष्कं न स्रंसयेल्लेपं शुष्कस्योपरि दापयेत् ॥ २१ ॥

मलयुक्त लोहेके पात्रमें कागजीनींबूके रस द्वारा कुचले, थूहरकी जड, सोनामाखी, तूतिया और पारेको एक एक माशा लेकर यथाक्रम लोहेके डंडेसे खरल करे। जब ये सब औषधियाँ एकरूप होजावे तब लिंगपर लेप करे। लेपके सूखजानेपर दूसरा लेप करे। फिर जब वह भी सूखजाय तब उस सूखे हुए परही और लेप करे। सूखे हुए लेपको छुटावे नहीं, किन्तु उसीपर बार-बार लेप करता रहे ॥ १९-२१ ॥

भैरवरस।

शुद्धसूतं गृहीतव्यं रक्तिकाशतमात्रकम्।
त्रिगुणां शर्करां लौहे निम्बदण्डेन मर्दयेत् ॥ २२ ॥
याममात्रं तत्र दद्याच्छ्वेतं खदिरचूर्णकम्।
सूततुल्यं ततः कुर्यान्मर्दनात्कज्जलोपमम् ॥ २३ ॥

विंशतिर्वटिकाः कार्य्याः स्थाप्या गोधूमचूर्णके ।
निःशेषं निःसृता ज्ञात्वा पिडकास्ताः कलेवरे ॥२४॥
भैरवं देवमभ्यर्च्य बलिं तस्मै प्रदाय च ।
विधाय योगीनीपूजां दुर्गामभ्यर्च्य यत्नतः ॥२५॥
वटिकास्ताः प्रयोक्तव्या भिषजा जानता क्रियाम् ।
दिवसं त्रितयं दद्यात्तिस्रस्तिस्रो विजानता ॥ २६ ॥
चतुर्थाह्न समारभ्य एकामेकां प्रयोजयेत् ।
एवं चतुर्दशादिनैर्नीरोगो जायते नरः ॥ २७ ॥
पथ्यं शर्करया सार्द्धमुष्णान्नं घृतगन्धि च ।
कुर्यात्साकांक्षमुत्थानं सकृद्भोजनमिष्यते ॥ २८ ॥
जलपानं जलस्पर्शं न कदाचन कारयेत् ।
दुःसहायान्तु तृष्णायामिक्षुदाडिमकादिकम् ॥ २९ ॥
शौचमुष्णाम्बुना कार्य्यं वाससा प्रोञ्छनं द्रुतम् ।
वातातपाग्निसम्पर्कं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ३० ॥
मेघागमे च शीते वा कार्यमेतद्विजानता ।
मुखरोगे तु सञ्जाते मुखरोगहरी क्रिया ॥ ३१ ॥
श्रमाध्वभाराध्ययनस्वप्नालस्यं विवर्जयेत ।
ताम्बूलं भक्षयेन्नित्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ३२ ॥
क्रिया श्लेष्महरी युक्ता वातपित्ताविरोधिनी ।
लवणं वर्जयेदम्लं दिवानिद्रां तथैव च ॥ ३३ ॥
रात्रौ जागरणञ्चैव स्त्रीमुखालोकनं तथा ।
सप्ताहद्वयमुत्क्रम्य स्नानमुष्णाम्बुना चरेत् ॥ ३४ ॥
पथ्यं कुर्याद्धितमिदं जाङ्गलानां रसादिभिः ।
व्यायामाद्यं वर्जनीयं यावन्न प्रकृतिर्भवेत् ॥ ३५ ॥
एवं कृतविधानन्तु यः करोत्येतदौषधम् ।
स एव पापरोगस्य पारं याति जितेन्द्रियः ॥ ३६ ॥
पिडका विलयं यान्ति बलं तेजश्च वर्द्धते ।
रुजा च प्रशमं याति ग्रन्थिशोथश्च शाम्यति ॥३७॥

अस्थां भवति दार्ढ्यश्च आमवातश्च शाम्यति।
भैरवेन समाख्यातो रसोऽयं भैरवः स्वयम्॥ ३८॥

शुद्धकियाहुआ पारा १०० रत्ती और शुद्ध खाँड ३०० रत्ती दोनोंको लोहेके पात्रमें एकत्रकर नीमके डंडेसे एक प्रहरतक अच्छे प्रकार घोटे। फिर उसमें १०० रत्ती सफेद खैरका चूर्ण डालकर घोटे। जब घुटते घुटते कज्जलकी समान बारीक होजाय तब उसकी बीस गोलियाँ बनाकर गेहूंके आटेमें रखदेवे। जब शरीरमें उपदंशके विषद्वारा सब फुन्सियाँ निकलीहुई मालूम हों तब प्रथम भैरवदेवको पूजकर और उनके लिये बलि देकर तथा योगिनी और दुर्गाका विधिपूर्वक पूजन करके पश्चात् उक्तगोलियोंको सुवैद्य यत्नके साथ प्रयोग करे। तीन दिनतक नित्य तीन तीन गोली देवे और चौथे दिनसे एक एक गोली देवे। इस प्रकार १४ दिन तक इन गोलियोंको सेवन करानेसे रोगी शीघ्रही आरोग्य होता है। इसपर खाँडके साथ थोडा घृत मिलाकर अधपका अन्न और सुगन्धियुक्तद्रव्योंका पथ्य देवे। जब इच्छा हो तब उठे बैठे और एकबार भोजन करे। शीतल जलपान और शीतल जलका स्पर्शतक कदापि नहीं करना चाहिये। यदि अधिक तृषा मालूम हो तो ईख और अनारका रस पान करे। शौचके समय उष्णजलसे शुद्धि करे और तत्काल सूखे अँगोछेसे पोंछडाले। शीतलवायु, धूप और अग्नि इनके सम्पर्कको दूरहीसे त्यागदेवे। वर्षा होनेपर अथवा शीतकालमें उपर्युक्त औषधि और धूपादि वस्तुओंको विधिपूर्वक सेवन करे। इस औषधिके सेवन करनेसे यदि मुख पकजाय तो मुखरोगको हरनेवाली चिकित्सा करना श्रेष्ठ है। उपदंशरोगी परिश्रम करना, मार्गमें चलना, बोझ उठाना, पढना, दिनमें सोना और आलस्य इनको त्याग देवे। एवं कपूरादि सुगन्धिवाले द्रव्योंसे सुवासित ताम्बूलको प्रतिदिन भक्षण करे। इस औषधिको सेवन करनेके अनन्तर कफनाशक और वात पित्तकी मिलीहुई क्रिया करे। नमक, खटाई, दिनमें सोना, रात्रिमें जागना और स्त्री प्रसंग करना तत्क्षण परित्याग करदेवे। उक्त प्रकारसे १४ दिनतक औषधि सेवनके पश्चात् गरमजलसे स्नानकरना और जङ्गलीजीवोंके मांसरसके साथ पथ्य अन्नोंका भोजन करना हितकारी है। जबतक रोगीकी पहले जैसी अवस्थान होजाय तबतक व्यायामादि परिश्रमजन्य कार्य नहीं करने चाहिये। जो जितेन्द्रिय रोगी इस निर्दिष्ट रीतिके अनुसार रहताहुआ औषधि सेवन करता है वहही इस पापरोगको जीतकर सुखी होता है। इस औषधिसे उपदंशकी पिडिकायें नाश होती हैं और बल तथा तेज बढता है। एवं अन्यान्य सब

रोग शान्त होजाते हैं, ग्रन्थि और सूजन नष्ट होती हैं, हड्डियें अत्यन्त दृढ होती है और आमवातरोग शान्त होता है । इसको भैरवजीने कहा है इससे यह रस भैरवनामसे प्रसिद्ध है ॥ २२–३८ ॥

रसगुग्गुलु ।

ग्राह्यः पातनयन्त्रेण शुद्धश्चन्द्रसमो रसः ।
रक्तिकाशतमेतस्य शर्करा त्रिगुणा भवेत् ॥ ३९ ॥
ततश्चतुर्गुणो ग्राह्यो गुग्गुलुर्महिषाक्षकः ।
घृतं रससमं दद्यान्मर्दयेच्च प्रयत्नतः ॥ ४० ॥
विंशतिर्वटिकाः कार्यास्तिस्रास्तिस्रो दिनत्रयम् ।
एकादश दिनैरन्या देया एकादशैव ताम् ॥ ४१ ॥
सप्ताहद्वयमेवञ्च कारयेद्भिषजां वरः ।
लवणं वर्जयेत्पथ्यो पादार्द्धाशनमिष्यते ॥ ४२ ॥
दिनद्वये व्यतीते तु पादोनं पथ्यमाचरेत् ।
मसूरसूपं सगुडं व्यञ्जनं चाथ कल्पयेत ॥ ४३ ॥
पुनर्नवा पटोलानि तिक्तपत्री च गोक्षुरम् ।
पुटपत्री कोकिलाक्षं शाकार्थे घृतभर्जितम् ॥ ४४ ॥
शर्करा लवणस्थाने वेसवारे धनीयकम् ।
लवङ्गाजाजिहिंगूनि धान्यकं जीरकाणि च ॥ ४५ ॥
पाकार्थे संप्रदातव्यं संस्कारार्थं भिषग्वरैः ।
भैरवस्य रसस्यान्याः क्रिया अत्र प्रयोजयेत् ॥ ४६ ॥
रसगुग्गुलुरेवं हि सर्वाञ्जित्वामयानयम् ।
कुष्ठोपदंशनामानं व्रणं वातादिसंयुतम् ॥
कामदेवप्रतीकाशश्चिरजीवी भवेन्नरः ॥ ४७ ॥

पातनयन्त्रमें शुद्धाकियाहुआ पारा १००रत्ती, चीनी२०० रत्ती, शुद्ध भैंसिया गूगल ४०० रत्ती और घृत १०० रत्ती लेवे । फिर सबोंको एकत्र लोहेके पात्रमें लोहेके डंडेसे उत्तमप्रकार खरलकरके २० गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंके सेवन करनेकी विधि इसप्रकार है--प्रथम तीन दिनतक प्रतिदिन तीन तीन गोलियाँ भक्षण करे, फिर चौथे दिनसे ११ दिनतक एक एक गोली खावे

इसप्रकार १४ दिनमें यह समस्त औषधि रोगीको सेवन करानी चाहिये। इस पर लवण और जलको त्यागकर वक्ष्यमाणविधिसे आहार करे। पहले दिन खुराकसे चौथाई, दूसरेदिन आधा और दोदिनके पश्चात् पौन पौन भाग भोजन करे। गुडकेसाथ व्यञ्जन और मसूरकी दालका यूष पथ्य है। शाकोंमें घीमें भुनेहुए पुनर्नवे, परवल, ककोडे, गोखरू, पुटपत्री और तालमखानेको खाना श्रेष्ठ है। शाकमें नमककी जगह खाँड और मसालेकी जगह धनियाँ डाले। पाकको सुगन्धित करनेके लिये लौंग, कालाजीरा, हींग, धनियाँ और जीरेको एकत्र पीसकर डाले। इसमें अन्य सर्वक्रियायें भैरवरसकी समान करे। इस प्रकार व्यवहार कियाहुआ यह रसगूगल सर्वप्रकारके रोगोंको नष्टकर उपदंश, कुष्ठ तथा वातादियुक्त रोगोंके व्रणोंको शीघ्र सुखाता है। इसके सेवन करनेसे शरीर कामदेवकी समान कान्तिमान् होता है और वह मनुष्य बहुत कालतक जीता है॥ ३९-४७॥

सारिवाद्यवलेह।

सारिवायाः पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत्।
तस्मिन्पादावशेषे तु गुडूची शतमूलिका॥ ४८॥
विदारी जीवनी त्रिवृत्कटुकी त्रिफला तथा।
क्षुद्रैला त्रायमाणा च प्रत्येकार्द्धपलं मितम्॥ ४९॥
सुपिष्टं निःक्षिपेत्तत्र शीते मधुपलाष्टकम्।
क्षीरानुपानयोगेन पिबेत्तोलकसम्मितम्॥ ५०॥
प्रमेहाश्चोपदंशश्च मूत्रकृच्छ्रं च पीडिकाः।
नश्यन्ति त्वपरे रोगाः रक्तदुष्टा भवन्ति ये॥ ५१॥
पारदविकृतिश्चापि सन्देहो नात्र कश्चन।
मुक्तश्च सर्वरोगेभ्यो बलवर्णाग्निसंयुतः॥
मानवः सिद्धकामोऽस्माच्छीघ्रं भवति निश्चितम्॥५२

अनन्तमूलको १०० पल लेकर ३२ सेर जलमें पकावे। पकते पकते जब ८ सेर जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस क्वाथमें गिलोय, शतावर, विदारीकन्द, जीवनीयगणकी समस्त औषधियाँ, निसोत, कुटकी, त्रिफला, छोटी इलायची और त्रायमाणा इनके दो दो तोले चूर्णको खूब बारीक पीसकर डालदेवे और उत्तम प्रकार पकावे। जब पककर गाढा होजाय

तब उतारले और शीतल होजानेपर आठ पल शहद मिलादेवे। इसको प्रतिदिन प्रातःकाल एक तोला प्रमाण गोदुग्धके साथ सेवन करे। इससे बीसोंप्रकारके प्रमेह, उपदंश, मूत्रकृच्छ्र, फुन्सियें, एवं अन्यान्य दूषित रक्तसे होनेवाले रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। इसके सेवनसे पोरेके खानेसे उत्पन्न हुए विकारभी निस्सन्देह दूर होते हैं। इसको सेवनकरनेवाला पुरुष सम्पूर्ण रोगोंसे मुक्त होकर बल, वर्णयुक्त और अत्यन्त प्रदीप अग्निवाला होता है। एवं शीघ्रही इष्टसिद्धिको प्राप्त करता है ॥ ४८–५२ ॥

रसशेखर।

पारदश्चाहिफेनश्च द्विर्द्वादश च रक्तिकम्।
आयसे निम्बकाष्ठेन मर्दयेत्तुलसीरसैः ॥ ५३ ॥
तस्मिन्सम्मूर्च्छिते दद्याद्दरदं रससम्मितम्।
मर्दयेच्च तुलस्यैव ततश्चैतानि दापयेत्॥ ५४ ॥
जातीकोषफले चैव पारसीययमानिकाम्।
आकारकरभश्चैव द्वात्रिंशद्रक्तिकां प्रति ॥ ५५ ॥
मर्दयेत्तुलसीतोयैरेतेषां द्विगुणं शुभम्।
दद्यात्खादिरसत्त्वञ्च वटिका चणकप्रभा ॥ ५६ ॥
सायं शुभे प्रयोज्ये च लवणाम्लञ्च वर्जयेत्।
गलत्कुष्ठं तथा स्फोटान्दुष्टान् गर्दभिकामपि ॥ ५७ ॥
ये स्युर्व्रणा नृणामन्ये उपदंशपुरःसराः।
तान् सर्वान्नाशयत्याशु सिद्धोऽयं रसशेखरः ॥ ५८ ॥

पारा २ रत्ती और अफीम १२ रत्ती लेकर दोनोंको लोहेके बर्त्तनमें नीमके डंडेसे तुलसीका रस डालकर घोटे। जब पारा मूर्च्छित होजाय तब उसमें दो रत्ती सिंगरफ मिलाकर तुलसीके ही रससे दुबारा खरल करे। फिर जावित्री, जायफल, खुरासानी अजवायन और अकरकरा ये प्रत्येक बत्तीस बत्तीस रत्ती और सबोंसे दुगुना उत्तम प्रकारका खैरसार डालकर तुलसीके रसमें यथाविधि खरल करके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इसमेंसे प्रतिदिन सायङ्कालमें दो दो गोली खाय नमक और खटाईका त्याग करे। यह रसशेखरनामक सिद्धरस गलत्कुष्ठ, दुष्ट स्फोटक, गर्दभिका, उपदंशके व्रण और अन्य सर्वप्रकारके व्रणोंको तत्काल नाश करता है ॥ ५३–५८ ॥

करञ्जाद्यघृत।

करञ्जनिम्बार्जुनशालजम्बूवटादिभिः कल्ककषाय-
सिद्धम्। सर्पिर्निहन्यादुपदंशदोषं सदाहपाकं स्रुति-
रागयुक्तम् ॥ ५९ ॥

करञ्जकी जड, नीम, अर्जुन, शालवृक्ष, जामुन, वड, गूलर, पीपल, पिलखन और बेंत इन सबोंकी छालके कल्क और काथके द्वारा सिद्ध कियेहुए घृतको सेवन करनेसे दाह, पाक और राधका स्राव होना आदि दोषोंसहित उपदंशरोग नष्ट होता है ॥ ५९ ॥

भूनिम्बाद्यघृत।

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरञ्जजातीखदिरासनानाम्।
सतोयकल्कैर्घृतमाशु पक्कं सर्वोपदंशोपहरं प्रदिष्टम् ॥ ६० ॥

चिरायता, नीम, त्रिफला, परवल, करञ्जुआ, जावित्री, खैर और आसना इनके काथ और कल्कके साथ विधिपूर्वक घृतको पकावे। यह घृत नियमानुसार सेवन करनेपर सर्वप्रकारके उपदंशों (आतशक)को बहुत शीघ्र हरता है॥

अनन्ताद्यघृत।

अनन्तामलकीद्राक्षाः काकोलीयुगलं वरीम्।
एलाद्वयं विदारीश्च मधुकं मधुकं मुराम् ॥ ६१ ॥
त्रिफलां स्वर्णपर्णाश्च बीजं गोक्षुरसम्भवम्।
दशमूलं तालमूलीं त्रिवृतामिन्द्रवारुणीम् ॥ ६२ ॥
नीलिनं शूकशिम्ब्याश्च बीजं कर्षप्रमाणतः।
कल्कीकृत्य पचेत्प्रस्थे सर्पिषः सारिवाम्भसा ॥६३॥
घृतमेतदनन्ताद्यमुपदंशविनाशनम्।
रसायनं परं वृष्यमस्रदोषनिषूदनम् ॥ ६४ ॥

प्रथम ४ सेर अनन्तमूलको लेकर ३२ सेर जलमें पकावे। जब पकते २ आठसेर जल शेष रहे तब उतारकर छान लेवे। फिर कल्कके लिये अनन्तमूल, आमले, दाख, काकोली, क्षीरकाकोली, शतावर, छोटी इलायची, बडी इलायची, विदारीकन्द, मुलैठी, महुआ, कपूरकचरी, त्रिफला, सनाय, गोखुरूके बीज, दशमूलकी सब औषधियाँ, मुसली, निसोत, इन्द्रायन, नीलवृक्षकी जड और कौंछके बीज इन सब औषधियोंको एक एक कर्ष लेवे और सबोंको एकत्र

कूटपीसकर कल्क बनाले । पश्चात् इस कल्क और उपर्युक्त काथके द्वारा एक प्रस्थ गोघृतको उत्तम प्रकार पकावे । इस अनन्ताद्य घृतको सेवन करनेसे उपदंशका और तज्जन्य दूषित रक्तका तत्काल नाश होता है । यह घृत अत्यन्त बल, वीर्यवर्द्धक और परमरसायन औषध है ॥ ६२-६४ ॥

आगारधूमाद्यतैल ।

आगारधूमरजनी सुराकिन्वश्च तैस्त्रिभिः ।
भागोत्तरैः पचेत्तैलं कण्डूश्शोथरुजापहम् ॥
शोधनं रोपणश्चैव सवर्णकरणं तथा ॥ ६५ ॥

घरका धुआँ एक पल, हल्दी दो पल और मदिराका मैल तीन पल लेवे । इन सबोंके द्वारा एक प्रस्थ तिलके तैलको विधिपूर्वक पकावे । यह तैल खुजली सूजनको दूरकरता है एवं उपदंशके व्रणोंकी राधादिको निकालकर उनको शुष्क कर त्वचाको सुन्दरवर्णवाली बनाता है ॥ ६५ ॥

उपदंशरोगमें पथ्य ।

छर्दिर्विरेको ध्वजमध्यनाडीवेधो जलौकःपरिपातनञ्च ।
सेकः प्रलेपो यवशालयश्च धन्वामिषं मुद्गरसो घृतानि ॥
कठिल्लकं शिग्रुफलं पटोलं शालिञ्चशाकं नवमूलकञ्च ।
तिक्तं कषायं मधु कूपवारि तैलञ्च हन्यादुपदंशरोगम् ६७

वमन, विरेचन, लिङ्गके बीचकी शिराको छेदना, जौंक लगवाना, सेचन, सेंक और लेपकरना, जौ, शालिधान, धन्वदेशके पशु-पाक्षियोंका मांस, मूँगका यूष, घृत, करेला, सहिंजनेकी फली, परवल, शालिञ्चशाक, कच्ची मूली, तीखे और कषैलेरसवाले पदार्थ, शहद, कुएका जल तथा तेल ये सब उपदंशरोगमें हितकारी हैं । इनके सेवनसे उक्तरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६६-६७ ॥

उपदंशरोगमें अपथ्य ।

दिवानिद्रां मूत्रवेगं गुर्वन्नं मैथुनं गुडम् ।
आयासमम्लं तक्रञ्च वर्जयेदुपदंशवान् ॥ ६८ ॥

उपदंशरोगी दिनमें सोना, मूत्रके वेगको रोकना, भारीअन्न और गुड खाना मैथुन, कसरत करना, खटाई या खट्टे द्रव्य और मट्ठेका सेवन करना त्यागदेवे । क्योंकि ये सब इसरोगमें विशेष अनिष्टकर हैं ॥ ६८ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां उपदंशचिकित्सा ॥

शूकदोषकी चिकित्सा।

हितश्च सर्पिषः पानं पथ्यश्चापि विरेचनम्।
हितः शोणितमोक्षश्च यच्चापि लघुभोजनम्॥ १॥

शूकदोषमें औषधियों द्वारा पकाये हुए घृतको पीना, जुल्लाबलेना, रक्तमोक्षण (फस्त खुलवाना) और हलका भोजन करना विशेष हितकारी है॥१॥

सर्षपीं लिखितां सूक्ष्मैः कषायैरवचूर्णयेत्।
तैरेवाभ्यञ्जनं तैलं साधयेद्व्रणरोपणम्॥ २॥
क्रियेयमाधिमन्थेऽपि रक्तं स्राव्यं तथोभयोः।
अष्ठीलायां हृते रक्ते श्लेष्मग्रन्थिवदाचरेत्॥ ३॥

शूकदोषरोगमें सर्षपिकानामक पिडिकाको सिहोडें आदिके पत्तोंसे मर्दनकर ढाक, मंजीठ पीपल,वडआदि कषायद्रव्योंके चूर्णसे घावको भरे और उपर्युक्त कषायवृक्षोंकी छालके काथ तथा कल्कद्वारा पकायेहुए तैलको लगावे तो व्रण शीघ्र सूख जाता है। यह क्रिया अधिमन्थरोगमें भी करे। सर्षपी और अधिमन्थ इन दोनों रोगोंमें रक्तमोक्षण कराना विशेष उपयोगी है। अष्ठीला रोगमें फस्तखुलवाकर कफजग्रन्थिरोगमें कहीहुई विधिके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये॥ २॥ ३॥

कुम्भिकायां हरेद्रक्तं पक्वायां शोधिते व्रणे।
तिन्दुकत्रिफलालोध्रैर्लेपस्तैलश्च रोपणम्॥ ४॥

पकीहुई कुम्भिकामें रक्तमोक्षण करे और राधआदिको निकालकर व्रणको शुद्धकरे। फिर तेंदू, त्रिफला, लोध इन सबोंको एकत्र पीसकर लेपकरे अथवा उक्त द्रव्योंके कल्कद्वारा तेलको पकाकर लगावे। इससे व्रण शीघ्र भरता है॥५॥

अलज्यां क्रूररक्तायामयमेव क्रियाक्रमः।
स्वेदयेद्ग्रथितं स्निग्धं नाडीस्वेदेन बुद्धिमान्॥
सुखोष्णैरुपनाहैश्च सुस्निग्धैरुपनाहयेत्॥ ५॥

अलजीरोगमें रक्त दूषित हो तो कुम्भिकाके समान उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। ग्रथित नामक शूकदोषमें स्निग्धद्रव्योंसे रोगीको स्निग्धकर नाडीमें स्वेद प्रदान करके स्निग्ध और सुखोष्ण प्रलेप करे॥ ५॥

उत्तमाख्यान्तु पिडकां सञ्छिद्य बडिशोद्धृताम्।
कल्कैश्चूर्णैः कषायाणां क्षौद्रयुक्तैरुपाचरेत्॥

उत्तमानामक पिडका (फुन्सी विशेष) को मत्स्यधारण नामवाले यन्त्रसे उखाडकर चीरे। पश्चात् शुद्धकर उसकी कषायद्रव्योंके कल्क अथवा चूर्णको शहदमें मिलाकर लेप करे ॥ ६ ॥

क्रमः पित्तविसर्पोक्तः पुष्करीमूढयोर्हितः।
त्वक्पाके स्पर्शहान्याश्च सेचयेन्मृदितं पुनः॥
बलातैलेन कोष्णेन मधुरैश्चोपनाहयेत् ॥ ७ ॥

पुष्करी और मूढनामक शूकदोषोंमें पित्तविसर्प रोगकी समान चिकित्सा करनी चाहिये। एवं त्वक्पाकरोग और स्पर्श हानिशूकमें सेचन करे और मृदित रोगमें खिरैंटीके काथ तथा कल्क द्वारा सिद्ध कियेहुए तैलको थोडा गरम करके मले अथवा मधुरादि गणकी औषधियोंसे उपनाह (स्वेद) देवे ॥७॥

रसक्रिया विधातव्या लिखिता शतपोनके।
पृथक्पर्ण्यादिसिद्धश्च तैलं देयमनन्तरम् ॥ ८ ॥

शतपोनक नामक शूकदोषकी पिडिकाओंमें लेखन क्रियाकरके रस क्रिया करे। एवं पृश्निपर्णी आदि औषधोंके काथ और कल्क द्वारा सिद्ध कियेहुए तैलको लगावे ॥ ८ ॥

रक्तविद्राधिवच्चापि क्रिया शोणितजेऽर्बुदे।
कषायकल्कसर्पींषि तैलं चूर्णं रसक्रियाम् ॥
शोधने रोपणे चैव वीक्ष्य वीक्ष्यावतारयेत् ॥ ९ ॥

रक्तजनित अर्बुदरोगमें रक्तजविद्राधिरोगकी चिकित्साके अनुसार चिकित्सा करे। इस रोगमें काथ, कल्क, घृत, तैल, चूर्ण और रस इन सबोंको शोधन, रोपण कर्ममें अच्छे प्रकार विचारपूर्वक निरीक्षणकर प्रयोग करे ॥ ९ ॥

अर्बुदं मांसपाकश्च विद्रधिं तिलकालकम्।
प्रत्याख्याय प्रकुर्वीत भिषक् तेषां प्रतिक्रियाम् ॥१०॥
सर्वेषां शूकदोषाणां क्रियां व्रणवदाचरेत्।
उपदंशाधिकारोक्तमौषधं शूकदोषतः ॥ ११ ॥

अर्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक ये असाध्य हैं अतः इन रोगोंको त्यागकर अन्यान्य शूकदोषोंकी चिकित्सा करे। सर्वप्रकारके शूकदोषोंकी चिकित्सा व्रणरोगोक्त विधिके अनुसार करे और उपदंशरोगमें कही हुई औषधियाँ प्रयोगकरे ॥ १० ॥ ११ ॥

दार्वीतैल।

दार्वीसुरसयष्ट्याह्वगृहधूमनिशायुगैः।
तैलमभ्यञ्जने पाने मेढ्ररोगं निवारयेत् ॥ १२ ॥

देवदारु, तुलसी, मुलैठी, घरका धुआँ, हल्दी और दारुहल्दी इनके समान भागमिश्रित कल्कसे यथाविधि पकायेहुए तेलको पान और मालिश करनेसे लिङ्गके समस्त विकार दूर होते हैं ॥ १२ ॥

शूकदोषमें पथ्य।

लेपो विरेकोऽसृङ्मोक्षः सर्पिःपानञ्च शालयः।
यवा जाङ्गलमांसानि मुद्गयूषः कठिल्लकम् ॥ १३ ॥
पटोलं शिग्रुकर्कोटं पत्तूरं बालमूलकम्।
वेत्राग्रमाषाढफलं दाडिमं सैन्धवं वरा ॥ १४ ॥
कूपोदकं गन्धसारः कस्तूरी हिमवालुका।
तिक्तं कषायन्तैलञ्च स्यात्पथ्यं शूकरोगिणाम् ॥१५॥

प्रलेप, विरेचन, रुधिरमोक्षण, घृतपान, शालिधान, जो, जङ्गली जीवोंका मांस, मूँगका यूष, करेला, परबल, सहिंजनेकी फली, ककोडे, पतंगका वृक्ष, कच्ची मूली, बेंतका अग्रभाग, ढाकके बीज, अनार, सैन्धानमक, त्रिफला, कुँएका जल, सफेदचन्दन, कस्तूरी, कपूर, तीखे, कषायरसवाले द्रव्य और तेल ये सब शूकदोषवाले रोगियोंको हितकारी हैं ॥ ११-१५ ॥

शूकदोषमें अपथ्य।

मूत्रवेगं दिवानिद्रां व्यायामं मैथुनं गुडम।
विदाहि गुरुतक्रञ्च शूकदोषामयी त्यजेत ॥ १६ ॥

शूकदोषयुक्तरोगी मूत्रवेगको रोकना, दिनमें शयन, व्यायाम, स्त्रीप्रसङ्ग करना, गुड, दाहकारक, गुरुपाकी अन्न मट्ठेका सेवन इन सबोंको त्यागदेवे ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शूकदोषचिकित्सा ॥

कुष्ठरोगकी चिकित्सा।

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु।
पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं श्रेष्ठम् ॥ १ ॥

प्रच्छन्नमल्पे कुष्ठे महति च शस्तं शिराव्यधनम् ।
बहुदोषः संशोध्यः कुष्ठी बहुशोऽनुरक्षता प्राणान्॥२॥

वाताधिक्य कुष्ठरोगमें प्रथम घृतपान, कफाधिक्य कुष्ठमें वमनकराना और पित्ताधिक्य कुष्ठमें रक्तमोक्षण एवं विरेचन कराना हितकारी है। अल्पकुष्ठ-रोगमें पँछनेके द्वारा अथवा जौंकके द्वारा रक्तमोक्षण करे और महाकुष्ठमें शिराके वेधकर दूषित रक्त निकाले। कुष्ठरोगी यत्नपूर्वक प्राणोंकी रक्षाकरताहुआ सम्पूर्णदोषोंको शुद्धकरे ॥ १ ॥ २ ॥

ये लेपाः कुष्ठानां युज्यन्ते निर्गतास्रदोषाणाम् ।
संशोधिताशयानां सद्यः सिद्धिर्भवेत्तेषाम् ॥ ३ ॥

जिनका दूषित रक्त निकल गया है और वमन, विरेचनके द्वारा जिनका आमाशय शुद्धहोगया है ऐसे कुष्ठरोगियोंको कुष्ठरोगनाशक प्रलेप करनेसे शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

दूर्वाभयासैन्धवचक्रमर्दकुठेरकाः काञ्जिकतक्रपिष्टाः ।
एभिः प्रलेपैरपि बद्धमूलं कण्डूश्च दद्रूश्च निवारयन्ति॥४॥

दूब, हरड, सैन्धानमक, चकवड और वनतुलसी इनको एकत्र काँजी अथवा मट्ठेके साथ पीसकर लेपकरे। इस प्रकार लेपकरनेसे बद्धमूल, खुजली और दादरोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

तुल्यो रसः शालतरोस्तुषेण सचक्रमर्दोऽप्यभयाविमिश्रः ।
पानीयभक्तेन तदम्बुपिष्टो लेपः कृतो दद्रुगजेन्द्रसिंहः ॥५॥

राल, धानोंकी भूसी, चकवड, हरड और माँड इन सबोंको समानभाग लेकर माँडमें पीसकर लेपकरे तो यह औषधि दादरूपीगजेन्द्रको सिंहके समान नष्ट करता है ॥ ५ ॥

विडङ्गैडगजाकुष्ठनिशासिन्धूत्थसर्षपैः ।
धान्याम्लपिष्टैर्लेपोऽयं दद्रुकुष्ठविनाशनः ॥ ६ ॥

वायविडङ्ग, चकवड, कूठ, हल्दी, सेन्धानमक और सफेद सरसों इनको काँजीमें पीसकर लेपकरनेसे दद्रुकुष्ठ दूर होता है ॥ ६ ॥

एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरसर्षपैः कृमिघ्नैः ।
कृमिसिध्मदद्रुमण्डलकुष्ठानां नाशनो लेपः ॥ ७ ॥

पमार, कूठ, सैन्धानोन, काँजी, सरसों और वायविडङ्ग इन सबोंको एकत्र पीसकर लेपकरनेसे कृमि, सिध्म, दद्रुमण्डल, कोढ इत्यादिरोग जाय ॥ ७ ॥

पर्णानि पिष्ट्वा चतुरङ्गुलस्य तक्रेण पर्णान्यथ काकमाच्याः।
तैलाक्तगात्रस्य नरस्य कुष्ठान्युद्वर्त्तयेदश्वहनच्छदैश्च ॥ ८ ॥

शरीरमें तेलकी मालिश करके अमलतासके पत्तोंको अथवा मकोयके पत्तोंको मट्ठेमें पीसकर किम्वा कनेरके पत्तोंको पीसकर लेपकरे तो कुष्ठरोग नष्ट होताहै॥

विडङ्गसैन्धवशिवाशशिरेखासर्षपकरञ्जरजनीभिश्च।
गोजलपिष्टो लेपः कुष्ठहरो दिवसनाथसमः ॥ ९ ॥

वायविडङ्ग, सैंधानमक, हरड, सोमराजीके बीज, सफेद सरसों, करञ्जुआ और हल्दी इनको बराबर २ लेकर एकत्र गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे कुष्ठ-रोग इसप्रकार नष्ट होजाता है जिसप्रकार सूर्य्यसे अन्धकार समूह दूर होता है॥

कासमर्दकमूलञ्च काञ्जिकेन प्रपेषितम्।
दद्रूकिटिभकुष्ठानि जयेदेतत्प्रलेपनात् ॥ १० ॥

कसौंदीकी जडको काँजीके साथ पीसकर लेप करनेसे दाद, किटिभ और कोढ नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

आरग्वधस्य पत्राणि आरनालेन पेषयेत्।
दद्रूकिटिभकुष्ठानि निहन्ति सिध्ममेव च ॥ ११ ॥

अमलतासके पत्तोंको काँजीमें पीसकर लेपकरे तो दाद, किटिभ, कुष्ठ और सिध्म कुष्ठरोग दूर होते हैं ॥ ११ ॥

चक्राह्वयं स्नुहीक्षीरं भावितं मूत्रसंयुतम्।
रवितप्तं हि किञ्चित्तु लेपनं किटिभापहम् ॥ १२ ॥

चकवडके बीजोंको थूहरके दूधमें ७ दिनतक भावना देकर गोमूत्रमें पीस-लेवे। फिर उसको धूपमें कुछ गरम करके लेपकरे तो किटिभकुष्ठ जाता है१२॥

शिखरिरसेन सुपिष्टं मूलकबीजं प्रलेपितं सिध्मम्।
क्षारेण वा कदल्या रजनीमिश्रेण नाशयति ॥ १३ ॥

मूलीके बीजोंको चिरचिटेके पत्तोंके रसमें बारीक पीसकर अथवा केलेके खारके साथ हल्दीको पीसकर लेप करनेसे सिध्मकुष्ठ शमन होता है ॥१३॥

सक्षारं गन्धकं लेपात्कटुतैलेन सिध्मजित्।
कासमर्दकबीजानि मूलकानां तथैव च ॥
गन्धाश्मचूर्णमिश्राणि सिध्मानां परमौषधम् ॥ १४॥

जवाखार और गन्धकको समानभाग लेकर सरसोंके तेलमें पीसकर लेप-करे। अथवा कसौंदीके बीज, मूलीके बीज और गन्धक इनको बराबर २ लेकर काँजीमें पीसकर लेपकरे। यह सिध्मकुष्ठ रोगको नष्ट करनेके लिये परमोत्कृष्ट औषधि है॥ १४॥

कुष्ठं मूलकबीजं प्रियङ्गवः सर्षपास्तथा रजनी।
एतत्केशरषष्ठं निहन्ति बहुवार्षिकं सिध्म॥ १५॥

कूठ, मूलीके बीज, फूलप्रियंगू, सफेद सरसों, हलदी और नागकेसर इनको एकत्र पीसकर लेपकरे तो इससे बहुत दिनोंका पुराना सिध्मकुष्ठ नष्ट होता है॥

नीलकुरण्टकपत्रैरालिप्य गात्रमतिबहुशः।
लिम्पन्मूलकबीजैः पिष्टैस्तक्रेण सिध्मनाशाय॥१६॥

नीलीकटसरैयाके पत्तोंको पीसकर बारबार शरीरपर लेपकरे। पश्चात् मूलीके बीजोंको मट्ठेके साथ पीसकर प्रलेपकरे तो सिध्मकुष्ठ दूर होता है॥ १६॥

एडगजातिलसर्षपकुष्ठंमागधिकालवणत्रयमस्तु।
पूतिकृतं दिवसत्रयमेतद्धन्ति विचर्चिकदद्रुककुष्ठम्॥१७॥

चकवडके बीज, तिल, सफेद सरसों, कूठ, पीपल, सैंधानमक, कालानमक और विरियासञ्चर नमक इन सबोंको समानभाग लेकर दहीके तोडमें ३ दिन तक भिगोदेवे। जब उसमें दुर्गन्ध आनेलगे तब पीसकर लेपकरे तो इससे विचर्चिका, दद्रु और कुष्ठरोग नष्ट होते हैं॥ १७॥

सिन्दूरमरिचचूर्णं महिषीनवनीतसंयुतं बहुशः।
लेपान्निहन्ति पामां तैलं करवीरसिद्धं वा॥ १८॥

सिन्दूर और कालीमिरचोंके चूर्णको भैंसके नेनीघीमें मिलाकर बारबार लेप करनेसे अथवा कनेरकी जडके कल्कद्वारा पकाकर तेलको मलनेसे पामा (खुजली) रोग दूर होता है॥ १८॥

पारदं शङ्खगन्धश्च शिला चोत्तरवारुणी।
प्रपुन्नाटश्च सर्पाक्षी मेघनादाग्निलाङ्गली॥ १९॥
भल्लातं गृहधूमं च मुनिगुञ्जा स्नुहीपयः।
अरिष्टश्च गुडक्षौद्रं वाकुचीबीजतुल्यकम्॥ २०॥
गोमूत्रैरारनालैर्वा पिष्ट्वा लेपश्च कारयेत्।
दद्रुमण्डलकण्डूश्च विचर्चिश्च विनाशयेत॥ २१॥

पारा, गन्धक, शंखभस्म, मैनसिल, इन्द्रायनकी जड, पमारके बीज, गन्धनाकुली, ढाककी जड, चीतेकी जड, कलिहारी, भिलावे, घरका धुआँ, अगस्तियाकी जड, चोंटली, थूहरका दूध, नीमकी छाल, पुराना गुड, शहद, बापचीके बीज इन सबोंको समानभाग लेकर गोमूत्र अथवा काँजीके साथ पीसकर लेपकरे।यह प्रयोग दद्रुमण्डल,खुजली और विचर्चिकाको नष्ट करता है१९-२१

मनःशिलाले मरिचश्च तैलमार्कं पयः कुष्ठहरः प्रलेपः ॥२२॥

मैनासिल, हरिताल, कालीमिरच, तिलतैल और आकका दूध इनको एकत्र मिलाकर लेपकरनेसे कुष्ठरोग दूर होता है ॥ २२ ॥

विषवरुणहरिद्राचित्रकागारधूमं
ह्यनलमरिचदूर्वाः क्षीरमर्कस्नुहीभ्याम् ।
दहति पतितमात्रं कुष्ठजातीरशेषाः
कुलिशमिव सरोषाच्छक्रहस्ताद्विमुक्तम् ॥ २३ ॥

विष, वरनाकी छाल, हल्दी, चीता, गृहधूम, भिलावे, कालीमिरच, दूब इन सबोंको एकत्र आकके दूध और थूहरके दूधमें अच्छेप्रकार खरल करके लेपकरे तो सर्वप्रकारके कुष्ठरोग इसके लगातेही इसप्रकार नष्ट होजाते हैं जिस प्रकार अत्यन्तक्रोधसे छोडाहुआ इन्द्रका वज्र वृक्षसमूहको नष्ट करदेताहै ॥२३॥

भल्लातकं द्वीपिसुधार्कमूलं गुञ्जाफलं त्र्यूषणशङ्खचूर्णम् ।
तुत्थं सकुष्ठं लवणानि पञ्च क्षारद्वयं लाङ्गलिकाञ्च पक्का २४
स्नुह्यर्कदुग्धे घनमायसस्थं शलाकया तद्विदधीत लेपम् ।
कुष्ठे किलासे तिलकालके चाप्यशेषदुर्नामसुचर्मकीले॥२५॥

भिलावे, चीता, थूहरकी जड, आककी जड, चोंटली, सोंठ, मिरच, पीपल, शङ्खचूर्ण, तूतिया, कूठ, पाँचों नमक, जवाखार, सज्जी और कलिहारी इन औषधियोंके समानभाग चूर्णको थूहरके दूध और आकके दूधके साथ लोहेके स्वच्छपात्रमें पकाकर उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे । इस मरहमको किलास, तिलकालक और चर्म्मकीलनामककुष्ठ एवं बवासीररोगमें सलाई द्वारा लगानेसे उक्त रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

स्नुक्काण्डे सुषिरे दग्ध्वा गृहधूमं ससैन्धवम् ।
अन्तर्धूमं तैलयुक्तं लेपाद्धन्ति विचर्चिकाम् ॥ २६ ॥

थूहरके गुदेमें घरका धुआँ और सैंधानमक भरकर पुटपाककी रीतिसे

अग्निमें भस्म करे। फिर उसको सरसोंके तेलमें मिलाकर लेपकरनेसे विचर्चिका नामक कुष्ठ दूर होता है ॥ २६ ॥

स्नुक्काण्डे सर्षपात्कल्कः करीषानलपाचितः ।
लेपाद्विचर्चिकां हन्ति रागवेग इव त्रपाम् ॥ २७ ॥

थूहरकी शाखामें सरसोंका कल्क भरकर आरने उपलोंकी अग्निमें पकावे। पश्चात् उसको सरसोंके तेलमें मिलाकर लेपकरनेसे विचार्चिकारोग इस प्रकार नष्टहोता है जिस प्रकार प्रीतिका वेग लज्जाको दूर करदेता है॥ २७ ॥

नारिकेलोदरे न्यस्तस्तण्डुलः पूतितां गतः ।
लेपाद्विपादिकां हन्ति चिरकालानुबन्धिनम् ॥२८॥

जलपूर्णनारियलमें चावलों भिजोदेवे। जब वह अच्छे प्रकार फूल जाँय और दुर्गन्ध आनेलगे तब पीसकर लेप करनेसे बहुत दिनोंका पुराना विपादिकाकुष्ठ नष्ट होता है ॥ २८ ॥

तिलकुसुमलवणगोजलकटुतैलं लोहभाजने कृत्वा ।
शोषितमर्कमयूखैः पादस्फुटनं निहन्ति लेपेन ॥ २९ ॥

तिलपुष्प और सैंधानमक इन दोनोंको बराबर २ लेकर गोमूत्र और सरसोंके तेलके साथ लोहेके बर्त्तनमें उत्तमप्रकार खरलकरे। फिर उसको धूपमें सुखाकर लेप करे तो पादस्फुटन कुष्ठरोग शमन होता है ॥ २९ ॥

अवल्गुजं कासमर्दं चक्रमर्दं निशायुगम् ।
माणिमन्थश्च तुल्यांशं मस्तुकाञ्जिकपेषितम् ॥
कण्डुं कच्छुं जयत्युग्रां सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥ ३० ॥

बापची, कसौंदी, चकवड, हल्दी, दारुहल्दी और सैन्धानमक इन सबोंकी समानभाग लेकर दहीके तोड और काँजीमें पीसकर लेपकरे तो यह प्रयोग खुजली और अत्युग्र कच्छुनामक कुष्ठको नष्ट करता है ॥ ३० ॥

वायस्येडगजाकुष्ठकृष्णाभिर्गुडिका कृता ।
बस्तमूत्रेण संपिष्टा लेपाच्छ्वित्रविनाशिनी ॥ ३१ ॥

मकोय, चकवड, कूठ और पीपल इनको एकत्र बकरेके मूत्रमें खरल करके गोली बनालेवे। इस गोलीको घिसकर लगानेसे श्वित्रकुष्ठ दूर होता है ॥३१॥

पूतीकार्कस्नुङ्नरेन्द्रद्रुमाणां मूत्रैः पिष्टाः पल्लवाः सौमनाश्च।
लेपाच्छ्वित्रं हन्तिदद्रुव्रणांश्च कुष्ठान्यर्शांस्यस्त्रनाडीव्रणांश्च॥३२

पूतिकरञ्ज, आक, थूहर, आमलतास और चमेली इन वृक्षोंके कोमल पत्तों और फूलोंको गोमूत्रमें पीस कर लेपकरनेसे श्वित्रकुष्ठ, दाद, व्रण, कुष्ठ, बवासीर रक्तविकार नासूर आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ३२ ॥

गजचित्रं व्याघ्रचर्ममसीतैलावलेपनात् ।
श्वित्रं नाशं व्रजेत्किम्वा पूतिकीटविलेपनात् ॥ ३३ ॥

हाथी, चीता और सिंह इनकी चर्मकी भस्मको सरसोंके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे अथवा पिद्दे नामक कीडेको तेलमें मर्दन कर लेप करनेसे सफेद कोढ दूर होता है ॥ ३३ ॥

कुडवं वाग्गुजीबीजं हरितालपलान्वितम् ।
गवां मूत्रेण संपिष्य लेपनाच्छ्वित्रनाशनम् ॥ ३४ ॥

बापचींके बीज १६ तोले और हरिताल चार तोले इन दोनोंको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर लगानेसे श्वेतकुष्ठका नाश होता है और त्वचाका वर्ण पूर्ववत् स्वच्छ होजाता है ॥ ३४ ॥

धात्री खदिरयोः क्काथं पीत्वा च मधुसंयुतम् ।
शंखकुन्देन्दुधवलं जयेच्छ्वित्रं न संशयः ॥ ३५ ॥
धात्रीखदिरयोः क्काथमवल्गुजरजोऽन्वितम् ।
पीत्वा शंखेन्दुकुन्दाभं हन्ति श्वित्रं न संशयः ॥ ३६ ॥

आमले और खैरका काढा बनाकर शहदमें मिलाकर पान करनेसे अथवा उक्त औषधियोंके क्काथमें बापचीका चूर्ण डालकर पीनेसे शंख, चमेली और चन्द्रमाकी समान सफेद कुष्ठरोग निस्सन्देह नष्ट होता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

क्षारे सुदग्धे गजलण्डजे च गजस्य मूत्रेण बहुस्रुते च ।
द्रोणप्रमाणं दशभागयुक्तं दत्त्वा पचेद्बीजमवल्गुजस्य ३७
एतद्यदा चिक्कणतामुपैति तदा सुसिद्धां गुडिकां प्रकुर्यात् ।
श्वित्रं प्रलिम्पेदथ तेन घृष्टं तदाव्रजत्याशु सवर्णभावम् ॥३८॥

हाथीकी लीदकी भस्मको १६ सेर लेकर हाथीके ९६ सेर मूत्रमें पकावे। जब पकते पकते बत्तीस सेर जल शेष रहजाय तब उस क्षार जलको ७ बार या २१ बार हाथीके मूत्रमें टपका लेवे। पश्चात् उक्त एक द्रोण परिमाण क्षार जलमें दशवांभाग बापचीके बीजोंका चूर्ण डालकर उत्तमप्रकार पकावे। जब वह पकते पकते चिकनासा होजाय तब सिद्धहुआ जानकर नीचे उतारकर

गोलियाँ बनालेवे । प्रथम श्वेतकुष्ठवाले स्थानको खुजलाकर फिर इस गोलीका लेप करे तो सफेद कोढ वहुत शीघ्र दूर होता है और स्थानकी त्वचा उत्तमवर्णवाली होजाती है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

श्वेतजयन्तीमूलं पीतं पिष्टञ्च पयसैव ।
श्वित्रं निहन्ति नियतं रविवारे वैद्यनाथाज्ञा ॥ ३९ ॥

वैद्यनाथजीकी आज्ञासे रविवारके दिन सफेद जयन्तीकी जडको लाकर दूधके साथ पीसकर पीनेसे श्वेतकुष्ठ निश्चय नाश होता है ॥ ३९ ॥

गुञ्जाफलाग्निचूर्णन्तु लेपितं श्वेतकुष्ठनुत् ।
शिलापामार्गभस्मापि लिप्तं श्वित्रं विनाशयेत् ॥४० ॥

चोंटली और चीतेकी जडका चूर्ण अथवा मैनासिल और चिरचिटेकी भस्मको एकत्र पीसकर लेप करनेसे श्वेतकुष्ठरोग नष्ट होता है ॥ ४० ॥

पिबति सकटुतैलं गन्धपाषाणचूर्णं
रविकिरणसुतप्तं पामनो यः पलार्द्धम् ।
त्रिदिनतदनुसिक्तः क्षीरभोजी च शीघ्रं
भवति कनकदीप्तिः कामरूपी मनुष्यः ॥ ४१ ॥

यदि दो तोले शुद्ध आमलासारगन्धकको सरसोंके तेलमें मिलाकर और धूपमें सुखाकर तीन दिन अथवा सातदिन तक पीवे मालिश करे एवं दूधका भोजन करता रहे तो वह मनुष्य पामारोगसे मुक्त होकर सुवर्णकी समान कान्तिमान् तथा कामदेवकी समान रूपवान् होता है ॥ ४१ ॥

तीव्रेण कुष्ठेन परीतदेहो यः सोमराजीं नियमेन खादेत् ।
संवत्सरं कृष्णतिलद्वितीयां स सोमराजीं वपुषाधिशेते ४२

अत्यन्त तीक्ष्ण कुष्ठके होनेसे जिसका शरीर विकृत होगया हो वह रोगी वापची और काले तिल इनको समानभाग लेकर कल्क बनाकर प्रतिदिन नियमसे एक वर्षपर्यन्त सेवन करे तो कुष्ठका नाश होकर उसका शरीर चंद्रमाकी समान उज्ज्वल कान्तियुक्त होजाता है ॥ ४२ ॥

घर्मसेवी कदुष्णेन वारिणा वाकुचीं पिबेत् ।
क्षीरभोजी त्रिसप्ताहात्कुष्ठी कुष्ठं व्यपोहति ॥ ४३ ॥
अवल्गुजाद्वीजकर्षं पीत्वा कोष्णेन वारिणा ।
भोजनं सर्पिषा कार्यं सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥ ४४ ॥

कुष्ठरोगी धूपको सेवन करताहुआ बापचीके चूर्णको मन्दोष्णजलके साथ पानकरे और निरन्तर दूधका भोजन करे तो सातदिनमें ही कुष्ठरोग नष्ट होजाताहै । बापचीके बीजोंके १ तोला चूर्णको गुनगुने जलके साथ पीवे और घृतके साथ भोजन करे तो सर्वप्रकारके कुष्ठ नाश होते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

छिन्नायाः स्वरसो वापि सेव्यमानो यथाबलम् ।
जीर्णे घृतेन भुञ्जीत मुद्गयूषौदनेन च ॥ ४५ ॥
अतिपूतिशरीरोऽपि दिव्यरूपी भवेन्नरः ॥ ४६ ॥

अपनी अग्निके बलानुसार प्रतिदिन गिलोयके रसको पानकरे । उसके पचनेपर घृतमिश्रित मूँगका यूष और भातका भोजनकरे तो इससे अत्यन्त दुर्गन्धि युक्त कुष्ठ भी दूर होकर शरीर विशेषकान्तिमान् होजाता है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

यः खादेदभयारिष्टमरिष्टामलकानि वा ।
स जयेत्सर्वकुष्ठानि मासादूर्द्ध्वं न संशयः ॥ ४७ ॥

जो हरडोंके चूर्ण और नीमके पत्तोंके चूर्णको अथवा नीमके पत्ते और आमलोंके चूर्णको एकत्र पीसकर यथानियम एक महीनेतक सेवन करे तो वह सर्वप्रकारके कुष्ठरोगोंसे शीघ्र मुक्त होता है । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥

आरग्वधादि ।

आरग्वधं धातकिकर्णिकारधवार्जुनैः सर्जककिंशुकानाम् । कदम्बनिम्बकुटजाटरूषाः खदिरेण युक्ताश्च तथैव मूर्वा ॥ ४८ ॥ मूलानि चैषामुपहृत्य सम्यगष्टावशेषः क्वथितः कषायः । घृतेन तुल्यं प्रतिमानमस्य निहन्ति सर्वाणि शरीरजानि ॥ कुष्ठानि सर्वाणि विसर्पदद्रुविचर्चिका हन्ति नरस्य शीघ्रम् ॥ ४९ ॥

अमलतास, धायके फूल, पुष्पविशेष, धौंवृक्ष, अर्जुन, सालवृक्ष, ढाक, कदम, नीम, कुडा, अडूसा, खैर, मूर्वा इन सब वृक्षोंकी जडको समान भाग लेकर अठगुने जलमें अच्छे प्रकार पकावे । जब पकते पकते अठमांश जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इस क्वाथमें समानभाग घृत मिलाकर पान करनेसे विसर्प, दद्रु और विचर्चिका आदि सर्वप्रकारके कुष्ठरोग तत्काल नष्ट होते हैं ॥

लघुमञ्जिष्ठादि ।

मञ्जिष्ठात्रिफलातिक्तावचादारुनिशाभयाः ।
निम्बश्चैव कृतः क्वाथः सर्वकुष्ठं विनाशयेत् ॥ ५० ॥

वातरक्तं तथा कण्डुं पामानं रक्तमण्डलम् ।
दद्रुवीसर्पविस्फोटं पानाभ्यासेन नाशयेत् ॥ ५१ ॥

मंजीठ, त्रिफला, कुटकी, बच, दारुहल्दी, हरड और नीमकी छाल इनका काथ बनाकर सेवन करनेसे समस्त कुष्ठ, वातरक्त, कण्डू, पामा, रक्तमण्डल, दाद, विसर्प और विस्फोटक आदि विकार दूर होते हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥

मध्यमाञ्जिष्ठादि ।

मञ्जिष्ठा वाकुची चक्रमर्दश्च पिचुमर्दकः ।
हरीतकी हरिद्रा च धात्री वासा शतावरी ॥ ५२ ॥
बला नागबला यष्टिमधुकं क्षुरकोऽपि च ।
पटोलश्च लतोशीरं गुडूचीं रक्तचन्दनम् ॥ ५३ ॥
मध्यमाञ्जिष्ठादिकः क्वाथः कुष्ठानां नाशनः परः ।
वातरक्तस्य संहर्त्ता कण्डूमण्डलनाशनः ॥ ५४ ॥

मंजीठ, बापची, चकवड, नीमकी छाल, हरड, हल्दी, आमले, अडूसा, शतावर, खिरैंटी, गंगेरन, मुलैठी, गोखुरू, परवल, खस, गिलोय और लाल-चन्दन इनको समान भाग ले यथाविधि क्वाथ बनाकर सेवन करे । यह मध्यम माञ्जिष्ठादि क्वाथ सर्व प्रकारके कोढ, वातरक्त और खुजली, चकत्ते आदि रोगोंका नाश करनेवाला है ॥ ५२–५४ ॥

बृहन्माञ्जिष्ठादि ।

मञ्जिष्ठा कुटजामृता घनवचा शुण्ठी हरिद्राद्वयं
क्षुद्रारिष्टपटोलतिक्तकटुका भार्गी विडङ्गाम्लिकम् ।
मूर्वा दारु कलिङ्गभृङ्गमगधा त्रायन्ति पाठा वरी
गायत्री त्रिफला किरातकमहानिम्बाशनारग्वधाः ॥५५॥
श्यामा वल्गुजचन्दनं वरुणकं दन्तीकशाखोटकं
वासापर्पटशारिवाप्रतिविषानन्ता विशाला जलम् ।
मञ्जिष्ठाप्रथमं कषायमिति यः संसेवते तस्य तु
त्वग्दोषाः सुचिरेण यान्ति विलयं कुष्ठानि चाष्टदश॥५६
नाशं गच्छति वातरक्तमखिला नश्यन्ति रक्तामयाः
वीसर्पस्त्वचि शून्यता नयनजा रोगाःप्रशाम्यन्ति च ९७

मंजीठ, कुडा, गिलोय, नागरमोथा, बच, सोंठ, हल्दी, दारुहल्दी, कटेरी, नीमकी छाल, परवल, कुटकी, भारङ्गी, वायविडङ्ग, इमलीकी छाल, मूर्वा,

देवदारु, इन्द्रजौ, भाँगरा, पीपल, त्रायमाणलता, पाढ, शतावर, खैर, त्रिफला चिरायता, बकायन, विजयसार, अमलतास, फूलप्रियंगु, बापची, लालचन्दन बरनाकी छाल, दन्तीकी जड, सहोरावृक्षकी छाल, अडूसा, पित्तपापडा, कालीसर, अतीस, धमासा, इन्द्रायन और सुगन्धवाला इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनावे । इस क्वाथको प्रतिदिन नियमानुसार सेवन करनेसे त्वचासम्बन्धी सर्वरोग, अष्टादश कुष्ठ, सम्पूर्णवातरक्त, तथा रक्तसम्बन्धी अन्यान्यविकार, विसर्प, त्वचाकी सुन्नी एवं नेत्रोंके सर्वप्रकारके रोग बहुत शीघ्र नष्ट होजाते हैं ॥ ५५-५७ ॥

पञ्चनिम्ब ।

निम्बस्य पत्रं मूलानि सत्वक्पुष्पफलानि च ।
चूर्णितानि घृतक्षौद्रसंयुतानि दिने दिने ॥ ५८ ॥
लिह्यात्पिबेद्वा मूत्रेण संयुक्तान्युदकेन वा ।
मदिरामलतोयेन पयसा वा यथाबलम् ॥ ५९ ॥
भुञ्जीत घृतयूषाद्यैः शाल्यन्नं पयसापि वा ।
सर्वकुष्ठविसर्पार्शोनाडीदुष्टव्रणानपि ॥ ६० ॥
कामलाश्च गदान्हन्यात्तथा पित्तकफास्रजान् ।
संवत्सरप्रयोगेण सर्ववर्ज्यविवर्जितः ॥
जयत्येतत्पञ्चनिम्बं रसायनमनुत्तमम् ॥ ६१ ॥

नीमके पत्ते, जड, छाल, फूल और फल इन सबोंको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको घी, शहद, गोमूत्र, जल, मद्य, आमलोंके क्वाथ अथवा दूधके साथ मिलाकर अपनी अग्निके बलानुसार प्रतिदिन नियमपूर्वक सेवन करे । इसको अविच्छिन्नरूपसे एकवर्षतक सेवनकरनेसे सर्वप्रकारके कोढ, विसर्प, बवासीर दुष्टनाडीव्रण, कामला, पित्त-कफ और रुधिरके विकारोंसे उत्पन्नहोनेवाले रोग एवं अन्यान्य विविधभाँतिके रोगसमूह नष्ट होते हैं । इसपर घृत, दुग्ध, मूँगका यूष और शालिचावलोंका भात पथ्यरूपसे खाना चाहिये । तथा मछली, खटाई और शाकादि द्रव्य त्यागदेने चाहिये । यह पञ्चनिम्ब अत्युत्तम रसायन है ॥ ५८-६१ ॥

अन्य-पञ्चनिम्ब ।

पुष्पकाले च पुष्पाणि फलकाले फलानि च ।
सञ्चूर्ण्य पिचुमर्दस्य त्वङ्मूलानि दलानि च ॥ ६२ ॥

द्विरंशानि समाहृत्य भागिकानि प्रकल्पयेत् ।
त्रिफला त्र्यूषणं ब्राह्मी श्वदंष्ट्रारुष्करान्निका: ॥ ६३ ॥
विडङ्गसारबाराहीलौहचूर्णामृता: समा: ।
हरिद्राद्वयवाकुचीव्याधिघाता: सशर्करा: ॥ ६४ ॥
कुष्ठेन्द्रयवपाठाश्च कृत्वा चूर्णं सुसंयुतम् ।
खदिराशननिम्बानां घनक्काथेन भावयेत् ॥ ६५ ॥
सप्तधा पञ्चनिम्बञ्च मार्करस्वरसेन च ।
स्निग्धशुद्धतनुर्धीमान् योजयेच्च शुभे दिने ॥ ६६ ॥
मधुना तिक्तहविषा खदिराशनवारिणा ।
सेव्यमुष्णाम्बुना वापि कोलवृद्ध्यापलंपिबेत् ॥६७॥
जीर्णे च भोजनं कार्यं स्निग्धं लघु हितञ्च यत् ॥६८॥
विचर्चिकोदुम्बरपुण्डरीककापालदद्रुं किटिभालसादि ।
शतारुविस्फोटविसर्पपामा:कुष्ठप्रकोपं विविधं किलासम् ६९
भगन्दरं श्लीपदवातरक्तं जडान्ध्यनाडीव्रणशीर्षरोगान् ।
सर्वान्प्रमेहान्प्रदरांश्च सर्वान् दंष्ट्राविषं मूलविषं निहन्ति ७०
स्थूलोदर: सिंहकृशोदरश्च सुश्लिष्टसन्धिर्मधुनोपयोगात् ।
समोपयोगादपि ये दशन्ति सर्पादयो यान्ति विनाशमाशु॥
जीवेच्चिरं व्याधिजराविमुक्त: शुभेतरश्चन्द्रसमानकान्ति:७१

नीमके फूल, फल, छाल, पत्ते और मूल ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर बारीकचूर्ण करलेवे । उस चूर्णको भाँगरेके रसमें ७ बार भावना देवे। (इसमें फूलोंके समयमें फूल और फलोंके समयमें फल संग्रह करके रखलेने चाहिये ।) फिर हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, ब्रह्मी, गोखुरू, भिलावे (अथवा लालचन्दन) चीता, वायविडङ्गका सार, वाराहीकन्द, लोहचूर्ण, गिलोय, हल्दी, दारुहल्दी, बापची, अमलतास, मिश्री, कूठ, इन्द्रजो और पाढ इन सबोंको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण बनाले फिर उस चूर्णको खैर, विजयसार और नीमकी छालके गाढे क्वाथमें ७ बार भावना देवे । पश्चात् भाँगरेके रसमें ७ बार भावित करे । फिर पूर्वोक्त पञ्चनिम्बका चूर्ण दो भाग और इन हरडादि औषधोंके चूर्णको एकभाग लेकर दोनोंको एकत्र करके शहदमें किम्वा पञ्चतिक्त घृतमें, या खैर तथा विजयसारके क्वाथमें अथवा मन्दोष्ण-

जलके साथ मिलाकर शुभदिनमें सेवन करे । इस औषधिको सेवन करानेसे पूर्व बुद्धिमान् वैद्य रोगीके शरीरको वमन और विरेचनादिसे शुद्ध करके स्निग्धक्रियाद्वारा स्निग्धकरलेवे पश्चात् इसका उपयोग करना चाहिये और इसकी मात्राको १ तोलेसे लेकर ४ तोलेतक बढाना चाहिये । जब यह अवलेह पचजाय तब हलका, स्निग्ध और हितकारी भोजन करना श्रेष्ठ है । यह अवलेह विचर्चिका, औदुम्बर, पुण्डरीक, कापाल, दद्रु, किटिभ, अलसआदि, शतारु, विस्फोट, विसर्प, खुजली, कुष्ठका प्रकोप, अनेकप्रकारके किलासकुष्ठ, भगन्दर, श्लीपद, वातरक्त, जडता, अन्धता, नासूर, शिरकी पीडा, सर्वप्रकारके प्रमेह, सर्वप्रकारके प्रदर, सर्वप्रकारके स्थावर और जंगम विषोंको बहुत शीघ्र नष्ट करता है । इस अवलेहको शहदमें मिलाकर चाटनेसे बहुत मोटेपेटवाले मनुष्य सिंहकी समान पतले पेटवाले होजाते हैं और उनकी सन्धियें एवं पुट्ठे अत्यन्त दृढ होजाते हैं । इसके सेवनकर्त्ता पुरुषको जो सर्पादिविषधर जन्तु काट खायँ तो वे सर्पादि तत्काल मरजाते हैं और वह पुरुष सम्पूर्ण रोग एवं बुढापेके चंगुलसे छूटकर बहुत समयतक जीताहै । तथा चन्द्रमाकी समान अत्यन्त सुन्दर शरीरकी कान्ति होजाती है ॥ ६२-७१ ॥

श्वेतारि ।

शुद्धसूतं समं गन्धं त्रिफलां भृङ्गवागुजीम् ।
भल्लातकं तिलं कृष्णं निम्बबीजं समं समम् ॥ ७२ ॥
मर्दयेद्भृङ्गजद्रावैः शोष्यं पेष्यं पुनः पुनः ।
इत्थं कुर्युस्त्रिसप्ताहं रसः श्वेतारिको भवेत् ॥ ७३ ॥
मध्वाज्यैर्निष्कमात्रन्तु खादेच्छ्वेतं विनाशयेत् ॥७४॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, हरड, बहेडा, आमला, भाँगरा, बापचीके बीज, भिलावे, कालेतिल और नीमकी निबौली इनको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे । फिर उस चूर्णको भाँगरेके रसमें भावनादेवे और सुखालेवे । इस प्रकार २१ दिनतक करे । फिर खूब वारीक पीसकर चार चार माशेकी गोलियाँ बनालेवे । प्रतिदिन एक एक गोली शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे श्वेतकुष्ठ शीघ्र दूर होता है ॥ ७२-७४ ॥

तालकेश्वर रस ।

कूष्माण्डत्रिफलातैलकन्याकाञ्जिकभावितम् ।
तालकं तुल्यगन्धं स्यादर्द्धपारदमर्दितम् ॥ ७५ ॥

अजाक्षीरेण निम्बूककन्यातोयैर्दिनत्रयम्।
प्रत्येकं भावयेच्छुद्धं चक्रिकाकारतां गतम्॥ ७६॥
विपचेद्दण्डिकामध्ये पलाशक्षारमध्यगम्।
यामान्द्वादशशीतेऽस्मिन् प्रयोज्यं रक्तिकाद्वयम्॥७७
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि रोमविध्वंसनं तथा।
द्विविधं वातरक्तश्च नाडीदुष्टव्रणानि च॥ ७८॥

पेठेका स्वरस, त्रिफलेका क्वाथ, तिलका तेल, घीग्वारके रस और काँजीमें क्रमानुसार भावना दीहुई हरिताल एक तोला, शुद्धगन्धक एक तोला और शुद्ध पारा ६ माशे लेकर बकरीके दूधमें, नींबूके रसमें और घीग्वारके रसमें तीन दिनतक अच्छे प्रकार खरल करके चक्रिकाकार बनाकर सुखालेवे। तदनन्तर उस चक्रिकाकारको ढाककी राखसे भरीहुई हाँडीमें रक्खे उसके ऊपर और राखभरकर हाँडीका मुख बन्द करके १२ प्रहरतक पकावे। जब पककर शीतल होजाय तब उसको निकालकर बारीक पीसलेवे। इसको प्रतिदिन दो रत्ती प्रमाण सेवन करनेसे १८ प्रकारके कोढ रोमका नष्ट होना, दो प्रकारके वातरक्त और नाडीव्रणरोग नष्ट होते हैं॥ ७५–७८॥

तालकेश्वर।

दद्रुघ्नबाणाङ्घ्रिरसं दत्त्वा तालं सुचूर्णितम्।
पुनः पुनश्च सम्मर्द्य शुष्कं कृत्वा पुटे दहेत्॥ ७९॥
दृढस्थाल्यां धृतं क्षारं पालाशश्चाप्युपर्य्यधः।
ततो ज्वाला प्रदातव्या दिनरात्रे मृतं भवेत्॥ ८०॥
शुक्लवर्णं यदा च स्यादग्नौ दत्तेन धूमकम्।
तदा ज्ञातं मृतं तालं सर्वकुष्ठविनाशनम्॥ ८१॥
गलत्कुष्ठं वातरक्तं ताम्रवर्णश्च मण्डलम्।
शीतपित्तं महादद्रुच्छुछुन्दरविनाशनम्॥
पथ्यं मसूरं चणकं मुद्गसूपं यथेच्छया॥ ८२॥

एक तोले हरितालको चकवडके पत्तोंके रसमें और शरफोंकाके रसमें बारबार खरल करे और बारबार सुखावे। फिर उसको एक नवीन और अत्यन्त दृढ हाँडीमें ढाककी राखके बीचमें रखे और उस हाँडीका मुख बन्दकरके एक दिन और एकराततक बराबर पकावे। जब पककर सफेद रंगकी भस्म होजाय

और अग्निमेंसे धुआँ न निकले तब हरितालको भस्महुआ जानना चाहिये। इसको आधी आधी रत्तीकी मात्रासे सेवन करनेसे सर्व प्रकारके कुष्ठ, गलत्कुष्ठ, वातरक्त, लाल लाल चकत्तोंका पडना, शीतपित्त, महादद्रु और छुछुन्दरप्रभृतिरोगोंका नाश होता है। इसपर मसूर, चना और मूँगकी दालका भोजन करना पथ्य है॥ ७९-८२॥

महातालकेश्वर ।

सम्मर्द्य तालकं शुष्कं वंशपत्राख्यमुच्चकैः ।
कूष्माण्डनीरैः सम्भाव्य त्रिदिनं शोधयेत्पुनः ॥ ८३ ॥
घृतकन्याद्रवैर्भूयो भावयेच्च दिनत्रयम् ।
सम्मर्द्य काञ्जिकेनैव दध्नाम्लेन विमर्दयेत् ॥ ८४ ॥
सम्मर्द्य चूर्णसलिले रसे पौनर्नवे पुनः ।
त्रिदिनं मर्दयित्वा तु कारयेद्वटिकाकृतिम् ॥ ८५ ॥
स्थाल्यां दृढतरायान्तु पलाशक्षारसञ्चयम् ।
उपर्यधस्तालकस्य क्षारं दत्त्वा शरावकैः ॥ ८६ ॥
पिधाय लेपयेद्यत्नात्पूरयेत्क्षारसञ्चयम् ।
पुनारुद्धं शरावेन लेपयेत्तद्दृढं ततः ॥ ८७ ॥
द्वात्रिंशद्यामपर्यन्तं वह्निज्वाला प्रदीयते ।
एवं सिद्धेन तालेन गन्धतुल्येन मेलयेत् ॥ ८८ ॥
द्वयोस्तुल्यं जीर्णताम्रं बालुकायन्त्रगं पचेत् ।
अथ तालेश्वरो नाम रसः परमदुर्लभः ॥ ८९ ॥
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि वातशोणितनाशनः ।
रक्तमण्डलमत्युग्रं स्फुटितं गलितं तथा ॥ ९० ॥
बहुरूपं सर्वजातं नाशयेदविकल्पतः ।
दुष्टव्रणञ्च वीसर्पं त्वग्दोषञ्च विनाशयेत् ॥
दृष्टो वारसहस्रञ्च रोगवारणकेसरी ॥ ९१ ॥

वंशपत्री हरितालको एक तोला लेकर पेठेके रसमें और फिर घीग्वारके रसमें यथाक्रम तीन तीन दिनतक भावना देवे। फिर काँजी, खट्टे दही और चूनेके पानीमें खरल करके पुनर्नवेके रसमें खरल करे। इस प्रकार तीन दिनतक

खरल करके खडियाकी समान बनालेवे। पश्चात् एक मजबूत हाँडीमें ढाककी राखको भरे और उसके ऊपर पूर्वोक्त हरितालको रख सिकोरे ढकदेवे । फिर उसपर राखको भरकर हाँडीके मुँहपर शिकोरा ढक सन्धिस्थानोंको मिट्टीसे लेसकर अच्छे प्रकार बन्दकर देवे और उसपर राख बुरका देवे । जिससे किसीप्रकार भी हाँडीका मुख नहीं खुले । फिर उसको ३२ प्रहरतक अग्निमें पकावे । जब उत्तम प्रकार पककर स्वयं शीतल होजाय तब निकालकर उस हरितालके साथ शुद्धगन्धक एक तोला और पुराना ताँबा दो तोले मिलाकर वालुकायन्त्रमें पकावे । जब स्वांगशीतल होजाय तब बारीक चूर्ण करलेवे । यह महातालेश्वर नामक रस संसारमें अत्यन्त दुर्लभ है । यह १८ प्रकारके कुष्ठ, वातरक्त, रक्तमण्डल (पित्ती), अत्युग्रस्फुटित और गलितकुष्ठ, तथा सर्वदोषजन्य नानाप्रकारके कुष्ठ, दुष्टव्रण, विसर्प और त्वचासम्बन्धी रोगोंको तत्काल नाश करता है । यह हजारोंवार परीक्षा करके देखागया है । रोगरूपी हाथियोंको नाशकरनेके लिये यह रस सिंहकी समान है ॥ ८३-९१ ॥

उदयभास्कर ।

गन्धकेन हतं ताम्रं दशभागं समुद्धरेत् ।
ऊषणं पञ्चभागं स्यादमृतञ्च द्विभागिकम् ॥ ९२ ॥
दातव्यं कुष्ठिने सम्यगनुपानस्य योगतः ।
गलिते स्फुटिते चैव विपुले मण्डले तथा ॥
विचर्चिकादद्रुपामासर्वकुष्ठप्रशान्तये ॥ ९३ ॥

गन्धकके द्वारा मारा हुआ ताँबा १० तोले, काली मिरच ५ तोले और शुद्ध मीठातेलिया २ तोले लेवे । सबोंको एकत्र जलमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । फिर प्रतिदिन एक एक गोली दोषानुसार अनुपानभेदसे सेवन करावे । इससे गलितकुष्ठ, स्फुटितकुष्ठ, विपुल, मण्डल, विचर्चिका, दद्रु, पामा आदि सर्वप्रकारके कुष्ठविकार नष्ट होते हैं ॥ ९२ ॥ ९३॥

अमृतांकुरलौह ।

हुताशमुखसंशुद्धं पलमेकं रसस्य वै ।
पलं लौहस्य ताम्रस्य पलं भल्लातकस्य च ॥ ९४ ॥
गन्धकस्य पलञ्चैकमभ्रकस्य च गुग्गुलोः ।
हरीतकीविभीतकयोश्चूर्णं कर्षद्वयं द्वयोः ॥ ९५ ॥
अष्टमाषाधिकं तत्र धात्र्याः पाणितलानि षट् ।
घृतं द्व्यष्टगुणं लौहाद्द्वात्रिंशत्त्रिफलाजलम् ॥ ९६ ॥

एवं कृत्वा पचेत्पात्रे लौहे च विधिपूर्वकम्।
पाकमेतस्य जानीयात्कुशलो लौहपाकवित् ॥ ९७ ॥
विशुद्धः प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चनः।
रक्तिकादिक्रमेणैव घृतभ्रामरमर्दितम् ॥ ९८ ॥
लौहे लौहस्य दण्डेन कुर्यादेतद्रसायनम्।
अनुपानञ्च कुर्वीत नारिकेलोदकं पयः ॥ ९९ ॥
सर्वकुष्ठहरं श्रेष्ठं वलीपलितनाशनम्।
पाण्डुमेहामवातघ्नं वातरक्तरुजापहम् ॥ १०० ॥
कृमिशोथाश्मरीशूलदुर्नामवातरोगनुत्।
क्षयं हन्ति महाश्वासमत्यर्थं शुक्रवर्द्धनम्।
अग्निसन्दीपनं हृद्यं कान्त्यायुर्बलबुद्धिकृत् ॥ १ ॥

विवर्ज्यं शाकाम्लमपि स्त्रियश्च सेव्यो रसो जाङ्गल-
जीविकानाम्। शाल्योदनं षष्टिकमाज्यमुद्गक्षौद्रं गुड-
क्षीरमिह क्रियायाम् ॥ २ ॥ शालिश्च गुर्वादिबृह-
त्करञ्जशिलाजतुक्षौद्रयुतं पयश्च। सर्पिर्युतान्भक्षयतो
विहङ्गान्प्रपूर्यते दुर्बलदेहधातुः ॥ कृष्णस्य पक्षस्य
सिते तु पक्षे त्रिपञ्चरात्रेण यथा शशाङ्कः ॥ ३ ॥

अग्निद्वारा शुद्ध कियाहुआ पारा १ पल, लोहभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रक-भस्म, भिलावे, शुद्धगन्धक और गूगल ये प्रत्येक एकएक पल, हरड और बहेडेका चूर्ण दोदो तोले, आँवले १२ तोले ८ माशे, घी ८ पल और त्रिफलेका क्वाथ ३२ पल लेवे। इन सबोंको एकत्रकर लोहेकी कढाईमें विधिपूर्वक पकावे। फिर पाकविधिको जाननेवाला चतुर वैद्य लोहपाककी समान इसके पाकको सिद्ध हुआ जानकर उतारलेवे। पश्चात् वमन, विरेचनादिके द्वारा शुद्ध हुआ रोगी प्रातःकाल उठकर शौचादिसे निवृत्त होकर गुरुओं, देव और ब्राह्मणोंका पूजन करके इसकी एक रत्ती मात्राको लोहेके वर्त्तनमें लोहेके डंडेसे घृतकेसाथ खरलकरके सेवन करे और इसी क्रमसे प्रतिदिन इसकी एकएक रत्ती मात्राको बढाकर खाय इसके ऊपरसे नारियलका जल अथवा दूध पान करे। यह सर्व-प्रकारके कुष्ठोंको नाश करनेके लिये अत्युत्तम रसायन औषधि है। तथा वली (शरीरमें झुर्री पडना) पलित (असमय वालोंका पकना), पाण्डु, प्रमेह,

आमवात, वातरक्त, कृमिरोग, शोथ, बबासीर, पथरी, शूल, वातजन्य रोग, क्षय और महाश्वास आदि रोगोंको शीघ्र नष्ट करती है । एवं जठराग्निको दीपन करनेवाली, हृदयको हितकारी और बल, वर्ण वीर्य तथा आयुकी अत्यन्त वृद्धि करनेवाली है । इस औषधिको सेवन करते समय शाक, खटाई और स्त्री-प्रसङ्गको सर्वथा त्यागदेवे और जङ्गली जीवोंके मांसका रस, लवादिपक्षि-योंका मांस, शालिचवालोंका और साठीके चावलोंका भात, मूंग, घी, शहद, गुड और दूध इनका भोजन करे । शहद मिलाहुआ और घी मिलाहुआ दूध पान करना हितकारी है इससे दुर्बल और क्षीणधातुवाले मनुष्य अत्यन्त वीर्यवान् होते हैं । जिस कृष्णपक्षमें तीनदिन और शुक्लपक्षमें पाँचदिन पूरा चन्द्रमा रहता है उसी प्रकार इसका सेवन कर्त्ता जन पूर्णचन्द्रकी समान पूर्णवीर्य और अत्यन्त कान्तिमान् होता है ॥ ९२-१०३ ॥

पाकलक्षण ।

वस्त्रे निष्पीडितं सूक्ष्मे स्थूलतन्तौ घने दृढे ।
समुद्रं जायते व्यक्तं न निःसरति सन्धिभिः ॥
न च शब्दायते वह्नौ तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥४॥

पाकका लक्षण इस प्रकार जानना चाहिये यथा-घने बुने हुए और मजबूत महीन कपडेको मोटे डोरेसे अच्छे प्रकार बाँधे । जब वह मुद्राके समान हो जाय और सन्धियोंसे न निकले एवं अग्निमें शब्द न हो तब पाक सिद्धहुआ जानना चाहिये ॥ १०४ ॥

रसमाणिक्य ।

तालकं वंशपत्राख्यं कूष्माण्डसलिले क्षिपेत् ।
सप्तधा वा त्रिधा वापि दध्नाम्लेन तथैव च ॥५॥
शोषयित्वा पुनः शुष्कं चूर्णयेत्तण्डुलाकृतिम् ।
ततः शरावके यन्त्रे स्थापयेत्कुशलो भिषक् ॥ ६ ॥
बदरीपल्लवोत्थेन सन्धिलेपश्च कारयेत् ।
अरुणाभमधःपात्रं तावज्ज्वाला प्रदीयते ॥ ७ ॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य माणिक्याभो भवेद्रसः ।
घृतक्षौद्रेण सम्मर्द्य खादयेद्रक्तिकाद्वयम् ॥ ८ ॥
सम्पूज्य देवदेवेशं कुष्ठरोगाद्विमुच्यते ।
स्फुटितं गलितं कुष्ठं वातरक्तं भगन्दरम् ॥ ९ ॥

नाडीव्रणं व्रणं दुष्टमुपदंशं विचर्चिकाम्।
नासास्यसम्भवान्रोगान्क्षतान्हन्यात्सुदारुणान्॥
पुण्डरीकञ्च चर्माख्यं विस्फोटं मण्डलं तथा॥ ११०॥

वंशपत्रा हरितालको पेठेके रसमें और खट्टे दहीमें डालकर सातबार अथवा तीनबार भावना देवे। फिर सुखाकर चावलोंकी समान चूर्ण करलेवे। तदनन्तर इस चूर्णको एक सिकोरेमें रखकर ऊपरसे दूसरा सिकोरा ढकदेवे और बेरीके पत्तोंको पीसकर उसकी सन्धियोंमें लेप करके तबतक अग्निमें पकावे जब तक नीचेका पात्र लाल न होजाय। जब पककर स्वाङ्ग शीतल होकर माणिक्की समान देदीप्यमान होजाय तब निकालकर चूर्ण करलेवे। इस प्रकार यह माणिक्यरस सिद्ध होता है। प्रतिदिन प्रातःकाल महादेवजीका पूजन करके इसकी दो रत्ती मात्राको घी और शहदमें मिलाकर खावे तो कुष्ठरोगसे शीघ्र मुक्त होजाता है। यह रस स्फुटित, गलितकुष्ठ, वातरक्त, भगन्दर, नासूर, दुष्टव्रण, उपदंश, विचर्चिका कुष्ठ, नाक और मुखमें होनेवाले रोग, क्षय, पुण्डरीक, चर्माख्य, विस्फोटक और मण्डलादि सर्वप्रकारके काढोंको नष्ट करताहै॥

अमृतभल्लातक।

भल्लातकानां पवनोद्धतानां वृन्तच्युतानाञ्च यदाढकं स्यात्। तच्चेष्टकाचूर्णकणैर्विघृष्य प्रक्षालयित्वा विसृजेत्प्रवाते॥११॥शुष्कं पुनस्तद्द्विदलीकृतञ्च ततः पचेदप्सु चतुर्गुणासु। तत्पादशेषं पुनरेव शीतं क्षीरेण तुल्येन पुनः पचेत्तु॥१२॥तत्पादशेषं पुनरेव शीतं घृतेन तुल्येन पुनः पचेत्तु। तदर्द्धया शर्करया विकीर्णं ततः खजेनोन्मथितं विधाय॥१३॥तत्सप्तरात्रादुपजातवीर्यं सुधारसादप्यधिकत्वमेति। प्रातर्विशुद्धः कृतदेवकार्यो मात्राञ्च खादेत्स्वशरीरयोग्यम्॥१४॥न चान्नपाने परिहार्यमस्ति न चातपे चाध्वनि मैथुने च। यथेष्टचेष्टो विहितोपयोगाद्भवेन्नरः काञ्चनराशिगौरः॥१५॥ अनन्यमेधा नरसिंहतेजो हृष्टेंद्रियोऽव्याहतबुद्धिसत्त्वः। दन्ताश्च शीर्णाः पुनरुद्भवन्ति केशाश्च शुक्लाः पुनरेव दिव्याः॥१६॥ विशीर्णकर्णाङ्गुलिनासिकोऽपि

कृम्यर्दितो भिन्नगलोऽपि कुष्ठी । सोऽपि क्रमादङ्कुरिताग्रशाखस्तरुर्यथा भाति नभाम्बुसिक्तः ॥ १७ ॥ उष्ट्रान्मयूराञ्जयति स्वरेण बलेन नागस्तुरगो जवेन । रसायनस्यास्य नरः प्रसादाद्बृहस्पतेरप्यधिकोऽपि बुद्धया।१८॥ग्रन्थान्विशालान्पुनरुक्तिदोषान् गृह्णाति शीघ्रं न च नश्यते तु। कुर्वन्निमं कल्पमनल्पबुद्धिर्जीवेन्नरो वर्षशतानि पञ्च ॥ राजा ह्ययं सर्वरसायनानां चकार योगं भगवानगस्त्यः ॥ १९ ॥

अच्छे प्रकार पकेहुए, वायुसे टूटकर स्वयं गिरेहुए आठसेर भिलावोंको लेकर उनके डंठलोंको तोड देवे। फिर उनको ईटोंके चूर्णसे घिसकर, पानीसे धोकर हवामें सुखालेवे। तदुपरान्त उन भिलावोंको दो दो टुकडे करके चौगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाईभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर शीतल होनेपर छान लेवे। फिर इसीप्रकार इसको आठसेर दूधके साथ पकावे। दो सेर भाग अवशिष्ट रहनेपर उतारकर छानलेवे। पश्चात् इस काथको आठसेर घृतके साथ पकावे। जब पकते पकते गाढा होजाय तब उसमें चारसेर खाँड डालकर करछीसे एकमएक करके किसी उत्तम पात्रमें भरकर सातदिनतक रखा रहनेदेवे। सातदिन पीछे यह औषधि अमृतके समान अथवा इससे भी अधिक गुणवाली होजाती है। अनन्तर प्रतिदिन प्रातःकाल शौचादिसे शुद्ध हो और अपने इष्टदेवका पूजन करके अपनी अग्निके बलाबलको विचारकर इसकी मात्राको निरूपण करके भक्षण करे। इसको सेवन करनेपर आहार विहार तथा धूप, मार्गमें चलना और मैथुनकरना इनका कुछ भी परहेज नहीं है। इसपर इच्छानुसार खानपान करनेसे भी मनुष्य सुवर्णके समान अत्यन्त कान्तिमान् होजाताहै। एवं अद्वितीय मेधावान्, नृसिंहके समान तेजवान्, हृष्टपुष्ट और प्रसन्न इन्द्रियोंवाला तथा विशेष प्रतिभाशाली होता है। इससे टूटेहुए दाँत फिर निकल आते हैं, सफेद बाल फिर काले होकर अत्यन्त दिव्य होजाते हैं, बिगडीहुई शरीरकी त्वचा नीलवर्णकी होजाती है, एवं कीडोंके पडनेसे गलेहुए कान, अंगुलियाँ, नाक और गलितकुष्ठरोगी फिरसे इस प्रकार नवयौवन युक्त और सुन्दर शरीरवाला होजाता है जिस प्रकार सूखा हुआ वृक्ष वर्षाकालमें पानीके पडनेसे नवीन अंकुर युक्त होकर हराभरा होजाता है। उसका स्वर ऊँट और मोरके स्वरकी

समान सुन्दर होजाता है। इस रसायनके प्रतापसे रोगी हाथीके समान बलवान्, घोडेके समान वेगवान् और बृहस्पतिसे भी अधिक बुद्धिमान् होजाता है। तथा बडे बडे ग्रन्थोंके आशयोंको समझने और उनको कण्ठाग्र करनेकी शक्तिवाला होता है। इसके प्रभावसे मनुष्य ५०० वर्षतक जीता है। यह सब रसायनोंका राजा है। श्रीभगवान अगस्त्यजी कहते हैं कि, इस उत्तम कल्पवृक्षके समान फलदायक योगको मुझ जैसे अल्पज्ञने कल्पित कियाहै। इससे कुष्ठरोग अवश्य दूर होते हैं॥ ११-१९॥

महाभल्लातकगुड।

निम्बं गोपारुणा कट्वी त्रायन्ती त्रिफला घनम्।
पर्पटावल्गुजानन्ता वचा खदिरचन्दनम्॥ १२०॥
पाठा शुण्ठी शठी भार्गी वासा भूनिम्बवत्सकम्।
श्यामेन्द्रवारुणी मूर्वा विडङ्गेन्द्रविषानलम्॥ २१॥
हस्तिकर्णामृतार्द्रका पटोलं रजनीद्वयम्।
कणारग्वधसप्ताह्वकृष्णवेत्रोच्चटाफलम्॥ २२॥
भूकन्दं तृणपर्णञ्च जिङ्गी पद्माटमूषली।
विष्वक्सेना च कैटर्यं शरपुङ्खा च कञ्चुकी॥ २३॥
एषां द्विपलिकान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत्।
अष्टभागावशिष्टन्तु कषायमवतारयेत्॥ २४॥
भल्लातकसहस्राणि त्रीणि छित्वार्मणेऽम्भसि।
चतुर्भागावशेषन्तु कषायमवतारयेत॥२५॥
तौ कषायौ समादाय वस्त्रपूतौ च कारयेत्।
गुडस्य तु तुलां ताभ्यां कषायाभ्यां पचेद्भिषक्॥२६॥
भल्लातकसहस्राणां मज्जानं तत्र दापयेत्।
त्रिकटुत्रिफलामुस्तसैन्धवानां पलं पलम्॥ २७॥
दीप्यकस्य पलञ्चैव चातुर्जातं पलांशिकम्।
सञ्चूर्ण्य प्रक्षिपेदत्र गन्धकञ्च चतुःपलम्॥ २८॥
स्निग्धभाण्डे विनिःक्षिप्य स्थापयेत्कुशलो भिषक्।
महाभल्लातको ह्येष महादेवेन निर्मितः॥ २९॥

जगतस्तु हितार्थाय जयेच्छीघ्रं निषेवितः।
श्वित्रमौदुम्बरं दद्रुमृक्षजिह्वं सकाकणम् ॥ १३० ॥
पुण्डरीकञ्च चर्माख्यं विस्फोटं मण्डलं तथा।
कण्डूं कपालकुष्ठञ्च पामानं सविपादिकम् ॥ ३१ ॥
वातरक्तमुदावर्त्तं पाण्डुरोगं व्रणकृमीन्।
अर्शांसि षट् प्रकाराणि कासं श्वासं भगन्दरम् ॥३२॥
तदभ्यासेन पलितमामवातं सुदुस्तरम्।
अनुपाने प्रयोक्तव्यं छिन्नाक्काथं पयोऽथवा ॥
भोजने च तथा योज्यमुष्णञ्चान्नं विशेषतः ॥ ३३ ॥

नीमकी छाल, अनन्तमूल, अतीस, कुटकी, त्रायमाणा, त्रिफला, नागरमोथा, पर्पटा, बापची, अनन्तमूल, बच, खैर, लालचन्दन, पाढ, सोंठ, कचूर, आरङ्गी, अडूसा, चिरायता, कुडेकी छाल, निसोत, इन्द्रायण, मूर्वा, वायविडङ्ग, इंद्रजौ, विष, चीता, हस्तिकर्ण (पलाश,) गिलोय, बकायन, परबल, हल्दी, दारुहल्दी, पीपल, अमलतास, सतौना, कालाबेंत, लालचोंटली, जिमीकन्द, गन्धेजघास, मंजीठ, चकवडके बीज, मुसली, फूलप्रियंगु, कायफल, शरफोंका और शिरषकी छाल इनको अलग अलग आठ आठ तोले लेकर ३२ सेर जलमें पकावे। जब पकते पकते आठवाँ भाग (४ सेर) जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इसी प्रकार ३००० भिलावोंको टुकडे करके ३२ सेर जलमें पकावे। जब ८ सेर जल रहजाय तब उतारकर छानलेवे। पश्चात् दोनों काथोंको मिलालेवे और उनमें १०० पल पुराना गुड और उपर्युक्त भिलावोंकी १०००गिरी डालकर पकावे। जब पकते पकते अवलेहकी समान गाढा होजाय तब उसमें हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, सैंधानमक और अजवायन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले तथा दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर इनका चूर्ण पृथक् पृथक् एक एक तोला और शुद्ध गन्धक १६ तोले इन सबोंको एकत्र बारीक पीसकर डालदेवे और करछीसे सबको एकमएक मिलादेवे। जब अच्छेप्रकार सिद्ध होजाय तब इस अवलेहको उत्तम चिकनेबर्त्तनमें भरकर रखदेवे। यह महाभल्लातकनामकयोग देवाधिदेव श्रीमहादेवजीने सांसारिक प्राणियोंके हितके लिये पूर्वकालमें निर्माण किया है। यह अवलेह नियमपूर्वक सेवन करनेसे श्वेतकुष्ठ, औदुम्बरकुष्ठ, दद्रु, ऋक्षजिह्वकुष्ठ, काकण, पुण्डरीक, चर्माख्य, विस्फोट, मण्डल, कण्डू, कपालकुष्ठ,

पामा, विपादिका, वातरक्त, उदावर्त्त, पाण्डुरोग, व्रण, कृमिरोग, छहोंप्रकारकी बवासीर, खाँसी, श्वास, भगन्दर, बहुत समयतक सेवन करनेसे पलित रोग और दुस्तर आमवात (गठिया) इत्यादिरोगोंको बहुत जल्द नष्ट करता है। इसपर गिलोयका क्वाथ अथवा दूधका अनुपान करे । और सदैव उष्णवीर्य अन्नोंका उष्ण भक्ष्य भोजन करे॥ १२०-१३३ ॥

अमृतागुग्गुलु।

अमृतायाः पलशतं दशमूल्यास्तथा शतम्।
पाठामूर्वाबलातिक्तादार्वीगन्धर्वहस्तकाः॥ ३४ ॥
एषां दशपलान्भागान् विभीतक्याः शतं हरेत्।
द्वे शते च हरीतक्याः आमलक्यास्तथा शतम् ॥ ३५ ॥
जलद्रोणद्वये पक्त्वा अष्टभागावशेषितम्।
प्रस्थं गुग्गुलुमाहृत्य प्रस्थार्द्धञ्च घृतं पचेत्॥ ३६ ॥
पाकसिद्धौ प्रदातव्यं गुडूच्याः सत्त्वमेव च।
पलद्वयं तथा शुण्ठयाः पिप्पल्याश्च पलद्वयम्॥ ३७ ॥
ततो मात्रां प्रयुञ्जीत ज्ञात्वा दोषबलाबलम्।
अष्टादशसु कुष्ठेषु वातरक्तगदेषु च॥ ३८ ॥
कामलामामवातञ्च अग्निमान्द्यं भगन्दरम्।
पीनसञ्च प्रतिश्यायं प्लीहानमुदरन्तथा॥
एतान् रोगान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा॥३९॥

गिलोय १०० पल, दशमूल १०० पल तथा पाढ, मूर्वा, खिरैंटी, कुटकी, दारुहल्दी और अण्डकी जड ये प्रत्येक दस दस पल, बहेडे सौ, हरडें दो सौ और आमले सौ लेवे। इन सबोंको एकत्रकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब चार सेर जल शेष रहे तब उतारकर छानलेवे। फिर इस क्वाथमें एक प्रस्थ शुद्ध गूगल और एक प्रस्थ घृत डालकर दूसरीबार पकावे। जब पाक सिद्धहुआ जाने तब गिलोयका सत्त्व दो पल सोंठ दो पल और पीपल दो पल इनको एकत्र पीसकर डालदेवे और सबोंको अच्छे प्रकार मिलाकर स्वच्छ चिकने बासनमें करके रखदेवे। पश्चात् दोषोंके बलाबलको विचारकर इसकी मात्राको उचित परिमाणसे सेवन करे। यह अठारह प्रकारके कोढ़, वातरक्त, कामला, आमवात, मन्दाग्नि, भगन्दर, पीनस, प्रतिश्याय, प्लीहा, तथा उदररोग इन

सम्पूर्ण विकारोंको तत्काल नाश करता है। जिस प्रकार सूर्यनारायण अपनी किरणोंसे अन्धकारसमूहको तत्क्षण नष्ट करदेते हैं॥ १३४-१३९॥

वज्रकघृत।

वासागुडूचीत्रिफलापटोलकरञ्जनिम्बाशनकृष्णवेत्रम्।
तत्क्वाथकल्केन घृतं विपक्वं तद्वज्रवत्कुष्ठहरं प्रदिष्टम्॥१४०॥
विशीर्णकर्णाङ्गुलिहस्तपादः कृम्यर्दितो भिन्नगलोऽपिमर्त्यः।
पौराणिकीं कान्तिमवाप्य जीवेदव्याहतो वर्षशतञ्च कुष्ठी॥

अडूसा, गिलोय, त्रिफला, परबल, करंजुआ, नीमकी छाल, विजयसार और कालाबेंत इनको समानभाग लेकर अठगुने जलमें औटावे। जब पकते पकते चौथाईभाग जल बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस काथमें उक्त औषधियोंका चूर्ण एक सेर और घी दो सेर डालकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे। यह घृत वज्रके समान कुष्ठरोगको हरता है इसालिये इसको वज्रकघृत कहते हैं। इसके सेवनसे कीडोंके पडनेसे गलकर गिरेहुए कान, अंगुलियें, हाथ, पैर और भिन्नगल तथा मृत्युको प्राप्तहुआ भी कुष्ठरोगी शीघ्र आरोग्य होता है। एवं पहले जैसी शोभाको प्राप्तकर अव्याहतरूपसे सौ वर्षपर्यन्त जीता है॥

तिक्तकघृत।

त्रिफलाद्विनिशावासायासपर्पटकूलकान्।
त्रायन्तीकटुकानिम्बान् प्रत्येकं द्विपलोन्मितम्॥४२॥
क्वाथयित्वा जलद्रोणे पादशेषेण तेन तु।
घृतप्रस्थं पचेत्कल्कैः पिप्पलीघनचन्दनैः॥
त्रायन्तीशक्रभूनिम्बैस्तत्पीतं तिक्तकं घृतम्॥ ४३॥
हन्ति कुष्ठं ज्वरार्शांसि श्वयथुं ग्रहणीगदम्॥
पाण्डुरोगं विसर्पञ्च क्लीबानामपि शस्यते॥ ४४॥

हरड, बहेडा, आमला, हल्दी, दारुहल्दी, बिसोंटा, धमासा, पित्तपापडा, परबल, त्रायमाण, कुटकी और नीमकी छाल इन सबोंको आठ आठ तोले लेकर ३२ सेर जलमें पकावे। जब पकते पकते आठ सेर जल रहजाय तब उतारकर छानलेवे। पश्चात् उस काथमें एक प्रस्थ घी एवं पीपल, नागरमोथा, लालचन्दन, त्रायमाणालता, इन्द्रजौ और चिरायता इनके समानभाग मिश्रित कल्कको डालकर पकावे। यह तिक्तक घृत यथाविधि सेवन करनेसे कुष्ठ, ज्वर, बवासीर, सूजन, संग्रहणी, पाण्डु और विसर्परोगोंको शीघ्र नष्ट करता है और नपुंसकोंके लिये विशेष हितकारी है॥ ४२-४४॥

महातिक्तकघृत।

सप्तच्छदं प्रतिविषां शम्याकं तिक्तरोहिणीं पाठाम्।
मुस्तमुशीरं त्रिफलां पटोलपिचुमर्दपर्पटकम् ॥ ४५ ॥
धन्वयासं सचन्दनमुपकुल्ये पद्मकं रजन्यौ च।
षड्ग्रन्थां सविशालां शतावरीं सारिवे चोभे ॥ ४६ ॥
वत्सकबीजं वासां मूर्वाममृतां किराततिक्तकञ्च।
कल्कान्कुर्यान्मतिमान् यष्ट्याह्वं त्रायमाणाञ्च ॥४७॥
कल्कस्तु चतुर्भागो जलमष्टगुणं रसोऽमृतफलानाम्।
द्विगुणो घृतात्प्रदेयस्तत्सर्पिः पाययेत्सिद्धम् ॥ ४८ ॥
कुष्ठानि रक्तपित्तं प्रबलान्यर्शांसि रक्तवाहीनि।
विसर्पमम्लपित्तं वातासृक् पाण्डुरोगञ्च ॥ ४९ ॥
विस्फोटकान्सपामानुन्मादकान्कामलां ज्वरं कण्डूम्।
हृद्रोगगुल्मपिडिकामसृग्दरं गण्डमालाञ्च ॥ १५० ॥
हन्यादेतत्सद्यः पीतं काले यथाबलं सर्पिः।
योगशतैरप्यजितान्महाविकारान् महातिक्तकम् ५१॥

सतौनेकी छाल, अतीस, अमलतास, कुटकी, पाढ, नागरमोथा, खस, त्रिफला, परबल, नीमकी छाल, पित्तपापडा, धमासा, लालचन्दन, पीपल, गजपीपल, पद्माख, हल्दी, दारुहल्दी, वच, इन्द्रायण, शतावर, उसवा, अनन्तमूल, इन्द्रजौ, अडूसा, मूर्वा, गिलोय, चिरायता, मुलैठी और त्रायमाणा इन सबोंको समानभाग लेकर कल्क बनालेवे। फिर कल्कसे चौगुना जल, अठगुना पटोलपत्रोंका काथ और दुगुना घृत लेकर सबोंको यथाविधि मिलाकर उत्तमप्रकार घृतको सिद्धकरे। फिर इसको पान करावे तो समस्त कुष्ठविकार, रक्तपित्त, जिसमें रुधिर बहता हो और अतिप्रबल ऐसी बवासीर, विसर्प, अम्लपित्त, वातरक्त, पाण्डुरोग, विस्फोटक, तरखुजली, उन्माद, कामला, ज्वर, खुश्क खुजली, हृदयरोग, गुल्म, पिडिका, रक्तप्रदर, उदररोग, गण्डमालाप्रभृति अत्युत्कट व्याधियोंको और जो सैकडों औषधोंके करनेसे भी आरोग्य नहीं होते ऐसे भयङ्कर रोगोंको अपनी अग्निके बलानुसार प्रतिदिन प्रातःसमय विधिपूर्वक सेवन कियाहुआ यह महातिक्तक घृत तत्काल नष्ट करता है ॥ ४५–५१ ॥

सोमराजीघृत।

खदिरस्य पलान्यष्टौ सोमराज्याः पलद्वयम्।
त्रिफला पिचुमर्दश्च दारु दार्वी च पर्पटम् ॥ ५२ ॥
पृथक् पलं समुद्धृत्य सिंहिकायाः पलद्वयम्।
जलाढकद्वये साध्यं यावत्पादावशेषितम् ॥ ५३ ॥
क्वाथेनानेन मृद्वग्नौ घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
चतुःपलं सोमराज्याः खादिरस्य पलं पृथक् ॥ ५४ ॥
पटोलमूलं त्रिफलां त्रायमाणां दुरालभाम्।
कल्कार्थं कटुकञ्चैव कर्षांशान् श्लक्ष्णकुट्टितान् ॥५५॥
पलद्वयं कौशिकस्य शुद्धस्यात्र प्रदापयेत्।
सिद्धं सर्पिरिदं श्वित्रं हन्यादम्भ इवानलम् ॥ ५६ ॥
अष्टादशानां कुष्ठानां भेषजं परमं मतम्।
आमवातापतन्त्राणां पाण्डुप्रदररोगिणाम् ॥ ५७ ॥
पीनसं मेहकण्डूघ्नं पीतं दीपनपाचनम्।
सोमराजीघृतं नाम निर्मितं ब्रह्मणा पुरा ॥ ५८ ॥

खैर ३२ तोले, और बापची ८ तोले, त्रिफला, नीमकी छाल, देवदारु, दारुहल्दी और पित्तपापडा ये प्रत्येक चार २ तोले तथा कटरा ८ तोले; इन सबोंको एकत्र कर १६ सेर जलमें पकावे। जब पकते पकते चतुर्थांश जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इस क्वाथमें घी १ प्रस्थ, एवं बापची १६ तोले, खैर ४ तोले, तथा पटोलकी जड, हरड, बहेडा, आमला, त्रायमाणा, धमासा और कुटकी प्रत्येकके एकएक कर्ष बारीक पिसेहुए कल्क और आठ तोले शुद्धगूगल सबोंको एकत्र खूब बारीक पीसकर मिलादेवे। फिर यथाविधि मन्दमन्द अग्निमें घृतको सिद्ध करे। यह घृत श्वेतकुष्ठको इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार जल अग्निको तत्काल शान्त करदेता है। यह घृत अठारहों प्रकारके कुष्ठोंकी परमोत्कृष्ट औषधि है। यह आमवात, अपतन्त्र, पाण्डु, प्रदर, पीनस, प्रमेह, खुजली इत्यादिरोगोंको पान करतेही दूर करता है और अग्निको अत्यन्त दीपन करताहै एवं पाचनशक्तिको बढाताहै। इस सोमराजीनामकघृतको पूर्वकालमें ब्रह्माजीने निर्माण कियाहै ॥ ५२-५८ ॥

पञ्चतिक्तघृत।

निम्बं पटोलं व्याघ्रीश्च गुडूचीं वासकं तथा।

कुर्याद्दशपलान्भागानेकैकस्य सुकुट्टितान् ॥ ५९ ॥
जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम्।
घृतप्रस्थं पचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतम् ॥ १६० ॥
पञ्चतिक्तमिदं ख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनम्।
अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ ६१ ॥
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव पानादेवापकर्षति।
दुष्टव्रणकृमीनर्शः पञ्चकासांश्च नाशयेत् ॥ ६२ ॥

नीमकी छाल, पटोलपात, कटेरी, गिलोय और अडूसा ये प्रत्येक दस दस पल लेवे। सर्वोंको एकत्र कूटकर ३२ सेर जलमें पकावे। जब चौथाई भाग जल अवशिष्ट रहे तब उतारकर छान लेवे। फिर इस क्राथमें ताजा घी १ प्रस्थ और त्रिफलेका चूर्ण समान भाग मिलित आधसेर डालकर विधिपूर्वक घृतको पकावे। यह पञ्चतिक्तनामकघृत सर्वप्रकारके कुष्ठ, अस्सी प्रकारके वातरोग, ४० प्रकारके पित्तरोग और २० प्रकारके कफरोग तथा दुष्टव्रण, कृमिरोग बवासीर, पाँचों प्रकारकी खाँसी इन सर्वोंको पीते ही नष्ट करदेताहै॥५९-६२॥

पञ्चतिक्तघृतगुग्गुलु।

निम्बामृतावृषपटोलनिदिग्धिकानां भागान् पृथक् दशपलान्विपचेद्घटेऽपाम्।अष्टांशशेषितरसेन सुनिःसृतेन प्रस्थं घृतस्य विपचेत्पिचुभागकल्कैः ॥ ६३ ॥ पाठाविडङ्गसुरदारुगजोपकुल्या द्विक्षारनागरनिशामिषिचव्यकुष्ठैः। तेजोवतीमरिचवत्सकदीप्यकाग्निरोहिण्यरुष्करवचाकणमूलयुक्तैः॥६४॥माञ्जिष्ठयातिविषयावरयायमान्या संशुद्धगुग्गुलुपलैरपि पञ्चसंख्यैः। तत्सेवितं विषमतिप्रबलं समीरं सन्ध्यस्थिमज्जगतमप्यथ कुष्ठमीदृक् ॥ ६५ ॥ नाडीव्रणार्बुदभगन्दरगण्डमालाजत्रूर्ध्वसर्वगदगुल्मगुदोत्थमेहान्। यक्ष्मारुचिश्वसनपीनसकासशोषहृत्पाण्डुरोगगलविद्रधिवातरक्तम्॥

नीमकी छाल, गिलोय, अडूसा, परवल और कटेरी ये प्रत्येक औषधि चालीस तोले लेकर बत्तीस सेर जलमें पकावे। जब अष्टमांश जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। पश्चात् गोघृत एक प्रस्थ, एवं नीमकी छालका

कल्क, पाढ, वायविडङ्ग, देवदारु, गजपीपल, जवाखार, सज्जी, सोंठ, हल्दी, सोंफ, चव्य, कूठ, तेजबल, मिरच, इन्द्रजौ, जीरा, चीता, कुटकी, भिलावा, वच, पीपलामूल, मंजीठ, अतीस, हरड, बहेडा, आँवला और अजवायन इन प्रत्येकके एक एक तोला चूर्णको तथा २० तोले शुद्ध गूगुलको लेकर पूर्वोक्त काथके साथ मिलाकर यथाविधि घृतको पकावे। इस घृतको प्रतिदिन नियम पूर्वक सेवन करनेसे अत्यन्त प्रबल वातरोग, सन्धि, अस्थि और मज्जागत कुष्ठरोग, नाडीव्रण, अर्बुद, भगन्दर, गण्डमाला, ठोडीसे ऊपरके सब रोग, गुल्म, गुदाके रोग, प्रमेह, राजयक्ष्मा, अरुचि, श्वास, पीनस, खाँसी, श्वास, हृदयरोग, पाण्डुरोग, गलेके रोग, विद्रधि और वातरक्त प्रभृति सब रोग शीघ्र नाश होते हैं॥ ६३–६६॥

महाखदिरक घृत।

खदिरस्य तुलाः पञ्च शिंशपाशनयोस्तुले।
तुलार्द्धाः सर्व एवैते करञ्जारिष्टवेतसाः॥ ६७॥
पर्पटैः कुटजैश्चैव वृषः कृमिहरस्तथा।
हरिद्रे कृतमालश्च गुडूची त्रिफला त्रिवृत॥ ६८॥
सप्तपर्णश्च संक्षुण्णो दशद्रोणे च वारिणः।
अष्टभागावशेषन्तु कषायमवतारयेत्॥ ६९॥
धात्रीरसञ्च तुल्यांशं सर्पिषश्चाढकं पचेत्।
महातिक्तककल्कैश्च यथोक्तैः पलसम्मितैः॥ १७०॥
निहन्ति सर्वकुष्ठानि पानाभ्यङ्गनिषेवणात्।
महाखदिरमित्येतत्सर्वकुष्ठविनाशनम्॥ ७१॥

उत्तम और नवीन गौका घी एक आढक लेवे। खैर ५०० पल, सीसम और विजयसार एक एक तुला परिमाण, करञ्ज, नीमकी छाल और बेंत ये सब पचास पचास पल, पित्तपापडा, कुडेकी छाल, अडूसा, वायविडङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी, अमलतास, गिलोय, त्रिफला, निसोत, सतवन इन सबोंको भी पचास पचास पल लेकर एकत्र कूटकर दश द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब काढेको उतारकर छानलेवे। फिर इसमें आँवलोंका रस १ आढक परिमाण, पूर्वोक्त घृत तथा महातिक्तक घृतमें कहीहुई सब औषधियोंका कल्क चार चार तोले डालकर उत्तम प्रकार घृतको मन्दमन्द अग्निद्वारा पकावे। यह घृत पान करनेसे और

मालिश करनेसे सर्वप्रकारके कोढोंको तत्काल नष्ट करताहै। इसको महाखदिर घृत कहतेहैं ॥ ६७–१७१ ॥

श्वेतकरवीराद्यतैल।

श्वेतकरवीरमूलं विषांशसाधितं गोमूत्रे।
चर्मदलसिध्मपामाविस्फोटक्रिमिकिटिभजित्तैलम् ७२॥

सफेद कनेरकी जड और मीठा तेलिया इन दोनोंके समानभाग मिलित कल्कके साथ गोमूत्रमें कडवे तेलको विधिपूर्वक पकावे। यह तेल, मर्दन करनेसे चर्मदल,सिध्म पामा, विस्फोट,कृमि और किटिभनामक कुष्ठ दूर होते हैं॥

कृष्णसर्पतैल।

मृतस्य कृष्णसर्पस्य शिरःपुच्छान्त्रवर्जितम्।
अन्तर्धूमकृतं भस्म वागुजीतैलमिश्रितम् ॥
एतस्य मर्दनादेव गलत्कुष्ठं विनश्यति ॥ ७३ ॥

मरेहुए काले साँपके शिर, पूँछ और आँतोंको छोडकर शेष अङ्गको मिट्टीकी हाँडीमें रखकर उसको बन्द करके इस प्रकार जलावे जिस प्रकार धुआँ हाँडीसे बाहर न निकले। फिर उस भस्मको बापचीके तेलमें मर्दनकर लगावे तो इस तेलके लगातेही गलत्कुष्ठ नष्ट होताहै ॥ ७३ ॥

कुष्ठकालानलतैल।

सूतं गन्धं शिला तालं काञ्जिकैर्मर्दयेद्दिनम्।
तल्लिप्तवस्त्रवर्त्तिं तां तैलाक्तां ज्वालयेदधः ॥ ७४ ॥
स्थिते पात्रे पचेत्तैलं गृहीत्वा लेपयेत्ततः।
कुष्ठस्थानं विशेषेण सर्वकुष्ठं हरत्यलम् ॥
इदं कालानलं तैलं वातकुष्ठे महौषधम् ॥ ७५ ॥

पारा, गन्धक, मैनसिल और हरिताल इन प्रत्येकको एक एक तोला लेकर चार तोले काञ्जीमें एक दिनतक खरल करे। फिर सफेद कपडेके ऊपर लेपकर उसको धूपमें सुखाकर बत्ती बनालेवे। उस बत्तीको तिलके तेलमें भिजोकर चीमटेसे पकडकर जलावे और उसके ऊपर थोडा थोडा तिलका तेल डालता जाय। बत्ती जलानेसे पहले एकपात्र नीचे रखलेवे जिससे बत्तीका टपकताहुआ तेल उसी पात्रमें पडता रहे। इस प्रकार चुरेहुए तेलको लेकर लेप करनेसे सर्वप्रकारके कुष्ठरोग अल्पकालमें ही निस्सन्देह नष्ट होते हैं और यह कालानलतैल वातकुष्ठरोगकी अत्यन्त उत्कृष्ट महौषधि है॥ ७४ ॥७५ ॥

कुष्ठराक्षसतैल ।

सूतकं गन्धकं कुष्ठं सप्तपर्णञ्च चित्रकम् ।
सिन्दूरञ्च रसोनञ्च हरितालमवल्गुजम् ॥ ७६ ॥
आरग्वधस्य बीजानि जीर्णताम्रं मनःशिला ।
प्रत्येकं कर्षमेतेषां कटुतैलं पलाष्टकम् ॥ ७७ ॥
साधयेत्सूर्यतापेन सर्वकुष्ठविनाशनम् ।
श्वित्रमौदुम्बरं कच्छुं मांसवृद्धिं भगन्दरम् ॥ ७८ ॥
विचर्चिकाञ्च पामानं वातरक्तं सुदारुणम् ।
गम्भीरञ्च तथोत्तानं नाशयेदस्य म्रक्षणात् ॥ ७९ ॥
कुष्ठराक्षसनामेदं सावर्ण्यकरणं परम् ।
अश्विभ्यां निर्मितं ह्येतल्लोकानुग्रहकांक्षया ॥ ८० ॥

पारा, गन्धक, कूठ, सतौना, चीता, सिन्दूर, लहसन, हरिताल, बापचीके बीज, अमलतासके बीज, ताँबेकी भस्म और मैनसिल इन सबोंको दो दो तोले और सरसोंका तेल ८ पललेवे। सबोंको एकत्र मिलाकर सूर्यताप (धूप) में पकावे। यह तेल मर्दन करनेसे सर्वप्रकारके कोढ, सफेदकोढ, औदुम्बरकुष्ठ, कच्छू, कुष्ठ, मांसवृद्धि, भगन्दर, विचर्चिका, पामा, दारुण वातरक्त तथा गम्भीर और उत्तानवातरक्तप्रभृति विकारोंको लगाते ही नष्ट करता है और व्रणस्थानको त्वचाके वर्णकी समान बना देता है। इस कुष्ठराक्षसनामक तेलको अश्विनीकुमारोंने सांसारिकके लिये बनाया है ॥ ७६–८० ॥

षड्बिन्दुतैल ।

सिन्दूरामृततालगैरिकहलाजाजीगदत्र्यूषणैः
हृत्पाषाणरसोनबाणदहनस्नुह्यर्कदुग्धैर्निशा ।
राजीगन्धकहिङ्गुभिः परिमितैः शुक्त्या पचेत्सार्षपं
तैलं प्रस्थमितं घृतस्य कुडवं पात्रं तथार्काद्रसम् ॥ ८१ ॥
गोमूत्रञ्च तथा विनीय सकलं पूतं शृतं रोगिणे
दद्यात्कुष्ठविचर्चिकादिषु भिषङ्नाम्ना तु षड्बिन्दुकम् ८२

सिन्दूर, मीठा विष, हरिताल, गेरू, कलिहारीवृक्ष, काला जीरा, कूठ, सोंठ, मिरच, पीपल, मैनसिल, लहसन, सरफोंका, चीता, थूहरका दूध, आकका दूध, हल्दी, राई, गन्धक और हींग इन सबोंको चार २ तोले लेकर

कल्क बनावे। फिर इस कल्कके साथ सरसोंका तेल ६४ तोले, घी १६ तोले, आकके पत्तोंके रस ८ सेर और गोमूत्र ८ सेर सबोंको अच्छेप्रकार मिलाकर तेलको पकावे। जब उत्तम प्रकार पककर शीतल होजाय तब छानकर इस षड्बिन्दुनामक तेलको रोगीके लिये सेवन करावे। इससे कुष्ठ और विचर्चिका कुष्ठरोगमें शीघ्र लाभ होताहै॥ ८१॥ ८२॥

उन्मत्ततैल।

उन्मत्तकस्य बीजेन माणकक्षारवारिणा।
कटुतैलं विपक्तव्यं शीघ्रं हन्ति विपादिकाम्॥ ८३॥

धतूरेके बीज और मानकन्दके खार जलके साथ कडवे तेलको पकावे। इस तेलको लगानेसे विपादिकाकुष्ठ नष्ट होता है॥ ८३॥

मरिचाद्यतैल।

मरिचालशिलाब्दार्कपयोऽश्वारिजटात्रिवृत्।
शकृद्रसविशालारुङ्निशायुग्दारुचन्दनैः॥ ८४॥
कटुतैलात्पचेत्प्रस्थं द्व्यक्षैर्विषपलान्वितैः।
सगोमूत्रैस्तदभ्यङ्गाद्दद्रुश्वित्रविनाशनम्॥
सर्वेष्वपि च कुष्ठेषु तैलमेतत्प्रशस्यते॥ ८४॥

काली मिरच, हरिताल, मैनसिल, नागरमोथा, आकका दूध, कनेरकी जड, बालछड, निसोत, गोबरका रस, इन्द्रायनकी जड, कूठ, हलदी, दारुहलदी, देवदारु और लाल चन्दन ये प्रत्येक दो दो तोले और मीठा विष चार तोले, सबोंको एकत्र पीसकर कल्क बनालेवे। पश्चात् इस कल्कके साथ सरसोंका तेल ६४ तोले और गोमूत्र ८ सेर मिलाकर विधिपूर्वक तेलको पकावे। इस तेलकी मालिश करनेसे दाद और श्वेतकुष्ठ नष्ट होते हैं। यह तेल अन्य सर्व प्रकारके कुष्ठोंमें भी हितकर है॥ ८४॥ ८५॥

बृहन्मरिचाद्यतैल।

मरिचं त्रिवृता दन्ती क्षीरमार्कं शकृद्रसः।
देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम्॥ ८६॥
विशाला करवीरश्च हरितालं मनःशिला।
चित्रको लाङ्गलाख्या च विडङ्गं चक्रमर्दकम्॥ ८७॥
शिरीषं कुटजो निम्बः सप्तपर्णं स्नुहामृता।
शम्याको नक्तमालोऽब्दं खदिरं पिप्पली वचा॥ ८८॥

ज्योतिष्मती च पलिका विषस्य द्विपलं भवेत्।
आढकं कटुतैलस्य गोमूत्रञ्च चतुर्गुणम् ॥ ८९ ॥
मृत्पात्रे लौहपात्रे च शनैर्मृद्वग्निना पचेत्।
पक्वा तैलवरं ह्येतन्म्रक्षयेत्कुष्ठकान्व्रणान् ॥
पामाविचर्चिकादद्रुकण्डूविस्फोटकानि च।
वलयः पलितं छाया नीली व्यङ्गस्तथैव च ॥ १९० ॥
अभ्यङ्गेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्यञ्च जायते।
प्रथमे वयसि स्त्रीणां यासां नस्यञ्च दीयते ॥ ९१ ॥
परामपि जरां प्राप्य न स्तना यान्ति नम्रताम्।
बलीवर्दस्तुरङ्गो वा गजो वायुनिपीडितः।
एभिरभ्यञ्जनैर्गाढं भवेन्मारुतविक्रमः ॥ ९२ ॥

मिरच, निसोत, दन्तीकी जड, आकका दूध, गोबरका रस, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, बालछड, कूठ, चन्दन, इन्द्रायण, कनेर, हरिताल, मैनसिल, चीता, कलिहारी, वायविडङ्ग, चकवडके बीज, सिरसकी छाल, कुडेकी छाल, नीमकी छाल, सतौनेके छाल, थूहरका दूध, गिलोय, अमलतास, करञ्ज, नागरमोथा, खैर, पीपल, वच और मालकांगुनी ये औषधियाँ पृथक् पृथक् चार चार तोले और मीठातेलिया ८ तोले, कडवा तेल १ आढक और गोमूत्र ४ आढक परिमाण लेवे। प्रथम पूर्वोक्त औषधियोंका कल्क बनालेवे फिर सबोंको यथाविधि एकत्रकर मिट्टीके अथवा लोहेके पात्रमें मन्द मन्द अग्निद्वारा तेलको सिद्ध करे। उत्तम प्रकारसे पकाकर सिद्धकिये हुए इस तेलको कुष्ठके व्रणोंपर लगावे तो कुष्ठव्रण शीघ्र नष्ट होते हैं। यह तेल पामा, विचर्चिका, दाद, कण्डू, विस्फोटक, वली, पलित, छाया, नीली और व्यङ्ग इन सब रोगोंको अभ्यंगमात्रसेही नष्ट करदेताहै। तथा सुकुमारताको उत्पन्न करताहै। जिन स्त्रियोंकी बाल्यावस्थामेंही इस तेलका नास दिया जाताहै उनके अत्यन्त वृद्धताको प्राप्त होनेपर भी स्तन नम्रताको प्राप्त नहीं होते। यदि बैल, घोडा अथवा हाथी वायुरोगसे पीडित हों तो उनके अंगोंपर इस तेलका गाढा गाढा लेप करे तो वे वायुके वेगके समान पराक्रमी होजाते हैं ॥ ८५-९२ ॥

सोमराजीतैल।

सोमराजी हरिद्रे द्वे सर्षपाः कुष्ठमेव च।
करञ्जैडगजाबीजं पत्राण्यारग्वधस्य च ॥ ९३ ॥

विपचेत्सार्षपं तैलं नाडीदुष्टव्रणापहम्।
अनेनाशु प्रशाम्यन्ति कुष्ठान्यष्टादशैव तु॥ ९४॥
नीलिका पिडिका व्यङ्गा गम्भीरं वातशोणितम्।
कण्डूकच्छूप्रशमनं दद्रुपामानिवारणम्॥ ९५॥

बापची, हल्दी, दारुहल्दी, सफेद सरसों, कूठ, करञ्ज, चकवडके बीज, और अमलतासके पत्ते इन औषधियोंके समानभाग मिश्रित कल्कके द्वारा सरसोंके तेलको पकावे। यह तेल मर्दन करनेसे नासूरको शीघ्र दूर करताहै। तथा अठारह प्रकारके कुष्ठ, नीलिका, पिडिका, व्यंग गंभीर, वातरक्त, कण्डू, कच्छू, दद्रु और पामा इत्यादिरोग इस तेलके लगानेसे तत्काल नष्ट होते हैं॥

बृहत्सोमराजीतैल।

सोमराजीतुलाक्काथे तथा दद्रुहणस्य च।
गोमूत्रस्य तथा पात्रे कल्कं दत्त्वा विचक्षणः॥ ९६॥
विपचेत्कार्षिकैर्भागैः प्रस्थं तैलन्तु सार्षपम्।
चित्रकं लाङ्गलाख्या च नागरं कुष्ठमेव च॥ ९७॥
हरिद्रा नक्तमालश्च हरितालं मनःशिला।
आस्फोतार्ककरवीरं सप्तपर्णश्च गोमयम्॥ ९८॥
खदिरो निम्बपत्रश्च मरिचं कासमर्दकम्।
एतानि श्लक्ष्णपिष्टानि कल्कं दत्त्वा विचक्षणः॥९९॥
हन्ति सर्वाणि कुष्ठानि कृमिदुष्टव्रणानि च।
किटिभं दद्रुजातञ्च गात्रवैवर्ण्यमेव च॥ २००॥
विशीर्णचर्ममांसादिदृढीकरणमुत्तमम्।
पाण्डुरोगं तथा कण्डूं विसर्पं हन्ति दारुणम्।
ये चान्ये त्वग्गता रोगास्तांस्तु शीघ्रं व्यपोहति॥१॥

बापचीका काथ १०० पल, चकवडके बीजोंका काथ १०० पल, गोमूत्र ३२ सेर, सरसोंका तेल ६४ तोले और चीता, कलिहारी, सोंठ, कूठ, हल्दी, करञ्ज, हरिताल, मैनासिल, आस्फोत (लता-विशेष) आककी जड, सफेद कनेरकी जड, सतौनेकी छाल, गोबरका रस, खैर, नीमके पत्ते, मिरच और कसौंदी इनको दो दो तोले लेकर खूब बारीक पीसकर कल्क बनावे। फिर सबोंको एकत्र मिलाकर अच्छेप्रकार तेलको पकावे। यह यथाविधि सेवन

करनेसे सर्वप्रकारके कुष्ठ, कृमिरोग, दुष्टव्रण, किटिभकुष्ठ, दद्रुकुष्ठ, शरीरकी विवर्णता, त्वचाका फटना, पाण्डुरोग, कण्डू और दारुण विसर्प इत्यादि रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है और अन्यान्य जितने त्वचासम्बन्धीरोग हैं उन सबोंको तत्काल नाश करता है।एवं मांसादि धातुओंको अत्यन्त दृढ करताहै॥१

विषतैल ।

नक्तमालं हारिद्रे द्वे अर्क तगरमेव च ।
करवीरं वचा कुष्ठमास्फोता रक्तचन्दनम् ॥ २ ॥
मालतीसिन्दुवारश्च मञ्जिष्ठा सप्तपर्णकम् ।
एषामर्द्धपलान्भागान्विषस्य द्विपलं तथा ॥ ३ ॥
चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
श्वित्रविस्फोटकिटिभकीटलूताविचर्चिकाः ॥ ४ ॥
कण्डूकच्छूविकाराश्च ये व्रणा विषदूषिताः ।
ते सर्वे नाशमायान्ति तमः सूर्योदये यथा ॥
विषतैलमिदं नाम्ना सर्वव्रणविशोधनम् ॥ ५ ॥

करञ्जआ, हलदी, दारुहलदी, आकका दूध, तगर, कनेरकी जड, वच, कूठ, आस्फोतानामक लता, लालचन्दन, चमेलीके पत्ते, सिह्मालू, मंजीठ, सतौना इन सबोंको दो दो तोले और मीठातेलिया ८ तोले लेकर एकत्र पीस लेवे । फिर इस कल्कके द्वारा एक प्रस्थ तेलको चौगुने गोमूत्रमें विधिपूर्वक मिलाकर पकावे । इस तेलको लगानेसे श्वेतकुष्ठ, विस्फोटक, किटिभ, कीट-रोग, लूतादोष, विचर्चिका, कण्डू, कच्छूआदि विकार और विषदूषितव्रण य सब रोग इस प्रकार शीघ्र नाशको प्राप्त होते हैं, जिस प्रकार सूर्योदयके समय अन्धकारसमूह तत्काल छिन्नभिन्न होजाता है । यह विषतेल विशेषकर सर्व प्रकारके व्रणोंको शुद्ध करनेवाला है ॥ २-५ ॥

श्वित्रपञ्चाननतैल ।

एरण्डतुलसीबीजं वागुजी चक्रमर्दकम् ।
तिक्तकोषातकीबीजं कृष्णाङ्कोटस्य बीजकम् ॥ ६ ॥
कल्कं दत्त्वा शिलाकाशी पथ्या कुष्ठं विडङ्गकम् ।
गोमूत्रदधिदुग्धैश्च पचेदप्याजमूत्रकैः ॥ ७ ॥

कटुतैलञ्च तल्लेपादीषद्घृष्ट्वा विलेपनैः ।
पञ्चाननमिदं तैलं श्वेतकुष्ठकुलापहम् ॥ ८ ॥

अण्डीके बीज, तुलसीके बीज, बापची, चकवड, कडवी तोरईके बीज, पीपल, ढेरावृक्षके बीज, मैनसिल, हीराकसीस, हरड, कूठ और वायविडङ्ग ये सब औषधियाँ समानभाग मिलित एकसेर लेकर एकत्र पीसकर कल्क बनालेवे । फिर यह कल्क एवं गोमूत्र, दहीका तोड, गौका दूध, बकरेका मूत्र और कडवा तेल ये प्रत्येक चार चार सेर, सबोंको एकत्र मिलाकर उत्तम प्रकार पकावे । श्वेतकुष्ठपर प्रथम खुजलाकर पश्चात् इस तेलको मर्दन करे तो श्वेतकुष्ठरोग समूल नष्ट होजाताहै और त्वचाका वर्ण पूर्ववत् अत्यन्त सुन्दर होजाताहै ॥ २०६-२०८ ॥

आरग्वधाद्य तैल ।

आरग्वधं धवं कुष्ठं हरितालं मनःशिला ।
रजनीद्वयसंयुक्तं पचेत्तैलं विधानवित् ॥
एतेनाभ्यञ्जनादेव क्षिप्रं श्वित्रं विनश्यति ॥ २०९ ॥

अमलतासके बीज, धौंवृक्षकी छाल, कूठ, हरिताल, मैनासिल, हल्दी, दारुहल्दी इन औषधियोंके समानभाग मिश्रित १ सेर कल्कके द्वारा १ प्रस्थ तेलको यथाविधि पकावे । इस तेलके मर्दन करनेसेही श्वेतकुष्ठ नष्ट होता है ॥

वासारुद्रतैल ।

त्रिफला निम्बभण्टाकी बृहत्यौ सपुनर्नवे ।
हरिद्रे वृषनिर्गुण्डचौ पटोलकनकाह्वयौ ॥ २१० ॥
हरितालं शिलाकुष्ठौ लाङ्गलीदाडिमाह्वयौ ।
अपामार्गविषश्चैव जयन्ती पूतिकट्फलौ ॥ ११ ॥
एषां कर्षद्वयैः कल्कैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
चतुर्गुणे गुडूच्याश्च रसे वैद्यः समाहितः ॥ १२ ॥
चतुर्गुणन्तु गोक्षीरं वृषपत्रंरसं तथा ।
दत्वावतारयेद्वैद्यो रुद्रमन्त्रं समाजपेत् ॥ १३ ॥
दद्रुं कुष्ठं दुष्टव्रणं विसर्पं विद्रधिं तथा ।
नाडीव्रणं व्रणं घोरं वातरक्तं सुदुर्जयम् ॥ १४ ॥
सन्निपातज्वरश्चैव शिरोरोगं सुदारुणम् ।
शोथश्च गलगण्डश्च श्लीपदन्त्वर्बुदं तथा ॥ १५ ॥

वातरोगानशेषांश्च अन्त्रवृद्धिं सुदारुणम् ।
पीनसश्वासकासञ्च सुदारुणभगन्दरम् ॥ १६ ॥
उपदंशं महाघोरं चक्षुःशूलञ्च नाशयेत ।
चर्मोत्थान्सर्वरोगांश्च तैलमेतद्विनाशयेत ॥
रुद्रतैलमिदं नाम्ना स्वयं रुद्रेण भाषितम् ॥ १७ ॥

हरड, बहेडा, आमला, नीमकी छाल, मुसली, कटाई, कटेरी, श्वेतपुनर्नवा, लालपुनर्नवा, हल्दी, दारुहल्दी, अडूसा, निर्गुण्डी, परबल, धतूरेकी जड, हरिताल, मैनसिल, कूठ, कलिहारी, अनार, चिरचिटा, मीठा विष, जयन्ती, दुर्गन्धकरञ्ज और कायफल इन सबोंको दोदो तोले लेकर एकत्र कल्क बनावे । इस कल्कके साथ तिलका तेल १ प्रस्थ, गिलोयका रस ४ प्रस्थ, अडूसेके पत्तोंका रस ४ प्रस्थ और गौका दूध ४ प्रस्थ मिलाकर तेलको पकावे । जब उत्तम प्रकार पककर सिद्धहोजाय तब उतार लेवे और यथाशक्ति शिवजीके मन्त्रका जप करे । पश्चात् इस तेलको प्रतिदिन नियमबद्ध होकर सेवन करे तो यह दाद, कोढ, दुष्टव्रण, विसर्प, विद्रधि, नासूर, भयङ्कर व्रण, दुर्जय वात-रक्त, सन्निपातज ज्वर, शिरोरोग, सूजन, गलगण्डरोग, श्लीपद, अर्बुद, वात-जन्य सब रोग, दारुण अन्त्रवृद्धि, पीनस, श्वास, खाँसी, दारुण भगन्दर, अत्यन्त कठिन उपदंश और नेत्रोंकी पीडाप्रभृति उत्कट व्याधियोंको शीघ्र नष्ट करताहै । यह तेल चर्ममें उत्पन्न होनेवाले सम्पूर्ण विकारोंको अल्पकालमें ही नाश करदेताहै । इस तेलको स्वयं शिवजीमहाराजने वर्णन कियाहै, इस-लिये इसको रुद्रतैल कहते हैं ॥ २१०–१७ ॥

कन्दर्पसारतैल ।

सप्तपर्णस्तथा काली गुडूची पिचुमर्दकम् ।
शिरीषश्च महातिक्ता जया तुम्बी मृगादनी ॥ १८ ॥
निशा दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ।
तैलप्रस्थं समादाय गोमूत्रञ्च चतुर्गुणम् ॥ १९ ॥
आरग्वधो भृङ्गराजो जयाधुस्तूररात्रयः ।
ऐन्द्राशनाग्निःखर्जूरं गोमयार्कस्नुहीच्छदम् ॥ २२० ॥
तैलतुल्यं प्रदातव्यं स्वरसञ्च पृथक् पृथक् ।
महाकालवचा ब्राह्मी तुम्ब्यभिगृहपुत्रिका: ॥ २१ ॥

कुचेला कुलको रात्रिर्मेद्यनामा च ग्रन्थिका।
शम्याकमर्कक्षीरश्च कासुन्देश्वरमूलकम् ॥ २२ ॥
आचाजिङ्गी महातिक्ता विशालाच्छविपत्रकम्।
पूतिकास्फोतमूर्वा च सप्तपर्णशिरीषकम् ॥ २३ ॥
कुटजं पिचुमर्दश्च महानिम्बं तथैव च।
गुडूची चन्द्ररेखा च सोमराट् चक्रमर्दकम् ॥ २४ ॥
तुम्बुरुभृङ्गयष्ट्याह्वकन्दं कटुकरोहिणी।
शठी दार्वी त्रिवृत्पद्मग्रन्थिकागुरुपुष्करम् ॥ २५ ॥
कर्पूरं कट्फलं मांसी मुरैलाटरूषाभयम्।
एतेषां कार्षिकैः कल्कैर्नाम्ना कन्दर्प उच्यते ॥ २६ ॥
अष्टादशविधं कुष्ठं ग्रन्थिमज्जगतं तथा।
हस्तपादाङ्गुलीसन्धिगलितं सर्वसन्धिषु ॥ २७ ॥
यस्य गात्रे भविष्यन्ति मांसानि चाधिकानि च।
नासाकर्णस्य वैकल्यं भेकाकारवपुस्त्वचम् ॥ २८ ॥
श्वेतं रक्तं तथा कुष्ठं नानावर्णं विपादिकाम्।
श्वित्रं चतुर्विधश्चैव वातशोणितमेव च ॥ २९ ॥
कापालं कृमिजं कुष्ठं कण्डूं दद्रूं विचर्चिकाम्।
पामाविस्फोटकानीलीकृमिवृद्धिं तथैव च ॥ १३० ॥
कीटकुष्ठमसूरीश्च किटिभं रक्तमण्डलम्।
कुष्ठमौदुम्बरं पद्मं महापद्मं तथैव च ॥ ३१ ॥
गलगण्डार्बुदं हन्याद्गण्डमालां भगन्दरम्।
वातजं पित्तजश्चैव श्लेष्मजं सान्निपातिकम् ॥
एकोल्बणं द्व्युल्बणञ्च कुष्ठं हन्यान्न संशयः ॥ ३२ ॥

सतौनेकी छाल, पीला चन्दन, गिलोय, नीमकी छाल, सिरसकी छाल, बकायन, जयन्ती, कडवीतोंबी, सेंधिनो और हल्दी इनको चालीस चालीस तोले लेकर बत्तीस सेर जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह-जाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस काथमें सरसोंका तेल एक प्रस्थ, गोमूत्र चार प्रस्थ, अमलतास, भाङ्गरा, जयन्ती, धतूरा, हल्दी, भाँग, चीता,

खजूर, गोबरका रस, आक और थूहर इन सबोंके पत्तोंका रस एक एक प्रस्थ तथा कल्कके लिये महाकाल (लताविशेष), बच, ब्राह्मी, कडवीतोंबी, चीतेकी जड, घीग्वार, कुचला, परवल, हल्दी, नागरमोथा, पीपलामूल, अमलतासका गूदा, आकका दूध, कसौंदी, कलिहारीकी जड, रञ्जनद्रुम (पुष्पवृक्ष विशेष), मञ्जीठ, पाढ, इन्द्रायनकी जड, बिछुआके पत्ते, करञ्जकी जड, आस्फोत नामकी लता, मूर्वाकी जड, सतवनकी छाल, सिरसकी छाल, कुडेकी छाल, नीमकी छाल, बकायनकी छाल, गिलोय, बापचीके बीज, चकवडके बीज, धनियाँ, भाँगरा, मुलैठी, जिमीकन्द, कुटकी, कचूर, दारुहल्दी, निसोत, पद्माख, गठिवन, अगर, पोहकरमूल, कपूर, कायफल, बालछड, कपूरकचरी, इलायची, अडूसेकी छाल और खस इन औषधियोंको दोदो तोले, परन्तु सोमराजीके बीज चार तोले लेवे और सबोंको एकत्र कूटपीसकर यथाविधिसे मिलाकर तेलको पकावे । इस प्रकार सिद्धकियेहुए तेलको कन्दर्प तेल कहते हैं । यह तेल अठारहों प्रकारके कोढ, ग्रन्थि और मज्जागत कुष्ठ, हाथ-पैर, अंगुली और सन्धियोंका गलजाना, शरीरके किसी अङ्गमें मांस अधिक बढजाना, नाक और कानोंकी विकलता, मेंडककी समान त्वचाका होजाना, श्वेत अथवा लालकुष्ठ, अनेकवर्णका कुष्ठ, विपादिका, चार प्रकारका सफेदकुष्ठ, वातरक्त, कापाल और कृमिजनितकुष्ठ, कण्डू, दद्रु, विचर्चिका, पामा, विस्फोटक, कृमिवृद्धि कीट, मसूरिका, किटिभ, रक्तमण्डल, औदुम्बर कुष्ठ, पद्म, महापद्म कुष्ठ, गलगण्ड, अर्बुद, गण्डमाला, भगन्दर, वातजकुष्ठ, पित्तजश्लैष्मिककुष्ठ, त्रिदोषजकुष्ठ, एकोल्बणकुष्ठ, द्व्युल्बणकुष्ठ इत्यादि सर्वप्रकारके कुष्ठोंको निश्चय नष्ट करदेताहै ॥ १८-२३२ ॥

खदिरारिष्ट ।

खदिरस्य तुलार्द्धन्तु देवदारु च तत्समम् ।
वागुजी द्वादशपला दार्वी स्यात्पलविंशतिः ॥ ३३ ॥
त्रिफलाविंशतिपलान्यष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ।
कषाये द्रोणशेषे च पूते शीते विनिःक्षिपेत् ॥ ३४ ॥
तुलाद्वयं माक्षिकस्य तुलैका शर्करा तथा ।
धातक्या विंशतिपलं कक्कोलं नागकेशरम् ॥ ३५ ॥
जातीफलं लवङ्गैला त्वक्पत्राणि पृथक् पृथक् ।
पलोन्मितानि कुष्ठाया दद्यात्पलचतुष्टयम् ॥ ३६ ॥

घृतभाण्डे विनिःक्षिप्य मासादूर्ध्वं पिबेत्ततः ।
महाकुष्ठानि हृद्रोगं पाण्डुरोगार्बुदं तथा ॥ ३७ ॥
गुल्मं ग्रन्थिकृमीन्कासं तथा प्लीहोदरं जयेत् ।
एष वै खदिरारिष्टः सर्वकुष्ठविनाशनः ॥ ३८ ॥

खैर ५० पल, देवदारु ५० पल, बापची १२ पल, दारुहल्दी २० पल और त्रिफला २० पल सबोंको एकत्र कूटकर आठ द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते एक द्रोण जल बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर शीतल होजानेपर इस काथमें शहद २०० पल, खाँड १०० पल, धायके फूल २० पल, शीतलचीनी, नागकेशर, जायफल, लौंङ्ग, इलायची, दारचीनी और तेजपात ये प्रत्येक चार चार तोले तथा पीपल १६ तोले इन औषधियोंको बारीक कूटपीसकर डालदेवे । पश्चात् सबोंको विधिपूर्वक एकत्र मिलाकर घीके चिकने बर्त्तनमें भरकर और उसका मुख बन्दकरके एक महीनेतक रखा रहनेदेवे । एक महीनेके अनन्तर इसमेंसे प्रतिदिन बलानुसार उचितमात्रासे सेवन करे । इसके सेवनसे अत्यन्त भयङ्कर सम्पूर्ण कुष्ठरोग तथा हृदयरोग, पाण्डुरोग, अर्बुद, गुल्म, ग्रन्थि, कृमि, खाँसी, तिल्ली, उदरविकार आदिरोग शीघ्र दूर होते हैं । यह खदिरारिष्ट सर्वप्रकारके कुष्ठोंको विनासन्देह नष्ट करनेवाला है ॥

कुष्ठरोगमें पथ्य ।

पक्षात्पक्षाच्छर्दनानि मासान्मासाद्विरेचनम् ।
नस्यं त्र्यहात्त्र्यहान्मासि षष्ठे षष्ठेऽस्रमोक्षणम् ॥ ३९ ॥
सर्पिर्लेपश्चिरोत्पन्ना यवगोधूमशालयः ।
मुद्गाढकीमसूराश्च माक्षिकं जाङ्गलामिषम् ॥ ४० ॥
आषाढफलवेत्राग्रं पटोलं बृहतीफलम् ।
काकमाची निम्बपत्रं लशुनं हिलमोचिका ॥ ४१ ॥
पुनर्नवा मेषशृङ्गी चक्रमर्ददलानि च ।
भल्लातकं पक्वतालं खदिरश्चित्रको वरा ॥ ४२ ॥
जातीफलं नागपुष्पं कुंकुमं प्रतनं हविः ।
कोषातकी करञ्जोऽपि तिलसर्षपनिम्बजम् ॥ ४३ ॥
तैलं तथेङ्गुदोत्थश्च लघून्यन्यानि यानि च ।
स्नेहाः सरलदेवाह्वशिंशपागुरुसम्भवाः ॥ ४४ ॥

मूत्राणि गोखरोष्ट्राश्वमहिषीजनितानि च।
कस्तूरिकागन्धसारास्तिक्तानि क्षारकर्म च॥
यथादोषं समस्तानि पथ्यान्येतानि कुष्ठिनाम् ॥४५॥

कुष्ठरोगमें एक एक पक्ष पीछे वमन, एक एक महीने पीछे विरेचन (जुल्लाब) देवे, तीन तीन महीने बीते नस्य और छः छः महीनेके अन्तरसे रक्तमोक्षण (फस्तखुलवाना) करावे। घीका लेप करे एवं पुराने जौ, गेहूँ, शालिचावल, मूँग, अरहर, मसूर इनका भोजन, शहद, जंगली जीवोंका मांस ढकपन्ना, बेतकी कोंपल, परवल, बडी कटेरीके फल, मकोय, नीमके पत्ते, लहसन, हुलहुलका शाक, पुनर्नवा, मेढ़ासिंगी, चकवडके पत्ते, भिलावे, पके ताडके फल, खैर, चीता, त्रिफला, जायफल, नागकेशर, केशर, पुराना घी, तोरई, करञ्ज, तिल, सरसों, नीम और हिंगोट इनका तेल, हल्के पदार्थ, धूप सरल, देवदारु, शीशम और अगर इनका तेल, गौ, गधा, ऊँट, घोडा और भैंस इन सबोंके मूत्र, कस्तूरी, सफेदचन्दन, तीखेरसवाले द्रव्य और क्षारकर्म ये सब दोषानुसार सेवन करनेसे कुष्ठरोगियोंके लिये हितकारी हैं॥३९-४५॥

कुष्ठरोगमें अपथ्य।

पापानि कर्माणि कृतघ्नभावं निन्दां गुरूणां गुरुधर्षणञ्च।
विरुद्धपानाशनमह्नि निद्रां चण्डांशुतापं विषमाशनञ्च॥४६॥
स्वेदं रतं वेगनिरोधमिक्षुं व्यायाममम्लानि तिलांश्च माषान्
द्रवान्नगुर्वन्ननवान्नभुक्तं विदाहि विष्टंभि च मूलकानि॥४७॥
सह्याद्रिविन्ध्याद्रिसमुद्भवानां तरङ्गिणीनामुदकानि चापि।
आनूपमांसं दधिदुग्धमद्यं गुडञ्च कुष्ठामयिनस्त्यजेयुः॥४८॥

पापकर्म, कृतघ्नता, गुरुओंकी निन्दा, गुरुजनोंका तिरस्कार करना, स्वभावविरुद्ध भोजन-पान करना, दिनमें सोना, प्रचण्ड धूपका सेवन, विषम भोजन, स्वेददेना, स्त्रीप्रसंग, मल-मूत्रादिके वेगको रोकना, ईखके रसका पान, कसरत करना, खट्टे पदार्थ, तिल, उडद, पतले पदार्थ, दुष्पाच्य अन्न, नयेनाजोंका भोजन, दाहकारक-विबन्धकारक द्रव्य, मूली, सह्याचल और विन्ध्याचलसे निकली हुई नदियोंका जल, अनूपदेशजात जीवोंका मांस, दही, दूध, मदिरा और गुड ये सब अपथ्य पदार्थ कुष्ठरोगियोंको त्याग देने चाहिये॥४६-४८॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां कुष्ठरोगचिकित्सा॥

शीतपित्त और उदर्दकोठरोगकी चिकित्सा ।

अभ्यङ्गः कटुतैलेन सेकश्चोष्णाम्बुभिस्तथा ।
उदर्दे वमनं कार्यं पटोलारिष्टवारिणा ॥ १ ॥
त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्चात्र शस्यते ।
विसर्पोक्तममृतादिं भिषगत्र प्रयोजयेत् ॥ २ ॥

उदर्दरोगमें सरसोंके तेलकी मालिशकर गरम जलसे सेंक करे, फिर पटोलपत्र और नीमकी छालके काढेमें मैनफलका चूर्ण डालकर रोगीको पान कराकर वमन करावे। पश्चात् हरड, बहेडा, आमला, गूगल और पीपल इनके काथद्वारा विरेचन (जुल्लाब) करावे । इस रोगमें विसर्परोगाधिकारमें कहा-हुआ अमृतादिकाथ पान करानेसे विशेष लाभ होताहै ॥ १ ॥ २ ॥

सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत्पथ्यान्नभुङ्नरः ।
तस्य नश्यति सप्ताहादुदर्दः सर्वदेहगः ॥ ३ ॥

पथ्यद्रव्योंका भोजन करनेवाला मनुष्य यदि पुराना गुड और अजवायन इन दोनोंको एकत्र मर्दनकर सात दिनतक खाय तो उसका सर्वशरीरगत उदर्दरोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

दूर्वानिशायुते लेपः कण्डूपामाविनाशनः ।
कृमिदद्रुहरश्चैव शीतपित्तापहः स्मृतः ॥
क्षारसैन्धवतैलेन गात्राभ्यङ्गं प्रकारयेत् ॥ ४ ॥

दूब और हल्दीको एकत्र पीसकर लेपकरनेसे कण्डू (खुश्क खुजली) और पामा (तर खुजली) नष्ट होती है। जवाखार और सैंधेनमकको तिलके तेलमें मिलाकर मालिश करनेसे कृमि, दद्रु कुष्ठ और शीतपित्तरोग दूर होता है॥४॥

अग्निमन्थभवं मूलं पिष्टं पीतञ्च सर्पिषा ।
शीतपित्तोदर्दकोठान् सप्ताहादेव नाशयेत् ॥ ५ ॥

अरणीकी जडको पीसकर घीमें मिलाकर पान करे तो शीतपित्त, उदर्द और कोढरोग सात दिनमें ही नाश होजाते हैं ॥ ५ ॥

कुष्ठोक्तश्च क्रमं कुर्यादम्लपित्तघ्नमेव च ।
उदर्दोक्तां क्रियां सर्वां कोठरोगे समासतः ॥
सर्पिः पीत्वा महातिक्तं कार्यं रक्तस्य मोक्षणम् ॥ ६ ॥

इस रोगमें कुष्ठरोगोक्त चिकित्सा और अम्लपित्तनाशक औषधियोंका सेवन

करे । एवं उदर्दरोगमें कहीहुई चिकित्साके अनुसार कोठरोगकी चिकित्सा करे । कोठरोगमें महातिक्तघृतका पान और रक्तमोक्षण करना उपयोगी है ६॥

कर्षं गव्यघृतस्यापि कर्षार्द्धं मरिचस्य च ।
एकीकृत्य पिबेत्प्रातः शीतपित्तविनाशनः ॥ ७ ॥

छः मासे काली मिरचोंको छः मासे गौके घीमें मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करनेसे शीतपित्तरोग नष्ट होता है ॥ ७ ॥

हारिद्राखण्ड ।

हरिद्रायाः पलान्यष्टौ षट्पलं हविषस्तथा ।
क्षीराढकेन संयुक्तं खण्डस्यार्द्धतुलां तथा ॥ ८ ॥
पचेन्मृद्वाग्निना वैद्यो भाजने मृण्मये दृढे ।
कटुत्रिकं त्रिजातञ्च कृमिघ्नं त्रिवृता तथा ॥ ९ ॥
त्रिफला केशरं मुस्तं लौहं प्रति पलं पलम् ।
सञ्चूर्ण्य प्रक्षिपेत्तत्र कर्षमेकन्तु भक्षयेत ॥ १० ॥
कण्डूविस्फोटदद्रूणां नाशनं परमौषधम् ।
प्रतप्तकाञ्चनाभासो देहो भवति नान्यथा ॥ ११ ॥
शीतपित्तोदर्दकोठान् सप्ताहादेव नाशयेत् ।
हारिद्रा नामतः खण्डः कण्डूनां परमौषधम् ॥ १२ ॥

हल्दीका चूर्ण ३२ तोले, गोघृत २४ तोले, गोदुग्ध ८ सेर और चीनी ५० पल इन सबोंको एकत्र मिलाकर स्वच्छ और दृढ मिट्टीके बर्त्तनमें मन्दमन्द अग्निसे पकावे । फिर उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, दारचीनी, इलायची, तेजपात, वायविडङ्ग, निसोत, हरड, बहेडा, आमला, नागकेशर, नागरमोथा, और लोहभस्म ये प्रत्येक औषधि चार २ तोले लेवे और सबोंको बारीक पीस कर मिलादेवे । इसको प्रातिदिन एकएक तोलाप्रमाण सेवन करनेसे कण्डू, विस्फोटक और दद्रु रोगोंका शीघ्र नाश होता है तथा शरीर तपेहुए सुवर्णकी समान अत्यन्त देदीप्यमान होजाता है । यह औषधि शीतपित्त, उदर्द और कोठरोगोंको सात दिनमें ही नष्ट करदेता है । इसको हारिद्राखण्ड कहते हैं । यह हारिद्राखण्ड खुजलीरोगकी अत्युत्तम औषधिहै ॥ ८-१२ ॥

बृहद्धारिद्राखण्ड ।

निशाचूर्णस्य कुडवं त्रिवृत्पलचतुष्टयम् ।
अभया तत्समा देया सार्द्धप्रस्थद्वयी सिता ॥ १३ ॥

दार्वी मुस्ता यमान्यौ द्वौ चित्रकं कटुरोहिणी।
अजाजी पिप्पली शुण्ठी त्रिजातं कृमिकण्टकम्॥१४॥
अमृता वासकं कुष्ठं त्रिफला चव्यधान्यकम्।
मृतलौहं मृताभ्रश्च प्रत्येकं कोलसंमितम्॥ १५॥
पचेन्मृद्वग्निना वैद्यो भाजने मृण्मये नवे।
कर्षार्द्धश्च ततः खादेदुष्णतोयानुपानतः॥ १६॥
शीतपित्तोदर्दकोठकण्डूपामाविचर्चिकाः।
जीर्णज्वरकृमीन्पाण्डुशोथादींश्च विनाशयेत्॥ १७॥

हल्दीका चूर्ण १६ तोले, निसोत १६ तोले, हरड १६ तोले, मिश्री १६० तोले, दारुहल्दी, नागरमोथा, अजवायन, अजमोद, चीता, कुटकी, काला-जीरा, पीपल, सोंठ, दारचीनी, इलायची, तेजपात, वायविडङ्ग, गिलोय, अडूसा, कूठ, त्रिफला, चव्य, धनियाँ, लोहभस्म और अभ्रकभस्म ये प्रत्येक एकएक तोला लेवे। फिर सबोंको एकत्र कूटपीसकर यथाविधिसे मिलाकर मिट्टीके नये और उत्तमप्रकारसे दृढ पात्रमें पाककरे। प्रतिदिन प्रातःकाल इसमेंसे छः २ माशे लेकर मन्दोष्ण जलके साथ भक्षण करे तो यह बृहद्धारिद्राखण्डावलेह शीतापित्त (पित्ती), उदर्द, कोठ, कण्डू, पामा, विचर्चिका, जीर्णज्वर, कृमिरोग, पाण्डु और शोथप्रभृति रोगोंको बहुत शीघ्र नष्ट करताहै॥

शीतपित्तोदर्दकोठरोगोंमें पथ्य।

छर्दिर्विरेचनं लेपोऽसृङ्मोक्षो जीर्णशालयः।
जाङ्गलैरामिषैर्मुद्गैः कुलत्थैर्वा कृता रसाः॥ १८॥
कर्कोटकं कारवेल्लं शिग्रुमूलकपोतिकाः।
शालिञ्चशाकं वेत्राग्रं दाडिमं त्रिफला मधु॥ १९॥
कटुतैलं तप्तनीरं पित्तश्लेष्महराणि च।
कटुतिक्तकषायाणि सर्वाणीति गणः सखा॥
शीतपित्तोदर्दकोठरोगिणां स्याद्यथाबलम्॥ २०॥

वमन, विरेचन, प्रलेप और रक्तमोक्षण कराना, पुराने शालिचावल, जङ्गली-पशु-पक्षियोंका मांसरस, मूँगका यूप, कूलथीका यूष, ककोडे, करेले, सहिंजनेकी फली, मूली, पोईका शाक, शालिञ्चशाक, बेंतकी कोंपल, अनार, त्रिफला, मधु, सरसोंका तेल, गरमजल, कफ-पित्तनाशक द्रव्य और समस्त कडवे-

तीखे तथा कषायरसवाले पदार्थ ये सब शीतपित्त, उदर्द और कोठरोगवाले व्यक्तियोंको दोषानुसार सेवन करनेसे सुखावह कहेगये हैं ॥ १८--२० ॥

शीतपित्त, उदर्द और कोठरोगोंमें अपथ्य ।

क्षीरेक्षुजाता विविधा विकारा मत्स्योदकानूपभवामिषाणि।
नवीनमद्यं वमिवेगरोधः प्राग्दक्षिणाशापवनोऽह्नि निद्रा२१॥
स्नानं विरुद्धाशनमातपश्च स्निग्धं तथाम्लं मधुरं कषायम् ।
गुर्वन्नपानानि च शीतपित्तकोठामयोदर्दवतां विषाणि ॥२२

दूधके बनेद्रव्य (दही, मट्ठादि), ईखके रससे बने (गुडादि) नानाप्रकारके द्रव्य, मछली, जलचर और अनूपदेशवासी जीवोंका मांस, नईमदिरा, वमन (कै) के वेगको रोकना, पूर्वदिशा और दक्षिणदिशाकी वायुका सेवन दिनमें शयन, स्नान, विरुद्धभोजन, धूपका सेवन, चिकने, खट्टे, मीठे और कषैले पदार्थ, गुरुपाकी अन्नपान ये सब वस्तुएँ शीतपित्त, कोठ और उदर्दरोगाक्रान्त मनुष्योंको विषके समान अहितकर हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शीतपित्तोदर्दकोठरोग-चिकित्सा ॥

अम्लपित्तकी चिकित्सा ।

वान्तिं कृत्वाम्लपित्ते तु विरेकं मृदु कारयेत् ।
सम्यग्वान्तविविक्तस्य सुस्निग्धस्यानुवासनम् ॥ १ ॥
आस्थापनं चिरोद्भूते देयं दोषाद्यपेक्षया ।
क्रियाशुद्धस्य शमनं ह्यनुबन्धव्यपेक्षया ॥
दोषसंसर्गजे कार्या भेषजाहारकल्पना ॥ २ ॥

अम्लपित्तरोगमें वमन और मृदु विरेचन करावे । जब उक्तक्रियाओंके द्वारा शरीरकी अच्छे प्रकार शुद्धि होजाय तब रोगीको स्निग्धद्रव्य पान कराकर अनुवासनवस्ति लगावे । पुराने अम्लपित्तरोगमें दोषोंको विचारकर निरूहणवस्ति प्रयोगकरना उपयोगी है । अम्लपित्तमें मिलेहुए दोषोंका प्रकोप होनेपर उपर्युक्त विधिके अनुसार रोगीको शुद्धकर दोषोंको शमन करनेवाली औषध और आहारकी कल्पना करे ॥ १ ॥ २ ॥

ऊर्ध्वगं वमनैर्धीमानधोगं रेचनैर्हरेत् ।
अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टपत्रकैः ॥ ३ ॥

कारयेन्मदनक्षौद्रसिन्धुयुक्तैः कफोल्बणे ।
विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुधात्रीफलद्रवैः ॥ ४ ॥

ऊर्ध्वगतअम्लपित्तमें वमन और अधोगत अम्लपित्तमें विरेचन कराना श्रेष्ठ है । कफप्रधान अम्लपित्तरोगमें परवलके पत्ते, नीमके पत्ते, मैनफल, शहद, सैन्धानमक इनका क्वाथ पान कराकर रोगीको वमन करावे एवं आमलोंके क्वाथमें शहद और निसोतका चूर्ण डालकर रोगीको पान कराकर दस्त करावे॥

तिक्तभूयिष्ठमाहारं पानञ्चापि प्रकल्पयेत् ।
यवगोधूमविकृतितीक्ष्णसंस्कारवर्जिताः ॥
यथास्वं लाजसक्तून्वा सितामधुयुतान्पिबेत् ॥ ५ ॥

अम्लपित्तरोगमें कडवेरसवाले द्रव्योंके साथ आहार और पान निश्चित करके देवे । एवं मिष्टपदार्थोंके साथ जौ और गेहूँके बनायेहुए खाद्यपदार्थ देवे, किन्तु उनके साथ नमक, लालमिरच और खटाई आदि तीक्ष्णद्रव्य मिलाकर सेवन न करे । अम्लपित्तरोगी मिश्री और शहद मिलाकर खीलोंके सत्तुओंको यथेच्छरूपसे पान करे ॥ ५ ॥

निस्तुषयववृषधात्री क्वाथस्त्रिसुगन्धिमधुयुतः पीतः ।
अपनयत्यम्लपित्तं यदि भुक्तं मुद्गयूषेण ॥ ६ ॥

भूसीरहित जौ अडूसेके पत्ते और आमले इनके क्वाथमें दारचीनी, इलायची और तेजपात इनका चूर्ण एवं शहद मिलाकर पान करे और मूँगके यूषका पथ्य करे तो अम्लपित्तरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६ ॥

कफपित्तवमिकण्डूज्वरविस्फोटदाहहा ।
पाचनो दीपनः क्वाथः शृङ्गवेरपटोलयोः ॥ ७ ॥

अदरख, परवल इनका सुखोष्ण क्वाथ पान करनेसे कफ-पित्तजन्य वमन, खुजली, ज्वर, विस्फोट दाहादिरोग नष्टहोते हैं।यह क्वाथ पाचन,दीपन है।।७।।

पटोलं नागरं धान्यं क्वाथयित्वा जलं पिबेत् ।
कण्डूपामार्त्तिशूलघ्नं कफपित्ताग्निमान्द्यजित् ॥ ८ ॥

पटोलपात, सोंठ और धनियाँ इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे कण्डू, पामा, शूल, कफ, पित्तजन्यरोग और मन्दाग्निप्रभृति विकार दूर होते हैं ।।८।।

पटोलविश्वामृतरोहिणीकृतं जलं पिबेत्पित्तकफाश्रयेषु ।
शूलभ्रमारोचकवह्निमान्द्यदाहज्वरच्छर्दिनिवारणं तत्॥९॥

परवल, सोंठ, गिलोय और कुटकी इनका यथाविधि क्वाथ बनाकर पानकरे

तो पित्तकफोत्पन्न अम्लपित्त एवं शूल, भ्रम, अरुचि, मन्दाग्नि, दाह, ज्वर और वमनरोग शान्त होते हैं ॥ ९ ॥

यवकृष्णापटोलानां क्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत् ।
नाशयेदम्लपित्तञ्चारुचिञ्च वमनं तथा ॥ १० ॥

जौ, पीपल और परवल इनका एकत्र क्वाथ बनाकर उसमें शहद डालकर पानकरनेसे अम्लपित्त, अरुचि और वमन नष्ट होती है ॥ १० ॥

छिन्नाखादिरयष्ट्याह्वदार्व्यम्भो मृदुना पिबेत् ।
सद्राक्षामभयां खादेत्सक्षौद्रां सगुडाञ्च ताम् ॥ ११ ॥

गिलोय, खैर, मुलैठी और दारुहल्दी इनके मन्दोष्ण क्वाथमें मधु मिश्रित कर पान करे । दाख और हरडको एकत्र पीसकर सेवन करे अथवा हरडोंके चूर्णमें शहद मिलाकर किम्वा पुराना गुड मिलाकर सेवन करे । इनके सेवनसे अम्लपित्त दूर होता है ॥ ११ ॥

छिन्नोद्भवानिम्बपटोलपत्रं फलत्रिकं सुक्वथितं सुशीतम् ।
क्षौद्रान्वितं पीतमनेकरूपं सुदारुणं हन्ति तदम्लपित्तम् १२

गिलोय, नीमकी छाल, पटोलपात, हरड, बहेडा, आमला इनका उत्तमप्रकारसे क्वाथ बनावे । फिर शीतल होजानेपर उसमें शहद मिलाकर पानकरे तो यह अनेक प्रकारके दारुण अम्लपित्तरोगको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

हिंगु च कतकफलानि चिञ्चात्वचो घृतञ्च पुटदग्धम् ।
शमयति तदम्लपित्तमम्लभुजो यथोत्तरं द्विगुणम् ॥१३॥

हींग १ तोला, निर्मलीके फल दो तोले, इमलीकी छाल ४ तोले और घी ८ तोले इन सबोंको एकत्र अन्तर्धूमअग्निमें पुटपाककी रीतिसे पकाकर उष्णजलके साथ सेवन करे और इसपर खट्टे रसवाले पदार्थ भक्षण करे तो अम्लपित्तरोग शमन होताहै ॥ १३ ॥

कान्तपात्रे वराकल्को व्युषितोऽभ्यासयोगतः ।
सिताक्षौद्रसमायुक्तः कफपित्तहरः स्मृतः ॥ १४ ॥

लोहपात्रमें हरड, बहेडा और आमला इनके समानभाग मिश्रित रातभर रखेहुए बासी कल्कको मिश्री और शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे कफपित्तजन्य अम्लपित्त विकार नष्ट होता है ॥ १४ ॥

वासाघृतं तिक्तघृतं पिप्पलीघृतमेव च ।
अम्लपित्ते प्रयोक्तव्यं खण्डकूष्माण्डकं तथा ॥ १५ ॥

पङ्क्तिशूलापहा योगस्तथा खण्डामलक्यपि ।
पिप्पलीमधुसंयुक्ता अम्लपित्तविनाशिनी ॥
जम्बीरस्वरसः पीतः सायं हन्त्यम्लपित्तकम् ॥ १६ ॥

अम्लपित्तरोगमें वासाघृत, तिक्तघृत, पिप्पलीघृत, खण्डकूष्माण्डक, खण्डामलकी और परिणामशूलनाशकयोग प्रयोग करने चाहिये । पीपलके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटनेसे अथवा सायंकालमें चीनी मिश्रित जम्बीरनिंबूका रस पान करनेसे अम्लपित्तरोग नाश होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

दशांग ।

वासामृतापर्पटकानिम्बभूनिम्बमार्कवैः ।
त्रिफलाकूलकैः क्वाथः सक्षौद्रश्चाम्लपित्तहा ॥ १७ ॥

अडूसेकी छाल, गिलोय, पित्तपापडा, नीमकी छाल, चिरायता, भाँगरा, त्रिफला और परवल इनके काढेको शहद मिलाकर सेवन करनेसे अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ १७ ॥

पञ्चनिम्बादिचूर्ण ।

एकोंऽशः पञ्चनिम्बानां द्विगुणो वृद्धदारकः ।
सक्तुर्दशगुणो देयः शर्करामधुरीकृतः ॥ १८ ॥
शीतेन वारिणा पीतं शूलं पित्तकफोच्छ्रितम् ।
निहन्ति चूर्णं सक्षौद्रमम्लपित्तं सुदारुणम् ॥ १९ ॥

नीमकी छाल, पत्ते, फल, फूल और मूल ये सब एक तोला, विधारा दो तोले और जौके सत्तू १० तोले, इनमें कुछ खाँड मिलाकर इनको मधुर बनालेवे । फिर इस चूर्णको मधुमें मिश्रितकर शीतल जलके साथ दो तोले प्रमाण सेवन करे।यह चूर्ण पित्त-कफोद्भवशूल और दारुण अम्लपित्तको नष्ट करताहै१९

अविपत्तिकरचूर्ण ।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडश्चैव विडङ्गकम् ।
एलापत्रञ्च चूर्णानि समभागानि कारयेत् ॥ २० ॥
सर्वमेकीकृतं यावल्लवङ्गं तत्समं भवेत् ।
सर्वचूर्णं द्विगुणितं त्रिवृच्चूर्णं प्रदापयेत् ॥ २१ ॥
सर्वमेकीकृतं यावत्तावच्छर्करयान्वितम् ।
भोजनादौ तथा मध्ये खादेन्माषाष्टकं शुभम् ॥ २२ ॥

अम्लपित्तं निहन्त्याशु विबन्धं मलमूत्रयोः।
अग्निमान्द्यभवान्रोगान् नाशयेदविकल्पतः॥ २३॥
प्रमेहान्विंशतिश्चैव सर्वदुर्नामनाशनम्।
अविपत्तिकरं चूर्णमगस्त्यविहितं शुभम्॥ २४॥

सोंठ, पीपल, मिरच, हरड, आमला, बहेडा, नागरमोथा, विरियासञ्चरनोन, वायविडङ्ग, इलायची और तेजपात इनको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण कर लेवे। फिर इस चूर्णके बराबर भाग लौंगका चूर्ण एवं सबसे दुगुना निसोतका चूर्ण और जितना इन सब औषधियोंका चूर्ण हो उतनी खाँड मिलाकर सबोंको एकमएक करलेवे। इस चूर्णको आठ आठ माशेकी मात्रासे प्रतिदिन भोजनके आदि और मध्यमें सेवनकरे, ऊपरसे शीतल जल अथवा नारियलका जल पान करे। यह चूर्ण अम्लपित्त, मल मूत्रका विबन्ध, मन्दाग्निसे उत्पन्न होनेवाले रोग, बीसोंप्रकारके प्रमेह और सर्वप्रकारकी बवासीरादि रोगोंको तत्काल नष्ट करता है। इस अविपत्तिकरनामक उत्तम चूर्णको अगस्त्यजीने विधान किया है॥ २०-२४॥

लीलाविलास।

रसो बलिर्व्योमरविश्च लौहं धात्र्यक्षनीरैस्त्रिदिनं विमर्द्य।
तदल्पघृष्टं मृदुमार्कवेण संमर्दयेदस्य हि वल्लयुग्मम्॥ २५॥
हन्त्यम्लपित्तं विविधप्रकारं लीलाविलासो रसराज एषः।
छर्दिं सशूलं हृदयस्य दाहं निवारयेदेव न संशयोऽत्र॥
दुग्धं सकूष्माण्डरसं सधात्रीफलं समेतं ससितं भवेद्वा॥२६॥

पारा, गन्धक, अभ्रक, ताँबा और लोहा इनकी भस्मको एक एक तोला लेके फिर सबोंको एकत्र मिलाकर आमले और बहेडेके रस (अभावमें काथ) में पृथक् पृथक् तीन दिनतक खरलकर कुछ थोडी देरतक भाँगरेके रसमें खरल करे। पश्चात् इस रसको प्रतिदिन प्रातःकाल दो दो रत्तीप्रमाण सेवनकरे और ऊपरसे दूध, पेठेका रस, आमलोंका रस अथवा चीनी पडाहुआ नारियलका जल पानकरे। यह लीलाविलास सम्पूर्ण रसोंका राजा है। यह नानाप्रकारके आम्लपित्त वमन शूल और हृदयकी दाहादि रोगोंको बहुत शीघ्र नष्ट करता है इसमें कुछभी सन्देह नहीं है॥ २५॥२६॥

अम्लपित्तान्तकरस।

मृतसूतार्कलौहानां तुल्यां पथ्यां विमर्दयेत्।
माषमात्रं लिहेत्क्षौद्रैरम्लपित्तप्रशान्तये॥ २७॥

रससिन्दूर, ताँवा और लोहा ये प्रत्येक एक एक तोला और इनके बराबर भाग हरड लेकर सवोंको यथाविधि एकत्र मिलाकर पीसलेवे । पश्चात् इसको एक एक माशा प्रमाण शहदमें मिलाकर चाटनेसे अम्लपित्त शान्तहोताहै ॥

भास्करामृताभ्र ।

वासामृताकेशराजः पर्पटी निम्बभृङ्गके ।
वृश्चीरं बृहती मुस्तं वाट्यालकशतावरी ॥ २८ ॥
एषां सत्त्वैः पलोन्मानैर्मर्दितं विमलाभ्रकम् ।
सहस्रपुटितं तत्र शतावर्या रसं क्षिपेत् ॥ २९ ॥
वारद्वादशकं दत्त्वा वटिकां कारयेद्भिषक् ।
भास्करामृतनामेदमम्लपित्तं नियच्छति ॥ ३० ॥
शूलमन्नद्रवं शूलं शूलञ्च परिणामजम् ।
छर्दिं हृल्लासमरुचिं तृष्णां कासञ्च दुर्जयम् ॥ ३१ ॥
हृद्ग्रहं कामलां रक्तपित्तं यक्ष्माणमेव च ।
दाहं शोथं भ्रमं तन्द्रां विस्फोटं कुष्ठमेव च ॥
श्वासं मूर्च्छाञ्च मन्दाग्निं यकृत्प्लीहोदरं तथा ॥ ३२ ॥

अडूसा गिलोय काला भाँगरा पित्तपापडा नीमकी छाल भाँगरा सफेद पुनर्नवा बडी कटेरी नागरमोथा खिरैंटी और शतावर इनके चार २ तोले सत्त्वको निकाले और उससे १ हजार बार फूँकाहुई निर्मल अभ्रकको खरल करे । फिर उसमें बारह बार शतावरका रस डालकर उत्तमंप्रकारसे खरल करके गोलियाँ बनालेवे । यह भास्करामृतनामक अभ्रक अम्लपित्त अन्नद्रवभवशूल, शूल, परिणामशूल वमन हृल्लास अरुचि तृषा दुर्जय खाँसी हृदयरोग कामला रक्तपित्त राजयक्ष्मा दाह शोथ भ्रम तन्द्रा विस्फोट कुष्ठ श्वास मूर्च्छा मन्दाग्नि यकृत् प्लीहा और उदररोग इन रोगोंको नष्ट करता है ॥२८-३२ ॥

सर्वतोभद्रलौह ।

लौहं चूर्णं मृतं ताम्रमभ्रकञ्च पलं पलम् ।
शुद्धसूतञ्च कर्षैकं गन्धकार्द्धपलं तथा ॥ ३३ ॥
माक्षिकस्य विशुद्धस्य कर्षं शुद्धा शिला परा ।
सार्द्धकर्षं विशुद्धञ्च शिलाजतु तथा परम् ॥ ३४ ॥
गुग्गुलोश्चापि कर्षैकं शाणमानं परस्य च ।
चूर्णं विडङ्गभल्लातवह्निश्वेतार्कमूलजम् ॥ ३५ ॥

करिकर्णपलाशश्च तालमूली पुनर्नवा।
घनामृता नागबला चक्रमर्दकमुण्डिरी ॥ ३६ ॥
भृङ्गकेशशतावर्यौ वृद्धदारं फलत्रिकम्।
त्रिकटुश्चापि सर्वेषां प्रत्येकञ्च नयेद्भिषक् ॥ ३७ ॥
सर्वमेकत्र सम्मर्द्य घृतेन मधुना सह।
स्निग्धभाण्डे विनिःक्षिप्य ततः कुर्याद्विधानवित्॥३८
माषकादिक्रमेणैव लौहं सर्वरसायनम्।
अम्लपित्तं जयेच्छीघ्रं सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ ३९ ॥
तद्वदर्शांसि सर्वाणि सर्वमेव भगन्दरम्।
पंक्तिशूलञ्च शूलञ्च तथामं कुक्षिसंभवम् ॥ ४० ॥
वातरक्तं तथा कुष्ठं पाण्डुरोगं हलीमकम्।
आमवातं तथा शोथमग्निमान्द्यं सुदुस्तरम् ॥ ४१ ॥
कामलं वातगुल्मञ्च पिडिकागरगृध्रसीः।
कासश्वासारुचिहरं वृष्यमेतद्विशेषतः ॥ ४२ ॥
सर्वव्याधिहरं प्रोक्तं यथेष्टाहारसेविनः।
यक्ष्माणं रक्तपित्तञ्च वातरोगं विनाशयेत ॥
संज्ञया सर्वतोभद्रलौहो रसवतः स्मृतः ॥ ४३ ॥

लोहे, ताँबे और अभ्रककी भस्म चार चार तोले, शुद्धपारा एक तोला, शुद्धगन्धक दो तोले, शुद्ध सोनामाखी एक तोला, शुद्धमैनसिल एक तोला, शुद्ध शिलाजीत डेढ तोला, शुद्धगूगुल एक तोला, एवं वायविडङ्ग, भिलावे, चीतेकी जड, सफेद आककी जड, हस्तिकर्ण, पलाशकी छाल, मुसली, सोंठ, नागरमोथा, गिलोय, गंगेरन, चकवड, गोरखमुण्डी, सफेदभाँगरा, कालाभाँगरा, शतावर, विधारा, त्रिफला और त्रिकुटा इन औषधियोंको अलग अलग चार चार मासे लेवे। फिर सबोंको घी और शहदके साथ एकत्र मर्दनकरके घीसे चिकने बासनमें भरकर रखदेवे। इसमेंसे प्रतिदिन चार रत्तीसे प्रारम्भ कर एक माशेतक मात्राको बढाताहुआ सेवन करे। यह रसायन सम्पूर्ण उपद्रवोंसे युक्त अम्लपित्तरोगको तत्काल नष्ट करती है। तथा सर्वप्रकारकी बवासीर, भगन्दर, पंक्तिशूल, आमशूल, कुक्षितगशूल, वातरक्त, कुष्ठ, पाण्डुरोग, हलीमक, आमवात, सूजन, मन्दाग्नि, कामला, वातगुल्म, पिडका, विषजरोग,

गृध्रसी, खाँसी, श्वास, अरुचि और अन्यान्य सर्व प्रकारके विकारोंको दूर करती है। विशेषकर बल, वीर्यको वढाती एवं पुष्टिकरती है। इसपर स्वेच्छापूर्वक आहार बिहार करना चाहिये। यह औषधि राजयक्ष्मा, रक्तपित्त और वातरोगको नष्ट करती है। इस उत्तम रसायनको सर्वतोभद्रलोह कहते हैं३३–४३

पानीयभक्तवटिका।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं त्रिवृता चित्रकं तथा।
प्रत्येकं कार्षिकं दद्यात्सूतगन्धौ तदर्द्धकौ॥ ४४॥
लौहाभ्रकविडङ्गानां दद्यात्कर्षद्वयन्तथा।
त्रिफलायाः कषायेण गुडीं कृत्वा विधानतः॥ ४५॥
तदेकां भक्षयेत्प्रातर्भक्तवारि पिबेदनु।
हन्ति शूलं त्रिदोषोत्थमम्लपित्तं विशेषतः॥ ४६॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कुक्षिवस्तिगुदे रुजम्।
श्वासं कासं तथा कुष्ठं ग्रहणीदोषनाशिनी॥ ४७॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, वहेडा, आमला, नागरमोथा, निसोत, चीता, ये प्रत्येक दो दो तोले, शोधित पारा और गन्धक एक एक तोला, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और वायविडङ्ग प्रत्येक चार चार तोले लेवे। इन सबोंको एकत्र त्रिफलेके क्वाथमें उत्तम प्रकार खरल करके चार २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। पश्चात् प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली भक्षणकर ऊपरसे काँजी पानकरे। यह गोलियाँ त्रिदोषजन्य शूल, विशेषकर अम्लपित्त, हृदयशूल, पार्श्वशूल, कुक्षि और वस्तिगत शूल, गुदाके रोग, श्वास, खांसी कुष्ठ और संग्रहणी आदि रोगोंको शीघ्र नष्ट करती हैं॥ ४४–४७॥

पञ्चाननगुटिका।

शुद्धसूतं पलार्द्धञ्च तत्समं शुद्धगन्धकम्।
तयोस्तुल्यं ताम्रपत्रं लिप्त्वा मूषोदरे क्षिपेत्॥ ४८॥
आच्छाद्य पञ्चलवणैर्लिप्त्वा गजपुटे पचेत्।
सिद्धं ताम्रं समादाय पलमेकं विचूर्णयेत॥ ४९॥
पारदस्य पलञ्चैकं गन्धकस्य पलं तथा।
पुटदग्धस्य लोहस्य गगनस्य पलं पलम्॥ ५०॥
यमानी शतपुष्पा च त्रिकटु त्रिफलानि च।
त्रिवृता चविका दन्ती शिखरी जीरकद्वयम्॥ ५१॥

एतेषां पलिकैर्भागैर्घण्टकर्णकमानकम् ।
ग्रन्थिकं चित्रकञ्चैव कुलिशानां पलार्द्धकम् ॥ ५२ ॥
आर्द्रकस्वरसैः पिष्ट्वा गुडिकां माषसम्मिताम् ।
पञ्चाननगुटी ख्याता सर्वरोगविनाशिनी ॥ ५३ ॥
अम्लपित्तमहाव्याधिनाशिनी च रसायनी ।
महाग्निकारिका चैषा परिणामव्यथापहा ॥ ५४ ॥
शोथपाण्ड्वामयानाहप्लीहगुल्मोदरापहा ।
गुरुवृष्यान्नपानानि पयो मांसरसो हिताः ॥ ५५ ॥

शुद्धपारा और शुद्धगन्धक दो दो तोले लेकर दोनोंकी कज्जली बनाले फिर उस कज्जलीसे चार तोले ताँबेके पत्रको लेसकर मूषायन्त्रमें रक्खे और उसके मुँहको पाँचों नमकोंके द्वारा लेसकर गजपुटमें स्थापन करके पकावे। इस प्रकार भस्म कियाहुआ ताँबा चार तोले तथा पारा गन्धक पुटदग्ध लोह अभ्रक अजवायन सोया त्रिकुटा त्रिफला निसोत चव्य दन्ती चिरचिटा जीरा काला-जीरा ये प्रत्येक चार २ तोले एवं घण्टावृक्ष मानकन्द पीपलामूल चीता और हडसंकरी इनको दो दो तोले लेवे। सबोंको एकत्र अदरखके रसके साथ अच्छे प्रकार खरल करके एक एक माशेकी गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन एक एक गोली सेवन करे। यह पञ्चाननगुटिका सर्वप्रकारके रोगोंको नष्ट करनेवाली है। भयंकर अम्लपित्त मन्दाग्नि सूजन पाण्डु आनाह प्लीहा गुल्म उदररोग और परिणामशूल इन सम्पूर्ण रोगोंको यह वटी तत्काल दूर करती है। यह जठराग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाली और परम रसायन है। इसपर भारी वीर्यवर्द्धक पदार्थ दूध और मांसरस इनका भोजन करना हितकर है ॥४८--५५॥

लघुक्षुधावतीगुटिका ।

रसगन्धकमभ्राणि यमानी त्र्यूषणं तथा ।
त्रिफला शतपुष्पा च चविका जीरकद्वयम् ॥ ५६ ॥
पुनर्नवा वचा दन्ती त्रिवृता घण्टकर्णकम् ।
दण्डोत्पला सारिवे द्वे चाक्षमात्राणि कारयेत ॥ ५७ ॥
मण्डूरं द्विगुणं दत्त्वा पेषणीयं प्रयत्नतः ।
आर्द्रकस्वरसालोड्य गुडिकां कारयेद्बुधः ॥ ५८ ॥
प्रत्यहं भक्षयेदेकां भक्तवारि पिबेदनु ।
वटी क्षुधावती नाम्ना चाम्लपित्तविनाशिनी ॥ ५९ ॥

अग्निश्च कुरुते दीप्तिं तेजोवृद्धिं बलं तथा ।
प्लीहानं श्वासमानाहमामवातं विनाशयेत् ॥ ६० ॥
परिणामभवं शूलं कासं पञ्चविधं तथा ।
जगतस्तु हितार्थाय वाग्भटेन प्रकीर्त्तिता ॥ ६१ ॥

शुद्धकिया पारा गन्धक अभ्रक अजवायन सोंठ मिरच पीपल हरड बहेडा आमला सोंफ चव्य जीरा कालाजीरा पुनर्नवा वच दन्ती निसोत घण्टाकर्णकी जड सफेद दण्डोत्पलकी जड उसवा अनन्तमूल प्रत्येक दो दो तोले और मण्डूर चार तोले लेकर सबोंको एकत्र पीसलेवे । फिर अदरखके रसके साथ खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली और ऊपरसे काँजीको पीवे । यह क्षुधावतीनामवाली वटी अम्लपित्तको नष्ट कर अग्निको दीपनकर तेज और बलको बढाती है । तिल्ली, श्वास, अफरा, आमवात, परिणामजन्यशूल और पाँचों प्रकारकी खाँसीको शीघ्र दूर करती है । श्रीवाग्भटाचार्यने जीवोंको हितके लिये इसको निर्माण किया है ॥५६-६१ ॥

अपरा क्षुधावती गुटिका ।

रसायोगन्धकाभ्राणि त्र्यूषणं त्रिफला वचा ।
यमानी शतपुष्पा च चविका जीरकद्वयम् ॥ ६२ ॥
प्रत्येकं पलमेषान्तु घण्टकर्णः पुनर्नवा ।
माणकं ग्रन्थिकं चेन्द्रं केशराजः सुदर्शनी ॥ ६३ ॥
दण्डोत्पला त्रिवृद्दन्ती जामातृ रक्तचन्दनम् ।
भृङ्गापामार्गकुलका मण्डूकश्च पलार्द्धकम् ॥ ६४ ॥
आर्द्रकस्वरसेनाथ गुटिकां संप्रकल्पयेत् ।
बदरास्थिसमां चैकां भक्षयित्वा पिबेदनु ॥ ६५ ॥
वारि भक्तजलञ्चैव प्रातरुत्थाय मानवः ।
वटी क्षुधावती नाम्ना सर्वाजीर्णविनाशिनी ॥६६॥
अग्निश्च कुरुते दीप्तं भस्मकञ्च नियच्छति ।
अम्लपित्तञ्च शूलञ्च परिणामकृतञ्च यत् ॥ ६७ ॥
तत्सर्वं शमयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ।
मधुरं वर्जयेदत्र विशेषात्क्षीरशर्करे ॥ ६८ ॥

शुद्धपारा, लोहा, शुद्धगन्धक, अभ्रक, त्रिकुटा, त्रिफला, वच, अजवा-

यन, सोंफ, चव्य, जीरा, कालाजीरा, ये प्रत्येक चार चार तोले तथा घण्टाकर्णकी जड, सोंठी, मानकन्द, पीपलामूल, इन्द्रजौ, कालाभाँगरा, सुदर्शनवृक्षकी लता, सफेद दण्डोत्पल, निसोत, दन्तीकी जड, हुलहुलकी जड, लालचन्दन, भाँगरा, चिराचिटा, पटोलपत्र और पीलेफूलवाली मुण्डी इनको दो दो तोले लेवे । फिर सबोंको एकत्र अदरखके रसके साथ उत्तम प्रकार खरलकर बेरकी गुठलीके बराबर गोलियाँ बनालेवे । प्रत्येकदिन प्रातःसमय एक गोली खाकर ऊपरसे काँजीको पीवे । यह क्षुधावती सर्वप्रकारके अजीर्णोंको नष्ट करती है तथा जठराग्निको दीपन और भस्मक रोगको दूर करती है एवं अम्लपित्त, शूल और परिणामशूल इन सबोंको शीघ्र शमन करती है सेवन करते समय मिष्टपदार्थ विशेषकर दूध खाँड इनको त्याग देवे ॥ ६१–६८ ॥

बृहत्क्षुधावतीगुटिका ।

गगनाद्द्विपलं चूर्ण लौहस्य पलमात्रकम् ।
लौहकिट्टपलार्द्धञ्च सर्वमेकत्र संस्थितम् ॥ ६९ ॥
मण्डूकपर्णीवशिरतालमूलीरसैस्तथा ।
भृङ्गवेरीकेशराजकालमारिषजैरथ ॥ ७० ॥
त्रिफला भद्रमुस्तात्रिःस्थालीपाकाद्विचूर्णितम् ।
रसगन्धकयोः कर्ष प्रत्येकं ग्राह्यमेकतः ॥ ७१ ॥
तन्मसृणशिलाखल्ले यत्नतः कज्जलीकृतम् ।
वचा चव्यं यमानी च जीरके शतपुष्पिका ॥ ७२ ॥
व्योषं मुस्तं विडङ्गञ्च ग्रन्थिकं खरमञ्जरी ।
त्रिवृता चित्रको दन्ती सूर्यावर्त्तः सितस्तथा ॥७३॥
भृङ्गमानककन्दाश्च घण्टकर्णक एव च ।
दण्डोत्पला केशराजकालीककर्कोटकोऽपि च ॥ ७४ ॥
एषामर्द्धपलं ग्राह्यं पटघृष्टं सुचूर्णितम् ।
प्रत्येकं त्रिफलायाश्च पलार्द्ध पलमेव च ॥ ७५ ॥
एतत्सर्वं समालोड्य लौहपात्रे च भावयेत् ।
आतपे दण्डसंघृष्टमार्द्रकस्य रसैस्त्रिधा ॥ ७६ ॥
तद्रसेन शिलापिष्टां गुडिकां कारयेद्भिषक् ।
बदरास्थिमितां शुष्कां सुनिगुप्तां निधापयेत् ॥ ७७ ॥

तत्प्रातर्भोजनादौ च सेवितं गुडिकात्रयम् ।
अम्लोदकानुपानन्तु हितं मधुरवर्जितम् ॥ ७८ ॥
दुग्धञ्च नारिकेलञ्च वर्जनीयं विशेषतः ।
भोज्यं यथेष्टमिष्टञ्च वारिभक्ताम्लकाञ्जिकम् ॥ ७९ ॥
हन्त्यम्लपित्तं विविधं शूलञ्च परिणामजम् ।
पाण्डुरोगञ्च गुल्मञ्च शोथोदरगुदामयान् ॥ ८० ॥
यक्ष्माणं पंचकासं च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
प्लीहानं श्वासमानाहमामवातं स्वरामयम् ॥
गुडी क्षुधावती सेयं विख्याता रोगनाशिनी ॥८१॥

अभ्रकभस्म ८ तोले, लोहभस्म ४ तोले और लोहेका मैल २ तोले इनको एकत्र मिलाकर मण्डूकपर्णी, सफेद हुलहुल और मुसली इनके मिलेहुए ३२ तोले रसके साथ प्रथम स्थालीपाक करे, फिर भाङ्गरा, शतावर, कालाभाँ-गरा, नाडीका शाक और मरसेका शाक, इनके ३२ तोले रसमें द्वितीय स्थालीपाक करे । पश्चात् त्रिफलेके काथ और नागरमोथेके मिलेहुए ३२ तोले रसमें तृतीय स्थालीपाक कर औषधिका चूर्ण करलेवे । तदनन्तर पारा और गन्धक इनको एक एक कर्ष लेकर यथाविधि एकत्र कज्जलीकर उपर्युक्त चूर्णमें मिलादेवे । फिर वच, चव्य, अजवायन, जीरा, कालाजीरा, सौंफ, सौंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, वायविडङ्ग, पीपलामूल, चिरचिटेकी जड, निसोत, चीता, दन्ती, सफेद हुलहुलकी जड, भाँगरा, मानकन्द, जिमी-कन्द, घण्टाकर्ण वृक्ष, दण्डोत्पल, कुकुरभाङ्गरा, पीलेचन्दनकी जड और काक-डासिंगी इन औषधियोंको अलग २ दो दो तोले लेकर सबोंको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण बनालेवे। हरड, बहेडा और आमलेका चूर्ण छः छः तोले; इन सबको एकत्रितकर लोहेके पात्रमें धूपमें रखकर अदरखके रसद्वारा तीन बार भावना देवे, फिर उक्त रसमेंही उत्तमप्रकार खरलकर बेरकी गुठलीके बराबर गोलियाँ बनाकर, सुखाकर शुद्धपात्रमें भरकर रखदेवे । इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल भोजन करनेसे पहले तीन २ गोलियाँ सेवन करे और ऊपरसे काँजीको पान करे । इसपर मिष्टपदार्थोंका भोजन, दूध और नारियलका जल सेवन करना त्यागदेना चाहिये। तथा चावलोंका जल, खट्टे पदार्थ और काँजी इनका यथेष्ट भोजन करे । यह गुटिका अनेकप्रकारके अम्लपित्त, शूल, परिणामशूल, पाण्डु, गुल्म, शोथ, उदर और गुदाके रोग, यक्ष्मा, ५ प्रका-रकी खाँसी, मन्दाग्नि, अरुचि, तिल्ली, श्वास, अफारा, आमवात और स्वर-

अङ्गप्रभृतिरोगोंको नष्ट करती है। इसको क्षुधावती गुटिका कहते हैं। यह सर्वप्रकारके रोगोंको नाश करनेवाली है ॥ ६९-८१ ॥

खण्डकूष्माण्डकावलेह ।

कूष्माण्डकरसो ग्राह्यः पलानां शतमात्रकम् ।
रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पलाष्टकम् ॥ ८२ ॥
धात्रीतुल्या सिता योज्या गव्यमाज्यं पलद्वयम् ।
मन्दाग्निना पचेत्सर्वं यावद्भवति पिण्डितम् ॥ ८३ ॥
पलार्द्धं पलमेकं वा प्रत्यहं भक्षयेदिदम् ।
खण्डकूष्माण्डकं ख्यातमम्लपित्तापहं परम् ॥ ८४ ॥

पेठेका रस १०० पल, गौका दूध १०० पल, आमलोंका चूर्ण ३२ तोले, मिश्री ३२ तोले और गौका घी ८ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे। जब पकते पकते गाढा होजाय तब उतारलेवे। इस अवलेहको प्रतिदिन प्रातःसमय दो दो तोले प्रमाण सेवन करे। यह खण्डकूष्माण्डनामक अवलेह अम्लपित्तको शीघ्र नष्ट करताहै ॥ ८२-८४ ॥

अम्लपित्तान्तकमोदक ।

नागरस्य कणायाश्च पलान्यष्टौ प्रदापयेत् ।
गुवाकस्य पलान्यष्टौ सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ ८५ ॥
घृतं क्षीरं ततः पश्चात् प्रस्थं प्रस्थं प्रदापयेत् ।
लवङ्गं केशरं कुष्ठं यमानी कारवी वचा ॥ ८६ ॥
चन्दनं मधुकं रास्ना देवदारु फलत्रिकम् ।
पत्रमेला वराङ्गश्च सैन्धवं हबुषं शठी ॥ ८७ ॥
मदनं कट्फलं मांसी गगनं वङ्गरूप्यकम् ।
तालीशं पद्मकं मूर्वा समङ्गा वंशलोचना ॥ ८८ ॥
ग्रन्थिकं शतपुष्पा च शतमूली कुरण्टकम् ।
जातीफलं जातिकोषं कक्कोलमम्बुदं कणा ॥ ८९ ॥
कर्पूरश्च विडङ्गश्च अजमोदा बलाऽमृता ।
मर्कटी क्षुरबीजश्च चन्दनं देवताडकम् ॥ ९० ॥
लौहं कांस्यं प्रदातव्यं कर्षमात्रं भिषग्विदा ।
अन्यत्सर्वं कर्षमात्रं कर्षार्द्धं स्वर्णभस्मकम् ॥ ९१ ॥

चतुर्धातुविधानेन मारितं ग्राहयेत्सुधीः।
अम्लपित्तान्तको ह्येष मोदको मुनिभाषितः॥ ९२॥
वान्तिं मूर्च्छाञ्च दाहञ्च कासं श्वासं भ्रमं तथा।
वातजं पित्तजञ्चैव कफजं सान्निपातिकम्॥ ९३॥
सर्वरोगं निहन्त्याशु प्रमेहं सूतिकागदम्।
शूलञ्च वह्निमान्द्यञ्च मूत्रकृच्छ्रं गलग्रहम्॥ ९४॥

सोंठ, पीपल और सुपारी इनका चूर्ण बत्तीस बत्तीस तोले, घी और दूध एक एक प्रस्थ, इन सबोंको एकत्र मिलाकर पकावे जब पकते पकते अवलेहकी समान गाढा होजाय तब उसमें लौंग, केशर, कूठ, अजवायन, कालाजीरा वच, लालचन्दन, मुलैठी, रायसन, देवदारु, त्रिफला, पत्रज, इलायची, दारचीनी, सैंधानमक, धनियाँ, कचूर, मैनफल, कायफल, वालछड, अभ्रकभस्म, वंगभस्म, रौप्यभस्म, तालीशपत्र, पद्माख, मूर्वा, वराहक्रान्ता, वंशलोचन, पीपलामूल, सोंफ, शतावर, पीलीकटसरैया, जायफल, जावित्री, शीतलचीनी, नागरमोथा, पीपल, कपूर, वायविडंग, अजमोद, खिरैंटी, गिलोय, कौंछके बीज, तालमखाना, सफेदचन्दन, देवताड लोहेकी भस्म और काँसेकी भस्म ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला और चतुर्धातुविधिसे जारितसुवर्णभस्म छः माशे; इन सबको एकत्र खूब बारीक पीसकर मिलादेवे, फिर करछीसे एकमएक करके मोदक बनालेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल उचित मात्रासे सेवन करनेपर यह अम्लपित्तान्तकमोदक वमन, मूर्च्छा, दाह, श्वास, खाँसी, भ्रम, वातज, पित्तज, कफज और सान्निपातज सर्वरोग, प्रमेह, सूतिकारोग, शूल, मन्दाग्नि, मूत्रकृच्छ्र, गलग्रह इत्यादि विकारोंको शीघ्र नष्ट करताहै॥

सौभाग्यशुण्ठीमोदक।

त्रिकटु त्रिफला भृङ्गजीरकद्वयधान्यकम्।
कुष्ठाजमोदा लौहाभ्रं शृङ्गी कट्फलमुस्तकम्॥ ९५॥
एला जातीफलं मांसी पत्रं तालीशकेशरम्।
गन्धमात्रा शठी यष्टिलवङ्गं रक्तचन्दनम्॥ ९६॥
एतानि समभागानि शुण्ठीचूर्णन्तु तत्समम्।
सिता द्विगुणिता तत्र गव्यक्षीरं चतुर्गुणम्॥ ९७॥
तोलप्रमाणं दातव्यं दुग्धेनापि जलेन वा।
अम्लपित्तं निहन्त्येतदरोचकनिषूदनम्॥ ९८॥

शूलहृद्रोगशमनं कण्ठदाहं नियच्छति ।
हृद्दाहश्च शिरःशूलं मन्दाग्नित्वं विनाशयेत् ॥ ९९ ॥
हृच्छूलं पार्श्वकुक्षिस्थवस्तिशूलं गुदे रुजम् ।
बलपुष्टिकरश्चैव वशीकरणमुत्तमम् ॥ १०० ॥
विशेषादम्लपित्तश्च मूत्रकृच्छ्रं ज्वरं भ्रमम् ।
निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करास्तिमिरं यथा ॥१०१॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, दारचीनी, जीरा, काला-जीरा, धनियाँ, कूठ अजमोद, लोहा, अभ्रक, काकडासिंगी, कायफल, नाग-रमोथा, इलायची, जायफल, बालछड, तेजपात, तालीसपत्र, नागकेशर, गन्ध-मात्रा (एक प्रकारका सुगन्धिद्रव्य), कचूर, मुलैठी, लौङ्ग और लालचन्दन इन औषधियोंके चूर्णको समानभाग और सब चूर्णके बराबरभाग सोंठका चूर्ण लेवे, फिर समस्त चूर्णसे दुगुनी मिश्री और गौका दूध सबसे चौगुना भाग लेकर सबोंको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक पाक करे। जब पाक पूर्ण होजाय तब एक एक तोलेके लड्डू बनालेवे। पश्चात् एक मोदक प्रतिदिन दूधके अथवा जलके साथ खानेसे अम्लपित्त, अरुचि, शूल, हृदयरोग, कण्ठदाह, हृदयकी दाह, शिरदर्द, मन्दाग्नि, हृदय, पसली, कुक्षि और वस्तिगत शूल, गुदाके रोग, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, भ्रमादि रोग विशेषकर अम्लपित्तरोग निश्चय नष्ट होते हैं। यह मोदक बल, पुष्टिकारक और उत्तम वशीकरण औषधि है ॥

सितामण्डूर ।

धमनविधिविशुद्धं गोजले सप्तवारान्
तरणिकिरणशुष्कं श्लक्ष्णमण्डूरचूर्णम् ।
विमलकवलमेकं पञ्चसंख्यं सितायाः
अनवघृतपलाष्टौ द्व्यष्टकं गव्यदुग्धम् ॥ २ ॥
मृदुदहनशिखाभिर्मन्दमन्दं कटाहे
विगतसलिलशेषं पाचयेत्पाकविज्ञः ।
वितरितगुडपाके किञ्चिदुष्णेऽवतीर्णे
दृषदि दृढमभीक्ष्णं चूर्णितं देयमाशु ॥ ३ ॥
त्रिकटुकमधुकैलायासवैडङ्गसारं
त्रिफलगदलवङ्गं कर्षमेकैकशश्च ।

तदनु शिशिरकाले द्वे पले माक्षिकस्य
तदनु पटनिघृष्टं गालितं संप्रदद्यात् ॥ ४ ॥
शुभतिथिदिवसादौ भोजनादौ निषेव्यं
प्रथमदिवसमेकं शाणमानं तदूर्ध्वम् ।
अहरहरनुवृद्धया यावदक्षं प्रयोज्यं
हिमकररुचिशीतं गव्यदुग्धञ्च पेयम् ॥ ५ ॥
नियतमयमसाध्यानम्लपित्तोत्थशूलान
वमिनिवहसदाहानाहमोहप्रमेहान् ।
विविधरुधिररोगान् पित्तयुक्तानशेषा-
नपहरति सिताख्यो दिव्यमण्डूरयोगः ॥ ६ ॥

चार तोले मण्डूरको धमनविधिसे सात बार गोमूत्रमें शुद्धकर तीक्ष्ण धूपमें सुखाकर चूर्ण करलेवे। फिर मिश्री २० तोले, पुराना घी ३२ तोले और गौका दूध ६४ तोले, इन सबको कढाईमें डालकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब पकते पकते गुडके पाकके समान गाढा पडजाय तब नीचे उतारकर उस मन्दोष्ण पाकमें सोंठ, मिरच, पीपल, मुलैठी, इलायची, जवासा, वायविडङ्ग, त्रिफला, कूठ और लौङ्ग इनको एक एक तोला लेकर पत्थरपर खूब बारीक पीसकर मिलादेवे। जब शीतल होजाय तब इसको ८ तोले शहदको कपडेमें छानकर उसीमें मिलाकर शुभतिथि और शुभदिनमें भोजन करनेसे पहले सेवन करे। इसको प्रथम दिन ४ माशे और पश्चात् प्रतिदिन मात्राकी वृद्धि करतेहुए दो तोलेतक सेवन करे और ऊपरसे शीतल गोदुग्ध पान करे। यह दिव्य-मण्डूर निरन्तर सेवन करनेपर असाध्य अम्लपित्त, तज्जन्य शूल, वमन, निवाही, दाह, आनाह, मोह, प्रमेह, अनेक प्रकारके रुधिरविकार और पित्तजनित सम्पूर्णरोगोंको तत्काल नष्ट करता है। इसको सीतामण्डूर कहते हैं ॥१०२-६

शुण्ठीखण्ड।

शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं खण्डप्रस्थं समाचरेत्।
दत्त्वा द्विकुडवं सर्पिः क्षीरप्रस्थद्वये पचेत् ॥ १०७ ॥
लेह्येऽवतारिते दद्याद्धात्रीधान्यकमुस्तकम्।
अजाजी पिप्पली वांशी त्रिजातं कारवी शिवा १०८
त्रिशाणं मरिचं नागं षण्माषन्तु पृथक् पृथक्।
पलत्रयञ्च मधुना शीतीभूते प्रदापयेत् ॥ १०९ ॥

ततो मात्रां प्रयुञ्जीत अम्लपित्तनिवृत्तये ।
शूलहृद्रोगवमनैरामवातैश्च पीडितः ॥ ११० ॥

सोंठका चूर्ण १६ तोले, खाँड ६४ तोले, घी ३२ तोले और दूध १२८ तोले इन सबको एकत्रकर विधिपूर्वक पकावे । जब पकते पकते लेहके समान होजाय तब चूल्हेसे उतारकर उसमें आमले, धनियाँ, नागरमोथा, जीरा, पीपल, वंशलोचन, दारचीनी, इलायची, तेजपात, कालाजीरा और हरड ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला एवं कालीमिरच और नागकेशर इनको छः छः मासे लेकर खूब महीन पीसकर डालदेवे और पाकके शीतल होजानेपर १२ तोले शहद डालकर सबको अच्छेप्रकार मिलादेवे । इसकी प्रतिदिन युक्तियुक्त मात्राको सेवन करनेसे अम्लपित्त,शूल,हृदयरोग,वमन आमवातरोग जाताहै ॥

पिप्पलीखण्ड ।

कणाचूर्णस्य कुडवं षट्पलं हविषस्तथा ।
शतावरीरसस्याष्टौ पलान्यत्र प्रदापयेत् ॥ १११ ॥
खण्डप्रस्थं समादाय क्षीरप्रस्थद्वये पचेत् ।
त्रिजातमुस्तधन्याकशुण्ठीवांशी द्विजीरकम् ॥ १२ ॥
अभयामलकञ्चैव चूर्णं द्वादशमाषकम् ।
तदर्द्धं मरिचं नागं सारं खदिरमेव च ॥ १३ ॥
पलत्रयञ्च मधुनः शीतीभूते प्रदापयेत् ।
ततो मात्रां प्रयुञ्जीत अम्लपित्तनिवृत्तये ॥ १४ ॥
शूलारोचकहृल्लासच्छर्दिपित्ताम्लशूलनुत् ।
अग्निसन्दीपनो हृद्यः खण्डपिप्पलिको मतः ॥ १५ ॥

पीपलका चूर्ण १६ तोले, घी २४ तोले, शतावरका रस ३२ तोले, खाँड ६४ तोले और दूध १२८ तोले लेकर सबको एकत्र पकावे । जब पाक सिद्ध होजाय तब दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागरमोथा, धनियाँ, सोंठ, वंशलोचन, जीरा, कालाजीरा, हरड, आमले इनका चूर्ण एक एक तोला, मिरच, नागकेशर और खैरसार ये छः छः मासे इन सबको एकत्र कूटपीसकर डालदेवे, एवं शीतल होनेपर १२ तोले शहद मिलादेवे । फिर अम्लपित्तकी निवृत्तिके लिये इसको उचितमात्रासे सेवनकरे । इससे शूल, अरुचि, हृल्लास, वमन और अम्लपित्त, शूलरोग नष्ट होते हैं । यह पिप्पलीखण्ड जठराग्निको दीपन करनेवाला और हृदयको हितकारी है ॥ १११–१५ ॥

बृहत्पिप्पलीखण्ड ।

पिप्पल्याः कुडवं चूर्ण घृतस्य कुडवद्वयम् ।
पलषोडशिकं खण्डाद्रसे वर्य्याः पलाष्टके ॥ १६ ॥
पलषोडशिके चैव आमलक्या रसस्य च ।
क्षीरप्रस्थद्वये साध्यं लेहीभूते ततः क्षिपेत् ॥ १७ ॥
त्रिजातकामयाजाजी धन्याकं मुस्तकं शुभा ।
धात्री च कार्षिकं चूर्ण कर्षार्द्धञ्चापि जीरकम् ॥ १८ ॥
कुष्ठं नागरकं नागं सिद्धशीतेऽवचूर्णितम् ।
जातीफलं समरिचं मधुनश्च पलद्वयम् ॥ १९ ॥
उपयुञ्ज्यात्ततो धीमानम्लपित्तनिवृत्तये ।
हृल्लासारोचकच्छर्दिश्वासकासक्षयापहम् ॥
अग्निसन्दीपनं हृद्यं पिप्पलीखण्डसंज्ञितम् ॥ १२० ॥

पीपलका चूर्ण १६ तोले, घी ३२ तोले, चीनी ६४ तोले, शतावरका रस ३२ तोले और आमलोंका रस ६४ तोले इनको दो प्रस्थ गोदुग्धमें उत्तमप्रकार पकावे। जब पाक पकते पकते लेहके समान होजाय तब उसमें त्रिजातक, हरड, कालाजीरा, धनियाँ, नागरमोथा, वंशलोचन और आमले इनका चूर्ण एक एक तोला एवं जीरा, कूठ, सोंठ, नागकेशर, जायफल और मिरच इनको छः छः माशे लेकर सबोंको एकत्र बारीक पीसकर डालदेवे और शीतल होनेपर ८ तोले मधु डालकर सबको एकमएक करलेवे। तदुपरान्त बुद्धिमान् पुरुष अम्लपित्तरोगकी शान्तिके लिये अग्निका बलाबल विचारकर इसकी उपयुक्त मात्रासे सेवनकरे। इसके सेवनसे उबकाई आना, अरुचि, वमन, श्वास, खाँसी, क्षयप्रभृतिविकार दूर होते हैं। यह बृहत्पिप्पलीनामकखण्डअत्यन्त अग्निदीपक और हृदयको हितकारी है ॥ १६-१२० ॥

जीरकाद्यघृत ।

पिष्ट्वाजाजीं सधन्याकं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
कफपित्तारुचिहरं मन्दानलवमिं जयेत् ॥ २१ ॥

घी एक प्रस्थ, कल्कके लिये कालाजीरा और धनियाँ इनको पीसकर कल्क करलेवे फिर इस कल्कके द्वारा विधिपूर्वक घृतको पकावे। यह जीरकाद्यघृत कफ, पित्त, अरुचि, मन्दाग्नि और वमनको दूर करता है ॥ २१ ॥

शतावरीघृत।

शतावरीमूलकल्कं घृतप्रस्थं पयः समम्।
पचेन्मृद्वग्निना सम्यक् क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ २२ ॥
नाशयेदम्लपित्तञ्च वातपित्तोद्भवान् गदान्।
रक्तपित्तं तृषां मूर्च्छां श्वासं सन्तापमेव च ॥ २३ ॥

शतावरकी जडका कल्क चार प्रस्थ, घी एक प्रस्थ और दूध चार प्रस्थ सबोंको मिलाकर यथाविधिसे मन्दमन्द अग्निद्वारा घृतको सिद्धकरे। यह घृत अम्लपित्त, वात और पित्तसे उत्पन्नरोग, रक्तपित्त, प्यास, मूर्च्छा, श्वास और सन्तापको हरता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

नारायणघृत।

जलैर्दशगुणैः क्वाथ्यं पिप्पलीपलषोडश।
पादशेषं हरेत्क्वाथं क्वाथ्यतुल्यं घृतं पचेत् ॥ २४ ॥
रसप्रस्थं गुडूच्याश्च धात्र्याः षष्टिपलं रसम्।
द्राक्षा धात्री पटोलश्च विश्वश्च कटुका वचा ॥ २५ ॥
पलप्रमाणं कल्कश्च दत्त्वा सर्पिः समुद्धरेत्।
अम्लपित्तहरं ख्यातं दाहच्छर्दिनिवारणम् ॥
असाध्यं साधयेत्सद्यो नाम्ना नारायणं घृतम् ॥२६ ॥

६४ तोले पीपलोंको दसगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस क्वाथकी बराबर घृत, गिलोयका रस १ प्रस्थ, आमलोंका रस ६० पल एवं दाख, आँवले, परबल, सोंठ, कुटकी और वच इन सबका चार २ तोले कल्क लेकर एकत्रित करके उत्तम विधिसे घृतको सिद्धकरे। इस घृतको सेवन करनेसे अम्लपित्त, दाह और वमन होना दूर होती है। यह नारायणनामवाला घृत असाध्यरोगको भी तत्काल नष्ट करता है ॥ २४–२६ ॥

अम्लपित्तरोगमें पथ्य।

ऊर्ध्वगे वमनं पूर्वमधोगे तु विरेचनम्।
सर्वत्र शस्यते पश्चान्निरूहश्चापि शालयः ॥ २७ ॥
यवगोधूममुद्गाश्च पुराणो जाङ्गलो रसः।
जलानि तप्तशीतानि शर्करामधुसक्तवः ॥ २८ ॥

कर्कोटकं कारवेल्लं पटोलं हिलमोचिका ।
वेत्राग्रं वृद्धकूष्माण्डं रम्भापुष्पञ्च वास्तुकम् ॥ २९ ॥
कपित्थं दाडिमं धात्री तिक्तानि सकलानि च ।
अम्लपित्तामये नित्यं सेवितव्यानि मानवैः ॥१३०॥

ऊर्ध्वगतअम्लपित्तरोगमें प्रथम वमन और अधोगतअम्लपित्तमें विरेचन कराकर पश्चात् दोनों प्रकारके अम्लपित्तमें निरूहवस्तिका प्रयोग करना चाहिये । पुराने शालिचावल जौ गेहूँ मूँग जाङ्गलजातप्राणियोंका मांसरस औटाकर शीतल कियाहुआ जल खाँड और शहद मिलेहुए सत्तू बेल करेला परबल हुलहुलका शाक बेंतकी कोंपल पकापेठा केलेका मोचा बथुआ कैथ अनार आमले और सर्व प्रकारके तिक्तरसयुक्त पदार्थ; ये सब अम्लपित्तरोगमें प्रतिदिन सेवनकरने चाहिये ॥२७-१३० ॥

अम्लपित्तरोगमें अपथ्य ।

नवान्नानि विरुद्धानि कफपित्तकराणि च ।
वमिवेगं तिलान्माषान् कुलत्थांस्तैलभक्षणम् ॥ ३१ ॥
अविदुग्धञ्च धान्याम्लं लवणाम्लकटूनि च ।
गुर्वन्नं दधि मद्यञ्च वर्जयेदम्लपित्तवान् ॥ १३२ ॥

अम्लपित्तवाला रोगी नवीनअन्न स्वभावविरुद्ध और कफ पित्तकारक द्रव्यों-का भोजन वमनादिके वेगको रोकना तिल उडद कुलथी तेल भेंडका दूध काँजी नमकीनद्रव्य खट्टे चरपरे और गुरुपाकी द्रव्य दही और मद्य इन सब पदार्थोंको तत्काल छोडदेवे ॥ ३१-१३२ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां अम्लपित्तचिकित्सा ॥

विसर्पकी चिकित्सा ।

विरेकवमनालेपसेचनासृग्विमोक्षणैः ।
उपाचरेद्यथादोषं विसर्पानविदाहिभिः ॥ १ ॥

विसर्परोगमें विरेचन, वमन, प्रलेप, सेचन, रक्तमोक्षण और जो दाहकारक न हों ऐसे उपचार दोषानुसार प्रयोग करने चाहिये ॥ १ ॥

पटोलपिचुमन्दाभ्यां पिप्पल्या मदनेन च ।
विसर्पे वमनं शस्तं तथैवेन्द्रयवैः सह ॥ २ ॥

पटोलपत्र और नीमकी छालके काथके साथ पीपल और मैनफलका चूर्ण तथा इन्द्रजौका चूर्ण मिलाकर विसर्परोगमें वमन होनेके लिये देवे ॥ २ ॥

त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिस्त्रिवृतया सह ।
प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं विसर्पज्वरशान्तये ॥
रसमामलकानां वा घृतमिश्रं प्रदापयेत् ॥ ३ ॥

विसर्पज्वरकी निवृत्तिके लिये त्रिफलेके काथमें घी और निसोतका चूर्ण डालकर विरेचनार्थ प्रदानकरे । अथवा आमलोंके स्वरसमें घी डालकर देवे तो इससे दस्त होकर विसर्परोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

मुस्तारिष्टपटोलानां क्काथः सर्वविसर्पनुत ।
धात्रीपटोलमुद्गानामथवा घृतसंप्लुतम् ॥ ४ ॥

नागरमोथा, नीमकी छाल और पटोलपातका काथ अथवा आमले, परबल और मूँग इनका काथ घृत मिलाकर सेवन करनेसे विसर्प रोग जाय ॥५॥

अमृतादि ।

अमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं खदिरमसितवेत्रं निम्बपत्रं हरिद्रे । विविधविधविसर्पान् कुष्ठविस्फोटकण्डूरपनयति मसूरीं शीतपित्तं ज्वरञ्च ॥ ५ ॥

गिलोय, अडूसा, पटोलपत्र, नागरमोथा, सतवन, खैर, सारिवा, नीमके पत्ते, हल्दी और दारुहल्दी इनका विधिपूर्वक काथ बनाकर पान करनेसे नानाप्रकारके विसर्परोग, कोढ, विस्फोटक, खुजली, मसूरी, शीतपित्त और ज्वर इत्यादि रोग दूर होते हैं ॥ ५ ॥

नवकषाय-गुग्गुलु ।

अमृतवृषपटोलं निम्बवल्कैरुपेतं त्रिफलखदिरसारं व्याधिघातश्च तुल्यम् । कथितमिदमशेषं गुग्गुलोर्भागयुक्तं जयति विषविसर्पान्कुष्ठमष्टादशाख्यम् ॥ ६ ॥

गिलोय, अडूसेकी छाल, परबल, नीमकी छाल, हरड, बहेडा, आमला, खैरसार और अमलतासका गूदा इनको समानभाग लेकर काथ बनावे । उस काथमें एक तोला शुद्ध गूगल डालकर पानकरे तो यह काथ विषजन्य विसर्प, १८ प्रकारके कोढ तथा अन्यसमस्त विकारोंको शीघ्र जीतताहै ॥ ६ ॥

कालाग्निरुद्ररस ।

सूताभ्रकान्तलौहानां भस्म गन्धकमाक्षिकम् ।

वन्यकर्कोटकद्रावैस्तुल्यं मर्द्यं दिनावधि ॥ ७ ॥
वन्यकर्कोटिकाकन्दे क्षिप्त्वा लिप्त्वा मृदा बहिः ।
भूधराख्ये पुटे पश्चाद्दिनैकं तद्विपाचयेत् ॥ ८ ॥
दशमांशं विषं योज्यं माषमात्रन्तु भक्षयेत ।
रसः कालाग्निरुद्रोऽयं दशाहेन विसर्पनुत ॥
पिप्पलीमधुसंयुक्तमनुपानं प्रकल्पयेत् ॥ ९ ॥

शुद्धपारा, अभ्रक, कान्तलोहभस्म, शुद्धगन्धक और सोनामाखी इनको समानभाग लेकर वनककोडेके रसमें एक दिनतक खरलकर वनककोडेके कन्दमें रक्खे और ऊपर मिट्टीसे लेसकर भूधरयन्त्रमें एक दिनतक पुटपाक करे। जब पककर शीतल होजाय तब सम्पूर्ण औषधिके दशमभागकी बराबर विष मिलाकर एकत्र पीसलेवे। फिर प्रतिदिन प्रातःकाल इसको एक मासा प्रमाण लेकर पीपलके चूर्ण और शहदमें मिलाकर भक्षण करे तो यह कालाग्निरुद्ररस दस दिनमें ही विसर्परोगको नष्ट करता है ॥ ७--९ ॥

वृषाद्यघृत ।

वृषखदिरपटोलपत्रनिम्बत्वगमृतामलकीकषायकल्कैः ।
घृतमभिनवमेतदाशु पक्वं जयति विसर्पगदान्सकुष्ठगुल्मान्

अडूसा, खैर, पटोलपात, नीमकी छाल, गिलोय और आमले इनके क्वाथ और कल्कके साथ शुद्ध और नवीन गोघृतको विधिपूर्वक पकावे। यह घृत विसर्प, कुष्ठ और गुल्मरोगको तत्काल शान्त करता है ॥ १० ॥

करञ्जतैल ।

करञ्जसप्तच्छदलाङ्गलीकस्नुह्यर्कदुग्धानलभृङ्गराजैः ।
तैलं निशामूत्रविषैर्विपक्वं विसर्पविस्फोटविचर्चिकाघ्नम् ॥ ११

करंजुआ, सतोना, कलिहारी, थूहरका दूध, आकका दूध, चीतेकी जड और भाँगरा इनके क्वाथमें हल्दीका कल्क, गोमूत्र और विष डालकर तिलके तेलको पकावे।यह तेल विसर्प विस्फोटक और विचार्चिका रोगको नष्ट करता है ॥ ११

विसर्परोगमें पथ्य ।

विरेको वमनं लेपो लंघनं रक्तमोक्षणम् ।
पुराणो यवगोधूमकङ्गुषाष्टिकशालयः ॥ १२ ॥
मुद्गा मसूराश्चणकास्तुवर्यो जाङ्गलो रसः ।
नवनीतं घृतं द्राक्षा दाडिमं कारवेल्लकम् ॥ १३ ॥

वेत्राग्रं कुलकं धात्री खदिरो नागकेशरः।
लाक्षा शिरीषः कर्पूरं चन्दनं तिललेपनम् ॥ १४ ॥
ह्रीबेरकं मुस्तकं च तिक्तानि सकलानि च।
यथादोषमिदं पथ्यं सेवितव्यं विसर्पिभिः ॥ १५ ॥

विरेचन वमन लेप लंघन और रक्तमोक्षण करना पुराने जौ गेहूँ मालकाङ्गनी साँठी और शालिके चावल, मूँग मसूर चने अडहर जंगली जीवोंका मांसरस नैनी घी दाख अनार करेला बेंतके अंकुर पटोलपत्र आमले खैर नागकेशर लाख सिरस कपूर चन्दन शरीरपर तेलकी मालिश सुगन्धवाला नागरमोथा और कडवे पदार्थ ये सब दोषानुसार सेवन करनेसे विसर्प रोगियोंको हितकारी हैं ॥ १२–१५ ॥

विसर्परोगमें अपथ्य।

व्यायाममह्नि शयनं सुरतं प्रवातं क्रोधं शुचं वमनवेगमसूयनञ्च। शाकं विरुद्धमशनं दधि कूर्चिकाञ्च सौवीरमासवमनेकविधं किलाटम् ॥ १६ ॥ गुर्वन्नपानमखिलं लशुनं कुलत्थान् माषांस्तिलान्सकलमांसमजाङ्गलं च। स्वेदं विदाहि लवणाम्लकटूनि मद्यान्यर्कप्रभामपि विसर्पगदी त्यजेत्तु ॥ १७ ॥

कसरतकरना दिनमें सोना स्त्रीप्रसङ्ग प्रबलवायु या पुर्वाई हवाका सेवन क्रोध शोक करना वमनके वेगको रोकना ईर्ष्या करना शाक विरुद्ध भोजन दही कूचिका (जो पदार्थ दही और दूधको औटाकर बनाये जाते हैं) काँजी अनेक प्रकारके आसव किलाट (फटे दूधका मावा) सर्वप्रकारके गुरुपाकी अन्न और पानीयद्रव्य लहसुन कुलथी उडद तिल जङ्गलीजीवोंके मांसके अतिरिक्त अन्य सर्वप्रकारके मांस स्वेद लानेवाले दाहकारक द्रव्य लवण खटाई और कडवे द्रव्य मदिरा तथा धूप इनको विसर्परोगी शीघ्र त्याग देवे ॥१६॥१७ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां विसर्पचिकित्सा।

विस्फोट-चिकित्सा।

विस्फोटे लंघनं कार्यं वमनं पथ्यभोजनम्।
यथादोषबलं वीक्ष्य युक्तियुक्तं विरेचनम् ॥ १ ॥

विस्फोटरोगमें दोषोंका बलाबल विचारकर लंघन वमन पथ्यभोजन और विरेचन कराना युक्तियुक्त कहा है ॥ १ ॥

पटोलामृतभूनिम्बवासकारिष्टपर्पटैः ।
खदिराब्दयुतैः क्वाथो विस्फोटार्त्तिज्वरापहः ॥ २ ॥

पटोलपत्र, गिलोय, चिरायता, अडूसेकी छाल, नीमकी छाल, पित्तपापडा, खैर और नागरमोथा इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे विस्फोट (एक प्रकारका विषैलाफोडा) की पीडा और ज्वर दूर होता है ॥ २ ॥

पटोलत्रिफलारिष्टगुडूचीमुस्तचन्दनैः ।
समूर्वारोहिणी पाठा रजनी सदुरालभा ॥ ३॥
कषायं पाययेदेतच्छ्लेष्मपित्तज्वरापहम् ।
कण्डूत्वग्दोषविस्फोटविषवीसर्पनाशनम् ॥ ४ ॥

परबल, त्रिफला, नीमकी छाल, गिलोय, नागरमोथा, लालचन्दन, मूर्वा, कुटकी, पाढ, हल्दी और धमासा इनका क्वाथ बनाकर पान करावे तो यह क्वाथ कफपित्तजन्य ज्वर, खुजली, त्वचाके विकार, विस्फोट और विसर्प रोगको नष्ट करता है ॥ ३-४ ॥

व्रणारिगुग्गुलु ।

पलं कृष्णापुरः पञ्च त्रिफला त्रिपलं भवेत् ।
भस्मसूतपलश्चास्य कर्षः सर्वव्रणापहः ॥ ५ ॥

पीपल ४ तोले गूगल २० तोले हरड बहेडा आमला प्रत्येक चार २ तोले और रससिन्दूर ४ तोले इन सबोंको एकत्रकर उत्तमप्रकार खरल करलेवे । इसको उपयुक्त मात्रासे सेवनकरे तो यह सर्वप्रकारके व्रणोंको दूर करता है ॥५

पञ्चतिक्तकघृत ।

पटोलसप्तच्छदनिम्बवासफलात्रिकाच्छिन्नरुहाविपकम् ।
तत्पंचातिक्तं घृतमाशु हन्ति त्रिदोषविस्फोटविसर्पकण्डूः॥६॥

पटोलपत्र, सतौना, निम्बछाल, अडूसा और गिलोय इनके क्वाथ तथा त्रिफलाके कल्कद्वारा यथाविधि घृतको पकावे। यह पञ्चतिक्तघृत यथानियम पान करे तो यह त्रिदोषोत्पन्न विसर्प, विस्फोट और खुजलीको तत्काल नाश करताहै॥६

विस्फोटरोगमें पथ्य ।

विरेचनच्छर्दनलेपलङ्घनं पुरातनाः षष्टिकशालयो यवाः । मुद्गा मसूराश्चणका मुकुष्टका धन्वामिषं गव्य घृतं कठिल्लकम्॥७॥वेत्राग्रमाषाढफलं पटोलकं ज्योति-

ष्मती निम्बदलानि चन्दनम्। तैलं सिताभ्रं तिल-
लेपनं घनं बालं च विस्फोटगदं विनाशयेत् ॥ ८ ॥

जुल्लाब देना, वमन कराना, लेप करना, लंघन, पुराने साँठी और शालिके चावल, जौ, मूँग, मसूर, चने, मोठ, मरुदेशजन्य जीवोंका मांसरस, गौका घी, करेला, बेंतकी कोंपल, ढाकके बीज, परबल, मालकांगनी, नीमके पत्ते, लालचन्दन, तेल, कपूर, तेलकी मालिश, नागरमोथा और सुगन्धवाला ये सब पदार्थ विस्फोटरोगको नष्ट करनेवाले हैं इसलिये उक्तरोगीको ये सब सेवन करने चाहिये ॥ ७ ॥ ८ ॥

विस्फोटरोगमें अपथ्य।

स्वेदं व्यवायं व्यायामं क्रोधं गुर्वन्नमातपम्।
वमिवेगं पत्रशाकं प्रवातं स्वपनं दिवा ॥ ९ ॥
ग्राम्यौदकानूपमांसं विरुद्धान्यशनानि च।
तिलान्यवान्कुलत्थांश्च लवणाम्लकटूनि च ॥
विदाहि रूक्षमुष्णं च विस्फोटी परिवर्जयेत् ॥ १० ॥

पसीना निकलवाना, मैथुन, कसरत और क्रोधकरना, दुष्पाच्य अन्न, धूपका सेवन, वमनके वेगका रोध, पत्तोंवाले शाक, अत्यन्ततीक्ष्ण वायुका सेवन, दिनको सोना, ग्रामीण जीव, जलचर और अनूपदेशके प्राणियोंका मांस, विरुद्ध खान पान, तिल, जौ, कुलथी, नमक, खट्टे और चरपरे, दाहकारी, रूखे और गरम ये सब पदार्थ विस्फोटवाला रोगी बहुत शीघ्र छोड देवे॥१०

इति भैषज्यरत्नावल्यां विस्फोटचिकित्सा ॥

मसूरिकाकी चिकित्सा।

चैत्रासितभूतादिने रक्तपताकान्वितास्नुहिभवेन।
धवलितकलशे न्यस्ता पापरोगं दूरतो धत्ते ॥ १ ॥

चैत्रमासके कृष्णपक्षका चतुर्दशीके दिन शुभ्रवर्णवाले कलसेके ऊपर लाल-रंगके वस्त्रसे बनाई हुई थूहरके वृक्षकी शाखाकी पताका स्थापन करनेसे मसूरिका (वसन्त) रोग दूर भाग जाताहै ॥ १ ॥

नारीणां वामपार्श्वस्थं नराणामपसव्यगम्।
पापरोगचयं दूरात् शिवास्थि विनिवारयेत् ॥ २ ॥

स्त्रियोंकी बाईं पसलीमें और पुरुषोंके दहिनी पसलीपर हरडका बीज (किसीके मतमें गीदडकी हड्डी) धारण करनेसे पापरोग समूह जाता रहताहै॥

ज्वरे जाते स्पृशेन्नाम्बु तिष्ठेन्निर्वातवेश्मनि ।
म्रक्षयेद्विजयाचूर्णैर्गात्रं वस्त्रेण बन्धयेत् ॥ ३ ॥

मसूरिकारोगमें ज्वर उत्पन्न होनेपर जलका स्पर्श न करे और वातरहित स्थानमें निवास करे । भाँगके चूर्णको शरीरमें मलकर वस्त्रसे ढकदेवे ॥ ३ ॥

रुद्राक्षं मरिचैर्युक्तं पीतं पर्युषिताम्भसा ।
त्र्यहात्पापरुजं हन्ति दृष्टं वारसहस्रशः ॥ ४ ॥

रुद्राक्ष और कालीमिरचके चूर्णको बासीजलके साथ पान करनेसे तिन दिनमेंही पापरोग (मसूरिका) नष्ट होता है । यह हजारों बार अनुभव कर देखागया है ॥ ४ ॥

सर्वासां वमनं पथ्यं पटोलारिष्टवत्सकैः ।
कषायैश्च वचावत्सयष्ट्याह्वफलकल्कितैः ॥ ५ ॥

सर्वप्रकारकी मसूरिकामें पटोलपात, नीमके पत्ते और इन्द्रजौ इनके क्वाथमें वच, इन्द्रजौ, मुलैठी और मैनफलका चूर्ण डालकर वमन कराना हितकर है ५॥

सक्षौद्रं पाययेद्ब्राह्म्या रसं वा हैलमोचिकम् ।
वान्तस्य रेचनं देयं शमनञ्चाबले नरे ॥ ६ ॥

ब्राह्मीके रस अथवा हुलहुलके रसमें शहद मिलाकर पान कराकर वमन करावे, पश्चात् विरेचन करावे।किन्तु दुर्बलरोगीको शमनकारक औषधि देना६॥

सुषवीपत्रनिर्यासं हरिद्राचूर्णसंयुतम् ।
रोमान्तीज्वरविस्फोटमसूरीशान्तये पिबेत ॥ ७ ॥

करेलेके पत्तोंके स्वरसमें हलदीका चूर्ण डालकर पान करे तो रोमान्ती (जिससे रोम खडे होजायँ) ज्वर, विस्फोट और मसूरिकारोग शान्त होते हैं ७

उष्ट्रकण्टकमूलं वाप्यनन्तमूलमेव वा ।
विधिगृहीतं ज्येष्ठाम्बु पीतं हन्ति मसूरिकाम् ॥ ८ ॥

ऊँटकटेलीकी जड अथवा अनन्तमूलको चावलोंके जलमें पीसकर पान-करनेसे मसूरिकारोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

तद्वच्छृगालकण्टकमूलञ्च व्युषिताम्भसा ।
निशाचिञ्चाच्छदे शीतवारिपीते तथैव च ॥
व्युषिताम्बुना मरिचं पिबेत्पीतकपर्दकम् ॥ ९ ॥

शृगालकटेरीकी जडको बासीपानीके साथ पीसकर अथवा हल्दी और इमलीके पत्तोंको शीतलजलमें पीसकर किम्वा कालीमिरच और पीली कौडीके चूर्णको बासी जलके साथ पान करनेसे मसूरिका रोग दूर होता है ॥ ९ ॥

यावत्संख्या मसूर्यङ्गे तावद्भिः शेलुजैर्दलैः ।
छिन्नैरातुरनाम्ना तु गुडिकेति न वर्द्धते ॥ १० ॥

रोगीके शरीरपर मसूरिकाके जितने दाने हों उतने ही लिसौडेके पत्ते लावे रोगीके नामके अक्षरोंकी संख्याके अनुसार उनमेंसे प्रत्येकके उतनेही टुकडे करलेवे । इस प्रकार करनेसे मसूरिकाकी संख्या वृद्धिगत नहीं होती ॥ १० ॥

व्युषित्तं वारि सक्षौद्रं पीतं दाहगुडीहरम् ॥ ११ ॥

बासीजल और शहद एकत्र मिलाकर पीनेसे मसूरिकाकी दाह और गूमडियें दूर होती हैं ॥ ११ ॥

तर्पणं वातजायां प्राक् लाजचूर्णैः सशर्करैः ।
भोजनं तिक्तयूषैश्च प्रतुदानां रसेन वा ॥ १२ ॥

वातजमसूरिकामें प्रथम खीलोंके चूर्णमें खाँड मिलाकर तृप्तिके लिये देवे । तथा कडवेद्रव्योंके यूष और प्रतुद (जो पृथ्वी खुरच खुरच कर या चोंचोंसे वितारितकर खाते हैं) पक्षियोंके मांसरसके साथ भोजन करावे ॥ १२ ॥

सौवीरेण तु संपिष्टं मातुलुङ्गस्य केशरम् ।
प्रलेपात्पातयन्त्याशु दाहश्चाशु नियच्छति ॥ १३ ॥

बिजौरेनींबूकी केशरको काँजीमें पीसकर लेपकरनेसे मसूरिकारोग और उसकी दाह शीघ्र नष्ट होती है ॥ १३ ॥

पाददाहं प्रकुरुते पिडका पादसम्भवा ।
तत्र सेकं प्रशंसन्ति बहुशस्तण्डुलाम्बुना ॥ १४ ॥

पैरोंमें मसूरिकाकी गूमडियें उत्पन्न होनेसे पैरोंमें दाह होती है । उसको दूर करनेके लिये चावलोंके पानीसे बारबार सेंकना चाहिये ॥ १४ ॥

पाककाले तु सर्वास्ता विशोषयति मारुतः ।
तस्मात्संबृंहणं कार्यं न तु पथ्यं विशोषणम् ॥ १५ ॥

मसूरिकाके पकनेके समय वायु उसकी गूमडियोंको सुखा देता है । उस समय वायु शमन करनेके लिये रोगीको पौष्टिक आहार देवे । पथ्यद्रव्य और शोषण क्रिया नहीं करे ॥ १५ ॥

गुडूचीं मधुकं द्राक्षां मोरटं दाडिमैः सह ।
पाककाले तु दातव्यं भेषजं गुडसंयुतम् ॥
तेन पाकं व्रजत्याशु न च वायुः प्रकुप्यति ॥ १६ ॥

मसूरिकाके पकते समय गिलोय, मुलैठी, दाख, ईखकी जड और अनारदाना इन औषधियोंके काथमें गुड डालकर पान करावे । इससे मसूरिका शीघ्र पकजाती है और वायु कुपित नहीं होता ॥ १६ ॥

लिहेद्वा बादरं चूर्णं पाचनार्थं गुडेन तु ।
अनेनाशु विपच्यन्ते वातपित्तकफात्मिकाः ॥ १७ ॥

बेरकी गुठलीकी मींगके चूर्णको गुडके साथ मिलाकर पाचनके लिये भक्षण करे । इससे त्रिदोषजनित मसूरिका बहुत जल्द पकती है ॥ १७ ॥

शूलाध्मानपरीतस्य कम्पमानस्य वायुना ।
धन्वमांसरसाः शस्ता ईषत्सैन्धवसंयुताः ॥ १८ ॥

यदि वायुके कुपित होनेके कारण शूल, उदरमें अफारा और कम्प हो तो रोगीको कुछ थोडासा सैंधानमक डालकर मरुदेशके पशु पक्षियोंका मांसरस भोजन करावे ॥ १८ ॥

पिबेदम्भस्तप्तशीतं भावितं खदिराशनैः ।
शौचे वारि प्रयुञ्जीत गायत्री बहुबारजम् ॥ १९ ॥

खैर १ तोला और विजयसार१तोला इन दोनोंको २सेर जलमें औटावे। जब औटते औटते एक सेर जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर शीतलकर प्यास लगनेपर इस जलको पीवे शौचकेलिये खैर तथा कीकडके पत्तोंके द्वारा उल्लिखित विधिके अनुसार जल पकाकर शीतल करके प्रयागे करे॥१९॥

जातीपत्रं समञ्जिष्ठं दार्वी पूगफलं शमी ।
धात्रीफलं समधुकं क्वथितं मधुसंयुतम् ॥
मुखरोगे कण्ठरोगे गण्डूषार्थं प्रशस्यते ॥ २० ॥

जायफल, मञ्जीठ, दारुहल्दी, सुपारी, सेमलकी छाल, आमले और मुलैठी इनके काथमें शहद डालकर मुखरोग और कण्ठरोगमें गण्डूष धारण करे॥२०॥

अक्ष्णोः सेकं प्रशंसन्ति गवेधुमधुकाम्बुना ॥ २१ ॥

गरहेडुआ और मुलैठीको जलमें पीसकर कपडेमें बांधकर रस निचोड लेवे। फिर कुछ गरम कर उससे मसूरिका रोगीकी आँखोंको सेके ॥ २१ ॥

पञ्चवल्कलचूर्णेन केचिदिनमिवचूर्णयेत्।
भस्मना केचिदिच्छिन्ति केचिद्गोमयरेणुना ॥ २२ ॥

गीलीमसूरिकाकी फुन्सियोंपर पञ्चवल्कल (बड, गूलर, पीपल, पाखर और बेंतकी छाल) के चूर्णको बुरकना चाहिये अथवा उपलोंकी राख या उपलोंका चूरा छिडकनेसे भी उपकार होता है ॥ २२॥

कृमिपातभयाच्चापि धूपयेत्सरलादिभिः।
वेदनादाहशान्त्यर्थं स्रुतानाञ्च विशुद्धये ॥ २३ ॥
सगुग्गुलुं वराक्काथं युञ्ज्याद्वा खदिराष्टकम्।
कृष्णाभयारजो लिह्यान्मधुना कण्ठशुद्धये ॥
तथाष्टाङ्गावलेहश्च कवलश्चार्द्रकादिभिः ॥ २४ ॥

कीडे पडनेके भयसे सरलवृक्षकी धूप देवे तो इससे कीडे उत्पन्न नहीं होते। एवं मसूरिकाकी पीडा और दाहकी शान्तिके लिये तथा स्रुत (फुन्सियों) के झिरनेकी शुद्धिके लिये त्रिफलेके काथको शुद्धगूगलमें मिलाकर सेवन करे। अथवा खदिराष्टक काथको पान करे या पीपल और हरडके चूर्णको शहदमें मिलाकर कण्ठकी शुद्धिके लिये चाटे। तथा अष्टाङ्गवलेहके खानेसे और अदरख आदिका कवल धारण करनेसे भी कण्ठकी शुद्धि होती है ॥ २३॥२४ ॥

पञ्चतिक्तं प्रयुञ्जीत पानाभ्यञ्जनभोजनैः।
कुर्याद्व्रणविधानञ्च तैलादीन्वर्जयेच्चिरम् ॥ २५ ॥

पान, अभ्यङ्ग और भोजनके वास्ते कुष्ठाधिकारोक्त पञ्चतिक्त घृत प्रयोग करे और व्रणरोगकी विधिके अनुसार चिकित्सा करे। इस रोगमें तैलादि द्रव्य सर्वथा त्याज्य हैं ॥ २५ ॥

घण्टाकर्णं शिवं गौरीं विष्णुं विप्रञ्च पूजयेत्।
आचरेज्जपहोमादीन्व्रतं रोगहतं तथा ॥ २६ ॥

इस रोगमें घण्टाकर्ण, शिव, पार्वती, विष्णु भगवान् और ब्राह्मणोंको पूजे। एवं जप, होमादि अनुष्ठान और मसूरिकारोगकी शान्तिके लिये व्रतादि करे॥

अगदानि विषघ्नानि रत्नानि विविधानि च।
धारयेद्वाचयेच्चापि वैनतेयस्य संहिताम् ॥ २७ ॥

तदनन्तर रोगनाशक और विषहरण भाँतिभाँतिके रत्नोंको धारण करे। और गरुडपुराणका पाठ करे ॥ २७ ॥

तेषु दुष्टव्रणेष्वेव जलौकाभिर्हरेदसृक् ।
व्रणशोथहरं योगमाचरेत्तत्प्रशान्तये ॥ २८ ॥

दुष्टव्रण होजानेपर जौंक लगवाकर रुधिर निकलवावे और व्रणकी सूजनको दूर करनेके लिये शोथनाशक चिकित्सा करे ॥ २८ ॥

विषघ्नैः सिद्धमन्त्रैश्च प्रमृज्यात्तु पुनः पुनः ।
भक्त्या पठेत्पाठयेच्च शीतलायाः स्तवं शुभम् ॥२९॥

विषको हरणकरनेवाले सिद्धमन्त्रोंसे बारबार मार्जन करे और श्रद्धाभक्तिसे शीतलाके शुभस्तोत्रको स्वयं पढे तथा दूसरोंसे पढावे ॥ २९ ॥

पटोलादि ।

पटोलकुण्डलीमुस्तवृषधन्वयवासकैः ।
भूनिम्बनिम्बकटुकापर्पटैश्च शृतं जलम् ॥ ३० ॥
मसूरीं शमयेदासां पक्वश्चैव विशोषयेत् ।
नातः परतरं किञ्चिद्विस्फोटज्वरशान्तये ॥ ३१ ॥

पटोलपत्र, गिलोय, नागरमोथा, अडूसा, धमासा, चिरायता, नीमकी छाल, कुटकी और पित्तपापडा इनके द्वारा औटाकर शीतल कियाहुआ जल पानकर नेसे अपक्व मसूरिका शमन और पकीहुई मसूरिका शुष्क होती है । विस्फोट और ज्वरको नष्ट करनेके लिये इससे बढकर कोई औषधि नहींहै॥३०॥३१॥

अमृतादि ।

अमृतादिकषायश्च विसर्पोक्तं प्रयोजयेत् ॥ ३२ ॥

इसमें विसर्परोगमें कहाहुआ अमृतादिकाथ भी सेवन कराना चाहिये३२॥

इन्दुकलावटिका ।

शिलाजत्वयसीहेमसम्मर्द्यार्ज्जकवारिणा ।
गुञ्जामात्रां वटीं कृत्वा कुर्याच्छायाविशोषिताम् ३३
मसूरिकायां विस्फोटे ज्वरे लोहितसंज्ञके ।
एकैकां दापयेदासां सर्वव्रणगदेषु च ॥ ३४ ॥

शिलाजीत, लोहभस्म और स्वर्णभस्म इनको समानभाग लेकर वनतुलसीके रसमें अच्छे प्रकार खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे । इनमेंसे मसूरिका, विस्फोट ज्वर रक्तविकार और सर्वप्रकारके व्रण-रोगोंमें एक एक गोली देवे।इसके सेवनसे उक्तरोग शीघ्र नष्ट होते हैं३३।३४॥

मसूरिकारोगमें पथ्य।

पूर्वं लङ्घनवान्तिरेचनशिरावेधाश्शशाङ्कोज्ज्वला-
जीर्णाष्षष्टिकशालयोऽपि चणका मुद्गा मसूरा यवाः।
सर्वेऽपि प्रतुदाः कपोतचटका दात्यूहक्रौञ्चादयो
जीवञ्जीवशुकादयोऽपि कुलकं कार्वेल्लमाषाढकम् ॥ ३५ ॥
कर्कोटं कदलञ्च शिग्रुरुचकं द्राक्षाफलं दाडिमं
मेध्यं बृंहणमन्नपानमखिलं कोलानि माषो रसः।
अक्ष्णोः सेकविधौ गवेधुमधुकोद्भूतं सुशीतोदकं
शम्बूकोदरकोष्णनीरमपि वा कर्पूरचूर्णानि वा ॥ ३६ ॥
पक्के मुद्गरसोऽपि जाङ्गलरसः शालिञ्चशाकं घृतं
निर्गुण्डीदलयक्षधूपविहितो धूपो मुहुर्मुक्तितः।
शश्वद्गोमयभस्मगुग्गुलुमथो शुष्के शिलापिष्टयो-
रालेपःपिचुमर्दपत्रनिशयोः शेषे व्रणोक्ताः क्रियाः ॥ ३७ ॥
इत्थं सर्वदशाविभागविहितं पथ्यं यथादोषतः
संयुक्तं मुदमातनोति नितरां नृणां मसूरीगदे ॥ ३८ ॥

मसूरिका रोगमें प्रथम लंघन, वमन, विरेचन, शिरावेध (फस्तखुलवाना) कराना चाहिये। पश्चात् निर्मल चन्द्रमाकी कान्तिके समान उज्वल पुराने साँठी और शालिधानोंके चावल, चने, मूँग, मसूर, जौ तथा कबूतर, चिडिया, दात्यूह (पक्षिविशेष), अथवा पपैहा, कुररपक्षी, चकोर, तोता और अन्य सर्व प्रकारके प्रतुद (चोंचसे फोडकर खानेवाले, कौआ, मोर, श्येनादि) पक्षियोंका मांस, पटोलपात, करेला, ढाकके बीज, ककोडा, कच्चा केला, सहिंजना, बिजौरानीम्बू, दाख, अनार, पवित्र और पुष्टिकर अन्नपान, पकेहुए सूखे बेर और उडदोंका यूष इनका भोजन, एवं गवेधु (तृणधान्यविशेष) और मुलैठीके द्वारा सिद्धकियेहुए शीतल जलसे अथवा घोंघेके भीतरके जलसे आँखोंपर सेंक करना या कपूरका चूर्ण मिलाकर जलसे छींटेदेने चाहिये। पकी हुई मसूरिकामें मूँगका रस, जङ्गलीजीवोंका मांसरस, शान्तिशाक, घृत, सिह्यालूके पत्ते और राल इनकी धूप बनाकर विधिपूर्वक धूनी देवे, शरीरपर निरन्तर उपलेंकी राख और गूगलको सूखी शिलपर पीसकर मर्दन करे। मसूरिकाकी फुन्सियोंके सूखजानेपर नीमके सूखे पत्ते और कच्ची हल्दीको पीसकर लेप करे, पश्चात् व्रणरोगोक्त चिकित्सा करे। इस प्रकार सब अवस्थाओंके

विभागमें विधानकियेहुए पथ्यको यथादोषानुसार सेवन करनेसे मसूरिका-युक्त रोगियोंको आरोग्यरूपी आनन्दलाभ होता है ॥ ३५-३८ ॥

मसूरिकारोगमें अपथ्य ।

रतिं स्वेदं श्रमं तैलं गुर्वन्नं क्रोधमातपम् ।
दुष्टाम्बु दुष्टपवनं विरुद्धान्यशनानि च ॥ ३९ ॥
निष्पावमालुकं शाकं लवणं विषमाशनम् ।
कट्वम्लं वेगरोधश्च मसूरीगदवांस्त्यजेत ॥ ४० ॥

मसूरीरोगवाला मनुष्य मैथुन, स्वेदक्रिया, परिश्रम, तेल, भारी अन्नोंका सेवन, क्रोध, धूपका सेवन, दूषितजल, दूषितवायु, विरुद्धभोजन, सेमकी फली, आलू, शाक, नमक, विषम आहार, चरपरे और खट्टे द्रव्य एवं मल-मूत्रादिके वेगको रोकना; इन सबको तत्काल त्यागदेवे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मसूरिकाचिकित्सा ॥

क्षुद्ररोगोंकी चिकित्सा ।

अजगल्लिका-चिकित्सा ।

तत्राजगल्लिकामामां जलौकाभिरुपाचरेत् ।
शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चालेपयेन्मुहुः ॥ १ ॥

प्रथम अपक्वअजगल्लिकाके रुधिरको जौंक लगवाकर निकलवादे,पश्चात् सीप, सोरठदेशकी मिट्टी और जवाखार इनको एकत्रपीसकर बारबार लेपकरे ॥ १ ॥

नवीनकण्टकार्याश्च कण्टकैर्वेधमात्रतः ।
किमाश्चर्यं विपच्याशु प्रशाम्यन्त्यजगल्लिकाः ॥ २ ॥

नवीनकटेरीके काँटोंके द्वारा अजगल्लिकाको विद्धकरनेसे वह शीघ्र ही पच-कर नष्ट होजाती है ॥ २ ॥

वृषमूलविशालाभ्यां लेपो हन्त्यजगल्लिकाम् ।
कठिनां क्षारयोगैश्च द्रावयेदजगल्लिकाम् ॥ ३ ॥

अडूसेकी जड और इन्द्रायणकी जडकी छाल, इन दोनोंको एकत्र पीसकर लेपकरनेसे अजगल्लिकारोग दूर होता है । यदि अजगल्लिका अत्यन्त कठिन हो तो उसको क्षारादि औषधियोंके द्वारा नर्म करे ॥ ३ ॥

अनुशयी विवृतेन्द्रियादि-रोगोंकी चिकित्सा ।

श्लेष्मविद्रधिकल्पेन जयेदनुशयीं भिषक् ।
विवृतामिन्द्रविद्धाञ्च गर्दभीं जालगर्दभम् ॥ ४ ॥
इरिवेल्लिं गन्धमालां जयेत्पित्तविसर्पवत् ।
मधुरौषधिसिद्धेन सर्पिषा शमयेद्व्रणम् ॥ ५ ॥

अनुशयी नामक क्षुद्ररोगकी कफजविद्रधिकी चिकित्साके समान चिकित्सा करनी चाहिये। विवृता, इन्द्रविद्धा, गर्दभी, जालगर्दभ,इरिवेल्लिका और गन्धमालादिरोगोंकी पित्तजविसर्पकी समान चिकित्सा करनी चाहिये । मधुरौषधि अर्थात् काकोल्यादिगणकी औषधियोंके साथ घृतको पकाकर व्रणकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥

विदारिका पनसिकादि-क्षुद्र-रोगोंकी चिकित्सा ।

रक्तावसेकैर्बहुभिः स्वेदनैरपतर्पणैः ।
जयेद्विदारिकां लेपैः शिग्रुदेवद्रुमोद्भवैः ॥ ६ ॥
पनसिकां कच्छपिकामनेन विधिना भिषक् ।
अन्त्रालजीं कच्छपिकां तथा पाषाणगर्दभम् ॥
साधयेत्कठिनानन्यान्शोथान्दोषसमुद्भवान् ॥ ७ ॥

प्रथम विदारिका, पनसिका और कच्छपिका नामक क्षुद्ररोगकी चिकित्सा अधिक रक्तमोक्षण, स्वेदन और अपतर्पणादि क्रियाओंके द्वारा करनी चाहिये। पश्चात् सहिंजनेकी छाल और देवदारुको एकत्र पीसकर लेप करना चाहिये । शोथयुक्त अन्त्रालजी, कच्छापिका और पाषाणगर्दभरोगकी भी चिकित्सा इसी विधिसे करनी चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

पाषाणगर्दभकी चिकित्सा ।

सुरदारुशिलाकुष्ठैः स्वेदयित्वा प्रलेपयेत् ।
कफमारुतशोथघ्नो लेपः पाषाणगर्दभे ॥ ८ ॥

पाषाणगर्दभरोगमें प्रथम स्वेदन करके पश्चात् देवदारु, मैनसिल और कूल इन औषधियोंको एकत्र पीसकर गरम करके लेप करे । यह लेप कफ, वात और शोथको नष्ट करताहै ॥ ८ ॥

वल्मीकरोगकी चिकित्सा ।

शस्त्रेणोद्धृतवल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत् ।
मनःशिलालभल्लातसूक्ष्मैलागुरुचन्दनैः ॥ ९ ॥
जातीपल्लवकल्कैश्च निम्बतैलं विपाचयेत् ।
वल्मीकं नाशयेत्तद्धि बहुच्छिद्रं बहुद्रवम् ॥ १० ॥
सशोथं व्रणगन्धश्च प्रवृद्धं मर्मसु स्थितम् ।
हस्तपादस्थितश्चापि वल्मीकं परिवर्जयेत् ॥ ११ ॥

वल्मीकरोगको अस्त्रके द्वारा काटकर क्षार और अग्निका प्रयोग करे । मैनसिल, भिलावा, हरिताल, छोटी इलायची, अगर, चन्दन और चमेलीके पत्ते इन औषधियोंके कल्कद्वारा नीमके तेलको पकाकर व्रणस्थानमें लेपकरे। इस तेलको मर्दन करनेसे बहुत छिद्र और बहुत पीववाला वल्मीकरोग नष्ट होता है। शोथयुक्त, जिसमें व्रणके समान गन्ध आती हो, अत्यन्त बढाहुआ, मर्मस्थानोंमें उत्पन्न हुआ और हाथपावोंमें उत्पन्न हुआ वल्मीकरोग असाध्य है इसलिये इनकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ९-११ ॥

पाददारी (बिबाई) की चिकित्सा ।

पाददारिषु च शिरां वेधयेत्तलशोधिनीम् ॥ १२ ॥
स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ चालेपयेन्मुहुः ॥
मधूच्छिष्टवसामज्जघृतक्षारैर्विमिश्रितैः ॥ १३ ॥

पाददारीरोगमें प्रथम पैरके तलुएँकी शिराको विद्धकरके रक्त निकलवावे । पश्चात् स्निग्धस्वेद देकर मोम, चर्बी, मज्जा, घृत औरक्षार इनका प्रलेप करे॥

गुडलवणघृतश्चैत्तिन्तिडीयुक्तमेतद्
द्विगुणमिह विदध्यान्मूत्रमेकत्र कृत्वा ।
दिनकतिचिदथेदं किञ्चिदाशोष्य लेपात्
स्फुटितपदतलं स्यात्पद्मपत्राभमाशु ॥ १४ ॥

गुड, सेंधानमक, घी और इमलीकी छाल ये प्रत्येक एकएक तोला और गोमूत्र ४ तोले लेकर सबको एकत्र पीसकर धूपमें सुखालेवे । फिर स्फुटित-पद-तल (बिबाई) पर इसका लेप करे तो इससे पैरके तलुएँ कमलके पत्रके समान कान्तियुक्त और कोमल होजाते हैं ॥ १४ ॥

सर्जाख्यसिन्धूद्भवयोश्चूर्णं मधुघृताप्लुतम् ।
निर्मथ्य कटुतैलाक्तं हितं पादप्रमार्जनम् ॥ १५ ॥

राल और सैंधेनमकके चूर्णको शहद, घृत और कडवे तेलमें मिलाकर बिवाईपर मर्दन करना हितकारी है ॥ १५ ॥

अलसकी चिकित्सा ।

अलसेऽम्लेश्चिरं सिक्तौ चरणौ परिलेपयेत् ।
पटोलारिष्टकासीसत्रिफलाभिर्मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥

अलसरोगमें दोनों पैरोंको काँजीमें कुछदेरतक भिगोये रक्खे, पश्चात् पटोलपत्र, नीमको छाल, कसीस और त्रिफला इनको समानभाग लेकर एकत्र पीसकर बारम्बार लेपकरे ॥ १६ ॥

करञ्जबीजं रजनी कासीसं मधुकं मधु ।
रोचना हरितालश्च लेपोऽयमलसे हितः ॥ १७ ॥

करञ्जके बीज, हल्दी, हीराकसीस, मुलैठी, शहद, गोरोचन और हरताल इनको बराबर भाग लेकर बारीक पीसकर लेप करना अलसरोगमें हितकर है १७

लाक्षाभयारसालेपः कार्यं रक्तस्य मोक्षणम् ।
बृहतीरससिद्धेन तैलेनाभ्यज्य बुद्धिमान् ॥
शिलारोचनकासीसचूर्णैर्वा प्रतिसारयेत् ॥ १८ ॥

अलसरोगमें लाख, हरड और गन्धरस इनको एकत्र पीसकर लेपकरे और रुधिर निकलवावे । फिर वडीकटेरीके रसमें कडवे तेलको पकाकर मालिश करे, एवं उक्ततेलके साथ मैनसिल, गोरोचन और कसीसके चूर्णको मिलाकर लगावे । इससे अलस रोग नष्ट होता है ॥ १८ ॥

कदरकी चिकित्सा ।

दहेत्कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा ॥ १९ ॥

कदर (पैरोंमें कङ्कड या काँटेके लगनेसे बेरके समान ऊँची गाँठ होजाती है, उसको कदर कहते हैं) काटकर गरम तेलसे या अग्निसे दग्धकरदेवे ॥ १९ ॥

चिप्पकी चिकित्सा ।

चिप्पमुष्णाम्बुना स्विन्नमुत्कृत्याभ्यज्य तं व्रणम् ।
दत्त्वा सर्ज्जरसं चूर्णं बध्वा व्रणवदाचरेत् ॥ २० ॥

चिप्परोगमें प्रथम उष्णजलसे स्वेदन कर अस्त्रक्रिया करे, पश्चात् तेलको लगाकर उसपर रालका चूर्ण बुरका देवे और व्रणको अच्छे प्रकार बाँधदेवे । इसमें रोगीको व्रणरोगकी समान पथ्यदेवे और उसीके समान अन्य उपचारकरे ॥ २०

स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृष्णायसेऽभयाम्।
घृष्ट्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेच्चिप्पं मुहुर्मुहुः॥ २१॥

लोहेके वर्त्तनमें हल्दीके स्वरसके साथ हरडको घिसकर उससे चिप्पपर बारबार लेप करे॥ २१॥

अङ्गुलीवेष्टककी चिकित्सा।

काश्मर्याः सप्तभिः पत्रैः कोमलैः परिवेष्टितः।
अङ्गुलीवेष्टकः पुंसो ध्रुवमाशु व्यपोहति॥ २२॥

कुम्भेरके कोमल सात पत्तोंको बाँधनेसे मनुष्यके अंगुलिवेष्टक नामवाला रोग तत्काल नष्ट होता है॥ २२॥

पद्मिनीकण्टककी चिकित्सा।

निम्बोदकेन वमनं पद्मिनीकण्टके हितम्।
निम्बोदककृतं सर्पिः सक्षौद्रं पानमिष्यते॥ २३॥

पद्मिनीकण्टकरोगमें प्रथम नीमकी छालके काथको पान कराकर वमन करानी, पश्चात् उक्त काथके साथ घृत पकाकर उसमें शहद मिलाकर पानकराना अतीव हितकारी है॥ २३॥

पद्मनालकृतक्षारं पद्मिनीं हन्ति लेपनात्।
निम्बारग्वधकल्कैर्वा मुहुरुद्वर्त्तनं हितम्॥ २४॥

कमलनालको भस्म करके उसके क्षारका लेप करनेसे अथवा नीमकी छाल अमलतासकेपत्तोंको एकत्रपीसकर बारबारमलनेसेपद्मिनीकण्टकरोग जाताहै२४

जालगर्दभकी चिकित्सा।

नीलीपटोलमूलाभ्यां साज्याभ्यां लेपनं हितम्।
जालगर्दभरोगे तु सद्यो हन्ति च वेदनाम्॥ २५॥

जालगर्दभरोगमें नीलवृक्ष और पटोलपातकी जडको एकत्र पीसकर घृतमें मिलाकर लेप करनेसे उक्त रोगकी पीडा तत्काल शान्त होती है॥ २५॥

अहिपूतनककी चिकित्सा।

अहिपूतनके धात्र्याः पूर्वं स्तन्यं विशोधयेत्।
त्रिफलाखादिरक्वाथैर्व्रणानां धावनं सदा॥ २६॥

अहिपूतनकरोगमें प्रथम प्रसूतास्त्रीके स्तन्य (दूध) को शुद्धकरे, पश्चात त्रिफला और खैर इनके काढेसे निरन्तर व्रणोंको धोवे॥ २६॥

करञ्जत्रिफलातिक्तैः सर्पिः सिद्धं शिशोर्हितम्।
रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥ २७ ॥

करञ्जकी छाल, त्रिफला और पटोलपात इनके द्वारा उत्तमप्रकार घृतको सिद्धकर बालकको पिलाना हितकर है। एवं रसौंतके चूर्णको सेवन कराना और अहिपूतनकरोगके व्रणोंपर लगाना विशेष उपयोगी है ॥ २७ ॥

गुदभ्रंशकी चिकित्सा।

गुदभ्रंशे गुदं स्नेहैरभ्यज्याशु प्रवेशयेत्।
प्रविष्टे स्वेदयेच्चापि बद्धं गोस्फणया भृशम् ॥ १ ॥

गुदभ्रंश (काँछका बाहर निकलना) रोगमें गुदाको तेलसे मलकर शीघ्रही भीतरको प्रवेश करदेवे। जब वह प्रवेश होजाय तब स्वेद देवे और गोस्फण-नामक बन्धनसे अच्छे प्रकार बाँधदेवे ॥ १ ॥

कोमलं पद्मिनीपत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम्।
एतान्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः ॥ २ ॥

जो कमलिनीके कोमलपत्तोंको खाँडमें मिलाकर भक्षण करे तो उसके गुदाका बाहर निकलना निस्सन्देह बन्द होताहै ॥ २ ॥

वृक्षाम्लानलचाङ्गेरीविश्वपाठायवाग्रजम्।
तक्रेण शीलयेत्पायुभ्रंशार्त्तोऽनलदीपनम् ॥ ३ ॥

इमली, चीता, चूक, सोंठ, पाढ और जवाखार इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर मठ्ठेके साथ पानकरे तो इससे गुदभ्रंशरोग दूर होताहै और अग्निदीपन होतीहै ॥ ३ ॥

गुदश्च गव्यवसया भ्रक्षयेदविशङ्कितः।
दुष्प्रवेशो गुदभ्रंशो विशत्याशु न संशयः ॥ ४ ॥

काँछके बाहरनिकलआनेपर गौकी चर्बीसे गुदाको निश्शंक होकर मले, फिर उसको भीतर प्रवेश करदेवे तो गुदभ्रंशरोग तत्काल नष्ट होताहै ॥ ४ ॥

मूषिकाणां वसाभिर्वा गुदे सम्यक्प्रलेपनम्।
स्विन्नमूषिकमांसेन अथवा स्वेदयेद्गुदम् ॥ ५ ॥

चुहियोंकी चर्बीसे गुदापर अच्छेप्रकार मालिश करे अथवा मूसोंके मांसको पकाकर उसके द्वारा स्वेद देकर गुदाको भीतर प्रविष्ट करदेवे ॥ ५ ॥

चर्मकील, जतुमणिआदिकी चिकित्सा।

चर्मकीलं जतुमणिं मशकांस्तिलकालकान्।

उद्धृत्य शस्त्रेण दहेत्क्षाराग्निभ्यामशेषतः ॥ १ ॥

चर्म्मकील, जतुमणि, मशक और तिलकालकादि क्षुद्ररोगोंको अस्त्रसे काटकर क्षार और अग्निके द्वारा दग्ध करना चाहिये ॥ १ ॥

रुबुनालस्य चूर्णेन घर्षो मशकनाशनः ।
निर्मोकभस्मघर्षाद्वा मशः शान्तिं व्रजेद्ध्रुवम् ॥ २ ॥

अण्डकी नालके द्वारा शंखके चूर्णको लेकर घर्षण करे, अथवा सर्पकी कैंचुलीकी भस्मको घर्षणकरे तो इससे मशक(मस्सा)रोग बहुत शीघ्र नष्ट होताहै॥

युवानपिडकान्यच्छादिकी चिकित्सा ।

युवानपिडकान्यच्छनीलिकाव्यङ्गशर्कराः ।
शिराव्यधः प्रलेपैश्च जयेदभ्यञ्जनैस्तथा ॥ ३ ॥

युवानपिडका, न्यच्छ, नीलिका,व्यङ्ग और शर्करा इन रोगोंमें प्रथम शिरावेध (फस्तखुलवाना), फिर लेप और तेलादिकी मालिश करना हितकारी है ॥

लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिडकापहः ।
तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपनम् ॥
वमनञ्च निहन्त्याशु पिडकां यौवनोद्भवाम् ॥ ४ ॥

लोध, धनियाँ और वच इनको एकत्र पीसकर लेपकरे अथवा गोरोचन और कालीमिरच इन दोनोंको एकत्र पीसकर मुखपर लेप कर वमन करावे तो इससे युवावस्थामें उत्पन्नहुई पिडिकायें (मुहासे) तत्काल नष्ट होती हैं४

व्यङ्गेषु चार्जुनत्वक् वा मञ्जिष्ठा वा समाक्षिका ।
लेपः सनवनीता वा श्वेताश्वखुरजा मसी ॥ ५ ॥

व्यङ्गरोगमें अर्जुनकी छाल, मञ्जीठ, श्वेत अपराजिता इनका चूर्ण, अथवा सफेद घोडेके खुरकी भस्म इनमेंसे किसी एकको शहद और नैनीघीमें मिलाकर लेपकरे तो व्यंगरोग दूर होता है ॥ ५ ॥

रक्तचन्दनमञ्जिष्ठा कुष्ठलोध्रप्रियङ्गवः ।
वटाङ्कुरामसूराश्च व्यङ्गघ्ना मुखकान्तिदाः ॥ ६ ॥

लाल चन्दन, मञ्जीठ, कूठ, लोध, फूलप्रियंगु, बडके अंकुर और मसूरकी दाल ये सब द्रव्य, एकत्र पीसकर लेप करनसे व्यंगरोगको नष्ट करते हैं और मुखकी शोभाको बढाते हैं ॥ ६ ॥

व्यङ्गानां लेपनं शस्तं रुधिरेण शशस्य च ॥

खरगोशके रुधिरका लेप करनेसे सब व्यगंरोगोंका नाश होता है ॥

केवलात्पयसा पिष्ट्वा तीक्ष्णाञ्छाल्मलिकण्टकान्।
आलिप्तं त्र्यहमेतेन भवेत्पद्मोपमं मुखम् ॥ ७ ॥
मसूरैः सर्पिषा भृष्टैर्लिप्तमास्यं पयोऽन्वितैः।
सप्तरात्राद्भवेत्सत्यं पुण्डरीकदलप्रभम् ॥ ८ ॥

एकमात्र सेमलके काँटोको दूधके साथ पीसकर लेप करनेसे तीन दिनमें ही मुख कमलकी समान सुन्दर होजाता है। एवं मसूरकी दालको घृतमें भूनकर और दूधमें पीसकर लेप करनेसे सात दिनमें मुख कमलपत्रकी कान्तियुक्त होआता है। यह बिल्कुल सत्य है ॥ ७ ॥ ८ ॥

मातुलुङ्गजटासर्पिःशिलागोशकृतो रसः।
मुखकान्तिकरो लेपः पिडकातिलकालजित् ॥ ९ ॥

बिजौरेनींबूकी जड, घी, मैनसिल और गोबरका रस इन सबका लेप पिडका और तिलकालकरोगको जीतता है, तथा मुखकी कान्तिको उज्ज्वल बनाता है ॥

नवनीतगुडक्षौद्रकोलमज्जप्रलेपनम्।
व्यङ्गजिद्वरुणत्वग्वा छागक्षीरप्रपेषिता ॥ १० ॥

नैनीघी, गुड, शहद और बेरकी गुठलीकी मींग इनको एकत्र पीसकर लेप करे अथवा बरनाकी छालको बकरीके दूधमें पीसकर लेप करे। यह लेप व्यङ्गरोगको हरनेवाला है ॥ १० ॥

जातीफलकल्कलेपो नीलीव्यङ्गादिनाशनः।
सायञ्च कटुतैलेनाभ्यङ्गो वक्त्रप्रसाधनः ॥ ११ ॥

जायफलको पीसकर लेप करनेसे नीली और व्यङ्गादिरोग नाश होते हैं। सन्ध्यासमय सरसोंके तेलकी मुखपर मालिश करनेसे मुख उज्ज्वल और कान्तियुक्त होता है ॥ ११ ॥

कालीयकोत्पलामयदधिसरबदरास्थिमध्यफलिनीभिः।
लिप्तं भवति हि वदनं शशिप्रभं सप्तरात्रेण ॥ १२ ॥

सुगन्धितकाष्ठ अथवा दारुहल्दी, कमल, कूठ, दहीका तोड, बेरकी गुठलीकी मींग और फूलप्रियंगु इन सबको समानभाग लेकर एकत्र पीसकर लेप करे तो सात दिनमें ही मुख चन्द्रमण्डलकी समान शोभायमान होता है १२॥

तुषरहितमसृणयवचूर्णसमयष्टिमधुकलोध्रलेपेन।
भवति मुखं परिनिर्जितचामीकरचारुसौभाग्यम् १३

भूसीरहित जौका चूर्ण, मुलैठी और लोध इनको बराबर भाग लेकर एकत्र पीसकर लेप करनेसे मुखकी पिडिकायें दूर होकर मुख सुवर्णके समान अत्यन्त मनोहर और सुभग होजाता है ॥ १३ ॥

रक्षोघ्नशर्वरीद्वयमञ्जिष्ठागैरिकाज्यवस्तपयः ।
सिद्धेन लिप्तमाननमुद्यद्विधुबिम्बवद्विभाति ॥ १४ ॥

सफेदसरसों, हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ, गेरू, घी और बकरीका दूध इन सबको समानांश ले एकत्र कूट पीसकर लेप करे तो मुख चंद्रबिम्बकी समान निर्मल कान्तिपूर्ण होता है ॥ १४ ॥

परिणतदधिशरपुङ्खैः कुवलयदलकुष्ठचन्दनोशीरैः ।
मुखकमलकान्तिकारी भ्रुकुटीतिलकालकाञ्जयाति॥१५॥

सरफोंका, कमलपत्र, कूठ, लालचन्दन और खस इन सबको दहीके तोडमें पीसकर लेप करे। यह लेप मुखको कमलपत्रके समान सुशोभित करता है और भ्रुकुटिजन्य तथा तिलकालकरोगको जीतता है ॥ १५ ॥

अरुंषिकाकी चिकित्सा ।

अरुंषिकायांरुधिरेऽवसिक्तौ शिराव्यधेनाथ जलौकसा वा ।
निम्बाम्बुसिक्तेशिरसि प्रलेपो देयोऽश्ववर्चोरससैन्धवाभ्याम्

अरुंषिकारोगमें प्रथम शिरावेधकर या जौंकद्वारा रुधिरका निकलवाना, पश्चात् नीमकी छालके अधपके काथसे शिरको सिंचनकर घोडेकी लीदके रस और सैन्धेनमकको एकत्र मिलाकर लेप करना हितकारी है ॥ १६ ॥

पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य वा ।
मूत्रपिष्टः प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरुंषिकाम् ॥
अरुंषिघ्नं भृष्टकुष्ठचूर्णं तैलेन संयुतम् ॥ १७ ॥

तिलकी पुरानी खल अथवा मुर्गेकी विष्ठाको गोमूत्रमें पीसकर लेप करे । या कूठकी भस्मको तिलके तेलमें मिलाकर लगानेसे अरुंषिका दूर होतीहै॥१७

दारुणककी चिकित्सा ।

दारुणे तु शिरां विध्यात्स्निग्धां स्विन्नां ललाटजाम् ।
अवपीडाश्शिरोवस्तीनभ्यङ्गांश्चावचारयेत् ॥ १८ ॥

दारुणकरोगमें मस्तककी शिराको स्निग्ध स्वेद देकर छेदन करे। इस रोगमें नस्य, शिरोवस्ति और तैलादिकी मालिश सर्वदा करनी चाहिये ॥ १८ ॥

कोद्रवाणां तृणक्षारपानीयं परिधावने।
कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः॥ १९॥

कोदोंकी भूसीके क्षारजलसे मस्तकको सिञ्चन करे और उक्त क्षारको शहदमें मिलाकर शिरपर लेप करे। इससे अरुंषिकारोग दूर होता है॥ १९॥

पियालबीजमधुककुष्ठमाषैः ससैन्धवैः।
काञ्जिकस्थास्त्रिसप्ताहं माषा दारुणकापहाः॥ २०॥

चिरौंजी, मुलैठी, कूठ, उडद और सैंधानमक इनको समानभाग लेकर एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर लेप करे या उक्त औषधोंको २१ दिनतक उडदोंकी काँजीमें भिजोकर फिर पीसकर लेप करे तो दारुणकरोग शीघ्र नष्ट होताहै२०

सहनीलोत्पलकेशरयष्टिमधुतिलैः सदृशमामलकम्।
चिरजातमपि च शीर्षे दारुणकरोगं शमं नयति॥ २१॥

नीलेकमलकी केशर, मुलैठी, तिल और आमले इनको समभाग लेकर एकत्र पीसकर शिरपर लेप करेतो इससे बहुत पुराना दारुणकरोगभी शान्त होता है॥

इन्द्रलुप्तकी चिकित्सा।

इन्द्रलुप्ते शिरां विद्ध्वा शिलाकासीसतुत्थकैः।
परितो लेपयेत्कल्कैस्तैलञ्चाभ्यञ्जने हितम्॥
कुटन्नटशिखीजातीकरञ्जकरवीरजैः॥ २२॥

इन्द्रलुप्तरोगमें शिराको वेधकर (फस्त खुलवाकर) मैनसिल, कसीस और तूतिया इनको समानभाग लेकर एकत्र पीसकर लेपकरे। अथवा नागरमोथा, चीतेकी जड चमेलीके फूल, करञ्जकी छाल और सफेदकनेरकी जड इन सबको एकत्र कूट पीसकर लेप करे।इसमें तेलकी मालिश करना हितकरहै॥२२॥

अवगाढपदश्चैव प्रच्छयित्वा पुनः पुनः।
गुञ्जाफलैश्चिरं लिम्पेत्केशभूमिं समन्ततः॥ २३॥

पहले इन्द्रलुप्तको सुईसे छेदन करे, पश्चात् चोंटलियोंको जलमें अच्छे प्रकारसे पीसकर बार बार बालोंकी जगह लेप करे। इससे बाल उगआते हैं॥२३॥

हस्तिदन्तमसीं कृत्वा मुख्यञ्चैव रसाञ्जनम्।
लोमान्यनेन जायन्ते नृणां पाणितलेष्वपि॥ २४॥

हाथीके दाँतकी भस्म करके उसको रसोंतके चूर्ण और जलमें मिलाकर लेप करे। जब इससे मनुष्योंकी हथेलीमेंभी रोम उत्पन्न होजाते हैं तब अन्य स्थानका तो कहनाही क्या ?॥ २४॥

हस्तिदन्तमसीं कृत्वा तैलेन सह योजयेत्।
हस्तेष्वपि प्रजायन्ते केशा नास्त्यत्र संशयः ॥ २५॥

हाथीदांतकी भस्मको तिलके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे इन्द्रलुप्तरोग नष्ट होकर बाल निकल आते हैं। इसके प्रयोगसे हाथोंमेंभी बाल उत्पन्न होजाते हैं, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥

भल्लातकबृहतीफलगुञ्जामूलफलेभ्यस्त्वेकेन।
मधुसहितेन विलिप्तं सुरपतिलुप्तं शमं याति॥ २६॥

भिलावे, बडीकटेरीके फल, चौंटली और चौंटलीकी जड इनमेंसे किसी-एकको शहदके साथ मर्दनकर लेप करे तो इन्द्रलुप्तरोग शमन होता है ॥२६॥

बृहतीफलरसपिष्टं गुञ्जाफलमिन्द्रलुप्तस्य।
कनकफलनिघृष्टस्य सतोयं दातव्यं प्रच्छितस्य सदा॥

पकीहुई बडी कटेरीके फलके रसमें चौंटलीको अथवा चौंटलीकी जडको पीसकर शिरावेधकियेहुए इन्द्रलुप्तवाले स्थानपर धतूरेके फल अथवा गूलर आदिके कैडे पत्तोंसे घर्षण करके लेप करना चाहिये ॥ २७॥

घृष्टस्य कर्कशैः पत्रैरिन्द्रलुप्तस्य गुण्डनम्।
चूर्णितैर्मरिचैः कार्यमिन्द्रलुप्तविनाशनम् ॥२८॥

इन्द्रलुप्तके स्थानको गूलर आदिके कडे पत्तोंसे घिसकर उसपर काली मिरचोंके चूर्णको बुरकादेनेसे इन्द्रलुप्तरोग नष्ट होता है ॥ २८ ॥

छागक्षीररसाञ्जनपुटदग्धगजदन्तमसीलिप्ताः।
जायन्ते सप्तदिनात्खल्यामपि कुञ्चिताश्चिकुराः ॥२९॥

रसौत और पुटपाक द्वारा भस्म कीहुई हाथीदाँतकी स्याही, इन दोनोंको बकरीके दूधमें पीसकर लेप करे तो सातदिनमें इन्द्रलुप्त नष्ट होकर बाल निकल आते हैं ॥ २९ ॥

मधुकेन्दीवरमूर्वातिलाज्यगोक्षीरभृङ्गलेपेन।
अचिराद्भवन्ति केशा घनदृढमूलायतानृजवः ॥३०॥

मुलैठी, नीलकमल, मूर्वा, कालेतिल और भाँगरा इनको गौके दूधमें पीस कर घमि मिलाकर लेप करनेसे घने, मजबूत और घूँघरवाले बाल बहुत शीघ्र उत्पन्न होते हैं ॥ ३० ॥

केशरञ्जकयोग।

त्रिफला नीलिनीपत्रं लौहं भृङ्गरजः समम्।
अविमूत्रेण संयुक्तं कृष्णीकरणमुत्तमम् ॥ ३१ ॥

हरड, बहेडा, आमला, नीलवृक्षके पत्ते, लोहभस्म और भाँगरा, इन सबको समानभाग लेकर भेडके मूत्रमें मिलाकर शिरपर लेप करनेसे बाल काले होतेहैं॥

धात्र्याम्रमज्जलेपात्स्यात्स्थिरतास्निग्धकेशता ॥

आमले और कच्चे आमका गूदा इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे बाल काले, मजबूत और चिकने होजाते हैं ।

त्रिफलाचूर्णसंयुक्तं लौहचूर्णं विनिःक्षिपेत् ।
ईषत्पक्वे नारिकेले भृङ्गराजरसान्विते ॥ ३२ ॥
मासमेकन्तु निःक्षिप्य सम्यग्गर्त्तात्समुद्धरेत् ।
ततः शिरो मुण्डयित्वा लेपं दत्त्वा भिषग्वरः ॥३३॥
संवेष्ट्य कदलीपत्रैर्मोचयेत्सप्तमे दिने ।
क्षालयेत्त्रिफलाक्वाथैः क्षीरमांसरसाशनः ॥
कपालरञ्जनश्वैतत्कृष्णीकरणमुत्तमम् ॥ ३४ ॥

हरड, बहेडा, आमला और लोहचूर्ण इनको समानभाग लेकर एकत्र पीसकर भांगरेके रसमें डालकर कुछ थोडे पकेहुए नारियलमें भरदेवे फिर उसको एक महीनेतक रक्खा रहनेदेवे। पश्चात् शिरको मुँडवाकर उक्त औषधिका लेप करके केलेके कोमल पत्ते बाँधदेवे । फिर उनको सातवें दिन खोलकर त्रिफलेके काथसे शिरको धोवे । इस औषधिका व्यवहार करतेसमय सात दिनतक दूध और मांसरसका भोजन करे । यह प्रयोग शिरके सफेद बालोंको काला करनेके लिये सर्वोत्तम है ॥ ३२-३४ ॥

उत्पलं पयसा सार्द्धं मासं भूमौ निधापयेत् ।
केशानां कृष्णीकरणं स्नेहनञ्च विधीयते ॥३५॥

नीले कमलको दूधके साथ पीसकर लोहेके बर्त्तनमें भरकर भूमिमें गाडदेवे। फिर एक महीने पीछे निकालकर उसको शिरपर मले तो इससे बाल काले और चिकने होजाते हैं ॥ ३५ ॥

भृङ्गपुष्पं जवापुष्पं मेषदुग्धप्रपोषितम् ।
तेनैवालोडितं लौहपात्रस्थं भूम्यधःकृतम् ॥ ३६ ॥
सप्ताहादुद्धृतं पश्चाद्भृङ्गराजरसेन तु ।
आलोड्याभ्यज्य च शिरो वेष्टयित्वा वसेन्निशाम् ३७
प्रातस्तु क्षालनं कार्यमेवं स्यान्मूर्द्धरञ्जनम् ।
एवं सिन्दूरबालाम्रशङ्खभृङ्गरसैः क्रिया ॥ ३८ ॥

भाँगरेके फूल और जवापुष्प इन दोनोंको भेडके दूधमें खरल करके फिर भेंडके दूधमें मिलाकर लोहेके पात्रमें भरकर पृथ्वीमें गाड देवे। फिर एक सप्ताहके अनन्तर उसको निकालकर भाँगरेके रसके साथ मिलाकर रात्रिके समय शिरपर मालिश कर केलेके कोमल पत्तोंको बाँधदेवे। पश्चात् प्रातःकालमें पत्तोंको खोलकर त्रिफलेके क्वाथसे शिरको प्रक्षालन करे। इससे सम्पूर्ण केश कृष्णवर्ण होजाते हैं। इसी प्रकार सिन्दूर, कच्चे आमकी गुठलीकी मींग और शंखचूर्ण इनको भाँगरेके रसमें मिलाकर लेप करनेसेभी बाल काले होजाते हैं॥

रसाञ्जनं शङ्खचूर्णं काञ्जिकरससंयुक्तं हि सीसकं घृष्ट्वा।
लेपात्कचानर्कदलावनद्धान् शुभ्रान्करोति हि नीलतरान्३९

रसौत और शंखचूर्ण दोनोंको सीसेके पात्रमें काँजीके साथ घोटकर बालोंपर लेप करे और आकके पत्तोंको बाँधदेवे। यह योग सफेदबालोंको अत्यन्त कृष्णवर्णको करदेता है॥ ३९॥

लौहमलामलककल्कैः सजवाकुसुमैर्नरः सदा स्नायी।
पलितानीह न पश्यति गङ्गास्नायीव नरकाणि॥ ४०॥

मण्डूर, आमले और गुडहलके फूल इनको एकत्र पीसकर प्रतिदिन प्रातःसमय स्नान करके मस्तकपर लेप करे। इससे पलितरोग (बालोंका असमय पकना) इस प्रकार नष्ट होजाता है, जिस प्रकार गङ्गामें स्नान करनेवाला मनुष्य पाप दूर होजानेसे नरकको नहीं जाता है॥ ४०॥

निम्बस्य बीजानि हि भावितानि भृङ्गस्य तोयेन
तथाशनस्य। तैलन्तु तेषां विनिहन्ति न स्याद्दुग्धा-
न्नभोक्तुः पलितं समूलम्॥ ४१॥

नीमके बीजोंको विजयसारके क्वाथ और भाँगरेके रसमें यथाविधि सात दिनतक भावना देकर उनको निचोडकर तेल निकाललेवे। फिर इस तेलको नस्यद्वारा प्रयोग करे तो पलितरोग समूल नष्ट होजाता है। किन्तु, इसपर दूध और भातका भोजन करता रहे॥ ४१॥

निम्बस्य तैलं प्रकृतिस्थमेव नस्तो निषिक्तं विधिना यथावत्।
मासेन गोक्षीरभुजो नरस्य जराप्रभूतं पलितं निहन्ति॥४२॥

निरन्तर गौके दूधको पान करताहुआ मनुष्य यदि एक महीनेतक प्रकृतिस्थित नीमके तेलको विधिपूर्वक निकालकर नस्यद्वारा व्यवहार करे तो उसके प्रकृतिके अनुसार वृद्धावस्थाके प्रारम्भमें उत्पन्न हुआभी पलितरोग नष्ट होताहै ४२

काञ्जिकपिष्टशेलुफलमज्जानि सच्छिद्रलौहगे ।
यदर्कतापात्पतति तैलं तन्नस्यम्रक्षणात् ॥ ४३ ॥
केशानीलालिसंकाशाः सद्यः स्निग्धा भवन्ति च ।
नयनश्रवणग्रीवादन्तरोगांश्च हन्त्यदः ॥ ४४ ॥

लिसौडेकी मींगको काँजीमें पीसकर लोहेकी छलनीमें करके धूपमें रक्खे । धूपकी तेजीसे छलनीमेंसे जो तेल नीचे गिरताजाय उसको दूसरे पात्रमें ग्रहण करता जाय । फिर इस तेलको नस्यद्वारा और शिरपर मर्दनकर प्रयोग करे । इससे सफेदबाल भौंरोंकी पंक्तिके समान तत्काल काले और चिकने होजाते हैं।यह तेल, नेत्र, श्रवण, गर्दन और दाँतोंके रोगोंको नष्ट करता है ॥४४॥

कच्छू और अहिपूतनककी चिकित्सा ।

कासीसरोचनातुत्थहरितालरसाञ्जनैः ।
अम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं वृषकच्छ्वहिपूतयोः ॥ ४५ ॥

हीराकसीस, गोरोचन, तूतिया, हरिताल और रसौत इनको समानभाग लेकर काँजीमें पीसकर लेप करे । यह लेप वृषण कच्छू और अहिपूतनक रोगको नष्ट करता है ॥ ४५ ॥

पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचितम् ॥

पटोलपात, हरड, बहेडा, आमला और रसौत इनके द्वारा घृतको यथाविधि सिद्धकर पान करनेसे अहिपूतनक रोग दूर होता है ॥

शूकरदंष्ट्रकी चिकित्सा ।

रजनीमार्कवमूलं पिष्टं शीतेन वारिणा तुल्यम् ।
हन्ति विसर्पं लेपाद्वराहदशनाह्वयं घोरम् ॥ ४६ ॥

हल्दी और भाँगरेकी जड इन दोनोंको बराबर भाग लेकर शीतल जलमें पीसकर लेप करनेसे अत्यन्त घोर शूकरदंष्ट्र और विसर्परोग नष्ट होता है४६॥

नाडीचबीजकल्कः पीतो गव्येन सर्पिषा प्रातः ।
शमयति शूकरदंष्ट्रं सदाहपाकज्वरं घोरम् ॥ ४७ ॥

नारीशाकके बीजोंको पीसकर प्रातःकाल गौके घीमें मिलाकर सेवन करे । इससे दाह और पाकज्वरसहित भयङ्कर शूकरदंष्ट्ररोग शमन होता है ॥ ४७ ॥

विसर्पोक्तप्रतीकारः कार्यः शूकरदंष्ट्रके ॥

शूकरदंष्ट्ररोगमें विसर्परोगकी चिकित्साके अनुसार चिकित्सा करे ।

चाङ्गेरीघृत।

चाङ्गेरीकोलदध्यम्लनागरक्षारसंयुतम्।
घृतमुत्क्वथितं पेयं गुदभ्रंशरुजापहम्॥
शुण्ठीक्षारावत्र कल्कौ शिष्टस्तु द्रवमिष्यते॥ ४८॥

अम्लनोनियाका रस, सूखे बेरोंका काथ और खट्टा दही ये समानभाग मिश्रित ८ सेर, सोंठ और जवाखार इनका कल्क १ सेर तथा घृत २ सेर लेवे। सबको एकत्रकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे। इस घृतको पान करनेसे गुदभ्रंशरोग दूर होता है॥ ४८॥

वर्णकघृत।

मधुकं चन्दनं कङ्गु सर्षपं पद्मकन्तथा।
कालीयकं हरिद्रा च लोध्रमेभिश्च कल्कितैः॥ ४९॥
विपचेद्धि घृतं वैद्यस्तत्पक्वं वस्त्रगालितम्।
पादांशं कुङ्कुमं सिक्थं क्षिप्त्वा मन्दानले पचेत्॥५०॥
तत्सिद्धं शिशिरे नीरे प्रक्षिप्याकर्षयेत्ततः।
तदेतद्वर्णकं नाम घृतं वक्त्रप्रसादनम्॥ ५१॥
अनेनाभ्यासलिप्तं हि वलीभूतमपि क्रमात्।
निष्कलङ्केन्दुबिम्बाभं स्याद्विलासवतीमुखम्॥५२॥

मुलैठी, लालचन्दन, मालकाङ्गनी, सरसों, पद्माख, कालाचन्दन, हल्दी और लोध इन सबका कल्क आधसेर, घी दो सेर और पाकके लिये जल ८ सेर लेवे। सबको एकत्र मिलाकर यथाविधि घृतको पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छानलेवे। फिर उसमें केशर आठ तोले और मोम आठ तोले डालकर दुवारा मन्दमन्द अग्निपर पकावे। जब पकते पकते जल बिलकुल न रहे तब उस घृतपात्रको उतारकर शीतल जलमें रखककर ठंढा करे। इस प्रकार यह वर्णकनामवाला घृत सिद्ध होता है। इसको मुखमें लगानेसे मुखमें प्रसन्नता होती है और बली (झुर्रियोंका पडना) रोग दूर होता है। एवं विलासिनी स्त्रियोंका मुख निर्मल चन्द्रमाकी समान कान्तियुक्त होता है॥ ४९-५२॥

भृङ्गराजघृत।

भृङ्गराजरसे पक्वं शिखिपित्तेन कल्कितम्।
घृतं नस्येन पलितं हन्यात्सप्ताहयोगतः॥ ५३॥

भाँगरेके रसमें मोरके पित्तका कल्क डालकर घृतको पकावे । इस घृतको सात दिनतक नस्य लेनेसे पलितरोग नष्ट होता है ॥ ५३ ॥

उपोदिकाक्षारतैल।

उपोदिकासर्षपनिम्बमोचकर्कारुकैर्वारुकभस्मतोये।
तैलं विपक्वं लवणांशयुक्तं यत्पाददारीं विनिहन्ति शीघ्रम् ॥

पोईका शाक, सफेदसरसों, नीमकी छाल, केलेका मोचा, पीले पेठे और ककोडेका डंठल इन सबको समानभाग लेकर अन्तर्धूमकी विधिसे दग्ध करके भस्म करलेवे। फिर भस्मके द्वारा क्षारजलको निकाललेवे। इस प्रकार निकाले हुए आठ सेर जलमें एक सेर सैंधानमक और दो सेर तिलका तेल डालकर तेलको सिद्ध करे। यह तेल पाददरीरोगको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ५४ ॥

मूषिकाद्यतैल।

क्षीरे महत्पञ्चमूलं मूषिकामन्त्रवर्जितम्।
पक्त्वा तस्मिन्पचेत्तैलं वातघ्नौषधसंयुतम् ॥
गुदभ्रंशमिदं तैलं पानाभ्यङ्गात्प्रसाधयेत् ॥ ५५ ॥

दूधमें बेल, शोनापाठा, कुम्भेर, पाढर और अरणी इनकी छाल समान भाग तथा आँतों रहित चूहेका मांस डालकर पकावे। जब पकते पकते केवल दूध शेष रहजाय तब उसमें वातनाशक औषधियें डालकर तिलके तैलको पकावे। इस तेलको पीनेसे और मालिश करनेसे गुदभ्रंशरोग दूर होताहै ॥ ५५ ॥

द्विहरिद्राद्यतैल।

हरिद्राद्वययष्ट्याह्वकालीयककुचन्दनैः।
प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठापद्मपद्मककुङ्कुमैः ॥ ५६ ॥
कपित्थतिन्दुकप्लक्षवटपत्रैः पयोन्वितैः।
लेपयेत्कल्कितैरेभिस्तैलञ्चाभ्यञ्जनं चरेत् ॥ ५७ ॥
विप्लवं नीलिकाव्यङ्गांस्तिलकान्मुखदूषिकान्।
नित्यसेवी जयेत्क्षिप्रं मुखं कुर्यान्मनोरमम् ॥ ५८ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, मुलैठी, पीलाचन्दन, लालचन्दन, पुण्डारिया, मंजीठ, कमलपत्र, पद्माख, केशर, कैथके पत्ते, तेंदुके पत्ते, पाखर और बडके पत्ते इनके समानभाग मिश्रित कल्कके द्वारा तिलके तेलको उत्तमप्रकार सिद्धकर मालिश करे। यह तेल नीलिका, व्यंग, तिलकालक और मुखके सब विकारोंको नष्ट करता है। इसको निरन्तर सेवन करनेसे मुख अत्यन्त मनोहर होता है ॥५८॥

कुंकुमाद्यतैल।

कुङ्कुमं किंशुकं लाक्षा मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम्।
कालीयकं पद्मकञ्च मातुलुङ्गं सकेशरम् ॥ ५९ ॥
कुसुम्भं मधुयष्टी च फलिनी मदयन्तिका।
निशे द्वे रोचनापद्ममुत्पलञ्च मनःशिला ॥ ६० ॥
काकोल्यादिसमायुक्तैरेतैरक्षसमैर्भिषक्।
लाक्षारसपयोभ्याञ्च तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ६१ ॥
कुङ्कुमाद्यमिदं तैलमभ्यङ्गात्काञ्चनोपमम्।
करोति वदनं सद्यः पुष्टिलावण्यकान्तिकम् ॥
सौभाग्यलक्ष्मीजननं वशीकरणमुत्तमम् ॥ ६२ ॥

टेसूके फूल, लाख, मंजीठ, लालचन्दन, पीलाचन्दन, पद्माख, बिजौरे-नींबूकी जड, बिजौरे नींबूकी केशर, कसूमके फूल, मुलैठी, फूल प्रियंगू, मद-यन्तिका (मल्लिका विशेष) हल्दी, दारुहल्दी, गोरोचन, नीलकमल, मैनसिल और काकोल्यादिगणकी समस्त औषधियाँ इन प्रत्येकको दो दो तोले लेकर एकत्र कूटपीसकर कल्क बनालेवे। इस कल्कको लाखके ४ सेर रस और चार सेर दूधके साथ मिलाकर एक प्रस्थ तिलके तेलको उत्तम प्रकार पकावे। जब पाक सिद्ध होजाय तब उसमें दो तोले नागकेशर मिलादेवे। यह कुंकुमाद्य तेल निरन्तर मालिश करनेसे मुखको सुवर्णकी समान कान्तिमान्, पुष्ट और रूपलावण्यतासे युक्त बनादेता है। एवं सौभाग्य और लक्ष्मीकी वृद्धि करता है। यह उत्तम वशीकरण योग है ॥ ५९-६२ ॥

त्रिफलाद्यतैल।

त्रिफलायोरजोयष्टिमार्कवोत्पलशारिवैः।
ससैन्धवैः पचेत्तैलमभ्यङ्गाद्रुक्षिकां जयेत् ॥ ६३ ॥

त्रिफला, लोहभस्म, मुलैठी, भाँगरा, नीलकमल, अनन्तमूल और सैंधा-नमक इनके कल्कद्वारा विधिपूर्वक तेलको सिद्धकर मालिश करनेसे रूक्षिका-रोग दूर होता है ॥ ६३ ॥

महाभृङ्गराजतैल।

आनूपदेशसम्भूतं गृहीत्वा मार्कवं शुभम्।
सुधौतं जर्जरीकृत्य स्वरसं तस्य चाहरेत् ॥ ६४ ॥

चतुर्गुणेन तेनैव तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
एभिर्द्रव्यैःक्षीरपिष्टैः संयोज्य मतिमान् भिषक् ॥६५॥
मञ्जिष्ठापद्मकं लोध्रं चन्दनं गैरिकं बला ।
रजन्यौ केशरश्चैव प्रियङ्गु मधुयष्टिका ॥ ६६ ॥
प्रपौण्डरीकं गोपी च पलिकान्यत्र दापयेत् ।
सम्यक्पक्वं ततो ज्ञात्वा शुभे भाण्डे निधापयेत् ॥६७॥
केशपाते शिरोदुष्टे मन्यास्तम्भे गलग्रहे ।
शिरःकर्णाक्षिरोगेषु नस्येऽभ्यङ्गे च योजयेत ॥ ६८ ॥
कुञ्चिताग्राननतिस्निग्धान् कचान्कुर्याद्दृढांस्तथा ।
खालित्यमिन्द्रलुप्तञ्च तैलमेतद्व्यपोहति ॥ ६९ ॥

अनूपदेश (खादर) में उत्पन्नहुए भँगरेको लाकर जलसे धोकर, कुचल-कर उसका रस निकाले । फिर १ आढक परिमाण उक्तरसके साथ १ प्रस्थ तिलके तेलको पकावे। पकते समय उसमें दूधमें पीसेहुए मंजीठ, पद्माख, लोध, चन्दन, गेरू, खिरैंटी, हल्दी, दारुहल्दी, नागकेशर, फूलप्रियंगु, मुलैठी, पुण्ड-रिया और अनन्तमूल इन औषधियोंके कल्कको डाल देवे । जब पाक अच्छे प्रकार सिद्ध होजाय तब उतारकर स्वच्छपात्रमें भरकर रख देवे । इस तेलको बालोंका गिरना, शिरोरोग, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, शिर, कान और नेत्ररोगमें नस्य और अभ्यङ्गद्वारा प्रयोग करे । यह तेल बालोंको घूँघरवाले, अत्यन्त स्निग्ध घने बनाता है तथा खालित्य और इन्द्रलुप्तरोगको शीघ्र नष्ट करता है॥

आदित्यपाकगुडूचीतैल ।

वटावरोहकेशिन्योश्चूर्णेनादित्यपाचितम् ।
गुडूचीस्वरसे तैलमभ्यङ्गात्केशरोपणम् ॥ ७० ॥

गिलोयके स्वरसमें बडकी डाढी और बालछडका चूर्ण डालकर धूपमें रख-कर उत्तमप्रकार तेलको पकावे। इस तेलकी मालिश करनेसे केश उत्पन्न होतेहैं॥

चन्दनाद्यतैल ।

चन्दनं मधुकं मूर्वा त्रिफला नीलमुत्पलम् ।
कान्ता वटावरोहश्च गुडूची बिसमेव च ॥ ७१ ॥
लौहचूर्णं तथा केशी शारिवे द्वे तथैव च ।
मार्कवस्वरसेनैव तैलं मृद्वग्निना पचेत ॥ ७२ ॥

शिरस्युत्पचिताः केशा जायन्ते घनकुञ्चिताः ।
स्निग्धाश्च दृढमूलाश्च तथा भ्रमरसन्निभाः ॥
नस्येनाकालपलितं निहन्यात्तैलमुत्तमम् ॥ ७३ ॥

भाँगरेके रसमें रक्तचन्दन, मुलेठी, मूर्वा, त्रिफला, नीलकमल, फूलप्रियंगु बडकी कोंपल, गिलोय, भसींडा, लोहचूर्ण, भूतकेशी, उसवा और अनन्तमूल इनका समानभाग मिश्रित चूर्ण एवं तिलका तेल डालकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे । इस तेलको शिरपर मलनेसे अत्यन्त घने और घुँघराले बाल उत्पन्न होते हैं । एवं स्निग्ध, दृढमूलवाले और भौंरेके समान काले होते हैं । इस तेलको सूँघनेसे असमय बालोंका पकना नष्ट होता है ॥ ७१-७३ ॥

महानीलतैल ।

आदित्यवल्या मूलानि कृष्णशैरीयकस्य च ।
सुरस्य चैव पत्राणि फलं कृष्णशणस्य च ॥ ७४ ॥
मार्कवः काकमाची च मधुकं देवदारु च ।
पृथक् दशपलांशानि पिप्पल्यस्त्रिफलाञ्जनम् ॥ ७५ ॥
प्रपौण्डरीकं मञ्जिष्ठा लोध्रं कृष्णागुरूत्पलम् ।
आम्रास्थि कर्दमः कृष्णो मृणाली रक्तचन्दनम् ॥७६॥
नीली भल्लातकास्थीनि कासीसं मदयन्तिका ।
सोमराज्यसनं शस्त्रं कृष्णौ पिण्डीतचित्रकौ ॥ ७७ ॥
पुष्पाण्यर्जुनकाश्मर्योराम्रजम्बुफलानि च ।
पृथक् पञ्चपलैर्भागैः सुपिष्टैराढकं पचेत् ॥ ७८ ॥
वैभीतकस्य तैलस्य धात्रीरसचतुर्गुणम् ।
कुर्यादादित्यपाकं वा यावच्छुष्को भवेद्रसः ७९ ॥
लौहपात्रे ततः पूतं संशुद्धमुपयोजयेत ।
पाने नस्ये क्रियायाश्च शिरोऽभ्यङ्गे तथैव च ॥ ८० ॥
एतच्चाक्षुष्यमायुष्यं शिरसः सर्वरोगनुत ।
महानीलमितिख्यातं पलितघ्नमनुत्तमम् ॥ ८१ ॥

सूर्यावर्त्त (हुलहुल) की जड, नीलापियाबाँसा, वनतुलसी, कालीसनके फल, भाँगरा, मकोय, मुलेठी, देवदारु ये प्रत्येक औषधि दसदस पल, पीपल, त्रिफला, रसौत, पुण्डरिया, मंजीठ, लोध, कालीअगर, नीलोत्पल, आमकी

गुठली, कमलिनीकी जडकी कीचड, कमलनाल, लालचन्दन, नील, भिलावेकी मींग, कसीस, मोतिया, बावची, विजयसार, लोहचूर्ण, कृष्णचूडा (पुष्पवृक्ष विशेष), मैनफलकी छाल, चीतेकी जड, अर्जुन और कुम्भेरके फूल आम और जामुनके फल इन सबको पृथक् पृथक् पांच २ पल लेकर खूब बारीक कूट पीसकर चूर्ण करलेवे। बहेडेका तेल १ आढक और आमलोंका रस ४ आढक परिमाण सबोंको यथाविधि मिलाकर जबतक रस न सूखजाय तबतक सूर्य्यतापद्वारा पाक करे। फिर उत्तमप्रकार सिद्ध होजानेपर उस तेलको वस्त्रमें छानकर लोहेके पात्रमें भरकर रखदेवे। इस तेलको पान, नस्य और शिरोमर्दनद्वारा प्रयोग करे। यह तेल नेत्रोंको हितकारी, आयुवर्द्धक और शिरके सम्पूर्णरोगोंको नष्ट करनेवाला है।यह महानीलतेल पलितरोगको नष्ट करनेके लिये सर्वोत्तम है॥ ७४-८१॥

शय्यामूत्रकी चिकित्सा।

कृतमूत्रार्द्रभूभागमृदमाकृष्य खोलके।
संभर्ज्य मधुसर्पिर्भ्यां लेहयेन्मूत्रितं जनम्॥
शय्यायां मूत्ररोधः स्यान्मूत्रितस्य न संशयः॥ ८२॥

जो मनुष्य खाटपर मूतरहताहो उसको जहाँ उसने पेशाब किया हो उसी खाटके नीचेकी गीली मिट्टीको खुरचकर खोलमें भूनकर शहद और घीमें मिलाकर चटावे। इससे खाटपर मूतना निस्सन्देह बन्द होता है॥ ८२॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां क्षुद्ररोग-चिकित्सा॥

मुखरोगकी चिकित्सा।

ओष्ठगत मुखरोगकी चिकित्सा।

ओष्ठप्रकोपे वातोत्थे शाल्वणेनोपनाहनम्।
मस्तिष्के चैव नस्ये च तैलं वातहरैः शृतम्॥
स्वेदोऽभ्यङ्गः स्नेहपानं रसायनमिहेष्यते॥ १॥

वातजन्य ओष्ठरोगमें मृदु प्रलेप एवं वातनाशक औषधियोंके द्वारा बनाये हुए तेलसे शिरमें वस्ति और नस्य देवे। तथा सेंक, तैलादिका मर्दन, स्नेहपान और रसायन क्रिया करे॥ १॥

वेधं शिराणां वमनं विरेकं तिक्तस्य पानं रसभोजनञ्च।
शीतान्प्रलेपान्परिषेचनञ्च पित्तोपसृष्टेष्वधिकेषु कुर्यात्॥ २॥

पित्तज ओष्ठरोगमें ओष्ठकी शिराको वेधकर रक्तमोक्षण तथा वमन, विरेचन कराकर तिक्तघृतका पान और तिक्तरसामिश्रित पदार्थोंका भोजन करावे। शीतल पदार्थोंको प्रलेप और सेचनद्वारा प्रयोग करे ॥ २ ॥

शिरोविरेचनं धूमः स्वेदः कवलधारणम् ।
हृते रक्ते प्रयोक्तव्यमोष्ठकोपे कफात्मके ॥ ३ ॥

कफजनित ओष्ठरोगमें ओष्ठकी समीपवर्त्तिनी शिराको वेधकर रुधिर निकलवावे। फिर नस्य, धूम, सेंक और कफनाशक द्रव्योंका कवल धारण करे॥३॥

त्रिकटुः सर्जिकाक्षारः क्षारश्च यावशूकजः ।
क्षौद्रयुक्तं विधातव्यमेतच्च प्रतिसारणम् ॥ ४ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, सज्जी और जवाखार इनको समानभाग लेकर शहदमें मिलाकर पीडास्थानपर घर्षण करे ॥ ४ ॥

पित्तरक्ताभिघातोत्थाञ्जलौकाभिरुपाचरेत् ।
पित्तविद्रधिवच्चापि क्रियां कुर्य्यादशेषतः ॥ ५ ॥

रक्तपित्त और अभिघातसे उत्पन्नहुए ओष्ठरोगमें जौंक लगवाकर किञ्चित् रुधिर निकलवावे और शेषक्रिया पित्तजविद्रधिरोगकी समान करे ॥ ५ ॥

दन्तगतमुखरोगकी चिकित्सा ।

चलदन्तस्थिरकरं कुर्य्याद्बकुलचर्वणम् ।
आर्त्तगलदलक्वाथगण्डूषो दन्तचालनुत् ॥
दन्तचाले हितं श्रेष्ठं तिलोग्राचर्वणं सदा ॥ ६ ॥

जिसके दाँत हिलते हों तो वह मौलसिरीके फल चर्वण करे अथवा नीलीकटसरैयाके पत्तोंका क्वाथ बनाकर उसका गण्डूष धारण करे। इससे दाँतोंका हिलना बन्द होजाता है। दाँतोंके हिलनेपर तिल और वच इन दोनोंको एकत्र मिलाकर निरन्तर चर्वण करना हितकारी है ॥ ६ ॥

दन्तपुप्पुटके कार्यं तरुणे रक्तमोक्षणम् ।
सपञ्चलवणः क्षारः सक्षौद्रः प्रतिसारणम् ॥ ७ ॥

नवीन दन्तपुप्पुटरोगमें रक्तमोक्षण करावे, फिर पाँचों नमक और जवाखार इनको पीसकर शहदमें मिलाकर दन्तमार्जन करे ॥ ७ ॥

दन्तानां तोदहर्षे च वातघ्नाः कवडा हिताः ॥

गरम तेल, घी और स्नेहयुक्त दशमूलका क्वाथ इनके द्वारा कवल धारण करनेसे दाँतोंकी पीडा और दन्तहर्षरोग दूर होता है ।

माक्षिकं पिप्पली सर्पिर्मिश्रितं धारयेन्मुखे ।
दन्तशूलहरं प्रोक्तं प्रधानमिदमौषधम् ॥ ८ ॥

पीपलके चूर्णको ६ माशे लेकर एक तोले घी और दो तोले शहदमें मिलाकर मुखमें धारण करे। यह औषधि दन्तशूलको हरनेके लिये सर्वप्रधानहै॥८॥

विस्राविते दन्तवेष्टे व्रणन्तु प्रतिसारयेत् ।
लोध्रपत्तुङ्गमधुकलाक्षाचूर्णैर्मधूत्तरैः ॥
गण्डूषे क्षीरिणो योज्याः सक्षौद्रघृतशर्कराः ॥ ९ ॥

दन्तवेष्टरोगमें जोंक आदिके द्वारा रक्तमोक्षण कराकर लोध, लालचन्दन, मुलैठी और लाख इनको एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर व्रणस्थानपर लगावे और शहद, घृत एवं चीनी मिलाकर दूधवाले बड, गूलर आदि वृक्षोंके क्काथ द्वारा गण्डूष (कुल्ले) करे। इससे दन्तवेष्टरोगके व्रण अच्छे होते हैं ॥ ९ ॥

शैशिरे हृतरक्ते तु लोध्रमुस्तरसाञ्जनैः ।
सक्षौद्रैः शस्यते लेपो गण्डूषे क्षीरिणो हिताः ॥ १० ॥

शैशिररोगमें जोंक लगवाकर रक्त निकलवावे। फिर लोध, नागरमोथा और रसौत इनका चूर्ण करके शहदमें मिलाकर लेप करे। और गण्डूषमें बड-आदि क्षीरीवृक्षोंका क्काथ प्रयोग करना हितकर कहा है ॥ १० ॥

क्रियां परिदरे कुर्याच्छीतादोक्तां विचक्षणः ॥

परिदर नामक दन्तरोगमें शीतादरोगमें कहीहुई विधिके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ॥

संशोध्योभयतः कायं शिरश्चोपकुशे ततः ।
काकोदुम्बरिकागोजीपत्रैर्विस्रावयेद्भिषक् ॥ ११ ॥
क्षौद्रयुक्तैश्च लवणैः सव्योषैः प्रतिसारयेत् ।
पिप्पल्यः सर्षपाः श्वेता नागरं नैचुलं फलम् ॥
सुखोदकेन संमर्द्य कवडं तस्य योजयेत् ॥ १२ ॥

उपकुशनामकदन्तरोगमें प्रथम वमन, विरेचन और नस्य देकर शरीरकी शुद्धि करे। पश्चात् गूलरके पत्ते और गोजियाके पत्तोंसे मसूडोंको घिसकर रुधिर निकाले। फिर पाँचोंनमक और त्रिकुटेके चूर्णको शहदमें मिलाकर घिसे और पीपल,सफेद सरसों, सोंठ और समुद्रफल इनको एकत्र पीसकर किञ्चित् उष्ण जलके साथ मिश्रितकर रोगीको कवल धारण करनेके लिये देवे ॥ १२॥

शस्त्रेण दन्तवैदर्भे दन्तमूलानि शोधयेत् ।
ततः क्षारं प्रयुञ्जीत क्रियाः सर्वाश्च शीतलाः ॥१३॥

दन्तवैदर्भरोगमें अस्त्रसे दाँतोंकी जडमेंसे पीप आदिको निकालकर क्षार प्रयोग करे और सब शीतल क्रिया करे ॥ १३ ॥

उद्धृत्याधिकदन्तन्तु ततोऽग्निमवचारयेत् ।
कृमिदन्तकवच्चात्र विधिः कार्या विजानता ॥ १४ ॥

अधिकदन्तरोगमें अधिक दाँतको उखाडकर, व्रणस्थानको अग्निसे दग्ध करदेवे । फिर कृमिदन्तरोगकी समान सम्पूर्ण चिकित्सा करे ॥ १४ ॥

छित्त्वाधिमांसं सक्षौद्रैरेतैश्चूर्णैरुपाचरेत् ।
पाठावचातेजवतीसर्ज्जिकायावशूकजैः ॥
क्षौद्रद्वितीयाः पिप्पल्यः कवलश्चात्र कीर्तितः ॥१५॥

दाँतोंके अधिकमांसको अस्त्रद्वारा काटकर पाढ, वच, चव्य, सज्जी और जवाखार इनके चूर्णको समानभाग लेकर शहदमें मिलाकर व्रणस्थानपर लगावे । और पीपलके चूर्णको शहदके साथ मिलाकर कवल धारण करे ॥ १५ ॥

पटोलनिम्बत्रिफलाकषायश्चात्र धावने ।
शिरोविरेकश्च हितो धूमो वैरेचनश्च यः ॥ १६ ॥

अधिमांसरोगमें पटोलपात, नीमके पत्ते और त्रिफला इनके काथसे दन्त-व्रणोंको धोवे और नस्य तथा कफनिस्सारक धूम पानकरे ॥ १६ ॥

नाडीव्रणहरं कर्म्म दन्तनाडीषु कारयेत् ।
यं दन्तमधिजायेत नाडी तं दन्तमुद्धरेत् ॥ १७ ॥
छित्त्वा मांसानि शस्त्रेण यदि नोपरिजो भवेत् ।
शोधयित्वा दहेच्चापि क्षारेण ज्वलनेन वा ॥ १८ ॥

दन्तनाडीरोगमें नाडीव्रणरोगकी समान चिकित्सा करे। और जिस दाँतमें नाडी उत्पन्न हुई हो उस दाँतको उखाड डाले। यदि नाडी बहुत भीतरको हो तो वहाँके मांसको शस्त्रसे काटकर पीब आदिको निकाल डाले, फिर क्षारसे अथवा अग्निसे उस घावको दग्ध करदेवे ॥ १७–१८ ॥

गतिर्हि नास्ति हन्वस्थि दशने समुपेक्षिते ।
तस्मात्समूलदशनं निर्हरेद्भग्नमस्थि च ॥ १९ ॥

नीचेके दाँतोंकी नाडीकी उपेक्षाकर दाँतको नहीं उखाडे, किन्तु ठोडीकी

अस्थितक शस्त्रसे चीर देवे। यदि दाँत बीचमेंसे टूटगया हो तो उस हड्डीको और दाँतको जडसहित निकाल डाले ॥ १९ ॥

उद्धृते तूत्तरे दन्ते शोणितं संप्रसिच्यते।
रक्तातियोगात्पूर्वोक्ता घोरा रोगा भवन्ति च ॥
चलमप्युत्तरं दन्तमतो नोपहरेद्भिषक् ॥ २० ॥

ऊपर दाँतको उखाडनेसे रुधिर अधिक निकलता है। और अधिक रुधिरके निकलनेसे पूर्वोक्त भयङ्कररोग उत्पन्न होजाते हैं। इस कारण ऊपरका दाँत हिलता हो तो भी नहीं उखाडना चाहिये ॥ २० ॥

कषायं जातीमदनकटुकास्वादुकण्टकैः।
लोध्रखादिरमञ्जिष्ठायष्ट्याह्वैश्चापि यत्कृतम् ॥
तैलं संशोधनं तद्धि हन्याद्दन्तगतां गतिम् ॥ २१ ॥

चमेलीके पत्ते, मदनवृक्षका काँटा, कुटकी और कण्टाई इनका काथ बनाकर कवल धारण करे और लोध, खैर, मंजीठ तथा मुलैठी इनके कल्कद्वारा यथाविधि तेलको सिद्ध करके दाँतोंको मार्जित करे। इससे पीव आदि दूर होकर दन्तनाडीरोग नष्ट होता है ॥ २१ ॥

सुखोष्णाः स्नेहकवलाः सर्पिषस्त्रैवृतस्य वा।
निर्यूहाश्चानिलघ्नानां दन्तहर्षप्रमर्दनाः।
स्नैहिकश्च हितो धूमो नस्यं स्नैहिकमेव च ॥ २२ ॥

दन्तहर्षरोगमें घी, तेल, चर्बी और मज्जा इनमेंसे किसी एकद्रव्यको कुछ गरमकर निसोतके घृत अथवा वातनाशक औषधियोंके काथमें मिलाकर कवल धारण करे। इसमें स्निग्ध द्रव्योंका धूमपान तथा स्निग्धद्रव्योंका नस्य लेना हितकर है ॥ २२ ॥

अहिंसन् दन्तमूलानि शर्करामुद्धरेद्भिषक्।
लाक्षाचूर्णैर्मधुयुतस्ततस्तां प्रतिसारयेत ॥ २३ ॥
दन्तहर्षक्रियाश्चापि कुर्यान्निरवशेषतः ॥ २४ ॥

दन्तशर्करामें वैद्य दाँतोंकी जडको नहीं चीरे, किन्तु शर्कराको चीरकर निकाल देवे। फिर लाखके चूर्णके साथ शहद मिलाकर उक्तस्थानपर घिसे। पश्चात् दन्तहर्षरोगमें कहीहुई चिकित्साके अनुसार समस्त क्रियाकरे ॥ २३ ॥

कपालिका कृच्छ्रसाध्या तत्राप्येषा क्रिया हिता ॥

कपालिकारोग कृच्छ्रसाध्य है तथापि उसमें दन्तहर्षकी समान चिकित्सा करे॥

जयेद्विस्रावणैः छिन्नमचलं कृमिदन्तकम् ।
तथावपीडैर्वातघ्नैः स्नेहगण्डूषधारणैः ॥ २५ ॥
भद्रदार्वादिवर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः ।
हिङ्गु सोष्णन्तु मतिमान् कृमिदन्तेषु दापयेत् ॥ २६ ॥

अचलकृमिदन्तकनामरोगमें प्रथम स्वेद देकर रुधिर निकाले। फिर वातनाशक द्रव्योंसे नस्य देवे और स्नेहद्रव्योंके कुल्ले करवावे। तथा भद्रदारु आदि गणकी औषधों और पुनर्नवेका लेप करे एवं स्निग्धद्रव्योंका भोजन करे। कृमिदन्तरोगमें हींगको कुछ गरम करके डाढके नीचे दबानेसे विशेष लाभ होता है॥

बृहतीभूमिकदम्बपञ्चाङ्कुलकण्टकारिकाक्वाथः ।
गण्डूषस्तैलयुतः कृमिदन्तकवेदनानाशनः ॥ २७ ॥

बडी कटेरी, भुईकदम, अण्डकी जड और कटेरी इनका क्वाथ बनाकर उसमें कडवा तेल डालकर कुल्ले करे। इससे कृमिदन्तकी पीडा दूर होती है ॥ २७ ॥

नीलीवायसजङ्घास्नुकूदुग्धीनान्तु मूलमेकैकम् ।
सञ्चर्व्य दशनविधृतं दशनकृमिशातनं प्राहुः ॥ २८ ॥

नीलवृक्ष, काकजंघा, थूहर और दुद्धी इनमेंसे प्रत्येककी जडको लेकर यथाक्रम चर्वणकर दाँतोंमें रखनेसे दाँतोंके कीडे गिरपडते हैं ॥ २८ ॥

चलमुद्धृत्य वा स्थानं दहेत्तु सुषिरस्य वा ।

हिलतेहुए दाँतको उखाडकर उस स्थानको और कीडेवाले दाँतके छेदको अग्निसे दग्ध करे ॥

हनुमोक्षे समुद्दिष्टा कार्या चार्दितवत् क्रिया ॥ २९ ॥

हनुमोक्षरोगमें अर्दितरोगकी समान सम्पूर्ण क्रिया करे ॥ २९ ॥

कर्कटाङ्घ्रिक्षीरपक्वघृताभ्यङ्गेन नश्यति ।
दन्तशब्दः कर्कटाङ्घ्रिलेपाद्वा दन्तयोजितात् ॥ ३० ॥

कैंकडेके एक पैरको लेकर दूध और घृतमें मिलाकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे। इस घृतकी दाँतोंमें मालिश करनेसे अथवा कैंकडेके पैरको पीसकर लेप करनेसे दाँतोंका कडकडशब्द होना दूर होता है ॥ ३० ॥

चरणौ कर्कटस्यापि गोक्षीरेण विपाचयेत् ।
घनताञ्च गते तस्मिन् रात्रौ चरणलेपनात् ॥
दन्तानां कडमर्दीं हन्ति सत्यं सत्यञ्च पार्वति ॥३१॥

हे पार्वति ! कैंकडेके दो पैरोंको पीसकर गौके दूधमें पकावे । पकते २ जब पाक गाढ होजाय तब उसको उतारलेवे, फिर रात्रिमें उसका चरणोंपर लेप करे तो इससे दाँतोंकी कडकडाहट दूर होती है । यह बिल्कुल सत्य है ॥३१॥

कृष्णवर्णाश्वपुच्छस्य सप्तकेशेन वेणिका ।
तां बद्ध्वा च गले दन्तकडमर्दीं हन्ति मानवः ॥३२॥

काले रंगवाले घोडेकी पूँछके सात बालोंकी एक वेणी बनावे । उसको गलेमें बाँधनेसे दाँतोंका कडकडाना बन्द होता है ॥ ३२ ॥

जिह्वागत मुखरोगकी चिकित्सा ।

ओष्ठकोपे त्वनिलजे यदुक्तं प्राक् चिकित्सितम् ।
कण्टकेष्वनिलोत्थेषु तत्कार्यं भिषजा खलु ॥ ३३ ॥

वातज ओष्ठरोगमें जो पूर्व चिकित्सा कहीगई है तदनुसारही वातजनित जिह्वाके काँटोंपर चिकित्सा करे ॥ ३३ ॥

पित्तजेषु निघृष्टेषु निःसृते दुष्टशोणिते ।
प्रतिसारणगण्डूषनस्यञ्च मधुरं हितम् ॥ ३४ ॥

पित्तजजिह्वारोगमें सिहोडा आदिके कैडे पत्तोंसे जिह्वाको घिसकर दूषित रक्त निकाल देवे । फिर काकोल्यादिगणकी औषधियोंके चूर्णसे प्रतिसारण, गण्डूष और नास ग्रहण करे ॥ ३४ ॥

कण्टकेषु कफोत्थेषु लिखितेष्वसृजः क्षये ।
पिप्पल्यादिर्मधुयुतः कार्यन्तु प्रतिसारणम् ॥ ३५ ॥

कफजनित कण्टकरोगमें काँटोंको अस्त्रसे कटवाकर उनका रुधिर निकलवादे। फिर पिप्पल्यादिगणकी औषधियोंके चूर्णको शहदमें मिलाकर जिह्वापर घिसे३५

गृह्णीयात्कवलान्वापि गौरसर्षपसैन्धवैः ।
पटोलनिम्बवार्त्ताकुक्षारयुक्तैश्च भोजयेत् ॥ ३६ ॥

सफेद सरसों और सैंधेनमकको एकत्र पीसकर उष्णजलमें मिलाकर इनका कवल धारण करे । अथवा पटोलपात, नीमके पत्ते, बैंगन और क्षार इनको मिलाकर कुलथी आदिका यूष भोजन करे ॥ ३६ ॥

जिह्वाजाड्यं चिरजं माणकभस्मलवणतैलघर्षणं हन्ति ।
ईषत्स्नुक्क्षीराक्तं जम्बीराद्यम्लचर्वणं वापि ॥ ३७ ॥

मानकन्दकी भस्म, सैंधानमक और तेल इनको एकत्र मिलाकर जिह्वापर घर्षण करे । अथवा जम्बीरीनींबूकी केशरमें कुछ थोडासा थूहरका दूध मिलाकर चर्वण करे । इससे जिह्वाकी जडता नष्ट होती है ॥ ३७ ॥

उपजिह्वान्तु संलिख्य क्षारेण प्रतिसारयेत्।
शिरोविरेकगण्डूषधूमैश्चैनामुपाचरेत् ॥ ३८ ॥

उपजिह्वा (काग) को सिहोरा आदिके पत्तोंसे खुरचकर उसपर जवाखारको घिसे। फिर नस्य, गण्डूष और धूमपान आदि उपचारोंको करके उपजिह्वारोगको जीते ॥ ३८ ॥

व्योषक्षाराभयावह्निचूर्णमेतत्प्रघर्षणम्।
उपजिह्वाप्रशान्त्यर्थमेतैस्तैलं विपाचयेत् ॥ ३९ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार, हरड और चीतामूल इनके चूर्णको जिह्वापर घिसे। अथवा उक्त औषधियोंके चूर्णद्वारा तैलको पकाकर वह तेल मर्दन करे तो उपजिह्वारोग शमन होता है ॥ ३९ ॥

तालुगतमुखरोगकी चिकित्सा।

छित्त्वा घर्षेद्गलशुण्ठीं व्योषोग्राक्षौद्रसिन्धुजैः।
कुष्ठोषणवचासिन्धुकणापाठाप्लवैरपि ॥
सक्षौद्रैर्भिषजा कार्यं गलशुण्ठ्याः प्रघर्षणम् ॥ ४० ॥

गलशुण्ठी (कण्ठशुण्ठी) रोगको अस्त्रसे काटकर सोंठ, मिरच, पीपल, वच और सैंधेनमकके चूर्णको शहदमें मिलाकर अथवा कूठ, कालीमिरच, वच, सेन्धानमक, पीपल, पाढ और नागरमोथा इनके समानभाग चूर्णको शहदमें मिश्रितकर गलशुण्ठीपर घिसे ॥ ४० ॥

उपनासाव्यधो हन्ति गलशुण्ठ्या विशेषतः।
गलशुण्ठीहरं तद्वच्छेफालीमूलचर्वणम् ॥ ४१ ॥

नासिकाके समीपकी चौथी शिराको छोडकर अन्य शिराको वेधे। अथवा निर्गुण्डीकी जडको चाबे तो गलशुण्ठीरोग दूर होता है ॥ ४१ ॥

वचामतिविषां पाठां रास्नां कटुकरोहिणीम्।
निःक्वाथ्य पिचुमर्दञ्च कवलन्तत्र योजयेत् ॥ ४२ ॥

वच, अतीस, पाढ, रास्ना, कुटकी और नीमकी छाल इनका क्वाथ बनाकर उसका कवल धारण करे ॥ ४२ ॥

क्षारसिद्धेषु मुद्गेषु यूषश्चाप्यशने हितः।
तुण्डिकेर्यध्रुषे कूर्मसंघाते तालुपुप्पुटे ॥
एष एव विधिः कार्यो विशेषः शस्त्रकर्म्मणि ॥ ४३ ॥

तुण्डिकेरी, अध्रुष, कूर्मसंघात और तालुपुप्पुटरोगमें जवाखारादिक्षारद्रव्योंके

द्वारा सिद्ध कियाहुआ मूँगका यूष भोजन करे । इन समस्तरोगोंमें गलशुण्ठी रोगकी समान चिकित्सा करे और विशेषकर शस्त्रक्रिया करे ॥ ४३ ॥

तालुपाके तु कर्त्तव्यं विधानं पित्तनाशनम् ।
स्नेहस्वेदो तालुशोषे विधिश्चानिलनाशनः ॥ ४४ ॥

तालुपाकरोगमें पित्तनाशकचिकित्सा करनी चाहिये और तालुशोषरोगमें स्नेह तथा स्वेद प्रयोगकर वातनाशकक्रिया करनी चाहिये ॥ ४४ ॥

कण्ठगतमुखरोगकी चिकित्सा ।

साध्यानां रोहिणीनान्तु हितं शोणितमोक्षणम् ।
छर्दनं धूमपानञ्च गण्डूषो नस्यकर्म च ॥ ४५ ॥

चिकित्सासाध्यरोहिणीरोगमें रक्तमोक्षण, वमन, धूमपान, गण्डूष और नस्य इत्यादि प्रयोग करने हितकारी हैं ॥ ४५ ॥

वातिकीन्तु हते रक्ते लवणैः प्रतिसारयेत् ।
सुखोष्णास्तैलकवडान् धारयेच्चाप्यभीक्ष्णशः ॥ ४६ ॥

वातजरोहिणीमें पहले रक्तमोक्षणकर फिर पञ्चलवणद्वारा घर्षण करे और निरन्तर मन्दोष्ण तेलके कवल धारण करे ॥ ४६ ॥

पत्तुङ्गशर्कराक्षौद्रैः पैत्तिकीं प्रतिसारयेत् ।
द्राक्षापरूषकक्काथो हितश्च कवडग्रहे ॥ ४७ ॥

पित्तकी रोहिणीमें लालचन्दन, चीनी और शहद इनको एकत्र मिलाकर प्रतिसारण करे । एवं दाख और फालसोंका काथ बनाकर कवल धारण करे॥

आगारधूमकटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् ।
श्वेताविडङ्गदन्तीषु सिद्धं तैलं ससैन्धवम् ॥
नस्यकर्मणि दातव्यं कवडश्च कफोच्छ्रये ॥ ४८ ॥

कफजनित रोहिणीरोगमें घरके धुएँ और कुटकीके चूर्णको घिसे । एवं श्वेत अपराजिता, वायविडङ्ग, दन्तीकी जड और सैंधानमक इनके कल्कद्वारा सिद्ध कियाहुआ तेल नस्य कर्ममें और कवल धारण करनेमें प्रयोग करे ॥ ४८ ॥

पित्तवत्साधयेद्वैद्यो रोहिणीं रक्तसम्भवाम् ॥ ४९ ॥

रक्तसे उत्पन्नहुए रोहिणीरोगको पित्तजरोहिणीकी समान चिकित्सा करे४९

विस्राव्य कण्ठशालूकं साधयेत्तुण्डिकेरिवत् ।
एककालं यवान्नञ्च भुञ्जीत स्निग्धमल्पशः ॥ ५० ॥

कण्ठशालूकरोगमें अल्परक्तमोक्षण कराकर तुण्डिकेरीरोगकी समान चिकित्सा करे और एक वक्तमें थोडासा जौका बना स्निग्ध अन्न भोजन करे ॥ ५० ॥

उपजिह्विकवच्चापि साधयेदिरिवेल्लिकाम् ॥ ५१ ॥

इरिवेल्लिकारोगको उपजिह्विकरोगकी समान चिकित्सा कर सिद्ध करे॥५१॥

उन्नाम्य जिह्वामाकृष्य बडिशेनाधिजिह्वकम् ।
छेदयेन्मण्डलाग्रेण तीक्ष्णोष्णैर्घर्षणादिभिः ॥ ५२ ॥

अधिक जिह्वारोगमें जिह्वाको ऊपरको उठाकर और बडिशयन्त्र (संडासी) से अधिजिह्वाको खींचकर मण्डलाग्रशस्त्रसे छेदन करे । फिर तीक्ष्ण और गरम, औषधियोंसे घिसकर थोडासा रक्त निकालकर संशोधनक्रिया करे ॥ ५२ ॥

अमर्मस्थं सुपक्वञ्च भेदयेद्गलविद्रधिम् ॥ ५३ ॥

गलविद्रधि यदि मर्मस्थानमें न हो तो उसको अच्छे पक होनेपर वेध देवे५३

कण्ठरोगे असृङ्मोक्षस्तीक्ष्णैर्नस्यादि कर्म च ।
क्वाथपानन्तु दार्वीत्वङ्निम्बताक्ष्यर्यकालिङ्गतः ॥ ५४ ॥

कण्ठरोगमें रक्तमोक्षण अथवा तीक्ष्ण औषधियोंका नस्य देना चाहिये । फिर दारुहल्दीकी छाल, नीमकी छाल और इन्द्रजौ इनके क्वाथमें रसौतका चूर्ण डालकर पान करावे ॥ ५४ ॥

हरीतकीकषायो वा पेयो माक्षिकसंयुतः ।
कटुकातिविषादारुपाठामुस्तकलिङ्गकाः ॥
गोमूत्रक्वथिताः पेयाः कण्ठरोगविनाशनाः ॥ ५५ ॥

हरडके क्वाथमें शहद डालकर पानकरे अथवा कुटकी, अतीस, देवदारु,पाढ, नागरमोथा और इन्द्रजौ इन सबका गोमूत्रमें यथाविधि क्वाथ बनाकर पान करे । यह क्वाथ कण्ठरोगनाशक है ॥ ५५ ॥

यवाग्रजं तेजवतीं सपाठां रसाञ्जनं दारुनिशां सकृष्णाम् ।
क्षौद्रेण कुर्याद्गुटिकां मुखेन तां धारयेत्सर्वगलामयेषु॥५६॥

जवाखार, चव्य, पाढ, रसौत, दारुहल्दी और पीपल इनके चूर्णको शहदमें खरल करके गोली बनालेवे । फिर उस गोलीको मुखमें धारण करे तो सर्वप्रकारके कण्ठरोग दूर होते हैं ॥ ५६ ॥

दशमूलं पिबेदुष्णं यूषं मूलककुलत्थयोः ।
क्षीरेक्षुरसगोमूत्रदधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः ॥ ५७ ॥
विदध्यात्कवलान्वीक्ष्य दोषं तैलघृतैरपि ॥ ५८ ॥

गलेके रोगमें दशमूलका उष्ण क्वाथ पान करे। एवं मूली और कुलथीका यूष भोजन करे। दोषोंका बलाबल विचारकर दूध, ईखका रस, गोमूत्र, दहीका तोड, खट्टी काँजी, तेल और घी इनका कवल धारण करावे ॥५७॥५८

सर्वसरमुखरोगकी चिकित्सा ।

मूत्रसिक्तां शिवां तुल्यां मधुरीकुष्ठबालकैः ।
अभ्यस्य मुखरोगांस्तु जयेद्विरसतामपि ॥ ५९ ॥

गोमूत्रमें भावना दीहुइ हरड, सौंफ, कूठ और सुगन्धबाला इन औषधियोंको समान भाग लेकर गोमूत्रमेंही क्वाथ बनाकर मुखमें धारण करे तो मुखकी विरसता और सर्वप्रकारके मुखरोग नष्ट होते हैं ॥ ५९ ॥

वातात्सर्वसरं चूर्णैर्लवणैः प्रतिसारयेत् ।
तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ ६० ॥

वातज सर्वसर (मुखपाक) रोगमें सैंधेनमकका चूर्ण घिसे, वातनाशक औषधियोंके साथ तेलको सिद्धकर नस्य देना, कवल धारण कराना हितकरहै॥

पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः ।
सर्वपित्तहरः कार्यो विधिर्मधुरशीतलः ॥ ६१ ॥

पित्तजसर्वसररोगमें वमन और विरेचनादिके द्वारा रोगीका शरीर शुद्धकर सर्वप्रकारकी मधुर और शीतल औषधियोंसे पित्तनाशक चिकित्सा करे॥६१॥

प्रतिसारणगण्डूषधूमं संशोधनानि च ।
कफात्मके सर्वसरे क्रमं कुर्यात्कफापहम् ॥ ६२ ॥

कफजसर्वसरमें कफनाशक औषधियोंके द्वारा घर्षण, गण्डूष, धूम, वमन और विरेचनादि सम्पूर्ण क्रियायें यथाक्रम करे ॥ ६२ ॥

मुखपाके शिरावेधः शिरःकायविरेचनम् ।
कार्यश्च बहुधा नित्यं जातीपत्रस्य चर्वणम् ॥ ६३ ॥

मुखपाक रोगमें फस्त खुलवाना, नस्य देना और विरेचन कराना आर वारम्वार चमेलीके पत्तोंको चाबना उपयोगी है ॥ ६३ ॥

जातीपत्रामृताद्राक्षापाठादार्वीफलत्रिकैः ।
क्वाथः क्षौद्रयुतः शीते गण्डूषो मुखपाकनुत ॥ ६४ ॥

चमेलीके पत्ते, गिलोय, दाख, पाढ, दारुहल्दी और त्रिफला इनके शीतल क्वाथमें शहद डालकर कुल्ले करनेसे मुखपाकरोग नष्ट होताहै ॥ ६४ ॥

पटोलनिम्बजम्ब्वाम्रमालतीनवपल्लवाः ।
पञ्चपल्लवजः श्रेष्ठः कषायो मुखधावने ॥ ६५ ॥

पटोलपत्र, नीमके पत्ते, जामुनके पत्ते, आम और चमेली इनके कोमलपत्ते समानभाग लेकर काथ बनावे। इस काथसे मुख धोना मुखपाकमें हितकरहै॥

पञ्चवल्ककषायो वा त्रिफलाकाथ एव वा।
मुखपाकेषु सक्षौद्रः प्रयोज्यो मुखधावने ॥ ६६ ॥

मुखपाकमें वड, गूलर, पीपल, पाखर और बेंत इनकी छालके काथ अथवा हरड, बहेडा आमला इनके काथमें शहद मिलाकर मुखधावन करना चाहिये॥

स्वरसः क्वथितो दार्व्या घनीभूतो रसक्रिया।
सक्षौद्रा मुखरोगासृग्दोषनाडीव्रणापहा ॥ ६७ ॥

दारुहल्दीके स्वरसका गाढा २ काथ बनाकर मधुमिश्रित कर मुखमें धारण करनेसे मुखरोग, रक्तप्रदर और नाडीव्रणरोग नष्ट होते हैं॥ ६७॥

क्वथितास्त्रिफलापाठामृद्वीकाजातिपल्लवाः।
निषेव्यो भक्षणीया वा त्रिफलामुखपाकहा ॥ ६८ ॥

हरड, बहेडा, आमला, पाठ, दाख और चमेलीके पत्ते इनका काथ बनाकर पानकरे। अथवा त्रिफलेकी औषधियोंको सम भाग लेकर एकत्र पीसकर भक्षण करे तो मुखपाकरोग दूर होता है॥ ६८॥

कृष्णाजीरककुष्ठेन्द्रयवचर्वणतस्त्र्यहम्।
मुखपाकव्रणक्लेददौर्गन्ध्यमुपशाम्याति ॥ ६९ ॥

पीपल, जीरा, कूठ और इन्द्रजौ इन सबको एकत्र मिलाकर चर्वणकरनेसे तीनदिनमेंही मुखपाक, व्रण, क्लेद और मुखकी दुर्गन्ध नष्ट होतीहै॥ ६९॥

तिलं नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च।
सक्षौद्रो दग्धवक्त्रस्य गण्डूषो दाहपाकहा॥

मुख जल गया हो तो तिलोंका काथ, नीलकमलका काथ, घृत, चीनी अथवा दूध इनमें शहद डालकर कुल्ले करे। इससे मुखकी दाह और पाक दूर होता है॥

तैलेन काञ्जिकेनाथ गण्डूषश्चूर्णदाहहा ॥ ७० ॥

तिलके तेलका अथवा काँजीका गण्डूष धारण करनेसे अधिक चूनेके खानेसे उत्पन्नहुई दाह शान्त होतीहै॥ ७०॥

घनकुष्ठैलाधान्यकयष्टीमध्वेलवालुकाकवडः।
वदनेऽतिपूतिगन्धं हराति सुरालशुनगन्धञ्च ॥ ७१ ॥

नागरमोथा, कूठ, छोटी इलायची, धनियाँ, मुलैठी और एलुआ इनके काथका कवल धारण करनेसे मुखकी दुर्गन्ध और मद्यपान तथा लहसुन खानेसे उत्पन्न हुई दुर्गन्ध तत्क्षण दूर होतीहै॥ ७१॥

सप्तच्छदादि ।

सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्तहरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः ।
यष्ट्याह्वराजद्रुमचन्दनैश्च क्वाथं पिबेत्पाकहरं मुखस्य ७२

सतौनेकी छाल, खस, परवल, नागरमोथा, हरड, कुटकी, मुलैठी, अमलतास और लालचन्दन इनका क्वाथ बनाकर पान करेतो मुखपाकरोग आराम होताहै ७२

पटोलादि ।

पटोलशुण्ठीत्रिफलाविशालात्रायन्तितिक्ताद्विनिशा-
मृतानाम् । पीतः कषायो मधुना निहन्ति मुखे स्थित-
श्चास्यगदानशेषान् ॥ ७३ ॥

पटोलपात, सोंठ, त्रिफला, इन्द्रायनकी जड, त्रायमाण, कुटकी, हल्दी, दारुहल्दी और गिलोय इनके क्वाथको मधुके साथ मिश्रितकर पान करनेसे अथवा मुखमें धारण करनेसे मुखके समस्तरोग नष्ट होतेहैं ॥ ७३ ॥

कालकचूर्ण ।

गृहधूमो यवक्षारः पाठा व्योषं रसाञ्जनम् ।
तेजोह्वा त्रिफला लौहं चित्रकश्चेति चूर्णितम् ॥
सक्षौद्रं धारयेदेतद्गलरोगविनाशनम् ।
कालकं नाम तच्चूर्णं दन्तास्यगलरोगनुत् ॥ ७४ ॥

घरका धुआँ, जवाखार, पाढ, त्रिकुटा, रसौत, चव्य, त्रिफला, लोहा और चीता इनके समानभाग मिश्रित चूर्णको शहदमें मिलाकर मुखमें धारण करे तो यह कालकचूर्ण गलेके दाँतोंके और मुखके सम्पूर्णविकारोंको नष्ट करदेताहै ॥ ७४

पीतकचूर्ण ।

मनःशिला यवक्षारो हरितालं ससैन्धवम् ।
दार्वीत्वकूचेति तच्चूर्णं माक्षिकेण समायुतम् ॥ ७५ ॥
मूर्च्छितं घृतयोगेन कण्ठरोगेषु धारयेत् ।
मुखरोगेषु च श्रेष्ठं पीतकं नाम कीर्तितम् ॥ ७६ ॥

मैनसिल, जवाखार, हरिताल, सैंधानमक और दारुहल्दीकी छाल इनके चूर्णको समानभाग लेकर शहद और घृतमें मिलाकर मुखमें धारण करे। यह पीतकनामवाला चूर्ण कण्ठरोगमें और मुखरोगमें अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ ७५-७६ ॥

दशनसंस्कारचूर्ण ।

शुण्ठी हरीतकी मुस्ता खदिरं घनसारकम् ।

गुवाकभस्म मरिचं देवपुष्पं तथा त्वचम् ॥ ७७ ॥
एतेषां समभागेन चूर्णमेव विनिर्दिशेत् ।
तत्समं प्रक्षिपेत्तत्र चूर्णं कठिनसम्भवम् ॥
एतद्दशनसंस्कारचूर्णं दन्तास्यरोगजित् ॥ ७८ ॥

सोंठ, हरड, नागरमोथा, खैर, कपूर, सुपारीकी भस्म, मिरच, लौंग और दारचीनी इनको समानभाग लेकर चूर्ण करलेवे। फिर सब चूर्णकी बराबर उसमें खडियामिट्टी मिलालेवे। यह दशनसंस्कारचूर्ण है। इसको प्रतिदिन दाँतोंमें मलनेसे दन्तरोग और मुखरोग शीघ्र दूर होतेहैं ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

दन्तरोगाशनिचूर्ण।

जातीपत्रपुनर्नवा तिलकणा कौरुण्टमुस्ता वचा
शुण्ठी दीप्यहरीतकी च सघृतं चूर्णं मुखे धारयेत्।
वातघ्नः कृमिकण्डुशूलदहनं सर्वामयध्वंसनं
दौर्गन्ध्यादिसमस्तदोषहरणं दन्तस्य रोगाशनिः ७९॥

चमेलीके पत्ते, पुनर्नवा, तिल, पीपल, पीलीकटसरैयाके पत्ते, नागरमोथा, वच, सोंठ, अजवायन और हरड इनके चूर्णको समानभाग लेकर घृतमें मिश्रित कर मुखमें धारण करे। इससे वातजदन्तरोग, दाँतोंके कीडे, खुजली, शूल, दाह और मुखकी दुर्गन्धप्रभृति जितने दन्तसम्बन्धीरोग हैं वे सब ध्वंस हो जाते हैं। यह चूर्ण दन्तरोगके लिये वज्रके समान है ॥ ७९ ॥

क्षारगुटिका।

पञ्चकोलकतालीशपत्रैलामरिचत्वचः।
पलाशमुष्ककक्षारयवक्षाराश्च चूर्णिताः ॥ ८० ॥
गुडे पुराणे क्वथिते द्विगुणे गुडिकाः कृताः।
कर्कन्धुमात्राः सप्ताहं स्थिता मुष्ककभस्मनि ॥
कण्ठरोगेषु सर्वेषु धार्याः स्युरमृतोपमाः ॥ ८१ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, तालीसपत्र, तेजपात, इलायची, मिरच, दारचीनी, ढाकका खार, मोखावृक्षका खार और जवाखार इनके चूर्णको समानभाग लेवे और समस्त चूर्णसे दुगुना, पुराना गुड लेवे। सबको यथाविधि एकत्र मिलाकर पाककरे। जब पाक पूर्ण होजाय तब उतारकर बेरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंको मोखावृक्षकी भस्ममें मिलाकर रख-

देवे । फिर सात दिनके बाद निकालकर उन गोलियोंको सर्वप्रकारके कण्ठरोगमें व्यवहार करे । यह गुटिका उक्तरोगमें अमृतके समान गुणकारी है ॥८०॥८१॥

स्वल्पखादिरवटिका ।

खादिरस्य तुलां सम्यक् जलद्रोणे विपाचयेत् ।
शेषेऽष्टभागे तत्रैव प्रतिवापं प्रदापयेत् ॥ ८२ ॥
जातीकर्पूरपूगानि कक्कोलकफलानि च ।
इत्येषा गुडिका कार्या मुखसौभाग्यवर्द्धिनी ॥
दन्तौष्ठमुखरोगेषु जिह्वातात्वामयेषु च ॥ ८३ ॥

खैरको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पककर आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस काथको दुबारा चूल्हेपर चढाकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे । पकते पकते जब वह गाढा पडजाय तब उसमें जावित्री, कपूर, सुपारी, काकोली और जायफल इन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले डालकर सबको अच्छे प्रकार मिलाकर गोलियाँ बनालेवे । यह वटी मुखमें धारण करनेसे मुखकी शोभाके बढाती है । एवं दन्त, ओष्ठ, मुख, जिह्वा और तालु आदि सब मुखरोगोंमें विशेष हितकारी है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

बृहत्खादिरवटिका ।

गायत्रिसारतुलमेरिमवल्कलानां सार्द्धं तुलायुगलम-
म्बुघटैश्चतुर्भिः । निःक्वाथ्य पादमवशिष्टसुवस्त्रपूतं
भूयः पचेदथ शनैर्मृदुपावकेन ॥८४॥ तस्मिन्घनत्वमु-
पगच्छति चूर्णमेषां श्लक्ष्णं क्षिपेच्च कवडग्रहभागिका-
नाम् । एलामृणालसितचन्दनचन्दनाम्बुश्यामात-
मालविकषाघनलौहयष्टी ॥ ८५ ॥ लज्जाफलत्रयरसा-
ञ्जनधातकीनां श्रीपुष्पगैरिककटङ्कटकट्फलानाम् ।
पद्माह्वलोध्रवटरोहयवासकानां मांसीनिशासुरभिव-
ल्कलसंयुतानाम् ॥८६॥ कक्कोलजातिफलकोषलवङ्ग-
कानि चूर्णीकृतानि विदधीत पलांशिकानि । शीते-
ऽवतार्य घनसारचतुःपलञ्च क्षिप्त्वा कलायसदृशीर्गु-
डिकाः प्रकुर्यात् ॥८७॥ शुष्का मुखे विनिहिता विनि-
वारयन्ति रोगान् गलौष्ठरसनाद्विजतालुजातान् ।

कुर्यान्मुखे सुरभितां पटुतां रुचिञ्च स्थैर्यं परं दशनगं रसनालघुत्वम् ॥ ८८ ॥

खैरसार १०० पल और दुर्गन्ध खैरकी छाल २५० पल लेकर इनको चार द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इसको दुबारा मृदु अग्निद्वारा पकावे । जब पकते पकते पाक गाढा होजाय तब उसमें छोटी इलायची, खस,सफेद चन्दन, लालचन्दन, सुगन्धवाला, सारिवा, तमालवृक्षकी छाल, मंजीठ, नागरमोथा, अगर, मुलैठी, वराहक्रान्ता, त्रिफला, रसौत, धायके फूल, लौंग, गेरू, दारुहल्दी, कायफल, पद्माख, लोध, वडके अंकुर, धमासा, बालछड, हल्दी, कुन्दुरुनामक गन्धद्रव्य और दारचीनी ये प्रत्येक दो दो तोले एवं शीतलचीनी, जायफल, जावित्री और लौङ्ग इन सब औषधियोंको आठ आठ तोले लेकर खूब बारीक कूटपीसकर डालदेवे । पश्चात् नीचे उतारकर सबको एकमएक करलेवे और शीतल होनेपर चार पल कपूर डालकर मटरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । फिर इन गोलियोंको सुखाकर मुखमें धारण करे तो ये गोलियाँ गलरोग, ओष्ठरोग, जिह्वारोग, दन्तरोग, तालुरोग तथा अन्यान्य सर्वप्रकारके मुखरोगोंको नष्ट करती हैं । एवं मुखमें सुगन्धि, पटुता, रुचि, दाँतोंमें दृढता और जिह्वामें हल्कापन उत्पन्न करती हैं ॥ ८४-८८ ॥

मुखरोगहररस ।

रसगन्धौ समौ ताभ्यां द्विगुणश्च शिलाजतु ।
गोमूत्रेण विमर्द्याथ सप्तधार्कद्रवेण च ॥ ८९ ॥
जातीनिम्बमहाराष्ट्रीरसैः सिध्यति पाकहा ।
कणामधुयुता हन्ति मुखपाकं सुदारुणम् ॥ ९० ॥
अष्टगुञ्जा धृता वक्त्रे सद्यो हन्ति वटी गदान् ।
महाराष्ट्रयाश्च कल्केन मुखञ्च प्रतिसारयेत् ।
धारणात्सेवनादेव वटी हन्ति मुखामयान् ॥ ९१ ॥

पारे और गन्धककी कज्जली दो तोले और शिलाजीत चार तोले इन दोनोंको गोमूत्र, आकके पत्तोंके रस, चमेलीके पत्तों-नीमके पत्तोंके रस और जलपीपलके काथमें यथाक्रम सात सात बार खरल करके आठ आठ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह वटी पीपलके चूर्ण और शहदमें मिश्रितकर मुखमें धारण करनेसे अथवा भक्षण करनेसे दारुण मुखपाकरोगको तत्काल नष्ट करती है ।

इसको सेवन करनेके पश्चात् जलपीपलके कल्कसे मुखको अच्छेप्रकार घर्षण करे तो मुखके सब रोग दूर होते हैं।। ८९–९१ ।।

महासहचरतैल ।

तुलां धृतां नीलसहाचरस्य द्रोणेऽम्भसः संश्रपयेद्यथावत् ।
पूते चतुर्भागरसे तु तैलं पचेच्छनैरर्द्धपलप्रमाणैः ।। ९२ ।।
कल्कैरनन्ताखदिरारिमेदजम्ब्वाम्रयष्टीमधुकोत्पलानाम् ।
तत्तैलमाश्वेव धृतं मुखेन स्थैर्य्यं द्विजानां विदधाति सद्यः ९३

नीलीकटसरैयाको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें यथाविधि पकावे। जब पकते पकते चौथाईभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस क्वाथमें तिलका तेल दो सेर एवं अनन्तमूल, खैरसार, दुर्गन्ध खैरकी छाल, जामुनकी छाल, आमकी छाल, मुलैठी और नीलकमल इन औषधियोंके दो दो तोले प्रमाण कल्कको डालकर उत्तम प्रकार तेलको सिद्ध करे। इस तेलको मुखमें धारण करनेसे तत्काल दाँतोंकी जडें दृढ होजाती हैं।। ९२।।९३ ।।

बकुलाद्यतैल ।

बकुलस्य फलं लोध्रं वज्रवल्ली कुरुण्टकम् ।
चतुरङ्गुलबब्बोलवाजिकर्णेऽरिमाशनम् ।। ९४ ।।
एषां कषायकल्काभ्यां तैलं पक्वं मुखे धृतम् ।
स्थैर्यं करोति चलतां दन्तानां धावनेन च ।। ९५ ।।

मौलसिरीके फल, लोध, हडसंहारी, नीली कटसरैया, अमलतास, बबूलकी छाल, शालवृक्षकी छाल, दुर्गन्ध खैरकी छाल और विजयसार इनके क्वाथ और कल्कके द्वारा विधिपूर्वक तेलको सिद्धकरके मुखमें धारण करे अथवा नासलेवे तो यह तेल हिलतेहुए दाँतोंको शीघ्र स्थिर करदेता है ।। ९४ ।।९५।।

मुखरोगमें पथ्य ।

स्वेदो विरेको वमनं गण्डूषः प्रतिसारणम् ।
कवलोऽसृक्स्रुतिर्नस्यं धूमः शस्त्राग्निकर्माणि ।। ९६ ।।
तृणधान्यं यवा मुद्गाः कुलत्था जाङ्गलो रसाः ।
बृहत्प्रोष्ठी कारवेल्लं पटोलं बालमूलकम् ।। ९७ ।।
कर्पूरनीरं ताम्बूलं तप्ताम्बु खदिरो घृतम् ।
कटुतिक्तश्च वर्गोऽयं मित्रं स्यान्मुखरोगिणाम् ।।९८।।

स्वेद, विरेचन, वमन, गण्डूष, मुखमें घर्षण और कवल धारण करना, रुधिर निकलवाना, नस्य, धूमपान, शस्त्रक्रिया, अग्निकर्म्मकरना, धान्यविशेष, पुराने जौ, मूँग, कुलथी, जङ्गली जीवोंका मांसरस, शफरीमछली, करेला, परवल, कच्चीमूली, अर्क्ककपूर, ताम्बूल, गरमजल, खैर, घृत, चरपरे और कडुवे द्रव्य यह सब द्रव्यसमूह मुखरोगवाले मनुष्योंको हितकर है॥ ९६-९८॥

मुखरोगमें अपथ्य।

दन्तकाष्ठं स्नानमम्लं मत्स्यमानूपमामिषम्।
दधि क्षीरं गुडं माषं रूक्षान्नं कठिनाशनम्॥ ९९॥
अधोमुखेन शयनं गुर्व्यभिष्यन्दकारि च।
मुखरोगेषु सर्वेषु दिवानिद्रां विवर्जयेत्॥ १००॥

सर्वप्रकारके मुखरोगमें दातौन और स्नानकरना, खट्टेपदार्थ, मछली, अनूपदेशीयप्राणियोंका मांस, दही, दूध, गुड, उडद, रूखाअन्न, कठिनभोजन, नीचेको मुँहकरके सोना, गुरुपाकी और कफकारी पदार्थ एवं दिनमें सोना इन सबको दन्तरोगी तत्काल त्याग देवे॥ ९९॥ १००॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मुखरोग चिकित्सा॥

कर्णरोगकी चिकित्सा।

कपित्थमातुलुङ्गाम्लशृङ्गवेररसैः शुभैः।
सुखोष्णैः पूरयेत्कर्णं कर्णशूलोपशान्तये॥ १॥

कैथ, बिजौरेनींबूका रस, काँजी अथवा अदरखका रस इनमेंसे किसी एकको कुछएक गरम करके कानमें डालनेसे कानकी पीडा दूरहोतीहै॥ १॥

शृङ्गवेरञ्च मधु च सैन्धवं तैलमेव च।
कदुष्णं कर्णयोर्धार्यमेतत्स्याद्वेदनापहम्॥ २॥

अदरखका रस, शहद, सैंधानमक और तिलका तेल इनको एकत्र पकाकर सुहाता २ कानोंमें डाले तो कानकी पीडा नष्ट होतीहै॥ २॥

लशुनार्द्रकशिग्रूणां सुरङ्गचा मूलकस्य च।
कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे।
समुद्रफेनचूर्णेन युक्त्या वाप्यवचूर्णयेत्॥ ३॥

लहसुन, अदरख, सफेद सहिंजना, लाल सहिंजना, कच्चीमूली और केलेका

स्वरस इनमेंसे किसी एकके रसको मन्दोष्णकर अथवा समुद्रफेनका चूर्ण कानमें पूरनेसे कर्णरोग नष्ट होताहै ॥ ३ ॥

आर्द्रकसूर्यावर्त्तशोभाञ्जनमूलकस्वरसाः ।
मधुतैलसैन्धवयुताः पृथग्युक्ताः कर्णशूलहराः ॥ ४ ॥

अदरख, हुलहुल, सहिंजना अथवा कच्चीमूली इनमेंसे किसीके रसको शहद तेल और सैंधेनमकके साथ यथाक्रम मिलाकर कानमें डाले । ये प्रयोग कर्ण-शूलको हरनेवाले हैं ॥ ४ ॥

शोभाञ्जनस्य निर्यासस्तिलतैलेन संयुतः ।
व्यक्तोष्णः पूरणः कर्णे कर्णशूलोपशान्तये ॥ ५ ॥

सहिंजनेके क्काथको तिलके तेलमें मिलाकर सुहाता सुहाता कानमें डालनेसे कर्णशूल शान्त होताहै ॥ ५ ॥

अष्टानामपि मूत्राणां मूत्रेणान्यतमेन च ।
कोष्णेन पूरयेत्कर्णौ कर्णशूलोपशान्तये ॥ ६ ॥

कर्णशूलको शान्तकरनेके लिये हाथी, घोडा, ऊँट, भेंड, बकरी, गधा, गौ और भैंस इनमेंसे किसी एकके मूत्रको कुछ गरम करके कानमें डाले ॥ ६ ॥

अश्वत्थपत्रखल्लं वा विधाय बहुपत्रकम् ।
तैलाक्तमङ्गारपूर्णं निदध्याच्छ्रवणोपरि ॥ ७ ॥
यत्तैलं च्यवते तस्मात्खल्लादङ्गारतापितात् ।
तत्प्राप्तं श्रवणस्रोतः सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ ८ ॥

पीपलके बहुतसे पत्ते लेकर उनका छिद्रविशिष्ट एक दोना बनावे । उसमें तेलको भरकर उसपर जलताहुआ अङ्गार रक्खे और उस दौनेको कानके छिद्रपर रखदेवे । जिससे अग्निके तापसे तपाहुआ दोनेसे टपकताहुआ तेल बूंदकर कानमें गिरताजाय इससे बूंद वेदना तत्काल नष्ट होजाती है ॥७॥८॥

अर्कपत्रपुटे दग्धस्नुहीपत्रोद्भवो रसः ।
कदुष्णः पूरणादेव कर्णशूलनिवारणः ॥ ९ ॥

आकके पत्तोंके दौनेमें थूहरके पत्तोंका रस दग्धकर सुहाता २ कानमें डाल-नेसे कानका दर्द दूर होताहै ॥ ९ ॥

अर्कस्य पत्रं परिणामपीतमाज्येन लिप्तं शिखिनावतप्तम् ।
आपीड्य तोयं श्रवणे निषिक्तं निहन्ति शूलं बहुवेदनञ्च १०

पकेहुए आकके पत्तेको घीसे लेसकर अग्निमें गरमकर उसके रसको निकाले। उस रसको कानमें डालनेसे कर्णशूल और अत्यन्त पीडा नष्ट होतीहै ॥ १०॥

तीव्रशूलातुरे कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि ।
बस्तमूत्रं क्षिपेत्कोष्णं सैन्धवेनावचूर्णितम् ॥ ११ ॥

बकरेके मूत्रको सैंधेनमकके चूर्णके साथ मिलाकर कुछएक गरम करके कानमें डाले । इससे कानकी तीव्रपीडा, शब्दका होना, पीवका बहना आदि कर्ण रोगोंमें शीघ्र लाभ होताहै ॥ ११ ॥

हिङ्गुतुम्बरुशुण्ठीभिः साध्यं तैलन्तु सार्षपम् ।
कर्णशूले प्रधानन्तु पूरणं हितमुच्यते ॥ १२ ॥

हींग, धनियाँ और सोंठ इनके कल्क और चौगुने जलके साथ सरसोंके तेलको विधिपूर्वक पकावे । यह तेल कानमें डालनेसे कर्णशूलको दूरकरताहै ॥

कर्णनादे कर्णक्ष्वेडे कटुतैलेन पूरणम् ।
नादबाधिर्य्ययोः कुर्याद्वातशूलोक्तमौषधम् ॥ १३ ॥

कर्णनाद और कर्णक्ष्वेडरोगमें सरसोंके तेलको कानमें डाले और वातशूलोक्त औषधियोंका प्रयोग करनेसे कर्णनाद एवं बधिरताका नाश होता है ॥ १३ ॥

एष एव विधिः कार्यः प्रणादे नस्यपूर्वकः ।
गुडनागरतोयेन नस्यं स्यादुभयोरपि ॥ १४ ॥

कर्णमें अत्यन्त नाद होनेपर प्रथम यथाविधि नस्य देवे, फिर बधिरता- नाशक क्रिया करे । दोनोंप्रकारके कर्णनादरोगोंमें गुड और सोंठ इनका काथ बनाकर नस्य देना हितकारीहै ॥ १४ ॥

वातोक्तं माषतैलादि बाधिर्यादौ तु योजयेत् ।
वर्जयेन्मैथुनं क्रोधं रूक्षं बाधिर्यपीडितः ॥ १५ ॥

बधिरतासे पीडितमनुष्य वातव्याधि अधिकारमें कहेहुए माषतेलका प्रयोग करे । इस रोगमें मैथुन और क्रोधकरना एवं रूक्षपदार्थोंका भोजनकरना तत्क्षण त्याग देवे ॥ १५ ॥

चूर्णं पञ्चकषायाणां कपित्थरससंयुतम् ।
कर्णस्रावे प्रशंसन्ति पूरणं मधुना सह ॥ १६ ॥

पञ्चवल्कलके चूर्ण और कैथके रसको शहदमें मिलाकर कानमें डालनेसे कानका बहना दूर होताहै ॥ १६ ॥

मालतिदलरसमधुना पूरीतमथवा गवां मूत्रैः ।
दूरेण परित्यजेत वै श्रवणयुगलं पूतिरोगेण ॥ १७ ॥

चमेलीके पत्तोंके रसको शहदके साथ मिलाकर अथवा गोमूत्रके साथ मिलाकर कानोंमें डालनेसे कानोंका पूतिरोग बहुत जल्द नष्ट होता है ॥ १७ ॥

हरितालं सगोमूत्रं पूरणं पूतिकर्णजित् ।

हरितालको गोमूत्रमें घिसकर कानमें डालनेसे पूतिकर्णरोग दूर होता है ॥

सर्ज्जत्वक्चूर्णसंयुक्तं कार्पासीफलजो रसः ।
मधुना संयुतः साधु कर्णस्रावे प्रशस्यते ॥ १८ ॥

कपासके फलोंका रस, शालवृक्षकी छालका चूर्ण और शहद इनको एकत्र मिलाकर कर्णरन्ध्रमें डालनेसे कर्णस्रावरोग शीघ्र आरोग्य होता है ॥ १८ ॥

जम्ब्वाम्रपत्रं तरुणं समांशं कपित्थकार्पासफलञ्च सार्द्रम् ।
क्षुत्त्वा रसं तं मधुना विमिश्रं स्रावापहं तं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः

जामुन और आमके नवीनकोमलपत्ते, कैथ और कपासके गीले फल इन सबको समानभाग लेकर एकत्र कूटकर रस निकाले, फिर उस रसको शहदमें मिलाकर कानमें डाले तो कानका वहना दूर होता है ॥ १९ ॥

पुटपाकविधिस्विन्नो हस्तिविड्जातछत्रजः ।
रसः सतैलसिन्धूत्थः कर्णस्रावहरः परः ॥ २० ॥

हाथीकी लीदमें उत्पन्नहुए छत्र (साँपकी छतरी) के रसकी पुटपाककी विधिसे पकाकर उसमें सरसोंका तेल और सैंधेनसकका चूर्ण मिश्रितकर कानमें भरनेसे कानका स्रावहोना निवृत्त होता है ॥ २० ॥

अथ कर्णप्रतीनाहे स्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत ।
ततो विरिक्तशिरसः क्रियां प्राप्तां समाचरेत् ॥ २१ ॥

कर्णप्रतीनाहरोगमें प्रथम स्नेहद्रव्य और स्वेददेवे, पश्चात् नस्य देकर यथादोषानुसार चिकित्सा करे ॥ २१ ॥

कर्णपाकस्य भैषज्यं कुर्यात्क्षतविसर्पवत् ।
विधिश्च कफहा सर्वा कर्णकण्डूं व्यपोहति ॥ २२ ॥

कर्णपाकरोगकी क्षत और विसर्परोगकी समान चिकित्सा करे । एवं कर्णकण्डूरोगको सर्वप्रकारकी कफनाशक चिकित्सा कर दूर करे ॥ २२ ॥

क्लेदयित्वा तु तैलेन स्वेदेन प्रविलाप्य च ।
शोधयेत्कर्णगूथन्तु भिषक् सम्यक् शलाकया ॥२३॥

कर्णगूथरोगमें कानमें तेल डालकर और स्वेदितकर सूक्ष्म शलाकासे कानके मैलको खींचकर निकालदेवे ॥ २३ ॥

निर्गुण्डीस्वरसस्तैलं सिन्धुधूमरजो गुडः ।
पूरणात्पूतिकर्णस्य शमनो मधुसंयुतः ॥ २४ ॥

सिह्मालुके पत्तोंका रस, कडवा तेल, सेंधानमक, घरका धुआँ, पुराना गुड और शहद इनको एकत्र मिलाकर कानमें डालनेसे पूतिकारोग अथवा कर्णपाकरोग शमन होता है ॥ २४ ॥

जातीपत्ररसे तैलं विपक्वं पूतिकर्णजित् ।

चमेलीके पत्तोंके रसमें कडवे तेलको पकाकर कानमें भरनेसे पूतिकर्णरोग दूर होता है ॥

वरुणार्ककपित्थाम्रजम्बुपल्लवसाधितम् ।
पूतिकर्णापहं तैलं जातीपत्ररसोऽथवा ॥ २५ ॥

वरना, आक, कैथ, आम और जामुन इनके पत्तोंके द्वारा तेलको पकाकर अथवा केवल चमेलीके पत्तोंके द्वारा तेलको पकाकर कानमें डालनेसे पूतिकर्णरोग आराम होताहै ॥ २५ ॥

सूर्यावर्त्तकस्वरसं सिन्दुवाररसन्तथा ।
लाङ्गलीमूलस्वरसं त्र्यूषणेनावचूर्णितम् ॥
पूरयेत्कृमिकर्णन्तु जन्तूनां नाशनं परम् ॥ २६ ॥

हुलहुलका रस, सिह्मालूके पत्तोंका रस अथवा कलिहारीकी जडका रस इनमेंसे किसी एकके रसमें त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर कानमें डालनेसे कानके कृमि नष्ट होते हैं ॥ २६ ॥

कृमिकर्णकनाशार्थं कृमिघ्नं योजयेद्विधिम् ।
वार्त्ताकोश्च हितो धूमः सार्षपस्नेह एव च ॥ २७ ॥

कानके कृमियोंको नष्ट करनेके लिये कृमिरोगनाशक चिकित्सा करे । एवं सूखे बैंगनके चूर्णको अग्निमें डालकर उसका धुआँ नलीद्वारा कानमें छोडे या सरसोंका तेलही डाले । इससे कृमिकर्णरोग दूर होता है ॥ २७ ॥

हलिसूर्यावर्त्तव्योषस्वरसेनातिपूरिते ।
कर्णे पतन्ति सहसा सर्वास्तु कृमिजातयः ॥ २८ ॥

कलिहारीके रस और सूर्यावर्त्तके रसमें सोंठ, मिरच, पीपल इनका चूर्ण मिश्रित कानमें पूरनेसे सर्वप्रकारके कृमि तत्काल निकल पडते हैं ॥ २८ ॥

घृष्टं रसाञ्जनं नार्याः क्षीरेण क्षौद्रसंयुतम् ।
प्रशस्यते चिरोत्थेऽपि सास्रावे पूतिकर्णके ॥ २९ ॥

स्त्रीके दूधमें रसौत घिसकर उसमें शहद मिलाकर कानमें डालनेसे बहुत पुराना और स्रावयुक्त पूतिकर्णरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ २९ ॥

दीपिकातैल।

महतः पञ्चमूलस्य काण्डान्यष्टाङ्गुलानि च ।
क्षौमेणावेष्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेत्ततः ॥ ३० ॥
तत्तैलं च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तत्प्रयोजयेत् ।
ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ ३१ ॥
एवं कुर्याद्भद्रकाष्ठे कुष्ठे काष्ठे च सारले ।
मतिमान् दीपिकातैलं कर्णशूलानिवारणम् ॥ ३२ ॥

बेल, सोनापाठा, कुम्भेर, पाढल और अरणी इनमेंसे किसी एक वृक्षकी आठ अँगुल लम्बी लकडी लेकर उसको रेशमीवस्त्रसे लपेटकर और तेलमें भिगोकर बत्तीके समान जलावे। उसमेंसे जो बूँदें टपकें उनको सुहाता सुहाता कानमें डाले। इस प्रकार करनेसे यह दीपिकातेल कानकी पीडाको तत्काल नष्ट करता है। इसी प्रकार देवदारु, कूठ और सरलकाठका दीपकतेल बनाकर कानमें डालनेसे भी कर्णशूल नष्ट होता है ॥ ३०-३२ ॥

स्वर्जिकाद्य तैल।

स्वर्जिकामूलकं शुष्कं हिंगु कृष्णा महौषधम् ।
शतपुष्पा च तैस्तैलं पक्वं शुक्तिं चतुर्गुणम् ॥
प्रणादशूलबाधिर्यं स्रावश्चाशु व्यपोहति ॥ ३३ ॥

सज्जी, सूखीमूली, हींग, पीपल, सोंठ और सोया इनके समानभाग मिश्रित एकसेर कल्क और चौगुनी काँजीके द्वारा दोसेर तिलके तेलको विधिपूर्वक पकावे। यह तेल कानमें डालनेसे कर्णनाद, कर्णशूल, कर्णस्राव बाधिर्य्य दूर हो ३३

लशुनाद्य तैल।

लशुनामलकं तालं पिष्ट्वा तैले चतुर्गुणे ।
तैलाच्चतुर्गुणं क्षीरं पाच्यं तैलावशेषकम् ॥
तत्तैलं पूरयेत्कर्णे बाधिर्यं परिणाशयेत् ॥ ३४ ॥

लहसुन, आमले और हरिताल इनको समानभाग मिश्रित एक सेर लेवे, सबको एकत्र पीसकर कल्क बनावे फिर उस कल्क एवं एक सेर तिलके तेल

और तेलसे चौगुने बकरीके दूधको चौगुने जलमें डालकर उत्तम प्रकार पकावे जब पकते २ तेलमात्र शेष रहजाय तब उतारलेवे। उस तेलको कानमें डालनेसे बहरापन दूर होजाता है ॥ ३४ ॥

शम्बूकतैल।

शम्बूकस्य च मांसेन कटुतैलं विपाचितम्।
तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ॥ ३५ ॥

शम्बूक (घोंघे) के मांसद्वारा सरसोंके तेलको विधिपूर्वक पकाकर कानमें डालनेसे कर्णनाडीरोग नष्ट होताहै ॥ ३५ ॥

कुष्ठाद्यतैल।

कुष्ठहिङ्गुवचादारुशताह्वाविश्वसैन्धवैः।
पूतिकर्णापहं तैलं बस्तमूत्रेण साधितम् ॥ ३६ ॥

कूठ, हींग, वच, देवदारु, सोया, सोंठ और सैंधानमक इनके कल्क और बकरीके मूत्रके सहयोगसे सिद्धकियाहुआ तेल पूतिकर्णरोगको हरताहै ॥ ३६ ॥

क्षारतैल।

बालमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिङ्गु सनागरम्।
शतपुष्पा वचा कुष्ठदारुशिग्रुरसाञ्जनम् ॥ ३७ ॥
सौवर्च्चलयवक्षारस्वर्ज्जिकोद्भिदसैन्धवम्।
भूर्ज्जग्रन्थिविडं मुस्तं मधुशुक्तं चतुर्गुणम् ॥ ३८ ॥
मातुलुङ्गरसश्चैव कदल्या रस एव च।
तैलमेभिर्विपक्तव्यं कर्णशूलहरं परम् ॥ ३९ ॥
बाधिर्यं कर्णनादश्च पूयस्रावश्च दारुणः।
पूरणादस्य तैलस्य कृमयः कर्णसंश्रिताः ॥ ४० ॥
क्षिप्रं विनाशं गच्छन्ति कृष्णात्रेयस्य शासनात्।
क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं मुखदन्तामयापहम् ॥ ४१ ॥

मधुशुक्तलक्षण–

मधुप्रधानं शुक्तन्तु मधुशुक्तं तथापरम्।
जम्बीरस्य फलरसं पिप्पलीग्रन्थिसंयुतम् ॥
मधुभाण्डे विनिःक्षिप्य धान्यराशौ निधापयेत्।
मासेन तज्जातरसं मधुशुक्तमुदाहृतम् ॥

कच्चीमूलीको सुखाकर उसका क्षार निकाले । फिर वह क्षार, हींग, सोंठ, सोया, वच, कूठ, देवदारु, सहिंजनेकी छाल, रसोत, काला नमक, जवाखार, सज्जी रेहगमा (?) या समुद्रनमक, सैंधानमक, भोजपत्र, पीपलामूल, विरियासञ्चरनमक और नागरमोथा इन सब औषधियोंका कल्क समानभाग मिश्रितएकसेर और मधुशुक्तनामक काँजी कल्कसे चौगुनी लेवे । इनके साथ बिजौरेनींबूके रस, केलेके रस और तिलके तेलको दो दो सेर परिमाण मिलाकर विधिपूर्वक तेलको सिद्धकरे । प्रतिदिन नियमसे इस तेलको कानमें डालनेसे यह क्षारतेल कर्ण-शूल, बधिरता, कर्णनाद एवं दारुण पूयस्रावको तत्काल नष्ट करताहै । इससे कानके कृमि शीघ्र पतित होजातेहैं ऐसा कृष्णात्रेयमहाराजने कहाहै । यह तेल मुख और दाँतोंके रोगोंको नष्ट करनेकेलिये अत्यन्त श्रेष्ठहै ॥ ३७-४१ ॥

मधुशुक्त बनानेकी विधि कहते हैं-

जम्बीरीनीबूका स्वरस १ प्रस्थ, पिपलामूल १६ तोले और शहद ३२ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर मिट्टीके घीसे चिकने बासनमें भरकर धानोंकी राशि (ढेर) में गाडदेवे । फिर एक महीनेके बाद उसको निकाले । इस प्रकार बनायेहुए पदार्थमेंसे जो रस निकलता है उसको मधुशुक्त कहते हैं ॥

कर्णरोगमें पथ्य ।

स्वेदो विरेको वमनं नस्यं धूमः शिराव्यधः ।
गोधूमाः शालयो मुद्गा यवाश्च प्रत्यनं हविः ॥ ४२ ॥
लावो मयूरो हरिणस्तित्तिरिर्वन्यकुक्कुटैः ।
पटोलं शिग्रुवार्ताकुः सुनिषण्णं कठिल्लकम् ॥ ४३ ॥
रसायनानि सर्वाणि ब्रह्मचर्यमभाषणम् ।
उपयुक्तं यथादोषमिदं कर्णामयं हरेत् ॥ ४४ ॥

स्वेद, विरेचन, वमन, नस्य, धूम और शिरावेध करना, गेहूँ, शालिचावल, मूँग, जौ, पुराना घी, लवा, मोर, हिरन, तीतर और जंगली मुर्गा इनका मांस, पटोलपात, सहिंजना, बैंगन, शिरिआरीका शाक, करेला, सब प्रकारकी रसायनक्रिया, ब्रह्मचर्य धारण और अल्पभाषण ये सब यथादोषानुसार उपचार करनेसे कर्णरोगको दूर करते हैं ॥ ४२-४४ ॥

कर्णरोगमें अपथ्य ।

विरुद्धान्यन्नपानानि वेगरोधं प्रजल्पनम् ।
दन्तकाष्ठं शिरःस्नानं व्यायामं श्लेष्मलं गुरु ॥
कण्डूयनं तुषारञ्च कर्णरोगी परित्यजेत् ॥ ४५ ॥

विरुद्ध अन्नपान, मल मूत्रके वेगको रोकना, अधिक बोलना, दातौन, शिरसे स्नान और व्यायाम करना, कफकारक तथा गुरुपाकी द्रव्योंका सेवन, कानको खुजलाना और शीतका सेवन करना इन सबको कर्णरोगी त्यागदेवे ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां कर्णरोगचिकित्सा ॥

नासारोगकी चिकित्सा।

सर्वेषु पीनसेष्वादौ निर्वातागारगो भवेत्।
स्नेहनस्वेदवमनं धूमगण्डूषधारणम् ॥ १ ॥

सर्वप्रकारके पीनसरोगमें प्रथम रोगीको वातरहित स्थानमें रक्खे, पश्चात् स्नेह, स्वेद, धूम, वमन कराकर गण्डूषधारण करावे ॥ १ ॥

वासो गुरूष्णं शिरसः सुघनं परिवेष्टनम्।
लघूष्णं लवणं स्निग्धमुष्णभोजनमद्रवम् ॥ २ ॥

पीनसरोगमें भारी, गरम और घने वस्त्रसे शिरको अच्छे प्रकार बाँध लेवे और भोजनके लिये हलके, गरम, नमकीन, स्निग्ध और जो पतले न हो ऐसे पदार्थ सुहाते सुहाते भोजन करे ॥ २ ॥

पञ्चमूलीशृतं क्षीरं स्याच्चित्रकहरीतकी।
सर्पिर्गुडः षडङ्गश्च यूषः पीनसशान्तये ॥ ३ ॥

पीनसरोगको शान्तकरनेके लिये पञ्चमूलकी औषधियोंद्वारा सिद्ध किया हुआ दूध, चीता,हरड,घी,गुड,षडङ्ग यूष इनमेंसे किसी एकको सेवन करावे३

नासापाके पित्तहरं विधानं कार्यं सर्वं बाह्यमाभ्यन्तरञ्च।
हत्वा रक्तं क्षीरिवृक्षत्वचश्च योज्याः सेके सर्पिषश्च प्रदेहाः॥४॥

नासारोगके पकजानेपर रक्तमोक्षण कराकर बाहर तथा भीतर सर्व प्रकारकी पित्तनाशक चिकित्सा करे। एवं क्षीरीवृक्षोंकी छालको पीसकर घृत मिलाकर लेपकरे और उक्तछालका काथ बनाकर उससे सेंके ॥ ४ ॥

पूयास्रे रक्तपित्तघ्नाः कषाया नावनानि च ॥

नाकमेंसे पीब निकले तो रक्तपित्तनाशक काथ और नस्य प्रयोग करे ॥

दीप्ते रोगे पैत्तिके संविधानं कार्यं कुर्यान्मधुरं शीतलञ्च।
नासादाहे स्नेहपानं प्रधानं स्निग्धा धूमाऊर्द्ध्ववास्तिश्च नित्यम्॥

पित्तज दीप्तरोगमें पित्तनाशक मधुर और शीतल क्रिया करे। एवं नासादाहमें स्नेहपान, स्निग्धधूम और ऊर्ध्ववस्ति प्रतिदिन प्रयोग करे॥ ५ ॥

वातिके तु प्रतिश्याये पिबेत्सर्पिर्यथाक्रमम्।
पञ्चभिर्लवणैः सिद्धं प्रथमेन गणेन च॥
नस्यादिषु विधिं कृत्स्नमवेक्षेतार्दितेरितम्॥ ६॥

वातज प्रतिश्यायमें पञ्चलवण द्वारा सिद्ध कियाहुआ अथवा विदारीगन्धादिगणोक्त औषधियोंके क्वाथ और कल्कद्वारा सिद्ध कियाहुआ घृतपान करे और अर्दितरोगमें कहीहुई औषधियोंके द्वारा नस्य प्रदानकरे॥ ६॥

पित्तरक्तोत्थयोः पेयं सर्पिर्मधुरकैः शृतम्।
परिषेकान्प्रदेहांश्च कुर्यादपि च शीतलान्॥ ७॥

पित्तज और रक्तज प्रतिश्यायमें काकोल्यादिगणोक्त औषधोंके द्वारा घृतको सिद्धकर पान करे और शीतलद्रव्योंसे परिषेक तथा प्रलेप करे॥ ७॥

कफजे सर्पिषा स्निग्धं तिलमाषविपक्वया।
यवाग्वा वामयित्वा वा कफघ्नं क्रममाचरेत्॥ ८॥

कफजनितप्रतिश्यायमें रोगीको घृत पान कराकर स्निग्ध करे, तिल और उडदोंके द्वारा यवागूको सिद्धकर उसमें मैनफलका चूर्ण डालकर पान करावे। इससे जब रोगीको अच्छेप्रकार वमन होजाय तब कफनाशक चिकित्सा करे॥८

दार्वीङ्गुदीनिकुम्भैश्च किणिह्वासूरसेन च।
वर्त्तयोऽत्र कृता योज्या धूमपाने यथाविधि॥ ९॥

दारुहल्दी, हिङ्गोट, दन्तीके बीज, चिरचिटा, सिह्वालु; इन सबको एकत्र कूटपीसकर बत्ती बनालेवे। इस बत्तीका प्रतिश्यायमें यथाविधि धूमपान करे॥

अथवा सघृतान्छक्तून् कृत्वा मल्लिकसम्पुटे।
नवप्रतिश्यायवतां धूमं वैद्यः प्रयोजयेत्॥ १०॥

नवीन प्रतिश्यायरोगमें प्रथम घीमें मिलेहुए जौके सत्तुओंको एक सकोरेमें भरकर अग्निपर रक्खे और उसके ऊपर एक छेदवाला दूसरा सकोरा ढकदेवे। फिर उसमेंसे जो धुआँ निकले उसको चमेलीके पत्तोंकी निर्मित नलीके द्वारा रोगीके नासारन्ध्रमें प्रवेश कराना हितकर है॥ १०॥

यः पिबति शयनकाले शयनारूढः सुशीतलं भूरि।
सलिलं पीनसयुक्तो मुच्यते तेन रोगेण॥ ११॥

जो पुरुष शयन करते समय शय्यापर बैठा बहुतसा शीतल जल पीवे तो वह पीनसरोगसे मुक्त होजाता है॥ ११॥

पुटपक्वं जयापत्रं सिन्धुतैलसमायुतम्।
प्रतिश्यायेषु सर्वेषु शीलितं परमौषधम् ॥ १२ ॥

जयन्तीके पत्तोंको पुटपाककी रीतिसे पकाकर रस निकालले, उसमें सैंधानमक और कडवातेल मिलाकर सर्वप्रकारके प्रतिश्यायोंमें पान करावे ॥१२॥

सोषणं गुडसंयुक्तं स्निग्धदध्यम्लभोजनम्।
नवप्रतिश्यायहरं विशेषात्कफपाचनम् ॥ १३ ॥

गुडमिश्रित कालीमिरचोंका चूर्ण, स्निग्धपदार्थ, दही और खट्टे पदार्थोंका भोजन करनेसे नूतन प्रतिश्याय दूर होता है और विशेषकर कफ पकता है ॥

प्रतिश्याये नवे शस्तो यूषश्चिञ्चाच्छदोद्भवः।
ततः पक्वं कफं ज्ञात्वा हरेच्छीर्षविरेचनैः ॥ १४ ॥

नये प्रतिश्याय (जुकाम) में इमलीके पत्तोंका यूष पान करना श्रेष्ठ है। जो कफ पकगया हो तो उसको शिरोविरेचन अर्थात् नस्य देकर दूर करे ॥ १४ ॥

शिरसोऽभ्यञ्जनस्वेदनस्यकट्वम्लभोजनैः।
वमनैर्घृतपानैश्च तान् यथास्वमुपाचरेत् ॥ १५ ॥

इस रोगमें शिरमें मालिश, स्वेद, नस्य तथा चरपरे और खट्टे पदार्थोंका भोजन, एवं वमन और घृतपान इत्यादि क्रियाओंका यथेच्छ उपचार करे १५

भक्षयेत्तु भुक्तमात्रे सलवणं सुस्विन्नमाषमत्युष्णम्।
स जयति सर्वसमुत्थं चिरजातञ्च प्रतिश्यायम् ॥१६॥

भोजन करनेके अनन्तर सैंधेनमकके साथ उसीजेहुए उडद सुहाते सुहाते भक्षण करे। इससे बहुत पुराना सर्वप्रकारका प्रतिश्याय नष्ट होता है ॥१६॥

पिप्पल्यः शिग्रुबीजानि विडङ्गं मरिचानि च।
अवपीडः प्रशस्तोऽयं प्रतिश्यायनिवारणः ॥ १७ ॥

पीपल, सहिंजनेके बीज, वायविडङ्ग और कालीमिरच इनके चूर्णको समान भाग लेकर उसका नस्य ग्रहण करे तो प्रतिश्याय दूर होता है ॥ १७ ॥

कलिङ्गहिङ्गुमरिचलाक्षासुरसकट्फलैः।
व्योषोग्राशिग्रुजन्तुघ्नैरवपीडः प्रशस्यते ॥ १८ ॥

इन्द्रजौ, हींग, मिरच, लाख, तुलसी, कायफल, त्रिकुटा, वच, सहिंजनेके बीज वायविडङ्ग इनका चूर्ण एकत्र मिश्रितकर नास देवे तो नासारोग जाय॥

तैरेव मूत्रसंयुक्तैः कटुतैलं विपाचयेत्।
प्रपीनसे पूतिनस्ये शमनं परिकीर्त्तितम् ॥ १९ ॥

उक्त औषधियोंके चूर्णको गोमूत्रमें डालकर उसके द्वारा कडवे तेलको विधि पूर्वक पकावे । उस तेलको नस्य देनेसे पीनसरोग शमन होता है ॥ १९ ॥

समूत्रपिष्टाश्चोद्दिष्टाः क्रियाः कृमिषु योजयेत् ।
नावनार्थं कृमिघ्नानि भेषजानि च बुद्धिमान् ॥
शेषाणान्तु विकाराणां यथास्वं स्याच्चिकित्सितम् २०

नाकमें कीडे पडगये हों तो कृमिनाशक औषधियोंको गोमूत्रमें पीसकर नस्य देवे अथवा सुरसादिगणोक्त औषधोंके काथद्वारा नस्य देवे तो नाकके कृमि तत्काल नष्ट होजाते हैं । नासार्बुद और नासार्श आदि अन्यान्य सर्वप्रकारके नासिकाके विकारोंमें यथाक्रम अर्बुद और अर्शरोगकी समान चिकित्सा करे ॥

चित्रक–हरीतकी ।

चित्रकस्यामलक्याश्च गुडूच्या दशमूलजम् ।
शतं शतं रसं दत्त्वा पथ्याचूर्णाढकं गुडात् ॥ २१ ॥
शतं पचेद्घनीभूते पलद्वादशकं क्षिपेत् ।
व्योषत्रिजातयोः क्षारात्पलार्द्धमपरेऽहनि ॥ २२ ॥
प्रस्थार्द्धं मधुनो दत्त्वा यथाग्न्यद्यादतन्द्रितः ।
वृद्ध्येऽग्नेः क्षयं कासं पीनसं दुस्तरं कृमीन् ॥
गुल्मोदावर्त्तदुर्नामश्वासान्हन्ति सुदारुणान् ॥ २३ ॥

लालचीतेकी जडका रस, आमलोंका रस, गिलोयका रस और दशमूलका काथ इन सबोंको पृथक् पृथक् सौ सौ पल लेकर एकत्र मिलालेवे । फिर उसमें हरडका चूर्ण एक आढक और गुड सौ पल डालकर विधिपूर्वक पकावे । जब पकते पकते पाक गढा होजाय तब उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, दारचीनी, इलायची और तेजपात इन समस्त औषधियोंके १२ पल चूर्ण और दो तोले जवाखारको डालकर सबको चलाकर एकमएक करलेवे । फिर दूसरे दिन उसमें एक प्रस्थ उत्तम शहद मिलाकर स्वच्छ पात्रमें करके रखदेवे । उसमेंसे प्रतिदिन अपनी अग्निके बलाबलको विचारकर उचितमात्रासे सेवन करे तो जठराग्नि अत्यन्त प्रदीप्त होती है । यह चित्रकहरीतकी क्षय, खाँसी, पीनस, दुस्तर कृमि-रोग, गुल्म, उदावर्त्त, बवासीर, दारुणश्वासप्रभृतिरोगोंको नष्ट करती है ॥२३॥

पाठाद्यतैल ।

पाठाद्विरजनीमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः ।
दन्त्या च तैलं संसिद्धं नस्यं संपक्कपीनसम् ॥ २४ ॥

पाढ, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, पीपल, चमेलीके पत्ते और दन्तीकी जड इनके कल्कद्वारा सरसोंके तेलको यथाविधि पकाकर पक पीनसरोगमें नस्यद्वारा प्रयोग करे ॥ २४ ॥

व्याघ्राद्यतैल ।

व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुसुरसाव्योषसैन्धवैः ।
पाचितं नावनं तैलं पूतिनासागदापहम् ॥ २५ ॥

कटेरी, दन्ती, वच, सहिंजना, सिह्वालु, त्रिकुटा और सैंधानमक इनके कल्कद्वारा पकायाहुआ तेल नस्यद्वारा ग्रहण करनेसे पूतिनासारोगको हरता है॥

त्रिकट्वाद्यतैल ।

त्रिकटुविडङ्गसैन्धवबृहतीफलशिग्रुसुरसदन्तीभिः ।
तैलं गोजलसिद्धं नस्यं स्यात्पूतिनस्यस्य ॥ २६ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडङ्ग सैंधानमक, वडीकटेरीके फल, सहिंजनेके बीज, सिह्वालु और दन्तीके बीज इनके कल्क और गोमूत्रके साथ सरसोंके तेलको सिद्धकर नास देवे तो इससे पूतिनस्यरोगका नाश होता है ॥ २६ ॥

चित्रकतैल ।

चित्रकचविकादीप्यकानिदिग्धिकाकरञ्जबीजलवणाकैः ।
गोमूत्रयुतैः सिद्धं तैलं नामार्शसां शान्त्यै ॥ २७ ॥

चीता, चव्य, अजवायन, कटेरी, करञ्जके बीज, सैंधानमक और आकका दूध इन औषधियोंके कल्क एवं गोमूत्रके द्वारा कडवे तैलको यथारीति सिद्ध करे। फिर उस तेलको नासार्शरोगकी शान्तिके लिये नस्यद्वारा व्यवहार करे॥

नासारोगमें पथ्य ।

स्थितिर्निर्वातनिलये प्रगाढोष्णीषधारणम् ।
गण्डूषो लंघनं नस्यं धूमश्छर्दिः शिराव्यधः २८ ॥
कटुचूर्णं नासारन्ध्रे निःक्षिप्य (?) न्त्यप्रवेशनम ।
स्वेदः स्नेहः शिरोऽभ्यङ्गः पुराणा यवशालयः ॥२९॥
कुलत्थमुद्गयोर्यूषो ग्राम्यजाङ्गलजा रसाः ।
वार्त्ताकुः कुलकं शिग्रुः कर्कोटं बालमूलकम् ॥ ३० ॥
लशुनं दधि तप्ताम्बु वारुणी च कटुत्रयम ।
कट्वम्ललवणं स्निग्धमुष्णं लघु च भोजनम् ॥
नासारोगे पीनसादौ सेव्यमेतद्यथामलम् ॥ ३१ ॥

वायुरहित स्थानमें रहना, शिरसे पगडी या मोटा कपडा बाँधना, गण्डूष, लंघन, नस्य, धूमपान, वमन और शिरावेध करना, कटुद्रव्योंका चूर्ण नासिकाके छिद्रोंमें डालकर छींकें लेना, स्वेददेना, स्नेहप्रयोग, शिरमें मालिश करना, पुराने जौ, शालिचावल, कुलथीका और मूँगका यूष, ग्रामीण और जङ्गली जीवोंका मांसरस, बगैंन, परवल, सहिंजना, ककोडे, कच्चीमूली, लहसुन, दही, गरम जल, मद्य, त्रिकुटा,चरपरे,खट्टे, नमकीन, स्निग्ध, गरम और हल्का भोजन ये सब वस्तुएँ यथादोषानुसार सेवन करनेसे पीनस और नासारोगमें हितकरनेवाली हैं ॥ २८–३१ ॥

नासारोगमें अपथ्य ।

विरुद्धानि दिवास्वप्नमभिष्यन्दि गुरूणि च ।
स्नानं क्रोधं शकृन्मूत्रबाष्पवेगाञ्छुचं द्रवाम् ॥
भूशय्यामपि यत्नेन नासारोगी परित्यजेत् ॥ ३२ ॥

विरुद्धद्रव्योंका भोजन, दिनमें सोना,कफकारक और गुरुपाकी द्रव्य, स्नान, क्रोध करना,मल, मूत्र और आँसुओंके वेगको रोकना,शोक करना,पतले पदार्थोंका सेवन और पृथ्वीमें सोना इन सबको नासारोगी यत्नपूर्वक त्यागदेवे ३२

इति भैषज्यरत्नावल्यां नासारोगचिकित्सा ।

नेत्ररोगकी चिकित्सा ।

लङ्घनालेपनस्वेदशिराव्यधविरेचनैः ।
उपाचरेदभिष्यन्दानञ्जनाश्च्योतनादिभिः ॥ १ ॥

लङ्घन (लघुअन्नका आहार या उपवास), प्रलेप, स्वेद, शिरावेध, विरेचन, अञ्जन और आश्च्योतन (औषधियोंका रस टपकाना) आदि उपचारोंसे नेत्राभिष्यन्दरोगीकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

श्रीवासातिविषालोध्रैश्चूर्णितैरल्पसैन्धवैः ।
अव्यक्तेऽक्षिगदे कार्यं प्रोतस्थैर्गुण्डनं बहिः ॥ २ ॥

नेत्ररोगके पूर्वरूपमें देवदारु, अतीस, लोध इनके चूर्णको समानभाग लेकर उसमें कुछ थोडासा सैंधानमक मिलाकर पोटली बनाले । फिर उस पोटलीको पलकोंके ऊपर बारम्बार फिरावे ॥ २ ॥

अक्षिकुक्षिभवा रोगाः प्रतिश्यायव्रणज्वराः ।
पञ्चैते पञ्चरात्रेण प्रशमं यान्ति लङ्घनात् ॥ ३ ॥

नेत्ररोग, कुक्षिजन्यरोग, प्रतिश्याय, व्रण और ज्वर ये पाँचप्रकारके रोग लङ्घन करनेसे पाँचादिनमें शान्त होजातेहैं ॥ ३ ॥

स्वेदः प्रलेपस्तिक्तान्नं सेको दिनचतुष्टयम् ।
लङ्घनश्चाक्षिरोगाणामामानां पाचनानि षट् ॥
अञ्जनं पूरणं क्वाथपानमामे न शस्यते ॥ ४ ॥

स्वेद, प्रलेप, तिक्तद्रव्योंका भोजन, सेंक करना, चार दिनतक उपेक्षा करना (अर्थात् ४ दिनतक आँखमें न कुछ लगाना और न डालना) तथा लङ्घन ये छः कर्म्म नेत्रोंके आमदोषको पकातेहैं । आम (नेत्रोंकी अपक्व अवस्था) में नेत्रोंमें अञ्जन आँजना या अन्य किसी प्रकारकी औषधि डालना और काथ पान करना श्रेष्ठ नहीं है । तात्पर्य यह है कि, उपर्युक्त सेकादि पाँच प्रकारकी क्रिया नेत्रोंकी अपक्वअवस्थामें ४ दिनतक करनी चाहिये । चारदिनके बाद रोगीके अञ्जन लगाना, आँखें भरना और काथ पानकराना आदि व्यवस्था करनी चाहिये ॥ ४ ॥

धात्रीफलनिर्यासो नवदृक्कोपं निहन्ति पूरणतः ।
सक्षौद्रसैन्धवो वापि शिग्रूद्भवपत्ररससेकः ॥ ५ ॥

आमलोंका रस आँखोंमें डाले अथवा सहिंजनेके पत्तोंका रस, शहद और कुछ सैंधानमक इनको एकत्र मिलाकर आँखोंपर सेक करे तो नवीन नेत्ररोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

दार्वीरसाञ्जनं वापि स्तन्ययुक्तं प्रपूरणम् ।
निहन्ति शीघ्रं दाहाश्रुवेदनाः स्यन्दसम्भवाः ॥ ६ ॥

दारुहल्दीके काथमें रसौत और स्त्रीका दूध डालकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंकी दाह, जलस्राव और पीडा नष्ट होती है ॥ ६ ॥

करवीरतरुणकिसलयच्छेदोद्भवसलिलसम्पूर्णम् ।
नयनयुगं भवति दृढं सहसैव तत्क्षणात्कुपितम् ॥ ७ ॥

कनेरके नवीन पत्तोंको तोडनेसे जो रस निकले उसको नेत्रोंमें लगानेसे नेत्र तत्काल आरोग्य और दृढ होजाते हैं ॥ ७ ॥

शिखरिजमूलं ताम्रकभाजने स्तोकसैन्धवोन्मिश्रम् ।
मस्तुनिघृष्टं भरणाद्धरति च नवलोचनोत्कोपम ॥ ८ ॥

चिरचिटेकी जडको दहीके तोडके साथ ताँबेके पात्रमें घिसकर उसमें कुछ-एक अर्थात् रत्तीभर सैंधेनमकका चूर्ण मिलाकर आँखोंमें भरनेसे नया नेत्राभिष्यन्दरोग दूर होता है ॥ ८ ॥

सैन्धवदारुहरिद्रागैरिकपथ्यारसाञ्जनैः पिष्टैः।
दत्तो बहिः प्रलेपो भवत्यशेषाक्षिरोगहरः॥ ९॥

दारुहल्दी, गेरू, हरड और रसौत इनको समानभाग लेकर एकत्र पीसकर उसमें किञ्चित् सैंधानमक मिलाले, फिर सबको बारीक कपडेमें बाँधकर पोटली बनालेवे। उस पोटलीको नेत्रोंके बाहर अर्थात् पलकोंपर फिरानेसे नेत्रोंके समस्त रोग नष्ट होते हैं॥ ९॥

तथा सावरकं लोध्रं घृतभृष्टं बिडालकः।
कार्या हरीतकी तद्वद्घृतभृष्टो बिडालकः॥
शालकोऽक्ष्णोर्बहिर्लेपो बिडालक उदाहृतः॥ १०॥

घीमें भुनेहुए सफेद लोधको घीमें पीसकर पलकोंपर लेप करे अथवा घीमें भुनीहुई हरडको पीसकर नेत्रोंके पलकोंपर लेप करे तो नेत्ररोग नष्ट होता है। नेत्रोंके बाहर पलकोंपर जो औषधि लगाई जातीहै उसको बिडालक कहतेहैं १०

गिरिमृच्चन्दननागरखटिकांशयोजितो बहिर्लेपः।
कुरुते वचया मिश्रो लोचनमगदं न सन्देहः॥ ११॥

गेरू,लालचन्दन,सोंठ,खडिया मिट्टी और वच इनको समभाग लेकर एकत्र पीसकर आँखोंके बाहर पलकोंपर लेप करनेसे नेत्ररोग निस्सन्देह नष्ट हो॥११

भूम्यामलकी घृष्टा सैन्धवगृहवारियोजिता ताम्रे।
याता घनत्वमक्ष्णोर्जयाति बहिर्लेपतः पीडाम्॥१२॥

भुईआमला और सैंधानमक इनको काँजीके द्वारा ताँबेके पात्रमें घिसे। जब घिसते घिसते खूब गाढा होजाय तब उसका नेत्रोंपर लेप करे। नेत्र पीडाको दूर करता है॥ १२॥

आश्च्योतनं मारुतजे क्काथो बिल्वादिभिर्हितः।
कोष्णः सैरण्डबृहतीतर्कारीमधुशिग्रुभिः॥ १३॥

वातज नेत्ररोगमें बिल्वादिपञ्चमूल, अण्डकी जड, बडी कटेरी, जयन्ती और सहिंजनेकी छाल इनके क्काथमें शहद डालकर उसके द्वारा आश्च्योतन-कर्म करना अर्थात् सुहाता २ नेत्रोंमें डालना हितकर है॥ १३॥

एरण्डपल्लवे मूले त्वचि वाजपयः शृतम्।
कण्टकार्याश्च मूलेषु सुखोष्णं सेचने हितम्॥ १४॥

अण्डके पत्ते,जड, छाल और कटेरीकी जड इन सबके साथ बकरीके दूधको पकाकर उसको सुहाता २ लेकर नेत्रोंमें सेचन करनेसे सुख होता है॥१४॥

संपक्वेऽक्षिगदे कार्यमञ्जनादिकमिष्यते ।
प्रशस्तवर्त्मता चाक्ष्णोः संरम्भाश्रुप्रशान्तता ॥
मन्दवेनदता कण्डूः पक्वाक्षिगदलक्षणम् ॥ १५ ॥

नेत्ररोगकी पक्व अवस्थामें अञ्जनादिका व्यवहार करना हितकारी है । नेत्रोंके मार्गमें प्रशस्तता, शोथ, आँसुओंके वेगकी शान्ति एवं खुजली और वेदनाका मन्द मन्द होना ये सब पक्व नेत्ररोगके लक्षण जानने चाहिये ॥ १५ ॥

बृहत्येरण्डमूलत्वक्शिग्रोर्मूलं ससैन्धवम् ।
अजाक्षीरेण पिष्टं स्याद्वर्त्तिर्वाताक्षिरोगनुत् ॥ १६ ॥

बडी कटेरीकी जडकी छाल, अण्डकी जडकी छाल, सहिंजनेकी जडकी छाल और सैंधानमक इनको समानभाग लेकर बकरीके दूधमें खरल करके बत्ती बनालेवे । उस बत्तीको आँखोंमें लगानेसे वातजनेत्ररोग नष्ट होता है १६

हरिद्रे मधुकं द्राक्षां देवदारु च पेषयेत्।
आजेन पयसा श्रेष्ठमभिष्यन्दे तदञ्जनम् ॥ १७ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, मुलैठी, दाख और देवदारु इन सबको बकरीके दूधके साथ पीसकर आँखोंमें आँजनेसे अभिष्यन्द(नेत्रोंका दुखना)रोग दूर होताहै॥

गैरिकं सैन्धवं कृष्णा तगरञ्च यथोत्तरम् ।
पिष्टं द्विरंशतोऽद्भिर्वा गुडिकाञ्जनमिष्यते ॥ १८ ॥

गेरू एक माशा, सैंधानोन दो मासे पीपल चार मासे और तगर आठ माशे इनको एकत्र बकरीके दूधमें अथवा जलमें पीसकर गोली बनालेवे । उस गोलीको घिसकर आँखोंमें लगानेसे नेत्ररोगमें शीघ्रलाभ होता है ॥ १८ ॥

प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वनिशामलकपद्मकैः ।
शीतैर्मधुसमायुक्तैः सेकः पित्ताक्षिरोगनुत् ॥ १९ ॥

पुण्डरिया,मुलैठी,हल्दी,आमले और पद्माख इनके शीतल क्वाथमें मधु मिश्रितकर नेत्रोंपर सेचन करनेसे पित्तज नेत्ररोग नष्ट होता है ॥ १९ ॥

द्राक्षामधुकमञ्जिष्ठाजीवनीयैः शृतं पयः ।
प्रातराश्च्योतनं शस्तं शोथशूलाक्षिरोगिणाम् ॥२०॥

दाख, मुलैठी, मंजीठ और जीवनीयगणकी समस्त औषधि इन सबके साथ यथानियम दूधको पकाकर प्रातःसमय उससे नेत्रोंको सिञ्चन करे । इससे नेत्रोंकी सूजन और शूल नष्ट होता है ॥ २० ॥

निम्बस्य पत्रैः परिलिप्य लोध्रं स्वेद्याग्निना चूर्णमथापि कल्कम्। आश्च्योतनं मानुषदुग्धयुक्तं पित्तास्रवातापहमग्र्यमुक्तम् ॥ २१ ॥

नीमके पत्तोंको पीसकर उसका गोलासा बनाले, उस गोलेमें लोधका चूर्ण भरकर और उसको केलेके पत्तोंसे लपेटकर प्रज्वलित अग्निमें पकावे। फिर कुछ देरकेबाद निकालकर उसमें स्त्रीका दूध मिलाकर तरल करके उसको वस्त्रमें छान लेवे। इसको नेत्रोंमें टपकानेसे रक्तपित्त और चक्षुरोग शमन होता है॥

कफजे लङ्घनं स्वेदो नस्यं तिक्तान्नभोजनम्।
तीक्ष्णैः प्रधमनं कुर्यात्तीक्ष्णैश्चैवोपनाहनम् ॥ २२ ॥

कफजनित चक्षुरोगमें लंघन, स्वेद, नस्य, तिक्तरसवाले अन्नोंका भोजन एवं तीक्ष्ण द्रव्योंसे प्रधमन (नलद्वारा फूँकना) और तीक्ष्ण द्रव्योंका प्रलेप करना उपयोगी है ॥ २२ ॥

फणिज्झकास्फोतकपित्थबिल्वपत्तूरपीलुसुरसार्जभङ्गैः।
स्वेदं विदध्यादथवा प्रलेपं बर्हिष्ठशुण्ठीसुरदारुकुष्ठैः॥२३॥

वनतुलसी विशेष, आस्फोतलता, कैथ, बेल, शालिञ्चशाक, पीलुवृक्ष, तुलसी और अर्ज (तुलसीभेद) इनमेंसे किसी एक वृक्षके पत्तोंको पीसकर कुछएक गरम करके नेत्रोंके बाहर पलकोंपर सेक करे अथवा सुगन्धवाला, सोंठ, देवदारु और कूठ इनको एकत्र पीसकर पलकोंपर लेप करे तो नेत्ररोग दूर होता है ॥ २३ ॥

शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डः सुखोष्णैः स्वल्पसैन्धवैः।
धार्यश्चक्षुषि संक्षेपाच्छोथकण्डूव्यथापहः ॥ २४ ॥

सोंठ और नीमके पत्तोंको एकत्र पीसकर उसमें थोडासा सैंधानमक डालकर गोलासा बनाले। उस गोलेको गरम करके सुहाता २ कपडेमें बांधकर आँखोंके ऊपर धारण करनेसे नेत्रोंकी सूजन खुजली और पीडा नष्टहोजातीहै॥

वल्कलं पारिजातस्य तैलकाञ्जिकसैन्धवम्।
कफोद्भूताक्षि शूलघ्नं तरुघ्नं कुलिशं यथा ॥ २५ ॥

फरहदकी छालका रस,कडवा तेल,काँजी और सैंधानमक इन सबको एकत्र मिलाकर जब खूब गाढा न होजाय तबतक ताँबेके पात्रमें कौडीसे खरल करे। फिर इस अञ्जनको आँखोंमें आँजे तो यह कफसे उत्पन्नहुए नेत्रोंके शूलको इस प्रकार नष्ट करदेता है, जिसप्रकार वज्र वृक्षको तत्काल नष्ट करदेता है॥२५॥

ससैन्धवं लोध्रमथाज्यभृष्टं सौवीरपिष्टं सितवस्त्रबद्धम्।
आश्च्योतनं तन्नयनस्य कार्यं कण्डूश्च दाहश्च रुजाश्च हन्यात

सैंधानमक और लोध इनको घृतमें भूनकर काँजीमें पीसकर सफेद कपडेमें बाँधकर पोटली बनालेवे। फिर उस पोटलीमेंसे निष्पीडित रसको नेत्रोंमें टपकावे। इससे खुजली, दाह और नेत्रपीडा कम होती है ॥ २६ ॥

स्निग्धैरुष्णैश्च वातोत्थः पित्तजो मृदुशीतलैः।
तीक्ष्णरूक्षोष्णविशदैः प्रशाम्यन्ति कफात्मकाः॥
तीक्ष्णोष्णमृदुशीतानां शांतःस्यात्सान्निपातिकः॥२७

वातज नेत्ररोगमें स्निग्ध और उष्णक्रिया, पित्तज नेत्ररोगमें मृदु और शीतल क्रिया, कफज नेत्ररोगमें तीक्ष्ण, उष्ण और रूक्षक्रिया एवं त्रिदोषज नेत्ररोगमें तीनों दोषोंकी मिलीहुई चिकित्सा करनेसे उक्त रोग शमन होते हैं ॥ २७ ॥

तिरीटत्रिफलायष्टिशर्कराभद्रमुस्तकैः।
पिष्टैः शीताम्बुना सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः॥२८॥

सफेद लोध, हरड, बहेडा, आमला, मुलैठी, चीनी और नागरमोथा इनको एकत्र उत्तम प्रकारसे कूट पीसकर कुछएक शीतल जलमें घोलकर नेत्रोंपर सेचन करे तो इससे रक्तजनितनेत्ररोग नाश होता है ॥ २८ ॥

कशेरुमधुकानाश्च चूर्णमम्बरसंवृतम्।
न्यस्तमप्स्वान्तरिक्षासु हितमाश्च्योतनं भवेत्॥२९॥

कशेरू और मुलैठीके चूर्णकी पोटली बनाकर उसको वर्षाके जलमें भिजोकर नेत्रोंमें सेचन करे तो रक्तज चक्षुरोग आराम होता है ॥ २९ ॥

दार्वीं पटोलं मधुकं सनिम्बं पद्मकोत्पलम्।
प्रपौण्डरीकं चैतानि पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ ३० ॥
विपाच्य पादशेषन्तु तं पुनः कुडवं पचेत्।
शीतीभूते तत्र मधु दद्यात्पादांशिकं ततः॥
रसक्रियैषा दाहाश्रुरोगशोथरुजापहा ॥ ३१ ॥

दारुहल्दी, पटोलपत्र, मुलैठी, नीमके पत्ते, पद्माख, नील कमल और पुण्डरिया इन सबको समान मिश्रित चार पल लेकर चौगुने जलमें पकावे। जब पककर चौथाईभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर एक कुडव परिमाण उस क्राथको दूसरीबार पकावे। जब पकते पकते गाढा होजाय

तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें चार तोले शहद मिलादेवे । यह रसक्रिया है । इसको आँखोंमें लगानेसे दाह, अश्रुपात, सूजन, वेदना और रक्तज अभिष्यन्द नष्ट होता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

तिक्तस्य सार्पिषः पानं बहुशश्च विरेचनम् ।
अक्ष्णोरपि समन्ताच्च पातनन्तु जलौकसः ॥ ३२ ॥
पित्ताभिष्यन्दशमनो विधिश्चाप्युपपादितः ।
शिग्रुपल्लवनिर्यासः सुघृष्टस्ताम्रसम्पुटे ॥
घृतेन धूपितो हन्ति शोथघर्षाश्रुवेदनाः ॥ ३३ ॥

रक्तज अभिष्यन्दमें तिक्त (वक्ष्यमाण पटोलादि) घृतको पान करना, वारंवार विरेचन और नेत्रोंके चारों ओर जौंक लगवाकर रक्त निकलवाना एवं पित्तज अभिष्यन्दनाशक समस्त क्रिया करना श्रेष्ठ है।सहिंजनेके पत्तोंके रसको ताँबेके सम्पुटमें घिसे । फिर घृतमें मिलाकर उसकी धूप देवे तो इससे नेत्रोंकी सूजन, पीडा और आँसुओंका गिरना दूर होता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

पिष्टैर्निम्बस्य पत्रैरतिविमलतरैर्जातिसिन्धूत्थमिश्रै-
रन्तर्गर्भं दधाना पटुतरगुडिका पिष्टलोध्रेण भृष्टा ।
तूलैः सौवीरसान्द्रैरतिशयमृदुभिर्वेष्टिता सा समन्ता-
च्चक्षुःकोपप्रशान्तिं चिरमुपरि दृशोर्भ्राम्यमाणा करोति ॥

नीमके पत्ते, चमेलीके फूल और सैंधानमक इनको एकत्र पीसकर गोलासा बनालेवे । उस गोलेके बीचमें घीमें भूनकर लोधके चूर्णको रखकर गुटिका बनालेवे । फिर उस गुटिकाको काँजीमें भिजोईहुई रुईके द्वारा चारोंओरसे लपेटकर नेत्रोंके ऊपर बारबार फिरावे । यह गुटिका बहुत पुराने चक्षुरोगको शीघ्र नष्ट करदेती है ॥ ३४ ॥

बिल्वपत्ररसं साम्लं निघृष्टं ताम्रभाजने ।
सिन्धूत्थकटुतैलाक्तं कुर्यान्नेत्रस्रवादिषु ॥ ३५ ॥

बेलपत्रीके रस,काँजी, सैंधेनमक और कडवे तेलको एकत्रकर ताँबेके बर्त्तनमें अच्छेप्रकार घिसकर नेत्रोंमें लगावे।यह प्रयोग नेत्रस्राव होनेमें विशेष हितकरहै३५

सलवणकटुतैलं काञ्जिकं कांस्यपात्रे घनितमुपलघृष्टं
धूपितं गोमयाग्नौ । सपवनकफकोपं छागदुग्धावसिक्तं
जयति नयनशूलं स्रावशोथं सरागम् ॥ ३६ ॥

सैंधानमक, कडवा तेल और काँजी इनको काँसेके पात्रमें पत्थरसे घोटे जब घोटते २ खूब गाढा होजाय तब आरने उपलोंकी अग्निमें डालकर धूपदेवे और बकरीके दूधमें मिलाकर आँखोंमें लगावे। इससे वातज और कफज नेत्रशूल स्राव, शोथ और लाली दूर होती है ॥ ३६ ॥

तरुस्थविद्धामलकरसः सर्वाक्षिरोगनुत्।
पुराणं सर्वथा सर्पिः सर्वनेत्रामयापहम् ॥ ३७ ॥

आमलोंके पेडमें सुई छेदकर रस निकाले, उस रसको आँजनेसे सर्व प्रकारके नेत्ररोग नष्ट होते हैं। एवं पुराने घीको पान, नस्य और लगानेसे सर्वनेत्ररोग दूर होते हैं ॥ ३७ ॥

अयमेव विधिः सर्वो मन्थादिष्वपि शस्यते।
अशान्तौ सर्वथा मन्थे भ्रुवोरुपरि दाहयेत् ॥ ३८ ॥

यही उपर्युक्त समस्त विधि अधिमन्थरोगमें भी करनी चाहिये। यदि उक्त-क्रियाके द्वारा अधिमन्थरोग शान्त न हो तो दोनों भौंहोंके ऊपर दाग देवे ॥

जलौकःपातनं शस्तं नेत्रपाके विरेचनम्।
शिरावेधं प्रकुर्वीत सेकलेपांश्च शुक्रवत् ॥ ३९ ॥

नेत्ररोगकी पक अवस्थामें जौंक लगवाकर रक्तमोक्षण, विरेचन (दस्त) और शिरावेध करे एवं नेत्रशुक्रकी समान सेक और प्रलेप करे ॥ ३९ ॥

विभीतकशिवाधात्रीपटोलारिष्टवासकैः।
क्काथो गुग्गुलुना पेयः शोथपाकाक्षिशूलहा ॥ ४० ॥
पिल्वञ्च सव्रणं शुक्रं रागादींश्चापि नाशयेत्।
एतैश्चापि घृतं पक्कं रोगांस्तांश्च व्यपोहति ॥ ४१ ॥

बहेडा, हरड, आमला, पटोलपात, नीमकी छाल और अडूसेकी छाल इनके द्वारा सिद्ध कियाहुआ क्काथ, गूगल डालकर पीनेसे नेत्रोंकी सूजन, नेत्रपाक, शूल, पिल्व, व्रण, शुक्र और लालीको नष्ट करता है। अथवा उक्त समस्त द्रव्योंके क्काथ और गूगलके कल्क द्वारा सिद्ध कियेहुये घृतको सेवन करनेसेभी उल्लिखित सम्पूर्ण दोष नष्ट होते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

नेत्रे त्वभिहते कुर्याच्छीतमाश्च्योतनादिकम् ॥

अभिघातजनित नेत्ररोगमें शीतलद्रव्योंद्वारा नेत्रमें आश्च्योतनादि कर्मकरे॥

दृष्टिप्रसादजननं विधिमाशु कुर्यात् स्निग्धैर्हिमैश्च

मधुरैश्च तथा प्रयोगैः। स्वेदाग्निधूमभयशोकरुजाभितापैरभ्याहतानपि तथैव भिषक् चिकित्सेत ॥ ४२ ॥

धूप, अग्नि, धुआँ, भय, शोक, आघात और अभिताप इन कारणोंसे उत्पन्न हुए नेत्ररोगमें स्निग्ध, शीतल और मधुरद्रव्योंका प्रयोग एवं दृष्टिको निर्मल करनेवाली विधि शीघ्रही करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

आगन्तुदोषं प्रसमीक्ष्य कार्यं वक्त्रोष्मणा स्वेदनमादितस्तु। आश्च्योतनं स्त्रीपयसा च सद्यो यच्चापि पित्तक्षतजापहं स्यात् ॥ ४३ ॥

धूल आदिके पडजानेसे नेत्राभिष्यन्द हुआ हो तो प्रथम मुँहकी भापसे फूँक फूँककर स्वेद देवे। फिर स्त्रीका दूध आँखोंमें टपकावे और पित्तज अभिष्यन्द तथा रक्ताभिष्यन्दकी समान चिकित्सा करे ॥ ४३ ॥

सूर्योपरागानलविद्युदादिविलोकनेनापि हतेक्षणस्य।
सन्तर्पणं स्निग्धहिमादिकार्यं सायं निषेव्यास्त्रिफलाप्रयोगाः

सूर्यग्रहण, अग्नि और बिजली इनको अधिक देखनेसे नेत्रोंमें पीडा होनेपर सन्तर्पण एवं स्निग्ध और शीतलक्रिया करे। सायंकालमें त्रिफलेके क्काथसे नेत्रोंको सिञ्चन करने अथवा उक्त काथको पानसे विशेष उपकार होताहै ॥४४

निशाब्दत्रिफलादार्वीसितामधुकसंयुतम्।
अभिघाताक्षिशूलघ्नं नारीक्षीरेण पूरणम् ॥ ४५ ॥

हल्दी, नागरमोथा, त्रिफला, दारुहल्दी, मिश्री और मुलैठी इनके चूर्णको समानभाग लेकर स्त्रीके दूधमें मिलाकर आँखोंमें भरनेसे अभिघातज नेत्रशूल नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

वाताभिष्यन्दवच्चापि वाते मारुतपर्यये।
पूर्वभक्तं हितं सर्पिः क्षीरं चाप्यथ भोजने ॥ ४६ ॥

अन्यतोवात और वातपर्यायरोगमें वातज अभिष्यन्दकी समान चिकित्सा करे। और भोजन करनेसे पहले घृतपान तथा भोजनके पश्चात् दुग्धपान करे ॥

वृक्षादन्यां कपित्थे च पञ्चमूले महत्यपि।
सक्षीरं कर्कटरसे सिद्धञ्चापि पिबेद्घृतम् ॥ ४७ ॥

बाँदा, कैथ, बृहत्पञ्चमूल इनके कल्क और काकडासिंगीके क्काथमें दूध सहित घृतको पकावे। इस घृतको आगन्तुक नेत्ररोगमें पान करनेसे शीघ्र लाभ होताहै ॥ ४७ ॥

अभिष्यन्द्यमधिमन्थरक्तोत्थमथवार्ज्जुनम् ।
शिरोत्पातं शिराहर्षमन्यांश्चोग्रभवान्गदान् ॥
स्निग्धस्याज्येन कौम्भेन शिरावेधैः शमं नयेत् ॥४८॥

रक्तज अभिष्यन्द, अधिमन्थ, अर्ज्जुन, शिरोत्पात, शिराहर्ष, एवं अन्यान्य घोरतर नेत्ररोगोंको दस वर्षके पुराने घृतको सेवनकर और मस्तककी शिराको वेधकर तथा पित्तज अभिष्यन्दनाशक अन्यान्य क्रियाओंको करके नष्ट करना।४८

अम्लाध्युषितशान्त्यर्थं कुर्याल्लेपान्सुशीतलान् ।
तैन्दुकं त्रैफलं सर्पिर्जीर्णं वा केवलं हितम् ।
शिरावेधं विना कार्यः पित्तष्यन्दहरो विधिः ॥४९॥

अम्लाध्युषितरोगकी शान्तिके लिये शीतल औषधियोंका प्रलेप करे । इसमें तैन्दुकघृत, त्रिफलाद्यघृत किंवा एकमात्र पुराना घृत पान करना हितकारी है। इसमें शिरावेध न कर पित्तज अभिष्यन्दनाशक चिकित्सा करनी चाहिये॥४९

सर्पिः क्षौद्राञ्जनञ्च स्याच्छिरोत्पातस्य भेषजम् ।
तद्वत्सैन्धवकासीसं स्तन्यपिष्टञ्च पूजितम् ॥ ५० ॥

शिरोत्पातरोगमें घृत और मधुके साथ मर्दनकर सौवीराञ्जन, एवं स्त्रीके दूधमें सैन्धेनमक और हीराकसीसको पीसकर नेत्रोंमें आँजनेसे शिरोत्पात रोगका नाश होता है ॥ ५० ॥

शिराहर्षेऽञ्जनं कुर्यात्फाणितं मधुसंयुतम् ।
मधुना तार्क्ष्यशैलं वा कासीसं वा समाक्षिकम् ॥५१॥
व्रणशुक्रप्रशान्त्यर्थं षडङ्गं गुग्गुलुं पिबेत ।
कतकस्य फलं शङ्खं तिन्दुकं रूप्यमेव च ॥
कांस्ये निघृष्टं स्तन्येन क्षतशुक्रार्त्तिरोगजित ॥ ५२ ॥

शिराहर्षरोगमें राब और शहदका अञ्जन बनाकर नेत्रोंमें लगावे । अथवा रसौतको शहदके साथ किंवा हीराकसीसको शहदके साथ मिलाकर आँखोंमें आँजे व्रण और शुक्ररोगकी शान्तिके लिये षडङ्गगुग्गुलुको पान करे । निर्मलीके फल, शङ्खचूर्ण, तेन्दु और चाँदी इनको समानभाग लेकर काँसीके पात्रमें स्त्रीके दूधके साथ खरलकर नेत्रोंमें लेप करनेसे नेत्रव्रण,शुक्र,लाली पीडा दूरहोय॥

शिरया वा हरेद्रक्तं जलौकाभिश्च लोचनात ।
अक्षमज्जाञ्जनं सायं स्तन्येन शुक्रनाशनम ॥ ५३ ॥

शुक्ररोगमें नेत्रोंकी शिरामेंसे जौंक लगवाकर रक्त निकलवावे । फिर बहेडेकी गिरीको नारीके दूधके साथ पीसकर और शहद मिलाकर सन्ध्यासमय आँखोंमें लगावे । इससे शुक्ररोग नष्ट होता है ॥ ५३ ॥

एकं वा पुण्डरीकञ्च छागीक्षीरावसेचितम् ।
रागाश्रुवेदनां हन्यात्पक्ष्मपाकात्ययाजकाः ॥
तुत्थकं वारिणा युक्तं शुक्रं हन्त्यक्षिपूरणात् ॥ ५४ ॥

केवल एकमात्र पुण्डेरियाको पीसकर वस्त्रमें बाँधकर पोटली बनालेवे, उस पाटलीको बकरीके दूधमें डुबोकर रखदेवे । जब दूध पीला होजाय तब उससे नेत्रोंको सिञ्चन करे । यह प्रयोग नेत्रोंकी लाली, अश्रुपात, वेदना, क्षत एवं पाकादिको निवारण करता है । तूतियाको जलमें घिसकर आँखोंमें पूरनेसे शुक्ररोग नष्ट होता है ॥ ५४ ॥

समुद्रफेनदक्षाण्डत्वक् सिन्धूत्थैः समाक्षिकैः ।
शिग्रुबीजयुतैर्वर्त्तिः शुक्रघ्नी शिग्रुवारिणा ॥ ५५ ॥

समुद्रफेनका चूर्ण, मुर्गीके अण्डेका छिलका, सैंधानमक और सहिंजनेके बीज इन सबको शहद और सहिंजनेके रसमें खरल करके बत्ती बनालेवे । यह बत्ती नेत्रोंमें लगानेसे शुक्ररोगको नष्ट करती है ॥ ५५ ॥

धात्रीफलं निम्बकपित्थपत्रं यष्ट्याह्वलोध्रं खदिरं तिलाश्च । क्वाथः सुशीतो नयने निषिक्तं सर्वप्रकारं विनिहन्ति शुक्रम् ॥ ५६ ॥

आमले, नीमके पत्ते, कैथके पत्ते, मुलैठी, लोध, खैर और तिल इनके शीतल क्वाथके द्वारा नेत्रोंमें छींटे लगानेसे यह क्वाथ सर्वप्रकारके शुक्ररोगकोनष्टकरताहै ॥

क्षुण्णपुन्नागपत्रेण परिभावितवारिणा ।
श्यामाक्काथाम्बुना वाथ सेचनं कुसुमापहम् ॥ ५७ ॥

नागकेशरके पत्तोंको कुचलकर भावना देकर निकालेहुए रससे अथवा श्यामालताके क्वाथसे नेत्रोंको सिञ्चन करनेसे कुसुमनामक नेत्ररोग दूरहोताहै॥

दक्षाण्डत्वक्शिलाशंखकाचचन्दनगैरिकैः ।
तुल्यैरञ्जनयोगोऽयं पुष्पार्म्मादिविलेखनः ॥ ५८ ॥

मुर्गीके अण्डेका छिलका, मैनसिल, शंखचूर्ण, काँच, लालचन्दन और गेरू इनको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें आँजनेसे यह योग कुसुम और अर्मादि रोगको विनाश करता है ॥ ५८ ॥

शिरीषबीजमरिचपिप्पलीसैन्धवैरपि ।
शुक्रे प्रघर्षणं कार्यमथवा सैन्धवेन च ॥ ५९ ॥

सिरसके बीज, कालीमिरच, पीपल और सैंधानमक इनके चूर्णको समान भाग लेकर शहदमें खरल करके सलाईसे नेत्रोंमें लगावे अथवा सैंधेनमकसे घर्षण करे तो शुक्र (फूली) रोग नष्ट होता है ॥ ५९ ॥

बहुशः पलाशकुसुमस्वरसैः परिभाविता जयत्याचिरात।
नक्ताह्वबीजवर्त्तिः कुसुमचयं दृक्षु चिरजमपि ॥ ६० ॥

करञ्जके बीजोंके चूर्णको ढाकके फूलेंके स्वरससे सात दिनतक भावना देकर बत्ती बनालेवे । उस बत्तीको नेत्रोंमें लगानेसे बहुत पुराना कुसुमरोगभी तत्काल नष्ट होता है ॥ ६० ॥

सैन्धवत्रिफलाकृष्णाकटुकाशङ्खनाभयः ।
सताम्ररजसो वर्त्तिः पिष्टा शुक्रविनाशिनी ॥ ६१ ॥

सैन्धानमक,त्रिफला,पीपल,कुटकी,शंखनाभि,ताँबेकी भस्म इन सबको शहदमें घोटकर बत्ती बनालेवे।फिर उसके द्वारा अञ्जन लगावे तो नेत्र शुक्र दूरहोय॥

चन्दनं सैन्धवं पथ्या पलाशतरुशोणितम् ।
क्रमवृद्धमिदं चूर्णं शुक्रार्मादिविलेखनम् ॥ ६२ ॥

लालचन्दन, सैंधानमक, हरड और ढाकका गोंद इन सबको क्रमशः बढाता हुआ लेवे । फिर सबको एकत्र बारीक चूर्ण करके शहदमें मिलाकर सलाईसे लगावे तो नेत्रोंका शुक्र और अर्मादिरोग नाश होता है ॥ ६२ ॥

शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्ततोऽर्द्धेन मनःशिला ।
मनःशिलार्द्धं मरिचं मरिचार्द्धेन सैन्धवम् ॥
एतच्चूर्णाञ्जनं श्रेष्ठं शुक्रयोस्तिमिरेषु च ॥ ६३ ॥

शंखनाभि ४ भाग, मैनासिल २ भाग, कालीमिरच १ भाग और सैंधानमक आधाभाग इन सबके चूर्णको शहदमें मिलाकर सलाईके द्वारा नेत्रोंके शुक्र, अर्म और तिमिर रोगमें आँजना श्रेष्ठ है ॥ ६३ ॥

ताप्यं मधुकसारो वा बीजमक्षस्य सैन्धवम् ।
मधुनाञ्जनयोगाः स्युश्चत्वारः शुक्रशान्तये ॥ ६४ ॥

सोनामाखी, मुलैठीका सत्त, बहेडेकी गुठलीकी मींग और सैंधानमक इन चारोंमेंसे किसी एकको शहदमें मिलाकर नेत्रोंमें आँजनेसे शुक्ररोग शमन होता है ये चारों ही योग शुक्ररोग नाशक हैं ॥ ६४ ॥

वटक्षीरेण संयुक्तं श्लक्ष्णं कर्पूरजं रजः ।
क्षिप्रमञ्जनतो हन्ति शुक्रञ्चापि घनोन्नतम् ॥ ६५ ॥

कपूरको खूब बारीक पीसकर बडके दूधमें मिश्रित करके आँखोंमें आँजनेसे अत्यन्त घन और उन्नत शुक्ररोगभी तत्काल नष्ट होता है ॥ ६५ ॥

तालस्य नारिकेलस्य तथैवारुष्करस्य च ।
करीषस्य च वंशानां कृत्वा क्षारं परिस्रुतम् ॥ ६६ ॥
करभास्थिकृतं चूर्णं क्षारेण परिभावितम् ।
सप्तकृत्वोऽष्टकृत्वो वा श्लक्ष्णचूर्णन्तु कारयेत् ॥ ६७ ॥
एतच्छुक्रेष्वसाध्येषु कृष्णीकरणमुत्तमम् ।
यानि शुक्राणि साध्यानि तेषां परममञ्जनम् ॥ ६८ ॥

ताडकी जटा, नारियलकी गिरी, भिलावे और बाँसके अंकुर इन सबको तिलनालकी अग्निके द्वारा पृथक् पृथक् भस्मकर सबका क्षार ग्रहण करे । फिर उस क्षारको अठगुने जलमें पकावे । जब चतुर्थांश जल शेष रहजाय तब उसको २१ बार छाने, उस जलमें ऊँटकी हड्डीका चूर्ण डालकर सात अथवा आठ दिनतक खरल करे । जब अच्छे प्रकार घुटकर बारीक होजाय तब सुखाकर बारीक चूर्ण करलेवे।फिर उसको शहदमें मिलाकर सलाईसे आँखोंमें लगावे तो यह असाध्य शुक्ररोगमें फूलीको दूरकर तत्काल कृष्णताको उत्पन्न करता है और साध्यशुक्रको नष्ट करनेके लिये तो यह परमोत्तम अञ्जन है॥६५-६८॥

अजकां पार्श्वतो विद्धा सूच्या विस्राव्य चोदकम् ।
व्रणं गोमयचूर्णेन पूरयेत्सर्पिषा सह ॥ ६९ ॥

अजकानामक नेत्ररोगमें नेत्रके समीपकी शिराको सुईसे बेधकर जल निकाले । उस जलको उपलोंके चूर्ण और घृतके साथ मिलाकर लगानेसे नेत्रव्रण शीघ्र भरजाताहै ॥ ६९ ॥

सैन्धवं वाजिपादश्च गोरोचनसमन्वितम् ।
शेलुत्वग्रससंयुक्तं पूरणं चाजकापहम् ॥ ७० ॥

सैंधानमक, घोडेका खुर और गोरोचन इनको समानभाग लेकर लसौडेकी छालके रसमें मिलाकर आँखोंमें भरनेसे अजकारोग दूर होता है ॥ ७० ॥

लिह्यात्सदा वा त्रिफलां सुचूर्णितां घृतप्रगाढां तिमिरेऽथ पित्तजे । समीरजे तैलयुतां कफात्मके मधुप्रगाढां विदधीत युक्तितः ॥ ७१ ॥

पित्तजतिमिररोगमें त्रिफलेके चूर्णको घृतके साथ, वातजतिमिरमें तेलके साथ और कफजतिमिररोगमें मधुके साथ मिलाकर युक्तिपूर्वक भक्षण करे ७१

कल्कः क्वाथोऽथवा चूर्णं त्रिफलाया निषेवितम् ।
मधुना सर्पिषा वापि समस्ततिमिरापहम् ॥ ७२ ॥

त्रिफलेका कल्क, क्वाथ अथवा चूर्ण, मधु और घृतके साथ मिश्रितकर सेवन करनेसे सर्वप्रकारके तिमिररोग नष्ट होते हैं ॥ ७२ ॥

यस्त्रैफलं चूर्णमपथ्यवर्जी सायं समश्नाति हविर्मधुभ्याम् ।
स मुच्यते नेत्रगतैर्विकारैर्भृत्यैर्यथा क्षीणधनो मनुष्यः ॥७३॥

जो पुरुष पथ्यद्रव्योंका भोजन करताहुआ प्रतिदिन सन्ध्यासमय त्रिफलेके चूर्णको घृत और मधुके साथ मिलाकर भक्षण करे तो वह मनुष्य सम्पूर्ण नेत्ररोगोंसे इस प्रकार मुक्त होताहै,जैसे धनहीन मनुष्य सेवकोंसे छूटजाताहै ॥७३

सघृतं वा वराक्वाथं शीलयेत्तिमिरामयी ॥

तिमिररोगी निरन्तर घृत डालकर त्रिफलेके क्वाथको पानकरे ।

जाता रोगा विनश्यन्ति न भवन्ति कदाचन ।
त्रिफलायाः कषायेण प्रातर्नयनधावनात् ॥ ७४ ॥

प्रतिदिन प्रातःकालमें त्रिफलेके क्वाथसे नेत्रोंको धोनेसे उत्पन्नहुए नेत्ररोग नष्ट होजाते हैं और फिर नेत्ररोग कभी पैदा नहीं होते हैं ॥ ७४ ॥

जलगण्डूषैः प्रातर्बहुशोऽम्भोभिः प्रपूर्य मुखरन्ध्रम् ।
निर्दयमुक्षन्नाक्षि क्षपयति तिमिराणि ना सद्यः ७५॥

प्रातः समय बहुतसे शीतल जलको मुखमें भरकर उस जलके द्वारा निर्दयी बनकर जोर जोरसे रोगीके नेत्रों पर कुल्ले करे इस प्रकार करनेसे तिमिररोग बहुत जल्द नष्ट होता है ॥ ७५ ॥

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्दीयते यदि ।
अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ ७६ ॥

भोजन करनेके बाद हाथकी हथेलीको जलसे घिसकर नेत्रोंमें बारम्बार लगावे तो शीघ्रही वह जल तिमिररोगको नष्ट करता है ॥ ७६ ॥

पत्रगैरिककर्पूरयष्टिनीलोत्पलाञ्जनम् ।
नागकेशरसंयुक्तमशेषतिमिरापहम् ॥ ७७ ॥

तेजपात, गेरू, कपूर, मुलैठी, नील कमल, रसौत और नागकेशर समान भाग लेकर एकत्र कूटपीसकर आँखोंमें आँजनेसे समस्त तिमिररोग नष्ट होतेहैं॥

शंखस्य भागाश्चत्वारस्तदर्द्धेन मनःशिला।
मनःशिलार्द्धं मरिचं मरिचार्द्धेन पिप्पली ॥ ७८ ॥
वारिणा तिमिरं हन्ति अर्बुदं हन्ति मस्तुना।
पिच्चिटं मधुना हन्ति स्त्रीक्षीरेण तदुत्तमम् ॥ ७९ ॥

शङ्ख चार भाग, मैनसिल दो भाग, मिरच एक भाग और सैंधानमक आधा भाग इनको एकत्र कूट, पीस, छानकर अञ्जन बनालेवे। इस अञ्जनको जलके साथ मिलाकर लगानेसे तिमिररोग, दहीके तोडके साथ लगानेसे अर्बुदरोग, शहद्में मिलाकर लगानेसे पिच्चिटरोग और स्त्रीके दूधमें मिलाकर लगानेसे सर्व प्रकारके नेत्ररोग नष्ट होते हैं॥ ७८ ॥ ७९ ॥

हारिद्रानिम्बपत्राणि पिप्पली मरिचानि च।
भद्रमुस्तं विडङ्गानि ससमं विश्वभेषजम् ॥ ८० ॥
गोमूत्रेण गुडी कार्या छागमूत्रेण चाञ्जनात्।
ज्वरांश्च निखिलान्हन्ति भूतावेशं तथैव च ॥ ८१ ॥
वारिणा तिमिरं हन्ति मधुना पटलं तथा।
नक्तान्ध्यं भृङ्गराजेन नारीक्षीरेण पुष्पकम् ॥
शिशिरेण परिस्रावमध्रुषं पिच्चटं तथा ॥ ८२ ॥

हल्दी, नीमके पत्ते, पीपल, मिरच, नागरमोथा, वायविडङ्ग और सोंठ इनको समान भाग लेकर एकत्र गोमूत्रके साथ उत्तम प्रकार खरल करके गोली बनालेवे। इस गोलीको बकरीके मूत्रमें घिसकर लगानेसे सर्व प्रकारके आगन्तुक ज्वर और भूतावेश तथा जलके साथ लगानेसे तिमिररोग, मधुके साथ लगानेसे पटलरोग, भाँगरेके स्वरसके साथ लगानेसे रतौंधा, स्त्रीके दूधके साथ लगानेसे पुष्पकरोग और शीतलजलके साथ मिलाकर लगानेसे परिस्राव, अध्रुष और पिच्चटरोग नष्ट होते हैं ॥ ८०-८२ ॥

भूमौ निघृष्टयाङ्गुल्या अञ्जनं शमनं तयोः।
तिमिरकाचार्महरं धूमिकायाश्च नाशनम् ॥ ८३ ॥

पृथ्वीमें अंगुलीको घिसकर फिर अञ्जन लगानेसे तिमिर, काच, अर्म और धूमिकारोगका नाश होता है ॥ ८३ ॥

त्रिफलाभृङ्गमहौषधमध्वाज्यच्छागपयांसि गोमूत्रे।
नागं सप्तनिषिक्तं करोति गरुडोपमं चक्षुः ॥ ८४ ॥

सीसेको अग्निमें तपाकर त्रिफलेके काथ, भाँगरेके स्वरस, सोंठके काथ, शहद, घी, बकरीके दूध और गोमूत्र इनमें क्रमपूर्वक सातबार बुझाकर उसकी सलाई बनालेवे । फिर उस सलईको पत्थरपर घिसकर अञ्जन लगावे तो इससे गरुडके समान दृष्टिशक्ति अत्यन्त सूक्ष्म होजाती है ॥ ८४ ॥

चिञ्चापत्ररसं निधाय विमले त्वौदुम्बरे भाजने
मूलं तत्र निघृष्टसैन्धवयुतं गौञ्जं विशोष्यातपे ।
तच्चूर्णं विमलाञ्जनेन सहितं नेत्राञ्जने शस्यते
काचार्मार्जुनपिच्चिटे सतिमिरे स्रावञ्च निर्वापयेत् ॥ ८५

इमलीके पत्तोंके स्वरसको ताँबेके पात्रमें (या गूलरकी लकडीके बने पात्रमें) रखकर उसमें पोहकर मूल और सैंधानमक डालकर खरल करे । फिर धूपमें सुखाकर बारीक चूर्ण करलेवे । उस चूर्णको काले सुरमेके साथ मिलाकर सलाईसे आँखोंमें आँजे तो इससे काच, अर्म, अर्जुन, पिच्चिट और तिमिररोग एवं नेत्रोंमेंसे जलका गिरना नष्ट होजाता है ॥ ८५ ॥

चित्राषष्ठीयोगे सैन्धवममलं विचूर्ण्य तेनाक्षि ।
सममञ्जनेन तिमिरं गच्छति वर्षादसाध्यमपि ॥ ८६ ॥

चित्रानक्षत्रयुक्त षष्ठी (छठ) तिथिमें सैंधेनमकको बारीक पीसकर आँखोंमें आँजनेसे एक वर्षका पुराना असाध्य तिमिररोगभी नष्ट होता है ॥ ८६ ॥

दद्यादुशीरनिर्यूहे चूर्णितं कणसैन्धवम् ।
तत्स्रुतं सघृतं तत्र भूयः क्षौद्रं क्षिपेद्धने ॥
शीते चास्मिन् हितमिदं सर्वजे तिमिरेऽञ्जनम् ॥८७॥

खसके काथमें पीपलका चूर्ण, सैन्धानमकका चूर्ण और घृत डालकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे । जब पकते पकते पाक गाढा होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें शहद मिलालेवे । फिर इसको नेत्रोंमें लगावे । यह अञ्जन सर्व प्रकारके तिमिररोगोंमें हितकारी है ॥ ८७ ॥

धात्रीरसाञ्जनक्षौद्रसर्पिर्भिस्तु रसक्रिया ।
पित्तानिलाक्षिरोगघ्नी तैमिर्यपटलापहा ॥ ८८ ॥

आमलेका काथ, रसौत, शहद और घृत इनको एकत्र यथाविधि पकाकर नेत्रोंमें डालनेसे पित्तज, वातज चक्षुरोग एवं तिमिर और पटल नष्ट होता है ॥

शृङ्गवेरं भृङ्गराजं यष्टीतैलेन मिश्रितम् ।
नस्यमेतेन दातव्यं महापटलनाशनम् ॥ ८९ ॥

अदरख, भाङ्गरा इनके रसको और मुलैठीके चूर्णको तिलके तेलमें मिला-कर सूँघनेसे महापटल रोगका नाश होता है ॥ ८९ ॥

लिङ्गनाशे कफोद्भूते यथावद्विधिपूर्वकम्।
विद्धा दैवकृते छिद्रे नेत्रं स्तन्येन पूरयेत् ॥ ९० ॥
ततो दृष्टेषु रूपेषु शलाकामाहरेच्छनैः।
नयनं सर्पिषाभ्यज्य वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् ॥ ९१ ॥
ततो गृहे निराबाधे शयीतोत्तान एव च।
उद्गारकासक्षवथुष्ठीवनोत्कम्पनानि च ॥ ९२ ॥
तत्कालं नाचरेदूर्द्ध्वं यन्त्रणास्नेहपीतवत्।
त्र्यहात्त्र्यहाद्धावयेत्तत् कषायैरनिलापहैः ॥ ९३ ॥
वायोर्भयात्त्र्यहादूर्ध्वं स्नेहयेदक्षि पूर्ववत्।
दशरात्रन्तु संयम्य हितं दृष्टिप्रसादनम् ॥ ९४ ॥
पश्चात्कर्म च सेवेत लङ्घनश्चापि मात्रया।
रागश्चोषोऽर्बुदं शोथो बुद्बुदं केकराक्षता ॥ ९५ ॥
अधिमन्थादयश्चान्ये रोगाः स्युर्दुष्टवेधजाः।
अहिताचारतो वापि यथास्वं तानुपाचरेत् ॥ ९६ ॥

कफसे उत्पन्न हुए लिङ्गनाश (दृष्टिनाशक) रोगमें विधिपूर्वक स्वभाव जन्य छिद्रको ताँबेकी सलाईसे वेधकर नेत्रोंको स्त्रीके दूधसे भरदेवे । जब कुछ स्वरूप दीखने लगे तब सलाईको धीरे धीरे निकाललेवे और नेत्रोंको घीस चुपडकर कपडेकी पट्टीसे बाँधदेवे । रोगीको धूप, धुआँ और वायुसे रहित स्थानमें चित्त लिटाकर सुलादेवे । एक सप्ताह पर्यन्त रोगीको उद्गार (डकार), खाँसी, छींक,थूकना और कम्प न हो इस विषयमें विशेष लक्ष्य रखना चाहिये और स्नेहपान करनेवालेकी समान पथ्यादिका प्रयोग करना चाहिये । फिर तीन तीन दिनके पश्चात् नेत्रोंके बन्धनको खोलकर वातनाशक औषधियोंके काथसे नेत्रोंको धोवे और वायु लगनेके भयसे तीसरे दिन घृतसे नेत्रोंको चुपड कर पूर्ववत् बाँधदेवे। इस प्रकार करते करते जब दश दिन बीत जायँ तब दृष्टिप्रसन्नाताकारक क्रियाकरे और हल्के अन्नको मात्रानुसारदेवे।यदि नेत्रोंको कुविधिसे बेधनेसे अथवा रोगीके अहित आचरण करनेसे नेत्रोंमें लाली, चोष, अर्बुद, सूजन, बुद्बुद, केकडेकी समान नेत्रोंका होना और अधिमन्थादि दुष्ट रोग उत्पन्न होजायँ तब विधिपूर्वक चिकित्सा कर उनको दूर करे॥९०-९६॥

रुजायामक्षिरोगे वा भूयो योगान्निबोध मे।
कालिकताः सघृता दूर्वायवगैरिकशारिवाः॥
सुखालेपाः प्रयोक्तव्या रुजारागोपशान्तये॥ ९७॥

नेत्ररोगमें उक्त पीडा होनेपर क्या करना चाहिये इसको कहते हैं:—
दूब, जौ, गेरू और अनन्तमूल इनको समान भाग लेकर घृतमें पीसकर नेत्रों-पर लेप करेतो नेत्रोंकी पीडा और लाली दूर होती है॥ ९७॥

पयस्या शारिवा पत्रमञ्जिष्ठामधुकैरपि।
अजाक्षीरान्वितैर्लेपः सुखोष्णः पथ्य उच्यते॥ ९८॥

क्षीरकाकोली, अनन्तमूल, तेजपात, मजीठ और मुलैठी इनको समानांश लेकर बकरीके दूधमें खरल करके अग्निपर कुछ एक गरम कर नेत्रोंपर सुहाता२ लेप करे तो शीघ्र आराम होता है॥ ९८॥

वातघ्नसिद्धे पयसि सिद्धं सर्पिश्चतुर्गुणे।
काकोल्यादिप्रतीवापं तद्युञ्ज्यात्सर्वकर्मसु॥ ९९॥

भद्रदार्व्यादिगणोक्त औषधियोंके द्वारा सिद्धकियाहुआ दूध चार सेर और काकोल्यादिगणकी औषधियोंका कल्क समान भाग मिश्रित सोलह तोला तथा घृत एक सेर लेकर सबको एकत्र मिश्रित करके उत्तम प्रकार घृतको सिद्धकरे इस घृतको नस्य, पान और अभ्यञ्जनादि सर्व कर्मोंमें प्रयोग करना चाहिये९९

शाम्यत्येवं न चेच्छूलं स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत्।
ततः शिरां दहेच्चापि मतिमान् कीर्त्तितं यथा॥१००॥
दृष्टेरथ प्रसादार्थमञ्जनं शृणु मे शुभे।
मेषशृङ्गस्य पत्राणि शिरीषधवयोरपि॥ १॥
मालत्याश्चापि तुल्यानि मुक्तावैदूर्यमेव च।
अजाक्षीरेण संपिष्य ताम्रे सप्ताहमावपेत्॥
प्रणिधाय तु तद्वर्त्तिं योजयेदञ्जने भिषक्॥ २॥

यदि उपर्युक्त क्रियासेभी नेत्रोंका शूल न शान्त हो तो स्निग्धस्वेद देकर रोगीके ललाटकी शिराको वेधकर रक्तमोक्षण करे और उस स्थानको दग्ध करदेवे। अब मैं दृष्टिकी प्रसन्नताके लिये अञ्जन कहता हूँ उसको सुनो। मेढासिङ्गी, सिरस, धव और चमेली इन सबके फूल, मोती और वैडूर्यमणि; इन सबोंको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें पीसकर ताँबेके बर्त्तनमें सात दिनतक रक्खे,

फिर उसकी बत्ती बनालेवे । उस बत्तीको नेत्रोंमें आँजनेसे नेत्रगत सर्व प्रकारकी पीडा नष्ट होती है ॥ १००--२ ॥

स्रोतोजं विद्रुमं फेनं सागरस्य मनःशिला ।
मरिचानि च तां वर्त्तिं कारयेद्वापि पूर्ववत् ॥ ३ ॥

रसौत, मूँगा, समुद्रफेन, मैनसिल और काली मिरच इनको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें पीसकर और ताँबेके पात्रमें सात दिनतक रखकर बत्ती बनालेवे । उस बत्तीको नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंकी सब पीडा शान्त होती है ॥३॥

रसाञ्जनं घृतं क्षौद्रं तालीशं स्वर्णगैरिकम् ।
गोशकृद्रससंयुक्तं पित्तोपहतदृष्टये ॥ ४ ॥

रसौत, घी, तालीसपत्र, शहद और पीलागेरू ये सब समान भाग लेकर गौके गोबरके रसमें खरल करले,फिर उसकी बत्ती बनाकर पित्तजदृष्टिदोषको शमन करनेके लिये नेत्रोंमें लगावे ॥ ४ ॥

नलिनोत्पलकिञ्जल्कं गोशकृद्रससंयुतम् ।
गुडिकाञ्जनमेतत्स्याद्दिनरात्र्यन्धयोर्हितम् ॥ ५ ॥

कमलकेशर और नीलोत्पलकी केशर इनको गौके गोबरके रसमें घोटकर गोली बनालेवे । उस गोलीको घिसकर नेत्रोंमें आँजनेसे दिनकी और रात्रिकी अन्धता नष्ट होजाती है ॥ ५ ॥

नदीजशंखत्रिकटून्यथाञ्जनं मनःशिला द्वे च निशे गवां यकृत् । सचन्दनेयं गुडिकाथ ऽञ्जने प्रशस्यते रात्रिदिनेष्वपश्यताम् ॥ ६ ॥

सैंधानमक, शंखनाभि, सोंठ, मिरच, पीपल, रसौत, मैनसिल, हल्दी, दारुहल्दी, गोरोचन और लालचन्दन इनको समान भाग लेकर जलमें पीसकर गोली बनावे । उस गोलीको नेत्रोंमें आँजनेसे दिन और रात्रि दोनोंकी अन्धता दूर होकर अच्छे प्रकार दीखने लगता है ॥ ६ ॥

कणा छागयकृन्मध्ये पक्का तद्रसपेषिता ।
अचिराद्धन्ति नक्तान्ध्यं तद्वत्सक्षौद्रमूषणम् ॥ ७ ॥

पीपलको, बकरीके यकृत् (जिगर)में पकाकर और उसीके रसमें पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे अथवा उक्तप्रकारसे कालीमिरचको पकाकर और शहदमें मिलाकर नेत्रोंमें आँजनेसे रात्र्यन्धता (रतौंधा) तत्काल नष्ट होती है॥ ७॥

पचेत्तु गोधां हि यकृत्प्रकल्पितं प्रपूरितं मागधिकाभिरग्निना । निषेवितं तद् यकृदञ्जनेन च निहन्ति नक्तान्ध्यमसंशयं खलु ॥ ८ ॥

गोहके यकृत् (पिल्ली) को पीपलके चूर्णसे भरकर जलमें सन्दमन्द अग्निद्वारा पकाकर भक्षणकरे अथवा उसी पकायेहुए जलमें उसको घिसकर नेत्रोंमें लगावे तो नक्तान्ध्य (रतौंधा) निश्चय दूर होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥

दध्ना निघृष्टं मरिचं रात्र्यन्धाञ्जनमुत्तमम् ॥

दहीके साथ काली मिरचको घिसकर नेत्रोंमें आँजना रतौंधेकी अत्युत्तम है॥

ताम्बूलयुक्तखद्योतभक्षणञ्च तदर्थकृत् ॥ ९ ॥

पानके रसमें पटबीजनेको घिसकर भक्षण करनेसे भी रात्र्यन्धता दूरहोतीहै॥

शफरीमत्स्यक्षारो नक्तान्ध्यमञ्जनाद्विनिहन्ति ॥

शफरीमत्स्य (एक प्रकारकी मछली) को अन्तर्धूमकी रीतिसे दग्धकर उसके क्षारको शहदमें मिलाकर आँजनेसे रतौंधी नष्ट होती है ॥

तद्वद्रामठटङ्कणकर्णमलश्चैकशोऽञ्जनान्मधुना ॥ ११० ॥

हींग, सुहागेकी खील और कानका मैल इनको एकत्र शहदके साथ खरलकर नेत्रोंमें आँजनेसे रात्र्यन्धताका नाश होताहै ॥ ११० ॥

केशराजान्वितं सिद्धं मत्स्याण्डं हन्ति भक्षितम् ।
नक्तान्ध्यं नियतं नृणां सप्ताहात्पथ्यसेविनाम् ॥ ११ ॥

पथ्यद्रव्योंका सेवन करनेवाले मनुष्योंकी नक्तान्धता (रतौंधी) रोहितमछलीके अण्डेको भाँगरेके रसमें पकाकर सातदिन सेवन करनेसे नष्ट होती है॥

घृतं हितं केवलमेव पैत्तिके तथा च तैलं पवनासृगुत्थयोः ॥

पित्तज तिमिररोगमें एकमात्र घृतका नस्य और वातज तथा रक्तज तिमिररोगमें तेलका नस्य देना हितकर है ॥ १२ ॥

अर्म तु छेदनीयं स्यात्कृष्णप्राप्तं भवेद्यथा ।
बडिशाविद्धमुन्नम्य त्रिभागश्चात्र वर्जयेत् ॥ १३ ॥

यदि अर्मनामक चक्षुरोग बढकर नेत्रके कृष्णभागमें पहुँच गया हो तो त्रिभाग अर्थात् कनीनिकाको त्यागकर सुईसे उसको ऊँचाकर बडिशयन्त्रसे वेध देवे और मण्डलके अग्रभागको अस्त्रसे छेदन करे ॥ १३ ॥

पिप्पलीत्रिफलालाक्षालौहचूर्णं ससैन्धवम् ।
भृङ्गराजरसे पिष्टं गुडिकाञ्जनमिष्यते ॥ १४ ॥

अर्म सतिमिरं काचं कण्डूं शुक्रं तथार्जुनम् ।
अजकां नेत्ररोगांश्च हन्यान्निरवशेषतः ॥ १५ ॥

पीपल, हरड, बहेडा, आमला, लाख, लोहचूर्ण और सैंधानमक इनको समान भाग लेकर भाँगरेके रसमें खरल करके गोली बनालेवे । यह गोली घिसकर आँखोंमें लगानेसे अर्म, तिमिर, काच, खुजली, शुक्र, अर्जुन, अजका और अन्यान्य सम्पूर्ण नेत्रविकारोंको समूल नष्ट करदेती है ॥ १४ ॥ १५ ॥

पुष्पाख्यतार्क्ष्यजसितोदधिफेनशङ्खसिन्धूत्थगैरिकाशि-
लामरिचैः समांशैः । पिष्टैश्च माक्षिकरसेन रसक्रियेयं
हन्त्यर्मकाचतिमिरार्जुनवर्त्मरोगान् ॥ १६ ॥

पुष्पकसीस, रसौत, मिश्री, समुद्रफेन, शंखनाभि, सैंधानमक, गेरू, मैनसिल और मिरच सबको समानभाग लेकर शहदके साथ खरल करके नेत्रोंमें आँजनेसे अर्म, काच, तिमिर, अर्जुन और वर्त्मादिनेत्ररोग दूर होते हैं ॥ १६ ॥

कौम्भस्य सर्पिषः पानैर्विरेकालेपसेचनैः ।
स्वादुशीतैः प्रशमयेच्छुक्तिकामञ्जनैस्ततः ॥ १७ ॥

शुक्तिकानामक नेत्ररोगको दस वर्षका पुराना घृत पानकर तथा विरेचन, प्रलेप, सेचन और मधुर तथा शीतल द्रव्योंके अञ्जनका प्रयोग इत्यादि क्रियाओंका उपयोग करके शमन करे ॥ १७ ॥

प्रवालमुक्तावैदूर्यशङ्खस्फटिकचन्दनम् ।
सुवर्णरजतक्षौद्रमञ्जनं शुक्तिकापहम् ॥ १८ ॥

मूँगा, मोती, वैदूर्यमणि, शंखनाभि, स्फटिकमणि, लालचन्दन, सोना और चाँदी इनको समानभाग लेकर शहदमें खरल करके अञ्जन बनालेवे । यह अञ्जन नियमपूर्वक लगानेसे शुक्तिकारोगको नष्ट करता है ॥ १८ ॥

शंखः क्षौद्रेण संयुक्तः कतकः सैन्धवेन च ।
सितयार्णवफेनो वा पृथगञ्जनमर्जुने ॥ १९ ॥

शंखनाभिकी भस्मको शहदमें मिलाकर अथवा निर्मलीके चूर्णको सैंधेनमकके साथ किम्वा समुद्रफेनके चूर्णको मिश्रीके साथ मिलाकर नेत्रोंमें आँजनेसे अर्जुननामक नेत्ररोगमें लाभ होता है ॥ १९ ॥

पैत्तं विधिमशेषेण कुर्यादर्जुनशान्तये ।

अर्जुनरोगको नष्ट करनेके लिये पित्तनाशक सम्पूर्ण क्रियाकरे ।

वैदेहीश्वेतमरिचं सैन्धवं नागरं समम् ।
मातुलुङ्गरसैः पिष्टमञ्जनं पिष्टकापहम् ॥ १२० ॥

पीपल, सहिंजनेके बीज, सैंधानमक और सोंठ इनको बराबर बराबर लेकर बिजौरे नींबूके रसमें पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे पिष्टकारोग दूर होता है॥२०॥

भित्वोपनाहं कफजं पिप्पलीमधुसैन्धवैः।
विलिखेन्मण्डलाग्रेण प्रच्छयेद्वा समन्ततः॥ २१॥

कफजउपनाहरोगको व्रीहिमुखनामक अस्त्रसे विदीर्ण करके पीपलके चूर्ण, शहद और सैंधेनमकको एकत्र पीसकर मण्डलके अग्रभागपर अस्त्रद्वारा लेखन करे फिर चारों ओरसे बाँधदेवे॥ २१॥

पथ्याक्षधात्रीफलमध्यबीजैस्त्रिद्व्येकभागैर्विदधीत वर्तिम्।
तयाञ्जयेदस्रुमति प्रगाढमक्ष्णोर्हरेत्कोपमतिप्रवृद्धम्॥ २२॥

हरडकी गुठलीकी मींग ३ तोले, बहेडेकी मींग २ तोले और आमलोंकी मींग १ तोला लेकर जलमें खरल करके वत्ती बनालेवे। उस वत्तीको शहदके साथ घिसकर आँखोंमें लगानेसे नेत्रोंके अत्यन्त वृद्धिगत समस्तरोग नष्ट होतेहैं॥

स्रावेषु त्रिफलाक्काथं यथादोषं प्रयोजयेत्।
क्षौद्रेणाज्येन पिप्पल्या मिश्रं विध्याच्छिरां तथा २३

पित्तज और रक्तजनित नेत्रोंके स्राव होनेमें त्रिफलेका काढा शहदके साथ, वातज, पित्तज और रक्तजनेत्रस्रावमें उक्त क्वाथ घीके साथ एवं कफज नेत्रस्रावमें पीपलके चूर्णके साथ पान कराना चाहिये। यदि इससे भी स्राव होना बन्द न हो तो शिराको वेधना चाहिये॥ २३॥

त्रिफलामूत्रकासीससैन्धवैः सरसाञ्जनैः।
रसक्रिया कृमिग्रन्थौ भिन्ने स्यात्प्रतिसारणम्॥२४॥

त्रिफलेका काथ १६ तोले, गोमूत्र १६ तोले एवं हीराकसीस, सैंधानमक और रसौत इनका चूर्ण समानभाग मिश्रित ८ तोले लेवे। सबको एकत्र मिलाकर लेहकी समान पाक करे। फिर कृमिग्रन्थिरोगमें इस अवलेहके द्वारा प्रतिसारण क्रिया करे॥ २४॥

वासकादि।

अटरूषाभयानिम्बधात्रीमुस्ताक्षकूलकैः।
रक्तस्रावं कफं हन्ति चक्षुषां वासकादिकम्॥ २५॥

अडूसेकी छाल, हरड, नीमकी छाल, आमले, नागरमोथा, बहेडा, परबल इन सबका विधिपूर्वक काथ बनाकर उससे नेत्रोंको सेचन करे, गूगलको डालकर पान करे तो यह वासकादि काथ कफसे उत्पन्नहुए नेत्रस्रावको नष्टकरताहै॥२५

बृहद्वासकादि ।

वासाघनं निम्बपटोलपत्रं तिक्तामृताचन्दनवत्सकत्वक् ।
कलिङ्गदार्वीदहनानि शुंठीभूनिम्बधात्रीत्वभयाविभीतम् ॥
श्यामायवक्कथमथाष्टभागं पिबेदिमं पूर्वदिने कषायम् ॥२६॥
तैमिर्यकण्डूपटलार्बुदञ्च शुक्रन्तथा सव्रणमव्रणञ्च ।
निहन्ति सर्वान्नयनामयांश्च भृगूपदिष्टं नयनामयेषु ॥ २७ ॥

अडूसेकी छाल, नागरमोथा, नीमकी छाल, परवल, कुटकी, गिलोय, लालचन्दन, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ, दारुहल्दी, चीता, सोंठ, चिरायता, आमले, हरड, वहेडा, शारिवा और जौ इन सब औषधियोंका अष्टावशेष काथ बनाकर प्रतिदिन प्रातःकाल पान करनेसे तिमिर, खुजली, पटल, अर्बुद, शुक्र, व्रण और अव्रणादि समस्त नेत्रसम्बन्धीरोग नष्ट होते हैं । यह काथ सर्व प्रकारके नेत्ररोगोंमें हितकारी है ऐसा भृगुजी कहा है ॥ २६ ॥ २७ ॥

कज्जल ।

संगृह्योपरतानलक्तकरसेनामृज्य गण्डूपदान्
लाक्षाराञ्जिततूलवर्तिभिलितान्यष्टीमधून्मीलितान् ।
प्रज्वाल्योत्तमसर्पिषानलशिखासन्तापजं कज्जलं
दूरासन्ननिशान्ध्यसर्वतिमिरप्रध्वंसकृच्चोदितम् ॥ २८ ॥

मरेहुए कैंचुएको लेकर आलके जलमें सात दिनतक भिजोकर धूपमें सुखालेवे । जब वह अच्छे प्रकार सूखजाय तब उसका चूर्ण करके उसकी बराबर भाग मुलैठीका चूर्ण मिलालेवे । फिर उस समस्त चूर्णको आलके बीचमें रखकर डोरेसे बाँधकर बत्ती बनालेवे । फिर उस बत्तीको घीमें सानकर अग्निपर तपावे और उसके नीचे एक काँचका बर्त्तन रखदेवे । इस प्रकार करनेसे उस बर्त्तनमें जो कज्जल गिरे उसको लेकर नेत्रोंमें आँजनेसे दूरान्ध्य, आसन्नान्ध्य और सर्वप्रकारका तिमिररोग नष्ट होता है ॥ २८ ॥

श्रीनागार्ज्जुनाञ्जन ।

त्रिफलाव्योषसिन्धूत्थयष्टितुत्थरसाञ्जनम् ।
प्रपौण्डरीकं जन्तुघ्नं लोध्रं ताम्रं चतुर्द्दश ॥ २९ ॥
द्रव्याण्येतानि सञ्चूर्ण्य वर्त्तिः कार्या नभोऽम्बुना ।
नागार्ज्जुनेन लिखिता स्तम्भे पाटलिपुत्रके ॥ ३० ॥

नाशिनी तिमिराणाञ्च पटलानां विशेषतः ।
सद्यः प्रकोपं स्तन्येन स्त्रिया विजयते ध्रुवम् ॥ ३१ ॥
किंशुकस्वरसेनाथ पिष्टं पुष्पञ्च रक्तताम् ।
अञ्जनाल्लोध्रतोयेन आसन्नतिमिरं जयेत् ॥ ३२ ॥
चिरं सञ्छादिते नेत्रे बस्तमूत्रेण संयुता ।
उन्मीलयत्यकृच्छ्रेण प्रसादं चाधिगच्छति ॥ ३३ ॥

हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, सैंधानमक, मुलैठी, तूतिया, रसौत, पुण्डेरिया, वायविडंग, लोध और ताम्रभस्म इन चौदह औषधियोंको समानभाग लेकर एकत्र कूट पीसकर वर्षाके जलमें खरल करके बत्ती बनालेवे। पटना नगरमें इस बत्तीको श्रीनागार्ज्जुनजीने शिलास्तम्भपर लिखा है। इसको स्त्रीके दूधमें घिसकर लगानेसे तिमिररोग, पटलरोग, विशेषकर नेत्रोंके समस्त रोगोंका निश्चय नाश होता है। टेसूके फूलोंके स्वरसमें घिसकर आँजनेसे पिल्ल, पुष्प और लाली दूर होती है, लोधके क्वाथमें मिश्रितकर लगानेसे आसन्नतिमिर और बकरेके मूत्रमें घिसकर लगानेसे पुराना जाला और नेत्रोंका कठिनतासे मिचना दूर होजाता है एवं दृष्टि अत्यन्त निर्मल होजाती है ॥

व्योषाद्यञ्जन ।

व्योषायश्चूर्णसिन्धूत्थत्रिफलाञ्जनसंयुता ।
त्रिफलाजलसंपिष्टा कोकिला तिमिरापहा ॥ ३४ ॥

सोंठ, पीपल, मिरच, लोहभस्म, सैंधानोन, त्रिफला और काला सुरमा इनको समानभाग लेकर त्रिफलेके क्वाथमें खरलकर बत्ती बनालेवे। इस बत्तीको घिसकर नेत्रोंमें आँजनेसे कोकिला और तिमिररोग दूर होता है ॥ ३४ ॥

त्रिकट्वाद्यञ्जन ।

त्रीणि कटूनि करञ्जफलानि द्वे च निशे सह सैन्धवकञ्च ।
बिल्वतरोर्वरुणस्य च मूलं वारिचरं दशमं प्रवदन्ति ३५
हन्ति तमस्तिमिरं पटलं पिच्चिटशुक्रमथार्बुदकञ्च ।
अञ्जनकं जनरञ्जनकञ्च दृङ् न विनश्यति वर्षशतेऽपि३६

सोंठ, मिरच, पीपल, करञ्जके फल, हल्दी, दारुहल्दी, सैंधानमक, बेलकी जड, वरनाकी जड और शंखनाभि इन दशों औषधोंको समान भाग लेकर जलमें पीसकर अञ्जन बनालेवे। यह अञ्जन नेत्रोंमें नित्यशः आँजनेसे तिमिर, पटल, अन्धकार, पिच्चिट, शुक्र और अर्बुदादि रोगोंको शीघ्र नष्ट करताहै

और दृष्टिको प्रसन्न करता है। इसको निरन्तर सेवन करनेसे सौ वर्षतक भी दृष्टिशक्ति नष्ट नहीं होती ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

व्रणशुक्रहरीवर्त्ति।

चन्दनगैरिकलाक्षामालतीकालिकासमाः।
व्रणशुक्रहरी वर्त्तिः शोणितस्य प्रसादनी ॥ ३७ ॥

लालचन्दन, गेरू, लाख और चमेलीकी कलियें इन सबको समानांश लेकर वर्षाके जलमें खरल करके छायामें सुखाकर बत्ती बनावे। इस बत्तीको शह-दमें घिसकर नेत्रोंमें आँजनेसे रक्तज व्रणशुक्ररोग दूर होताहै ॥ ३७ ॥

दन्तवर्त्ति।

दन्तैर्दन्तिवराहोष्ट्रगवाश्वाजखरोद्भवैः।
सशंखमौक्तिकाम्भोधिफेनैर्मरिचपादिकैः ॥
क्षतशुक्रमपि व्याधिं दन्तवर्त्ति निवर्त्तयेत् ॥ ३८ ॥

हाथी, सूकर, ऊँट, गौ, घोडा, बकरा और गधा इनमेंसे किसी एक जीवका दाँत एवं शंख, मोती और समुद्रफेन ये प्रत्येक द्रव्य एक एक तोले और कालीमिरच तीन माशे लेवे। सबको एकत्र जलके साथ बारीक पीसकर बत्ती प्रस्तुत करे। यह दन्तवर्त्ति यथाविधि प्रयोग करनेसे नेत्रोंके क्षतशुक्र रोगको निवारण करती है ॥ ३८ ॥

सुखावतीवर्त्ति।

कतकस्य फलं शंखः त्र्यूषणं सैन्धवं सिता।
फेनो रसांजनं क्षौद्रं विडङ्गानि मनःशिला ॥ ३९ ॥
कुक्कुटाण्डकपालानि वर्त्तिरेषा व्यपोहति।
तिमिरं पटलं काचमर्मशुक्रन्तथैव च ॥
कण्डूक्लेदोऽर्बुदं हन्ति मलं चाशु सुखावती ॥ १४० ॥

निर्मलीके फल, शंखनाभिकी भस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, सैंधानोन, मिश्री, समुद्रफेन, रसौत, वायविडङ्ग, मैनसिल और मुर्गीके अण्डेके छिल्के इन सबको बराबर बराबर लेकर शीतल जलमें खरल करके बत्ती बनालेवे। यह बत्ती शहदमें मिलाकर लगानेसे नेत्रोंके तिमिर, पटल, काच, अर्म, शुक्र, कण्डू, क्लेद, अर्वुद और मैलादि विकारोंको तत्काल हरण करती है ॥ ३९ ॥ १४० ॥

चन्द्रोदयावर्त्ति।

हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि च।
विभीतकस्य मज्जा च शंखनाभिर्मनःशिला ॥ ४१ ॥

सर्वमेतत्समाहृत्य च्छागीक्षीरेण पेषयेत् ।
नाशयेत्तिमिरं कण्डूं पटलान्यर्बुदानि च ॥ ४२ ॥
अधिकानि च मांसानि यश्च रात्रौ न पश्यति ।
अपि द्विवार्षिकं पुष्पं मासेनैकेन नश्यति ॥
वर्त्तिश्चन्द्रोदया नाम नृणां दृष्टिप्रसादनी ॥ ४३ ॥

हरड, वच, कूठ, पीपल, मिरच, बहेडेकी गुठलीकी मींग, शंखनाभि और मैनसिल सबको समानभाग लेकर बकरीके दूधमें खरल करके वत्ती बनालेवे। यह चन्द्रोदयानामवाली वत्ती निरन्तर प्रयोग करनेसे तिमिर, कण्डू, पटल, अर्बुद, अधिमांस, रात्र्यंध और जो दो वर्षकाभी होगया हो ऐसे पुष्प आदि नेत्ररोगोंको एक मासमेंही नष्ट करदेती है और दृष्टिको प्रसन्न करतीहै ॥४३॥

कुमारिकावर्त्ति ।

अशीतिस्तिलपुष्पाणि षष्टिः पिप्पलितण्डुलाः ।
जातिपुष्पाणि पञ्चाशन्मरिचानि च षोडश ॥
एषा कुमारिकावर्तिर्गतं चक्षुर्निवर्त्तयेत ॥ ४४ ॥

तिलके फूल ८०, पीपलके चावल ६०, चमेलीके फूल ५० और कालीमिरचें १६ लेवे। सबको एकत्रकर जलके साथ खरल करके बत्ती बनालेवे। यह कुमारिका वत्ती आँजनेसे नष्टहुए नेत्रोंको फिर दुबारा दीप्तिमान् बनादेती है ॥

दृष्टिप्रदावर्त्ति ।

त्रिफलाकुक्कुटाण्डत्वक्कासीसमयसो रजः ।
नीलोत्पलं विडङ्गानि फेनश्च सरितां पतेः ॥ ४५ ॥
आजेन पयसा पिष्ट्वा भावयेत्ताम्रभाजने ।
सप्तरात्रस्थितो भूयः पिष्ट्वा क्षीरेण वर्त्तयेत् ॥
एषा दृष्टिप्रदावर्त्तिरन्धस्याभिन्नचक्षुषः ॥ ४६ ॥

हरड, बहेडा, आमला, मुर्गीके अण्डेके छिलके, हीराकसीस, लोहचूर्ण, नीलोफर, वायविडङ्ग और समुद्रफेन इन सबको समानभाग लेकर बकरीके दूधके साथ ताँबेके बर्त्तनमें खरल करके सात दिनतक उसीमें रक्खा रहने देवे। सात दिनके बाद फिर उसको बकरीके दूधमें घोटकर वत्ती निर्माण करे। उस बत्तीको नेत्रोंमें लगानेसे दृष्टिशक्ति बढती है। इससे अन्धे और काने पुरुषके भी नेत्र शक्तिशाली होजाती हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

नयनसुखावर्त्ति ।

एकगुणा मागधिका द्विगुणा च हरीतकी सलिलपिष्टा ।
वर्त्तिरियं नयनसुखार्म्मतिमिरापटलकाचाश्रुहरी ॥ ४७ ॥

पीपल एक तोला और हरड दो तोले दोनोंको जलमें पीसकर बत्ती बनावे यह बत्ती नेत्रोंमें प्रयोग करनेसे नेत्रोंको सुख देती है एवं अर्म, तिमिर, पटल, काच और अश्रुपात होना प्रभृति विकारोंको हरती है ॥ ४७ ॥

चन्द्रप्रभावर्त्ति ।

अञ्जनं श्वेतमरिचं पिप्पली मधुयष्टिका ।
विभीतकस्य मध्यन्तु शङ्खनाभिर्मनःशिला ॥ ४८ ॥
एतानि समभागानि अजाक्षीरेण पेषयेत् ।
छायां शुष्कां कृतां वर्त्तिं नेत्रेषु च प्रयोजयेत् ॥ ४९ ॥
अर्बुदं पटलं काचं तिमिरं रक्तराजिकाम् ।
अधिमांसार्म्मणी चैव पञ्चरात्रौ न पश्यति ॥
वर्त्तिश्चन्द्रप्रभा नाम जातान्ध्यमपि नाशयेत् ॥५० ॥

रसौत, सहिंजनेके बीज, पीपल, मुलैठी, बहेडेकी गिरी, शंखनाभि और मैनसिल इनको समानभाग लेकर बकरीके दूधमें पीसलेवे फिर छायामें सुखाकर वत्ती बनालेवे। इस बत्तीको नेत्रोंमें आँजनेसे अर्बुद, पटल, काच, तिमिर, रक्तराजिका, अधिमांस, अर्म, रतौंधा और अन्धापन इत्यादि समस्त नेत्रव्याधियाँ नाश होजाती हैं ॥ ४८–१५० ॥

पञ्चशतिकावर्त्ति ।

नीलोत्पलपत्रशतं मुद्गशतं यवशतञ्च निस्तुषं ग्राह्यम् ।
मालत्याः कुसुमशतं पिप्पलीतण्डुलशतञ्च ॥ ५१ ॥
पञ्चशतैर्वर्त्तिविहिताञ्जनं कुर्य्यात्सर्वात्मके नयने ।
तिमिराश्रुकाचपटलानां नास्त्यपरः साधनोपायः ॥५२॥

नीलेकमलके पत्ते १००, मूँगके दाने १००, भूसीरहित जौं १००, चमेलीके फूल १०० और पीपलके चावल १०० इन सबको एकत्र जलके साथ खरल करके बत्ती बनालेवे। यह बत्ती सर्वप्रकारके नेत्ररोगोंमें आँजनी चाहिये। तिमिर, अश्रुपात, काच और पटलादिरोगोंको नष्टकरनेकेलिये इससे बढकर अन्य उपाय नहीं है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

सप्तामृतलौह।

त्रिफलारज आयसञ्च चूर्णं सहयष्टीमधुकं समांशयुक्तम्। मधुना सह सर्पिषा दिनान्ते पुरुषो निष्परिहारमाददीत ॥ ५३ ॥ तिमिराक्षतरक्तराजिकण्डूक्षणदान्ध्यार्बुदतोददाहशूलान्। पटलं सह रक्तकाचपिल्वं शमयत्येव निषेवितः प्रयोगः ॥ ५४ ॥ न च केवलमेव लोचनानां विहितो रोगनिबर्हणाय पुंसाम्। दशनश्रवणोर्द्धकण्ठजानां प्रशमे हेतुरयं महागदानाम् ॥ ५५ ॥ दयिताभुजपञ्जरोपगूढः स्फुटचन्द्राभरणासु यामिनीषु। सुरतानि चिरं निषेवतेऽसौ पुरुषो योगवरो निषेवमाणः ॥ ५६ ॥ मुखेन नीलोत्पलचारुगन्धिना शिरोरुहैरञ्जनमेचकप्रभैः। भवेच्च गृध्रस्य समानलोचनः सुखैर्नरो वर्षशतञ्च जीवति ॥ ५७ ॥

हरड, आमला, बहेडा, और मुलैठी इनका चूर्ण एकएक तोला लोहचूर्ण चार तोले लेकर जलमें पीसकर पुनः शहद और घीमें मिलाकर सायङ्कालमें सेवन करे। यह लोह तिमिर, क्षत, रक्तराजि,कण्डू, क्षणिक, अन्धता, अर्बुद, तोद, दाह, शूल, पटल, रक्त, काच और पिल्वादिरोगोंको सेवन करतेही शमन करता है। यह लोह केवल नेत्ररोगोंकोही दूर करनेके लिये नहीं विधान किया गया है, वल्कि दन्त, कर्ण, शिर और कण्ठजन्यरोग तथा अन्यान्य बडे बडे भयंकर रोगोंके नाशका मुख्य हेतु है। सेवन करनेवाला पुरुष स्त्रीके भुजारूपी पींजरेमें छिपाहुआ, खिलीहुई चाँदनीवाली रात्रियोंमें विषयसुखको चिरकालतक भोगता है। इससे मुख नीलकमलकी समान मनोरम सुगन्धियुक्त होता है और शिरके बाल अञ्जनके समान काले होजाते हैं तथा दृष्टिशक्ति गिद्धके समान अत्यन्त सूक्ष्म होती है। इसका सेवनकर्त्ता पुरुष सुखपूर्वक सौ वर्षतक जीता है ॥ ५३-५७ ॥

नयनामृतलौह।

त्रिकटु त्रिफला शृङ्गी शठी रास्ना महौषधम्।
द्राक्षानीलोत्पलञ्चैव काकोली मधुयष्टिका ॥ ५८ ॥
वाट्यालकं केशरञ्च कण्टकारीद्वयं तथा।
लौहाभ्रयोः पलं दत्त्वा भावयेद्वक्ष्यमाणजैः ॥ ५९ ॥

त्रिफलाक्काथतैलेन भृङ्गराजरसेन च।
भावयित्वा वटी कार्या बदरास्थिमिता शुभा॥
यावन्तो नेत्ररोगांश्च तान्निहन्ति न संशयः॥ ६०॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, काकडासिंगी, कचूर, रायसन, सोंठ, दाख, नीलेकमलकी जड, काकोली, मुलैठी, खिरैंटी, नागकेशर, कटेरी, बडी कटेरी इन सब औषधियोंका चूर्ण समान भाग मिश्रित ८ तोले और लोहे तथा अभ्रकका चूर्ण चार चार तोले लेकर एकत्र कूट पीसलेवे। फिर समस्त चूर्णको त्रिफलेके काथ, तिलके तेल और भाँगरेके रसमें सातबार क्रमपूर्वक भावना देकर उसकी बेरकी गुठलीके बराबर उत्तम गोलियाँ बनालेवे। यह वटी प्रतिदिन नियमबद्ध होकर आँजनेसे जितने नेत्रसम्बन्धीरोग हैं उन सबको निस्सन्देह नष्ट करती हैं॥ ५८-१६०॥

नेत्राशनिरस।

अभ्रं ताम्रं रसं लौहं माक्षिकञ्च रसाञ्जनम्।
पातनायन्त्रसंशुद्धं गन्धकं नवनीतकम्॥ ६१॥
पलप्रमाणं प्रत्येकं गृह्णीयाच्च विधानवित्।
सर्वमेकीकृतं चूर्णं वैद्यैः कुशलकर्मभिः॥ ६२॥
ततस्तु भावना कार्या त्रिफलाभृङ्गराजकैः।
ततः प्रपिष्य चूर्णञ्च पिप्पलीमूलयष्टिका॥ ६३॥
एला पुनर्नवा दारु पाठा भृङ्गशठी वचा।
नीलोत्पलं चन्दनञ्च श्लक्ष्णचूर्णञ्च दापयेत्॥ ६४॥
माषमेकं प्रदातव्यं घृतश्रीमधुमर्दितम्।
मर्दनं लौहदण्डेन पात्रे लौहमये दृढे॥ ६५॥
अनुपानं प्रदातव्यमुष्णेन वारिणा तथा।
यावन्तो नेत्ररोगांश्च पानादेव विनाशयेत्॥ ६६॥
सरक्ते रक्तपित्ते च रक्ते चक्षुस्स्रुतेऽपि च।
नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे॥ ६७॥
अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पिष्टे चैव चिरन्तने।
नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातापित्तकफेषु च॥
सर्वनेत्रामयं हन्याद्वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा॥ ६८॥

अभ्रक, ताँबा, पारा, लोहा, सोनामाखी इनकी भस्म, रसौत और पातन-यन्त्रसे शुद्धकीहुई आमलासारगन्धक ये प्रत्येक औषधि चारचार तोले लेकर एकत्र कूट पीसलेवे। फिर उस चूर्णको त्रिफले और भाँगरेके रसमें क्रमशः ७ बार भावना देकर सुखालेवे। पश्चात् उसका चूर्णकर उसके साथ पीपलामूल, मुलैठी, इलायची, पुनर्नवा, देवदारु, पाढ, भाँगरा, कचूर, वच, नील-कमल और लालचन्दन इनका खूब बारीक चूर्णकरे दसदस रत्तीप्रमाण मिलावे एवं घृत, लौङ्ग और शहद इनको एकएक माशा लेवे। सबको दृढतर और स्वच्छ लोहेके पात्रमें रख लोहेके दण्डेसे अच्छे प्रकार खरल करलेवे। इस रसको प्रतिदिन उचित मात्रानुसार उष्णजलके साथ सेवन करे। यह रस पान करतेही जितने नेत्ररोग हैं उन सबको नष्ट करदेता है इसको रक्तज नेत्ररोग, रक्तपित्त, रक्तज नेत्रस्राव, रात्र्यन्धयता, तिमिर, काच, नीलिका, पटल, अर्बुद, नेत्राभिष्यन्द, अधिमन्थ, पुराने पिष्टक एवं वातज, पित्तज और कफज आदि सर्वप्रकारके नेत्ररोगोंमें प्रयोग करना चाहिये। यह रस समस्त नेत्रविकारोंको इस प्रकार नष्ट करदेता है जिसप्रकार वज्राहत वृक्ष तत्काल नष्ट होजाता है॥

पटोलाद्यघृत।

पटोलं कुटकां दार्वीं निम्बं वासां फलत्रिकम्।
दुरालभां पर्प्पटकं त्रायन्तीश्च पलोन्मिताम्॥ ६९॥
प्रस्थमामलकानाञ्च क्काथयेन्नलवणेऽम्भसि।
पादशेषे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ १७०॥
कल्कैर्भूनिम्बकुटजमुस्तयष्टयाह्वचन्दनैः।
सपिप्पलीकैस्तत्सिद्धं चाक्षुष्यं नेत्रयोर्हितम्॥ ७१॥
घ्राणकर्णाक्षिवर्त्मत्वङ्मुखरोगव्रणापहम्।
कामलाकुष्ठवीसर्पगण्डमालापहं परम्॥ ७२॥

पटोलपात, कुटकी, दारुहलदी, निम्बकी छाल, अडूसेकी छाल, त्रिफला, धमासा, पित्तपापडा और त्रायमाणालता प्रत्येकका चूर्ण चारचार तोले एवं सूखे आमले एक प्रस्थ लेवे। सबको एकत्रकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाईभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें घृत एक प्रस्थ एवं चिरायता, कुडेकी छाल, नागरमोथा, मुलैठी, लालचन्दन और पीपल इन सबका समानभाग मिश्रित कल्क एक सेर डालकर विधिपूर्वक घृतको पकालेवे। यह घृत नेत्रोंको परम हितकारी है। एवं नाक, कान, अक्षिवर्त्म

त्वचा और मुख इनके रोग, व्रण, कामला, कूठ, विसर्प, गण्डमालादि रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ६९-७२ ॥

शशकाद्यघृत।

शशकस्य कषाये तु सर्पिषः कुडवं पचेत्।
यष्टिप्रपौण्डरीकस्य कल्केन पयसा समम् ॥ ७३ ॥
छागल्याः पूरणाच्छुक्रक्षतपाकात्ययाजकाः।
हन्ति भ्रूशंखमूलञ्च दाहरोगं विशेषतः ॥ ७४ ॥

खरगोशके एक सेर काथमें घी १६ तोले, मुलैठी और पुण्डोरियाका कल्क चारचार तोले तथा बकरीका दूध एकसेर डालकर उत्तम प्रकार घृतको सिद्ध-करे। इस घृतको नेत्रोंमें आँजनेसे शुक्र, क्षत, पाक, अजका, भ्रूशङ्खमूल और विशेषकर दाह रोग नष्ट होताहै ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

त्रिफलाद्यघृत।

फलत्रिकाभीरुकषायसिद्धं कल्केन यष्टीमधुकस्य युक्तम्।
सर्पिः समं क्षौद्रचतुर्थभागं हन्यात्त्रिदोषं तिमिरं प्रवृद्धम् ७५

हरड, बहेडा और आमला इनका काथ ८ सेर, शतावरका स्वरस दोसेर और मुलैठीका कल्क एकसेर सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक दोसेर घृतको सिद्धकरे। जब उत्तम प्रकार पककर सिद्धहोजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें घीसे चौथाईभाग शहद मिलादेवे। यह घृत अत्यन्त प्रबल त्रिदोषज तिमिररोगको नष्ट करता है ॥ ७५ ॥

अन्यत्रिफलाद्यघृत।

त्रिफला त्र्यूषणं द्राक्षा मधुकं कटुरोहिणी।
प्रपौण्डरीकं सूक्ष्मैला विडङ्गं नागकेशरम् ॥ ७६ ॥
नीलोत्पलं शारिवे द्वे चन्दनं रजनीद्वयम्।
कार्षिकैः पयसा तुल्यं त्रिगुणं त्रिफलारसम् ॥ ७७ ॥
घृतं प्रस्थं पचेदेतत्सर्वनेत्ररुजापहम्।
तिमिरं दोषमास्रावं कामलां काचमर्बुदम् ॥ ७८ ॥
विसर्पं प्रदरं कण्डूं रक्तं श्वयथुमेव च।
खालित्यं पलितञ्चैव केशानां पतनं तथा ॥ ७९ ॥
विषमज्वरमर्म्माणि शुक्रञ्चाशु व्यपोहति।
अन्ये च बहवो रोगा नेत्रजा ये च वर्त्मजाः ॥ ८० ॥

तान्सर्वान्नाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा।
न चैतस्मात्परं किञ्चिद्दृषिभिः कश्यपादिभिः॥
दृष्टिप्रसादनं दृष्टं यथा स्यात्त्रैफलं घृतम्॥ ८१॥

त्रिफला, त्रिकुटा, दाख, मुलैठी, कुटकी, पुण्डेरिया, छोटी इलाछची, वायविडङ्ग, नागकेशर, नीलकमल, उसवा, अनन्तमूल, लालचन्दन, हल्दी और दारुहल्दी इन प्रत्येक औषधियोंका कल्क एकएक कर्ष, दूध एक प्रस्थ, घी एक प्रस्थ और त्रिफलेका क्वाथ तीन प्रस्थ लेवे। सबको एकत्र मिलाकर यथाविधि घृतको सिद्धकरे। यह घृत सर्वप्रकारके नेत्ररोगोंको दूर करता है। इसके सेवनसे तिमिररोग, स्राव होना, कामला,काच, अर्बुद, विसर्प,प्रदर, खुजली, रक्तविकार, सूजन, खालित्य,पलित,केशोंका गिरना, विषमज्वर,अर्म और शुक्र आदिरोग तत्काल नाश होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेको प्रकारके नेत्र तथा वर्त्मजन्य रोगोंको यह घृत इस भाँति नष्ट करता है, जिस प्रकार सूर्य भगवान् अन्धकार समूहको तत्क्षण नष्ट करदेते हैं। कश्यपादि ऋषियोंने कहा है कि,दृष्टिको प्रसन्न करनेवाली इस त्रिफलाघृतसे बढकर अन्य नहीं औषधिहै॥

महात्रिफलाद्यघृत।

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च।
वृषस्य च रसप्रस्थं शतावर्याश्च तत्समम्॥ ८२॥
अजाक्षीरं गुडूच्याश्च आमलक्या रसन्तथा।
प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं पचेत्॥ ८३॥
कल्कः कणा सिता द्राक्षा त्रिफला नीलमुत्पलम्।
मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका॥ ८४॥
तत्साधुसिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत्।
ऊर्ध्वपानमधःपानं मध्ये पानञ्च शस्यते॥ ८५॥
यावन्तो नेत्ररोगास्तान् पानादेवोपकर्षति।
रक्तजे रक्तदुष्टे च रक्ते चातिस्रुतेऽपि च॥ ८६॥
नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे।
अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पक्ष्मकोपे च दारुणे॥ ८७॥
नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च।
अदृष्टिं मन्ददृष्टिञ्च कफवातप्रदूषिताम्॥ ८८॥

स्रवतो वातपित्ताभ्यां सकण्ड्वासन्नदूरदृक् ।
गृध्रदृष्टिकरं सद्यो बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥
सर्वनेत्रामयं हन्यात्त्रिफलाद्यं महद्घृतम् ॥ ८९ ॥

त्रिफलेका काथ एक प्रस्थ, भाँगरेका रस एक प्रस्थ, अडूसेका रस १ प्रस्थ शतावरका रस १ प्रस्थ, बकरीका दूध १ प्रस्थ, गिलोयका रस १ प्रस्थ और आमलोंका रस१ प्रस्थ लेवे। सबको एकत्रकर इनमें एक प्रस्थ घी तथा पीपल, चीनी,दाख, त्रिफला, नीलकमल, मुलैठी, क्षीरकाकोली,गिलोय, कटेरी इनके समानभाग मिलित कल्कको एक सेर डालकर यत्नपूर्वक घृतको पकावे । जब अच्छेप्रकार पककर सिद्ध होजाय तब उसको उतारकर उत्तम पात्रमें भरकर रखदेवे । इस घृतको भोजन करनेसे पहले, मध्यमें और अन्तमें पान करना चाहिये । यह घृत नेत्रसम्बन्धी जितने रोग हैं उन सबको पान करतेही नष्ट करदेता है । रक्तज नेत्ररोग, दूषित्तरक्त, रक्तस्राव, रतौंधा, तिमिर, काच, नीलिका, पटल, अर्बुद, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, दारुण पक्ष्मरोग, वातज, पित्तज और कफजादि सर्वप्रकारके चक्षुरोगोंमें यह घृत विशेष उपयोगी है । तथा अन्धता, मन्ददृष्टि, कफ और वातसे दूषित दृष्टि, नेत्रस्राव, वातपित्त-जन्य खुजली और समीपवर्त्ती वस्तुका दूर दीखना इत्यादि विकारोंको दूर करके तत्काल गिद्धकीसी दृष्टि करदेता है । इससे बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है । यह महात्रिफलाद्यघृत सर्वप्रकारके नेत्ररोगोंको नष्ट करता है॥

नृपवल्लभतैल और घृत ।

जीवकर्षभकौ मेदे द्राक्षांशुमती निदिग्धिका बृहती ।
मधुकं बला विडङ्गं मञ्जिष्ठा शर्करा रास्ना ॥ ९० ॥
नीलोत्पलं श्वदंष्ट्रा प्रपौण्डरीकं पुनर्नवा लवणम् ।
पिप्पल्यः सर्वेषां भागैरक्षांशिकैः पिष्टैः ॥ ९१ ॥
तैलं वा यदि वा सर्पिर्दत्त्वा क्षीरं चतुर्गुणं पक्कम् ।
आत्रेयैर्निर्मितमिदं तैलं नृपवल्लभं सिद्धम् ॥ ९२ ॥
तिमिरं पटलं काचं नक्तान्ध्यं चार्बुदं दिवान्ध्यञ्च ।
श्वेतञ्च लिङ्गनाशं नाशयति च नीलिकां व्यङ्गम् ॥९३॥
मुखनासादौर्गन्ध्यं पलितञ्चाकालजं हनुस्तम्भम् ।
श्वासं कासं शेषं हिक्कां तथात्ययं नेत्रे ॥ ९४ ॥

मुखजेह्वचमूर्द्धभेदं रोगं बाहुग्रहं शिरस्तम्भम् ।
रोगानथोर्द्ध्वजत्रोः सर्वानचिरेण नाशयति ॥ ९५ ॥
पक्वःथं कुडवं तैलं नस्यार्थं नृपवल्लभम् ।
अक्षांशैः पाणिकैः कल्कैरन्यैर्भृङ्गादितैलवत् ॥ ९६ ॥
सिद्धफलमिदम् ।

जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, दाख, शालपर्णी, कटेरी, बडी कटेरी, मुलैठी, खिरैंटी, वायविडङ्ग, मंजीठ, चीनी, रास्ना, नीलकमल, गोखुरू, पुण्डेरिया, पुनर्नवा, सैंधानमक और पीपल इन सबको छः छः तोले लेकर एकत्र कूटपीसकर कल्क बनालेवे । इस कल्कके साथ तिलका तेल अथवा घी एक प्रस्थ और दूध चार प्रस्थ मिलाकर उत्तम प्रकार पकावे। इस नृपवल्लभ तेलको श्रीमान् आत्रेयजीने निर्माण किया है । यह तेल या घी तिमिर, पटल, काच, नक्तान्ध्य, अर्बुद, दिवान्ध्य, श्वेत, लिङ्गनाश, नीलिका, व्यङ्ग, मुख और नाककी दुर्गन्धि, असमय बालोंका पकना, हनुस्तम्भ, श्वास, खाँसी, शोष, हिचकी, नेत्रोंमें अन्धकार दीखना, स्तम्भ, मुख और जीभके रोग, ऊर्ध्वभेद-रोग, बाहुस्तम्भ, शिरस्तम्भ, ऊर्ध्वजत्रु एवं अन्यान्यसम्पूर्ण रोगोंको तत्काल नष्ट करता हैं । उस तेलको नस्यके लिये एक कुडव परिमाण लेकर पकावे अक्षांशके कहनेसे कल्ककी प्रत्येक औषधि चार चार मासे लेवे । शेष विधि भृङ्गराजादितेलकी समान करनी चाहिये। यह शीघ्र सिद्धफलको देनेवालाहै ॥

भृङ्गराजतैल ।

भृङ्गराजरसप्रस्थे यष्टीमधुपलेन च ।
तैलस्य कुडवं पक्कं सद्यो दृष्टिं प्रसादयेत ॥
नस्याद्वलीपलितघ्नं मासेनैतन्न संशयः ॥ ९७ ॥

भाँगरेके एक प्रस्थ रसमें मुलैठीका कल्क चार तोले और तिलका तेल एक कुडव (१६ तोले) डालकर विधिपूर्वक पकावे । इस तेलकी नास लेनेसे वली और पलितरोग एक मासमें ही निस्सन्देह नष्ट होजाते हैं तथा दृष्टिशक्ति प्रसन्न होती है ॥ ९७ ॥

नेत्ररोगमें पथ्य ।

आश्च्योतनं लंघनमञ्जनञ्च स्वेदो विरेकः प्रतिसारणञ्च ।
प्रपूरणं नस्यमसृग्विमोक्षः शस्त्रक्रियालेपनमाज्यपानम् ९८॥
सेको मनोनिर्वृतिरङ्घ्रिपूजा मुद्गा यवा लोहितशालयश्च ।
लावो मयूरो वनकुक्कुटश्च कूर्मः कुलिङ्गोऽपि कपिञ्जलश्च९९॥

कौसुम्भं हविर्वन्यकुलत्थयूषः पेया विलेपी लशुनं पटोलम् ।
वार्त्ताकुकर्कोटककारवेल्लं नवीनमोचं नवमूलकञ्च ॥ १०० ॥
पुनर्नवामार्कवकाकमाचीपत्तूरशाकानि कुमारिका च ।
द्राक्षा च कुस्तुम्बुरु माणिमन्थं लोध्रं वरा क्षौद्रमुपानहश्च १०१
नारीपयश्चन्दनमिन्दुखण्डं तिक्तानि सर्वाणि लघूनि चापि ।
विजानता पथ्यमिदं प्रयुक्तं यथामलं नेत्रगदान्निहन्ति १०२

आश्च्योतन (नेत्रोंमें औषधि टपकाना), लंघन करना, अञ्जन आँजना, स्वेद, विरेचन, प्रतिसारण, नेत्रोंमें औषधि भरना, नस्य, रक्तमोक्षण, शस्त्रकर्म, प्रलेप, घृतपान, परिषेचन, मनकी स्थिरता, दोनों पैरोंको जलसे धोकर और पोंछकर साफ रखना, मूँग, जो लालशालिके चावल, लवा, मोर, जङ्गली मुर्गा, कछुआ, केंकडा और कपिञ्जलआदि जीवोंका मांस, पुराना घी, वनकुलत्थीका यूष, पेया, विलेपी, लहसुन, परवल, बैंगन, ककोडे, करेला, केलेका नया मोचा, कच्ची मूली, पुनर्नवा, भाँगरा, मकोय, शान्तिशाक, घीग्वार, दाख, धनियाँ, सेंधानमक, लोध, त्रिफला, शहद, खडाऊँ पहरना, स्त्रीका दूध, लाल चन्दन, कपूर, सर्वप्रकारके तीखे और हल्के पदार्थ ये सब क्रियायें अन्नपान और औषधियें यथादोषानुसार सेवन करनेसे समस्त नेत्ररोगोंको नष्ट करती हैं ॥ ९८–१०२ ॥

नेत्ररोगमें अपथ्य ।

क्रोधं शुचं मैथुनमश्रुवायुविण्मूत्रनिद्रावमिवेगरोधान् ।
सूक्ष्मेक्षणं दन्तविघर्षणञ्च स्नानं निशाभोजनमातपञ्च ॥ ३ ॥
द्रवं रजोधूमनिषेवणं च दृक्स्वेदनञ्चापि विरुद्धमन्नम् ।
प्रजल्पनं छर्दनमम्बुपानं मधूकपुष्पं दधि पत्रशाकम् ॥ ४ ॥
कालिन्दपिण्याकविरूढकानि मत्स्यं सुरां मांसमजाङ्गलञ्च ।
ताम्बूलमम्लं लवणं विदाहि तीक्ष्णं कटूष्णं गुरु चान्नपानम्
नरो न सेवेत हिताभिलाषी रोगेषु सर्वेषु दृगाश्रयेषु ॥ ५ ॥

क्रोध, शोक, स्त्रीप्रसङ्ग, आँसू, अपानवायु, मल, मूत्र, निद्रा और वमन इनके वेगोंको रोकना, बहुत सूक्ष्म वस्तुको देखना, दन्तमञ्जन करना, स्नान, रात्रिमें भोजन, धूपका सेवन, पतले पदार्थ, धूल और धुएँका सेवन, नेत्रोंको स्वेद देना, विरुद्ध अन्नपान, बहुत बोलना, वमन करना, अधिक जल पान, महुएके फूल, दही, पत्तोंवाले शाक, तरबूज, तिलकुट, जिसमें अंकुर निकल आये हों ऐसे अन्न, मछली, मदिरा, जङ्गलीजीवोंके अतिरिक्त अन्य प्राणियोंका

मांस, ताम्बूल, खटाई या खट्टे पदार्थ, नमकीन, दाहकारक, तीक्ष्ण, चरपरे, गरम और गुरुपाकी अन्न और पानीय द्रव्य इन सबको हितकी अभिलाषा करनेवाला नेत्ररोगी सर्वप्रकारके नेत्ररोगोंमें कदापि सेवन न करे ॥३-५॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां नेत्ररोगचिकित्सा ॥

शिरोरोगकी चिकित्सा।

वातिके शिरसो रोगे स्नेहस्वेदान्सनावनान्।
पानान्नमुपनाहांश्च कुर्याद्वातामयापहान् ॥ १ ॥

वातज शिरोरोगमें तेलादिस्नेहद्रव्योंकी मालिश, वातहर द्रव्योंके द्वारा सेक, नस्य और वातनाशक अन्न पान एवं प्रलेपादि उपचार करने चाहिये ॥ १ ॥

कुष्ठमेरण्डमूलञ्च लेपात्काञ्जिकयोजितम्।
शिरोऽर्त्तिं नाशयत्याशु पुष्पं वा मुचुकुन्दजम् ॥ २ ॥

कूठ और अण्डकी जडको काँजीके साथ पीसकर लेप करनेसे अथवा मुचुकुन्दके फूलोंको पीसकर लेपकरनेसे शिरकी पीडा तत्काल दूर होती है ॥ २ ॥

पैत्ते घृतं पयः सेकाः शीतलेपाः सनावनाः।
जीवनीयानि सर्पींषि पानान्नञ्चापि पित्तनुत् ॥ ३ ॥

पित्तजशिरोरोगमें घी और दूधका पान, शीतलद्रव्यों द्वारा सेचन शीतल द्रव्योंका लेप, नस्य, जीवनीयगणोक्त औषधियोंके द्वारा सिद्धकियाहुआ घृतपान और पित्तनाशक अन्न-पान प्रयोग करने चाहिये ॥ ३ ॥

कफजे लङ्घनं स्वेदो रूक्षोष्णैः पाचनात्मकैः।
तीक्ष्णावपीडधूमाश्च तीक्ष्णाश्च कवडग्रहाः ॥ ४ ॥

कफजशिरोरोगमें लङ्घन, रूक्ष और उष्णद्रव्योंसे परिषेक, दशमूलादिपाचन, तीक्ष्णद्रव्योंद्वारा नस्य, धूम और कवल धारण करना चाहिये ॥ ४ ॥

सूर्यावर्त्तकी चिकित्सा।

सूर्यावर्त्तभवं बीजं तद्रसेन सुपेषितम्।
वेदनानाशनो लेपः सूर्यावर्त्तार्द्धभेदयोः ॥ ५ ॥

हुलहुलके बीजोंको हुलहुलके पत्तोंके रसमें पीसकर लेप करनेसे सूर्यावर्त्त और अर्द्धावभेदक शिरोरोगकी वेदना नष्ट होती है ॥ ५ ॥

सूर्यावर्त्ते विधातव्यं नस्यकर्मादिभेषजम्।
पाययेत्सगुडं सर्पिर्घृतपूरांश्च भोजयेत ॥ ६ ॥

सूर्यावर्त्तरोगमें औषधियोंका नस्य देकर गुडमिलाहुआ घृत पानकरे और घीसे भरेहुए मालपुओंको भक्षण करे ॥ ६ ॥

सूर्यावर्त्ते शिरावेधो नावनं क्षीरसर्पिषा।
हितः क्षीरघृताभ्यासस्ताभ्याञ्चैव विरेचनम् ॥ ७ ॥

सूर्यावर्त्तनामक शिरोरोगमें शिराको वेधना, दूधमेंसे निकलेहुए मक्खनद्वारा नास लेना, दूध और घीको पीना एवं दुग्ध, घृतके साथ ही शिरोविरेचक औषधि देकर नस्य प्रयोग करना हितकारी है ॥ ७ ॥

कृतमालपल्लवरसे खरमञ्जरीकल्कसिद्धं नवनीतम्।
नस्येन जयति नित्यं सूर्यावर्त्तं सुदुर्वारम् ॥ ८ ॥

अमलतासके पत्तोंके रसमें चिरचिटेके बीजोंका कल्क और नैनी घी डाल कर विधिपूर्वक पकावे। फिर इसकी प्रतिदिन नस्य लेनेसे दारुण सूर्यावर्त्तरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ८ ॥

दशमूलीकषायस्तु सर्पिः सैन्धवसंयुतम्।
नस्यमर्द्धावभेदघ्नं सूर्यावर्त्तशिरोऽर्त्तिजित् ॥ ९ ॥

दशमूलके काढेमें सैंधानमक, घृत डालकर एकत्र पकालेवे। पश्चात् उस घृतको नस्यद्वारा प्रयोग करे तो अर्द्धावभेदक सूर्यावर्त्तशिरोरोग दूरहोताहै॥९॥

शिरीषमूलकबीजैरवपीडश्च योजयेत्।
अवपीडो हितो वा स्याद्वचापिप्पलिभिः कृतः॥१०॥

सिरसकी छाल और मूलीके बीज ये प्रत्येक छः २ माशे लेकर एकत्र पीस लेवे फिर उनमेंसे रस निचोड लेवे। उस रसकी नास लेनेसे अथवा वच, पीपलके चूर्णको एकत्र मिलाकर नासलेनेसे सूर्यावर्त्तरोग नष्ट होता है॥१०॥

जाङ्गलानि च मांसानि कारयेदुपनाहनम्।
तेनास्य शाम्यति व्याधिः सूर्यावर्त्तः सुदारुणः॥११॥

जङ्गलीजीवोंके मांस और वातनाशक औषधियोंको एकत्र पकाकर उसमें सेंधानमक और तिलका तेल डालकर मन्दोष्ण लेप करे। इससे दारुण सूर्यावर्त्त (आधाशीशी) रोग शमन होता है ॥ ११ ॥

भृङ्गराजरसच्छागक्षीरान्तरोऽर्कतापितः।
सूर्यावर्त्तं निहन्त्याशु नस्येनैव प्रयोगराट् ॥ १२ ॥

भाँगरेका रस और बकरीका दूध इनको समान भाग लेकर एकत्र करके धूपमें गरम कर नासलेनेसे सूर्यावर्त्तरोग तत्काल नाश होता है ॥ १२ ॥

अर्द्धावभेदककी चिकित्सा।

एष एव विधिः कृत्स्नः कार्यश्चार्द्धावभेदके ॥ १३ ॥

यह ही उक्त सब विधि अर्द्धावभेदक शिरोरोगमें करनी चाहिये ॥ १३ ॥

पिबेत्सशर्करं क्षीरं नीरं वा नारिकेलजम्।
सुशीतं वापि पानीयं सर्पिर्वा नस्यस्ततयोः ॥ १४ ॥

अर्द्धावभेदक और सूर्यावर्त्तरोगमें चीनी मिलाहुआ दूध अथवा नारियलका जल पान करे अथवा शीतल पानीयद्रव्योंमें घृत मिलाकर नास लेवे तो उक्त दोनों प्रकारके शिरोरोग नष्ट होता है ॥ १४ ॥

तिलात्कल्कं सनलदं सक्षौद्रलवणान्वितम्।
तेनास्य लेपयेच्छीर्षमर्द्धभेदो व्यपोहति ॥ १५ ॥

कालेतिल और बालछड दोनोंको समानभाग लेकर एकत्र पीसकर शहद, सेंधानमकके साथ मिश्रित करके लेपकरनेसे अर्द्धावभेदक शिरोरोग दूर होताहै १५

सविडङ्गं तिलं कृष्णं समं कृत्वा प्रपेषयेत्।
नस्यकर्मणि दातव्यमर्द्धभेदं विनाशयेत् ॥ १६ ॥

वायविडङ्ग और काले तिल इनको समभाग लेकर बारीक पीसकर इनकी नस्य लेवे तो इससे अर्द्धावभेदक रोग नाश होता है ॥ १६ ॥

दग्धचुल्लीमृत्तिकायाश्चूर्णं मरिचचूर्णकम्।
समांशं मिलितं कुर्यान्नस्यमर्धावभेदके ॥ १७ ॥

चूल्हेकी जलीहुई मिट्टी और कालीमिरच दोनों समानभागलेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। उक्त चूर्णकी नाश लेनेसे अर्द्धावभेदक (आधाशीशी) शिरोरोग शान्त होता है ॥ १७ ॥

अनन्तवातकी चिकित्सा।

अनन्तवाते कर्त्तव्यः सूर्यावर्त्तहितो विधिः।
शिरावेधश्च कर्त्तव्योऽनन्तवातप्रशान्तये ॥
आहारश्च विधातव्यो वातपित्तविनाशनः ॥ १८ ॥

अनन्तवातरोगको शान्त करनेके लिये सूर्य्यावर्त्तरोगनाशक औषधियोंसे चिकित्सा करनी एवं रोगीको वात पित्तनाशक भोजन कराना और शिरावेध कर रुधिर निकालना चाहिये ॥ १८ ॥

शङ्खककी चिकित्सा।

सूर्यावर्त्ते हितं यच्च शंखके स्वेदवर्जितम्।
क्षीरसर्पिः प्रशंसन्ति नस्यं पानञ्च शंखके॥ १९॥

शङ्खकरोगमें स्वेदक्रियाको छोडकर सूर्यावर्त्तमें कहीहुई विधिके अनुसार समस्तचिकित्सा और क्षीरसर्पि (मक्खन) का पान करना तथा नासलेना॥

शतावरीं कृष्णतिलान्मधुकं नीलमुत्पलम्।
दूर्वां पुनर्नवाञ्चापि लेपं साध्ववतारयेत॥
शीततोयावसेकांश्च क्षीरसेकांश्च शीतलान्॥ २०॥

शतावर, काले तिल, मुलैठी, नीलकमल, दूब और पुनर्नवा इन सबको समानभाग लेकर जलमें पीसकर शिरपर लेप करे और शीतल जल तथा शीतल दूधसे शिरपर सेचन क्रिया करे तो शंखकरोग दूर होताहै॥ २०॥

कल्कैश्च क्षीरवृक्षाणां शंखकस्य प्रलेपनम्।

शंखकरोगमें बड, पीपल, गूलर, पाखर और बेंत आदि क्षीरीवृक्षोंकी छालके कल्क द्वारा लेप करना चाहिये॥

क्रौञ्चकादम्बहंसानां शरार्याः कच्छपस्य च।
रसैः स विहितस्याथ तस्य शंखकसन्धिजाः॥
ऊर्ध्वास्तिस्रः शिराः प्राज्ञो भिन्द्यादेव न ताडयेत२१

बगला, हंस, कलहंस, शराल(पक्षीविशेष)और कछुआ इनके मांस रसका पान कराकर रोगीको पुष्ट करके शंखसन्धिके ऊपरकी तीन शिराओंको वेधना चाहिये, किन्तु उसको ताडना नहीं चाहिये॥ २१॥

गिरिकर्णीफलरसं मूलञ्च नस्यमाचरेत्।
मूलं वा बन्धयेत्कर्णे शीघ्रं हन्ति शिरोऽव्यथाम्॥२२॥

अपराजिताके फलोंके रस अथवा उसकी मूलके रसद्वारा नास लेवे किम्वा उक्त औषधिकी जडको कानमें बाँध देवे तो शिरका दर्द शीघ्र नष्ट होता है२२

नागरकल्कविमिश्रं क्षीरं नस्येन योजितं पुंसाम्।
नानादोषोद्भूतां शिरोरुजां हन्ति तीव्रतराम्॥२३॥

सोंठको दूधमें पीसकर नस्य लेनेसे अनेक दोषोंसे उत्पन्नहुई दारुण शिरकी पीडा तत्काल शमन होती है॥ २३॥

शिरोवस्ति।

आशिरो व्यायतं चर्म्म कृत्वाष्टाङ्गुलमूच्छ्रितम्।
तेनावेष्ट्य शिरोऽधस्तान्माषकल्केन लेपयेत् ॥ २४ ॥
निश्चलस्योपविष्टस्य तैलैः कोष्णैः प्रपूरयेत्।
धारयेदारुजः शान्तेर्यामं यामार्द्धमेव वा ॥ २५ ॥
शिरोवस्तिर्जयत्येष शिरोरोगं मरुद्भवम्।
हनुमन्याक्षिकर्णार्त्तिमर्दितं मूर्द्धकम्पनम् ॥ २६ ॥

जितने चमडेसे मस्तक पूरा पूरा ढक जाय इतना लम्बा और आठ अँगुल चौडा चमडा लेकर उससे रोगीके मस्तकको बाँधकर उसके नीचे उडदोंके कल्कका लेप करदेवे। पश्चात् रोगीको निश्चल बैठाकर सुहाता सुहाता तिलका तेल उस चमडेमें भरदेवे। जबतक शिरकी पीडा शान्त न हो तबतक अथवा एक प्रहरतक किम्वा चार घडीतक तेलको धारणकरे। यह शिरोवस्ति वातज-शिरोरोग, हनुग्रह, मन्यास्तम्भ, नेत्र और कर्णरोग आर्दित और मस्तकका काँपना आदि रोगोंको शमन करती है ॥ २४-२६ ॥

अर्द्धनाडीनाटकेश्वर।

वराटं टङ्कणं शुद्धं पञ्चभागसमन्वितम्।
नवभागं मरिचस्य विषभागत्रयं मतम् ॥ २७ ॥
स्तन्येन वटिकां कृत्वा नस्यं दद्याद्विचक्षणः।
शिरोविकारान्विविधान् हन्ति श्लेष्मोत्तरानपि ॥२८॥

कौडीकी भस्म २॥ भाग, सुहागेकी खील २॥ भाग, कालीमिरच ९ भाग और विष ३ भाग लेवे। इन सबको एकत्र खीके दूधके द्वारा खरलकरके गोलियाँ बनालेवे। फिर इस गोलीको दूधमें घिसकर नास लेवे तो यह शिरके नानाप्रकारके कफप्रभृति दोषजनित विकारोंको नष्ट करती है ॥ २७ ॥ २८ ॥

चन्द्रकान्तरस।

मृतसूताभ्रकं तीक्ष्णं ताम्रं गन्धं समं समम्।
स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्यं भक्षयेन्माषमात्रकम् ॥ २९ ॥
मधुना मर्दितं सेव्यं लौहपात्रे दिने दिने।
सूर्यावर्त्तादिकान्हन्ति शिरोरोगान्न संशयः ॥ ३० ॥

रससिन्दूर, अभ्रक, लोहा, ताँबा इनकी भस्म और शुद्धगन्धक इन सबको

समानभाग लेकर थूहरके दूधसें एकदिनतक खरल करके उडदकी बराबर गोली बनालेवे । उस गोलीको प्रतिदिन लोहेके बर्त्तनमें शहदके साथ मिलाकर भक्षण करे तो यह रस सूर्य्यावर्त्तादि समस्त शिरके रोगोंको निस्सन्देह नष्ट करदेताहै।।

शिरःशूलाद्रिवज्ररस ।

पलं रसं पलं गन्धं पलं लौहं पलं रविः ।
गुग्गुलोः पलचत्वारि तदर्द्धं त्रिफलारजः ॥ ३१ ॥
कुष्ठं मधुकणा शुण्ठी गोक्षुरं कृमिनाशनम् ।
दशमूलञ्च प्रत्येकं तोलकं वस्त्रपेषितम् ॥ ३२ ॥
क्राथने दशमूल्याश्च यथास्वं परिभावयेत् ।
घृतयोगात्प्रकर्त्तव्या माषिका वटिका शुभा ॥ ३३ ॥
छागीदुग्धानुपानेन पयसा मधुनाऽथवा ।
शिरःशूलाद्रिवज्रोऽयं चण्डनाथेन भाषितः ॥ ३४ ॥
एकजं द्वन्द्वजं चैव त्रिदोषजनितं तथा ।
वातिकं पैत्तिकं सर्वं शिरोरोगं विनाशयेत् ॥ ३५ ॥

शुद्ध पारा चार तोले, शुद्ध गन्धक चार तोले, लोहभस्म चार तोले, ताम्रभस्म चार तोले, शुद्ध गूगल सोलह तोले, त्रिफलेका चूर्ण ८ तोले, एवं कूठ, शहद, पीपल, सोंठ, गोखरू, वायविडङ्ग और दशमूल ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेवे । सबको एकत्र कूटपीस और वस्त्रमें छानकर दशमूलके क्राथमें सात बार भावना देवे । फिर घृतमें मिलाकर एक एक माशेकी सुन्दर गोलियाँ बना लेवे । प्रतिदिन प्रातः समय एक एक गोली बकरीके दूध या जल अथवा शहदके साथ मिलाकर सेवन करे । इस शिरःशूलादिवज्रनामक रसको श्रीचण्डनाथने निर्माण किया है । यह एक दोषज, द्विदोषज, त्रिदोषज तथा वात, पित्त, कफ इनसे उत्पन्न हुए सर्व प्रकारके शिरोरोग शीघ्र नष्ट करताहै।।३१-३५

महालक्ष्मीविलास ।

लौहमभ्रं विषं मुस्तं फलत्रयकटुत्रयम् ।
धुस्तूरं वृद्धदारञ्च बीजमिन्द्राशनस्य च ॥ ३६ ॥
गोक्षुरकद्वयञ्चैव पिप्पलीमूलमेव च ।
एतत्सर्वं समं ग्राह्यं रसो धुस्तूरकस्य च ॥ ३७ ॥
भावयित्वा वटी कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः ।
महालक्ष्मीविलासोऽयं सन्निपातनिवारकः ॥ ३८ ॥

लोहा, अभ्रक, मीठातेलिया, नागरमोथा, त्रिफला, त्रिकुटा, धतूरा, विधारा, भाँगके बीज, गोखुरू, बडा गोखुरू और पीपलामूल इन सबको समान भाग लेकर धतूरेके पत्तोंके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बना लेवे। यह महालक्ष्मीविलासरस यथाविधि सेवन करनेसे त्रिदोषज शिरोरोग नष्ट होय ॥

मयूराद्यघृत ।

शतं मयूरमांसस्य दशमूलाबलातुलाम् ।
द्रोणेऽम्भसः पचेत्क्षुत्वा तस्मिन्पादस्थिते ततः ॥ ३९ ॥
निषिच्य पयसो द्रोणः पचेत्तत्र घृताढकम् ।
प्रपौण्डरीकवर्गोक्तैः जीवनीयैश्च भेषजैः ॥ १४० ॥
मेधाबुद्धिस्मृतिकरमूर्द्धजत्रुगदापहम ।
मायूरमेतन्निर्दिष्टं सर्वानिलहरं परम् ॥ ४१ ॥
मन्याकर्णशिरोनेत्ररुजापस्मारनाशनम् ।
विषवातामयश्वासविषमज्वरकासनुत् ॥ ४२ ॥

मोरका मांस १००पल, दशमूल और खिरेंटी समानभाग मिश्रित १००पल लेकर सबको एकत्र कुचलकर एक द्रोणजलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस काथमें एक द्रोण दूध और एक आढक घृत तथा पुण्डेरिया, मुलैठी, पीपल, लालचन्दन, नील-कमल, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलैठी, मुगवन और मषवन इन समस्त औषधियोंका कल्क समानभाग मिश्रित दो सेर डालकर उत्तम प्रकार घृतको सिद्ध करे । यह घृत मेधा, बुद्धि और स्मृतिशक्तिको बढाता है तथा ऊर्ध्वजत्रुरोग, मन्यास्तम्भ, कर्ण शिर और नेत्र-रोग, अपस्मार, विषज और वातजरोग, श्वास, विषमज्वर, खाँसी और सर्व प्रकारके वातविकारोंको नष्ट करता है । इसको मयूराद्यघृत कहते हैं॥३९।४२॥

षड्बिन्दुतैल ।

एरण्डमूलं तगरं शताह्वा जीवन्ति रास्ना सहसैन्धवञ्च । भृङ्गं विडङ्गं मधुयष्टिका च विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम् ॥ ४३ ॥ आजं पयस्तैलविमिश्रितञ्च चतुर्गुणे भृङ्गरसे विपक्वम्।षड्बिन्दवो नासिकया विधेया निहन्ति शीघ्रं शिरसो विकारान् ॥ ४४ ॥ च्युतांश्च

केशान्पलितांश्च दन्तान्दुर्बद्धमूलांश्च दृढीकरोति।
सुपर्णदृष्टिप्रतिमश्च चक्षुर्बाह्वोर्बलं चाप्यधिकं ददाति४५

अण्डकी जड, तगर, सोया, जीवन्ती, रास्ना, सैंधानमक, भाँगरा, वायविडङ्ग, मुलैठी, सोंठ और कालेतिलोंका तेल और बकरीका दूध इन सबको समानभाग लेकर यथाविधिसे मिश्रित करके तेलको पकावे। इस षड्बिन्दुनामक तेलको नस्यद्वारा प्रयोग करे। यह शिरके समस्त विकारोंको बहुत शीघ्र नष्ट करता है तथा बालोंका गिरना और पलितरोगको दूरकर हिलतेहुए दाँतोंकी जडोंको मजबूत करता है। एवं नेत्रोंकी दृष्टिशक्तिको गरुडकी समान अत्यन्त सूक्ष्म और भुजाओंमें अनन्त बलकी वृद्धि करता है॥ ४३–४५॥

दशमूलतैल।

दशमूलक्काथकल्काभ्यां तैलप्रस्थं विपाचयेत्।
चतुर्गुणं पयो दत्वा शनैर्मृद्वग्निना भिषक्॥ ४६॥
दशमूलमिति ख्यातं शोथं हन्ति सुदारुणम्।
नस्येनाकालपलितं ज्वरारोचकनाशनम्॥ ४७॥
अभ्यङ्गेनैव सर्वञ्च शिरःशूलं विनाशयेत्॥ ४८॥

दशमूलकी औषधियोंके क्काथ और कल्कके साथ कडवातेल एक प्रस्थ और दूध ४ प्रस्थ मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे यथाविधि तेलको पकावे। इसको दशमूल तेल कहते हैं। यह तेल दारुण शोथको नष्ट करता है और नस्यद्वारा उपयोग करनेसे असमय बालोंका पकना, ज्वर, अरुचि आदि विकारोंको तथा मालिश करनेसे सर्वप्रकारके शिरःशूलको शीघ्र नष्ट करता है॥ ४६–४८॥

द्वितीयदशमूलतैल।

दशमूलीकषायेण अष्टाङ्गकल्कसंयुतम्।
क्षीरञ्च द्विगुणं दत्वा तैलप्रस्थं विपाचयेत्॥ ४९॥
शिरोऽर्त्ति नाशयेदेतद्भास्करस्तिमिरं यथा।
वातशूलं पित्तशूलं कफशूलं त्रिदोषजम्॥ ५०॥
सूर्यावर्त्तमभिष्यन्दं जलदोषञ्च नाशयेत्।
दशमूलमिदं तैलं शिरोरोगनिषूदनम्॥ ५१॥

दशमूलके क्काथके साथ जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि इन औषधियोंका कल्क तथा एक प्रस्थ कडवा तेल और दो प्रस्थ दूध मिलाकर विधिपूर्वक तेलको सिद्धकरे। यह तेल शिरो-

रोगको इस प्रकार नाश करदेता है जिस प्रकार सूर्य अन्धकारपुञ्जको तत्क्षण नष्ट करता है। इससे वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषजशूल, सूर्यावर्त्त-शिरोरोग, नेत्राभिष्यन्द और जलोदर दूर होता है । यह दशमूलतैल समस्त शिरोरोगोंका नाश करनेवाला है ॥ ४९–५१ ॥

मध्यमदशमूलतैल ।

दशमूलीकरञ्जश्च निर्गुण्डी च जयन्तिका ।
धुस्तूरः षट्पलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ५२ ॥
पादशेषे रसे तस्मिन् कटुतैलं विपाचयेत् ।
तत्कल्कान्दापयेदत्र भागान्षट्तोलकान्पृथक् ॥ ५३ ॥
वातश्लेष्मसमुद्भूतं शिरोरोगं व्यपोहति ।
कासं पञ्चविधं शोथं जीर्णज्वरमपोहति ॥ ५४ ॥
दशमूलमिदं तैलं शिरःकर्णाक्षिरोगनुत् ।
मन्यास्तम्भमन्त्रवृद्धिश्लीपदश्च विनाशयेत् ।
दशमूलमिदं तैलमश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥ ५५ ॥

दशमूल, करञ्जुआ, निर्गुण्डी, जयन्ती और धतूरा इनके पत्ते छःछः पल लेकर एक द्रोणजलमें पकावे । जब पकतेपकते चौथाईभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें कडवातेल एक प्रस्थ और उक्त औषधियोंका कल्क छःछः तोले डालकर यथानियमतेलको पकावे । यह तेल वात और कफसे उत्पन्नहुए शिरोरोगको दूर करताहै । तथा पाँच प्रकारकी खाँसी, सूजन, जीर्णज्वर, शिर, कान और नेत्रोंके रोग, मन्यास्तम्भ, अन्त्रवृद्धि और श्लीपररोगको नष्ट करताहै । इस दशमूलतेलको पूर्णकालमें अश्विनीकुमारोंने निर्म्माण किया है ॥ ५२–५५ ॥

बृहद्दशमूलतैल ।

पञ्च पञ्च पलं नीत्वा पञ्चमूली युगात्पृथक् ।
विपाचयेज्जलद्रोणे चाष्टभागावशेषितम् ॥ ५६ ॥
आर्द्रकस्य रसप्रस्थं निर्गुण्ड्यास्ततसमं भवेत् ।
पञ्चकोलञ्च त्र्यूषणं नीरकद्वयसर्षपम् ॥ ५७ ॥
सैन्धवञ्च यवक्षारं त्रिवृता च निशाद्वयम् ।
तोयञ्च द्विगुणं दत्त्वा कल्कमक्षसमं विदुः ॥ ५८ ॥

सर्वैरेभिः पचेत्तैलं शिरोरोगं व्यपोहति।
ऊर्ध्वजत्रुजरोगघ्नं वातश्लेष्मगदापहम्॥ ५९॥
एकजे द्वन्द्वजे चैव तथैव सान्निपातिके।
अर्द्धावभेदके चैव सूर्यावर्त्ते प्रशस्यते॥
पानाभ्यञ्जननस्येन कर्णरोगे च शस्यते॥ ६०॥

दशमूलकी प्रत्येक औषधिको बीस २ तोले लेकर एक द्रोण (३२ सेर) जलमें पकावे। जब पकते २ आठवाँ हिस्सा जलशेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर उसमें अदरखका रस १ प्रस्थ, निर्गुण्डीके पत्तोंका रस एक प्रस्थ तथा पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, त्रिकुटा, जीरा, कालाजीरा, सफेद सरसों, सैंधानमक, जवाखार, निसोत, हल्दी और दारुहल्दी इन औषधियोंका कल्क दोदो तोले और पाकके लिये रसोंसे दुगुना जल डालकर सबको यथाविधिसे एकत्र करके तेलको पकावे। यह तेल सम्पूर्ण शिरोरोग, ऊर्ध्वजत्रुजनित रोग और वात तथा कफजन्य रोगोंको दूर करता है। इसको एकदोषज, द्विदोषज तथा त्रिदोषज अर्द्धावभेदक और सूर्यावर्त्तरोगमें तथा कर्णरोगमें पान, अभ्यञ्जन और नस्यद्वारा प्रयोग करना चाहिये॥ ५६-६०॥

द्वितीयबृहद्दशमूलतैल।

दशमूलीशतं ग्राह्यं तथा धुस्तूरकस्य च।
शतं पुनर्नवायाश्च निर्गुण्डयाश्च शतं तथा॥ ६१॥
एतैः कषायैर्विपचेत्कटुतैलाढकं भिषक्।
वासा वचो देवदारु शठी रास्ना सयष्टिका॥ ६२॥
मरिचं पिप्पली शुण्ठी कारवी कट्फलं तथा।
करञ्जं शिग्रुकुष्ठञ्च चिञ्चा च वनाशिम्बिका॥ ६३॥
चित्रकञ्च पृथक् भागान्दत्त्वा चैषां पलोन्मितान्।
श्लैष्मिकं सान्निपातोत्थं वाताश्लेष्मोद्भवन्तथा॥६४॥
कर्णशूलं शिरःशूलं नेत्रशूलञ्च दारुणम्।
निहन्ति दशमूलाख्यं तैलमेतन्न संशयः॥ ६५॥

दशमूल, धतूरा, पुनर्नवा और निर्गुण्डी ये प्रत्येक औषधि सौ सौ पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर उतारकर छानलेवे। फिर उसमें कडवा तेल एक आढक तथा अडूसा, वच, देवदारु, कचूर, रास्ना, मुलैठी, मिरच, पीपल, सोंठ, कालाजीरा, कायफल, करञ्ज, सहिंजना, कूठ,

इमली, वनसेम और चीतेकी जड इन सबका कल्क पृथक् पृथक् चार चार तोले डालकर उत्तम प्रकार तेलको सिद्ध करे। यह तेल कफसे, वातकफसे और त्रिदोषसे उत्पन्न हुए कर्णशूल, शिरःशूल और दारुण नेत्रशूलको तत्काल नष्ट करता है । इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ६१-६५ ॥

महादशमूलतैल ।

दशमूलं पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
तेन पादावशेषेण कटुतैलाढकं पचेत् ॥ ६६ ॥
जम्बीरार्द्रकधुस्तूरस्वरसं तैलतुल्यतः ।
कल्कं कणामृता दार्वी शतपुष्पा पुनर्नवा ॥ ६७ ॥
शिग्रुपिप्पलिका तिक्ता करञ्जं कृष्णजीरकम् ।
सिद्धार्थकं वचा शुण्ठी पिप्पली चित्रकं शठी ॥ ६८ ॥
देवदारु बला रास्ना सूर्यावर्त्तककट्फलम् ।
निर्गुण्डी चविका गैरि ग्रन्थिकं शुष्कमूलकम् ॥६९॥
यमानी जीरकं कुष्ठमजमोदा च ताडकम् ।
एतेषां पलिकैर्भागैर्विपचेन्मतिमान् भिषक् ॥ ७० ॥
निहन्ति विविधान्व्याधीन्कफवातसमुद्भवान् ।
शिरोमध्यगतान्रोगञ्छोथान्हन्ति व्रणानपि ॥ ७१ ॥
" सिद्धफलमिदम् ॥ "

दशमूलकी समस्त औषधियोंको १०० पल लेकर १ द्रोण जलमें पकावे। चौथाई भाग जल शेष रहजानेपर उसको उतारकर छानलेवे । फिर उसमें कडवा तेल १ आढक, जम्बीरीनींबूका रस, अदरख और धतूरेका रस इनको भी एक एक आढक तथा कल्कके लिये पीपल, गिलोय, दारुहल्दी, सोंफ, पुनर्नवा, सहिंजना, पीपल, कुटकी, करंजुआ,कालाजीरा, सफेद सरसों, वच, सोंठ, गजपीपल, चीता, कचूर, देवदारु, खिरेंटी, रास्ना, हुलहुल, कायफल, निर्गुण्डी, चव्य, गेरू, पीपलामूल, सूखीमूली, अजवायन, जीरा, कूठ, अजमोद और विधारेके बीज बुद्धिमान् वैद्य इन औषधियोंके चार चार तोले कल्कको डालकर यथाविधि तेलको पकावे । प्रतिदिन नियमपूर्वक मर्दन करनेसे यह तेल कफ और वातसे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके रोगोंको तथा शिरःसम्बन्धी सब रोगों एवं सूजन और क्षतोंको तत्क्षण नष्ट करता है । यह तत्काल इष्ट फलको देनेवाला है। इसको पान करनेसे भयानक खाँसी दूर होती है॥

महाकनकतैल।

कनकस्य रसप्रस्थं प्रस्थं वर्षाभुवस्तथा।
निर्गुण्डीस्वरसप्रस्थं दशमूलरसस्य च॥ ७२॥
पारिभद्ररसप्रस्थं प्रस्थं वरुणकस्य च।
तैलप्रस्थं समादाय भिषक् यत्नाद्विपाचयेत॥ ७३॥
कल्कैरर्द्धपलैरेतैः शुण्ठीमरिचसैन्धवैः।
पुनर्नवाकर्कटकशेलुत्वक्पिप्पलीयुगैः॥ ७४॥
तत्साधुसिद्धं विज्ञाय शुभे पात्रे निधापयेत्।
वातश्लेष्मकृतं सर्वमामवातं भगन्दरम्॥ ७५॥
सन्निपातभवं रोगं शोथमाशु विनाशयेत्।
ये केचिद्व्याधयः सन्ति श्लैष्मिकाः सान्निपातिकाः
तान्सर्वान्नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः॥ ७६॥

धतूरेका रस, पुनर्नवेका रस, निर्गुण्डीका रस, दशमूलका काथ, फरहदका रस और बरनाकी छालका काथ इन सबको अलग अलग एक एक प्रस्थ लेवे। सबको एकत्रकर इनमें सरसोंका तेल १ प्रस्थ तथा सोंठ, मिरच, सेंधानमक, पुनर्नवा, काकडासिंगी, लहसौडेके वृक्षकी छाल, पीपल और गजपीपल इन प्रत्येकका कल्क दो दो तोले डालकर तेलको पकावे। जब अच्छे प्रकार पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर स्वच्छपात्रमें भरकर रखदेवे। यह तेल वात कफजन्यरोग, आमवात, भगन्दर, सन्निपातज रोग और शोथको दूर करता है तथा कफसे और सान्निपातसे होनेवाले जितने रोगहैं उन सबको यह तेल सेवन करतेही इसप्रकार नष्ट करता है जिसप्रकार उदय हुआ सूर्य अपने तेजःपुञ्जसे अन्धकार समूहको तत्क्षण नष्ट करदेता है॥ ७२-७६॥

रुद्रतैल।

जैपालद्रोणधुस्तूरशिग्रुशक्राशनस्य च।
सूर्यावर्त्तस्य सूर्यस्य पत्राणां स्वरसं पृथक्॥ ७७॥
जम्बीरशृङ्गवेरस्य रसं दत्त्वा समं समम्।
कटुतैलस्य पात्रन्तु शोषयित्वा पचेद्भिषक्॥ ७८॥
रजनीद्वयमंजिष्ठा कट्फलं कृष्णजीरकम्।
त्रिकटुः पिप्पलीमूलं शारिवे द्वे विडङ्गकम्॥ ७९॥

रास्ना दारु बला निम्बं मुस्तकं चन्दनं तथा।
परशू द्वौ स्नुहीमूलं मूर्वापामार्गमूलकम् ॥ ८० ॥
स्वरसद्रव्यमेतेषां कल्कं दत्वा तु पादिकम्।
मृत्पात्रे सुदृढे चैव पाचयेत्तीव्रवह्निना ॥ ८१ ॥
बलासमूर्द्धगश्चैव नाशयेत्रिदिनाद्ध्रुवम्।
मुखकर्णाक्षिरोगांश्च कफशोणितसंस्रवान् ॥ ८२ ॥
शिरोरोगं सन्निपातं श्लीपदं गलगण्डकम्।
अभ्यङ्गान्नाशयेदेतान्पानात्कासं व्यपोहति ॥
कालाग्निरुद्रेण प्रोक्तं रुद्रतैलमिदं पुरा ॥ ८३ ॥

जमालगोटेके पत्तोंका रस, गूमाका रस धतूरेके पत्तोंका रस, सहिंजनेके पत्तोंका, भाँगके पत्तोंका, हुलहुलके पत्तोंका और आकके पत्तोंका रस इनको पृथक् पृथक् आठ २ सेर, जम्बीरीनींबूका रस और अदरखका रस ये प्रत्येक आठ आठ सेर, कडवा तेल ३२ सेर तथा हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ-कायफल, कालाजीरा, त्रिकुटा, पीपलामूल, उसवा, अनन्तमूल, वायविडङ्ग, रास्ना, देवदारु, खिरैंटी, नीमकी छाल, नागरमोथा, लालचन्दन, पेटाली, लता, कुडुलियालता, थूहरकी जड, मूर्वा, चिरचिटा, सूखीमूली, जमालगोटा, गूमा, धतूरा, सहिंजना इनकी जड, भाँग, हुलहुल और आक इनके पत्ते, जम्बीरीनींबूकी जड और सोंठ ये सब औषधियें समानभाग मिश्रित दो सेर लेवे, फिर सबको एकत्र पीसकर यथाविधिसे मिलाकर तेलको तीव्र अग्निसे पकावे। जब उत्तम प्रकार पककर सिद्ध होजाय तब अत्यन्त दृढ और चिकने मिट्टीके बर्त्तनमें भरकर रखदेवे। इस तेलको नियमपूर्वक मर्दन करनेसे ऊर्ध्व-जत्रुगत श्लेष्मा, मुखरोग, कर्णरोग, नेत्ररोग, कफजरोग, रक्तस्राव, शिरोरोग, सन्निपातजन्य रोग, श्लीपद और गलगण्ड ये सब रोग तीन दिनमें निश्चय नष्ट होते हैं और इसको पान करनेसे खाँसी दूर होती है। पूर्वकालमें इस रुद्र-तैलको कालाग्निरुद्रने वर्णन किया है ॥७७--८३ ॥

तप्तराजतैल।

धुस्तूरं पूतिकं पीता जयन्ती सिन्धुवारकम्।
शिरीषं हिज्जलं शिग्रुर्दशमूलं समं भवेत् ॥ ८४ ॥
प्रस्थं प्रस्थं समादाय कटुतैलं समांशकम्।
जलद्रोणे विपक्तव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ ८५ ॥

गोमूत्रश्चाढकं दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
मदनां त्र्यूषणं कुष्ठमजाजी विश्वभेषजम् ॥ ८६ ॥
कट्फलं वरुणं मुस्तं हिज्जलं बिल्वमेव च ।
हरितालं जवापुष्पममृतं कुनटी तथा ॥ ८७ ॥
कर्कटं चन्दनं शिग्रु यमानी व्याघ्रपादपि ।
एतेषां कार्षिकैर्भागैः समभागं प्रकल्पयेत् ॥ ८८ ॥
तप्तराजमिति ख्यातं महादेवेन निर्मितम् ।
सन्निपातं महारोगं शिरोरोगं महोत्तरम् ॥ ८९ ॥
शिरःशूलं नेत्रशूलं कर्णशूलञ्च दारुणम् ।
ज्वरं दाहं महाघोरं स्वेदश्चैव महोत्तरम् ॥ ९० ॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च सहलीमकपीनसम् ।
त्रयोदश सन्निपातं हन्ति सद्यो न संशयः ॥ ९१ ॥

धतूरा, दुर्गन्ध करञ्ज, पीला पियाबाँसा, जयन्ती, सिह्मालु, सिरस, समुद्रफल, सहिंजना और दशमूल इन सब औषधियोंको एक एक प्रस्थ लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । फिर उस काथमें तिलका तेल एक प्रस्थ, गोमूत्र एक आढक तथा मैनफल, सोंठ, मिरच, पीपल, कूठ, जीरा, सोंठ, कायफल, बरनाकी छाल, नागरमोथा, समुद्रफल, बेलगिरी, हरिताल, गुडहलके फूल, विष, मैनसिल, काकडासिंगी, लालचन्दन, सहिंजनेकी छाल, अजवायन और हुलहुलकी जड इन औषधियोंके दो दो तोले कल्कको डालकर मन्द मन्द अग्निद्वारा यथाविधि तेलको पकावे । इस तेलको शिवजी महाराजने निर्म्माण कियाहै । यह तप्तराजनामसे प्रसिद्धहै । यह तेल सन्निपात, अत्यन्त प्रबल शिरोरोग, शिरःशूल, नेत्रशूल, दारुण कर्णशूल, ज्वर, दाह, अत्यन्त स्वेद आना, कामला, पाण्डु, हलीमक, पीनस, और तेरह प्रकारके सन्निपात इन सब रोगोंको सन्देहरहित तत्काल नष्ट करता है ॥९१॥

कुमारीतैल ।

कुमार्याः स्वरसे प्रस्थे धुस्तूरस्य रसे तथा ।
भृङ्गराजस्य च रसे प्रस्थद्वयसमायुते ॥ ९२ ॥
चतुःप्रस्थमिते क्षीरे तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
कल्कैर्मधुकह्रीबेरमञ्जिष्ठाभद्रमुस्तकैः ॥ ९३ ॥

नखकर्पूरभृङ्गैलाजीवन्तीपद्मकुष्ठकैः ।
मार्कवासकतालीशसर्ज्जनिर्यासपत्रकैः ॥ ९४ ॥
विडङ्गशतपुष्पाश्वगन्धागन्धर्वहस्तकैः ।
शोकहन्नारिकेलाभ्यां कर्षमानैर्विपाचिते ॥ ९५ ॥
उत्तार्य वस्त्रपूतश्च शुभे भाण्डे सुधूपिते ।
त्रिरात्रमथ गुप्तश्च धारयेद्विधिविद्भिषक् ॥ ९६ ॥
ततस्तु तैलमभ्यङ्गे मूर्ध्नि क्षेपे नियोजयेत् ।
शमयेदर्दितं गाढं मन्यास्तम्भशिरोगदान् ॥ ९७ ॥
तालुनासाक्षिजातन्तु शोषमूर्च्छाहलीमकम् ।
हनुग्रहगदत्वं वा बाधिर्यं कर्णवेदनम् ॥ ९८ ॥

घीग्वारका रस १ प्रस्थ, धतूरेके पत्तोंका रस एक प्रस्थ, भाँगरेका रस दो प्रस्थ और ४ प्रस्थ दूध इनमें १ प्रस्थ तिलका तेल एवं मुलैठी, सुगन्धवाला, मंजीठ, नागरमोथा, नखद्रव्य, कपूर, दारचीनी, छोटी इलायची, जीवन्ती, पद्माख, कूठ, भाँगरा, अडूसा, तालीशपत्र, राल, तेजपात, वायविडङ्ग, सोंफ, असगन्ध, अण्डकी जड, अशोककी छाल और नारियलकी जड इन औषधियोंको अलहिदा दो दो तोले लेकर सबको एकत्र कूट पीसकर मिलालेवे । फिर विधिपूर्वक शनैः शनैः तेलको पकावे । जब उत्तमप्रकार पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर वस्त्रमें छानकर धूप आदिसे सुवासित उत्तमपात्रमें भरकर रख देवे । फिर विधिको जाननेवाला वैद्य उस पात्रको तीन दिनतक मिट्टीमें गाडकर रक्खे, पश्चात् निकालकर उसकी शरीरपर और शिरपर मालिश करे । यह तेल घोरतर अर्दितरोग, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, तथा तालुनासिका और नेत्रगतरोग, शोष, मूर्च्छा, हलीमक, हनुग्रह, बधिरता और कानकी पीडा आदि रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ९२-९८ ॥

शिरोरोगमें पथ्य ।

स्वेदो नस्यं धूमपानं विरेको लेपश्छर्दिर्लङ्घनं शीर्षवस्तिः रक्तोन्मुक्तिर्वह्निकर्मोपनाहो जीर्णं सर्पिः शालयः षष्टिकाश्च ॥ ९९ ॥ यूषो दुग्धं धन्वमांसं पटोलं शिग्रुर्द्राक्षा वास्तुकं कारवेल्लम् । आम्रं धात्री दाडिमं मातुलुङ्गं तैलं तक्रं काञ्जिकं नारिकेलम् ॥ १०० ॥ पथ्या

कुष्ठं भृङ्गराजः कुमारी मुस्तोशीरं चन्द्रिका गन्धसारः । कर्पूरश्च ख्यातिमानेष वर्गः सेव्यो मर्त्यैः शीर्षरोगे यथास्वम् ॥ १०१ ॥

शिरोरोगमें स्वेद, नस्य देना, धूमपान, विरेचन, लेप, वमन, लंघन, शिरोवास्ति, रक्तमोक्षण, अग्निकर्म, शिरपर लेप करना, पुराना घी, शालिके चावल और सांठीके चावल, मूँगका यूष, दूध, मरुदेशके जीवोंका मांस, परवल, सहिंजना, दाख, बथुआ, करेला, आम, आमले, अनार, बिजौरानींबू, तेल, मट्ठा-काँजी, नारियल, हरड, कूठ, भाँगरा, घीग्वार, नागरमोथा, खस, इलायची, सफेदचन्दन और कपूर इन समस्त औषधियोंको यथादोषानुसार सेवन करे ॥

शिरोरोगमें अपथ्य ।

क्षवजृम्भामूत्रबाष्पनिद्राविड्वेगमञ्जनम् ।
दुष्टनीरं विरुद्धान्नं सह्यविन्ध्यसरिज्जलम् ॥
दन्तकाष्ठं दिवानिद्रां शिरोरोगी परित्यजेत् ॥ १०२ ॥

छींक, जमुहाई, मूत्र, आँसू, निद्रा और मल इनके वेगको रोकना, अञ्जन लगाना, दूषित जलपान, विरुद्ध अन्नभोजन, सह्य और विन्ध्यआदि पर्वतोंकी नदियोंका जल, दातोन और दिनमें शयन करना इन सबको शिरोरोगी त्यागदेवे ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शिरोरोगचिकित्सा ॥

प्रदररोगकी चिकित्सा ।

दध्ना सौवर्चलाजाजी मधुकं नीलमुत्पलम् ।
पिबेत्क्षौद्रयुतं नारी वातासृग्दरपीडिता ॥ १ ॥

वातज प्रदररोगमें उक्तरोगसे पीडित स्त्री कालानमक, जीरा, मुलैठी, नीलाकमल और शहद इन सबको समानभाग लेकर दहीके साथ खरल करके प्रतिदिन पान करे ॥ १ ॥

पिबेदैणेयकं रक्तं शर्करामधुसंयुतम् ॥

काले हिरनके रक्तको खाँड और मधुमें मिश्रित करके पान करनेसे अधिक स्रावयुक्त पित्तज रक्तप्रदररोग दूर होता है ॥

कुशमूलं समुद्धृत्य पेषयेत्तण्डुलाम्बुना ।
एतत्पीत्वा त्र्यहान्नारी प्रदरात्परिमुच्यते ॥ २ ॥

कुशाकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर पान करनेसे तीन दिनमें ही स्त्री प्रदररोगसे मुक्त होजाती है ॥ २ ॥

अशोकवल्कलक्वाथं शृतं दुग्धं सुशीतलम् ।
यथाबलं पिबेत्प्रातस्तीव्रासृग्दरनाशनम् ॥ ३ ॥

अशोकके वृक्षकी छालके क्वाथमें दूधको पकाकर शीतल होजानेपर अग्निके बलाबलको विचारकर प्रतिदिन प्रातःकाल पान करनेसे स्त्रियोंका तीव्र प्रदर-रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

क्षौद्रयुक्तं फलरसं काष्ठोदुम्बरजं पिबेत् ।
असृग्दरविनाशाय सशर्करपयोऽन्नभुक् ॥ ४ ॥

शहदके साथ गूलरके रसको अथवा चीनी औरदूधके साथ अन्नको भोजन करनेसे रक्तप्रदररोग शान्त होता है ॥ ४ ॥

प्रदरं हन्ति बलाया मूलं दुग्धेन संयुतं पीतम् ।
कुशवाट्यालकमूलं तण्डुलसलिलेन रक्ताख्यम् ॥ ५ ॥

खिरैंटीकी जडको जलमें पीसकर और दूधमें मिलाकर पान करे । अथवा कुशा और खिरैंटीकी जडको चावलोंके पानीमें पीसकर पान करे तो रक्तज प्रदर दूर होता है ॥ ५ ॥

गुडेन बदरीचूर्णं मोचमामं तथा पयः ।
पीता लाक्षा च सघृता पृथक् प्रदरनाशनम् ॥ ६ ॥

बेरीके पत्तोंके चूर्णको गुडके साथ, कच्ची केलेकी फलोंके चूर्णको दूधके साथ किम्वा लाखके चूर्णको घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे प्रदररोग नष्ट होता है ॥

रक्तपित्तविधानेन प्रदरांश्चाप्युपाचरेत् ।
रक्तातिसारवच्चाथ रक्तार्शोवत्तथैव च ॥ ७ ॥

रक्तपित्त, रक्तातीसार और रक्तार्शरोगकी चिकित्साके अनुसारही रक्तप्रदर-रोगकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

असृग्दरे विशेषेण कुटजाष्टकमिष्यते ॥

विशेषकर रक्तप्रदररोगमें अतीसारमें कहाहुआ कुटजाष्टक उपयोगी है ॥

रोहितकमूलकल्कं पाण्डुरेऽसृग्दरे पिबेत ।
जलेनामलकीबीजकल्कं वा ससिता मधु ॥ ८ ॥

रोहेडा वृक्षकी जडकी छालको पीसकर मिश्री और शहदमें मिलाकर अथवा आमलोंकी गुठलीकी मींगको जलमें पीसकर, मिश्री और शहदमें मिलाकर पान करना पाण्डुप्रदररोगमें हितकारी है ॥ ८ ॥

धातक्याश्चाक्षमात्रं वा आमलक्या मधुद्रवम् ।
काकजानुकमूलं वा मूलं कार्पासमेव वा ॥
पाण्डुप्रदरशान्त्यर्थं पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ ९ ॥

श्वेतप्रदरको नष्ट करनेके लिये धायके फूल अथवा आमलोंको दो तोले प्रमाण लेकर जलमें पीसकर शहदके साथ किंवा काकजङ्घाकी जडको या कपासकी जडको पीसकर चावलोंके जलके साथ पान करे ॥ ९ ॥

शर्करामधुकं शुण्ठी तैलं दधि च तत्समम् ।
खर्जेन मथितं पीतं हन्याद्वातोत्थितं रजः ॥ १० ॥

खाँड, मुलैठी, सोंठ, तिलका तेल और दही; इनको समानभाग लेकर सबको एकत्र करछीसे मथकर पीवे तो वातज रक्तप्रदर दूर होता है ॥ १० ॥

वासकस्वरसं पित्ते गुडूच्या रसमेव वा ।
धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहापहं पिबेत् ॥ ११ ॥

पैत्तिकप्रदररोगमें अडूसेके स्वरसको अथवा गिलोयके स्वरसको पान करे और आमलोंके स्वरसको मिश्री डालकर पान करनेसे योनिदाह दूर होती है॥

भूम्यामलकचूर्णञ्च पीतं तण्डुलवारिणा ।
दिनत्रयान्तरेणैव स्त्रीरोगं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ १२ ॥

भुईआमलेके चूर्णको चावलोंके जलके साथ पीनेसे ३ दिनमेंही स्त्रियोंका प्रदररोग निश्चयरूपसे नष्ट होता है ॥ १२ ॥

रक्तपित्तहरः सर्वः प्रदरे नूतने विधिः ।
रक्तातीसारयोगश्च सर्वमत्र प्रयोजयेत् ॥ १३ ॥

नवीन प्रदररोगमें रक्तपित्तनाशक और रक्तातीसार रोगकी भाँति सम्पूर्ण चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १३ ॥

मूलञ्च शरपुङ्खायाः पेषयेत्तण्डुलाम्बुना ।
पीत्वा च कर्षमात्रन्तु अतिरक्तं प्रशान्तयेत् ॥ १४ ॥

शरफोंकाकी जडको दो तोले लेकर चावलोंके जलमें पीसकर पान करनेसे रक्तका स्राव होना बन्द होता है ॥ १४ ॥

धात्र्यञ्जनाभयाचूर्णं तोयपीतं रजो हरेत् ।
शेलुच्छदमिश्रपिष्टो भक्षणञ्च तदर्थकृत् ॥ १५ ॥

आमले, रसौत और हरड इनके चूर्णको जलमें पीसकर अथवा लसौडोंके पत्तोंको मिलाकर चावलोंके बडेके साथ भक्षण करनेसे रक्तस्राव दूर होता है ॥

वासाकषायसहितं रसभस्मप्रयोजितम्।
प्रदरं हन्ति वेगेन सक्षौद्रं नात्र संशयः॥ १६॥

अडूसेके क्वाथके साथ शहद और रससिन्दूर मिलाकर सेवन करनेसे वेगसे होनेवाला प्रदररोग निस्सन्देह नष्ट होता है॥ १६॥

दार्व्यादि।

दार्वी-रसाञ्जनवृषाब्द-किराតबिल्वभल्लातकैरवकृतो मधुना कषायः। पीतो जयत्यतिबलं प्रदरं सशूलं पीतासितारुणविलोहितनीलशुक्लम्॥ १७॥

दारुहल्दी रसौत अडूसेकी छाल नागरमोथा चिरायता बेलगिरी और लाल चन्दन इनका एकत्र काथ बनाकर शहदमें मिलाकर पान करनेसे शूलयुक्त अतिप्रबल पीतप्रदर असितप्रदर रक्तप्रदर विलोहितप्रदर नीलप्रद और श्वेतप्रदरादि सब प्रकारके प्रदर नाशको प्राप्त होते हैं॥ १७॥

चन्दनादिचूर्ण।

चन्दनं नलदं लोध्रमुशीरं पद्मकेशरम्।
नागपुष्पश्च बिल्वश्च भद्रमुस्तश्च शर्करा॥ १८॥
ह्रीबेरश्चैव पाठा च कुटजस्य फलत्वचम्।
शृङ्गबेरं सातिविषा धातकी च रसाञ्जनम्॥ १९॥
आम्रास्थि जम्बुसारास्थि तथा मोचरसोद्भवः।
नीलोत्पलं समङ्गा च सूक्ष्मैला दाडिमोद्भवम्॥२०॥
चतुर्विंशतिमेतानि समभागानि कारयेत्।
तण्डुलोदकसंयुक्तं मधुना सह योजयेत्॥ २१॥
चतुःप्रकारं प्रदरं रक्तातीसारमुल्बणम्।
रक्तार्शांसि निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा॥
अश्विन्योः सम्मतो योगो रक्तपित्तनिबर्हणः॥ २२॥

लालचन्दन, जटामांसी, लोध, खस, कमलकी केशर, नागकेशर, बेलगिरी, नागरमोथा, खाँड, सुगन्धवाला, पाढ, इन्द्रजौ, कुडेकी छाल, सोंठ, अतीस, धायके फूल, रसौत, आमकी गुठलीकी मींग, जामुनकी गुठलीकी मींग, मोचरस, नीले कमलका फूल, वराहक्रान्ता, छोटी इलायची और अनारकी छाल इन चौबीसों औषधियोंको समानभाग लेकर एकत्र कूट पीसकर कपड-

छानकरके चूर्ण बनालेवे। इस चूर्णको प्रतिदिन तीन तीन मासे परिमाण लेकर चावलोंके जल और मधुमें मिश्रित करके सेवन करे। यह चूर्ण चार प्रकारके प्रदररोगको तथा दारुण रक्तातिसार और रक्तार्शको तत्काल नष्ट करता है जिस प्रकार सूर्य अन्धकारराशिको अनतिकालमें नष्ट करदेता है। इसको अश्विनीकुमारोंने रचा है। यह कफपित्त नाशक है ॥ १८–२२ ॥

पुष्यानुगचूर्ण।

पाठा जम्बाम्रयोर्मध्यं शिलाभेदं रसाञ्जनम्।
अम्बष्ठकी मोचरसः समङ्गा पद्मकेशरम् ॥ २३ ॥
बाह्लीकातिविषामुस्तं बिल्वं लोध्रं सगैरिकम्।
कट्फलं मरिचं शुण्ठी मृद्वीका रक्तचन्दनम् ॥ २४ ॥
कट्वङ्गवत्सकानन्ता धातकी मधुकार्ज्जुनम्।
पुष्येणोद्धृत्य तुल्यानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ २५ ॥
तानि क्षौद्रेण संयोज्य पाययेत्तण्डुलाम्बुना।
अर्शस्सु चातिसारेषु रक्तं यच्चोपवेश्यते ॥ २६ ॥
दोषागन्तुकता ये च बालानां तांश्च नाशयेत्।
योनिदोषं रजोदोषं श्वेतं नीलं सपीतकम् ॥ २७ ॥
स्त्रीणां श्यावारुणं यच्च तत्प्रसह्य निवर्त्तयेत।
चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम् ॥
अम्बष्ठा दक्षिणे ख्याता गृह्णन्त्यन्ये तु लक्षणाः ॥२८

पाढ, जामुन और आमकी गुठलियोंकी मींग, पाषाणभेद, रसौत, अम्बष्ठकी (मोइयावृक्ष), मोचरस, वराहक्रान्ता, कमलकेशर, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, लोध, गेरू, कायफल, मिरच, सोंठ, दाख, लालचन्दन, सोनापाठेकी छाल, इन्द्रजौ, अनन्तमूल, धायके फूल, मुलैठी और अर्जुनकी छाल इन सब औषधियोंको पुष्यनक्षत्रमें उद्धृत करके समानभाग लेकर बारीक कूट पीसकर चूर्ण बनालेवे। फिर उस चूर्णको शहद और चावलोंके जलके साथ मिलाकर सेवन करे। अर्श और रक्तातीसारमें इसको प्रयोग करना उपयोगी है। यह चूर्ण बालकोंके जितने भी आगन्तुक रोग हैं उन सबको और स्त्रियोंके योनिदोष, श्वेत, नील, पीत, श्याम और अरुण प्रदररोगोंको बहुत शीघ्र नष्ट करता है। यह पुष्यानुगनामक चूर्ण उक्त रोगोंमें विशेष हितकारी है और आत्रेयकरके पूजित है ॥ २३–२८ ॥

उत्पलादि।

कन्दं रक्तोत्पलस्याथ रक्तकार्पासमूलकम्।
करवीरस्य मूलानि तथा रक्तौड्रमूलकम्॥ २९॥
बकुलस्य तथा मूलं गन्धमातृकजीरकौ।
रक्तचन्दनकञ्चैव समभागञ्च कारयेत॥ ३०॥
तण्डुलोदकसंपिष्टं रक्तमूत्राय दापयेत्।
योनिशूलं कटीशूलं कुक्षिशूलञ्च नाशयेत॥
योनिशूलहरः प्रोक्त उत्पलादिर्न संशयः॥ ३१॥

लालकमलकी जड, लालकपासकी जड, लालकनेरकी जड, लालगुडहलकी जड, बकवृक्षकी जड, गन्धमात्रा, जीरा और लालचन्दन इनको बराबर २ लेकर एकत्र कूट पीसकर चूर्ण बनालेवे। इसको चावलोंके पानीमें पीसकर और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे रक्तमूत्र, योनिशूल, कटिशूल और कुक्षिशूल नाश होता है। यह उत्पलादि चूर्ण योनिशूलको निस्सन्देह नष्ट करता है॥३१

मधुकाद्यवलेह।

मधुकं चन्दनं लाक्षा रक्तोत्पलरसाञ्जनम्।
कुशवीरणयोर्मूलं बलं वासकयोस्तथा॥ ३२॥
कोलमज्जाम्बुदं बिल्वं पिच्छा दार्वी च धातकी।
अशोकवल्कलं द्राक्षा जवाकुसुममस्फुटम्॥ ३३॥
आम्रजम्बूकिसलयं कोमलं नलिनीदलम्।
शतमूली विदारी च रजतं लौहमभ्रकम्॥ ३४॥
एषां कोलमितं चूर्णं द्विगुणा सितशर्करा।
वरीरसस्य प्रस्थार्द्धे पचेन्मन्देन वह्निना॥ ३५॥
घनीभूते क्षिपेच्चूर्णं शीतीभूते पलं मधु।
मधुकाद्यवलेहोऽयं महादेवेन भाषितः॥ ३६॥
दुस्तरं प्रदरं हन्ति नानावर्णं सवेदनम्।
योनिशूलं कुक्षिशूलं वस्तिशूलं सुदुःसहम्॥ ३७॥
रक्तातिसारं रक्तार्शो रक्तपित्तं चिरोद्भवम्।
मूत्ररोगानशेषांश्च दाहं मोहं वमिं भ्रमिम्॥
नाशयेन्नात्र सन्देहो भास्करास्तिमिरं यथा॥ ३८॥

मुलैठी, लालचन्दन, लाख, लालकमल, रसौत, कुशमूल, वीरणमूल, अडूसेकी मूल, बेरकी गुठलीकी मींग, नागरमोथा, बेलगिरी, मोचरस, दारुहल्दी, धायके फूल, अशोकवृक्षकी छाल, दाख, गुडहलके फूलकी कली, आम और जामुनके कोमल पत्ते, कमलपत्र, शतावर, विदारीकन्द, रौप्यभस्म, लोहभस्म और अभ्रकभस्म इनके चूर्णको दो दो तोले और सब चूर्णसे दुगुनी मिश्री लेवे । प्रथम मिश्रीको शतावरके एक प्रस्थ रसमें डालकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे। जब पकते पकते पाक गाढा होजाय तब उसमें उपर्युक्त औषधियोंका चूर्ण डाले, फिर शीतल होजानेपर चार तोले शहद डालकर सबको एकमएक करलेवे । श्रीमहादेवजीने इस मधुकाद्यवलेहको कथन किया है । यह अवलेह दुस्तर और वेदनायुक्त विविधप्रकारके प्रदर, योनिशूल, कुक्षिशूल, दुस्सह वस्तिशूल, रक्तातीसार, रक्तार्श, पुराने रक्तपित्त, मूत्रके समस्त विकार, दाह, मोह, वमन और भ्रमादि सर्वप्रकारके रोगोंको इसप्रकार नष्ट करदेता है जिस प्रकार सूर्य अन्धकारको दूर करता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥३२-३८॥

प्रदरान्तकरस ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं शुद्धवङ्गकरूप्यकम् ।
खर्परञ्च वराटञ्च शाणमानं पृथक्पृथक् ॥ ३९ ॥
तृतीयतोलकञ्चैव लौहचूर्णं क्षिपेत्सुधीः ।
कन्यानीरेण संमर्द्य दिनमेकं भिषग्वरः ॥
असाध्यं प्रदरं हन्ति भक्षणान्नात्र संशयः ॥ ४० ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, शुद्ध वङ्गभस्म, रौप्यभस्म, खपरियाभस्म और कौडीकी भस्म इन सबको अलग अलग चार चार माशे और लोहेका चूर्ण तीन तोले लेवे । फिर सबको एकत्रकर घीग्वारके रसके साथ एक दिनपर्यन्त खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस रसको सेवन करनेसे सर्वप्रकारका असाध्य प्रदररोगभी सन्देहरहित नष्ट होता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

प्रदरारिलौह ।

वत्सकस्य तुलां सम्यक् जलद्रोणे विपाचयेत् ।
अष्टभागावशिष्टञ्च कषायमवतारयेत ॥ ४१ ॥
वस्त्रपूते घनीभूते द्रव्याणीमानि दापयेत ।
समङ्गा शाल्मलं पाठा बिल्वं मुस्तञ्च धातकी ॥४२॥

अरुणा व्योमकं लोहं प्रत्येकञ्च पलं पलम् ।
कोलमात्रं प्रयुञ्जीत कुशमूलं पयो ह्यनु ॥ ४३ ॥
श्वेतं रक्तं तथा नीलं पीतं प्रदरदुस्तरम् ।
कुक्षिशूलं कटीशूलं देहशूलञ्च सर्वगम् ॥ ४४ ॥
प्रदरारिरयं लौहो हन्ति रोगान्सुदुस्तरान् ।
आयुःपुत्रकरश्चैव बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ ४५ ॥

कुडेकी छालको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते अष्टमांश जल शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छानलेवे। फिर उस काथको दुबारा चूल्हेपर रखकर पकावे। जब पाक गाढा होजाय तब उसमें वराहक्रान्ता, मोचरस, पाढ, बेलगिरी, नागरमोथा, धायके फूल, अतीस, अभ्रक और लोहा इन औषधियोंको चार२ तोले लेकर वारीक पीसकर डालदेवे और सबको एकम एक करदेवे। इसको एक तोला प्रमाण लेकर कुशाकी जडको जलमें पीसकर उस जलके साथ सेवन करे तो यह प्रदरारिलोह श्वेत, लाल, नीले और पीले दुस्तर प्रदरको तथा कुक्षिशूल, कटिशूल, सर्व शरीरगत शूल, इनके आतिरिक्त अन्यान्य दुस्तर रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है। एवं आयु, बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि करता है तथा पुत्रको उत्पन्न करता है४१-४५॥

सर्वाङ्गसुन्दररस।

गगनं शोधितं ग्राह्यं पलैकमिष्टकासमम् ।
टङ्कणं स्याच्चतुर्थांशं शाणार्द्धं त्रिसुगन्धिकम् ॥ ४६ ॥
कर्पूरं नलदश्चैव जातीकोषं जलं घनम् ।
नागेश्वरलवङ्गञ्च कुष्ठं सत्रिफलं तथा ॥ ४७ ॥
जलेन वटिका कार्या छायया शोषयेत्तु ताम् ।
प्रदरं नाशयेत्सर्वं साङ्गमर्दं सवेदनम् ॥ ४८ ॥
अशीतिर्वातजात्रोगान्मन्दाग्निमतिदारुणम् ।
सज्वरग्रहणीश्चैव रक्तपित्तमरोचकम् ॥
कासान्पञ्च प्रतिश्यायं श्वासं हृद्रोगमेव च ॥ ४९ ॥

शुद्ध अभ्रक चार तोले, सुहागेकी खील एक तोला, तथा दारचीनी, इलायची, तेजपात, कपूर, खस, जावित्री, सुगन्धवाला, नागरमोथा, नागकेशर, लौंग, कूठ और त्रिफला इन प्रत्येक औषधिको दो दो माशे लेकर सबको एकत्र

जलके द्वारा खरलकर गोलियाँ बनालेवे । फिर उनको छायामें सुखाकर रख-लेवे । इस रसको सेवन करनेसे अङ्गोंका टूटना और वेदनायुक्त सर्वप्रकारका प्रदररोग नष्ट होता है । यह अस्सीप्रकारके वातजरोग, मन्दाग्नि, दारुण ज्वर-सहित संग्रहणी, रक्तपित्त, अरुचि, पाँच प्रकारकी खाँसी, प्रतिश्याय (जुकाम), श्वास और हृदयरोगको नष्ट करता है ॥ ४६–४९ ॥

रत्नप्रभावटिका ।

स्वर्णमौक्तिकमभ्रञ्च नागं वङ्गञ्च पित्तलम् ।
माक्षिकं रजतं वज्रं लौहं तालञ्च खर्परम् ॥ ५० ॥
कदल्याः काकमाच्याश्च वासकस्योत्पलस्य च ।
स्वरसेन जयन्त्याश्च कर्पूरसलिलेन च ॥ ५१ ॥
भावयित्वा यथाशास्त्रमहोरात्रमतः परम् ।
सम्मर्द्यातन्द्रितः कुर्याद्भिषग्गुञ्जामिता वटीः ॥ ५२ ॥
एकैकाञ्च प्रयुञ्जीत प्रातराशं बलाम्बुना ।
उष्णेन पयसा वापि केशराजरसेन वा ॥ ५३ ॥
इयं रत्नप्रभानाम्नी वटिका सर्वसिद्धिदा ।
सर्वस्त्रीरोगहन्त्री च बल्या वृष्या रसायनी ॥ ५४ ॥

सुवर्ण, मोती, अभ्रक, सीसा, वङ्ग, पीतल, सोनामाखी, चाँदी, हीरा, लोहा, हरिताल और खपरिया इन सबकी भस्मोंको समानभाग लेकर केलेकी जड, मकोय, अडूसेकी छाल, कमल और जयन्तीके पत्ते इन सबोंके स्वरस तथा कपूरके जलमें यथाक्रम भावना देकर शास्त्रोक्त विधिसे एक दिनरात्रि-पर्यन्त निरालस्य होकर उत्तम प्रकार खरल करे, फिर एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोलीको खिरैंटीके काथ अथवा ककुरभाँगरेके रस किम्वा मन्दोष्ण दूधके साथ सेवन करे । यह रत्नप्रभानाम-वाली वटी सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाली और स्त्रियोंके समस्त रोगोंको हरने-वाली तथा बलकारक, पुष्टिकारक और रसायन है ॥ ५०–५४ ॥

सिवकल्याणघृत ।

कुमुदं पद्मकोशीरं गोधूमं रक्तशालयः ।
मुद्गपर्णी पयस्या च काश्मरी मधुयष्टिका ॥ ५५ ॥
बलातिबलयोर्मूलमुत्पलं तालमस्तकम् ।
विदारी शतपुत्री च शालपर्णी सजीरका ॥ ५६ ॥

फलं त्रपुषबीजानि प्रत्यग्रं कदलीफलम्।
एषामर्द्धपलान्भागान्गव्यक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ५७ ॥
पानीयं द्विगुणं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
प्रदरे रक्तगुल्मे च रक्तपित्ते हलीमके ॥ ५८ ॥
बहुरूपश्च यत्पित्तं कामलायाश्च शोणिते।
अरोचके ज्वरे जीर्णे पाण्डुरोगे मदे भ्रमे ॥ ५९ ॥
तरुणी चाल्पपुष्पा च या च गर्भं न विन्दति।
अहन्यहनि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ६० ॥

कसोदनीके फूल, पद्माख, खस, गेहूं, लाल शालिचावल, मुगवन, क्षीरकाकोली, कुम्भेर, मुलैठी, खिरैंटी, कंघीकी जड, लालकमल, ताडका मस्तक, विदारीकन्द, शतावर, शालपर्णी, जीरा, त्रिफला, ककडीके बीज और कची केलेकी फली इन सबको दोदो तोले लेकर एकत्र कूटपीसकर कल्क बनाले, फिर घृतसे चौगुना गोदुग्ध, दुगुना पानी और एक प्रस्थ घी लेवे, सबको यथाविधि एकत्र मिलाकर उत्तमप्रकारसे घृतको सिद्ध करना चाहिये। यह घृत प्रदर, रक्तगुलम, रक्तपित्त, हलीमक अनेक प्रकारके पित्तरोग, कामला, रक्तस्राव, अरुचि, जीर्णज्वर, पाण्डुरोग, मद, भ्रमादि रोगोंमें सेवन करना परमोपयोगी है। जो तरुणी स्त्री अल्प पुष्पवाली होती है और गर्भको धारण नहीं करती उसके इस घृतके प्रभावसे अवश्य गर्भधारण होता है। इससे स्त्रियोंकी दिनप्रतिदिन प्रीति उत्पन्न होती है ॥ ५५-६० ॥

न्यग्रोधाद्यघृत।

न्यग्रोधाश्वत्थपार्थामृत-वृषकटुकाप्लक्षजम्बूपियालाः
श्योनाकोडुम्बराख्यामधुकतरुबलावेतसंकेन्दुनीपौ।
रोहीतं पीतसारं विधिविहितहतं सर्वमेषां तरूणां
प्रत्येकं वल्कलं तद्युगपलमखिलं क्षोदयित्वा भिषग्भिः
॥ ६१ ॥ क्वाथ्यं द्रोणाम्भसा तद्दृढविमलकटाहेऽप्यत्र
पादावशेषं सर्पिः प्रस्थश्च पाच्यं पचनकुशलिना मन्दमन्दानलेन। प्रस्थं धात्रीरसानां विधिविहितजलप्रस्थमेकञ्च शालेर्दत्त्वा त्र्यक्षन्तु कल्कं मधुकमपि मधो
पुष्परखर्ज्जूरदार्वी। जीवन्तीकाश्मरीणां फलमपि

युगलं क्षीरकाकोलियुग्मं रक्ताख्यं चन्दनं यत्तदपरममलं चाञ्जनं शारिवा च॥६२॥न्यग्रोधाद्यं घृतं ह्येतदेहं प्राप्यामृतायते । दुस्तरं प्रदरं हन्ति नीलं रक्तं सितासितम् ॥ ६३॥ योनिशूलं कुक्षिशूलं वस्तिशूलं सुदुःसहम् । अङ्गदाहं योनिदाहमाक्षिकुक्षिभवञ्च यम्॥६४॥ मन्ददृष्टिमश्रुपातं तिमिरं वातसम्भवम् । आध्मानानाहशूलघ्नं वातपित्तप्रकोपजित् ॥६५॥ अम्लपित्तञ्च पित्तञ्च योनिरोगं विनाशयेत् । दृष्टिप्रसादजननं बलवर्णाग्निकारकम् ॥ ६६ ॥

वड, पीपल, अर्जुन, गिलोय, अडूसा, कुटकी, पाखर, जामुन, चिरौंजी, श्योनाक, गूलर, महुआ, खिरैंटी, बेंत, कुचिला, कदम, रोहेडा और शाल इन समस्त औषधियोंकी छाल पृथक् पृथक् आठ आठ तोले लेकर सबको एकत्र कूटकर ३२ सेर जलमें पकावे । जब पकते पकते चतुर्थांश जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें घी एक प्रस्थ, आमलोंका रस एक प्रस्थ, शालिचावलोंका विधिपूर्वक बनायाहुआ क्वाथ एक प्रस्थ तथा कल्कके लिये मुलैठी, महुएके फूल, पिण्डखजूर, दारुहल्दी, जीवन्ती, कुम्भेर, काकोली और क्षीरकाकोली इन चारोंके फल, लालचन्दन, सफेदचन्दन, रसौत, अनन्तमूल ये प्रत्येक औषधि तीन तीन तोले लेकर बारीक पीसकर डालदेवे । फिर पचन क्रियामें कुशल वैद्य यथाविधिसे मन्द मन्द अग्निद्वारा घृतको पकावे । जब उत्तम प्रकार पककर सिद्ध होजाय तब उसको चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे । यह न्यग्रोधाद्यनामक घृत शरीरमें पहुँचकर अमृतके समान गुण करता है । तथा स्त्रियोंके दुस्तर नीलप्रदर, लालप्रदर, श्वेतप्रदर, कृष्णप्रदर, योनिशूल, कुक्षिशूल, दुस्सह वस्तिशूल,अङ्गोंकीदाह, योनिदाह, नेत्रदाह, कुक्षिदाह, दृष्टिकी हीनता, अश्रुपात, वातज तिमिररोग, आध्मान, आनाह (अफारा) शूल, वातपित्तजन्य रोग, अम्लपित्त, पित्त और योनिरोगको शीघ्र नष्ट करता है एवं दृष्टिको प्रसन्न, बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि करता है ॥ ६१-६६ ॥

विश्ववल्लभघृत ।

केशराजस्य निर्गुण्ड्याः शतावर्याः कुशस्य च ।
विदार्याः स्वरसेनापि च्छागेन पयसा तथा ॥ ६७ ॥
कल्कैर्दाडिमबिल्वाब्दैर्लवङ्गैलाफलत्रिकैः ।
महता पञ्चमूलेन द्राक्षाचन्दनचम्पकैः ॥ ६८ ॥

निशादारुनिशाभ्याञ्च वह्निना लवणैरपि।
तोयपिष्टैः पचेत्सर्पिः पात्रे मृत्परिनिर्मिते॥
विश्ववल्लभनामेदं घृतं स्त्रीगदसूदनम्॥ ६९॥

कुकुरभाँगरा, निर्गुण्डी, शतावर, कुशा और विदारीकन्द इनके स्वरस तथा बकरीके दूधको एकएक प्रस्थ लेकर सबके साथ अनारका बक्कल, बेलगिरी, नागरमोथा, लौंग, इलायची, त्रिफला, बृहत्पञ्चमूल, दाख, लालचन्दन, चम्पा वृक्षकी छाल, हल्दी, दारुहल्दी, चीतेकी जड और पाँचोंनमक इन सब औषधियोंको समानभाग मिश्रित एक सेर लेकर जलमें पीसकर यथाविधि मिश्रित करके घृतको पकावे। जब अच्छेप्रकारसे पकजाय तब मिट्टीके उत्तमपात्रमें भरकर रखदेवे। यह विश्ववल्लभनामक घृत स्त्रियोंके सब रोगोंको नष्ट करता है॥

अशोकघृत।

अशोकवल्कलं प्रस्थं तोयाढकविपाचितम्।
पादस्थेन घृतप्रस्थं जीरकक्काथसंयुतम्॥ ७०॥
तण्डुलाम्बु त्वजाक्षीरं घृततुल्यं प्रदापयेत्।
तथैव केशराजस्य प्रस्थमेकं भिषग्वरः॥ ७१॥
जीवनीयैः पियालैस्तु परुषैः सरसाञ्जनैः।
यष्ट्याह्वाशोकमूलञ्च मृद्वीका च शतावरी॥ ७२॥
तण्डुलीयकमूलञ्च कल्कैरेभिः पलार्द्धकैः।
शर्करायाः पलान्यष्टौ सिद्धशीते प्रदापयेत्॥ ७३॥
पीतमेतद्घृतं हन्ति सर्वदोषसमुद्भवम्।
श्वेतं नीलं तथा कृष्णं प्रदरं हन्ति दुस्तरम्॥ ७४॥
कुक्षिशूलं कटीशूलं योनिशूलञ्च सर्वगम्।
मन्दाग्निमरुचिं पाण्डुं कृशतां श्वासकासकम्॥ ७५॥
आयुःपुष्टिकरं बल्यं बलवर्णप्रसादनम्।
देयमेतत्परं सर्पिर्विष्णुना परिकीर्त्तितम्॥ ७६॥

अशोककी छालको एक प्रस्थ लेकर एक आढक जलमें पकावे। जब पकतेहुए चौथाईभाग जल बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस काथके साथ घी एक प्रस्थ, जीरेका काथ एक प्रस्थ, चावलोंका जल एक प्रस्थ, बकरीका दूध एक प्रस्थ और कुकुरभाँगरेका रस एक प्रस्थ तथा जीवनीयगणकी औषधियें, चिरौंजी, फालसे, रसौत, मुलैठी, अशोककी जडकी छाल,

दाख, शतावर और चौलाईकी जड इन सब औषधियोंके दो दो तोले कल्कको मिलाकर यथारीति घृतको पकावे । जब अच्छे प्रकार पककर सिद्ध होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उसमें ८ पल चीनी मिलादेवे । इस घृतको पीतेही सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न हुआ श्वेतप्रदर नीलप्रदर तथा दुस्तर कृष्णप्रदर नष्ट होता है । यह घृत कुक्षिशूल, कटिशूल,सर्व प्रकारके योनिशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डुरोग, कृशता, श्वास, खाँसी प्रभृति विकारोंको नष्ट करता है । एवं आयुवर्द्धक, पुष्टिकारक, बल और वर्णको उत्पन्न करनेवाला है । इस घृतको श्रीविष्णुभगवान्ने रचा है ॥ ७०–७६ ॥

अशोकारिष्ट ।

अशोकस्य तुलामेकां चतुर्द्रोणे जले पचेत् ।
पादशेषे रसे पूते शीते पलशतद्वयम् ॥ ७७ ॥
दद्याद्गुडस्य धातक्याः पलषोडशिकं मतम् ।
अजाजीं मुस्तकं शुण्ठीं दार्व्युत्पलफलत्रिकम् ॥ ७८ ॥
आम्रास्थि जीरकं वासां चन्दनञ्च विनिःक्षिपेत् ।
चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत् ॥ ७९ ॥
मासादूर्द्ध्वञ्च पीत्वैनमसृग्दररुजां जयेत् ।
ज्वरञ्च रक्तपित्तार्शो मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥
मेहशोथारुचिहरस्त्वशोकारिष्टसंज्ञितः ॥ ८० ॥

अशोककी छालको१०० पल लेकर चार द्रोण (१२८ सेर) जलमें पकावे । जब पकते २ एक द्रोण (३२ सेर) जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस क्वाथमें शीतल होजानेपर २०० पल गुड, धायके फूल ६४ तोले एवं काला जीरा, नागरमोथा, सोंठ, दारुहल्दी, लालकमलकी जड, त्रिफला, आमकी गुठलीकी गिरी, जीरा, अडूसा और लाल चन्दन इन सबको एक एक तोला लेकर और एकत्र कूटपीसकर डालदेवे । फिर उस पात्रके मुखको बन्द करके रखदेवे । एक महीनेके बाद उसको निकालकर और छानकर उपयुक्त मात्रासे दिनमें दो तीन वार पान करे तो यह अशोकारिष्ट सर्व प्रकारके प्रदररोग, ज्वर, रक्तपित्त, बवासीर, मन्दाग्नि, अरुचि, प्रमेह, सूजन और इनके अतिरिक्त अन्यान्य सर्व प्रकारके रोगोंको शीघ्र हरता है ॥ ७७–८० ॥

पथ्यापथ्यविधि ।

यत्पथ्यं यदपथ्यञ्च रक्तपित्तेषु कीर्त्तितम् ।
प्रदरेऽपि यथादोषं तत्तन्नारी भजेत्त्यजेत ॥ ८१ ॥

रक्तपित्तरोगमें जो पथ्यपदार्थ वर्णन किये हैं उनको भी प्रदररोगमें दोषानुसार सेवन करे और जो उक्तरोगमें अपथ्य कहे गये हैं उन सबको प्रदररोगमें भी त्यागदेवे ॥ ८१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां प्रदररोगचिकित्सा।

योनिव्यापदकी चिकित्सा।

योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं शस्यते कर्म वातजित्।
वस्त्यभ्यङ्गपरिषेकप्रलेपाः पिचुधारणम् ॥ १ ॥

योनिव्यापद्रोगमें वायुनाशक शीतलक्रिया तथा वस्तिक्रिया, तेलादिकी मालिश, सेचन, प्रलेप और पिचु (फोया) धारणादि उपचार करे ॥ १ ॥

वचोपकुञ्चिकाजाजी कृष्णा वृषकसैन्धवम्।
अजमोदां यवक्षारं चित्रकं शर्करान्वितम् ॥ २ ॥
पिष्ट्वा प्रसन्नयालोड्य खादेत्तद्घृतभर्जितम्।
योनिव्यापत्तिहृद्रोगगुल्माशोंविनिवृत्तये ॥ ३ ॥

वच, कालाजीरा, जीरा, पीपल, अडूसा, सैंधानमक, अजमोद, जवाखार, चीतेकी जड इन सबको समानभाग लेकर बारीक पीसलेवे। फिर उस चूर्णको घीमें भूनकर खाँड और सुराके मांडके साथ मिलाकर भक्षण करे। इससे योनिव्यापद्रोग, हृदयरोग, गुल्म और अर्शादिरोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वाथैश्च परिषेचनम्।
नतवार्त्ताकिनीकुष्ठसैन्धवामरदारुभिः ॥
तैलात्प्रसाधिताद्धार्यः पिचुर्योनौ रुजापहः ॥ ४ ॥

गिलोय, त्रिफला और दन्ती इनके क्वाथसे योनिको सिञ्चन करे। एवं तगर, बडीकटेरी, कूठ, सैंधानमक और देवदारु इन सब औषधियोंके द्वारा तेल पकाकर उसमें फोया भिजोकर योनिमें रक्खे तो योनिव्यापद्रोग दूरहोय॥

पित्तलानान्तु योनीनां सेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः।
शीताः पित्तहराः कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ॥५॥

पित्तलानामक योनिव्यापद्रोगमें योनिपर सेचन, तेलादिकी मालिश, फोयारखना, घृतादि स्नेहद्रव्योंका प्रयोग और पित्तनाशक शीतल क्रिया करे॥ ५॥

योन्यां बलासदुष्टायां सर्वं रूक्षोष्णमौषधम् ।
पिप्पल्याः मरिचैर्माषैः शताह्वाकुष्ठसैन्धवैः ॥
वर्त्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या धार्या योनिविशोधिनी ॥६॥

कफजनित योनिव्यापद्रोगमें सर्वप्रकारकी रूखी और गरम औषधियाँ उपयोग करे । पीपल, कालीमिरच, उडद, सोया, कूठ, सैंधानोन इन सबको एकत्र पीसकर तर्जनी अंगुलीकी समान बत्ती बनाकर योनिमें रक्खे । यह बत्ती योनिको शुद्ध करती है ॥ ६ ॥

हिंस्राकल्कस्तु वातार्त्ता कोष्णमभ्यज्य धारयेत् ।
पञ्चवल्कस्य पित्तार्त्ता श्यामादीनां कफोत्तरा ॥ ७ ॥

वातज योनिव्यापद्रोगमें कटेरीकी जडको पीसकर उसकी बत्ती बनाकर कुछ एक गरम करके योनिमें रक्खे । इसीप्रकार पित्तज योनिमें वडादि पाँचों वृक्षोंकी छालकी बत्ती और कफजयोनिरोगमें श्यामालतादिकी बत्ती बनाकर योनिमें धारण करे तो विशेषोपकार होता है ॥ ७ ॥

मूषिकामांससंयुक्तं तैलमातपभावितम् ।
अभ्यङ्गाद्धन्ति योन्यर्शः स्वेदस्तन्मांससैन्धवैः ॥८॥

चूहेके मांसको ८ तोले लेकर उसके साथ आध सेर तिलके तेलको धूपमें रखकर ७ दिनतक पकावे । फिर उस तेलको योनिमें मले तो योन्यर्शरोग दूर होता है । एवं चूहेके मांस और सैंधेनमकको एक जगह पकाकर अण्डके पत्तेपर रखकर योनिमें स्थापन करके स्वेद प्रदान करे ॥ ८ ॥

गोपित्ते मत्स्यपित्ते वा क्षौमं सप्ताहभावितम् ।
मधुना किण्वचूर्णं वा दद्यादचरणापहम् ॥ ९ ॥

रेशमके टुकडेको गौके पित्तमें अथवा मछलीके पित्तमें ७ दिनतक भावना देकर योनिके मध्यमें प्रवेश करे अथवा सुराबीजके चूर्णको शहदमें मिलाकर योनिमें लगावे तो अचरणानामक योनिरोग नष्ट होता है ॥ ९ ॥

वामिन्याः पूतियोन्याश्च कर्त्तव्यः स्वेदनोऽपि वा ।
क्रमः कार्यस्ततः स्नेहः पिचुभिस्तर्पणं भवेत् ॥
स्रोतसां शोधनं कण्डूक्लेदशोथहरश्च तत ॥ १० ॥

वामिनी और पूतियोनिरोगमें स्वेद देवे और तेलमें भिजोकर रुईका फोया रक्खे । इससे स्रोतोंकी शुद्धि होती है तथा खुजली, क्लेद, सूजन दूर होतीहै १०

शल्लकी जिङ्गिनी जम्बूधवत्वक्पञ्चपल्लवैः ।
कषायैः साधितः स्नेहः पिचुः स्याद्विप्लुतापहः॥११॥

शालईवृक्ष, जिङ्गिनीवृक्ष, जामुन और धौं वृक्ष इनकी छाल एवं आम, जामुन, कैथ, जम्बीरी नींबू और बेंत इनके पत्ते समानभाग लेवे । इन सबके काथके साथ तेल पकाकर उससें रुईके फोयेको भिजोकर योनिमें रक्खे तो विप्लुतरोग नष्ट होताहै ॥ ११ ॥

कर्णिन्यां वर्त्तिका कुष्ठपिप्पल्यर्काग्रसैन्धवैः ।
बस्तमूत्रकृता धार्या सर्वञ्च कफनुद्धितम् ॥ १२ ॥

कर्णिनीरोगमें कूठ, पीपल, आकके पत्ते और सैंधानमक इन सबको बकरीके मूत्रमें पीसकर बत्ती बनाकर उस बत्तीको योनिमें धारण करना और सर्वप्रकारकी कफनाशक चिकित्सा करना हितकारी है ॥ १२ ॥

त्रैवृतं स्नेहनं स्वेद उदावर्त्तानिलार्त्तिषु ।
तदेव च महायोन्यां स्रस्तायाञ्च विधीयते ॥ १३ ॥

उदावर्त्त और वातजयोनिरोगमें निसोतके चूर्णको तेलादि स्नेहद्रव्योंके साथ मिलाकर लगावे और स्वेदप्रदान करे । इसीप्रकार महायोनि और स्रस्तायोनिमेंभी क्रिया करना श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥

आखोर्मांसं सपदि बहुधा खण्डखण्डीकृतं तत्
तैले पाच्यं भवति नियतं यावदेतन्न सम्यक् ।
तत्तैलाक्तं वमनमनिशं योनिभागे दधाना
हन्ति व्रीडाकरभगफलं नात्र सन्देहबुद्धिः ॥ १४ ॥

चूहेके मांसके टुकडे टुकडे करके उसके द्वारा तिलके तेलको पकावे । उस तेलमें फोयेको भिजोकर योनिमें रखनेसे योनिकन्दरोग नष्ट होता है । इसमें किञ्चिन्मात्रभी सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥

शतपुष्पातैललेपात्तुवरीदलजात्तथा ।
पेटिकामूललेपेन योनिर्भिन्ना प्रशाम्यति ॥ १५ ॥

सोयेको तेलमें खरलकर लेप करनेसे अथवा अडहरके पत्तोंको किंवा पेटारीवृक्षकी जडको जलमें पीसकर लेप करनेसे विदीर्णयोनि फिर जुड जाती है॥

सुषवीमूललेपेन प्रविष्टा तु बहिर्भवेत् ।
योनिर्मूषवसाभ्यङ्गान्निःसृता प्रविशेदपि ॥ १६ ॥

करेलेकी जडको पीसकर लेप करनेसे भीतरको प्रविष्टहुई योनि बाहरको निकल आती है और चूहेकी चर्बीकी मालिश करनेसे बाहरको निकलीहुई योनि भीतरको प्रवेश करजाती है ॥ १६ ॥

लोध्रतुम्बीफलालेपो योनिर्दार्ढ्यं करोति च ।
वेतसंमूलनिःक्वाथक्षालनेन तथैव च ॥
मूषिकावल्गुलीवसा म्रक्षणं योनिदार्ढ्यदम् ॥ १७ ॥

लोध और कडवी तोरई इनको बराबरभाग लेकर एकत्र पीसकर योनिमें लेप करे अथवा बेंतकी छालके काथसे योनिको सिञ्चन करे किंवा चूहे या पिद्देकी चर्बीको योनिपर मले तो शिथिलयोनि दृढ होजाती है ॥ १७ ॥

वचा नीलोत्पलं कुष्ठं मरिचानि तथैव च ।
अश्वगन्धा हरिद्रा च दृढीकरणमुत्तमम् ॥ १८ ॥

वच नीलकमल कूठ कालीमिरच असगन्ध और हलदी इनको एकत्र पीस-कर लेप करनेसेभी योनि दृढ होती है ॥ १८ ॥

पलाशोडुम्बरफलं तिलतैलसमन्वितम् ।
मधुना योनिमालिप्य दृढीकरणमुत्तमम् ॥ १९ ॥

ढाकके बीज, गूलर, तिलका तेल और शहद इनको पीसकर लेप करना उत्तम दृढीकरणयोग है ॥ १९ ॥

मदनफलमधुकर्पूरप्रपूरितं कामिनीजनस्य ।
चिरगलितयौवनस्य वराङ्गमतिगाढं सुकुमारम् ॥२०॥

मैनफल, शहद और कपूर इनको एकत्र पीसकर स्त्रियोंकी योनिमें लगानेसे बहुत दिनोंसे शिथिलहुई और यौवनरहित योनि अत्यन्त दृढ, कोमल होतीहै२०

पञ्चपल्लवयष्ट्याह्वमालतीकुसुमैर्घृतम् ।
रविपक्वमन्यथा वा योनिगन्धनिवारणम् ॥ २१ ॥

आम जामुन कैथ जम्बीरीनीम्बू और बेल इनके पत्ते तथा मुलैठी और चमेलीके पत्ते इनके कल्कद्वारा धूपमें अथवा अग्निमें घृतको पकाकर योनिमें मलनेसे योनिकी दुर्गन्ध दूर होती है ॥ २१ ॥

सुतनु करोति मध्यपीतं मथितेन माधवीमूलम् ॥

माधवीलताकी जडको जलमें पीसकर पान करनेसे स्त्रियोंके शरीरका मध्य भाग क्षीण होकर सुन्दर शरीर होजाता है ॥

स्याच्छिथिलापि च दृढा सुरगोपाज्याभ्यङ्गतो योनिः ॥२२

वीरबहूटी नामक कीडेको घृतके साथ पीसकर लेप करनेसे शिथिलयोनि दृढ होजाती है ॥ २२ ॥

वेतसस्य तु मूलानि क्वाथयेन्मृदुनाग्निना ।
भगं प्रक्षालितं तेन गाढत्वमुपजायते ॥ २३ ॥

बेंतकी जडके क्वाथको मन्दमन्द अग्निसे पकाकर उसके द्वारा योनिको सींचे तो योनिमें दृढता उत्पन्न होती है ॥ २३ ॥

रजःप्रवर्त्तक योग ।

इक्ष्वाकुबीजदन्तीचपलागुडमदनफलकिण्वयष्टयाह्नैः ।
सस्नुक्क्षीरैर्वर्त्तिर्योनिगता कुसुमसंजननी ॥ २४ ॥

कडवी तोरईके बीज, दन्तीकी जड, पीपल, गुड, मैनफल, सुराबीज और मुलैठी इनके चूर्णको समानभाग लेकर थूहरके दूधमें सबको अच्छेप्रकार खरल करके बत्ती बनालेवे । उस वत्तीको योनिमें रखनेसे ऋतुधर्म उत्पन्न होता है ॥

सकाञ्जिकं जवापुष्पं भृष्टं ज्योतिष्मतीदलम् ।
दूर्वापिष्टश्च सम्प्राश्य वनिता त्वार्त्तवं लभेत् ॥ २५ ॥

गुडहलके फूलोंको काँजीमें पीसकर अथवा मालकाङ्गनीके पत्तोंको काँजीमें भूनकर या केवल दूबको आतप चावलोंके जलद्वारा पीसकर उसके बडे बनाकर खानेसे स्त्री रजोधर्मको प्राप्त होती है ॥ २५ ॥

पीतं ज्योतिष्मतीपुष्पस्वर्जिकोग्रासनं त्र्यहम् ।
पीतेन पयसा पिष्टं कुसुमं जनयेद्ध्रुवम् ॥ २६ ॥

मालकाङ्गनीके फूल, सज्जी, वच और विजयसार इन सबको दूधमें पीसकर तीन दिनतक सेवन करनेसे निश्चय रजोत्पत्ति होती है ॥ २६ ॥

रजःप्रवर्त्तिनीवटी ।

टङ्कणं हिङ्गु कासीसं कन्यासारं समांशकम् ।
कुमारीस्वरसेनैव चणकप्रतिमा वटी ॥ २७ ॥
रजोरोधं कष्टरजो वेदनाश्च तदुद्भवाः ।
रजःप्रवर्त्तिनी नाम वटी चूर्णं विनाशयेत् ॥
भाषिता नीलकण्ठेन वह्निः काष्ठचयं यथा ॥ २८ ॥

सुहागा, हींग, हीराकसीस और वनककोडा इनको समानभाग लेकर घीग्वारके रसमें खरल करके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इस रजःप्रवर्त्तिनी नामा वटीको सेवन करनेसे अथवा उक्त द्रव्योंके चूर्णको सेवन करनेसे रजका

रुकना, कष्टसे रजका होना और उसके द्वारा पीडा होनी दूर होती है। इसको श्रीशिवजीने कहा है। यह वटी जिस प्रकार अग्नि काष्ठके समूहको तत्क्षण नष्ट करदेता है इसी प्रकार रजोदोषको तत्काल दूर करदेती है ॥ २७ ॥ २८ ॥

गर्भाजनक-भेषज।

पिप्पलीविडङ्गटङ्कणसमचूर्णं या पिबेत्पयसा।
ऋतुसमये न हि तस्या गर्भः सञ्जायते क्वापि ॥ २९ ॥

पीपल वायविडङ्ग और सुहागा इनके चूर्णको समानभाग लेकर दूधमें पीसकर ऋतुकालमें पान करनेसे कदापि गर्भोत्पत्ति नहीं होती ॥ २९ ॥

आरनालपरिपेषितं त्र्यहं वा जवाकुसुममत्ति पुष्पिणी।
सत्पुराणगुडमुष्टिसेविनी सन्दधाति न हि गर्भमङ्गना ३०

ऋतुमती स्त्री गुडहलके फूलोंको काँजीमें पीसकर और पुराने गुडमें मिलाकर तीन दिनतक सेवन करे तो उसके कभी भी गर्भधारण नहीं होता ॥३०॥

पाठापत्रं ऋतुस्नाता पीत्वा गर्भं न धारयेत् ॥

रजस्वला स्त्री स्नान करके पाढके पत्तोंको जलमें पीसकर पान करे तो गर्भस्थिति नहीं होती ॥

धात्र्यर्ज्जुनाभयाचूर्णं तोयपीतं रजो हरेत्।
शैलुच्छदामिश्रपिष्टभक्षणञ्च तदर्थकृत् ॥ ३१ ॥

आमले, अर्जुनकी छाल और हरड इनके समानभाग मिश्रित चूर्णको जलके साथ ऋतुकालमें सेवन करनेसे अथवा लहसौडेके पत्तोंको मिलाकर उक्त औषधियोंके बडे बनाकर खानेसे आर्त्तवका होना बन्द होता है और गर्भको धारण करनेकी शक्ति नष्ट होजाती है ॥ ३१ ॥

रसाञ्जनं हैमवतीवयःस्थाचूर्णीकृतं शीतजलेन पीतम्।
रजोविनाशं नियतं करोति शङ्का च का गर्भसमागमस्य॥

रसौत, हरड और आमले इनको एकत्र पीसकर शीतल जलके साथ पान करनेसे स्त्रियोंके नियमित समयमें होनेवाला ऋतु बन्द होजाता है। फिर गर्भोत्पत्ति होनेकी और सम्भावना क्या है ? ॥ ३२ ॥

नष्टपुष्पान्तकरस।

रसेन्द्रगन्धकं लौहं वङ्गं सौभाग्यमेव च।
रजतश्चाभ्रताम्रञ्च प्रत्येकञ्च पलं पलम् ॥ ३३ ॥

गुडूची त्रिफला दन्ती शेफाली कण्टकारिका।
दारुसैन्धवकुष्ठञ्च बृहती काकमाचिका॥ ३४॥
नतं तालीशवेत्राग्रं श्वदंष्ट्रा वृषकं बला।
एतेषां स्वरसैर्भाव्यं त्रिवारञ्च पृथक् पृथक्॥ ३५॥
जीवन्तीं मधुकं दन्तीं लवङ्गं वंशलोचनम्।
रास्नां गोक्षुरबीजञ्च शाणमानं विचूर्णयेत्॥ ३६॥
सर्वमेकीकृतं पेष्यं जयन्तीतुलसीरसैः।
मर्दयित्वा वटीं कुर्यान्नष्टपुष्पकयोषिते॥ ३७॥
नष्टपुष्पे नष्टशुक्रे योनिशूले च शस्यते।
ऋतुशूले क्लेदयोन्यां विशेषे चाममारुते॥
एतान्रोगान्निहन्त्याशु भास्करास्तिमिरं यथा॥ ३८॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहा, वङ्ग, सुहागा, चाँदी, अभ्रक और ताँबा इन प्रत्येक द्रव्योंको चारचार तोले लेकर गिलोय, त्रिफला, दन्तीकी जड, नील-सिह्मालु, कटेरी, देवदारु, सैंधानमक, कूठ, बडीकटेरी, मकोय, तगर, तालीशपत्र बेंतकी कोंपल, गोखुरु, अडूसा और खिरैंटी इन सबके स्वरस अथवा काथमें तीनतीन बार अलग अलग क्रमपूर्वक भावना देवे। पश्चात् जीन्वती, मुलैठी, दन्ती, लौङ्ग, वंशलोचन, रास्ना और गोखुरूके बीज इनको चारचार माशे लेकर चूर्ण करले और सबको एकत्र मिलाकर जयन्ती और तुलसीके रसमें उत्तमप्रकार खरलकर गोलियाँ बनालेवे। फिर इस रसको स्त्रियोंके रजके नष्ट होनेपर, वीर्य्यके नष्ट होजानेपर, योनिशूल, ऋतुकालगत शूल, क्लेदयुक्त योनि और आमवातरोगमें प्रयोग करना चाहिये। यह रस इन समस्त रोगोंको इसप्रकार नष्ट करदेता है जिसप्रकार सूर्य अन्धकारसमूहको॥ ३३-३८॥

फलघृत।

द्वे सहचरे त्रिफलां गुडूचीं सपुनर्नवाम्।
शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्नां मेदां शतावरीम्॥ ३९॥
कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत्क्षीरचतुर्गुणम्।
तत्सिद्धं प्रपिबेन्नारी योनिशूलनिपीडिता॥ ४०॥
पिण्डिता चलिता या च निःसृता विवृता च या।
पित्तयोनिश्च विस्रस्ता षण्ढयोनिश्च या स्मृता॥ ४१॥

प्रपद्यन्ते तु ताः स्थानं गर्भं गृह्णन्ति चासकृत् ।
एतत्फलघृतं नाम योनिदोषहरं परम् ॥ ४२ ॥

नीलापियाबाँसा, पीलापियाबाँसा, त्रिफला, गिलोय, पुनर्नवा, शोनापाठ, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, मेदा और शतावर ये प्रत्येक दोदो तोले लेकर एकत्र पीसलेवे । फिर उस कल्कके सहयोगसे एक प्रस्थ घृतको चौगुने दूधमें पकावे। जब अच्छेप्रकार सिद्ध होजाय तब उस घृतको योनिशूलसे पीडितखी पान करे । इससे पिण्डाकार, चलायमान, बाहरको निकलीहुई, भीतरको प्रविष्ट-हुई योनि,पित्तजयोनि, विस्रस्ता और षण्ढयोनि ये सर्वप्रकारकी योनियें यथा-स्थानको प्राप्त होती हैं और गर्भको शीघ्र धारण करती हैं । यह फलघृत अल्प-कालमेंही सर्वप्रकारके योनिके दोषोंको हरण करता है ॥ ३९-४२ ॥

फलकल्याणघृत ।

माञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं त्रिफला शर्करा बला ।
मेदा पयस्या काकोली मूलश्चैवाश्वगन्धजम् ॥ ४३ ॥
अजमोदा हरिद्रे द्वे हिङ्गु कटुकरोहिणी ।
उत्पलं कुमुदं द्राक्षा काकोल्यौ चन्दनद्वयम् ॥ ४४ ॥
एतेषां कार्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
शतावरीरसं क्षीरं घृताद्देयं चतुर्गुणम् ॥ ४५ ॥
सर्पिरेतन्नरः पीत्वा नित्यं स्त्रीषु वृषायते ।
पुत्रान्संजनयेन्नारी मेधाढ्यान्प्रियदर्शनान् ॥ ४६ ॥
या चैवास्थिरगर्भा स्याद्या च वा जनयेन्मृतम् ।
अल्पायुषं वा जनयेद्या च कन्यां प्रसूयते ॥ ४७ ॥
योनिदोषे रजोदोषे परिस्रावे च शस्यते ।
प्रजावर्द्धनमायुष्यं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ४८ ॥
नाम्ना फलघृतं ह्येतदश्विभ्यां परिकीर्त्तितम् ।
"अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकित्सकाः ॥ ४९ ॥
जीवद्वत्सैकवर्णा या घृतमत्र तु गृह्यते ।
आरण्यगोमयेनापि वह्निज्वाला प्रदीयते ॥ ५० ॥"

मंजीठ, मुलैठी, कूठ, त्रिफला, चीनी, खिरैंटी, मेदा, क्षीरकाकोली, काकोली, असगन्धकी जड, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी, हींग, कुटकी, लाल-

कमल, बबूला, दाख, क्षीरकाकोली, काकोली, श्वेतचन्दन रक्तचन्दन और लक्ष्मणाकी जड (अभावमें सफेद कटेरीकी जड) इन सब औषधियोंको दो दो तोले लेकर एकत्र कूट पीसकर चूर्ण करलेवे। फिर घी १ प्रस्थ, शतावरका रस और दूध चार चार प्रस्थ लेवे, सबको यथाविधि मिलाकर उत्तम प्रकार घृतको सिद्धकरे। पुरुष इस घृतको पान करके प्रतिदिन स्त्रियोंमें वृषभकी समान रमण करता है और स्त्री इस घृतको पान करे तो मेधावी और प्रियदर्शन पुत्रोंको उत्पन्न करती है। जो स्त्री अस्थिरगर्भा हो और जिसके मृत या अल्पायुवाली सन्तान किम्वा कन्यायेंही उत्पन्न होती हो ऐसी स्त्रियोंको इस घृतका पान करना चाहिये। यह घृत योनिदोष, रजोदोष और योनिस्रावरोगोंमें भी हितकारी है। एवं सम्पूर्ण दोषोंको निवारण करनेवाला सन्तानकी वृद्धि और आयुकी वृद्धि करनेवाला है। इस फलकल्याणनामक घृतको अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है। "इस घृतमें लक्ष्मणाका उल्लेख न होनेपरभी वैद्यलोग लक्ष्मणाकी जडका कल्क डालते हैं। इसमें जीववत्सा और एक वर्णवाली गौका दूध तथा घृत लेवे। एवं आरनेउपलोंकी अग्निसे घृतको पकावे" ॥ ४३-५० ॥

सोमघृत।

सिद्धार्थकं वचा ब्राह्मी शङ्खपुष्पा पुनर्नवा।
पयस्यामययष्ट्याह्वं कटुका च फलत्रयम्[1] ॥ ५१ ॥
शारिवे रजनी पाठा भृङ्गदारुसुवर्चलाः।
मञ्जिष्ठा त्रिफला श्यामा[2] वृषपुष्पं सगैरिकम् ॥ ५२ ॥
धीमान् पक्त्वा घृतप्रस्थं सम्यङ्मन्त्राभिमन्त्रितम्।
द्विमासगर्भिणी नारी षण्मासानुपयोजयेत् ॥ ५३ ॥
सर्वज्ञं जनयेत्पुत्रं सर्वामयविवर्जितम्।
अस्य प्रयोगात्कुक्षिस्थस्फुटवन्ध्यां हरत्यपि ॥ ५४ ॥
योनिदुष्टाश्च या नार्यो रेतोदुष्टाश्च ये नराः।
स्त्रीणां पुंसां दोषहरं घृतमेतदनुत्तमम् ॥ ५५ ॥
वन्ध्यापि लभते पुत्रं शूरं पण्डितमानिनम्।
जडगद्गदमूकत्वं पानादेवोपकर्षति ॥ ५६ ॥

१ फलत्रयम्-द्राक्षाकाश्मरीपरुषकाणि। २ श्यामा-प्रियंगुः।

सप्तरात्रप्रयोगेण नरः श्रुतिधरो भवेत्।
नाग्निर्दहति तद्वेश्म न वज्रमुपहन्ति च॥
न तत्र म्रियते बालो यत्रास्ते सोमसंज्ञिकम्॥ ५७॥

मन्त्रश्चायं यदाह सुश्रुतः—
यत्र नोदीरितो मन्त्रो येषु योगेषु सारणैः।
सर्वत्र गदिता तत्र गायत्री फलसिद्धिदा॥ ५८॥

" ॐ नमो महाविनायकाय अमृतं रक्षरक्ष मम फलसिद्धिं देहि देहि रुद्रवचनेन स्वाहा॥" इति सप्तधाऽभिमंत्रयेत्।

सफेद सँरसा, बच, ब्रह्मी, शंखपुष्पी, लाल पुनर्नवा, क्षीरकाकोली, कूठ, मुलैठी, कुटकी, दाख, कुम्भेर, फालसे, उसवा, अनन्तमूल, हल्दी, पाढ, माँगरा, देवदारु, कालानमक, मंजीठ, त्रिफला, फूलप्रियंगु, अडूसेके फूल और गेरू इन सब औषधियोंका कल्क समानभाग मिश्रित १ सेर लेवे। इस कल्कके साथ एक प्रस्थ घृतको विधिपूर्वक पकाकर उपर्युक्त " ॐ नमो महाविनायकायेति "मन्त्रसे ७ बार अभिमन्त्रित करलेवे। यह सुश्रुतका मन्त्र है। और जहाँपर केवल मन्त्रही कहा है वहाँ गायत्रीमन्त्रसे ७ बार अभिमन्त्रण करे। फिर गर्भवती स्त्री इस घृतको दूसरे महीनेसे प्रारम्भकर छठे महीनेतक पान करे तो सब रोगोंसे रहित, सर्वज्ञ पुत्रको उत्पन्न करती है। इस घृतको प्रयोग करनेसे कुक्षिस्थ स्फुटबन्ध्यापन दूर होता है। यह उत्तम घृत स्त्री और पुरुषोंके सर्वप्रकारके योनिदोष तथा शुक्रदोषोंको हरता है। इसके सेवनसे बाँझ स्त्री भी शूर वीर और पण्डितमानी पुत्रको उत्पन्न करती है। इस घृतको पान करतेही जडता, गद्गदवाणी और गूँगापन दूर होता है तथा ७ दिनतक सेवन करनेसे सुनीहुई बातको तत्काल धारण करनेकी शक्ति अर्थात् स्मरणशक्ति अत्यन्त तीव्र होजाती है। जिस घरमें यह सोमनामक घृत होता है उस गृहको अग्नि नहीं जलासकता और न वज्र आघात करसकता है और उस गृहमें बालककी कभी मृत्यु नहीं होती है॥ ५१-५८॥

कुमारकल्पद्रुमघृत।

पञ्चाशच्छागमांसस्य दशमूल्यास्तथैव च।
जलमष्टगुणं दत्त्वा क्राथेन मृदुनाग्निना॥ ५९॥
चतुर्भागावशेषश्च क्राथं संगृह्य यत्नतः।
गव्यं प्रस्थद्वयं सर्पिर्गृह्णीयात्कुशलो भिषक्॥ ६०॥

क्षीरं घृतसमं दद्यान्नारायण्या रसं तथा ।
ताम्रे वा मृण्मये पात्रे तदेकत्र पचेच्छनैः ॥ ६१ ॥
कुष्ठं शठी च मेदे द्वे जीवकर्षभकौ तथा ।
प्रियङ्गु त्रिफला दारु पत्रमेला शतावरी ॥ ६२ ॥
काश्मीरमधुकं क्षीरकाकोली मुस्तमुत्पलम् ।
जीवन्ती चन्दनश्चैव काकोली शारिवायुगम् ॥ ६३ ॥
श्वेतवाटचालजं मूलं मूलञ्च शरपुंखजम् ।
विदारीद्वयमञ्जिष्ठा पर्णिनीद्वयमेव च ॥ ६४ ॥
नागपुष्पं तथा दारुहरिद्रा रेणुकं तथा ।
ज्योतिष्मतीभवं मूलं शंखिनी नीलिनी वचा ॥६५॥
अगुरुत्वग्लवङ्गञ्च कुङ्कुमं निक्षिपेत्ततः ।
एतेषां कार्षिकं कल्कं दत्त्वा शुभदिने सुधीः ॥ ६६ ॥
शुभनक्षत्रयोगे च सम्पूज्य गणनायकम् ।
शङ्करञ्च मुरारिञ्च नमस्कृत्याभिभक्तितः ॥ ६७ ॥
पाकं कुर्यात्प्रयतेन विजानन्मन्त्रपूर्वकम् ।
सिद्धशीते क्षिपेत्तत्र पारदं परिनिर्म्मलम् ॥ ६८ ॥
सुजीर्णं शोधितश्चाभ्रं गन्धकं कार्षिकं न्यसेत् ।
ततः पुष्परसं तत्र प्रस्थार्द्धञ्च विनिःक्षिपेत् ॥ ६९ ॥
काचसम्पुटके वान्यपात्रे वा स्थापयेत्सुधीः ।
पराशरमुनिः प्रीतिकरुणावारिधिर्मुदा ॥ ७० ॥
वन्ध्यामयविनाशाय शिशुकल्पद्रुमं घृतम् ।
चकारास्य प्रसादेन जन्मवन्ध्या लभेत्सुतम् ॥ ७१ ॥
खादेत्कर्षद्वयं सर्पिर्दत्वा विप्राय सादरम् ।
अनुपानं प्रकुर्वीत पयश्छागं विशेषतः ॥ ७२ ॥
गव्यं वापि पिबेत्क्षीरं शीतं पलयुगं तथा ।
घृतस्यास्य सुसिद्धस्य गुणाञ्छृणु समाहितः ॥ ७३ ॥
अस्य प्रसादात्षण्ढोऽपि वन्ध्यायां जनयेत्सुतम् ।
रजोदोषेण या दुष्टा शुक्रदोषेण योऽपि च ॥ ७४ ॥

स्त्री भगस्थगदेनैव पीडिता या च सर्वदा।
या च पुष्पं न विन्देत ऋतुना पीडिता च या ॥७५॥
भूत्वा भूत्वा च नश्यन्ति मृतास्तासां मुहुर्मुहुः।
अनेनौषधयोगेन मन्त्रयोगेन वा पुनः॥
अनेकव्रतयोगेन यासां पुत्रो न जायते॥ ७६॥
तासां कामसमाः पुत्रा जायन्ते चिरजीविनः।
एतद्घृतं गृहे यस्य न तस्य कुलिशाद्भयम्॥ ७७॥
न राक्षसैः पिशाचैश्च गृह्यते तस्य बालकः।
नोपसर्पति सर्पोऽपि दर्पात्तस्य गृहान्तरम्॥ ७८॥

बकरेका मांस ५० पल और दशमूलकी सब औषधियाँ ५० पल लेकर अठगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाईभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उस क्वाथमें नवीन गोघृत दो प्रस्थ, दूध दो प्रस्थ और शतावरका रस दो प्रस्थ डालकर ताँबेके या मिट्टीके पात्रमें करके मन्द मन्द अग्निसे पकावे। जब पाक पककर गाढा होजाय तब कूठ, कचूर, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, फूलप्रियंगु, त्रिफला, देवदारु, तेजपात, इलायची, शतावर, कुम्भेर, मुलैठी, क्षीरकाकोली, नागरमोथा, लालकमल, जीवन्ती, लालचन्दन, काकोली, सारिवा, अनन्तमूल, सफेदखिरैंटीकी जड, शरफोंकाकी जड, पेठा, विदारीकन्द, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मंजीठ, नागकेशर, दारुहल्दी, रेणुका, मालकाङ्गनीकी जड, शंखपुष्पीकी जड, नीलवृक्षकी जड, वच, अगर, दारचीनी, लौंङ्ग और केशर इन औषधियोंके दो दो तोले कल्कको लेकर उसमें डालदेवे। फिर शुभनक्षत्र और शुभयोगमें गणेशजीको सविधि पूजकर तथा शंकर और विष्णुभगवान्‌को भक्तिसहित अभिवादन करके पूर्वोक्त मन्त्रको जपताहुआ बुद्धिमान् वैद्य उत्तम प्रकारसे घृतको सिद्ध करे। जब घृत विधिपूर्वक पककर सिद्ध होजाय तब उसमें शीतल होजानेपर शुद्धपारा, शुद्ध पुरानी अभ्रक और शुद्ध गन्धक ये प्रत्येक दोदो तोले परिमाण एकत्र पीसकर एवं शहद ३२ तोले मिलादेवे। फिर सबको एकमएक करके काँचकी शीशीमें या मिट्टी आदिके पात्रमें भरकर रखदेवे। इस कुमारकल्पद्रुम घृतको करुणासागर श्रीपराशरमुनिने दया करके वन्ध्यास्त्रियोंके वन्ध्यत्वदोषको निवारण करनेके लिये निर्म्माण किया है। इस घृतके प्रभावसे जन्मकी वन्ध्यास्त्री पुत्रको उत्पन्न करती है। प्रथम दानमानादिसे ब्राह्मणोंको संमानपूर्वक पूजकर पश्चात् प्रतिदिन इस घृतको दोदो तोले प्रमाण लेकर सेवन करे और ऊपरसे बक-

रीका अथवा गौका शीतल दुग्ध आठ तोले परिमाण पान करे। अब इस सिद्धघृतके गुणोंको कहते हैं सावधान होकर सुनो। इस घृतके प्रसादसे हीजडा पुरुषभी वन्ध्यास्त्रीमें पुत्र उत्पन्न करसकता है। जो स्त्री रजोदोषसे या योनि-रोगसे पीडित हो अथवा जो पुरुष वीर्यदोषसे दुःखित हो जो स्त्री ऋतुमती न होती हो या जिसके ऋतुकालमें पीडा होती हो,जिसके वारबार सन्तान होकर मरजाती हो वा मरीहुई हो तथा अनेकप्रकारकी औषधियोंके प्रयोगसे अथवा यन्त्र, मन्त्रादिके करनेसे और नानाप्रकारके कठिन व्रतादिकोंके करनेसेभी जिनके पुत्र उत्पन्न नहीं होता हो उनके इस घृतको पान करनेसे कामदेवकी समान और दीर्घायुषी पुत्र उत्पन्न होते हैं। जिसके घरमें यह घृत हो उसको वज्रसे भय नही करना चाहिये। उसका बालक राक्षस और पिशाचादिकोंसे ग्रसित नहीं होता एवं सर्पभी उसके घरमें भयसे प्रवेश नहीं करता॥५९-७८॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां योनिव्यापच्चिकित्सा॥

लोमशातनविधि।

हरितालचूर्णकाणिका लेपात्ततेन वारिणा सद्यः।
निपतन्ति लोमनिचयाः कौतुकमिदमद्भुतं मन्ये॥ १॥

हरिताल और चूनेको गरम पानीमें मिलाकर लेप करनेसे तत्काल बाल गिरजाते हैं। इसको मैं अद्भुत कौतुक मानता हूँ॥ १॥

दग्ध्वा शङ्खं क्षिपेद्रम्भास्वरसे तच्च पेषितम्।
तुल्यालं लेपनं हन्ति लोमं गुह्यादिसम्भवम्॥ २॥

शङ्खको दग्धकर उसकी भस्मको केलेके स्वरसमें या गुडके रसमें डालकर और शङ्खभस्मकी बराबर हरितालका चूर्ण डालकर पीसकर लेप करनेसे गुह्य-स्थानोंके बाल गिरजाते हैं॥ २॥

रक्ताञ्जनपुच्छचूर्णं युक्तं तैलन्तु सार्षपम्।
सप्ताहमूषितं हन्ति मूलाद्रोमाण्यसंशयम्॥ ३॥

लाल अञ्जनीकी पुच्छके चूर्णको सरसोंके तेलमें७दिनतक भिजोकर रक्खे। फिर उसको पीसकर लेप करनेसे जडसहित बाल गिरजाते हैं॥ ३॥

पलाशभस्मान्विततालमूलैरम्भाम्बुमिश्रैरुपलिप्य भूयः।
कन्दर्पगेहे मृगलोचनानां रोमाणि रोहन्ति कदापि नैव॥४॥

ढाककी छालकी भस्म और हरिताल इन दोनोंको बराबर भाग लेकर

केलेकी जडके रसमें पीसकर लेप करनेसे स्त्रियोंकी योनिपर कभी भी रोम उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ ४ ॥

एकः प्रदेयो हरितालभागः पञ्च प्रदेया जलजस्य भागाः। रक्षन्तरोर्भस्मन एव पञ्च प्रोक्ताश्च भागाः कदलीजलार्द्राः ॥ ५ ॥ संमिश्रय पात्रेषु सप्ताहमात्रं कृत्वा स्मरागारविलेपनञ्च। रोमाणि सर्वाणि विलासिनीनां पुनर्न रोहन्ति कदाचिदेव ॥ ६ ॥

हरिताल १ भाग, शंखभस्म ५ भाग और ढाककी छालकी भस्म ५ भाग इन सबको यथाविधि लेकर केलेके रसमें एकत्र खरल करके किसी बर्त्तनमें भरकर ७ दिनतक रक्खा रहनेदेवे। रोमस्थानपर उसका लेप करे तो विलासिनी स्त्रियोंके बाल गिरजाते हैं। फिर आजन्म कदापि बाल उत्पन्न नहीं होते ॥ ६ ॥

रम्भाजले सप्तदिनं विभाव्य भस्मानि कम्बोर्मसृणानि पश्चात्। तालेन युक्तानि विलेपनेन लोमानि निर्मूलयति क्षणेन ॥ ७ ॥

शंखभस्म और हरितालको समानभाग ले केलेके रसमें सात दिनतक भावना देकर फिर उसका लेप करे तो क्षणमात्रमेंही सब बाल निर्मूल होजाते हैं॥७॥

कुसुम्भतैलाभ्यङ्गो वा रोम्नामुत्पाटकोऽन्तकृत् ॥

कुसुम्भ (कसूम) के तेलकी मालिश करनेसे रोमकूप नष्ट होते हैं ॥

कर्पूरभल्लातकशङ्खचूर्णं क्षारो यवानाञ्च मनःशिला च ।
तैलं सुपक्कं हरितालमिश्रं रोमाणि निर्मूलयति क्षणेन ॥ ८ ॥

कपूर, भिलावे, शंखभस्म, जवाखार और मैनसिल इन सबके चतुर्थांश कल्कद्वारा १ सेर कडवे तेलको पकाकर उसमें हरितालका चूर्ण मिश्रित करलेवे। फिर उस तेलका लेप करे तो तत्क्षण समस्तरोम समूल नष्ट होजाते हैं ॥

आरग्वधाद्यतैल।

आरग्वधमूलपलं कर्ष द्वितीयं शङ्खचूर्णकम्।
हरितालस्य च खरजे मूत्रप्रस्थेन कटुतैलम् ॥ ९ ॥
पक्कं तैलं तदथ शंखहरितालचूर्णितं लेपात्।
निर्म्मूलयति रोमाण्यन्येषां सम्भवो नैव ॥ १० ॥

अमलतासकी जड चार तोले, शंखभस्म दो तोले और हरिताल दो तोले इनके कल्कद्वारा एक प्रस्थ गधेके मूत्रमें एक सेर कडवे तेलको विधिपूर्वक

पकावे । फिर उस तेलमें शङ्खभस्म और हरितालका चूर्ण दो दो तोले मिलाकर उसका लेप करनेसे सकल रोम निर्मूल होते हैं । यह कोई असम्भव नहीं ॥

क्षारतैल ।

शुक्तिशम्बूकशङ्खानां दीर्घवृन्तात्समुष्ककात् ।
दग्ध्वा क्षारं समादाय खरमूत्रेण गालयेत् ॥ ११ ॥
खाराष्टभागं विपचेत्तैलं वै सार्षपं बुधः ।
इदमन्तःपुरे देयं तैलमात्रेयपूजितम् ॥ १२ ॥
बिन्दुरेकः पतेद्यत्र तत्र लोमापुनर्भवाः ।
मदनादिव्रणे तैलमश्विभ्यां परिकीर्त्तितम् ॥ १३ ॥
अर्शसां कुष्ठरोगाणां पामादद्रुविचर्चिकाम् ।
क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं सर्वक्लेदरुजापहम् ॥ १४ ॥

सीपी, घोंघा, शंख, शोनापाठा और मोखा इन सबको समानभाग लेकर अन्तर्धूमकी विधिसे दग्धकर क्षार करलेवे । उस क्षारको एक सेर प्रमाण लेकर अठगुने गधेके मूत्रमें भावना देकर २१ बार उस क्षार जलको टपकावे । पश्चात् उक्त क्षारजलके द्वारा सरसोंके तेलको यथाविधि सिद्ध करे । यह तेल आत्रेय-करके पूजित है । इसको अन्तःपुरमें लोमनाशनार्थ देना चाहिये । इस तेलकी एक बूँद जिस किसी स्थानमें गिरजाती है फिर वहाँ बाल उत्पन्न नहीं होते । इस तेलको अश्विनीकुमारोंने निर्म्माण किया है । यह क्षार तेल मदनादि व्रण रोगमें प्रयोग करना चाहिये । यह बवासीर, कोष्ठ, खुजली, दाद, विचर्चिका और सर्व प्रकारके क्लेदयुक्त रोगोंको नष्ट करनेके लिये सर्वोत्तम है॥११-१४॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां लोमशातनविधिः ।

वन्ध्याकी चिकित्सा ।

पुष्योद्धृतं लक्ष्मणायाश्चकङ्गायास्तु कन्यया ।
पिष्टं शूलं दुग्धघृतं पीतमृतौ तु पुत्रदम् ॥ १ ॥

पुष्यनक्षत्रमें लक्ष्मणाकी मूलको उखाडकर उसको घीग्वारके रसमें पीसकर दुग्ध और घृतके साथ मिश्रित करके ऋतुकालमें स्नानानन्तर पान करनेसे , पुत्रोत्पत्ति होती है ॥ १ ॥

सुवर्णस्य रूप्यकस्य चूर्णे ताम्रस्य चाज्यसंमिश्रे ।
पीते शुद्धे क्षेत्रे भेषजयोगाद्भवेद्गर्भः ॥ २ ॥

रजःस्वला स्त्री स्नान करके सुवर्णभस्म, रूप्यकभस्म और ताम्रभस्मको घृतमें मिलाकर सेवन करे तो इससे गर्भोत्पत्ति होती है ॥ २ ॥

कृत्वा शुद्धौ स्नानं विलङ्घ्य दिवसान्तरे ततः प्रातः ।
स्नात्वा द्विजाय दत्त्वा भक्त्या सम्पूज्य लोकनाथेशम् ॥३॥
श्वेतबलाङ्घ्रियष्टिकं कर्षं पलन्तु शर्करायाः ।
पिष्टैकवर्णजीवद्वत्साया गोस्तु दुग्धेन ॥ ४ ॥
समधिकघृतेन पेयं नात्र दिने देयमन्यञ्च ।
समदिवसे शुभयोगे दक्षिणपार्श्वावलम्बिनी धीरा ॥५॥
त्यक्तस्त्यन्तरसङ्गप्रहृष्टमनसोऽतिवृद्धधातोश्च ।
पुरुषस्य सङ्गममात्राल्लभते पुत्रं ततो नियतम् ॥ ६ ॥

ऋतुमती स्त्री ऋतुकालके तीन दिनोंको बिताकर चौथे दिन शुद्ध स्नान करके व्रत करे । फिर पाँचवें दिन प्रातःसमय भगवान्‌का पूजनकर और ब्राह्मणोंको दान देकर सफेद खिरैंटीकी जड दो तोले, मुलैठी २ तोले और मिश्री ४ तोले इनको एकत्र पीसकर एकवर्ण और जीवितवछडेवाली गौके दूधमें बराबर भागसे कुछ अधिक घी और उक्त औषधिको मिलाकर पान करे । उस दिन और किसी प्रकारके खाद्यको भक्षण नहीं करे केवल दूध भात खावे। इसके अनन्तर समातिथि और शुभयोगमें दहिने भागसे स्थित होकर धैर्यचित्ता स्त्री बलवान् प्रसन्नचित्तवाले पतिके साथ समागम करे। इस योगके प्रभावसे पुरुषके सङ्गम करतेही निश्चय गर्भ रहजाता है और पुत्रकी प्राप्ति होती है३–६

गोष्ठजातवटस्य प्रागुत्तरशाखाभवे शुभे ।
शुङ्गे माषौ तथा गौरसर्षपौ दधियोजितौ ॥
पुष्यापीतौ द्रुतापन्नसत्त्वायाः पुत्रकारकौ ॥ ७ ॥

बडके वृक्षकी ईशान कोणमें स्थित शाखाके दो अंकुर, उडद दो और सफेद सरसोंके दाने दो इनको एकत्र पीसकर दहीमें मिलाकर पुष्यनक्षत्रमें पानकरनेसे पुत्रजन्म होता है ॥ ७ ॥

पत्रमेकं पलाशस्य गर्भिणीपयसान्वितम् ।
पीत्वा च लभते पुत्रं रूपवन्तं न संशयः ॥ ८ ॥

स्त्री गर्भिणीके दूधमें ढाकके एक पत्रको पीसकर पीवे तो रूपवान् पुत्रको पाती है। इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥

काथेन हयगन्धायाः साधितं सघृतं पयः ।
ऋतुस्नाताबला पीत्वा गर्भं धत्ते न संशयः ॥ ९ ॥

असगन्धकी जडके काथके साथ घृत मिलाकर दूधको सिद्ध करलेवे । उस दूधको ऋतुमती स्त्री स्नान करनेके अनन्तर पान करे तो निस्सन्देह गर्भको धारण करती है ॥ ९ ॥

पिप्पली शृङ्गवेरञ्च मरिचं नागकेशरम् ।
घृतेन सह पातव्यं वन्ध्यापि लभते सुतम् ॥ १० ॥

ऋतुकालमें स्नान करके पीपल,सोंठ,कालीमिरच, नागकेशर इनके समान-भाग मिश्रित चूर्णको घृतके साथ सेवनकरनेसे वन्ध्या स्त्रीभी पुत्रवती होतीहै॥

कृष्णापराजितामूलं बस्तक्षीरेण संपिबेत् ।
ऋतुस्नाता त्रिधा या तु वन्ध्या गर्भवती भवेत् ॥ ११

काली अपराजिताकी जडको बकरीके दूधमें पीसकर रजस्वला स्त्री तीन दिनतक पीवे तो वन्ध्यास्त्री गर्भवती होती है ॥ ११ ॥

काकोल्यौ लक्ष्मणामूलं तथा षष्टिकतण्डुलम् ।
नार्यैकवर्णापयसा पीत्वा गर्भवती ऋतौ ॥ १२ ॥

काकोली, क्षीरकाकोली, लक्ष्मणाकी जड और सांठीके चावल इन सबको एकत्र पीसकर एकरंगवाली गौके दूधके साथ ऋतुकालमें सेवन करनेसे वन्ध्या स्त्री गर्भवती होती है ॥ १२ ॥

गोक्षुरस्य तु बीजन्तु पिबेन्निर्गुण्डिकारसैः ।
त्रिरात्रं सप्तरात्रं वा वन्ध्या भवति पुत्रिणी ॥ १३ ॥

गोखुरूके बीजोंको निर्गुण्डीके रसमें पीसकर ऋतुस्नानके पश्चात् तीन दिन अथवा सात दिनतक पान करे तो बाँझ स्त्री पुत्रवती होती है ॥ १३ ॥

पुष्यार्कयोगोद्धृतलक्ष्मणाया मूलं तथा वज्रतरोश्च पिष्ट्वा ।
अप्येकवर्णापयसा निपीतं स्त्रियः स्मृतं पुत्रकरं मुनीन्द्रैः १४

पुष्यनक्षत्रयुक्त रविवारके दिन लक्ष्मणाकी जड अथवा सफेद खिरैंटीकी जडको उखाडकर एक रंगवाली गौके दूधमें पीसकर जो ऋतुमती स्त्रियें पान करें तो निश्चय पुत्र उत्पन्न होता है ऐसा मुनियोंने कहा है ॥ १४ ॥

पुष्योद्धृतं लाक्ष्मणमेव चूर्णं पुंसा निपिष्टं सघृतं निपीय ।
क्षीरौदनं प्राश्य पतिप्रसङ्गाद्गर्भं विदध्यात्तरुणी न चित्रम् ॥

पुष्यनक्षत्रमें लक्ष्मणाकी जडको उखाडकर उसका चूर्ण करलेवे । फिर

घृतमें खरल करके उसको भक्षण करे । फिर इसपर दूध भात भोजन कर पतिके साथ प्रसङ्ग करनेसे वन्ध्या स्त्री निश्चयही गर्भको धारण करती है॥१५॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वन्ध्याचिकित्सा ॥

गर्भिणीरोगकी चिकित्सा ।

प्रथमे मासि गर्भे तु यदा भवति वेदना ।
चन्दनं शतपुष्पा च शर्करा मदयन्तिका ॥ १ ॥
एतानि समभागानि पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।
पाययेत्पयसालोड्य गर्भिणीं मात्रया भिषक् ॥ २॥
तथा तिलान्पद्मकञ्च शालूकं शालितण्डुलान् ।
क्षीरेण पिष्ट्वा क्षीरेण सिता क्षौद्रान्वितेन च ॥ ३ ॥
आलोड्य पाययेन्नारीं ततः सम्पद्यते शुभम् ।
तस्मिन्सुजीर्णे दातव्यं भोजनं क्षीरसंयुतम् ॥ ४ ॥

गर्भवती स्त्रीके यदि पहले महीनेमें पीडा हो तो सफेदचन्दन, सोया, खाँड और मैनफल इनको समानभाग लेकर चावलोंके जलके साथ पीसकर और दूधमें मिलाकर उचितमात्रासे गर्भिणीको पान करावे । एवं तिल, पद्माख, भसींडा और शालिचावल इनको समभाग ले दूधमें पीसकर मिश्री और शहद मिलेहुए दूधके साथ पान करावे तो उक्त वेदना दूर होती है । औषधिके पच-जानेपर स्त्रीको दुग्धमिश्रित अन्नका भोजन कराना श्रेष्ठ है ॥ १-४ ॥

द्वितीये मासि गर्भे तु यदा भवति वेदना ।
तदोत्पलस्य कल्कन्तु शृङ्गाटककशेरुकम् ॥ ५ ॥
तण्डुलोदकपिष्टन्तु पाययेत्तण्डुलाम्बुना ।
निवार्य गर्भशूलञ्च स्थिरं गर्भं करोति च ॥ ६ ॥

यदि द्वितीय मासमें अकस्मात् गर्भिणीके वेदना उत्पन्न हो तो कमल सिंघाडा और कसेरू इनको समानांश ले चावलोंके जलमें पीसकर चावलोंके जलके साथ पान करनेसे गर्भशूल दूर होकर गर्भ स्थिर हो जाता है ॥५॥६॥

तृतीये क्षीरकाकोली काकोल्यामलकीफलम् ।
पिष्टमुष्णोदकेनैतत् पाययेद्गर्भिणीं भिषक् ॥ ७ ॥
शाल्यन्नं पयसा जीर्णे भोजयेदनुगर्भिणीम् ।
तथा पद्मोत्पलं कुष्ठं शालूकञ्च समांशिकम् ॥ ८ ॥

सितोदकेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणालोड्य पाययेत् ।
तेन शूलं निवर्त्तेत न गर्भो व्यथते ध्रुवम् ॥ ९ ॥

तीसरे महीनेमें गर्भवती स्त्रीके पीडा उत्पन्न हो तो वैद्य, क्षीरकाकोली, काकोली और आमले इनको समानभाग लेकर गरम जलके साथ पीसकर उक्त स्त्रीको पान करावे और औषधिके पचजानेपर शालिचावलोंका भात दूधके साथ भोजन करावे। अथवा नीलकमल, पद्माख, कूठ और असींडा इनको बराबरभाग ले मिश्रीके शर्बतद्वारा पीसकर दूधमें मिलाकर पान करावे। इस प्रकार करनेसे उपर्युक्त पीडा शान्त होजाती है फिर गर्भ व्यथित नहीं होते९

चतुर्थे तु विधानज्ञः पाययेदिदमौषधम् ।
पिष्ट्वोत्पलञ्च शालूकं कण्टकारीं त्रिकण्टकम् ॥ १० ॥
यथाग्निमात्रया काले गर्भिणीं पयसा सह ।
तथा गोक्षुरकं सिंही बालकं नीलमुत्पलम् ॥
पिष्ट्वा क्षीरेण पातव्यं गर्भशूलनिवारणम् ॥ ११ ॥

चौथे महीनेमें गर्भिणीके पीडा होनेपर वैद्य नीलकमल, असींडा, कटेरी और गोखुरू इन औषधियोंको समानभाग लेकर सबको दूधमें खरल करके अग्निका बलाबल विचारकर उचितमात्रासे प्रातःसमय गर्भिणीस्त्रीको पान करावे। एवं गोखुरू, कटेरी, सुगन्धवाला और नीलकमल इनको एकत्र दूधमें पीसकर पान करानेसेभी गर्भका शूल निवृत्त होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

पञ्चमे मासि गर्भे तु यदा भवति वेदना ।
तत्र नीलोत्पलं वीरां पिष्ट्वा क्षीरेण पाचनम् ॥ १२ ॥
घृतक्षौद्रान्वितं पीत्वा गर्भस्य च रुजं हरेत ।
तथा नीलोत्पलं नारीं काकोलीं समभागिकाम् ॥ १३ ॥
शीततोयेन पिष्ट्वा च क्षीरेणालोड्य पाययेत् ।
अनेन विधिना गर्भः स्थिरः स्याद्रुक्प्रशाम्यति ॥ १४ ॥

जो पाँचवें महीनेमें गर्भवतीके गर्भवेदना हो तो नीलकमल और क्षीरकाकोली इनको दूधके साथ पीसकर घृत और शहदमें मिलाकर पान करानेसे गर्भकी पीडा दूर होती है। तथा नीलकमल घीगवार और काकोली इन तीनोंको समानभाग लेकर शीतलजलके साथ पीसकर और दूधमें मिलाकर गर्भवती स्त्रीको पान करावे। इससे गर्भ स्थिर होजाता है, समस्त पीडा शमन होतीहै॥ १४

षष्ठे मासि यदा गर्भे वेदना जायते तदा ।
मातुलुङ्गस्य बीजानि प्रियङ्गुं चन्दनोत्पलम् ॥
क्षीरेणालोड्य पातव्यं गर्भशूलनिवारणम् ॥ १५ ॥
तथा पियालबीजानि मृद्वीका लाजसक्तवः ।
एतत्सुशीतलं काले पीत्वा च सुखमश्नुते ॥ १६ ॥

यदि छठे मासमें गर्भिणीके वेदना हो तो बिजोरेनींबूके बीज, फूलप्रियंगु, लालचन्दन और नीलकमल समानभाग मिश्रित इनको एकत्र पीसकर दूधके साथ मिलाकर पीवे । अथवा चिरौंजी, दाख और खीलोंके सत्तू शीतल दूधमें पीसकर प्रातःसमय पीवे तो गर्भकी पीडा दूर होती है और सुख प्राप्त होताहै॥

सप्तमे शतपुत्रीश्च मृणालसहितं पिबेत् ।
पिष्ट्वा क्षीरेण शूलार्त्ता गर्भिणी या सुखार्थिनी ॥१७॥
कपित्थक्रमुकान्मूलं सलाजं शर्करायुतम् ।
शीततोयेन संपिष्टं क्षीरेणालोड्य पाययेत् ॥
पीत्वा हन्त्यबला शीघ्रं शूलं गर्भसमुद्भवम् ॥ १८ ॥

सातवें महीनेमें गर्भकी पीडासे पीडित, सुखकी इच्छा करनेवाली गर्भवती स्त्री शतावर और भसींडेको समानभाग ले दूधमें पीसकर अथवा कैथकी जड, सुपारीकी जड, खीलें और चीनी इनको बराबर लेकर शीतल जलमें पीसकर दूधमें मिश्रित करके पान करे तो गर्भजन्यशूल शीघ्र नष्ट होताहै ॥१७॥१८॥

अष्टमे तु यदा मासे गर्भे भवति वेदना ।
तदा पिष्ट्वा तु धन्याकं पाययेत्तण्डुलाम्बुना ॥
शूलं निवर्त्तते तेन गर्भः संधार्यते स्त्रियः ॥ १९ ॥
एवं पलाशस्य दलं सुपिष्टं संपीय तोयेन सुशीतलेन ।
अत्यन्तघोराष्टममासगर्भव्यथातुरायान्तिसुखंतरुण्यः ॥

आठवें महीनेमें गर्भिणीस्त्रीके किसीप्रकारकी पीडा हो तो उसको धनियाँ चावलोंके जलमें पीसकर पान कराना चाहिये । इससे पीडा दूर होती है और गर्भ स्थिर होजाता है । एवं ढाकके पत्तोंको शीतल जलमें पीसकर पीनेसे आठवें महीनेकी अत्यन्त घोर पीडासे दुःखित स्त्रियें तत्काल आनन्दित होती हैं ॥

गर्भिण्या नवमे मासे यदा भवति वेदना ।
एरण्डमूलं काकोलीं पिष्ट्वा शीतोदकेन च ॥ २१ ॥

पीत्वा शूलाद्विमुच्येत तदा नारी न संशयः ।
तथा पलाशबीजञ्च सकाकोली कुरुण्टकम् ॥
भक्तेन वारिणा पिष्ट्वा गर्भशूलं व्यपोहति ॥ २२ ॥

नववें महीनेमें जो गर्भवती स्त्रीके वेदना हो तो अण्डकी जड काकोलीको समानभाग लेकर शीतल जलमें खरल करके पान करावे तो वह स्त्री निश्चय उक्त पीडासे मुक्त होजाती है। अथवा ढाकके बीज, काकोली और पीलीकटसरैया इनको काँजीमें पीसकर पान करे तो गर्भगत शूल दूर होताहै॥२१॥२२

अथवा दशमे मासि वेदना जायते यदा ।
तथा नीलोत्पलं यष्टिमधुकं मुद्गसंयुतम् ॥ २३ ॥
ससिता चाम्भसा पिष्ट्वा क्षीरेणालोड्य पाययेत् ।
दोषश्च नाशयेदेषा शूलं गर्भसमुद्भवम् ॥ २४ ॥

दसवें महीनेमें यदि गर्भिणीके अकस्मात् पीडा उत्पन्न होजाय तो उसको नीलकमल, मुलैठी, मूँग और मिश्री ये औषधियाँ समानभाग लेकर शीतल जलमें पीसकर और दूधमें मिलाकर पिलानी चाहिये। इससे गर्भोत्पन्नशूल और तत्सम्बन्धी दोष नष्ट होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

तथा चैकादशे मासि गर्भे भवति वेदना ।
मधुकं पद्मकञ्चैव मृणालं नीलमुत्पलम् ॥ २५ ॥
शीततोयेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणालोड्य पाययेत् ।
तेनैव वेदनातीव नाशमायाति सत्वरम् ॥ २६ ॥
क्षीरिकामुत्पलं कुष्ठं समङ्गामूलकं सिताम् ।
पिबेदेकादशे मासि गर्भिणी शूलशान्तये ॥ २७ ॥

ग्यारहवें महीनेमें जो गर्भमें पीडा हो तो उसमें मुलैठी, पद्माख, कमलकी नाल और नीलकमल ये औषधियें समानांश मिलित ले शीतल जलमें पीसकर और दूधमें मिलाकर गर्भिणी स्त्रीको पान करावे। इससे उक्त मासकी दारुण पीडा तत्काल शमन होती है। तथा गर्भशूलको निवारण करनेके लिये गर्भवती स्त्री क्षीरकाकोली, नीलाकमल, कूठ, वराहक्रान्ताकी जड और मिश्री इनको एकत्र पीसकर दूधके साथ मिलाकर पान करे ॥ २५–२७ ॥

सिता विदारी काकोली तथा क्षीरविदारिका ।
गर्भिणी द्वादशे मासि पिबेच्छूलघ्नमौषधम् ॥ २८ ॥

बारहवें महीनेमें गर्भवाली स्त्री गर्भकी पीडाको निवारणार्थ मिश्री विदारीकन्द, काकोली और क्षीरकाकोली इन औषधियोंको समानभाग लेकर जलमें पीसकर पान करे ॥ २८ ॥

मधुकं शाकबीजञ्च पयसा सुरदारु च ।
अश्मन्तकं कृष्णतिलस्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ २९ ॥
वृक्षादनी पयस्या च तथैवोत्पलशारिवा ।
अनन्तशारिवा रास्ना मधुकं पद्ममेव च ॥ ३० ॥
बृहतीद्वयकाश्मर्यक्षीरिशुङ्गास्त्वचो बिसम् ।
पृथक्पर्णी बला शिग्रु श्वदंष्ट्रा मधुयष्टिका ॥ ३१ ॥
शृङ्गाटकं बिसं द्राक्षा कशेरु मधुकं सिता ।
मासेषु सप्तयोगाः स्युरर्द्धश्लोकसमापकाः ॥
यथाक्रमं प्रयोक्तव्या गर्भस्रावे पयोऽन्विताः ॥ ३२ ॥

पहले महीनेमें—मुलैठी, सागौनके बीज, क्षीरकाकोली और देवदारु इनको समानभाग लेकर जलमें पीसकर दूधके साथ पान करावे। एवं दूसरे महीनेमें—अस्लोट, कालेतिल, मंजीठ और शतावरको तीसरे महीनेमें—बाँदा, क्षीरकाकोली,नीलकमल और अनन्तमूल चौथे महीनेमें—अनन्तमूल,श्यामालता,रास्ना, कमलनाल और मुलैठी पाँचवें महीनेमें—बडीकटेरी, कटेरी, कुम्भेर, बडादिक्षीरिवृक्षोंके अंकुर और छाल तथा भसींडा. छठे महीनेमें—पिठवन, खिरैंटी, सहिंजना, गोखुरू और मुलैठी । सातवें महीनेमें—सिंघाडा, भसींडा, दाख, कसेरू, मुलैठी और मिश्री ये सात प्रयोग आधे आधे श्लोकोंमें जो समाप्त किये गये हैं इनकी प्रत्येक औषधिको समान भाग लेकर जलमें बारीक पीसकर दूधके साथ मिलालेवे । फिर इनमेंसे हरएक प्रयोग प्रत्येक मासमें क्रमानुसार उत्तम रीतिसे सात महीनेतक गर्भिणी स्त्रीको सेवन करावे । ये प्रयोग गर्भस्रावमें अत्यन्त हितकारी हैं ॥ २९–३२ ॥

कपित्थबिल्वबृहतीपटोलेक्षुनिदिग्धिकाः।
मूलानि क्षीरपिष्टानि दापयेद्भिषगष्टमे ॥ ३३ ॥

आठवें महीनेमें—गर्भस्राव हो तो वैद्य कैथकी जड, बेलकी जड, बडी कटेरीकी जड, परबल, ईखकी जड और कटेरीकी जड इन सबको दूधमें पीसकर गर्भिणीस्त्रीको सेवन करावे । इससे गर्भस्राव होना दूर होता है ॥३३॥

नवमे मधुकानन्तापयस्याशारिवाः पिबेत् ॥ ३४ ॥

नववें महीनेमें—गर्भपतित होता जान पडे तो गर्भवती स्त्री मुलैठी, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली और उसवा इन सबको समानभाग लेकर एकत्र पीसकर दूधके साथ पानकरे तो गर्भस्राव होना दूर होता है ॥ ३४ ॥

पयस्तु दशमे शुण्ठ्याः शृतं शीतं प्रशस्यते ।
सक्षीरा वा हिता शुण्ठी मधुकं देवदारु च ॥
एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक् च प्रशाम्यति ॥ ३५ ॥

दशवें महीनेमें—सोंठ एक तोला और दूध ८ तोले लेकर ३२ तोले जलमें पकावे। जब पकते पकते दूधमात्र शेष रहजाय तब उस दूधको शीतलकर पान करावे अथवा सोंठ, मुलैठी और देवदारु इनको समानभाग लेकर इनके द्वारा उक्तविधिसे दूधको पकाकर और शीतल करके गर्भिणीस्त्री पान करे तो गर्भस्राव होना और उसकी तीव्र पीडा शमन होती है ॥ ३५ ॥

कुशकाशोरुबूकानां मूलैर्गोक्षुरकस्य च ।
शृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलनुत्परम् ॥ ३६ ॥

कुशा, काँस, अण्ड और गोखुरू इनकी जडोंको समानभाग मिलित दो तोले लेवे । फिर इनके द्वारा आठ तोले दूधको ३२ तोले जलमें पकावे। जब दूध मात्र अवशिष्ट रहजाय तब शीतल होनेपर मिश्री डालकर गर्भिणीको पान करावे । इससे गर्भशूल निवारण होता है ॥ ३६ ॥

कशेरुशृङ्गाटकजीवनीयैः पद्मोत्पलैरण्डशतावरीभिः ।
सिद्धं पयः शर्करया विमिश्रं संस्थापयेद्गर्भमुदीर्णवेगम् ॥ ३७ ॥

कसेरु, सिंघाडे, जीवनीयगणकी औषधियें, कमलकेशर, नीलोफर, अण्डकी जड और शतावर इनके द्वारा विधिपूर्वक दूधको सिद्धकर उसमें मिश्री मिलाकर शीतल करके गर्भवतीस्त्रीको पान करावे तो इससे गर्भपातका दारुण वेग रुक जाता है और गर्भ स्थिर होजाता है ॥ ३७ ॥

कशेरुशृङ्गाटकपद्मकोत्पलं समुद्गपर्णी मधुकं सशर्करम् ।
सशूलगर्भस्रुतिपीडिताङ्गना पयोविमिश्रं पयसान्नभुक् पिबेत्

कसेरु, सिंघाडे, पद्माख, नीलकमल, मुगवन, मुलैठी और मिश्री इनको समानभाग लेकर सबको एकत्र पीसकर दूधके साथ पानकरे और दूध, भातका भोजन करे तो गर्भस्रावकी पीडासे पीडित स्त्री सुखी होती है ॥ ३८ ॥

गर्भे शुष्के तु वातेन बालानाञ्चापि शुष्यताम् ।
सितामधुककाश्मर्य्यैर्हितमुत्थापने पयः ॥ ३९ ॥

वातदोषके कारण गर्भिणी अथवा गर्भमें बालक सूखता हो तो मुलैठी और कुम्भेरके कल्कद्वारा दूधको पकाकर शीतल होजानेपर उसमें मिश्री डालकर पीना हितकारी है । इससे गर्भ पुष्ट होता है ॥ ३९ ॥

आम्रजम्बुत्वचः क्वाथं लेहयेल्लाजसक्तुभिः ।
अनेन लीढमात्रेण गर्भिणी ग्रहणीं जयेत् ॥ ४० ॥

आमकी छाल और जामुनकी छाल इनके क्वाथको यथाविधि बनाकर उसमें खीलोंके सत्तुओंको मिलाकर चाटनेसे ही गर्भिणीकी संग्रहणी दूर होतीहै

"अत्र सामान्यज्वरोक्ताः कषायाश्च बुद्ध्वा देयाः ।"
सिंहास्यादिर्गुडूच्यादिः पञ्चमूलीरसोऽपि वा ।
मधुना शमयन्त्येते गर्भिण्या ज्वरमाशु च ॥ ४१ ॥

गर्भिणीस्त्रीको ज्वर हो तो सामान्यज्वरमें कहेहुए क्वाथ विचार पूर्वक देवे । ज्वराधिकारोक्त सिंहास्यादि, गुडूच्यादि अथवा पञ्चमूली आदिके क्वाथको शहदके साथ किम्वा पञ्चमूलके द्वारा सिद्धकियाहुआ शीतल दूध गर्भवती स्त्रीको पान करावे । ये सब ज्वरको तत्काल नष्ट करते हैं ॥ ४१ ॥

रोमराजीभवेद्यस्या वामपार्श्वे समुच्छ्रिता ।
कन्या तस्या विजानीयाद्दक्षिणे च तथा सुतम् ॥४२॥

जिस गर्भिणीस्त्रीके वाईं पसलीमें रोमपंक्ति उत्पन्न हो उसके कन्या और जिसके दहिनी पसलीमें रोम उत्पन्न हों उसके पुत्र होना जानना चाहिये ४२॥

धन्वन्तरिमतेनैव साध्वाज्ञातश्च शास्त्रवित् ।
सम्प्राप्ते चाष्टमे मासे मैथुनं परिवर्जयेत् ॥ ४३ ॥
यदि गच्छति दुर्मेधाः काममोहादचेतनः ।
विपद्यते तदा गर्भो गर्भिणी च विनश्यति ॥
अन्धमूकादिबधिरो जायते कुब्ज एव वा ॥ ४४ ॥

धन्वन्तरिके मतसे शास्त्रके जाननेवाला विद्वान् आठवें महीनेके उपस्थित होनेपर मैथुनको सर्वथा त्यागदेवे । यदि दुष्टबुद्धि पुरुष कामके मोहसे असावधान होकर स्त्रीके पास गमन करता है तो गर्भ और गर्भिणी दोनों नष्ट हो जाते हैं । अथवा अन्धी, गूँगी, बहिरी और कुबडी सन्तान होती है ॥४४॥

पाठालाङ्गलिसिंहास्यमयूरकजटैः पृथक् ।
नाभिवास्तिभगालेपात्सुखं नारी प्रसूयते ॥ ४५ ॥

पाढ, कलिहारीकी जड, अडूसेकी जड और चिरचिटेकी जटा इनमेंसे किसीएक वस्तुको पीसकर गर्भिणीकी नाभि, वस्ति और भगमें लेपकरनेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ ४५ ॥

मातुलुङ्गस्य मूलानि मधुकं मधुसंयुतम् ।
घृतेन सह पातव्या सुखं नारी प्रसूयते ॥ ४६ ॥

विजौरेनींबूकी जड और मुलैठीको पीसकर शहद और घीके साथ मिलाकर गर्भिणीको पानकरानेसे सुखसे प्रसव होता है ॥ ४६ ॥

सर्वपञ्चदशं द्विस्तु त्रिंशकं नवकोष्ठके ।
नाडीऋतुवसुभिः सहपक्षादिगष्टादशभिरेव च ॥
अर्कभुवनाब्धिसहितैरुभयत्रिंशकमाश्चर्यम् ॥ ४७ ॥
अथोभयपञ्चदशकं दर्शयेत्—
यथा वसुगुणाब्ध्येकबाणनवषट्सप्तयुगैः क्रमात ।
उभयोरेकतरं शरावे लिखित्वा प्रदर्शयेत् ॥ ४८ ॥

जब प्रसवकालमें जीवितगर्भके प्रसवहोनेमें विलम्ब हो तो गर्भिणी स्त्रीको उल्लिखित उभय पञ्चदशक उभय त्रिंशकयन्त्र नवीन सकोरेमें लिखकर दिखावे। प्रथम नौ कोठोंमें लिखित वसु ८, गुण ३, वेद ४, इन्दु १, बाण ५, अंक९, षडानन ६, समुद्र ७ मिथुन २ इन,अङ्कोंवाला कोष्ठक उभय पञ्चदशक और दूसरे नव कोष्ठकमें लिखित नाडी १६,ऋतु ६,वसु८, पक्ष२, दिशा, १०, अङ्क १८, आदित्य १२, भुवन १४, और समुद्र ४ अङ्कोंवाला यन्त्र उभयत्रिंशक कहलाताहै। ये दोनों आश्चर्यप्रद यन्त्र अलग अलग सकोरेमें लिखकर दिखावे और निम्नलिखित श्लोकका पाठकरे ॥

उभयपञ्चदशक.

८	३	४
१	५	९
६	७	२

उभयत्रिंशक.

१६	६	८
२	१०	१८
१२	१४	४

प्रसवमंत्र ।

गङ्गाया उत्तरे तीरे जम्भलानाम राक्षसी ।
तस्याः स्मरणमात्रेण सद्यो नारी प्रसूयते ॥ ४९ ॥

श्रीगङ्गाजीके उत्तरीय तटपर जम्भलानामवाली राक्षसी है। उसके स्मरण करनेसे स्त्रीकी तत्काल सन्तान उत्पन्न होती है।ऊपरलिखे यन्त्रोंकी क्रिया और श्लोक पाठ किसी सदाचारी और विद्वान् ब्राह्मण द्वारा करना चाहिये ॥४९॥

गृहाम्बुना गृहधूमपानं गर्भापकर्षणम् ॥ ५० ॥

काँजीके साथ घरके धूमको पानकरनेसे विघ्नरहित शीघ्र प्रसव होता है ॥

पुटदग्धसर्पकञ्चुकमसृणमसीकुसुमसारसहिताक्षि ।
झटिति विशल्या जायते गर्भिणी मूढगर्भापि ॥ ५१ ॥

साँपकी कैंचलीको अन्तर्धूमकी रीतिसे दग्ध करके उस भस्मको शहदमें मिलाकर गर्भवती स्त्रीके नेत्रोंमें आँजनेसे मूढगर्भभी तत्काल उत्पन्न होताहै ॥

स्नुहीक्षीरं तथा स्तोकं गर्भिण्याः शिरसि क्षिपेत् ।
मृतगर्भं तथा सूते गर्भिणी रमणी द्रुतम् ॥ ५२ ॥

गर्भिणीस्त्रीके शिरपर थोडासा थूहरका दूध डाले तो मृतगर्भ विनाक्लेशके बहुतजल्द प्रसव होजाता है ॥ ५२ ॥

गृहाम्बुना हिङ्गुसिन्धुपानं गर्भापकर्षणम् ॥

काँजीके साथ हींग और सैंधनमकको मिलाकर पानकरनेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥

करिदमनदहनमूलं पिष्टं सलिलेन पीतं सद्यः ।
चिरमचिरजं गर्भं मृतममृतं वा निपातयति ५३ ॥

नागदौनकी जड और चीतेकी जड इन दोनोंको जलमें पीसकर पीनेसे (पूर्णगर्भा या अपूर्णगर्भा) स्त्रीके मृत अथवा जीवित सन्तान निर्विघ्नतापूर्वक शीघ्र पतित होती है ॥ ५३ ॥

पोतकीमूलकल्केन तिलतैलयुतेन वा ।
योनेरभ्यन्तरं लिप्त्वा सुखं नारी प्रसूयते ॥ ५४ ॥

पोईशाककी जडको तिलके तेलमें पीसकर स्त्रीकी योनिके भीतर लेप करनेसे स्त्री सुखपूर्वक प्रसववती होती है ॥ ५४ ॥

वातेन गर्भसंकोचात्प्रसूतीसमयेऽपि वा ।
गर्भं न जनयेन्नारी तस्याः शृणु चिकित्सितम् ॥५५॥
कुट्टयेन्मूसलेनैषा कृत्वा धान्यमुदूखले ।
विषमश्चाशनं पानं सेवेत प्रसवार्थिनी ॥ ५६ ॥

वायुके कारण गर्भके सङ्कोच होनेसे निर्दिष्ट समयमें सन्तान उत्पन्न न हो तो ओखलीमें मूसलसे धान कूटकर गर्भिणी स्त्रीको सेवन करावे और विषम अन्न पानका व्यवहार करावे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

प्रसवस्य विलम्बे तु धूपयेदभितो भगम्।
कृष्णसर्पस्य निर्मोकैस्तथा पिण्डीतकेन वा ॥ ५७ ॥

प्रसव होनेमें बहुत देर होजाय तो काले साँपकी कैंचली अथवा मैनफलके द्वारा योनिके चारों ओर धूप देवे ॥ ५७ ॥

ह्रीबेरातिविषामुस्तामोचशक्रैः शृतं जलम्।
दद्याद्गर्भे प्रचलिते प्रदरे कुक्षिरुज्यपि ॥ ५८ ॥

सुगन्धवाला, अतीस, नागरमोथा, मोचरस और इन्द्रजौ इनका यथाविधि क्वाथ बनाकर उसको शीतल करके चलायमानगर्भ, प्रदर और कुक्षिशूलमें पान कराना चाहिये ॥ ५८ ॥

उपकुञ्चिकां पिप्पलीं मदिरां लाभतः पिबेत्।
सौवर्चलेन संयुक्तां योनिशूलनिवारिणीम् ॥ ५९ ॥

कालाजीरा, पीपल और काला नमक इनके चूर्णको मदिरामें मिलाकर पान करनेसे गर्भवती स्त्रीकी योनिका शूल निवारण होताहै ॥ ५९ ॥

कटुतुम्ब्यहिनिर्मोककृतबोधनसर्षपैः।
कटुतैलान्वितैर्धूपो योनौ पातयतेऽमराम् ॥ ६० ॥

कडवीतोंबी, साँपकी कैंचली, तोरईके फल और सरसों इनको सरसोंके तेलमें मिलाकर इनके द्वारा योनिमें धूपदेवे तो इससे अमरा पतित होती है॥

कचवेष्टितयाङ्गुल्या घृष्टे कण्ठे पतत्यमरा।
मूलेन लाङ्गलिकायाः सँल्लिप्ते पाणिपादे च ॥ ६१ ॥

अंगुलिमें गार्भिणीके वालोंको लपेटकर उससे कण्ठमें घर्षण करे तो जेर गिरजाती है। अथवा कलिहारीकी जडको पीसकर हाथ, पैरोंमें मलनेसे जेर आदि पतित होती है ॥ ६१ ॥

अमरापतनं मद्यैः पिप्पल्यादिरजः पिबेत्।
शालिमूलाक्षमात्रं वा मद्येनाम्लेन वा प्लुतम्॥ ६२ ॥

पिप्पल्यादिगणकी औषधियोंके चूर्णको मदिराके साथ पान करनेसे अथवा शालिधानोंकी जडको दो तोले लेकर मद्य या काँजीमें मिलाकर पीनेसे जेर पतित होजाती है ॥ ६२ ॥

एरण्डादि।

एरण्डमूलममृता माञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम्।
दारुपद्मयुतः क्वाथो गर्भिण्या ज्वरनाशनः ॥ ६३ ॥

अण्डकी जड, गिलोय, मंजीठ, लालचन्दन, देवदारु और पद्माख इनका काथ गार्भिणीस्त्रीके ज्वरको नष्ट करताहै ॥ ६३ ॥

मधुकादि ।

मधूकचन्दनोशीरसारिवापद्मपत्रकैः ।
शर्करामधुसंयुक्तैः कषायो गार्भिणीज्वरे ॥ ६४ ॥

मुलैठी, लालचन्दन, खस, अनन्तमूल, पद्माख और तेजपात इनके द्वारा बनायेहुए काथको शर्करा और शहदके साथ मिलाकर पान करनेसे गर्भिणीका ज्वर दूर होताहै ॥ ६४ ॥

लवङ्गादिचूर्ण ।

लवङ्गं टङ्कणं मुस्तं धातकी बिल्वधान्यकम् ।
जातीफलं सर्जकश्च शताह्वा दाडिमं तथा ॥ ६५ ॥
जीरकं सैन्धवं मोचं नीलोत्पलरसाञ्जनम् ।
अभ्रकं वङ्गकश्चैव समङ्गा रक्तचन्दनम् ॥ ६६ ॥
विश्वश्चातिविषा शृङ्गी खदिरं बालकं समम् ।
एतच्चूर्णं दापयेत संग्रहग्रहणीहरम् ॥ ६७ ॥
नानावर्णमतीसारं ज्वरश्चैव नियच्छति ।
आमरक्तातिसारघ्नं शूलशोथनिषूदनम् ॥
छागीदुग्धेन मतिमान् गार्भिणीमनुपानतः ॥ ६८ ॥

लौङ्ग, सुहागा, नागरमोथा, धायके फूल, बेलगिरी, धनियाँ, जायफल, राल, सोया, अनारका वल्कल, जीरा, सैंधानमक, मोचरस, नीलकमलकी जड, रसौत, अभ्रक, वङ्ग, वराहक्रान्ता, लालचन्दन, सोंठ, अतीस, काकडासिंगी, खैर, सुगन्धवाला इनके चूर्णको समानभाग लेकर एकत्र करलेवे। बुद्धिमान् वैद्य, गर्भिणीस्त्रीको यह चूर्ण बकरीके दूधके साथ सेवन करावे। यह स्त्रियोंकी संग्रहणी, अनेक प्रकारके अतीसार, ज्वर, आमरक्त, शूल और शोथको शीघ्र नष्ट करताहै ॥ ६५-६८

गर्भविलासरस ।

रसगन्धकतुत्थञ्च त्र्यहं जम्बीरमार्दितम् ।
त्रिभावितं त्रिकटुना देयं गुञ्जाचतुष्टयम् ॥ ६९ ॥
गर्भिण्याः शूलविष्टम्भज्वराजीर्णेषु केवलम् ।
तुत्थस्थाने यदि स्वर्णं चिन्तामणिरसः स्मृतः ॥७०॥

शोधित पारा, गन्धक और तूतिया इनको एकत्र जम्बीरीनींबूके रसमें तीन दिनतक खरल करे फिर त्रिकुटेके क्राथसें तीन बार भावना देकर चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह रस गर्भवतीस्त्रीके शूल, विष्टम्भ, ज्वर और अजीर्णादि विकारोंमें प्रयोग करना चाहिये। इस औषधिमें यदि तूतियेकी जगह सुवर्ण डालाजाय तो यही रस "गर्भचिन्तामणि" कहलाता है ॥६९॥७०॥

गर्भविनोदरस।

देयं त्रिभागं त्रिकटु चतुर्भागश्च हिङ्गुलम्।
जातीकोषं लवङ्गञ्च प्रत्येकञ्च त्रिकार्षिकम् ॥ ७१ ॥
सुवर्णमाक्षिकञ्चैव पलार्द्धं प्रक्षिपेद्बुधः।
जलेन मर्दयित्वा च चणमात्रा वटी कृता ॥
निहन्ति गर्भिणीरोगं भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ७२ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल प्रत्येक एकएक तोला और सिंगरफ चार तोले, जावित्री तीन कर्ष, लौंग तीन कर्ष एवं सोनामाखी दो तोले इन सबको एकत्र जलके साथ खरल करके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। यह रस यथाविधि सेवन करनेसे गर्भवतीस्त्रीके समस्तरोगोंको नष्ट करता है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

गर्भचिन्तामणि।

जातीफलं टङ्गणञ्च व्योषं दैत्येन्द्ररक्तकम्।
तच्चूर्णं समभागेन मर्दितं प्रहरद्वयम् ॥ ७३ ॥
जम्बीररसयोगेन वटीं कुर्याद्विचक्षणः।
गुञ्जाद्वयप्रमाणन्तु खलु वैद्यः प्रयत्नतः ॥ ७४ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव भक्षयेदुष्णवारिणा।
निहन्ति सर्वरोगञ्च भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ७५ ॥

जायफल, सुहागा, सोंठ, मिरच, पीपल और सिंगरफ इनको समानभाग लेकर जम्बीरीनींबूके रसमें दो प्रहरतक उत्तम प्रकार खरल करे, फिर इसकी दो दो रत्तीकी सुन्दर गोलियाँ प्रस्तुत करे। प्रतिदिन एक एक वटी अदरखके रस अथवा गरम जलके साथ भक्षण करे तो इससे गर्भिणीस्त्रीके अशेषरोग निश्चय नाश होते हैं ॥ ७३–७५ ॥

गर्भचिन्तामणि रस।

रसं तारं तथा लौहं प्रत्येकं कर्षमात्रकम्।
कर्षद्वयं तथा चाभ्रं कर्पूरं वङ्गताम्रकम् ॥ ७६ ॥

जातीफलं तथा कोषं गोक्षुरश्च शतावरी ।
बलातिबलयोर्मूलं प्रत्येकं तोलकं शुभम् ॥ ७७ ॥
वारिणा वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः ।
सन्निपातं निहन्त्याशु स्त्रीणाञ्चैव विशेषतः ॥
गर्भिण्या ज्वरदाहञ्च प्रदरं सूतिकामयम् ॥ ७८ ॥

रससिन्दूर, रूपा और लोहा ये प्रत्येक एक एक कर्ष, अभ्रक दो कर्ष, कपूर, वङ्ग, ताम्रभस्म, जायफल, जावित्री, गोखुरू, शतावर, खिरैंटी और कंघी इन दोनोंकी जड ये प्रत्येक द्रव्य एकएक तोला लेवे । सबको जलके द्वारा एकत्र खरल करके दो दो रत्ती प्रमाण गोलियाँ बनालेवे । यह रस गर्भवाली स्त्रियोंके सन्निपात ज्वर,दाह,प्रदर और सूतिकारोगको तत्काल नष्ट करता है॥७६-७८॥

बृहद्गर्भचिन्तामणिरस ।

सूतं गन्धं तथा स्वर्णं लौहं रजतमाक्षिकम् ।
हरितालं वङ्गभस्माप्यभ्रकं समभागिकम् ॥ ७९ ॥
भावना खलु दातव्या रसैरेषां पृथक् पृथक् ।
ब्राह्मी वासा भृङ्गराजपर्पटं दशमूलकम् ॥ ८० ॥
सप्तधा भावयेद्वैद्यो गुञ्जामानां वटीं चरेत् ।
गर्भचिन्तामणिरसः पूर्ववद्गुणकारकः ॥ ८१ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, सुवर्ण, लोहा, चाँदी, सोनामाखी, हरिताल, वङ्ग और अभ्रक इनकी भस्मोंको समानभाग लेवे । फिर सबको ब्रह्मी, अडूसा, भाँगरा, पित्तपापडा और दशमूल इनके क्राथमें अलग अलग क्रमशः सातबार भावना देवे । पश्चात् रत्ती रत्ती भरकी वटी बनाकर सेवन करे तो यह बृहच्चिन्तामणिरस पूर्वोक्त रसके समान ही गुण करता है ॥ ७९-८१ ॥

इन्दुशेखररस ।

शिलाजत्वभ्रसिन्दूरप्रवालायोरजांसि च ।
माक्षिकञ्च तथा तालं समभागानि मर्दयेत ॥ ८२ ॥
भृङ्गराजस्य पार्थस्य निर्गुण्ड्या वासकस्य च ।
स्थलपद्मस्य पद्मस्य कुटजस्य च वारिणा ॥ ८३ ॥
भावयित्वा वटीं कृत्वा कलायपरिमाणतः ।
यथादोषानुपानेन गर्भिणीषु प्रयोजयेत ॥ ८४ ॥

गर्भिणीनां ज्वरं घोरं श्वासं कासं शिरोरुजम्।
रक्तातीसारग्रहणीं वान्तिं वह्नेश्च मन्दताम् ॥ ८५ ॥
आलस्यमपि दौर्बल्यं हन्यादेव न संशयः।
कलेरादौ ससर्जेमं भगवानिन्दुशेखरः ॥ ८६ ॥

शिलाजीत, अभ्रक, रससिन्दूर, मूँगा, लोहा, सोनामाखी और हरिताल इनको समानांश लेकर भाँगरा, अर्जुनकी छाल, निर्गुण्डी, अडूसा, गेंदा, कमल और कुडेकी छाल इन सबके काथमें यथाक्रम भावना देकर मटरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इस रसको दोषोंके अनुसार अनुपान कल्पितकर गर्भिणीके रोगोंमें प्रयोग करे। यह गर्भवतीस्त्रियोंके ज्वर, घोरतर श्वास, खाँसी, शिरोरोग, रक्तातीसार, संग्रहणी, वमन, अग्निकी मन्दता, आलस्य, दुर्बलता आदि विकारोंको निस्सन्देह नष्ट करता है। इस रसको कलियुगकी आदिमें कलियुगी स्त्रियोंकी रक्षाके लिये चन्द्रमौलि भगवान् शङ्करने बनाया है ॥८२-८६॥

गर्भिणीरोगमें पथ्य।

शालयः षष्टिका मुद्गा गोधूमालाजशक्तवः।
नवनीतं घृतं क्षीरं रसाला मधुशर्करा ॥ ८७ ॥
पनसं कदलं धात्री द्राक्षाम्रं स्वादु शीतलम्।
कस्तूरीचन्दनं माल्यं कर्पूरमनुलेपनम् ॥ ८८ ॥
चन्द्रिका स्नानमभ्यङ्गो मृदुशय्या हिमानिलः।
सन्तर्पणं प्रिया वाचो विहाराश्च मनोरमाः ॥ ८९ ॥
प्रियङ्करश्चान्नपानं गर्भिणीभ्यो हितं भवेत् ॥ ९० ॥

शालिधानोंके और सांठीके चावल, मूँग, गेहूँ, खीलोंके सत्तू, नैनीघी, घी, दूध, रसाला, शहद, चीनी, कटहल, केला, आमले, दाख, आम, मीठे और शीतल पदार्थ, कस्तूरी, चन्दन, फूलमाला, कपूरका लेप, चाँदनी, स्नान, अभ्यञ्जन, कोमलशय्या, शीतलवायु, सन्तर्पण, प्रियवाक्य, मनोहरविहार और रुचिकर अन्नपान ये सब वस्तुएँ गर्भवती स्त्रियोंके लिये हितकारी हैं ॥ ८७-९० ॥

गर्भिणीरोगमें अपथ्य।

स्वेदनं वमनं क्षारं कलहं विषमाशनम्।
असात्म्यं नक्तसञ्चारं चौर्यञ्चाप्रियदर्शनम् ॥ ९१ ॥
अतिव्यवायमायासं भारं प्रावरणं गुरु।
अकालजागरस्वप्नकठिनोत्कटकासनम् ॥ ९२ ॥

शोकक्रोधभयोद्वेगवेगश्रद्धाविधारणम् ।
उपवासाध्वतीक्ष्णोष्णगुरुविष्टम्भिभोजनम् ॥ ९३ ॥
नक्तं निरशनं श्वभ्रकूपेक्षणं मद्यमामिषम् ।
उत्तानशयनं यच्च स्त्रियो नेच्छन्ति तत्त्यजेत् ॥ ९४ ॥

स्वेदप्रदान, वमन करना, खारीपदार्थोंका सेवन, वाद विवाद, विषमभोजन, असात्म्यद्रव्योंका सेवन, रात्रिमें टहलना, चोरीकरना, अप्रिय वस्तुको देखना, अत्यन्त मैथुन, परिश्रम करना, बोझ उठाना, बहुत भारीवस्त्र पहरना, रात्रिमें जागना, दिनमें सोना, कठिनस्थानमें अथवा उत्कट रूपसे बैठना, शोक, क्रोध, भय, उद्वेग, मूत्र-मलादिका वेगधारण, इच्छित वस्तुकी अप्राप्ति, व्रतकरना, मार्ग चलना, तीक्ष्ण, गरम, भारी और विष्टम्भकारी द्रव्योंका भोजन, रात्रिमें अभोजन, छिद्रदेखना, कुएँमें झाँकना, मद्यपीना, मांस खाना, चित्तहोकर सोना ये सब और जो स्त्रियोंको अप्रिय हों उन सब वस्तुओंको गर्भिणीस्त्रियें त्यागदेवें ॥ ९१–९४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां गर्भिणीरोगचिकित्सा ॥

सूतिका रोगकी चिकित्सा ।

सूतिकारोगशान्त्यर्थं कुर्याद्वातहरीं क्रियाम् ।
दशमूलकृतक्काथं कोष्णं दद्याद्घृतान्वितम् ॥ १ ॥

सूतिकारोगको शान्त करनेके लिये वातनाशक चिकित्सा करे और दशमूलके मन्दोष्ण क्काथको घृत मिलाकर प्रसूताके लिये देवे ॥ १ ॥

सूताया हृच्छिरोवस्तिशूलं मक्कल्लसंज्ञितम् ।
यवक्षारं पिबेत्तत्र सर्पिषोष्णोदकेन वा ।
पिप्पल्यादिगणक्काथंपिबेद्वा लवणान्वितम् ॥ २ ॥

प्रसूतास्त्रीके हृदय, शिर और वस्तिस्थानमें जो शूल उत्पन्न होता है उसको मक्कल्लशूल कहते हैं । इस रोगमें जवाखारको घी या गरमजलके साथ अथवा पिप्पल्यादिगणकी औषधियोंके क्काथको सैंधानोन मिलाकर पानकरे ॥ २ ॥

पारावतशकृत्पीतं शालितण्डुलवारिणा ।
गर्भपातानन्तरोत्थरक्तस्रावनिवारणम् ॥ ३ ॥

कबूतरकी बीठको शालिचावलोंके जलके साथ पान करनेसे गर्भपातके पीछे उत्पन्न हुआ रक्तस्राव दूर होता है ॥ ३ ॥

जलपिष्टवरुणपत्रैः सघृतैरुद्वर्त्तनालेपौ ।
किक्किशरोगं हरतो गोमयघर्षादथो विहितौ ॥ ४ ॥

वरनाके पत्तोंको जलमें पीसकर उनमें घृत मिलाकर मालिश, लेप अथवा गोबरके साथ घिसनेसे किक्किशरोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

सहचरकृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ।
दीपनो ज्वरदोषामसूतिकारोगनाशनः ॥ ५ ॥

पीले पियाबाँसेके क्वाथको पीपलका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे प्रसूता स्त्रीका ज्वर, प्रसूत और आमदोष नष्ट होकर अग्निदीपन होती है ॥ ५ ॥

पीतकुरुण्टक्वथितं रजनी पर्युषितं शीतमपहरति ।
सूतीरोगान्सहस्रं तन्मूलं चर्वितं तद्वत् ॥ ६ ॥

पीलीकटसरैयाके बासी क्वाथको हल्दीका चूर्ण मिलाकर प्रातःकाल पान करे अथवा एकमात्र पीलीकटसरैयाकी जडको चावे तो प्रसूताके हजारों रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ६ ॥

दशमूलक्वाथ ।

दशमूलीकृतः क्वाथः साज्यः सूतिरुजापहः ॥ ७ ॥

दशमूलके काढेको घृत मिलाकर पीनेसे प्रसूतरोग नष्ट होता है ॥ ७ ॥

अमृतादि ।

अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपञ्चमूलजलदाजलम् ।
पीतं मधुसंयुतं निवारयति सूतिकातङ्कम् ॥ ८ ॥

गिलोय, सोंठ, पियाबाँसा, पसरन, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेरी, बडीकटेरी, गोखुरू, नागरमोथा और सुगन्धवाला इनका एकत्र क्वाथ बनाकर उसमें शहद डालकर पान करनेसे सूतिकारोग नाश होता है ॥ ८ ॥

सहचरादि ।

सहचरपुष्करवेतसमूलं विकङ्कतदारुकुलत्थसमम् ।
जलमत्र ससैन्धवहिङ्गुयुतं सद्योज्वरसूतिकशूलहरम् ॥

पीलापियाबाँसा, पोहकरमूल, बेंतकी जड, कण्टाई, देवदारु और कुलथी इनको समानभाग लेकर क्वाथ बनावे । उसमें सैंधानमक और हींग डालकर सुहाता २ पान करे तो सूतिकाजन्य ज्वर और शूल तत्काल दूर होताहै ॥९॥

अन्यसहचरादि ।

सहचरमुस्तगुडूचीभद्रोत्कटविश्वबालकैः क्वथितम् ।
पेयमिदं मधुमिश्रं सद्योज्वरशूलनुत्सूत्याः ॥ १० ॥

पियाबाँसा, नागरमोथा, गिलोय, पसरन, सोंठ और सुगन्धवाला इनके काथको शहद मिलाकर पीनेसे प्रसूताका ज्वर और शूल जल्द नष्ट होता है ॥

सूतिकादशमूल ।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरम् ।
दासी प्रसारणी विश्वगुडूचीमुस्तकं तथा ॥
निहन्ति सूतिकारोगं ज्वरदाहसमन्वितम् ॥ ११ ॥

शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेरी, बडीकटेरी, गोखुरू, पीलापियाबाँसा, प्रसारणी, सोंठ, गिलोय, और नागरमोथा इनका यथाविधि काथ बनाकर सेवन करनेसे ज्वर और दाहसहित प्रसूतरोग नष्ट होता है ॥ ११ ॥

बृहद्ध्रीबेरादि ।

ह्रीबेरारलुरक्तचन्दनबलाधन्याकवत्सादनी
मुस्तोशीरयवासपर्पटविषाक्काथं पिबेद्गर्भिणी ।
नानादोषयुतातिसारकगदे रक्तस्रुतौ वा ज्वरे
योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः सूतामये शस्यते ॥ १२ ॥

सुगन्धवाला, शोनापाठा, लालचन्दन, खिरैंटी, धनियाँ, गिलोय, नागरमोथा, खस, धमासा, पित्तपापडा और अतीस इनका काथ बनाकर गर्भिणी स्त्री पान करे । यह काथ अनेक दोषोंसे युक्त अतीसाररोगमें रक्तस्राव और ज्वरमें हितकारी है । इस योगको पूर्वकालमें आयुर्वेदाचार्योंने सूतिकारोगको नष्ट करनेके लिये वर्णन किया है ॥ १२ ॥

देवदार्वादि ।

देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् ।
भूनिम्बकट्फलं मुस्तं तिक्ता धान्या हरीतकी ॥ १३ ॥
गजकृष्णा सदुस्पर्शा गोक्षुरो धन्वयासकः ।
बृहत्यातिविषाच्छिन्ना कर्कटः कृष्णजीरकः ॥ १४ ॥
समभागान्वितैरेतैः सिन्धुरामठसंयुतम् ।
क्काथमष्टावशेषन्तु प्रसूतां पाययेत्स्त्रियम् ॥ १५ ॥

शूलकासज्वरश्वासमूर्च्छाकम्पशिरोर्त्तिभिः।
युक्तं प्रलापतृड्दाहतन्द्रातीसारवान्तिभिः ॥ १६ ॥
निहन्ति सूतिकारोगं वातपित्तकफोद्भवम्।
कषायो देवदार्वादिः सूतायाः परमौषधम् ॥ १७ ॥

देवदारु, वच, कूठ, पीपल, सोंठ, चिरायता, कायफल, नागरमोथा, कुटकी, धनियाँ, हरड, गजपीपल, कटेरी, गोखुरू, धमासा, बडीकटेरी, अतीस, गिलोय, काकडासिंगी और कालाजीरा इन सबको समानभाग लेकर अष्टमांशावशेष क्वाथ बनावे। उसमें हींग और सैंधानमक डालकर प्रसूताओंको पान करावे। यह देवदार्वादिक्वाथ शूल, खाँसी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कम्प, शिरोरोग, प्रलाप, तृषा, दाह, तन्द्रा, अतीसार, वमन आदि रोगोंसे युक्त वात पित्त कफजन्य सूतिकारोगको नष्ट करता है। यह प्रसूताकी उत्कृष्ट औषधि है ॥ १३--१७ ॥

वज्रकाञ्जिक।

पिप्पलीपिप्पलीमूलं चव्यं शुण्ठी यमानिका।
जीरके द्वे हरिद्रे द्वे विडं सौवर्च्चलं तथा ॥ १८ ॥
एतैरेवौषधैः पिष्टैरारनालं विपाचयेत।
एतदामहरं वृष्यं कफघ्नं वह्निदीपनम् ॥ १९ ॥
काञ्जिकं वज्रकं नाम स्त्रीणामग्निविवर्द्धनम्।
मक्कल्लशूलशमनं परं क्षीराभिवर्द्धनम् ॥ २० ॥
"क्षीरपाकविधानेन काञ्जिकस्यापि साधनम् ॥२१॥"

पीपल, पीपलामूल, चव्य, सोंठ, अजवायन, जीरा, कालाजीरा, हल्दी, दारुहल्दी विरियासञ्चरनमक और काला नमक इन औषधियोंको समानभाग मिश्रित ८ तोले लेकर सबको काँजीके साथ एकत्र पीसकर एकसेर काँजी और २सेर जलमें पकावे। जब पकते २ काँजीमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। यह वज्रनामक काँजी प्रसूतास्त्रियोंके आम कफजरोगोंको हरती है तथा अत्यन्त पुष्टिकर जठराग्निकी वृद्धिकरनेवाली है। इससे मक्कलशूल नष्ट होता है और स्तनोंमें अधिकतर दुग्ध वृद्धि होती है। "क्षीरपाकविधिके अनुसार इस वज्रकाञ्जिकको भी सिद्धकरना चाहिये" ॥ १८--२१ ॥

भद्रोत्कटाद्यवलेह।

भद्रोत्कटतुलाक्वाथे पादशेषे विनिःक्षिपेत।

शर्करायाः पलांस्त्रिंशच्चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ २२ ॥
वत्सकं धान्यकं मुस्तमुशीरं बिल्वमेव च ॥
शाल्मलीवेष्टकञ्चैव पिप्पलीमरिचानि च ॥ २३ ॥
बला चातिविषा मांसी ह्रीबेरं सदुरालभम् ।
एषाञ्च पलिकैर्भागैश्चूर्णैरेतत्समाचरेत ॥ २४ ॥
संग्रहग्रहणीं हन्ति सूतिकाञ्च सुदुस्तराम् ।
वह्निञ्च कुरुते दीप्तं शूलानाहाविबन्धनुत् ॥ २५ ॥

प्रसारणीको १००पल लेकर ३२सेर जलमें पकावे । जब चतुर्थांश शेष रह-जाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें चीनी ३० पल तथा इन्द्रजौ, धनियाँ, नागरमोथा,खस, बेलगिरी, मोचरस, पीपल, मिरच, खिरैंटी, अतीस, बालछड, सुगन्धवाला और धमासा इनको चार २ तोले ले बारीक चूर्ण करके डालदेवे । फिर मन्दमन्द अग्निसे पकावे । यह अवलेह यथाविधि सेवन करनेसे दुस्तर संग्रहणी, शूल, अफारा और विबन्धआदिसे युक्त सूतिकारोगको नष्ट करता और अग्निको दीपन करता है ॥ २२-२५ ॥

सौभाग्यशुण्ठी ।

कशेरुशृङ्गाटविराटमुस्तं द्विजीरकं जातिफलं सकोषम् । लवङ्गशैलेयसनागपुष्पं पत्रं वराङ्गं च शठी सधातकी ॥२६॥ एला शताह्वा धनिकेभकृष्णा सपिप्पली सोषणका सभीरुः । प्रत्येकमेषामिह कर्षयुग्मं लौहं तथाभ्रं पलभागयुक्तम् ॥ २७ ॥ महौषधीचूर्णपलानि चाष्टौ पलानि त्रिंशत्सितशर्करायाः। पलानि चाष्टावपि सर्पिषश्च प्रस्थद्वयं क्षीरमिह प्रयुक्तम् ॥ २८ ॥ पचेद्विधिज्ञः परमादरेण खादेदिदं कर्षमथार्द्धकर्षम् । कर्षद्वयं वापि समीक्ष्य शस्तं सौभाग्यशुण्ठी कथिता भिषग्भिः । अग्निप्रदा सूतिगदापहा च सर्वातिसारग्रहणीहरा च ॥ २९ ॥

कसेरु, सिंघाडे, कमलगट्टा, नागरमोथा, जीरा, कालाजीरा, जायफल, जावित्री, लौंग, भूरिछरीला, नागकेशर, तेजपात, दारचीनी, कचूर, धायके फूल, इलायची, सोया, धनियाँ, गजपीपल, पीपल, कालीमिरच और शता-

कर ये प्रत्येक दो दो तोले एवं लोहा और अभ्रक चार चार तोले, सोंठका चूर्ण ३२ तोले, मिश्री ३० पल, घीं ३२ तोले और दूध २ प्रस्थ लेवे । इन सबको यथाविधि एकत्र मिलाकर विधिवेत्ता वैद्य मन्दमन्द अग्निद्वारा प्रेमपूर्वक पाकको सिद्धकरे । इसमेंसे प्रतिदिन १ कर्ष अथवा आधाकर्ष और जठराग्निको सबल देखकर २ कर्ष परिमाणतक सेवन करे । यह सौभाग्यशुण्ठी अग्निको दीपन करती है एवं सूतिकारोग, सब प्रकारके अतीसार और स्त्रियोंकी संग्रहणीको हरती है ऐसा भिषगाचार्योंने कहा है ॥ २६-२९ ॥

दूसरी सौभाग्यशुण्ठी ।

त्रिकटुत्रिफलाजाजी चातुर्जातकमुस्तकम् ।
जातीकोषफलं धान्यं लवङ्गं शतपुष्पिका ॥ ३० ॥
नलिका मादनफलं यमानीद्वयधातकी ।
शतावरी तालमूली लोध्रं वारणपिप्पली ॥ ३१ ॥
पियालबीजममृता कर्पूरं चन्दनद्वयम् ।
कर्षप्रमाणान्येतेषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ३२ ॥
नागरस्य च चूर्णस्य पलं षोडशकं क्षिपेत ।
दृढे च मृण्मये पात्रे पाचयेन्मृदुनाग्निना ॥ ३३ ॥
यत्नतः पाकविद्वैद्यो गुडिकां कारयेत्ततः ।
घृतमष्टपलं दद्यात्क्षीरप्रस्थद्वयन्तथा ॥ ३४ ॥
सार्द्धप्रस्थद्वयश्चात्र शर्करायास्ततः क्षिपेत् ।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय अजाक्षीरं पिबेदनु ॥ ३५ ॥
आमवातं निहन्त्याशु कासं श्वासं सपीनसम् ।
ग्रहणीमम्लपित्तञ्च रक्तपित्तं क्षतक्षयम् ॥ ३६ ॥
स्त्रीरोगान्विंशतिश्चैव तत्क्षणादेव नाशयेत् ।
अहन्यहनि च स्त्रीणां स्तनदार्ढ्यकरं परम् ॥
सौभाग्यजननं स्त्रीणां पुष्टिदं धातुवर्द्धनम् ॥ ३७ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, कालाजीरा, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, नागरमोथा, जावित्री, जायफल, धनियाँ, लौंग, सोया, नली, मैनफल, अजवायन, अजमोद, धायके फूल, शतावर, मुसली, लोध, गजपीपल, चिरौंजी, गिलोय, कपूर, सफेदचन्दन और लालचन्दन इन

औषधियोंको दो दो तोले लेकर बारीक पीसलेवे। फिर सोंठका चूर्ण १६ पल, घी ८ पल, दूध दो प्रस्थ और खाँड २॥ प्रस्थ लेवे। पाकविधिको जाननेवाला वैद्य यत्नपूर्वक सबको दृढ मिट्टीके पात्रमें एकत्र करके मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब पाक पककर गाढा होजाय तब उतारकर उसकी गोलियाँ बना- लेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर एक गोली भक्षण करे और ऊपरसे बकरीका दूध पीवे तो इससे आमवात, खाँसी, श्वास, पीनस, संग्रहणी, अम्लपित्त, रक्तपित्त, व्रण, क्षय और बीसप्रकारकेस्त्रीरोग सेवन करतेही नष्ट होते हैं और प्रतिदिन स्त्रियोंके स्तन दृढतर होते हैं। यह सौभाग्यशुण्ठी योग्यस्त्रियोंके सुहागको बढानेवाला, पुष्टिदेनेवाला और धातुवृद्धि करनेवाला है ॥३०-३७॥

बृहत्सौभाग्यशुण्ठी।

बृहच्छुण्ठीं समादाय चूर्णयित्वा विधानतः।
पलषोडशिकां नीत्वा क्षीरे दशगुणे पचेत् ॥ ३८ ॥
क्रमेण पाकशुद्धिः स्याद्घृतप्रस्थे च भर्जयेत्।
लघुपाकः प्रकर्त्तव्यो न खरो मोदकेष्वपि ॥ ३९ ॥
शतावरी विदारी च मुसली गोक्षुरो बला।
छिन्नासत्त्वं शताह्वा च जीरके व्योषचित्रकौ ॥ ४० ॥
त्रिसुगन्धि यमानी च तालीशं कारवी मिसिः।
रास्ना पुष्करमूलञ्च वंशी दारु शताह्वयम् ॥ ४१ ॥
शठी मांसी वचा मोचत्वक्पत्रं नागकेशरम्।
जीवन्ती मेथिका यष्टि चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ ४२ ॥
कृमिघ्नं तोयसिंहास्यधन्याकं कट्फलं घनम्।
कर्षद्वयमितं भागं प्रत्येकं पट्टघर्षितम् ॥ ४३ ॥
सर्वचूर्णाद्द्विगुणिता प्रदेया सितशर्करा।
युक्त्या पाकविधानज्ञो मोदकः परिकल्पयेत् ॥ ४४ ॥
शुद्धे भाण्डे निधायार्थं खादेन्नित्यं यथाबलम्।
वीक्ष्याग्निबलकोष्ठञ्च नारीणाञ्च विशेषतः ॥ ४५ ॥
क्षौद्रानुपानतः प्रातर्गुरुदेवान् समर्चयेत्।
तद्वर्णं बल्यमायुष्यं वलीपलितनाशनम् ॥ ४६ ॥
वयसः स्थापनं प्रोक्तमग्निदीप्तिमयं परम्।
वृष्याणामतिवृष्यञ्च रसायनमिदं शुभम् ॥ ४७ ॥

विशेषात्स्त्रीगदे प्रोक्तं प्रसूतानां यथामृतम् ।
विंशतिर्व्यापदो योनेः प्रदरं पञ्चधापि च ॥ ४८ ॥
योनिदोषहरं स्त्रीणां रजोदोषहरं तथा ।
पापसंसर्गजं दोषं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ४९ ॥
आमवातहरश्चैव शिरःशूलनिवारणम् ।
सर्वशूलहरश्चैव विशेषात्कटिशूलनुत ॥ ५० ॥
वीर्यवृद्धिकरं पुंसां सूतिकातङ्कनाशनम् ।
वातपित्तकफोत्पन्नान्द्वन्द्वजान्सन्निपातजान् ॥ ५१ ॥
हन्ति सर्वगदानेषा शुण्ठी सौभाग्यदायिनी ।
सौभाग्यदायिनी स्त्रीणामतः सौभाग्यशुण्ठिका ५२॥

बडी बडी सोंठकी गाँठोंको १६ पल लेकर चूर्णकरके दसगुने दूधमें पकावे। जब पकतेपकते पाक गाढा पडजाय तब उसको २ प्रस्थ घीके साथ मन्दमन्द अग्निसे शनैःशनैः भूने। फिर उसकी तरल अवस्थामें ही उसमें शतावर, विदारीकन्द, मुसली, गोखुरू, खिरैंटी, गिलोयका सत्त्व, सोया, छोटाजीरा, बडा जीरा, त्रिकुटा, चीता, छोटीइलायची, दारचीनी, तेजपात, अजवायन, तालीशपत्र, कालाजीरा, सोंफ, रायसन, पोहकरमूल, वंशलोचन, देवदारु, सोया, कचूर, बालछड, वच, मोचरस, दारचीनी, नागकेशर, जीवन्ती, मेथी, मुलैठी, दोनों चन्दन, वायविडङ्ग, सुगन्धवाला, अडूसेकी छाल, धनियाँ, कायफल और नागरमोथा;ये प्रत्येक औषधि दोदो कर्ष लेकर सबको एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण ले फिर समस्त चूर्णसे दुगुनी मिश्री लेवे। सबको मिलाकर एक-मएक करके लड्डू बनालेवे और शुद्ध पात्रमें भरकर रखदेवे। पश्चात् प्रतिदिन प्रातःकाल गुरु और देवताओंको यथाविधि पूजकर अपनी जठराग्निके बलानुसार मात्राका निरूपण करके इस औषधिको शहदके साथ भक्षण करे। यह औषधि बल, वर्ण और आयुको बढाती है और वली तथा पलितरोगका नाश करती है। एवं आयुको स्थापनकरनेवाली, अग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाली पुष्टिकरयोगोंमें विशेष पुष्टिकर और उत्तम रसायन है। विशेषकर स्त्रियोंके रोगोंमें इसको प्रयोग करे, प्रसूतास्त्रियोंके लिये तो यह अमृतके समान है। यह बीस प्रकारके योनिरोग, ५ प्रकारके प्रदर, रजोदोष, पापदोषजन्यरोग, आमवात, शिरःशूल, कटिशूल एवं अन्यान्यसर्वप्रकारके शूलरोगोंको निस्सन्देह नष्ट करती है। पुरुषोंके वीर्यकी वृद्धि करनेवाली और स्त्रियोंके सम्पूर्ण

रोगोंको हरनेवाली तथा वातज, पित्तज, कफज, द्विदोषज और सन्निपातज-सर्वप्रकारके कठिन विकारोंको नष्ट करनेवाली है। यह सौभाग्यशुण्ठी स्त्रियोंके सुहागको बढाती है इसीकारण इसको सौभाग्यशुण्ठी कहते हैं॥ ३८-५२ ॥

पञ्चजीरकगुड ।

जीरकं हबुषा धान्यं शताह्वा बदराणि च ।
यमानी कुष्टिको हिङ्गु पत्रिका कासमर्दकम् ॥ ५३ ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलमजमोदाथ बाष्पिका ।
चित्रकश्च पलांशानि तथान्यच्च चतुःपलम् ॥ ५४ ॥
काशेरुकं नागरञ्च कुष्ठं दीप्यकमेव च ।
गुडस्य च शतं दद्याद्घृतप्रस्थं तथैव च ॥ ५५ ॥
क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
पञ्चजीरक इत्येष सूतिकानां प्रशस्यते ॥ ५६ ॥
गर्भार्थिनीनां नारीणां बृंहणीये समारुते ।
विंशतिर्व्यापदो योनेः कासं श्वासं ज्वरं क्षयम् ॥५७॥
हलीमकं पाण्डुरोगं दौर्गन्ध्यं मूत्रकृच्छ्रताम् ।
हन्ति पीनोन्नतकुचाः पद्मपत्रायतेक्षणाः ॥
उपयोगात्स्त्रियो नित्यमलक्ष्मीमलवर्जिताः ॥ ५८ ॥

जीरा, हाऊबेर, धनियाँ, सोया, बेर, अजवायन, राई, हिंगुपत्री, कसौंदी, पीपल, पीपलामूल, अजमोद, नाडी, हींग और चीता प्रत्येक चार चार तोले तथा कसेरू, सोंठ, कूठ और मोरशिखा ये प्रत्येक चार २ पल लेवे। सबको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण करके १०० पल गुड, एक प्रस्थ घी और दो प्रस्थ दूधके साथ मिलाकर यथाविधिसे मृदुअग्निद्वारा पाककरे। यह पञ्चजरिकगुड प्रसूता स्त्रियोंको अत्यन्त हितकारी है। गर्भकी इच्छा करनेवाली स्त्रियोंको अत्यन्त पुष्टिकारक है। तथा बीस प्रकारके योनिरोग, खाँसी, श्वास, ज्वर, क्षय, हलीमक, पाण्डु रोग, योनिदुर्गन्ध, मूत्रकृच्छ्रादिरोगोंको नष्ट करता है। इसको नित्यप्रति सेवन करनेसे स्त्रियें अलक्ष्मी और मलसे रहित होकर पुष्ट और उन्नतस्तनोंवाली तथा कमलपत्रके समान सुन्दर नेत्रोंवाली होजाती हैं५३-५८

जीरकाद्यमोदक ।

जीरकस्य पलान्यष्टौ शुण्ठी धान्यं पलत्रयम् ।
शतपुष्पा यमानी च कृष्णजीरं पलं पलम् ॥ ५९ ॥

क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं खण्डस्यार्द्धशतं पलम्।
घृतस्यापि पलान्यष्टौ शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ६० ॥
व्योषं त्रिजातकञ्चैव विडङ्गं चव्यचित्रकम्।
मुस्तकञ्च लवङ्गञ्च पलांशं संप्रकल्पयेत् ॥ ६१ ॥
मन्देन वह्निना पक्का मोदकं कारयेद्भिषक्।
सर्वयोषिद्विकाराणां नाशनं वह्निदीपनम् ॥
सूतिकारोगशमनं विशेषाद्ग्रहणीहरम् ॥ ६२ ॥

जीरा ८ पल, सोंठ ३ पल, धनियाँ ३ पल तथा सोया, अजवायन और कालाजीरा प्रत्येक चार चार तोले, दूध २ प्रस्थ, खाँड ५० पल और घी ८ पल लेवे। सबको विधिपूर्वक एकत्र मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब पकते पकते पाक गाढा होजाय तब उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, दारचीनी, इलायची, तेजपात, वायविडङ्ग, चव्य, चीता, नागरमोथा और लौंग इनके बारीक चूर्णको चार चार तोले परिमाण डालदेवे और मृदु अग्निसे पकाकर लड्डू बनालेवे। यह मोदक स्त्रियोंके सब रोगोंको नष्ट करते हैं और अग्निको प्रदीप्त करते हैं। विशेषकर सूतिकारोग और संग्रहणीरोगको हरनेवाले है ॥

सूतिकाविनोदरस।

रसगन्धकतुत्थञ्च त्र्यहं जम्बीरमर्दितम्।
त्रिभावितं त्रिकटुना देयं गुञ्जाचतुष्टयम् ॥
गर्भिण्याः शूलविष्टम्भज्वराजीर्णेषु योजयेत् ॥ ६३ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक और तूतिया इनको समानभाग लेकर तीन दिनतक जम्बीरीनींबूके रसमें खरल करके त्रिकुटेके काथमें तीन बार भावना देवे। पश्चात् चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनाकर गर्भिणीस्त्रीके उल्लिखितरोगोंमें प्रयोग करे। यह रस, शूल, विष्टम्भ, ज्वर और अजीर्णादिरोगोंमें परमोपयोगी है॥

बृहत्सूतिकाविनोदरस।

शुण्ठ्या भागो भवेदेको द्वौ भागौ मरिचस्य च।
पिप्पल्याःस्यात्त्रिभागश्च अर्द्धभागश्च व्योमकम् ६४॥
जातीकोषस्य भागौ द्वौ द्वौ भागौ तुत्थकस्य च।
सिन्धुवारजलेनैव मर्दयेदेकयामतः।
मधुना सह भोक्तव्यः सूतिकातङ्कनाशनः ॥ ६५ ॥

सोंठ १ भाग, मिरच २ भाग, पीपल ३ भाग, अभ्रक आधाभाग, जावित्री २ भाग और तूतिया २ भाग, इन सबको एकत्रकर सिह्मालुके रस अथवा काथसे एक प्रहरतक खरल करे। फिर इस रसको दो रत्ती प्रमाण ले शहदमें मिलाकर भक्षण करे तो प्रसूताके सर्वरोग नष्ट होते हैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

सूतिकारिरस ।

रसगन्धककृष्णाभ्रं तदर्द्धं ताम्रभस्मकम् ।
चूर्णितं मर्दयेद्यत्नाद्भेकपर्णीरसेन च ॥ ६६ ॥
छायाशुष्का गुडी कार्या कलायसदृशी ततः ।
मात्रया कटुना देया सूतिकातङ्कनाशिनी ॥
ज्वरतृष्णारुचिहरी शोथघ्नी वह्निदीपनी ॥ ६७ ॥

शुद्धपारा, गन्धक और काली अभ्रक ये प्रत्येक एक एक तोला और ताम्रभस्म छः माशे लेवे। फिर सबको एकत्र कर मण्डूकपर्णीके रसद्वारा यत्नपूर्वक खरल करे और छायामें सुखाकर मटरकी बराबर सुन्दर गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन एक एक गोली अदरखके साथ खानेसे प्रसूतरोग नष्ट होता है तथा ज्वर, तृषा, अरुचि और शोथ दूर होता है। अग्निदीपन होती है ॥६६॥६७॥

सूतिकाघ्नरस ।

रसगन्धकलौहाभ्रं जातीकोषं सुपर्णकम् ।
समांशं मर्दयेत्खल्ले छागीदुग्धेन पेषयेत् ॥ ६८ ॥
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन वटिकां कुरु यत्नतः ।
ज्वरातीसाररोगघ्नः सूतिकातङ्कनाशनः ।
सूतिकाघ्नो रसो नाम ब्रह्मणा परिकीर्त्तितः ॥ ६९ ॥

शोधितपारा, गन्धक, लोहा, अभ्रक, जावित्री और धतूरेके बीज इन सबको समानभाग लेकर बकरीके दूधके साथ उत्तम प्रकारसे खरल करे। फिर दो दो रत्तीकी गोलियाँ वनाकर सेवन करे तो ज्वर, अतीसार, और सूतिकारोग नष्ट होता है। इस सूतिकाघ्न रसको ब्रह्माजीने कथन किया है ॥६८॥६९॥

सूतिकाहररस ।

लवङ्गं रसगन्धौ च यवक्षारं तथाभ्रकम् ।
लौहं ताम्रं सीसकञ्च पलमानं समाहरेत ॥ ७० ॥
जातीफलं केशराजं वरैला भृङ्गमुस्तकम् ।
धातकीन्द्रयवं पाठा शृङ्गी बिल्वञ्च बालकम् ॥ ७१ ॥

कर्षमानश्च सञ्चूर्ण्य सर्वमेकत्र कारयेत् ।
बदरास्थिप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ७२ ॥
गन्धालिकापत्ररसैरनुपानं प्रदापयेत् ।
सर्वातीसारहरणः सर्वशूलनिवारणः ।
सूतिकाहरनामायं सूतिकां नाशयेद्ध्रुवम् ॥ ७३ ॥

लौंग, शुद्धपारा, गन्धक, जवाखार, अभ्रक, लोहा, ताँबा और सीसा ये प्रत्येक चार चार तोले लेवे तथा जायफल, कुकुरभाँगरा, त्रिफला, इलायची, भाँगरा, नागरमोथा, धायके फूल, इन्द्रजौ, पाढ, काकडासिंगी, बेलगिरी और सुगन्धवाला ये औषधियाँ दो दो तोले ले सबको कूट पीसकर और जलमें खरल कर इनकी बेरकी गुठलीकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । फिर प्रातिदिन पसर-नके रसके साथ एकएक गोली सेवन करे तो सर्वप्रकारका अतीसार और सर्व शूल नष्ट होते हैं । यह रस सूतिकारोगको तो निश्चय नष्ट करताहै ॥७०-७३॥

रसशार्दूल ।

अभ्रं ताम्रं तथा लौहं राजपट्टं रसन्तथा ।
गन्धटङ्कमरीचश्च यवक्षारं समांशकम् ॥ ७४ ॥
तथात्र तालकश्चैव त्रिफलायाश्च तोलकम् ।
तोलकश्चामृतश्चैव षड्गुञ्जाप्रतिमा वटी ॥ ७५ ॥
ग्रीष्मसुन्दरकस्यापि नागवल्लीरसेन च ।
भावयेत्सप्तधा हन्ति ज्वरकासाङ्गसंग्रहम् ॥
सूतिकातङ्कशोथादिस्त्रीरोगश्च विनाशयेत् ॥ ७६ ॥

अभ्रक, ताँबा, लोहा, चुम्बकपत्थर, पारा, गन्धक, सुहागा, मिरच, जवा-खार, हरिताल, त्रिफला और शुद्धमीठातेलिया ये प्रत्येक एकएक तोला लेवे । फिर सबको गूमाशाकके रस और पानके रसमें यथाक्रम सातबार भावना देवे । अनन्तर छः छः रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह रसशार्दूल ज्वर, खाँसी, शरीर-पीडा, प्रसूत और सूजन आदि स्त्रियोंके सर्वप्रकारके रोगोंको नष्ट करता है ॥

महारसशार्दूल ।

अभ्रकं पुटितं ताम्रं स्वर्णं गन्धश्च पारदम् ।
शिला टङ्कं यवक्षारं त्रिफलायाः पलं पलम् ॥ ७७ ॥
गरलस्य तथा ग्राह्यमर्द्धतोलकसंमितम् ।
त्वगेलापत्रकश्चैव जातीकोषलवङ्गकम् ॥ ७८ ॥

मांसी तालीशपत्रञ्च माक्षिकञ्च रसाञ्जनम् ।
एषां द्विकार्षिकं भागं देयञ्चापि विचक्षणैः ॥ ७९ ॥
द्रवे किञ्चित्स्थिते चूर्णं मरिचस्य पलं क्षिपेत् ।
भावना च प्रदातव्या पूर्वोक्तेन रसेन च ॥ ८० ॥
निहन्ति विविधान्रोगाञ्ज्वरं दाहान्वमिं भ्रमिम् ।
तथातीसारकञ्चैव वह्निमान्द्यमरोचकम् ॥
विशेषाद्गर्भिणीरोगं नाशयेदाचिरेण च ॥ ८१ ॥

अभ्रक, ताँबा और सुवर्णकी भस्म, गन्धक, पारा, मैनसिल, सुहागा, जवाखार और त्रिफला इनको चार चार तोले, मीठातेलिया ६ माशे, दारचीनी, इलायची, तेजपात, जावित्री, लौंग, बालछड, तालीशपत्र, सोनामाखी और रसौत इनको दो दो तोले लेवे। सबको एकत्रकर गूमाशाकके रस और पानके रसमें पृथक् पृथक् ७ बार भावना देवे। जब कुछ तरल अवस्था होजाय तब उसमें ४ तोले कालीमिरचोंका चूर्ण मिलालेवे। यह रस यथाविधि सेवन करनेसे ज्वर, दाह, वमन, भ्रम, अतीसार, मन्दाग्नि, अरुचि आदि अनेक प्रकारके रोगोंको विशेषकर गर्भिणीस्त्रियोंके रोगोंको अल्पकालमेंही नाश करता है ॥

महाभ्रवटी ।

अभ्रकं पुटितं ताम्रं लौहं गन्धकपारदम् ।
कुनटी टङ्कणं क्षारं त्रिफला च पलं पलम् ॥ ८२ ॥
गरलञ्च तथा माषचतुष्कञ्चैव चूर्णितम् ।
तत्सर्वं भावयेदेषां रसैः प्रत्येकशः पलैः ॥ ८३ ॥
ग्रीष्मसुन्दरकस्याटरूषकस्य क्रमेण च ।
रसैस्ताम्बूलवल्लयाश्च दलोत्थैर्भावितं पृथक् ॥ ८४ ॥
द्रवे किञ्चित्स्थिते चूर्णं मरिचस्य पलं क्षिपेत् ।
सर्वातीसारशमनं सर्वशूलनिवारणम् ॥ ८५ ॥
सूतिकाशोथपाण्डुघ्नं सर्वज्वरविनाशनम् ।
नाशयेत्सूतिकातङ्कं वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ८६ ॥

अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म, गन्धक, पारा, मैनसिल, सुहागा, जवाखार और त्रिफला ये प्रत्येक चार चार तोले, शुद्ध मीठातेलिया ४ माशे लेकर सबको एकत्र पीस लेवे। फिर सब चूर्णको गूमा, अडूसा और नागवल्ली इनके पत्तोंके १ पल रसमें अलग अलग क्रमशः भावना देवे। जब कुछ पतला

रहजाय तब उसमें १ पल मिरचोंका चूर्ण डालकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस वटीको सेवन करनेसे सर्वप्रकारका अतीसार, सब शूल, सूतिकारोग, सूजन, पाण्डुरोग, सब प्रकारका ज्वर नष्ट होताहै। जिस प्रकार वज्रसे वृक्षोंका नाश होताहै उसी प्रकार सूतिकारोग नष्ट होताहै ॥ ८२-८६ ॥

सूतिकारिरस।

टङ्कणं मूर्च्छितं सूतं गन्धकं हेमतारकम्।
जातीफलं तथा कोषं लवङ्गैला च धातकी ॥ ८७ ॥
वत्सकेन्द्रयवं पाठा शृङ्गी विश्वाजमोदिका।
गुडी प्रसारणिरसैश्चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः ॥ ८८ ॥
भक्षयेत्तद्रसैः प्रातः सूतिकातङ्कशान्तये।
जीर्णज्वरं तथा शोथं ग्रहणीप्लीहकासनुत ॥ ८९ ॥

सुहागा, फूँकाहुआ पारा, गन्धक, सुवर्ण, रूपा, जायफल, जावित्री, लौंग, इलायची, धायके फूल, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ, पाढ, काकडासिंगी, सोंठ और अजमोद इनके चूर्णको समान भाग लेकर प्रसारणीके रसनें खरलकरके चार-चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। फिर सूतिकारोगको शान्त करनेकेलिये प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक वटी प्रसारणीके रसके साथ सेवन करे। इससे पुराना ज्वर, सूजन, संग्रहणी, तिल्ली और खाँसीआदि सब विकार दूर होते हैं॥

भद्रोत्कटाद्य घृत।

समूलपत्रशाखन्तु शतं भद्रोत्कटस्य च।
वारिद्रोणेन संसाध्यं स्थाप्यं पादावशेषितम् ॥ ९० ॥
घृतप्रस्थं विपक्तव्यं गर्भं दत्त्वा तु कार्षिकम्।
सव्योषं पिप्पलीमूलं चित्रकं जीरकं तथा ॥ ९१ ॥
पञ्चमूलं कनिष्ठञ्च रास्नैरण्डसमन्वितम्।
बला सिन्धुयवक्षारस्वर्जिका कृष्णजीरकम् ॥ ९२ ॥
सिद्धमेतद्घृतं सद्यो निहन्यात्सूतिकामयान्।
ग्रहणीं पाण्डुरोगञ्च अर्शांसि विविधानि च ॥
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं स्त्रीणां स्तन्यविशोधनम् ॥ ९३ ॥

जड पत्ते और शाखासहित प्रसारणीको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब चौथाईभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें घी १ प्रस्थ तथा त्रिकुटा, पीपलामूल, चीता, जीरा, लघु पञ्चमूल,

रास्ना, अण्डकी जड, खिरैंटी, सैंधानमक, जवाखार, सज्जी और कालाजीरा इनके दोदो तोले चूर्णको डालकर उत्तम प्रकार घृतको सिद्धकरे। यह घृत नित्यप्रति सेवन करनेसे प्रसूतरोग, संग्रहणी, पाण्डु और अनेकप्रकारके अर्शादिविकारोंको तत्काल नष्ट करताहै और अग्निको दीपन करताहै। तथा स्त्रियोंके स्तनोंको शुद्ध करताहै ॥ ९०-९३ ॥

सूतिकादशमूलतैल।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरम्।
दासी प्रसारणी विश्वगुडूची मुस्तकं तथा ॥ ९४ ॥
एतानि समभागानि प्रस्थञ्च कटुतैलकम्।
चतुर्गुणं पयो दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥
निहन्ति सूतिकारोगं ज्वरदाहसमन्वितम् ॥ ९५ ॥

शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बडीकेटरी, केटरी, गोखुरू, पीलीकटसरैया, प्रसारणी, सोंठ, गिलोय और नागरमोथा इनको समानभाग मिश्रित १०० पल लेकर ५० सेर जलमें पकावे। अर्द्धावशेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। फिर उसमें कडवातेल १ प्रस्थ, दूध ४ प्रस्थ और उक्त औषधियोंका कल्क १ सेर डालकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। इस तेलको मर्दन करनेसे ज्वर और दाह सहित सूतिकारोग नष्ट होताहै ॥ ९४॥९५ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां सूतिकारोगचिकित्सा।

स्तनरोगकी चिकित्सा।

वनकार्पासकेक्षूणां मूलं सौवीरकेण वा।
विदारीकन्दं सुरया पिबेद्वा स्तन्यवर्द्धनम् ॥ १ ॥

वनकपासकी जड और ईखकी जडको काँजीमें पीसकर अथवा विदारीकन्दके चूर्णको मद्यके साथ पानकरनेसे स्तनोंमें दूध बढताहै ॥ १ ॥

शालितण्डुलचूर्णस्य पानं दुग्धेन वर्द्धयेत्।
स्तन्यं सप्ताहतः क्षीरसेविन्यास्तु न संशयः ॥ २ ॥

दूधके साथ शालिचावलोंके चूर्णको पान करे और दूध भातका भोजनकरे तो सात दिनमें ही स्तनोंमें दूधकी वृद्धि होतीहै ॥ २ ॥

हरिद्रादिं वचादिं वा पिबेत्स्तन्यविवृद्धये ॥ ३ ॥

स्तनोंमें दुग्धवृद्धि करनेके लिये हरिद्रादि या वचादिकाथ पान करे ॥ ३ ॥

तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलीजलं पिबेत्।
पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोलं निम्बचन्दनम्।
धात्री कुमारश्च पिबेत्काथयित्वा सशारिवाम् ॥ ४ ॥

वातजनित स्तनरोगमें दशमूलके काढेको पीवे, पित्तजस्तनरोगमें गिलोय, शतावर, परवल, नीमकी छाल, लालचन्दन और अनन्तमूल इनका काथ बनाकर धाय और बालकको पिलाना चाहिये ॥ ४ ॥

कफे वा त्रिफला मुस्ता भूनिम्बं कटुरोहिणी।
भार्गीदारुवचापाठाः पिबेत्सातिविषाः शृताः।
धात्रीस्तन्यविवृद्ध्यर्थं मुद्गयूषरसाशना ॥ ५ ॥

कफजन्य स्तनरोगमें त्रिफला, नागरमोथा, चिरायता, कुटकी, भारँगी, देवदारु, बच, पाढ और अतीस इनका काथ बनाकर पान करे और मूँगके यूषका भोजन करे तो धायके स्तनोंमें दूधकी वृद्धि होती है ॥ ५ ॥

कुक्कुरमेक्षुकामूलं चर्वितायास्ये विधारितं जयति।
सप्ताहात्स्तनकीलं स्तन्यं चैकान्ततः कुरुते ॥ ६ ॥

गंगेरनकी जडको चाबकर मुखमें धारण करनेसे सात दिनके भीतर ही स्तनोंकी कील निकलकर दूधकी वृद्धि होती है ॥ ६ ॥

शोथं स्तनोत्थितमवेक्ष्य भिषग्विदध्याद्यद्विद्रधावभिहितं बहुधा विधानम्। आमे विदह्यति तथैव गते च पाकं तस्याः स्तनौ सततमेव हि निर्दुहीत ॥ ७ ॥

स्त्रीके स्तनोंमें सूजन होजानेपर वैद्य प्रायः विद्रधिरोगकी समान चिकित्सा करे और सजनकी अपक अथवा पक्क अवस्थामें दाह होती हो तो भी उसके स्तनोंमेंसे दूध निकाल देवे ॥ ७ ॥

विशालमूललेपन्तु हन्ति पीडां स्तनोत्थिताम्।
निशाकनकफलाभ्यां लेपश्चापि स्तनार्त्तिहा ॥ ८ ॥

इन्द्रायणकी जड, हल्दी और धतूरेके फल इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे स्तनजन्य पीडा दूर होती है ॥ ८ ॥

मूषिकवसया शौकरमहिषगजमांसचूर्णयुतया।
अभ्यङ्गमर्दनाभ्यां सुकठिनपीनस्तनौ भवतः ॥ ९ ॥

सूअर, भैंसा और हाथीके मांसके चूर्णको चूहेकी चर्बीमें मिलाकर स्तनोंमें मालिश और लेप करनेसे स्त्रीके स्तन अत्यन्त कठिन तथा स्थूल होते हैं ॥ ९ ॥

महिषीभवनवनीतं व्याधिवलोग्रा तथैव नागबला।
पिष्ट्वा मर्दनयोगात्पीनं कठिनं स्तनं कुरुते ॥ १० ॥

भैंसका नैनीघी, कूठ, खिरैंटी, वच और गंगेरन इनको एकत्र पीसकर मालिश करनेसे स्तन कठिन और स्थूल होते हैं ॥ १० ॥

प्रथमर्त्तौ तण्डुलाम्भो नस्यं कुर्यात्स्तनौ स्थिरौ ॥

पहलेही ऋतुकालमें चावलोंके जलकी नास लेनेसे स्तन स्थिर होजाते हैं ॥

गोमाहिषीघृतसहितं तैलं श्यामाकृताञ्जलिवचाभिः।
त्रिकटुनिशाभिः सिद्धं नस्यं स्तनवर्द्धनं परम् ॥ ११ ॥

गोघृत, भैंसका घी और तिलका तेल ये समानभाग मिलित एक सेर, कल्कके लिये फूलप्रियंगु, लज्जावन्ती, वच, सोंठ, मिरच, पीपल और हल्दी इनको समानभाग मिश्रित आधसेर और दो सेर लेवे। सबको यथाविधि मिलाकर तेलको सिद्धकरे।यह तेल नस्यद्वारा प्रयोग करनेसे स्तनोंको बढाताहै॥

काशीशाद्यतैल।

काशीशतुरगगन्धाशावरीगजपिप्पलीविपक्केन।
तैलेन यान्ति वृद्धिं स्तनकर्णवराङ्गलिङ्गानि ॥१२॥

कसीस, असगन्ध, लोध और गजपीपल इनके कल्कद्वारा उत्तम विधिसे तेलको सिद्धकर मर्दन करनेसे स्तन, कान, योनि और लिङ्गकी वृद्धि होतीहै॥

श्रीपर्णीतैल।

श्रीपर्णीरसकल्काभ्यां तैलं सिद्धं तिलोद्भवम्।
तत्तैलं तूलकेनैव स्तनस्योपरि धारयेत् ॥
पतितावुत्थितौ स्त्रीणां भवेतांश्च पयोधरौ ॥ १३ ॥

कुम्भेरकी जडके काथ और कल्कद्वारा तिलके तेलको विधिपूर्वक पकावे। उस तेलको रुईके फोयेसे स्तनोंपर लगानेसे गिरेहुए स्तन फिर उन्नतहोजातेहैं॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां स्तनरोगचिकित्सा॥

बालरोगकी चिकित्सा।

त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्त्तकः।
स्वास्थ्यं ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां रोगसम्भवः॥१॥
क्षीरपाय्यौषधं धात्र्याः क्षीरान्नादस्य चोभयोः।
अन्नेन वा शिशौ देयं भेषजं भिषजा सदा ॥ २ ॥

बालक तीन प्रकारके होते हैं—जैसे एक दूध पीनेवाले, दूसरे दूध और अन्न खानेवाले और तीसरे केवल अन्नको खानेवाले। दूषित दूध और दूषित अन्नके होनेसे ही बालक रोगी होते हैं और दूध तथा अन्नके निर्दोष होनेसे बालक स्वस्थ रहते हैं। दूध पीनेवाले बालकको रोग हो तो धाय (बालकको दूध पिलानेवाली) को औषधि सेवन करावे और दूधपायी तथा अन्नभोजी बालकके रोग होनेपर बालक और धाय दोनोंको औषधि सेवन करावे। पर अन्नखानेवाले बालकको रोग होनेपर धायको कदापि औषधि सेवन न करावे। अन्नके साथ औषध मिलाकर बालकको सेवन करावे ॥ १ ॥ २ ॥

मात्रया लङ्घयेद्धात्रीं शिशोर्नेष्टं विशोषणम् ।
सर्वं निवार्यते बाले स्तन्यन्तु न निवार्यते ॥ ३ ॥

बालकके रोग उत्पन्न होनेपर आवश्यकतानुसार धायको लंघन करावे और बालकको लंघन या दस्त कदापि न करावे। बालकको अन्यान्य सर्वप्रकारकी वस्तुओंसे वर्जित करें; किन्तु माताका दूध पीना कभी बन्द न करे ॥ ३ ॥

भेषजं पूर्वमुद्दिष्टं नराणां यज्ज्वरादिषु ।
देयं तदेव बालानां मात्रा तस्य कनीयसी ॥ ४ ॥

मनुष्योंके ज्वरादिरोगोंमें पहले जो औषधियें कही हैं वे ही औषधियें बालकोंके ज्वरादिरोगोंमें अल्पमात्रासे देनी चाहिये ॥ ४ ॥

प्रथमे मासि जातस्य शिशोर्भेषजरक्तिका ।
अवलेह्या तु कर्त्तव्या मधुक्षीरसिताघृतैः ॥ ५ ॥
एकैकां वर्द्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत् ।
तदूर्ध्वं माशवृद्धिः स्याद्यावद्दाषोडशाब्दिकः ॥ ६ ॥

एक महीनेके बालकको एक रत्ती प्रमाण औषधि शहद, दूध, मिश्री अथवा घृतके साथ मिलाकर चटानी चाहिये। दूसरे महीनेसे सालभर तकके बालकको प्रत्येक मासमें एकएक रत्ती मात्रा बढाकर देवे और सालभरकी अवस्थावाले बालकसे सोलह वर्षतककी अवस्थावाले बालकोंको प्रत्येक वर्ष एकएक माशेकी मात्रा बढाकर सोलह माशेतक औषधि देनी चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

यो बालोऽचिरजातस्तन्यं न गृह्णाति तस्य सहसैव ।
धात्रीमधुघृतपथ्याकल्केन घर्षयेज्जिह्वाम् ॥ ७ ॥

जो थोडे दिनोंका बालक माताके दूधको नहीं पीवे तो आमले और हरडके बारीकचूर्णको शहद और घीमें मिलाकर उसकी जिह्वापर घिसे। इससे दूध पीने लगता है ॥ ७ ॥

कुष्ठं वचाभया ब्राह्मी कनकं क्षौद्रसर्पिषा ।
वर्णायुःकान्तिजननं लेहं बालस्य दापयेत् ॥ ८ ॥

कूठ, वच, हरड, ब्राह्मी और सुवर्णभस्म इनके चूर्णको समानभाग लेकर घी और शहदमें मिलाकर बालकको चटावे इससे वर्ण, आयु और कान्तिकी वृद्धि होती ह ॥ ८ ॥

स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत् ।
ह्रस्वेन पञ्चमूलेन स्थिरया वा सितायुतम् ॥ ९ ॥

माताके या धायके स्तनोंमें दूधका अभाव होनेपर बालकको बकरीका अथवा गौका दूध हल्का करके पिलावे। किम्वा लघुपञ्चमूल या शालपर्णीका क्वाथ दूध और मिश्रीके सहयोगसे पान कराना चाहिये ॥ ९ ॥

मृत्पिण्डेनाग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेन सोष्मणा ।
स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति ॥ १० ॥

मिट्टीके ढेलेको तपाकर और गरम दूधमें डालकर उससे सुहाता २ नाभिपर स्वेद देवे तो बालककी नाभिकी सूजन दूर होती है ॥ १० ॥

नाभिपाके निशालोध्रप्रियङ्गुमधुकैः शृतम् ।
तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिर्वाप्यवचूर्णनम् ॥ ११ ॥

बालककी नाभि पकजाने पर हल्दी, लोध, फूलप्रियंगु और मुलैठी इनके कल्कद्वारा तेलको पकाकर नाभिपर मालिश करे अथवा उक्त औषधियोंके चूर्णको नाभिपर घर्षण करे ॥ ११ ॥

सोमग्रहणे विधिवत्केकिशिखामूलमुद्धृतं बद्धम् ।
जघनेऽथ कन्धरायां क्षपयत्यहिण्डिकां नियतम् ॥ १२ ॥

चन्द्रग्रहण होनेपर चिरचिटेकी जडको उखाड बालककी जाँघ अथवा गर्दनमें बाँध देवे तो अहिण्डिकारोग निस्सन्देह दूर होता है ॥ १२ ॥

सप्तदलपुष्पमरिचं पिष्टं गोरोचनासहितम् ।
पीतं तद्वत्तण्डुलभक्तकृतो दग्धपिष्टकप्राशः ॥ १३ ॥

सतौनेके फूल, मिरच और गोरोचन इनको एकत्र पीसकर पान करावे अथवा अन्नके साथ चावलोंको पीसकर केलेके पत्तेपर रख कुशासे बाँधकर दग्धकरके भक्षण करावे तो अहिण्डिकारोग नष्ट होता है ॥ १२–१३ ॥

हरिद्राद्वययष्ट्याह्वसिंहीशक्रयवैः कृतः ।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नः कषायः स्तन्यदोषनुत् ॥ १४ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, मुलैठी, कटेरी इंद्रजौ इनका काथ बनाकर पान करानेसे बालकका ज्वर, अतीसार(दस्त)और धायके स्तन्यदोषादिविकार जातेहैं॥१४॥

रजनीदारुसरलं श्रेयसी बृहतीद्वयम्।
पृश्निपर्णी शताह्वा च लीढं माक्षिकसर्पिषा॥ १५ ॥
ग्रहणीदीपनं हन्ति मारुतार्त्तिं सकामलाम्।
ज्वरातीसारपाण्डुघ्नं बालानां सर्वरोगजित्॥ १६ ॥

हल्दी, देवदारु, धूपसरल, गजपीपल, कटेरी, बडीकटेरी, पृश्निपर्णी और सोया इनके चूर्णको समानभाग लेकर शहद और घीमें मर्दन करके बालकको चटानेसे ग्रहणी, वातरोग, कामला, ज्वर, दस्त, पाण्डु और अन्यान्य सर्वप्रकारके विकार नष्ट होते हैं तथा अग्निदीपन होती है॥ १५--१६ ॥

मिषीकृष्णाञ्जनं लाजा शृङ्गीमरिचमाक्षिकैः।
लेहः शिशोर्विधातव्यश्छर्दिकासज्वरापहः॥ १७ ॥

सौंफ, पीपल, रसौत, खीलोंका चूर्ण, काकडासिङ्गी और काली मिरच, इनके चूर्णको समानभाग लेकर शहदमें खरलकरके भक्षण करानेसे बालकके वमन, खाँसी और ज्वरादिविकार नष्ट होते हैं॥ १७ ॥

पीतं पीतं वमेद्यस्तु स्तन्यं तन्मधुसर्पिषा।
द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकोलञ्च लेहयेत्॥ १८ ॥

जो बालक दूधको पीते २ ही डालदेवे तो उसको बडीकटेरी और कटेरीके फलोंका रस घी और शहदके साथ मिलाकर पान करावे अथवा पञ्चकोलका चूर्ण घी और शहदमें मिश्रितकर चटावे॥ १८ ॥

आम्रास्थिलाजासिन्धूत्थैर्लेहः क्षौद्रेण छर्दिनुत्॥१९॥

आमकी गुठलीकी गिरी, खीलें और सेंधानमक इनके चूर्णको शहदके साथ मिलाकर चटानेसे वमन (कै) होना दूर होता है॥ १९॥

पिप्पलीमरिचानाञ्च चूर्णं समधुशर्करम्।
रसेन मातुलुङ्गस्य हिक्काच्छर्दिनिवारणम्॥ २० ॥

पीपल काली मिरच इनके चूर्णको शहद और खाँडमें मिलाकर बिजोरे नींबूके रसके साथ पान करानेसे हिचकी और वमन होना बन्द होता है॥२०

पेठीपाठामूलं जम्ब्वाः सहकारवल्कलतः कल्कतः।
इत्येकशश्च पिण्डो विधृतो हन्नाभितालवादौ॥
छर्द्यतीसारजं वेगं प्रबलं धत्ते तदेव नियमेन॥ २१ ॥

पेटारिवृक्ष, पाढकी जड, जामुनकी छाल और आम्रकी छाल, इनमेंसे किसीएक चीजको पीसकर गोलासा बनालो । उसको बालकके हृदय, नाभि और तालुआदि स्थानोंमें रखनेसे वमन और अतीसारका प्रबल वेगसहित होना दूर होता है ॥ २१ ॥

पत्रैर्बदरचाङ्गेरीकाकमाचीकपित्थजैः ।
शिशोरुग्वम्यतीसारनाशनं मूर्द्धलेपनम् ॥ २२ ॥

बेर, अम्ल नोनिया, मकोय और कैथ इनके पत्तोंको एकत्र पीसकर मस्तकपर लेपकरनेसे बालकके कै और दस्त होना आदिविकार नष्ट होते हैं॥२२॥

क्षीरादस्य शिशोरामं शुष्कं दृष्ट्वा तु दारुणम् ।
माषयूषं पिबेद्धात्रीपिप्पलीचूर्णसंयुतम् ॥ २३ ॥

दूधको पीनेवाले बालकके दस्तोंके साथ२दारुण सूखीआम निकलती मालुम होतो उसकी धायको पीपलका चूर्ण डालकर उडदोंका यूष पान करावे ॥२३॥

स्तन्यपस्य कुमारस्य सर्वस्यामातिसारिणः ।
धात्रीं विलङ्घयेद्धीमान् देहदोषाद्यपेक्षया ॥
पञ्चकोलकसिद्धं वा पेयादिश्च प्रयोजयेत् ॥ २४ ॥

दूध पीनेवाले बालकके आमसहित दस्त होते हों तो उसकी धायको लंघन करावे । अथवा पञ्चकोलके द्वारा सिद्धकर पेया पान करनेको देवे ॥ २४ ॥

वचा मुस्तं भद्रदारुनागरातिविषागणः ।
हरिद्राद्वययष्ट्याह्वासिंहीशक्रयवैः कृतः ॥ २५ ॥
एतौ वचाहरिद्रादिगणौ स्तन्यविशोधनौ ।
आमातिसारशमनौ कफमेदोविशोषणौ ॥
क्काथजलं मात्रा पेयं बालेऽपि किञ्चिद्देयम् ॥ २६ ॥

वच, भद्रमोथा, देवदारु, सोंठ और अतीस इन औषधियोंके समुदायको वचादिगण कहते हैं। एवं हलदी दारुहलदी, मुलैठी, कटेरी और इन्द्रजौ इनके समूहको हरिद्रादिगण कहते हैं । इन दोनों गणोंका क्काथ स्तन्यविशोधक, आमातीसारनाशक तथा कफ और मेदको शुष्क करनेवाला है । उक्तगणोंका क्काथ धायको पानकरावे और बालकको भी कुछ थोडासा देवे ॥ २५॥ २६ ॥

बिल्वञ्च पुष्पाणि च धातकीनां जलं सलोध्रं गजपिप्पली च । क्काथावलेहौ मधुना विमिश्रौ बालेषु योज्यावतिसारितेषु ॥ २७ ॥

बेलगिरी, धायके फूल, सुगन्धवाला, लोध और गजपीपल इनका क्वाथ या चूर्ण शहदमें मिलाकर बालकको सेवन करानेसे अतीसाररोग नष्ट होता है ॥ २७ ॥

आम्रातकाम्रजम्बूनां त्वचमादाय चूर्णयेत्।
मधुना लेहयेद्बालमतीसारविनाशनम् ॥ २८ ॥

अम्बाडेकी छाल, आमकी छाल और जामुनकी छाल इनको एकत्र पीसकर और शहदमें मिलाकर बालकको चटावे तो दस्त होने बन्द होते हैं ॥ २८ ॥

सितजीरकसर्ज्जचूर्णं बिल्वदलोत्थाम्बुमिश्रितं पीतम्।
हन्त्यामरक्तशूलं गुडसहितं श्वेतसर्जो वा ॥ २९ ॥

सफेद जीरा और राल इनके चूर्णको बेलपत्रीके रसमें अथवा केवल श्वेतरालके चूर्णको गुडके साथ मर्दन करके बालकको सेवन करानेसे आमरक्त और उसकी पीडा नष्ट होती है ॥ २९ ॥

समङ्गा धातकी पद्मं वयस्था कच्छुरा तथा।
पिष्टैरेतैर्यवागुः स्यादतीसारविनाशिनी ॥ ३० ॥

वराहाक्रान्ता, धायके फूल, कमलकेशर, गिलोय और कौंछकी जड इनको एकत्र पीसकर इनकी यवागु बनावे । यह यवागु बालकको पान करानेसे अतीसारको नष्ट करती है ॥ ३० ॥

बिल्वमूलकषायेण लाजांश्चैव सशर्करान्।
आलोड्य पाययेद्बालं छर्द्यतीसारनाशनम् ॥ ३१ ॥

बेलकी जडके क्राथमें खीलोंका चूर्ण और चीनी मिलाकर बालकको पिलानेसे वमन और अतीसार दूर होते हैं ॥ ३१ ॥

कल्कः प्रियङ्गुकोलास्थिमध्यमुस्तरसाञ्जनैः।
क्षौद्रलीढः कुमारस्य छर्दितृष्णातिसारनुत् ॥ ३२ ॥

फूलप्रियंगु, बेरकी गुठलीकी मींग, नागरमोथा और रसौत इन सबके चूर्णको एकत्र शहदके साथ खरल करके बालकको चटानेसे कै प्यास और दस्त होने बन्द होते हैं ॥ ३२ ॥

मोचरसं समङ्गा च धातकी पद्मकेशरम्।
पिष्टैरेतैर्यवागुः स्याद्रक्तातिसारनाशिनी ॥ ३३ ॥

मोचरस, वराहक्रान्ता, धायके फूल और कमलकेशर इन सबको एकत्र पीसकर इनके द्वारा यवागू बनाकर बालकको सेवन करावे तो रक्तातिसार नष्ट होय ३३

लेहस्तैलसिताक्षौद्रतिलयष्ट्याह्वकल्कितः।
बालस्य रुन्ध्यान्नियतं रक्तस्रावं प्रवाहिकाम्॥ ३४॥

तिलका तेल, मिश्री, शहद, तिल और मुलैठी इन सबको एकत्र पीसकर बालकको सेवन करानेसे रक्तस्राव और प्रवाहिकारोग निश्चय दूर होतेहैं॥३४

लाजा सयष्टिमधुकश्शर्कराः क्षौद्रमेव च।
तण्डुलोदकसंयुक्तं क्षिप्रं हन्ति प्रवाहिकाम्॥ ३५॥

खीलें, मुलैठी, चीनी और शहद इन सबको एकत्र मर्दनकर चावलोंके जलके साथ बालकको पान करानेसे प्रवाहिकारोग तत्काल नाश होताहै॥३५

अङ्कोटमूलमथवा तण्डुलसलिलेन वटजमूलं वा।
पीतं हन्त्यतिसारं ग्रहणीरोगञ्च दुर्वारम्॥ ३६॥

ढेरावृक्षकी जड अथवा वडकी जडको चावलोंके पानीके साथ पीसकर पान करानेसे बालकके दस्त और संग्रहणीरोग नष्ट होते हैं॥ ३६॥

मरिचमहौषधकुटजं द्विगुणीकृतमुत्तरोत्तरं क्रमशः।
गुडतक्रयुतमेतद्ग्रहणीरोगं निहन्त्याशु॥ ३७॥

काली मिरच एक भाग, सोंठ दो भाग और कुडेकी छाल ४ भाग इनको यथाक्रमसे लेकर गुड और मट्ठेके साथ खरल करके पान करानेसे संग्रहणी तत्काल नष्ट होती है॥ ३७॥

बिल्वशक्राम्बुमोचाब्दसिद्धमाजं पयः शिशोः।
सामां सरक्तां ग्रहणीं पीतं हन्यात्त्रिरात्रितः॥ ३८॥

वेलगिरी, इन्द्रजौ, सुगन्धवाला, मोचरस और नागरमोथा इन सबको समान भाग मिलाकर दो तोले परिमाण ले १६ तोले बकरीके दूध और एक सेर जलमें पकावे।जब दूधमात्र शेष रहजाय तब उस दूधको सेवन करानेसे बालकके आमसहित और रक्तसहित संग्रहणीरोग तीनादिनमें ही नष्ट होताहै॥३८॥

तद्वदजाक्षीरसमो जम्बुत्वगुद्भवो रसः॥

बकरीका दूध और जामुनकी छालका रस इन दोनोंको समानभाग ले एकत्र मिश्रितकर पान करानेसे बालककी संग्रहणी नष्ट होती है॥

गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत्क्रियाम्।
रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम्॥ ३९॥

बालककी गुदा पकगई हो तो पित्तनाशक चिकित्सा करे और रसौतको पीसकर गुदापर लेप करे तथा पान करावे॥ ३९॥

दुष्टमन्नादिभिर्मातुः स्तन्यं संपिबतः शिशोः ।
यदा प्रकुपितं पित्तं गुदं समभिधावति ॥ ४० ॥
तदा सञ्जायते तत्र जलौकोदरसन्निभः ।
व्रणः सदाहो व्यक्तोष्मा तदास्य स्याज्ज्वरः परः॥४१
हरितं पीतकं वापि वर्चस्तेन भवेद्ध्रुवम् ।
व्रणः पश्चाद्रुजो नाम व्याधिः परमदारुणः ॥ ४२ ॥

दूषित अन्नादिका सेवन करनेसे माताका दूध दूषित होजाताहै । उस दूषित दूधको पीनेसे बालकका पित्त कुपित होकर गुदामें पहुँच कर जौंकके उदरकी समान लाल लाल व्रण उत्पन्न करताहै । उस व्रणमें गुदामें दाह, सन्ताप और ज्वर होताहै और हरा अथवा पीला मल निकलता है । इस रोगका पश्चाद्व्रण नाम है । यह व्याधि बालकोंके लिये अतिभयंकर है॥४०-४२

चन्दनं सारिवे द्वे च शंखिनीति समायुतैः ।
पश्चाद्रुजे प्रलेपोऽयमवलेहस्तु शस्यते ॥ ४३ ॥

पश्चाद्व्रणरोगमें लालचन्दन, उसवा, अनन्तमूल और शङ्खपुष्पी इन औषधियोंके द्वारा प्रलेप और अवलेह सिद्धकर प्रयोग करना चाहिये ॥ ४३ ॥

कणोषणसिताक्षौद्रः सूक्ष्मैला सैन्धवैः कृतः ।
मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्यं शिशूनां लेह उत्तमः ॥ ४४ ॥

पीपल, कालीमिरच, मिश्री, शहद, छोटी इलायची और सैंधानमक इनका अवलेह बनाकर बालकके मूत्रावरोधमें प्रयोग करना उत्तम है ॥ ४४ ॥

घृतेन सिन्धुविश्वैला हिङ्गुभार्गीरजो लिहन् ।
आनाहं वातिकं शूलं जयेत्तोयेन वा शिशुः ॥ ४५ ॥

सैंधानमक, सोंठ, छोटी इलायची, हींग और भारंगी इनके समानभाग मिश्रित चूर्णको घीमें मिलाकर अथवा मन्दोष्णजलके साथ सेवन करनेसे बालकका वातजशूल और आनाहरोग दूर होताहै ॥ ४५ ॥

हरीतकीवचाकुष्ठकल्कं माक्षिकसंयुतम् ।
पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुपातनात् ॥४६॥

हरड, वच और कूठ इनको एकत्र पीसकर और शहदमें मिलाकर माताके दूधके साथ पान करानेसे बालक तालुपातरोगसे मुक्त होता है ॥ ४६ ॥

मुखपाके तु बालानां साम्रसारमयोरजः ।
गैरिकं क्षौद्रसंयुक्तं भेषजं सरसाञ्जनम् ॥ ४७ ॥

अश्वत्थत्वग्दलैः क्षौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनम् ।
दार्वीयष्ट्याभयाजातीपत्रक्षौद्रैस्तथापरम् ॥ ४८ ॥

बालकोंके मुखपाकरोगमें आमकी गुठलीकी गिरी, लोहचूर्ण, गेरू और रसौत इन औषधियोंको पीसकर शहदमें मिलाकर अथवा पीपलकी छाल और पत्तोंको पीसकर शहदके साथ किम्वा दारुहल्दी, मुलैठी, हरड और जावित्री इनके चूर्णको शहदके साथ मिलाकर मुखपाकमें प्रलेप करे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

सहजम्बीररसेन स्नुग्दलरसघर्षणं सद्यः ।
कृतमपहन्ति हि पाकं मुखजं बालस्य चाश्वेव ॥४९॥

थूहरके पत्तोंके रस और जम्बीरीनींबूके रसको एकत्र मिलाकर मुखमें लगानेसे बालकका मुखपाकरोग तत्काल नष्ट होता है ॥ ४९ ॥

लावतित्तिरिवल्लूररजः पुष्परसार्दितम् ।
द्रुतं करोति बालानां दन्तकेशरवन्मुखम् ॥ ५० ॥

लवा और तीतरके मांसके चूर्णको शहदमें मिलाकर मलनेसे बालकका दन्तक्षतरोग दूर होकर मुख केशरकी समान कान्तिमान् होता है ॥ ५० ॥

दन्तोद्भवेषु रोगेषु न बालमतियन्त्रयेत् ।
स्वयमेवोपशाम्यन्ति जातदन्तस्य ते गदाः ॥ ५१ ॥

दाँतोंके निकलते समय बालकोंके अनेक रोग उत्पन्न होजाते हैं। उस समय उन रोगोंको चिकित्सा अथवा आहारादिका कोई कठिन नियम करके बालकको पीडित नहीं करना चाहिये। क्योंकि दाँतोंके निकल आनेपर वे सब रोग स्वयं ही शान्त हो जाते हैं ॥ ५१ ॥

विभीतकफलं कुष्ठं हरितालं मनःशिला ।
एभिस्तैलं विपक्तव्यं बालानां पूतिकर्णके ॥ ५२ ॥

बहेडा, कूठ, हरिताल और मैनसिल इनके कल्क द्वारा कडवे तेलको पकाकर बालकोंके पूतिकर्णरोगमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ५२ ॥

सुवर्णगैरिकस्यापि चूर्णानि मधुना सह ।
लीढ्वा सुखमवाप्नोति क्षिप्रं हिक्कार्दितः शिशुः॥५३॥

अत्यन्त लालरंगके गेरूके चूर्णको शहदके साथ मिलाकर चाटनेसे बालककी हिचकी आना शीघ्र दूर होतीहै ॥ ५३ ॥

चित्रकं शृङ्गवेरञ्च तथा दन्ती गवाक्ष्यपि ।

चूर्णं कृत्वा तु सर्वेषां सुखोष्णेनाम्बुना पिबेत् ॥
कासं श्वासमथो हिक्कां कुमाराणां प्रणाशयेत् ॥ ५४ ॥

चीतेकी जड, सोंठ,दन्तीकी जड और इन्द्रायनकी जड इनके चूर्णको एकत्र पीसकर सुखोष्णजलके साथ पनिसे बालकोंकी खाँसी, श्वास और हिचकी आना बन्द होतीहैं ॥ ५४ ॥

द्राक्षायासाभयाकृष्णा चूर्णं सक्षौद्रसर्पिषा ।
लीढं कासं निहन्त्याशु श्वासञ्च तमकं तथा ॥ ५५ ॥

दाख,धमासा,हरड और पीपल इनके चूर्णको शहद और घीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे बालकोंकी खाँसी,श्वास और तमकरोग शीघ्र नष्ट होताहै५५

दाडिमस्य च बीजानि जीरकं नागकेशरम् ।
चूर्णितं शर्कराक्षौद्रलीढं तृष्णानिवारणम् ॥ ५६ ॥

अनारके बीज, जीरा और नागकेशर इनको एकत्र पीसकर चीनी और शहदमें मिलाकर चाटनेसे बालकोंकी तृषा निवारणहोती है ॥ ५६ ॥

मायूरपक्षभस्मव्युषितजलं तेन भावितं पेयम् ।
तृष्णाघ्नं वटकाष्ठजभस्मजलं वक्त्रशोषजिद्वक्त्रे ॥ ५७ ॥

मोरपंखकी भस्मको जलमें भिजोकर अगलेदिन, वह बासी जल बालकको पान करावे अथवा बडकी छालकी भस्म जलमें भिजोकर उसके बासी जलको पानकरावे तो बालककी तृषा और मुखशोषरोग नष्टहोताहै ॥ ५७ ॥

पिष्टैश्छागेन पयसा दार्वीमुस्तकगैरिकैः ।
बहिरालेपनं शस्तं शिशोर्नेत्रामयार्त्तिजित् ॥ ५८ ॥

दारुहल्दी, नागरमोथा और गेरू इनको बकरीके दूधमें पीसकर नेत्रोंके बाहर पलकोंपर लेप करनेसे बालकोंके नेत्ररोगकी पीडा शान्त होती है ॥५८

मनःशिला शङ्खनाभिः पिप्पल्योऽथ रसाञ्जनम् ।
वर्त्तिः क्षौद्रेण संयुक्ता बाले सर्वाक्षिरोगनुत् ॥५९॥

मैनसिल, शङ्खनाभि, पीपल और रसौत इनको समानभाग लेकर शहदके साथ खरल करके इनकी बत्ती बनालेवे । इस बत्तीको बालककी आँखोंमें आँजनेसे सर्वप्रकारके नेत्ररोग नष्ट होतेहैं ॥ ५९ ॥

मातृस्तन्यः कटुस्नेहः काञ्जिकैर्भावितो जयेत् ।
स्वेदाद्दीपशिखात्तप्तो नेत्रामयमलक्तकः ॥ ६० ॥

माताका दूध, कडवा तेल और महावर इनको क्रमसे ७ बार काँजीमें भावना देकर धूपमें सुखा सुखा लेवे। फिर दीपककी लोयपर गरम करके उससे नेत्रोंमें स्वेद देनेसे बालकोंका कुकूणनामक नेत्ररोग शमन होताहै ॥ ६० ॥

शुण्ठीभृङ्गनिशाकल्कः पुटपाकः ससैन्धवः ।
कुकूणकेऽक्षिरोगेषु तद्रसाश्च्योतनं हितम् ॥ ६१ ॥

सोंठ, भाँगरा और हल्दी इनको एकत्र पुटपाककर भस्म करलेवे। फिर उस भस्मके जलमें सैंधानमक डालकर उस रसको कुकूणक नामक नेत्ररोगमें नेत्रोंके भीतर टपकाना हितकर है ॥ ६१ ॥

कृमिघ्नालशिला दार्वी लाक्षा काञ्चनगैरिकः ।
चूर्णाञ्जनं कुकूणे स्याच्छिशूनां पोथकीषु च ॥ ६२ ॥

वायविडङ्ग, हरिताल, मैनसिल, दारुहल्दी, लाख और लालगेरू इनको समानांश ले बारीक चूर्ण करलेवे। फिर उस चूर्णको शहदमें मिलाकर सलाईसे आँखोंमें आँजे तो बालकोंके कुकूण और पोथकीमें शीघ्र लाभ होताहै ॥६२॥

सुदर्शनामूलचूर्णाञ्जनं स्यात्तु कुकूणके ॥

कुकूणकरोगमें सुदर्शनवृक्षकी जडका चूर्ण आँजनेसे आराम होताहै ॥

गृहधूमनिशाकुष्ठवाजिकेन्द्रयवैः शिशोः ।
लेपस्तक्रेण हन्त्याशु सिध्मपामाविचर्चिकाः ॥ ६३ ॥

घरका धुआँ, हल्दी, कूठ, असगन्ध और इन्द्रजौ इनको समान भाग ले सबको मट्ठेके साथ एकत्र पीसकर लेप करनेसे बालकके सिध्म, खुजली और विचर्चिकादि विकार बहुत जल्द नष्ट होते हैं ॥ ६३ ॥

सारिवादि ।

सारिवातिललोध्राणां कषायो मधुकस्य च ।
संस्राविणी मुखे शस्तो धावनार्थं शिशोः सदा ॥६४॥

अनन्तमूल, तिल, लोध और मुलैठी इनका काढा बनाकर उससे मुख धोवे तो बालकका मुखस्रावरोग नष्ट होताहै ॥ ६४ ॥

मुस्तकादि ।

मुस्तकातिविषाशुण्ठीबालकेन्द्रयवैः कृतः ।
क्वाथः शिशुः पिबेत्प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ॥६५॥

नागरमोथा, अतीस, सोंठ, सुगन्धवाला और इन्द्रजौ, इनका क्वाथ प्रातःकाल बालकको सेवन करानेसे सर्वप्रकार अतीसाररोग नाश होता है ॥६५॥

हरिद्रादि।

हरिद्राद्वययष्टयाह्वसिंहीशक्रयवैः कृतः।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नः कषायः स्तन्यदोषजित् ॥ ६६ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, मुलैठी, कटेरी और इन्द्रजौ इनके कल्कद्वारा क्वाथ बनाकर बालककी माता अथवा धायको पान करानेसे ज्वर, अतीसार और स्तन्यदोष दूर होता है ॥ ६६ ॥

भद्रमुस्तादि।

भद्रमुस्ताभयानिम्बपटोलमधुकैः कृतः।
क्वाथः कोष्णः शिशोरेष निश्शेषज्वरनाशनः॥ ६७ ॥

भद्रमोथा, हरड, नीमकी छाल, पटोलपात और मुलैठी इन औषधियोंका मन्दोष्ण क्वाथ बालकको सेवन करावे तो यह समग्रज्वरको नष्ट करता है॥६७

समङ्गादि।

समङ्गा धातकीलोध्रसारिवाभिः शृतं जलम्।
दुर्द्धरेऽपि शिशोर्देयमतीसारे समाक्षिकम् ॥ ६८ ॥

वराहक्रान्ता, धायके फूल, लोध और अनन्तमूल इनके द्वारा बनायाहुआ क्वाथ शहदके साथ मिलाकर दुर्द्धर अतीसारमें बालकको देना चाहिये॥६८॥

नागरादि।

नागरातिविषा मुस्तं बालकेन्द्रयवैः कृतः।
कुमारं पाययेत्प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ॥ ६९ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, सुगन्धबाला और इन्द्रजौ इनका क्वाथ बनाकर सुहाता२प्रातःसमय बालकको पान करावे तो सर्वप्रकारके दस्त बन्दहोतेहैं॥६९

बिल्वादि।

बिल्वचूतकषायेण लाजांश्चैव सशर्कराम्।
आलोड्य पाययेद्बालं छर्द्यतीसारनाशनम् ॥ ७० ॥

बेलगिरी और आमकी छाल इनके काढेमें खीलोंका चूर्ण और खाँड डालकर सबको एकमएक करके बालकको सेवन करानेसे कै, दस्त दूर होते हैं ॥

पटोलादि।

पटोलत्रिफलारिष्टहरिद्राक्वथितं पिबेत्।
क्षतवीसर्पविस्फोटज्वराणां शान्तये शिशुः ॥ ७१ ॥

क्षत, विसर्प, विस्फोट और ज्वरादिरोगोंको शान्त करनेके लिये बालकको परबल,त्रिफला,नीमकी छाल और हल्दी इनका क्वाथ पान कराना हितकारीहै॥

पञ्चमूलादि ।

पञ्चमूलीकषायेण सघृतेन पयः शृतम् ।
सशृङ्गवेरं सगुडं पीतं हिक्कार्दितं पिबेत ॥ ७२ ॥

बेल, शोंनापाठा, कुम्भेर, पाढर, अरणी इनकी छालोंको समानभागसे मिश्रित दो तोले, जल ३२ तोले और दूध १६ तोले लेकर सबको एकत्र कर पकावे । जब दूधमात्र अवशिष्ट रहे तब उसको उतारकर उसमें घी, अदरखका रस और गुड डालकर पान करानेसे बालकको हिचकी आना दूर होती है ॥

बिल्वादि ।

बिल्वशक्राम्बुमोचाब्दसिद्धमाजं पयः शिशोः ।
सामां सरक्तां ग्रहणीं पीतं हन्यात्त्रिरात्रितः ॥ ७३ ॥

बेलगिरी, इन्द्रजौ, सुगन्धवाला, मोचरस और नागरमोथा इन औषधियोंके क्वाथ द्वारा बकरीके दूधको सिद्धकर पान करानेसे बालककी आम और रक्तसहित संग्रहणी तीन दिनमें ही नष्ट होती है ॥ ७३ ॥

शृङ्ग्यादि ।

शृङ्गीं समुस्तातिविषां विचूर्ण्य लेहं विदध्यान्मधुना शिशूनाम् । कासज्वरच्छर्दिभिरर्दितानां समाक्षिकश्चातिविषां तथैकाम् ॥ ७४ ॥

काकडासिङ्गी, नागरमोथा और अतीस इनको चूर्णकरके शहदमें मिलाकर अथवा केवल अतीसके चूर्णको ही शहदमें मिलाकर बालकोंको चटानेसे बच्चोंकी खाँसी, ज्वर और वमनादि रोगोंकी निवृत्ति होती है ॥ ७४ ॥

रजन्यादि ।

रजनी दारुसरलं श्रेयसी बृहतीद्वयम् ।
पृश्निपर्णी शताह्वा च लीढं माक्षिकसर्पिषा ॥ ७५ ॥
ग्रहणीदीपनं हन्ति मारुतार्त्तिं सकामलाम् ।
ज्वरातीसारपाण्डुघ्नं बालानां सर्वरोगजित् ॥ ७६ ॥

हल्दी, देवदारु, धूपसरल, गजपीपल, कटेरी, बडीकटेरी, पृश्निपर्णी और सोया इनके चूर्णको बराबर भाग ले घी और शहदमें मिलाकर चटानेसे बालकोंके संग्रहणी, मन्दाग्नि, वातरोग, कामला, ज्वर, अतीसार, पाण्डु एवं अन्यान्य सर्वप्रकारके रोग दूर होते हैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

कर्कटादि।

कर्कटातिविषा शुण्ठी धातकी बिल्वबालकम्।
मुस्तं मज्जां च कोलस्य मधुना सह मेलयेत् ॥७७॥
हन्ति ज्वरमतीसारं दुर्वारं ग्रहणीगदम्।
छर्दिं रक्तस्रुतिं कासं श्वासं पश्चाद्गुजं तथा ॥ ७८ ॥

काकडासिंगी, अतीस, सोंठ, धायके फूल, बेलगिरी, सुगन्धवाला, नागरमोथा और बेरकी गुठलीकी गिरी इन औषधियोंके चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करानेसे बालकोंकी ज्वर, दस्त, दुस्तर संग्रहणी, वमन, रक्तस्राव, खाँसी, श्वास और पश्चाद्रोग प्रभृति व्याधियाँ शमन होती हैं ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

बालचतुर्भद्रिका।

घनकृष्णारुणाशृङ्गीचूर्णं क्षौद्रेण संयुतम्।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं श्वासकासवमिं हरम् ॥ ७९ ॥

नागरमोथा, पीपल, अतीस और काकडासिंगी इन सबके बारीक चूर्णको शहदके साथ मिश्रित कर चटानेसे बालकके ज्वर, दस्त, श्वास, खाँसी और वमनादि विकार नष्ट होते हैं ॥ ७९ ॥

धातक्यादि।

धातकीबिल्वधन्याकलोध्रेन्द्रयवबालकैः।
लेहः क्षौद्रेण बालानां ज्वरातीसारवान्तिजित्॥८०॥

धायके फूल, बेलगिरी, धनियाँ, लोध, इन्द्रजौ और सुगन्धवाला इनको समानभाग ले एकत्र पीसकर शहदके साथ मिलाकर चाटनेसे बालकोंके ज्वर, दस्त और वमनरोग दूर होते हैं ॥ ८० ॥

पुष्करादि।

पुष्करातिविषाशृङ्गीमागधीधन्वयासकैः।
तच्चूर्णं मधुना लीढं शिशूनां पञ्चकासनुत् ॥ ८१ ॥

पोहकरमूल, अतीस, काकडासिंगी, पीपल और धमासा इनके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे तो बालकोंकी पाँचों प्रकारकी खाँसी नष्ट होती हैं ॥ ८१

बालरोगान्तकरस।

शाणं सूतस्य शुद्धस्य गन्धकस्य च तत्समम्।
सुवर्णमाक्षिकस्यापि चार्द्धभागं विनिःक्षिपेत् ॥ ८२ ॥

ततः कज्जलिकां कृत्वा लौहपात्रे दृढे नवे ।
केशराजस्य भृङ्गस्य निर्गुण्ड्याः पत्रसम्भवम् ॥ ८३ ॥
स्वरसं काकमाच्याश्च ग्रीष्मसुन्दरकस्य च ।
सूर्यावर्त्तकशालिञ्चभेकपर्णीरसन्तथा ॥ ८४ ॥
श्वेतापराजितायाश्च मूलं दद्याद्विचक्षणः ।
देयं रसार्द्धभागेन चूर्णं मरिचसम्भवम् ॥ ८५ ॥
शुभे शिलामये पात्रे लौहदण्डेन मर्दयेत् ।
शुष्कमातपसंयोगाद्वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ८६ ॥
प्रमाणं सर्षपस्येव बालानां विनियोजयेत् ।
हन्ति त्रिदोषकञ्चैव ज्वरमामं सुदारुणम् ॥ ८७ ॥
कासं पञ्चविधञ्चापि सर्वरोगं निहन्ति च ।
शिशूनां रोगनाशाय निर्मितोऽयं महारसः ॥ ८८ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक, प्रत्येक चार २ माशे और सोनामाखी दो माशे लेवे । फिर इनकी एकत्र कज्जली बनाकर उसको लोहेके पात्रमें रख कुकुरभाँगरा, भाँगरा, निर्गुण्डी, मकोय, गूमा शाक, हुलहुल, शालिञ्चशाक और मण्डूकपर्णी इनके रसमें यथाक्रम एकएकबार भावना देवे । फिर उसमें सफेद अपराजिताकी जडका चूर्ण २ माशे और काली मिरचका चूर्ण २ माशे मिलाकर उसको उत्तम पत्थरके बर्त्तनमें रख लोहेके दण्डेसे अच्छेप्रकार खरल करे । पश्चात् धूपमें सुखाकर सरसोंकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे प्रतिदिन एक २ गोली सेवन करानेसे बालकोंके त्रिदोषजनित ज्वर, दारुण आम ज्वर, पाँच प्रकारकी खाँसी एवं अन्य सर्व प्रकारके रोग शीघ्र नष्ट होते हैं । यह महारस बालकोंके रोगोंको दूर करनेके लिये रचागया है ॥ ८२-८८ ॥

कुमारकल्याणरस ।

सिन्दूरं मौक्तिकं हेम व्योमायःस्वर्णमाक्षिकम् ।
कन्यारसेन संमर्द्य कुर्यान्मुद्गमिता वटी ॥ ८९ ॥
वटिकां वटिकार्द्धं वा वयोऽवस्थां विवेच्य च ।
क्षीरेण सितया सार्द्धं बालरोगे प्रयोजयेत् ॥ ९० ॥
कुमाराणां ज्वरं श्वासं कसनञ्च सुदारुणम् ।
ग्रहदोषांश्च विविधान् स्तन्यस्याग्रहणं तथा ॥ ९१ ॥

कामलामतिसारञ्च कृशतां मन्दवाह्नितामू ।
रसः कुमारकल्याणो नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ९२ ॥

रससिन्दूर, मोतीकी भस्म, सुवर्ण, अभ्रक, लोहा और सोनामाखी इन सबकी भस्मोंको समानभाग ले घीग्वारके रसमें उत्तम प्रकार खरल करके मूँगकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। फिर प्रतिदिन प्रातः समय बालककी अवस्था और रोगका विचारकर एक गोली अथवा आधी गोली दूध और मिश्रीके साथ सेवन करावे तो यह बालकोंके ज्वर, श्वास, दारुण खाँसी अनेक प्रकारके ग्रहदोष, स्तन्यदोष, कामला, अतीसार, कृशता, मन्दाग्नि और अन्य सब प्रकारके रोगोंको यह कुमारकल्याणरस निश्चय नष्ट करताहै ॥८९-९२॥

अश्वगन्धाघृत।

पादकल्केऽश्वगन्धायाः क्षीरे दशगुणं पचेत् ।
घृतं पेयं कुमाराणां पुष्टिकृद्बलवर्णनम् ॥ ९३ ॥

असगन्धके १ सेर कल्क और दसगुने दूधमें यथाविधि २ सेर घृतको पकावे। इस घृतको पीनेसे बालकोंके अङ्गोंकी पुष्टि होतीहै तथा बल, वर्ण उत्पन्न होताहै ॥ ९३ ॥

बालचाङ्गेरीघृत।

चाङ्गेरीस्वरसे सर्पिश्छागक्षीरसमः पचेत् ।
कपित्थव्योषसिन्धूत्थसमङ्गोत्पलबालकैः ॥ ९४ ॥
सबिल्वधातकीमोचैः सिद्धं सर्वातिसारजित् ।
ग्रहणीं दुस्तरां हन्ति बालानान्तु विशेषतः ॥ ९५ ॥

अम्लनोनियाके २ सेर रसमें घी २ सेर, बकरीका दूध २ सेर एवं कैथ, सोंठ, मिरच, पीपल, सैंधानमक, वराहक्रान्ता, लालकमल, सुगन्धबाला, बेलगिरी, धायके फूल और मोचरस इन सबका समान भाग मिश्रित कल्क एक सेर डालकर उत्तमप्रकार घृतको सिद्ध करलेवे। यह घृत सर्व प्रकारके अतीसार और विशेषकर बालकोंकी दुस्तर संग्रहणीको नष्ट करताहै ॥ ९४॥९५ ॥

अष्टमङ्गलघृत।

वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि वा ।
सारिवा सैन्धवञ्चैव पिप्पलीघृतमष्टकम् ॥ ९६ ॥
मेध्यं घृतमिदं सिद्धं पातव्यञ्च दिनेदिने ।
दृढस्मृतिः क्षिप्रमेधाः कुमारो बुद्धिमान् भवेत् ॥ ९७ ॥
न पिशाचा न रक्षांसि न भूतो न च मातरः ।
प्रभवन्ति कुमाराणां पिबतामष्टमङ्गलम् ॥ ९८ ॥

वच, कूठ, ब्रह्मी, सफेद सरसों, अनन्तमूल, सैंधानमक और पीपल, इनका समानभाग मिलाहुआ चूर्ण १सेर और घी २सेर लेकर आठसेर जलमें पकाके जब उत्तमप्रकार पककर सिद्धहोजाय तब यह घृत प्रतिदिन उचितमात्रासे बालकको पानकरावे । इसके सेवनसे बालक दृढस्मृतिवाला, मेधावान् कुशाग्र बुद्धिवाला होताहै । इस अष्टमङ्गलनामक घृतको पीनेवाले बालकोंको पिशाच, राक्षस, भूत और षोडशमातृकायें बाधनेके लिये समर्थ नहीं होतीं ॥९६-९८

कुमारकल्याणघृत ।

शङ्खपुष्पी वचा ब्रह्मी कुष्ठं त्रिफलया सह ।
द्राक्षा सशर्करा शुण्ठी जीवन्ती जीरकं बला ॥९९॥
शठी दुरालभा बिल्वं दाडिमं सुरसा स्थिरा ।
मुस्तं पुष्करमूलञ्च सूक्ष्मैला गजपिप्पली ॥ १०० ॥
एषां कर्षसमैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
कषाये कण्टकार्याश्च क्षीरे तस्मिंश्चतुर्गुणे ॥१॥
एतत्कुमारकल्याणं घृतरत्नं सुखप्रदम् ।
बलपुष्टिकरं धन्यं पुष्ट्यग्निबलवर्द्धनम् ॥ २ ॥
छायासर्वग्रहालक्ष्मीकृमिदन्तगदापहम् ।
सर्वबालामयं हन्ति दन्तोद्भेदं विशेषतः ॥ ३ ॥

शङ्खपुष्पी, वच, ब्रह्मी, कूठ, त्रिफला, दाख, चीनी, सोंठ, जीवन्ती, जीरा, खिरैंटी, कचूर, धमासा, बेलगिरी, अनारका बक्कल, तुलसी, शालपर्णी, नागरमोथा, पोहकरमूल, छोटी इलायची और गजपीपल इन प्रत्येकको एक एक कर्ष लेकर चूर्ण करलेवे। फिर इस चूर्ण और एक प्रस्थ घृतको कटेरीके दो प्रस्थ क्काथ और ४ प्रस्थ दूधमें डालकर विधिपूर्वक पकावे । यह कुमारकल्याण नामकघृतरत्न सुखको देनेवाला, बल और पुष्टिको करनेवाला, अग्निबलको बढानेवाला तथा छाया, समस्तग्रह, अलक्ष्मी, कृमिरोग, दन्तरोग, बालकोंके सबरोग और विशेषकर दन्तोद्भेदरोगको नष्ट करनेवाला है ॥ ९९-१०३ ॥

लाक्षादितैल ।

लाक्षारससमं सिद्धं तैलं मस्तु चतुर्गुणम् ।
रास्नाचन्दनकुष्ठाब्दवाजिगन्धानिशायुगैः ॥ १०४ ॥
शताह्वादारुयष्ट्याह्वमूर्वातिक्ताहरेणुभिः ।
बालानां ज्वररक्षोघ्नमभ्यङ्गाद्बलवर्णकृत ॥ १०५ ॥

लाखका रस १ प्रस्थ, तिलका तेल १ प्रस्थ और दहीका तोड ४ प्रस्थ एवं रायसन, लालचन्दन, कूठ, नागरमोथा, असगन्ध, हल्दी, दारुहल्दी, सोया, देवदारु, मुलैठी, मूर्वा, कुटकी और रेणुका इनका कल्क समानभाग मिलित एक सेर लेवे। सबको यथाविधि एकत्र करके उत्तम प्रकार तेलको पकावे। यह तेल बालकोंके शरीरपर मालिश करनेसे जीर्णज्वर और राक्षसादिकी बाधा नष्ट होती है तथा बल और वर्णकी वृद्धि होती है ॥१०४॥१०५

इति भैषज्यरत्नावल्यां बालरोगचिकित्सा ॥

विषकी चिकित्सा।

स्थावरेण विषेणार्त्तं नरं यत्नेन वामयेत्।
वमनेन समं नास्ति यतस्तस्य चिकित्सितम् ॥ १ ॥
विषमत्यन्तमुष्णञ्च तीक्ष्णञ्च कथितं यतः॥
अतः सर्वविषे युक्तः परिषेकस्तु शीतलः ॥ २ ॥
औष्ण्यात्तैक्ष्ण्याद्विशेषेण विषं पित्तं प्रकोपयेत्।
वमितं सेचयेत्तस्माच्छीतलेन जलेन च ॥ ३ ॥
पाययेन्मधुसर्पिर्भ्यां विषघ्नं भेषजं द्रुतम्।
भोक्तुमम्लरसं दद्यात्सितया च समन्वितम् ॥ ४ ॥

स्थावरविषसे पीडित मनुष्यको प्रथम यत्नपूर्वक वमन करावे। क्योंकि वमन करानेके समान विषनाशक अन्य औषधि नहीं है। विष स्वभावतः अत्यन्त उष्ण और अत्यन्त तीक्ष्णवीर्य होताहै इस कारण सर्वप्रकारके विषोंमें शीतलक्रिया करे। विष अत्यन्त उष्ण होनेसे पित्तको कुपित करदेता है इसलिये वमन करानेके पीछे रोगीको शीतल जलसे सेचनकरे। और घृत तथा शहदके साथ विषनाशक औषधि शीघ्र प्रयोग करे अथवा मिश्रीके साथ खटाई मिलाकर भक्षण करानी चाहिये ॥ १-४ ॥

सर्वैरेवोदितः सर्पैः शाखादष्टस्य देहिनः।
दंशस्योपरि बध्नीयादरिष्टाश्चतुरङ्गुले ॥ ५ ॥
न गच्छति विषं देहमरिष्टाभिर्निवारितम्।
दहेद्दंशमथोत्कृत्य यत्र बन्धो न जायते ॥ ६ ॥

यदि किसी मनुष्यके हाथ अथवा पाँवमें साँप काटखाय तो तत्क्षण काटेहुए स्थानसे ४ अंगुल ऊपर उसके रस्सीसे अथवा डोरेसे खूब कसकर बन्धन

बाँधदेवे। इससे विष सब शरीरमें नहीं फैल सकेगा। जिस दंशस्थानमें बन्ध न बँधसकताहो उस स्थानको अस्त्रसे चीरकर दागदेवे ॥ ५ ॥ ६ ॥

मूलं तण्डुलवारिणा पिबति यः प्रत्यङ्गिरासम्भवं
निष्पिष्टं शुचिभद्रयोगदिवसे तस्याहिभीतिः कुतः।
दर्पादेव फणी यदा दशति तं मोहान्वितो मूलयन्
स्थाने तत्र स एव याति नियतं वक्त्रं यमस्याचिरात् ७॥

आषाढके महीनेमें पुष्यनक्षत्र और शुभदिनमें सिरसकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर जो पुरुष पीता है उसको कहीं भी सर्पका भय नहीं रहता। यदि क्रोधके कारण सर्प उस पुरुषको काट भी लेता है तो वह सर्प मोहको प्राप्त होकर गिरपडता है और वह उसी स्थानमें बहुत जल्द यमराजके मुँहका ग्रास होता है ॥ ७ ॥

मसूरनिम्बपत्राभ्यां योऽत्ति मेषगते रवौ।
अब्दमेकं न भीतिः स्याद्विषात्तस्य न संशयः ॥ ८ ॥

जो पुरुष वैशाखके महीनेमें मेषकी संक्रान्तिके दिन मसूरकी दालके दो दाने और नीमके दो पत्तोंको एकत्र पीसकर भक्षण करे तो उसको एक वर्ष पर्यन्त सर्पके विषसे भय नहीं रहता ॥ ८ ॥

धवलपुनर्नवजटया तण्डुलजलपीतया च पुष्यर्क्षे।
अपहरति खलु विषधरोपद्रव आवत्सरं पुंसाम् ॥ ९ ॥

पुष्यनक्षत्रमें सफेद पुनर्नवेकी जडको चावलोंके जलके साथ पीसकर सेवन करनेसे मनुष्योंको एकवर्षतक सर्पका भय कदापि नहीं होता ॥ ९ ॥

गृहधूमो हरिद्रे द्वे समूलं तण्डुलीयकम्।
अपि वासुकिना दष्टः पिबेद्दधिघृताप्लुतम् ॥ १० ॥

घरका धुआँ, हल्दी, दारुहल्दी और चौलाईकी जड इनको समानभाग ले एकत्र पीसकर दही और घीमें मिलाकर पीवे तो वासुकिसर्पद्वारा काटाहुआ भी पुरुष आरोग्य होता है ॥ १० ॥

कुलिकमूलनस्येन कालदष्टोऽपि जीवति ॥ ११ ॥

कोकिलावृक्षकी जडको पीसकर सूंघनेसे साँपका काटाहुआ मृतप्राय पुरुषभी जीजाता है ॥ ११ ॥

शिरीषपुष्पस्वरसे भावितं मरिचं सितम्।
सप्ताहं सर्पदष्टानां नस्यपानाञ्जने हितम् ॥ १२ ॥

सफेद मिरचको सिरसके फूलोंके रसमें ७ दिनतक भावना देकर पीसलेवे। फिर यह चूर्ण साँपसे काटेहुए मनुष्योंको पान, नस्य और अभ्यञ्जनादिरूपसे सेवन कराना हितकारी है ॥ १२ ॥

द्विपलं नतकुष्ठाभ्यां घृतक्षौद्रचतुःपलम् ।
अपि तक्षकदष्टानां पानमेतत्सुखप्रदम् ॥ १३ ॥

तगर और कूठ इन दोनोंको आठ आठ तोले लेकर खूब बारीक पीसले। फिर यह चूर्ण चार चार पल प्रमाण घी और शहदमें मिलाकर पान करे तो तक्षकसे काटेहुए पुरुषोंको भी सुख प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

वन्यकर्कोटजं मूलं छागमूत्रेण भावितम् ।
नस्यं काञ्जिकसंयुक्तं विषोपहतचेतसः ॥ १४ ॥

वनककोडेकी जडको बकरीके मूत्रमें भिजोकर और काँजीमें पीसकर साँपसे काटेहुए मनुष्यको नस्य देवे, इससे विष दूर होता है ॥ १४ ॥

पीते विषे स्याद्वमनञ्च त्वक्स्थे प्रदेहसेकादिसुशीतलञ्च १५

जिस मनुष्यने विषपान किया हो उसको तत्काल वमन करानी चाहिये। और जो त्वचामें विष स्थित हो तो उसके शरीरपर शीतल द्रव्योंका लेप और सेवन करना चाहिये ॥ १५ ॥

अगारधूममञ्जिष्ठारजनीलवणोत्तमैः ।
लेपो जयत्याखुविषं कर्णिकायाश्च पातनम ॥ १६ ॥

घरका धुआँ, मञ्जीठ, हल्दी और सैंधानमक इनको जलमें पीसकर लेप करनेसे चूहेका विष और कर्णिका नामक कीडेके अंकुर दूर होते हैं ॥ १६ ॥

सोमवल्कोऽश्वगन्धा च गोजिह्वा हंसपाद्यपि ।
रजन्यौ गैरिकं लेपो नखदन्तविषापहः ॥ १७ ॥

सफेद खैर, असगन्ध, गोजिया(गाजुवाँ), लाललजालु, हल्दी, दारुहल्दी और गेरू इनको समानभाग ले जलमें पीसकर लेपकरनेसे नाखूनका और दाँतोंसे काटेका विष दूर होता है ॥ १७ ॥

यः कासमर्दनेत्रं वदने निःक्षिप्य कर्णे फूत्कारम् ।
मनुजो ददाति शीघ्रं जयति विषं वृश्चिकानां सः॥१८॥

जो पुरुष कसौंदीके वृक्षकी नलकालीसे रोगीके कानमें फूँक मारे तो बिच्छूका विष तत्काल उतरता है ॥ १८ ॥

उष्णं गव्यघृतश्चापि सैन्धवेन समन्वितम् ।
वृश्चिकस्य विष हन्ति लेपनात्पर्वतात्मजे ॥ १९ ॥

शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती! गरम२गौके घीको सैंधेनमकके साथ मिलाकर लेपकरनेसे बिच्छूका विष शीघ्र नष्ट होता है ॥ १९ ॥

शिरीषस्य तु बीजं वै स्नुहीक्षीरेण घर्षितम् ।
तल्लेपेन महादेवि नश्येत्कुक्कुरजं विषम् ॥ २० ॥

हे महेश्वरि! सिरसके बीजोंको थूहरके दूधमें पीसकर वा घिसकर लेप करनेसे कुत्तेका विष निश्चय नाश होता है ॥ २० ॥

पिष्टतण्डुलमध्यस्थं भक्षितं मेषलोमकम् ।
कुक्कुरस्य विषं हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ २१ ॥

चावलोंको पीसकर उनमें भेंडका रुआँ भरकर भक्षण करनेसे कुत्तेका विष नष्ट होता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ २१ ॥

वचा हिङ्गुविडङ्गाभिः सैन्धवं गजपिप्पली ।
पाठा प्रतिविषा व्योषं काश्यपेन विनिर्मितम् ॥
दशाङ्गमगदं पीत्वा सर्वकीटविषं जयेत् ॥ २२ ॥

वच, हींग, वायविडङ्ग, सैन्धानमक, गजपपिल, पाढ, अतीस, सोंठ, मिरच और पीपल इन औषधियोंके समानभाग मिश्रित बारीक चूर्णको सेवन करनेसे सर्व प्रकार कीडोंके विष दूर होते हैं इस चूर्णको कश्यप ऋषिने बनायाहै॥२२

कीटदष्टक्रियाः सर्वाः समानाः स्युर्जलौकसाम् ॥ २३ ॥

कीडे आदिकोंकी विषनाशक चिकित्साके समान ही जलचर जीवोंके विषकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २३ ॥

अपराजितामूलञ्च घृतेन त्वग्गतं विषम् ।
पयसासृग्गतं हन्ति मांसगं कुष्ठचूर्णतः ॥ २४ ॥
अस्थिगं रजनीयुक्तं मेदोगं काकोलीयुतम् ।
मज्जागं पिप्पलीयुक्तं चण्डालीकन्दसंयुतम् ॥
शुक्रगं हन्ति लौहित्यं तस्माद्देयापराजिता ॥ २५ ॥

अपराजिता (कोयल) की जडको घीके साथ सेवनकरनेसे त्वचामें स्थित विष, दूधके साथ खानेसे रक्तगत विष, कूठके चूर्णके साथ खानेसे मांसगतविष, हल्दीके चूर्णके साथ सेवन करनेसे अस्थिगत विष, काकोलीके साथ सेवन करनेसे मेदोगत विष, पीपलके साथ खानेसे मज्जागत विष और चण्डालकन्दके साथ सेवनकरनेसे शुक्रगतविष नष्ट होता है। इस कारण सर्वप्रकारके विषोंमें अपराजिताकी मूलको सेवन करना चाहिये ॥ २४ ॥ २५ ॥

द्वे हरिद्रे शिला तालं कुङ्कुमं मुस्तकं जलैः।
गुडिकालेपमात्रेण विषं हन्ति महाद्भुतम् ॥ २६ ॥

दोनोंहल्दी, मैनसिल, हरिताल, केशर और नागरमोथा इनको जलमें पीसकर गोली बनालेवे। उस गोलीको जलमें घिसकर लगानेसे महाभयानक विष सहजमें ही नाश होता है ॥ २६ ॥

घृतमधुनवनीतं पिप्पलीशृङ्गवेरं मरिचमपि तु दद्यात् सप्तमं सैन्धवेन। यदि भवति सरोषैस्तक्षकैर्वापि दष्टोऽगदमिह खलु पीत्वा निर्विषं तत्क्षणेन ॥ २७ ॥

घी,शहद,नैनीघी,पीपल,सोंठ,मिरच और सैंधानमक इनको एकत्र पीसकर सेवनकरनेसे क्रोधयुक्त तक्षकसे काटाहुआ पुरुष भी तत्क्षण विषरहित होताहै२७

नक्तमालफलं व्योषं बिल्वमूलं निशाद्वयम्।
सौरसं पुष्पमाजं वा मूत्रं बोधनमञ्जनम् ॥ २८ ॥

करञ्जके फल, त्रिकुटा, बेलकी जड, हल्दी, दारुहल्दी और तुलसाकी मञ्जरी इन सबको एकत्र बकरीके मूत्रमें पीसकर नेत्रोंमें आँजे तो सर्पके डसनेसे बेहोश हुआ पुरुष शीघ्र चैतन्यलाभ करता है ॥ २८ ॥

जलेन लाङ्गलीकन्दं नस्यं सर्पविषापहम्।
वारिणा टङ्कणं पीतमथवार्कस्य मूलकम् ॥ २९ ॥

कलिहारीकी जडको जलमें पीसकर सूँघनेसे या सुहागेको अथवा आककी जडको जलमें पीसकर पीनेसे सर्पविष दूर होता है ॥ २९ ॥

कपोतमांसं ससिताक्षौद्रं कण्ठगते विषे।
लिह्यादामाशयगते ताभ्यां चूर्णपलं नताम् ॥ ३० ॥

कबूतरके मांसके चूर्णको मिश्री और शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे कण्ठगव विष दूर होता है और तगरके चूर्णको १ पल प्रमाण ले मिश्री तथा शहदके साथ भक्षण करनेसे आमाशयगतविष नष्ट होता है ॥ ३० ॥

विषे पक्वाशयगते पिप्पलीरजनीद्वयम्।
मञ्जिष्ठाञ्च समं पिष्ट्वा गोपित्तेन नरः पिबेत् ॥ ३१ ॥

पीपल, हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ और गोरोचन ये प्रत्येक औषधियें समानभाग लेकर जलमें पीसकर सेवन करनेसे पक्वाशयगत विषको दूर करती हैं।।

रजनीसैन्धवक्षौद्रसंयुक्तं घृतमुत्तमम्।
पानं मूलविषार्त्तस्य दिग्धविद्धस्य चेष्यते ॥ ३२ ॥

हल्दी, सैंधानमक, शहद और उत्तम गोघृत इनको समानभाग ले एकत्र कर यथाविधिसे मर्दनकर मूलविषसे पीडित अथवा दग्ध या विद्ध (विषलिप्त बाणादिसे हत) मनुष्यको पान कराना चाहिये ।। ३२ ।।

सितामधुयुतं चूर्णं ताम्रस्य कनकस्य वा ।
लेहं प्रशमयत्युग्रं सर्वसंयोगजं विषम् ॥ ३३ ॥

शुद्धताँबेकी भस्म और स्वर्णभस्मको बराबर भाग ले मिश्री और शहदमें मिलाकर चाटनेसे सर्वप्रकारका उग्रविष शमन होताहै ।। ३३ ।।

अङ्कोटमूलनिःक्वाथं फाणितं सघृतं लिहेत् ।
तैलाक्तः स्विन्नसर्वाङ्गो गरदोषविषापहः ॥ ३४ ॥

अङ्कोलकी जडका क्वाथ बनाकर उसमें राब और घृत डालकर पान करे और अपने सब शरीरमें तेलकी मालिश करे तो गरदोष विष नष्ट होताहै ।। ३४ ।।

कटभ्यर्ज्जुनशैरीयशेलुक्षीरिद्रुमत्वचः ।
कषायकल्कचूर्णस्य कीटलूताव्रणापहा ॥ ३५ ॥

मालकाङ्गनी, अर्जुनकी छाल, पीलापियाबाँसा, वड और गूलरकी छाल, इनके क्वाथ, कल्क अथवा चूर्णको सेवन करनेसे कीडें और मकडी आदिका विष दूर होता है ।। ३५ ।।

दंशे भ्रामणविधिना वृश्चिकविषहृत्कुठेरपादगुडिका ।
पुरधूमपूर्वमर्कच्छदामिव पिष्ट्वा कृतो लेपः ॥ ३६ ॥

काली तुलसाकी जडको जलमें पीसकर गोली बनावे । उस गोलीको जलमें घिसकर बिच्छूसे काटेहुए स्थानपर लेपकरे अथवा पहले दंशस्थानपर गूगलकी धूप देकर पश्चात् आकके पत्तोंको पीसकर लेप करनेसे बिच्छूका विष जाय ।।

जीरकस्य कृतः कल्को घृतसैन्धवसंयुतः ।
सुखोष्णो वृश्चिकार्त्तानां स्युर्लेपो वेदनापहः ॥ ३७ ॥

जीरेको पीसकर घृत और सैंधेनमकमें मिलाकर बिच्छूके काटेहुए स्थानपर गरम करके लेप करनेसे उसकी पीडा कम होती है ।। ३७ ।।

कुङ्कुमकुनटीकर्कटपलहरितालैः कुसुम्भसम्मिलितैः ।
कृतगुडिका भ्रामणतो विदष्टगोधाशरटादिविषजित ३८

केशर, मैनसिल, केंकडेका मांस, हारताल और कसूमके फूल; इन सबको एकत्र मर्दनकर गोली बनालेवे । फिर उक्त गोलीको जलमें घिसकर दंशस्थान पर लगानेसे बिच्छू, गोय और गिरगटादिजीवोंका विष नष्ट होता है ।।३८।।

लेप इव भेकगरलं शिरीषबीजैः स्नुहीपयःसिक्तैः ।
हरति गरलं त्र्यहमासिता अङ्कोटजटाकुष्ठसम्मिलिताः ॥

सिरसके बीजोंको पीसकर उनको थूहरके दूधमें भिजोकर लेप करनेसे अथवा अङ्कोलकी जड, वालछड और कूठ इनके काथ या कल्कको तीनदिनतक भक्षण करनेसे मेंडकका विष दूर होता है ॥ ३९ ॥

मरिचमहौषधबालकनागाह्वैर्मक्षिकाविषे लेपः ॥

मिरच, सोंठ,सुगन्धवाला और नागकेशर इनको एकत्र पीसकर लेपकरनेसे मक्खीका विष नष्ट होता है ॥

लालाविषमपनयतो मूले मिलिते पटोलनीलिकयोः ४०

परबलकी जड और नीलवृक्षकी जड इन दोनोंको एकत्र पीसकर लेपकरे तो लालाविष नाश होता है ॥ ४० ॥

श्लेष्मणः कर्णगूथस्य वामानामिकया कृतः ।
लेपो हन्याद्विषं घोरं नृमूत्रसेचनं ततः ॥ ४१ ॥

बायें हाथकी अनामिका अंगुलिसे मुँहके थूकको अथवा कानके मैलको निकालकर दंशस्थानपर लगानेसे अथवा उस स्थानपर मनुष्यके मूत्रको सेचन करनेसे सर्पादि सर्वप्रकारके जन्तुओंका उग्रविष शीघ्र नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां विषचिकित्सा ॥

अथ रसायनाधिकारः ।

यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम् ।
पूर्वे वयसि मध्ये वा शुद्धकायः समाचरेत् ॥ १ ॥
नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो रासायनो विधिः ।
न भाति वाससि म्लिष्टे रङ्गयोग इवार्दितः ॥ २ ॥

जो औषध जरा (बुढापा) और रोगको नष्ट करनेवाली हैं उनको रसायन कहते हैं । युवावस्थाके प्रारम्भमें अथवा मध्यमें वमन और विरेचनादिसे शरीरको अच्छेप्रकार शुद्धकर रासायनिक औषधि सेवनकरे । यदि शरीरको विना शुद्धकिये ही रसायन औषधि सेवन की जाती है तो वह इस प्रकार गुण नहीं करती जिस प्रकार मलिनवस्त्रमें रंगदेनेसे उसपर अच्छेप्रकार रँग नहीं चढता है ॥ १ ॥ २ ॥

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलोदयम् ॥ ३ ॥
वाक्सिद्धिं वृषतां कान्तिमवाप्नोति रसायनात्।
लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम् ॥ ४ ॥

रसायनको सेवन करनेसे दीर्घायु, स्मृति, शक्ति, मेधा, आरोग्यता, तरुणावस्था, प्रभा, वर्ण, स्वरकी सुन्दरता, उदारता, शरीर और इन्द्रियोंमें बल, वाक्पटुता, वृष्यता और कान्तिलाभ होता है। देहमें स्थितरस और रक्तादि-उत्तमपदार्थोंकी जिस उपायके करनेसे प्राप्तिहो उसको ही रसायन कहते हैं॥

ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति दिने दिने भृङ्गरजःसमुत्थम्।
क्षीराशिनस्ते बलवर्णयुक्ताः समाशतं जीवितमाप्नुवन्ति५

केवल दूधको ही पान करतेहुए जो पुरुष प्रतिदिन नियमसे एकमास पर्यन्त भाँगरेके रसको पानकरते हैं वे बल, वर्ण और दीर्घायुसे मुक्त होकर सौवर्षतक जीते हैं ॥ ५ ॥

मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम्। रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्प्याः कल्कः प्रयोज्यः खलु शंखपुष्प्याः॥ ६ ॥ आयुःप्रदान्यामयनाशनानि बलाग्निवर्णस्वरवर्द्धनानि। मेध्यानि चैतानि रसायनानि मेध्यो विशेषेण तु शङ्खपुष्पी ॥ ७ ॥

मण्डूकपर्णीके स्वरस अथवा मुलैठीके चूर्णको दूधके साथ सेवन करनेसे या जड और पुष्पसहित गिलोयके रस वा शङ्खपुष्पीके कलकको उक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे आयुकी वृद्धि होती है, सब रोग नष्ट होते हैं, तथा बल, वर्ण, जठराग्नि और स्वरकी वृद्धि होती है। ये सब रसायन औषधें मेधाजनक हैं तो भी शङ्खपुष्पीसे विशेषकर मेधावृद्धि होती है ॥ ६ ॥ ७ ॥

पीताश्वगन्धा पयसार्द्धमासं घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा।
कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते बालस्य सस्यस्य यथाम्बुवृष्टिः

असगन्धके चूर्णको दूध, घी, तिलतेल अथवा उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे कृश मनुष्यके शरीरकी इस भाँति पुष्टि होती है जैसे वर्षाके जलसे धान्यके नवीन अंकुर पुष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

धात्रीतिलान्भृङ्गरजोविमिश्रान्ये भक्षयेयुर्मनुजाः क्रमेण।
ते कृष्णकेशा विमलेन्द्रियाश्च निर्व्याधयो वर्षशतं भवेयुः॥

जो मनुष्य आमलों और तिलोंके चूर्णको भँगरेके रसमें मिलाकर यथानियम भक्षण करे तो वे कृष्णवर्णके केशोंवाले और निर्मल इन्द्रियवाले पुरुष नीरोग होकर सौ वर्षपर्यन्त जीते हैं ॥ ९ ॥

वृद्धदारकमूलानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
शतावर्या रसेनैव सप्तवारांश्च भावयेत् ॥ १० ॥
अक्षमात्रन्तु तच्चूर्णं सर्पिषा सह योजयेत् ।
मासमात्रोपयोगेन मतिमाञ्जायते नरः ॥
मेधावी स्मृतिमांश्चैव वलीपलितवर्जितः ॥ ११ ॥

विधारेकी जडको कूटपीस बारीक चूर्ण करलेवे । फिर उसको शतावरके रसमें सातबार भावना देकर प्रतिदिन एकएक तोलेकी मात्रासे घीमें मिलाकर सेवन करे।इसको एक महीने यथाविधि सेवन करनेसे मनुष्य अत्यन्त बुद्धिमान्, मेधावान्, स्मृतिमान् होता है और बली तथा पलितरोगका नाश होता है ॥

हस्तिकर्णरजः खादेत्प्रातरुत्थाय सर्पिषा ।
यथेष्टाहारचारोऽपि सहस्रायुर्भवेन्नरः ॥ १२ ॥
मेधावी बलवान्कामी स्त्रीशतानि व्रजत्यसौ ।
मधुना त्वश्ववेगः स्याद्बलिष्ठः स्त्रीसहस्रगः ॥
मन्त्रश्चासौ प्रयोक्तव्यो भिषजा चाभिमन्त्रणे ॥ १३ ॥
मंत्रो यथा-"ॐ नमो महाविनायकाय अमृतं रक्ष रक्ष
मम फलसिद्धिं देहि रुद्रवचनेन स्वाहा ॥ "

हस्तिकर्ण पलासकी जडके चूर्णको उपर्युक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके घृतके साथ मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल भक्षण करे और यथेच्छ आहारविहारकरे तो वह पुरुष हजारवर्षकी आयुवाला, मेधावाला, बलवान्, कामी, सैंकडों स्त्रियोंसे रमण करनेवाला होता है और उक्तचूर्णको शहदके साथ खानेसे घोडेके समान अत्यन्त बलवान् और हजार स्त्रियोंमें गमन करनेवाला होताहै॥

गुडेन मधुना शुण्ठ्या कृष्णया लवणेन वा ।
द्वे द्वे खादन्सदा पथ्ये जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ १४ ॥

दो हरडों और दो पीपलोंको सोंठके चूर्ण, सेंधेनमक, गुड और शहदके साथ नियमितरूपसे प्रतिदिन सेवन करे तो वह मनुष्य सुखपूर्वक सौ वर्षतक जीता है ॥ १४ ॥

पञ्चाष्टौ सप्तदशो वा पिप्पलीः क्षौद्रसर्पिषा।
रसायनगुणान्वेषी समामेकां प्रयोजयेत्॥ १५॥

पाँच, आठ, सात अथवा दस पीपलोंको घृत और शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे रसायन औषधिके समान गुण होता है॥ १५॥

तिस्रस्तिस्रस्तु पूर्वाह्णे भूत्वाग्रे भोजनस्य च।
पिप्पल्यः किंशुकक्षारभाविता घृतभर्ज्जिताः॥ १६॥
प्रयोज्या मधुसंमिश्रा रसायनगुणैषिणा।
जेतुं कासं क्षयं शोषं श्वासं हिक्कां गलामयम्॥ १७॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषं पाण्डुतां विषमज्वरम्।
वैस्वर्यं पीनसं शोथं गुल्मं वातबलासकम्॥ १८॥

रसायनके गुणकी इच्छा करनेवाला मनुष्य छः पीपलोंको ढाकके क्षार-जलमें ७ दिनतक भावना देकर धूपमें सुखालेवे। फिर उनको घीमें भूनकर शहदमें मिलाकर तीन पीपलें प्रातःकाल और तीन दोपहरको भोजन करनेसे पहले भक्षण करे। इससे खाँसी, क्षय, शोष, श्वास, हिचकी, गलेके रोग, बवासीर, संग्रहणी, पाण्डु, विषमज्वर, विरसता, पीनस, सूजन, गुल्म, वातज और बलासकादि रोग नष्ट होते हैं॥ १६-१८॥

गुडूच्यपामार्गविडङ्गशङ्खिनी वचाभयाशुण्ठिशतावरी समा। घृतेन लीढा प्रकरोति मानवं त्रिभिर्दिनैः श्लोकसहस्रधारिणम्॥ १९॥

गिलोय, चिरचिटा, वायविडङ्ग, शङ्खपुष्पी, वच, हरड, सोंठ और शतावर इनके चूर्णको समानभाग लेकर घृतमें मिलाकर तीन दिनतक चाटनेसे ही यह चूर्ण हजारों श्लोकोंकी धारणाकर नेवाली मनुष्यकी स्मरणशक्तिको बढाता है॥

व्यङ्गवलीपलितघ्नं पीनसवैस्वर्यकासहरम्।
रजनीक्षयेऽम्बुनस्यं रसायनं दृष्टिजनकञ्च॥ २०॥

प्रतिदिन प्रातःकाल बासी शीतलजलको नस्य लेनेसे व्यङ्गरोग, झुर्रीपडना, असमयबालोंका पकना, पीनस, स्वरभङ्ग और खाँसी आदि विकार नष्ट होते हैं और दृष्टिशक्ति बढती है॥ २०॥

अम्भसः प्रसृतान्यष्टौ रवावनुदिते पिबन्।
वातपित्तगदान् हत्वा जीवेद्वर्षशतं नरः॥ २१॥

प्रातःकाल ८ प्रसृतप्रमाण बासी शीतलजलको पीनेसे वात-पित्तसम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं और वह मनुष्य सौवर्षतक जीवित रहता है ॥ २१ ॥

धात्रीचूर्णस्य कंसं स्वरसमपिगतं क्षौद्रसर्पिः समांशं
कृष्णामानीसिताष्टप्रसृतयुतमिदं स्थापितं भस्मराशौ।
वर्षान्ते तत्समश्नन्भवति विपलितो रूपवर्णप्रतापै-
र्निर्व्याधिर्बुद्धिमेधास्मृतिवचनबलस्थैर्यसत्त्वैरुपेतः ॥ २२ ॥

आमलोंके चूर्णको एक आढक परिमाण लेकर एक हजार आमलोंके स्वरसमें २१ बार भावना देवे। फिर उसमें घी १ आढक, शहद १ आढक, पीपलका चूर्ण १ सेर और मिश्री २ सेर डालकर सबको एकमएक कर मिट्टीके बर्त्तनमें भरकर वर्षाऋतुमें राखके ढेरमें गाड देवे। फिर शरदृतुमें उसको निकालकर सेवन करे। इसके सेवनसे नानाप्रकारकी व्याधियें नष्ट होकर मनुष्य रूप रङ्ग और प्रतापसे युक्त हो अत्यन्त बुद्धिमान्,मेधावान्,स्मृतिमान् वाक्सिद्ध बलवान् और स्थिरवीर्यवाला होता है ॥ २२ ॥

ऋतुहरीतकी।

सिन्धूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात्।
वर्षादिष्वभया सेव्या रसायनगुणैषिणा ॥ २३ ॥

हरडको वर्षाऋतुमें सैंधेनमक, शरदृतुमें चीनी, हेमन्तऋतुमें सोंठके चूर्ण, शिशिरऋतुमें पीपलके चूर्ण, वसन्तऋतुमें शहद और ग्रीष्मऋतुमें गुडके साथ छहों ऋतुओंमें यथाविहित अनुपानोंके साथ सेवनकरे और ऊपरसे शीतल जलपान करे तो इससे जरा और सर्वव्याधि नष्ट होजाती हैं। यह अत्युत्तम रसायन है ॥ २३ ॥

भृङ्गराजादिचूर्ण।

श्लक्ष्णीकृतं भृङ्गराजस्य चूर्णं तिलार्द्धकं चामलकार्द्धकञ्च।
सशर्करं भक्षयतो गुडैर्वा न तस्य रोगा न जरा न मृत्युः २४
अन्धः पश्येद्गमनरहितो मत्तमातङ्गगामी
मूको वाग्मी श्रवणरहितो दूरशब्दानुसारी।
नीरुङ्मर्त्यो भवति पलिती नीलजीमूतकेशो
जीर्णा दन्ताः पुनरपि नवाः क्षीरगौरा भवन्ति॥२५॥

जो भाँगरेका बारीक पिसा चूर्ण एक तोला, तिल छः माशे और आमलोंका चूर्ण ६ माशे, इनको एकत्र करके चीनीके अथवा गुडके साथ मिलाकर भक्षण

करे तो उसके कोई रोग नहीं होता और न वृद्धावस्था आती है । वह पुरुष सदा अमर रहता है।इस रसायनको सेवन करनेसे अन्धा आदमी देखने लगता है, लँगडा आदमी उन्मत्त हाथीकी समान चलने लगता है, गूंगा बोलने लगता है, बहरा दूरके शब्दको सुनने लगता है, पलितरोग नष्ट होता है। मनुष्य नीरोग होकर आकाशके समान नीलकेशोंवाला होता है । एवं जीर्ण शीर्ण दाँत फिर नवीन होकर दूधके समान श्वेत होते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

अमृतवर्त्तिका ।

त्रिफलात्रिकटुब्राह्मीगुडूचीरक्तचित्रकम् ।
नागकेशरचूर्णञ्च शृङ्गवेरं समार्कवम् ॥ २६ ॥
सिन्धुवारो हरिद्रे द्वे शङ्काशनगुडत्वचौ ।
एला मधुकपर्णी च विडङ्गश्चोग्रगन्धिका ॥ २७ ॥
चूर्णं प्रत्येकमेतेषां समादाय पलद्वयम् ।
कामरूपसमुद्भूतैर्गुडैः पञ्चाशतैः पलैः ॥ २८ ॥
सषाष्टिस्त्रिशती कार्या वर्त्तिस्तेन समानतः ।
चन्द्रताराविशुद्धौ च पूजयित्वेष्टदेवताम् ॥ २९ ॥
सुकृती प्रज्ञया प्रीतो वर्त्तिमेकान्तु भक्षयेत ।
ततोऽनुपानं पानीयं सलिलञ्च सुशीतलम् ॥ ३० ॥
कट्वम्लवणञ्चैव नातिमात्रं कदाचन ।
यः प्रत्यहमिदं खादेत्कर्षमाणं निरन्तरम् ॥ ३१ ॥
भोजनादौ प्रदोषे वा शृणु यादृक् फलं भवेत् ।
नष्टवह्निस्तु दीप्ताग्निर्वडवानलसन्निभः ॥ ३२ ॥
दृष्टापि भास्वती कान्तिश्चन्द्रिकेव निशामुखे ।
काशपुष्परुचः केशाः शिखिकण्ठमनोरमाः ॥ ३३ ॥
पटलावहतं चक्षुर्लक्षयोजनदर्शनम् ।
जराविश्लथदेहोऽपि लेपनिर्माणशाद्वलः ॥ ३४ ॥
निर्व्याधिर्निर्जरः पङ्गुर्वेगेनोच्चैःश्रवा इव ।
दिनेश इव तेजस्वी कन्दर्प इव रूपवान ॥ ३५ ॥
सहस्रायुर्महासत्वो गन्धर्व इव गायनः ।
स्त्रीशतं रमते नित्यं नावसादं व्रजत्यसौ ॥ ३६ ॥

न भजन्त्यापदः काश्चित्कामरूपी भवेदसौ।
पद्मगन्धिर्वपुस्तस्य पुष्पस्येव सुकोमलम्॥ ३७॥
जराद्यैः सुजीर्णस्य नखकेशादयो यथा।
प्रभवन्ति बलादुग्रादथ कन्दा इवाम्बुदात्॥ ३८॥
हृष्टः पुष्टश्च पापघ्नः शान्तो भवति मानवः।
अमृतवर्त्तिका नाम मृत्युञ्जयमुखोदिता॥
रसायनानां श्रेष्ठेयं सर्वव्याधिनिषूदनी॥ ३९॥

हरड, वहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, ब्राह्मी, गिलोय, लालचीता, नागकेशरका चूर्ण, अदरख, भाँगरा, निर्गुण्डीकी जड, हलदी, दारुहल्दी, भाँग, दारचीनी, छोटी इलायची, कम्भारी, वायविडङ्ग और वच; इन प्रत्येक औषधियोंके आठ आठ तोले चूर्णको लेकर २०० तोले सफेद गुडमें मिलाकर खरल करे, फिर समानभाग मिलित उसकी ३६० बत्तियें बनालेवे। इसके अनन्तर जिस दिन चन्द्रमा और नक्षत्र शुभ हो उस दिन प्रातःकाल अपने इष्टदेवको पूजकर पुण्यकर्मा मनुष्य एक वत्ती भक्षण करे और ऊपरसे शीतल जल पान करे। इस औषधिको सेवन करते समय अत्यन्त चरपरे, खट्टे और नमकीन पदार्थ कदापि सेवन न करे। जो पुरुष प्रतिदिन नियमसे इस औषधिको एक कर्ष परिमाण भोजनके पहले अथवा सायंकालमें खाता है तो उसको जो फल प्राप्त होता है वह सुनो। नष्टहुई अग्नि पुनर्वार दीपन होकरवडवानलकी समान होजाती है और चन्द्रमाकी चाँदनीकी समान कान्ति होती है, बाल काँसके फूलोंके समान (है सो) सुन्दर और मोरके कण्ठकी समान मनोहर होते हैं। एवं पटलरोगसे नष्ट नेत्रोंवाला मनुष्य इसको सेवन करनेसे ४ लाख कोसतककी वस्तुको देखसकता है। इसका शरीरपर लेपकरनेसे बुढापेसे शिथिल देहवाला पुरुष भी हरित्तृणकी समान कांतिमान् होजाता है और समस्तव्याधियोंसे रहित होकर तरुण होजाता है, लँगडा मनुष्य आरोग्य होकर उच्चैःश्रवा घोडेके समान वेगवान् होता है। इससे सूर्यके समान तेजस्वी, कामदेवके समान रूपवाला, हजारों वर्षकी आयुवाला, गन्धर्वकी समान गानकरनेवाला, प्रतिदिन सैकडों स्त्रियोंसे रमण करनेपर भी नहीं हारनेवाला, किसी भी आपत्तिको नहीं भोगनेवाला, कामदेवके समान सुन्दर, कमलकेशरकी समान सुगन्धित और फूलके समान कोमलशरीरवाला होता है। बुढापेके कारण सफेद हुए नख और केश इसके उग्रप्रतापसे फिर उत्तम होते हैं जैसे बादलोंके जलसे

कन्दलियें हरीभरी होजाती हैं । मनुष्य हृष्टपुष्टअङ्गवाला, पापरहित और शान्त होता है । इस अमृतनामवर्त्तिको शिवजीने कहाहै । यह सम्पूर्ण रसाय-नोंमें श्रेष्ठरसायन है और सब रोगोंको नाश करनेवाली है ॥ २६-३९ ॥

श्रीसिद्धमोदक ।

त्रिकटोस्त्रिपलं चूर्णं त्रिफलायाः पलत्रयम् ।
गुडूच्याश्च विडङ्गानां ग्रन्थिकग्रन्थिपर्णयोः ॥ ४० ॥
रक्तचित्राङ्घ्रिजं चूर्णं ग्राह्यश्चापि पृथक् पृथक् ।
प्रत्येकं द्विपलश्चैषां गृह्णीयान्मतिमान्नरः ॥ ४१ ॥
कामरूपोद्भवा ग्राह्या गुडस्यार्द्धतुला तथा ।
सर्वमेकत्र संमर्द्य सषष्टित्रिशतं शुभम् ॥ ४२ ॥
मोदकं कारयेद्धीमान्समभागेन यत्नतः ।
प्रत्यहं प्रातरेवैतत्पानीयेनैव भक्षयेत् ॥ ४३ ॥
एवं निरन्तरं कार्यं संवत्सरमतान्द्रितः ।
प्रथमे मासि वाग्युक्तो द्वितीये बलवर्णवान् ॥ ४४ ॥
तृतीये नाशयेत्कुष्ठं श्वासकासौ तुरीयके ।
पञ्चमे स्त्रीप्रियत्वञ्च षष्ठे च पलितक्षयः ॥ ४५ ॥
सप्तमे कान्तियुक्तश्च अष्टमे बलवान्भवेत् ।
नवमे च शतायुः स्याद्दशमे च स्वरान्वितः ॥ ४६ ॥
महाबलस्त्वेकादशे अदृश्यो द्वादशे भवेत् ।
इच्छाहारविहारी स्यात्ततो दैत्यरिपोः समः ४७ ॥
षडूर्मिरहितो देही प्राप्नोति कल्पजीवितम् ।
युवा निरन्तरं तिष्ठेद्यावत्कालञ्च जीवति ॥ ४८ ॥
भवन्ति सिद्धयोऽस्याष्टौ याश्चापि परिकीर्त्तिताः ।
श्रीसिद्धमोदको ह्येष सिद्धादिषु निषेवितः ॥ ४९ ॥

त्रिकुटा ३ पल, त्रिफला ३ पल, गिलोय, वायविडङ्ग, पीपलामूल, गाँडर दूब और लालचीतेकी जड इन प्रत्येकका चूर्ण दो दो पल और गुड ५० पल लेवे । सबको एकत्र कूटपीसकर बुद्धिमान् वैद्य यथाविधिसे समानभाग मिश्रित तीनसौ साठ लड्डू बनालेवे । फिर प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक लड्डू शीतल जलके साथ भक्षण करे । इस प्रकार जो एक वर्षपर्यन्त निरालस्य हो निरन्तर

इनको सेवन करे तो वह मनुष्य एक महीनेमें वाचाल, दूसरेमें बल और वर्ण-करके युक्त होता है, तीसरे महीनेमें उसका कुष्ठरोग, चौथेमें श्वास और खाँसी रोग नष्ट होते हैं, पाँचवेंमें स्त्रियोंको अत्यन्तप्रिय, छठेमें बालोंका पकाना दूर होता है, सातवेंमें अत्यन्त शोभायमान, आठवेंमें बलवान्, नवेंमें सौवर्षको आयुवाला, दसवेंमें सुन्दरस्वरवाला, ग्यारहवेंमें महाबलवान् और बारहवें महीनेमें मुक्त होजाता है। इसपर इच्छानुसार आहार और विहार करनेवाला मनुष्य विष्णुके समान पराक्रमी होता है। एवं वह मनुष्य षड् ऊर्मियोंसे रहित होकर एक कल्पपर्यन्त जीता है और जबतक जीता है तबतक जवान बना रहता है। इसको सेवनकरनेवाले पुरुषको अष्टसिद्धियें प्राप्त होतीं हैं। ये श्रीसिद्धमोदक सिद्धादिकोंने सेवन किये हैं॥ ४०-४९॥

निर्गुण्डीकल्प।

ॐ सिद्धिः पिङ्गलायोगिनीकथितम्। निर्गुण्डीमूल-चूर्णमष्टपलं गृहीत्वा षोडशपलमधुमिश्रितं घृतभाण्डे कृत्वा शरावेण निबिडलेपनं दत्त्वा मर्दयित्वा मास-मेकं धान्यमध्ये स्थापयेत्। तन्मासमेकं भक्षितमात्रेण नरः कनकवर्णो गृद्ध्रदृष्टिः सर्वरोगविवर्जितो वलीप-लितहीनः संवत्सरं खादिते चन्द्रार्कं यावज्जीवेद्बद्ध-शुक्रः स्त्रीशतं कामयितुं क्षमो भवति। शाकाम्लं विहाय यथेच्छया भोज्यम्। तच्चूर्णं गोमूत्रेण सह यः पिबति, हन्त्यष्टादशकुष्ठानि पामाविचर्चिकादीनि नाडीव्रणगुल्मशूलप्लीहोदराणि च तच्चूर्णं तक्रेण सह यः पिबति स सर्वरोगविवर्जितो गृद्ध्रदृष्टिर्वराहबलो वलीपलितवर्जितः पवनवेगो दिव्यमूर्त्तिर्भवति। मास-द्वयप्रयोगेण पण्डितश्च न संशयः॥

निर्गुण्डीकी जडके चूर्णको ३२ तोले लेकर ६४ तोले शहदमें मिलाकर घीके चिकने बासनमें भरदेवे। फिर सकोरेसे उस पात्रके मुखको ढककर और मिट्टीसे उसके सन्धिस्थानोंको बन्दकरके उसको एकमहीनेतक धानोंके बीचमें गाडकर रक्खे। फिर उसको निकालकर प्रतिदिन प्रातःकाल उचितमात्रासे निरन्तर एकवर्षतक सेवनकरनेवाला मनुष्य सुवर्णके समान वर्णवाला गिद्ध-कीसी दृष्टिवाला, सम्पूर्णरोगोंसे मुक्त, वली और पलितरोगसे रहित, वर्ष-

भरतक सेवन करलेनेपर चन्द्र और सूर्यकी समान कान्तिमान् जबतक जीवे तबतक स्थिरवीर्य और सैकडोंस्त्रियोंके भोगनेको समर्थ होता है। इसपर शाक और खट्टेरसवाले पदार्थ त्यागकर अन्यान्य द्रव्योंको यथेच्छ सेवन करे। जो पुरुष निर्गुण्डीके चूर्णको गोमूत्रके साथ पान करे तो उसके १८ प्रकारके कोढ, खुजली, विचर्चिका, नाडीव्रण, गुल्म, शूल, तिल्ली और उदररोग नष्ट होते हैं। एवं तक्रके साथ सेवन करे तो वह सब प्रकारके रोगोंसे रहित, गिद्धकीसी दृष्टिवाला, शूकरकी समान बलवान्, वली तथा पलितरोगविहीन, वायुके समान वेगवाला और दिव्यमूर्त्ति होता है। दो महीनेतक इसका सेवन करनेसे धुरन्धर पण्डित होजाता है इसमें सन्देह नहीं। यह निर्गुण्डीकल्प पिङ्गलायोगिनीने वर्णन किया है॥

कार्श्यहरलौह।

श्वेतापुनर्नवादन्तीवाजिगन्धात्रिकत्रयैः।
शतमूलीबालयुक्तैरेभिर्लौहं प्रसाधितम्॥ ५०॥
हिनस्ति नियतं कार्श्यमपि भृङ्गरसैः सह।
नास्त्यनेन समं लौहं सर्वरोगान्तकं शुभम्॥
दीपनं बलवर्णाग्नेर्वृष्यदश्चोत्तमोत्तमम्॥ ५१॥

सफेद पुनर्नवा, दन्ती, असगन्ध, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, चीता, वायविडङ्ग, शतावर और खिरैंटी इनको समान भाग और सबके बराबर लोहभस्म लेवे। फिर सबोंको यथाविधि एकत्र कूट पीसकर चूर्ण कर लेवे। इस चूर्णको प्रतिदिन प्रातःकाल भांगरेके रसके साथ नियमपूर्वक सेवन करनेसे मनुष्यकी कृशता नष्ट होती है। इस लोहके समान सम्पूर्ण रोगोंको नाश करनेवाला अन्य लोह नहीं है। यह अग्निदीपक बलवर्ण कारक, वीर्यवर्द्धक और अत्युत्तम लोह है॥ ५०॥ ५१॥

अमृतार्णवरस।

सूतभस्म चतुर्भागं लौहभस्म तथाष्टकम्।
अभ्रभस्म च षड्भागं गन्धकस्य च पञ्चमम्॥ ५२॥
भावयेत्त्रिफलाक्वाथैस्तत्सर्वं भृङ्गजैर्द्रवैः।
शिग्रुवह्निकटुक्वाथैर्भावयेत्सप्तधा पृथक्॥ ५३॥
सर्वतुल्या कणा योज्या गुडैर्मिश्र्यं पुरातनैः।
निष्कमात्रं सदा खादेज्जरामृत्युनिवारणम्॥ ५४॥

ब्रह्मायुः स्याच्चतुर्मासे रसोऽयममृतार्णवः ।
कौरण्टकस्य पत्राणि गुडेन भक्षयेदनु ॥ ५५ ॥

रससिन्दूर ४ तोले, लोहभस्म ८ तोले, अभ्रकभस्म ६ तोले और शुद्ध-गन्धक ५ तोले लेवे । सबको एकत्र पीसकर त्रिफलेके क्वाथ, भाँगरेके रस, सहँजनेकी छाल, चीतेकी जड और कुटकी इनके क्वाथमें अलहिदा २ सात बार भावना देवे । फिर उपर्युक्त औषधियोंके चूर्णकी बराबर भाग पीपलका चूर्ण और समस्तचूर्णकी बराबर पुराना गुड मिलावे । इसमेंसे प्रतिदिन चार चार माशे परिमाण सेवन करे और ऊपरसे पीले पियाबाँसेके पत्तोंके क्वाथको गुड डालकर पानकरे । इसको खानेसे वृद्धता और अकालमृत्यु नहीं होती । अमृतार्णवरसको चार महीनेतक सेवन करनेवाला मनुष्य ब्रह्माजीके समान आयुवाला होता है ॥ ५२-५५ ॥

नीलकण्ठरस ।

सूतकं गन्धकं लौहं विषं चित्रकपद्मकम् ।
वराङ्गरेणुकामुस्तं ग्रन्थ्येला नागकेशरम् ॥ ५६ ॥
त्रिकटु त्रिफला चैव शुल्वभस्म तथैव च ।
एतानि समभागानि द्विगुणो गुड इष्यते ॥ ५७ ॥
सम्मर्द्य वटकं कृत्वा भक्षयेच्चणकोन्मितम् ।
कासे श्वासे क्षये गुल्मे प्रमेहे विषमज्वरे ॥ ५८ ॥
हिक्कायां ग्रहणीदोषे शोषे पाण्ड्वामये तथा ।
मूत्रकृच्छ्रे मूढगर्भे वातरोगे च दारुणे ॥ ५९ ॥
नीलकण्ठो रसो नाम ब्रह्मणा निर्मितः पुरा ।
अनुपानविशेषेण सर्वरोगहरो भवेत् ॥ ६० ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहभस्म, शुद्धमीठा तेलिया, चीतेकी जड, पद्माख, दारचीनी, रेणुका, नागरमोथा, पीपलामूल, छोटी इलायची, नागकेशर, त्रिकुटा, त्रिफला और ताम्रभस्म ये सब औषधियें समान भाग और सबसे दुगुना पुराना गुड लेवे । सबको एकत्र मर्दनकरके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इस रसको खाँसी, श्वास, क्षय, गुल्म प्रमेह, विषमज्वर, हिचकी, संग्रहणी, शोथ, पाण्डुरोग, मूत्रकृच्छ्र, मूढगर्भ और दारुण वातरोगोंमें अनु-पानभेदसे सेवन करनेसे सब रोग नष्ट होते हैं । इसका नाम नीलकण्ठरस है, इसको पूर्वकालमें ब्रह्माजीने निर्माण किया है ॥ ५६-६० ॥

महानीलकण्ठरस ।

पलैकं नागभस्माथ भावयेत्तिमिपित्ततः ।
तन्नागं सुमृतं स्वर्णं तोलैकं वापि मिश्रयेत् ॥ ६१ ॥
द्विपलं भस्म सूतस्य त्रिफलं मृतमभ्रकम् ।
त्रिपलं लौहभस्माथ सर्वमेकत्र कारयेत्॥ ६२ ॥
भावयेच्च पृथक्कन्या ब्राह्मी निर्गुण्डिका शमी ।
मुण्डीशतपराच्छिन्ना कोकिलाक्षस्य बीजकैः॥ ६३ ॥
मुषलीवृद्धदाराग्निर्द्रवैरेभिर्भिषग्वरः ।
ततः सञ्चूर्णयेत्सर्वं तुल्यमेकादशाभिधम् ॥ ६४ ॥
वराव्योषाब्दवह्न्येलाजातीफललवङ्गकम् ।
पूजयेद्वृषपुष्पाद्यैर्नीलकण्ठं महेश्वरम् ॥ ६५ ॥
द्विगुञ्जं भक्षयेदस्य मृत्युञ्जयमनुस्मरन् ।
क्षयमेकादशविधं ग्रहणीरक्तपित्तकम् ॥ ६६ ॥
विविधान्वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ।
हन्ति सर्वामयानेव कामिनीनां शतं व्रजेत् ॥ ६७ ॥
एकविंशतिरात्रार्द्धं परिहार्यं त्यजेदिह ।
यथेष्टाहारचेष्टो हि कन्दर्पसदृशो नरः ॥ ६८ ॥
मेधावीबलवान्प्राज्ञो बह्वाशी भीमविक्रमः ।
पुत्रार्थिनी तथा नारी सैव पुत्रं प्रसूयते ॥
अस्य सूतस्य माहात्म्यं वेत्ति शम्भुर्न चापरः ॥ ६९ ॥

सीसेकी भस्मको ४ तोले लेकर तिमिमत्स्यके पित्तमें सातबार भावना देके फिर उस सीसेको १ तोले सुवर्णभस्मके साथ मिलावे । पश्चात् रससिन्दूर ८ तोले, अभ्रकभस्म १२ तोले और लोहभस्म १२ तोले; इन सबको उसके साथ मिलाकर घीग्वार, ब्राह्मी, सिह्मालु, छोंकर, गोरखमुण्डी, शतावर, गिलोय, तालमखानेके बीज, मुसली, विधारेके बीज और चीतेकी जड, इनके रसमें पृथक् पृथक् क्रमशः सात सात बार भावना देवे । फिर त्रिफला, त्रिकुटा, नागरमोथा, चीता, इलायची, जायफल और लौंग इन ग्यारहों औषधियोंका समानभागमिश्रित चूर्ण उपर्युक्त चूर्णके बराबर भागलेकर मिलादेवे । तदनन्तर प्रथम अडूसेके फूलोंसे प्रातःकाल मृत्युञ्जयमहादेवको पूजकर और उनका

ध्यानकर इस रसकी दो रत्ती प्रमाण मात्राको भक्षण करे। इसके सेवनसे ग्यारह प्रकारका क्षय, संग्रहणी, रक्तपित्त, अनेक प्रकारके वातजरोग, ४० प्रकारके पित्तजरोग और इनके अतिरिक्त अन्यान्य सर्वप्रकारके रोग नष्ट होते हैं। इससे सैंकडों स्त्रियोंको भोगनेकी शक्ति उत्पन्न होती है। इसपर ग्यारह दिन-तक परहेज करके पश्चात् यथारुचि आहार और विहार करे तो मनुष्य काम-देवके समान सुन्दर, मेधावान, वलवान्, विद्वान्, बहुभोजी और भीमके समानपराक्रमी होताहै। पुत्रकी इच्छा करनेवाली स्त्री इसको सेवन करनेसे पुत्रको उत्पन्न करती है। इस रसके महात्म्यको शिवजीके सिवा और कोई नहीं जानता ॥ ६१-६९ ॥

मकरध्वजरसायन ।

स्वर्णस्य भागौ वङ्गश्च मौक्तिकं कान्तलौहकम् ।
जातीकोषफले रूप्यं कांस्यकं रससिन्दुरम् ॥ ७० ॥
प्रवालं कस्तूरीचन्द्रमभ्रकश्चैकभागिकम् ।
स्वर्णसिन्दूरतो भागाश्चत्वारः कल्पयेद्बुधः ॥ ७१ ॥
नातः परतरः श्रेष्ठः सर्वरोगनिषूदनः ।
सर्वलोकहितार्थाय शिवेन परिकीर्त्तितः ॥ ७२ ॥

सुवर्णकी भस्म २ तोले, एवं वङ्ग, मोती, कान्तलोह, जावित्री, जायफल, रूपा, काँसा, रससिन्दूर, मूँगा, कस्तूरी, कपूर और अभ्रक, ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला और स्वर्णसिन्दुर ४ तोले लेवे। इन सबको जलके द्वारा उत्तम प्रकारसे एकत्र खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। फिर यथोचित अनुपानके साथ प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली सेवनकरे। सब प्रकारके रोगोंको नष्ट करनेके लिये इससे उत्तम अन्य औषधि नहीं है। सर्वप्राणियोंके कल्याणके निमित्त शिवजीने इस रसको कहा है॥ ७०-७२ ॥

बृहत्पूर्णचन्द्ररस ।

द्विकर्षं शुद्धसूतं तु गन्धकं च द्विकार्षिकम् ।
लौहभस्म पलश्चैकं जारिताभ्रं पलांशिकम् ॥ ७३ ॥
द्वितोलं रजतश्चैव वङ्गभस्म द्विकार्षिकम् ।
सुवर्णं तोलकश्चैव ताम्रं कांस्यञ्च तत्समम् ॥ ७४ ॥
जातीफलश्चेन्द्रपुष्पमेला भृङ्गश्च जीरकम् ।
कर्पूरं वनितां मुस्तं कर्षं दद्यात्पृथक् पृथक् ॥ ७५ ॥

सर्वं खल्लतले क्षिप्त्वा कन्यारसविमर्दितम् ।
भावयित्वा वरातोयैः रुबूकाणां रसैस्तथा ॥ ७६ ॥
एरण्डपत्रैः संवेष्ट्य धान्यराशौ दिनत्रयम् ।
उद्धृत्य मर्दयित्वा तु वटिकां चणसंमिताम् ॥ ७७ ॥
खादेच्च वटिकामेकां पर्णखण्डेन संयुताम् ।
सर्वव्याधिविनाशाय काशिराजेन भाषितः ॥ ७८ ॥
पूर्णचन्द्ररसो नाम्ना सर्वरोगेषु योजयेत ।
बल्यो रसायनो वृष्यो वाजीकरण उत्तमः ॥ ७९ ॥
अयमष्ठीलिकां हन्ति कासश्वासमरोचकम् ।
आमशूलं कटीशूलं हृच्छूलं पंक्तिशूलकम् ॥ ८० ॥
अग्निमान्द्यमजीर्णञ्च ग्रहणीं चिरजामपि ।
आमवातमम्लपित्तं भगन्दरमपि द्रुतम् ॥ ८१ ॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च प्रमेहं वातशोणितम् ।
वातं बहुविधञ्चैव मन्दाग्नित्वं वमिं भ्रमिम् ॥
नातः परतरः श्रेष्ठो विद्यते वाजिकर्मणि ॥ ८२ ॥

शुद्धपारा दो कर्ष, शुद्धगन्धक दो कर्ष, लोहभस्म एक पल, अभ्रकभस्म एक पल, चाँदी दो तोले, वङ्गभस्म दो कर्ष, सोना एक तोला, ताँबा एक तोला काँसा एक तोला, जायफल, लौंग, इलायची, दारचीनी, जीरा, कपूर, फूलप्रियंगु और नागरमोथा ये प्रत्येक औषधि एकएक कर्ष लेवे । फिर सबको खरलमें डालकर घीग्वारके रसद्वारा घोटकर त्रिफलेके क्वाथ और अण्डीकी जडके रसमें सातबार भावना देवे । पश्चात् अण्डके पत्तोंसे लपेटकर धानोंके ढेरमें गाडकर तीन दिनतक रक्खे । फिर उसको निकालकर और पीसकर उसकी चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इसकी प्रतिदिन एक गोली पानके साथ खावे तो सब रोग नष्ट होते हैं । सम्पूर्ण आधिव्याधियोंको नष्ट करनेके लिये शिवजीने यह औषधि कही है । इसको पूर्णचन्द्ररस कहते हैं । यह सब रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये । यह रस बलकारक, रसायन वीर्यवर्द्धक और उत्तम वाजीकरण है । यह अष्ठीला, खाँसी, श्वास, अरुचि, आमशूल, कटिशूल, हृदयशूल, पंक्तिशूल, मन्दाग्नि, अजीर्ण बहुत पुरानी संग्रहणी, आमवात, अम्लपित्त, भगन्दर, कामला, पाण्डुरोग, प्रमेह, वातरक्त, नानाप्रकारके

वातरोग, वमन, भ्रम और अग्निकी हीनतादि विकारोंको तत्काल नष्ट करता है।वाजीकरण औषधियोंमें इससे बढकर अन्य कोई औषधि नहीं है ॥७३-८२॥

महालक्ष्मीविलासरस।

पलं वज्राभ्रचूर्णस्य तदर्द्धं गन्धकं भवेत्।
तदर्द्धं वङ्गभस्मापि तदर्द्धं पारदन्तथा ॥ ८३ ॥
तत्समं हरितालञ्च तदर्द्धं ताम्रभस्मकम्।
रसतुल्यञ्च कर्पूरं जातीकोषफले तथा ॥ ८४ ॥
वृद्धदारकबीजञ्च बीजं स्वर्णफलस्य च।
प्रत्येकं कार्षिकं भागं मृतस्वर्णञ्च शाणकम् ॥ ८५ ॥
निष्पिष्य वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः।
निहन्ति सन्निपातोत्थान्गदान्घोरांश्चतुर्विधान् ॥ ८६ ॥
वातोत्थान्पैत्तिकांश्चैव नास्त्यत्र नियमः क्वचित्।
कुष्ठमष्टादशाख्यञ्च प्रमेहान्विंशतिं तथा ॥ ८७ ॥
नाडीव्रणं व्रणं घोरं मूत्रामयभगन्दरम्।
श्लीपदं कफवातोत्थं रक्तमांसाश्रितञ्च यत् ॥ ८८ ॥
मेदोगतं धातुगतं चिरजं कुलसम्भवम्।
गलशोथमन्त्रवृद्धिमतीसारं सुदारुणम् ॥ ८९ ॥
आमवातं सर्वरूपं जिह्वास्तम्भं गलग्रहम्।
उदरं कर्णनासाक्षिमुखवैकृत्यमेव च ॥ ९० ॥
कासपीनसयक्ष्मार्शःस्थौल्यदौर्गन्ध्यनाशनः।
सर्वशूलं शिरःशूलं स्त्रीणां गदनिषूदनः ॥ ९१ ॥
वटिकां प्रातरेकैकां खादेन्नित्यं यथाबलम्।
अनुपानमिह प्रोक्तं मांसं पिष्टं पयो दधि ॥ ९२ ॥
वारितक्रसुरासीधुसेवनात्कामरूपधृक्।
वृद्धोऽपि तरुणस्पर्शी न च शुक्रस्य संक्षयः ॥ ९३ ॥
न च लिङ्गस्य शैथिल्यं न केशा यान्ति पक्वताम्।
नित्यं स्त्रीणां शतं गच्छेन्मत्तवारणविक्रमः ॥ ९४ ॥

द्विलक्षयोजनी दृष्टिर्जायते पौष्टिकः परः।
प्रोक्तः प्रयोगराजोऽयं नारदेन महात्मना ॥ ९५ ॥
रसो लक्ष्मीविलासोऽयं वासुदेवे जगत्पतौ।
प्रसादादस्य भगवान् लक्षनारीषु वल्लभः ॥ ९६ ॥

वज्राभ्रककी भस्म चार तोले, शुद्धगन्धक दो तोले, वङ्गभस्म एक तोला, शुद्धपारा ६ माशे, हरिताल ६ माशे, ताम्रभस्म ३ माशे, कपूर ६ माशे तथा जावित्री और जायफल छः मासे, विधारेके बीज, धतूरेके बीज, प्रत्येक एक एक कर्ष और सोनेकी भस्म चार माशे, सबको एकत्र कूटपीसकर पानके रस द्वारा खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह रस सन्निपातसे उत्पन्नहुए घोररोग तथा वात, पित्त, कफ और द्वन्द्वजादि चारों प्रकारके विकारोंसे उत्पन्नहुए रोगोंको नष्ट करता है। इसपर किसी प्रकारका परहेज नहीं है। यह अठारह प्रकारके कोढ, २० प्रकारके प्रमेह, नासूर, घोरव्रण, मूत्रकृच्छ्र, भगन्दर, श्लीपद, कफ वातजन्यरोग, रक्त और मांसगतरोग, मेदोगत, धातुगत, कुलपरम्परासे होनेवाले बहुत पुराने रोग, गलेके रोग, सूजन, अन्त्रवृद्धि, दारुणअतीसार, सब प्रकारकी आमवात, जिह्वास्तम्भ, गलग्रह, उदर, कर्ण, नासिका, नेत्र और मुखके रोग, खाँसी, पीनस, राजयक्ष्मा, बवासीर, स्थूलता, दुर्गन्धि सबप्रकारका शूल, शिरःशूल और स्त्रियोंके सब रोगोंको बहुत शीघ्र दूर करता है। प्रतिदिन प्रातःकाल जठराग्निके बलानुसार इसकी एक एक गोली भक्षण करे और मांस पिट्ठी, दूध, दही, जल, मट्ठा, मदिरा और सीधुनामक काँजी; इनको अनुपानरूपसे सेवन करे। इससे वृद्धपुरुष भी कामदेवके समान स्वरूपवान् हो स्त्रियोंमें रमण करताहै, वीर्यका नाश, लिङ्गकी शिथिलता नहीं होती तथा बाल पकावस्थाको कभी प्राप्त नहीं होते। मनुष्य उन्मत्त हाथीके समान पराक्रमी होकर सैकडों स्त्रियोंको प्रतिदिन भोगता है। दो लाख योजनकी वस्तुको देखनेकी दृष्टिशक्ति और अत्यन्त पुष्टि होती है। इस महालक्ष्मीविलासरस नामक प्रयोगराजको महात्मा नारदने जगत्पति भगवान् कृष्णचंद्रसे वर्णन किया है। इसीके प्रतापसे भगवान् कृष्णचन्द्र एक लाख स्त्रियोंमें सर्व प्रिय हुए थे॥

वसन्तकुसुमाकररस।

द्विभागं हाटकं चन्द्रं त्रयो वङ्गाहिकान्तकाः।
चतुर्भागं शुभ्रमभ्रं प्रवालं मौक्तिकन्तथा ॥ ९७ ॥
भावयेद्गव्यदुग्धेन भावनेक्षुरसेन च।
वासालाक्षारसोदीच्यरत्ताकन्दप्रसूनकैः ॥ ९८ ॥

शतपत्ररसेनैव मालत्याः कुङ्कुमोदकैः ।
पश्चान्मृगमदैर्भाव्यं सुगन्धिरससम्भवैः ॥ ९९ ॥
कुसुमाकरविख्यातो वसन्तपदपूर्वकः ।
गुञ्जाद्वयेन संसेव्यः सितामध्वाज्यसंयुतः ॥ १०० ॥
मेहघ्नः कान्तिदश्चैव कामदः पुष्टिदस्तथा ।
वलीपलितनाशश्च श्रुतिभ्रंशं विनाशयेत् ॥ १०१ ॥
पुष्टिदो बल्यमायुष्यः पुत्रप्रसवकारणम् ।
प्रमेहान्विंशतिश्चैव क्षयमेकादशन्तथा ॥
तथा सोमरुजं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥१०२॥

सोनेकी भस्म और चाँदीकी भस्म प्रत्येक दो दो तोले,वङ्ग सीसा और लोह। इनकी भस्म तीन तीन तोले,श्वेतअभ्रक,मूँगा और मोतीकी भस्म चार चार तोले लेवे।फिर सबको एकत्र पीसकर गौके दूध, ईखके रस, अडूसेकी छालके रस, लाखके काथ और सुगन्धवालाके काथ, केलेकी जडके रस, मोचरस, कमलके रस,मालतीके फूलोंके रस,केशरके जल और कस्तूरीके काथमें यथाक्रमसे अलग अलग सात सात बार भावना देवे । फिर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इसको वसन्तकुसुमाकररस कहते हैं । इसकी प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक वटी मिश्री, शहद और घीके साथ मिलाकर सेवन करे तो यह प्रमेहको नाश करता है, शरीरमें कान्ति,काम और पुष्टि करताहै, वली और पलितरोग तथा बहरेपनको नष्ट करता है । एवं पुष्टिके देनेवाला, बलकारक, वीर्यवर्द्धक और पुत्रको उत्पन्न करनेवाला है । बीस प्रकारके प्रमेह, ग्यारह प्रकारके क्षय तथा साध्य अथवा असाध्य सोमरोगको यह रस तत्काल नाश करताहै९७-१०२॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां रसायनाधिकारः ॥

अथ वाजीकरणाधिकारः ।

येन नारीषु सामर्थ्यं वाजिवल्लभते नरः।
व्रजेच्चाप्यधिकं येन वाजीकरणमेव तत् ॥ १ ॥

जिस औषधिके द्वारा मनुष्य स्त्रियोंमें घोडेके समान रमण करनेकी सामर्थ्यको पाता है और बार बार मैथुन करता है, तथा जिसके द्वारा अधिक वीर्य उत्पन्न हो उसको वाजीकरण कहते हैं ॥ १ ॥

चिन्तया जरया शुक्रं व्याधिभिः कर्मकर्षणात् ।
क्षयं गच्छत्यनशनात्स्त्रीणाञ्चातिनिषेवणात् ॥ २ ॥

अधिक चिन्ता, बुढापा, रोग, दुःखदायी कर्म, लंघन और अधिक स्त्रीप्रसंग करना इत्यादि कारणोंसे वीर्य नष्ट होजाता है ॥ २ ॥

अतिव्यवायशीलो यो न च वृष्यक्रियारतः ।
ध्वजभङ्गमवाप्नोति सशुक्रक्षयहेतुकम् ॥ ३ ॥

जो मनुष्य अधिकतर मैथुन करता है रसायन एवं वाजीकरण औषधि नहीं खाता है तो वह अधिक वीर्यके क्षयहोनेके कारण नपुंसकताको प्राप्त होता है॥

ग्लानिः कम्पोऽवसादस्तदनु च कृशता क्षीणता चेन्द्रियाणां
शोषोच्छ्वासोपदंशज्वरगुदजगदाः क्षीणता सर्वधातौ ।
जायन्ते दुर्निवाराः पवनपरिभवाः क्लीबता लिङ्गभङ्गो
वामावश्यातियोगाद्व्रजत इह सदा वाजिकर्मच्युतस्य ॥४ ॥

अत्यन्त स्त्री प्रसङ्ग करनेके कारण वीर्यनष्ट होजानेपर वाजीकरण औषध सेवन न करनेसे मनुष्यके शरीरमें ग्लानि, कम्प, खेद, दुर्बलता, इन्द्रियोंकी शिथिलता, शोथ, उच्छ्वास, उपदंश, ज्वर, गुदाके रोग संपूर्ण धातुओंमें क्षीणता और दारुण वातरोग तथा नपुंसकता और लिंगनाश प्रभृति विकार उत्पन्न होतेहैं॥

यत्किञ्चिन्मधुरं स्निग्धं जीवनं बृंहणं गुरु ।
हर्षणं मनसश्चैव सर्वं तद्वृष्यमुच्यते ॥ ५ ॥

जो मीठी, चिकनी, आयुकारक, वीर्यवर्द्धक, गुरुपाकी और मनको प्रसन्न करनेवाली वस्तु होती है उसको वृष्य कहते हैं ॥ ५ ॥

नरो वाजीकरान्योगान्सम्यक् शुद्धो निरामयः ।
सप्तत्यन्तं प्रकुर्वीत वर्षादूर्ध्वन्तु षोडशात् ॥ ६ ॥
आयुष्कामो नरः स्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति ।
न च वै षोडशादर्वाक् सप्तत्याः परतो न च ॥ ७ ॥

स्वस्थ और वमन, विरेचनादि करके शुद्धशरीरवाला मनुष्य सोलह वर्षकी अवस्थासे लेकर सत्तर वर्षकी अवस्थातक वाजीकरण औषधियोंको यथाविधि सेवन करे तो वह मनुष्य दीर्घायु और स्त्रियोंके साथ रमणकरनेयोग्य होता है। सोलह वर्षसे कम उम्रवाले बालकको और सत्तर वर्षके पीछे वृद्धमनुष्यको वाजीकरण औषधि सेवन नहीं करनी चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

भोजनानि विचित्राणि पानानि विविधानि च।
गीतं श्रोत्राभिरामाश्च वाचः स्पर्शसुखास्तथा॥ ८॥
कामिनीसान्द्रतिलका कामिनी नवयौवना।
गीतं श्रोत्रमनोज्ञश्च ताम्बूलं मदिराः स्रजः॥ ९॥
गन्धा मनोज्ञरूपाणि चित्राण्युपवनानि च।
मनसश्चाप्रतीघातो वाजीकुर्वन्ति मानवम्॥ १०॥

तृप्तिजनक और बलकारक नानाप्रकारके भोज्य और पानीयद्रव्योंका सेवन, कानोंको प्रियलगनेवाले गीत, स्त्रियोंके प्रियवाक्य, स्त्रियोंका सुखपूर्वकस्पर्श तिलकको धारण करनेवाली नौजवान स्त्रीके साथ प्रसङ्ग, मनोहर और कर्णप्रियगान, ताम्बूलभक्षण, मदिरापान, सुगन्धित मालायें धारण करना, मनोरम और चित्रविचित्रपुष्पोंसे युक्त बगीचेमें भ्रमण एवं मनके खेदको हरनेवाले साधन ये सब मनुष्यको वाजीकरणके लिये प्रयोग करनी चाहिये॥८-१०॥

योगान्संसेव्यवृष्यान्तदुपरि च पयः शीतलञ्चाम्बु पीत्वा
गच्छेन्नारीं रसज्ञां स्मरशरतरुणीं कामुकः काममाद्ये।
यामे हृष्टः प्रहृष्टां व्यपगतसुरतस्तत्समुत्पाद्य सद्यः
कान्तः कान्ताङ्गसङ्गान्महदपि नच वै धातुवैषम्यमेति॥११॥

वाजीकर औषधियोंको सेवन करके दूध और शीतलजलपानकरे फिर कामदेवके बाणोंसे विद्ध और रसको जाननेवाली नवयौवना तथा प्रसन्नचित्तवाली सुन्दरीको कामीपुरुष आनन्दसे एकप्रहर तक भोगे। जब मैथुन करते २ ग्लानि उत्पन्न होजाय तब वह पुरुष स्त्रीके अङ्गपर अङ्गरखकर शयनकरे इस प्रकार करनेसे धातुवैषम्य नहीं होता॥ ११॥

सुरूपा यौवनस्था च लक्षणैर्यदि भूषिता।
वयस्या शिक्षिता या च सा स्त्री वृष्यतमा मता१२॥

जो स्त्री सुन्दर, जवान, शुभलक्षण और आभूषणोंसे सुसज्जित, थोडी अवस्थावाली और सुशिक्षित होती है उसको वृष्यतमा कहते हैं॥ १२॥

विलासीनामर्थवतां रूपयौवनशालिनाम्।
नराणां बहुभार्याणां विधिर्वाजीकरो हितः॥ १३॥
स्थविराणां रिरंसूनां स्त्रीणां वाल्लभ्यमिच्छताम्।
योषित्प्रसङ्गात्क्षीणानां क्लीबानामल्परेतसाम्॥१४॥

हिता वाजिकरा योगाः प्रीणयन्ति बलप्रदाः ।
एतेऽपि पुष्टदेहानां सेव्याः कालाद्यपेक्षया ॥ १५ ॥

जो पुरुष विलासी, धनाढय, रूप तथा यौवनसे सम्पन्न और जो बहुतसी स्त्रियोंवाले हों उनको वाजीकरणविधि हितकारी है। एवं जो वृद्ध तथा स्त्रीके अभिलाषी, स्त्रियोंके प्रियहोनेकी इच्छा करनेवाले, अधिक स्त्रीप्रसङ्गसे अथवा वीर्यके नष्ट होनेसे क्षीणदेहवाले, नपुंसक और अल्पवीर्यवाले जो पुरुष हैं उनको वाजीकरण प्रयोग विशेष हितकर, प्रीतिकर और बलप्रद होते हैं। हृष्टपुष्टशरीरवाले मनुष्योंको भी ये वाजीकर प्रयोग देश, काल और पात्रानुसार सेवन करने चाहिये ॥ १३–१५ ॥

घृतभृष्टमाषद्विदलं दुग्धसिद्धञ्च शर्कराविमिश्रम् ।
भुक्त्वा सदैव कुरुते तरुणीशतमैथुनं पुरुषः ॥ १६ ॥

उडदकी दालको घीमें भूनकर दूधमें पकाकर उसमें चीनी मिलाकर भक्षण करनेसे मनुष्य निरन्तर सौ स्त्रियोंके साथ प्रसङ्गकरनेको समर्थ होता है १६॥

शतावरीशृतं क्षीरं प्रपिबेत्सितया युतम् ।
रममाणस्य विरतिं मृदुतां याति नेन्द्रियम् ॥ १७ ॥

शतावरको १ तोला ले ८ तोले दूध और ३२ तोले जलमें पकावे। जब पकते २ दूधमात्र शेष रहजाय तब उसको उतारकर शीतल करके मिश्री डालकर पान करें तो इससे अत्यन्त स्त्रीप्रसङ्गकरनेवाले मनुष्यकी इन्द्रिय शिथिल नहीं होती १७॥

वृद्धशाल्मलिमूलस्य रसं शर्करया समम् ।
प्रयोगादस्य सप्ताहाज्जायते रेतसोऽम्बुभिः ॥ १८ ॥

पुराने सेमलके वृक्षकी जडके रसको चीनी मिलाकर ७ दिनतक सेवन करनेसे वीर्यकी जलके समान वृद्धि होती है ॥ १८ ॥

लघुशाल्मलिमूलेन तालमूलीं सुचूर्णिताम् ।
सर्पिषा पयसा पीते रतौ चटकवद्भवेत् ॥ १९ ॥

छोटे छोटे सेमलके पौधोंकी जडका चूर्ण और मुसली इन दोनोंको समान भाग ले एकत्र कूटपीसकर घृत और दूधके साथ पानकरनेसे चिरौंटेके समान रतिशक्ति बढती है ॥ १९ ॥

विदारीकन्दचूर्णञ्च घृतेन पयसा पिबेत् ।
उदुम्बररसेनैव वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ २० ॥

विदारीकन्दके चूर्णको घी, दूध और गूलरके रसके साथ मिलाकर सेवन करनेसे वृद्धमनुष्य भी तरुण होता है ॥ २० ॥

सप्तधामलकीचूर्णमामलक्यम्बुभावितम्।
घृतेन मधुना लीढ्वा पिबेत्क्षीरपलं नरः॥ २१ ॥

आमलोंके चूर्णको आमलोंकेही रसमें सात बार भावना देकर घृत और मधुके साथ प्रतिदिन भक्षण करे और पीछेसे ४ तोले गोदुग्ध पीवे तो कामशक्ति बढती है ॥ २१ ॥

अत्यन्तमुष्णकटुतिक्तकषायमम्लं क्षारञ्च शाकमथवा लवणाधिकञ्च। कामी सदैव रतिमान्वनिताभिलाषी नो भक्षयेदिति समस्तजनप्रसिद्धिः॥ २२ ॥

अत्यन्त गरम, चरपरे, तीखे, कषैले, खट्टे और खाररसवाले पदार्थ, शाक अथवा अधिक परिमाणमें लवण इन पदार्थोंको कामीपुरुष कदापि सेवन न करे। क्योंकि ये सब रतिशक्तिका ह्रास करनेवाले हैं ॥ २२ ॥

पिप्पलीलवणोपेतौ बस्ताण्डौ क्षीरसर्पिषा।
साधितौ भक्षयेद्यस्तु स गच्छेत्प्रमदाशतम्॥ २३ ॥

जो बकरेके दोनों अण्डकोषोंको दूधमें पकाकर और घृतमें भूनकर पीपलका चूर्ण और सैंधानमक मिलाकर भक्षण करे तो वह सौ स्त्रियोंको भोगनेके लिये समर्थ होता है ॥ २३ ॥

बस्ताण्डसिद्धे पयसि भावितानसकृत्तिलान्।
यः खादेत्स नरो गच्छेत्स्त्रीणां शतमपूर्ववत्॥ २४ ॥

जो पुरुष बकरेके अण्डकोषोंके द्वारा सिद्धकियेहुए दूधमें भूसीरहित तिलोंको सातबार भावना देकर भक्षण करे तो वह सैकडों स्त्रियोंमें गमन करनेकी शक्तिसे सम्पन्न होता है ॥ २४ ॥

चूर्णं विदार्याः सुकृतं तद्रसेनैव भावितम्।
सर्पिःक्षौद्रयुतं कृत्वा शतं गच्छेन्नरोऽङ्गनाः॥ २५ ॥

विदारीकन्दके चूर्णको उसके ही स्वरसमें ७ बार उत्तमप्रकार भावना देकर घी, दूधके साथ मिलाकर सेवनेसे मनुष्य सैकडोंस्त्रियोंको भोगनेवाला होताहै॥

एवमामलकं चूर्णं स्वरसेनैव भावितम्।
शर्करामधुसर्पिर्भिर्युक्तं लीढ्वा पयः पिबेत्॥
एतेनाशीतिवर्षोऽपि युवेव परिहृष्यति॥ २६ ॥

आमलोंके चूर्णको आमलोंके ही स्वरसमें भावना देकर खाँड, शहद और घीके साथ मिलाकर चाटे, ऊपरसे दूध पिये तो इससे अस्सीवर्षका बूढा आदमी भी युवाकी समान आनन्दको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

विदारीकन्दकल्कन्तु घृतेन पयसा नरः ।
उडुम्बरसमं खादेद्वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ २७ ॥

विदारीकन्द और गूलर इन दोनोंको समानभाग लेकर एकत्र पीसकर कल्क बनालेवे । फिर घृत और दूधके साथ उक्त कल्कको भक्षण करे तो वृद्ध मनुष्य भी युवाके समान रमण करता है ॥ २७ ॥

स्वयंगुप्तेक्षुरकयोर्बीजं समधुशर्करम् ।
धारोष्णेन नरः पीत्वा पयसा न क्षयं व्रजेत ॥ २८ ॥

कौंछके बीजोंका चूर्ण और तालमखानेके चूर्णको समानभाग लेकर शहद और चीनी तथा धारोष्णदूधके साथ मिलाकर पानकरनेसे वीर्यक्षीण नहीं होता॥

उच्चटाचूर्णमप्येवं क्षीरेणोत्तममुच्यते ।
शतावर्युच्चटाचूर्णं पेयमेवं सुखार्थिना ॥ २९ ॥

केवल उच्चटाके चूर्णको अथवा उच्चटा और शतावरके चूर्णको एकत्र मिलाकर सुखकी इच्छाकरनेवाला मनुष्य दूधके साथ पान करे तो वीर्यवृद्धि होती है ॥

कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम् ।
पयोऽनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेगः समो भवेत् ॥ ३० ॥

मुलैठीके १ कर्ष चूर्णको घी और शहदमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे दूध पीवे तो प्रतिदिन कामशक्ति प्रबल होती है ॥ ३० ॥

आर्द्राणि मत्स्यमांसानि शफरीर्वा सुभर्जिताः ।
तप्ते सर्पीषि यः खादेत्स गच्छेत्स्त्रीषु न क्षयम् ॥ ३१ ॥

जो मनुष्य गीले मांस, मछली अथवा शफरीमछलीको घृतमें भूनकर भक्षण करे तो उसके स्त्रीसहवास करनेपर भी वीर्य क्षय नहीं होता ॥ ३१ ॥

गोक्षुराद्यचूर्ण ।

गोक्षुरकः क्षुरकः शतमूली वानरिनागबलाऽतिबला च ।
चूर्णमिदं पयसा निशि पेयं यस्य गृहे प्रमदाशतमस्ति॥३२॥

जिसके घरमें सौ स्त्रियें हों वह मनुष्य गोखुरू, तालमखाना, शतावर, कौंछ, गंगरेन, कंघी इनके समानभाग मिश्रित चूर्णको दूधके साथ रात्रिमें सेवन करे ३२

नरसिंहचूर्ण ।

शतावरीरजःप्रस्थं प्रस्थं गोक्षुरकस्य च ।
वाराह्या विंशतिपलं गुडूच्याः पञ्चविंशतिः ॥ ३३ ॥
भल्लातकानां द्वात्रिंशच्चित्रकस्य दशैव तु ।
तिलानां शोधितानाञ्च प्रस्थं दद्यात्सुचूर्णितम् ॥३४॥
त्र्यूषणस्य पलान्यष्टौ शर्करायाश्च सप्ततिः ।
माक्षिकं शर्करार्द्धेन माक्षिकार्द्धेन वै घृतम् ॥ ३५ ॥
शतावरीसमं देयं विदारीकन्दजं रजः ।
एतदेकीकृतं चूर्णं स्निग्धभाण्डे निधापयेत् ॥ ३६ ॥
पलार्द्धमुपयुञ्जीत यथेष्टञ्चापि भोजनम् ।
मासैकमुपयोगेन जरां हन्ति रुजामपि ॥ ३७ ॥
वलीपलितखालित्यमेहपाण्ड्वाढ्यपीनसान् ।
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि तथाष्टावुदराणि च ॥ ३८ ॥
भगन्दरं मूत्रकृच्छ्रं गृध्रसीञ्च हलीमकम् ।
क्षयञ्चैव महाव्याधिं पञ्चकासान्सुदारुणान् ॥ ३९ ॥
अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ।
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव संसृष्टान्सान्निपातिकान् ॥
सर्वानर्शोगदान्हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ४० ॥
स काञ्चनाभो मृगराजविक्रमस्तुरङ्गमञ्चाप्यनुयाति वेगतः।
स्त्रीणां शतं गच्छति सोऽतिरेकं प्रकृष्टपुष्टश्च यथा विहङ्गः४१
पुत्रान्सञ्जनयेद्धीमान् नरसिंहनिभांस्तथा ।
नरसिंहमिदं चूर्णं सर्वरोगहरं नृणाम् ॥ ४२ ॥

शतावरका चूर्ण एक प्रस्थ, गोखुरूका चूर्ण एक प्रस्थ, बाराहीकन्द २० पल, गिलोय२५पल, भिलावे ३२ पल,चीता१०पल,धुलेहुए तिलोंका चूर्ण एक प्रस्थ, त्रिकुटा८पल,चीनी ७० पल, शहद ३५ पल,घी १७॥ पल और विदारीकन्दका चूर्ण एक प्रस्थ लेवे । इन सबको एकत्र मिलाकर घीके चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे । फिर प्रतिदिन प्रातःकाल उसमेंसे दो दो तोले प्रमाण सेवनकरे और यथेच्छ आहार विहार करे । इस प्रकार एक महीनेतक सेवन करनेसे यह चूर्ण सब प्रकारके रोगों और बुढापेको तथा वली, पलितरोग, गञ्ज, प्रमेह, पाण्डु

रोग, आढयवात, पीनस, अठारह प्रकारके कुष्ठ, आठ प्रकारके उदररोग, भगन्दर, मूत्रकृच्छ्र, गृध्रसीवात, हलीमक, अत्यन्तभयङ्कर क्षयरोग, पाँचप्रकारकी दारुण खाँसी, अस्सीप्रकारके वातरोग, चालीसप्रकारके पित्तरोग, बीसप्रकारके कफरोग, द्वन्द्वज, त्रिदोषजरोग सर्वप्रकारके अर्श रोगोंको इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार वज्रपात वृक्षोंको तत्काल नाश करदेता है। इस चूर्णके प्रभावसे मनुष्य सुवर्णके समान कान्तिमान्, सिंहके समान पराक्रमी, घोडेके समान वेगसे चलनेवाला, सैंकडों स्त्रियोंको भोगनेवाला, बलवान् और गरुडके समान हृष्टपुष्ट होताहै। एवं बुद्धिमान पुरुष नृसिंहके समान शोभायमान पुत्रोंको उत्पन्न करता है । यह नरसिंहनामक चूर्ण मनुष्योंके सब रोगोंको हरनेवाला है ॥४२

कामदीपक ।

सितं पुनर्नवामूलं शाल्मलीरसभावितम् ।
शाल्मलीसत्त्वनिर्यासं दद्यात्तत्र समं समम् ॥ ४३ ॥
गन्धकं सर्वतुल्यञ्च भक्षयेच्छाणमात्रकम् ।
अनुपानं प्रकुर्वीत ततः क्षीरं पलद्वयम् ॥ ४४ ॥
अयं चण्डालिनीयोगोऽगम्याप्यत्र हि गम्यते ।
निषेधान्निधनं याति करणात्कामरूपधृक् ॥ ४५ ॥

सफेद पुनर्नवेकी जडका चूर्ण और मोचरस इन दोनोंको समानभाग और दोनोंके बराबर भाग शुद्धगन्धक लेवे, फिर सब चूर्णको एकत्र मिलाकर सेमलके रसमें सात बार भावना देवे। इसको प्रतिदिन चार चार माशेकी मात्रासे भक्षण करे और ऊपरसे आठ तोले प्रमाण गोदुग्धका अनुपान करे । यह चंडालिनीयोग अगम्यास्त्रीसे भी गमन कराता है और स्त्रीसेवन न करनेसे मृत्यु होती है एवं सेवन करनेसे कामदेवके समानरूपलावण्य करके युक्त होता है ॥

कामधेनु ।

गन्धमामलकं चूर्णं धात्रीरसविभावितम् ।
सप्तधा शाल्मलीतोयैः शर्करामधुयोजितम् ॥ ४६ ॥
लीढ्वा चानु पयःपानं प्रत्यहं कुरुते तु यः ।
एतेनाशीतिवर्षोऽपि शतधा रमते स्त्रियाः ॥ ४७ ॥

शुद्धगन्धक और आमलोंका चूर्ण समानभाग ले, दोनोंको एकत्र मिलाकर आमलोंके रसमें और सेमलके रसमें ७ बार भावना देवे । फिर धूपमें सुखाकर चूर्ण करके उसको चीनी और शहदमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे

दुग्धपान करे। इस प्रकार जो प्रतिदिन इसको सेवन करे तो अस्सी वर्षका बूढा भी सैकडों स्त्रियोंके साथ रमण करने लगताहै ॥ ४६॥४७ ॥

हरशशांक।

शाल्मल्यास्त्वचमादाय श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्।
शुद्धगन्धकचूर्णानि तद्रसेनैव भावयेत् ॥ ४८ ॥
मासमात्रप्रयोगेण शृणु वक्ष्यामि ये गुणाः।
मकरध्वजरूपोऽपि स्त्रीशतानन्दवर्द्धनः ॥ ४९ ॥
शतायुश्च भवेद्देवि वलीपलितवर्जितः।
तेजस्वी बलसम्पन्नो वेगेन तुरगोपमः ॥
सततं भक्षयेद्यस्तु तस्य मृत्युर्न जायते ॥ ५० ॥

सेमलकी छालको लेकर वारीक चूर्ण करलेवे फिर उस चूर्णके बराबरही शुद्धगन्धकका चूर्ण मिलाकर दोनोंको सेमलके रसमें ७ वार भावना देवे । पश्चात् धूपमें सुखाकर पीसलेवे। इस चूर्णको एक महीनेतक सेवन करनेसे जो गुण होते हैं उनको कहता हूँ सुनो। हे देवि ! इसके प्रतापसे मनुष्य सौ वर्षकी आयुवाला, वली तथा पलितरोगसे मुक्त, तेजस्वी, बलवान् और घोडेके समान वेगवान् होता है । जो पुरुष इसको सर्वदा भक्षण करे तो उसकी कभी मृत्यु नहीं होती है ॥ ४८-५० ॥

लक्ष्मणालोह।

लक्ष्मणाहस्तिकर्णाभ्यां त्रिकत्रयसमन्वयात्।
अश्वगन्धासमायोगाल्लौहं पुंसवनं मतम् ॥ ५१ ॥
पुत्रोत्पत्तिकरं वृष्यं कन्यासूतिनिवर्त्तकम्।
कृशस्य बलदं श्रेष्ठं सर्वामयहरं परम् ॥ ५२ ॥

लक्ष्मणाकी जड,हास्तिकर्ण (पलाश) की छाल, सोंठ, मिरच, पीपल,हरड, बहेडा, आमला, वायविडङ्ग, चीता, नागरमोथा और असगन्ध इनके चूर्णको समानभाग और सबचूर्णके बराबर भाग लोहा लेवे। सबको जलके द्वारा खरल करके दोदो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। यह लोह पुरुषत्वको उत्पन्न करता है । स्त्रियोंके इसके सेवनसे कन्योत्पत्ति निवृत्त होकर पुत्रोत्पत्ति होती है। इससे वीर्यवृद्धि और कृशमनुष्यके बलकी वृद्धि होती है। तथा सर्वप्रकारके रोगोंका नाश होता है ॥ ५१॥५२ ॥

सिद्धशाल्मलीकल्प।

भूकुष्माण्डं तालमूली धात्री चैव पुनर्नवा।
समभागं समाहृत्य भागार्द्धं गन्धकं तथा॥ ५३॥
तदर्द्धं पारदं शुद्धं कज्जलीकृत्य निःक्षिपेत्।
श्वेतशाल्मलितोयेन सप्तधा भावयेत्ततः॥ ५४॥
माहिषेण च दुग्धेन तच्चूर्णं भावयेत्पुनः।
शुष्कं तच्चूर्णयेद्यत्नाल्लेहयेन्मधुसर्पिषा॥ ५५॥
अनेनाशीतिवर्षोऽपि शतधा रमते स्त्रियाः।
ऊर्ध्वलिङ्गः सदा तिष्ठेत्कामदेव इव स्वयम्॥ ५६॥
ज्वरादिरोगनिर्मुक्तः संसारसुखमश्नुते।
शाणमेकन्तु कर्त्तव्यं दुग्धमत्रानुपानकम्॥ ५७॥

विदारीकन्द, मुसली, आमले और सफेद पुनर्नवा ये प्रत्येक एकएक तोला, एवं गन्धक ६ माशे और शुद्धपारा ३ माशे लेवे। प्रथम पारे और गन्धककी एकत्र कज्जली बनालेवे, फिर सबको एकत्रकर सफेद सेमलकी जडके क्वाथ और भैंसके दूधमें अलग २ क्रमशः सातवार भावनादेवे। पश्चात् धूपमें सुखाकर चूर्णकरलेवे। इस चूर्णको प्रतिदिन चार २ माशे प्रमाण लेकर शहद और घीके साथ सेवन करे। इसके सेवनसे अस्सीवर्षका वृद्ध मनुष्य भी सैकडों स्त्रियोंको भोगता है और लिङ्ग सदा खडा रहता है। मनुष्य कामदेवके समान सुन्दरहो और ज्वरादिरोगोंसे मुक्त होकर सांसारिकसुखको भोगता है। इसपर दुग्धपान करना चाहिये॥ ५३-५७॥

पञ्चशर।

रसेन सह शाल्मलिजेन सूतं त्रिसप्तवाराणि बलिं विमर्द्य। पृथक् तयोः कज्जलिकां विपक्वां घृते रसः पञ्चशरोऽयमुक्तः॥ ५८॥ वल्लोऽहिवल्लीदलसंप्रयुक्तो वीर्यातिवृद्धिं कुरुतेऽस्य नूनम्। मांसान्नमद्यं गुरु पायसञ्च पयः पिबेन्माहिषमत्र सिद्धम्॥ ५९॥

सेमलकी मुषलीके रसमें समानभाग मिश्रित पारे और गन्धकको पृथक् पृथक् इक्कीसबार भावना देवे। फिर दोनोंकी कज्जली बनाकर घीमें पका लेवे। पश्चात् इसको दो दो रत्तीप्रमाण ले पानके रसमें मिलाकर सेवन करे

तो यह निश्चय वीर्यकी वृद्धि करता है। इसपर मांस, उडदके बनेपदार्थ, मदिरा, भारी पदार्थ, खीर और उत्तमप्रकार सिद्ध कियाहुआ भैंसका दूध इत्यादि पदार्थ सेवन करने चाहिये।इस योगको पञ्चशररस कहतेहैं॥५८-५९॥

कामिनीमदभञ्जन।

शुद्धसूतं समं गन्धं त्र्यहं कह्लारकद्रवैः।
मर्दितं वालुकायन्त्रे यामं सम्पुटके पचेत् ॥ ६० ॥
रक्ताङ्गस्य द्रवैर्भाव्यं दिनैकन्तु सितायुतम्।
यथेष्टं भक्षयेच्चानु कामयेत्कामिनीशतम् ॥ ६१ ॥

शुद्धपारे और शुद्धगन्धकको समानभाग लेकर कज्जली बनाले, फिर उसको लाल कमलके पत्तोंके रसमें तीन दिनतक खरल करके वालुकायन्त्रमें रखकर एक प्रहरतक पकावे। पश्चात् उसमेंसे औषधिको निकालकर केशरके क्वाथमें एक दिनतक भावनादेवे। इस रसको प्रतिदिन उचितमात्रासे मिश्रीमें मिलाकर सेवन करे और यथेच्छआहार विहार करे तो सौ स्त्रियोंसे प्रसङ्ग करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है॥ ६०॥६१॥

कामिनीदर्पघ्न।

कज्जलीकृतसुगन्धकशम्भोस्तुल्यमेव कनकस्य हि बीजम्।
मर्दयेत्कनकतैलयुतं स्यात्कामिनीमदाविधूनन एषः॥ ६२ ॥
अस्य वल्लकमथो सितयाक्तं सेवितं हरति मेहगदौघान्।
वीर्यदार्ढ्यकरणं कमनीयं द्रावणं निधुवने वनितानाम् ६३॥

शुद्धगन्धक एक तोला और शुद्धपारा एक तोला लेकर दोनोंकी एकत्र कज्जली बना लेवे, फिर उसमें दोतोले धतूरेके बीजोंका चूर्ण मिलाकर धतूरेके तेलमें अच्छे प्रकार खरल कर उसकी दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। प्रातिदिन प्रातःकाल एक दो गोली मिश्रीके साथ सेवन करे तो यह रस स्त्रीके मदको ध्वंस करता है और प्रमेहके समूहको तत्काल नष्ट कर वीर्यस्तम्भन करता है। इसके सेवनसे मनुष्य अत्यन्त मनोहर और स्त्रियोंके दर्पको तत्क्षण नष्ट करनेमें प्रबल होता है॥ ६२ ॥ ६३ ॥

पुष्पधन्वा।

हरजभुजङ्गलौहश्चाभ्रकं वङ्गचूर्णं कनकविजया यष्टी
शाल्मली नागवल्ली। घृतमधुसितादुग्धं पुष्पधन्वा
रसेन्द्रो रमयति शतरामा दीर्घमायुर्बलञ्च ॥ ६४ ॥

रससिन्दूर, सीसा, लोहा, अभ्रक और वङ्ग इनकी भस्मोंको समानभाग लेकर धतूरा, भाँग, मुलैठी, सेमलकी मुसली और पान इनके रसमें एकएक बार क्रमसे भावना देवे । फिर इसको घी, शहद, मिश्री दूधके साथ मिलाकर सेवन करे । इससे आयु और बलकी वृद्धि होती है तथा मनुष्य सैकडों स्त्रियोंके भोगनेको समर्थ होताहै । यह पुष्पधन्वारस सबरसोंका राजाहै।।६४।।

पूर्णचन्द्ररस ।

सूताभ्रलौहं सशिलाजतु स्याद्विडङ्गताप्यं मधुना सितेन ।
सम्मर्द्य सर्वं खलु पूर्णचन्द्रो माषोऽस्य वृष्यो भवति प्रयुक्तः॥

रससिन्दूर, अभ्रक, लोहा, शिलाजीत, वायविडङ्ग और सोनामाखी इन सबको बराबर भाग ले एकत्र पीसलेव । फिर शहद और मिश्रीमें मिलाकर एक एक माशे प्रमाण प्रतिदिन भक्षण करे तो मनुष्य पूर्णचन्द्रमाके समान वीर्यकी वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ६५ ॥

अनङ्गकुसुमाकर ।

निरुत्थभस्म सौवर्णं मुक्ता कस्तूरिका तथा ।
तालसत्त्वञ्च तत्सर्वं तोलकैकं प्रकल्पयेत् ॥ ६६ ॥
कन्यारसेन संमर्द्य चतुर्गुञ्जामिता वटी ।
वटिकां वटिकार्द्धं वा सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ६७ ॥
अनुपानादिकं दद्याद्बुध्वा दोषबलाबलम् ।
अयथावीर्यपातेन शुक्रमेहादिभिस्तथा ॥ ६८ ॥
क्लीबत्वं ध्वजभङ्गश्च रोगांश्चाशु तदुद्भवान् ।
नाशयेदेव विख्यातोऽनङ्गकुसुमसंज्ञितः ॥ ६९ ॥

उत्तमप्रकार मारेहुये सोनेकी भस्म, मोतीकी भस्म, कस्तूरी और वंशपत्री, हरिताल इन सबको एकएक तोला प्रमाण लेकर घीग्वारके रसमें अच्छेप्रकार खरल करके चार चार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । फिर इसकी एक अथवा आधी गोली सेवन करे और दोषोंके बलाबलको विचारकर अनुपानकी कल्पना करे । यह रस सर्वरोगोंमें हितकारी है । अकारण वीर्यपात होनेसे, शुक्रक्षय वा प्रमेहादिसे उत्पन्नहुई क्लीबता, ध्वजभङ्ग और उससे होनेवाले अन्यान्य सब रोगोंको यह प्रसिद्ध अनङ्गकुसुमनामवालारस नष्ट करता है ॥ ६६-६९ ॥

हेमसुन्दररस ।

शुद्धसूतस्य पादांशं हेमभस्म प्रकल्पयेत् ।
क्षीराज्यदधिसंमिश्रं माषैकं कांस्यपात्रके ॥ ७० ॥

लेहयेन्माषषट्कन्तु जरामरणनाशनम् ।
वागुजीचूर्णकर्षैकं धात्रीफलरसाप्लुतम् ॥
अनुपानं पिबेन्नित्यं स्याद्रसो हेमसुन्दरः ॥ ७१ ॥

शुद्धपारा १ तोला और सुवर्णभस्म ३ माशे लेकर काँसीके पात्रमें रख उसमें दूध, घी और दही प्रत्येक एक एक माशा डालकर अच्छे प्रकार खरल करे। इस रसको प्रतिदिन छः छः माशेकी मात्रासे सेवन करे तो जरा और मृत्यु निवृत्ति होती है। इसपर बापचीके एक कर्ष चूर्णको आमलोंके रसमें मिलाकर अनुपान करे। यह हेमसुन्दर नामवालारस है ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अनङ्गसुन्दररस ।

शुद्धसूतं समं गन्धं त्र्यहं कह्लारजैर्द्रवैः ।
मर्दितं वालुकायन्त्रे यामं सम्पुटके पचेत् ॥ ७२ ॥
रक्तागस्त्यद्रवैर्भाव्यं दिनमेकं सिताम्बुजैः ।
यथेष्टं भक्षयेच्चानु कामयेत्कामिनीशतम् ॥ ७३ ॥

शुद्धपारा और शुद्धगन्धक दोनोंको समानभाग लेकर लालकमलके रसमें तीन दिनतक खरल करे। फिर बालुकायन्त्रमें रखकर एक प्रहरतक पुटपाक करे। पश्चात् लाल अगस्तियाके रसमें एक दिनतक भावना देकर प्रतिदिन इस रसको उचितमात्रासे मिश्रीके जलके साथ सेवन करे और यथेच्छ भोजनकरे तो सौ स्त्रियोंको भोगनेकी शक्ति सम्पन्न होता है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

गन्धामृतरस ।

भस्मसूतं द्विधा गन्धं कन्यकाद्भिर्विमर्दयेत् ।
रुद्ध्वा लघुपुटे पाच्यमुद्धृत्य मधुसर्पिषा ॥ ७४ ॥
वल्लं खादेज्जरामृत्युं हन्ति गन्धामृतो रसः ।
समूलं भृङ्गराजञ्च छायाशुष्कं विचूर्णयेत् ॥ ७५ ॥
तत्समं त्रिफलाचूर्णं सर्वतुल्या सिता भवेत् ।
पलैकं भक्षयेच्चानु सेवनाच्च जरापहः ॥ ७६ ॥

रससिन्दूर एक तोला और शुद्धगन्धक दो तोले, दोनोंको एकत्र घीग्वारके रसके साथ खरलकर पश्चात् लघुपुटमें रखकर पकावे । जब अच्छे प्रकार पककर सिद्ध होजाय तब निकालकर चूर्ण करलेवे । इस औषधिको प्रतिदिन दो रत्ती प्रमाण ले घी और शहदमें मिलाकर सेवन करे तो यह गन्धामृत रस वृद्धावस्था और मृत्युको नाश करता है। इस औषधको सेवन करनेके

पश्चात् जडसहित भाँगरेको छायामें सुखाकर चूर्ण करले, फिर उस चूर्णके समानभाग त्रिफलेका चूर्ण और सब चूर्णके बराबरभाग मिश्री मिलाकर उसमेंसे चार चार तोले नित्य सेवन करे तो वृद्धता दूर होती है॥ ७४-७६॥

सिद्धसूत।

मुक्ताफलं शुद्धसूतं सुवर्णं रूप्यमेव च।
यवक्षारञ्च तत्सर्वं तोलकैकं प्रकल्पयेत्॥ ७७॥
रक्तोत्पलपत्रतोयैर्मर्द्दयेत्पुत्तलीकृतम्।
मर्दयेच्च पुनर्दत्वा गन्धकं तदनन्तरम्॥ ७८॥
क्षिप्त्वा काचघटीमध्ये सन्निरुध्य त्रियामकम्।
सिकताख्ये पचेच्छीते सिद्धसूतन्तु भक्षयेत्॥ ७९॥
पञ्चरक्तिप्रमाणेन मुषलीशर्करान्वितम्।
शुक्रवृद्धिं करोत्येष ध्वजभङ्गं च नाशयेत्॥ ८०॥
दुर्बलं वपुरत्यर्थं बलयुक्तं करोत्यसौ।
मुद्गगर्भं घृतं क्षीरं शालयः स्निग्धमामिषम्॥
पारावतस्य मांसञ्च तित्तिरिश्च सदा हितः॥ ८१॥

मोती, शुद्धपारा, सोना, चाँदी इनकी भस्म और जवाखार ये प्रत्येक एक एक तोला लेकर लालकमलके पत्तोंके रसमें खरल करे। फिर सब औषधिके बराबर शुद्धगन्धक मिलाकर पुनर्वार उक्त रसमें ही खरल करे। पश्चात् उसको एक बोतलमें भरकर उसके मुँहको अच्छे प्रकार बन्दकरके वालुकायन्त्रमें रख ३ प्रहरतक पकावे। जब स्वांगशीतल होजाय तब निकालकर इस सिद्धपारेको पाँच रत्ती प्रमाण ले मुसली और मिश्रीके चूर्णमें मिलाकर भक्षण करे तो यह वीर्यकी वृद्धि करता है और ध्वजभङ्गको दूर करताहै। इसी प्रकार दुर्बल मनुष्यको अत्यन्त बलवान् बनाता है। इसपर मूँगकी दाल, घी, दूध, शालि-चावल, स्निग्ध मांस, कबूतरका मांस और तीतरका मांस इन पदार्थोंका सेवन सदैव हितकारी है॥ ७७-८१॥

मकरध्वजवटी।

सुवर्णं रजतं लौहं कस्तूरी मौक्तिकन्तथा।
जातीफलञ्च सर्वेषां प्रत्येकं तुल्यभागिकम्॥ ८२॥
लौहाच्च द्विगुणं देयं भस्मसूतं भिषग्वरैः।
तत्तुल्यं चन्द्रसंज्ञञ्च प्रवालञ्च तथैव च॥ ८३॥

सहस्रपुटितश्चाभ्रं लोहाच्चतुर्गुणं मतम् ।
सर्वद्रव्यसमं देयं मकरध्वजचूर्णितम् ॥ ८४ ॥
वारिणा वटिकां कृत्वा भक्षयेच्च विधानतः ।
सर्वरोगहरो ह्येष नास्ति कार्या विचारणा ॥ ८५ ॥
वातपित्तोद्भवं वापि श्लेष्माणश्च विशेषतः ।
आर्द्रकस्य रसश्चानु सन्निपातविनाशनः ॥ ८६ ॥
प्राकृतं वैकृतं द्वन्द्वं त्रिदोषश्च विशेषतः ।
उन्मादश्चानेकविधमज्ञानं वाक्प्ररोधकम् ॥ ८७ ॥
कान्तिपुष्टिकरो ह्येष वलीपलितनाशनः ।
मकरध्वजवटी ख्याता नाम्ना च भाषिता स्वयम् ८८

सोना, रूपा, लोहा, कस्तूरी, मोती और जायफल ये प्रत्येक एकएक तोला एवं रससिन्दूर, कपूर और मूँगा प्रत्येक दोदो तोले तथा सहस्रपुटित अभ्रक ४ तोले और सब द्रव्योंके समानभाग स्वर्णसिन्दूर लेवे। सबको जल द्वारा एकत्र खरलकर दोदो रत्तीकी गोलियाँ वनालेवे। यह औषधि अनुपान भेदसे अनेक प्रकारके रोगोंमें विधिपूर्वक प्रयोग करनी चाहिये। इससे सब रोग नष्ट होते हैं, इसमें सन्देह नहीं। इसको अदरखके रसके साथ सेवन करनेसे वात, पित्त, कफ और त्रिदोषजन्य विकार, प्राकृतिक, विकृत, द्वन्द्वजरोग, अनेक प्रकारका उन्माद, मोह और मूर्च्छादिव्याधि शीघ्र नष्ट होती हैं। यह स्वनामख्यात मकरध्वजवटी कान्ति और पुष्टिको उत्पन्न करती है तथा वली और पलितरोगको नष्ट करती है ॥ ८२-८८ ॥

श्रीमन्मथाभ्ररस ।

रसगन्धकयोर्ग्राह्यं पलमेकं सुशोधितम् ।
अभ्रं निश्चन्द्रकं दद्यात्पलार्द्धश्च विचक्षणः ॥ ८९ ॥
कर्पूरं तोलकं दद्याद्वङ्गश्च कोलसम्मितम् ।
ताम्रं तोलार्द्धकन्तत्र निश्शेषं मारितं पुनः ॥ ९० ॥
लौहकर्षं सुजीर्णश्च वृद्धदारकजीरकम् ।
विदारीं शतमूलीश्च क्षुरबीजं बलान्तथा ॥ ९१ ॥
मर्कटचतिविषाश्चैव जातीकोषफले तथा ।
लवङ्गं विजयाबीजं श्वेतसर्जं यमानिकाम् ॥ ९२ ॥

शाणभागान् गृहीत्वैतानेकीकृत्यैव पेषयेत् ।
गुञ्जाद्वयन्तु कर्त्तव्यं कोष्णं क्षीरं पिबेदनु ॥ ९३ ॥
गृहे यस्य शतं नार्यो विद्यन्तेऽतिव्यवायिनः ।
न तस्य लिङ्गशैथिल्यमौषधस्यास्य सेवनात् ॥ ९४ ॥
न च शुक्रक्षयं याति न बलं ह्रासतां व्रजेत् ।
कामरूपी भवेन्नित्यं वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ ९५ ॥
रसः श्रीमन्मथाभ्रोऽयं महेशेन प्रकाशितः ।
अस्य भक्षणमात्रेण काष्ठं जीर्यति तत्क्षणात् ॥
नाशयेद् ध्वजभङ्गादीन् रोगान्योगकृतानपि ॥ ९६ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक प्रत्येक एकएक तोला, निश्चन्द्रअभ्रक दो तोले, भीमसनी कपूर और वङ्गभस्म; प्रत्येक एकएक तोला, ताँबेकी भस्म ६ माशे, लोहेकी भस्म एक कर्ष, पुराने विधारेके बीज, जीरा, विदारीकन्द, शतावर, तालमखाने, खिरैंटी, कौंछके बीज, अतीस, जावित्री, जायफल, लौंग, भाँगके बीज, सफेद राल और अजवायन; इन सबको चार चार माशे ले एकत्र पीस लेवे। इस औषधिको प्रतिदिन दो दो रत्ती प्रमाण ले सुखोष्ण दूधके साथ सेवन करे। जिसके घरमें सौ स्त्रियें हो और जो अत्यन्त मैथुन करनेवाले हैं उनको यह रस सेवन करना चाहिये। इसके सेवनसे लिङ्ग कभी शिथिल नहीं होता, न वीर्य नष्ट होता है और न बलका ह्रास होता है। एवं मनुष्य कामदेवके समान रूपवान् और बूढा सोलह वर्षके युवाके समान होता है। इस श्रीमन्मथाभ्ररसको श्रीमहादेवने प्रकट किया है। इसको भक्षण करनेसे ध्वजभङ्गादिरोग काष्ठके समान तत्क्षण नष्ट होते हैं॥ ८९-९६ ॥

श्रीकामदेवरस ।

पारदं पलमेकं स्याद् द्विपलं शुद्धगन्धकम् ।
रक्तकार्पासतोयेन घृष्ट्वा काचस्य कुप्यतः ॥ ९७ ॥
निःक्षिप्य टङ्कणेनैव मुखं तस्य निरोधयेत् ।
वालुकायन्त्रमध्यस्थं कुप्यञ्च कुरुते दृढम् ॥ ९८ ॥
अहोरात्रं पचेदग्नौ शास्त्रवित्कुशलो भिषक् ।
शीते चादाय पात्रस्थं कूपिकान्तरलम्बितम् ॥ ९९ ॥
दरदेन समं रक्तं सोज्वलं भस्म यद्भवेत् ।
भक्षयेन्माषमेकञ्च घृतेन मधुना सह ॥ १०० ॥

पश्चाद्दुग्धं गुडश्चाज्यं कृष्णेक्षुमपि शर्कराम्।
द्राक्षाखर्जूरमधुकप्रभृतीनथ भक्षयेत्॥ १०१॥
त्रिफला मधुना शान्तिं याति पित्तं चिरोद्धतम्।
निर्गुण्डिकारसेनात्र दुर्वारा वातवेदना॥ २॥
प्रशमं याति वेगेन नूतनश्च वपुर्भवेत्।
अर्द्धावर्त्तितदुग्धेन गृह्यते यद्ययं रसः॥ ३॥
वन्ध्यापि च भवत्येव जीववत्सा सुपुत्रिका।
कामदेवमथो सूतं कामिनां कामदं सदा॥
अस्य प्रसादतो बल्यो रम्यश्च रमते स्त्रियम्॥ ४॥

शुद्धपारा चार तोले, शुद्धगन्धक ८ तोले इन दोनोंको लाल कपासके रसमें खरल करके बोतलमें भरकर सुहागेसे उसके मुँहको बन्द कर देवे। फिर उस बोतलको वालुकायन्त्रमें रखकर शास्त्रवेत्ता वैद्य एक दिनरात्रितक अग्निमें पकावे। जब स्वाङ्गशीतल होजाय तब उसको शीशीमेंसे निकाले। वह हिंगुलके समान लालरङ्गवाली और अति उज्ज्वल भस्म होगी। उस भस्मको प्रतिदिन एक एक माशा ले घी और शहदमें मिलाकर चाटे और पीछेसे दूध, गुड, घी, काली ईखका रस, चीनी, दाख, खजूर और मुलैठी आदि द्रव्योंका सेवन करे। त्रिफलेके क्वाथ और शहदके साथ इस रसको खानेसे बहुत पुराना दुष्ट पित्त शान्त होता है। निर्गुण्डीके रसके साथ खानेसे दुष्टवातकी वेदना दूर होती है और शरीर नवीन होजाता है। यदि इस रसको एक बारकी व्याईहुई गौके अधऔटे दूधके साथ सेवन करे तो वन्ध्यास्त्री भी जीवितवत्सा और सुयोग्य पुत्रवाली होती है। यह कामदेवरस कामी पुरुषोंको कामके देनेवाला है। इसके प्रसादसे निर्बलमनुष्यभी प्रबल और रमणीय होकर स्त्रियोंको भोगता है१०४

मकरध्वजरस।

स्वर्णादष्टगुणं सूतं मर्दयेत्त्रिकगन्धकम्।
रक्तकार्पासकुसुमैः कुमार्यद्भिर्विमर्दयेत्॥ ५॥
शुष्कं काचघटीं रुद्ध्वा वालुकायन्त्रगं हठात्।
भस्म कुर्याद्रसेन्द्रस्य नवार्ककिरणोपमम्॥ ६॥
भागोऽस्य भागाश्चत्वारः कर्पूरस्य सुशोभनाः।
लवङ्गं मरिचं जातीफलं कर्पूरमात्रया॥ ७॥

मेलयेन्मृगनाभिञ्च गद्यानकमितं तथा ।
श्लक्ष्णपिष्टो रसो नाम जायते मकरध्वजः ॥ ८॥
वल्लं वल्लद्वयं वाथ ताम्बूलीदलसंयुतम् ।
भक्षयेन्मधुरं स्निग्धं मृदुर्मांसलवातलम् ॥ ९ ॥
शृतशीतं सितायुक्तं दुग्धं गोभवमाज्यकम् ।
मध्वाद्यं पिष्टमपरं मद्यानि विविधानि च ॥ ११० ॥
करोत्यग्निबलं पुंसां वलीपलितनाशनः ।
मेधायुःकान्तिजननः कामोद्दीपनकृन्महान् ॥ ११ ॥
अभ्यासात्साधकः स्त्रीणां शतं जयति नित्यशः ।
रतिकाले रतान्ते च पुनः सेव्यो रसोत्तमः ॥ १२ ॥
मानहानिं करोत्यासां प्रमदानां सुनिश्चितम् ।
कृत्रिमं स्थावरविषं जङ्गमं विषवारि च ॥ १३ ॥
न विकाराय भवति साधकानाञ्च वत्सरात् ।
मृत्युञ्जयो यथाभ्यासान्मृत्युं जयति देहिनाम् ॥
तथायं साधकेन्द्रस्य जरामरणनाशनः ॥ १४ ॥

सोना १ भाग, शुद्धपारा ८ भाग और पारेसे तिगुनी शुद्धगन्धक इनको एकत्र खरलकर कज्जली बनालेवे । फिर उसको लालकपासके फूलोंके रस और घीग्वारके रसमें उत्तम प्रकार खरल करके छायामें सुखाले, पश्चात् काँचकी शीशीमें भरकर उस शीशीके मुँहको बन्दकर वालुकायन्त्रमें नवीन उदय हुए सूर्यकी किरणोंके समान लाल वर्णकी विधिपूर्वक भस्म करे। जब स्वांग शीतल होजाय तब उक्तभस्म १ भाग, कपूर ४ भाग, लौंग, मिरच और जायफल ये प्रत्येक कपूरके बराबर भाग एवं कस्तूरी ८ माशे लेकर सबको एकत्र पीस लेवे । इस प्रकार यह मकरध्वजनामकरस सिद्ध होता है। इसको प्रतिदिन दो दो रत्तीभर अथवा चार रत्तीभर पानमें रखकर सेवन करे । इसपर मधुर, स्निग्ध, हलका और वातल मांसरस, एवं औटाकर स्वयं शीतलहुआ मिश्री-मिला गोदुग्ध और घृत, शहद, पिष्टक और अनेक प्रकारकी मद्यादि पदार्थ सेवन करे। यह रस मनुष्योंकी अग्निको दीपन करता, वली और पलित रोगको नष्ट करताहै। एवं मेधा, आयु,कान्ति और कामको बढानेवाला है। इसके सेवनसे मनुष्य नित्य सौ स्त्रियोंको भोगताहै । इस उत्तम रसको मैथुनकी आदि और अन्तमें सेवन करे। यह स्त्रियोंके मानको निस्सन्देह दूर कर-

ताहै। एक वर्ष पर्यन्त इस रसको सेवन करनेसे कृत्रिम, स्थावर, जङ्गम और जलीय जीवोंका विष कुछ भी असर नहीं करता जिस प्रकार मृत्युञ्जय मन्त्रका जप करनेसे मनुष्योंकी मृत्यु दूर होजाती है उसीप्रकार यह रसेन्द्र भी प्राणियोंके जरा और मरणको नष्ट करता है॥ १०५-११४॥

महेश्वररस।

रसं भस्मीकृतं कोलं गन्धकं शोधितं समम्।
लौहं कर्षद्वयं ताम्रमर्द्धतोलकसम्मितम्॥ १५॥
सुवर्णं जारितं दद्याच्छाणार्द्धं सुविचक्षणः।
अभ्रं कर्षद्वयं दद्याच्छाणार्द्धं चन्द्रचूर्णकम्॥ १६॥
श्यामाबीजं वरीश्चैव बलामतिबलान्तथा।
एलाश्च शङ्खपुष्पश्च शाणमानं विनिःक्षिपेत्॥ १७॥
जलेन वटिकां कृत्वा गुञ्जामात्रां प्रदापयेत्।
सेवनादस्य कन्दर्परूपो भवति मानवः॥ १८॥
सहस्रं याति नारीणामुत्साहो जायतेऽधिकः।
नित्यं स्त्रीसेवनाद्यस्तु क्षीणशुक्रो भवेन्नरः॥ १९॥
महाशुक्रो भवेत्सोऽपि सेवनादस्य नान्यथा।
महाबलो महाबुद्धिर्जायते नात्र संशयः॥ १२०॥
स्थूलानां कर्षकं श्रेष्ठं कृशानां पुष्टिकारकः।
रसो विनाशयेद्रोगान्सप्तसप्ताहभक्षणात्॥ २१॥

रससिन्दूर १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला, लोहा २ तोले, तांबा ६ माशे, जारणकिया सोना २ माशे, अभ्रक २ तोले, कपूर ६ माशे एवं विधारेके बीज, शतावर, खिरैंटी, कंघी, इलायची और शङ्खपुष्पी ये प्रत्येक चारचार माशे लेवे। सबको जलके द्वारा एकत्र खरल करके एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इसकी प्रतिदिन एकएक गोली सेवन करनेसे मनुष्य कामदेवके समान रूपवान् होता है और हजारों स्त्रियोंको भोगनेका उत्साह उत्पन्न होता है। जो पुरुष नित्यप्रति स्त्रीप्रसङ्गकरनेसे नष्टवीर्य होगया हो वह भी इसके सेवनसे अत्यन्तवीर्यवान्, महाबलवान् और बुद्धिमान् होता है इसमें कुछ सन्देह नहीं। इस रसको सात सप्ताह पर्यन्त सेवन करनेसे सब रोग नष्ट होते हैं एवं स्थूलपुरुषोंकी स्थूलता और कृशमनुष्योंकी कृशतादूर होकर शरीर पुष्ट होताहै॥

स्वर्ण सन्दूर ।

पलं रसेन्द्रस्य च गन्धकस्य हेम्नोऽपि कर्षं परिगृह्य सम्यक् । वटप्ररोहस्य रसेन यामं यामं विदद्यांथ कुमारिकायाः ॥ २२ ॥ तत्काचकुप्यां निहितं प्रयत्नात्पचेद्विधिज्ञः सिकताख्ययन्त्रे । ततो रजश्चोर्द्धगतं सुरम्यं प्रगृह्य यत्नादरुणप्रभं यत ॥ २३ ॥ तद्योजयेत्सर्वगदेषु वीक्ष्य धातुं बलं वाह्निवृद्धिं वयश्च । रसायनं वृष्यतरञ्च बल्यं मेधाग्निकान्तिस्मरवर्द्धनञ्च ॥ २४ ॥

शुद्धपारा एक पल, शुद्धगन्धक एक पल और सोना एक तोला लेवे । सबको एकत्र वडके अंकुरोंके रसमें एक प्रहरतक एवं घीग्वारके रसमें एक प्रहरतक खरल करे । फिर एक बोतलमें विधिपूर्वक बुद्धिमान् वैद्य उसको वालुकायन्त्रमें पकावे । जब स्वयं शीतल होजाय तब सूर्योदयकी लाल लाल कान्तिके समान उस औषधिको बोतलेमेंसे निकालकर पीस लेवे । इस स्वर्णसिन्दूर नामक रसको सब प्रकारके रोगोंमें विचार पूर्वक प्रयोग करे । यह रसायन धातु, बल, अग्नि और आयुकी वृद्धि, शरीरमें पुष्टि, वीर्य तथा बलकी वृद्धि करती है । मेधा, जठराग्नि और कामशक्तिको प्रबल करती है ॥ २१-२४ ॥

स्वल्पचन्द्रोदयमकरध्वज ।

जातीफलं लवङ्गञ्च कर्पूरं मरिचं तथा ।
प्रत्येकं तोलकं दत्त्वा सुवर्णस्य च माषकम् ॥ २५ ॥
अण्डजं माषमानञ्च सर्वतुल्यमथेश्वरम् ।
यत्नतो मर्दयेत्खल्ले चतुर्गुञ्जावटीं चरेत् ॥ २६ ॥
एष चन्द्रोदयो नाम रसो वाजीकरः परः ।
हन्ति रोगानशेषांश्च बलवीर्याभिवर्द्धनः ॥ २७ ॥

जायफल, लौंग, कपूर और कालीमिरच ये प्रत्येक एकएक तोला, सोना एक माशा, कस्तूरी एक माशा और सब औषधोंके बराबर भाग रससिन्दूर लेवे । सबको खरलमें रखकर उत्तमप्रकार मर्दन करे पश्चात् चारचार रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह स्वल्प चन्द्रोदयनामक रस अत्यन्त वाजीकर, सर्वरोग नाशक, बल, वीर्य एवं अग्निवर्द्धक है । इसको माखन, मिश्री अथवा पानके रसके साथ सेवन करना चाहिये ॥ २५-२७ ॥

बृहच्चन्द्रोदयमकरध्वज ।

पलं मृदुस्वर्णदलं रसेन्द्रात्पलाष्टकं षोडश गन्धकस्य । शोणैः सुकार्पासभवैः प्रसूनैः सर्वं विमर्द्याथ कुमारिकाद्भिः ॥ २८ ॥ तत्काचकुम्भे निहितं सुगाढे मृत्कर्पटीभिर्दिवसत्रयश्च । पचेत्क्रमाग्नौ सिकताख्ययन्त्रे ततो रजः पल्लवरागरम्यम् ॥ २९ ॥ संगृह्य चैतस्य पलं पलानि चत्वारि कर्पूररजस्तथैव । जातीफलं सोषणमिन्द्रपुष्पं कस्तूरिकाया इह शाणमेकम् ॥ १३० ॥ चन्द्रोदयोऽयं कथितोऽस्य वल्लो भुक्तोऽहिवल्लीदलमध्यवर्त्ती। मदोन्मदानां प्रमदाशतानां गर्वाधिकत्वं श्लथयत्यकाण्डे ॥ ३१ ॥ घृतं घनीभूतमतीव दुग्धं मृदूनि मांसानि समस्तकानि । मांसान्नपिष्टानि भवन्ति पथ्यान्यानन्ददायीन्यपराणि चात्र ॥ ३२ ॥ वलीपलितनाशनस्तनुभृतां वयःस्तम्भनः समस्तगदखण्डनः प्रचुररोगपञ्चाननः । गृहेऽपि गृहभूपतिर्भवति यस्य चन्द्रोदयः स पञ्चशरदर्पितो मृगदृशां भवेद्वल्लभः ॥ ३३ ॥

सोनेके वर्क चार तोले, शुद्धपारा ३२ तोले, शुद्धगन्धक ६४ तोले इनको एकत्र कर कज्जली बनाले, फिर लालवर्णकी वनकपासके फूलोंके रस और घीग्वारके रसमें खरल कर उसको काँचकी शीशीमें भर ऊपरसे कपरमिट्टीकरके धूपमें सुखालेवे । पश्चात् उस बोतलको वालुकायन्त्रमें रखकर मृदु, मध्य और तीक्ष्ण इस क्रमसे तीनदिनतक अग्नि देवे । जब स्वाङ्गशीतल होजाय तब उसमेंसे लालवर्णके कोमल पत्तोंके समान रमणीय भस्मको निकाललेवे । तदनन्तर यह भस्म चार तोले, कपूर १६ तोले एवं जायफल, त्रिकुटा, लौंग कस्तूरी ये प्रत्येक चार चार माशे लेवे, सबको जलद्वारा एकत्र खरलकर गोलियाँ बनालेवे । इसको बृहच्चन्द्रोदयरस कहते हैं । इस रसको प्रतिदिन दो या तीनरत्ती प्रमाण ले पानमें रखकर सेवन करे । इसके सेवनसे मनुष्य सैकडों मदोन्मत्त स्त्रियोंके मदको असमयमें दूर करता है । इसपर घृत, खूब औटकर गाढाहुआ दूध, मृदुमांस, अन्नके और पिट्ठीके बने पदार्थ एवं अन्यान्य सब प्रकारके आनन्ददायक पथ्यपदार्थ हितकारी हैं । यह रस वली और पलितरोगको नष्ट

करनेवाला, मनुष्योंकी आयुको स्थापन करनेवाला, समस्तरोगोंको नाशकरनेके लिये मृत्युञ्जय है । यह चन्द्रोदय जिसके घरमें भी होता है वह घरका राज्य होता है । वह मृगनयनी स्त्रियोंका प्यारा और कामदेवके गर्वको दूर करताहै॥

खण्डाम्रक ।

पक्वचूतरसद्रोणः पात्रं स्याच्छुद्धखण्डतः ।
घृतमर्द्धं ततो ग्राह्यं चतुर्थांशं च नागरम् ॥ ३४ ॥
तदर्द्धं मरिचं प्रोक्तं तदर्द्धा पिप्पली मता ।
तोयं खण्डसमं दद्यात्सर्वमेकत्र संस्थितम् ॥ ३५ ॥
विपचेन्मृण्मये पात्रे यदा दार्वीप्रलेपनम् ।
चूर्णान्येषां ततो दद्यात्पत्रं पलचतुष्टयम् ॥ ३६ ॥
ग्रन्थिकं चित्रकं मुस्तं धन्याकं जीरकद्वयम् ।
त्र्यूषणं जाति तालीशं चूर्णमेषां पलं पलम् ॥ ३७ ॥
त्वगेलाकेशराणाञ्च प्रत्येकञ्च पलं तथा ।
सिद्धशीते च मधुनः प्रस्थं दत्त्वा विघट्टयेत् ॥ ३८ ॥
तत्सर्वमेकतः कृत्वा शुभे भाण्डे निधापयेत् ।
भोजनादावतः खादेत्पलमानं प्रमाणतः ॥ ३९ ॥
गच्छेत्कन्दर्पदर्पान्धो रागवेगाकुलेन्द्रियः ।
शतं वापि तदर्द्धं वा रमेत्स्त्रीणां पुमानयम् ॥ १४० ॥
संसेव्य भेषजं ह्येतद्वन्ध्यायां जनयेत्सुतम् ।
वीरं सर्वगुणोपेतं शतायुश्च भवेदयम् ॥ ४१ ॥
मृतवत्सा च या नारी या च गर्भोपघातिनी ।
सापि सूते सुतं सत्यनारायणपरायणम् ॥ ४२ ॥
वन्ध्यापि लभते पुत्रं वृद्धोऽपि तरुणायते ।
कुरङ्ग इव संहृष्टो मातङ्ग इव विक्रमः ॥ ४३ ॥
सदा भेषजसंसेवी भवेन्मारुतवेगवान् ।
हन्ति सर्वामयं घोरं कासं श्वासं क्षयं तथा ॥ ४४ ॥
दुर्नामाजीर्णकञ्चैव अम्लपित्तं सुदारुणम् ।
तृष्णां छर्दिञ्च मूर्च्छाञ्च शूलमष्टविधं जयेत् ॥ ४५ ॥

खण्डाम्रकमिदं प्रोक्तं भार्गवेण स्वयम्भुवा।
वयस्यं मेध्यमायुष्यं सर्वपापविनाशनम् ॥ ४६ ॥
ग्रहरक्षःपिशाचघ्नमपस्मारविनाशनम्।
पाण्डुरोगं प्रमेहञ्च मूत्रकृच्छ्रञ्च नाशयेत् ॥ ४७ ॥
वश्या योषिद्भवेत्पुंसां पुमान् वश्यश्च योषिताम्।
दृष्टं वारसहस्रञ्च कथमत्र विचारणा ॥ ४८ ॥

उत्तम प्रकार पकेहुए आमोंका रस ३२ सेर, मिश्री ८ सेर, गौका घी चार सेर, सोंठका चूर्ण दो सेर, मिरचोंका चूर्ण एक सेर, पीपलका चूर्ण आध सेर और जल आठसेर लेवे। सबोंको मिट्टीके उत्तम पात्रमें एकत्रकर विधिपूर्वक पकावे। जब पकते पकते पाक गाढा होकर करछीसे लगनेलगे तब उसमें तेजपात १६ तोले, गठिवन, चीतेकी जड, नागरमोथा, धनियाँ, जीरा, काला जीरा, त्रिकुटा, जायफल, तालीशपत्र, दारचीनी, छोटी इलायची और नागकेशर इन प्रत्येक औषधियोंको चार २ तोले ले बारीक पीसकर मिलादेवे। जब अच्छे प्रकार पकजाय तब उतारकर शीतल होजाने पर उसमें एक प्रस्थ शहद डालकर सबको एकम एक करके चिकने वर्त्तनमें भरकर रखदेवे। तदनन्तर प्रतिदिन भोजन करनेसे पहले इसको चार २ तोले प्रमाण सेवन करे। इसके सेवनसे कामदेवके मदसे अन्धीभूत और रागके वेगसे व्याकुल इन्द्रियवाला मनुष्य सौ या पचास स्त्रियोंको भोगताहै। इस औषधिको सेवनकर वन्ध्या स्त्री भी वीर, सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त और शतायुषी पुत्रको उत्पन्न करती है। जिस स्त्रीके सन्तान होकर मरजाती है और जिसके गर्भ पतित होजाता है वह स्त्रीभी सत्यनारायणकी कृपासे पुत्रवती होती है। इसके प्रतापसे वन्ध्या स्त्री पुत्रवाली और वृद्ध मनुष्य तरुण होता है। इस औषधिको सदा सर्वकालमें नियमितरूपसे सेवन करनेवाला मनुष्य हिरनके समान हृष्ट पुष्टाङ्गी तथा प्रसन्न, हाथीके समान पराक्रमी और वायुके समान वेगवाला होता है। यह सर्वप्रकारके भयङ्कररोग, खाँसी, श्वास, क्षय, बवासीर, अजीर्ण, अम्लपित्त, तृषा, वमन, मूर्च्छा और आठ प्रकारके शूल इत्यादि रोगोंको जीतता है। इस खण्डाम्रकरसायनको ब्रह्माके पुत्र भृगुऋषिने कहाहै। यह आयु और मेधाको बढानेवाला तथा सब पापोंको हरनेवाला है। ग्रह, राक्षस और पिशाचोंकी बाधा, अपस्मार, पांण्डुरोग, प्रमेह और मूत्रकृच्छ्रादि विकारोंको शीघ्र नष्ट करता है। इससे स्त्री पुरुषोंके और पुरुष स्त्रियोंके वशीभूत होजाता है। यह हजारों बार परीक्षाकर देखागया है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३४-४८ ॥

गुडकूष्माण्ड।

कूष्माण्डकात्पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम्।
प्रस्थश्च घृततैलस्य तस्मिंस्तप्ते निधापयेत् ॥ ४९ ॥
त्वक्पत्रधान्यकव्योषजीरकैलाद्वयानलम्।
ग्रन्थिकं चव्यमातङ्गपिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ १५० ॥
शृङ्गाटकं कशेरुश्च प्रलम्बं तालमस्तकम्।
चूर्णीकृतं पलांशश्च गुडस्य तुलया पचेत् ॥ ५१ ॥
शीतीभूते पलान्यष्टौ मधुनः संप्रदापयेत्।
कफपित्तानिलहरं मन्दाग्नौ च प्रशस्यते ॥ ५२ ॥
कृशानां बृंहणं श्रेष्ठं वाजीकरणमुत्तमम्।
प्रमदासु प्रसक्तानां ये च स्युः क्षीणरेतसः ॥ ५३ ॥
क्षयेण च गृहीतानां परमेतद्भिषग्जितम्।
कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां हन्ति च्छर्दिमरोचकम् ॥५४॥
गुडकूष्माण्डकं ख्यातमाश्विभ्यां समुदाहृतम्।
खण्डकूष्माण्डवत्पाच्यं स्विन्नकूष्माण्डकद्रवः॥५५॥

छीलकर उसींजे हुए पेठेके टुकडे१००पल, घी और तिलका तेल एक एक प्रस्थ और पुराना गुड१०० पल लेवे। प्रथम उक्त पेठेके टुकडोंको सुखाकर घी तेलमें भूनलेवे, फिर सबको एकत्रकर पेठेके रसमें पकावे।जब पकते पकते पाक गाढा होजाय तब उसमें दारचीनी, तेजपात, धनियाँ, त्रिकुटा, जीरा,दोनों तरहकी इलायची, चीतेकी जड, पीपलामूल, चव्य, गजपीपल, पीपल, सोंठ, सिंघाडे, कसेरू, खीरेके बीज और ताडका मस्तक ये प्रत्येक चारचार तोले चूर्ण कर डाल देवे और शीतल होनेपर आठपल शहद मिलाकर चिकने बासनमें भरकर रखदेवे। इसके सेवनसे कफ, पित्त और वातजन्यरोग नष्ट होते हैं। यह मन्दाग्निमें भी सेवन करना हितकर है। कृशमनुष्योंको अत्यन्त पुष्टिकारक और उत्तम वाजीकरण है। जो पुरुष निरन्तर स्त्रियोंमें आसक्त होनेसे क्षीणर्वीर्य होगये हों और जो क्षयरोगसे ग्रसित हों यह औषध परमोपयोगी है। तथा खाँसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, वमन और अरुचि आदि विकारोंको नष्ट करती है। इस गुडकूष्माण्डनामक औषधको अश्विनीकुमारोंने वर्णन कियाहै। इसमें खण्डकूष्माण्डके समान आठ सेर पेठेको उबालकर रस बनावे ४९-५५

कामेश्वरमोदक।

धात्रीसैन्धवकुष्ठकट्फलकणाशुण्ठी यमानीद्वयं यष्टी-
जीरकयुग्मधान्यकशठीशृङ्गीवचाकेशरम्। तालीशं
त्रिसुगन्धिकं समरिचं पथ्याक्षमेभिः समं चूर्णीकृत्य
मनाक् स्वबीजसहितं भृष्ट्वा तु शक्राशनम्॥ ५६॥
सर्वेषां द्विगुणां सितां सुविमलां यत्नाद्भिषङ्निःक्षिपेत
क्षौद्रञ्चापि घृतं प्रशस्तदिवसे कुर्याच्छुभान्मोदकान्।
कर्पूरैरवचूर्णितानपि हितान्दत्त्वा तिलान्भर्जितान्
गोप्योऽयं क्षितिमण्डलेऽमितधियां पाखण्डिनाम-
ग्रतः॥ ५७॥ आधिव्याधिहरः परं क्षयहरं कुष्ठापहो
बृंहणः स्त्रीणां तोषकरो मुखद्युतिकरः शुक्राग्निवृद्धि-
प्रदः। कासश्वासबलासरोगनिचयप्रध्वंसनः प्राणिनां
प्रोक्तो ब्रह्मसुतेन सर्वसुखदः कामेश्वरो मोदकः॥५८॥
ग्रहगणपरिहीनः सर्वशास्त्रप्रवीणो ललितविमल-
कीर्त्तिः प्राप्तकन्दर्पमूर्त्तिः। विगतसकलभीतिर्गीतवा-
द्याङ्गनीतिर्भवति भुवि स देवो येन भुक्तः प्रयत्नात्॥५९॥
रहसि युवतिखेलासम्पुटाकर्षहर्षाद्भ्रमयाति युवतीनां
केलिकौतूहलेन। यदि कथमपि भुक्तो भोजनादाव-
थान्ते सुरतरभसमुच्चैर्नष्टकामं प्रकामम्॥१६०॥ यस्मा-
न्नव्यबृहस्पतिस्तनुधियो यस्मात्सदा वीर्यवान् यस्मा-
दुन्मददाक्षिणात्ययुवतीसम्भोगकौतूहली। यस्मा-
त्काव्यकुतूहली सुकविता सञ्जायते लीलया श्रीमद्भिः
प्रतिवासरं क्षितितले संसेव्यतां मोदकः॥ ६१॥

आमले, सैंधानमक, कूठ, कायफल, पीपल, सोंठ, अजवायन, अजमोद, मुलैठी, जीरा, कालाजीरा, धनियाँ, कचूर, काकडासिंगी, वच, नागकेशर, तालीशपत्र, दारचीनी, इलायची, तेजपात, मिरच, हरड और बहेडा इन सबको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर बीजोंसहित भुनीहुई भाँगका चूर्ण सबकी बराबर और समस्त चूर्णसे दुगुनी मिश्री, शहद तथा घृत लेकर

सबको यथाविधिसे पकावे। पश्चात् सुगन्धिके लिये कपूरका चूर्ण और भुनेहुए तिलोंका चूर्ण मात्रानुसार डालकर उत्तम मोदक बनालेवे। बुद्धिमान् वैद्योंको यह योग पाखण्डियोंसे गुप्त रखना चाहिये। इसको शुभदिनमें सेवन करनेसे मानासिक और शारीरिक सब विकार, क्षय और कुष्ठरोग दूर होते हैं। यह अत्यन्त बृंहणहै। स्त्रियोंको प्रसन्न करनेवाला, मुखकी कान्ति वीर्य और जठराग्निकी वृद्धि करनेवाला है। इससे खाँसी, श्वास और बलास आदि मनुष्योंके रोगसमूह नष्ट होते हैं। इस सर्वसुखदायी कामेश्वरमोदकको भृगुजीने कहा है। जो मनुष्य इसको विधिपूर्वक सेवन करताहै वह सम्पूर्ण ग्रहोंकी बाधासे मुक्त, सर्वशास्त्रोंमें कुशल, निर्मल कीर्त्तिवाला, कामदेवके समान रूपवाला, समस्त भयोंसे रहित, गीत वाद्यादिको जाननेवाला और देवताके समान होताहै। इसको सेवन करनेवाला बडे आनन्दसे स्त्रियोंमें रमण करता है। यदि इसको भोजनके आदि और अन्तमें सेवन करे तो सुरतसमय नष्ट हुआ काम फिर प्रबल होताहै। जिससे मनुष्य बृहस्पतिके समान बुद्धिमान्, अत्यन्त वीर्यवान्, कामक्रीडा करनेमें चतुर स्त्रियोंके साथ सम्भोगरूपी कुतूहल करनेवाला और सहजमेंही सुन्दर कविता तथा काव्य कुतूहलको प्राप्त होता है ऐसे मोदक श्रीमानोंको प्रतिदिन नियमसे सेवन करने चाहिये॥ ५६–१६१॥

अन्य कामेश्वरमोदक।

चूर्णांशं गगनं घनार्द्धविमलं गन्धश्च कुष्ठामृता मेथी मोचरसो विदारि मुषली गोक्षूरकश्चेक्षुरः। भीरुश्चैव कशेरुकं यमानिका तालाङ्कुरं धान्यकं यष्टीनागबला तिला मधुरिका जातीफलं सैन्धवम्॥६२॥भार्गी कर्कटशृङ्गकं त्रिकटुकं जीरद्वयं चित्रकं चातुर्जातपुनर्नवा करिकणा द्राक्षा शठी कट्फलम्। शाल्मल्यंघ्रि फलत्रिकं कापिभवं बीजं समं चूर्णयेच्चूर्णार्द्धा विजया सिता द्विगुणिता मध्वाज्यमिश्रन्तु तत्॥ कर्षार्द्धा गुडिकाथ कर्षमथवा सेव्या सतां सर्वदा पेयं क्षीरमतु स्ववीर्यकरणे स्तम्भेऽप्ययं कामिनाम्॥ ६३॥

कूठ, गिलोय, मेथी, मोचरस, विदारीकन्द, मुसली, गोखुरू, तालमखाने, शतावर, कसेरू, अजवायन, ताडके अंकुर, धनियाँ, मुलैठी, गंगेरन, धुलेहुए तिल, सौंफ, जायफल, सैंधानमक, भारङ्गी, काकडासिंगी, त्रिकुटा, जीरा,

कालाजीरा, चीतेकी जड,दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, पुनर्नवा, गजपीपल, दाख, कचूर, कायफल, सेमलकी मुसली, त्रिफला, कौंछके बीज, इनको समान भाग लेकर चूर्ण करलेवे। इस चूर्णमें सब चूर्णसे चौथाई भाग अभ्रक, अभ्रकसे आधा भाग शुद्ध गन्धक और सबचूर्णसे आधी भाँग एवं सबसे दुगुनी मिश्री, शहद और घी यथाविधि मिलाकर पकावे। फिर आधे कर्ष अथवा एकएक कर्षके लड्डू बनालेवे। प्रतिदिन एकएक लड्डू खावे और ऊपरसे दूध पीवे तो इससे कामीपुरुषोंके वीर्य स्तम्भन होता है॥ ६२॥६३॥

रतिवल्लभमोदक।

शक्राशनस्य बीजानां चूर्णानि पलपञ्च च।
हविषः कुडवश्चैव सिताप्रस्थं प्रगृह्य च॥ ६४॥
शतावरीरसप्रस्थं तथा शक्राशनस्य च।
गव्यमाजं पयः प्रस्थं ततः प्रस्थद्वयं पचेत्॥ ६५॥
धात्री द्विजीरकं मुस्तं त्वगेलापत्रकेशरम्।
आत्मगुप्ता चातिबला तालांकुरकशेरुकम्॥ ६६॥
शृङ्गाटकं त्रिकटुकं धान्यमभ्रञ्च वङ्गकम्।
पथ्या द्राक्षा काकोल्यौ द्वौ खर्जूरं क्षुरकन्तथा॥६७॥
कटुका मधुकं कुष्ठं लवङ्गं सारसैन्धवम्।
यमानी चाजमोदा च जीवन्ती गजपिप्पली॥ ६८॥
प्रत्येकं कर्षमेकन्तु चूर्णितानि शुभानि च।
कुडवार्द्धं पादशेषे मधुनः प्रक्षिपेत्तथा॥ ६९॥
मृगाण्डजं सकर्पूरं यथालाभं विनिःक्षिपेत्।
रतिवल्लभनामायं सेव्यमानो महारसः॥ १७०॥
परमोजस्करो बल्यो वातव्याधिविनाशनः।
वातपित्तहरो वृष्यो दृष्टिसन्दीपनः परः॥ ७१॥
पित्तश्लेष्मास्रपित्तघ्नो विषगुल्मज्वरापहः।
यापयत्येष मन्दाग्निं रोगाणां क्षयहेतुकः॥
न भवेल्लिङ्गशैथिल्यं वृद्धानां पुष्टिवर्द्धनम्।
कृशानां बृंहणं श्रेष्ठं वाजीकरणमुत्तमम्॥ ७३॥

यस्य गेहे सदा बह्व्यः पत्न्यः स्युः सुमनोहराः।
रसः सेव्यः सदैवायं मोदको रतिवल्लभः॥ ७४॥

भाँगके बीजोंका चूर्ण २० तोले, गोघृत १६ तोले, मिश्री एक प्रस्थ, शतावरका रस एक प्रस्थ, भाँगका रस एक प्रस्थ, गौका दूध एक प्रस्थ और बकरीका दूध एक प्रस्थ, इन सबको यथाविधि एकत्र मिलाकर मृदु अग्निके द्वारा पकावे। जब पाक पकते पकते अवलेहके समान गाढा होजाय तब उसमें आमले, जीरा, काला जीरा, नागरमोथा, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, कौंछके बीज, कंघी, ताडके अंकुर, कसेरू, सिंघाडे, त्रिकुटा, धनियाँ, अभ्रक, वङ्ग, हरड, दाख, काकोली, क्षीरकाकोली, खजूर, तालमखाना, कुटकी, मुलैठी, कूठ, लौंग, सैन्धानमक, अजवायन, अजमोद, जीवन्ती और गजपीपल इन प्रत्येक औषधोंके चूर्णको एक एक कर्ष डाल देवे जब उत्तम प्रकार पाक पककर सिद्ध होजाय तब शीतल होजानेपर उसमें शहद ८ तोले और सुगन्धिके लिये किञ्चित् कस्तूरी तथा कपूर मिलाकर लड्डू बनालेवे। यह रतिवल्लभ नामक महारस उचितमात्रासे प्रतिदिन सेवन करना चाहिये। यह अत्यन्त ओजस्कर, बलकर, वातव्याधिनाशक, वात पित्तहर, वृष्य, नेत्रशक्तिवर्द्धक, पित्त, कफ, रक्तपित्त, विष, गुल्मज्वर, मन्दाग्नि और क्षयरोगोंको नाश करनेवाला है। इससे लिङ्गमें शिथिलता नहीं होती। यह वृद्धमनुष्योंको भी पुष्ट करता है, कृशमनुष्योंको बृंहण और उत्तम वाजीकरण है। जिसके घरमें बहुतसी सुन्दरी स्त्रियाँ हों उसको यह रतिवल्लभमोदकरस निरन्तर सेवन करना॥६४--१७४॥

कामाग्निसन्दीपनमोदक।

कर्षो रसो गन्धकमभ्रकञ्च द्विक्षारचित्रे लवणानि पञ्च। शठी यमानीद्वयकीटहारी तालीशपत्राण्यपरं द्विकर्षम्॥ ७५॥ जीरं चतुर्जातलवङ्गजातीफलञ्च कर्षत्रयमेवमन्यत्। सवृद्धदारं कटुकत्रयञ्च तथा चतुःकर्षमितं निबोध॥ ७६॥ धन्याकयष्टीमधुरीकशेरूकर्षाः पृथक् पञ्च वरी विदारी। वरेभकर्णेभकणात्मगुप्ताबीज तथा गोक्षुरबीजयुक्तम्॥ ७७॥ सबीजपत्रेन्द्ररजः समानं समा सिताक्षौद्रघृतञ्च तुल्यम्। कर्षैकमिन्दोरथ मोदकं तत्कामाग्निसन्दीपनमेतदुक्तम्॥ ७८॥ वृष्यस्त्वतः परतरं सततं न दृष्ट एनं निषेव्य मनुजः

प्रमदासहस्रम् । गच्छेन्न लिङ्गशिथिलत्वमवाप्नुयाच्च नागाधिपं विजयते बलतः प्रमत्तम्॥७९॥कात्या हुताशनमपि स्वरतो मयूरान्वाहं जवेन नयनेन महाविहङ्गम्।वातानशीतिमथ पित्तगदं समग्रं श्लेष्मोऽथ विंशतिरुजः परमाग्निमान्द्यम् ॥ ८० ॥ दुर्नामकामलभगन्दरपाण्डुरोगमेहातिसारकृमिहृद्ग्रहणीप्रदोषान् । कासश्वसनज्वरपीनसपार्श्वशूलशूलाम्लपित्तसहितांश्चिरजान्समस्तान् ॥ ८१ ॥ हत्वा गदानपि च तत्पुमयत्यकारि सर्वर्तुपथ्यमथ सर्वसुखप्रदायि । वृष्यं वलीपलितहारि रसायनं स्याच्छ्रीमूलदेवकथितं परमं प्रशस्तम् ॥ ८२ ॥

शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, अभ्रक,जवाखार, सज्जी,चीता, पाँचोंनमक, कचूर, अजवायन, अजमोद, वायविडङ्ग और तालीशपत्र ये प्रत्येक एक एक कर्ष, जीरा, दारचीनी, इलायची, तेजपाव, नागकेशर, लौंग, जायफल ये दो दो कर्ष, विधारेके बीज, त्रिकुटा प्रत्येक तीन तीन कर्ष, धनियाँ, मुलैठी, सोंफ, कसेरू ये चार चार कर्ष, शवावर, विदारीकन्द, त्रिफला, हस्तिकर्ण पलाशकी-जड, गजपीपल, कौंछके बीज, गोखुरू ये प्रत्येक पाँच पाँच कर्ष एवं बीज और पत्तोंसहित भँागका चूर्ण सब औषधियोंके चूर्णके बराबर भाग, तथा सबोंकी बराबर मिश्री, शहद और घी लेवे । सबको विधिपूर्वक मन्दमन्द अग्निसे पकावे । फिर उसमें एक कर्ष कपूर डालकर करछींसे सबको एकमएक करके मोदक बनालेवे । इस रसको कामाग्निसन्दीपन मोदक कहते हैं । इसके सेवनसे निरन्तर वीर्यकी वृद्धि होती है । मनुष्य हजारों स्त्रियोंको भोगता है तो भी उसका लिंग शिथिल नहीं हाता बल्कि ऐरावत हाथीके समान दृढ और बलवान् हो जाताहै । अग्निके समान प्रदीप्त कान्ति, मोरके समान स्वर, घोडेके समान वेग और गरुडके समान दृष्टि शक्ति प्रबल होती है । यह मोदक अस्सी प्रकारके वातरोग, समस्तपित्तरोग, वीस प्रकारके कफरोगों एवं दुर्नामादि उल्लिखित सर्व प्रकारके रोगोंको तत्काल नष्ट करता है । अग्निको अत्यन्त प्रदीप्तकर पुरुषत्वको बढाता है । यह सर्व ऋतुओंमें सेवन करनेयोग्य सब प्रकारके सुखोंको देनेवाला, वीर्यवृद्धि और पुष्टिकारक, वली और पलितरोग संहारक एवं परमोत्तम रसायन है। इसको श्रीमूलदेवजीने वर्णन किया है॥७५-८२॥

बृहच्छतावरीमोदक।

शतावरी श्वदंष्ट्रा च बला चातिबला तथा।
मर्कटीक्षुरबीजञ्च विदारीकन्दजं रजः॥ ८३॥
एतानि समभागानि पलिकानि विचूर्णयेत्।
तस्माच्चतुर्गुणं देयं त्रैलोक्यविजयारजः॥ ८४॥
एतदेकीकृतं यावत्तदर्द्धं माहिषं पयः।
तावन्मात्रेण दातव्यः शतावर्य्या रसस्तथा॥ ८५॥
विदार्य्याः स्वरसप्रस्थं सिता पलशतद्वयम्।
गोलयित्वा सिताञ्चैव पात्रे ताम्रमये दृढे॥ ८६॥
पाचयेत्पाकविद्वैद्यो मोदकं परमं हितम्।
त्र्यूषणं त्रिफला दन्ती त्रिजातं सैन्धवं शठी॥ ८७॥
धान्यकं बालकं मुस्तं कस्तूरी गोस्तनी तुगा।
जातीकोषफलं मांसी पत्रं नागेन्द्रग्रन्थिकम्॥ ८८॥
शतपुष्पा चवी दारु प्रियंगु सलवङ्गकम्।
सरलं शैलजं कुष्ठं जातीपुष्पं यमानिका॥ ८९॥
कट्फलं केशरं मेथी मधुरं सुरदारु च।
मिषितालीशपत्रञ्च खर्जूरं रसगन्धकौ॥ ९०॥
चन्दनं तगरं क्षारं प्रत्येकं कर्षसम्मितम्।
आलोड्य त्रिसुगन्धेन कर्पूरेणाधिवासयेत॥ ९१॥
काञ्चने राजते पात्रे स्थाप्यमेतद्भिषग्वरैः।
कर्षप्रमाणं कर्त्तव्यं क्षीरञ्चानु पिबेत्पलम्॥ ९२॥
प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेत्तु विचक्षणः।
प्रमदाशतं भजते न च शुक्रक्षयो भवेत्॥ ९३॥
न तस्य लिङ्गशैथिल्यं शुक्रसञ्जननं परम्।
क्षयञ्चैव महाव्याधिं पञ्चकासान्सुदुस्तरान्॥ ९४॥
वातजान्पैत्तिकांश्चैव कफजान्सान्निपातिकान्।
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि वातरक्तादिकानि च॥ ९५॥

प्रमेहं श्लीपदं शोथं लक्ष्मीकान्तिविवर्द्धनम् ।
सर्वानर्शोगदान् हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ९६ ॥
व्याधीन्कोष्ठगतानन्याञ्जनार्दन इवासुरान् ।
नातः परतरं श्रेष्ठं विद्यते वाजिकर्मसु ॥ ९७ ॥
स्त्रीणाञ्चैवानपत्यानां दुर्बलानाञ्च देहिनाम् ।
क्लीबानामल्पशुक्राणां जीर्णानामल्परेतसाम् ॥
ओजस्तेजः स्वरं बुद्धिमायुः प्राणं विवर्द्धयेत ॥ ९८ ॥

शतावर, गोखुरू, खिरैंटी, कंघी, कौंछके बीज, तालमखाने और विदारीकन्द इनको चार चार तोले लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे । फिर सब चूर्णसे चौगुना बीज सहित भाँगका चूर्ण और समस्त चूर्णसे आधाभाग भैंसका दूध शतावरका रस भी दूधके ही बराबर भाग, विदारीकन्दका स्वरस १ प्रस्थ और मिश्री २०० पल लेवे । सबोंको यथाविधिसे एकत्र मिलाकर ताँबेके बर्त्तनमें पकावे । जब पकते पकते पाक गाढा होजाय तब उसमें त्रिकुटा, त्रिफला, दन्तीकी जड, त्रिजातक, सैंधानोन, कचूर, धनियाँ, सुगन्धवाला, नागरमोथा, कस्तूरी, दाख, वंशलोचन, जावित्री, जायफल, बालछड, तेजपात, गठिवन, सोया, चव्य, दारुहल्दी, फूलप्रियंगु, लौंग, धूपसरल, भूरिछरीला, कूठ, चमेलीके फूल, अजवायन, कायफल, नागकेशर, मेथी, मुलैठी, देवदारु, सौंफ, तालीशपत्र, खजूर, शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लालचन्दन, तगर, और जवाखार ये प्रत्येक औषधि एक एक कर्ष प्रमाण ले बारीक कूटपीसकर डालदेवे । पश्चात् दारचीनी, इलायची, तेजपात और कपूर इनका चूर्ण सुगन्धिके लिये डालकर सबको एकमएक करके उत्तम मोदक बनालेवे और उनको सोने या चाँदी अथवा मिट्टीके पात्रमें भरकर रखदेवे। इसमेंसे प्रातिदिन प्रातःकाल अथवा भोजनके समय एक एक तोला प्रमाण भक्षण करे और ऊपरसे चार तोले दूधका अनुपान करे । इसके सेवनसे सैकडों स्त्रियोंके साथ रमण करनेपरभी वीर्य क्षय नहीं होता और न लिङ्ग शिथिल होताहै । विशेषकर शुक्रकी वृद्धि होती है। क्षय,राजयक्ष्मा, पाँचप्रकारकी खाँसी, वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातजनितरोग, अठारह प्रकारका कुष्ठ, वातरक्त, प्रमेह, श्लीपद, सूजन और सबप्रकारका अर्श, कोष्ठगतरोग एवं अन्यान्यभयंकर व्याधियोंको यह औषध इसप्रकार तत्काल नष्ट करता है जिसप्रकार विष्णुभगवान्

असुरोंको तत्क्षण नाशकरदेते हैं । वाजीकर्ममें इससे बढकर अन्य औषधि नहीं है । यह लक्ष्मी तथा कान्तिको बढाती है । तथा वन्ध्यास्त्रियों, दुर्बलमनुष्यों, नपुंसक, अल्पवीर्य, वृद्धजनों और क्षीणवीर्यपुरुषोंको अत्यन्त हितकारी, ओज, तेज, स्वर, बुद्धि, आयु और प्राणोंको बढाती है ॥ ८३-९८ ॥

महाकामेश्वरमोदक ।

यथोक्तं द्रव्यसञ्चूर्णं प्रयोज्यं मृतमभ्रकम् ।
गगनार्द्धं शुद्धलौहं लौहार्द्धं वङ्गभस्मकम् ॥ ९९ ॥
जातीकोषफलञ्चैव तत्र सञ्चूर्ण्य दापयेत् ।
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं चातुर्जातकसैन्धवम् ॥ २०० ॥
भृङ्गजीरकयुग्मञ्च धन्याकं ग्रन्थिपर्णकम् ।
मांसी शतावरी कुष्ठं तुगा द्राक्षा लवङ्गकम् ॥१ ॥
बलातिबलामूलञ्च चविका देवताडकम् ।
यमानी शतपुष्पा च मर्कटीबीजाबिल्वयोः ॥ २ ॥
काकोली क्षीरकाकोली तालाङ्कुरसटङ्कणम् ।
शालपर्णी त्रिकण्टश्च चित्रकं कुन्दुरुर्मुरा ॥ ३ ॥
पुनर्नवाश्वगन्धा च मोचकं गजपिप्पली ।
कट्फलं तालमस्तञ्च यष्टीमधुकमेव च ॥ ४ ॥
मधूरिका च तालीशं अनन्ता च प्रियङ्गुकम् ।
बालकं वृद्धदारञ्च शाल्मली पिण्डखर्जुरम् ॥ ५ ॥
विदारी पृश्निपर्ण्यांङ्घ्रि पद्मकं क्षुरबीजकम् ।
मेथी परुषकञ्चैव चन्दनं मरिचं तिलम् ॥ ६ ॥
शृङ्गी सरलकाष्ठञ्च कर्पूरं विश्वभेषजम् ।
समभागानि चैतानि चूर्णमेषां प्रकल्पयेत् ॥ ७ ॥
शोधितं विजयाचूर्णं सर्वचूर्णार्द्धसंयुतम् ।
सिता च द्विगुणा देया मोदकार्थे भिषग्वरः ॥ ८ ॥
मध्वाज्यमिश्रितं कृत्वा कर्षमात्रन्तु मोदकम् ।
प्रातश्च भक्षयेन्नित्यं सर्वव्याधिविवर्जितम् ॥ ९ ॥
नानावर्णमतीसारं संग्रहग्रहणीहरम् ।
प्रमेहश्च महाव्याधिं यक्ष्माणं क्षयमेव च ॥ २१० ॥

नारीशतञ्च रमते न च शुक्रक्षयो भवेत्।
न तस्य लिङ्गशैथिल्यं वृद्धानां परमौषधम् ॥ ११ ॥
बल्यं वृष्यं वातहरं शुक्रस्य जननं परम्।
नैतत्परतरं किञ्चिद्विद्यते वाजिकर्मसु ॥ १२ ॥
स्त्रीणाञ्चैवानपत्यानां दुर्बलानाञ्च देहिनाम्।
ओजःस्थिरकरं चैव स्त्रीषु कार्यविवर्द्धनम् ॥ १३ ॥
मृत्युसञ्जीवनीतन्त्रे पातञ्जलमुनेर्मतम्।
महाकामेश्वरो ह्येष बलपुष्टिविवर्द्धनः॥
रोगानेताञ्जयेत्तेन महादेवेन निर्मितम् ॥ १४ ॥

शुद्ध अभ्रककी भस्म एक तोला, शुद्ध लोहभस्म ६ माशे, वङ्गभस्म ३ माशे एवं जावित्री, जायफल, त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, सेंधानोन, भाँगरा, जीरा, कालाजीरा, धनियाँ, गठिवन, बालछड, शतावर, कूठ, वंशलोचन, दाख, लौङ्ग, खिरैंटी, कंघी, चव्य, देवदारु, अजवायन, सोया, कौंछके बीज, बेलगिरी, काकोली, क्षीरकाकोली, ताडके अंकुर, सुहागा, शालपर्णी, गोखरू, चीता, कुन्दुरु, मुरा मांसी, पुनर्नवा, असगन्ध, मोचरस, गजपीपल, कायफल, ताडका मस्तक, मुलैठी, सौंफ, तालीशपत्र, अनन्तमूल, फूलप्रियंगु, सुगन्धवाला, सेमलकी मुषली, पिण्डखजूर, विदारीकन्द, पृश्निपर्णीकी जड, पद्माख, तालमखाने, मेथी, फालसे, लालचन्दन, काली मिरच, तिल, काकडासिंगी, धूपसरल, कपूर और सोंठ, इन प्रत्येक औषधियोंका चूर्ण एक एक तोला और समस्त औषधियोंके चूर्णसे आधा भाग घीमें भुनाहुआ भाँगका चूर्ण तथा मिश्री सम्पूर्ण चूर्णसे दुगुनी लेवे। सबोंको एकत्र कूट पीसकर और यथाविधि मिलाकर पकावे। जब उत्तम प्रकार पाक होजाय तब शीतल होनेपर घृत और शहदके योगसे एक एक तोलेके लड्डू बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक लड्डू खावे और ऊपरसे सुखोष्ण दूध पीवे। इस औषधिके सेवनसे अनेक प्रकारके अतीसार, संग्रहणी, प्रमेह, यक्ष्मा, महाव्याधि, क्षयादि जैसे सर्व प्रकारके रोग नष्ट होते हैं। मनुष्य सैकडों स्त्रियोंको भोगे तो भी उसका वीर्य क्षय नहीं होता और न उसके लिङ्गमें शिथिलता आती है। वृद्धमनुष्योंको यह औषध परमोपयोगी है। यह बल, वीर्य और पुष्टिको करती है, वातविकारको हरती है। वाजीक-

रण औषधोंमें इससे श्रेष्ठ अन्य औषध नहीं है। बाँझस्त्रियों, दुर्बल मनुष्यों, नष्टवीर्य, अल्पवीर्य और वृद्धजनोंके यह औषध ओजकी वृद्धि और स्थिरताको करतीहै।एवं स्त्रियोंके शरीरकी वृद्धि करती है। मृत्युञ्जय तन्त्रमें लिखा हुआ यह महाकामेश्वरमोदक पातञ्जालिमुनिके मतसे अत्यन्त बल पुष्टिको करनेवाला है। यह सब रोगोंको जीतता है इसीसे महादेवजीने इसको निर्माण किया है॥

श्रीमदनानन्दमोदक।

सूतो गन्धस्तथा लौहं त्रिसमं शुद्धमभ्रकम्।
कर्पूरं सैन्धवं मांसी धात्र्येला च कटुत्रयम् ॥ १५ ॥
जातीकोषफलं पत्रं लवङ्गं जीरकद्वयम्।
यष्टीमधु वचा कुष्ठं हरिद्रा देवताडकम् ॥ १६ ॥
ऐन्ज्जलं टङ्कणं भार्गी नागरं पुष्पकेशरम्।
शृङ्गी तालीशपत्रञ्च द्राक्षाग्निर्दन्तिबीजकम् ॥ १७ ॥
बला चातिबला चोचं धनिकेभकणा शठी।
सजलं जलदं गन्धा विदारी च शतावरी ॥ १८ ॥
अर्कवानरिबीजञ्च गोक्षुरं वृद्धदारकम्।
त्रैलोक्यविजयाबीजं समांशं पेषयेद्भिषक् ॥ १९ ॥
शतावरीरसं दत्त्वा श्लक्ष्णचूर्णं समाचरेत्।
शाल्मलीमूलचूर्णन्तु चूर्णाङ्घ्रिसममाहरेत् ॥ २२० ॥
चूर्णार्द्धं विजयाचूर्णं विशुद्धं तत्र दापयेत्।
सर्वमेकत्र संयोज्य छागीक्षीरेण पेषयेत् ॥ २१ ॥
मोदकार्थे सिता देया पाकयोग्या तथा मधु।
नातिबाह्यञ्च धूमान्ते पाचयेन्मन्दवह्निना ॥ २२ ॥
चातुर्जातं सकर्पूरं सैन्धवं सकटुत्रयम्।
सञ्चूर्ण्य च ततो देयं हव्यं किञ्चिन्निधापयेत् ॥२३॥
पाकं ज्ञात्वा कर्षमितं मोदकं परिकल्पयेत्।
भूतनाथे सुरपतौ रतिनाथे तथैव च ॥ २४ ॥
गणनाथे हुतभुजि मोदकाग्रं निवेदयेत्।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य अर्पयेत्तु हुताशने ॥ २४ ॥

ततोऽभिमन्त्रणमन्त्रः।

"ॐ ह्रीं शाँ सः अमृतं कुरु कुरु अमृते अमृतोद्भवाय नमः ह्रीं अमृतं कुरु कुरु अमृतेश्वराय स्वाहा ॐ स्वाहा॥ इति मन्त्रेणाभिमन्त्रितं कृत्वा पात्रान्तरे स्थापयेत्॥"

काञ्चने राजते काचे मृद्भाण्डे वा निधापयेत्।
प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा हरगौर्यौ प्रपूजयेत॥ २५॥

कालानलभवं बीजं सतिलं घृतसंयुतम्।
गव्यक्षीरं सितायुक्तमनुपेयश्च पायसम्॥ २६॥

विलासार्थं प्रदोषे च मोदकं परिसेवयेत्।
त्रिसप्ताहप्रयोगेण कामान्धो जायते नरः॥ २७॥

कामज्वरो भवेत्तावद्यावन्नारीं न गच्छति।
स सहस्रं वरारोहा रमयत्यपि सोद्गमः॥ २८॥

न च लिङ्गस्य शैथिल्यं वेगवीर्यं विवर्द्धयेत।
प्रमदाप्राणबाहुल्यं मत्तवारणविक्रमः॥ २९॥

वामावश्यकरो रम्य ऊर्ध्वरेता भवेन्नरः।
कामतुल्यं भवेद्रूपं स्वरः परभृतोपमः॥ २३०॥

खगतुल्या भवेद्दृष्टिर्वृद्धोऽपि तरुणायते।
अष्टोत्तरं भवेद्यस्तु भवेत्तस्य सुखोपमम्॥ ३१॥

वीर्यवृद्धिकरं श्रेष्ठं जरामृत्युविनाशनम्।
अपस्मारज्वरोन्मादभयानिलगदापहम्॥ ३२॥

कासं श्वासं सशोथश्च भगन्दरगुदामयम्।
अग्निमान्द्यमतीसारं विविधं ग्रहणिगदम्॥ ३३॥

बहुमूत्रं प्रमेहश्च शिरोरोगमरोचकम्।
हन्ति सर्वान् गदान्घोरान् वातपित्तबलासजान्॥३४॥

वन्ध्या च मृतवत्सा च नष्टपुष्पा च या भवेत्।
बहुपुत्रा जीववत्सा भवेत्तस्य निषेवणात्॥ ३५॥

हरते सूतिकारोगं वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा।
मोदकं मदनानन्दं सर्वरोगे महौषधम्॥
कथितं देवदेवेन रावणस्य हितार्थिना॥ ३६॥

पारे और गन्धककी कज्जली २ तोले, लोहभस्म एक तोला, अभ्रकभस्म ३ तोले एवं कपूर, सैंधानमक, बालछड, आमले, छोटीइलायची, सोंठ, मिरच, पीपल, जावित्री, जायफल, तेजपात, लौंग, जीरा, कालाजीरा, मुलैठी, बच, कूठ, हल्दी, देवदारु, हिज्जलके बीज, सुहागा, भारङ्गी, सोंठ, नागकेशर, काकडासिंगी, तालीशपत्र, दाख, चीता, दन्तीके बीज, खिरैंटी, कंघी, दारचीनी, धनियाँ, गजपीपल कचूर, सुगन्धवाला, नागरमोथा, प्रसारणी, विदारीकन्द, शतावर, आककी जड, कौंछके बीज, गोखुरू, बिधारा और भाँगके बीज, इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर एकत्र कूटपीसकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर उस चूर्णको शतावरके रसके साथ खरल करके धूपमें सुखाकर पुनर्वार चूर्ण करले और उसमें सेमलकी मुषलीका चूर्ण उक्त औषधियोंके चूर्णसे चौथाईभाग एवं घीमें भूनीहुई भाँगका चूर्ण समस्त चूर्णसे आधाभाग मिलाकर सबको एकत्रितकर बकरीके दूधमें खरल करे। तदनन्तर सब औषधिसे दुगुनी मिश्रीको बकरीके दूधमें मिलाकर मन्दमन्द अग्निके द्वारा पकावे। जब पकते पकते पाक गाढा होजाय तब उसमें उक्त समस्तचूर्ण डालदेवे। एवं चातुर्जातक चूर्ण, कपूर, सैंधानोन और त्रिकुटा इनका चूर्ण दोदो तोले तथा किञ्चित् घृत और मधु डालकर सबको एकमएक करदेवे। जब उत्तम प्रकार पाक सिद्ध होजाय तब शीतल होनेपर एकएक तोलेके लड्डू बनालेवे। प्रथम एक एक मोदक शिव, इन्द्र, गणेश और अग्नि आदि दैवताओंके लिये मूलमन्त्रको उच्चारण करके समर्पण करे। उल्लिखितमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उन लड्डुओंको सुवर्ण, चाँदी, काँच अथवा मिट्टीके बर्त्तनमें भरकर रखदेवे। इसके अनन्तर प्रतिदिन प्रातःकाल शौच, स्नानादिसे पवित्र होकर शिव और पार्वतीका पूजन करे फिर काले चीतेके बीज और तिलोंके चूर्णको घृतमें मिलाकर तथा मिश्री मिलेहुए गोदुग्ध और खीर इनके अनुपानके साथ विलासकेलिये सायङ्कालमें एकएक मोदक सेवन करे। इनको इक्कीसदिनतक सेवन करनेसे मनुष्य कामान्ध होजाता है और जबतक स्त्रीप्रसङ्ग नहीं करता तबतक उसको कामज्वर रहता है। यह मदनानन्दमोदक सर्वप्रकारके रोगोंकी परमोत्कृष्ट औषधि है। इसके प्रतापसे बल, वीर्य और पुष्टि होती है तथा जरा और मृत्यु निवारण होती है। रावणके हितैषी श्रीमहादेवजीने इस योगको वर्णन किया है॥

मृत्युसञ्जीवनी सुरा ।

नवं गुडञ्च संगृह्य शतमेकपलन्तथा ।
वावरीत्वचमादाय बदरीत्वचमेव च ॥ ३७ ॥
प्रस्थं प्रस्थं प्रदातव्यं पूगं देयं यथोचितम् ।
लोध्रञ्च कुडवं दत्त्वा आर्द्रकञ्च पलद्वयम् ॥ ३८ ॥
तोयमष्टगुणं दत्त्वा गुडं संगोलयेत्सुधीः ।
प्रथमे चार्द्रकं दद्याद्द्वितीये वावरीत्वचम् ॥ ३९ ॥
तृतीये बदरीं दत्त्वा गोलयित्वा भिषग्वरः ।
मुखे शरावकं दत्त्वा यत्नात्कृत्वा च बन्धनम् ॥२४०॥
मुखसम्बन्धनं कृत्वा स्थापयेद्दिनविंशतिम् ।
मृण्मये मेहिकायन्त्रे मयूराख्येऽपि यन्त्रके ॥ ४१ ॥
यथाविधिप्रकारेण मन्दमन्देन वह्निना ।
चुल्लीमध्ये विधातव्यं मृत्तिकादृढभाजने ॥ ४२ ॥
तदौषधञ्च तन्मध्ये समुद्धृत्य विनिःक्षिपेत् ।
नलञ्च युगलं दत्त्वा कुम्भौ च गजकुम्भवत् ॥ ४३ ॥
कुम्भमध्ये निधातव्यं पूगञ्च सैलवालुकम् ।
देवदारु लवङ्गञ्च पद्मकोशीरचन्दनम् ॥ ४४ ॥
शतपुष्पा यमानी च मारिचं जीरकद्वयम् ।
शठी मांसी त्वगेला च जातीफलं समुस्तकम् ॥४५॥
ग्रन्थिपर्णी तथा शुण्ठी मिषी मेथी च चन्दनम् ।
एषाञ्चार्द्धपलान्भागान्कुट्टयित्वा विनिःक्षिपेत् ॥ ४६॥
यथाविधिप्रकारेण चालनं दापयेत्सुधीः ।
बुद्धिमान् सौजनं कृत्वा उद्धरेद्विधिवत्सुराम् ॥ ४७ ॥
एतन्मद्यं पिबेन्नित्यं यथाधातुवयःक्रमम् ।
आरोग्यजननं देहदार्ढ्यकृद्बलवर्द्धनम् ॥ ४८ ॥
मेधाग्निस्मृतिकृद्वीर्यशुक्रकृद्वातनाशनम् ।
बलपुष्टिकरश्चैव कामसन्दीपनं परम् ॥ ४९ ॥

दश स्त्रियो रमेन्नित्यमानन्द उपजायते ।
रणे तेजोमयः सद्यो यथा भीमपराक्रमः ॥ २५० ॥
नातः परतरं किञ्चिद्रणोत्साहप्रदं महत् ।
देवासुरैर्युद्धकाले शुक्रेण परिनिर्मितम् ॥ ५१ ॥

नया गुड १०० पल, बबूरकी छाल, बेरीकी छाल और चिकनी सुपारी ये प्रत्येक एकएक प्रस्थ, लोध १६ तोले और अदरख ८ तोले इन सब द्रव्योंसे अठगुना जल लेवे । तदनन्तर गुडको जलमें घोलकर पहले उसमें अदरख, दूसरी बार बबूरकी छाल और तीसरीबार बेरीकी छालको घोले । फिर सुपारी और लोधको डालकर सकोरेसे बर्त्तनका मुँह बन्दकरके उसको अच्छे प्रकार बाँध बीसादिनतक रक्खे । पश्चात् मिट्टीके बने मेहिका वा मयूराख्ययन्त्रमें उसको यथाविधि भरकर चूल्हेके ऊपर रख मन्दमन्द अग्निसे पकावे । फिर उसमें सुपारी, एलुआ, देवदारु, लौंग, पद्माख, खस, लालचन्दन, सोया, अजवायन, मिरच, जीरा, कालाजीरा, कचूर, बालछड, दारचीनी, इलायची, जायफल, नागरमोथा, गठिवन, सोंठ, सोंफ, मेथी और सफेदचन्दन, इनको पृथक् पृथक् दो दो तोले ले कूटकर डालदेवे । बुद्धिमान् वैद्य विधिपूर्वक सबको चलाकर मिट्टीके पात्रमें दो नल लगावे और हाथीकी सूँडकी समान दो घडे रक्खे उनमें उस औषधिके रसको खींचकर सुरा सिद्धकरे । फिर उत्तम प्रकार सौजनकर उस सुराको उतार ले और प्रतिदिन धातु एवं अवस्थाके अनुसार मात्राकी कल्पनाकर सेवन करे । इससे आरोग्यता, शरीरमें दृढता, बल, मेधा, अग्नि, स्मृति और वीर्यकी वृद्धि होतीहै, वातव्याधिका नाश होता है एवं अत्यन्त कामाग्नि दीपन होती है । नित्य दस स्त्रियोंको भोगे तो अधिक आनन्द उत्पन्न होता है । रणमें शीघ्र ही भीमसेनके समान तेज और पराक्रम उत्पन्न होताहै । रणके उत्साहको बढानेवाली इससे बढकर अन्य कोई सुरा नहीं है । देवता और असुरोंके युद्धके समय शुक्राचार्यने इसको निर्माण किया था ॥

दशमूलारिष्ट ।

दशमूलानि कुर्वीत भागैः पञ्चपलैः पृथक् ।
पञ्चविंशत्पलं कुर्याच्चित्रकं पौष्करन्तथा ॥ २५२ ॥

कुर्याद्द्विशतपलं लोध्रं गुडूची तत्समा भवेत् ।
पलैः षोडशभिर्धात्री रविसंख्यैर्दुरालभा ॥ ५३ ॥
खदिरो बीजसारश्च पथ्या चेति पृथक्पलैः ।
अष्टाभिर्गुणितं कुष्ठं मञ्जिष्ठा देवदारु च ॥ ५४ ॥
विडङ्गं मधुकं भार्गी कपित्थोऽक्षः पुनर्नवा ।
चव्यं मांसी प्रियङ्गुश्च सारिवा कृष्णजीरकम् ॥ ५५ ॥
त्रिवृता रेणुका रास्ना पिप्पली क्रमुकः शठी ।
हरिद्रा शतपुष्पा च पद्मकं नागकेशरम् ॥ ५६ ॥
मुस्तमिन्द्रयवं शुण्ठी जीवकर्षभकौ तथा ।
मेदा चान्या महामेदा काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके ॥५७॥
कुर्यात्पृथक् द्विपलिकान्पचेदष्टगुणे जले ।
चतुर्थांशं शृतं नीत्वा मृद्भाण्डे च निधापयेत् ॥५८॥
ततः षष्टिपलां द्राक्षां पचेन्नीरे चतुर्गुणे ।
त्रिपादशेषं शीतञ्च पूर्वक्काथे शृतं क्षिपेत् ॥ ५९ ॥
द्वात्रिंशत्पलिकं क्षौद्रं दद्याद्गुडचतुःशतम् ।
त्रिंशत्पलानि धातक्याः कक्कोलं जलचन्दनम् ॥२६०॥
जातीफलं लवङ्गञ्च त्वगेलापत्रकेशरम् ।
पिप्पली चेति सञ्चूर्ण्य भागैर्द्विपलिकैः पृथक् ॥ ६१ ॥
शाणमात्राञ्च कस्तूरीं सर्वमेकत्र निःक्षिपेत् ।
भूमौ निखातयेद्भाण्डं ततो जातरसं पिबेत् ॥ ६२ ॥
कतकस्य फलं क्षिप्त्वा रसं निर्मलतां नयेत् ।
ग्रहणीमरुचिं शूलं श्वासं कासं भगन्दरम् ॥ ६३ ॥
वातव्याधिं क्षयं छर्दिं पाण्डुरोगं च कामलाम् ।
कुष्ठान्यर्शांसि मेहांश्च मन्दाग्निमुदराणि च ॥ ६४ ॥
शर्करामश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं धातुक्षयं जयेत् ।
कृशानां पुष्टिजननो वन्ध्यानां पुत्रदः परः ॥

अरिष्टो दशमूलाख्यस्तेजःशुक्रबलप्रदः ॥ ६५ ॥

दशमूलकी प्रत्येक औषधि बीस २ तोले, चीतेकी जड १०० तोले, पोहकरमूल १०० तोले, लोध ८० तोले, गिलोय ८० तोले, आमले ६४ तोले, धमासा ४८ तोले, खैरसार, विजयसार और हरड, प्रत्येक ३२-३२ तोले, कूठ, मञ्जीठ, देवदारु, वायविडङ्ग, मुलैठी, भारङ्गी, कैथ, बहेडा, पुनर्नवा, चव्य, बालछड, फूलप्रियंगु, अनन्तमूल, कालाजीरा, निसोत, रेणुका, रास्ना, पीपल, सुपारी, कचूर, हल्दी, सोया, पद्माख, नागकेशर, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सोंठ, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि प्रत्येक औषधि आठ २ तोले लेकर एकत्र कूटले फिर सबको अठगुने जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर कपड छान करके शीतल होजानेपर उस काथको मिट्टीके बर्त्तनमें भरकर रक्खे । फिर दाखको ६० पल लेकर चौगुने जलमें पकावे, तृतीयांश जल शेष रहनेपर उसको उतार कर वस्त्रमें छान शीतल करके पूर्व काथमें मिलादेवे । पश्चात् उसमें शहद ३२ पल, गुड ४०० पल, धायके फूल ३० पल, कंकोल, सुगन्धबाला, लालचन्दन, जायफल, लौङ्ग, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर और पीपल, इनके आठ २ तोले चूर्णको बारीक पीसकर एवं चारमाशे कस्तूरीको डालकर सबको चलादेवे । फिर उस पात्रका मुँह अच्छे प्रकार बन्दकर पृथ्वीमें गाडदेवे । एक महीनेके पीछे जब उसमें रस उत्पन्न होगया हो तब निर्मलीके फलोंका चूर्ण डालकर रसके नितार लेवे । इस रसको प्रतिदिन उचित मात्रासे सेवन करे तो यह संग्रहणी, अरुचि, शूल, श्वास, खाँसी, भगन्दर, वातविकार, क्षय, वमन, पाण्डुरोग, कामला, कुष्ठ, अर्श, प्रमेह, मन्दाग्नि, उदररोग, शर्करा, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र और धातुक्षयादिरोगोंको नष्ट करता है । कृशमनुष्योंको पुष्टि और वन्ध्यास्त्रियोंको पुत्र देता है । यह दशमूलाख्यअरिष्ट तेज, शुक्र और बलको अधिकतर बढानेवाला है ॥ २५२-२६५ ॥

गोधूमाद्यघृत ।

गोधूमात्तु पलशतं निःक्वाथ्य सलिलाढके ।
पादशेषे च पूते च द्रव्याणीमानि दापयेत् ॥ ६६ ॥
गोधूमं मुञ्जातफलं माषं द्राक्षा परूषकम् ।
काकोली क्षीरकाकोली जीवन्ती सशतावरी ॥६७॥

अश्वगन्धा सखर्जूरं मधुकं त्र्यूषणं सिता।
भल्लातकमात्मगुप्ता समभागानि कारयेत् ॥ ६८ ॥
घृतप्रस्थं पचेदेवं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम्।
मृद्वग्निना तु सिद्धे च द्रव्याण्येतानि निःक्षिपेत् ॥६९॥
त्वगेला पिप्पली धान्यं कर्पूरं नागकेशरम्।
यथालाभं विनिःक्षिप्य सिताक्षौद्रं पलाष्टकम्॥२७०॥
दत्त्वेक्षुदण्डेनालोड्य विधिवद्विनियोजयेत्।
शाल्योदनेन भुञ्जीत पिबेन्मांसरसेन वा ॥ ७१ ॥
केवलस्य पिबेदस्य पलमात्रं प्रमाणतः।
न तस्य लिङ्गशैथिल्यं न च शुक्रक्षयो भवेत् ॥ ७२ ॥
बल्यं परं वातहरं शुक्रसञ्जननं परम्।
मूत्रकृच्छ्रप्रशमनं वृद्धानाश्चापि शस्यते ॥ ७३ ॥
पलद्वयं तदश्नीयाद्दशरात्रमतन्द्रितः।
स्त्रीणां शतञ्च भजते पीत्वा चानु पिबेत्पयः ॥
अश्विभ्यां निर्मितं चैतद्गोधूमाद्यं रसायनम् ॥ ७४ ॥

गेहूँ१००पल लेकर १ आढक जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छानलेवे। फिर उस क्वाथमें गेहूँ, युञ्जातफल (अभावमें ताडका मस्तक), उडद, दाख, फालसे, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, शतावर, असगन्ध, खजूर, मुलैठी, त्रिकुटा, मिश्री, भिलावे और कौंछके बीज इनके चूर्णको समानभाग एवं घृत १ प्रस्थ और दूध ४ प्रस्थ डालकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब घृत उत्तमप्रकार पककर सिद्ध होजाय तब दारचीनी, इलायची, पीपल, धनियाँ, कपूर और नागकेशर इनका चूर्ण यथालाभ तथा शीतल होनेपर मिश्री ८ पल और शहद ८ पल डालकर ईखके दण्ड अर्थात् गन्नेसे सबको विधिपूर्वक चलाकर एकमएक करलेवे। इस घृतको प्रतिदिन प्रातःकाल चार चार तोले प्रमाण पान करे और शालिचावलोंके भात अथवा मांसरसके साथ भोजन करे। इसके सेवनसे लिङ्गमें शिथिलता और वीर्यका क्षय नहीं होता। यह अत्यन्त बलकारक

वीर्यवर्द्धक और वातव्याधि, मूत्रकृच्छ्र रोगको शमन करता है। वृद्धपुरुषोंको भी विशेष हितकारी है। जो इसको आलस्यरहित होकर दस रात्रि पर्यन्त दो दो पल सेवन करे और ऊपरसे मन्दोष्ण दूध पीवे तो सैकडों स्त्रियोंको भोगता है। इस गोधूमाद्यरसायनको अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है॥७४॥

बृहदश्वगन्धाघृत।

अश्वगन्धा पलशतं शुभदेशसमुद्भवम्।
पुण्येऽहनि समाहृत्य साधयेच्छ्लक्ष्णकुट्टितम्॥ ७५॥
द्रोणेऽम्भसि पचेत्तावद्यावत्पादावशेषितम्।
सर्पिःप्रस्थं पचेत्तेन गव्यक्षीरं चतुर्गुणम्॥ ७६॥
कषायं छागमांसस्य दद्याच्छतद्वयस्य च।
कल्कानि श्लक्ष्णपिष्टानि कर्षमाणानि दापयेत्॥७७॥
काकोलीयुग्ममृद्धिर्द्वे द्वे मेदे चाथ जीरकम्।
स्वयंगुप्तामृषभकमेलां मधुकमेव च॥ ७८॥
मृद्वीकां सूपपर्ण्यौ च जीवन्तीं चपलां बलाम्।
नारायणीं विदारीञ्च दत्त्वा सम्यग्विपाचयेत्॥ ७९॥
सितामाक्षिकयोः शीते गृह्णीयात्कुडवौ पृथक्।
लीढ्वा पाणितलं भुञ्ज्यात्परिहारविवर्जितम्॥ २८०॥
क्षीणेन्द्रियाः क्षीणशुक्रा वृद्धा बालास्तथाबलाः।
हीनमांसाश्च ये केचित्प्राश्येदं मात्रया घृतम्॥ ८१॥
ओजःस्वास्थ्यञ्च तेजश्च प्रसादमिन्द्रियस्य च।
लभते सूर्यसङ्काशो भ्राजते विगतज्वरः॥ ८२॥
वृद्धो वृषायते स्त्रीषु नित्यं षोडशवर्षवत्।
नारीणाञ्च शतं गच्छेन्न च शुक्रक्षयो भवेत्॥ ८३॥
वन्ध्या च लभते पुत्रं बुद्धिमेधासमन्वितम्।
मासमात्रप्रयोगेण वलीपलितनाशनम्॥ ८४॥

खालित्यं तिमिरं व्याधीन्वातिकान्कफपित्तजान् ।
पञ्चकासान्क्षयं श्वासं हिक्कां च विषमज्वरम् ।
हन्ति सर्वान्गदाञ्छीघ्रमश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥ ८५ ॥

शुभदेशमें उत्पन्नहुई सौपल असगन्धको शुभदिनमें लाकर बारीक कूटकर १ द्रोण जलमें पकावे । जब चतुर्थांश जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें गोघृत १ प्रस्थ, गोदुग्ध ४ प्रस्थ, बकरेके मांसका काथ २०० पल, एवं कल्कके लिये काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीरा, कौंछके बीज, ऋषभक, इलायची, मुलैठी, दाख, मुगवन, मषवन, जीवन्ती, पीपल, खिरैंटी, शतावर और विदारीकन्द इनको एक एक कर्षप्रमाण बारीक पीसकर डालदेवे और मन्दमन्द अग्निद्वारा घृतको सिद्धकरे । जब उत्तम पकजाय तब उसमें शीतल होनेपर मिश्री १६तोले और शहद १६ तोले मिलादेवे । प्रतिदिन इस घृतको दोदो तोले प्रमाण हथेलीपर रखकर चाटे और पीछेसे सुखोष्ण दूधपीवे । इसपर यथेच्छ आहारविहार करे । जो नष्टेन्द्रिय नष्टवीर्य,वृद्ध, दुर्बल और मांसहीन स्त्री अथवा पुरुषहों उनके यह घृत उचितमात्रासे सेवनकरनेसे ओज, तेजकी वृद्धि, इन्द्रियोंकी प्रसन्नता और आरोग्यताको उत्पन्न करता है । ज्वरोंसे रहित होकर सूर्यके समान कान्तिमान् होता है । वृद्धपुरुष नित्यप्रति स्त्रियोंमें सोलहवर्षके युवाके समान रमण करता है । सैकडों स्त्रियोंको भोगनेपर वीर्यपात नहीं होता । वन्ध्या स्त्रीभी बुद्धिमान् और मेधावान् पुत्रको उत्पन्न करती है । इस घृतको एक महीनेतक सेवनकरे तो यह वली,पलित, खालित्य, तिमिर, वात पित्त कफसम्बन्धीरोग, पाँचप्रकारकी खाँसी, क्षय, श्वास, हिचकी और विषमज्वर आदि विकारोंको, तत्काल नाश करता है । इसको पूर्वकालमें अश्विनीकुमारोंने रचाहै॥७५-८५॥

अमृतप्राशघृत ।

छागमांसतुलाञ्चैव वाजिगन्धां तथैव च ।
जलद्रोणे विपक्तव्यं कुर्यात्पादावशेषितम् ॥ ८६ ॥
पचेत्तेन घृतप्रस्थमजाक्षीरं चतुर्गुणम् ।
मूर्च्छनार्थे प्रदातव्यं कुंकुमञ्च द्विकार्षिकम् ॥ ८७ ॥
बलामूलञ्च गोधूमश्चाश्वगन्धा तथाऽमृता ।
गोक्षुरश्च कशेरुश्च त्रिकटू च सधान्यकम् ॥ ८८ ॥

तालाङ्कुरं त्रैफलञ्च कस्तूरी बीजवानरी ।
मेदे द्वे च तथा कुष्ठं जीवकर्षभकौ शठी ॥ ८९ ॥
दार्वी प्रियङ्गु मञ्जिष्ठा नतं तालीशपत्रकम् ।
एलापत्रत्वचं नागं जातीकुसुमरेणुकम् ॥ २९० ॥
सरलं जातिकोषञ्च सूक्ष्मैलोत्पलसारिवा ।
मूलं बिम्बस्य जीवन्ती ऋद्धिवृद्धी उदुम्बरः ॥ ९१ ॥
प्रत्येकं कर्षमाणानि पेषयित्वा विनिःक्षिपेत् ।
वस्त्रपूते सुशीते च सितां दद्याच्छरावकम् ॥ ९२ ॥
कर्षमात्रं ततः खादेदुष्णदुग्धानुपानतः ।
बृंहणीयं विशेषेण बलपुष्टिकरं सदा ॥ ९३ ॥
प्रमेहान्ध्वजभङ्गांश्च नाशयेदविकल्पतः ।
एतद्वृष्यकरं सर्पिः काशिराजेन निर्मितम् ॥ ९४ ॥
दृष्टं सिद्धफलं ह्येतद्वाजीकरणमुत्तमम् ।
अमृतप्राशनामेदं सर्वामयनिषूदनम् ॥ ९५ ॥
शिरोरोगे नष्टशुक्रे स्त्रीषु नष्टार्त्तवासु च ।
न च शुक्रक्षयं याति बलं ह्रासं न च व्रजेत् ॥ ॥६ ॥
दशस्त्रीणां रमेन्नित्यमानन्द उपजायते ।
कासार्शआमशूलघ्नं बद्धकोष्ठहरं परम् ॥
सिद्धघृतप्रयोगेण स्थिरं भवति यौवनम् ॥ ९७ ॥

बकरेका मांस१०० पल और असगन्ध१०० पल लेकर दोनोंको एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतार कर छानलेवे । उस क्काथमें घी एक प्रस्थ, बकरीका दूध ४ प्रस्थ मूर्च्छनार्थ केशर २ कर्ष एवं खिरैंटीकी जड, गेहूँ, असगन्धक, गिलोय, गोखुरू, कसेरू, सोंठ, मिरच, पीपल, धनियाँ, ताडके अंकुर, त्रिफला, कस्तूरी, कौंछके बीज, मेदा, महामेदा, कूठ, जीवक, ऋषभक, कचूर, दारुहलदी, फूलप्रियंगु, मंजीठ, तगर, तालीशपत्र, बडी इलायची, तेजपात, दारचीनी, नागकेशर, चमेलीके फूल, रेणुका, धूपसरल, जावित्री, छोटीइलायची, लालकमल, अनन्तमूल, कन्दूरीकी

जड, जीवन्ती, ऋद्धि, वृद्धि और गूलर ये प्रत्येक औषधि एकएक कर्ष प्रमाण कूट पीसकर डालदेवे और पुनर्वार पकावे। घृत उत्तमप्रकार सिद्ध होजाय तब वस्त्रसे छानकर शीतल होजानेपर उसमें मिश्री ६४ तोले परिमाण डालकर मिलादेवे। इस घृतको प्रतिदिन प्रातःकाल एकएक कर्ष प्रमाण सेवन करे और मन्दोष्ण दुग्धका अनुपान करे। यह घृत बृंहणीय विशेषकर बल और पुष्टिको देनेवाला एवं प्रमेह और ध्वजभङ्गको निश्चय नष्ट करनेवाला है। अत्यन्त वीर्यवर्द्धक इस घृतको काशिराज शिवने निर्मित कियाहै। यह वाजीकरण और सिद्धफलको देनेवाला है ऐसा अनुभव कर देखागया है। यह अमृतप्राशनामक घृत सर्वप्रकारके रोगोंको दूर करता है। शिरोरोग, नष्टशुक्र और स्त्रियोंका नष्ट आर्त्तवमें यह परमोपयोगी है। इससे वीर्यक्षय और बलका ह्रास कभी नहीं होता। प्रतिदिन दशस्त्रियोंको भोगे तो भी अधिकाधिक आनन्द उत्पन्न होता है। खाँसी, बवासीर, आमशूल और कोष्ठबद्धताको शीघ्र हरता है। इस सिद्ध घृतके सेवनसे युवावस्था स्थिर होती है॥ २८६-२९७॥

बृहच्छागलाद्यघृत।

छागमांसतुलां गृह्य दशमूल्याः पलं शतम्।
अश्वगन्धापलशतं वाटचालकशतं तथा॥ ९८॥
घृताढकं पचेत्तोयैश्चतुर्भागावशेषितैः।
क्षीरं स्नेहसमं दद्याच्छतावर्या रसन्तथा॥ ९९॥
ताम्रपात्रे दृढे चैव शनैर्मृद्वग्निना पचेत्।
अस्यौषधस्य कल्कस्य प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम्॥३००॥
जीवन्ती मधुकं द्राक्षा काकोल्यौ नीलमुत्पलम्।
मुस्तं सचन्दनं रास्ना पर्णिनीद्वयशारिवे॥ १॥
मेदे द्वे च तथा कुष्ठं जीवकर्षभकौ शठी।
दार्वी प्रियङ्गु त्रिफला नतं तालीशपत्रकौ॥ २॥
एलापत्रं वरी नागं जातीकुसुमधान्यकम्।
मञ्जिष्ठा दाडिमं दारु रेणुकं सैलवालुकम्॥ ३॥
विडङ्गं जीरकश्चैव पेषयित्वा विनिःक्षिपेत्।
वस्त्रपूते च शीते च शर्कराप्रस्थसंयुतम्॥ ४॥

निधापयेत्स्निग्धभाण्डे मृण्मये भाजने शुभे ।
अस्यौषधस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम् ॥ ५ ॥
देवदेवं नमस्कृत्य सम्पूज्य गणनायकम् ।
पिबेत्पाणितलं तस्य व्याधिं वीक्ष्यानुपानतः ॥ ६ ॥
सर्ववातविकारेषु अपस्मारे विशेषतः ।
पक्षाघातेषु चोन्मादे आध्माने कोष्ठनिग्रहे ॥ ७ ॥
कर्णरोगे शिरोरोगे बाधिर्ये चापतन्त्रके ।
भूतोन्मादे च गृध्रस्यां सोदरे चाक्षिपातजे ॥ ८ ॥
पार्श्वशूले च हृच्छूले बाह्यायामार्दिते तथा ।
वातकण्टकहृद्रोगे मूत्रकृच्छ्रे सपङ्गुके ॥ ९ ॥
क्रोष्टुशीर्षे तथा खञ्जे कुब्जे चाध्मानमिन्मिने ।
अपतानेऽन्तरायामे रक्तपित्ते तथोर्द्धगे ॥ ३१० ॥
आनाहेऽर्शोविकारेषु चातुर्थकज्वरेऽपि च ।
हनुग्रहे तथा शोषे क्षीणे चैवापबाहुके ॥ ११ ॥
दण्डापतानके भग्ने दाहे चाक्षेपके तथा ।
जीर्णज्वरे विषे कुष्ठे शेफःस्तम्भे मदात्यये ॥ १२ ॥
आढ्यवातेऽग्निमान्द्ये च वातरक्तगदेषु च ।
एकाङ्गरोगिणे चैव तथा सर्वाङ्गरोगिणे ॥ १३ ॥
हस्तकम्पे शिरःकम्पे जिह्वास्तम्भे ज्वरे भ्रमे ।
क्षीणेन्द्रिये नष्टशुक्रे शुक्रनिःसरणे तथा ॥ १४ ॥
स्त्रीणां वातास्रपाते च पटले चाक्षिस्पन्दने ।
एकाङ्गस्पन्पने चैव सर्वाङ्गस्पन्दने तथा ॥ १५ ॥
नागादिपतिते वाते स्त्रीणामप्राप्तिहेतुके ।
आभिचारिकदोषे च मनःसन्तापसम्भवे ॥ १६ ॥
ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः ।
शिरोमध्यगता ये च जङ्घापार्श्वादिसंस्थिताः ॥१७॥

मातृग्रहाभिभूतश्च शिशुर्यश्च विशुष्यति ।
प्रक्षीणबलमांसश्च न वर्त्मगमनक्षमः ॥ १८ ॥
घृतेनानेन सिद्ध्यन्ति वज्रमुक्तिरिवासुरान् ।
निहन्ति सकलान्रोगान्घृतं परमदुर्लभम् ॥ १९ ॥
रसायनं वह्निबलप्रदश्च वपुःप्रकर्षं विदधाति रूपम् ।
दत्त्वा बलेन्द्रेण समानतेजा दीर्घायुषः पुत्रशतं करोति ॥२०
स्त्रीणां शतं गच्छति चातिरेकं न याति तृप्तिं सरसः समाङ्गः ।
अपुत्रिणीं पुत्रशतं करोति गतायुषं कामसमं बलिष्ठम् ॥२१
महद्घृतं नाम तु छागलाद्यं विनिर्मितं वातनिषूदनं च ।
शिवं शुभं रोगभयापहश्च चकार हारीतमुनिर्विशिष्टः॥ १२२

बकरीका मांस सौ १०० पल, दशमूलकी सब औषधियाँ १०० पल, असगन्ध १०० पल और खिरैंटी १०० पल इनको अलग अलग एक एक द्रोण जलमें पकावे। जब चतुर्थभागावशिष्ट जल रहे तब उतारकर छानलेवे। फिर सबको एकत्रकर उस क्वाथमें घी १ आढक, दूध १ आढक और शतावरका रस १ आढक परिमाण डालकर ताँबेके पात्रमें भरकर मन्दमन्द अग्निद्वारा पकावे। उसी समय इस घृतमें जीवन्ती, मुलैठी, दाख, काकोली, क्षीरकाकोली, नीलकमलकी जड, नागरमोथा, लालचन्दन, रास्ना, मुगवन, मषवन, अनन्तमूल, उसबा, मेदा, महामेदा, कूठ, जीवक, ऋषभक, कचूर, दारुहल्दी, फूलप्रियंगु, त्रिफला, तगर, तालीशपत्र, पद्माख, छोटी इलायची, तेजपत्र, शतावर, नागकेशर, चमेलीके फूल, धनियाँ, मंजीठ, अनार, देवदारु रेणुका, एलुआ, वायविडङ्ग और जीरा इन औषधियोंके दो दो तोले कल्कको बारीक पीसकर डालदेवे। जब घृत उत्तम प्रकार पककर सिद्धहोजाय तब वस्त्रमें छानकर शीतल होजानेपर उसमें चीनी एक प्रस्थ मिलाकर उसको शुद्ध और उत्तम मिट्टीके चिकने बासनमें भरकर रखदेवे।इस सिद्ध औषधिके गुणोंको कहता हूँ उसको सुनो। प्रतिदिन प्रातःकाल गणेश और देवाधिदेव महादेवको नमस्कार तथा पूजकर इस घृतको एक एक तोला प्रमाण पानकरे और यथादोषानुसार अनुपानकी कल्पना करे तो यह घृत वातज, पित्तज और कफज तथा उल्लिखित सर्वप्रकारके भयङ्कररोगोंको तत्कालही इस प्रकार न

करताहै जिसप्रकार इन्द्रका छोडाहुआ वज्र असुरोंका तत्क्षण नाश करदेताहै । यह परमदुर्लभ घृत है । यह उत्तम रसायन, जठराग्नि, बल, वीर्य, आयु, तेज और इन्द्रियशक्तिकी अत्यन्त वृद्धि करता है । एवं वन्ध्यास्त्रियोंको शतशः पुत्रवती, वृद्धोंको बलिष्ठ और कामदेवके समान सुन्दरबनाताहै । इस बृहच्छागलाद्यघृतको हारीतमुनिने बनाया है ॥ ३९८–३२२ ॥

भल्लातकाद्यतैल ।

भल्लातकबृहतीफलदाडिमफलवल्कलसाधितं कुरुते ।
लिङ्गं मर्दनविधिना कटुतैलं वाजिलिङ्गाभम् ॥ ३२३ ॥

भिलावे, बडी कटेरीके फल और अनारके छिल्के इनके कल्क द्वारा एक सेर सरसोंके तेलको विधिपूर्वक पकाकर लिङ्गपर मालिश करे तो लिङ्ग घोडेके लिङ्गके समान होता है ॥ ३२३ ॥

अश्वगन्धातैल ।

अश्वगन्धा वरी कुष्ठं मांसी सिंहीफलान्वितम् ।
चतुर्गुणेन दुग्धेन तिलतैलं विपाचयेत् ।
स्तनलिङ्गकर्णपालिवर्द्धनं म्रक्षणादिदम् ॥ ३२४ ॥

असगन्ध, शतावर, कूठ, बालछड और बडीकटेरीके फल इनके समानभाग मिश्रित कल्कके साथ और चौगुने दूधके साथ१ सेर तिलके तेलको यथाविधि पकावे । इस तेलकी मालिश करनेसे स्तन, लिङ्ग, कानकी पालिकी वृद्धि होती है ॥ ३२४ ॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वाजीकरणाधिकारः ॥

अथ वीर्यस्तम्भनाधिकारः।

शूरणं तुलसीमूलं ताम्बूलैः सह भक्षयेत।
न मुञ्चति नरो वीर्यमेकैकेन न संशयः॥ १॥

जिमीकन्द अथवा तुलसीकी जडके चूर्णको पानमें रखकर खानेसे मैथुन करते समय सहसा मनुष्यका वीर्य स्खलित नहीं होता॥ १॥

कृष्णमार्जारसव्यांघ्रिसम्भवास्थि रतोद्यमे।
दक्षिणे ध्रियते येन तस्य वीर्यस्य न च्युतिः॥ २॥

काली बिल्लीके बाँयें पैरकी हड्डीको दहने अङ्गमें धारण करके स्त्रीप्रसङ्ग करे तो उससमय उस मनुष्यका वीर्य तत्काल स्खलन नहीं होता॥ २॥

चटकाण्डन्तु संगृह्य नवनीतेन पेषयेत।
तेन लेपयतः पादौ शुक्रस्तम्भः प्रजायते॥
यावन्न स्पृशते भूमिं तावद्वीर्यं न मुञ्चति॥ ३॥

चिडियाके अण्डोंको नैनीघीके साथ पीसकर दोनों पावों पर लेप करनेसे वीर्यस्तम्भ होता है। और स्त्रीप्रसङ्ग करते समय जबतक मनुष्य भूमिका स्पर्श नहीं करता तबतक उसका वीर्य क्षरण नहीं होता॥ ३॥

नीलोत्पलसितपङ्कजकेशरमधुशर्करावलिप्तेन।
सुरते सुचिरं रमते दृढलिङ्गो नाभिविवरेण॥ ४॥

नीलकमल, सफेद कमलकी केशर, शहद और मिश्री इन सबको एकत्र पीसकर नाभिके ऊपर लेपकरके बहुत कालतक स्त्रीप्रसंग करनेपर भी वीर्य स्खलित नहीं होता और लिंग अत्यन्त दृढ होता है॥ ४॥

सिद्धं कुसुम्भतैलं भूमिलताचूर्णमिश्रितं कुरुते।
चरणाभ्यङ्गेन रतौ वीर्यस्तम्भाद्दृढलिङ्गम्॥ ५॥

कसूमके फूलोंके तेलको कैंचुएके चूर्णके साथ मिलाकर सिद्धकरे उस तेलको चरणोंमें मालिश करके मैथुन करनेपर वीर्यस्तम्भ और लिङ्गदृढ होता है॥५॥

गौरेकोन्नतशृङ्गत्वग्भवचूर्णे धूपितं वस्त्रम्।
परिधाय भजते ललनां नैकाण्डो भवति हर्षार्त्तः॥६॥

गौके सींगके ऊपरकी छालको उतारकर चूर्णकर अग्निमें दग्धकरे । उसमेंसे जो धुआँ निकले उससे वस्त्रको धूपितकर शरीरपर धारण करे फिर आनन्दसे स्त्रीप्रसङ्ग करे तो वीर्यस्तम्भ होता है ॥ ६ ॥

उन्मुखगोशृङ्गोद्भवलेपो योगजध्वजभङ्गहरः ॥ ७ ॥

गौके उन्नतसींगके चूर्णको लेपकरनेसे योगजध्वजभङ्ग नष्ट होता है ॥ ७ ॥

आकारकरभः शुण्ठी लवङ्गं कुङ्कुमं कणा ।
जातीफलं जातिपुष्पं चन्दनं कार्षिकं पृथक् ॥ ८ ॥
चूर्णयेदहिफेनन्तु तत्र दद्यात्पलोन्मितम् ।
सर्वमेकीकृतं माषमात्रं क्षौद्रेण भक्षयेत् ॥ ९ ॥
शुक्रस्तम्भकरं पुंसामिदमानन्दकारकम् ।
नारीणां प्रीतिजननं सेवेत निशि कामुकः ॥ १० ॥

अकरकरा, सोंठ, लौंग, केशर, पीपल, जायफल, चमेलीके फूल और लाल चन्दन ये प्रत्येक औषधि एकएक कर्ष और अफीम चार तोले प्रमाण लेवे । सबको एकत्र कूटपीसकर बारीक चूर्ण करलेवे।इस चूर्णको कामी पुरुष प्रति दिन रात्रिमें एकएक माशे प्रमाण शहदमें मिलाकर सेवन करे। यह चूर्ण अत्यन्त वीर्यस्तम्भ एवं मनुष्य तथा स्त्रियोंके प्रेम और अत्यानन्दको बढानेवालाहै॥८-१०

इति भैषज्यरत्नावल्यां वीर्यस्तम्भनाधिकारः ॥

इति श्रीवैद्य-शंकरलालकृतसरलाख्यया भाषाटीकया सहिता भैषज्यरत्नावली सम्पूर्णा ॥



खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई-४